Hindi

LIB. G. K. V.

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है । कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें ।

पु. [illegible]
गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार

ock Verification-2

113522

COMPILED

भारती

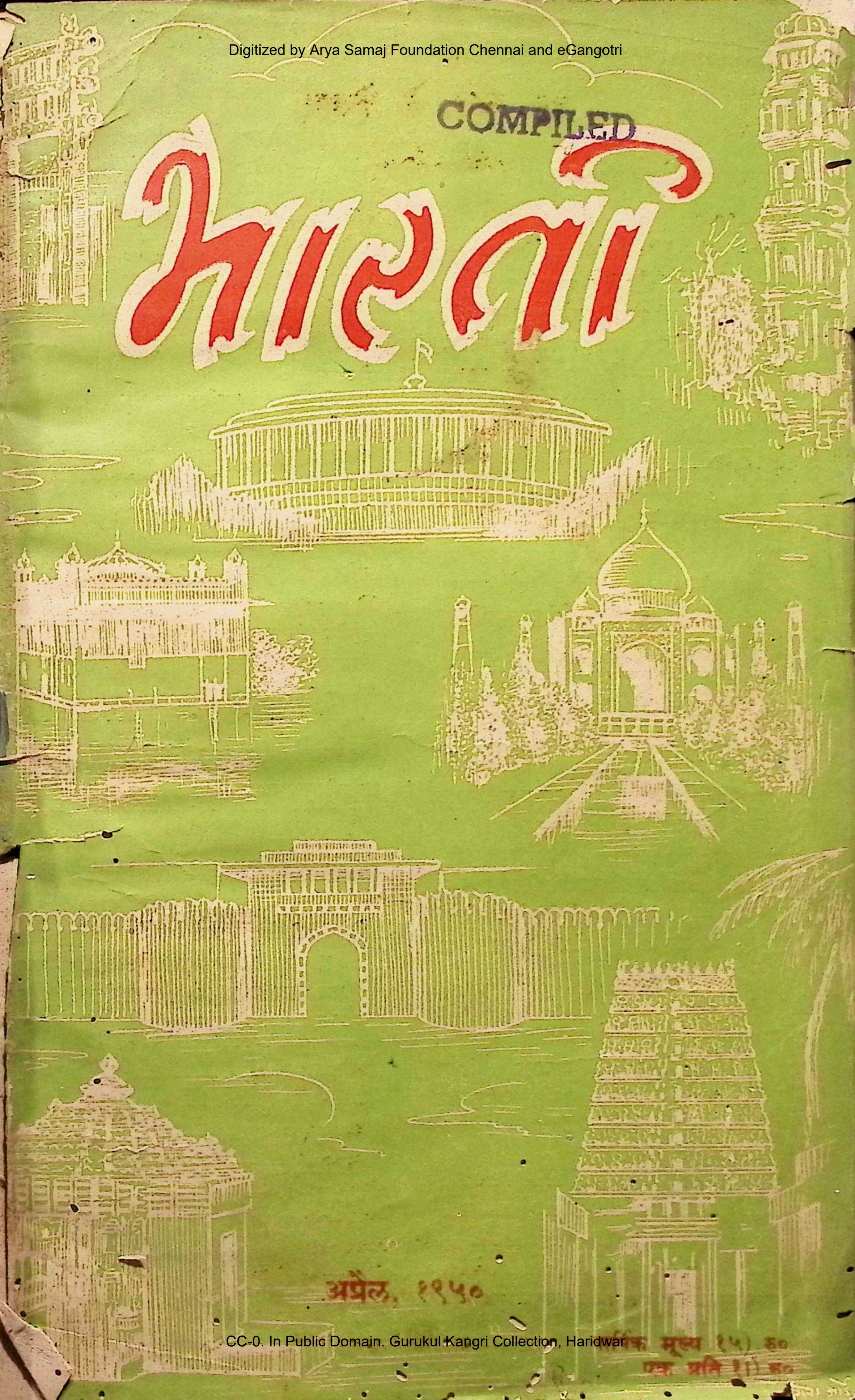

अप्रैल, १९५०

वार्षिक मूल्य १५) रु०
एक प्रति १।) रु०

इस अंक के लेखक

(संक्षिप्त परिचय)

१. दादा धर्माधिकारी :

पूरा नाम आचार्य शंकर त्र्यंबक धर्माधिकारी। मातृभाषा मराठी और राष्ट्रभाषा हिन्दी, दोनों शैलियों के ओजस्वी प्रवक्ता, समस्त सर्वोदय शास्त्र के लेखक और विवेचक, ऊपर से रूखे-सूखे ; नीरस किन्तु मानस में नारिकेल-सम असीम सुस्वादु संयमी शीतल जीवन। बड़े फक्कड़ मिजाज और मज़ाकिया तबियत।

२. काका कालेलकर :

आचार्य दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर। प्रेमल स्वभाव। इन्द्रधनुषी सत-रंगिनी विलक्षण प्रतिभा। हिमालय की विशाल भव्य सुप्रिशोभा में आत्म-विभोर। प्रखर देशभक्त और अद्भुत पुरुषार्थी जीवन। अपना सर्वतोमुखी पांडित्य, प्रेम, स्वातंत्र्य, शान्ति, स्थितप्रज्ञता और सर्व-संस्कृति समन्वय का पाथेय लेकर सतत भारत-भ्रमण कर्ता ; साहित्य-कला-संस्कृति के जीवन-स्पर्शी विवेचक और विचारक। लोकमान्य तिलक, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ और महात्मा मोहनदास की तत्वत्रयी जिनके साहित्य-सर्जन में पूर्ण प्रतिबिम्बित है। राष्ट्रभाषा के प्रबल प्रचारक और नागरी लिपि के सुधारक।

३ शंभुप्रसाद बहुगुना :

एम. ए., लखनऊ विश्वविद्यालय के रिसर्च स्कालर। गुजराती, बंगला आदि के साहित्य-रसिक। हिन्दी साहित्य के उच्चकोटि के लेखक, विचारक और समीक्षक।

४. पं. हरिशंकर शर्मा :

आगरा निवासी, आर्य-समाज के साप्ताहिक "आर्यमित्र" के यशस्वी सम्पादक। हिन्दी साहित्य के प्रकांड पंडित। सुकवि, छेड़छाड़ और हास्यरस की शिष्ट शैली के लेखक।

५. पं. माखनलाल चतुर्वेदी :

हिन्दी-भारती के आदरणीय, ख्यात नामा कलाकार, लेखक, वक्ता, राष्ट्रीय कवि, क्रान्तिदर्शी, उच्च-कोटि की प्रगतिशील प्रतिभा से सम्पन्न और अत्यन्त भावुक। चतुर्वेदीजी 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से गत अर्ध-शताब्दी से भारत की राष्ट्रभारती का शृंगार कर रहे हैं। पंडितजी का विशेष परिचय 'भारती' के गत जनवरी के अंक में प्रकाशित 'राष्ट्रीय झंडे की भेंट' शीर्षक कविता के साथ दिया गया है। 'हिमकिरीटिनी', 'हिमतरंगिणी' और 'साहित्य-देवता' आपकी रचनाओं के उच्चकोटि के दर्शन हैं।

६. शीतल कवि :

पंजाबी भाषा के आधुनिक युग के वीर कवि।

७. सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन :

संसार के महान् दार्शनिक और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त प्रवक्ता और विचारक। सोवियट रूस में प्रजातंत्र भारत की ओर से राजदूत।

८. विनय मोहन शर्मा :

परिचय 'भारती' की मार्च की संख्या में प्रकाशित है।

९. पंडित रामपूजन तिवारी :

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्तिनिकेतन में हिन्दी के प्राध्यापक, साहित्य, कला और संस्कृति के सुलेखक।

१०. डॉ० रघुवीर :

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विविध विश्व-भाषा-शास्त्रों के विज्ञानाचार्य और चलते फिरते विश्वकोश।

११ मैथिलीशरण गुप्त :

भारतवर्ष की समग्र राष्ट्रीय भावना के कलाकार राष्ट्रकवि गुप्तजी विगत ५० वर्षों से भारत और भारती की सेवा कर रहे हैं। आपकी अभिजात शैली और आपकी कविता के विषय दोनों अनूठे हैं। सारा हिन्दी-प्रेमी संसार आपको अत्यन्त श्रद्धास्पद मानता है। गुप्तजी का व्यक्तित्व और कवित्व दोनों बिलकुल भिन्न। बाह्य शरीर-रूप से एक देहाती किसान और इस शरीर के अन्दर जो आत्मा विराजती है उसकी अद्भुत आत्म-कला ने हिन्दी को अमूल्य दिलाया है। गुप्तजी समस्त भारतीय साहित्य और भारतीयता के शुभचिन्तक हैं। आपके लघुभ्राता सहृदय कवि सियारामशरणजी और वयोवृद्ध साहित्यिक श्री. नाथूरामजी प्रेमी के सौजन्य से इस अंक में श्री गुप्तजी की 'मरण से ——' कविता अवतरित है।

१२. चोरघडे :

वामन कृष्ण चोरघडे। परिचय गत मार्च के अंक में प्रकाशित।

COMPILED

76236

इस अंक की पाठ्य सामग्री

[भारती] विषय और लेखक [illegible] अप्रैल १९५०].

प्रष्ठ संख्या

१. मां, मुझे मनुष्य बना दो ! [स्वामी विवेकानन्द] ... २०३
२. छह अप्रैल [ले०—दादा धर्माधिकारी] ... २०४
३. भारत का आदर्श [ले०—काका साहब कालेलकर] ... २०६
४. शेणी-वीजानन्द (कहानी) [ले०—शंभुप्रसाद बहुगुणा एम. ए.] ... २०८
५. माननीय मुन्शी कसरतराय [ले०—हरिशंकर शर्मा] ... २१३
६. मेरी अभिलाषा [ले०—माखनलाल चतुर्वेदी] ... २१५
७. गुरु दिआ सिखा (पंजाबी कविता) [ले०—शीतल कवि] ... २१६
८. सामान्य व्यक्ति के आर्थिक अधिकार [ले०—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन] ... २१८
९. 'राधा बोल उठी मनकी' (कविता) [ले०—श्री विनयमोहन शर्मा] ... २२१
१०. शान्तिनिकेतन में वसन्तोत्सव [ले०—पं. रामपूजन तिवारी] ... २२३
११. मानव इतिहास की कुंजी : वर्णमाला [ले०—डॉ. रघुवीर] ... २२९
१२. मरण से (कविता) [ले०—मैथिली शरण गुप्त] ... २३१
१३. आनन्दवर्धन और काव्य की श्रेणियां [ले०—त्रि. श.] ... २३२
१४. मैं जी गया (मराठी कहानी) [ले०— वामन कृष्ण चोरघडे] ... २३६
१५. पुनर्निर्माण (मराठी कविता) [ले०—आत्माराम रावजी देशपांडे 'अनिल'] ... २४३
१६. अभिज्ञान शाकुंतल में वर्णित स्थानों का परिचय [ले०—विजयेन्द्र. माथुर] २४६
१७. निमंत्रण और आमंत्रण (गुजराती] [ले०—प्रो. अरुणोदय जानी] ... २५०
१८. विधि-विडम्बना (कहानी) [ले०—रूपनारायण पांडेय] ... २५३
१९. आह्व ! (मराठी एकांकी) [ले०—शंकर बालाजी शास्त्री] ... २५८
२०. सोने का हल (तमिळ कविता) [ले०—भिक्षु] ... २६७
२१. आज थी मेरी अभिसार रात्रि (बंगला लघुकथा) [स्व. गु. रवीन्द्रनाथ ठाकुर] २६९
२२. पूर्णिमा (धारावाही हिन्दी-उपन्यास) [ले०—अनन्त गोपाल शेवडे] ... २७०
२३. विविध [ले०—ललिता प्रसाद पुरोहित] ... २८६
२४. साहित्यालोचन (ग्रन्थ-समालोचना) [ले०—विनयमोहन शर्मा] ... २९६
२५. दृष्टिकोण (सम्पादकीय) ... ३००

'भारती' के नियम और उद्देश्य ।

(संपादकीय)

१. भारती प्रतिमास ७ तारीख को प्रकाशित होती है ।

२. भारती में साम्प्रदायिक अथवा मत-मतान्तरों से सम्बन्धित, विवाद ग्रस्त लेख प्रकाशित नहीं होंगे ।

३. भारती भारत की विशुद्ध अन्तर्प्रान्तीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रगतिशील चिन्तन-प्रधान सचित्र मासिक पत्रिका है ।

४. भारती में प्रतिमास लगभग १०० पृष्ठ रहेंगे ।

५. किसी लेख, रचना, कविता आदि को छापने या न छापने का, उसे कम-बढ़ करने का और लौटाने न लौटाने का अधिकार संपादक को है ।

६. भारती का उद्देश्य समस्त उच्च भारतीय भाषाओं के साहित्य को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना है जिससे वह भारत के समस्त भाषा-भाषियों की वस्तु बन सके ।

७. भारती का दृष्टिकोण नव चेतना को लिये हुए रचनात्मक है । वह नये भारत में ऐसे हिन्दी साहित्य का निर्माण चाहती है; जिसमें भारतीय साहित्य का समन्वय हो—सर्वोदय हो ।

८. भारती में हिन्दी की मौलिक श्रेष्ठ रचनाओं के साथ साथ —

१ असमिया, २ बंगला, ३ उडिया, ४ नेपाली, ५ काश्मीरी, ६ सिंधी, ७ गुजराती, ८ मराठी, ९ तमिळ, १० तेलुगु, ११ कन्नड, १२ मलयालम आदि १०–१२ प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुई श्रेष्ठ अनूदित उच्च साहित्यिक सामग्री प्रकाशित होगी ।

९. भारती में मनन करने योग्य विविध विषयक लेख, मनोवैज्ञानिक कलात्मक कहानियां; धारावाहिक उपन्यास, कविता, एकांकी, विविध समालोचनाओं का समावेश होगा ।

१०. प्रकाशनार्थ समस्त सम्पादकीय व्यवहार नीचे लिखे पते पर कीजिये :—

नये ग्राहकों को सूचना !

जो भारतीय-साहित्य के प्रेमी सज्जन ता. ३० अप्रैल तक ग्राहक बन जायेंगे उन्हें **'भारती'** साल भर तक १२) रु. में मिलेगी। यह रियायत नए बननेवाले हमारे प्रेमी ग्राहकों के लिये रक्खी गई हैं।

वार्षिक मूल्य १५ रु.
एक प्रति १।) रु.

संपादक, 'भारती'
C/o. ऑल इंडिया रिपोर्टर लि.
कांग्रेस-नगर, नागपुर (१)
(मध्यप्रदेश)

113522

" भगवान ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती ।"

— मैथिलीशरण गुप्त.

113522

भारती

संपादक
हृषीकेश शर्मा

संचालक
ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., नागपुर

प्रबंध-संपादक
वि. मा. कुलकर्णी

वर्ष १ * नागपुर, अप्रैल—१९५० * **अंक ४**

'मां, मुझे मनुष्य बना दो !'

[स्वामी विवेकानन्द]

हे भारत, क्या दूसरों की हां-में-हां मिलाकर, दूसरों की ही नकल कर, दूसरों का ही मुंह ताककर, इसी घृणित निष्ठुरता, इसी दासोंकी-सी दुर्बलता से तुम वड़े वड़े अधिकार प्राप्त कर सकोगे ? क्या इसी निन्दनीय का-पुरुषता से तुम वीरभोग्य स्वाधीनता लाभ करोगे ? ऐ भारत, यह न भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है । यह न भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी भगवान् शंकर हैं । यह स्मरण रखना कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन और तुम्हारा जविन इन्द्रिय-सुख के लिए, अपने व्यक्तिगत सुख के लिए, नहीं है । यह न भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिये वलि-रूप रखे गये हो । यह न भूलना कि तुम्हारा समाज उन विराट महामाया की छाया मात्र है; और यह न भूल जाना कि नीच, मूर्ख, दरिद्र, चमार और भंगी तुम्हारा रक्त है, तुम्हारे भाई हैं । हे वीर ! साहस का अवलम्बन करो ! गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूं और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है । तुम चिल्लाकर कहो कि मूर्ख भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चंडाल भारतवासी—सभी मेरे भाई हैं । भारत के दीन दुखियों के साथ एक होकर गर्व से पुकार कर कहो, कि 'प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे वचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और वुढ़ापे की काशी है ।' भाई ! कहो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है; और रात दिन तुम्हारी यही रट लगी रहे—'हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो । माँ, मेरी दुर्बलता और का-पुरुषता दूर कर दो । माँ मुझे मनुष्य वना दो !'

छह अप्रैल

[दादा धर्माधिकारी]

छह अप्रैल का दिन आधुनिक भारत के इतिहास में एक पुण्यपर्व का दिन है। कोई इक्कीस साल पहले छह अप्रैल को हमारे राष्ट्रपिता ने इस उदयोन्मुख राष्ट्र का व्रतबन्ध किया था और उसे एक नये राष्ट्र-धर्म की दीक्षा दी थी। उस दिन इस भारतीय राष्ट्र के पुनर्जन्म का आरम्भ हुआ, उसे एक अपूर्व अर्थ में 'द्विजत्व' प्राप्त हुआ। छह अप्रैल से जो राष्ट्रीय भावना के अनुष्ठान का सप्ताह आरंभ हुआ उसकी परिसमाप्ति जलियानवाला बाग के 'रुधिरस्नान' में हुई। उस पवित्र 'रक्तस्नान' में से ही यह राष्ट्र पुनर्जीवित होकर फिर से अनुप्राणित हुआ। इसी दृष्टि से एक विशिष्ट अर्थ में यह छह अप्रैल का दिन एक प्राणदायी पुण्यपर्व है।

उन्नीस सौ अठारह (१९१८) में अंग्रेज सरकार ने दमन के बेलन से इस देश के पौरुष को पूरी तरह कुचलने के लिए 'दो काले कानून' गढ़ डाले। इस दमन का सक्रिय विरोध करना भारतवासियों की 'स्वत्व-रक्षा' के लिए आवश्यक था। भारत की जनता अपमानित हुई थी। वह अपनी 'स्वत्व-रक्षा' कैसे करती? भूखी, नंगी, अपढ़ और निहत्थी जनता अपनी 'मानरक्षा' किस उपाय से करती? वह संतप्त, प्रक्षुब्ध थी लेकिन किंकर्तव्य मूढ़ भी थी।

ऐसे अवसर पर बापू आये। वे भारतीय जनता के 'बापू' थे, भारत माता के औरस पुत्र थे। भारत माता की मिट्टी में जो विशिष्ट गुण हैं उनसे उनका 'पिण्ड' बना हुआ था। मानों भारत की विशेषताएँ उनमें मूर्तिमती हो उठी थीं। वे बापू ही थे जो भारतीय जनता की विशिष्ट शक्ति का ध्यान, आवाहन और आराधन कर सकते थे। उन्होंने संकल्प किया, "मैं भूख में से उपवास की शक्ति जाग्रत करूंगा, जनता में से निःस्पृहता का विकास करूंगा, निरक्षरता में से साक्षरता पैदा करूंगा और निःशस्त्रता में से आत्मबल का निर्माण करूंगा"। इसलिए सत्याग्रह-आन्दोलन का सूत्रपात देशव्यापी उपवास से हुआ।

जिस देश में भूख ने जनता को क्षीण और हताश बना दिया था, उस देश में किसी भी महान् अनुष्ठान का आरम्भ सह-भोजन से नहीं हो सकता था। इसलिए सामुदायिक उपवास ही उपयुक्त समझा गया। छह अप्रैल के दिन इस देश के लोगों ने केवल उपवास का व्रत रखा। देखने में एक बहुत ही मामूली-सी बात थी। परन्तु उसके पीछे एक समूचे राष्ट्र के त्याग की तत्परता, तितिक्षा का निश्चय और अन्तर्गत सहयोग का संकल्प था। इसलिए वह साधारण-सा उपवास भी प्राणवान् और तेज पुंज हो उठा। राष्ट्र के सारे शरीर में, उसके रोम-रोम में, विद्युत् की गति से एक नये उत्साह और नयी आशा की लहर दौड़ गयी।

तप, त्याग और तितिक्षा इस नई प्रतिकार प्रणाली की तत्त्वत्रयी थी। व्यक्तिगत मोक्ष के लिए तप, त्याग और तितिक्षा का आचरण करने की परम्परा इस देश में शताब्दियों से प्रचलित और प्रतिष्ठित थी। परन्तु सार्वजनिक हितसाधन के लिए सार्वजनिक और सामुदायिक रूप के तप, त्याग और तितिक्षा के आयोजनों का व्यवस्थित उपक्रम अर्वाचीन इतिहास में हमारे राष्ट्रपिता गांधी ने किया। एकादशी, शिवरात्रि आदि व्रतों में जो पवित्रता और आत्मशुद्धि की भावना है वही पवित्रता और आत्मशुद्धि की भावना छह अप्रैल के पुण्य दिवस में भी है। तथापि एकादशी और शिवरात्रि से छह अप्रैल के व्रत की भूमिका अधिक व्यापक और अपूर्व है।

एकादशी वैष्णवों का 'हरिदिन' है और शिवरात्रि शैवों का रुद्रार्चन का दिन है। आगे चलकर शैव एकादशी रखने लगे और वैष्णव शिवरात्रि के दिन उपवास रहने लगे। इस समन्वय वृत्ति का

परिपाक ‘ वैकुण्ठ चतुर्दशी ’ में हुआ । ‘ वैकुण्ठ चतुर्दशी ’ वह पवित्र दिन है जब विष्णु शिवजी की पूजा करते हैं और शिवजी विष्णु का पूजन करते हैं । वैकुण्ठ चतुर्दशी में शिवरात्रि और एकादशी का मधुर संगम हुआ । परन्तु छह अप्रैल के अपूर्व पुण्यपर्व में वैकुण्ठ चतुर्दशी का संगम रोज़े के साथ हुआ । इस देश में रहनेवाले सभी सम्प्रदायों, मत-मतान्तरों और धर्मपन्थों के अनुयायियों ने बड़े भक्तिभाव से और असीम श्रद्धा से छह अप्रैल का व्रत रखा और इस देश में एक विधायक रूप में जनताव्यापी संयुक्त राष्ट्र-भावना की प्राणप्रतिष्ठा की । इस दृष्टि से धार्मिक व्रतों की अपेक्षा छह अप्रैल के राष्ट्रीय व्रत की भूमिका अधिक व्यापक और अधिक उन्नत मानी गयी ।

छह अप्रैल के दिन जिस सामुदायिक प्रतिकार का आरम्भ हुआ वह संसार के राजनैतिक इतिहास में अद्भुत और अभूतपूर्व था । निःशस्त्र प्रतिकार के प्रवर्तक और समर्थक कहते थे, ‘ हम प्रतिपक्षी की नाक में दम कर देंगे, उसकी नींद हराम कर देंगे, कदम कदम पर उसे अड़ायेंगे, उसके कामों में अड़ंगा लगायेंगे, उसका सारा काम रोक कर उसे झुकाकर रहेंगे ’ । सत्याग्रह के आद्य प्रवर्तक ने कहा, ‘ हम स्वयम् कष्ट सहेंगे, हम सारे सुखों का त्याग करेंगे और अपने तपःसिद्ध अधिकार से अपने प्रतिपक्षी को स्वपक्षी बना लेंगे । हमारे असहयोग के कारण उसके दुष्कर्म में बाधा पहुँचेगी, हमारे प्रतिकार से उसकी असत् प्रवृत्ति में ही परिवर्तन होगा । इस प्रकार चाहे बाह्य स्वरूप में निःशस्त्र प्रतिकार और सत्याग्रह में समानता भले ही प्रतीत हुई हो, परन्तु वस्तुतः उन दोनों के मूल-तत्त्वों में और उद्देश्य में बहुत बड़ा अन्तर था । इसी कारण सत्याग्रह का आरंभ उपवास-व्रत से हुआ । छह अप्रैल के इस रहस्य को यदि हम भूलेंगे तो धीरे धीरे जैसे जैसे निःशस्त्र प्रतिकार और ‘ विघ्ननीति ’ अपनी उपयोगिता की सीमा को पहुँच जायगी, हमारे लिए शस्त्र-शरणता के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं रह जायगा ।

छह अप्रैल से तेरह अप्रैल तक का सप्ताह जिस प्रान्त के कारण विश्वविख्यात और इतिहासप्रसिद्ध समझा गया उस पंजाब का अब विच्छेद हो गया है । सत्याग्रह के उपक्रम की कल्याणकारिता सूचित करनेवाली घटना पंजाब में ही घटी । हिन्दू, सिक्ख और मुसलमानों के पवित्र रक्त की गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम का तीर्थराज ‘ पञ्चनद ’ की भूमि ही बनी थी । आज वही भूमि सांस्कृतिक विच्छेद का और साम्प्रदायिक विग्रह का समरक्षेत्र बन रही है । छह अप्रैल का हमारे लिए यह सन्देश है कि हम भारतीय कम से कम अपने अन्तर्गत व्यवहार में त्याग, तप और तितिक्षा के प्रयोग से एक दूसरे का स्नेह, विश्वास तथा सहयोग प्राप्त करें और भारतीय लोकराज्य की नींव पुख्ता और मजबूत बनावें । हर व्रतोत्सव और पर्व को मनाने में हमें अपनी विद्यमान परिस्थिति का भी ध्यान नित्य रखना चाहिए । तभी हमारे व्रतोत्सव और पर्व सजीव होंगे ।

{ नागपुर,
{ रामनवमी

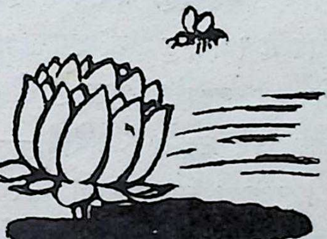

भारत का आदर्श

[काका साहब कालेलकर]

भारत के स्वतंत्र होते ही, उसे विश्व के राष्ट्रों के दरबार में सम्मान का पद मिला। सैनिक-दृष्टि से भारतीय राष्ट्र अभी बलवान नहीं है। धन-सम्पत्ति की दृष्टि से भारत श्रेष्ठ है, यह भी नहीं कहा जा सकता; और यह भी नहीं कह सकते कि वह राजनीति में पटु है। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्करों के सम्बन्ध में दुनिया का गुरु बनना तो दूर रहा, एक होनहार शिष्य के रूप में भी आज भारत की गणना नहीं हो सकती। यह सब होते हुए भी भारत को इतनी जल्दी जो प्रतिष्ठा मिली, इसका क्या कारण है?

मुख्य कारण तो यह है कि भारत ने दुनिया की एक सब से बड़ी ताकत ब्रिटिश साम्राज्य के साथ, एक नये तरीके से लड़ाई लड़कर अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की। इतना ही नहीं, स्वतंत्र होते होते उसने ब्रिटिश साम्राज्य के साथ मित्रता भी कर ली।

कुछ लोग कहेंगे कि इस सब का कारण गान्धीजी का पुण्य-प्रताप है। इसमें सन्देह नहीं कि उन्हीं का पुण्य-प्रताप है। किन्तु महात्माजी का निर्माण क्यों कर हुआ? यहां की प्राचीन भव्य और उच्च उदार संस्कृति से ही उनका निर्माण हुआ। राष्ट्र के अधिकांश लोगों ने उनका कहना माना और यथाशक्ति तदनुसार आचरण भी किया। यह उसी प्राचीन संस्कृति का प्रभाव है।

यहां हम को यह तो मानना ही पड़ेगा कि ऐसी लोकोत्तर संस्कृति पूरी तरह स्वस्थ नहीं है। उसमें बहुत प्राचीन काल से कुछ घुन लग गया है। ऊँच-नीच भाव, अपने-पराये का भाव, ये दो ज़हरीले कीड़े इस संस्कृति को भीतर-ही-भीतर खोखला कर रहे हैं। इसी घुन के कारण महात्माजी की बलि चढ़ी। उनकी हत्या करने वाले व्यक्ति को हम फांसी देकर उस घुन को दूर नहीं कर सकते। उँच नीच, और अपने पराये, भेद-भाव को अगर हम फांसी दे सके, तो हमारी प्राचीन संस्कृति स्वस्थ और प्रभावशाली रह सकेगी।

कुछ लोग कहते हैं, हम पहले अपना घर सुधारे वगैर दुनिया की सेवा नहीं कर सकते। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आत्मशुद्धि पूरी पूरी जब तक न हो जाये, तब तक हम हाथ पर-हाथ धरे बैठे रहें—संसार की सेवा में हाथ ही न लगायें। सेवा ही एक ऐसी रामबाण रसायन है, जिसके प्रयोग से हममें आत्मशुद्धि का संकल्प करने की क्षमता आ सकती है। यदि सेवा का भाव शुद्ध हो तो सेवा करते करते संकीर्णता — तंगदिली — वगैरह सब दोष अपने आप जलने और पिघलने लगते हैं।

भारत में जब तक जाति-भेद है, वर्ण भेदों की सत्ता है, धर्म के नाम पर अपना-पराया भाव मौजूद है, तब तक हम अपने

देश में स्वातंत्र्य, शान्ति और सामर्थ्य की स्थापना नहीं कर सकेंगे। उसे समृद्धिशाली राष्ट्र बनाने की बात तो दूर ही रही।

हमारा देश बहुत बड़ा है। हमारी जन संख्या से ही दुनिया को डर मालूम हो सकता है। हमारे पास प्राकृतिक सम्पत्ति भी बहुत है। लोगों में आनुवंशिक कुशलता भी है। शान्ति का सुराज्य हो, यही इच्छा इस देश में रहने वाली प्रजा की है। जनता शान्तिप्रिय है। इस पूंजी के बलपर हम जो चाहे पुरुषार्थ कर सकते हैं। केवल भेद भाव, संकीर्णता और स्व-पर भाव दूर हो जाना चाहिये। अपने को उच्च वर्ण का कहलाने वाले हमारे देश के कुछ लोगों ने मानवता के प्रति जो द्वेष भाव रक्खा, वही द्वेष आज पश्चिम के गौर वर्ण के लोग सारे विश्व के प्रति रख रहे हैं। यदि हमने अपने घर की सफाई रक्खी तो हमारे अन्दर अनुभव और प्रायश्चित्त-जन्य इतनी प्रचंड शक्ति उत्पन्न होगी कि हम विश्व के दलित राष्ट्रों और जातियों का पक्ष सहज ही में ले सकेंगे।

एशिया के छोटे छोटे राष्ट्र, समस्त आफ्रिका व प्रशान्त महासागर के अगणित द्वीप, हमें सेवा करने के लिये ईश्वर से क्षेत्र के रूप में मिलें हैं। वहां हमें धर्म का प्रचार करने के लिये नहीं जाना है। अपना व्यापार बढ़ाने के लिये नहीं जाना है। जोर जबरदस्ती से अपना साम्राज्य कायम करने के लिये वहां नहीं जाना है।

किन्तु जब हम वहां जायेंगे तो सेवा करने के लिये, शिक्षा-प्रचार के लिये और वहां के लोगों के साथ आत्मीयता बढ़ा कर उनकी स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न करने के लिये ही। अहिंसक वृत्ति से विश्व-बन्धुत्व की भावना स्थापित करने के लिये हमें सब जगह जाना है।

आज विश्व के सभी राष्ट्र युद्ध से भयभीत हैं, किन्तु वे तैयारी युद्ध की ही कर रहे हैं। वे उसी की उपासना कर रहे हैं। उनकी निष्ठा दोषपूर्ण है। यदि हमने अपने को उनके साथ शामिल कर लिया तो हम-दोनों ही डूब जायेंगे। भारतवर्ष जबतक निस्वार्थ सेवावृत्ति के साथ विश्वबन्धुत्व को आगे बढ़ायगा तभीतक वह जिन्दा रहकर संसार की सेवा कर सकेगा।

किन्तु इसके लिये हिन्दुस्थान को अपने देश में शिक्षा का, उद्योग-प्रधान शिक्षा का, तेज़ी से प्रचार करना होगा। त्यागवृत्ति वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ानी होगी। अज्ञान, मानसिक दासता, और भुखमरी के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करना होगा।

यह हमारी शक्ति के बाहर नहीं। हमारे यहां त्यागवृत्ति के लोग उद्योग और जीवन के प्रति उदासीन हो जाते हैं, और उद्योगी जन स्वार्थवश अन्धे हो कर मानवता से कोसों दूर चले जाते हैं। इन दोषों से बचने के लिये त्याग-प्रधान उद्योग की शिक्षा ही एक मात्र उपाय है। यदि हमने सेवाका व्रत लिया, तो सभी दोष नष्ट कर हम अपना और संसार का कल्याण कर सकेंगे। सच्चे वेदान्त की यही शिक्षा थी। वेदान्त की यही शिक्षा हमारा उद्धार करने में समर्थ हो सकेगी।

[मराठी से अनुवादक — गंगाधर इन्दूरकर]

: एक प्रेमगाथा :

शेणी-बीजाणंद

[शंभुप्रसाद बहुगुणा]

शेणी-बीजाणंद की प्रेम-गाथा गुजरात राजस्थान से लेकर हिमाचल पर्यन्त के भूमि·भाग में जन-जीवन के चारणों द्वारा आज तक उसी तन्मयता से गाई जाती है, जिस तन्मयता से वह उस युगमें गाई जाती होगी; जव वे व्यक्ति शरीर से विद्यमान रहे होंगे। इन तीन भूमि-भागों का सम्वन्ध महाभारत कालसे ही रहा है। गुजरात, राजस्थान तथा गढ़वाल (हिमप्रान्त तथा मध्य-भारत दोनों ही देशों के गढ़वाल) का यह सम्वन्ध व्यक्ति के पारस्परिक प्रेम-भाव में ही नहीं; लोक-जीवन की गीत-गाथाओं में भी पाया जाता है। अनेक गीत इन तीनों भूमिभागों की स्थानीय विशेषताओं के आ जानेपर भी अपने मूलमें एक ही हैं। जगदेव पंवार, गोपीचन्द भर्तृहरि, गोरखनाथ, मछेन्द्रनाथ, महाभारत, रामायण और मध्यकाल के वीरों तथा संत महात्माओं और दिव्य पुरुषों के गौरवमय चरित वड़ी श्रद्धासे इन तीनों देशोंमें गाये जाते हैं। शेणी-वीजाणंद का गीत गुजरात और गढ़वाल में ही नहीं राजस्थानमें भी प्रचलित है। मारवाड़ में प्रचलित रूप के दोहों में से दो दोहे इस प्रकार हैं:—

कंकु वरण कलाइयाँ चूड़ी रचडियाँह ।
वीझाँ गल विलगी नहीं (थाने) बालुं बाँहडियाँह॥

ओ मेरी वाँहों! तुम्हारी कुंकुम वरणी कलाइयाँ हैं, रक्त वर्ण चूड़ियाँ हैं किन्तु तुम वीजाणंद के गले का हार न वन पाई इसलिये (तुम्हारी ये विशेषतायें व्यर्थ हैं) तुम्हें जल जाना चाहिये।

सींध डीरां सोदागरां, शेणीरां शेणांह ।
वींझा आगल वांचजो बिध रूड़ी वेणांह॥

ओ सिन्ध देश के सौदागरो! शेणी के प्रियतम वीजाणंद के पास·मुझ शेणी के, (मेरे) ये शब्द भली भाँति वाँचना।

गुजरात में इस गीत की कथा इस प्रकार है:—

प्राचीन समय में गुजरात में जंगल देश था। वह गीर भी कहलाता था। उसके पर्वतों-कांठों की सीमा वतलानेवाला गोरवीआली गाँव अभी तक विद्यमान है। उस गाँवमें वेदो गोरवीआली नामक मालधारी चारण निवास करता था। वेदो की शेणी नामकी एक पुत्री थी। वेदा के घरपर एक युवक चारण, जिसको लोग वीजाणंद कमाँचलिया कहा करते थे, गीर से आता और अपनी वीणा वजाकर मंत्र मुग्ध-सा कर देता था। वीन वजानेमें वह प्रवीण था। इतना ही नहीं; वह संगीत में भी अपनी सारी चेतना को लीनकर तन्मय हो जाता था। चारण के घर के आँगनमें कितनी ही सुंन्दर रातें वीजाणंद ने वीणा के साथ गा गाकर लोगों को रिझानेमें विताईं थीं। रातको आरंभ हुआ संगीत प्रभात होनेपर शांत होता था। वीजाणंद के कंठसे प्रेम के, विरह के, वीरत्व के गीत निकलते थे, जो सुननेवालों में भी वे ही भाव भर देते थे। तरुणी, कंचन-वरणी शेणी अपने घर के झरोंखों की ओट में वैठकर वीजाणंद के संगीत को सुनती थी। संगीत की स्वरलहरी ने गानेवाले वीजाणंद और सुननेवाली शेणी के हृदय की प्रीति को जगा दिया था।

एक दिन वीजाणंद के संगीत से अत्यंत प्रसन्न होकर वेदो चारण ने कहा—"वीजाणंद तुमने अत्यंत सुन्दर गाया वजाया, जो माँगो, मिलेगा।" वीजाणंद ने झिझकते हुए प्रार्थना की "देवता प्रसन्न हो तो शेणी को वरदान रूप में दें।" वेदो सोच में पड़ गया। वीजाणंद जैसे भटकते हुए भिक्षुक को अपनी प्रिय पुत्री शेणी को सौंप देना, उसे उचित न प्रतीत हुआ। उसने वीजाणंद के सामने एक विकट शर्त रखी—"आज से एक साल के भीतर यदि एक सौ एक नव-चांदरी भैंसें लाकर मुझे दे सको तो शेणी का विवाह तुम्हारे साथ हो जावेगा।"

बीजाणंद नव-चांदरी भैंसें जुटाने निकल पड़ा। वह प्रत्येक वस्ती में पशु-धन-सम्पन्न व्यक्तियों को वीणा के संगीत से प्रसन्न कर नव-चांदरी भैंसों को एकत्र करता, किन्तु नव-चाँदरी भैंसे विरल ही

होती हैं। उनके चारों पैरों के अग्रभाग, पूँछ का अंतिम छोर, एक आँचल, एक आँख—ये अंग श्वेत होते हैं। श्वेत मुख के माथे पर श्वेत नव-चन्द्र का चिन्ह होता है। शेष शरीर काला अथवा भूरा होता है। ऐसी एक सौ एक भैंसों को इकट्ठा करना कोई हँसी-खेल का काम नहीं था। इसी कारण बीजाणंद निश्चित समय पर वापिस न आ सका।

निश्चित अवधि के अंतिम दिन की संध्यातक शेणी अपने प्रियतम के लौटने की प्रतीक्षा करती रही। उसे न आया देख वह निराश हो गई। उसने आजन्म कौमार्य व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा की और पिता से अनुमति लेकर वह हिमालय में पँवालिया काँठा की ओर हिममें गलने चली गई। पार्वती की भाँति कठोर तपकर उसकी भी रघुवंश की वाल्मीकि आश्रम-वासिनी सीता की तरह यही कामना थी कि उसे जन्म जन्मान्तर में वीजाणंद ही पति के रूप में प्राप्त हो। उसका वियोग न सहना पड़े। हिमालय की ओर प्रस्थान करते समय उसने मार्ग में प्रत्येक स्थान पर वीजाणंद की खोज की; किन्तु कहीं भी वह न मिला। हिमालय में पँवालिया काँठा में एक गहन गुफा में वैठकर शेणी घोर तप करने लगी।

उधर वीजाणंद शेणी की खोज करता करता विकल हो, जगह जगह भटकता फिरा। एक दिन वह भी हिमालय में जा पहुँचा। शेणी का स्थान ढूँढ़ते ढूँढ़ते उसे मिल गया। जीवन में आने के लिये उसने शेणी से अनुनय-विनय की, किन्तु शेणी अपने अंगीकृत तप-मार्ग से विमुख नहीं होना चाहती थी। अंतिम वार उसने वीजाणंद से वीणा सुनने की इच्छा प्रकट की। वीजाणंद उस दिन युगयुग की चेतना को वीणा के स्वरों में भरकर वजाने लगा। वीणा सुनते सुनते शेणी ने प्राण त्याग दिये। दुखी बीजाणंद सती हीन शिव की भाँति विक्षिप्त हो संसार में घूम घूम कर मर गया।

ग्रीस की ओर्फिअस की कथा का स्मरण दिलाने वाली यह कथा गुजरात के जन स्वरों में गाई जाती है!—

जंतर झाल्यूँ हाथ मांचलीए मांगती रातनूँ।
समदर ले संगाथ वाढेल शठ बीजाणंदे ॥

वीजाणंद पंखे की ओट में और शेणी दीवाल की ओट में वैठती है। वीच में अन्तर पट होते हुए भी उनके हृदय मूक सम्भाषण करते रहते हैं। इस तरह वाल्य काल में ही प्रेम का वीजारोपण हो गया था।

जंतर मोटे तूंवड़े, वत्री से गमे।
छत्रीस लावण रमे बीजाणंद ने टेखे ॥

वीजाणंद की दो तूंवोंवाली वीणा थी। उसमें वत्तीस पर्दे थे। इन पर्दोंपर जव वीजाणंद की कला-प्रवीण उँगलियाँ थिरकने लगतीं तव छत्तीस प्रकार की राग-रागिनियाँ अम्वर में गूँज उठतीं थीं।

गमे गमे गोठड़ी, नव तांत्यूमाँ नहे।
हैयामाँ हलके वीजाणंद ना तूंवडा ॥

वीणा का प्रत्येक परदा प्रेम-गोष्ठी करता था। वाद्य के तंत्र द्वारा स्नेह-गुंजन प्रसारित होता, था। वीणा के दो विशाल पर्दे शेणी के हृदय में हलक दे रहे थे; मानों वाद्य का प्रत्येक विभाग वीजाणंद की गुप्त प्रीति का सँदेश-वाहक वन गया हो। शेणी उसके स्वरों को सुनती, पहिचान रही हो और रातदिन विपिनों की ओर उदास दृष्टि से देख आँसू वहाती रहती हो।

जंतर झाल्यूं हाथ, मांचलीए मांगती रातनूं।
समदर ले संगाथ वाढेल शठ बीजाणंदे।

एक रात माचली वंश का यह बीजाणंद इतने तन्मय स्वरों में वीणा वजाने लगा कि संगीत की प्रत्येक तान के (अनुकूल पवन मिल जाने के) कारण शेणी की हृदय-नैया स्नेहसागर में संयम-रहित होकर वहने लगी। (शेणी का हृदय वश में न रह सका)

* * *

बीजाणंद हाली नीकल्यो पोढ़ीडा पलाणे।
डावो थाने गणेश (तो) वीजाणंद पाछो वळे ॥

(चारण-पति वेदा की शर्त पूरी करने) वीजाणंद आवश्यक वस्तुएं वैल पर लादकर चल पड़ा। विरहव्यथिता शेणी विक्षिप्तावस्था में तीतर से कहती है "हे गणेश! तू वीजाणंद के समीप हो उड़ जाना और वाईं ओर चले जाना। वीजाणंद

अपशकुन हुआ समझकर एक बार वापिस आजाय :—

वरस वल्यां, बादल वल्यां धरती लीलाणी ।
(एक) बीजाणंद ने कारणे शेणी सूकाणी ॥

एक वर्ष का समय बीत गया, जब पिछले वर्ष के गए बादल नए होकर लौट आए (समय और मेघ दोनों का प्रवास पूर्ण हुआ) मेघ के (प्रेममय) मिलन से पृथ्वी प्रफुल्लित हुई किन्तु पिछली पावस ऋतृ में गया बीजाणंद (अबतक) वापिस न आया । दुःख और विरह-व्यथा की वेदना से शेणी सूख गई थी ।

चढ़ टींबा, चढ़ टेकरी चढ़ गुंदाली धार ।
ओझत उछालो लई, बीजाणंद पाछो वाल ॥

गोरवीआली गाँव में ओझत नदी के तीरपर खड़ी हुई नदी से वार्तालाप करते हुए कह रही थी शेणी— हे ओझत ! तूं टेकरीपर चढ़कर गूंदाली नामक किनारे पर उछलकर बीजाणंद का संदेश ले आ । मुझे वह प्रिय संवाद सुना । बहन, फिर उन्हें वापिस आने की बात सुझा दे !

खेत पाक्यूं कण झरे मन बैठूं भाले ।
वलय (वाल) वेलो (म्हेलो) बीजाणंद (मने)
रोझडां रंझाड़े ॥

हे बीजाणंद, मेरी खेती पक गई है । कण झरने लगे हैं । व्यथित मन (पंछी) शरीर नीड़ में बैठा अबतक तुम्हारी प्रतीक्षा कर, रहा है । तुम शीघ्र लौट आओ । इस यौवन की पकती खेती को पशु चारणों की इच्छाएं ताक रहीं हैं । घर के लोगों से वे मेरे परिणय सम्बन्धी प्रस्ताव करते ही चले जा रहे हैं, मेरी व्यथा बढ़ती ही जा रही है ।

खेतर पाक्यूं पौंक भयो मन बैठूं भाले ।
अध वच मेल्यां एकली हाल हैया हेमाले ॥

यौवन रूपी-खेती पक चुकी है । गेहूँ की बालियाँ तैयार हैं । मन तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा है । ओ निर्मोही, प्रेमपथ में मुझे अकेली छोड़ तुम चले गये । हे व्यथित मन, अब हिमालय की ओर चल, (जहां सती ने शिव की प्राप्ति के लिये तप किया था जहाँ अप्सराओं ने जीतू का हरण किया था)

बीजाणंद ने वरमाल, बीजा ने बाँधू नहीं ।
चारण होय लखचार (तेने) बांधव कहीं
बोलावीए ॥

हे पिता, मैं बीजाणंद के अलावा किसी भी अन्य चारण को अपनी वरमाला नहीं पहनाऊंगी । अन्य चार लाखी चारण भी हों तो मेरे लिये वे किस काम के ? मैं उन सबको ' भाई ' कहकर ही पुकारूंगी । (बीजाणंद को छोड़कर) मैं किसी अन्य के साथ विवाह नहीं करना चाहती ।

" मतुं शूं द्यो मानवी, जण जणनी जूजवी
आटली डाह्यण हती (तो) बीजाणंद कां
वाल्यो नहीं ? "

बीजाणंद को छोड़ अन्य चारणों से शेणी का विवाह कर देने की सलाह जनता के जो लोग वेदा को दे रहे थे उनसे शेणी कहती है, तुममें से हरेक अपनी अपनी राय पिता को दे रहा है । तुम इस प्रकार की भिन्न भिन्न राय पिता को क्यों दे रहे हो ? यदि पिता की और मेरी हितकामना की तुम्हें इतनी ही चिन्ता थी तो तुमने उस दिन बीजाणंद को जाने क्यों दिया ? यदि वह गया भी था तो उसे बुला क्यों न लिया ?

धोबी लूगड़ धोय, रूपाले राचुं नहीं ।
मर मेलडियो होय (तोय) वर म्हारो बीजाणंदो ॥

कोई कितने ही उज्ज्वल वस्त्र (धोबी के धुले हुए) पहिन अपने रूप यौवन को सजा क्यों न आवे मुझे इनकी चाह नहीं । मेरे हृदय का ईश्वर बीजाणंद ही हो सकता है, दूसरा नहीं । बीजाणंद मलिन वसन, विक्षुब्ध मन ही सही; किन्तु ऐसी दशा में भी वह मेरा हृदयेश्वर है ।

छालानां चाटले, खोरा घी खयान ने ।
मेंस्यूना मां माथेल व्हाला घी बीजाणंद ना ॥

पशुओं द्वारा जुठारा घृत किस काम का ? भैसों के दधि को मथकर सद्य घी बीजाणंद तैयार करता है। वही मुझे भाता है । जुठारा हुआ घी मैं पसंद नहीं करती । (अन्य चारणों का मलिन स्नेह मैं नहीं चाहती) मुझे तो बीजाणंद का विशुद्ध स्नेह ही प्रिय है ।

* * *

भारग कांठे मढी करुं, लऊं जोगण ना वेश।
गोतूं देश विदेश कोई वावड़ दो बीजाणंद ना॥

इस मार्ग के कांठे (उच्च शिखर) पर मैं मढ़ी बनाऊँगी। जोगिन का वेश लूँगी। देश विदेश में बीजाणंद की खोज करनी है। हे देश विदेश से परिचित पंथियो, मुझे बीजाणंद की सूचना दो। (तुमने भी उसे कहीं देखा है ?)

* * *

कोई जंतरवालो जुवान भाल मां भूलो पड्यो।
सगले पाडूं साद, वावड़ दो बीजाणंद ना॥

(गुजरात और सौराष्ट्र के बीच जंगल प्रदेश में भटकती शेणी सोचती है —)" वीणा बजानेवाला युवक बीजाणंद इस अज्ञात भाल प्रदेश में भ्रमित हो चुका होगा! मैं सब ओर पुकार रही हूँ। कोई तो मुझे बीजाणंद की खबर दो।

लाल सुरंगी धोती एने केसर-भीने वान।
हाल्यो जातो हाट रे जंतरवालो जुवान॥

शेणी को प्रत्युत्तर देते हुअे लोग कहते हैं— हाँ लाल रंग की धोतीवाला, तनिक केसरिया रंगवाला वीणाधारी एक युवक अभी (कुछ समय पहिले) इस मार्ग से निकल चुका है।

यह सुन शेणी आतुर हो पगली सी दौड़ती है। फिर एकाएक रुक जाती है। सिरपर बंधे हुअे कंबल की लकड़ीपर चढ़ाकर फहराती हुई शेणी कहती है:—

चालुं तो चूंक्यूं तीकले छोड़ये लाजी मरूं।
बीजाणंद वागड़ ऊतर्यो, अभी पोत्यूं करूं॥

धीरे धीरे चलती हूँ तो पार न पा सकूँगी और दौड़ती हूँ तो लोकलाज का अनुभव होता है ("दोनो भाँति मौत है हाय, क्या करूँ?") मेरा बीजाणंद वागड़ तक पहुँच गया होगा। अपनी साड़ी को लकडीमें बाँध ध्वजा लगाती हूं। उसीसे संकेत कर देखती हूँ। सम्भव है बीजाणंद कहीं निकट हो और वह इस वस्त्र को पहिचान पुनः लौट आये।

इसी भाँति तीर्थ तीर्थ, देश देश की यात्रा करती हुई शेणी हिमालय में पहुँच अपनी देह को गला रही है।

हाड़ हेमाले नव गल्यां सोहामण शेणी ना।
(तेथी) कासा केरै पूतले परणेवा पड्याँ॥

सुहावणी शेणी की हड्डियाँ हिमालय में न गल सकीं (क्योंकि धर्मशास्त्र के अनुसार पिघलने को आनेवाले के लिये युगल रूपमें आना — पतिपत्नी रूपमें बैठना आवश्यक है) अतः शेणीने घास के पुतले की प्राण प्रतिष्ठा की और उससे लग्नविधि की।

(इसके उपरान्त शेणी का गात पिघलने लगता है) उधर शेणी की खोजमें बीजाणंद पुकारता हुआ वहाँ पहुँच जाता है और उस हिम गुफ़ा के द्वारपर खड़ा रहता है। वह शेणी से बाहर आनेका साग्रह अनुरोध करता है। अनुनय विनय सुन शेणी उत्तर देती है:—

हाड़ा हेमाले गल्या जे गूडा लगे।
बीजाणंद भले घणमूला जाने घरे॥

हे प्रियतम बीजाणंद! अब तुम वापिस लौटकर घर जाओ। मेरी हड्डियाँ हिम में घुटने तक गल चुकी हैं। मैं अपंग हो चुकी हूँ। अब आकर मैं क्या करूंगी?

दूर खड़ा हुआ बीजाणंद कहता है:—

बल बल वेदानी! तूं पांगली हो तोय पालशूं।
कांधे कावड़ धरी (तने) जात्रा बधी जोवरावशूं॥

हे वेदा चारण की पुत्री! तुम वापिस लौट चलो। यदि तुम अपंग हो गयी तब भी मैं तुम्हारा पालन करूँगा। इतना ही नहीं वरन् कांवरी में बैठाकर समस्त तीर्थस्थानों की यात्रा कराऊँगा।

वलुं तो रहूं वांझणी, मुंवा न पामूं आग।
आलुं को अवतार वण साड्यो बीजाणंद॥

हे बीजाणंद, अगर मैं वापिस लौट चलूं तो मुझे अपुत्र ही रहना पड़ेगा। और मृत्यु समय पर मेरे शव का अग्नि संस्कार करनेवाला कोई पुत्र भी न होगा। अतः आगामी जन्म के नष्ट हो जाने की भी सम्भावना रहेगी। यह एक ही जन्म मैंने बिगाड़ा है जो सर्वथा उचित है।

गल्यूं अडधूं गात्र, अड़धामां अड़धूं रह्यूं।
हवे मसलता हाथ, बीजाणंद पाछा वलो॥

हे बीजाणंद, मेरा आधा शरीर गल चुका है। आधे में से भी आधा ही शेष है। अब तुम आशा छोड़ हाथ मलते हुए लौट जाओ। शेणी की (प्राप्ति की) चाह अब व्यर्थ है। (उसे न रक्खो)

बीजाणंद जंतर बगाड़ि हेमालो हल्कुं दिये।
मोह्या माछल-मार माछलियूं टोले मळे ॥

गहरी हिमकंदरा में से शेणी कहती है—बीजाणंद ! अब तुम एक बार अपनी वीणा सुनाओ मेरा अंतिम समय आ गया है। उसे सुनती सुनती मैं प्राण त्याग दूँगी। बीजाणंद वीणा बजाने लगा। वीणा की ध्वनि हिमालय के शैल-शिखरों से प्रतिध्वनित होने लगी। सुदूर नदी तीर के मछुवे उस संगीत को सुन मुग्ध हो गये। मछलियाँ भी उस संगीत को सुनने के लिये झुण्ड बनाकर एकत्रित होने लगीं।

जंतर भांग्यूं अड़ पड़ी त्रूट्यो मोमी भाग।
वेदानी शेणी हाली गई जंत्री न काढ़े राग ॥

बीजाणंद के हाथ से वीणा अकस्मात् छूट कर टूट गई। उसमें चीरें पड़ गईं। उसका मुख्य तार टूट गया। वीणा बजानेवाले का राग सहसा बंद हो गया। और उधर उस गहन गुफा में देदा चारण की पुत्री शेणी का भी अंत हो गया !

भूखे खाधां भात, पेट भरी पामर जी।
शेणी जेवो साथ, बीजाणंद मेली वल्यो ॥

अंत में बीजाणंद ने जगत् में पामर की तरह अपना निर्वाह किया। भूख से पीड़ित होकर चाँवलों से पेट भरा। हाय ! शेणी जैसे साथी को छोड़ बीजाणंद वापिस लौटा।

इस अत्यंत सुन्दर दिव्य प्रेम गाथा का काव्यमय रूपांतर गुजराती और अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुका है। श्री. उच्छरंगराय ओझा का अंग्रेजी रूपान्तर अत्यंत मार्मिक और करुण हुआ है। उसमें शेणी अपने को भवानी का और बीजाणंद को शिव का अवतार मानती है। अपना वास्तविक स्थान हिमालय बताती है :—

"Now father once again Hail to the name of Rama I go
Our natural dwelling place is the snow clad mount
We belong to the world of high skies
Our home lies there on the Kailash range
This flesh filled body is of no use to us
This of hide and bones
I shall shed that bag of the spirit—
And for that practice penance
Austere and great as the Mother
Born of Mountain of the snowy summits
And there I shall meet my Lord Vijanand."

और बीजाणंद भी शेणी की मृत्यु के पश्चात् हिमालय में ही प्राण छोड़ देता है। गुजराती भाषा में इस कथा को लेकर फिल्म भी बन चुका है। हिन्दी में इस कथा को लाने का श्रेय हिमकिन्नर कवि श्री. चन्द्रकुँवर वर्त्वाल (१९१९-१९४७) को है।

: हास्यरस का एक लघु निबन्ध :

माननीय मुन्शी कसरतराय

[हरिशंकर शर्मा]

माननीय मुन्शी कसरतराय का जन्म कब हुआ; क्यों हुआ; कैसे हुआ; किससे हुआ ?—इत्यादि बातों का पता नहीं, परन्तु इतना अवश्य मालूम है कि आप 'डिमोक्रेसी' नामक द्वीप के रहने वाले हैं, जिसे संस्कृत वाले 'जनतन्त्र टापू' और फ़ारसीदाँ 'जज़ीरए जमहूरी' कहते हैं। माननीय मुन्शी कसरतराय इतने 'शोहरए अफ़क़े' यानी 'विश्व-विख्यात' हैं, कि संसार की कोई भी बादशाहत या ताकत आपका मुकाबिला करने की जुरअत नहीं रखती। मज़ाक में बहुत से लोग तो आपको मिस मैजोरिटी और बाबू लोग बहू-पक्ष भी कह देते हैं। माननीय मुन्शीजी के हाथ नहीं; पर वे मारते-पछाड़ते हैं। पैर नहीं; पर चलते, फिरते और दौड़ते हैं। मुंह नहीं; पर खाते-पीते और डकारते हैं जीभ नहीं, पर बोलते और ललकारते हैं। कान नहीं; पर सुनते हैं। नाक नहीं; पर सूँघते हैं। आँख नहीं; पर देखते और घूरते हैं। मन नहीं; पर सोचते-विचारते हैं। हृदय नहीं; पर अनुभव करते हैं। गरज़ कि कवि-कुल-काका गोस्वामी तुलसीदासजी की निम्न लिखित पंक्तियाँ हमारे मुन्शीजी पर पूरी तरह फिट बैठती या भले प्रकार चस्पाँ होती हैं।

'बिन पग चले सुने बिन काना
कर बिन कर्म्म करे विधि नाना
आनन रहित सकल रस भोगी
बिन वाणी वक्ता बड़ योगी'

सभा हो या समाज; कौंसिल हो या असैम्बली; कान्फ्रेंस हो या कांग्रेस; पार्लियामेंट हो या परिषद; सरकार हो या दरबार; जहाँ आप तशरीफ़ ले जाते हैं, वहीं आपका बोलबाला हो जाता है, आपके कारण बड़े बड़े राष्ट्रपतियों और बूढ़े-बूढ़े बादशाहों तक को आसन छोड़ देना पड़ता है। संसार की सब से बड़ी विभूति महात्मा गांधी माननीय मुन्शी कसरतराय की सूरत देखते ही सहम जाते थे, फिर उनकी आवाज़ भी नहीं निकलती थी। महामना मालवीय तो मुन्शीजी के आगे मुँह भी नहीं खोलते थे। अहम्मन्यता के आगार और दुरभिमान के भांडार बड़े-बड़े सत्ताधारी भी आपके आगे हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। लोगों को अर्श से फर्श और फर्श से अर्श पर बैठा देना तो मुन्शी कसरतराय के बाँए हाथ का खेल है। संसार में जहाँ-जहाँ जो-जो उथल-पुथल हो रही है, उसमें माननीय मुन्शीजी का ही करिश्मा दिखाई देता है।

मुन्शीजी ने बड़ों-बड़ों के छक्के छुड़ा दिये। कैसर को कोने में बैठाने वाले आप ही थे; जार की हालते-जार आप के ही ज़रिये हुई; लुईस को गद्दी से आपने ही उतारा, चार्ल्स को दर-दर आपने ही भटकाया और अष्टम एडवर्ड को तख्त छोड़ने के लिये आपने ही मजबूर किया। बड़ी बड़ी मशीनें मुन्शीजी के आगे हेच हैं;

कलें आप की शक्ल देखकर बेकल हो उठती हैं और तोप के गोले ओले-से बन हो, जाते हैं। एटम बम हो या हायड्रोजन बम विना आपके आदेश के कोई कुछ नहीं कर सकता। सब निरर्थक और निकम्मे है। जहाँ माननीय मुन्शी कसरतराय का मान नहीं होता, वहाँ असन्तोष की अग्नि धधकने लगती है; यानी आपके आदेश के बिना न उत्सव होता है न अधिवेशन; न भोजन होता है न भजन। राजनैतिक ही नहीं; धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्रों में भी मुन्शीजी का ही अद्भुत आतङ्क अपना अपूर्व चमत्कार दिखाता रहता है।

लक्ष्मी मुन्शीजी के पैरों पर लोटती है, लोक-प्रियता आपको ललचाए लोचनों से निहारती है। त्यागी का त्याग आपके आगे फीका है। राजा उनके बिना रंक और और शासन-पटुता कलंक है। माननीय मुन्शीजी को प्रसन्न रखो और संसार का वैभव भोगो, चोरी करो, जारी करो, लूट मचाओ, मारो, काटो, शराब पियो, जुआ खेलो; पर मुन्शीजी को प्रसन्न रखो। फिर मजाल है कोई तुम्हारी ओर आँख उठाकर भी देख सके! साधारण व्यक्ति ही नहीं बड़े-बड़े सत्ताधारी तक मुन्शीजी की क्रूर दृष्टि से काँपते, थर्राते और उनका दबदबा देखकर दहल जाते हैं।

माननीय मुन्शी कसरतराय को अपनी अपरिणीता प्रेयसी-पौलिसी देवी से बड़ा प्रेम है। आप सदैव उसके गोरे गले में गल बहियाँ डाले विश्वविहार करते रहते हैं। उफ! दुनिया बड़ी शैतान है, वह बड़े से बड़े बुद्धिमान को भी अपने माया-जाल में फाँसे बिना नहीं रहती। अन्ततोगत्वा स्वार्थी संसार ने अपने सफल षड्यंत्र और कुटिल कुचक्र द्वारा माननीय मुन्शीं कसरतराय को भी श्रीमती कनवैसिंग कुमारी के प्रेम-पाश में आबद्ध करा ही लिया। अब आप इस कमनीय कान्ता के कलित कलेवर पर इतने मुग्ध हैं कि यह कम्बख्त जो कहती है, उसे ही प्राप्त कर गुजरते हैं। न न्याय का ध्यान है, न अन्याय का। न औचित्य की परवा न अनौचित्य की। जिस स्वार्थ-सिन्धुने कनवैसिंग कुमारी को काबू में कर लिया, उसी ने मुन्शी कसरतराय से सब कुछ करा लिया। अरे साहब, अब तो जग जानी देशबखानी है कि मुन्शी कसरतराय से पास कराना हो तो काउण्टेस कनवैसिंग के कृपापात्र बनिये। बस सेण्ट-पर-सेण्ट सफलता प्राप्त हो जायगी। योग्यता की दुहाई दीजिये; चाहे डिग्री-डिप्लोमे दिखाकर अपील कीजिये। विद्वत्ता बघारिये या सार्वजनिक सेवा के गीत गाइये, सब व्यर्थ! सब फुजूल!! अब तो भाई पहले कनवैसिंग कुमारी को अपनाओ और फिर मुन्शी कसरतराय के पास जाओ। अगर ऐसा कर लिया तो सच समझना चीटी चौबारे पर चढकर चहकने लगेगी और भैंस वायुयान में बैठकर बीन बजायेगी। अयोग्यता योग्यता के कपड़े छीन लेगी और योग्यता पृथिवी में प्रविष्ट हो जायगी। माननीय मुन्शीजी ने शादी ही ऐसी खर दिमाग खातून से की है, जो हमेशा दलबन्दी के दलदल मे फंसी और धड़ेबन्दी की धांधली में धँसी रहती है। किसीने ठीक कहा है—'कनवैसिंग की कुत्ती बुलडॉग पर मुंह मारती है'।

सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि जब से माननीय मुन्शी कसरतराय की कमरपर हिटलरी हण्टर या डिक्टेरी डँडा पड़ा है, तब से तो उनकी भोग-विलास में रुचि ही नहीं रही। रातदिन परेशानी में फंसे रहते हैं, चिन्ता बढ़ती ही जाती है, कॉन्स्टिट्यूशनेलिस्टों की कानूनी पुड़िया और वैधानिक वैद्यों की विधान-वटी कुछ भी काम नहीं करती। अनेक उपचार हो रहे हैं; परन्तु परेशानी घटती दिखाई नहीं देती। सुना है, काउण्टैस कनवैसिंग ने भी ऐसे आड़े वक्त में आपसे मुंह मोड़ लिया है। सेवा-शुश्रषा की तो बात ही क्या, आप मुन्शीजी से बोलतीं तक नहीं। खुदा खैर करे। मर्ज़ देखकर तो यही कहना पड़ता है —

औषधं जान्हवी तोयम्।
वैद्यो नारायणो हरिः॥

* * *

मेरी अभिलाषा

चिमनियों, भट्ठियों और रेल के एंजिनों के धुएँ से किसी गांव में मेरी समाधि बने, जहाँ चाहे नागरिक मेरा जीवन चरित न गा सकें, वे मेरी पुण्य तिथियाँ न मना सकें; किन्तु थकी हुई ग्रामीण बहनें अपने सिर के पानी के घड़े तथा घास के बोझे को जिस पर उतार कर थोड़ी देर विश्राम ले सकें। और गांव के नन्हें नन्हें बच्चे खेलते समय अपनी चरण धूलि जिस समाधि पर नित्य चढ़ा जाया करें। वह हो मेरा गांव। गांव के मन्दिर की आरती के बाजे यदि वहां से सुनायी पड़ सकें तो और अच्छा; चाहे वह देवालय किसी भी मजहब का हो। कृष्ण तो सर्व व्यापी है।

—माखनलाल चतुर्वेदी

एक पंजाबी कविता

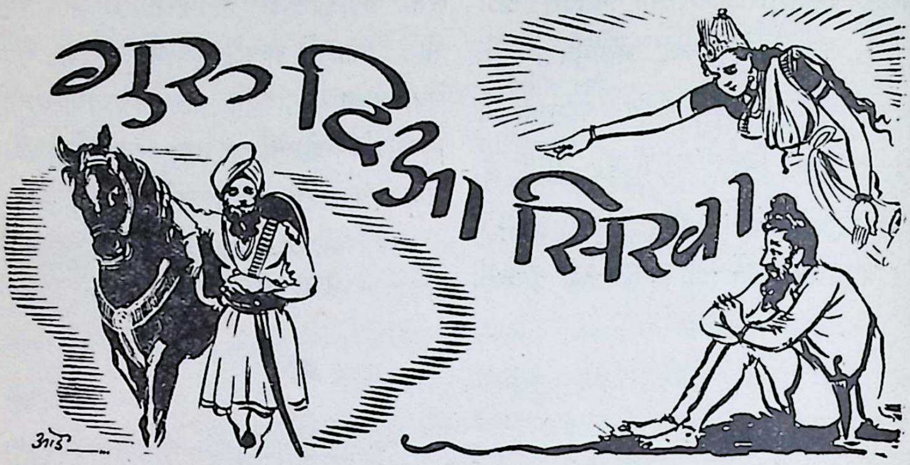

['शीतल' कवि]

१

इक वेरां मैं डिठी सी शान तेरी,
तेरे नां दिआँ पइआँ धुमालियाँ सन ।
इधर बिजली वाङ् तूँ लिशकदासैं,
उधर जुलमदिआँ घटा कालियाँ सन ।
बे-प्रवाह बे-खौफ तूँ विचरदाँ सैं,
तेरे मुँह ते भरवदीआँ लालीआँ सन ।
पैराँ विच्च नवाबियाँ रुलदियाँ सन,
सिरतें छत्तर झूलदीआँ डालीआँ सन ।
तणिआ होइआ चंदोआ आकाशदासी,
जंगल वेलिआँ दां पातशाह सैं तूँ ।
तू सैं लड़ा आजादीदा छैलबाँका,
दीन दुखी दी सदा पनाह सैं तूँ ।

भावार्थ:—शीतल कवि सिक्ख को सम्बोधन कर के कहता है—एक समय मैंने तेरी वह अद्भुत ऊँची शान देखी थी कि तेरे नाम की धूम चारों ओर मची हुई थी। इधर बिजली की तरह तू चमक रहा था और उधर अन्याय-अत्याचार की काली घटा छा रही थी। तब तू वे-खौफ (निडर) और वे-परवाह (निश्चिन्त) हो विचरण करता था। तेरा मुँह लाली से दमकता था। तेरे चरणों तले नवाबी (हुकूमत) ठोकरें खाती फिरती थी। और तेरे सिरपर वृक्षों की डालियां छत्र लिये रहा करती थीं। तेरे सिरपर आकाश का वितान (आसमान का चँदोवा) तना हुआ रहता था और जंगल में बसनेवालों का तू बादशाह था। तू आजादी के लिये लड़नेवाला रणबाँकुरा—बाँका छैल—था और दीन-दुखी जन सदा तुझसे त्राण पाते थे।

२

समा बदलिआ बदलगिआ रंग तेरा,
चली गई आदस उह शान कित्थे ?
दीन रखियावाली उह लंगन कित्थे ?
पर उपकार दी ओह किरपाण कित्थे ?

भावार्थ:—(किन्तु आज) समय ने ऐसा पलटा खाया है कि रंग ही बदल गया तेरा। तू सच कह, तेरी वह शान आज कहाँ चली गई ? तेरी वह दीन-दुखियों की रक्षा करने की लगन कहाँ है ? पर-उपकार करनेवाली वह तेरी (कृपाण) तलवार

चली गई आजादी दी तड़प तेरी,
जेहड़ी कढ़े गुलामी दी जान कित्थे ?
सच्ची वीरता, धीरता, देशपूजा,
लिशकण वालियाँ विच्च मैदान कित्थे ?

३

तेरे साहमणे इक्को आदरश हैसी,
तेरे जीवणदा एहो निशान हैसी ।
लिखिया जित्थे 'आजादी या मौत' हैसी,
तेरा उत्थे ही बस धिआन हैसी ।
सुणतां सई आजादी की आखदीआ,
'नेहूँ लाके गिआ ऐं तोड़ सिखा !'
हाकाँ मार दी पई बुलाँयदीआ,
बागाँ मोड़ सिखा बागाँ मोड़ सिक्खा !

कहाँ है ? वह तेरी आज़ादी की तड़फ कहाँ गई ? जिसके मारे गुलामी की जान निकल जाती थी। सच्ची वीरता, सच्चा धैर्य, सच्ची स्वदेश-भक्ति और मैदान में चमकनेवाली वह तेरी कृपाण कहाँ चली गई ?

भावार्थ:—तेरे सामने एक ही आदर्श था, और तेरे जीवन का एक ही लक्ष्य था। जहाँ 'आजादी या मौत' लिखा हुआ था, बस वहीं पर तेरा ध्यान था। ओ वीर सिक्ख ! जरा ध्यान देकर सुन तो, देख, आजादी तुझसे क्या कह रही है कि — ऐ सिक्ख, मुझसे प्रेम करके और फिर उसे तोड़ कर तू कहाँ चला गया ? स्वतंत्रता तुझे हाँक मार-मार कर बुला रही है। हे सिक्ख ! तू अपने घोड़े की बाग मोड़; अर्थात् स्वातंत्र्य-संग्राम के लिये लौट आ।

[**पंजाबी से अनुवादक** :—
श्री गणेशदत्त शर्मा, 'इन्द्र']

सामान्य व्यक्ति के आर्थिक अधिकार

[सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन]

सन् १९४७ में, १५ अगस्त को, शासन-सत्ता हस्तान्तरित होने के बाद हमने दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि अपने अंगीकृत 'संविधान' के अनुसार भारतीय संघको सम्पूर्ण प्रभुत्त्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया। इस घोषणा की तिथि २६ जनवरी १९५० निश्चित की गई। बीस बरस पहले, इसी दिन, हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस ने सम्पूर्ण स्वातंत्र्य का प्रस्ताव मंजूर किया था। वयस्क मताधिकार, अस्पृश्यता और साम्प्रदायिक निर्वाचन का अन्त, देशी रियासनों का विलय, आधारभूत अधिकारों की मान्यता, स्त्री-पुरुषों की समानता, सर्व साधारण को अवसर मिलने; एवं धर्म, जाति, लिंग या जन्म के कारण भेद-भावपूर्ण व्यवहार का अभाव, ये सब हमारे संविधान की कुछ महत्त्पूर्ण विशेषताएँ हैं। नेपोलियन ने एक बार कहा था कि "संविधान संक्षिप्त और अस्पष्ट होना चाहिये।" किन्तु हमारा संविधान संक्षिप्त और अस्पष्ट नहीं है।

भारत का संविधान लचकदार है और उसमें विकास के लिये काफ़ी गुंजाइश है। वह प्रजातंत्रात्मक है। क्योंकि वह लोगों की इच्छापर निर्भर है। जनता के प्रतिनिधियों को अधिकार है कि वे उसमें ऐसे परिवर्तन करें, कि संविधान में उल्लेखित उद्देश्यों की प्राप्ति के वह अधिक निकट आ जाये। यह काम वैधानिक प्रणाली से ही हो सकता है। अगर हम इस प्रणाली को त्यागकर हिंसा को अपना लें, अगर एक अल्पसंख्याक दलविशेष बलपूर्वक सत्ता छीन ले और स्थापित सरकार को उलट दे, और एक ऐसा पृथक् संविधान ही प्रचलित करे जो वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित लोक प्रतिनिधियों को स्वीकार न हो, तो हम प्रजातंत्र को तिलांजलि दे कर अधिनायकवाद को ही अपना लेंगे।

आज राजनैतिक अधिकारों के साथ ही आर्थिक अधिकारों को सम्बद्ध करने की आवश्यकता पर अधिक जोर दिया जा रहा है। कारण यह है कि इस समय राज्य के विकासोन्मुख कार्यों का विस्तार हो रहा है। औद्योगिक क्षेत्रों की योजनाएं कार्यान्वित हो रही हैं। इस समय हमारे सामने सुखकर राज्य का आदर्श उपस्थित है। राज्य पर ही जनता की सामाजिक एवं आर्थिक भलाई अवलम्बित है। यदि राजनैतिक अधिकार सामाजिक और आर्थिक अधिकारों से सम्बद्ध नहीं हैं तो वे निरर्थक हैं। अमेरिका के भूतपूर्व प्रेसिडेंट रूजवेल्ट के चार स्वातंत्र्य वक्तव्यों में भी अधिकारों की कल्पना का विस्तार किया गया है और आर्थिक दृष्टिकोण को स्थान दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र की बड़ी सभा ने १० दिसंबर १९४८ को, मानव-अधिकारों की व्यापक घोषणा स्वीकृत की थी। उसका नियम २३ वाँ, खंड १ इस प्रकार है—'हरेक व्यक्ति का यह अधिकार है कि उसे काम मिले, वह अपने धन्धे को स्वतंत्रतापूर्वक चुन सके, उसे काम करने के लिये अनुकूल परिस्थितियां मिलें और उसकी बेकारी मिटे। अधिकांश मनुष्यों की समस्याएं राजनैतिक न होकर सामाजिक और आर्थिक हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तो उत्तम जीवन व्यतीत करने का साधन है। काम का अधिकार, जीवन-निर्वाह का अधिकार और बाल्यावस्था-वृद्धावस्था, बीमारी की हालत में सेवा शुश्रूषा का अधिकार—ये अधिकार सामान्य व्यक्ति के लिये मताधिकार से अथवा भाषण-स्वातंत्र्य से कहीं अधिक महत्व के हैं। मताधिकार और भाषण-स्वातंत्र्य की मांग केवल इसी लिये की जाती है कि उनके द्वारा आर्थिक अधिकार प्राप्त किये जा सकते हैं।

हम तबतक उच्च और आर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि उत्पादन का स्तर ऊंचा नहीं होगा। अगर हम चाहते हैं कि देश के नागरिकों को वस्तुओं का अभाव न रहे तो उनसे यह अपेक्षा रखना स्वाभाविक है कि पर्याप्त उत्पादन के लिये वे परिश्रम करें।

इसका मतलव यह नहीं है कि जवर्दस्ती से श्रम कराया जाय। नागरिकों को यह स्वतंत्रता रहनी चाहिये कि वे सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल अपना धन्धा चुन सकें। उन्हें विचार करने की, उसे प्रगट करने की, और संगठन करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहनी चाहिए। सर्व सत्ता-धारी शासन में राज्य के लाभ के लिये मजदूरों का संगठित रूप में शोषण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। हमारा यह प्रयत्न होना चाहिए कि हम समाज की आवश्यकताओं और मजदूरों की स्वतंत्रता में सामंजस्य स्थापित करें।

आज हमारी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। हमारी उत्पादन शक्ति कम है। और जो कुछ भी सम्पत्ति है वह कुछ ही लोगों के हाथों में केन्द्रित हो गई है। इस असमानता ने जनता में असन्तोष उत्पन्न कर दिया है जिसके कारण उसमें विनाशकारी विचारों का प्रचार दिन-व-दिन वढ़ रहा है। यदि हमें उस स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना है, हमने जिसे अपने 'संविधान' में सुरक्षित रखने की व्यवस्था की है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम नई नई टेक्निकल योजनाओं द्वारा जनता का जीवनस्तर ऊँचा उठावें और सम्पत्ति का न्यायपूर्ण वटवारा कराने का प्रयत्न करें। यह आवश्यक है कि समाज के व्यापक हित के लिये कुछ व्यक्तियों को अपने विशेषाधिकारों का त्याग करना होगा। हमारे देश में सम्पत्ति का यह पुनर्वितरण मुश्किल न होगा; क्योंकि यहां शान्तिपूर्ण परिवर्तन अपनी परम्परा रखते हैं जो इस देश की विशेषता हैं।

यदि हम अपनी आर्थिक सुधार योजना को साहसपूर्ण नीति के रूप में नहीं अपनायेंगे तो हमारी स्वाधीनता के विनाश की संकटपूर्ण घड़ी आ सकती है। यह न्यायोचित नहीं है कि लोक-संस्थाओं पर निजी नियंत्रण रहे। हम इस वात के लिये उत्सुक हैं कि इन कल-कारखानों के मजदूरों, मालिकों और प्रवन्धकर्ताओं के वीच में समझौता और सहयोग द्वारा इन संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया जाये। यह वात निर्विवाद है कि दूसरों के परिश्रम से लाभ उठाना एकदम अनैतिक है। अपनी परिस्थितियों पर विचार करके हमें इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करना है जिससे देश के उत्पादन में वृद्धि हो और सम्पत्ति का उचित वितरण हो।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म

राजनैतिक स्वतंत्रता न केवल साम्पत्तिक समृद्धि की; वल्कि आध्यात्मिक पुनर्जन्म की भी आधार है। हमें इस वात के लिये प्रयत्न करना है—नागरिकों का मन वन्धनमुक्त हो और अपनी संस्कृति का उसके विशिष्ट स्वरूप के अनुसार पुनर्निर्माण हो। जनतंत्र का उद्देश्य केवल प्रतिनिधित्व पूर्ण सरकार की स्थापना ही नहीं है; उसका उद्देश्य नैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक भी है। मनुष्य अपने आर्थिक और सामाजिक वन्धनों से श्रेष्ठ है। प्राचीनकाल से ही भारत ने मानव-गौरव की घोषणा की है। महाभारत में एक स्थलपर कहा गया है कि संसार में मनुष्य से वढ़कर कोई श्रेष्ठ नहीं।

आत्मा की व्यापकता और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा ईश्वर-प्राप्ति, ये विचार केवल दार्शनिकों तक ही सीमित नहीं है। देश की जनता भी इनमें विश्वास करती है। साधारण से साधारण भारतीय ने इन विचारों को आत्मसात् कर लिया है। हमारे नये संविधान ने जिन सिद्धान्तों का समर्थन किया है वे हमारी संस्कृति के ही आधारभूत सिद्धान्त हैं।

एक स्वतंत्र समाज में सभी सम्वन्धों में मानव के सम्मान का स्थान रहना चाहिये। जनतंत्रात्मक समाज में धर्मान्धता अथवा किसी मनमाने सिद्धान्त की पूजा नहीं होगी। प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वतंत्रता रहेगी कि वह सत्य की स्वयं खोज करे, अन्धविश्वासों को दूर करे और वह किसी भी साहित्यिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक अथवा धार्मिक प्रमाण को अस्वीकार कर दे। यदि भारतीय राष्ट्र अपनी विशिष्ट संस्कृति को त्याग कर अमेरिका अथवा रूस की जीवनप्रणाली का प्रतिनिधि मात्र वन जाये तो उसमें चाहे और गुण क्यों न हों, वह भारतीय कदापि न रहेगा। हमारा देश भयंकर दरिद्रता और अज्ञान से ग्रसित है; फिर भी हमने उस आत्मशक्ति को जीवित रक्खा है जो आधुनिक यांत्रिक सभ्यता के दावों को नहीं मानती। राजनैतिक स्वतंत्रता पाने के वाद हमने अपनी यह शक्ति खो नहीं दी है।

हमारा विश्वास है कि विश्व को सहयोग देने के लिए हमारे पास बहुत कुछ है।

वास्तविक कसौटी

हमने अपने संविधान में जनतंत्र की सभी विशेषताओं का समावेश किया है—शिक्षा, और उद्योग-धन्धों के लिए अवसरों की समानता; जन्म पर या सम्पत्ति पर आधारित विशेषाधिकारों की समाप्ति, जातिगत असमानता और अस्पृश्यता का उन्मूलन। हमारा समाज रोगग्रस्त है। अगर हम सामाजिक रोगों का निवारण कर लेंगे तो हम जीवित रहेंगे। यदि हमने रोग की उपेक्षा की तो हमारा पतन हो जायगा। हमारे नेता जो करते हैं केवल वे ही उसके लिये उत्तरदायी नहीं होंगे। वे क्या नहीं करते—इस के लिये भी वे उत्तरदायी होंगे। यदि हम दुर्वलता के किसी क्षण में साहस नहीं वतायेंगे तो ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जिनका निराकरण भविष्य में खून और आँसू भी नहीं कर सकेंगे। आज हम लोकप्रियता प्राप्त करने के लिये अत्यन्त उत्सुक हैं। अपने कुछ शासकों को देख कर हमें उस फ्रैंच क्रान्तिकारी की याद आती है जिसने कहा था—‘जनता आज सड़क पर एकत्रित है। मुझे यह देखना है कि वह कहाँ जा रही है। क्योंकि मैं उसका नेता हूं।’

आज जनता को ऐसे नेताओं की आवश्यकता है जो निःस्वार्थ हों, जो समाज की भलाई के लिये अपना जीवन अर्पण कर दें। निःस्वार्थ और अपने सिद्धान्त पर अटल नेताओं से हमारा राजनैतिक जीवन शुद्ध होगा। हम पेरिक्लीज़ के इन शब्दों को हमेशा अपनी दृष्टि में रखें कि—

‘मुझे अपने शत्रुओं के युद्ध कौशल की अपेक्षा अपनी गलतियों का कहीं अधिक भय है।’

[अंग्रेजी से अनुवादकः—**राजेन्द्र प्र. भट्ट**]

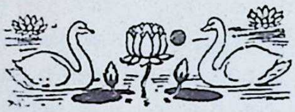

पवित्र प्रेम की पराकाष्ठा

“मालूम नहीं तथागत बुद्ध का वचन सत्य है कि नहीं। मालूम नहीं मेरे भाग्य में पुनर्जन्म है कि नहीं; मुझे यह भी नहीं मालूम कि नास्तिक शिरोमणि चार्वाक की “भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः”—भस्मीभूत इस देह का पुनरागमन कहां—यह उक्ति सच है या झूठ। अगर मेरा यह जीवन धन, यश और मान के विना भी वीत जाय, तो इनके लिये मैं फिर दुबारा जन्म नहीं लेना चाहता। मैं “वासांसि जीर्णानि यथा विहाय”—नये वस्त्र की तरह देह बदल कर मुक्ति की इच्छा से इस पृथ्वीपर नहीं आना चाहता।—मैं इस जिन्दगी म केवल तुम्हारा सुन्दर प्यार चाहता हूं, मैं तुम्हारा समुद्र की तरह स्नेह चाहता हूं। इस जीवन में तो तुम हो, तुम रहो, उसके वाद जव मैं मर जाऊँगा तो तुम्हारा प्रेम मेरी कविता में अमर होकर रहेगा।”

—एक बंगला कविता का भाव

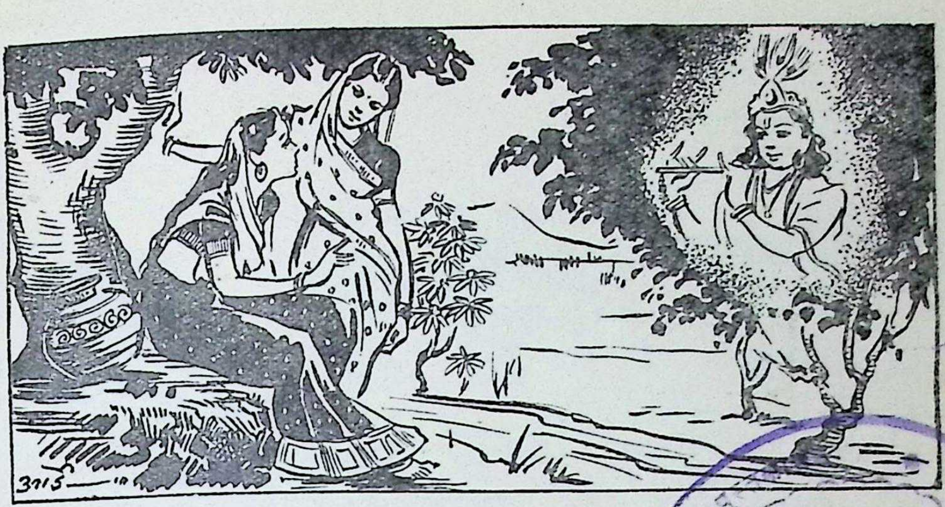

‘राधा बोल उठी मनकी’

1135२२
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

[विनयमोहन शर्मा]

राधा बोल उठी मन की।
लख हरि-गोपीजन की क्रीड़ा निशि-दिन वृन्दावन की,
अलिकुल गुंजित लता-कुंज में छिपकर जीवनधन की—
लीला से ईर्ष्याहत होकर भूली सुधबुध तन की।
राधा बोल उठी मन की।

सखि हे!

कँपित अधर मधु ध्वनित वेणु-स्वर,
चलित दृगंचल चंचल शिर भर,
गति कपोल-द्वय लोल वलयवर
रास-विलास हासकृत मनहर—
हरि मूरत का ध्यान—
हो आता अनजान!

चन्द्रक चारु मयूर शिखंडित,
कोमल केश वलय आमंडित,
प्रचुर पुरन्दर-धनु अनुरंजित,
सघन मेघ-छबि वपु बहु सजित,
हरि मूरत का ध्यान—
हो आता अनजान!

गोपवधू चुम्बन-रस लोभित,
अधर वधूकास्मित मधु शोभित,
पुलक युवति-भुज अति आलिंगित,
पद-कर-मणि-द्युति निशि-तम दारित,
हरि मूरत का ध्यान—
हो आता अनजान!

चन्दन तिलक ललाट विचर्चित,
जलद पटल में विधु सम दर्शित
युवती पीन पयोधर मर्दित,
अपनी निर्दयता पर हर्षित—
हरि मूरत का ध्यान—
हो आता अनजान!

युग्म कपोल रत्न मणि मंडित,
मकर मनोहर कुंडल लम्बित,
सुन्दर पीत वसन परिवेशित,
मुनि-सुर-असुर-पद्म पद पूजित—
हरि मूरत का ध्यान—
हो आता अनजान!

विशद कदम्ब तले उपवेशित,
जन-जन से कलि-भय अपवारित,
निज अपांग से मम-मन पूरित,
सुन्दर मोहक कवि-'जय' वर्णित—
हरि मूरत का ध्यान—
हो आता अनजान!

और भी—

सपनों में सुधि बनकर आते—
सखि, वे भुला भुला कर भाते!
'निरगुनिया' के गुन ही मन में 'गुन गुन'—स्वर भर जाते।
पर-रंत, होनेपर भी मुझ में रति बनकर ढर जाते।
सखि! वे भुला भुला कर भाते।
सपनों में सुधि बनकर आते।

[अप्रकाशित 'हिन्दी-गीत गोविन्द से'।—स्वत्व सुरक्षित]

शान्ति निकेतन में वसन्तोत्सव

[रामपूजन तिवारी]

शान्तिनिकेतन में फाल्गुनी पूर्णिमा को वसन्तोत्सव मनाया गया। संभवतः अन्य स्थानों में पूर्णिमा के बाद वाले दिन को मनाया जाता है, लेकिन बंगाल में पूर्णिमा को ही मनाते हैं। बंगाल में इसे 'दोल पूर्णिमा' कहते हैं। शान्तिनिकेतन में साल भर में कई उत्सव मनाए जाते हैं। यहां के उत्सवों में अपना एक वैशिष्ट्य रहता है। शिक्षा और संस्कृति के इस केन्द्र में जहां उत्सवों में आनन्द और उल्लास रहता है वहां एक सुरुचि और संयम का भी परिचय मिलता है। उत्सवों के लिये जो सजावट यहां होती है उसमें सादगी और कलात्मकता रहती है। कहीं कुछ पेंड़ों की टहनियां, कहीं कुछ फूल इस ढंग से सजाये जाते हैं कि उस सजावट में कहीं बनावटीपन नहीं रहता और वह स्थान निखर उठता है। प्रायः सभी मुख्य मुख्य उत्सव यहां के 'आम्र-कुंज' में मनाए जाते हैं। इन सब उत्सवों के लिये 'आम्र-कुंज' में एक विशेष स्थान है जिसे लीप पोत कर सुन्दर कर दिया जाता है और 'कला-भवन' के विद्यार्थी उसमें जगह जगह 'अल्पना' कर देते हैं।

अन्य वर्षों की नाईं इस वर्ष भी वसन्तोत्सव 'आम्र-कुंज' में मनाया गया। बीच में एक चार पांच हाथ लंबी और उतनी ही चौड़ी वेदिका सजायी हुई थी। वेदिका पर फूल पत्तियां थीं और उसके चारों ओर अल्पना की हुई थी। जिसे हमारे यहां 'चौक पुरना' कहते हैं, उसे ही बंगाल में 'अल्पना' कहते हैं। अल्पना अपने आप में एक कला है। आटे या चावल को पतला पीसकर पानी में घोल देते हैं और जमीनपर कलात्मक छोटी छोटी आकृतियां बनाते हैं जो देखने में सुन्दर मालूम होती हैं। आम्र-कुंज का यह स्थान अत्यन्त ही सुन्दर एवं कलापूर्ण था। उस सजायी हुई वेदिका पर अबीर रखा हुआ था। चारों ओर के आम्र-वृक्ष मंजरियों से भरे हुए थे और उनकी मादक सुगंधि से सारा वातावरण भरा हुआ था।

कवि के शब्दों में लगता था जैसे चारों ओर फाल्गुन की दुहाई फिर गई है। डालियां, फूल, पत्ते मानों मस्त हो उठे हैं। पवन सारे वन-प्रान्तर में दौड़ लगा रहा है। उसे फूलों का जैसे परिचय नहीं मालूम हो, इसी लिये शायद कुंजों के द्वार द्वार पर वह बार बार घूमता हुआ सबसे उनका परिचय पूछता फिरता है। फाल्गुन ने जैसे संपूर्ण वन-प्रांतर को छू लिया है—

ओ रे भाई, फागुन लेगे छे बने बने—
डाले डाले फूले फले पाताय पाताय रे
आडाले आडाले कोने कोने

… … … …

वातास छूटि छे बनमय रे,
फुलेर ना जाने परिचय रे।
ताइ बुझि बारे बारे कुंजेर द्वारे द्वारे
शुधाये फिरिछे जने जने
फागुन लेगे छे बने बने॥

(रवीन्द्रनाथ)

वसन्तोत्सव का प्रारंभ अन्य उत्सवों की भांति 'वैतालिक' से हुआ। पांच बजे प्रातः लड़के लड़कियां वसन्तोत्सव के उपलक्ष में गुरुदेव का एक गीत गाते हुए आश्रम की सड़कों पर निकले। आध घंटे, पैंतालिस मिनटतक यह क्रम चलता रहा। प्रत्येक उत्सव या विशेष विशेष अवसर पर यहां वैतालिक होता है। उन उत्सवों और अवसरों के अनुकूल गुरुदेव के एक गीत को यहांवाले गाते हैं। यह "वैतालिक" बहुत कुछ असहयोग आन्दोलन के जमाने की प्रभात-फेरी जैसा है। आठ बजे भोर से मुख्य उत्सव आम्र-कुंज में प्रारंभ हुआ। लगभग साढ़े सात बजे लड़के-लड़कियों का जुलूस नृत्य, गान और वाद्य के साथ 'कला-भवन' से चला। अधिकांश लोग वासंती रंग में रंगे हुए वस्त्र पहने हुए थे। जुलूस धीरे धीरे शंख, मंजीर, वीणा आदि की ध्वनि से गुंजित आगे बढ़ता गया और अन्त में सभी लोग आम्र-कुंज में यथास्थान आ बैठे। श्रीयुत रथीन्द्रनाथ ठाकुर और क्षितिमोहन सेन एक ओर बैठे हुए थे। आज का उत्सव पूर्वी बंगाल की दुरवस्था की पृष्ठभूमि में आरम्भ हुआ। जैसे समूचे उत्सव-समारोह के ऊपर विषाद की काली, घनी छाया फैली हुई थी। इसका प्रभाव सब लोगोंपर परिलक्षित हो रहा था। उत्सव का आरंभ गुरुदेव की एक कविता से हुआ। गुरुदेव की यह कविता ब्यूनोस एयरिस (आर्जेन्टिना की राजधानी) से श्रीयुत दीनेन्द्रनाथ ठाकुर के पास १० दिसम्बर १९२४ को चिट्ठी के रूप में लिखी गई थी। उस समय बंगाल में आतंकवाद का पूरा जोर था। ब्रिटिश गवर्नमेंट का दमन पूरे वेग से चल रहा था। बहुत से बंगाल के नवयुवक अलीपुर जेल में सड़ रहे थे। पूर्वी बंगाल की अवस्था से जैसे आज सारा देश चिन्तित हो उठा है उसी प्रकार से उस समय की बंगाल की राजनैतिक परिस्थिति आर्जेन्टिना के उस सुदूर प्रवास में गुरुदेव के मन को धूमिल किए हुए थी, फिर भी गुरुदेव का अन्तर देश के उज्ज्वल भविष्य की आशा से पूर्णतया आलोकित था और उन्होंने उस समय भी गीत गाना अनुपयुक्त नहीं समझा। पाशविक शक्ति का दंभ राहु के समान थोड़ासा अवसर पाते ही नित्यकालिक सूर्य को एक ग्रास में निगल जाता है; लेकिन दूसरे ही क्षण उसे उगल देता है और स्वयं छाया के

समान विनष्ट हो जाता है और सूर्य के शरीर में किसी प्रकार का क्षत-विक्षत नहीं होता। सहस्रों बार इसी प्रकार का खेल हो चुका है। फिर भी नया राहु आता है और उसके मन में बराबर यही रहता है कि "क्या मेरा अवसर नहीं आयगा?" इस कांड को देखकर पशुपक्षी भय के मारे चीत्कार कर उठते हैं लेकिन अनन्त देवता इस क्षणिक अपचय को देखकर भी शान्त रहते हैं—

बाहुर दम्भ, राहुर मतो,
एकटु समय पेले
नित्य कालेर सूर्यके से
एक-गरासे गेले।
निमेष परेइ उगरे दिये
मेलाय छायार मतो,
सूर्यदेवेर गाये कोथाओ
रय ना कोनो क्षत।
वारे वारे सहस्र वार
हये छे एइ खेला,
नतून राहु भावे तबु,
"हबे ना मोर वेला"
काण्ड देखे पशुपक्षी
फुकरे उठे भये,
अनन्तदेव शान्त थाकेन
क्षणिक अपचये।

अतएव आगे चलकर कवि भगवान से प्रार्थना करता है कि जिस दिन आततायी के चेले पागल हो उठें और सर्प के समान फुत्कार कर उठें तथा उनके हिंसा-दर्प से समस्त पृथ्वी व्याप्त होजाय और जिस दिन अपनी दानवी भाषा में वे गरज उठें कि "मैं ही सत्य हूं, देवता एक झूठी माया है" उस दिन भी मैं निर्भय चित्त से मेशीन-गन के सामने इस जूही के फूल का ही गान गा सकूं।

पालो यानेर चेलारा सब
उठे जे दिन खेपे,
पोंसे सर्प हिंसादर्प
सकल पृथ्वी व्येपे,
वीभत्स तार क्षुधार ज्वालाय
जागे दानव भाषा,
गर्जि चले "आमिइ सत्य,
देवता मिथ्या माया,"
से दिन जेनो कृपा आमाय
करेन भगवान—
मेशिन गन-एर सम्मुखे गाइ
जुँइ फुलेर एइ गान—

क्योंकि न जाने कितनों का दर्प चूर्ण हुआ है, कितने अज्ञानवश अपने को शक्तिशाली समझकर आये—फिर भी वे मिट गये और शाश्वत सत्य अपनी दीप्ति से सर्वत्र आलोक बिखेरता ही रहा उसकी कोई क्षति नहीं हुई। कितने विजय-तोरण टूट-फूट कर नष्ट हो गये, कितने प्रासाद के शिखर भू-लुंठित हो गये। कितने राजाओं के कितने गारद धूल में चूर्ण-विचूर्ण होकर मिल गये, फिर भी विश्व-देवता का खेल इन फूलों को लेकर चलता ही रहेगा।

श्रीयुत रथीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री क्षितिमोहन सेन ने वर्तमान परिस्थिति की ओर ध्यान दिलाते हुए सबों को धैर्य से काम लेने की सलाह दी। क्षितिमोहन सेन ने कहा कि कोमल अंकुर स्वयं पत्थर को तोड़कर निकलता है। उसकी कोमलता उसमें बाधक नहीं होती। कुल्हाड़ी सें पत्थर तोड़कर उन कोमल अंकुरों के लिये रास्ता नहीं बनाया जाता। कोमल-कोमल काले-काले मेघ से जब बिजली की कड़क पैदा होती है तो संसार कांप उठता है। अतएव हमारे लिये आवश्यक है कि हम अपने भीतर शक्ति पैदा

करें। इस शक्ति का उपयोग केवल बाहर की बुराइयों से संघर्ष के लिये न हो बल्कि अपने भीतर की भी बुराइयों को दूर करने के लिये हो। गुरुदेव की कई कविताओं का पाठ लड़के-लड़कियों ने किया। कविताओं के पाठ के बीच बीच में संगीत और नृत्य हुए। गुरुदेव ने बहुत-से गीत लिखे हैं। 'रवीन्द्र संगीत' बंगाल में बहुत प्रचलित है। इन गीतों में बहुत से नृत्य के साथ भी गाये जाते हैं। गीत का लय, नृत्य के ताल और भंगिमाएं, पद लालित्य, सबों को मिलाकर एक समाँ बँध जाता है। उस दिन के गीतों में से एक गीत जो नृत्य के साथ साथ गाया गया निम्न लिखित है —

'ओ मंजरी, ओ मंजरी
आमेर मंजरी,
आज हृदय तोमार उदास हये
प'ड छे कि झरि?
आमार गान जे तोमार गंधे मिशे
दिशे दिशे
फिरे फिरे फेरे गुंजरि॥
पूर्णिमा चाँद तोमार शाखाय शाखाय
तोमार गन्ध साथे आपन आलो माखाय,
ओइ दखिन वातास गन्धे पागल
भाङलो आगल
धिरे धिरे फिरे संचरि'॥

आम्र-मंजरियों की गंध के साथ घुलकर कवि का गान चारों ओर गुंजार करता हुआ फिर रहा है और पूर्णिमा का चाँद आम की शाखाओं-शाखाओं में उस गंध के साथ अपनी चाँदनी बिखेर रहा है। इस गन्ध से पागल होकर दक्षिण पवन सभी बन्धनों को तोड़कर चारों ओर घूम रहा है। गान, नृत्य, और कविता-पाठ का यह क्रम नौ बजे तक चलता रहा। छोटे छोटे बच्चे जो वेदिका से थोड़ी दूर पर चारों ओर घेर कर बैठे हुए थे उनकी दृष्टि केवल वेदिका पर रखे हुए अबीर की ओर ही थी। वे इसी प्रतीक्षा में थे कि कब यह अनुष्ठान पूरा हो और वे अबीर लेकर सारी दिशाओं को रंगीन बना दें। अन्तिम गान समाप्त होते-न-होते वे उस पर चारों ओर से टूट पड़े। और फिर तो क्या कहना है! उस समय श्रीहर्ष की रत्नावली नाटिका का दृश्य सामने आ गया —

कीर्णैः पिष्टातकोघै : कृतदिवसमुखै :
कुंकुमक्षोदगौरै :
हेमालङ्कारभाभिर्भरनमितशिखै : शेखरै :
कैंकिरातै :।

एषा वेशाभिलक्ष्य स्वभवन विजिता-शेष-वित्तेश कोषा कौशाम्बी शातकुंभद्रवखचित-जनेवैकपीता विभाति ॥

फिर तो सारा आश्रम अबीर के रंग से लाल हो उठा। कहीं विद्यार्थी अपने गुरुजनों के पैरों पर अबीर देकर उनके आशीर्वाद ग्रहण कर रहे हैं तो कहीं छोटे बच्चे एक दूसरे पर रंग डाल रहे हैं। यहां रंग घोलकर नहीं डालते। इसके बाद लड़के, लड़कियां तथा अन्य आश्रमवासी दल बांधकर गान करते हुए 'उत्तरायण' में (जहां गुरुदेव रहते थे) गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने गये। इस प्रकार से दो पहर तक का उत्सव समाप्त हुआ।

ऋतु-संबंधी उत्सवों की परंपरा हमारे देश में बहुत दिनों से चली आ रही है। विशेष रूप से वसन्तोत्सव के वर्णनों से संस्कृत

साहित्य भरा पड़ा है। वसन्त का वर्णन अधिकांश देश के कवियों ने किया है। श्रीहर्ष रचित रत्नावली में मदनोत्सव का वर्णन इतना जीवन्त है; जैसे लगता है कि पाठक स्वयं अपनी आँखों के सामने पौरजनों के आमोद-प्रमोद को देख रहा है। स्त्री-पुरुष सभी समानभाव से इसमें भाग लेते थे। नगरवासियों के वाद्य, नृत्य, संगीत-ध्वनि से सारा नगर गुंजरित हो उठता था। चर्चरी गान एवं मृदंग के मधुर घोष से राजपथ मुखरित हो उठता था। अबीर के चूर्ण से दिशाएं लाल हो उठती थीं। निरन्तर छूटनेवाले फव्वारे और पिचकारी के जल से राजप्रसाद तथा अन्य भवनों के प्रांगण कर्दममय हो जाते थे। इस प्रकार से सातवीं शताब्दी के भारतवर्ष में इस उत्सव का जो चित्र हमारे सामने आता है उससे लगता है जैसे यह वसन्तोत्सव जिस रूप में आज मनाया जाता है वह बहुत दिनों से चला आ रहाहै। न जाने किस मधु-यामिनी में प्रथम प्रथम वसन्त-संगीत से सारा वायु-मंडल गूंज उठा होगा!

सन्ध्या के सात बजे से संगीत-नृत्य आदि का आयोजन था। "गौर प्राङ्गण" में, जो यहां के विद्या-भवन के सामने वाला मैदान है, कला-भवन के विद्यार्थियोंने सन्ध्यावाले आयोजन के लिये मंच आदि को बड़े सुन्दर ढंग से सजाया था। चारों ओर बिजली की बत्तियां जल उठीं और चार चार का घंटा पड़ने लगा। चार चार बार घंटे के बजने का मतलब यहां किसी मीटिंग या उत्सव के प्रारंभ होने की सूचना है। चार का घंटा सुनकर सब लोग चारों ओर से "गौर प्राङ्गण" की ओर आने लगे और थोड़ी ही देर में सारा मैदान भर गया। प्रथम गान के बाद यहां के मणिपुरी-नृत्य के शिक्षक का नृत्य शुरू हुआ। यह नृत्य और इसके साथ वाला गान मानो वसन्त का आव्हान था। दक्षिण द्वार खुला हुआ है, हे वसन्त तुम आओ, आओ। हृदय के झूलने पर तुम्हें झुलाऊँगा, तुम आओ। प्रियाल पुष्प की धूलि को अंग में लगाए हुए, व्याकुल वेणु बजाते हुए बकुल-पुष्प से बिछे हुए पथ से नवीन श्यामल शोभित रथ पर चढ़ कर तुम आओ। सघन पल्लव समूह में आओ, वन-मल्लिका के कुंज में तुम आओ। मत्त करनेवाली मृदु-मधुर हंसी हंसते हुए इस पागल हवा के देश में अपने उत्तरीय को आकाश में उड़ाते हुए आओ। हे वसन्त, आओ।

आजि दखिन दुयार खोला—
एसो हे, एसो हे, एसो हे आमार
वसन्त एसो।
दिवो हृदय-दोलाय दोला,
एसो हे, एसो हे, एसो हे आमार
वसन्त एसो।
नव श्यामल शोभन रथे
एसो बकुल-बिछानो पथे,
एसो बाजाये व्याकुल वेणु,
मेखे पियाल फूलेर रेणु।
एसो हे, एसो हे, एसो हे आमार
वसन्त एसो।
एसो घन पल्लव पुंजे।
एसो हे, एसो हे, एसो हे
एसो वन-मल्लिका कुंजे
एसो हे, एसो हे, एसो हे।
मृदु मधुर मदिर हे से
एसो पागल हावार देशे,

तोमार उतला उत्तरीय
तुमि आकाशे उडाये दियो,
एसो हे, एसो हे, एसो हे, आमार
वसन्त एसो ।

इस प्रकार से अनेक गान और नृत्यों का प्रदर्शन हुआ। केरल की कमनीय कथकली-नृत्य के अध्यापक का नृत्य अत्यन्त ही सुन्दर और मनोरम था। बसन्त की भूमिका में नर्तक का प्रदर्शन, अत्यन्त ही हृदयग्राही था। आठ बजे रात में उत्सव समाप्त हुआ। कितने आदर और यत्न से बसन्त अपने गान को धूलि पर लिखता है। शायद इसी लिये वह धूलि बार बार नवीन वेश धारण कर हंस उठती है। यह वसन्त प्रत्येक वर्ष आता है और हमारे हृदय में नवीन आशा और आनन्द का संचार कर जाता है। भारतवर्ष का यह प्रिय उत्सव न जाने कितनी शताब्दियों से वर्ष में एक बार आकर हमें झकझोर जाता है और हमारे भीतर जीवन की ज्योति जगा जाता है।

वसन्त तोर गान लिखे जाय धूलिरपर
की आदरे ।
ताइ से-धूला उठे हेसे वारे वारे
नवीन वेशे
वारे वारे रूपेर साजि आपनि भरे
की आदरे

* * *

"अरे एक वार सिर उठाकर खड़े तो हो जाओ, फिर देखोगे कि जिनके डर से तुम डर रहे हो वे तुमसे भी अधिक डरपोंक हैं, जव तुम जाग उठोगे वे भागकर खड़े हो जायेंगे। जभी तुम उनके सामने खड़े हो गये तभी वे रास्ते के कुत्ते की तरह भय तथा संकोच से पूंछ दबाकर एक ओर दुबक जायेंगे। ईश्वर उनपर विमुख है, उनका कोई सहायक नहीं, वे मुँह से वड़ी वड़ी वातें वकते हैं, मन-ही-मन वे अपनी हीनता को जानते हैं।"

—गुरुदेव रवीन्द्रनाथ

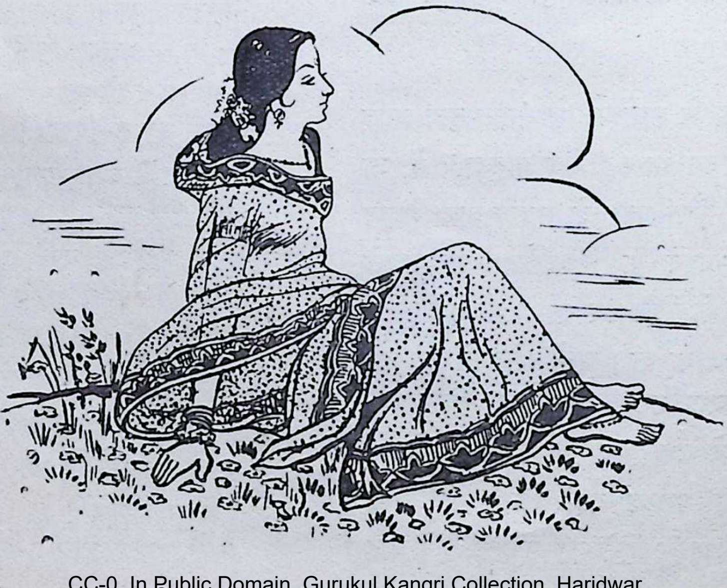

मानव इतिहास की कुञ्जी—वर्णमाला

[डॉ. रघुवीर]

मनुष्य पशुओं से कई बातों में भिन्न है। भाषा उसकी सबसे प्रधान भिन्नता है। वह अपने अनुभवों को दूसरों पर व्यक्त कर सकता है, उन्हें संचित करता जाता है और इस प्रकार उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जाती है । लेखन-कला ने ही इस बात को सम्भव किया है । लेखन-कला का इतिहास बड़ा मनोरंजक है । अमेरिका में तो वर्णमाला के अध्ययन को एक विज्ञान का रूप दे दिया गया है । लोग उसे 'वर्णमाला-विज्ञान' कहते हैं । उत्तरी गोलार्ध में लेखन का विकास प्रमुख नदियों की घाटियों में हुआ । सुप्रात (यूफ्रेटीज़) नदी की घाटी में स्फान-लिपि और मिस्र में चित्रलिपि पाई गई । चित्रलिपि का विकास बाद में मिस्र-लोक-लिपि (डेमोटिक) के रूप में हुआ । रोसेटा-प्रस्तर की सहायता से उसे पढ़ने के कारण बड़ा महत्वपूर्ण कार्य हुआ । ग्रीक और लेटिन का विकास सेमेतिक, हिब्रू और आरमाइक भाषाओं से हुआ है ।

पूर्व में चीनियों की भाव लिपि (ईडियोग्रेफिक स्क्रिप्ट) पाई जाती है। इसमें २१४ वर्ण हैं ।

अमेरिका में मध्य अमेरिका और मेक्सिको की प्राचीन लिपियाँ प्रचलित थीं । उनमें से मुख्यतः एज़्टिक और माया लिपियों का उल्लेख करना आवश्यक है ।

प्राचीन काल में, भारतीय सभ्यता के प्रसार में, ब्राह्मी और पश्चात् आनेवाली लिपियों ने बड़ा योग दिया । भारत के सबसे पुराने शिलालेख का समय, ईसा से पूर्व चौथी शताब्दी है । बुद्ध के समय के लेख तो प्रसिद्ध ही हैं ।

यहाँ लेखन-कला धर्म की अनुगामिनी रही है। जहाँ कहीं शैव और बौद्ध धर्मों का प्रसार हुआ भारतीय लिपियाँ भी वहाँ पहुँच गईं । मध्य एशिया में तिर्यक् गुप्तलिपि प्राप्त हुई है। ऐजियन, कुचियन खोटानेर आदि लिपियों की व्युत्पत्ति भारतीय लिपियों से ही हुई । यहाँ तक कि मध्य एशिया में चीनी भाषा भी प्रवाही-गुप्त-लिपि में लिखी गई है ।

तिब्बत निवासियों ने सातवीं सताब्दी में अपनी लिपि बनाई और मंगोलिया की सीमातक उसे पहुँचा दिया । तिब्बती भाषा के अक्षरों का प्रभाव 'नाम' आदि अन्य भाषाओं पर भी हुआ । कहीं कहीं तो चीनी भाषा भी तिब्बती वर्णमाला में लिखी गई है । यह बात सभी ने मान ली है कि तिब्बत राज्य की स्थापना करने वाले और लाशा को उसकी राजधानी बनाने वाले राजमन्त्री सम्भोट ने ही सन् ६३९ में तिब्बत की लिपि का आविष्कार किया था । तिब्बत ने केवल लिपि ही नहीं; साहित्य भी भारत से लिया । इस साहित्य का अनु-

वाद करने के लिए एक नई भाषा का ही विकास किया गया ।

ईसा की पाँचवीं शताब्दी की सिद्ध-मातृका लिपि, जोकि भारत की लिपि का ही एक रूप है, तिब्बत, मंगोलिया, कोरिया और जापान में प्रचलित थी । सर्व-विदित आधुनिक लिपियों के अतिरिक्त, भारत में मणिपुरी, कैथी, महाजनी, मोड़ी, टाकरी, डोगरी, सिन्धी आदि लिपियाँ भी हैं । भारत के बाहर लंका में भी भारतीय लिपियों का प्रयोग किया जाता है । मालदीव द्वीपों में मालदीवी-लिपि है जिसका नाम ' दिवेसकुस ' है ।

भारत-चीन में भी कई लिपियाँ हैं । केवल कम्बोड़िया में ही १५ से अधिक लिपियाँ हैं । इनके अतिरिक्त चामखोर, लाओ, ह्व और अवेम लिपियाँ भी विद्यमान हैं । किन्तु आजकल तो स्यामी या थाई लिपि ही सबसे अधिक व्यवहार में आती है । सुमात्रा में चार भारतीय लिपियाँ प्रचलित थीं—पल्लव, देवनागरी, कवि और बटक । बटक के अतिरिक्त लम्पाङ्ग और रङ्जाङ्ग लिपियाँ भी थीं । सेलेवस द्वीप में कवि-लिपि से ही उत्पन्न लिपि का प्रयोग होता था ।

फिलिपाईन द्वीपों में स्पेनिश-शासकों ने, टेगेलाङ्ग और मंगियान में प्रचलित प्राचीन लेखों का अन्त कर दिया, जैसा कि उन्होने मध्य अमेरिका और मेक्सिको में किया था ।

कोरिया में, भारतीय लिपि से उत्पन्न ओन-मन लिपि थी । विदेशों में प्रचलित भारतीय लिपियाँ संख्या में सौ से अधिक हैं । इस विषय में अभी तक यथोचित अनुसन्धान नहीं हुआ है ।

लिपियों के प्रसार में साधु सन्तों, महन्तों, भिक्षुओं और व्यापारियों ने बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया है । सन् १५५१ ई. में मेगेलेन ने फिलिपाइन द्वीपों की खोज की थी । इन द्वीपों की संख्या सात सौ से अधिक थी । उस समय इन द्वीपों के निवासियों की अपनी निजी लिपि थी । स्पेनिश-विजय की लग भग एक शताब्दी के भीतर ही सारी देशी लिपियों पर लेटिन का आधिपत्य हो गया ।

इस विषय में सन् ४३ में प्रकाशित गार्डनर की पुस्तक 'फिलिपाइन इन्डियन स्टडीज़' पढ़ने से पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है । भारतीय वर्णमालाने अपने सम्पर्क में आनेवाली प्रत्येक वर्णमाला को प्रभावित किया ।

चीनी-भाषा में ध्वन्यात्मक वर्णों का विकास करना पड़ा । इन वर्णों वाली भाषा का पुनः नामकरण हुआ । जापान में काना शब्दांशों को भारतीय ध्वन्यात्मक पद्धति का आधार मिला । उनका पठन इस प्रकार किया जाता है—का की कू के इत्यादि ।

संस्कृत तथा संस्कृत की प्रातिशाख्य और शिक्षा की ध्वनि-विज्ञान सम्बधी पुस्तकों ने यूरोप में ध्वनि सम्बधी एक नए विज्ञान को जन्म दिया ।

स्वरों को व्यञ्जनों से अलग करना, और स्वरों तथा व्यञ्जनों को एक विशेष क्रम में रखना, पूर्ण रूप से भारतीय ही है । इस वर्ण-माला क्रम के आधार को भाषा-

विज्ञान के सभी यूरोपीय विद्वानों ने स्वीकार किया है।

स्यामी भाषा का प्रथम अभिलेख, सन् १२५३ ई. में मिला था। यह सुकुथेई का शिला लेख है जिससे यह ज्ञात होता है कि थाई वर्णमाला का आविष्कार राजा राम कहेङ्ग ने किया था। स्यामी लिपि में चवालीस व्यंजन हैं और पाँच तानें हैं। इन तानों के नाम ये हैं—माइ-एक, माइ-तो, माइ-त्रे, माइ-चत्वा, और माइ-ताइकू। संस्कृत के समान, वचनों की संख्या भी तीन है, एक द्वि और बहु।

बौद्ध सम्वत् २४७० में प्रकाशित शासन-स्यामी-कोष का नाम प्रथानुक्रोम है। उसमें ये संस्कृत शब्द मिलते हैं:—

कपोल—गाल
कपोलपत्र—गालों पर चित्रित रेखाएँ
कपोल राग—गालों का रंग
कपि—बन्दर; कपि-पति-राम; कपियों के राजा
कमला—लक्ष्मी
कमण्डलु—मिट्टी का पात्र
कुमुद—श्वेत कमल
कर—हाथ इत्यादि

इनके उच्चारण वे भिन्न ध्वनियों से करते हैं।

* * *

मरण से—

(कविता)

झुका सकेगा मुझे कभी तू? कर्ता का केतन हूं मैं,
मरण, नित्य नवजीवन हूं मैं, तू जड़ है, चेतन हूं मैं।
मेरे पीछे लाख पड़ा रह, आगे आ न सकेगा तू,
रोया कर जी चाहे जितना, मुझसा गा न सकेगा तू।
छद्म रूप रखकर जा तो भी भव को भा न सकेगा तू,
सड़ा गला भी कभी पेट भर पामर, पा न सकेगा तू।
रह रूखा सूखा उजाड़ तू, हरा-भरा उपवन हूँ मैं;
मरण, नित्य नवजीवन हूँ मैं, तू जड़ है, चेतन हूं मैं।
नये नये पट-परिवर्तन कर प्रकट नाट्यशाला मेरी,
वंचित ही इस स्वर-लहरी के रस से रसनाएं तेरी।
फणि, कोई मणि है तो वह तो चोरी की ही हथफेरी,
सरक वहीं तू जहां नरक-से कूड़े-घूड़े की ढेरी।
देख दूर से क्रूर रोग तू, योग-सिद्ध जन-धन हूं मैं,
मरण, नित्य नवजीवन हूं मैं, तू जड़ है, चेतन हूं मैं।

—मैथिलीशरण गुप्त

आनन्दवर्धन और काव्य की श्रेणियां

[वि० श०]

कविता के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मत पुरस्सर किये जा चुके हैं। वह क्या है ? किन तत्वों के समावेश से उसका रूप निर्मित होता है ? उसके कितने प्रकार होते हैं और उसका क्या लक्ष्य होता है ? आदि प्रश्न नित्य उठते रहते हैं और उनका उत्तर भी दिया जाता है। हम इन्हीं प्रश्नोंपर विचार करना चाहते हैं।

कविता हृदय में न समा सकनेवाले उस अनुभूति-वेग का नाम है जो कल्पना के सहारे कोई रूप-विधान कर हमें आनंद-विभोर वनाता है। पाश्चात्य समीक्षकों में हेजलेट ने उसे “भावना और कल्पना की भाषा” कहा है; मैथ्यू अर्नाल्ड ने “जीवन की आलोचना”; कार्लाइल ने “संगीतात्मक विचार”; कोर्टहोप ने “कल्पनात्मक विचारों और भावनाओं की छंदोवद्ध आनन्दमयी अभिव्यक्ति”; पो ने “सौंदर्य की लयमय सृष्टि”; शेली ने “कल्पना की अभिव्यक्ति”; वर्ड्सवर्थ ने “सभी प्रकार के ज्ञान की सुन्दर आत्मा और उच्छ्वास” कहा है।

पाश्चात्य आलोचकों ने कविता में कल्पना, भावावेग, वुद्धितत्व और शैली नामक चार तत्वों की स्थिति मानी है।

हमारे देश के विचारकों में मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में “तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि”—शब्दों और अर्थों में दोषरहित और गुणसहित, पर अलंकार रहने या न भी रहने वाली कृति को काव्य कहा है। उन्होंने कविता में अलंकारों का होना आवश्यक नहीं माना है। वे वस्तुतः ध्वनि और रसवादी ही हैं।

विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में मम्मट की काव्य-व्याख्या की आलोचना करते हुए कहा है कि मम्मट ने कविता में जो दोष का न रहना आवश्यक माना है वह उपयुक्त नहीं है। क्योंकि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ काव्य में—पददोष और अर्थदोष में से — कोई न कोई दोष निकाला जा सकता है। तो क्या इसलिये अन्य दृष्टि से श्रेष्ठ कृति “काव्य” नहीं कहलायेगी ? विश्वनाथ ने मम्मट की परिभाषा में अलंकारों के उल्लेखपर भी आपत्ति प्रकट की है, क्योंकि जव विना अलंकारों के भी काव्य हो सकता है तो व्याख्या में उसका कथन अप्रस्तुत है। अतएव साहित्यदर्पण में विश्वनाथ ने “वाक्यं रसात्मकं काव्यम्” (“रसमय वाक्य को काव्य”) माना है। काव्य में “रस” की अनिवार्यता की व्याख्या हमारे साहित्य-शास्त्रों में वहुत पुरानी है। भरत के नाट्य-शास्त्र तथा ध्वन्यालोक में भी काव्य में रस की स्थिति मानी गई है। साहित्यदर्पणकार ने ‘वाक्यं रसात्मकं’ में मम्मट का समर्थन किया है झगड़ा परिभाषा का ही है। पर रसगंगाधरकार जगन्नाथ पंडित ने यह आपत्ति उठाई कि “वस्तु और अलंकार-प्रधान रचना में भी यदि खींच-तान कर ‘रस’ का सम्बन्ध जोड़ दिया जाय तो कौन वाक्य रसमय नहीं वन जायगा ? अतएव विश्वनाथ की परिभाषा अव्याप्तिदोष से पूर्ण है। इसलिये जगन्नाथ पंडित ने अपने “रसगंगाधर” में “रमणीयार्थः प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्” रमणीयार्थ-प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है। पर रमणीय शब्द में रस या आनंदातिरेक का भाव निहित होनेसे वे विश्वनाथ की परिभाषा से वहुत दूर नहीं है।

हिंदी के आधुनिक आचार्यों में पंडित रामचंद्र शुक्ल ने कवितापर वहुत विवेचन किया है। उन्होंने उसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि “जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।”

कविता की अनेक परिभाषाएँ पढ़ लेनेपर भी उसको हम पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर पाते। कविता युग युग की ऐसी वस्तु है जिसके सम्बन्ध में विद्यापति का यह कथन सार्थक होता है—“जनम

अवधि हम रूप निहारल, नदन न निरमित मेल ”
और वह रूप कैसा है—कहा नहीं जा सकता। हम इतना ही कह सकते हैं कि उसमें सौंदर्य होता है—पद का, अर्थ का, अभिव्यक्ति का—जो हमें आनंदित करता है।

काव्य के स्तर का विभाजन

आनंद-संचार की दृष्टि से प्रथम बार आनंदवर्धन ने काव्य-विभाजन की स्पष्ट रूप-रेखा प्रस्तुत की। ध्वन्यालोक में आपने यह सिद्ध किया कि “काव्यस्य आत्मा ध्वनिः” (काव्य की आत्मा ध्वनि है) शब्द और अर्थ के अलंकृत रूप में ही काव्य माननेवालों ने ध्वनिवादियों का परिहास किया है परंतु हम काव्य को न तो रीति-मात्र मानते हैं न गुण (माधुर्य, ओज और प्रसाद) मात्र और न अलंकार मात्र। इनके अतिरिक्त काव्य में एक गुण अपेक्षित है। वह है ध्वनि जो वस्तु अलंकार और रसरूप में हमें आनंद-विभोर बनाती है। ध्वनिकार का यह कथन हमें उचित प्रतीत होता है कि “ध्वनि एक पदार्थ है जो महाकवियों की वाणी में शब्द, अर्थ और रचनावैचित्र्य के कारण पृथक ही प्रतीयमान होता है।” ध्वनिवादियों ने ध्वनि के तीन प्रकार निर्धारित किये हैं—(१) वस्तुध्वनि (२) अलंकारध्वनि और (३) रसध्वनि। वस्तुध्वनि में भाव ध्वनित होता है, अलंकारध्वनि में अलंकार और रसध्वनि में रस। वस्तु और अलंकार जब ध्वनित होते हैं तो उनमें असाधारण सौंदर्य आजाता है। रसध्वनि के काव्य में भी हमें वस्तु और अलंकारध्वनि के दर्शन हो सकते हैं। वास्तव में रस ध्वनि ही काव्य का सर्वस्व है और काव्य में रस की स्थिति भी तो ध्वनि से संभव होती है, दूसरे शब्दों में रस ध्वनित ही होता है। अतएव आनंदवर्धन ने उसी काव्य को उत्तम काव्य माना है जिसमें ‘ध्वनि’ की प्रधानता है। उन्होंने ऐसे काव्य को जहाँ ध्वनि (व्यंग्यार्थ) वाच्य से दब जाती है, मध्यम काव्य माना है और उसको “गुणीभूत व्यंग्य” से अभिहित किया है। ध्वन्यालोक में इसका एक उदाहरण है।—

‘लावण्य सिन्धुरपरैव हि केयमत्र,
यत्रोत्पलानि शशिना सह संप्लवन्ति।
उन्मज्जति द्विरद कुम्भतटी च यत्र
यत्रापरे कदलिकाण्ड मृणाल दण्डाः।’

(यहाँ यह रमणी कौन है जो सौंदर्य का नव समुद्र है जहाँ चंद्रमा के साथ नीली कमलिनी खिलती है, जहाँ मत्त हाथी के दो कुम्भ केले की शाखा के साथ कोमल लतासहित स्नान करते हैं।)

उपरोक्त उदाहरण में कवि ने नीली कमलिनी से आँखें, चंद्र से मुख, मत्त हाथी के कुम्भ से स्तन, कदली से जंघा और लता से बाहु का वर्णन किया गया है। शब्दों से स्त्री के अंगों का सीधा भान नहीं होता इस लिये व्यंजना का आश्रय लेना पड़ता है पर कवि का लक्ष्य स्त्री का सौन्दर्य वर्णन मात्र है क्योंकि वह स्वयं कहता है ‘यहाँ यह रमणी कौन है?’ इस लिये यहाँ व्यंग्यार्थ गौण हो गया है अतः यह गुणीभूत व्यंग्य काव्य है।

गुणीभूत व्यंग्य में वाच्यार्थ का सर्वथा लोप अनिवार्य नहीं है। समासोक्ति अलंकार में प्रायः गुणीभूत व्यंग्य रहता है, क्योंकि उसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ दोनों अभीष्ट रहता है। वाच्यार्थ में जब अलंकार का सौंदर्य ध्वनि को दबा देता है तब वह मध्यम काव्य का उदाहरण बन जाता है।—

मम्मट ने काव्य प्रकाश में गुणीभूत व्यंग्य के आठ भेद बतलाए हैं :—

“अगूढमपरस्यांग वाच्यसिद्ध्यंगमस्फुटम्।
सन्दिग्ध तुल्य प्राधान्ये काक्वाक्षिप्तमसुन्दरम्॥”

अगूढ-(स्पष्ट) अपरांग (पराये का अंग) वाच्यसिद्ध्यंग जिसके आधीन वाच्य अर्थ की सिद्धि हो, संदिग्ध प्रधान जहाँ पर सन्देह हो कि वाच्यार्थ प्रधान है या व्यंग्यार्थ, तुल्य प्राधान्य (जहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ दोनों समान जान पड़ें।) काकुध्वनि से आक्षिप्त (स्वराघात से शीघ्र प्रकट) और असुन्दर (जहाँ बिना वाच्यार्थ के चमत्कार संभव न हो।)

हिन्दी कविता से हम इन भेदों के उदाहरण प्रस्तुत करने का यत्न करते हैं :—

अगूढ़ :—“तरु बेलों की बाँहें मरोड़—
उनका फूला जी तोड़ तोड़
तुझ पर वारूँ तब मेरे जी से—

तेरे जी का जुड़े जोड़
मेरे कोयल ! किस कीमत पर
यह कर्कशता किससे होगी ?
(भारतीय आत्मा)

दूसरों पर निर्दय्य व्यवहार कर जब मैं उनका सब कुछ छीनकर तुझे अर्पित करूँ, तब कहीं तू प्रसन्न हो। पर तुझे प्रसन्न करने से मेरा क्या लाभ होगा ? व्यंग्य स्पष्ट है। जब तक तू मुझे यह न वतला दे कि तेरी पूजा आराधना से मुझे क्या प्राप्त होगा, तब तक मैं तेरे लिये किसी को दुखाना नही चाहता।

अपराङ्ग :—

गिरे छिन्न शर शीश मनोहर,
कोप त्रस्त जनु पूर्ण कलाधर
शव परिपूर्ण जदपि समरांगण,
कीन्ह न मालवगण रण-त्यागन
युद्धत रण-उन्माद महाना
कव कटि शीश गिरे नहीं जाना
धावत रण कवन्ध उँठि नाना,
कछु धृत खड्ग कछुक धनु-वाणा
जदपि अर्धमृत महि परे छिन्न भिन्न अँग अंग
रहे माँगि शर धनु तव हुँ, भिरी न समर उमँग
(कृष्णायन पृ. ७१८)

उक्त उदाहरण में "गिरे छिन्न शर शीश—" आदि वीभत्स रस की अवतारणा है पर साथ ही "धावत रण कवन्ध उठि नाना—में अद्भुत रस की भी भूमिका है। अद्भुत रस वीभत्स रस का अंग वन गया है। इसी लिये गुणीभूत व्यंग्य है। इसके पश्चात् अर्धमृत महि परे छिन्न भिन्न अंग अंग में वीभत्स रस है, पर जब मृत—" रहे माँगि शर धनु तवहुँ, मिटी न समर उमँग" में वीर और अद्भुत रस की प्रतिद्वन्द्वता मची हुई है। पर उत्साह भाव की प्रवलता के कारण अद्भुत रस का मूल व्यंग्यभाव गौण हो गया है। अतः यहाँ भी गुणीभूत व्यंग्य है।

वाच्यसिद्धयंग :— इसमें व्यंग्यार्थ के विना वाच्यार्थ सिद्ध नहीं होता—

"खेलन सिखये अलि भलि चतुर अहेरी मार।
काननचारी नैन मृग नागर नर न सिकार॥"
(विहारी)

चतुर अहेरी कामदेव ने चालाक मनुष्यों का शिकार करना काननचारी नयनों — मृगों को सिखला दिया है।

अस्फुटव्यंग्य :—इसमें व्यङ्ग्य स्पष्ट नहीं होता!

"सिन्धु सेजपर धरा वधु अव
तनिक संकुचित वैठी सी
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये सी ऐंठी सी"
(कामायनी)

इसमें सुहागरात की विवशताभरी घटनाओं की याद में मान किए वैठी किसी नायिका के समान समुद्र के किनारे की धरती का थोड़ा भाग शेष है। यह व्यंग्य एकदम स्पष्ट नहीं है।

काक्वाक्षिप्तव्यङ्ग्यः—

"मैं सुकुमार नाथ वन जोगू ?"

में काकु से सीता व्यंग्य करती हैं कि नाथ भी वन के योग्य नहीं है—मेरे समान ही सुकुमार हैं।

असुन्दरव्यङ्ग्यः—

जिसपर पाले का अेक पर्त का छाया।
हत जिसकी पंकज पंक्ति अचल सी काया
उस सरसी सी आभरणरहित सित वसना
सिहरे प्रभु माँ को देख हुई जड़ रसना॥
(साकेत)

प्रारम्भ में व्यंग्य चित्र समस्त पद्य भाव से उत्कृष्ट नहीं हो पाया।

काव्य का तृतीय प्रकार है--चित्र काव्य, जिसे अधम-काव्य भी कहते हैं। इसमें ध्वनिका लेश भी नहीं रहता। चित्र काव्य के दो भेद हैं (१) शब्द-चित्र (२) अर्थ-चित्र। शब्द-चित्रों में अनुप्रासों की जमघट होती है। अर्थ-चित्रमें उत्प्रेक्षाओं का सहारा लिया जाता है। चित्र-काव्य के सम्वन्धमें यह कहा जाता है कि यद्यपि उसमें "ध्वनि" का समावेश नहीं होता पर रससे शून्य रचना काव्य कैसे हो सकती है। वस्तु-वर्णन से भी यदि 'रस' की उत्पत्ति नहीं होती तो वह काव्य भी किसी की कोटि में नहीं आ सकता। आनन्दवर्धन 'ध्वनिवादी' होते हुअे भी रसवादी हैं। अतएव उन्होंने ऐसे चित्रकाव्य में जिसमें केवल शब्द-जाल पर दूरारूढ़ कल्पना-मात्र है, रसोद्रेक की क्षमता कल्पित नहीं

76236

की । यूरोप में 'चित्र-काव्य' की वहुत समय तक बड़ी प्रतिष्ठा रही ।

पर क्या 'चित्रकाव्य' को अधम काव्य मानना उचित होगा? क्या शब्दों के समुचित कथन में "वस्तु" का विम्व आँकना प्रतिभा का कार्य नहीं है? क्या शब्दों के वस्तु-चित्रसे पाठक का मन प्रसन्न नहीं होता? अंग्रेजी में काव्य में 'चित्रात्मकता' एक सफल गुण माना जाता है। अनेक प्रवन्ध कवियों ने लालित्यपूर्ण पदयोजना से वस्तु-वर्णन को सप्राण बना दिया है। चित्रकार तूली और रंग के सहारे 'वस्तु' की हूबहू तसवीर खींचता है, यही कार्य 'चित्र'–कवि शब्दों की सहायतासे करता है। उसमें और चित्रकार में साधन का अन्तर है। महाकवियों के काव्य में वस्तुओं के ऐसे चित्र मिलते हैं जिनमें ध्वनि न होते हुए भी यथार्थ रूपांकन होता है। तो क्या हर ऐसे चित्रांकन को अधम-काव्य कहकर उसकी अवहेलना करेंगे?

इसका उत्तर यही हो सकता है कि चित्र-काव्य तभी तिरस्करणीय है जव कवि का उद्देश्य केवल चित्रवाज़ी हो, अलंकारों की झाँकी सजाना मात्र हो। यदि चित्रकाव्य से हमारे मन में किसी वस्तु विम्वांकन से भावोद्रेक हो जाता है तो चित्रकाव्य भी समादर की वस्तु है। वास्तव में कवि के उद्देश्य से ही और 'काव्य' के प्रभाव पर ही उसकी श्रेणी अवलम्बित है।

हिन्दी के छायावाद युगमें जहाँ इस कोटि के कवियों ने लक्षणामूलक काव्य की सृष्टि कर आनन्दवर्धनाचार्य के "काव्यमय आत्मा ध्वनि" सिद्धान्त का समर्थन किया, वहाँ उसी युग में और उसके वाद आविर्भूत होनेवाले 'प्रगतिवादी युग' में चित्र-काव्य का अधिक प्रचलन हो रहा है।

आज का कवि 'चित्रकार' के समान 'वस्तु' और 'वस्तुस्थिति' का शब्दों से चित्र खींचता है। उसके कुछ चित्र भावों को अतियथार्थता के कारण भी उद्दीप्त करते हैं। 'निराला' की 'तोड़ती पत्थर' में श्रमजीवी नारी की करुणावस्था 'चित्रकाव्य' के चौखटे में भी बोल उठती है। पर अधिक प्रगतिवादी कविता में ऐसे शब्दचित्र अधिक हैं जिन्हें आनन्दवर्धन के शब्दों में 'अधम-काव्य' कहा जा सकता है।

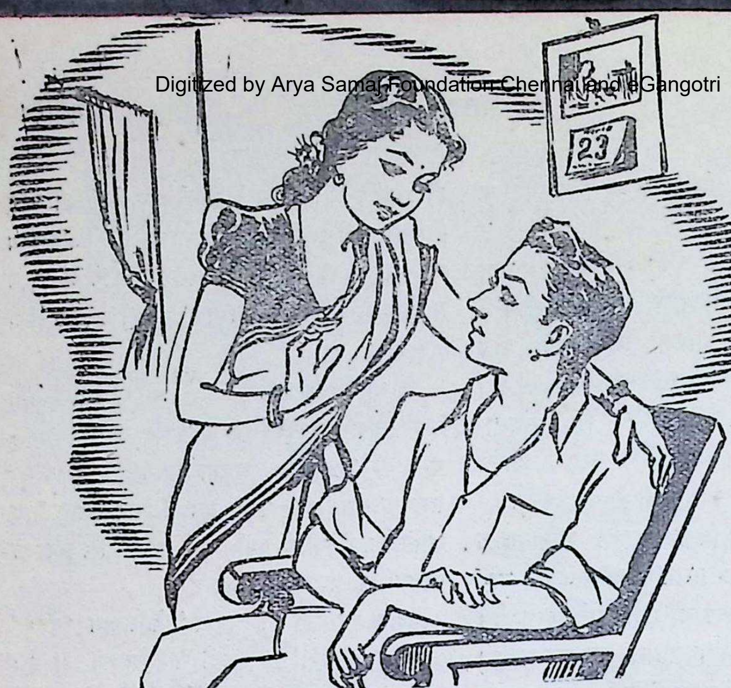

मैं जी गया !

[चोरघडे]

: कहानी :

—'मैं कह रही हूँ, क्या अब भी आप फुरसत न पा सके? मेरी ओर सिर्फ देखने भर के लिये भी नहीं— !'

—विभा के इस वाक्य से मैं चौंक पड़ा। उसका आर्त स्वर, उत्सुक व करुण दृष्टि मेरी आँखों के सामने तैरने लगी।—मुझे कुछ ऐसा लगा कि मैं अपराधी हूँ।

—स्टेशन से उतरकर लगभग एक घंटा हो गया था। अपनी मा से, अपनी शान्ता से, मैं कितना सारा बोलता रहा पर विभासे नहीं। उस बेचारी ने क्या कोई पाप किया था?

—चाहे जितनी ज़रूरी चिठ्ठियों के जवाब क्यों न हों, अब लिखना बंद करना होगा। यही सोचकर मैंने हाथ की कलम नीचे रख दी, और नोट पेपर एक ओर हटा दिये। उसकी बेचैन किंतु सतत श्वसन की ध्वनि मेरे क़ानों में पड़ी। उसकी ओर देखने में मुझे कुछ संकोच, डर-सा होने लगा।

—'मुझे यह प्रतीक्षा कबतक करनी पड़ेगी? एकदम ऐसे निर्दय क्यों होगये आप? आज बीस दिन हुए आप को बाहर गये, और अब वापिस आने पर भी— '

—उससे आगे बोलते न बना। सिर्फ इतनी-सी बात! पर इसके अलावा वह चाहे जितनी मुझे सज़ा देती मैं उसे क़बूल कर लेता। उसने जो कुछ कहा था, उसमें से शब्द शब्द सच था।

—पर मैं कहता क्या?

—वह मेरी कुर्सी के पास आ खड़ी हुई। उसने धीरे से बत्ती कम की। मेरे सँवारे हुए बालों पर कोमल उंगलियाँ फेरीं।

—फिर भी मुझसे बोलते न बना!

—'मैं तुम्हारे पास आ सकती हूँ?'

—और उसके बाद मेरे स्पर्श से उसका पंदरह दिनों का भूखा प्यासा तनमन पुलकित हो उठा। चन्दन वृक्ष से लिपटी हुई नागिन अपना सब विष खो बैठी। उसके मंद निःश्वास मेरे वक्ष से न जाने क्या और कैसी बातें करते रहे।

—इस दशा में उसे पलकें खोलने की ज़रूरत नहीं मालूम हुई, इच्छा भी नहीं थी। उसकी चाह से मैं परिचित था। पलकों-

परके आँसू पंखुड़ियों से पोंछे गये। पंछी की सी कोमल हलचल हुई। उसके अधरों में से तेज छिटक पड़ा।—

—'हो गये न बारह खून माफ़ ?'

——'हिश्त' उसका वह शब्द दिलकी सफाई का सबूत था। सामने की कुर्सी पर वह बैठ गई।

—'एक आदमी इन पंद्रह दिनों में कितनी चैन की जिंदगी बिता रहा था। न कोई तकलीफ——न कोई बला——'

—'था तो ऐसा ही कुछ——'

'इसी लिये तो! बंबई में जो कुछ देखा-भाला वह बताने की इच्छा जो नहीं——'

—'सब कुछ देखा। नागिन जो पैरों से लिपटी नहीं थी। चाहे जहाँ घूमा——'

——उसने मेरी ओर कुछ नाराजी से देखा। पर क्या सचमुच, वे ईषत्-उन्मीलित नेत्र अपनी दाहकता कभी मुझे जता सकेंगे? उसके नयनों में प्रतीत होनेवाले भावों को देख मुझे अध्यात्म रामायण के दृष्टान्त का स्मरण हो आया।——'क्षीरमध्यगतं सर्पी यथा व्याप्यखिलं पयः——'

——मैंने कोई बात नहीं की।

——'हे भई'——और मुँह फूल कर कुप्पा बन गया।

——अब नाराजी की मेरी बारी थी और वह मैंने अपने तरीके से वसूल कर ली।

——उसने आँखें दिखाईं। रेलगाड़ी जैसे फिर पटरीपर आ गई।

—'निर्मल——मेरी सहेली से मिले?'

——उसकी सहेली निर्मला!! हाँ, उसे मैंने देखा तो था। समुद्र की तरङ्गों की ओर एकटक देखते हुए मैंने उसे आँखों में समा लिया था। उसकी ओर देखते ही मैंने मन ही मन लावण्य-सागर की लहर याद कर ली थी। हवा से माथे पर बारबार उलझने वाली लटोंको उसका सँवारना——न जाने कितनी देरतक उस मनभाये दृश्य की ओर मैं देखता रहा था।

—पर ये सब बातें विभा से कहने के लिये मेरे पास शब्दों की कमी-सी हो गई। समय और प्रसंग के अनुकूल शब्द मैं ढूंढ रहा था।

—'तुम्हारी निर्मला? हाँ, वह मुझे एक झलक दीख पड़ी। तुम्हारे पासका उसका सिर्फ फोटो मैंने देखा था, लेकिन उस परसे मैं पूरी कल्पना न कर सका। वाकई वह अति सुंदर है। उसकी सुंदरता की सीमा नहीं। वैसे तो तुम कहती हो वह दो बच्चों की माँ है, फिर भी—'

—इतना सारा मैं कह गया और मैंने विभा की ओर देखा—मारे खुशी के उसके चेहरेपर रोशनी छा गई थी। मेरा जी जैसे हलका हुआ—जी गया मैं!

—'कई दिनों से उससे मुलाकात नहीं। चार साल पहिले हुई थी। लगता तो मुझे बहुत है कि—'

—'तो बुला ही न लो उसे यहीं चार दिनके लिये! मेरा आना जाना होता-ही है, पहुँचा दूँगा। मुझे भी अच्छा लगेगा—'

——कह तो गया मैं, लेकिन क्या मेरी भावनाएँ एक तरफा-ही थीं?

—कुछ अचरज से विभा मेरी ओर देखती रही। इतने दिनों के बाद, आज उसकी

सहेली के लिये मैनें अपने-आप कुछ उत्सुकता जो दर्शाई थी।

—'निर्मला मेरी है ही वैसी! कलही क्यों न लिख दूँ मैं उसे चिट्ठी यहाँ आने के लिये और लिख देती हूँ तुम्हारे नाम से ही!'

—यह अच्छा ही था कि उसने मुझसे जवाब की उम्मीद नहीं रक्खी थी —!

(२)

निर्मला को तांगे से उतरते हुए मैंने ध्यान से देख लिया। वह ऊपर आई और बहनोई के नाते जब उसने मुझे विनय से झुककर नमस्कार किया तब उसकी करांगुलियाँ मेरे पैरसे स्पर्श कर गईं। उसके खड़े रहनेपर दो क्षण आँखें मिल गईं। उसने यूँ ही ज़रासा हँस दिया लेकिन मेरे लिये जैसे चांदनी बरस पडी। और उसके चलने में विद्यापति की पंक्ति जैसे सजीव हो उठी — 'जहँ जहँ पदजुगुल धरई। तहँ तहँ सरोरुह खिलई'

—'अच्छी तो हो?'

—'जी—' परंतु एक शब्द में मेरा दिल स्वर्लोक की सारी मधुर तानों से भर गया। क्या जाने! क्या मानव के मन में जन्मजात काव्यगुण होता ही है?

——वह वापस नीचे जाने लगी। तब फिर एक दफा मेरी आँखों ने मुझे धोखा दिया।

— और मेरी पत्नी से आँखें मिलते ही मैंने अपने तईं निश्चय कर लिया कि निर्मला की ओर अब देखना नहीं होगा। सुंदरता हर समय अनासक्त होती है ऐसा थोड़े ही है?—मेरे मन की फटकार मुझे सुनाई दी। और कुछ ऐसा लगा कि मानो काटो तो खून नहीं।

—इसके बाद आकाश में सुबहका अनंत अक्षय ज्योतिर्धर दीपक अंधकार को हटाने का अपना कर्तव्य पूरा करने के लिये प्रकाशित हो उठा। सबेरे सबेरे विभा मेरे पास से उठकर नीचे गई और मैं मीठी मधुर अँगड़ाई बिस्तरपर पड़ा न जाने क्या सोच रहा था। मेरे हृदय में हिलोर उठ रही थी। मन जग गया था।— बिल्कुल नन्हे बच्चेसा ताज़ा, प्रफुल्ल—! उस मन के शिशु ने अपने खिलौने निकाले। और उन खिलौनों में उस दिन उसने नवीनता पाई।

—'अजी, मैंने कहा, चाय तैयार है!'—

—'ठीक तो है, ले आओ, यहीं पी लूँगा।' विभा क्षणिक मेरी ओर देखती रही और फिर 'अच्छा' कहती हुई चली गई।

—'और यह देखो —' मैने विभा को फिर से बुलाया।

—'नीचे ही आता हूँ मैं चाय पीने'—

विभा लौट गई।

—क्या कोई खास जरूरत थी इस संवाद की? क्यों मैनें यह सब कहा? निर्मला सुन्दर है। उसकी ओर देखने की मेरी इच्छा होती है। मैं दायित्वहीन नहीं हूँ। निर्मला भी खुद की जिम्मेवारी महसूस करती है। मुझसे मेरा मन अपने वश में रखते बनता है।

—फिर इतना होते हुए मैं मेरी सीधी-सादी इच्छाएँ इस तरह क्यों दबाऊँ? मेरा मन ज्यादह विद्रोह कर उठेगा इससे तो?

नींद को ललचाया विद्यार्थी रातको सोते समय सबेरे जगकर पढ़ने की आशा से घड़ी में अलार्म लगाता है और दूसरे दिन

अलार्म बजते ही उसका निद्रा-लोलुप मन हजार बहाने बनाकर उसे सोने को बाध्य करता है।

—उसी अवस्था में मैं नीचे उतर आया।

—निर्मला और विभा कुर्सियों पर बैठीं थीं। तीसरी कुर्सी पर मैं जा बैठा। और कुछ कारण न होते हुए भी मैंने विभा को ऊपर से अपना स्वेटर लाने के लिये भेजा।

—'क्या आपने बनाई है यह चाय ?'

—जी हाँ, निर्मला का जवाब, दृष्टि नीचे की ओर।

—'बड़ी अच्छी बनी है चाय—'

—'फिर कल से मैं ही बनाया करूँगी। इसमें कौन बड़ी बात है ?'

—मेरा अन्तर खिल उठा।

—'स्वार्थी बहुत हैं आप ! बंबई के मेहमानों को चाय के लिये भी घर पर बुलाते नहीं बना आप से ?'

—'क्या कह रहे हैं आप ! आपका पता भी था हमें ? पर अब मालूम हो गया है वह। यह घर मेरी विभा का है, आपका थोड़े ही है !

—विभा का घर !!

—उतने में ही सहसा जैसे बौर फूला और झर पड़ा। तो यह मेरा घर नहीं ? विभा का—ठीक ! सही तो है !

—पर मैनें निश्चय किया था न ? फिर चाय पीते समय कप में थोड़ा-सा अन्तर रख कर कौन बार-बार निहार रहा था उसकी ओर ? पर उसमें क्या हुआ ? चाहे तो फिर से ऐसा नहीं करेंगे—भीष्म पितामह की सहायता माँगने को मन दौड़ पड़ा !

(३)

—निमो को शकुन कलियाँ बड़ी भाती हैं। लाओगे आज ? विभा आते ही बोली।

—'हाँ क्यों नहीं ? लेकिन लाऊँ कहाँ से ?' जौहरियों के बाड़े में शकुन कलियों के फूल थे यह जानते हुए भी मैनें दुविधा सामने रखी।

—'ओ ! जैसे मालूम ही नहीं आपको ! बनते क्यों हो जी ?—'

—अब मैं भला क्या कह सकता था ?—

'हाँ, देखूंगा !'

कितनी उदासीनता दर्शाई मैंने। मुझे अपने-आप पर विश्वास हो आया।

—शकुन कलियाँ !

—अरे हाँ ! इन कम्बख्त फूलों के बारे में अपने बागवान से कहना भी तो था। याने ये फूल वैसे ही अपने लिये लाना ज़रूरी हैं।

—पाँच दस मिनिट में ही मैं बाहर जाने के लिये उद्यत हुआ।

—कांचनमृग ने जैसे एक ओर लालच दिखाया और राम को सीता से दूर दूर ले भागा !

—वे शकुन कलियाँ ! निमा की पसन्द और रूप में कितना साम्य था ! सचमुच बड़ी रसिक लड़की है यह !

—बड़ी रसिक लड़की !!

—रेशम के रूमाल में मैंने उसे वे फूल भेंट किये। निर्मला ने उन्हें स्वीकार किया। लेकिन जैसा सोचा था उतनी उत्सुकता से मानो नहीं। परंतु उत्सुकता दर्शाने के लिये उसे क्या करना था ? आखिर वह और किस तरह लेती ?

——यह बात, और उसी दिन निमो के स्वामी की राजीखुशी का पत्र आया था, उसमें उन्होंने मुझे 'सप्रेम वन्दे' लिखा था।

——और वह पढ़ते हुए पुनः एक बार भीष्माचार्य ने मेरे मस्तक पर हाथ रक्खा।

* * *

——'मेरी निर्मला के लिये एक अच्छी-खासी साड़ी खरीदनी है——'

——हाँ! यह तो रस्मरिवाज है। इसका पालन करना तो मेरा फर्ज है। यही ठीक ठीक सोच कर मैंने उस समय जितने मेरे पास थे उतने रुपये विभा के हाथ में रख दिये। मेरी धर्मपत्नी ने निर्मला की हर तरह की खुशी को पूरी करने का जैसे मन में ठान ही लिया था। मुझे भी उसमें सिर्फ बुरा ही नहीं अच्छा लगा।

(४)

——'आज आप टहलने जाँय तब हमें भी बुला लेना। निमो को मैं साथ ले लूंगी——'

——'ऊँ हूँ, आज टहलना न हो सकेगा' ——मेरे मन का सुनिश्चित उत्तर था।

——'लेकिन हर वक्त यह क्यों? इतना संकोच आखिर किस लिये? आप उसे पहिचानते नहीं? और फिर वह कुमारिका भी तो नहीं है, फिर क्यों?——'

——'पर आज मेरे पास समय जो नहीं है। एक जगह व्याख्यान देना मैं स्वीकार कर आया हूँ।'

——'तो फिर और भी अच्छा! एक ही गाड़ी में सब बैठ चलें!'

'ना, ना! निमंत्रण देनेवाले मुझे लिवाने आनेवाले हैं। तुम सब के लिये मैं गाड़ी जरूर भेज दूँगा।

——'काहेपर व्याख्यान है? विषय तो बतलाइये।'

——'प्रज्ञावाद'

——'ओह हो! आप क्या समझते हैं कि आपकी अक्ल बिल्कुल हद से ज़ादा बढ़ रही है?——' और जवाब की अपेक्षा भी न कर वह भागी और जाते हुए अपने पीछे उसने दरवाजा बंद कर लिया।

——व्याख्यान से लौटते वक्त भी मैं अकेला ही लौटा था।

——तो भी निर्मला का मेरे व्याख्यान के संबंध में मत मुझे चाहिये था। सब श्रोताओं के धन्यवाद देने पर भी यह बची हुई चाहना क्यों और किसलिये?

——मेरे मन ने इस सवाल का जवाब देने से इन्कार कर दिया।

——इस तरह दिन बीत रहे थे।

* * *

——अब थोड़ासा मेरी पत्नी विभा के विषय में!

——विभा? वह तो बिल्कुल पुनीता-सुनीता है, मेरे मन ने एकदम गवाही द दी; मानो बिल्कुल शुद्ध धुला हुआ चाँवल!

——आजकल वह मेरी बातों पर क्षणभर अचरज कर सोचती सी है। ऊँह! सहेली के आने से थोड़ीसी बेचैन हुई होगी, कुछ सूझबूझ में वह उलझ गई होगी।

——उसके चरणों पर माथा रख दूँ मैं?

——किसने मुझे यह सलाह दी?

—मेरे पंगु और दोषी दिल ने ? या दायित्व की चेतना ने ?

—मैं एक किताब खोलकर पढ़ने लगा !!

* * *

—नहीं, नहीं ! निर्मला सुंदर थोड़े ही है ! वह उसका भंगुर सौंदर्य और अ-चिर यौवन ! वह गौर करने की बात थोड़े ही है ! लेकिन मेरी विभा तो भीतर बाहर सुन्दर, अनिंद्य है । कल निमा का सौंदर्य ढल जाय तो मेरा दिल जरा भी गीला नहीं होगा ! और मैं तिसपर भी एक पागल की भाँति खुद के मन को लुभा रहा था, मोहित कर रहा था, उलझन में डाल रहा था !

—दो चार घंटे अपने आप ही सोचकर मैं आत्मोपहास से हँसने लगा ।

(५)

—पैरों की ज़ोर ज़ोर की आवाज़ से सारी सीढ़ी दनदना गई ।

—'कौन ?—'

—वह थी विभा !

—'निर्मला को आज हरारत सी मालूम पड़ रही है ।—' उसकी आवाज में कंपन था ।

—क्या निर्मला बीमार है ? मैं उसी क्षण डॉक्टर के पास दौड़ा ।

—कम से कम पन्द्रह दिन निर्मला को बुखार से बिस्तर पर पड़े रहना होगा । देखभाल में कमी बेशी होने पर मियाद बढ़ भी सकती है । निर्मला की सहेली आँखों में प्राण लिए उसके सिरहाने पाँयते बैठती थी । मेरी भी नींद कोई चुरा ले गया था । कई बार मन में आया कि खुद जाकर पूँछ-ताँछ कर आऊँ ! पर न जाने क्या हुआ ।

लेकिन निर्मला के विषय में मैं चिंता क्यों करूं ? और हाल ही में उसके पति यहाँ आकर उससे मिलकर जो गये थे ।

—'निर्मला ने आपको याद किया है—' विभा सन्देसा ले आई ।

बीमार का मन नाजुक होता है । जाना तो पड़ेगा । नहीं तो कहीं ठेस न पहुँच जाय । आज लगातार दस दिन से वह बुखार से छटपटा रही है ।

—अेक शब्द भी न बोलते हुए मैं पलंग के पास की कुर्सी पर जा बैठा । मैं अपनी ही अंगुलियों के नख निहार रहा था । क्यों ? क्या वे नख किसी अजायब घर के जानवर के थे क्या ?

—'निम्मो, कैसी हो गई है तू' विभा का जी उमड़ आया ।—'हरी भरी गहरी लता जैसे पत्ता पत्ता झर गया हो और पूरी कुम्हला गई—'

—मेरे मन में न जाने कैसा सा हो आया ।

—'ना विभा, मैं चंगी हो जाऊंगी और अच्छी भी दीखने लगूँगी, फिर तो ठीक है ? तू रो मत री—!'

—किसी उद्देश से नहीं; पर एक तरह की करुणार्द्र भावना से मैंने निर्मला की ओर देखा ।

मैंने देखा !

—'अरे, यह अब भी सुन्दर है ?'

पर मेरा उद्गार किस सौन्दर्य-शास्त्र को लेकर था ?

उस उद्गार से मेरी विचार शक्ति ही बर्फ जैसी जम गई । मेरी देह से पसीना छूटने

लगा। विभा की ओर देखने का साहस भी मुझमें न बचा रहा। गलितगात्र होकर मैनें जैसे गलेमें से किसी भारी चीज़ को उतारा।

——और निमिषार्ध में कुर्सी पर से उठकर मैं अपने कमरे में भाग आया।

——'विभा–' मेरा मन चीख़ उठा। सहस्र नागों के पाश से बँधे हुए मन का वह चीत्कार था।

——मेरे पीछे पीछे विभा मेरे कमरे में आई। सिर दोनों हाथों से दबाये बैठे हुए मुझे उसने देखा। मेरे दिल का आवेग वह समझ गई। मेरे जलते हुए निःश्वासों को सहने की ताक़त सिर्फ उसीमें थी।

——'जरा इधर देखो मेरी ओर!–'

——अन्तस्तल की एक भी चित्शक्ति ने मुझे साहस नहीं दिया।

——'यह सब क्या हो रहा हैं तुम्हें? क्या मुझसे भी न कहोगे?'

——मुझे सन्देह हुआ मैं ठिकाने पर हूँ भी या नहीं।

——'मैं तुम्हारी जो हूँ! समूची तुम्हारी ही!'

——अग्नि को साक्षी रखकर उसने दोहराया हुआ विवाह संस्कार के समयका वह वाक्य——'स नो अर्यमा देवः इतः प्रमुंचतु मा पतेः–फिर जैसे मेरे कानमें गूंज उठा।

——'तुम मेरे हो, मुझसे कहो——आखिर क्यों तुम वहाँ से एकदम भाग आये? और इधर कई दिनो से निर्मला की ओर देखना भी आप क्यों टाल रहे हैं? यह मन का रोकना-बांधना किस लिये?——'

——मेरा मनोबल, मेरी चैतन्यशक्ति, मेरा हृदय धर्म, सब कुछ लुप्त हो गये थे। उसने मुझे अपनी नाज़ुक भुजलताओं में समाकर उठा लिया। मेरे माथे पर हाथ फेरने लगी। मुझे वशमें ले आई। उसकी पुतलियाँ भिगी और थरथराती पलकों में से मेरी ओर देखने लगीं।

——शायद सुन लिया होगा उसने मेरे हृदय का स्पंदन!

——'बताओ मैं पहिचान गई हूँ ना सब? समझ गई हूँ न? यह नहीं होने का! ज़रा मेरी आँखों में देख लो वही तुम्हारा रूप, रंग जो मुझको मेरी आत्मा से भी प्यारा है! तुम मेरे हो, और मैं तुम्हारी!——'

——और उस अस्त्र से मन का पाप भस्म हो गया। मंत्राग्नि प्रज्वलित हो उठी।

——'नहीं, जी को इतना तरसाने की इतना बांधने की जरूरत नहीं। मैं तुम्हारे लिये सबकुछ उठाकर छोड़ूंगी। आख़िर मैं जो हूँ! इतना भी मैं समझ, बरदाश्त न कर सकी तो मेरा होना न होना बेकार है——' मेरी अवस्था उससे देखते न बनी।

——होठों की ईषत्-विलग पँखुड़ियां! आशंका से अस्थिर आँखें! उष्ण निःश्वास——

——और हम दोनों को छोड़ बाकी सारी दुनिया मानो वहाँ से गायब हो गई!

——पंछी अपने पंखों में अपने शावक को ऐसे ही सुबका लेता होगा——

——अज्ञात में प्रतिध्वनि गूंजी——"बच्चे हो! बिल्कुल अज्ञ शिशु! कुछ सीखो! कुछ समझो! कुछ देखो!"

* * *

कविता

पुनर्निर्माण

[आत्माराम रावजी देशपांडे, 'अनिल']

सर्वनाश ऐसे हुआ
किन्तु इसी सर्वनाशपर भी—
आशामन्दिर बाँधने को
फिर हमें उठ खड़े होना है
हमारा ही यह जीवित कार्य है
बीती हुई शतियों का अनुभव
ज्ञान औ विज्ञान का संयोग का जिसमें
वर्तमान भाग्यशाली उसी नूतन पीढ़ी का
नूतन चैतन्यमय जीवन भी
हमें प्राप्त हुआ है
ऐसे बड़े भाग हम
सार्थक कुछ करें इसका।

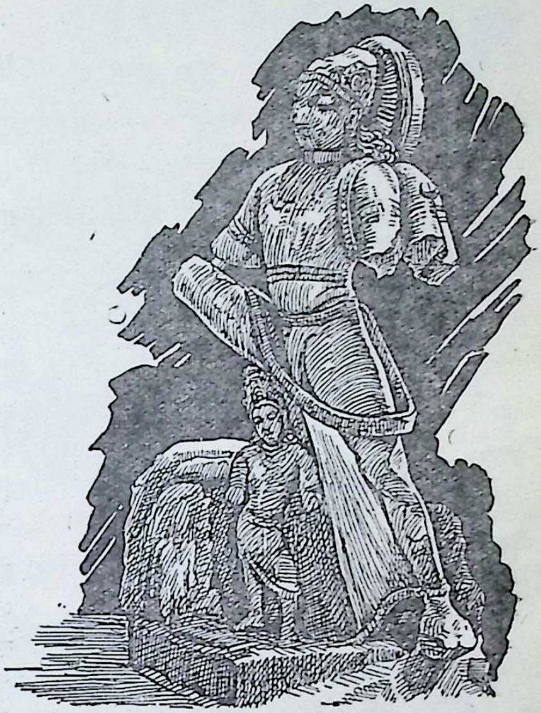

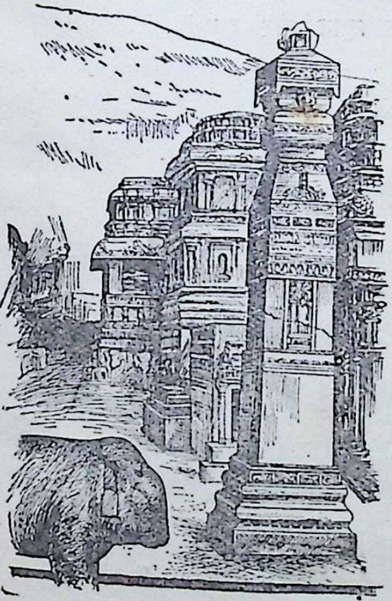

भव्य कलाकृतियां—
जिनके हम अवशेष देखते
बताती हैं नित यहीं
पुरखों ने कितने ही प्रचंड काम किये थे
कैलास मंदिर आज भी देखते ही
खड़े होकर सामने—
छाती भर आती है गर्व से
उसी योग्य करने कुछ
बाहुओं में स्फुरण व्याप्त होता है
और उसी प्राणवान ज्ञान से
प्रबल आशा जागती है
पुनरुत्थान की और नूतन जीवन की

यदि है प्रखर ग्रीष्म आज
और धरती मां तप्त है
विदीर्ण है
चिलचिलाती और रूखी दीखती
सभी कहीं सूख गये जीवन-स्रोत
दावानल जल उठे
गरम गरम हवा से हरियाली सूख गई
सूख गये वृक्ष सभी
यदि है प्रखर ऐसी धूप आज
पावस भी क्या दूर है ?—
इसी चंड धूप में
निहित है विराट शक्ति
सागर को तपाने की
उसकी देखो भाप बन
घिरी नभोमंडल में—
छूटते ही झंझावात उसीपर आरूढ हो
आयेगी मेघरूप धारकर
बिजलियों के नृत्य में नाचती
घनघोर गर्जना करती हुई
होगी फिर जीवनवृष्टि
जीवन नूतन प्राप्त कर—
तपी हुई धरती में छिपे हुए बीजों को
निश्चित ही अंकुर नये फूटेंगे—
होगी फिर से एकबार सम्पन्न पृथ्वी यह
विराजेगा यहां फिर—
एक नूतन वीर राष्ट्र !

* * *

उसी वीर राष्ट्र के निर्माण हेतु
पुनरुज्जीवन—पर्जन्यवृष्टि पाने को,
करो हे आरम्भ आज
जीवन-कामेष्टि महायज्ञ का,
शुद्धि अग्निकुंड में करो स्वाहा
क्षुद्र भेदाभेद के नाशकारी तत्त्वों को
जिनसे ही हुई है सभी की अधोगति,
करो उसे "अग्नये स्वाहा" तुम,
"अग्नय इदं न मम" कहते हुए

* * *

देखो भगवान की वामनमूर्ति

अवतार रहस्य कह रही है—

आज हो वामन यदि

बौने हो, विकास गति रुद्ध है,

यदि चहुँओर से दवाये और कुचले हो,

धारो, हे त्रिविक्रमरूप तुम !

दवादो पैरोंतले बलिराज

मानों यही कहने को—

खंडित फिर भी जूझती—

प्रकृति औ काल की नाशकारी शक्ति से—

आज भी—

देखो, भग्नमन्दिर के सामने ही खड़ी है—

भग्नमूर्ति !

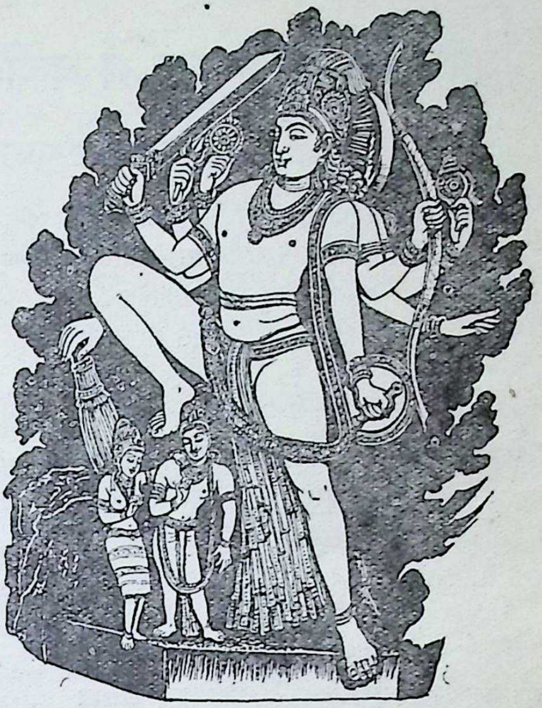

[मराठी से अनुवादक :—शरच्चन्द्र मुक्तिबोध]

[इस '**पुनर्निमाण**' कविता के सम्वन्ध में कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है। यह मराठी मुक्तक कविता का हिन्दी-मुक्तक छन्द रूपान्तर मात्र है। कविता में जिस पुनर्निर्माण की ओर संकेत है उसका सन्दर्भ 'भग्नमूर्ति' नामक खंड काव्य के साथ सम्वद्ध है। उसमें भग्न मूर्ति है और भग्न मन्दिर है, जो अपने निर्माणकाल में सर्वश्रेष्ठ कलाकृति होंगे। नागपुर के साथ इस अद्भुत कलाकृति का घनिष्ट सम्वन्ध है। यहांसे उत्तर-पूर्व ईशान्य कोण में लगभग ३०-३२ मील दूर रामटेक नामक एक प्रख्यात प्राचीन तीर्थक्षेत्र है। स्व० डॉ० हीरालालजी तथा जायस्वाल आदि पुरातत्त्वविद्या-विशारदों द्वारा यह प्रशंसित है। यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त रमणीय और विशाल है। कविकुल गुरु ने इसे 'मेघदूत' में 'रामगिरि' के नाम से ग्रहण किया है। अलंकृत, अकृत्रिम, अनुपम शैली। विरह शृंगार का गेय (lyrics) खंड काव्य। अद्भुत माधुर्य है मेघदूत के मनोहर मन्दाक्रान्ता छंद में। भावावेग, रस, ध्वनि और पद-लालित्य के सम्राट का यह काव्य छोटा-सा कलामान्दिर है। छोटी-सी व्यक्तिगत विरह-गाथा है इसमें। अलकेश्वर कुवेर का पार्श्ववर्ती अनुचर यक्ष एक दिन स्वामि-सेवा के कर्तव्य में असावधान हुआ। वस, सेवक को देशनिर्वासन का दंड दिया गया। यक्ष अपनी प्रियतमा कान्ता के गुरुतर विरह से व्याकुल होकर भूले भटके रामगिरि — रामटेक में —'...जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु–स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।' आकर रहा और वियोग के वड़े विकट दिन यहां विताने पड़े उसे। मेघदूत के उसी पूर्व मेघ में ५९ वाँ श्लोक है—"**तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी, श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः**" और इसकी सरल संस्कृत में व्याख्या है—वलेः दैत्यस्य नियमने वन्धने अभ्युद्यतस्य प्रवृत्तस्य विष्णोः व्यापकस्य त्रिविक्रमस्य श्यामः पाद इव तिर्यगायामशोभी।—कितनी सुन्दर कल्पना और कितनी सुन्दर कलात्मक बलि-वामन की मूर्ति! खंड-खंड हुई ध्वंसावशेष आर्य अभिजात संस्कृति के पुनर्निर्माण का सारा वातावरण कवि 'अनिल' के मराठी 'भग्नमूर्ति' खंडकाव्य में ओत प्रोत है।—**सम्पादक**]

अभिज्ञान-शाकुन्तल में वर्णित स्थानों का परिचय

[विजयेन्द्रकुमार माथुर]

पिछले काफी दिनों से यूरोप तथा भारत के विद्वान लोग, महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' का नवीन वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करते रहे हैं, किन्तु इस संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ नाटक में वर्णित स्थानों के परिचय, सूक्ष्म विवरण और आधुनिक नामों के सम्बन्ध में भौगोलिक दृष्टिकोण से अबतक जो कुछ लिखा गया है वह अपर्याप्त तथा अधूरा ही है। यहाँ इस नाटक में कालिदास द्वारा उल्लिखित स्थानों का भौगोलिक दृष्टि से विवरण देने का प्रयास किया जा रहा है।

शकुन्तला-नाटक की कथा तो इतनी प्रसिद्ध है कि उसकी पुनरावृत्ति यहाँ करना अनावश्यक है। हमें यहाँ केवल नाटक में आये हुए विभिन्न स्थानों की ठीक ठीक भौगोलिक स्थिति के विषय में निश्चय करना है। कालिदास का अबसे सोलह सौ वर्ष पुराना भूगोल का ज्ञान कितना परिशुद्ध तथा सूक्ष्म था, यह बात निम्न वर्णन को पढ़ने से स्पष्ट हो जायगी।

अभिज्ञान-शाकुन्तल में निम्न स्थानों का वर्णन आया है—

हस्तिनापुर : नाटक के नायक प्रसिद्ध चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त की राजधानी (अंक ४, ५)।

वन-प्रदेश जहां दुष्यन्त मृगया के लिए जाता है (अंक १ तथा २) मालिनी नदी तथा उसके तट पर स्थित कण्वऋषि का आश्रम जहां नाटक की नायिका शकुन्तला का घर था। यहीं उसने अपना शैशवकाल व्यतीत किया था (अंक १, ३ तथा ४) मालिनी नदी का वर्णन पुनः अंक ६ में (पद्य १६) भी किया गया है जहाँ उसके तटों के आसपास हिमालय की तलहटी का उल्लेख है।

शुक्रावतार में स्थित शचीतीर्थ, जहाँ पति से मिलने के लिए अपने आश्रम से हस्तिनापुर जाते समय शकुन्तला की उँगली से दुष्यन्त की दी हुई अँगूठी गंगा में गिर कर खो गयी थी। (अंक ५) वह मछुआ जिसको दैवात् एक मछली के पेट के अन्दर से यह अँगुठी मिली, शचीतीर्थ ही का रहने वाला था (अंक ६)

मारीच का आश्रम : यह किम्पुरुषों के पर्वत हेमकूट पर स्थित था। इस स्वर्गीय स्थान पर ही दुष्यन्त तथा शकुन्तला में—कई वर्षों के वियोग के पश्चात्—मिलन संभव हो सका (अंक ७) इसी आश्रम में—दुष्यन्त द्वारा परित्यक्ता शकुन्तला ने अपने वियोग के दिन बिताये थे।

हस्तिनापुर : प्राचीन काल में इस प्रसिद्ध नगर के खण्डहर, गंगा नदी के एक पुराने स्रोत के पास, उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में, दिल्ली से ५७ मील उत्तर-पूर्व स्थित इसी नाम से कहे जाने वाले स्थान के आस-पास फैले हुए हैं, यह नगर बहुत समय तक चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानी रहा। पीछे पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाया। यह विदित है कि हस्तिनापुर को छोड़ देने का कारण गंगा नदी का उसके पास से हट जाना रहा हो। क्योंकि प्राचीन समय में किसी बड़े नगर का अस्तित्व बिना किसी नदी के तट पर बसे हुए संभव न था। हस्तिनापुर की स्थिति पूर्ण रूप से निश्चित होने के कारण, शकुन्तला नाटक में आये हुए अन्य स्थानों के विषय में स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि वे भी हस्तिनापुर के आस पास के प्रदेश ही में रहे होंगे। क्योंकि कहानी के कथानक से यह बात स्पष्ट है कि इन सब स्थानों में आपस में थोड़ा-सा ही अन्तर था।

कण्वऋषि का आश्रम : मालिनी नदी के तट पर था। इस स्थान की खोज हमें हस्तिनापुर के आस-पास के प्रदेश ही में करनी चाहिए, क्योंकि राजा दुष्यन्त मृगया करने के लिए घूमते फिरते अचानक ही यहाँ आ पहुंचा था। एक नदी जो अब मालन कहलाती है—गढ़वाल के पहाड़ों से निकलकर बिजनौर जिले के (यह मेरठ जिले से पूर्व की ओर लगा हुआ जिला है) उत्तरी भाग में

बहती हुई, बिजनौर नामक नगर से छः मील उत्तर में स्थित रावली घाट के निकट गंगा नदी में मिल जाती है। स्थानीय जनश्रुति भी ऐसी है कि यह नदी शकुन्तला नाटक की मालिनी ही है और कण्व का आश्रम इसी नदी के तट पर स्थित मँडावर में था। मँडावर बिजनौर नगर से प्रायः दस मील उत्तर पूर्व में है। ईस्ट इन्डियन रेलवे की मेन लाइन पर नजीबाबाद के पश्चिम में मुअज्जमपुर नरायन तथा बालावाली के मध्य में स्थित चन्दक नामक स्टेशन से यह लगभग चार मील है।

मँडावर : मालन नदी के दाहिने किनारे पर बसा हुआ एक छोटासा कस्बा है। कनिंघम साहब के अनुसार यह युवानच्वांग द्वारा वर्णित प्राचीन मतिपुर है। पुरातत्त्व विभाग द्वारा यहाँ अभी तक खुदाई नहीं हुई, और कुछ पता नहीं कि इस स्थान पर पुरातत्त्व सम्बन्धी कितने बहुमूल्य खजाने छिपे पड़े हैं। मेरे विचार में जिस स्थानीय जनश्रुति का हमने अभी वर्णन किया है उसकी प्राप्त भौगोलिक सामग्री के आधार पर पूर्ण रूप से पुष्टि हो जाती है। यह बात निम्नलिखित विवरण से और भी स्पष्ट हो जायगी—

जिन जँगलों में दुष्यन्त हस्तिनापुर से शिकार के लिए गया था वे गढ़वाल की तराई में स्थित घने वन ही रहे होंगे—यहाँ अभी तक दूर दूर से शिकार के लिए लोग आते हैं—सहारनपुर की जमीदारी में जो नजीबाबाद के उत्तर में है—एक स्थान आमसोत नामक है। यहाँ खूब जंगली जानवर मिलते हैं—जिनमें हिरन, हाथी और तेंदुआ, मुख्य हैं। प्रायः आमसोत के आसपास शिकारियों की टोलियों के पड़ाव दिखलाई पड़ते हैं। सहारनपुर में एक पुरानी जन-श्रुति है कि एक बार व्याघ्र का शिकार करने मुगल सम्राट जहाँगीर भी यहाँ आया था।

इस घोर जँगली प्रदेश में वन्य हाथी भी बहुतायत से पाये जाते हैं और कदाचित् इसी लिए इसको कजली वन भी कहते हैं। ये वन उत्तर में हरद्वार तक चले गये हैं और आज भी इस प्रदेश के आसपास से जानेवाली सुनसान सड़कों पर जंगली हाथी भटककर आ जाते हैं। शकुन्तला नाटक में ऐसे ही एक जंगली हाथी के विनाशकारी कृत्यों का वर्णन है जो भटककर कण्व के आश्रम में पहुँचकर ऊधम मचाने लगा था। (अंक १, पद्य २८)

ये जंगल मँडावर से करीब करीब बीस मील उत्तर-पूर्व में और गंगा पार हस्तिनापुर से लगभग पैंतालीस मील हैं। संभव है कि कालिदास के समय में इस वनस्थली का विस्तार और अधिक था और इसका प्रान्त-तट मँडावर के पार्श्व तक फैला था। नाटक में आश्रम के पास ही दुष्यन्त के आखेट-शिविर का (अंक १ तथा २) तथा हिरन का पीछा करते हुए उसका आश्रम की सीमा के अन्दर आ जाने का वर्णन (अंक १) आता है—इस प्रकार हमारे उपर्युक्त भौगोलिक विवरण के साथ इस वर्णन की संगति ठीक ठीक बैठ जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास ने कथानक की रचना करते समय यह अवश्य ध्यान में रखा होगा कि हस्तिनापुर से सुविधाजनक दूरी पर सबसे पास पड़नेवाले आखेट के योग्य वन ये ही थे।

अंक ६, श्लोक १६ में मालिनी तथा कण्व के आश्रम का निम्नलिखित सुन्दर वर्णन है—

कार्या सैकतलीन हंस-मिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्ण हरिणा ।
गौरी गुरोः पावनाः ।
शाखालम्बित वल्कलस्य च तरोः
निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृंगे कृष्णमृगस्य वाम नयनं कण्डूयमानां मृगीम्।

शकुंतला की स्मृति लौट आने पर दुष्यन्त अपने मित्र माढव्य से स्वनिर्मित अधूरे चित्र के विषय में कहता है कि मुझे इसमें अभी इतने दृश्य और दीखते हैं—मालिनी नदी-जिसके रेतीले तटों पर हंसों के जोड़े विश्राम कर रहे हैं, नदी के दोनों ओर हिमालय की पवित्र तलहटी जहाँ हिरण आराम से बैठे हैं—और मैं यह भी अंकित करना चाहता हूँ—एक वृक्ष के नीचे-जिसकी शाखाओं पर वल्कलवृक्ष (सूखने के लिए) लटके हुए है, एक काला मृग और उसके सींग पर अपनी बाँइ आँख को खुजाती हुई हिरनी ; अनेक टीकाकारों ने इस प्रसिद्ध छन्द में आए हुए 'पादाः

का अनुवाद हिमालय की छोटी छोटी पहाड़ियाँ किया है किन्तु वर्णित स्थान की भौगोलिक स्थिति पर विचार करते हुए यह अनुवाद ठीक नहीं जान पड़ता। यहाँ इसका अर्थ पहाड़ की तहलटी तथा उसके आस पास का प्रदेश ही ठीक जँचता है, क्योंकि जैसा इस वर्णन से स्पष्ट ही है, यह कण्व के आश्रम का सुन्दर चित्र है और आधुनिक मँडावर गढ़वाल की पहाड़ियों से लगभग बीस मील है—यहाँ से ये तथा हरद्वार के पहाड़ साफ मौसम में स्पष्ट दीख पड़ते हैं, किन्तु फिर भी यह स्थान सर्वथा मैदान में स्थित है—पहाड़ की तलहटी अवश्य इसके पड़ोस में है।

शचीतीर्थ (शची इन्द्र की पत्नी) शक्रावतार (शक्र=इन्द्र, अवतार=तीर्थ) में स्थित था। यहाँ गंगा के स्रोत मे गिरकर शंकुतला के हाथ की अँगूठी खो गयी थी, तथा वह मछुआ जिसको वह दैववशात् मिली (यहीं का रहने वाला था।) अंक ६ में, मछुआ कहता है—'अहं शक्रावतारवासी धीवरः इस स्थान के विषय में किसी प्रकार की कोई जनश्रुति नहीं मिली है; किन्तु अभी हाल में केवल शब्द-साम्य के आधार पर लेखक को इस स्थान को ठीक ठीक पहचानने में सफलता मिली है।

मँडावर सें हस्तिनापुर जाने के लिए गंगा कें पार हो कर मार्ग जाता है। मँडावर से गंगा लगभग ९ मील है। गंगा को पार करने के पश्चात् यात्री मुजफ्फरनगर जिले में प्रवेश करता है। इस जिले की दक्षिणी सीमा के साथ साथ पश्चिम की ओर चलकर जिले की पश्चिम की सीमा को पार कर मेरठ जिले में प्रवेश करने के उपरान्त हस्तिनापुर मिलता है। यह सब यात्रा लगभग ३० मील की है। जिस स्थान पर गंगा को पार करना होगा वहाँ से सीधे गंगा के पार, मुजफ्फरनगर जिले में, अर्थात् नदी के दाहिने किनारे पर, एक तीर्थ स्थान है। इसका आधुनिक नाम शुक्करताल है। शुक्करताल के इस ओर नदी के बाँए किनारे से एक सरल-रेखा में मँडावर लगभग ९ मील दूर है। शुक्करताल में प्रतिवर्ष कार्तिक मास की पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला लगता है। यह स्थान बड़ा प्राचीन है और कहा जाता है कि शुकदेवजी ने परीक्षित को श्रीमद्भागवत की कथा इसी स्थान पर सुनाई थीं। यहाँ शुकदेवजी का एक बड़े से टीले पर मन्दिर भी है स्थानीय लोगों के मतानुसार शुकदेवजी के ही नाम पर इस स्थान का नाम शुक्करताल पड़ गया है। किन्तु इस व्युत्पति में 'ताल' शब्द का कोई अर्थ नहीं बठता। मेरा पूर्ण विश्वास है कि शुक्करताल शब्द शक्रावतार ही का सीधा सीधा अपभ्रंश है। अपनी प्राकृत भाषा में मछियारा तो इसको सक्कावदाल' कहता है (अंक ६)। यह उच्चारण तो आधुनिक शुक्करताल के और भी अधिक समीप है। ध्वनि-साम्य के अतिरिक्त हमारे भौगोलिक चित्र में भी यह स्थिति ठीक ठीक बैठ जाती है। इस प्रकार मँडावर से हस्तिनापुर का मार्ग इस प्रकार होगा। (चित्र लेख के अन्त में देखिये)

मालन नदी पर स्थित मँडावर से गंगा तक, गंगा के पार करने के पश्चात् दूसरी ओर शुक्करताल (शुक्रावतार) (१० मील), यहाँ से सीधे हस्तिनापुर (२० मील)। शक्रावतार में रहने वाला मछियारा मछलियाँ बेचने के लिए लगभग २० मील दूर हस्तिनापुर जाता रहा होगा।

अंक ५ में शंकुन्तला की मार्ग-दर्शक गौतमी के इस कथन से कि नूनं ते शक्रावतार ऽभ्यन्तरे शचीतीर्थ सलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टम गुलीयकम्, यह प्रतीत होता है कि शचीतीर्थ एक विशिष्ट स्थान का नाम था जो शक्रावतार नामक किसी काफी बड़े क्षेत्र की सीमा के अन्तर्गत था। आधुनिक शुक्करताल भी ठीक इसी प्रकार के एक छोटे मोटे कस्बे का नाम है। शचीतीर्थ का परिचायक अब कोई स्थान नहीं है। यहतीर्थ गंगा नदी पर ही स्थित था। क्योंकि दुष्यन्त के कथनानुसार अँगूठी गंगा में ही गिरी थी (शचीतीर्थ वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद्गंगा स्रोतसि परिभ्रष्टम्)

मारीच का आश्रम (अंक ७ में) इस की स्थिति किं-पुरुषों अथवा किन्नरों के पर्वत हेमकूट पर बतलाई गयी है. क्योंकि इस स्थान को स्वर्ग में स्थित कहा गया है। इसलिए भौगोलिक साक्ष्य के आधार पर इसकी खोज व्यर्थ ही है। किन्तु यह बहुत संभव है कि हिमालय पर्वत के अन्तर्गत तिब्बत अथवा गढ़वाल की पहाड़ियों के भीतरी भागों में बसने वाली जातियों को पुराणों तथा

प्राचीन काव्य ग्रंथों में किन्नर कहा गया है, और कालिदास के इस नाटक में भी इन्हीं किन्हीं स्थानों से अभिप्राय हो सकता है। फिर भी एक बात तो स्पष्ट-सी दीखती है कि नाटक के पंचम अंक में पति द्वारा परित्यक्त शकुन्तला को एक अप्सरा द्वारा आकाश-मार्ग से ले जाने तथा मारीच के आश्रम में उसे रखने के वर्णन लिखते समय हमारे उपर्युक्त स्थानोंका पूरा पूरा चित्र तो कालिदास के मस्तिष्क में अवश्य रहा ही होगा। स्वाभाविक रूप से कवि किसी इस स्थान से अधिक उपयुक्त स्थान के विषय में न सोच सका होगा। क्योंकि यह भौतिक संसार के प्रभावों से ऊपर होते हुए शकुन्तला के पिता अथवा पति के घर से अधिक दूर नहीं होना चाहिए था।

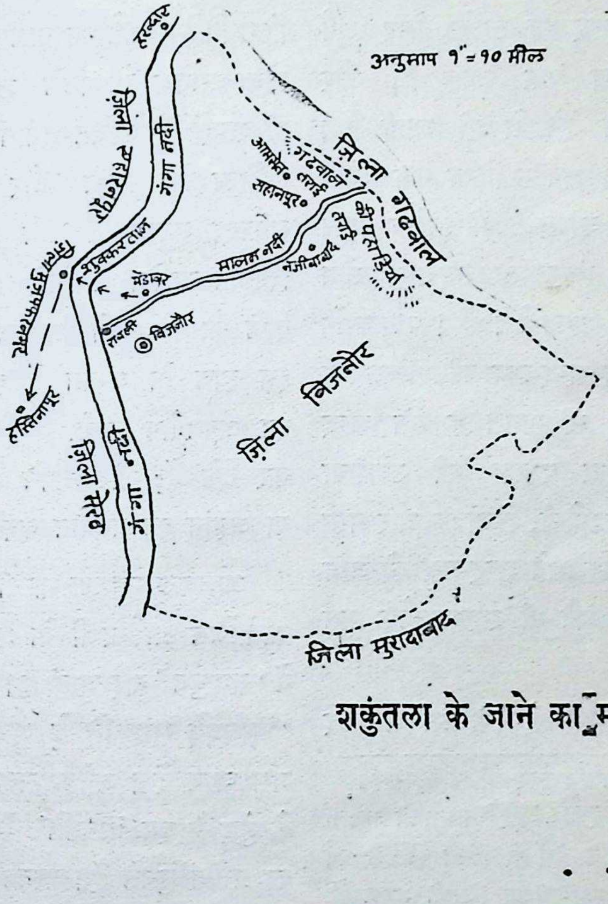
हरद्वार
ज़िला सहारनपुर
गंगा नदी
अनुमाप १" = १० मील
आसफ़ो
गढ़वाल तराई
ज़िला गढ़वाल
सहानपुर
मालन नदी
नजीबाबाद
तराई की पहाड़ियाँ
मुज़फ़्फ़रनगर
शुक्करताल
मंडावर
रावली
बिजनौर
हस्तिनापुर
ज़िला बिजनौर
ज़िला मेरठ
गंगा नदी
ज़िला मुरादाबाद

शकुंतला के जाने का मार्ग शरांकित

चर्चा :—

निमंत्रण और आमंत्रण

[अरूणोदय जानी]

किसी भी शब्द का उसके योग्य अर्थ में प्रयोग करना एक कला है, और यह कला ध्यान देने से ही आती है। शब्दों का उचित अर्थ में किया गया प्रयोग लेखक या कवि की कृति को विशेष महत्व प्रदान करता है। संस्कृत के वैयाकरणी लोग शब्द को अधिक महत्व देते हैं। परब्रह्म के समान ही उन्होंने शब्द-ब्रह्म की भी कल्पना की है।[1] वे यह भी मानते है कि शब्द ब्रह्म की उपासना परब्रह्म की उपासना के समान ही उपयोगी, हितावह और परम कल्याणकारी है।[2] जिसने शब्द-ब्रह्म को जान लिया वह परब्रह्म को भी सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है।

वस्तु-स्थिति ऐसी है कि प्रत्येक शब्द किस विशिष्ट अर्थ का वाचक है, इसका ज्ञान होना प्रत्येक के लिये आवश्यक है, साथ ही शब्दों के उचित प्रयोग के लिये संस्कृत साहित्य का गहन और तलस्पर्शी ज्ञान सामान्य मनुष्य के लिये न सही; परन्तु शिक्षित व्यक्ति, विद्यार्थी, वक्ता, लेखक और कवि के लिये तो अत्यन्त आवश्यक है। इस ज्ञान के अभाव में हम अनेक शब्दों का अपप्रयोग करके उनके महत्व को कम कर देते हैं; और अपने घटिया ज्ञान का या अज्ञान का प्रदर्शन करते हैं।

आजकल महात्मा गान्धी की परम्परा में आयोजित प्रार्थनाओं के अन्त में या आरंभ में ' राम धुन ' गाई जाती है। उसमें से एक पंक्ति **"सबको सम्मति दे भगवान"** पर हम जरा ध्यान दें। अनेक सभ्य समझदार लोगों के मुंह से हम 'सन्मति' के बदले 'सम्मति' का प्रयोग सुनते हैं। वास्तव में 'सम्मति' और 'सन्मति' शब्दों के अर्थ में जमीन असमान का अन्तर है। सम्मति शब्द ' सम् ' उपसर्ग-पूर्वक 'मम' (अवबोधने) धातु से बना है। उसका अर्थ है ' अनुमोदन ' करना अर्थात् Consent। परन्तु 'सन्मति' शब्द सत् + मति

---

[1] पादांग सन्धि पर्वाणं स्वर व्यंजन भूषणम्।
यम् आहुः अक्षरं दिव्यं तस्मै वागात्मने नमः॥
पद समूह जिसके अंग हैं, सन्धि जिसके पर्व (टुकड़े) हैं, स्वर-व्यंजन जिसके भूषण हैं, जिसको दिव्य अक्षर कहते हैं, उस शब्द ब्रह्मात्मक परमात्मा को नमस्कार।—सम्पादक

[2] एकः शब्दः सम्प्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति। एक शब्द का सम्यक् प्रयोग स्वर्ग लोक में मनोवांछित फल देता है।

—सम्पादक

इन दो शब्दों की सन्धि से बना है। इसका अर्थ होता है सद्बुद्धि या अच्छी अक्ल। इस अर्थ को समझ लेने के बाद 'सन्मति' के स्थान पर 'सम्मति' कहने से कितना महान् परिवर्तन उसके अर्थ में हो जाता है, इसका आभास हरेक को हो सकता है।

वर्तमान समय में भाषा और साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान्, लेखक, कवि, और संस्कृत के अध्ययनशील प्रख्यात पंडित भी कभी कभी शब्दों का अयोग्य प्रयोग किया करते हैं। 'निमंत्रण' और 'आमंत्रण' शब्दों को ही ले लीजिए। दोनों को समानार्थी, एक दूसरे का पर्यायवाची, समझकर इनका गलत प्रयोग कर दिया जाता है। प्रथम पंक्ति के लेखकों की रचनाओं में भी इस प्रकार के सदोष प्रयोग मिलते हैं।

इन दोनों शब्दों के अर्थ में महत्वपूर्ण भेद है, जो सूक्ष्म होते हुए भी उपेक्षणीय नहीं हो सकता। इन शब्दों के अर्थ का अन्तर संस्कृत व्याकरण के निर्माता महर्षि पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' ग्रन्थ के तीसरे पाद के १६१ वें (एक सौ इकसठवें) सूत्र में व्यक्त किया गया है। वह सूत्र है—**'विधि[१] निमंत्रणामंत्रणाधीष्ट[२] सम्प्रश्न[३] प्रार्थनेषु लिङ्'**। विधि का अर्थ है प्रेरणा। हिन्दी-व्याकरण में भी क्रिया का विध्यर्थ प्रयोग होता है। सूत्र का अर्थ है—लिङ् लकार (विध्यर्थ लिङ) का प्रयोग विधि, निमंत्रण, आमंत्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थना—इतने अर्थों में किया जाता है। इस सूत्र में 'निमंत्रण' तथा 'आमंत्रण' इन दो शब्दों का जो पृथक् पृथक् ग्रहण किया गया है, वही इन के महत्व के अर्थ-भेद का सूचक है। क्योंकि व्याकरण-सूत्र की पहली विशेषता 'स्वल्पाक्षरता' है। अक्षर थोड़े, अर्थ गहरा। जहाँतक बन सके, सूत्रों में कम से कम शब्दों का उपयोग किया जाय। और हमारे वैयाकरणों में एक मजेदार कहावत तो प्रसिद्ध है ही—'अर्धमात्रालाघवेन वैयाकरणाः पुत्रोत्सवं मन्यन्ते'। अर्थात् वैयाकरण अगर अपने प्रयोगों में अक्षर की अर्ध मात्रा को भी कम कर सकें तो उन्हें पुत्रोत्सव समान आनन्द प्राप्त होता है। यदि 'निमंत्रण' और 'आमंत्रण' शब्द एकार्थक होते तो वैयाकरणों के आचार्य पाणिनि को क्या पड़ी थी जो अलग अलग प्रयोग करने बैठे और अधिक स्वर-व्यंजनों की वृद्धि कर डाली! एक मात्रा लाघव से प्राप्त होनेवाले पुत्रोत्सव सुख से वंचित क्यों हो गये वे? महर्षि ने इन दोनों शब्दों का अलग अलग प्रयोग किया है। इसी से उनका पृथक् अर्थभेद सूचित होता है। इन शब्दों का अर्थभेद बताते हुए पाणिनि के सूत्रोंपर वृत्ति* के रचना करनेवाले प्रखर बुद्धि महापंडित भट्टोजी दीक्षित अपनी 'सिद्धान्त-

---

१. विधिः प्रेरणम्, भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। अपने नौकर से काम लेना। हिन्दी व्याकरण में भी प्रेरणार्थक विधि है। मालिक नौकर से कहता है,—'तुम कपड़े धोओ।—सम्पादक

२. अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः। हिन्दी में इसे आदरार्थक विधि कहते हैं। उदा०—आप मेरा निमंत्रण स्वीकार कीजिये।—सम्पादक

३. सम्प्रश्नः—इदं कार्यं न वा इति विचार्य निर्धारणं सम्प्रश्नः।—सम्पादक

*वृत्तिः-सूत्रों का अर्थ स्पष्ट करने या खोलने वाली व्याख्या या विवेचन को वृत्ति कहते हैं।—सं०

कौमुदी' में इस सूत्र की व्याख्या करते हैं—**'निमंत्रणं' नियोगकरणम् । आवश्यके श्राद्ध भोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्त्तनम् । 'आमंत्रणं' कामचारानुज्ञा'** । इन पंक्तियों का भावार्थ यही है कि निमंत्रण शब्द का अर्थ 'नियोगकरण' है । अर्थात् आवश्यक श्राद्ध भोजन आदि कार्यों में दौहित्र (नाती) आदि को जब हम भोजन आदि के लिये बुलावा भेजते हैं, उसे निमंत्रण कहते हैं । इस क्रिया का नाम 'निमंत्रण' है । इस प्रकार निमंत्रित व्यक्ति आदि निमंत्रण का उल्लंघन करे तो शास्त्र की दृष्टि से वह दोषी ठहराया जाता है ।* परन्तु 'आमंत्रण' शब्द का प्रयोग किसी भी प्रकार के कार्य के लिये किसीको बुलाने के अर्थ में किया जाता है । आमंत्रित व्यक्ति आमंत्रण का उल्लंघन कर सकता है । आमंत्रण की स्वीकृति या अस्वीकृति उस आमंत्रित व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है ।

इस प्रकार अच्छी तरह विवेचन करने के पश्चात् इन दोनों —— निमंत्रण और आमंत्रण —— शब्दों का तात्पर्य कितना सुन्दर है, यह बात सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है । आजकल तो 'आमंत्रण' और 'निमंत्रण' शब्दों का भेद कोई नहीं जानता । इस प्रकार शब्दों का ठीक अर्थ समझकर उनका उचित प्रयोग और उपयोग करने के लिए ही हमारे लिये संस्कृत का, खासकर संस्कृत के साधारण व्याकरण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है* । इसे विज्ञ जन समझते हैं । संस्कृत का व्याकरण कितना व्यापक, विस्तृत, कितना सूक्ष्म और मार्मिक है ! हम इस व्याकरण को जान लें तो सूर्योदय के काल में अन्धकार जिस प्रकार नष्ट हो जाता है और शीत, जड़ता भाग जाते हैं उसी तरह हमारा अज्ञान का जाड़ा नष्ट हो जाता है ।

आज तो ऐसी परिस्थिति है कि 'Notorious' (बदनाम) और 'Famous' (प्रख्यात), 'Discovery' (तलाश, शोध) और 'Invention' (आविष्कार) जैसे विदेशी भाषा के शब्दों के भेद को और उनके प्रयोग को हम अच्छी तरह समझते हैं । किन्तु अपने पूर्वजों की, अपनी, मातृभाषा, अपनी राष्ट्रभाषा—के शब्दों के भेद को नहीं समझते । जानने का प्रयत्न नहीं करते और समझने की वृत्ति भी नहीं रखते । यह अत्यन्त खेद की बात है ।

[अखंड आनन्द, गुजराती सें अनुवादक—
रतनलाल कश्यप]

---

*निमंत्रण का हमसे कभी कभी उल्लंघन भी होता है और हमें उसके लिये दोषी नहीं ठहराया जाता । — **संपादक**

*महर्षि पतंजलि ने व्याकरण महाभाष्य के आरंभ में जहाँ व्याकरण अध्ययन के प्रयाजन बतलाये हैं वहाँ एक स्थलपर ऐसा निर्देश है — 'माम्लेच्छितवै मा अपभाषितवै । म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्'' म्लेच्छों की तरह हम भाषा का भ्रष्ट उच्चारण न करें । भाषा का कु-प्रयोग न करें, हम म्लेच्छ न बन जायें, इसलिये व्याकरण का अध्ययन करें । — **संपादक**

कहानी

विधि-विड़म्बना

[रूपनारायण पांडेय]

(१)

हजरतगंज से एक रास्ता सीधा स्टेशन को चला गया है । लखनऊ में रहनेवाला शायद हीं कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसने वह रास्ता न देखा हो । नौरोजी होटल से आगे बढ़कर थोड़ी ही दूरपर बाएं हाथ को एक छोटा-सा वाग है । वाग चारों तरफ लोहे के तार से घिरा हुआ है, और एक जगह पर ठीक सड़क के किनारे, एक लोहे का फाटक लगा हुआ है; वही उस वाग के भीतर जानेका रास्ता है । भीतर की छोटी सड़क पर सुर्खी मुरम विछी हुई है और आस-पास उसके हरी हरी मुलायम घास लगी हुई है । फाटक में घुसकर उसी सड़क पर चलकर वागके वीचोंवीच पहुँचने पर एक दुमँजिला मकान मिलता है । मकान अँग्रजी ढंग से बनाया गया है । हमारे पाठकों में से, जो कभी लखनऊ गये होंगे या लखनऊ में रहते हैं, उन्होंने शायद कभी उस मकान को देखा हो; या न देखा हो; परन्तु मैंने उसे देखा है । केवल देखा हीं नहीं है, बल्कि कुछ दिनोंतक उसमें आया-गया हूँ । अगर आप लोगों को विश्वास न हो तो आप मेरे गाँव में भोंदू महाजन के यहाँ जाकर उसके वही-खाते में देख सकते हैं कि रसिकलाल के पोते और भूपतराय के लड़के मुझ भोलानाथ भट्टाचार्य के नाम ५०) रु. का कर्ज लिखा है या नहीं ।

उस मकान में आने-जाने के साथ इस कर्ज का क्या सम्वन्ध है, यह जाने विना आप लोग अवश्य ही मुझे पागल समझ रहे होंगे । अच्छा जरा ठहरिये मुझे शुरू से कहन दीजिये, तब सब आपकी समझ में आ जायगा । याद रखिये मैं जीवन में कभी कोई असंगत — बे-सिरपैर की — बात नहीं कहता ।

वह मकान, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है, आधुनिक ढंग से खूब सजा हुआ था । उसमें एक वंगाली वावू रहते थे । अब रहते हैं या नहीं, इसकीं खवर मुझे नहीं है । इसका कारण यही है, कि "विल्व वृक्ष के नीचे गंजा आदमी दुवारा नहीं जाता ।"

मेरे यहां वाप-दादे के वक्त से पुरोहिती का पेशा चला आ रहा है । इस घोर कलिकाल में शहराती यजमान लोगों में उतनी श्रद्धा नहीं रह गई है, जिससे पुरोहित लोग मजे से नित्य न्यौते खाकर तोंद फटकारते फिरें या कुंभकर्ण की तरह निश्चिन्त भावसे पलंग पर पड़े पड़े खर्राटे लिया करें । घर में जो कुछ पूंजी थी उससे काम न चलता देखकर, मुझे पेट पालनेकी चिन्ता हुई । मैं ही अकेला नहीं था, मेरी वूढी मा थी, एक विधवा वहन भी, और उसके दो लड़कियां तथा एक लड़का भी था । मेरी मौसी के भी कोई नहीं रहा, वह भी एक साल से मेरे ही यहां हैं । उसने भी मेरी माके के चरणों में आकर आश्रय लिया । मेरा व्याह तो अभी तक नहीं हुआ — मेरी गृहलक्ष्मी मेरे घर नहीं आई — इसे भी मैं अपना अहोभाग्य ही समझता हूं । वह आतीं और अपने साथ यदि कहीं दो-चार किल्ली-पिल्ली — लड़की-लड़के ले आतीं तो और भी आफत होती ! जो हैं उन्हीं के खाने-पीने की चिन्ता से आजकल रातको नींद नहीं आती । जिनके साथ रक्तमांस का सम्वध है, उनके प्रति कर्तव्य-पालन करना इस 'राशन' के जमाने में कठिन हो रहा है; ऐसी दशा में और एक नया नाता निकालकर वर्तमान चिन्ता को और भी उन्नति दने से बढ़कर मूर्खता का काम, मेरी समझ में, दुनिया में, दूसरा नहीं हो सकता । मेरे ऐसे युक्तिपूर्ण इरादे से मा और मौसी वगैरह सब दुःखित थीं । परन्तु मैं क्या करता, मैं — भोलानाथ भट्टाचार्य — मूर्ख स्त्रियों को सन्तुष्ट करने के लिये ऐसी बेवकूफी कैसे कर सकता था ?

साधारण आमदनी से काम नहीं चलता था; और उधर उसका उपाय भी कुछ नहीं सूझता था। इसी बीच में, मेरे गांव के पड़ोसी शिवशंकर दादा लखनऊ से घर आये। लखनऊ में वह एक यूरोपियन की 'मिडलैंड कंपनी' नामक दूकान में १०० रु. माहवार पर नौकर थे। लड़की की शादी करने के लिये १५ दिन की छुट्टी लेकर आये थे।

व्याह शादी के काम से फुर्सत पा कर एक दिन वह मेरे घर आये। वात-चीत के प्रसंग में मैंने उनसे अपना सारा हाल कहा। उन्होंने कहा, 'तो एक काम करो न, तुम मेरे साथ लखनऊ चलो। में वहाँ जिस कम्पनी में काम करता हूं उसके यहां एक वंगाली वावू भी वड़े पदपर नौकर हैं। उनकी लखनऊ में कई लोगों से जान-पहचान है। उनसे कहकर कहीं-न-कहीं मैं तुम्हारी नौकरी का प्रवन्ध करा दूंगा। या उनके किये कुछ न होगा तो और कहीं देखा जायगा। जवतक नौकरी न लगे तवतक तुम मेरे यहाँ खाना-पीना। इसका प्रवन्ध तुम्हें न करना पड़ेगा। चिन्ता न करो, चलो मेरे साथ।'

मुझे एकदम वड़ा भारी सहारा मिल गया। मैंने उनके साथ लखनऊ जाना निश्चय कर लिया। इसपर मां और मौसी ने वड़ी आपत्ति की, रोने लगीं। मैंने वहुत कुछ समझा-बुझाकर उन्हें शान्त किया और तीसरे दिन 'राम' का नाम लेकर दादा के साथ लखनऊ चला आया।

देहात के लोग समझते हैं, कि शहर में जाते ही नौकरी मिल जाती है। परन्तु ऐसा समझना भूल है। जो लोग अंग्रेजी पढे लिखे हैं उनको कोई-न-कोई नौकरी, कुछ दिन शहर की खाक छानने से चाहे मिल भी जाय; परन्तु मुझ सरीखे 'कोरे ग्रामवासी और 'डुकृञ् करणे' वाले शुष्क वैयाकरण या 'निरे नीरस नैय़ायिक' संस्कृज्ञ पंडित को लखनऊ जैसे शहर में नौकरी मिलना वहुत ही मुश्किल है।

शिवशंकर दादा ने मेरे वारे में उन्हीं वंगाली महाशय से कहा, कि 'इस बेचारे पंडित की कहीं सर्विस लगवा दीजिये'। यह सुनकर महाशय ने साफ साफ कह दिया कि मैं 'अपनी जिम्मेदारी पर किसी को नौकर नहीं रख सकता। और इस समय कहीं कोई जगह भी खाली नहीं है'।

शिवशंकर दादा ने मेरी नौकरी की तलाश में कोई कसर नहीं उठा रक्खी। शहर में मुझ-जैसे एक मोटे तगड़े आदमी को इस महँगाई के जमाने में, दो वार पेट भर खिलाने-पिलाने में कुछ कम खर्च नहीं पड़ता। इस कारण शिवशंकर दादा और भी कोशिश के साथ मेरे लिये नौकरी की तलाश करने लगे। परन्तु कहीं भी किसी नौकरी का सिलसिला नहीं जमा।

एक दिन सन्ध्या-समय मैं घर में उदास वैठा हुआ था, कि उसी समय दादा शिवशंकर दफ्तर से आये। उन्होंने खुशी के साथ यह खवर सुनाई कि एक जगह तुम्हारी नौकरी का सिलसिला मैंने लगाया है। जिन वंगाली वावू के लिये मैंने तुमसे कहा था कि "नौकरी लगा देंगे," उनके एक लड़की है, वह उसे संस्कृत पढ़वाना चाहते हैं: यदि तुम पढ़ा सको, तो दो घंटे रोज पढ़ा आया करो। ३० रु. महीना मिलेगा। उसमें कुछ तुम खर्च करना और वाकी घर भेज देना।

मैंने मंजूर कर लिया। न मंजूर करता तो करता क्या? दूसरे दिन पंचांग खोलकर देखा तो उस दिन ग्रह-नक्षत्र का योग ठीक नहीं था। मैंने दादा से कहा कि पहले-पहल नौकरी के लिये जाता हूं। वुरे योग में कार्य का आरंभ करने से वह सिद्ध नहीं होता। अत एव यदि कल अच्छे मुहूर्त में चलूं तो कोई हर्ज है?

उन्हों ने कहा, नहीं, 'वंगाली वावू आज-कल के फैशन के आदमी हैं। वह इन वातों को नहीं मानते — दाकियानूसी समझते हैं। मुमकिन है कि आज न जाने से यह टयूशन ही हाथ से निकल जाय।

लाचार हो, मैं उसी दिन 'सिद्धिदाता गणेशजी' का नाम लेकर शिवशंकर दादा के साथ उसी वाग में गया, जिसका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूं। उसी मकान में वह वावू रहते थे।

(२)

अपने मुंह अपनी प्रशंसा करना शिष्टाचार के विरुद्ध समझा जाता है। परन्तु जहां कोई दूसरा इस आवश्यक काम को करनेवाला न हो, वहाँ उस तरह, जैसें कि आज-कल वावू, भद्र, सभ्य, साहव

लोग अपने हाथ से सेफ्टी रेज़र से हजामत बना लेते हैं, अपने आप अपनी बड़ाई कर लेना तो मैं पाप नहीं समझता । मैं इसी से यहां पर पाठकों के आगे अपना एक साधारण फोटो उपस्थित करता हूं । चित्र कुछ बुरा नहीं है—

"मेरा चेहरा बिलकुल खराब नहीं है आँखें बड़ी बड़ी, अनियारे दीरघ नयन ! ओंठ चपटे मोटे होने पर भी मेरी नाक नुकीली है । माथा चौड़ा और चेहरे पर एक दो शीतला माता के दाग हैं । रंग साँवला । दांत सुडौल होने पर भी इतने लम्बे नहीं हैं कि वे मुँह बन्द कर लेने पर भी बाहर निकले रहें । उस समय मेरी अवस्था यही २५–२६ बरके लगभग होगी । सिर पर लटकती चोटी ! पैरों में देहाती चमरौधा चप्पल और ललाट पर भस्म । गले में रुद्राक्ष की माला । गांधी बाबा की आँधी में पड़कर, रोज पहनने की आदत में डाला हुआ बदन पर मोटे खद्दर का घुटनों तक लटकता लम्बा ढीला कुरता और गले में दुपट्टा ।"

दादा ने मुझसे यह वेश बदलने के लिये बहुत कुछ कहा; परन्तु मैंने साफ इन्कार कर दिया । तीस रुपट्टी माहवार के लिये बाप-दादों से चली आई चुटिया को छंटवा डालना या चमरौधा चप्पल छोड़कर बूट या पम्प शू पहनना मैं कैसे स्वीकार करता ? हाँ, अगर सौ-दो-सौ रुपये महिने की सर्विस होती तो अपनी नई वेश-भूषा के विषय में विचार किया जा सकता था ।

मैं उन बंगाली महाशय की लड़की का संस्कृत-टीचर हो गया । तीसरे पहर दो घंटे व्याकरण और काव्य पढ़ाना निश्चय हुआ । काव्य में कालिदास का मेघदूत और व्याकरण में वरदराज भट्टाचार्य की लघुकौमुदी पढ़ाना तय हुआ । लड़की आकर उपस्थित हुई । मैंने जो ऊपर से नीचे तक देखा तो सन्न रह गया ।

लड़की की पोशाक मुझ गंवई-गंवार पंडित को अच्छी न लगी, परन्तु करता क्या ? नौकरी करने गया था । मैंने सोचा, कि मुझे इससे क्या प्रयोजन ? बंगाली महाशय अब मेरे लिये तपोवन-वासिनी, निराभरणा, वल्कलवसना शकुन्तला कहां से ला सकते हैं ? और इन बातों की उधेड़बुन से मुझे प्रयोजन ही क्या है ! पापी पेट को पालने के लिये नौकरी करने आया हूं, मेरे कहने का असर ही क्या हो सकता है ?

लड़की राष्ट्रभाषा हिन्दी भी खूब समझती थी और अच्छी तरह बंगाली ढंग की ध्वनि से हिन्दी बोल भी लेती थी । उस दिन पहला पाठ पढ़ाकर मैं चला आया; परन्तु चित्त में यह चिन्ता बनी ही रही, कि आज कुमुहूर्त में नौकरी शुरू की है—देखें कैसे बीतती है !

(३)

लड़की का नाम शशिकला था । मैं नित्य ठीक समय पर शशि को पढ़ाने जाने लगा । उसकी अवस्था १६–१७ वर्ष के लगभग होगी, अभीतक शादी नहीं हुई थी । पहले-पहल दो चार दिन तक शुरू शुरू में वह सकुचाती रही । और कहने में लज्जा ही क्या है, उससे बढ़कर मुझे ही संकोच मालूम होता था । गांव में ही 'सिद्धान्त कौमुदी' और 'लघुशब्देन्दुशेखर' की फक्किकाओं को, और व्याकरण-महाभाष्य की पंक्तियों को, बड़े गर्व के साथ चोटी को छू-छूकर सबको सुनाया करता था; परन्तु यहाँ लखनउ शहर में आकर तो जैसे मेरी नानी ही मर गयी !

यही लज्जा अन्त को मेरे लिये काल हो गयी । यदि मैं ऐसा लजीला संकोची न होकर चटपटा बातूनी होता, जरा रोबदाब का आदमी होता; तो मेरी पंडिताई खूब चलती और मेरी ३० रु. की नौकरी पर पानी भी न फिरता ।

कुमारसंभव, शाकुन्तल आदि समस्त काव्य नाटक पढ़कर मैंने यही सारांश निकाला था कि इसमें कोई शक नहीं, कि "प्रेम एक बड़ी बुरी विपत्ति है !" यद्यपि उस समय मेरा पूरा यौवन काल था, तथापि मैं प्रेम से बहुत दूर था । परन्तु हाय रे अभागे विधाता ! अथवा हाय रे मेरे फूटे भाग्य ! मुझे अपनी नवीन शिष्या को इस बारे में सावधान करने का अवसर ही नहीं मिला; इसी बीच में वैरी प्रेम ने बदला चुकाने के लिये शशिकला के कोमल हृदय पर आक्रमण करके मेरे मुंडपात की व्यवस्था कर दी

प्रेम के धर्मशास्त्र में ऐसा कोई नियम या विधान नहीं है कि शिष्य और शिष्याओं के साथ नित्य दो-तीन घंटे बराबर **'इकोयणचि'—अदेङ्-गुणः'** या **'धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः'** या **'कश्चित् कान्ता विरह-गुरुणा'** की ही चर्चा होना चाहिये। बीच में दो-चार इधर-उधर की बातें होना भी स्वाभाविक ही है। अतएव सात ही आठ दिन में शिष्या शशी को मेरे घरका रत्ती-रत्ती हाल मालूम हो गया। यहां तक कि उसे यह भी मालूम हो गया कि मेरा ब्याह अभी तक नहीं हुआ है। इस बात को भी मैं छिपा न सका। छिपाने की आवश्यकता भी मैंने नहीं समझी। मैं क्या यह जानता था कि कविता-कामिनी-कान्त कविकुल-गुरु के मेघदूत में इतनी ऐटम अणु शक्ति का विस्फोट है कि उसके देवता 'कामदेव' महाराज मुझ शील-संकोची पंडित भोलानाथ भट्टाचार्य को ही शशिकला के कोमल हृदय का सारा प्रेम पाने का पात्र समझ लेंगे; और शीघ्र ही एक भयंकर स्फोट होगा! काशी के क्वीन्स संस्कृत कालेज के पंडितों ने अपनी प्रथमा परीक्षा के पाठ्यक्रम में 'मेघदूत' का पूर्वार्ध रक्खा है। प्रथमा के परीक्षार्थी अधिकांश कम बुद्धि के नौजवान ही होते हैं। तो क्या परीक्षा का कोर्स निश्चित करने वाले सुपक्व-बुद्धि काशी के शास्त्रियों को 'मेघदूत' की यह अणुशक्ति नहीं मालूम है! अस्तुः इस झगड़े से मुझे क्या प्रयोजन? मुझ निरीह-निरपराध, भोले-भाले, शील-संकोची ब्राह्मण पर ही कामदेव महाराज ने इतना बड़ा अन्याय क्यों किया, सो आज तक मेरी समझ में नहीं आया। कदाचित् यह उस बुरे मुहूर्त के दिन कार्य आरम्भ करने का ही फल हो!

(४)

अस्तु, उसकी बात-चीत में मुझे जरा जरा मलय पवन की पुष्प-सुवास आने लगी। संभव है कि बात-चीत में, या 'मेघदूत' की व्याख्या में, मेरे मुख से कुछ प्रेम की बातें निकल गई हों; परन्तु यह मैं कसम खाकर कह सकता हूं, कि मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया। परन्तु धीरे धीरे मुझे यह स्पष्ट मालूम पड़ने लगा कि अपने पंडितजी के लिये शिष्या का विशेष आग्रह बढ़ता जा रहा है। अब मुझे आकर पढ़ने के कमरे में कुछ देरतक विद्यार्थिनी के भीतर से आने की राह नहीं देखनी पड़ती — वह एक घंटा पहले ही से आकर खिड़की के पास खड़ी रहती है। और जब मैं कमरे में घुसता हूं तो वह बिजली का पंखा पहले ही से खोलकर रखती है। कुछ दिन से पाठ्य पुस्तकों के पास एक रकाबी में पान और इलायचियां भी रक्खी रहती हैं। यदि मैं स्वतः उसमें से कुछ नहीं लेता तो विद्यार्थिनी आप ही पान-इलायची उठाकर मुझे देती है, और मेरे अस्वीकार करने पर इतना आग्रह करती है कि मुझे चुपचाप ले लेना पड़ता है। एक भले घर की लड़की के ऐसे आग्रह अनुरोध की अनेकों बातें प्रकट करना मैं उचित नहीं समझता, और इसके अलावा अब उनके कहने से फल ही क्या है?

(५)

एक दिन पढ़ाने के समय जाकर मैंने देखा तो खिड़की में शशी नहीं है। कमरे के भीतर जाकर देखा, वहां भी उसका पता नहीं है। नौकर को बुलाकर पूछा। उसने उत्तर दिया — बिटिया को कल से बड़ा बुखार है। आप बैठिये, मैं भीतर से खबर लाता हूं। मैं बैठ गया।

थोड़ी देर बाद अन्दर से एक छोकरी ने आकर चुपके से मुझ एक पत्र दिया और चली गयी। वह पत्र शशिकला का लिखा हुआ था। पत्र खोलकर मैंने पढ़ा। पढ़ते ही मुझे चक्कर-सा आ गया। पत्र में क्या लिखा था, सो मैं बताना नहीं चाहता। इस प्रकार सब के सामने किसी की गुप्त चिट्ठी प्रकट करना मेरी समझ में अच्छा नहीं है।

बहुत देर तक मैं बैठा सोचता रहा, उसके बाद उठकर धीरे धीरे अपने डेरे को लौट आया। आकर फिर एक बार पत्र पढ़ने के लिये कुरते की जेब में पत्र का अनुसन्धान किया; परन्तु यह क्या सर्वनाश! जेब में पत्र का पता नहीं। डेरे में ढूँढ़ा, नहीं मिला। दूर तक रास्ते मे आँखों को दूरबीन बनाकर ढूँढ़ते ढूँढते मैं उसी बाग के फाटक तक गया; परन्तु भीतर क्या कहकर जाता, उल्टे पांव लौट आया। पत्र नहीं मिला, शायद पढ़ने के कमरे में ही रह गया होगा। मन-ही-मन बड़ा डर मालूम हुआ।

दूसरे दिन बड़े सवेरे मैंने देखा कि बंगाली महाशम का आदमी उस महीने का पूरा पारिश्रामिक ३०) रु. और एक पत्र शिवशंकर दादा के नाम लेकर आया है। पत्र में २-३ सतरों में यह लिखा है, कि मेरी लड़की की तवियत अच्छी नहा है, डाक्टर की राय से मैं उसे आवहवा वदलने के लिये अपने देश भेज रहा हूं। अब पंडितजी की जरूरत नहीं रही। ये तीस रुपये उनकों दे देना।

दादा दुःखित हुए। मैंने सोचा "अवश्य वह चिठ्ठी हाथ लग गयी है"। मेरे लिये और किसी तरह की व्यवस्था न करके महाशय ने उलटे ३०) रु. मासिक दक्षिणा के भेज दिये, इसे मैंने अपना परम सौभाग्य समझा।

उसी दिन बोरिया-बँधना उठाकर अपने गाँव में चला आया। वहां माता ने, इस आशा से कि भैया भोलानाथ लखनऊ कमाने गये हैं, इधर उधर सत्तर पचत्तर रुपये का कर्ज कर लिया था। पचास रुपये लगाकर तो मकान की ही मरम्मत कराई थीं। अन्त को गांव के महाजन से तमस्सुख (टीप) लिखकर, मैंने ५०) रु. लिये और उससे फुटकर कर्ज अदा किया। ऐसी भी "विधि की विड़म्बना" क्या कभी किसी मेरे भाग्य शाली पाठक को भोगनी पड़ी है? नहीं भोगनी पड़ी हो तो मेरी यह कहानी पढ़कर आगे के लिये उन्हें सावधान हो जाना चाहिये।

* * *

ओ प्राणबन्धु !

(बंगाली कविता)

ओ अनुकुलेर कूल, ओ अगतिर गति
ओ अनाथेर नाथ, ओ पतितेर पति;
ओ नयनेर आलो, ओ रसनार मधु,
ओ रतनेर हार, ओ परानेर बन्धु !

[कूल—किनारा. आलो—आलोक. रसना—जिह्वा. परानेर—प्राणों का.]

: एकांकी :

आहट !

[शंकर बा० शास्त्री]

[इस एकांकी में कोई विशेष कथावस्तु नहीं है और न भाषा की सजावट है। केवल छोटे २ सार्थक कथोपकथन द्वारा कुछ क्षणों को सजीव बनाया गया है। नाटक रंगमंच की अपेक्षा रेडियो के लिये अधिक उपयुक्त है, और लिखा भी उसी दृष्टि से है। **सं०**]

रेखा—पिताजी !

बाबासाहब—क्या है बेटी !

रेखा—डॉक्टर ने क्या बताया ?

बाबा—कुछ भी तो नहीं बताया उन्होंने !

लेखा—सीढ़ियों पर से उतरते समय वे कह रहे थे—

बाबा—क्या कह रहे थे ?

लेखा—कुछ कह तो रहे थे; लेकिन आपने कहा—चुप ! वे सुन लेंगी।

बाबा—तुम दोनों ने सुना ?

रेखा—उँहुँ,—फिर डॉक्टर कुछ नहीं बोले।

बाबा—डॉक्टरों की ऐसी ही आदत होती है ! कभी दिल खोलकर साफ बात नहीं कहते !

लेखा—लेकिन माँ बीमार हैं, उनके बारे में हमें कुछ नहीं बतलाएंगे ?

बाबा—तुम को दुख होगा सुनकर—इसलिये !

रेखा—सो तो अभी भी हो रहा है।

लेखा—क्या माँ की सेवा-शुश्रूषा भी हम न करें

बाबा—तुम्हें तकलीफ न हो इसलिये तुम्हारी माँ की सेवा के लिये एक नर्स रखी है !

रेखा—आपने गलती की, पिताजी !

बाबा—गलती ?

लेखा—जी पिताजी, आपने गलती ही की है !

बाबा—इस बार फिरसे मैंने गलती की ?

रेखा—हाँ पिताजी, गलती नहीं तो और क्या ? नर्स का क्या ? ज्यादा से ज्यादा ठीक समयपर दवा देने का खयाल रखेगी, परहेज हो तो पथ्य दे देगी, लेकिन अपनापन ममत्व कहाँ से देगी वह ?

लेखा—शाम को माँ के कमरे का परदा हटाकर मैंने अन्दर झाँका तो लगा जैसे माँ अस्थिर दृष्टि से इधर उधर किसी को खोज रहीं हों !

बाबा—हाँ ऽ !—शायद मुझे खोज रही होगी !

लेखा—या नहीं तो मुझे !

रेखा—नहीं तो मुझे !

बाबा—शायद हम सब को ही खोज रहीं होगी ?

लेखा—फिर आप हमें उनके पास क्यों नहीं जाने देते ?

रेखा—क्यों नहीं पिताजी ?

बाबा—क्यों ?—क्या उत्तर दूँ इसका ?

लेखा—वह नर्स तो क्षणभर भी पास खड़ा नहीं होने देती !

रेखा—माँ तो हमारी बीमार है, लेकिन हमें ही उनके पास जाने की मनाही है।

लेखा—मानों हमें कुछ फिक्र ही नहीं !

रेखा—जैसे माँ के प्रति हमें कोई भावना ही नहीं !

लेखा—पिताजी !

रेखा—पिताजी !

लेखा—आप बोलते क्यों नहीं पिताजी ?

रेखा—आप चुप क्यों हैं पिताजी ?

लेखा—पिताजी—पिताजी !—

बाबा—तुम घबड़ा गई लड़कियो !

रेखा—हाँ पिताजी, आप चुपचाप बैठे जानें क्या देख रहे हैं ?

लेखा—हम आपसे बोल रहे हैं—लेकिन आप जवाब ही नहीं देते !

बाबा—इसी लिये तुम डर गई ?

रेखा—नहीं तो और किस कारण से !

बाबा—तो फिर एक बातपर ध्यान नहीं दिया तुमने ?

रेखा—किसपर ? किस बातपर ?—ऐसा क्या हुआ, जो हमारे ध्यान में नहीं आया ?

बाबा—वैसे तो कुछ भी विशेष नहीं हुआ ?

लेखा—फिर ?

रेखा—बताइये न पिताजी, अब कुछ मत छिपाइये ।

बाबा—मुझे लगा जैसे तुम्हारी माँ चली गई हों !

रेखा
लेखा } (आर्त स्वर से) पिताजी !

बाबा—शायद वह मुझे ही बुलाने आई होगी । दरवाजे के पास उसकी साड़ी का सिर्फ छोर ही मुझे दिखाई दिया । मैंने सोचा उसे पुकारूँ, पर इतने में वह चली गई !

रेखा—माँ ! पर दस दिन से तो वे बिस्तरपर करवट भी नहीं बदल सकतीं !

बाबा—हुँ, कौन जाने, आज शायद दवा कुछ काम कर गई हो !

लेखा—पिताजी !—

(परदा हवामें फड़फड़ाया होगा)

रेखा—यह किसके आने की आहट है !

लेखा—यह देखो, अपनी ही ओर कोई आ रहा है !

(सीढ़ियों पर पैरों की आवाज)

रेखा—परदे के पीछे कौन खड़ा है, पिताजी !

बाबा—कौन है !

रेखा—
लेखा— } कौन !

बाबा—आप ?

नर्स—हाँ मैं हूँ नई नर्स ! डॉक्टर ने मुझे भेजा है !

बाबा—लेकिन, यहाँ तो हमारे घरमें एक नर्स पहले ही से मौजूद है ।

नर्स—सो तो मुझे मालूम है । परंतु आज एक और नर्स की जरूरत होगी—

बाबा—आज की रात क्या—

नर्स—हाँ, कुछ चिन्ताजनक ही है ।

बाबा—याने, आप ऐसा समझतीं हैं कि आज की रात भी ठीक नहीं गुजरेगी ?

नर्स—मैंने तो ऐसा नहीं कहा !

रेखा—आप वहीं क्यों खड़ी रह गई ?

नर्स—कह तो दिया मैं नई नर्स हूँ, रोगी का कमरा मुझे नहीं मालूम ।

बाबा—चलिये, मैं बतलाए देता हूँ !

नर्स—चलिये !

रेखा—पिताजी !--

बाबा—क्या बेटा ?

रेखा—आप मत जाइये पिताजी !

बाबा—डर किस बात का है बेटा ?—अभी आया—

रेखा—डर की बात नहीं है पिताजी—

बाबा—तो फिर ?

रेखा—आज जो भी कोई बाहर से आयेगा—

नर्स—उस पर विश्वास रखना ठीक नहीं होगा यही न ?

रेखा—हाँ !

नर्स—क्यों !

रेखा—सो मैं नहीं जानती !

नर्स—रॉट, आप चलिये, शायद मुझे अभी एक इंजेक्शन देना पड़े । डॉक्टर ने यही बताया है ।

बाबा—चलिये—आइये !

(कुछ देर तक सर्वत्र स्तब्धता)

रेखा—लेखा !

लेखा—मुझ से सटकर बैठी रहो रेखा !

रेखा—डरो मत, देखो, मैं बिलकुल तुम्हारे ही पास हूँ ।

लेखा--माँ, चल बसी, तो हमारा क्या होगा !

रेखा—धत् पगली ! माँ हमें छोड़कर कहीं जा भी सकती हैं ?

लेखा—वे जा नहीं सकतीं । इसीलिये तो वे झगड़ रहीं हैं—वे उसे ले जाने के लिये आए हैं—कुछ और भी आवेंगे ! उन्ही से माँ लड़ रही है ।

(धीमी मर्मर ध्वनि)

रेखा—कौन आए हैं—कौन आनेवाला है !

लेखा—सुनाई नहीं देता !

रेखा—क्या !

लेखा—पैरों की आहट !

रेखा—कहाँ !

लेखा—बरामदें में ! सीढ़ियों पर ! कान लगाकर सुनो वो देखो वो देखो !

रेखा—पिताजी को नर्स क्यों ले गई !

लेखा—वह नर्स नहीं थी रेखा ।

रेखा—(विस्मय से) नर्स नहीं थी !

लेखा—मैं कहती हूँ, वह नर्स नहीं थी ।

रेखा—फिर !

लेखा—उन्ही में से कोई होगी !

रेखा—लेकिन कौन आनेवाला है !

लेखा—जो अपनी माँ को ले जायेगा !

रेखा—ले जायेगा कौन ?

(पैरों की अस्पष्ट आवाज पुनः सुनाई देती है)

१९५०

लेखा—पैरों की आवाज सुनी तुमने !

रेखा—इसबार वास्तव में कुछ सुनाई देता ।

लेखा—सीढ़ियों पर से कोई आ रहा है ।

रेखा—हमारी आहट सुनी और वह ठहरसा गया —

लेखा—लगता है जैसे परदे के पीछे खड़ा हो गया हो ।

रेखा—सीढ़ियाँ चढ़नेसे शायद साँस भर आई है ।

लेखा—मुझे तो ठण्ड लग रही है रेखा ।

रेखा—हाय राम ! परदे से ठण्डी हवा आ रही है ।

लेखा—दुशाला उढ़ा दूँ !

रेखा—हाँ, तुम भी कुछ ओढ़ लो !

लेखा—दीदी !

रेखा—अरे, तुम्हारे हाथ कितने ठण्डे हो गये हैं !

लेखा—यह परदा क्योंकर फड़फड़ा रहा है ?

रेखा—यह हाथ किसका दिखाई दे रहा है

रेखा
लेखा } कौन है ?

शंकर—मैं हूँ रेखा ।

रेखा—कौन शंकर ?

शंकर—हाँ, पहचाना नहीं मुझे ?

रेखा—इतनी रात गये तुम कैसे आये शंकर ?

शंकर—मेरा आना तो निश्चित ही था ।

रेखा—तो तुम्हारा भी आना निश्चित ही था

शंकर—और नहीं तो क्या ?

रेखा—इतने आदमियों की जरूरत क्या है शंकर ?

शंकर—मतलब ? और भी कोई आया है ?

रेखा—और नहीं तो क्या ? बहुत से लोग आये हैं !

शंकर—अच्छा ! लेकिन मुझे तो कोई भी दिखाई नहीं दिया !

रेखा—हमें भी तो कोई दिखाई नहीं दिया !

शंकर—फिर ?

रेखा—लेकिन पैरों की आहट जरूर सुनाई दी है !

शंकर—धत् तेरेकी ! वह भोला के पैरों की आहट होंगी ।

रेखा—भोलाके ?

शंकर—हाँ, वह बुड्ढा बहुत देर से इधर उधर चक्कर काट रहा है ।

रेखा—क्यों भला ?

शंकर—वह कह रहा था—मैने इस घर में सारी जिन्दगी बिताई है, शादी के बाद से जब से इस घर की मालकिन पर घर गृहस्थी का बोझा पड़ा है तब से मैंने इन्हीं हाथों सारा काम सम्हाला है ! आज घरकी लक्ष्मी हमें छोड़कर जा रही है — इस लिये एक जगह स्थिर होकर बैठते नहीं बनता !

रेखा—अच्छा, तो हमने भोला के पैरों की आहट सुनी थी !

शंकर—और कौन आया है यहाँ ?

रेखा—तुम यहाँ हमारे पास बैठो ।

शंकर—श—कितने ठण्डे हाथ हैं तुम्हारे!

रेखा—लेखा तो बहुत घबरा गई है।

शंकर—और तुम?

रेखा—तुम जो आकर पास बैठे हो—अब मुझे भय नहीं लगता।

शंकर—इसी लिये तो आया हूँ।

रेखा—लेखा—अरी ओ लेखा!

शंकर—सो गयी है शायद।

रेखा—ऐसा ही मालूम पड़ता है, पर एकदम कैसे नींद आगयी उसे!

शंकर—बच्ची जो ठहरी!

रेखा—माँ अगर चल बसीं, तो हमारा क्या होगा शंकर!

शंकर—तुम्हारी माँ जल्दी ही ठीक हो जायेंगी रेखा।

रेखा—हमें धीरज बँधाने तुम यूँही कुछ कह रहे हो!

शंकर—ऐसा क्यों कह रही हो?

रेखा—क्या तुम्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता?

शंकर—क्या?

रेखा—देखते नहीं, हवा कैसी भारी भारी सी लगती है!

शंकर—बस् इतना ही न? सारी खिड़कियाँ जो बंद कर रखी हैं!

रेखा—तुम्हारा मतलब है खिड़कियाँ बंद हैं इस लिये कमरे में भारी भारी सा लग रहा है?

शंकर—और नहीं तो क्या? ठहरो, ये दो खिड़कियाँ में खोले देता हूँ!

रेखा—शंकर!

शंकर—क्या है रेखा?

रेखा—यह आवाज़ कैसी है?

शंकर—अभी खिड़की जो खोली है मैंने!

रेखा—वह आवाज़ नहीं—कुछ निराली सी है—सुनो; कुछ ध्यानसे सुनो।

शंकर—सच! जैसे दबे पैर कोई ऊपर आ रहा हो!

रेखा—रात को इस समय कौन आयेगा?

शंकर—कोई आनेवाला तो नहीं था?

रेखा—आज जिन्होंने घर में आना जाना शुरू कर दिया है, उन्होंने जैसे कुछ निश्चयसा कर लिया है। मानों यहाँ आने का उनका हक ही है।

शंकर—मैं देखकर आता हूँ सीढ़ियों पर से कौन आ रहा है?

रेखा—नहीं, नहीं।

शंकर—इसमें डरने की कौनसी बात है रेखा?

रेखा—तुम मेरे पास ही बैठे रहो—कहीं मत जाओ।

शंकर—लेकिन कौन आ रहा है, यह तो एक बार देख आने दो।

रेखा—नहीं।

शंकर—अच्छा लो मैं बैठा जाता हूँ।

रेखा—यह क्या?

शंकर—क्या?

रेखा—तुम्हारे ओंठ जैसे चल रहे हों!

शंकर—तुम्हारी उँगलियाँ भी तो बर्फ सी ठण्डी हो गई हैं।

रेखा—माँ की बहुत इच्छा थी—

शंकर—कि हम दोनों का विवाह हो !

रेखा—कितने दिनों से वे पिताजी के पीछे पड़ी थीं ।

शंकर—उनकी इच्छा अपूर्ण नहीं रहेगी ।

रेखा—परंतु वे जहाँ जा रही हैं, वहाँ संदेशा भेजना तो असंभव है ।

शंकर—वे कहीं नहीं जायँगी रेखा ! हम दोनों को आशीस देने, वे यहीं अपने पास रहेंगी ।

रेखा—अब भी तुम ऐसा ही कह रहे हो ?

शंकर—क्यों न कहूँ ऐसा ?

रेखा—सच है, तुम कुछ नहीं समझते !

शंकर—नहीं !

रेखा—और सुनाई भी नहीं देता ? ये कठिनाई से निकलनेवाली साँसें—

शंकर—कहाँ ? मुझे तो कुछ भी सुनाई नहीं देता !

(लम्बी साँसों जैसी आवाज़)

रेखा—सुनो, ध्यान से सुनो ! सुना ?

शंकर—यह तो सोई हुई लेखा की साँसें हैं !

रेखा—सच ?

शंकर—और नहीं तो क्या ?

रेखा—नहीं !

शंकर—फिर ?

रेखा—ये माँके कमरे से तो नहीं आ रही हैं ?

शंकर—बिलकुल नहीं !

रेखा—तो फिर ?

शंकर—यह उस खिड़की से आ रही हैं !

रेखा—सच ?

शंकर—हाँ, बिलकुल सच !

रेखा—तो वहाँ खड़े होकर जोरों से आहें कौन भर रहा है ?

शंकर—मैं देख आता हूँ !

रेखा—नहीं !

शंकर—तुम चुपचाप बैठी रहो ।

(बाहर से भोला और बाबा आर्तस्वर से चीखते हैं)

बाबा—कौन है ?

भोला—कौन है ?

रेखा—कौन ?

लेखा—कौन है दीदी, कौन है ?

शंकर—डरो नहीं रेखा, डरो नहीं ।

बाबा—चुप !—वहाँ से नहीं !—भीतर कमरे में आओ । तू ऊपर किस लिये आया भोला ?

भोला—मेरी कोठड़ी के दरवाजे के सामने से कोई जल्दी जल्दी कदम रखती हुई चली गई । सफेद कपड़े पहने थी !

रेखा—पिताजी, कौन गई ?

बाबा—नर्स गई थी गरम पानी लेने !

भोला—मगर वह लौटते समय तो दिखाई नहीं दी !

बाबा—तो क्या लौटकर आई नहीं !

भोला—मैं तो सीढ़ियों पर ही खड़ा था—पूरा एक घन्टा हो गया ऊपर नीचे आ जा रहा हूँ—मुझे कैसे दिखाई नहीं दी ?

बाबा—आज तीस वर्ष हो गये, तुम्हें इस घर में नौकरी करते ! मालूम नहीं ऊपर आने के लिये दूसरी भी तो सीढ़ियाँ हैं।

भोला—ये सब बातें ध्यान में रखने के लिये मेरे होश ठिकाने भी हैं ! मुझे ऐसा लगा, जैसे मालकिन ही चल बसीं हों !

(सिसक सिसककर रोने लगता है !)

रेखा—गरम पानी किस लिये पिताजी ?

बाबा—नई नर्स है न ? उसे चाय चाहिये थी इस लिये !

रेखा—चाय ?

बाबा—उसे आ रही है जोरों की नींद, पलकें तक नहीं खुल रहीं।

भोला—ऐसा ही होता है बड़ी बाई, ठीक ऐसा ही होता है। मकान से ले जाने के लिये, जब वे आते हैं न तो इसी तरह सबको नींद के वश में कर लेते हैं।

लेखा—मुझे भी नींद आ गई थी !

रेखा—माँ क्या जोरों से साँसें भर रही है पिताजी, लगता है जैसे खूब साँस भर आई हो !

बाबा—नहीं तो !—क्यों भला ?

रेखा—हमने सुना, इसी लिये कहती हूँ !

शंकर—वह किसी की साँस की आवाज नहीं थी रेखा !

रेखा—फिर ?

शंकर—बाहर हवा की सनसनाहट हो रही थी।

बाबा—तुम आ गये शंकर ?

शंकर—मैं आने का वचन जो दे गया था।

बाबा—अब सब कुछ सिर्फ तुम पर ही निर्भर है।

शंकर—आप सब ऐसा क्यों कर रहे हैं ?

बाबा—हमें ऐसा लग रहा है, मानों घर में कोई इधर उधर घूम रहा हो !

भोला—ऐसा ही होता है बाई, ऐसा ही होता है।—मेरे पिता जिस दिन सिधारे, उस दिन—

लेखा—भोला, वह बात रहने दो !

भोला—ठीक है छोटी बाई, डर ही लगता हो तो नहीं बोलूँगा मैं ! लेकिन उन लोगों से डरने की कोई बात नहीं !

(फिर से पैरों की आहट)

रेखा—कौन है उस ओर ?

लेखा—कौन ?

नर्स—आप लोगों को हुआ क्या है ?

रेखा—आप इस तरह निःशब्द इधर उधर क्यों घूमती हैं ?

नर्स—नर्स को तो इसी बात की शिक्षा मिलती है।

रेखा—नहीं, रोगी अत्यन्त अस्वस्थ हो तो उस समय इस तरह भूतप्रेत की तरह किसी को घूमना फिरना नहीं चाहिये।

नर्स—रोगी अस्वस्थ हो तो और भी इसी तरह चलना पड़ता है, धीरे बोलना होता है।

भोला—नहीं तो वे नाराज होंगे !

नर्स—कौन ?

भोला—जिनका आना जाना शुरू है वे !

लेखा—कौन रे भोला ? कौन आ जा रहा है ?

भोला—उनके देह नहीं—गति है। उन्हें कोई रोक नहीं सकता ? चारों ओर से मजबूती से वन्द किये दरवाजे भी उन्हें रोक नहीं सकते। मोटी मोटी भीतों को भी वे पार कर सकते हैं। वे—

लेखा—वंद करो ये वातें, भोला !

भोला—अच्छा लो, नहीं वोलता छोटी वाई! और डर जाओगी इसलिये वोलना ही वंद किये देता हूँ।

नर्स—वावासाहव, आप मेरे साथ उस कमरे में चलेंगे ?

बाबा—चलिये !

रेखा—भोला !

भोला—क्या है वड़ी वाई ?

रेखा—तुम जिनकी वातें कर रहे थे, वे क्यों आते हैं ?

(भाँति भाँति की आवाजें)

लेखा—यह किस की आवाज है भोला ?

भोला—ले जावेंगे, जरूर ले जावेंगे—किसी की भी न मानेंगे !

रेखा—वह वात फिर मत छेड़ो भोला।

भोला—ठीक है—आप तो यूँ ही डर जातीं हैं; लीजिये नहीं वोलूंगा मैं !

लेखा—चुप, सव लोग चुप वैठो तो !

रेखा - क्यों लेखा ?

लेखा—फिर से मैंने कुछ आवाज-सी सुनी है ! देखो सुनो !

रेखा—शंकर यह काहे की आवाज है !

शंकर—कुछ नहीं—जाड़े की रात है—

लेखा—नहीं देखो कुछ खसखस-सी आवाज आ रही है।

रेखा—हाँ, जैसे कोई साड़ी पहने जा रहा हो।

शंकर—कुछ भी तो नहीं ! वाहर वृक्षपर से फूल टपक रहे हैं !

रेखा—सच तो है वाहर फूल ही तो टपक रहे हैं !

शंकर—थोड़े से चुन लाऊं ?

रेखा—नहीं रहने दो—तुम न जाओ !

लेखा—यह कुत्ता ऐसे क्यों रो रहा है ?

रेखा—नीचे विल्ली भी चिल्ला रही है !

लेखा—वही काली विल्ली होगी।

रेखा—भोला, लगता है जैसे गोशाला में वँधीं गाय भी जैसे एकाएक उठ खड़ी हो।

वावा—(अंदर के कमरे में से)—रेखा। लेखा !

लेखा—पिताजी पुकार रहे हैं !

रेखा—तुम चुप क्यों हो शंकर ? चलो पिताजी वुला रहे हैं !

शंकर—उन्होंने दुवारा कहाँ पुकारा ?

[कुछ क्षणों की स्तब्धता, इस स्तब्धता में जैसे कुछ संकेत-सा भरा है]

रेखा—सव ऐसे चुप क्यों हैं ?

लेखा—कुत्ता भी तो नहीं रो रहा !

रेखा—विल्ली ने भी चिल्लाना वंद कर दिया !—शंकर, तुम भी कुछ वोलते नहीं ?

लेखा—भोला और कोई नहीं वोलता तो तू ही कुछ वोल !

रेखा—पिताजी चुप कैसे हो गये ? चलो शंकर, हम उस कमरे में चलें।

लेखा—यह किसकी आहट है ?

रेखा—पिताजी आ रहे हैं ! पिताजी—

बाबा—रेखा ! लेखा !

रेखा—आपका चेहरा सफेद फक्क क्यों हैं ? क्या हुआ पिताजी ?

लेखा—बोलिये—पिताजी कुछ तो बोलिये !

रेखा—कहिये पिताजी !

लेखा—पिताजी !

बाबा—तुम्हारी माँ—

रेखा—माँ कैसी हैं पिताजी ?

लेखा—बताइये न ?

बाबा—हम उसे नहीं बचा सके !

रेखा—पिताजी !

बाबा—वे ले गये ! वे उसे ले गये !

भोला—उन्हें कौन रोक सकता है ? वे जब ले जाने के लिये आते हैं, तो उन्हें कौन रोक सकता है मुझे अच्छी तरह मालूम है !

[चारों ओर से बिक्रट शब्द—जैसे कड़कड़ाकर कुछ जमीनपर टूटकर गिर रहा हो—नीचे जैसे कोई पटक पटक कर तोड़ रहा हो !]

(मराठी से अनुवादक—**श्री. मंगेश नाइक**)

: तमिल कविता :

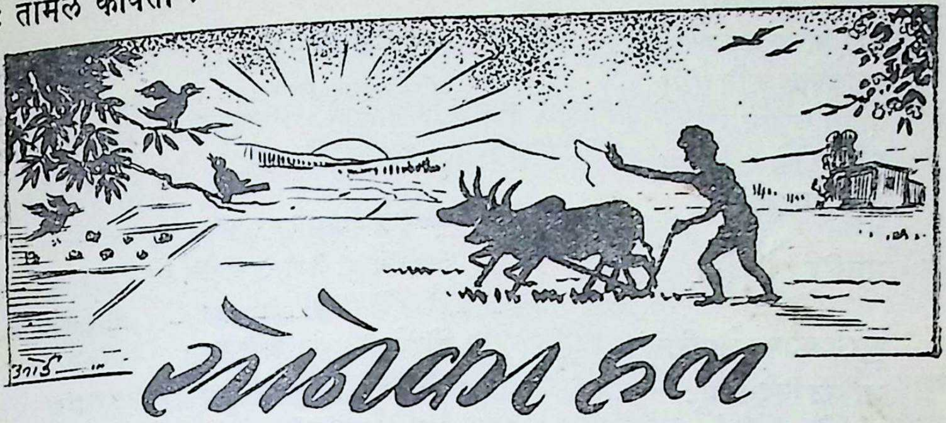

"पॊन् एर्"

['भिक्षु']

१

कालैयिल रवि वन्दु
पडम् विरत्ताडिनान्.
करिच्चन्गळ् कुरॆल् काण्डु
ऒळियैत्तुदिदित्तन.
नाळॊन्रु पूत्तदुम्
पॊन एर वन्दु निन्रदु,
नुगत्तडि एट्रोम्.

१

सवेरे रवि आया।
वह अपना फन फैलाकर नाचने लगा।
गौरैयों ने अपनी कल-काकली से
प्रभात की स्तुति की।
नये दिन का खिल उठना ही था कि
सोने का एक हल आ खड़ा हुआ!
हमने जुआ ले लिया अपने हाथ में।

२

पॊन् एरैप्पूट्टि
ऎङ्ङॊ कीरिनोम्.
रवियैयुम् मलरैयुम्
मीनैयुम् मनत्तैयुम्
इशैयैयुम् ऒळियैयुम
पॊन्नैयुम् पॆण्णैयुम्
एरुवाक्किप्पोट्टोम्;
तळैयुडन् उळुदोम्.

२

हमने सोने का हल जोता;
और न जाने उसे कहाँ कहाँ चलाया!
रवि और फूल, मछली और मन,
संगीत और प्रकाश, कांचन और क़ामिनी,
—इन सबको हमने बनायी खाद;
और पत्तियों के साथ खेत में डालकर हल जोता!

३

श्रीदेवि कण्डोम्.
कण् कण्ड कोलत्तै
कनवुपोल रुचित्तोम्.
देवियै वणंगि
मुडि कीळे तळैत्तोम्.
मलर पादन्तन्निल्
मलरिट्टुत्ता[१]ळुदोम्
शुरम का[१]ण्ड वेगत्तिल्
अळिळ विदैत्तोम्.
अळगिन् कदिर्गळ्
अरुवडैयानिय;
अळिळप्पुशित्तोम्.

३

श्री-देवी को हमने देखा !
आँखें भरकर उस रूप का हमने पान किया,
किसी मधुर स्वप्न की भाँति !
देवी के आगे सिर नवाकर माथा नीचे टेक दिया;
उसके पुष्प-चरणों पर पुष्पांजलि अर्पित की;
ज्वर-वेग की तेजी से अँजलि भर-भरकर
बीज बो दिया।
सौंदर्य की फसल काटी गयी;
और उसे अँजलि भर-भरकर हमने खाया।

[तमिल से—अनुवादक—
का. श्री. श्रीनिवासाचार्य]

लघुकथा :

आज थी मेरी अभिसार रात्रि

[स्व. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

१

मथुरा नगरी के परकोटे के बाहर एक सन्यासी सोया हुआ था।

नाम उसका उपगुप्त था। उस दिन वायु के झोंकों से नगर के समस्त दीपक बुझ गये थे। घरोंके दरवाजे बन्द हो गये थे। सावन मास की भरी अंधेरी रात में हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था।

संन्यासी सोया था; अचानक उसे किसी के पैरों की ठोकर लगी। पायल झनझना उठे।

संन्यासी चौंककर उठ बैठा। उसकी क्षमाशील आँखों पर दीपक की ज्योति का प्रकाश पड़ा।

परमसुन्दरी तरुणी, नगर-नर्तकी वासवदत्ता उस रात्रि को अपने प्रियतम से मिलने जा रही थी। उसके शरीर पर एक से-एक सुन्दर बहु मूल्य वस्त्र-आभरण सजे हुए थे।

वासवदत्ता ने दीपक के प्रकाश में संन्यासी को देखा—एक तरुण, तेजस्वी, अति सुन्दर, प्रशान्त और अलौकिक प्रतिभा-प्रभा- से प्रदीप्त।

मन्द स्मित के साथ लज्जित वासवदत्ता ने प्रार्थना की—तपस्वी, मुझे क्षमा करो। मेरे घर चलो। यह भूमि तुम्हारे शयन योग्य नहीं है।'

संन्यासी ने स्निग्धवाणी में कहा — 'सुन्दरी, अभी मेरा समय नहीं आया है। समय आने पर एक दिन मैं स्वयं तुम्हारे पास आऊँगा। अभी तो तुम जहाँ जा रही हो, वहीं जाओ।'

२

अभी एक साल पूरा भी नहीं हुआ था इस घटना को होकर।

चैत्र मास की वासन्ती सन्ध्या थी। भौंरे गुंजारते थे, कोयल कूकती थी। पवन में मस्त पुष्प-सौरभ भर रहा था। मथुरा नगरी उस दिन सुनसान थी। नागरिक नर-नारी नगर से बाहर पुष्पोत्सव मनाने के लिये गये हुए थे।

संध्या हुई। आकाश में चन्द्र चमक उठा। अमराइयों में चांदनी की चितकबरी छाया डोली। शीतल, मन्द सुगन्ध भरा समीर सिहरन पैदा करने लगा।

* * * *

सन्यासी नगर से बाहर निकला। कदाचित् आज उसकी अभिसार-रात्रि थी। परकोटे से बाहर, अमराई की सघन छाया में वासवदत्ता पड़ी हुई थी—रोग से पीड़ित कराहती हुई। उसके शरीर से दुर्गन्ध फूट रही थी; छूत के भय से कोई उस नारी को नगर से बाहर डाल गया था।

संन्यासी ने पास जाकर दुर्गन्धियुक्त वासवदत्ता का मस्तक अपनी गोद में स्नेह से रख लिया। मुंह पर कमंडलु के शीतल जल से छींटे दिये। शरीर में चन्दन का लेप किया। नटी के मुंह पर करुणा की व्यथित रेखाएं खिल उठी थीं।

संन्यासी के पवित्र कर-स्पर्श से वासवदत्ता की नष्ट चेतना लौटी। उसने कराहते हुए पूछा — 'कौन हो तुम देवता, इस अभागिनी पतिता पर कृपा करनेवाले ?'

सहज स्नेह में संन्यासी ने कहा—'मैं हूं वासवदत्ता, उपगुप्त; आज मेरे आने की वारी थी न ! लो मैं तुम्हारे समीप आ गया हूं।

वासवदत्ता के नेत्रों में अश्रुबिन्दु छलछला रहे थे

(बंगला से)

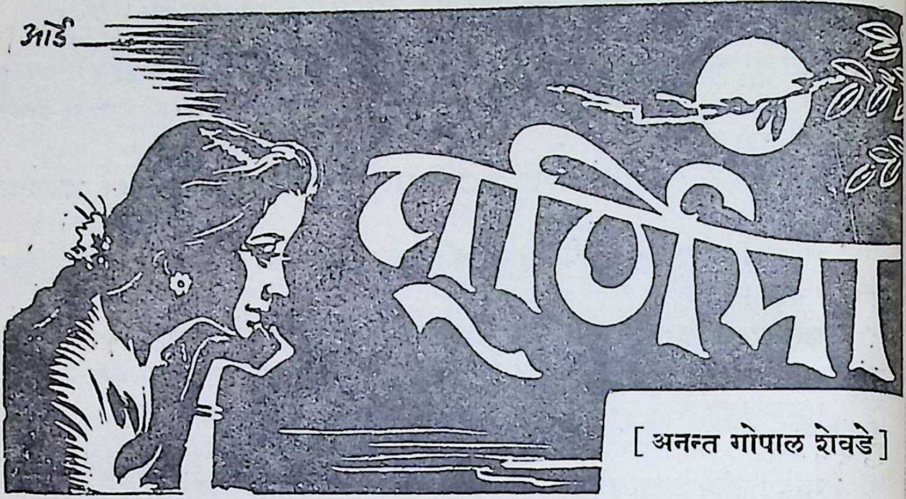

पूर्णिमा

[अनन्त गोपाल शेवडे]

[अब तक की कथा: —

बैरिस्टर पण्डित ने अपनी पुत्री पूर्णिमा की इक्कीसवीं वर्ष गांठ के अवसर पर जो 'प्रीतिभोज' दिया, उसमें नगर के गण-मान्य व्यक्तियों के अलावा पूर्णिमा के सहपाठियों को भी बुलाया गया था। उस दिन पूर्णिमा के संगीत का अत्यन्त सफल संगीत-प्रोग्राम हुआ जिसके लिये इन्द्रगढ़ के जमींदार के पुत्र विलासमोहन ने उसे बधाइयाँ तो दीं ही; लेकिन साथ ही यह मत भी व्यक्त किया कि उस संगीत में भक्ति-रस की अपेक्षा प्रणय-भाव अधिक होता तो अच्छा रहता।

इसके विपरीत बंगाली क्रान्तिकारी के कर्तव्य-निष्ठ और तेजस्वी तरुण विनय ने पूर्णिमा को इस लिये बधाई दी कि उसकी जैसी तितलीनुमा, आमोद-प्रिय रमणी संगीत की साधना में इस प्रकार के उदात्त और पुनीत भावों की सृष्टि कर सकती है यह उसने पहली बार देखा।

विलासमोहन से पूर्णिमा का प्रथम परिचय तो टेनिस-कोर्ट पर हुआ था जब कि पूर्णिमा और उसके पार्टनर ने विलास और उसकी पार्टनर वीणा बैनर्जी को मैच में हरा दिया था। वीणा विलास से विवाह करना चाहती थी लेकिन उस दिन से विलास उसे छोड़कर उससे कहीं अधिक रूपवती पूर्णिमा के पीछे पागल की तरह पड़ा। वह 'खाओ-पिओ और मौज करो' की फिलासफी को माननेवाला था और चूंकि कुमारी पूर्णिमा पंडित की वृत्ति भी एक अंश तक इसी प्रकार की थी, उसने उसकी मित्रता का स्वागत किया।

विनय कुमार से पूर्णिमा की पहली मुलाक़ात और बातचीत उस समय हुई जब कि वह एक गोरे सार्जेण्ट को पीट रहा था चूंकि उसने एक ग़रीब तांगेवाले के पैसे मार दिये थे। विनय कुमार की ग़रीबों के लिये तीव्र सहानुभूति तथा निर्भीकता का पूर्णिमा के मन पर बहुत अच्छा असर पड़ा और विनय से अधिक परिचय प्राप्त करने की इच्छा उसके मन में जाग्रत हुई। किन्तु विनय स्वभाव से ही ऐसा था कि कहां वह किसी रमणी से ज़रूरत से ज्यादा बातचीत करने चला।

एक दिन शनिवार को पूर्णिमा ने अपने घर में अपने टेनिस कोर्ट के खिलाड़ी स्त्री-पुरुष मित्रों को ाय पर बुलाया।—आगे पढ़िये]

: सातवां परिच्छेद :

फूल और काँटा

विलास बाबू और पूर्णिमा का परिचय शीघ्र ही अपनी प्रथमावस्था को पार कर आगे बढ़ा। पूर्णिमा के यहां का स्वतंत्र वातावरण इस बात के लिये पोषक था। बैरिस्टर पंडितजी ने कभी पूर्णिमा की मित्र-मण्डली में कोई दखल नहीं दिया। उनकी तो यही इच्छा थी कि पूर्णिमा अपने पुरुष-मित्रों को स्वयं चुने और उनमें से जिससे वह प्रेम करती हो उसीसे विवाह भी करे।

विलास बाबू की मित्रता से पूर्णिमा को काफी आनन्द मिलता था। और विलास बाबू की खुशी का तो पूछना ही क्या है। स्त्रियों की मित्रता उन्हें बहुत ही प्रिय थी। जीवन का सबसे अधिक मज़ा लूटना यही उनका एक मात्र लक्ष्य था, दृष्टि-कोण था। फिर पूर्णिमा जैसी सुन्दर, लोक-प्रिय, गुण शलि वाली युवती की दोस्ती का वे तहे-दिल से क्यो न स्वागत करते।

शनिवार का दिन था। सुबह का कॉलेज था। पूर्णिमा ने एक छोटीसी चाय-पार्टी का आयोजन किया। प्रधान अतिथि तो विलास बाबू ही थे, हालाँकि यह बात उसने किसी पर ज़ाहिर नहीं की। साथ ही उसने मिस वीणा बनर्जी, मिस्टर जैकेब, यूनिवर्सिटी क्लब के सेक्रेटरी मिस्टर शाह तथा विमेन्स क्लब की सेक्रेटरी मिस निर्मला मेहता को भी आमंत्रित किया था। पूर्णिमा की बहुत इच्छा हुई कि वह विनय बाबू को भी आमंत्रित करे! लेकिन उसे खुद विश्वास नहीं था कि उन्हें आमंत्रित करने लायक परिचय दृढ़ हुआ है या नहीं। और यदि उसने बुलाया और वे न आये तब क्या होगा! उसका अपमान न होगा?

ठीक चार बजे, पांचों निमंत्रित व्यक्ति पूर्णिमा के बंगले पर उपस्थित हुए। विलास बाबू ग्रे-फ्लॅनेल का पेण्ट तथा हरे रंग का गरम कोट पहिने हुए थे जिसमें पीतल के चमकीले बटन लगे हुए थे। कोट के ऊपरी खीसे पर लॉ कॉलेज का बैज लगा हुआ था, जिसके वे 'कलर-होल्डर' थे। उसी खीसे में से चेक डिज़ाइन का एक सुन्दर रेशमी रूमाल झांक रहा था। पैर में कीमती मोजे और सफेद केनवास के जूते थे। उनके गौरवर्ण शरीर पर हरे रंग का कोट फबता था। पोशाक के अलावा ताजी हजामत, चेहरे पर स्नो, काले लंबे बालों में खुशबूदार ब्रिलियन्टाइन और कपड़ों पर सेंट की बूंदें, उनके आकर्षण को बढ़ा रही थीं। पूर्णिमा की आंखों में भी विलास बाबू की वेश-भूषा भर गई।

मिस्टर जैकब फाइनल एम. ए. क्लास में इतिहास के विद्यार्थी थे। रंग तो काला था लेकिन बाकी सारी तहजीब और पोशाक गोरों जैसी थी। उन्हें आज स्त्री-पुरुषों की सम्मिश्र चाय पार्टी में शरीक होने का निमंत्रण था इसलिये वे तो खास तौर पर बन-ठन के आये थे। अंग्रेजों में तो स्त्री-दाक्षिण्य होता ही है। लेकिन उन ईसाइयों में, जो उनकी नकल करते हैं, उनसे भी ज्यादा होता है। इसलिये मिस्टर जैकब की परेशानी का आज क्या पूछना है? अपने धोबी के धुले रूमाल से पसीना पोंछते पोंछते उन की नाक में दम आ रहा था। हर वाक्य और हर मिनिट पर उनकी जबान से "सॉरी" "थैंक यू" जैसे शब्द निकलते थे जो उनकी सामाजिक सभ्यता के द्योतक थे। किसी भी व्यक्ति के किसी भी मत से फौरन सहमत हो जाना उनके लिये मुश्किल न था। और कहीं कोई बहस छिड़ जाती तो दोनों दलों में समझौता कराने में तथा यह बतलाने में कि असल में उनमें कोई भेद नहीं है, और वे दोनों एक ही बात को भिन्न पहलुओं से पेश कर रहे हैं, मिस्टर जैकब हमेशा पहले रहते। घण्टों वे मौसिम, सिनेमा, मोटर गाड़ियां, टेनिस और दुनिया भर के तमाम विषयों पर चर्चा कर सकते थे और सब पर अपनी राय देते। ऐसी राय जिससे किसी को कोई एतराज हो भी नहीं सकता था; लेकिन इतना सब होने के बाद भी कोई यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता था कि मिस्टर जैकब की असली राय क्या है। मजे के आदमी हैं।

मिस वीणा बनर्जी, डेप्युटी अकाउंटेंट जनरल की लड़की है और प्रीवियस एम्. ए. में पढ़ती है, देखने सुनने में औसत हैं, न सुन्दर न कुरूप। कद ठिंगना ही कहना होगा। बातूनी बहुत है, जिस से मालूम होता है कि उसकी जीभ काफी लम्बी है। उसकी छः बहनें हैं और चार भाई। बहनों

में वह सव से वड़ी है । उसके पिता को माकूल तनख्वाह मिलती है और उसी के अनुपात में माक़ूल चिन्ताएं भी हैं । लड़कियां वड़ी होती जाती हैं और विवाह की समस्या वढ़ती जाती है । जहाँ अभी पहली लड़की का ही विवाह नहीं हुआ है, तो दूसरी वहनों के लिये 'लाइन क्लियर' कैसे हो ? वीणा के विवाह के लिये उसके माता पिता भी उत्सुक हैं और वह खुद भी । उसने तो उपन्यासों में प्रीति विवाह के वारे में काफी पढ़ लिया था और इसलिये तय कर लिया था कि वह "लव मैरेज" ही करेगी । और इसी लिये वह पुरुषों की मित्रता ज्यादा पसन्द करती है । अभी तक तो उसे सफलता नहीं मिली थी लेकिन जव से विलास वावू उसकी नजर में चढ़े हैं तव से उसका हौसला कुछ वढ़ गया है । उनकी दोस्ती की वुनियाद टेनिस ही थी । विलास वावू ने भी उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया हो सो वात नहीं । एक वक्त था जव उन दोनों में काफी घनिष्ठता थी, लेकिन अव !...

मिस्टर शाह और मिस निर्मला मेहता के आमंत्रण का कारण यही था कि वे अपने अपने टेनिस क्लवों के सेक्रेटरी थे । उन दोनों का विशेष गुण था, जो कि सेक्रेटरियों में अक्सर हुआ करता है कि वे सव लोगों को साथ लेकर, मिलकर, खुश रखकर चला करते थे । यही उनकी लोक-प्रियता की कुंजी थी।

वैरिस्टर पण्डित साहव के ड्रॉइंगहाल में ही चाय का इन्तजाम हुआ । मखमल की गद्दी की कोचों पर तीन युवक और तीन युवतियां वैठी थीं और आमोद-प्रमोद में मग्न थीं । खाने-पीने की चीजों के सान्निध्य में लोगों का मिज़ाज अक्सर खुश रहता है । किसी मनोवैज्ञानिक ने ठीक ही कहा है कि इन्सान के हृदय पर प्रभाव डाल ने का सव से नजदीक का रास्ता उसके पेट के जरिये ही है । राजनीति के वड़े वड़े पेचीदे सवाल अक्सर खाने की मेजो पर ही हल होते हैं और कोई कितनी ही अकड़ करे, जिसका खाना खाया जाता है उसका कुछ-न-कुछ तो गाना ही पड़ता है । और यह वहुत कुछ तो वे-जाने ही होता है।

चाय-पार्टी का इन्तजाम उमदा था । चाय-विस्किट-केक, नानखताई, रसगुल्ले, फल, आइस-क्रीम इन सव का दौर होने लगा । खिदमत में वैरा था ही; लेकिन मिस्टर जैकव, अपनी तहजीव के खातिर, मेहमानों की मदद किया करते थे । पूर्णिमा जभी-कभी वीच में ही, किसी मिठाई या केक या फल की तश्तरी अतिथियों के सामने पेश करती और एक स्मित से उन्हें वे पदार्थ लेने का आग्रह करती । उसे 'ना' कहने की किसी की हिम्मत नहीं थी । चाय के दौरान में वातचीत भी होती जाती थी । पहले टेनिस के वारे में स्वाभाविकतः चर्चा चली । क्योंकि उसमें सवकी दिलचस्पी थी । फिर विलास वावू ने सोचा कि अव ऐसे विषय पर वोलना चाहिये जिसमें पूर्णिमा की दिलचस्पी हो । इसलिये संगीत विषय पर चर्चा शुरू हुई ।

"सुना है आप वहुत अच्छा गाती हैं, मिस पण्डित," विलासमोहन ने कहा, "हम लोगों को भी कभी सुनाइये न एकाध गाना ! न हो तो आज ही चाय के वाद उड़ जाय ।"

"ओ यस ! वड़ी अच्छी कल्पना है,' फौरन जैकव साहव ने कहा ।

"मैंने तो सुना है कि मिस पण्डित तो जल्द ही वम्वई के रेडियो पर अपना प्रोग्राम देने वाली हैं । गाने में शहर भर में उनका हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं, यह मेरी निश्चित राय है । अगर आज मिस पण्डित अपना गाना सुना दें तो पार्टी का रंग 'एक्सेलेण्ट' हो जाय—क्यों शाह !"

"वाह, वाह इसमें क्या शक है !" शाह साहव ने फौरन समर्थन किया ।

"गाने के लिये माफ कीजिये विलास वावू, पूर्णिमा ने आजिजी के साथ कहा । "गाने का यह वक्त नहीं है । मुझे तो रात्रि के समय ही गाना पसन्द आता है । जल्द ही आपको मोका मिलेगा । 'वापू' अगले सप्ताह मेरी वर्षगांठ मनाने वाले हैं । एक वड़ा प्रीति-भोज होगा । उस मौके पर मैं आप सव लोगों को निमन्त्रण देने वाली हूँ । आज क्षमा कर दीजिए — आइए आज हम लोग गप-शप ही करें ।"

"थैंक यू ! वड़ा स्प्लेंडिड आइडिया है । क्यों न ठहर जाएँ विलास वावू । एक ही हफ्ते की तो

बात है। ठीक तो कहती हैं मिस पण्डित”—मिस्टर जैकब ने फरमाया और सब लोगों की तरफ सम्मति पाने के हेतु नज़र फेंकी।

विलास ने भी अवश्यम्भावी के सामने अपना सिर झुका दिया। लेकिन चूंकि आज तो उसे पूर्णिमा पर असर डालना ही था, बातचीत को आगे बढ़ने के लिये उसने कहा—“आपको कौनसा म्यूजिक ज्यादा पसन्द है, मिस पण्डित—अंग्रेजी या हिन्दुस्तानी ? मुझे तो, माफ कीजिए, हिन्दुस्तानी म्यूजिक ही पसन्द आता है।”

विलास ने यह सुन लिया था कि पूर्णिमा को पढ़ाने के लिये उस्ताद बहादुर खां जैसे भारतीय संगीत के आचार्य आते हैं। इसलिये मन-ही-मन उसे विश्वास था कि यह बात पूर्णिमा को अवश्य भायगी।

मिस्टर जैकब पूर्णिमा के चेहरे पर संकेत पाने के लिये ताकते रहे।

“मैं तो हिन्दुस्थानी म्यूजिक की ही भक्त हूं,” पूर्णिमा ने कहा। “भावों को जागृत करने की तथा अंतस्तल को छूने की जितनी शक्ति उसमें है उतनी अंग्रेजी संगीत में नहीं है।

“बिलकुल सही है” मिस्टर जैकब ने बात आगे बढ़ाई—

“देखिये, मैं जिंदगीभर अंग्रेजी म्यूजिक के वातावरण में पला हूं। मुझे मदर वेकफीड ने बच्चे की तरह पाला है और सब कुछ सिखा-पढ़ाकर बडा किया है। मैं पियानो भी बजा लेता हूं कुछ कुछ। हालाँकि मैं भारतीय म्यूजिक के बारे में ज्यादा नहीं जानता तिसपर भी जब मैं उसे सुनता हूं तो यह सब इंग्लिश संगीत फीका मालूम पड़ता है। और ऐसा लगता है कि जो कुछ सीखा वह सब बेकार ही है।”

“नहीं इतना खराब तो नहीं होता वह संगीत,” पूर्णिमा बोली “मुझे खुद बापू ने वह सिखलाने की कोशिश की, और कुछ मैं सीख भी सकी। लेकिन हृदय को स्पर्श करने की शक्ति मैं उसमें नहीं पा सकी, बस। बाकी वह भी तो एक शास्त्र ही है।”

“यही बात है—” मिस्टर जैकब पिछडने वाले नहीं थे—“इंग्लिश म्यूजिक इतना खराब थोड़े ही, है, नहीं तो मैं क्यों उसके पीछे इतना पागल होता। लेकिन माफ कीजिये, मुझे उसमें डेप्थ’ नहीं दीख पड़ी।”

इतना कहकर उन्होंने अपनी जेब से रूमाल निकालकर माथे का पसीना पोछा। वीणा और निर्मला उनकी परेशानी देखकर व्यंग से मुस्कुराने लगीं। विलास मोहन भी बात समझ गये; लेकिन वे नहीं चाहते थे कि जैकब की हँसी हो, इसलिये फौरन आगे बढे—

“आप पक्का गाना पसन्द करती है या लाइट म्यूजिक मिस पण्डित ? —मैं तो लाइट म्यूजिक बिलकुल नहीं चाहता।”

“ओ हो! आपको संगीत से विशेष प्रेम मालूम पड़ता है, विलास बाबू ? तब तो आप में और मुझमें कई बातें कॉमन हैं।” पूर्णिमा के मुँह से निकल पड़ा। इस वाक्य का असर एकदम विलास बाबू और वीणा बनर्जीपर भिन्न रीति से पड़ा। विलास बाबू का हृदय इस सुन्दर रमणी की प्रशंसा से बांसों उछल पड़ा—उस एक वाक्य में न जाने उन्होंने क्या क्या अर्थ पा लिया। भविष्य के कई सुख स्वप्न भी उन्हें दीखने लगे। लेकिन वीणा, जो अबतक प्राय; चुप ही बैठी थी, इससे खुश न हो सकी। अब बात ऐसे लाइन पर जा रही थी जो उसे न भाती थी। यदि विलास बाबू और पूर्णिमा में बातें ‘कॉमन’ हो जायँ तो फिर उसका क्या होगा ? विलास बाबू के सामने क्या उसका कोई मूल्य नहीं ? यह वह न सह सकी।

“आप तो संगीत के विशेषज्ञ जान पड़ते हैं, विलास बाबू !” ’ वीणा बनर्जी ने उनकी तरफ देखकर मुसकुराते हुए कहा, “भला बताइये तो, पक्के गाने वालो में से आपको कौन कौनसे कलाकर पसन्द हैं—शायद उनका गाना मैंने भी सुना हो।” उसकी मुसकुराहट में शरारत थी।

वीणा बनर्जी संगीत से दिलचस्पी रखती थी। लेकिन वह जानती थी कि विलासबाबू को संगीत का खाक ज्ञान नहीं है और वे यूं ही पूर्णिमा के सामने अपनी साख जमाना चाहते हैं।

विलास बाबू जरा सिट पिटाये। वीणा ने यह सवाल पूछने में जो ढाढस दिखाया उससे उन्हें

आश्यय हुआ और गुस्सा भी आया । लेकिन क्या करते ? कुछ न बोलते तो उनकी फजीहत होती । इसलिये कुछ अटकलपञ्चू तो लगाना ही चाहिये । जम जाय तो जमही जाय। उन्होंने अंधेरे में पत्थर फेंक ही तो दिया—

“मुझे सबसे पसंद तो सैगल है — पहाड़ी सन्याल भी अच्छा गाता है। स्त्री-गायिकाओं में तो काननबाला और देविका रानी गजब करती हैं— ”

“ओह !” कहकर वीणा हँसने लगी। निर्मला मेहता भी संगीत जानती थी और उम्र में उन सब में छोटी थी — वह अपनी हँसी नहीं रोक सकी; खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

विलासबाबू ने सहानुभूति के लिये पूर्णिमा की तरफ देखा । उसकी आँखों में भी प्रश्न-चिन्ह था, कुछ आश्चर्य, कुछ उपहास भी । चेहरे पर का स्मित गायब हो गया था । क्या यही विलासबाबू का पक्के गाने के बारे में प्रेम है ? लेकिन तुरन्त ही उसने रंग-भंग होने से बचा लिया । हँसते हुए बोली — “ये सब तो लाइट म्यूजिक वाले हैं विलासबाबू ? वीणा तो पूछ रही थी पक्के गानेवाले उस्तादों के बारे में—”

विलासबाबू ने तुरंत मोरचा बदला—“मैं तो कह रहा था कि लाइट म्यूजिक में मुझे पसन्द हैं तो इतने ही हैं। बाकी उस्तादी गाने में तो तानसेन का नाम किसने नहीं सुना होगा। गाते क्या हैं दुनिया हिला देते हैं। और भी कई हैं—लेकिन किन किन के नाम गिनाऊं ? एक हो तो कहूं।” अब तो उनके संगीत के ज्ञान का पर्दा पूरी तरह फाश हो गया था। पूर्णिमा को यह बात अच्छी नहीं लगी और उसके चेहरे पर भी नापसंदगी की भावना प्रतिबिम्बित हो उठी। वीणा की चंचल और तीक्ष्ण दृष्टि से यह बात ओझल न हुई। उसे मन ही मन समाधान हुआ कि अब पूर्णिमा की राय में. विलासबाबू कुछ-न-कुछ तो अवश्य गिरेंगे ।

मिस्टर जैकब ताड़ गये कि कहीं कुछ खटका हो गया है। उनका मत तैयार ही था—

“एक्सक्यूज मी, मेरा तो ख्याल है कि लाइट म्यूजिक और पक्के गाने दोनों में अपनी अपनी तरह का सौन्दर्य है। किसी को लाइट पसन्द आता है किसी को पक्का। यह तो हरएक के ‘टेस्ट’ की बात है। विलासबाबू तो स्पोर्टस् मेन हैं— दुनिया को उसी नजर से देखते हैं। उनकी तबीयत भी हलकी है। इसलिये उन्हें वैसा ही संगीत पसन्द आये तो क्या आश्चर्य ? और मिस पण्डित को तो उस्ताद बहादुरखां की तालीम है, तो भला बतलाइये उन्हें वही संगीत क्यों न पसन्द आये ? चाचा फर्नाण्डिज कहते थे कि हिन्दुस्थानी म्यूजिक में तो उन्होंने मिस पण्डित जैसा गाना अपनी ५० वर्ष की उम्र में कहीं नहीं सुना। वे भी एक ‘वंडर’ हैं और उनके उस्ताद दूसरे।”

जैकब साहब ने पूर्णिमा की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। गंभीर परिस्थिति को बचाने के लिये उन्हें उसके सिवा दूसरा चारा न सूझा। इसका तुरन्त परिणाम भी हुआ। पूर्णिमा का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा और वह विलासबाबू के उस ‘अज्ञान’ को भूल गई। और जैकब ने विलास की तरफ से जो सफाई पेश की वह भी उसे ठीक ही जचने लगी। आखिर यह कैसे आशा की जाय कि एक धनिक युवक, जिसे संगीत की कोई शिक्षा न मिली हो, पक्के गाने के बारे में इतना ज्ञान रखे ? और ज्यों ही उसके मन में यह विचार आया उसने स्मितपूर्वक विलासबाबू की तरफ देखा। इस अनपेक्षित स्नेह-दृष्टि से उनका उतरा हुआ चेहरा प्रसन्नता ,से आलोकित हो उठा। वे अपना खोया हुआ आत्म-विश्वास समेट कर बोले — “अब गपशप काफी हो गई है, मिस पण्डित ! गाना नहीं तो न सही, लेकिन जाने के पहिले न हो तो अपना व्हायोलिन तो सुना दीजिए।”

“हां, हां—बहुत ठीक, बहुत ठीक” कहकर सब लोगों ने इस सूचना का समर्थन किया। संगीत चर्चा के कारण पूर्णिमा के हृदय में भी संगीत की कुछ झंकार बज उठी थीं। इसलिये उसने बिना आनाकानी किये दो गीत बजा दिये। इस संगीत की मधुरता के कारण गपशप के समय जो कुछ अप्रियता पैदा हुई थी वह नष्ट हो गई। सब लोग जाने के लिये उठ खड़े हुए। पूर्णिमा ने कहा कि जाने के पहिले सब लोग उसका बगीचा देख लें।

वैरिस्टर पण्डित को फूलों का शौक था और उन्होंने सुन्दर वगीचा लगा रक्खा था। वे सभी युवक-युवतियां मौज से यहां-वहां घूमने लगीं। वीणा ने मोगरे के फूलों की क्यारी की तरफ कदम वढ़ाया—मिस्टर जैकव उसके पीछे हो लिये। पूर्णिमा और विलास फव्वारे की तरफ वढ़ गये और निर्मला तथा मिस्टर शाह गुलाव के फूलों को तोड़ने लगे। पूर्णिमा और विलास जव औरों से कुछ दूर कुछ एकान्त में पहुंचे तो विलास ने कहा—"आज की शाम वहुत सुन्दर वीती मिस पूर्णिमा! मुझे आज जो आनन्द प्राप्त हुआ उसके लिये मैं आपका वड़ा कृतज्ञ हूँ।"

शाम हो रही थी। वगीचे का प्रफुल्ल वातावरण सव के मन को अधिकाधिक खुश कर रहा था। विलास ने अपनी सुखभावना को अपनेपन के भाव से व्यक्त किया जो उनके 'मिस पण्डित' के वजाय 'मिस पूर्णिमा' के संवोधन से व्यक्त होता था। पूर्णिमा को भी यह भला मालूम हुआ। वाग के फूलों की सुरभि और सुन्दरता ने उसके चित्त को भी प्रफुल्लित कर दिया था। इस हृष्ट-पुष्ट सुन्दर युवक के साथ एकान्त में घूमने में उसे भी सुख हो रहा था। वह स्वभाव से लहरी तो थी ही। उसे एक कल्पना सूझी। उसने विलासबाबू से धीरे से कहा—"यहीं ठहरिये जरा—मैं अभी आई!"

आर वहां से भागती हुई वह गुलाव की क्यारी के पास आई और एक सुन्दर भरा हुआ फूल तोड़ लाई। ज्यों ही वे दोनों फव्वारे की आड़ में एक ऐसे स्थान पर आये जहां दूसरे लोग उन्हें नहीं देख सकते थे, उसने वह फूल विलासवावू की तरफ वढ़ाते हुए कहा—"लीजिये—मेरी भेंट!"

विलास ने एक वुभुक्षित की तरह उसे आतुरतापूर्वक अपने हाथ में ले लिया। इस अनपेक्षित कृपा के कारण उसे अपार आनन्द हुआ। उसकी आंखें खुशी के मारे चमक उठीं। 'उस तरुण को वह इतना प्रसन्न कर सकी' इस भावना से पूर्णिमा को समाधान हुआ। विलासवावू ने वह फूल अपने कोट के वटन में लगा लिया और पूर्णिमा को अनेकों धन्यवाद दिये। शीघ्र ही वे दोनों अन्य लोगों में आकर मिल गये। किसी को कोई खास वात नहीं दीख पड़ी। लेकिन वीणा वनर्जी की तेज आँखों ने विलास के कोट का वह फूल, और उनके चेहरे की विजयी मुसकुराहट देखी और वह तुरन्त सव-कुछ भाँप गई। उसके हृदय में जैसे कोई चीज जल उठी हो। उसे लगा कि विलासवावू के सामने पूर्णिमा के मुकावले में उसका भाव घट रहा है। किन्तु उसने अपने चेहरे पर कोई विकार नहीं दर्शाया।

आभार-प्रदर्शन के वाद सव लोग विदा हुए। जाने के पहिले पूर्णिमा ने उन्हें वर्ष-गांठ के प्रीति-भोज का आमन्त्रण जवानी ही दे दिया।

"थैंक यू, थैंक यू" कहकर जिसमें जैकव साहव की आवाज सवसे ऊँची थी, सव अतिथि विलासवावू की मोटर में लद गये।

पूर्णिमा भी आज वड़ी प्रसन्न थी। मोटर निकल जाने के वाद जव वह गुनगुनाते हुए अपने पोर्च की सीढ़ियां चढ़ने लगी तव उसने अचानक देखा कि उसके दाहिने हाथ के अंगूठे से खून निकल रहा है। तव कहीं उसे भान हुआ कि जल्दवाजी में गुलाव का फूल तोड़ते समय उसे कांटा लग गया था। घाव तो वहुत छोटा था पर न जाने क्यों उसे देखकर उसका चेहरा उतर गया और हृदय में एक अस्वस्थता का भाव छा गया।

: आठवाँ-परिच्छेद :

जीवन के शाश्वत प्रश्न

विनयकुमार और गोरे की मारपीट के प्रसंग के वाद दो तीन अवसर आये जव पूर्णिमा और विनयकुमार की भेंट हुई। अव वे कहीं मिलते तो एक दूसरे को आदरपूर्वक अभिवादन किये विना नहीं रहते। विनयकुमार की आँखों में उसके लिये जो समूचे परायेपन का भाव पहिले रहा करता था वह कुछ दूर हो गया और उसकी दृष्टि में, पूर्णिमा के लिये कुछ अपनत्व का, कुछ मित्रता का, भाव जाग्रत हुआ। पूर्णिमा ने भी इस सूक्ष्म परिवर्त्तन को देखा। उसने उसका मन-ही-मन स्वागत किया।

एक दिन पूर्णिमा न जाने क्यों लायव्रेरी में घुस पड़ी? वह साधारणतया लायव्रेरी में जाने वाली लड़की नहीं थी। वहां क्यों आई इसका कारण उसे तवतक साफ तौर पर मालूम नहीं हुआ जवतक उसकी भेंट विनयकुमार से न हो-

गई, जो अलमारियों की आड़ में, एक कोने में, एक टेबल पर पढ़ रहा था। पूर्णिमा ने ज्योंही उसे देखा, उसकी आँखें प्रसन्नता से खिल उठीं और जो अटपटापन लगा था सो जाता रहा। तब उसने जाना कि वह बे-जाने यहाँ क्यों आई? उसने विनयकुमार को नमस्कार करते हुए कहा।

"माफ कीजिये, मैं आपकी पढ़ाई में बाधा पहुँचा रही हूँ। क्या आप मेरे लिये किसी अच्छे पुस्तक की सिफारिश कर सकेंगे?"

विनयकुमार ने क्षण भर आँख उठाकर पूर्णिमा की तरफ देखा। उसकी नजर में कुछ आश्चर्य, कुछ पृच्छा थी। क्योंकि पूर्णिमा की तरफ से ऐसा प्रश्न एकदम अनपेक्षित था।

पांच-सात मिनट के वार्तालाप के बाद पूर्णिमा लायब्रेरी से एक पुस्तक ले गई और इस नीयत से कि अब तक उसने ज्यादा पुस्तकें न पढ़ी हों तो न सही, पर यह पुस्तक तो वह अवश्य ही मन लगाकर पढ़ेगी।

इसी थोड़ी-सी मित्रता और सद्भावना के बल पर ही पूर्णिमा ने विनय बाबू को अपनी इक्कीसवीं वर्ष गांठ के उस मंगल समारोह के लिये निमंत्रित किया था।

इसी प्रकार एक दिन शाम को जब कॉलेज यूनियन की तरफ से विनयकुमार के भाषण का आयोजन किया गया था, —पूर्णिमा की विनयबाबू से फिर मुलाकात हुइ। पूर्णिमा को वैसे भाषणों और वादविवादों से ज्यादा शौक नहीं था। जब कभी कोई अच्छा वक्ता आ जाता तो वह उसका भाषण सुनने चली जाती—क्योंकि ऐसे भाषण सुनना भी उस दिन की फैशन में शुमार था—लेकिन सुनने के बाद हॉल छोड़ते ही वह वे सब बातें अक्सर हॉल ही में छोड़ जाती।

लेकिन आज वह जानबूझ कर विनयबाबू का भाषण सुनने के इरादे से आई थी। विनयबाबू के व्यक्तित्व से उसे दिलचस्पी हो गई थी और जब कोई अवसर उनसे मिलने-जुलने का उसे मिलता तो वह उसे छोड़ती नहीं थी। एक सादी शुभ्र साड़ी पहनकर वह अपनी सहज सुन्दरता को लेकर आई थी और इसी सादगी के आवरण में वह कृत्रिम सौन्दर्यान्वित रमणी से अधिक सुन्दर दीख रही थी। अन्य छात्राओं के साथ वह पहली कतार में ही कुर्सी पर बैठी हुई थी।

विनयकुमार के वक्तृत्व की काफी ख्याति थी। उसके भाषण में अक्सर खासी भीड़ रहती थी। आज कई दिनों के बाद कॉलेज यूनियन में उसका भाषण था, इस लिये विद्यार्थी गण तथा छात्राएँ उत्सुकतापूर्वक उसे सुनने के लिये आये थे। कुछ प्रोफेसर भी उपस्थित थे। हॉल भरा था। भाषण का विषय था — "जीवन के शाश्वत प्रश्न"। तालियों की करतल ध्वनि के बीच विनयबाबू ने अपना भाषण प्रारम्भ किया। उनका लिबास बहुत सादा था। बंगाली कुरता, शुभ्र धोती, चप्पल। वे लगभग पचपन मिनट बोले। लेकिन सारे श्रोतागण शांत भाव से, मुग्ध होकर, उनका एक एक शब्द सुनते रहे। मानों उन्होंने उस जन समुदाय को मंत्र-

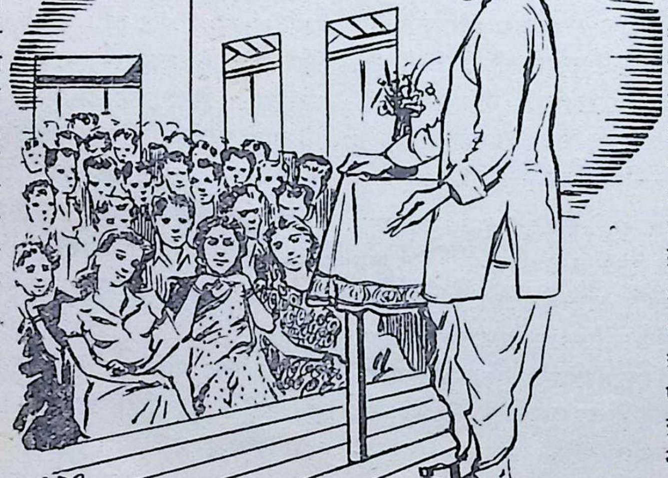

मुग्ध कर लिया हो, ठीक उसी तरह जैसे एक सँपेरा नाग को करता है। भाषण की पूरी रिपोर्ट देना तो कठिन है लेकिन कुछ विचार-धारा का निर्देश कर देना उपयुक्त है:—

“जब से मानव-जाति की सृष्टि हुई है और समय के परदे पर मनुष्य के पद-चिन्ह पहली बार अंकित हुए हैं तब से आज तक हजारों बार ये प्रश्न पूछे गये हैं कि मानव-जीवन का अन्तिम ध्येय क्या है, उसके मूल्य क्या हैं, अर्थ क्या हैं, और उसकी फलश्रुति किसमें है। इतिहास जिन मानवों का प्रथम साक्षी हुआ उन आदम और हव्वा ने भी यही प्रश्न पूछे और आज का प्रज्ञावान मनुष्य भी यही प्रश्न पूछता है, किन्तु उनका कोई ठीक उत्तर नहीं मिल पाता है। और सृष्टि के अन्त तक यह उत्तर मिलनेवाला नहीं है।

व्यास, सुकरात, बुद्ध, कन्फ्यूशियस, ईसा, मुहम्मद और कतिपय ऋषि-मुनि निर्माण हुए और उन्होंने जीवन की इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की। सबने अपनी अपनी दृष्टि से इसका उत्तर देने का प्रयत्न किया कि जीवन का परमोद्देश्य है—ज्ञान, निर्वाण, सत्य, ब्रम्ह, मुक्ति आदि। किन्तु इन सबसे कभी मानव का समाधान नहीं हुआ। अपनी अपनी शक्ति और इच्छा के प्रमाण में उसने इनमें से प्रत्येक के पीछे चलने की कोशिश की और बहुत दूर तक वह गया भी। लेकिन उसके मन की तृष्णा पूरी तरह तृप्त नहीं हो सकी।

तत्ववेत्ता आये, ज्ञानी आये, वैज्ञानिक आये, मानस शास्त्र के पण्डित आये सब ने इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने प्रकाण्ड-अध्ययन किया, गहरी गहरी खोजें कीं बड़े बड़े ग्रंथ लिखे—लेकिन वे सब एक हद तक जाकर रुक गये। कोई भी ऐसा पैदा नहीं हुआ जो छाती ठोककर कह सके कि मैं मानव-जीवन के गूढ़ प्रश्न को पूरी तरह समझ पाया हूँ, और अब बाकी समझने को कुछ नहीं रह गया है—मैं पहुँचा हुआ हूँ। यूं मनुष्य ने अपने दंभ और अहंकार में आकर यह दावा कई बार किया हो, किन्तु यह दावा उतना ही मिथ्या है जितना मेघ का यह कहना है कि मैं सूर्य को हमेशा ढँक सकता हूँ और इस लिये उससे श्रेष्ठ हूँ।

और ऐसा यह मनुष्य, युग-युगान्तर से, शत-शत-शताब्दियों से किसी अज्ञात वस्तु की टोह में भागता चला जा रहा है। वह चीज कभी उसके हाथ नहीं आई है और भूत काल बतलाता है कि भविष्य काल में भी वह उसके हाथ नहीं आयेगी। किन्तु उसकी यह टोह जारी है—शाश्वत है, सनातन है, नित्य है।

“जीवन में सब कुछ मिल जाय—सुख, समृद्धि, धन, प्रेम प्रभाव और वे सब बातें जो लौकिक रूप में जीवन की विजय की द्योतक हैं — किन्तु इन सब के बाद भी उसके अन्तस्तल में, हृदय के किसी दूर के कोने में, गहन अन्धकार में, छिपी हुई, दुबकी हुई कोई तृष्णा बनी रहती है, कोई व्याकुल ईप्सा है, कोई आर्त मूक वेदना है जो व्यक्त होने के लिये और व्यक्त होने पर समाधान पाने के लिये तड़पती रहती है। और जितना अधिक वह इसका प्रयत्न करती है उतना ही वह असफल होती है, उतना ही वह छटपटाती है।

“पर कौन कहता है कि यही उसकी तड़पन, यह अन्तर्वेदना केवल उसके दुःख मात्र का ही कारण है, उसमें सुख का लेश नहीं है? यह सच है कि उसके ध्येय की प्राप्ति उसे नहीं हो रही है, वह शाश्वत समस्या हल नहीं हो रही है, तब भी उस असफलता में, उसे पाने के सतत प्रयत्न में ही कितना सुख समाया हुआ है।

“सुकरात ने विश्व ज्ञान के अथाह सागर में अपना ज्ञान एक बूंद की तरह अल्प पाया और उस अल्पता के ज्ञान ने उसे विव्हल बना दिया। पागल मीरा ने बार बार अपने ‘गिरिधर’ को दर्शन देने के लिये आर्त होकर आवाहन किया और उसके हृदय की वह व्याकुलता जगत् के समस्त भक्तगणों की व्याकुलता बन गई। उदात्त प्रेम के साम्राज्य में भी उस विरहिणी की विकलता ने क्या हजारों-करोड़ों नारियों की चिरवेदना का प्रतिनिधित्व नहीं किया है? किन्तु क्या सुकरात की विव्हलता मीरा की व्याकुलता में दुख-ही-दुख भरा हुआ है—क्या उसमें सुख और आनन्द का अंश नहीं है?

विश्व का यही परम चमत्कार है कि उसमें दुख में सुख, अन्धकार में प्रकाश, असत्य में सत्य,

मृत्यु में जीवन-सब एक दूसरे में समाया हुआ है। अनेकता में भी परम ऐक्य है, भेद में भी अभेद है। यही समन्वय विश्व के परम सौन्दर्य का कारण है, जो जीवन को जीने लायक बना देता है।

"देखियें सृष्टि की अद्‌भुत रम्यता को—जिधर आप नज़र डालेंगे वही आपको जीवन के परम सत्य की आभा मिलेगी दिवस-रात्रि के चक्र को देखिये–क्या वह जगत् को यह आशादायी सन्देश नहीं देती है कि रात्रि के घनीभूत अंधकार के बाद–दुख, कष्ट वेदना के बाद–सुख-सूर्य का उदय होता ही है जब पशु-पक्षी आनन्द-विभोर होने लगते हैं। वर्षा, हवा या धूप का प्रसाद देखिये जो पापी और पुण्यात्मा, सुखी और दुखिया, धनिक और गरीब, इन सबको एक ही दृष्टि से देखकर ईश्वर की न्यायवादिता का डंका बजाता रहता है। गगन के असंख्य तारागणों को देखिये जो अनन्त नीलवर्ण में जगमगाते हुए, अहंकार-युक्त मानव को याद दिलाते हैं कि इस महाविश्व में वह कितना छोटा है, कितना स्वल्प, कितना नगण्य? वन के स्वतंत्र प्राणियों को, गानेवाले खग-वृन्दों को, हँसते हुए फल-फूलों को, कलकल निनाद करनेवाले सरिता-स्रोतों को, उत्तुंग पहाड़ों और गहरी खाइयों को तथा प्रकृति के अनुपम सौंदर्य को देखिये जो अपनी भव्यता, अद्भुतता और अपूर्वता से मानव को आगाह करता है कि वह कितना भी बढ़े, कितना भी चढ़े, प्रकृति की महानता के आगे वह फीका है, छोटा है कम ज़ोर है।

"और वहीं आश्चर्य, आप मानव समाज में भी देखिये। सभ्य, शिक्षित लोगों में पतित, दुर्जन निकलते हैं; इसके विपरीत जो नीच, पिछड़े हुए माने जाते हैं उनमें भी कई नर-रत्न पाये जाते हैं। जिन्हें हम पापी समझते हैं वे परम पुण्य करने की शक्ति रखते हैं, और जो पुण्यात्मा के नाम से प्रसिद्ध हैं वे एकान्त के अन्धकार में, पतित से पतित कर्म करते हैं। शराबी, डाकू, चोर और लुटेरों को हम समाज से निर्वासित कर जेलखानों में बन्द रखते हैं पर हमने क्या कभी उनके हृदय को जगाने की, उनके अन्दर बसने वाली मानवता को छूने की कोशिश की है? आवेश में लिये हुए एक अकर्म से हम उन्हें समस्त जीवन के लिये बर्बाद कर देते हैं, यह हमारी बदला भँजाने की निर्दय मनोवृत्ति नहीं तो क्या है?

"इस लिये, मेरा तो यही निवेदन है कि बाह्य-दर्शन पर मत जाइये! मानव को तौलने-परखने के आपके जो माप-दण्ड हैं, उनके अचूक होने का दावा मत कीजिए। क्योंकि यह वह प्राणी है जिसको हमने अब तक पूरी तरह नहीं जाना है, और पूरी तरह शायद कभी जान भी नहीं सकेंगे। विश्व के विशाल आंगन में, उसके भव्य और अद्‌भुत साम्राज्य में, यही एक वस्तु है—जो अब तक अगम्य, अज्ञेय और अज्ञातसिद्ध हुई है। उसका समीकरण अभी तक कोई नहीं जमा सका है। उसका आज तक कोई पैमाना नहीं बना है जो उसके बड़प्पन या ओछेपन को मापने का दावा करे। समाज ने जो पैमाने बनाये हैं वे सब गलत हैं, झूठे हैं। बनाने वालों की खुदगर्जी से दूषित हैं। उनका निर्णय अन्तिम और न्याय्य निर्णय नहीं कहा जा सकता।

"अतएव, मनुष्य-जीवन के इस रहस्य को, अनोखेपन का मत भूलिये। यह सच है कि उस के अन्तिम ध्येय, मूल्य, अर्थ और फलश्रुतिं का सम्पूर्ण ज्ञान हमें अब तक नहीं मिल सका है। न मिले तो न सही। हमारे तत्ववेत्ताओं को, चिन्तकों, पण्डितों और ऋषि-मुनियों को उसकी थाह लेने के लिये छोड़ दीजिए। वे खोजें जीवन के इन सवालों का उत्तर। किन्तु जन-साधारण के लिये तो जीवन का यही ध्येय अभीष्ट है कि वह अन्तिम उत्तर की टोह में ही बैठा न रहे, किन्तु जितना समझा-बूझा है उसी का अनुष्ठान करे। मानव की जाति या धर्म कुछ भी हो, वर्ण या संस्कृति कुछ भी हो, किन्तु यह सत्य है कि प्रेम उसे हमेशा सेहत और सुख देता है, द्वेष उसे हमेशा दुख और ग्लानि देता है। वह आनन्दित होता है तो हँस पड़ता है, संकटग्रस्त होता है तो मुरझा जाता है। उसके रक्त का रंग लाल है, आँसुओं का पानी खारा है, वेदना की निःश्वासें गर्म होती हैं। हृदय की व्यथा प्रलयंकर होती है।"

उन सब में एक ही गुण, एक ही स्वभाव धर्म सर्व व्याप्त है, वह है उसकी मानवता। वह जीवित रहे, जाग्रत रहे, बलवती रहे, समृद्धिशाली रहे, इसी

में मानव की विजय है। उसी की प्रतिष्ठा में, उसी की साधना में मानव जीवन का कल्याण है। और सब बातें गौण हैं।

"अतएव, जीवन में मानवता के मूल्यों का ही अनुष्ठान कीजिए। यदि किसी व्यक्ति में मानवता है, तो भूल जाइये उसके अन्य दोषों और न्यूनताओं को—उसकी गरीबी, अशिक्षा, असुन्दरता और असंस्कारिता को; उसकी मानवता को जगाइये और देखिये फिर उसमें कितनी भयंकर क्रान्ति होती है! और जिसमें मानवता ही नहीं है उस में फिर अन्य कितने ही गुण हों, वे सब गौण हैं। इसलिये मनुष्य जीवन के इस मूलगामी मूल्य की ही प्रतिष्ठा कीजिए, उसी के लिये तपस्या कीजिये।" "मानवता को खोकर विश्व ने बहुत बड़ा नुकसान उठाया है। उसको पाकर ही हमारा पुनरुत्थान होगा। आइये, हम सब मिलकर उसी की आराधना करें।"

सब श्रोतृवृन्द, पत्थर की मूर्त्तियों की तरह इस जादूगर के शब्दों को मुग्ध होकर सुनते रहें। और ऐसा लगता था कि उन सब के बीच एकमात्र विनयकुमार, चैतन्यमय विश्व का प्रतीक, प्राणवान, गतिमान,—सारे वातावरण में जीवन और शक्ति बिखेर रहा हो।

भाषण समाप्त होते ही उसने आदर पूर्वक समस्त श्रोतागणों को अभिवादन किया। सब लोगों ने तालियों का ऐसा तूफान मचा दिया जैसे व्याख्यान-भवन की दीवारें टूट पड़ना चाहती हों। अधिकांश छात्र-छात्राएँ गद्गद हो गईं। पूर्णिमा भी इस असर से बच न सकी। सब लोग जब जाने को उठ खड़े हुए और हॉल खाली होने लगा तब भी वह अपनी कुर्सी पर ही ध्यानस्थ-सी बैठी रही। विनयकुमार के आस पास-उसके मित्रों और प्रोफेसरों का एक घेरा बन गया था, जो उस पर प्रशंसा और साधुवादों की बौछार कर रहे थे। जब भीड़ घटी और विनयकुमार जाने को उद्यत हुआ, तब पूर्णिमा एकदम आगे बढ़कर आदरपूर्वक नमस्कार करते हुए बोली, "हार्दिक अभिनन्दन! धन्य हैं आप जो इतना कमाल कर दिखाया आप का यह भाषण अपूर्व है। मुझ पर अत्यन्त गहरा असर पड़ा इसका।"

पूर्णिमा के शब्द बहुत ही सीधे थे—अभी तक कई लोगों ने प्रायः इन्हीं शब्दों में विनयकुमार की प्रशंसा की थी। किन्तु पूर्णिमा के एक एक शब्द के पीछे अपनापन था। उत्कट भावात्मकता थी, इसलिये उसके शब्द उसके हृदय को छुए बगैर नहीं रहे। एक कृतज्ञ स्मित से "आपकी कृपा है" यह कहकर उसने यह अभिनन्दन स्वीकार किया। आज के इस विजयोल्लास में भी पूर्णिमा का अभिनन्दन उसके हृदय में सब से अलग एक विशेष स्थान निर्माण कर गया।

पूर्णिमा जब घर लौटने के लिये मोटर में बैठी तब उसे क्षणभर ऐसा लगा कि वह इस जड़लोक से उठकर किसी रम्य, स्वप्नमय प्रदेश में विचरण कर रही है। संगीत ने उसे कई बार इस तरह आन्दोलित कर दिया था—पर वक्तृत्व-कला ने आजतक उसपर इतना जादू नहीं किया था। उसकी विचारशक्ति तीव्र गति से जाग्रत हो गई। हृदय की भावनाएं उमड़ पड़ीं। इन सब का उस पर परिणाम यह हुआ कि उसे वही विषाद की लहर आ गई जो कभी-जभी किसी महान् भावावेश के प्रभाव में उसे आ जाती थी। उसका हृदय विव्हल हो उठा किन्तु उसी विव्हलता में उसने एक अजीब सुख का अनुभव किया जो कि अक्सर ऐसी मनस्थिति में हो जाया करता है। घर लौटते ही उसने कॉफी के लिये बैरे को हुक्म दिया और एकदम अपने बिस्तर पर जा लेट रही। खाने या कपड़े बदलने तक का भान उसे नहीं रहा।

: नववाँ परिच्छेद :

उत्थान-मार्ग का आवाहन

उस रात पूर्णिमा को नींद नहीं आई। दिल में भयंकर तूफान मचा हुआ था—भावनाएँ उमड़ पड़ी थीं। विनयकुमार के शब्द उसके कानों में साफ गूंज रहे थे—उसकी मूर्ति आंखों के सामने से हटती नहीं थी। यहांतक कि भाषण देते समय विनयकुमार के चेहरेपर उठनेवाले सब भाव—उसकी निष्ठा, प्रगल्भता, तन्मयता और बाह्य-जगत की विस्मृति—अब भी उसे स्पष्ट दीख रहे थे। ऐसा ज्ञात होता था कि अन्धकार के विशाल आवरण में वह अकेला, एक उज्ज्वल आलोक-मूर्ति की तरह खड़ा है और वहां से मानो समस्त मानव-

जाति को अपना दिव्य संदेश दे रहा है। यह सब दृश्य उसकी उत्कट भावनाओं का और कल्पनाशक्ति का खेल था यह निश्चित है। उसपर जो असर हुआ था वह विनयकुमार के ऊंचे डील-डौलवाले शरीर का नहीं। किन्तु उसके तेजस्वी विचारों का जो ज्वालाग्राही बाण की तरह पूर्णिमा के हृदय में जा लगे और जिन्होंने उसकी भावनाओं में एक भयंकर उथल-पुथल मचा दी।

रात में दो बजे के करीब वह सहसा अपने बिस्तरपर से उठी और कमरे के सारे दरवाजे और खिड़कियां लगाकर दिलरुबा बजाने लगी। किन्तु वह दिलरुबा भी दस-पन्द्रह मिनट से ज्यादा नहीं बजा सकी। जबसे उसने होश सम्हाला था तबसे अपने जीवन के इस दुर्भाग्य को तो उसने जाना ही है कि वह मातृ-विहीना है और अब ऐसा कोई स्नेह का स्थान नहीं है जहां वह अपना मस्तक छिपाकर जी भरके रो भी सके। उसके बापू और 'आया' ये सब थे और उससे खूब प्रेम करते थे। लेकिन मां तो मां ही है। उसने अपनी मां का बड़ा फोटो अपने पलंग के सिरहाने दीवाल पर लगाया था। जब उसे विषाद का ऐसा दौर आता तब उसे लगता कि शायद यह उसकी मां की स्मृति ही है जो आकर उसके हृदय के सूनेपन की याद दिला रही है। मातृ-सुख उसने कभी जाना नहीं था। किन्तु न जाने कहांसे उसे यह बात एक अचल सत्य की तरह बार बार अनुभव होती थी कि मां को खोकर उसने जीवन की सबसे बड़ी स्नेह-संपदा को खोया है जिसके बिना वह आज अनाथ है— असहाय है। इस असहायता की भावना ने उसे कितनी वेदना पहुंचाई थी उसकी सीमा नहीं थी। किन्तु विधि के विधान के सामने, वह दुर्बल प्राणी आंसू बहाने के सिवा और क्या करे ?

आज भी वह बिजली की बत्ती जलाकर, अपनी मां के चित्र के सामने आकर खड़ी होगई। उसने उसे नमस्कार किया। केवल इतने से ही उसे सतोष नहीं हुआ इसलिये उसने अपना मस्तक फोटो के सामने रक्खे हुए एक ऊँचे टेबल पर, श्रद्धा से रख दिया जैसे वह मां के चरणों का अपने आंसुओं से अभिषेक कर रही हो। रोज गुड़िया की तरह बन-ठन कर हाथ में टेनिस का रैकेट घुमानेवाली पूर्णिमा में और आज की इस पूर्णिमा में कितना अन्तर !

इस प्रकार मातृपूजा करने के बाद वह फिर अपने बिस्तरपर लेट गई। अपने इस गूढ़ दुख का विश्लेषण वह खुद न कर सकी। वह एक सत्य है जो बार बार उसके जीवन में आकर उसपर छा जाता है, इतना ही उसे मालूम है।

दूसरे दिन प्रातःकाल उसकी भावनाओं का आवेग कुछ कम हुआ। अक्सर ऐसा होता भी है कि भावनाओं को अपनी क्रीड़ा के लिये दिन की अपेक्षा रात्रि का प्रशान्त समय ही जादा सुहावना लगता है। लेकिन सुबह भी वह अपने सोने के कमरे से बाहर नहीं गई। "शान्तिसदन" में खबर फैल गई कि छोटी रानी की तबीयत खराब हैं। उसे देखने के लिये बापू दौड़कर आये और उसकी पीठ पर ममता से हाथ फेरकर उसे कुछ सुख अवश्य दे गये। वे पूर्णिमा के इस 'मूड' को जानते थे और उन्हें मालूम था कि ऐसे समय में उसे स्नेह और एकान्त की आवश्यकता होती है। उनसे जो भी बन पड़ा उन्होंने किया। 'आया' आई, बंगले के नौकर-चाकर भी आये। उस्ताद बहादुरखां भी एक चक्कर लगा गये। वे सब अपनी छोटी रानी को देखकर चिन्तित हो लौट गये।

उस दिन वह कॉलेज नहीं गई। उसके मन में तरह तरह के ख्याल आते थे। आज कई बार उस के दिमाग में विनयकुमार के बारे में विचार आये। उसकी असाधारण प्रतिभा, गहन चिन्तन, विशाल ज्ञान, ओजस्वी वक्तृता इन सब का उस पर गहरा असर पड़ा था। लेकिन सब से अधिक बात जो उसके हृदय पर सदा के लिये जम गई थी वह यह थी कि इस युवक के दिल में सहानुभूति और स्नेह का अथाह सागर भरा पड़ा है, जिसका विस्तार अनन्त है, जिसका जल अमृत समान है, और जो उसके पास जायेगा वह खाली हाथ नहीं लौटेगा—कुछ सुख पाकर ही लौटेगा।

दूसरे युवकों में और इस प्रतिभावान कर्मठ तरुण में कितना फर्क था ? कल रात को उस ने अपने व्यक्तित्व की गहराई का जो परिचय दिया

वह कितना अनोखा था ? यथार्थ में यही एक व्यक्ति मित्रता के योग्य है, जिस पर पूर्ण-रूपेण विश्वास किया जा सकता है और जिसकी मित्रता से सुख और लाभ प्राप्त हो सकता है । किन्तु साथ ही साथ उसके हृदय में कहीं तो भी छिपी हुई यह आशंका भी थी कि विनयकुमार जैसा धीर-गंभीर पुरुष उसकी मित्रता करना पसन्द करेगा या नहीं, क्योंकि उसके सामने वह कितनी उथली, कितनी ओछी है ? उसे यह भी तो ज्ञात था कि विनयकुमार का मत उसके बारे में यदि बुरा नहीं है तो बहुत अच्छा भी नहीं है। हां, उस दिन उसके गायन ने उस पर अच्छा असर डाला था जिसको विनय ने खुद भी कुबूल किया था। उस दिन उस ने कहा था कि पूर्णिमा में उन्हें कोई 'नवीन उन्मीलन' देखने को मिला है। यह क्या है वह स्वयं भी ठीक से नहीं जानती थी, इसलिये उसकी क्या कीमत है और विनय के लिये उस के क्या मानी हैं इस का वह ठीक से अन्दाज नहीं लगा सकी ।

दिन भर तो उस की हालत ठीक रही किन्तु ज्योंही संध्या रानी का आगमन होने लगा तब पूर्णिमा की विकलता फिर बढ़ गई। बापू क्लब चले गये थे । उसे अपना अकेलापन अखरने लगा। उसे चिन्ता हुई कि शाम को यदि ऐसा हाल है तो रात कैसे बीतेगी । वह ऐसा कुछ करना चाहती थी जिससे उस का एकाकीपन दूर हो और उसके अन्तस्तल को कुछ शांति मिले। एकाएक उसके दिमाग में एक विचार आया। उसने विनयकुमार के नाम एक छोटा सा पत्र लिखा:—

श्री विनय बाबू,

कल रात से मेरी तबीयत खराब है। इसी कारण आज मैं कॉलेज नहीं जा सकी। आप से मिलना चाहती हूं। यदि आप को समय हो और आप आने का कष्ट कर सकें तो बड़ी कृपा होगी। आप की प्रतीक्षा करुंगी। कष्टों के लिये क्षमा करें।

—पूर्णिमा पण्डित.

चपरासी पत्र लेकर साइकिल पर भागा। भाग्यवशात् विनय् घर पर ही था—घूमने जाने की तैयारी कर रहा था। लिफाफा देख कर उसे आश्चर्य जरूर हुआ। यह सच था कि उसके जैसे बुद्धिमान मनुष्य के ध्यान से यह बात नहीं बची थी कि पूर्णिमा पर उस के व्यक्तित्व का कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा है और वह उसकी मित्रता की इच्छुक है। कल रात को उसके भाषण के बाद उसका अभिनन्दन और उसके पीछे की स्नेह भावना उसकी आंखों के सामने साफ तौर से दीख रही थी। इससे वह आनंदित भी हुआ था।

उस दिन पूर्णिमा की वर्ष गांठ के अवसर पर उसके संगीत के लिये जो हार्दिक अभिनन्दन किया था उसका असर भी उस रमणी पर हुआ था यह वह जानता था । और उसके भी पहले लायब्रेरी में जो थोड़ीसी बात चीत हुई थी वह भी यही सुझाती थी कि पूर्णिमा उससे परिचय बढ़ाना चाहती है ।

इतनी सब बातों के बाद, और आज के इस पत्र के कारण उसका दिमाग पूर्णिमा के बारे में ही सोचता रहा ।

पूर्णिमा बीमार थी इसलिये उसके पत्र की अवहेलना कदापि नहीं की जा सकती थी। उस ने सोचा, जाना तो पड़ेगा ही।

वह चल पड़ा तो उस का विचार चक्र भी शुरू हुआ ।

यह पूर्णिमा अजीब लड़की मालूम पड़ती है ? तितलियों की तरह सजना धजना,-फुदकना ही इसे आता है—खेलना-कूदना और मौज करना यही उसका नित्य का नियम है जैसे जीवन की गंभीरता उसे छू ही नहीं गई है। टेनिस खेलना, सिनेमा देखना, हा-हा ही-ही करना यही जीवन का आदर्श मालूम पड़ता है। विलास और आमोद-प्रमोद के सिवा उसे किसी में दिलचस्पी नहीं है । अध्ययन, चिन्तन, वाद-विवाद, ज्ञान-चर्चा, गंभीरता जैसे वह जानती ही नहीं । फैशन की वह रानी है और सौन्दर्य की सम्राज्ञी ।

कॉलेज में जिस तरफ से वह निकल जाती है उसके रास्ते पर कई लालायित आंखें बिछ जाती हैं। कितने ही युवक उसके पीछे पागल की तरह उसकी एक मुसकुराहट या शब्द के लिये भटका करते हैं। वह भी अपनी इस सौन्दर्यशक्ति के प्रभाव को जानती है और पुरुषों पर उसका कितना असर है

यह भी उसे मालूम है। कभी कभी तो उसे ऐसा भी लगा कि शायद इस ज्ञान के कारण उसमें कुछ गर्व भी आ गया है। ये सब बातें विनयकुमार को पसन्द नहीं है इसलिये उसका मत इस युवती के बारे में अच्छा नहीं है!

किन्तु दो एक घटनाएँ ऐसी हो गईं जिसने उसके इस मत को धक्का दिया। वर्ष-गांठ के दिन का वह स्वर्गीय संगीत! कला की साधना में वह कितनी ऊंची उठ गई थी? कितनी गहनता, गूढ़ता और गांभीर्य बतलाया था उसने उस दिन? वह भी, सहसा किसी स्त्री के प्रभाव में न आनेवाला युवक, उस दिन पूर्णिमा के कला-गुण के कारण उसके प्रभाव में आये बिना नहीं रहा। यही कारण था जो उसने इस प्रकार उस रोज खुले शब्दों में पूर्णिमा का अभिनन्दन किया था। और कल—जब पूर्णिमा उसके भाषण से इतनी अधिक प्रभावित हुई थी कि उसका एक एक शब्द उसके हृदय के विचलित भावों का प्रतिबिम्ब बनकर बोल रहा था — उसने देखा कि एक नवीन पूर्णिमा उसके सामने खुल रही है। ऐसी पूर्णिमा जो तितली की तरह उडने फुदकनेवाली क्रीडाप्रिय नारी से भिन्न है। इस पूर्णिमा से, उसने अनुभव किया कि उसे दिलचस्पी है। वह चाहता है कि उसके जीवन का यह पहलू अधिकाधिक विकसित हो, जिसकी शक्ति और प्रखरता के आगे उसका ओछा, उच्छृंखल व्यक्तित्व दब जाय और पूर्णिमा के जीवन की दिशा ही इस तरह बदल जाय। उसे विश्वास था कि यदि यह परिवर्तन हो सका तो पूर्णिमा का व्यक्तित्व महान, आदर्शकारी, उज्ज्वल और परम यशस्वी हो जावेगा और उसका जीवन समाज और मानवता के लिये लाभदायक हो सकेगा। किन्तु यह सब कब होगा? कैसे होगा? इसका ठीक ठीक उत्तर विनयकुमार को ढूंढे नहीं मिला!

वह मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञाता था। उसमें एक सुप्त शक्ति थी जिसका दूसरे नर-नारियों पर फौरन असर पड़ता था। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि प्रत्येक मानव के व्यक्तित्व में ऐसे छिपे हुए तत्व रहते हैं जिन्हें यदि जाग्रत किया जाय और उसके हृदय को छुआ जाय तो उसमें आश्चर्यजनक उन्नति हो सकती है। जिन्हें समाज पतित और पापी कहता है वे भी साधु-चरित हो सकते हैं। आवश्यकता है केवल उन्हें जगानेवाली शक्ति की। वह शक्ति, सहानुभूति, सहृदयता, और प्रेम है, ऐसी विनयकुमार की धारणा थी। कई लोगों के जीवन को अबतक उसने इसी तरह प्रभावित किया था। कई टूटे हुए दिलों में आशा का नवजीवन फूंक कर उसने हरा-भरा कर दिया था। कई पीड़ित-प्रताड़ित व्यक्तियों को उनके निराशा के गति से ऊपर उठाया था और उन्हें उन्नति और सुख के जीवन के लिये आशा और प्रेरणा दी थी। पता नहीं पूर्णिमा विनयकुमार की इस शक्ति को जानती थी या नहीं। किन्तु आज उसने अपने अन्तर्मन में यही अनुभव किया कि उसके इस विषाद में शायद विनयबाबू ही कुछ शान्ति पहुंचा सकें। उसे आज परावलंबन के भाव का भान हुआ और उसे किसी की सांत्वना की, सहानुभूति की, आवश्यकता मालूम हुई। और सब से पहिले उसकी नजर पड़ी तो विनयकुमार पर।

जब विनयकुमार पूर्णिमा के बंगले पर पहुंचा तब शाम ढल रही थी। पूर्णिमा अपने बिस्तर पर एक बड़े तकिये के सहारे बैठी हुई थी। उसके पैरों पर एक सुन्दर कम्बल पड़ा हुआ था। विनयकुमार के लिये पास ही एक कुर्सी रख दी गई थी। कुर्सी और पलंग के बीच में एक छोटासा टेबल था, जिसपर एक फूलदान रखा हुआ था। ज्योंही विनयकुमार उसके कमरे में घुसा त्योंही पूर्णिमा ने स्मितपूर्वक जरा झुककर, उसे नमस्कार करते हुए कहा—

" आइये, आइये। आपने बड़ी कृपा की। मुझे माफ कीजिये मैं आज उठकर बैठ नहीं सकती हूँ—आपने यहां आने का जो कष्ट किया उसके लिये उपकृत हूँ। "

" नहीं, कष्ट की कोई बात नहीं। आप आराम से लेट सकती हैं—मेरे सामने औपचारिक शिष्टाचार पालने की जरूरत नहीं है। उससे मुझे दुख होता है। " विनयकुमार ने हंसकर कहा। उसके बोलने का ढंग इस तरह खुला था कि पूर्णिमा की सारी हिचकिचाहट जाती रही। दो ही मिनट के अन्दर उन दोनों के बीच इस प्रकार चर्चा होने लगी जैसे वे पुराने, घनिष्ठ मित्र हों।

"कहिये, क्या शिकायत है ?—बुखार है !"

"जी, नहीं, बुखार तो नहीं है। मैं खुद भी नहीं जानती कि मुझे क्या हो गया है। कल रात तक मैं अच्छी थी लेकिन आपका भाषण सुनने के बाद में घर लौटी तब से न जाने क्यों मेरा जी कुछ ऐसा उचट गया है कि किसी बात में नहीं लगता। कल तो रातभर नींद नहीं आई।"— पूर्णिमा ने अपने मर्ज का हाल बताया।

"क्या आपको जब-तब इसी प्रकार के विषाद के दौर आ जाया करते हैं ?" — विनयकुमार ने पूछा।

"जी, हां।" पूर्णिमा ने आश्चर्यान्वित होकर कहा। "तीन चार महीने में अक्सर मेरा इस तरह का 'मूड' बन जाता है जो बेचैन कर देता है। तब मेरी उदासीनता का कोई ठिकाना नहीं रहता।"

पूर्णिमा को ताज्जुब हुआ कि विनय को इसका कैसे अन्दाज हो आया मानों वह एक डाक्टर हो जो अपने रोगी के मर्ज का अचूक निदान कर रहा हो। पूर्णिमा ने यह भी अनुभव किया कि उसे विनयकुमार के आगे अपने सुख-दुख की बात कहने में कोई संकोच नहीं होगा।

"आपसे एक व्यक्तिगत बात पूछता हूँ, माफ करें। आपके जीवन में कहीं कोई दुख तो नहीं छिपा हुआ है। . . . मां की स्मृति ? — उनकी मृत्यु कब हुई थी ?—वही न आपकी मां का चित्र है ?" उस फोटो की तरफ निर्देश करते हुए विनय ने पूछा।

पूर्णिमा को लगा जैसे विनयकुमार ने उसके मर्मस्थल को छू दिया हो। उसकी आंखें मां के चित्रपर गड़ गईं और उसकी वे सब भावनाएं जाग उठीं जो कल रात्रि को माता की स्मृति में अनुभूत हुई थीं। उसकी आंखों में आंसू आ गये। और किसी पुरुष के सामने तो रोने में पूर्णिमा को संकोच होता किन्तु विनयकुमार के सामने, न जाने क्यों, उसे कोई हिचकिचाहट नहीं मालूम पड़ी। उसकी गीली आंखें देखकर विनय का हृदय सहानुभूति और वेदना से भर गया। उसने मृदुल स्वर में कहा,

"क्षमा कीजिये पूर्णिमा देवी, मैंने आपको इस बात से दुख पहुँचाया है—"

"जी नहीं — बिलकुल नहीं।" पूर्णिमा ने अपने रेशमी रूमाल से आंसू पोंछते हुए कहा। भावना के आवेग के कारण वह कुछ देर तक न बोल सकी। विनयकुमार भी चुप रहा। कुछ समय के बाद पूर्णिमा ने अपने आपको संभालते हुए एक निःश्वास लेकर कहा, "मुझे ठीक ठीक पता नहीं कि मेरा दुख मेरी माता की स्मृति ही है या और कुछ। उसे मैंने देखा है इसका तो स्मरण भी नहीं। उसकी मृत्यु के समय मैं केवल दो वर्ष की थी। किन्तु मैं कभी कभी उसकी कमी को बड़ी तीव्रता से अनुभव करती हूँ, विशेषतः जब मुझे यह भान होता है कि मेरे लिये ऐसी कोई गोद नहीं है जिसमें मैं अपना सिर रखकर जी भरकर रो सकूं।"

पूर्णिमा के व्यथा से भरे प्रत्येक शब्द ने विनयकुमार के हृदय को द्रवित कर दिया। उसने भी दुख का एक निःश्वास लेकर कहा, "हो सकता है यही आपके अवसाद का कारण हो। कई बार तो मनुष्य के जीवन में न जाने कहां से विचित्र विषाद का प्रादुर्भाव हो जाता है जिसकी कारण-मीमांसा भी नहीं की जा सकती। पता नहीं वह जन्म-जन्मान्तर की वेदना है जो उसके जीवन में उतर आई है या और कुछ। किन्तु वह सर्वथा दुख का ही कारण नहीं है यह भी हमें जान लेना चाहिये। सुख और दुख, आनन्द और विषाद ये सब हमारे भावनात्मक जीवन की अमूल्य निधि हैं, जिन्हें हम कदापि छोड़ नहीं सकते। जैसे आनंद हमारे हृदय को प्रफुल्ल करता है और हम उसकी सदैव कामना करते हैं उसी प्रकार दुःख का भी हमें हर्ष के साथ स्वागत करना चाहिये और धीरज के साथ उसका सामना करना चाहिये। इसी में पुरुषार्थ है, मानव जीवन की सफलता है। मेरे जीवन में भी तो ऐसा ही कोई विषय कहीं से आ गया है। किन्तु मैंने कभी इसकी दिल में भी शिकायत नहीं की और न यह महसूस किया कि मैं अभागा हूं या पीड़ित हूं।"

पूर्णिमा एकाग्रता से विनयकुमार की बातें सुनती रही। उनसे उन्हें शान्ति मिली। धीरज की बात से उसे भी धीरज हुआ। उसके मन में भी यह अभिलाषा जाग्रत हुई की वह जीवन के दुःखों का बहादुरी से मुकाबला करे,

उनके सामने हारे नहीं । इस अभिलाषा ने उसे बल दिया। किन्तु साथ ही साथ उसे विनयबाबू के जीवन की कहानी सुनने की इच्छा हुई। उसका कुतूहल जागा। उसने आग्रह-पूर्वक विनयकुमार से कहा।

“आप के जीवन की कहानी ? बतलाइये न विनयबाबू उसे ? मैं सुनने के लिये बड़ी उत्सुक हूँ।” उसके आग्रह में बच्चों की सी आतुरता थी, भोलापन था।

“वह कहानी तो मैं कभी और सुनाऊंगा आज आप मुझे आग्रह न करें। आप का मन इतना स्थिर नहीं है कि आप उसे शान्ति से सुन सकें। आज तो मैं केवल यही चाहता हूँ कि आप का दुःख कुछ हलका हो जाय और आपका स्वास्थ्य सुधरे ”।

यद्यपि पूर्णिमा की उत्कण्ठा इससे बढ़ गई, उस-ने अपना आग्रह छोड़ दिया। विनयकुमार के सान्निध्य में उसकी सहानुभूति से, उसका विषाद बहुत कुछ हल्का हो गया था। बातचीत के सिल-सिले को आगे बढ़ाते हुए उसने कहा

“कल आप का भाषण बहुत सुन्दर हुआ-गजब कर दिया आपने। इतना ज्ञान——”

“ऊँह ! उसमें क्या है।” विनयकुमार ने ऐसा मुंह बनाया, जैसे वह इस प्रसंशा की कोई परवाह न करता हो। इस विषय में पूर्णिमा का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। दो मिनट तक दोनों स्तब्ध रहे। फिर विनयकुमार ने कहा—

“मुझे अचरज हुआ कि आपको वह भाषण पसन्द आया। मैंने तो सुना था कि भाषणों और वादविवादों से आप की दिलचस्पी नहीं है।”

पूर्णिमा विनयकुमार के व्यंग से मन-ही-मन लज्जित हुई। उसे फिर स्मरण हुआ कि विनयकुमार को उसका यह स्वभाव पसन्द नहीं है।

“यह सच है कि मुझे ‘सीरियस’ बातें अच्छी नहीं लगतीं। मैं जीवन को एक स्पोर्ट (खेल) मानती हूँ। मनुष्य को हमेशा हँसते-खेलत रहना चाहिए। फिलासफरों की तरह रोतां सूरत बनाकर जिन्दगी बसर करना मैं नहीं गवारा कर सकती। दुनिया में जितने दिन रहना है उतने दिन मौज ही करना चाहिए —” पूर्णिमा इस तरह बोल रही थी जैसे वह कोई जीवन की बड़ी फिलासफी का विवेचन कर रही हो।

“फिर आज आप क्यों रोईं थीं ?” विनयकुमार ने बात बीच ही में काटकर एक मार्मिक प्रश्न किया जो पूर्णिमा को आघात की तरह लगा। वह इस अनपेक्षित प्रश्न से एकदम चुप हा गई।

“पूर्णिमा देवी ! जीवन इतना सरल नहीं है” विनय ने आवेश के साथ कहा जैसे सरस्वती फिर उसकी जिव्हापर बैठ गई हो। “आप भले ही जीवन को स्पोर्ट मानिये और केवल आनन्द की अभिलाषा और विलास की पूजा ही कीजिए। किन्तु नियन्ता की मनीषा कुछ और ही है और उसके विरुद्ध मनुष्य के पास कोइ चारा नहीं है। आपही के जीवन की तरफ देखिये आपको किस बात की कमी है ?

रूप है, धन है, संगीत कला-प्रवीणता है और आपको ऐसे पिताकी छत्र-छाया प्राप्त है जो आपके सुखमय जीवन में कोई बाधा पहुँचाना नहीं चाहते। फिर भी आप पूर्णरूपेण सुखी नहीं हैं। कल रात से आपके सुख का साम्राज्य ताश के बंगले की तरह टूट गया है और उसे अब तक आप समेट नहीं सकी हैं। जीवन आपही की इच्छा-अनिच्छा का सवाल नहीं है। उसमें कई शक्तियां काम करती हैं जिन पर आपका कोई काबू नहीं है। इस बात से हमें सबक सीखना चाहिए। भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में कोई पुरुषार्थ नहीं है—उसके लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता भी नहीं होती। पतन के लिये परिश्रम की जरूरत नही है; उत्थान के लिये पुरुषार्थ की जरूरत है। जीवन हो तो उल्का की तरह हो। एक ही क्षण का क्यों न हो, किन्तु अपनी प्रतिभा के आलोक से वह सारे विश्व को चकाचौंध कर देता है। हम संस्कारी नर-नारी कहलाते हैं — हमारे लिये यही ध्येय अभीष्ट है कि हम अपना जीवन उज्वल, उन्नत और उपयोगी बना सकें। वरना यूं तो वैसे सभी दो शाम भोजन कर जी लेते हैं। लेकिन इतिहास उनका नाम अपनी किताब में नहीं लिखता और न उनकी मृत्यु पर करुणा-गीत ही गाये जाते हैं।

मैं आपसे ये बातें इसलिये कर रहा हूँ पूर्णिमा-देवी, कि मेरा विश्वास है कि आपमें प्रतिभा है, योग्यता है—भले ही वह इस समय सोई हुई हो। उसे जाग्रत कीजिय, उसकी अभ्यर्थना कीजिये और फिर देखिये उसका अद्भुत प्रसाद। आपके जीवन की उस प्रतिभा के प्रति मेरी दिलचस्पी है, आदर है—मैं चाहता हूँ कि उसकी मैं कुछ सेवा कर सकूं। किन्तु आपकी उस फिलासफी से, जिसमें हँसना-खेलना और मौज करना ही लिखा है, मेरा कोई सरोकार नहीं है। समाज को सजी सजाई गुड़ियों की और पुरुषार्थ-हीन पुरुषों की आवश्यकता नहीं है। हमारा देश आज इसी फिलासफी के पाप को भुगत रहा है जो पश्चिम से यहां आई है। वह जितनी जल्दी यहां से चली जाय उतना ही हमारे अभागे भारत के लिये कल्याणकारी है।"

विनयकुमार इतना सब आवेग में कह गया। उसकी आंखें सात्विक संताप से चमक उठीं। उसे यह जरूर लगा कि वह कुछ सख्त बातें कह गया है। लेकिन उसका स्वभाव ऐसा नहीं था कि सत्य को छिपा कर रखे या पथ्यकारी बात को जानवूझकर मृदु बनाने की कोशिश करे।

पूर्णिमा विनयकुमार के इस सात्विक संताप के आक्रमणों से अप्रतिभ हो उठी। वह मन-ही-मन झुंझलाई थी। किन्तु वह जानती थी कि विनय जो कह रहा है वह सच है और उससे एतराज नहीं किया जा सकता। इस प्रकार की ऊंची ध्येयवादिता उसे दूर से आकर्षित तो करती थी पर उसके लिये जो कीमत देनी पड़ती है उससे वह घवड़ाती थी। यही उसकी कमजोरी है।

पूर्णिमा यह सब ध्यान से सुनती रही। वह चुप थी। विनयकुमार भी जो कहता था वह कहकर चुप हो गया। फिर अचानक उसने घड़ी की तरफ देखकर कहा—

"ओफ! आठ बज गये? काफी वक्त हो गया। अब मैं चलता हूं। आपको मेरे कारण काफी तकलीफ हुई आज। आपकी तवीयत जल्दी सुधरे यही मेरी कामना है।" इतना कहकर वह इस तरह निर्मल हँसी हँसा कि उसमें उसकी सारी गंभीरता वह गई। उसका संपर्क पूर्णिमा को भी लगा और वह भी हँस पड़ी। विनयकुमार को रोकने की शक्ति उसने स्वतः में नहीं पाई। और जब विनयकुमार ने उसे नमस्कार किया तब प्रति-नमस्कार करने के अलावा उससे और कुछ न बन पड़ा। अन्त में केवल यही शब्द उसके मुँह से अकस्मात् निकल पड़े—"और आइयेगा।"

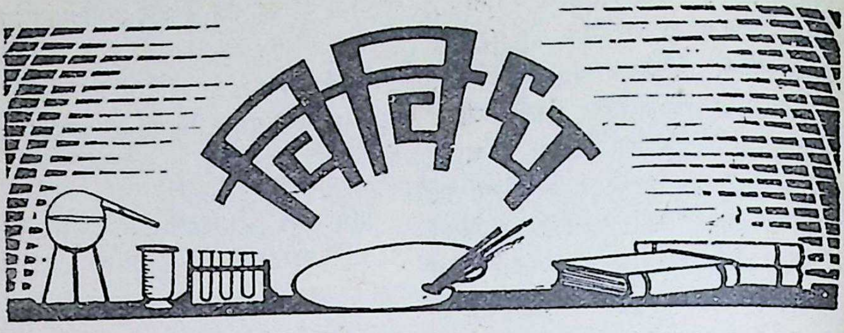

साहित्यिक गोष्ठी में—

जैनेन्द्र कुमारजी ।

गत १३ मार्च को ग्वालियर में, श्रीयुत काशीनाथजी त्रिवेदी द्वारा आयोजित एक साहित्यिक गोष्ठी में अपने व्यक्तिगत विचार प्रगट करते हुए जैनेन्द्रजी ने कहा कि उन्होंने साहित्य की सेवा न तो कला को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से की है और न हिन्दी के प्रचार की दृष्टि से। आजकल जो मेरी रचनाएँ सामने नहीं आ रही हैं, उसका कोई खास कारण नहीं है। उन्होंने कहा कि उनके न लिखने से लोगों के मन में जो विचार उठते हैं या साहित्य में जो अभाव खटकता है, उसकी जिम्मेदारी की गंभीरता को वे महसूस नहीं करते। पुस्तक-प्रकाशकों और लेखकों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि दोनों में सम्बन्ध और ऊपरी मित्रता होते हुए भी अविश्वास वना हुआ है।

गान्धीवाद के प्रभाव की चर्चा करते हुए जैनेन्द्रजी ने कहा कि उस समस्या से जो वातावरण तैयार हुआ उससे भारतीय राष्ट्रीयता का निर्माण हुआ है और अव भी यदि सांस्कृतिक, नैतिक एवं मानवता की पृष्ठभूमि को प्रथम बलवान बनाकर चला जायगा, तो भारत की राष्ट्रीयता कायम और सफल रहेगी।

आपके साहित्य-प्रेम की आज परीक्षा है।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी हिन्दी के साहित्य-धनी हैं। वे विचारक हैं, निबंधकार हैं, कहानी-लेखक और कवि हैं। आचार्य द्विवेदी जी ने उन्हें वड़े विश्वास और गर्व के साथ सरस्वती मासिक प्रत्रिका १९२१ में पालन पोषण के लिये सौंपी थी। प्रान्त में इने गिने ही हिन्दी साहित्य-सेवी वख्शी जी के सामान निर्लिप्त भाव, निस्वार्थ भाव और स्वान्तः सुखाय हिन्दी की सेवा करते होंगे। वख्शी जी ने प्रोपैगंडा के युग में भी अपने आप को छिपाये रखा और साहित्य-सेवा एकान्त में रहकर केवल इसलिए की; क्योंकि साहित्य-सेवा उनका धर्म था, उनकी प्रेरणा थी, उनका जीवन-रस था। वे भूखे रह सकते थे पर हिन्दा-सेवा के विना नहीं रह सकते थे। इसी भावना ने उन्हें साहित्य-मंदिर का पुजारी वनाया।

वख्शी जी आज संकट मे हैं। वे उस आर्थिक संकट के करुण और वेचैन शिकार हैं जिससे हर निरीह, निस्वार्थ हिन्दी-सेवी आज के युग में संघर्ष करता रहता है।

वख्शी जी ५० वर्ष कर चुके हैं। गरीव भारत में यह सीमा पार करते ही जीवन

संध्या में पूर्ण प्रकाश, पूर्ण आलोक, पूर्ण संतोष भरना हमारा कर्त्तव्य है। यह कार्य महलों से नहीं होगा, यह कार्य बँगलों और भवनों से नहीं होगा इसे झोपड़ियों और मिट्टी के मकानों के नन्हें नन्हें दिये ही कर सकेंगे।

बख्शी जी आज रोगग्रस्त हैं। यदि उपचार की पूरी व्यवस्था नहीं की गई तो संभव है उन्हें कैंसर नामक भयंकर दुर्दान्त रोग घेर ले और तब हम अपने साहित्यरथी की कुछ भी रक्षा न कर सकेंगे। अर्थाभाव जन्य लापरवाही और जीवन के प्रति उपेक्षा ने ही शरीर की यह हालत कर दी कि समय के पूर्व ही वह वृद्ध दिखने लगा और अवसर की ताक में सदैव बैठे रहने वाले रोग उस पर चारों तरफ से आक्रमण करने लगे।

आज बख्शी जी की ऐसी हालत है कि वे लोक कल्याण और हिंदी-हित के लिए जीने की इच्छा करते हुए भी अपना पूर्ण उपचार नहीं करा सकते बख्शी जी सरीखा कलम का धनी स्वाभमानी साहित्य सेवी अपनी चिकित्सा कैसे करावे?

यदि हिंदी-प्रेमी चाहते हैं कि बख्शी जी और जियें, सुख से, संतोष्र से चिन्ता रहित जियें तो प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी, हिन्दी-सेवी, हिन्दी-संरक्षक और हिन्दी के हिमायती का कर्त्तव्य है कि वह अपना अधिक से अधिक सहयोग देकर इन कीमती प्राणों को बचावे, इस जागरूक सबल मस्तिष्क को कलम की नोक पर उतरने की साधनों भरी, उत्साहभरी प्रेरणा दे और हिन्दी के इस सवक का अकाल मृत्यु न मरने दे।

आपकी आज परीक्षा है। आपका साहित्य-प्रेम कसौटी पर चढ़ना है। आपको बतलाना है कि हिन्दी जनता की भाषा है, जनता के दुखदर्दों को व्यक्त करती है और उसके सच्चे पुजारियों की जनता सिर आँखों पूजा करती है।

आपको बख्शी-अभिनन्दन-निधि में उदारतापूर्वक सहयोग देना है। आपका अल्प से अल्प सहयोग दान इस महान साहित्यक के जीवन में आशा की किरणें ला सकेगा इतना आप विश्वास रखें। आप अपना सहयोग-दान सहायता 'बख्शी-सहायक निधि' 'विचार' कार्यालय, माउन्ट रोड नागपुर को शीघ्र भेजें।

हाइड्रोजन बम कैसे बनते हैं।

रूस और अमेरिका दोनों के पास ऐसे बम हैं?

परमाणु युद्ध के प्रथम दौर में ही ४० या इतने ही हाइड्रोजन बमों से १ अरब लोग समाप्त हो जायंगे। हाइड्रोजन बम का अर्थ मृत्यु विनाश और सभ्यता का पूर्ण ध्वंस है। एक प्रमुख अमेरिकिन वैज्ञानिक तथा केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. पौलिंग के उपर्युक्त शब्द उस भीषण भविष्य की ओर संकेत करते हैं, जिसकी ओर आज संसार बढ़ता जा रहा है और जिसकी आशंका हाइड्रोजन बमों के निर्माण के द्वारा बढ़ गई है। एक अरब मनुष्यों के संहार का अर्थ होता है, संसार की वर्तमान जनसंख्या के आधे भागका विनाश। कहा गया है कि ऐसे भयंकर आविष्कारों से कुछ ही वर्षों में किसी देश के लिये संसार का विनाश करना सम्भव हो सकता है। प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक प्रो. आइन्स्टीन ने, जिन्होंने हाइड्रोजन बम के निर्माण में सहायक कई सिद्धान्तों का आविष्कार किया है, स्वयं यह स्वीकार किया है कि हाइड्रोजन बम अब एक प्राप्य वस्तु जान पड़ने लगा है और उसके रूप में विनाश और अधिकाधिक संहार दिखाई दे रहा है। पं. जवाहरलाल नेहरू ने हाल में एक वक्तव्य में कहा है कि अगर आप वर्तमान संसार को बहुत बुरी चीज समझते हैं तो अच्छा है कि हाइड्रोजन बम इसे समाप्त कर दे और यदि आप कुछ शालीनता के साथ

वर्तमान संसार को कायम रखना चाहते हैं, तो हाइड्रोजन बम को समाप्त कर दीजिये।

यह परमाणु बम से १००० गुना विध्वंसक और १००० मील प्रदेश को नष्ट करने वाला संसार का संहारकर प्रलय की संभावना रखने वाला आज का भयंकरतम अस्त्र हाइड्रोजन बम किस प्रकार बनता है, इस पर यहां कुछ प्रकाश डालना रोचक होगा। प्रारम्भ में ही यह कह देना आवश्यक है कि हाईड्रोजन बम वास्तव में किस प्रकार बनता है, यह तो एक भारी गूढ रहस्य है, और इसका पता अमेरिका के कुछ वैज्ञानिकों को छोड़कर दूसरे किसी को शायद ही हो। अतः हाइड्रोजन बम का पुरा नुस्खा बताना तो असंभव है। यहां केवल उन थोड़े से सिद्धांतों पर प्रकाश डाला जा सकता है, जिनके आधार पर हाइड्रोजन बम का निर्माण होता है।

हाइड्रोजन बम जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट होता है, मुख्यतः हाइड्रोजन द्वारा बनता है। हाइड्रोजन वैसे तो गैस अर्थात् वायु रूपी पदार्थ है, परंतु विशेष वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा वह तरल या ठोस रूप में परिवर्तित कर दी जाती है। साधारणतः बहुत नीचे तापमान में हाइड्रोजन तरल के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इसी तरल या ठोस हाइड्रोजन का प्रयोग बमों के निर्माण में किया जाता है।

इस बम का आधारभूत सिद्धान्त परमाणु बम जैसा ही है। परमाणु बम यूरेनियम या प्लूटोनियम से बनते हैं। यूरेनियम या प्लूटोनियम के एक परमाणु को विशेष प्रतिक्रियाओं द्वारा खंडित करने पर एक बड़ी शक्ति का प्रस्फोटन होता है। इसी प्रकार हाइड्रोजन को हीलियम में परिवर्तित करते समय भारी शक्ति का जन्म होता है। यदि आधी छटांक भी हीलियम तैयार की जाय तो उससे उतनी प्रबल शक्ति उत्पन्न होती है, जो १० लाख हार्स पावर की ७ घन्टे तक की शक्ति के बराबर होती है, किन्तु इस परिवर्तन के लिये वैज्ञानिकों के अनुसार बहुत भयंकर गर्मी की आवश्यकता होती है। कई लाख डिग्री की गर्मी, इतनी गर्मी जितनी कि सूर्य बिम्ब के मध्य में हो सकती है। वास्तव में तो सूर्य भी एक बड़ा हाइड्रोजन बम ही है, क्योंकि सूर्य बिम्ब का ३५ प्रतिशत भाग हाइड्रोजन का ही है। इतनी अधिक गर्मी पृथ्वी पर लाना असंभव है, किन्तु हीरोशिमा को नष्ट करनेवाले भयंकर परमाणु बमों के विस्फोटन के समय कुछ क्षणों के लिये ऐसी भीषण गर्मी उत्पन्न हो जाती है। अतः हाइड्रोजन बम के निर्माण के लिये एटम बमों का प्रयोग किया जायगा।

अब प्रश्न यह है कि अमेरिका ने हाइड्रोजन बम बना लिया है और रूस के पास भी ऐसे बम हैं। हाइड्रोजन बम के निर्माण की विधि पहले-पहल १९४६ में जापान पर परमाणु बम गिराये जाने के एक वर्ष बाद ही एक आस्ट्रेलियन वैज्ञानिक डॉ. हेम्स थाइरिंग ने बताई थी, तब से अमेरिका का ध्यान उसकी ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ; क्योंकि तब तक यह अनुमान किया जाने लगा था कि परमाणु बम का रहस्य रूस को भी ज्ञात हो गया है।

फिर भी हाइड्रोजन बम की विशेष चर्चा पिछले कुछ महीनों से ही सुनाई दी है, जबकि गत जनवरी में प्रेसीडेन्ट ट्रूमन ने परमाणु शक्ति कमीशन को यह आदेश दिया कि हाइड्रोजन बम का निर्माण किया जाय। ट्रूमन ने यह कहा था कि हमें किसी भी आक्रान्ता से अपने देश की रक्षा के लिये ऐसे बम रखना आवश्यक है। परमाणु शक्ति कमीशन ने इसके बाद शीघ्र ही वहां की कांग्रेस को रिपोर्ट दी कि वह नये प्रकार के बम बना रहा है। अनुमानतः एक हाइड्रोजन बम बनाने में ३५ करोड़ रुपये से लगाकर १४ अरब रुयया तक व्यय होता है और अनुमान होता है कि अमेरिका की कांग्रेस यह विपुल धन राशि व्यय करने के लिये तैयार है। वहां के दोनों भवनों—कांग्रेस और सीनेट और दोनों दलों—रिपब्लिकन और डेमोक्रेट के सदस्य इस बात पर एक मत हैं कि राष्ट्रपति ट्रूमन को अमेरिका को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये सब प्रकार का प्रयत्न करना चाहिये। पहले खबर थी कि परमाणु शक्ति कमीशन संसार का पहिला हाइड्रोजन बम १९५१ में या उससे भी पूर्व तैयार करके फोड़ेगा और यह परीक्षण प्रशान्त महासागर के किसी दूरवर्ती द्वीप में किया जायगा। किन्तु हाइड्रोजन बम निर्माण का उक्त रूप में खुला आदेश दिये जाने के कारण कुछ लोगों का तो अनुमान है कि अमेरिका पहिले ही हाइड्रोजन बम का निर्माण कर चुका है और गत दिसम्बर में प्रशान्त महासागर में उसका परीक्षण भी कर लिया गया है। इस प्रकार यह निश्चित जान पड़ता है कि अमेरिका ने हाइड्रोजन बम बना लिया है।

क्या रूस ने भी ऐसा बम तैयार कर लिया है। रिपब्लिकन प्रतिनिधि स्टरलिंग कोले ने हाल में कहा था, ट्रूमन ने हाइड्रोजन बम निर्माण का आदेश देकर रूस को आमंत्रण दिया है कि वह भी हाइड्रोजन बम बनाये और ऐसे बंम के प्रयोग अमेरिका में रूस की अपेक्षा ज्यादा खुला हुआ है। सीनेटर मेकमहोन ने कहा है——हाइड्रोजन बम पर हमारा ही एकाधिकार नहीं है। यह केवल समय का प्रश्न है——बहुत थोड़े समय का जब कि रूस भी इसमें सफलता प्राप्त कर लेगा। खबरों से अनुमान होता है कि शायद रूस ने यह सफलता प्राप्त करली है। लन्दन की गत ६ फरवरी की एक खबर में कहा गया था कि जिस व्यक्ति ने रूस में परमाणु बम के विस्फोट की खबर दी थी उसी ने यह दावा किया है कि इस बात के प्रमाण मिले हैं कि रूस ने हाइड्रोजन बम तैयार कर लिया है। यह व्यक्ति है केनेथा डी कोर्सी और उसने अपने मासिक पत्र 'इनटेलिजेन्स अइलेस्टा' में उक्त दावा किया है। बर्लिन की खबर में तो कहा है कि रूस ने एक ऐसा आविष्कार किया है, जिसके आगे हाइड्रोजन बम भी एक पुरानी वस्तु बन गया है। वह हाइड्रोजन बम से भी अधिक शक्तिशाली है।

इस प्रकार रूस और अमेरिका में संहारक अस्त्र शस्त्र बनाने की होड़ सी लगी हुई है। इस होड़ को रोकने के प्रयत्न भी चल रहे हैं। परन्तु उनमें सफलता कहां तक मिलेगी, यह देखना है।

गणराज्य का प्रथम आय-व्ययक (बजट)

सन् १९५०-५१ में वर्ष के लिये भारतीय गणराज्य के आय-व्ययक में ९ करोड़ ६२ लाख की बचत अनुमान की गयी है। केन्द्रीय शासन की इस वर्ष में समूची आय ३४७·५ करोड़ और मूलव्यय ३३७·८८ करोड़ होने का अनुमान है। स्मरण रहे गत वर्ष के आय-व्ययक में शासन को ३ करोड़ ७४ लाख का घाटा हुआ था।

आय-व्ययक की ये विशेषतायें हैं:— करों में इस वर्ष जो छूटें दी गयी हैं उनसे शासन की समूची आय में ८.३१ करोड़ की कमी हो जायगी। इससे अन्त में विशुद्ध बचत १.३१ करोड़ की रह जायगी। आय-व्ययक में अन्य करों के अतिरिक्त आय कर व व्यापारिक संस्थाओं के करों के साथ डाक-तार के मूल्यों में कमी की गयी है। ३३७.८८ करोड़ के कुछ अनुमानित व्यय में से १६८.०१ करोड़ रुपया सुरक्षा की मदद् में व्यय किये जायेंगे।

भारत विरोधी प्रचार की रोक-थाम।

गत् १८ मार्च को भारतीय संसद में अगले वर्ष के आय-व्ययक में से ५ करोड़ ११ लाख ८ हज़ार की मांग भारतीय पर-राष्ट्र विभाग के लिये करते हुए उपमंत्री डॉ० बाळकृष्ण केसकर ने बताया कि कुछ ब्रिटिश पत्र और बी. बी. सी. भारत पाकिस्तान सम्बन्धों और काश्मीर प्रश्न को लेकर मध्य पूर्व के देशों में भारत के विरुद्ध प्रचार करने में संलग्न हैं। बी. बी. सी. से पाकिस्तानी और उसके हिमायती वक्ताओं को हमेशा ब्राडकास्ट करने का अवसर दिया जाता है। जब कि भारतीय संवादों को एक वक्ताओं द्वारा प्रसार की ओर उदासीनता दिखायी जाती है। इस कु-प्रचार में ब्रिटेन के कुछ समाचारपत्र भी बराबर हिस्सा ले रहे हैं। भारत सरकार के परराष्ट्र मंत्रालय के उपमंत्री डॉ० केसकर ने बताया कि यह निधि विरोधी प्रचार रोकने और भारत के वास्तविक दृष्टिकोणों से इन क्षेत्रों को परिचित कराने के कार्य में लगायी जायगी।

अमेरिका के समाचार-पत्र।

विश्व में अमेरिका का नाम पत्रकार-कला में प्रगति के लिहाज़ से सबसे पहला माना जाता है। यहां के प्रातःकाल निकलनेवाले ३९२ दैनिकों की वितरण संख्या २०,१५,१००० है। १,४९८ सायं-संस्करणों की वितरण संख्या ३,०९,११,००० है। रविवार को प्रकाशित होनेवाले ५५७ पत्रों की वितरण-संख्या ४,४७,२०,००० है।

प्रबल विरोध के साथ मजदूर दली सरकार का कार्यारम्भ।

फरवरी १९५० के अन्तिम सप्ताह में हुए निर्वाचन के पश्चात केवल ७ अधिक मतों से निर्मित ब्रिटिश मजदूर सरकार ने प्रबल विरोध के साथ शासन कार्य प्रारंभ कर दिया है। अब इन बातों में कोई तथ्य नहीं कि ब्रिटेन में या तो पुनः चुनाव होंगे, या टोरी-दल के साथ मिली-जुली सरकार बनानेका उपक्रम किया जायेगा। इतना ही

नहीं, ऐटली सरकार विगत शासन काल में अपने जिन कार्यक्रमों को लेकर अग्रसर हुई है, उन्हें अथवा उनकी नीति में परिवर्तन करने के अनुमानों का भी अब अन्तसा हो गया है। आर्थिक एवं श्रमजीवी अवस्था के विकास और पिछले ४—५ वर्षों के राष्ट्रीयकरण सिद्धान्तो को लेकर पुरानी नीति को ही लेकर यह सरकार आगे बढ़ेगी।

नयी पार्लमेण्ट का उद्घाटन करते हुए ब्रिटिश नरेश ने उपर्युक्त बातों पर सरकारी नीति का स्पष्टीकरण किया है। नयी मजदूर सरकार जिस संघर्ष में से प्रारम्भ में गुजरी है उसके बावजूद उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि मजदूर दल समाजवादी कार्यक्रम पर अटल रहेगा तथा समाजीकरण और राष्ट्रीयकरण की योजनाओं में ढिलाई नहीं आने देगा।

जार्ज बर्नार्ड शा अटली-सरकार से अधिक दूरदर्शी !

ब्रिटेन की मजदूरदली सरकार ने जब सन् १९४९ ई. के वर्षान्त में पौण्ड का अवमूल्यन किया तब जार्ज बर्नार्ड शा ने निजी तौर पर सन् १९४७ से ही पौण्डका अवमूल्यन कर रखा था। कहते हैं 'मैन ऑण्ड सुपर मैन' तथा 'पिगमेलियन' पर सन् १९४७ में शा को १५ प्र० श० रायल्टी मिला करती थी जिसे उन्होंने १० प्र० श० करा दिया था। ऐसा करने से, पहले पर ३० हजार और दूसरे पर ७ सौ पौण्ड प्रति सप्ताह की आमदनी उन्हें होती रही।

जहाजों के निर्माण में वृद्धि।

गत वर्ष सन् १९४९ में सन् १९४८ की अपेक्षा विश्व में जलयानों का निर्माण-कार्य अपेक्षाकृत अधिक संख्या में हुआ है। उस वर्ष बोझ के हिसाब से ८,२२,०६२ टन की वृद्धि हुई थी १०० टन से कम बोझ के जहाजों के अतिरिक्त कुल ३,१३१,८०५ टन के ९२६ जहाजों का निर्माण हुआ था।

सन् १९४९ में अमेरिका में कुल ६,३३,३०६ टन, स्वीडन में ३,२२,०९९ टन हालेण्ड में १,६९,२९५ टन और फ्रांस में १,५४,८५९ टन के जहाजों का निर्माण हुआ।

भारतीय कोयले से रासायनिक पैट्रोल का निर्माण।

लग भग २२ करोड़ की लागत से भारत में रासायनिक पैट्रोल तैयार करने की जिस योजना पर विचार किया जा रहा है उसकी योजना पर प्रकाश डालने वाली रिपोर्ट में आगामी ३ वर्षों के भीतर पैट्रोल बनाने का कार्य प्रारम्भ कर देने का सुझाव दिया जायगा। योजना सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्य अमरीका की इंजीनियरिंग संस्था ने किया है। उपर्युक्त लागत में ७० हजार टन पैट्रोल प्राप्त किया जा सकता है जो भारतीय हवाई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त बताया गया है।

इस विषय में 'भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद' ने भारत सरकार से सिफारिश की है कि इस लाभ-

कारी योजना को वह सबसे ज्यादा प्रधानता दे। परिषद की तीन दिन की बैठकों में गत २० मार्च को प्रधान मंत्री पं. नेहरू ने अध्यक्ष-पद से भारत के वैज्ञानिक भविष्य पर आशा प्रगट की। भारत-सरकार ने इस परिषद के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है।

स्वर्गीय डॉक्टर सिनहा !

भारत के राष्ट्रीय जीवन में जिन शान्त और सुधारवादी व्यक्तियों का नाम लिया जा सकता है; हमारे स्वर्गीय डॉक्टर सच्चिदानन्द सिनहा का नाम उसी कोटि में अग्रगण्य रहा है। स्वर्गीय पण्डित मोतीलालजी नेहरू एवं सर तेज बहादुर सप्रू की पंक्ति में समकक्ष आने वाले प्रखर राष्ट्र-उन्नायकों की एक श्रृंखला डॉ. सिनहा के अवसान से टूट सी गयी है—यही इस क्षति का परिणाम देश के समक्ष है। बिहार प्रान्त के निर्माता के रूप में उन्होंने वकालत पास कर राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया था और तब से एक संकल्प, एक सिद्धान्त और एक ही दृष्टि-कोण को वे मृत्यु पर्यन्त निबाह ले गये। बिहार प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान सभाओं में वे एक प्रमुख धाराविज्ञ के रूप भाग लेते रहे। इसके अतिरिक्त विधि-विशारद, अर्थशास्त्र विशेषज्ञ, कुशाग्र बुद्धि पत्रकार और सद्वृत्ति के राजनीतिज्ञ रहकर उन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का जीवन पर्यन्त विकास किया। 'हिदुस्थान रिव्यू' का सम्पादन आपने बड़ी कुशलता के साथ किया।

स्वतंत्र भारत की विधान सभा ने अपने प्रथम दिन के अधिवेशन का अध्यक्ष चुनकर यथोचित सम्मान उन्हें प्रदान किया और इस प्रकार उनका नाम इतिहास में स्मरणीय बना दिया। स्वर्गीय डॉक्टर सिनहा यों आज हमारे बीच नहीं; किन्तु उनकी कृतियां सदा-सदा के लिये उपस्थित रहेंगी और राष्ट्र की पीढ़ियां नत मस्तक हो उनका स्मरण करेंगी।

पाकिस्तान के हिन्दू अल्पसंख्यकों के विषय में पाकिस्तान की नीति

पूर्वी पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के साथ पिछले १॥ महीने में जों वर्बरतापूर्ण पैशाचिक व्यवहार हुए हैं उनसे भारत सरकार एक बार फिर व्यथित हो उठी है। साम्प्रदायिकता की नीति पर चलनेवाली पाकिस्तानी सरकार की नीति के कारण बे-रोकटोक अन्सार संगठन द्वारा हिन्दू जनता पर किये जाने वाले सामूहिक आक्रमणों, लूट-पाटों, अग्निकांडों, हत्या, बलात्कार और जबरन धर्म परिवर्तन जैसे कुकृत्यों के पीछे वहां की हिन्दू जातियों के ही नहीं; प्रत्युत भारत के विरुद्ध भी एक नियंत्रित षडयंत्र के प्रमाण देखे जाते हैं।

कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष आचार्य कृपलानी ने 'विज़िल' में एक लेख इन घटनाचक्रों के विषय में लिखा है। कृपलानीजी का मत है कि मुस्लिस लीग, जिसने भारत की एकता नष्ट की है अब, भारत और हिन्दुत्व का अस्तित्व ही मिटाने के लिये कृतसंकल्प है। पाकिस्तान इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिये भारत और हिन्दू अल्प-संख्यक वर्ग पर आक्रमण की योजना का दृढतापूर्वक अनुसरण कर रहा है। अब एक साधारण राजनैतिक

ज्ञानवान व्यक्ति को भी यह स्पष्ट रूप से मालूम हो जाना चाहिये कि पाकिस्तान के इस खेल का अर्थ क्या है। वह किसी भी प्रकार से अपने प्रदेशों से हिन्दू अल्पसंख्यकों को निकाल बाहर करना चाहता है।

'विज़िल' में कृपालानीजी ने आगे लिखा है—मुझे इसमें सन्देह नहीं कि पाकिस्तान में समय समय पर जो उपद्रव होते हैं उनका संचालन वहां के शासक करते हैं। पाकिस्तान का दबाव रोकने के लिये भारत जो कुछ करता है उसे पाकिस्तान के नाश का प्रयत्न कहा जाता है। पाकिस्तान की सीमा पर पश्तो-भाषी जनता का विद्रोह भी पाकिस्तान के मतानुसार भारत का उभाड़ा हुआ है।

फर्वरी मार्च का मुख्य घटना-क्रम

२८ फर्वरी—क्लीमेण्ट एटली द्वारा ब्रिटेन के मजदूर दलीय मंत्रिमण्डल की घोषणा। मत्रिमण्डल में इसवार १७ की जगह १८ मंत्री रहेंगे जिनमें प्रधान मंत्री क्लीमेण्ट एटली के अतिरिक्त उपप्रधान मंत्री हरवर्ट मारीसन, परराष्ट्र मंत्री अरनेस्ट बेविन, अर्थ-मंत्री सर स्टफर्ड क्रिप्स गृह-मंत्री जेम्स शूटर ईड, राष्ट्र-मण्डल सम्पार्क मंत्री-पैट्रिक गार्डन वाकर प्रमुख विभागों के लिये नियुक्त किये गये हैं।

१ मार्च—पूर्वी बंगाल में हिन्दुओं के साथ किये जाने वाले अत्याचार पर अधिकृत प्रकाश। संवाद के अनुसार एक हिन्दू परिवारों पर सामूहिक आक्रमण कर भीषण अत्याचार किये जा रहे हैं तो दूसरी ओर उन्हें सुरक्षित कलकत्ता लाने के लिये वायुयान और स्टीमर जुटे हुए हैं।

—भारतीय देशी नरेशों का षड़यंत्र रचने के लिये चर्चिल के टोरी दल की गति-विधियों और भूतपूर्व पोलीटिकल एजेण्टों द्वारा भारत में बिछाये गये षड्यंत्र के रहस्य का उद्घाटन।

२ मार्च — पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में पठानों के विद्रोह के आसार। पुठानिस्तान आन्दोलन के उन्नायकों की धड़ाधड़ गिरफ्तारियां। पाकिस्तान सेना के ८०० पठान सैनिकों द्वारा भागकर पठानिस्तान सेना से सम्पर्क।

—भारतीय संसद के सात मुस्लिम सदस्यों द्वारा पूर्वी बंगाल की अल्पसंख्यांक जातियों पर अत्याचारों के विषय में पाकिस्तान को चेतावनी।

३ मार्च — प्रधान मंत्री पं. नेहरू ने बंगाल की स्थिति पर रेडियो द्वारा सन्देश प्रसारित किया कि बंगाल की स्थिति इतनी शोचनीय स्थिति पर पहुंच गयी है कि कार्यवाही में विलम्ब नहीं किया जा सकता।

५ मार्च — पूर्वी बंगाल के अत्याचारों के विषय में पाकिस्तान के भारत सरकार का कड़ा विरोध-पत्र ।

६ मार्च — पं नेहरू का पूर्वी बंगाल की स्थिति के निरीक्षण के लिये कलकत्ता प्रस्थान।

६ मार्च — निजाम के रजाकारी शासन के प्रधान मंत्री मीर लायक अली खां के ४ मार्च को सपरिवार अज्ञात स्थान को रहस्यपूर्ण पलायन के संवाद का उद्घाटन।

८ मार्च — न्यूयार्क की रेडियो इंजीनियर इन्सटीट्यूट के वार्षिक सम्मेलन में 'जीवन रक्षक विमान' का प्रदर्शन। कोई विमान, जहाज या पनडुब्बी अपने संकट काल में रेडियो खराब हो जाने पर इस बम को फेंककर अपना पता दे सकता है। इसकी ध्वनि ३ हजार या और दूरस्थ ध्वनि केन्द्रों में पहुंच सकेगी।

—समाजवादी नेता बाबू जयप्रकाश नारायण ने पूर्वी बंगाल के अल्प-संख्याकों की रक्षार्थ सशस्त्र तैनात करने की मांग की।

११ मार्च—मध्यभारत विधान सभा में अधिकृत रूप से राज्य की सरकारी भाषा हिन्दी घोषित करने का विधेयक प्रस्तुत। विधिमंत्री ने कहा कि यो तों पहले ही से यहां हिन्दी घोषित कर दी गयी है किन्तु विधिपूर्वक संविधान के अनुसार प्रचलित सभी विधेयक, आदेश, विनियम, अध्यादेश और उपविधि हिन्दी और देवनागरी में प्रचलित करने के लिये यह व्यवस्था की जा रही है।

१२ मार्च—विश्व की सबसे भीषण विमान-दुर्घटना जिसमें आयरलेण्ड से अन्तर्राष्ट्रीय घटना के खेल में भाग लेने के बाद वेल्स के ८३ फुटबाल-खेलाड़ी ग्लेमोरगन नामक समुद्री तट पर शिकार हुए। इनमें से ८० व्यक्ति मर गये।

१६ मार्च—पाकिस्तान सरकार ने ९ शब्दों की विज्ञप्ति प्रकाशित कर मीर लायक अली के सपरिवार पाकिस्तान पहुंचने की घोषणा की।

२० मार्च—भारत सरकार और सिक्किम के बीच संधि वार्ता के निश्चय का संवाद जिसके अनुसार सिक्किम भारत का एक संरक्षण प्रदेश रहेगा।

२४ मार्च—फिलिपाइन्स शान्तिवादी संघ के अध्यक्ष ने यह विश्वास प्रकट करते हुए कि महात्मा गांधी के सिद्धान्तों पर अमल करने से ही विश्व आलोकित हो सकता है। फिलिपाइन्स में १६४ एकड़ भूमि के उपयोग से आपने गांधी-आश्रम की स्थापना की घोषणा की।

२५ मार्च—प्रो. हेराल्ड-लास्की के निधन पर प्रधानमंत्री पं. नेहरू द्वारा संवेदना-प्रकाश — "प्रो. लास्की के शोक पूर्ण निधन से स्वतंत्रता का एक वीर सेनानी और एक सहृदय मित्र हमसे विछुड़ गया"।

—पाकिस्तानी प्रधानमंत्री ने पाकिस्तान पार्लमेण्ट में पूर्वी बंगाल विषयक एक बहस के बीच यह बताया कि उनका देश आज १०० गुना शक्तिशाली है।

—इण्डियन काउंसिल फॉर कल्चरल रिलेशन्स के अध्यक्ष पद पर केंद्रीय शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुलकलाम आजाद की नियुक्ति। इसमें देश के २४ विद्वानों एवं शिक्षा-विज्ञों को सदस्य नियुक्त किया गया है।

२६ मार्च—भारत-ईराक के बीच आर्थिक-समझौते के मसविदे पर ईराक शासन की स्वीकृति।

—बंगाल चेम्बर ऑफ कामर्स के अध्यक्ष श्री. ए. एल. कामेरान की हिगुली जिले के उपद्रवों में हत्या।

—प्रधान मंत्री पं. नेहरू द्वारा दिल्ली में शरणार्थियों से शान्ति रक्षा के लिये निवेदन।

२७ मार्च—हावड़ा और समीपस्थ क्षेत्र में निरन्तर उपद्रवों की रोक-थाम के लिये मार्शल-ला कार्यान्वित करने का पश्चिम बंगाल शासन द्वारा निर्णय।

२८ मार्च—पाकिस्तान के अल्प संख्यकों की सुरक्षा के प्रश्न में चर्चा और निर्णय करने के उद्देश्य से भारत-पाक प्रधान-मंत्रियों की दिल्ली में संयुक्त बैठक का प्रस्ताव.

२९ मार्च—भारत सरकार की अधिकृत घोषणा के अनुसार पाकिस्तानी प्रधान मंत्री का प्रास्ताविक चर्चा के लिये २ अप्रैल को भारत आगमन।

—कलकत्ता-हावड़ा की स्थिति में पुनः शान्ति।

३१ मार्च—भारत पाकिस्तान सम्बन्धों में सुधार के लिये ब्रिटेन द्वारा चिन्ता-व्यक्त। प्रौढ़ राजनीतिज्ञों की सेवायें देने का सुझाव।

—भारत-नेपाल शान्ति-सन्धि पर परस्पर-हस्ताक्षर।

—गांधी-हत्याकाण्ड का नाटक खेलने में बिहार प्रान्त के एक स्थान में एक खेतिहर बालक को साथियों द्वारा प्राणदण्ड।

—ल० प्र० पु०

* * *

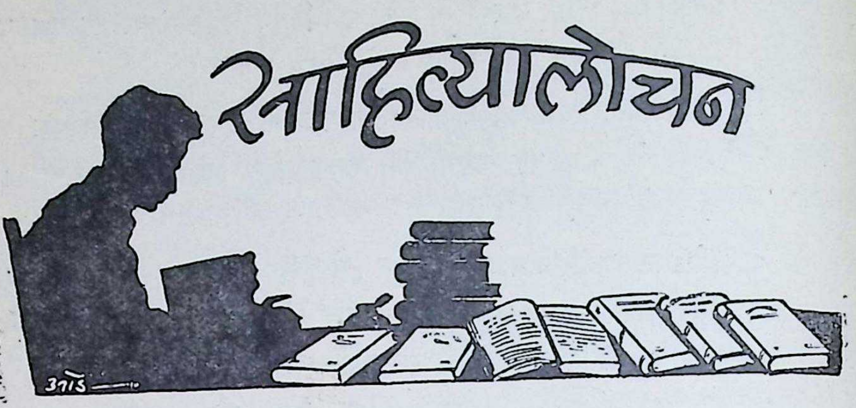

[विनयमोहन शर्मा]

उर्दू साहित्य का इतिहास :—

लेखक : श्री हरिशंकर शर्मा, और प्रकाशक : गयाप्रसाद एण्ड सन्स, शफाखाना-रोड, आगरा।

पृष्ट संख्या ४७७, मूल्य ६ रुपया, कागज, छपाइ सफाई साधारण

उर्दू भाषा के सम्बन्ध में जो यह कहा जाता है कि इसका जन्म विदेशी भाषा से हुआ है, ठीक नहीं है। उर्दू का जन्म हमारे ही देश में हुआ है और वह हिन्दी की ही एक शैली रही है। फारसी के राज-भाषा होने के कारण उर्दू में फारसी के शब्दों का आधिक्य होने लगा। फिर भी मीर और मसहफी के काल तक वह हिन्दी ही कहलाती रही। सम्राट शाहजहाँ ने फारसी मिली हुई हिन्दी को 'उर्दू-ए-मोअल्ला' कहकर पुकारा और तभी से वह उर्दू कहलाने लगी। यद्यपि उर्दू काव्य का छन्द-शास्त्र अरवी, फारसी छंदों से भरा हुआ हैं तो भी उसके व्याकरण में फारसीपन विशेष रूप से नहीं प्रविष्ट हो पाया। हिन्दी-व्याकरण के समान उसके लिंग वचन और विभक्ति-रूप हैं। हिन्दी और उर्दू पहिले एक ही भाषा समझी जाती थीं। इसका सबसे अच्छा प्रमाण हिन्दी और उर्दू साहित्य के इतिहास हैं। दोनों साहित्यों के इतिहास में अमीर खुसरो और इंशाअल्ला के नाम हैं। जिस प्रकार उर्दू साहित्य में अमीर खुसरो उर्दू के आदि कवि माने जाते हैं और इंशाअल्ला आदि गद्य-लेखक, उसी प्रकार हिन्दी में भी अमीर खुसरो और इंशाअल्ला का स्थान क्रमशः आदि कवि और लेखकों में लिया जाता है। सम्राट अकबर ने उर्दू की उन्नति में बड़ा योग दिया। शाहजहाँ के काल में वह और भी उन्नत हुई। उसी काल में उर्दू का कोष भी तैयार हुआ। शाहजहाँ के बाद उर्दू अपने पूर्ण वैभव पर प्रतिष्ठित हुई और हिन्दी शब्दों का ज़ोरों से वहिष्कार किया गया और फारसी काव्य की परम्परा को प्रविष्ट किया गया। भावों में "प्रेम-कथाएँ इतनी अधिक बढ़ीं कि लोगों के चरित्र पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और नैतिकता नष्ट होने लगी।" कविता शाही

दरबारों से सम्बद्ध हो गई और कवि मासिक वृत्ति पाकर दरबारी बन गये। अशिष्ट, अश्लील कविताओं को 'रेखती' कहा जाने लगा। जब दिल्ली का शासन-सूत्र ढीला पड़ गया और मुगल बादशाह नाम मात्र के शासक रह गये तब दरबारी कवियों में भगदड़-सी मच गई और वे यहाँ वहाँ जाकर टिक गये। उस जमाने के मीर, सौदा, इंशा आदि कवियों ने लखनऊ के नवाब की शरण ली और उनके दरबारी कवि हो गये। तब देहली और लखनऊ के नाम पर उर्दू की दो शैलियाँ बन गईं। लखनऊ-शैली शब्द-सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध हो गई और देहली शैली भाव-सौन्दर्य के लिये। देहली की शायरी में लखनवी शायरी के समान शब्दाडम्बर नहीं रहता था। जब देहली का दरबार उजड़ गया तब कविता का केन्द्र लखनऊ हो गया। "इन्हीं दिनों लखनऊ में मरसियों की भी उन्नति हुई", जिनमें मृत व्यक्तियों की प्रशंसा की जाती थी।

दक्षिण के कवियों ने सबसे पहिले 'मरसिये' लिखे; पर लखनऊ में उनको कला का रूप प्राप्त हुआ। कुछ समय बाद दिल्ली में उर्दू कविता जौक और गालिब के कारण फिर पनप उठी। इन कवियों ने चुन चुन कर हिन्दी शब्द निकाल डाले इससे उनमें क्लिष्टता अधिक आ गई। वाजिद अली शाह और बहादुर शाह के पतन के बाद उर्दू कवि निराश्रित होकर यहाँ वहाँ बिखर गये। हैद्राबाद (दक्षिण) में भी बड़े बड़े कलाकारों को आश्रय प्राप्त हुआ। गुल-बुलबुल, सागर-साकी, आशिक माशूक प्रेम-सौन्दर्य आदि के वर्णनों से उर्दू कविता आक्रान्त है। फारसी काव्य की पुरानी बातें अस्वाभाविक रीति से भारतीय वातावरण की उपेक्षा करके भरी गईं। हमारे देश के प्राकृतिक सौन्दर्य का उर्दू कवियों को कोई आकर्षण नहीं था। परन्तु आजाद और हाली ने नवयुग का सन्देश सुनाया। हाली ने मुसलमानों के उद्धार के लिये कविताएँ लिखीं और आजाद ने प्रकृति को अपने काव्य का आलम्बन बनाया। हाली से ही प्रेरित होकर हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' की रचना की जिसमें हिन्दू-संस्कृति के गौरव का गान है।

उर्दू काव्य में साकी और शराब की बड़ी प्रशंसा है। शराब प्रेम का प्रतीक माना गया है और साकी प्रेमी का। उर्दू काव्य में मजाजी और हकीकी ये, प्रेम के दो प्रकार माने गये हैं, जो क्रमशः लौकिक और अलौकिक कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार उर्दू कविता मे शीरीं-फरहाद, यूसुफ-जुलेखा और लैला-मजनूं का बहुत उल्लेख पाया जाता है। ये सब प्रेम-गाथाएँ हैं। उर्दू गद्य का इतिहास १८ वीं शताब्दी से प्रारंम्भ होता है परन्तु वर्तमान उर्दू गद्य का रूप हिन्दी गद्य के समान ही फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता से निर्धारित होता है। तब से बराबर उर्दू गद्य, कहानी, नाटक, इतिहास, आलोचना, निबंध आदि रूपों में विकसित होता आ रहा है। इस पुस्तक के विद्वान लेखक ने उर्दू साहित्य पर यह परिचयात्मक ग्रन्थ लिखकर उर्दू की ही नहीं; हिन्दी साहित्य की भी बड़ी सेवा की है। उर्दू साहित्य को पुष्ट बनाने में मुसलमानो का ही नहीं, हिन्दुओं और

योरुपियनों का भी बड़ा हाथ रहा है। लेखक ने इन सब उर्दू-लेखकों का परिचय दिया है। और अन्त में चुने हुए प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का कुछ भाग देकर हिन्दी-पाठकों को उर्दू काव्य रस का पान भी कराया है। हिन्दी-उर्दू-संघर्ष के युग में उर्दू साहित्य का यह परिचयात्मक ग्रन्थ भेद की खाई को पाटने में सहायक सिद्ध होगा। हम लेखक को इस सामयिक और जानकारी से भरे हुए इतिहास ग्रन्थ के प्रणयन के लिये धन्यवाद देते हैं। उनकी हिन्दी साहित्य के समान उर्दू साहित्य में भी अच्छी गति है। हम उनसे भविष्य में हिन्दी और उर्दू के तुलनात्मक और आलोचनात्मक इतिहास के प्रणयन की भी आशा करते हैं।

यथार्थ और कल्पना — (कविता)

रचयिता श्री उदयशंकर भट्ट:

प्रकाशक, गौतम बुक डिपो, नई सडक दिल्ली। सुन्दर छपी बंधी पुस्तक का मूल्य २॥ रुपये।

श्री. उदयशंकर भट्ट हिन्दी के प्रसिद्धि-प्राप्त कवि हैं जिनकी रचनाएँ समय के रेतीले पथ पर जीवन के शाश्वत सत्य के चरण-चिन्ह अंकित करती रहती हैं। काव्य के विभिन्न वादों की मंजिलों को पार करने पर भी उनकी कविता में भारतीय संस्कृति के स्वर झंकृत होते रहते हैं। आज संसार भौतिक वाद से बुरी तरह भभका हुआ है। हमारी हिन्दी कविता उसी के गीत गाने में अधिक दत्तचित है। उसकी यह बहिर्मुखी वृत्ति उसे कहाँ ले जा रही है, यह भविष्य के गर्भ में है।

हम कवि के शब्दों में विश्वास करते हैं, "निश्चय ही यह भौतिकवाद हमारा अन्तिम ध्येय नहीं हो सकता। मनुष्य के 'मैं' और समाज के 'हम' के आगे जहाँ हमारी आत्मानुभूति का पड़ाव है वहाँ भी हम हमेशा जाकर ठहरते रहे हैं और वहाँ के सौन्दर्य से हमारा साहित्य प्रफुल्ल हुआ है। जिसके स्फटिक-स्वच्छ-सरोवर तट पर चिन्तन के आत्मविभोर कमलों का मधुर मकरन्द आज भी भीनी भीनी सुरभि लेकर शान्त पथिकों को तृप्ति दान करता आ रहा है उसे भूल जाना भी तो जीवन की बड़ी भूल होगी!"

इसी लिये कवि ने अपनी "संस्कृति के चिरंतन दीपक पर संघर्ष का ढक्कन डाल कर उसे सदा के लिये बुझाना नहीं चाहा।" आज वह भी सुमित्रानन्दन पंत के समान बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी वृत्तियों के सामंजस्य में विश्वास करता है। और उसका यह विश्वास नया नहीं है। 'यथार्थ और कल्पना' में दोनों कोटि की रचनाएँ संकलित हैं। 'दफ्तर का बाबू' बहिर्मुखी रचना का अच्छा उदाहरण है। उसमें कवि ने दफ्तर के बाबू का बिलकुल यथार्थ चित्रण किया है—

"नौ बजते बजते चल देता—
आधा, पौना पेट भरा यह—
प्राण समेटे,
हाड़ जुड़ाए—
छतरी, झोला, फायल भूषित
नंगे सिर,
गांधी टोपी या पगड़ी बाँधे,
तैल सिक्त मुख,
चपटा, पिचका,
मैल, धूलि-धृत
फणा-टोप सा टोप लगाये,
लप झप लप झप
धूल उड़ाता,
यह सरकारी क्लर्क नौ बजे;"

'आग की लपटों' में भारत विभाजन का रक्त रंजित एक इतिहास-पृष्ठ है। कवि की निम्न पंक्तियाँ पठनीय हैं—

"रच रही आज लीग खून की सरित पर—
एक मजबूत पुल पाकिस्तान का महान,
किन्तु धूर्तता, पागलपन, बर्बरता, क्रूरता—
से बना हुआ पाकिस्तान का महत्व—
रह भी सकेगा सोच ?"

अन्तर्मुखी रचनाओं का एक गीत है—

"मुझे तुम्हारा बन्धन भी प्रिय ;
छवि से प्यार जुड़ा पाऊँ तो मुझे नरक का क्रन्दन भी प्रिय ;
तेरी चरण-चेतना पीकर मेरे दृढ विश्वास खो गये ;
पतझड़ की पीड़ा के धूमिल क्षण मादक मधुमास हो गये ;
पी छवि-बिन्दु क्षीर सागर की सीपी ने मोती उगले हैं ;
जीवन यति ने समय का सुख पी पीड़ा के पावक निगले हैं ;
मुझे अमृत मिस विष उड़ेल ले इन नयनों का वन्दन भी प्रिय ;
मुझे तुम्हारा बन्धन भी प्रिय ;।"

अनुभूति मिश्रित कल्पना का यह मधुर चित्रण है। सृष्टि का सूत्र किस प्रकार क्रमता के साथ परिवर्तन की आँखें खोलता है और मूँदता है इसकी कल्पना—

"महा स्वरूप में कल्पना जगती है निशा चुप, दिशा चुप गगन चुप, खडा है।"—
में की गई है।

इसी लिये कवि कहता है—

"समय के सभी साथ जीवन बदलते —
समय को बदलता हुआ तू चला चल।"

संसार प्रतिपल बढ़ता जाता है और नये जीवन को गढ़ता जाता है। दिन-रात के साथ मनुष्य के विश्वास भी बदलते जाते हैं· अतएव वह पूछता है कि "पल पल की इस उथल-पुथल में मानव-संवर्धन क्या होगा ?" कवि ने उर्दू शायरी की तरह कुछ सूक्तियाँ भी कही हैं—

"पैर के हर चिन्ह में है ध्येय की धड़कन ;
प्राण की हर गाँठ में मुसका रही सुलझन ;
कसकता है आँख में जो रूप का तिनका—
वही बन जाता हृदय का, प्राण-संजीवन ;
'आह' को पान नहीं पर 'आह' बन जाना—
भूल के इतिहास में है लक्ष्य को पाना।"

और भी—

"तुम मिले अरमान पूरे हो गये,
प्राण के वरदान पूरे हो गये ;
दीपवालों को अमावस है नहीं,
दृष्टि के यदि दान पूरे हो गये ;"

"कल्पना के गीत हृदयस्पर्शी हैं। उनमें पाठक आत्मविभोर होकर आश्वस्त होता है। "मानसी" में कवि ने नर की सत्ता का जो जयघोष किया था वह इस संग्रह की कुछ कविताओं में भी सुन पड़ता है। वह नर में 'सुरत्व' देखता है और संसार के संघर्षोंपर विजय प्राप्त करने का साहस रखता है। वह यही चाहता है—

"स्वर्ग का निर्माता मैं मुझको अपना ज्ञान चाहिये !
मांसल प्राण मृत्यु के साथी मुझे वज्र के प्राण चाहिये !"

जीवन न केवल 'यथार्थ' है और न केवल 'कल्पना'। यह सत्य प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं में भलीभाँति उद्घाटित है। आशा है यह संग्रह हिन्दी काव्य-प्रेमियों को रुचिकर प्रतीत होगा।

विद्यानंद विज्ञान— लेखक श्रीयुत हीरालालजी वर्मा। प्रकाशक गीताधर्म कार्यालय, काशी। पृष्ठ २६६ छपाई, सफाई साधारण। मूल्य १॥)

यह पुस्तक हिन्दू सनातन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का संक्षेप में निरूपण

करती है। ईश्वर का अस्तित्व, उसका रूप जगत का मिथ्यात्व, आत्मबोध, पुनर्जन्म, मोक्ष, आत्म-साक्षात्कार, कर्मयोग, भक्ति-योग आदि विषयों पर शास्त्र-ग्रन्थों का सार भाग प्रस्तुत किया गया है। साथ ही विभिन्न मतों के ऊहापोह के बाद अपना निष्कर्ष भी निवेदित कर दिया गया है। इस पुस्तक के दो भाग हैं। एक में आत्मा, ईश्वर, सृष्टि आदि का शास्त्रीय चिन्तन है और दूसरे भाग में साधक का आचार-वर्णन है। सन्ध्या, हवन विधि, स्तुति, नाम-जप आदि कर्मकांडों की मान्य विधियों को समझाया गया है जिससे सर्व साधारण आध्यात्मवादी लाभान्वित हो सकें। जो संक्षेप में 'परमतत्व' समझना चाहते हैं उनके लिये यह पुस्तक निश्चय उपयोगी सिद्ध होगी। हिन्दू-धर्म के स्वरूप की झाँकी भी इसमें मिल जाती है। इतनी श्रमपूर्ण पुस्तक लिखने के लिये, गागर में सागर भर देने के लिये, लेखक धन्यवाद के पात्र हैं।

'विक्रम'

('हृदय'-स्मृति-अंक)

सम्पादक—पं. सूर्यनारायण व्यास,
प्रकाशक—ल. ना. उपाध्याय।
मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन

'विक्रम' मासिक का पुनः प्रकाशन मालव प्रान्त के लिये ही नहीं; हिन्दी संसार के लिये भी शुभ सम्वाद है। 'विक्रम' अपने सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं प्रगतिशील विचारधारा के लिये पत्र-जगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। उसकी सम्पादकीय टिप्पणियों की स्पष्टता और विविधता उसकी अपनी चीज है। इस गत मार्च का अंक 'हृदय-अंक' के नाम से प्रकाशित हुआ है। स्वर्गीय पं. रमाशंकर शुक्ल ने 'हृदय' के उपनाम (तखल्लुस) से सुन्दर कवितायें लिखीं हैं। उज्जैन में ही उनका जन्म हुआ था, और वहीं माधव-कालेज में वे हिन्दी के प्राध्यापक थे। एक बार भी जो उनके सम्पर्क में आया, वह उनके हृदय की स्निग्धता से सिक्त हुए बिना नहीं रहा। उन्होंने जबलपुर के अस्तंगमित दैनिक हिन्दी "लोकमत" के सम्पादकीय विभाग में कुछ समय तक कार्य किया था, और अपने सम्पादन कौशल की छाप भी उस पर डाली थी। खेद है, १९४१ में क्षय रोग से 'हृदय' जी का असामयिक अवसान हो गया। पं. सूर्यनारायणजी व्यास उनके अभिन्न हृदय मित्र रहे हैं। अतः व्यासजी ने अपने मित्र की स्मृति में, मार्च का अंक 'हृदय'-स्मृति-अंक के रूप में प्रस्तुत किया। प्रस्तुत अंक में स्व० 'हृदय' की कुछ गद्य-पद्य रचनाएं हैं, साथ ही उनके कतिपय मित्रों के संस्मरणात्मक लेख भी संकलित हैं। 'हृदय' एक होनहार प्रतिभाशाली साहित्यकार थे। यह अंक सर्वथा संग्राह्य है।

* * *

'उद्यम'

(चावल विशेषांक)

सम्पादक—वी० एन० वाडेगांवकर, उद्यम-प्रकाशन, धरमपेठ, नागपूर. वार्षिक मूल्य ७) रु. इस 'चावल विशेषांक' का मात्र मूल्य १।।) रु. अपटुडेट गेटप।

यह मासिक पत्र गत ३१ वर्षों से निकल रहा है और हिन्दी तथा मराठी दोनों भाषाओं में सुन्दर, सफाई—सजधज के साथ निकलता

है। 'उद्यम' मासिक के विषयों का अपना क्षेत्र है–खेती, बागवानी, कलाकौशल, व्यापार, ग्रामसुधार, स्वास्थ्य आदि। लेखों का संग्रह उपयोगी और सुपाठ्य रहता है। इस पत्र ने समय समय पर सुन्दर "विशेषांक" भी प्रकाशित किये हैं। प्रस्तुत अंक "चाँवल विशेषांक" हमारे सामने है। चावल की खेती से सम्बन्ध रखने वाले कई महत्वपूर्ण लेखों का इसमें चयन है। श्री रा. कृ. पाटील से भेंट, माननीय मेहताजी का 'चांवल की खेती का महत्व' आदि लेख मननीय हैं। खेती-किसानी के लोगों के लिये इस अंक में चांवल सम्बन्धी पाठ्य-सामग्री अत्यन्त संग्रहणीय है। —वि. श.

'राष्ट्रतीर्थ' वर्धा और सेवाग्राम

लेखक — उमाशंकर शुक्ल पत्रकार, और प्रकाशक—भारतेन्दु, हिन्दी सिंडिकेट, वर्धा, मूल्य ।।) आना।

स्व० राष्ट्रपिता गान्धी ने लगभग १९३५ में वर्धा को और सेवाग्राम को अपने समग्र भारतोद्धार के सर्वोदय की यज्ञभूमि बनाया था। और तबसे समूचे देश ने इसे पुण्य भूमि राष्ट्रतीर्थ माना। और इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशों में 'बापू' के कारण छोटे से वर्धा–सेवाग्राम को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा मिली। आज भी वह राष्ट्र का तीर्थराज है। पूज्य बापू ने राष्ट्रोद्धार के लिये जिन संस्थाओं की स्थापना अपने हाथों की थी, सेवाग्राम, मगन संग्रहालय, अ. भा. ग्रामोद्योग संघ, महिलाश्रम, राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, गोसेवा संघ, नालवाडी, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा आदि २, उन सबका सचित्र संक्षिप्त परिचय इस छोटीसी पुस्तिका में लेखक ने दिया है। यह छोटीसी पुस्तिका वर्धा-यात्री के लिये मार्गदर्शिका का काम कर सकती है। पुस्तक संग्राह्य है। —ह. श.

दृष्टिकोण

(सम्पादकीय)

'भारतीय आत्मा' की हीरक जयंती :

श्रद्धेय पंडित माखनलालजी चतुर्वेदी लगातर पिछले पैंतालीस-पचास वर्षों से ८ भारती हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। इसी ४ अप्रैल को उनके जीवन के इकसठ वर्ष पूर्ण हुए और बासठवाँ लगा। १९१३ से ही, जो वर्षों तक, उनकी सत्संगति-महिमा के माहात्म्य से प्रभावित हुए और एक अध्ययनशील छात्र की तरह उनके निकटतम सम्पर्क में रहे, हमनें एक साहित्य-विधाता आर युगप्रवर्तक क्रान्तिदर्शी कवि भारतीय आत्मा का उनमें समग्र विकसित दर्शन किया। आज वे न केवल मध्यप्रदेश के ही; अपितु समस्त भारत और भारतीय साहित्य-संसार के प्रेम-आदर के भाजन हैं; और हैं शत-सहस्र तरुणों के श्रद्धा के आस्पद! उनके इस जन्मसिद्ध-अधिकृत सम्मान के उपलक्ष्य में उनकी प्रगतिशील साहित्यिक प्रतिभा का यथोचित आदर करने के लिये राष्ट्रभारती के बड़े बड़े आराधक विभिन्न स्थानों में उनकी हीरक जयन्ती मना रहे हैं। श्री चतुर्वेदीजी जहाँ उच्च-कोटि की भावनाशील आत्म-कला के कवि हैं, वहाँ 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' के अनुसार हिन्दी के प्रवक्ता और लेखकों के सजे-सँवरे क्षेत्रों में भी वे एक महान् कलाकार के रूप में बहुत ऊँचे हिमगिरि शिखर की तरह प्रख्यात हैं। उनका सारा जीवन-क्रम-विकास ही अथ से इति पर्यन्त बन्दी, बन्दीगृह, बलिवेदी, बलिपथ, बलिदान और भारत राष्ट्रसूत्रधार वनमाली कृष्ण की आराधना-साधना में समर्पित हुआ है। वे विश्व के बड़े-से-बड़े साहित्य, कला और संस्कृति के सर्जकों, विचारकों और चिन्तकों की श्रेणी में आदर पूर्वक विराजमान होने की क्षमता रखते हैं। मंगलमय सत्यं-शिवं-सुन्दर के सर्वस्व भगवान, भारती के इस कलाकार लाड़ले पुत्र को शतंजीव शरदः-शतम् कर। इस सांस्कृतिक हीरक जयंती का अभिनन्दन और नतमस्तक हमारा उन्हें अभिवादन!

श्रीमती सरोजिनी देवी का पुण्यस्मरण :

एक वर्ष पूरा हुआ। १९४९ के मार्च में, एक प्रातःकाल, हम-भारतीयों ने बड़े परिखेद के साथ सुना कि उत्तर-प्रदेश की राजशासन-संचालिका, भारत-कोकिल, श्रीमती सरोजिनी देवी एकाएक हृदय की गति बन्द होजाने के कारण चिरनिद्रा में लीन हो गयीं। आधी शताब्दीं तक देवी अपने अन्तर्राष्ट्रीय कवित्व, अपनी राजनीतिक वाग्मिता, निर्भीकता और तेजस्विता के प्रचंड सामर्थ्य पर कभी न बुझने वाली मशाल की तरह इस देशके प्रांगण में जलती रहीं, और स्वाधीनता की प्रतिष्ठापना होने के बाद और भारत-भाग्य-विधाता राष्ट्रपिता गान्धी के निर्वाण के ठीक चौदह मास उपरान्त राष्ट्र की यह उज्ज्वल प्रज्ज्वलित दीपशिखा निर्वापित हुई। देवी सत्यमेव राष्ट्र-कोकिल थीं। उन्होंने सदैव अपने मधुर पंचम स्वर में भारतमाता के गौरव-गीत गाये। जब जब वे बापू के साथ पिंजरबद्ध हुईं; एक वन-विहंगिनी के समान स्वतंत्र नीलाकाश में, अपने साथ ही समूचे भारत को उन्मुक्त करने के लिये अपने पंख बड़े जोर से फड़फड़ाया करतीं। राष्ट्र के जीवन में

१९५०

और भारतीय नारी की शक्ति में जो नैराश्य एवं ग्लानि भरी हुई थी उसे निर्मूल दग्ध करने में सरोजिनी देवी सदैव अग्नि की तरह जलती रहीं । गान्धी जी के नेतृत्व में गत ३०-३५ वर्षों तक जो प्राणवान पौरुषमय भारतव्यापी आन्दोलन चला, उसमें वे अहर्निश छाया की तरह अपने बापू के ही साथ रहीं ! जेल गईं, जेल-जीवन के कष्ट सहे, तत्कालीन निरंकुश नौकरशाही की प्रताड़नाएं झेलीं; किन्तु 'बापू' का पथ उन्होंने नहीं त्यागा । और कारावासों के कारण उनके स्वास्थ्य का और आयुष्य का ऱ्हास हुआ । फिर भी वे आज़ादी की लड़ाई में आगे रहने वाली सच्ची स्वयंसेविका रहीं । और उनकी एक बड़ी विशेषता यह रही कि — भारत में युग युग से क्रान्तिमयी साहित्य, कला और संस्कृति की जो अभिजात साधना की धारा बह रही है, उससे अनुप्राणित होकर उन्होंने अपना अंश भी अनमोल निधि के रूप में अपने मातृ-मन्दिर में जाकर भारती को समर्पित किया । भारत ने, एशिया ने, यूरोप और अमेरिका ने सरोजिनी राष्ट्र-कोकिल का सदैव सन्मान किया । आज, जब कि भारत संकट के कालमें से गुजर रहा है, देवी की उपस्थिति की, उनकी शक्ति की और प्रतिभा की बड़ी आवश्यकता थी; जिससे हम, आज से एक साल पहले, असमय में वंचित हो गये और उनकी याद में उन्हें 'श्रद्धांजलि' मात्र अर्पण करने के पात्र बन गये !

संस्कृत-भाषा पर श्री राजाजी का जोर :

गत ता० २३ मार्च को, 'दक्षिण भारतीय संस्कृत पंडित सम्मेलन' का उद्घाटन करते समय स्वतंत्र प्रजातंत्र भारत के भूतपूर्व गवर्नर-जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यजी ने संस्कृत भाषा के महत्व, उसकी विशुद्धता और लोकप्रियता को चिरजीवी बनाये रखने के लिये अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में बहुत जोर दिया । संसार के विद्वान संस्कृत भाषा को सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण की आधार-शिला मानते हैं । राजाजी का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि आज स्वतंत्र भारत में संस्कृत का महत्व पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है । हम-भारतीयों को इस बात का गर्व होना चाहिये कि संस्कृत का भंडार भारतीय परम्परा की अमूल्य देन है । संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन कार्य को आधुनिक युग की परिस्थितियों के अनुसार प्रोत्साहन मिलना चाहिए, और उसे मिलना चाहिये तुरन्त बालक-बालिकाओं की शिक्षा में अनिवार्य स्थान भी ।

इस भाषा का महत्व :

हम श्रीमान् चक्रवर्तीजी के कथन से पूरी तरह सहमत है । जब कि भारत स्वतंत्र होगया है, संस्कृत भाषा और उसके साहित्य के अध्ययन-अध्यापन को सर्वत्र विद्यालय-महाविद्यालयों में अनिवार्य कर देना चाहिये । भारत की उत्तर-दक्षिण की अधिकांश आधुनिक भाषाओं—हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, असमिया और तेलुगु मलयालम आदि—पर संस्कृत की शब्दावली और संस्कृत भावना का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है । समूचा संस्कृत साहित्य ही अक्षरशः भारतवर्ष का समुज्ज्वल सांस्कृतिक इतिहास है । संस्कृत जीवितों की, अमरों की, भाषा है; मुर्दों की नहीं । उसने दुनिया की कई उच्च भाषाओं और उनके साहित्य पर प्रभाव डाला है । संस्कृत के साहित्य, कला और संस्कृति ने अपने पडोसी देशों पर—सिंहल, सुमात्रा, जावा, बाली, चीन, जापान, तिब्बत, ब्रह्मदेश, आदि पर—अमिट प्रभाव डाला है । लगातार पाँच सहस्त्र वर्षों तक ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न धाराओं के प्रकांड मनीषी विद्वान अपनी दिव्य प्रज्ञा से संस्कृत भाषा का भंडार भरते रहे । पंडितों ने बड़े कठिन परिश्रम से इस भाषा को शुद्ध रूप में सुरक्षित रक्खा, जब कि विश्व की भाषाओं में देश काल ने परिवर्तन कर दिये । शताब्दियों तक, वह मुद्रण यंत्रों के अभाव में कोटि कोटि कंठो में और लक्ष लक्ष ताड़पत्रों तथा भोजपत्रों में सुरक्षित रह कर भारत में व्याप्त रही । जिन देशी विदेशी विद्वानों ने संस्कृत का वैज्ञानिक पद्धतिसे तुलनात्मक अध्ययन किया है और प्राचीन संस्कृत-लेखन शैली का गंभीरतापूर्वक अवलोकन किया है, वे उसका मर्म समझते हैं । जगद्गुरु आचार्य शंकर के ब्रह्मसूत्रों पर किये हुए

भाष्य को लीजिये । उसकी शैली एक महान् गंभीर पांडित्य का बेजोड़ नमूना है। विश्वकी किसी भाषा में शायद ही कोई ऐसी शैली का ग्रन्थ उसका मुक़ाबला कर सके। शंकर भाष्य की पंक्ति पंक्ति अनन्त ज्ञान-गांभीर्य में लीन है। एक छोटे से काग़ज़ के टुकड़े पर उतर आने वाले महर्षि पतंजलि कृत सूत्रों के भाष्य को, पूर्वमीमांसा पर भट्ट-व्याख्या और मिश्र वाचस्पति के लेख; प्राचीन तथा नवीन न्याय के ग्रन्थ जब हम पढ़ते हैं, तो अवाक् रह जाते हैं। इस युग के लोगों के लिये वैसे उच्च कोटिक ग्रन्थों का लिखना संभव नहीं। महर्षि पाणिनि ने, शब्द और अर्थ का शाश्वत विशुद्ध सम्बन्ध स्थापित करने के लिये वह अनोखा अभूतपूर्व व्याकरण रच डाला जिसने समूचे वैदिक और लौकिक साहित्य को ही अपने में पूरी तरह लपेट लिया। अष्टाध्यायी, उसका भाष्य और यास्काचार्य का निरुक्त-निर्वचन, अन्न का कण-कण भक्षण कर न्याय-दर्शन का निर्माण करने वाले कणाद मुनि की रचनाएँ मनुष्यकृत रचना नहीं मालूम होतीं। प्रकांड विद्वानों को उनके गांभीर्य का और याथातथ्य का पूरा पूरा अनुभव है। भगवान योगेश्वर कृष्ण की गीता, भगवान तथागत के धम्मपद और वनवासी ऋषि-मुनियों के उपनिषद सदृश ग्रन्थ आपको कहां मिलेंगे? आज भी भारत में ऐसे अनेक संस्कृत-विद्वान विद्यमान हैं जिनका ज्ञान गांभीर्य अगाध है, और जिनका आदर्श उच्च है। जिनकी विचार-विवेचन की प्रणाली गंभीर है। हमारे कौन से ऐसे दुभार्ग्य थे कि अंग्रेजों ने अपने राज्य में, और उनके विचारों के अनुयायिओंने संस्कृत को मृतभाषा ' (Dead language) कह कर एक ओर फेंक दिया। अंग्रेजी राज्य, अंग्रेजी शिक्षा और सभ्यता के पिछले दो सौ वर्षों में हमें वह विकृत दृष्टि मिली कि अपनी अनमोल वाल्मीकि व्यास, कृष्ण, बुद्ध, शंकर, रामानुज, कालिदास की संस्कृत-रत्नराशि को कूड़े-कचरे की तरह फेंकने योग्य समझने लगे।

धन्य हैं प्रातःस्मरणीय महात्मा गान्धी, कि जिन्होंने डंके की चोट वर्तमान अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली को एक अत्यन्त विषाक्त बुराई बतलाया। अंग्रेज, अंग्रेजी भाषा और उसके साहित्य से गान्धीजी को द्वेष नहीं था; किन्तु अंग्रेजी शिक्षा, शासन और सभ्यता के नाश करने में उन्होंने अपनी पूरी पूरी ताक़त लगाइ थी। बापू कहा करते थे कि यदि अंग्रेज भारत में न होते तो यह देश संसार का सिरमौर कभी का बन गया होता। उन महात्मा को जीवनभर यह पश्चात्ताप बना रहा कि "मैंने संस्कृत की शिक्षा नहीं पाई, मैं बड़ी भारी सम्पत्ति से वंचित रहा।" महात्माजी महामना मालवीयजी महाराज की संस्कृत विद्वत्ता पर मंत्रमुग्ध थे और उनपर अगाध श्रद्धा रखते थे और कहते कि मैं उनका पुजारी हूं; उन मालवीयजी महाराज ने कई वार संस्कृत की महत्ता पर कहा था कि संस्कृत हमारे पूर्वजों की दी हुई अमूल्य निधि है, संसार की समस्त भाषाओं में सर्वोत्कृष्ट भाषा है — जो मनुष्य के उच्चाति-उच्च विचारों को सुन्दर और सुचारु रूप से प्रकट करने के लिये अतुल बल सामर्थ्य रखती है। संस्कृत का अध्ययन मानव को एक ऐसा आनन्द प्रदान करता है जो कभी क्षीण नहीं होता।

आज भारत स्वतंत्र है, इस समय जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित है उसे उठाकर ताकपर रख देना चाहिये, उसमें आमूलाग्र परिर्वन कर संस्कृत की शिक्षा का समावेश देश-काल की परिस्थितियों के अनुसार कर दिया जाना चाहिये; अगर हमें भारत को, उसके साहित्य को, तथा कला और संस्कृतिको जीवित रखना है।

प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता, ज़हर की छुरी है :

वह धर्म, वह संस्कृति, वह साहित्य, वह सभ्यता या भाषा जो अराजकता फैलाए, लड़ाई को, लूट-मार को, धर्म-परिवर्तन को, बलात्कार को ईश्वरीय आज्ञा माने, जो यह कहे कि हम भिन्न हैं, हमारा धर्म भिन्न है, हमारी सभ्यता-संस्कृति भिन्न है, हमारी भाषा भिन्न है और हमारी रहन-सहन और हमारी राष्ट्रीयता भिन्न,—हम किसी से मिल-जुल कर रह ही नहीं सकते, हम अलहदा रहेंगे, अपनी खिचड़ी अलग पकायेंगे, अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग खड़ी करेंगे, इस प्रकार के विचार के लोगों को इस देश में नहीं रहने देना चाहिये, फिर वे चाहे कोई हों — हम-हिन्दी वाले हों, मारवाड़ी हों, महाराष्ट्री हों, गुजराती, बंगाली या दक्षिण

भारतीय हों, हिन्दू हों या मुसलमान हों। उनकी यह संकीर्णता, स्वार्थपरायणता सदैव देश की एकता के लिये अत्यन्त विघातक होगी। ऐसा लगता है कि इतनी भयंकर मारकाट, खूनखराबी, अग्निकांड, लूटपाट, और विनाश-विध्वंस से अभी, हमारी तवियत भरी नहीं है, जब भारत स्वतंत्र हुआ, उसे शक्तिशाली वनाने के बदले उसके टुकड़े-टुकड़े कर देने के लिये चारों ओर से साम्प्रदायिकता की—प्रान्तीयता की—आवाज गूंजने लगी। प्रान्तीयता का नारा ऊँचा उठाया गया। बड़े बड़े तर्क, बड़ी युक्तियां उपस्थित किये गये। इसके वावजूद, इस देश में ऐसे लाखों-कराडों नर-नारी हैं जो काश्मीर से कन्याकुमारी पर्यन्त एक अखंड देश के उपासक हैं—एकता और शान्ति बनाए रखने के समर्थक हैं। ऐसे लोगों में से हम भी एक हैं जो किसी प्रान्तीय भाषा, उसके साहित्य, कला और संस्क्रात का उच्छेदन कभी सहन न करेंगे। भारत की समग्रता का हित-चिन्तक यह कभी न चाहेगा कि वंगाली वंगला से विमुख हो जाये, मराठा मराठी से मुँह मोड़ ले, गुजराती गुजराती का गौरव नष्ट कर दे या आन्ध्र अपनी आन्ध्र भाषा को अन्धकूप में ढकेल दे, और ये सब सिर से पैर तक पूरे हिन्दीवाले वन जायें। यह संभव नहीं। हिन्दी राष्ट्रभाषा देश की एकता और देश की राष्ट्रीयता की सदा पोषक रही है, उसमें साम्प्रदायिकता या प्रान्तीयता कभी नहीं रही। हिन्दी लगातार पिछले एक हजार वर्षों से भारत की राष्ट्रीयता का जयघोष करती आ रही है। उसने साम्प्रदायिकता और संकीर्ण प्रान्तीयता को कभी प्रश्रय नहीं दिया। चंदवरदाई से लेकर मैथिलीशरण गुप्त तक की उसकी अपनी राष्ट्रीय परंपरा है। उसने बड़े कृतज्ञ भाव से "इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिक हिन्दू वारिये" के स्तुति-स्तोत्र रूप में अपने हित-चिन्तक और उसका खजाना भरनेवाले मलिक मुहम्मद जायसी, रहीम, रसखान और आलम की अंजलि में अर्घ्य अर्पण किये हैं। वंगला के वंकिम, शरद, द्विजेन्द्र और रवीन्द्र का माधुर्य उसने सादर ग्रहण किया और उनके प्रति श्रद्धानत रही और रहेगी। किन्तु कल-परसों की वात है, जव यह भारत स्वाधीन हुआ, पश्चिमी वंगाल के कुछ साम्प्रदायिक नेताओं ने, वंगीय भाषा-महारथियों ने, हिन्दी को और हिन्दीवालों को जहर उगल उगल कर भला बुरा कहा था। हिन्दी-भाषा की निन्दा में निन्दनीय-से-निन्दनीय शब्दों का प्रयोग किया था। हिन्दी-प्रेमी गान्धी और जवाहरलालजी तक को गालियां दे डाली थीं। और "मोदेर गरब मोदेर आशा–आ-मरि वांगला आशा" (हमारा गर्व, हमारी भाषा, धन्य हमारी वंगला भाषा) कहकर और हाय-हाय-री हिन्दा भाषा? और हिन्दी दुर्बोध और जटिल है और इतनी हीन और रूखी सूखी वाहियात भाषा, लड़ाई-झगड़ों के काम आनेवाली भाषा छींक खखार जैसी भाषा, उसे वतलाया गया।

इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति जहां भी हो, फिर वे हम-हिन्दीवाले हों, या वंगाली हों या कोई भी हों विक्षिप्त—पागल हैं। पागलखाने में भेजने लायक हैं। उन्हें जहर की छुरी समझना चाहिये और धैर्य और शान्ति के साथ इस प्रकार की देशद्रोही मनोवृत्ति को पनपने नहीं देना चाहिये।

विद्वानों की दृष्टि में 'भारती'—

'भारती' समस्त भारतीय (अन्तर्प्रान्तीय) साहित्य के प्रकाशन की उच्च भावना को लेकर मध्यप्रदेश की राजधानी नागपुर से, गत २६ जनवरी—प्रजातंत्र-स्वतंत्र राज्य की स्थापना के अवसर पर—गोधूलि वेला में, अवतीर्ण हुई थी। मासिक साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र में यह एक मौलिक भावना है। हमारी इस भावना को बड़ों के शुभाशीर्वादों और सद्भावनाओं का संबल मिला है, तीन मास की अल्प अवधि में 'भारती' को भारत में जो लोकप्रियता मिली है उससे भारती को बल मिल रहा है—प्रोत्साहन और प्रेरणा मिल रही हैं—

सम्पादकाचार्य पंडित वनारसीदासजी चतुर्वेदी टीकमगढ़ से—

'भारती' का अंक मिला। कृतज्ञ हूं। काफी अच्छी सामग्री है। छपाई सफाई वहुत अच्छी है। बापू का चित्र वन्दनीय है। चित्र का चुनाव वढ़िया है। राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद के सन्देश

में हलके साहित्य पर अच्छी चोट है। अभी गया में उन्होंने घासलेटी साहित्य-विरोधी आन्दोलन का जिक्र किया था। विनयमोहन शर्माजी का 'हिन्दी गीत गोविन्द' वढ़िया है। '३० जनवरी' वाला लेख मैंने आज प्रातःकाल के स्वाध्याय के तौर पर पढ़ा। श्री. दादा धर्माधिकारीजी ने वहुत उत्तम ढंग से अपनी बात कही है। श्रीनिवासाचार्य का 'तमिळ साहित्य का परिचय' शीर्षक लेख काफी ज्ञानवर्धक है। हम हिन्दी-वालों को अभी तमिळ वालों से बहुत कुछ लेना है। आप 'भारती' के लिये भरपूर प्रयत्न-परिश्रम कीजिये। आपने जो कार्य उठाया है वह मेरे मनका है। आपके इस महान् यज्ञ की मैं सफलता चाहता हूं।"

दिल्ली से कहानी-कलाकार और तत्व-चिन्तक श्री. जैनेन्द्रकुमारजी —

"भाई हृषीकेशजी, 'भारती' मुझे वहुत पसन्द आई। ठीक ऐसी चीज की आज जरूरत है। हिन्दी के आँगन में सब प्रान्त एक न हुए तो भारत कभी एक न होगा। अंग्रेजी के जरिये बिछुड़ने का काम हो सकता है, जुड़ने का नहीं। आपकी 'भारती' पत्रिका एक आवश्यक दिशा की ओर कदम है। समय के भीतर ही उसके लिये मैं अवश्य कुछ न कुछ लिख भेजूँगा।"

'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' के वयोवृद्ध प्रकाशक और विशुद्ध साहित्य सेवी बाबू नाथूरामजी प्रेमी बंबई से—

"'भारती' अच्छी निकल रही है। मुझे पूर्ण आशा है, आपके उद्योग से वह लोकप्रिय हो जायगी।"

बंबई नालन्दा-प्रकाशन के संचालक —

'भारती' मिली। पत्रिका वहुत सुन्दर है। इसकी आवश्यकता थी। मध्यप्रदेश ऐसी उच्च कोटि की पत्रिका से एक प्रकार से शून्य था। गेटप्, छपाई, सफाई, कागज आदि सब अच्छा है। आशा है, भारती लेखों के चयन, विविधता, सम्पादन आदि की दृष्टि से अपने आदर्श पर पहुँच जायगी। आपने 'भारती' नाम वहुत ही उपयुक्त और आकर्षक रक्खा।

आगरा से "आर्यमित्र" के यशस्वी सम्पादक और हास्यरस के प्रख्यात लेखक और सुकवि प. हरिशंकर शर्मा—

"अब 'भारती' के लिये अवश्य लिखूंगा और लिखता रहूंगा। वह वहुत अच्छी अपनी चीज है। यह आपका बड़ा सुन्दर प्रयत्न है। सम्पादन में सुरुचि और सुयोग्यता दोनों हैं।

बंबई से अमरीका जाते हुए गुजरात और गुजराती के गौरव, भारतीय संसद के सदस्य श्री. क. मा. मुन्शीजी—.

"भाई, 'भारती' के अंक मिले। वहुत अच्छे निकले हैं। आगे जब कुछ समय और प्रेरणा मिलेगी उसके लिये लिखूंगा।"

गुंटूर हिन्दू कॉलेज के हिन्दी-प्राध्यापक और साहित्यिक श्री. वारणासि राममूर्ति-

मेरा चार वर्ष पुराना स्वप्न आज सच हुआ। 'भारती' का आकार प्रकार, साहित्यिक सामग्री, छपाई, सफाई वगैरा सब कुछ चित्ताकर्षक। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसादजी के शुभाशीश उसे प्राप्त हुए हैं। यह उसके उज्वल भविष्य का द्योतक है। विभिन्न प्रान्तीय साहित्यों के आदान-प्रदान द्वारा भारतीय सांस्कृतिक एकता ऐसे ही प्रयत्नों से सफल होगी। ऐसी सुन्दर मासिक प्रत्रिका के संचालकों को हार्दिक वधाई!

मैसोर विश्वविद्यालय के महारानी कॉलेज के हिन्दी-प्राध्यापक एम. के. रमणाचार्य—

"'भारती' मिली। अन्तर्प्रान्तीय साहित्य तथा संस्कृति के समन्वयार्थ 'भारती' अत्यन्त सामयिक तथा उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करती है। आपके इस स्तुत्य प्रयत्न के लिये हम हार्दिक सहयोग देना अपना कर्तव्य समझते हैं। 'भारती' का हम हृदय से स्वागत करते हैं। 'भारती' भारत की और भारतीय साहित्य की अबाध सेवा करती रहे।"

हिन्दी के तरुण तेजस्वी लेखक और सफल सम्पादक श्रीयुत रामवृक्ष शर्मा वेनीपुरी पटना से—

"प्रिय भाई हृषीकेशजी, आपके सम्पादन और श्री. कुलकर्णी महोदय के प्रवन्ध-संचालन में

'भारती' अवश्य सफलता प्राप्त करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। विश्वास रखें, मैं कुछ न कुछ सामग्री शीघ्र ही भेजूंगा।"

दिल्ली ऑल इंडिया रेडियो से हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार, नाटककार और कवि पं. उदयशंकर भट्ट—

"भारती" का प्रकाशन निस्सन्देह साहित्यिक जगत् में नवीन प्रयोग है। मैं चाहता हूं कि यह प्रयोग सफल हो।"

चिरगांव (झांसी) से हिन्दी के सहृदय सात्विक कवि सियाराम शरणजी गुप्त —

"भारती को मेरी हार्दिक शुभ–कामनाएँ अर्पित हैं। मुझे आशा है उससे राष्ट्रभाषा के साहित्य की यथोचित श्रीवृद्धि होगी। मेरी और बड़े भैया (अर्थात् श्रद्धेय मै. श. गुप्तजी) की प्रकृति ठीक नहीं हैं। ठीक होते ही कुछ लिखूंगा।"

श्री गुरुकुल कांगडी विश्व-विद्यालय से प्राध्यापक शंकरदेवजी विद्यालंकार —

प्रिय हृषीकेशजी, 'भारती' के प्रकाशन से अतिशय आनन्दित हुआ। मैं आपके इस सुन्दर अनुष्ठान का स्वागत करता हूं, अभिनन्दन करता हूं। वे दिन १९३५, ३६ के, सहज ही मुझे याद आ गये जब आपने बंबई से, श्री मुन्शीजी के साथ ठीक "भारती" की पद्धति पर ही 'हंस' का सम्पादन किया था। निश्चय ही आपके कुशल करों से 'भारती' का साज-शृंगार बड़ी सुरुचि, सुकुमारता, शिष्टता और सुषुमा के साथ होगा। 'भारती' को मेरा हार्दिक सहयोग अवश्य!

'कृष्णायन' महाकाव्य-प्रणेता और मध्य-प्रदेश सरकार के गृहमंत्री माननीय पं. द्वारका प्रसादजी मिश्र—

मैं 'भारती' का पृष्ठ पृष्ठ पढ़ता हूं। बड़ी अच्छी निकल रही है। अभिजात भारतीय साहित्य का मानदंड 'भारती' में सदैव ऊंचा रखने का लक्ष्य रखिये। प्रूफ़ बड़ी सावधानी से देखे जायें।

मध्यप्रदेश सरकार के वयोवृद्ध प्रधान मंत्री माननीय पंडित रविशंकर शुक्लजी 'भारती' का वाचन बड़े अनुराग से करते हैं।

राष्ट्रपति डॉ. बाबू राजेन्द्र प्रसादजी को पिछला अंक जब वक्तपर नहीं मिला, कहीं बीचही में डाकघर की असावधानी से गड़बड़ा गया तो पूज्य बाबूजी के प्राइवेट सेक्रेटरी चक्रधर बाबू ने तुरन्त पत्र लिखा कि 'भारती' का अंक शीघ्र भिजवाइये पहुँचा नहीं है। राष्ट्रपति उसका स्मरण कर रहे थे।

साहित्य, कला और संस्कृति के प्रकांड पंडित सूर्यनारायण व्यास, विक्रम-सम्पादक, उज्जैन से —

'भारती' मिल गई। धन्यवाद! 'भारती' का मार्ग स्वतंत्र और वर्तमान समय के उपयुक्त है। अन्तःप्रान्तीय साहित्य के परिचय-सम्पर्क के लिये आपकी 'भारती' महत्त्वपूर्ण माध्यम होगी। दूसरा अंक इसका प्रमाण है।

धन्यं भारतभूतलं! धन्या भारती!!

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. भारत में विवेकानन्द

अभी छप गई — विवेकानन्दजी के भारतीय व्याख्यान, अनु०—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; पृ. सं. ५९९, मूल्य ५) रु. ।

२. श्रीरामकृष्ण वचनामृत

अनुवादक—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सुन्दर गेट-अप, तीन भागों में, प्रथम भाग, पृ. सं. ६३२, मूल्य ६) रु., द्वितीय भाग, पृ. सं. ६५७, मूल्य ६) रु., तृतीय भाग, पृ. सं. ८८२, मूल्य ७॥ रु.।

"श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे। उनके वाक्य किसी निरे विद्वान् के कथन नहीं हैं, वरन् वे उनके जीवन-ग्रन्थ के पृष्ठ हैं। —**महात्मा गांधी**

३. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी)

पं० द्वारकानाथ तिवारी कृत, दो भागों में, सुन्दर गेट-अप, प्रथम भाग, पृ. सं. ४३६, द्वितीय भाग, पृ. सं. ४८६, प्रत्येक भाग का मूल्य ५ रु. ।

"श्रीरामकृष्ण देव का जीवन-चरित्र हमें ईश्वर को अपने सामने प्रत्यक्ष देखने की शक्ति देता है।"

— **महात्मा गांधी**

४. विवेकानन्द-चरित

(विस्तृत एवं स्फूर्तिदायक जीवनी)

सुविख्यात लेखक श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार कृत, **अभी प्रकाशित हुई**; सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ५५५, मूल्य ६ रु. ।

"प्राचीन भारतीय संस्कृति में पगे तथा भारतवर् की प्राचीन परम्परा के अभिमानी स्वामी विवेकानन्द मानवी जीवन की समस्याओं को समझने में नितान्त आधुनिक थे और हम कह सकते हैं कि इस प्रकार उनके जीवन में भारतवर्ष की प्राचनि तथा वर्तमान संस्कृति का सुन्दर समन्वय हुआ है।"

— **पं० जवाहरलाल नेहरू**

५. विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप)

शिष्य शरच्चन्द्र कृत, सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ४४८, मूल्य ५। रु. ।

स्वामी विवेकानन्द कृत — पत्रावली (दो भागों में), प्रत्येक भाग का मूल्य २≠); महापुरुषों की जीवन-गाथाएँ १।); मन की शक्तियां ॥); ईशदूत ईसा ।≠); राजयोग १≠); स्वाधीन भारत! जय हो! १≠); कवितावली ॥≠); भारतीय नारी ॥।); शिक्षा ॥≠); धर्म-रहस्य १); मेरी समरनीति ।≡); धर्मविज्ञान १॥≠); मेरा जीवन तथा ध्येय ॥); मरणोत्तर जीवन ॥); श्रीरामकृष्ण, धर्म तथा संघ ॥≠); कर्मयोग १॥≠); हिन्दु-धर्म १॥); प्रेमयोग १।≠); भक्ति-योग १।≠); आत्मानुभूति १।); परिव्राजक १); प्राच्य और पाश्चात्य १।); शिकागो-वक्तृता ॥≠); मेरे गुरुदेव ॥≠); हिन्दू-धर्म के पक्ष में ॥≠); वर्तमान भारत ॥); पवहारी बाबा ॥); विवेकानन्दजी की कथाएँ १।); श्रीरामकृष्ण-उपदेश ॥≠)।

पता :—श्रीरामकृष्ण आश्रम, [भा], धन्तोली, नागपुर-१, मध्यप्रदेश

दी युनायटेड कमर्शियल बैंक लि.

हेड ऑफीस कलकत्ता

चुकता मूलधन : २ करोड़ रुपये

सुरक्षित कोष (रिझर्व फंड) : ५२॥ लाख रुपये

चेयरमन : **जी. डी. बिड़ला**

जनरल मॅनेजर : **बी. टी. ठाकुर**

समस्त भारत, पाकिस्तान, बर्मा और मलाया में बैंक की शाखाएँ हैं, और संसारभर में एजंसी की व्यवस्था है।

जी. ए. रणदिवे

मॅनेजर, नागपुर शाखा

नये युग के नये हिन्दी-प्रकाशन !

इस सूची में दी हुई समस्त पुस्तकों में नई प्रांजल भाषा, नये भाव, नई कल्पना, नई सूझ, और नये विचार छलकते हुए मिलेंगे। पुस्तकों का गैट-अप बहुत सुन्दर आकर्षक!!

"आचार्य चतुरसेन कृत"

नाम	कीमत
१. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास	७॥)
२. धर्म के नाम पर	२)
३. जीवन के दस भेद	१)
४. भारत में इस्लाम	५)
५. तरलाग्नि	२)
६. मरी खाल की हाय	२)
७. अन्तस्तल	२॥)
८. राजपूत बच्चे	१॥)
९. स्त्रियों का ओज	१॥)
१०. वैशाली नगर-वधू (दो खंड) (उपन्यास)	१२)
११. अजीतसिंह	२।)
१२. राजसिंह	२।)
१३. पूर्णाहुति	२॥)
१४. हिन्दूराष्ट्र का नवनिर्माण	५)
१५. पांच एकांकी	१॥)
१६. हमारे लाल दिन	४)
१७. व्यभिचार	४)
१८. काम-कला के भेद	५)

"डा० नगेन्द्र कृत"

नाम	कीमत
१९. रीतिकाव्य की भूमिका (डॉ. नगेन्द्र)	४)
२०. देव और उनकी कविता ,,	६)
२१. विचार और विवेचन (डॉ. नगेंद्र)	४)
२२. विचार अनुभूति ,,	४)
२३. छन्दमयी (कविता संग्रह) ,,	२)

"उदयशंकर भट्ट कृत"

नाम	कीमत
२४. युगदीप कविता संग्रह	२)
२५. यथार्थ और कल्पना	२)
२६. धूमशिखा (एकांकी)	२॥)

"नवीन साहित्य"

नाम	कीमत
२७. हमारे बापू	३)
२८. क्रांतिका मूल स्रोत बालक	२॥)
२९. वर्णाश्रम धर्म और समाजवाद	१)
३०. बाल नाटक चन्द्रिका	१)
३१. बालोपयोगी १४ रोमांचकारी पुस्तकें प्रत्येक का मूल्य	॥)
३२. ग्राम का वैद्य	१।)
३३. ग्राम जीवन	१=)
३४. अछूत कौन और कैसे! (भारत के कानून-मंत्री डॉ. श्री. अम्बेडकर की अमर कृति)	४)
३५. हिन्दी रचना-सर्वस्व	४)
३६. प्रेमसमाधि (उपन्यास)	२॥)
३७. भारतीय इतिहास की रूपरेखा	८)
३८. साहित्य-दर्शन (ले. शचीरानी एम.ए.)	५)
३९. सारंग (दिनेशनन्दिनी डालमिया एम.ए.)	२॥।)
४०. स्पंदन ,, ,,	३।)

"प्रकाशक —— गौतम बुक डिपो, नई सड़क देहली।"

[सूचना:— नागपुर में हमारी उपर्युक्त सभी पुस्तकें **'हिन्दी पुस्तक भंडार' नागपुर, धंतोली** में मिलेंगी]

ANNOUNCEMENT

Bharati

will be available at the following

HIGGINBOTHAMS

RAILWAY BOOK-STALLS.

1. Adoni
2. Banglore City
3. Belgaum
4. Bellary
5. Coimbatore Jn.
6. Ellore
7. Guntakal
8. Guntur
9. Hubli
10. Madras Central
11. Madras Egmore
12. Madura Jn.
13. Mysore
14. Nidadavole
15. Rajahmundry
16. Samalkot
17. Tanjore
18. Tenali
19. Trichy Jn.
20. Trivendrum Central
21. Vijayawada.

हिंदी और मराठी भाषाओं में प्रकाशित होता है।

उद्यम

प्रतिमास १५ तारीख को प्रकाशित।

धर्मपेठ, नागपुर.

उद्यम में निम्न विषयों पर लेख प्रकाशित होते हैं।

★ लाभदायक उद्योगधंधों की व्यवहारोपयोगी जानकारी।
★ अनाज की खेती, सागसब्जी की बागवानी, और रोगों का निवारण।
★ पशुपालन, दुग्धव्यवसाय और ग्रामोद्योग-संबंधी लेख।
★ विद्यार्थियों के लिये वैज्ञानिक तथा अन्य जानकारी-पूर्ण लेख।
★ आरोग्य, घरू औषधियों संबंधी जानकारी।
★ उद्यम परिवारके हर व्यक्तिकी दृष्टिसे उपयोगी है।
★ संपूर्ण भारत के व्हीलर रेल्वे स्टालों, और हर गांवके न्यूजपेपर एजेंटों की मांग सतत बढ़ती जा रही है।
★ उद्यम मासिक में हर माह सुधार किया जा रहा है और इसे हर पाठक की दृष्टिसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न हो रहा है।
★ वर्ष के १२ अंकों में अपने ढंग के दो विशेषांक प्रकाशित होते हैं, जो स्थायी ग्राहकों को वार्षिक चंदे में ही मिलते हैं।

उद्यम के विशेष स्तंभ

★ महिलाओं तथा विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त
★ विभिन्न रुचिकर खाद्यपदार्थ बनानेकी विधियां
★ घरू मितव्ययिता.
★ उद्यम का पत्रव्यवहार
★ खोजपूर्ण खबरें
★ आर्थिक तथा औद्योगिक परिवर्तन,
★ जिज्ञासु जगत
★ व्यापारिक हलचलों की मासिक समालोचना
★ कृषि, औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों की मुलाकात और परिचय
★ हिंदुस्थान के वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र की उपयोगी जानकारी
★ नित्योपयोगी वस्तुएं घरही तैयार कीजिये।
★ आजही उद्यम का वार्षिक चंदा रु. ७-०-० भेजकर सर्वोपयोगी उद्यम मासिक मंगवाना प्रारंभ करें।

१३. आत्माराम रावजी देशपांडे 'अनिल'

मराठी में मुक्तछंद के प्रधान प्रणेता। देशपांडेजी का कथन है कि आधुनिक हिन्दी-काव्यक्षेत्र में निरालाजी, पंतजी और अज्ञेयजी आदि कवियोंने बहुत पीछे 'मुक्तछंद' का कविता में प्रयोग किया है। आपके मराठी भावगीतों का 'फुलवात' पहला संग्रह है। कविता में इतिवृत्तात्मक कथाकी अपेक्षा भावात्मकता को आप प्रधानता देते है। आधुनिक मराठी रहस्यवादी कवियों में देशपांडेजी अग्रगण्य हैं। आपका मत है - कवि यदि गद्य लेखक बनजाये तो उसका कवित्व खतम हो जाता है। मध्यप्रदेशीय सरकार के 'भाषा-विभाग' के आप संचालक हैं। मराठी में 'भग्नमूर्ति' आपका श्रेष्ठ भावात्मक खंड काव्य है।

१४. विजयेन्द्रकुमार माथुर :

परिचय 'भारती' के मार्च के अंक में आ चुका है।

१५. अरुणोदय जानी :

प्राध्यापक। गुजराती के सुलेखक। संस्कृत और गुजराती के मर्मज्ञ पंडित। 'अखंड-आनन्द' के [illegible] पर [illegible] लेख-प्रकाशित।

१६. रूपनारायण पांडेय :

लखनऊ की 'माधुरी' मासिक पत्रिका के ख्यातनामा सम्पादक। हिन्दीके प्रतिष्ठित सुकवि, लेखक, और बंगला के नाटककार द्विजेन्द्र लालराय के समस्त नाटकों के सफल अनुवादक।

१७. शंकर बालाजी शास्त्री :

'मराठी गौरव ग्रन्थमाला' में उच्चकोटि के बंगला साहित्य की अवतारणा करनेवाले। मराठी उपन्यासकार— 'अडेल' (अड़ियल) टट्टू, 'कंगाल' आदि प्रसिद्ध मौलिक उपन्यास हैं। बंगला, गुजराती, आदि के सफल अनुवादक और समीक्षक। श्री० पंडित द्वारकाप्रसादजी मिश्र के 'कृष्णायन' महाकाव्य के मराठी में पद्यानुवादक। रेडियो के लिये 'एकांकी श्रुतिका' नाटक लेखक।

१८. 'भिक्षु' :

पूरा नाम श्री. न. पिच्चमूर्ति। तामिल के 'छायावादी' कवि और कहानी-लेखक। दर्शनशास्त्र के पंडित। श्रीरंगजी देवस्थान के एक्जिक्यूटिव आफिसर।

[illegible]

परिचय 'भारती' के मार्च-अंक में दिया गया है।

" कृष्णायन "

संत कवि श्री तुलसीदासजी की सुन्दर सरस रामायण की दोहा-चौपाईवाली अत्यन्त रमणीय शैली में भगवान आनन्दकंद श्रीकृष्ण का चरित्र। लेखक — पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र। मूल्य १२ रु. डाक खर्च अलग।

* निशागीत *

(लेखक — श्री० अनन्त गोपाल शेवड़े, एम. ए.)

एक सुन्दर प्रेमल उपन्यास

एक जनता के सेवक डॉक्टर और नर्स की यह प्रेम-कहानी इतनी जल्दी लोक-प्रिय कैसे हो गई?

क्योंकि उसमें प्राण हैं, सजीवता है, रोचकता है, कथा-तत्व है और मनको पकड़ने का अद्भुत आकर्षण है। एक बार प्रारंभ करनेपर पूरी किये बिना पुस्तक छोड़ी नहीं जाती।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, उदयशंकर भट्ट, विनयमोहन शर्मा, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' आदि द्वारा प्रशंसित — ऑल इंडिया दिल्ली तथा नागपुर रेडियो से चर्चित — विशाल भारत, कर्मवीर, मानवता, देशदूत, शुभचिन्तक आदि पत्र-पत्रिकाओं ने जिसकी सुन्दर समालोचना की। एक बार अवश्य पढ़िये।

पृष्ठ संख्या १५४; सुन्दर आकर्षक कवर, बढ़िया गेट-अप :
मूल्य २) रु. डा. ख. अलग.

" गृहविधान "

गृहनिर्माण-कला का संपूर्ण सचित्र शास्त्रीय ग्रंथ। सौराष्ट्र के एक बहुत बड़े अनुभवी चीफ इंजीनियर, नगर-निर्माता और सौराष्ट्र-सचिव श्री. बी. सी. मेहता का लिखा हुआ ग्रंथ। इसकी सहायता से कोई गृहस्थ धनी पुरुष २ हजार रुपये से लेकर ३ लाख रुपये तक की आलीशान इमारत, घर, बंगला आदि बनवा सकता है। ४०० पृष्ठ, २०० चित्र मैप डिजाइन वगैरह। राष्ट्रपिता पू. बापू ने आशीर्वाद दिया। स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान ने सुन्दर सम्मति दी और डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र भूतपूर्व दीवान रायगढ स्टेट ने प्रस्तावना लिखी। भवन-निर्माण कला का शास्त्रीय ग्रन्थ है। मूल्य १२ रु. डा. ख. १ रु.

उक्त पुस्तकों के मिलने का पता :—

हिन्दी पुस्तक भंडार, धंतोली नागपुर (१)

Printed by V. M. Kulkarni at the All India Reporter Press and
Published by him at Bharati Karyalaya, All India Reporter Ltd. Nagpur.
D/- 7—4—195

(All Rights Reserved)

भारती

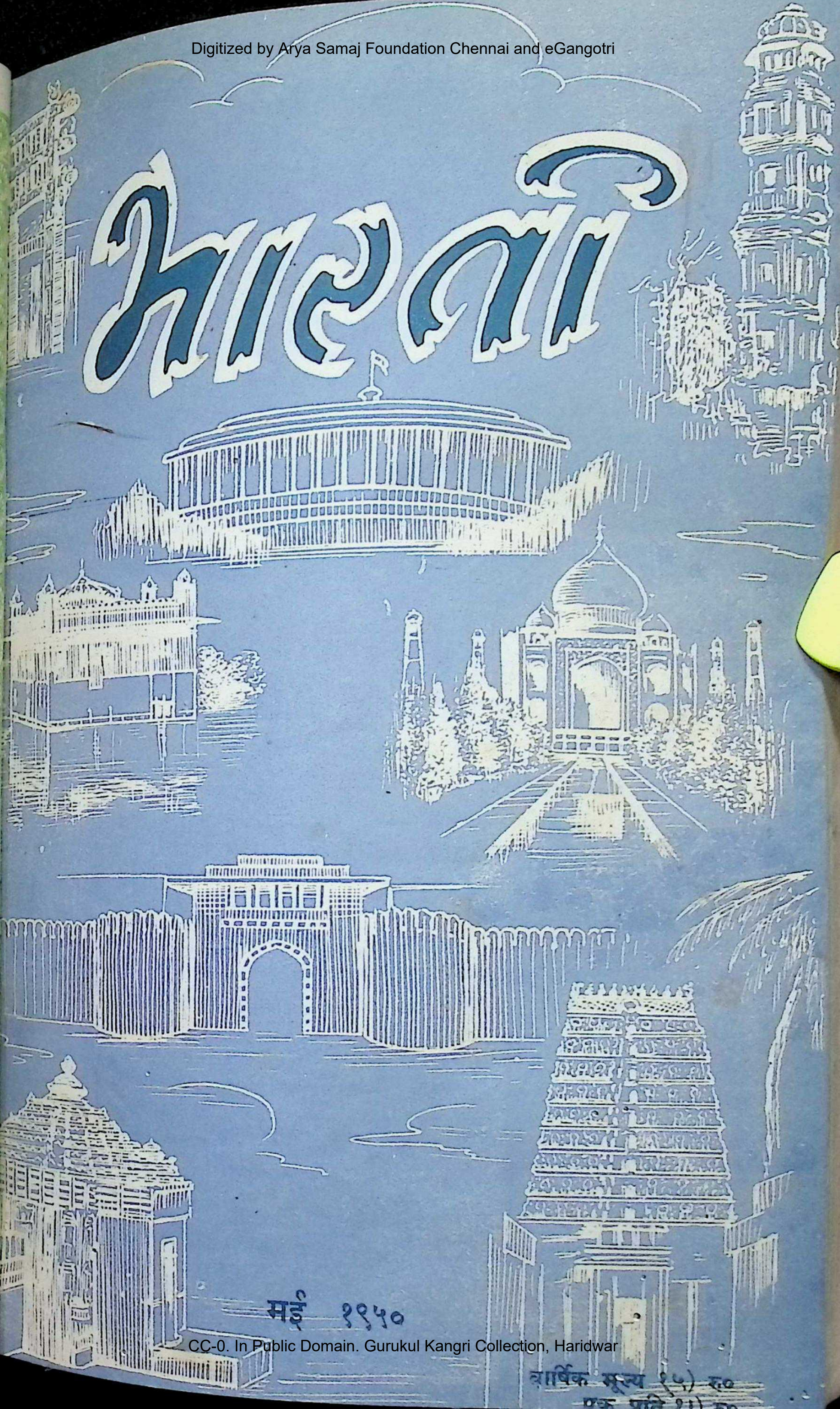

मई १९५०

वार्षिक मूल्य १५) रु०
एक प्रति १।) रु०

इस अंक के लेखक

१. **श्री. हरिभाऊ उपाध्याय :**
हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्रकार और चिन्तनशील संयमी लेखक। 'मालवमयूर' और 'त्यागभूमि'— मासिक पत्रिकाओं के सम्पादक, जो कुछ वर्ष चलकर बन्द हो गये। आजकल 'जीवन साहित्य' के सम्पादक हैं। राष्ट्रपिता गान्धी के अहिंसा तत्त्वज्ञान के अनुकूल लोक-जाग्रति, लोक-बल और लोक-हितकारी सर्वोदय साहित्य के निर्माता। आप के जीवन का दृष्टि-बिन्दु अथ से इति पर्यन्त गान्धीवादी है।

२. **श्री. उदयशंकर भट्ट :**
हिन्दी में प्रौढ़ सांस्कृतिक नाटकरचना में यशस्वी। लब्धप्रतिष्ठ, सुकवि, सुलेखक, विचारक और सफल समालोचक। आप दिल्ली ऑल इंडिया रेडियो में हैं।

३. **श्री. श्रीराम शर्मा, विशाल भारत-सम्पादक :**
'भारती' के फरवरी-मार्च के अंक में परिचय दिया जा चुका है। इस अंक की विशिष्टता इतनी कि लेखक के लाड़ले लल्लू लौरेंजो बौटिस्टा साहब की गोद में मजेसे कुछ सोचते हुए निधड़क बैठे हैं और लौरेंजो साहब उनपर अपने स्नेह की वर्षा कर रहे हैं।

४. **श्री. उपेन्द्रनाथ 'अश्क' :**
उर्दू और पाश्चात्य शैली से प्रभावित, हिन्दी के प्रगतिशील लोकप्रिय प्रतिष्ठित लेखक। बहुतसी मनोवैज्ञानिक कहानियां, एकांकी और दो-एक उपन्यास लिखे हैं। 'अश्क' फारसी का शब्द है और आँसू, अश्रु अर्थ है। लेखक का यह खुशनुमा तखल्लुस है।

५ **वि. भि. कोलते :**
पूरा नाम डॉक्टर विष्णुपन्त भिखाजी कोलते। नागपुर महाविद्यालय (मॉरिस कालेज) में मराठी के प्राध्यापक। मराठी के महानुभावी संत साहित्य के मर्मज्ञ विवेचक और स्वतंत्र समालोचक। आपका एक मनोरंजक ठोस आलोचनात्मक लेख कालिदास के शाकुंतल से सम्बान्धित "तत्रापि चतुर्थोंक:" नाम से 'भारती' के आगामी अंक में आ रहा है। आपका 'संत तुकाराम' लेख २४-अप्रैल को ऑ. इं. रे. पर दिये हुए भाषण का संशोधित, परिवार्धित एवं परिवर्तित रूप है।

६. **श्रीमती होमवती देवी :**
हिन्दी में इस समय जितनी स्त्री-कहानी-लेखिकाएं हैं उनमें आप एक सफल एवं प्रतिष्ठित कहानी-लेखिका हैं। आपकी कई सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानियां निकली हैं। प्रसिद्ध कवयित्री और निबन्ध-लेखिका।

७. **श्री. 'वनमाली' :**
मध्यप्रदेश के एक उदीयमान सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानी-लेखक। एम. ए., अध्यापक।

८. **श्री. विनयमोहन शर्मा :**
आपका परिचय 'भारती' के गत मार्च-अं आ चुका है।

९. **श्री. गोपाल शर्मा एम. ए. :**
परिचय मार्च-अंक में।

१०. **श्री. वसंत अ. शहाणे :**
मराठी के अच्छे विनोदी लेखक। मराठी की अं पत्र-पत्रिकाओं में लिखते हैं।

११. **श्री. विष्णु प्रभाकर :**
हिन्दी जगत में एक तरुण प्रगतिशील प्रति कहानीकार तथा एकांकी लेखक। स्वाभिम परिश्रमी लेखक।

१२. **श्रीमती कुसुमावती देशपांडे, एम. ए. :**
नागपुर महाविद्यालय में अंग्रेजी-साहित्य की प्राध्य पिका। मराठी में जीवनस्पर्शी मनोवैज्ञानिक क नियों की लेखिका और मराठी वाङ्मय का अनुशीलनकर्त्री। 'भारती' के गत जनवरी के में आपका 'मराठी-उपन्यास' शीर्षक सुन्दर सम चनात्मक लेख प्रकाशित।

१३. **श्री. ज्योतीन्द्र दवे :**
बंबई सरकार के शासन-विभाग में प्राच्य भाषा प्रधान अनुवादक हैं। अपनी शक्ति और अनुसार गुजराती की सरल मनोरंजक शैली में, जीवन को छूनेवाले बहुत साधारण विषयों को त्मक हास्य रूप देने में श्री दवे अत्यन्त सिद्धहस्त आपकी 'रंग-तरंग' आदि कई शिष्ट हास्यर पुस्तकें गुजराती में बहुत लोकप्रिय हैं। 'भारत पाठक गत जनवरी के अंक में प्रकाशित अ मनोरंजक लेख 'अंकुश' पढ़कर प्रसन्न हुए होंगे

१४. 'कृष्णायन' महाकाव्य के प्रणेता का परि तो उनकी कृति ही है। शंकर वा. शास्त्री का परि गत अप्रैल के अंक में आया है।

१५. **मधुसंचय स्तंभ :**

१. श्री सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, एम. ए. व्याक चार्य, काव्यतीर्थ। नागपुर महाविद्याल संस्कृत के प्राध्यापक। भाषा, दर्शन, का समर्थ समालोचक।

२. श्री. के. जे. आचार्य गुजरात के एक वि लेखक।

३. श्री. गुरुदयाल मल्लिक : शान्तिनिकेतनवा दार्शनिक भक्त, संतसाहित्य-सेवी, उच्च कोटि विचारक।

१६. **श्री. अनन्तगोपाल शेवडे :**
परिचय मार्च के अंक में दिया गया है।

इस अंक की सामग्री

विषय और लेखक

[भारती] [मई १९५०]

पृष्ठ संख्या

१. काव्य और कला क्या है ? [श्री. हरिभाऊ उपाध्याय] ... ३०९
२. साहित्य के प्रयोग और उनकी दृष्टि [श्री. उदयशंकर भट्ट] ... ३१०
३. श्री. लौरेंजो बॉटिस्टा से भेंट (सचित्र) [श्रीराम शर्मा, 'विशाल भारत' सम्पादक] ३१५
४. मेरा एक दिन [श्री. उपेन्द्रनाथ अश्क] ... ३२१
५. सन्त तुकाराम [श्री. डॉ. विष्णु भिकाजी कोलते, पी. एच्.-डी.] ... ३२६
६. भारतीय लोकगीत में अन्तर्भावना [श्रीमती होमवती देवी] ... ३३०
७. एक औरत (कहानी) [श्री. 'वनमाली'] ... ३३४
८. राधा बोल रही जी की (कविता) [श्री. प्रो. विनयमोहन शर्मा] ... ३४०
९. अहिल्या (एकांकी नाटक) [श्री. प्रो. गोपाल शर्मा] ... ३४२
१०. अवतरण (मराठी: हास्य लेख) [श्री. वसंत अ. शहाणे] ... ३५०
११. विपर्यास (सचित्र कहानी) [श्री. विष्णु प्रभाकर] ... ३५४
१२. 'मा मा हिंसी :' (बंगला) [स्व. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर] ... ३६०
१३. कृष्णायन से (मराठी रूपान्तर) [श्री. शंकर बा. शास्त्री] ... ३६५
१४. भ्रम निवारण (मराठी कहानी) [श्रीमती प्रो. कुसुमावती देशपांडे] ... ३६९
१५. दक्षिण का विकट-कवि [श्री. नागेश्वर पशुपति] ... ३७२
१६. घड़ी (गुजराती हास्य) [श्री. ज्योतीन्द्र ह. दवे] ... ३७३
१७. मधु-संचय [सर्व श्री. प्रो. स. प्र. चतुर्वेदी, के. जे. आचार्य और गुरुदयाल मल्लिक] ३७८
१८. हे मन जागो मंगल लोके (वंगाली कविता) ... ३८५
१९. पूर्णिमा (धारावाही हिन्दी-उपन्यास) [श्री. अनन्त गोपाल शेवडे] ... ३८६
२०. विविध [श्री. ललिता प्रसाद पुरोहित] ... ४००
२१. साहित्यालोचन (ग्रन्थ-समालोचना) [श्री. प्रो. विनयमोहन शर्मा] ... ४०५
२२. दृष्टिकोण (सम्पादकीय) ... ४१०

'भारती' के नियम और उद्देश्य ।

(संपादकीय)

१. भारती प्रतिमास ७ तारीख को प्रकाशित होती है ।

२. भारती में साम्प्रदायिक अथवा मत-मतान्तरों से सम्बन्धित, विवाद-ग्रस्त लेख प्रकाशित नहीं होंगे ।

३. भारती भारत की विशुद्ध अन्तर्प्रान्तीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रगतिशील चिन्तन-प्रधान सचित्र मासिक पत्रिका है ।

४. भारती में प्रतिमास लगभग १०० पृष्ठ रहेंगे ।

५. किसी लेख, रचना, कविता आदि को छापने या न छापने का, उसे कम-बढ़ करने का और लौटाने न लौटाने का अधिकार संपादक को है ।

६. भारती का उद्देश्य समस्त उच्च भारतीय भाषाओं के साहित्य को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना है जिससे वह भारत के समस्त भाषा-भाषियों की वस्तु बन सके ।

७. भारती का दृष्टिकोण नव चेतना को लिये हुए रचनात्मक है । वह नये भारत में ऐसे हिन्दी साहित्य का निर्माण चाहती है; जिसमें भारतीय साहित्य का समन्वय हो—सर्वोदय हो ।

८. भारती में हिन्दी की मौलिक श्रेष्ठ रचनाओं के साथ साथ —

१ असमिया, २ बंगला, ३ उडिया, ४ नेपाली, ५ काश्मीरी, ६ सिंधी, ७ गुजराती, ८ मराठी, ९ तमिळ, १० तेलुगु, ११ कन्नड, १२ मलयालम आदि १०–१२ प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुई श्रेष्ठ अनूदित उच्च साहित्यिक रचनाएं भी प्रकाशित होंगी ।

९. भारती में मनन करने योग्य विविध विषयक लेख, मनोवैज्ञानिक कलात्मक कहानियां, धारावाहिक उपन्यास, कविता, एकांकी, विविध समालोचनाओं का समावेश होगा ।

१०. प्रकाशनार्थ समस्त सम्पादकीय व्यवहार नीचे लिखे पते पर कीजिये :—

लेखकों के लिये सूचना :—

'भारती' में प्रकाशनार्थ रचना, आदि कम से कम एक मास पहले, ता. १० तक, सम्पादक के पास भेज देना चाहिए । लेख-रचना सामग्री साफ सुथरे कागज के एक ही ओर स्वच्छ सुपाठ्य अक्षरों में लिखी जानी चाहिए ।

अस्वीकृत रचना को वापस मँगाने के लिए डाक-टिकट अवश्य भेजें । लेखकों की अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ 'भारती' में प्रकाशित नहीं की जायँगी ।

वार्षिक मूल्य १५ रु.
एक प्रति १।) रु.

संपादक, 'भारती'
C/o. ऑल इंडिया रिपोर्टर लि.
कांग्रेस-नगर, नागपुर (१) (मध्यप्रदेश)

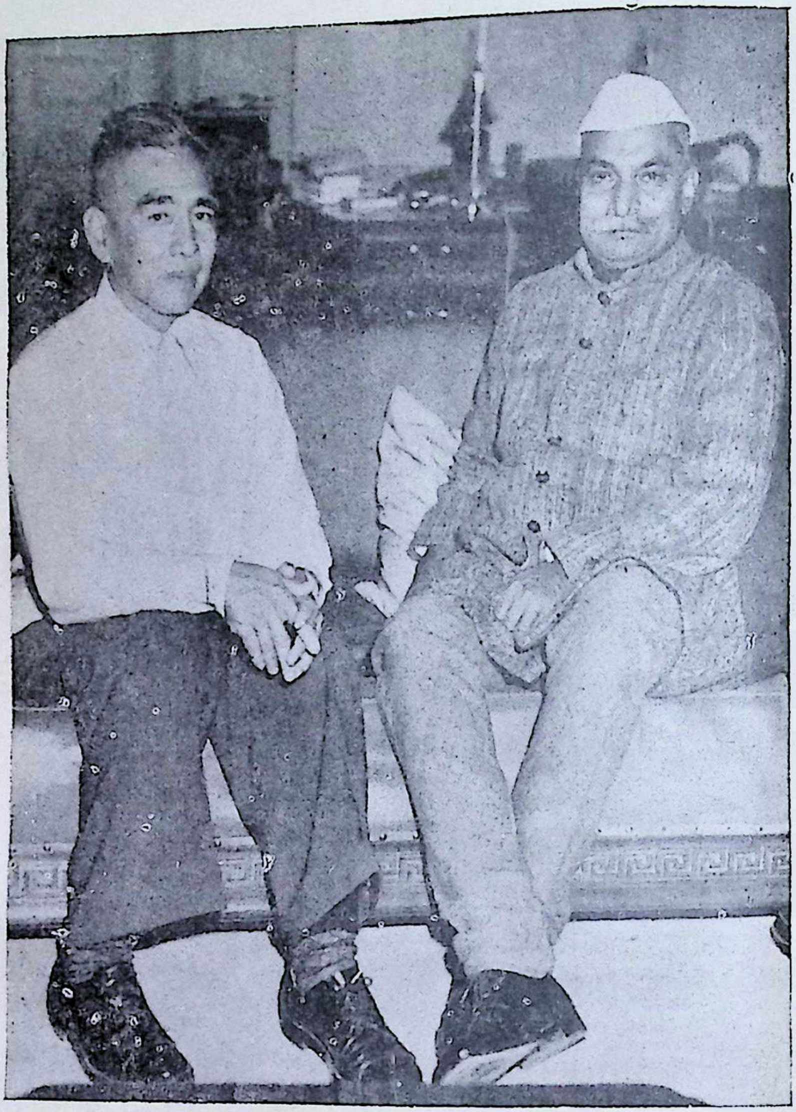

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद
श्री. लौरेंज़ो बौटिस्टा के साथ

“ भगवान ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती ।”
— मैथिलीशरण गुप्त.

भारती

संचालक
ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., नागपुर

सम्पादक
हृषीकेश शर्मा

प्रबन्ध-सम्पादक
वि. मा. कुलकर्णी

वर्ष १ * नागपुर, मई—१९५० * अंक ५

काव्य और कला क्या है ?

हृदय की गूढ़तम अव्यक्त अस्फुट वेदना का उद्‌गार ! मानव-हृदय जब आन्दोलित, क्षुब्ध और विकल होकर पागल हो उठता है, इस पागलपन में वह जो कुछ बकता है या कूँची से टेढ़ी-मेढ़ी लकीर खींच देता है वही काव्य और कला है । इस पागलपन में वह अद्भुत बातें कर डालता है और दूसरों से करा लेता है । यह जीवन-शक्ति जब काव्य-कला में कम पड़ जाती है तब समाज की तृप्ति उससे नहीं होती । जब समाज अपनी निष्प्राणता से ऊब उठता है तब काव्य-कला की अमर आत्मा नव-नव रूपों में प्रकट और विकसित होती है—वही अन्तरात्मा नवीन कलेवरों में प्रस्फुटित होती है । हिन्दी के वर्तमान काव्य-साहित्य में आज इसी क्रान्ति के दर्शन हम कर रहे हैं । अब कवि नवीन भावावेश में, नई भाषा में, नई धुन में गाते हैं और नवीन छन्द बन जाते हैं । उनमें नई व्यंजना दर्शन देती है, नवीन कल्पना सामने आती है । नये भाषा-प्रयोग जन्म पाते हैं । नये विधाता नये ब्रह्माण्ड की रचना कर रहे हैं । पुराना ईश्वर भी नवीन रूप में हमारे सामने आ रहा है । एक-एक अणु नये जीवन और नये भविष्य की रचना में लगा हुआ है ।

—हरिभाऊ उपाध्याय

साहित्य के प्रयोग और उनकी दृष्टि

[उदयशंकर भट्ट]

आज का वैज्ञानिक अपनी प्रयोग-शाला में अणुबम और हाईड्रोबम तैयार करने में संलग्न है। जिसके द्वारा वह अकल्पित खंड प्रलय की कल्पना एक नया मनु बनकर कर रहा है। पिछले मनु ने तो श्रद्धा और बुद्धि की प्रतीक इड़ा की सहायता लेकर जो संसार का सृजन किया था, जो नई सभ्यता द्वारा जीवन के नये मानदंडों की स्थापना की थी उससे संसार ने कई परिवर्तन, कई उथल-पुथल और कई आवर्तन-प्रत्यावर्तन देखे। उसमें हर्ष, विषाद, मोह और उपरति, सभी का नवीन सामंजस्य होकर मनुष्य की सृष्टि का विकास हुआ। उस खंड-प्रलय से लेकर आज तक जो कुछ हुआ उस सारी सामग्री का पूण विस्तार मनुष्य की अनुभूति के लिखित अलिखित सभी साधनों में प्राप्त हो सकता है। मनुष्य-जाति ने अपनी उन्नति के लिए धर्म, आचार, समाज, नीति तथा साहित्य के जो साधन प्रस्तुत किये उनका इतिहास आजतक का लेखा-जोखा यदि साहित्य के रूप में उपस्थित है तो स्वयं मनुष्य-जाति के वंशजों के रूप में भी वर्तमान है। अर्थात् मनुष्य स्वयं भी एक साहित्य है। साहित्यकार कहलानेवाला व्यक्ति तो अपने कौशल से बुद्धि, विवेचना, कला के साधन से उसका नेगेटिव भर तैयार करता है। उस नेगेटिव की प्रतियां तैयार करने में उसको सुसज्जित ढंग से प्रस्तुत करने में साहित्यकार की कुशलता समझी जाती है। इसीलिए साहित्य जीवन की छाया है। व्याप्त-जीवन मनुष्य के साथ साथ जैसे छाया चलती है वैसे ही साहित्य भी हमारे साथ साथ चलता है। इसीलिए छायारूप साहित्य से मनुष्य के सृजन में अधिक सहायता मिलती है। किन्तु आज के साहित्य की छाया ने प्रयोगशाला से निकल कर मनुष्य को अवश्य भयभीत कर दिया है। वह देख नहीं पाता कि वह क्या करे, कहां जाय ! और यदि अणुबम तैयार ही होगया तो उसके उपयोग से....!

आज सम्पूर्ण साहित्य-विचार दो भागों में विभक्त हो गया है। पहला है द्वन्द्वात्मक भौतिक पद्धति की तर्कसंगत शैली का परिष्कृत रूप कम्यूनिज्म और दूसरा इसका विरोधी जो प्राचीन तत्वों को रगड़ रगड़ कर नये चमत्कार के साथ प्रयोगशाला में आता है। आज सारा संसार संक्रान्तिकाल (ट्रांजीशन पीरियड) से गुजर रहा है। जहां विचारों की हवा अज्ञातरूप से मनुष्य के भीतर बड़ी तेज़ी से उथल-पुथल पैदा कर रही है। भेड़ाघाट में दो तीन हजार फीट गहराई में बहनेवाली नर्मदा की ऊपरी सतह जिस तरह शान्त गम्भीर स्थिर दिखाई देती है किन्तु उसके नीचे कितनी तेजी से हजारों टन पानी प्रतिक्षण बह जाता है। ठीक इसी तरह हमारे विचारों की नदी का प्रवाह अलक्षित रूप से हम में परिवर्तन

उपस्थित कर रहा है; हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। एक मोटा-सा उदाहरण लीजिये। आज इस 'राशन' के युग में अभावों का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है मध्यवर्ग के निचले स्तर तथा श्रमजीवी वर्ग पर। ये दोनों वर्ग अपेक्षाकृत आज अधिक सजग हैं। पहला वर्ग विचारों से और दूसरा कार्यद्वारा जब तब अपनी परिस्थिति तथा उसके उपायों का दिग्दर्शन करता रहता है। इसीलिए अपेक्षाकृत इन्हीं दो में कम्यूनिज्म की विचारधारा का प्रभाव भी अधिक है। शराब के नशे की तरह बाकी के वर्ग के लोग अपने को भुलाने में व्यस्त हैं। आज के साहित्य में इसी की प्रतिकृति मिलती है, और उन लेखकों के द्वारा भी जो विचारों से एकदम कम्यूनिस्ट नहीं बन गये हैं। साधु भाषा में इसको प्रगतिवाद कहा जाता है। कांग्रेस के अनुशासन तथा गांधी जी के अक्षुण्ण प्रभाव की व्यापकता के कारण सरकार उस प्रगतिवाद का मुकाबिला गांधीजी के सिद्धान्तों द्वारा करना चाहती है। दूसरी तेज विचार धारा भारतीय साहित्य में गांधीवादी है। एक तरह से ये ही दो विचार धारायें हैं जो आजके साहित्यपर छा रही हैं। इसलिए साहित्य ही मनुष्य है और मनुष्य ही साहित्य। साहित्य की यह परिभाषा बिल्कुल नई और समयानुकूल है। इस धारणा के अनुसार कोई भी ऐसा साहित्य जो हमारी समस्याओं का समाधान नहीं करता, हमारी बात का प्रतिनिधित्व नहीं करता आज की परिभाषा में साहित्य नहीं है। प्राचीन साहित्य अवकाश के समय बैठ कर मनोरंजन, कला कला के लिए हो सकता है किन्तु वह हमारा मार्ग प्रदर्शन, हमारे जीवन के साथ ग्रथित न होने के कारण वास्तविक नहीं है। साहित्य ने सदा से युग का साथ दिया है। युग का प्रतिनिधित्व किया है। फिर चाहे वह सुख का स्वर्णकाल हो अथवा विपत्ति में उभरने वाला नरक का दृश्य लिए बीभत्सता का प्रदर्शन। साहित्य का अर्थ ही है समूह को लेकर चलने वाला। इसीलिए आज साहित्य की व्याख्या करते समय हमें मानवीय ग्रन्थियों में विश्वास का सूत्र पिरोकर जीवन की व्याख्या को समझना होगा। और इसीलिए हमारे सामने रसगंगाधरकार जगन्नाथ, मम्मट, भामह, विश्वनाथ तथा ई० टी० हल्मे, एडगर एलन पो, क्रौंचे बोदलेयर, बलैन, रेम्या, रोज़िटी, मौरिस, हौपकिन्स के भिन्नकल्पनावादी, अभिव्यंजनावादी तथा रस वक्रोक्ति ध्वनि के सिद्धान्त जीवन के साहित्य की पूरी व्याख्या नहीं कर पाते। अव्याप्ति, अतिव्याप्ति दोषों से पूर्ण साहित्य की ये व्याख्यायें उस कन्वास को कबूल नहीं कर पातीं जिसकी आज हमें आवश्यकता है। यदि हम साहित्यकारों की इन व्याख्याओं का गम्भीर अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि ये व्याख्यायें एक के अपूर्ण होने पर ही दूसरी की आवश्यकता रूप में बनाई गई हैं। इसीलिए आज के साहित्यकार ने मनुष्य के अवचेतन की अवस्था में एकसूत्रता की कल्पना भी की है। और वह मानता है कि साहित्य में प्रसूत हर्ष शोक की धारा सभी में एकसी प्रवाहित हो रही है। वह मानता है कि यथार्थवादी प्रवृत्ति द्वारा वह पाठक के मानसिक स्तर को वस्तुकी भावनाओं से तन्मय बनाकर कहने योग्य को सबके विचारों,

सबके भावों और सबका अंग बना दे। बात भी ठीक है। मनुष्य का विकास हमारे यहां की उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है जब धर्म और राजनीति की तरह साहित्य का अस्तित्व भी चमके। और वह प्रत्येक व्यक्ति, जाति, वर्ग, देश और देश समूहों को ठीक ठीक दिशा निर्देशन कर सके। उसका कारण यह है कि हमारे भीतर मनुष्यता को समझनेवाली एक नई जागृति, नई चेतना, उभर रही है। उसमें रेशनलिज़्म की मात्रा के आभास ने मनुष्य के दृष्टिबिन्दु को उसे दूसरे ढंग से, दूसरी प्रणाली से देखने को बाध्य कर दिया है। मनुष्य के तर्क की व्यापक दृष्टि पुरानी रूढियों, विश्वासों, डोगमाज़ के प्रति चाहे ऊंचा स्थान प्रगट कर सकी हों उन्हें सन्देह की दृष्टि से अवश्य देखने लगी हैं। तदनुसार ही साहित्य का रेशनल व्यू पाइंट भी बदल गया है। वादों-प्रतिवादों-द्वारा प्रत्येक विचार का नये दृष्टिकोण से प्रत्येक वस्तु को नापने के लिए बाध्य हो गया है। जैसे प्रत्येक प्रकार के वैभव में पले राजकुमार को महलों से निकाल कर साग-सब्जी बेचने वाली मंडी या कलकत्ते के मछली मार्केट में लाकर खड़ा कर दिया हो, और वह आश्चर्य से नेत्र फाड़ कर देख रहा हो कि क्या यह भी संसार है, क्या यहां भी मनुष्य है? साहित्य भी इसी तरह महलों से नीचे उतर कर बंगाल के युद्धकालीन दुर्भिक्ष में भूख से मरे, एक एक दाने को तड़पते, प्राण छोड़ते, कीड़ों की तरह बिलबिलाते, कुत्तों से छीन कर जूठी पत्तलें चाटते भिखारियों, भद्रलोगों को देख चुका है। उसने यह भी देखा है कि अन्न के एक दाने के लिए तरसती युवतियों को किस तरह विलासिता के पिशाचों के सम्मुख आत्मसमर्पण करना पड़ा है। किस तरह स्वतन्त्रता के पावन उन्माद में अगस्त ४२ की क्रान्ति में स्त्रियों, पुरुषों, बूढ़ों, बालकों ने हंसते हुए वृक्षों की डालों पर लटक कर प्राण दिए हैं। किस तरह गांव के गांव नृशंस गोरों के द्वारा चारों तरफ से घिर जाने पर पुआलों, चरियों, छप्परों के फूसों की आग में उन्होंने दम घुटने पर प्राण दिये हैं, उसने यह भी देखा है कि वासना का पिशाच व्यक्ति अपनी कुल वधू को शराब के चुक्कड़ के लिए सतीत्व बेचने के लिए बाध्य कर रहा है। और घर में मृत व्यक्ति का कफन बेच कर बहुत दिनों से अतृप्त एक गंजेड़ी अपने साथियों के साथ गांजे की दम लगा रहा है। सारांश यह कि साहित्य को इन लोगों के लिए अपना जीवनीय प्रयत्न साध्य कर देना पड़ा है।

राजनीति से लोग ऊब चुके हैं। धर्म की भावनाओं से लोगों का विश्वास डगमगा उठा है। फिर क्या है जो मनुष्य जाति का मार्गप्रदर्शन करेगा? वह साहित्य है। जो व्यापक होकर धर्म की भावनाओं, संस्कृति की परम्पराओं, राजनीति की सदाशयताओंको अपने में मिला कर एक नये प्रकाशस्तम्भ की तरह खड़ा हो सकता है। इसीलिए आज साहित्य की सीमाएँ भी पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक, अधिक दूरस्थ होगई हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि साहित्य ने अपने रूप में प्रस्फुटित होकर कई क्रान्तियां भी की हैं। ज्यां मार्क्स

रूसो, वाल्टेयर के व्यक्तिवादी साहित्य को अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं, जिन्होंने फ्रान्स में क्रान्ति की आग भड़काने में चिनगारी का काम दिया था। और कार्ल मार्क्स, एंगल ने तो संसार की दिशा ही बदल दी। कौन नहीं जानता कि पैरीपटेटिक मूवमेंट के द्वारा सिर झुका कर घूमते घूमते प्लेटो ने संसार के ज्ञानान्ध कूप को कितना बड़ा सागर बना दिया ? बुद्ध के चिन्तन ने अशोक, समर्थ गुरु रामदास के चिन्तन ने शिवाजी और अभी कल-परसों तक हमारे बीच में घूमते हुए अर्धनग्न दरिद्रनारायण बूढ़े गांधी के चिन्तन ने हमारे देश के घूमते चक्र को एक दम बदल कर नई दिशा की ओर मोड़ दिया। चिन्तन ही तो साहित्य का मूल कारण है। जिसकी भूमि को फाड़कर साहित्य का छोटासा अंकुर महान् वटवृक्ष बन जाता है। उसी साहित्य महाविटप की छाया में हमें बैठ कर आचार-विचार के नवीन संस्फुरण वाले प्रेम, कर्तव्य, विवेक, मानवता के प्रश्नों का समाधान ढूंढना है। और भूख, महामारी, क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती हुई जन संख्या की भयंकरता का प्रश्न भी हमें हल करना है।

आज वह समय आ गया है जब साहित्य के स्वास्थ्य पर हमारे जविन का स्वास्थ्य निर्भर होगा। उस अवस्था में हमको यह भी देखना होगा कि वह साहित्य ऐसा तो नहीं है कि मानवता को उठाने की अपेक्षा पतन की ओर ले जाय। इस पतन से बचाने के लिए मैं भी किसी आदर्शवाद की कल्पना नहीं कर रहा हूं। आदर्शवादी साहित्य में जो बन्धन की भावनायें होती हैं अथवा निर्धारित तत्वों में बंध कर चलने का जो प्रयास होता है वह एक दम अव्यावहारिकता को जन्म देकर इतिहास के पुनरावर्तनीय परमाणुओं एवं दुर्घटनाओं का आवाहन करता है। स्पष्ट शब्दों में, फासिस्टवादी मनोवृत्ति को जन्म देता है। मनुष्य स्वाभाविक रूप से पलायनवादी है। वह मानसिक अपरिपक्वता के कारण अपने कार्य को दूसरों के सिर पर डाल कर स्वयं भाग जाना चाहता है। सामन्तवाद अथवा राजा के युग की स्थापना में इसी मनोवृत्ति का दूषित रूप हमारे सामने आया है। जब मनुष्य समाज की असहायावस्था थी, अथवा उसकी रक्षा करके एक व्यक्ति ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था, जब पशुओं, से प्रबल शत्रुओं से किसी प्रबल वर्ग या दुर्दमनीय व्यक्ति ने किसी अपने साथी समाज को शरण देकर उसके रक्षा-दायित्व का भार अपने ऊपर ले लिया तभी से वह अपने पराक्रम की गुरुता के कारण उस समाज का रक्षक बनते बनते स्वामित्व का भी अधिकार ले बैठा। हमारे यहां राजा में ईश्वर के अंश की कल्पना भी इसी आदर्शवाद, वैयक्तिक एवं सामूहिक पलायनवादी मनोवृत्ति का परिणाम है। फलत: हमारे साहित्य को सबको मनुष्य बनाने की, सबका कल्याण सोचने की, भावना का भव्य ध्येय लेकर चलना होगा। उस उद्देश्य के प्रति प्रगतिवादी होकर हमको हिंसा-अहिंसा को भी उतने ही अंग तक मानना होगा जितने से कि वह हिंसा अहिंसा सिद्धान्त बन कर हमारे मार्ग में शिलाखंड की तरह आकर अड़

नहीं जाते। हिंसा और अहिंसा साधन हो सकते हैं; साध्य नहीं। जब हम साधनों को सिद्धान्त स्वीकार कर लेते हैं तब पर्वत को लांघने का ध्येय लेकर चलते हुए बीच में ही रम जाने वाले पथिक की तरह मार्गभ्रष्ट हो जाते हैं। और वैसे भी हिंसा की प्रतिक्रिया अहिंसा है, अहिंसा की प्रतिक्रिया हिंसा नहीं हो सकती।

मानववादी भावना के विश्वरूप में ही हमारा साहित्य प्रफुल्ल हो सकता है। तभी युद्ध भी रुक सकते हैं। यह मानववादी भावना क्या वस्तु है? क्या उसका कोई स्थिर स्वरूप है या उसका कोई मनोवैज्ञानिक रूप भी है। हो सकता है वह कभी न सफल होनेवाली 'मेटामोर्फोसिस' का एक परिवर्तनीय रूप हो हमारे देखने का। मेरा उत्तर यह है कि मानवतावाद प्रमुख रूप से "लिव एण्ड लेट लिव (जियो और जीने दो)" के मोटे सिद्धान्त पर स्थिर है। इस "जियो और जीने दो" में उन सब विरोधी तत्वों का प्रतिकार भी है जो किसी भी वर्ग के जीवन में व्याघात स्वरूप होकर उपस्थित होते हैं। उसका मनोवैज्ञानिक रूप यही है कि इस सम्पूर्ण सृष्टि में और विशेषकर प्रकृति में छोटे से लेकर बड़े तक में अविरोध अपने अस्तित्व सुरक्षित रखने की एक प्रबल भावना दिखाई देती है। मनुष्य-सृष्टि का प्रारम्भिक विकास भी इसी मूल प्रेरणा का सहारा लेकर चला है। जननी और जनक में भी परस्पर तथा परिवार के प्रति जो मोह होता है वही मोह गांव, पड़ौस, गली, समाज तथा देश जाति के रूप में मनुष्य जाति के भीतर अनादि काल से चलता चला आया है। उस अंकुर को विशाल रूप में विकसित होने देने का नाम ही मानवतावाद है।

हमारा साहित्य आज उसी के विधिवत विकास की प्रतीक्षा कर रहा है। उसमें वे सब पुराने तत्व भी हैं जिनके द्वारा सांस्कृतिक पुनर्जीवन की क्षमता मनुष्य को प्राप्त हुई है। हमें मनुष्य के ज्ञान में पोषित उन छिपे हुए तत्वों को भी खोज निकालना होगा जिन पर आज रूढि, अन्धविश्वास, कुरूपता का आवरण चढ़ गया है। वह दिन दूर नहीं जब साहित्य की प्रयोगशाला में हम इस विज्ञान की खोज करेंगे।

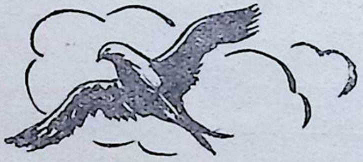

श्री लौरेंज़ो बौटिस्टा से भेंट

[श्रीराम शर्मा, 'विशाल भारत'-सम्पादक]

गत दो मार्च १९५० को, प्रातःकाल के १० वजे, सिरदर्द से परेशान लेटा हुआ था। 'सारीडन' की दो गोलियाँ खा ली थीं। पर दर्द कम न होता था। ऐसा मालूम होता था मानो दिमाग भीतर से कट-कट कर निकल रहा हो। किसी की आवाज़ तक सह्य न थी। आशा थी कि आध घंटे में दवा का असर होगा। पर लेटने के ५ मिनिट बाद ही किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। कुछ देर तो मैं चुप रहा। पर जब खटखटाहट की आवाज़ और बढ़ गई तब आखिर उठकर किवाड़ खोले तो देखा युनाइटेड-प्रेस के एक मित्र को खड़े पाया। पहले ही इसके कि मैं कुछ बोलूँ, वे बोल, उठे, फिलिप्पाइन के डेलीगेट लौरेंज़ो बौटिस्टा साहब आगरा केण्ट स्टेशन पर रात से पड़े हुए हैं। भारत-सरकार के शिक्षामंत्री मौलाना आज़ाद ने आगरा-विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर को तार दिया था कि वे उनके ठहरने की व्यवस्था करें। परन्तु वाइस-चान्सलर साहब बाहर गये हैं, तार शायद उन्हीं के नाम से है। सो किसी ने खोला नहीं। रजिस्ट्रार को फोन किया तो शायद उन्होंने जवाब दे दिया कि बौटिस्टा साहब किसी होटल में ठहर जायँ। रात के साढ़े दस वजे कुछ इन्तजाम नहीं हो सकता। स्टेशन से यूनाइटेड प्रेस के आफिस को फोन किया गया, तो मैं सीधा आपके पास चला आया हूँ कि बौटिस्टा का क्या प्रवन्ध हो। उपर्युक्त बातें सुनकर बड़ा क्षोभ हुआ। यूनाइटेड प्रेस के मित्र से मैंने कहा — "मैं चलने में असमर्थ हूँ। आप कृपा कर स्टेशन चले जायँ और ताँगे में बिठा कर बौटिस्टा साहब को मेरे मकान पर ले आयँ। उनसे यह भी कह दें कि मेरे यहाँ अंगरेजी ढंग की कोई सुविधा न होगी। फर्श पर सोना पड़ेगा और हिन्दुस्थानी ढंग का भोजन मिलेगा। हाँ, स्नेह और सेवा में कोई कमी न होगी।" यही बातें मैंने उन्हें एक काग़ज पर लिखकर भी दे दीं, और मैं लेट गया।

लेखक श्री लौरेंजो बौटिस्टा क साथ

लगभग पौन घंटे बाद एक 'पिक अप' मकान के सामने आकर रुकी। युनाइटेड प्रेस के मित्र उसमें से उतरे और उन्होंने मुझ से कहा "आगरा यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार साहब ने 'पिक अप' भेज दी है और इसीसे बौटिस्टा साहब तुरन्त सेंट जान्स कॉलेज में व्याख्यान देने जायँगे।" आगे बढ़कर मैंने बौटिस्टा साहब का स्वागत किया। और अभिवादन के बाद उन्हें अपने कमरे में ले आया। उनका सामान भी रख लिया। रजिस्ट्रार महोदय ने जिस विद्यार्थी को लेने भेजा था, उसने बौटिस्टा साहब को कॉलेज ले जाने की बड़ी जल्दी की। संकेत रूपसे मैंने कहा—"व्याख्यान सुनने के लिये विद्यार्थी भी होंगे, या केवल रस्म-अदायगी के लिये ही उन्हें ले जाया जा रहा है ?।" विद्यार्थी मेरी बात को न समझ सके। आखिर थोड़ी ही देरमें बौटिस्टा साहब कॉलेज चले गये और पंद्रह मिनट बाद ही कुछ क्षुब्धसे लौट आये। परमात्मा ने मनुष्य को जो दो आँखें दी हैं वे दिखाने और देखने के लिये ही नहीं हैं, वरन वे हृदय-कोश के लिये दो प्रहरी भी हैं। भीतर और बाहर की हालत जानने के लिये वे बैरोमीटर का काम भी करती हैं। बौटिस्टा साहब की मुखाकृति से मैं समझ गया

कि उनके मनमें यह धारणा बन गई थी कि उनके व्याख्यान की बात एक मखौल-सी ही थी। होली की छुट्टियाँ होनेवालीं थीं। लड़कों को अपने अपने घर जाने की पड़ी थी। समय भी हो चुका था। भाषण की रस्म-अदायगी के लिये समय भी न रह गया था। पर क्या किया जाय और किसको दोषी ठहराया जाय। और इस परिस्थिति का विश्लेषण करने की भी आवश्यकता नहीं है।

बातों के दौरान में मालूम हुआ कि बौटिस्टा साहब फिलिपाइन से शान्ति-सम्मेलन में सम्मिलित होने प्रतिनिधि बनकर आये थे। शान्तिनिकेतन और सेवाग्राम के अधिवेशनों के उपरान्त उन्हें भारत की विभिन्न प्रगतियों को, विशेष कर भारतीय जीवन और गान्धीजी के भारतीय जीवन पर प्रभाव को देखने के लिए एक प्रकारसे आमंत्रित किया गया है। भारत सरकार के व्यय से वे आगामी पहली जुलाई तक भारतवर्ष में भ्रमण करेंगे। पूरा प्रोग्राम दिल्ली में तैयार किया गया है। उसमें घटा-बढी की गुंजाइश नहीं है। ऐसा आदेश है कि होटलों में न ठहरकर भारतीय गृहस्थों के यहाँ वे ठहरें ताकि वे भारतीय जीवन की रूप-रेखा को समझ सकें। उनके ठहरने के स्थानोंपर समझदार व्यक्तियों की छोटी छोटी सभाएँ की जायँ जिनमें विचार-विनिमय करके वे भारतीय संस्कृति तथा अपने देश फिलिपाइन की संस्कृति की तुलना कर सकें, और गान्धीजी की विचार-धारा का अध्ययन कर सकें।

आगरे के लिये इन पंक्तियों का लेखक शान्ति-सम्मेलन का क्षेत्रीय सेक्रेटरी (Zonal Secretary) था, इसीलिए, आशा यह थी कि श्री बौटिस्टा के आगमन का समाचार उन्हें मिल जायगा। पर शान्ति-सम्मेलन तो समाप्त हो गया और श्री बौटिस्टा की इस यात्रा का प्रबन्ध भारत सरकार के हाथ में था, इस लिए, इन पंक्तियों के लेखक के पास उनके आगरा-आगमन का समाचार न आना कोई आश्चर्य की बात न थी।

श्री बाटस्टा को अपने प्रोग्राम के अनुसार तीसरी मार्च की शामको जयपुर चला जाना था। इसलिए सब से आवश्यक बात तो यह थी कि जयपुर और अहमदाबाद को अपने मित्रों को पत्र लिख दिये जायँ, ताकि श्री बौटिस्टा को अपनी यात्रा में ग्वालियर और आगरे की-सी कठिनाइयों का सामना न करना पड़े। राजस्थान के प्रधान मंत्री श्री हीरालालजी शास्त्री, तथा उद्योग मंत्री श्री सिद्धराजजी ढड्ढा को पत्र लिख दिये। अहमदाबाद के लिये गुजरात के प्रसिद्ध कलाकार अपने मित्र श्री रविशंकर रावल को भी पत्र लिख दिया। सभी से यह विशेष आग्रह किया कि श्री बौटिस्टा हमारे राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद् के आदेशानुसार यात्रा कर रहे हैं। वे हमारे राष्ट्र के अतिथि हैं। उन्हें अपने घरों पर ही ठहराना चाहिए।

श्री बौटिस्टा ने भी अपनी लम्बी चौड़ी डाक तैयार की और थोड़ा विश्राम किया। यह तय पाया कि सायंकाल के आठ बजे थोड़े से मित्रों की मंडली में उनके साथ विचार-विनियम होगा।

सायंकाल को भोजन के उपरान्त हम लोगों की बैठक जमीं। नगर के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति एकत्र हुए। वार्तालाप अथवा विचार-विनियम के पूर्व हम लोग सांस्कृतिक तथा राजनीतिक चर्चा करना चाहते थे, पर श्री बौटिस्टा ने कहा—"मैं यह पसन्द करूँगा कि मैं दक्षिणी पूर्वी एशिया की राजनीतिक परिस्थिति पर चर्चा करूँ, और उस विषय पर बात न करूँ जिसको कि आप लोग मुझसे कहीं अधिक जानते हैं। अर्थात् गान्धीवादी जीवन की वार्ता पर मैं विचार न करूँ। गांधीवादी जीवन के विषय में तो मुझे आपसे सीखना है। उस विषय में मैं आप को कुछ बता नहीं सकता! यदि मैं गान्धीवादी जीवन पर बोलना शुरू करूँ तो मुझे आशंका है कि मैंने इस विषय में जो कुछ प्राप्त किया है, मैं उसे खो बैठूँगा। और इसलिए गान्धीवादी जीवन के विषय में तो मैं मौन ही रहूँगा। मुझे तो अपनी इस यात्रा में गान्धीजी के सिद्धान्तों और उसके उपदेशों को कुछ ग्रहण करना है। दक्षिणी पूर्वी एशिया की राजनीतिक परिस्थिति, जिसके बारे में दो दिन पूर्व मैंने समाचारपत्रों में पढ़ा था, बड़ी महत्वपूर्ण है। यह समाचार लन्दन का है, जिसके अनुसार आस्ट्रेलिया के प्रधान मंत्री अगले महीने फिलिपाइन के प्रेसिडेण्ट से प्रशान्त समझौते के सम्बन्ध में गम्भीर वार्तालाप करने जा रहे हैं। मेरा ख्याल है, आपमें से

अधिकांश लोगों ने इस प्रस्ताव के बारे में अच्छी तरह से नहीं जाना है जिसको कि लगभग तीन मास पूर्व हमारे प्रेसिडेण्ट क्वीरिनो ने उस समय किया था, जब कि चांग काई शेक मनीला गये थे। और हमारे प्रेसिडेण्ट से उन्होंने कहा था, कि एशिया के दक्षिणी पूर्वी भाग में कम्यूनिज़म का प्रसार रोकने के लिये वे एक गुट्टके निर्माण के लिये प्रेरणा दें। भारतवर्ष में मेरे टिकने से मुझे दक्षिणी पूर्वी एशिया के राष्ट्रों के कई नेताओं के विचारों को अत्यन्त निकट से जानने का अवसर मिला है। हिन्देशिया के डाक्टर सुकर्ण भारतीय प्रजातंत्र दिवस पर जब भारत में आये, तब मैं उनसे मिला था। और ३० मिनट तक मेरी उनसे प्राइवेट बातचीत हुई थी। कलकत्ते में बर्मा के प्रधान मंत्री थाकिन नू से भी मेरी प्राइवेट भेंट हुई। वे भगवान बुद्ध की स्मृति सम्बन्धी सामग्री लेने कलकत्ते आये थे। मेरी उनकी बर्मा की परिस्थिति पर व्यक्तिगत रूप से बड़ी गंभीर भेंट हुई। जब मैं कोलम्बो में था, तब लंका के प्रधान मंत्री से भी मेरी प्राइवेट भेंट हुई। कोलम्बो-में मैं उन्हीं के मकान पर ठहरा था। पं. जवाहरलाल नेहरू और भारत के विदेशी विभाग के सेक्रेटरी से भी मेरी भेंट हुई। फिलिपाइन के प्रेसिडेण्ट से निकटतम सम्पर्क होने के कारण, और अपने देश के विदेशी विभाग के मंत्री से सम्पर्क रखने के कारण मुझे इस संघटन की सम्भावनाओं को समझने में काफी मदद मिली है और इस लिये मैं स्पष्ट रूप से बता दूँ कि दक्षिणी पूर्वी एशिया के राष्ट्रों का यह प्रशान्त समझौता पूरी तरह असफल रहेगा। कारण यह है कि इन राष्ट्रों ने अपनी स्वतंत्रता अभी अभी प्राप्त की है। और इनमें से कोई भी गवर्नमेंट उस समय तक देश के शासन सूत्र को अपने हाथ में नहीं रख सकती जब तक कि जिन बातों के लिये वे हस्ताक्षर करेंगे, उनको निभा सकें। आशंका यह है कि वह समझौता कोरा कागजी समझौता रह जायगा। उदाहरण के लिये मान लीजिये, कि "प्रशान्त समझौता" का संघटन हो गया है। थाकिन नू बर्मा के प्रधान मंत्री हैं, और वे बर्मा के प्रधान मंत्री इसलिये हैं कि बर्मा में चुनाव लगातार तरीके से स्थगित होते आ रहे हैं। मान लीजिये चुनाव होता है, और थाकिन नू प्रधान मंत्री नहीं बनाए जाते, तब फिर उस समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले की हैसियत से समझौते की बातों को वह कैसे कार्यान्वित कर सकते हैं। चांग काई शेक के साथ भी वही बात हो रही है। इस समझौते के प्रस्ताव को रखने वालों में से वे एक हैं। चांग के अधीन अब एक टापू ही है, और पहले एशिया महाद्वीप का आधा भाग उनके अधीन था। मान लीजिये, चांग काई शेक की बची खुची सत्ता भी नहीं रहती, तब फिर उनके हस्ताक्षरों के क्या मानी होंगे? हिन्देशिया की भी वही बात है। मान लीजिये सोवियत रूस मंचूरिया की ओर बढ़ता है तो उस समझौते पर हस्ताक्षर करने वालोंमें से एक भी तो समझौते की शर्त को कार्यान्वित न कर सकेगा और ठीक यही बात मेरे देश के लिये लागू है।

आपमें से किसी ने मेरे देश की राजनीतिक परिस्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। वर्तमान अवस्था में फिलिपाइन की राजनीतिक स्थिति बड़ी खतरनाक है। कारण समझना बड़ा आसान है। फिलिपाइन में स्वतंत्रता मिलने से पूर्व एक ही सुसंगठित दल था। यह दल वह था जिसने लगातार ४० वर्ष तक संगठित रूपसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से स्वतंत्रता की मांग की थी। यह दल जनता की कल्पना शक्ति को प्रभावित कर सका, पर जब आज़ादी आयी तब प्रेसिडेंट के पद के लिये आम चुनाव हुआ। वह तथाकथित सुसंगठित दल, जिसे हम भारत वर्ष के कांग्रेस-दल का रूपान्तर कह सकते हैं, शक्ति-सत्ता के पारस्परिक द्वेषके कारण तीन क्षेत्रों में बट गया। वह तीन हिस्सों में विभाजित हो गया—अर्थात् राष्ट्रीय दल, नरमदल और कम्यूनिस्ट दल। मेरे देश में कम्यूनिस्ट दल कानूनी दृष्टि से एक स्वीकृत दल है। अगर कम्यूनिस्ट दल अकेला ही विरोधी दल होता, तो प्रेसिडेण्ट क्वीरिनो (Qairino), जो आजकल प्रेसिडेण्ट हैं, निरन्तर अनेक वर्षोंतक अपने पदपर बने रहते। पर जब विरोध उन्हीं लोगों से हो, जो पहले निकटतम मित्र थे, तब खतरा बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। अगर कहीं सरदार पटेल और डॉ० राजेन्द्रप्रसाद पं० नेहरू के विरोध में हों तो

नेहरूजी की स्थिति टिकाऊ नहीं हो सकती। यहांपर ऐसी बात नहीं है, पर मेरे देश में ऐसा ही हो रहा है।

मेरा देश इस प्रशान्त समझौते के बनाने में अगुआ है। और इस समझौते में वे राष्ट्र भी आने की सोच रहे हैं, जो इसके वास्तविक अंग हो सकते हैं; और नेतृत्व इसका वे लोग कर रहे हैं जिनकी स्थिति अनिश्चित है। चांग काई शेक, थाकिन नू, क्वीरिनो और स्वयं सुकर्ण को इसमें सन्देह है कि वे बहुत दिनोंतक अपने स्थानों पर टिक सकेंगे।

इसलिए इस समय प्रशान्त समझौते (Pacific pact) का बनना, जब उसे बनानेवालों की सरकारों का जीवन ही डाँवाडोल है, कोरा प्रहसन है। जब मैं फिलिपाइनों की हैसियत से यह सन्देह करता हूँ कि वहाँ की वर्तमान सरकार मित्रों के विरोध के कारण चल सकती है तब आप स्थिति को समझ सकते हैं। मित्र शब्द का प्रयोग मैंने इसलिए किया कि फिलिपाइन सरकार के आज जो विरोधी हैं वे पहले मित्र थे। यह बात दक्षिणी-पूर्वी एशिया भर के लिये लागू है। ऐसी दशा में हम कह सकते हैं कि वहां की सरकारों में से कोई भी प्रशान्त समझौते के नैसर्गिक अंश हो सकते हैं जो धड़ल्ले से किसी कागज पर हस्ताक्षर कर सकें और उसको दक्षिणी पूर्वी एशिया में विश्व-शान्ति के लिये लाभकारी बनायँ। यदि मैंने जो बात अभी कही है कि प्रस्तावित 'प्रशान्त समझौता' असफल रहेगा तो फिर दक्षिणी पूर्वी एशिया के राष्ट्रों के पास ऐसे कौनसे उपलब्ध साधन हैं जिनसे कम्युनिज़म को रोका जाय। मैं जोरदार शब्दों में कहता हूँ कि **कम्यूनिजम को रोकने का अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन गांधीवादी जीवन है**। गान्धीवादी मार्ग के लिए राजनीतिक जगत में पूरा क्षेत्र है अर्थात् राजनीतिज्ञ व्यक्ति पद-लोलुपता और सत्ता हथियाने की प्रवृत्ति के स्थान में राष्ट्रसेवा और लोकसेवा से प्रेरित हों— सत्ता को केवल सत्ता की खातिर ग्रहण न करें तो दक्षिणी पूर्वी एशियन प्रशान्त समझौता एक वास्तविकता हो सकती है। ऐसा होनेपर ही फिलिपाइन, संयुक्त राष्ट्रों, वर्मा, कोरिया और चीन के राजनीतिक कार्यों में सुधार हो सकता है। और हम देखते हैं कि गान्धी-मार्ग के कारण ही भारतीय जनता का ऐक्य और उसकी रक्षा संभव है और वह भारतवर्ष के लिए बड़ी मूल्यवान सिद्ध हो रही है यह गान्धीवादी मार्ग का ही परिणाम है कि एक भारतीय राष्ट्र बन सका है और विभिन्न विचारों और धर्मों के लोग भारतीय राष्ट्र के सूत्र में बँध गये हैं। जहाँ पहले प्रतिद्वन्दी थे और एक दूसरे के विरोधी थे वहां पर गान्धीजी के सिद्धान्तों ने ही एक संयोजक और संगठित ऐक्य में सब को विकसित किया है। विदेशी दर्शक यह कह सकते हैं कि यह सब ऐक्य छिन्न भिन्न हो जायगा। पर मैं यह बलपूर्वक कहता हूँ कि भारतीय ऐक्य न केवल इस वर्ष के लिए ही, वरन् अगले वर्ष के लिये भी सुरक्षित है और मैं तो यह भी कहता हूँ कि वह शताब्दी पर्यन्त रक्षित रह सकता है। नेहरूजी के, पटेल के और राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के निधन होनेपर इस देश में अन्य नेता पैदा हो जायेंगे। 'प्रशान्त-समझौता' तभी सफल हो सकता है, जब दक्षिणी पूर्वी एशिया के सब राष्ट्र, जिन्होंने अभी अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की है, सत्ता हथियाने के दृष्टिकोण को बदल दें और सत्ता को लोक-सेवा का साधन समझें।

प्रश्न — जब आप कहते हैं कि आप सम्पूर्ण दक्षिणी पूर्वी एशिया के राष्ट्रों के लिये प्रशान्त-समझौता चाहते हैं, तब क्या आपका यह अभिप्राय है कि वह गाँधीजी के सिद्धान्तोंपर अधारित हो ?

उत्तर — प्रशान्त समझौते का सुझाव हमारे प्रेसिडेण्ट के सामने चांग काई शेक ने अटलाण्टिक समझौते के ढंगपर सुझाया था उसका कोई सम्बन्ध गांधीजी के सिद्धान्त से न था।

प्रश्न—क्या आपके यहां मजदूर और मशीनों की वही समस्या है जो हमारे यहां है ! और क्या आपको उन्हें वैसेही भुगतना पड़ता है जैसे हमें भारतवर्ष में ?

उत्तर—हाँ, एक ही बात है। ऊँचे वेतनों की मांग, कल कारखानोंका वंद होना और उनकी तोड़ फोड़ की बातें हमारे यहां कपड़े की मिलें नहीं। हमारे मुख्य उद्योग हैं चीनी और नारियल !

आर्थिक दृष्टिसे हम संयुक्तराष्ट्र अमेरिका पर निर्भर हैं!

प्रश्न—अभी आपने प्रशान्त समझौते की जो बात कही कि वर्तमान स्थितिमें चीन, फिलिपाईन, बर्मा और हिन्देशिया की वर्तमान सरकारों की डावाँडोल स्थिति के कारण सम्भव नहीं; पर मैं तो यह कहता हूँ कि बहस की खातिर यह हम मान भी लें कि वहाँ की सरकारें वर्षों के लिये स्थायी भी हों तब भी यह समझौता भविष्य के लिये सफल नहीं हो सकता और न वह कारगर हो सकता है। कारण यह है कि, इस समझौते के करनेवाले लोगों के पास आधुनिक युद्ध के लिये न तो सामग्री है और न कोई साधन। हाँ, कटाने के लिये मानव नाम के जन्तु करोड़ों हैं; भारतवर्ष को ही लीजिये यहाँ के विशेषज्ञों से मैंने बातें कीं। भारतवर्ष २१ दिन से अधिक आधुनिक लड़ाई नहीं लड़ सकता। पाकिस्तान का ढेर ११ दिन में हो जायगा। आप के देशको प्रत्येक वस्तु के लिये अमेरिका पर अवंलवित रहना पड़ता है। इस समझौते को सफल बनाने के लिये इन देशोंको अमेरिका के अधीन रहना पड़ेगा—अधीन व्यापारिक आर्थिक तथा सैनिक दृष्टि से। आप के देशने तो पहले से ही अमेरिका को समुद्री तथा वायुयान के अड्डे दे रखे हैं। इस समझौते के मानी होंगे एक प्रकार से एशिया में अमेरिका का व्यापार-साम्राज्यवाद! किन्हीं अंशों में वह राजनीतिक साम्राज्यवाद भी होगा। कम्यूनिज़्म के विरूद्ध जो लड़ाई है वह इस समय रूस और एंग्लो अमेरिकन गुटों के बीच लड़ाई है। ये दोनों गुट अपनी सत्ता बनाये रखना चाहते हैं और अपनी रक्षा करना चाहते हैं। हमलोग तो केवल तोपों के लिये खुराक ही दे सकते हैं। इस समय दुनियाँमें आवश्यकता यह है कि हम मानव-जीवनका पुनर्निर्माण करें। आज कम्यूनिस्ट साम्राज्यवाद और पूंजीपति साम्राज्यवाद में वही अंतर है जो साँपनाथ और नागनाथ में है। हमें अपनी आवश्यकताओं को कम करना चाहिये। और यथासम्भव बड़े बड़े कारखाने नहीं खोलना चाहिये। उद्योग-धंदों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये। कुछ खास उद्योगों को छोड़कर सबको कुटीर धन्दोंमें परिवर्तित कर देना चाहिये, नहीं तो हम लोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे कम्युनिस्ट अथवा पूंजीपति साम्राज्यवाद को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

उत्तर—मैं आपसे इस विषयमें पूरी तरह सहमत हूँ। मुझे आपकी इस बात से इन विचारों में और भी पुष्टि मिली है। आपकी यह बात बिलकुल ठीक है कि प्रशान्त समझौता दक्षिणी पूर्वी एशियामें बिना बड़े राष्ट्रों की सैनिक सहायता के सम्भव नहीं। बड़े राष्ट्रों की सैनिक सहायता से दक्षिणी पूर्वी एशियाकी अप्रिय सरकारों की रक्षा होगी और वे विदेशी शक्ति के इशारे पर नाचेंगे और ऐसा होना ठीक नहीं है। इस प्रशान्त-समझौते की बात को मैं गान्धीजी के सिद्धान्तों के पोषण के लिए भी आगे रख रहा हूँ। दक्षिण पूर्व एशिया के राष्ट्रों में अभी ढाई बरस पहले ही अपनी आज़ादी प्राप्त की है, और भारतवर्ष को छोड़कर वे अपनी आज़ादी खो भी सकते हैं। भारतवर्ष अपवाद-रूप में इसलिए है कि उसने अपनी स्वतंत्रता के लिये संघर्ष किया था, यातनाएं झेली थीं। भारतवर्ष की आज़ादी तीन टाँगों की तिपाई की तरह सुरक्षित है। इसकी तीन टाँगें हैं—पटेल, नेहरू और राजेन्द्रप्रसाद। पर मेरे देश में और बर्मा में उस स्टूल (तिपाई) की एक ही टाँग रह गयी है। हिन्देशिया में जो सुकर्ण के साथ लड़े थे, आज वे उनके विरुद्ध विद्रोही हैं। फिलिपाइन में जो क्यूटिनो के साथ लड़े थे वे उनके विरोधी हैं। बर्मा में जो आजादी के लिए लड़े थे वे थाकिन नू के विरोधी हैं। इसलिए आप दक्षिणी-पूर्वी एशिया में कई राष्ट्रों का खतरा समझते हैं। स्वतंत्रता शब्द तो केवल भारतवर्ष के लिये ही लागू है। यहाँ नेहरू को लोग सहायता दे रहे हैं और नेहरू प्रेसिडेंट को सहायता दे रहे हैं और सरदार पटेल उन दोनों को सहायता दे रहे हैं। यह सब इसलिए है कि गान्धीजी की राजनीति और सत्ता लेने का गान्धीजी का तरीका केवल सत्ता के लिए नहीं; वरन् सेवा के लिए है। कम्यूनिस्ट लोग हर जगह अपनी शक्ति बढ़ा रहे हैं। उसका कारण यह है कि उस तिपाई की दो टाँगें टूट गई हैं, बस एक टाँग बची है। और नतीजा कम्यूनिस्टों की शक्ति का बढ़ना है। राजनीति में गुटबंदी के कारण उसी

अनुपात से कम्यूनिस्टा की शक्ति बढ़ रही है। यदि गान्धीजी के सिद्धान्त पर आचरण किया जाय तो राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता को कायम रख सकते हैं।

चांग काई शेक की असफलता का कारण यह है कि उनकी सरकार लोकप्रिय होने के स्थान में साम्राज्यवादी थी। चांग काई शेक चीन के युद्ध-नेताओं के ऊपर सैनिक अधिकार प्राप्त करने के लिये एक महान नेता थे। चीन के युद्ध-नेता लोगों को सताते थे और चांग काई शेक ने उन सबपर सैनिक विजय पाई। चाग काई शेक की एक बड़ी कमजोरी यह थी कि जब उन्होंने युद्ध-नेताओंपर विजय पाई तब वे सैनिक और गैरसैनिक लोगों का समन्वय नहीं कर सके। नैपोलियन एक महान तथा तेजस्वी सैनिक था, पर वह सिविल शासन और सैनिक शासन का समन्वय करन में असफल रहा। इस प्रकार का समन्वय किसी महान सैनिक ने नहीं किया। २७ वर्षतक चांग काई शेक चीन के महानतम सैनिक नेता रहे। मानव-शक्ति की एक सीमा होती है। हाँ, गांधीजी की बात दूसरी है, पर गांधी तो २००० वर्षों में केवल एक ही पैदा होता है।"

समय बहुत हो गया था, रात भी खिंच रही थी। किन्तु विचार-विनिमय का रस किसी तरह कम नहीं हो रहा था। पर श्री बौटिस्टा थके हुए भी थे, आराम की उन्हें जरूरत थी इसलिये यह रात की बैठक खतम हुई। अगले दिन अपने गाँव जाने का प्रोग्राम बना। पर समयपर मोटर नहीं आई और हम लोगों ने अपने समय का सदुपयोग किया। बौटिस्टा साहब ने लेखक के बच्चों से बातें कीं और बताया कि उनकी छोटी लड़की चौदह बरस की है।

गाँव जाने का प्रोग्राम आगामी मई के लिये स्थगित कर दिया गया। जब श्री लौरेंजो बौटिस्टा दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर लौटेंगे।

३ मार्च ५० की शाम को श्री. प्रकाश नारायण शिरोमणि के यहाँ चायपार्टी श्री. बौटिस्टा को दी गई। चायपार्टी में शहर के प्रसिद्ध गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। सब आयोजन आत्मीयता और घर के सदस्यों के अनुरूप था। शिरोमणि बन्धुओं के बच्चों के नृत्यगान से प्रभावित होकर बौटिस्टा साहब ने कहा—"यह घर तो बड़ा कलाविद् तथा कलाप्रेमी है।" फिलिपाईन के संगीत तथा बाजों की भी चर्चा हुई। होली के दिन थे, इसलिये चाय के साथ होली उत्सवपर बननेवाले पक्वान्न ही निमंत्रितों को खिलाये गये।

श्री. बौटिस्टा विनोदी भी बहुत हैं। कहने लगे, "मैं आपकी पंद्रह वर्षीया बेटी को अपने यहां ले जाऊँ और उसकी शिक्षा-दीक्षा अपने ढंग से करूं और अपनी पंद्रह वर्ष की लड़की आपको दे दूँ तो कैसी रहे?" मैंने कहा "मुझे ले चलिये और मनीला के चिड़ियाघर में रख दीजिये।"

श्री. बौटिस्टा:—मैं तो आपको वहाँ के मंदिर में रखूँगा।"

गाड़ी का समय हो चुका था। आगरा फोर्ट स्टेशन पर फर्स्ट क्लास के डब्बे में बिठा कर हम लोगों ने उनसे विदा ली।

मेरा एक दिन

[उपेन्द्रनाथ अश्क]

मैं सुबह ज़रा देर से उठता हूं—साढे छः, सात, साढ़े सात, आठ! कभी जब मेरा छोटा बच्चा मुँह अंधेरे उठ कर गहरी नींद में सोयी अपनी मां को तंग करने लगता है और "ममी उठो," "ममी भूख लगी है," "ममी चाय कब आयेगी," की रट लगा देता है, अथवा अपने आप प्यानो के स्वर पर सीखी हुई—अ, आ, इ, ई, रटने अथवा "इस दिल के टुकडे हज़ार हुए," या ऐसा ही कोई गीत गाने लगता है तो दूर लैटे हुए भी मेरी नींद उचट जाती है। कुसमसाकर मैं फिर सोने का प्रयास करता हूं, किन्तु एक बार की उचटी नींद फिर सहसा नहीं आती। कई बार बच्चा 'ममी' को जगाते-जगाते थक कर अपने 'पापा' को प्रातः के उस ठंडे वातावरण में चाय के एक गर्म गर्म प्याले के आनन्द की याद दिलाने आ पहुँचता है। वह धीरे धीरे अपने बिस्तर से उतरता है और अपने ठंडे ठंडे हाथों में मेरे दोनों गाल लेकर मुझे हल्के से चूम लेता है. कभी उसके इस भोलेपन पर रीझ कर मैं उसे अपने बिस्तर पर उठा लेता हूँ और फिर हम दोनों उस समय तक एक दूसरे को कहानियां सुनाते हैं, जब तक मौसी (मेरी नौकरानी) चाय लेकर उसकी ममी को नहीं जगा देती। लेकिन कई बार जब मैं रात को देर से सोता हूं, और इतने सबेरे नींद का टूटना मुझे अप्रिय लगता है और यह ख्याल आता है कि मैं पूरा आराम नहीं कर रहा हूं, कहीं फिर न बीमार पड़ जाऊं। मैं उसे झिड़क देता हूं कि जाकर अपने बिस्तर पर सोये, तंग न करे, नहीं तो पिट जायगा, और झुझलाकर करवट बदल लेता हूं। बच्चा सहम कर अपनी चारपाई पर चला जाता है।

किन्तु उसके अपनी चारपाई पर चले जाने और चुपचाप लेटे रहने के बावजूद, (जो उसके चँचल शैशव के लिए नितान्त असम्भव है) नींद फिर जल्दी नहीं आती।

मैं खुसरो बाग रोड के एक बंगले में पिछवाड़े की ओर एक छोटी सी कौटेज मैं रहता हूं। हमारा मकान-मालिक ७० वर्ष का उद्यमी और गोरे रंग का आयरिश बूढा है, जिसकी वृद्धा पत्नी उतनी ही निष्क्रिय, कुरूप और काली है। आधे बंगले में वह रहता है और आधे में भाई बहन का एक एक अन्य जोड़ा। बगल में एक और छोटा एंग्लो इंडियन परिवार है—एक युवक उसकी पत्नी और तीन बच्चे। युवक सदा चुप रहता है। उसकी बीबी को देख कर मुझे सदा प्यारी सी बिल्ली याद आ जाती है, जो सदैव खुर्र खुर्र करती रहती है, पर पंजे निकालना भी बिलकुल नहीं भूलती। परिवार विपन्न है, इसलिये ये बिल्ली सदा खुर्र खुर्र करती है।

बुड्ढे मकान मालिक को छोड़ कर प्रायः सब लोग मौन-भाषी और शान्तिप्रिय हैं। बंगला लीडर रोड और, ग्रॅन्ड ट्रंक रोड दोनों के मध्य है। चिल-पों से तनिक दूर

और प्रकट यहां पूर्ण शान्ति का निवास है। मेरे जैसे कच्ची नींद वाले के लिए तो पत्तों का खड़खड़ाना भी परेशानी का कारण हो जाता है। करवट बदल कर रूठी हुई नींद को मनाने का प्रयास करने ही लगता हूं कि समाचारपत्रवाला, जिसे कई बार मैंने धीरे से अखबार रख कर जाने को कहा है, अपने स्वभावानुसार जोर से अखबार फेंक देता है। बरामदे के फर्श से अखबार के स्पर्श की ध्वनि मेरे कानों में हथोड़े सी पड़ती है। मैं झुंझुलाकर फिर करवट बदलता हूँ। नीद हल्के हल्के आखों में छाने लगती है कि पिछवाड़े के अहाते में रहने वाले ब्राम्हणों का देहाती अहीर अपने कर्कश स्वर में ज़ोर ज़ोर से "भइया दूध ले लो," "बिट्टी दूध ले लो"! चिल्लाने लगता है और उसके स्वर का भाला मेरे कानों के रास्ते, सोने का प्रयास करने वाले, थके सिपाही से, मेरे दिमाग को कचोका देकर उठा देता है। उसके वाद लाख यत्न पर भी नींद नहीं आती। कई बार जब बच्चा सोया होता है, यही स्वर मुझे प्रातः जगा भी होता है।

परन्तु प्रायः जाग कर भी मैं लेटा रहता हूँ; सेनेटोरियम से मैं सीख आया हूं कि आराम करने के लिए सोना ही जरूरी नहीं; नींद न आये तो चुपचाप लेटे रहना चाहिए। लेटे-लेटे कई बार झपकी आ जाती है और कई बार दिमाग तरह-तरह की इच्छाओं, आकांक्षाओं और सुख-स्वप्न में खो जाता है, पर कभी जब महत्वाकांक्षा और सपनों के हल्के फुल्के बादलों में उड़ता मन धरती पर उतर दुश्चिन्ताओं की भूलभुलैया में उलझ जाता है तो मैं हड़बड़ाकर उठ बैठता हूं।

परन्तु दुश्चिन्ताओं से घबड़ा कर उठ बैठने के बदले में लेटा भी क्यों न रहूं। प्रातः काल की घड़ियों में नींद का न आना मेरा सारा दिन खराब कर देता है। लेटे लेटे आराम लेने पर भी सुबह दस बजे से शरीर पर कुछ आजब सी थकान छा जाती है और जब तक मैं एक दो घंटे सो नहीं लेता, काम करने के योग्य नहीं रहता।

और तब मुझे प्रायः उन दिनों की याद आ जाती है, जब मैं रात को एक बजे भी क्यों न सोंऊ सदैव साढ़े चार या पांच बजे प्रातः उठ खड़ा होता था। लाहौर में था तो लारेंस घूमने जाता था और दिल्ली में था तो तीस हजारी की रिज्ज (Ridge) पर। मुझे अच्छी तरह याद है कि सर्दियों के दिनों में जब हम (मैं, भाई साहब या हमारा कोई साथी) प्रातः पांच साढ़े पांच बजे सैर को जाते थे तो कई बार शुक्ल पक्ष की ज्योत्स्ना लारेंस के पेड़ पौधों और सड़कों पर फैली होती थी। भाई साहब ठंडे पानी से नहा कर सैर को जाते थे। मैं आकर तेल की मालिश करता था, थोड़ीसी कसरत करता, सदैव ठंडे पानी से नहाता और दही की लस्सी का हाथ भर लम्बा गिलास पीकर काम में जुट जाता। कभी दस, ग्यारह बजे एक आध घंटे के लिये सो जाता, नहीं, दिन भर और प्रायः आधी आधी रात तक अनवरत काम करता और मुझे कभी थकान महसूस न होती। ला-कालेज के दिनों की याद आती है, जब मैं अठारह बीस घंटे की औसत से पढ़ता

76236

था और मुझे थकान महसूस न होती थी। वन्देमातरम् के दिनो की याद आती है जब समाचारपत्र के दफ्तर में बारह-तेरह घंटे काम करने पर भी मैं साहित्य-लेखन और संध्या की सैर के लिए समय निकाल लेता था और थकता न था । आज जब मित्र मुझे सुबह देर से उठते देख कर प्रातः की सैर के गुण बताते हैं तब मुझे हँसी आ जाती है ।

चाय का प्याला पीने के बाँद कई बार जब नींद खुल जाती है तो चाय पीने के पहले मैं समाचारपत्र पढ़ता हूँ । यदि उन दिनों क्रिकिट की कोई टीम विदेश से आयी हो तो अख़बार पढने की उत्सुकता और भी बढ़ जाती है । मैं सब से पहले स्पोर्टस का पृष्ठ देखता हूँ । फिर कोई दूसरी खबर । जीवन में ऐसे दिनों की भी कमी नहीं जब हफ्तों समाचारपत्र पढ़ने की सुबिधा अथवा समय नहीं मिला । लेकिन बीमारी के बाद से मेरा यही क्रम है । चाय पीकर मैं नित्य-कर्म से निवृत्त होता हूँ और फिर प्रायः रोज बायरूम (स्नानघर) के बाहर का दरवाजा खोल सामने लगी इश्कपेचा की बेलों के पास जा खड़ा होता हूँ । पहिली बरसात में मैंने काटेज के सामने अपने अहाते को घेरती हुई मैंहदी की बाड़, बैजंती, गुलाब, गेंदा, और कॉक्सकाम्ब के पौधे लगाये हैं । दायीं ओर की कोठी से पर्दा करने के लिए बायरूम के बाहर दीवार के साथ इश्कपेचा की बेलें लगायी हैं । मैं रोज नन्हीं नन्हीं कोपलों को फूटते बढ़ते और दीवार के साथ लगी हुई रस्सियों से लिपटते हुए देखता हूँ। बेलें अभी बहुत नहीं बढ़ीं । रस्सी पर जरा सा दबाव पड़ने से टूट कर धरती पर आ गिरती हैं । मैं फिर बांध देता हूँ। रात रात में कितनी बढ़ी हैं, यह देखता हूँ, और उन दिनों की कल्पना करता हूँ जब दायीं ओर छत तक लगी हुई तारों से लिपट कर ये गहरा हरा पर्दा बना देंगी और ग्रामोफ़ोन के भोंपू जैसे नन्हें नन्हें जामुनी, गुलाबी फूल उस पर्दे पर फैल जायँगे । इन बेलों को देखते देखते मैं कभी कभी आतिश की यह पंक्ति गुन गुनाने लगता हूँ ।

'इश्क पेचे पर मुझे होता है शक जंजीर का।'

और मेरी कल्पना के सम्मुख लम्बी लम्बी, पतली पतली, गोरी गोरी बांहे कौंध जाती हैं, जो सहारे के लिए छटपटा रही हैं। और जब सहारा पा लेती हैं तो उसे ऐसे बांध लेती है कि वह स्वयं उन्हीं के सहारे जीने को विवश हो जाती है ।

बेलों को संवारने के बाद मैं कभी कभी बगिया की देख भाल करता हूँ । कौशल्या (मेरी पत्नी) के पास समय नहीं । घर को टिप-टाप रखने, बच्चे को समय पर स्कूल भेजने और किसी-न-किसी प्रकार प्रकाशन का काम आरम्भ कर सकने की व्यवस्था में वह लगी रहती है । मेरे बड़े लड़के को सजी सजायी जगह में बड़ी ही बेपरवाही से बैठने का शौक है । सजाने सँवारने का नहीं । और मेरा छोटा बच्चा........यदि मैं कैने का कोई सड़ा हुआ पत्ता तोड़ता हूँ, तो वह मेरे अनुकरण में सारे का सारा पौधा ही उखाड़ देता है । मैं गमलों में ज़रा ज़रा पानी देता हूँ तो वह एक ही गमले को गच्च कर देता है कि पौधा मरने को हो

जाता है और मैं अकेला ही इस बगिया को सजाता सँवारता हूँ ।

कई बार जब मैं इस तन्मयता से बगीचा सँवारता हूं तो उन दिनों की कल्पना करने लगता हूं जब मेंहदी की बाड़ कन्धे बराबर हो जायगी और बरामदे के आगे लगे खलीफे के लाल लाल, हरे हरे, बड़े बड़े पत्तों वाले, चारों पौधे अपने कद को पहुँच कर सहज ही आंखों को आकर्षित करने लगेंगे, और दरवाजे के आगे लगी मधुमालती की दोनों बेलें छत को छू लेंगी, और लाल लाल, सफेद सफेद फूलों के गुच्छों के गुच्छे लटकने लगेंगे, मैं कभी कभी इस बेल की छाया में आ खड़ा हूँगा और कोई फूल तोड़ कर उसका रस चूस लूँगा और मुर्गे की बड़ी बड़ी पीली और लाल कलगियों से काक्स-काम्ब और गेंदे के बड़े बड़े शतदल पीले पीले और उन्नावी गुलाबी, पीले और श्वेत बैजन्ती के गुच्छे लह लहायेंगे और ..... परन्तु तभी मेरा मन आशंका से संत्रस्त हो उठता है.... मैंने जब जब घर बनाया है उजड़ गया है । कभी मैंने लिखा था :—

उसे बिजली ने ताका जूं ही मैंने
नशेमन के लिए एक शाख़ ताकी ।

लेकिन गत वर्षों के अनुभव से मैंने पाया है कि :—

बना चुकता हूं जब मैं नीड़ अपना
नियति हँसती है बिजली की लपक में ।

और मैं सोचता हूं कि नियति मेरी इस नयी कल्पना को पूरा भी होने देगी..... पर मैं सदा ऐसे विचारों को झटक कर मेज पर आ बैठता हूं और काम में ध्यान लगाने का प्रयास करता हूं ।

मेरे काम गतिविधि भी निश्चित नहीं। कई बार बड़े ध्यान और एकाग्रता से कुछ लिखने लगता हूं कि दूसरे कमरे से पत्नी आवाज देती है कि जरा एक मिनट के लिए उसकी बात सुन लूं । कई बार झुंझलाता हुआ जाता हूं और कई बार जब नहीं जाता तो बैठा बैठा झुंझलाने लगता हूं ; क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरा न जाना, मेरी पत्नी को सख्त अखरता है, और तब वह कितना भी अहम काम क्यों न हो; मुझे कभी न बुलाने की गुरु गम्भीर कसमें खाने लगती हैं और मन-ही-मन यह सब सोच कर न जाने पर भी, मै मेज पर बैठा झुंझलाता रहता हूं। फिर यदि पत्नी नहीं बुलाती तो बच्चा आ जाता है और बड़े विचित्र आदेश देने लगता है.... रबड़ का बड़ा-सा गेंद और पतला-सा तागा ले आता है, और चाहता है कि उसे बांध दिया जाय । तागा है कि उसे किसी तरह भी बांधो झट गेंदपर फिसल जाता है और बच्चा है कि समझ नहीं पाता जब उसने एक बार गेंद में रबड़ का तार लगा देखा था तो इसमें क्या नही लग पाता.... गुब्बारा ले आता है कि उसकी हवा निकाल दी जाय । हवा निकाल दी जाती है तो पांच मिनट बाद ही भरने का आदेश होता है..... तार प्राय: मेरी झुंझलाहट पर टूटता है । फिर कई बार जब बीवी और बच्चा नहीं आते तो प्राय: मित्र आ जाते हैं, और मेरे लिये परिचित हो अथवा अपरिचित *हर आदमी की मुलाकात, मसीहा और खिज़र की 'मुलाकात' से बेहतर है। मित्र

---

*ये 'ज़ौक' किसी दोस्ते देरीना का मिलना,
बेहतर है मुलाकाते मसीहा ओ ख़िज़र में ॥

बनाने की कला के लेखक, अमरीका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक "डेल कार्नेगी" ने कहा है कि अपना नाम और अपनी आवाज़ सब को प्यारी लगती है। सब के बारे में तो मैं नहीं कह सकता। ऐसे लोग भी हैं, जिनको न केवल अपना; बरन् दूसरों का नाम भी प्रिय है। और जो दूसरों की बात मौन रूप से सुन लेना भी जानते हैं, परन्तु अपने बारे में मैं कह सकता हूं कि मुझे बातें करने का रोग है। कितना भी अहम काम क्यों न हाथ में हो, उसे भूल कर बातें करने लगता हूं, और काम को भूल जाता हूं। प्रायः मेरी बातों में लोग अपना काम भी भूल जाते हैं लेकिन कई बार जब किसी को अपना काम याद रहता है, और वह मेरी व्यस्तता की याद दिलाता हुआ उठने लगता है तो मैं उसे फिर बैठा लेता हूं।

मित्र के जाने के बाद प्रायः मुझे पत्नी की डांट सुननी पड़ती है। परिणाम यह होता है कि कई बार इस सतर्कता में कि मैं बातों में न लग जाऊं, खासी अशिष्टता से अपने मिलने वाले से छुट्टी पा लेता हूं और फिर अपने इस बेतुकेपन पर कुढ़ता रहता हूं। झुंझलाता हूं कि क्यों मुझे ऐसी सुविधा प्राप्त नहीं कि घर की चीं, पीं और समय-कुसमय देखे बिना दर्शनार्थ आने वालों से मुक्ति पाकर साहित्य-सृजन कर सकूं। ऐसे समस्त अवसरों पर मैं किसी एकान्त कुंज की आकांक्षा करता हूं। लेकिन मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि यह आकांक्षा भी आत्म-वंचना के अतिरिक्त कुछ नहीं। जब घर में कोई नहीं होता और मैं काम करने के लिये स्वतन्त्र होता हूं, तो प्रायः काम करते-करते बीच में से उठ कर पड़ोस के किसी नौकर, मकान-मालिक, किरायेदार अथवा अहीर ही से बातों में निमग्न हो जाता हूं। किसी से बातें नहीं करता तो लिखते-लिखते पढ़ने लगता हूं। और मेरा लिखना धरा का-धरा रह जाता है। वास्तव में जरूरत ऐसी जगह की है, जिस में जब चाहें अकेले बने रहें और जब चाहें दुकेले... मौन का अंग ही बन सकें और शोर का भी।

जब से बीमार हुआ हूं, दोहपर में खाना खाने के बाद घंटे दो घंटे जरूर लेट जाता हूं। प्रायः उठता हूं तो चाय का समय हो जाता है। चाय पीकर फिर मेज़ पर आ बैठता हूं, और यदि कोई विघ्न-बाधा न पड़े तो नौ साढ़े नौ बजे तक लिखता या लिखाता रहता हूं। रात को देर तक जागना अब बंद हो गया है। यह अच्छा भी हुआ और बुरा भी। अच्छा यों कि मेरा अनियमित जीवन, नियम से रहना सीखने लगा है और बुरा यों कि नौ, साढ़े नौ के बाद जब बीबी बच्चे छोड़ पडोसी भी सो जायें और न कोई बात सुनने वाला होता है न सुनाने वाला, जो एकाग्रता प्राप्त होती है, वह दिन को सम्भव नहीं. परन्तु परिस्थितियां जैसी भी हों, लिखने की मेरी इच्छा ऐसी बलवंती है कि मैं कुछ-न-कुछ लिखते रहने का समय निकाल ही लेता हूं। और वर्तमान परिस्थितियों में भी अपने स्वभाव की समस्त त्रुटियों के साथ ऐसा कर पाऊंगा, इसका मुझे पूरा विश्वास है।

* * *

संत तुकाराम

— वि. भि. कोलते

परमहितकारी प्रातःस्मरणीय सन्तों का यथार्थ वर्णन करना शक्ति के बाहर है। शुचिता, शैत्य और पावनत्व के वे आदर्श होते हैं। गंगा, काशी और हिमालय परम पवित्र हैं। किन्तु मोक्ष-प्राप्ति के लिये उनके आश्रय में पहुँचकर ही किसी-न-किसी साधना के द्वारा अपना शरीर अर्पण करना अनिवार्य होता है। तभी मुक्ति मिलती है। सन्त तीर्थों से बढ़कर हैं। सन्तों की केवल सत्संगति से ही मुक्ति मिलती है। उनके संस्पर्श मात्र से स्वयं गंगा आदि तीर्थ पवित्र होते हैं। पवित्रों को भी पावित्र्य और मंगलमयों को मांगल्य देनेवाले सन्त संसार में विरले ही होते हैं—साधु-सन्तों की जमात नहीं होती। उनका जन्म जगत् के हित के लिये ही होता है। कवि-कुल गुरु कालिदास ने सच कहा है — 'भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्।' सन्तों का हृदय नवनीत समान मृदु-मधुर होता है। अतः वे जीवमात्र के मित्र होते हैं। जिनका इस संसार में कोई धनी-धोरी नहीं, सन्त उनका सर्वस्व होते हैं।

जे कां रंजले गांजले।
त्यासी म्हणे जो आपुले॥
तोचि साधु ओळखावा।
देव तेथेंचि जाणावा॥
मृदु सबाह्य नवनीत।
तैसें सज्जनांचें चित्त॥
ज्यासिं आपंगिता नाही।
त्यासि धरी जो हृदयीं॥
दया करणें जी पुत्रासी।
तीचि दासा आणि दासी॥
तुका म्हणे सांगूं किती।
तोचि भगवंताचि मूर्ति॥

तुकाराम कहते हैं कि वही साधु-पुरुष है, जो पतित पीडित त्रस्त लोगों को अपना माने। भगवान उसी में हैं। साधु-सज्जनों का चित्त अन्दर से, बाहर से मक्खन के समान होता है। जिनका कोई ठिकाना नहीं, सन्त ऐसों को अपने हृदय से लगाते हैं। जो दास-दासियों पर अपने पुत्र के समान स्नेह करते हैं, उन्हीं में भगवान मूर्तिमान विराजते हैं।

साधु-सत्पुरुषों का कितना यथार्थ वर्णन है यह! इन दिव्य गुणों के आदर्श पुरुष सत्यमेव स्वयं भगवान हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। ऐसे सन्त सच्चे वैष्णव होते हैं।

विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म।
भेदाभेद भ्रम अमंगळ॥
आइका जी तुम्ही भक्त भागवत।
कराल तें हित सत्य करा॥
कोणाहि जीवाचा न घडो मत्सर।
वर्म सर्वेश्वर पूजनाचें॥
तुका म्हणे एका देहाचे अवयव।
सुख दुःख जीव भोग पावे॥

कैसी मधुर वाणी! कितना उदार अंत:करण और कितने उत्कट भाव! मालूम होता है जैसे कवि ने हरेक शब्द में अपना हृदय ही उंडेल दिया है। विशाल और भावपूर्ण अंत:करण से ही तो ऐसी उत्कट रचना बाहर निकल सकती है। मालूम है यह किसकी रचना है? यह महाराष्ट्र के ख्याति-प्राप्त संतकवि श्री तुकारामजी की रचना है। इसमें वैष्णव धर्म का वर्णन है। 'तुकाराम कहते हैं— संसार विष्णुमय है इस प्रकार की प्रतीति करना ही वैष्णव धर्म है। संसार के समस्त चराचर प्राणिमात्र भगवान् विष्णु के अंश हैं, उन्हीं की मूर्तियाँ हैं अर्थात् सब ईश्वर ही हैं। ऐसा साक्षात्कार जिसे हुआ है वह भेदाभेद को अमंगल मानता है। यह मैं हूँ, और यह दूसरा है, ऐसी भावना को हृदय में स्थान देने के अतिरिक्त अन्य अमंगल हो ही क्या सकता है? जो वैष्णव है उसके अंत:करण में,

१९५०

यह अपनी-पराई भावना कभी पैदा नहीं हो सकती। इस शरीर के जैसे अनेक अवयव होते हैं, वैसे ही विश्वरूप शरीर के सब प्राणिमात्र अवयव हैं। हाथ, पाँव, पेट, सिर आदि सभी की सहायता से शरीर-यात्रा चलती है। इनमें से कोई भी अंग यदि अपंग हो जाय तो शरीर-यात्रा में बाधा होती है। इसलिये इन अवयवों में न कोई श्रेष्ठ है, और न कोई कनिष्ठ। सभी समान हैं। संसार में पैदा हुए सब जीव समान हैं। उसी तरह सब का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। उनमें न कोई ऊँचा, और न कोई नीचा। वह फिर चाहे जिस धर्म या जाति का हो। इसलिये किसी के प्रति मत्सरभाव न रखना ही तो ईश्वर की पूजा का रहस्य है। यदि आपको परमेश्वर की सच्ची भक्ति करनी है तो ईश्वर के अंशरूप जीवमात्र से प्रेम करो। इसी में आपका कल्याण है। इसी में संसार का कल्याण है।

यह है संत तुकारामजी की जीवनदृष्टि का तात्पर्य। उनका जीवन ही इस दृष्टि का मूर्तिमान उदाहरण है। और यही उपदेश उन्होंने सब का दिया। केवल तुकाराम की ही नहीं, भारत के सब संतों की यही भूमिका है। किसी-न-किसी रूप में वे अद्वैत के, अभेद के, उपासक रहे हैं। विभिन्नता में वे एकता माननेवाले हैं। इसी लिये वे मानवता के पुजारी, प्रचारक और प्रसारक हैं। भारतीय संस्कृति का यही अनमोल रहस्य है भारत के संत अन्य किसी को द्वेष की दृष्टि से नहीं देखते। बल्कि वे प्रेम की दृष्टि से देखते हैं। वे किसी का अहित नहीं चाहते। इसका मूल कारण है—ईश्वर के अस्तित्वपर उनकी नितांत श्रद्धा, आत्मिक बलपर उनका अडिग विश्वास और मानव की समतापर प्रेम। इसलिये तुकाराम ने कहा है —

जेथे तेथे देखैं तुझींच पाऊलें
त्रिभुवन संघले विठ्ठला गा ॥
भेदाभेद मतें भ्रमाचे संवाद
आम्हां नको वाद त्याशीं देऊ ॥
तुका म्हणे अणु तुजविण नाहीं
नभाहुनि पाही वाड आहे ॥

हे भगवन् ! मैं सर्वत्र आपके चरण देखता हूँ। सब विश्व आप से ही परिपूर्ण है। और इसी लिये भेदाभेद के जाल में हमको न फँसाइये। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि संसार का एक भी अणु ऐसा नहीं है, जिसमें आप नहीं। अहाहा—कितनी उच्च और व्यापक भावना है। जिनकी ऐसी भावना होती है उन्हीं को हम संत कहते हैं—सारा संसार संत कहता है।

इस दृष्टि से तुकारामजी का जीवन एक आदर्श जीवन था। 'जो नर करनी करे सो नर का नारायण होय' इसका प्रत्यक्ष अनुभव हम को उन के जीवन में मिलता है। संत तुकाराम देवता के अवतार नहीं थे। वे प्रारंभ में बिलकुल मामूली हैसियत के मनुष्य थे। पूना के पास देहू नाम का गाँव है। वहां एक गरीब माता-पिता के घर में उनका जन्म हुआ। उनका बचपन गाँव ही बीता। यथा समय उस का विवाह हुआ। उनकी पत्नी सदैव दमा से पीड़ित रहा करती थी। अतएव तुकाराम के पिता ने उनका दूसरा विवाह कर दिया। आगे चलकर तुकाराम ने खेती-बाड़ी की। कई दिनतक किराना माल की दूकान चलाई। मोदी बकनर आस-पास के गाँवो में उन्होंने कुछ व्यापार भी किया। किंतु ईश्वर-चिंतन में मन होने से उन्हें अक्सर लेने के देने पड़ जाते थे। उसी समय महाराष्ट्र में बड़ा भारी अकाल पड़ा; सबको रोटियों के लाले पड़े। इसी विपत्ति में तुकाराम की प्रथम पत्नी चल बसी। द्वितीय पत्नी तो बहुत ही व्यवहार-कुशल थी। वह तो तुकाराम की प्रपंच-विषयक उदासीनता देखकर कर्कशा बन गई थी। हमेशा पति को जली-कटी सुनाया करती। परंतु छाती पर पत्थर रखकर वे सब सहते थे। तुकाराम ईश्वर-ध्यान में अधिकाधिक लीन रहने लगे। यही उनकी साधक अवस्था थी। संसार में षड्रिपुओं का दमन करके उन्होंने भगवान का स्मरण आरंभ किया।—

गोविंद गोविंद । मना लागलिया छंद
जग गोविंद ते काया। भेद नाही
देवा तया

इस ईश्वरभक्ति में जैसे ही वे आगे चढ़ने लगे वैसे ही उनके द्वेषियों का द्वेष जागृत होने लगा। मंबाजी नाम के एक सनातनी ब्राह्मण ने उनको भ्रष्ट करने के उद्देश्य से एक वेश्या को उनके यहाँ भेजा। लेकिन **"परकीया नारी रुक्मिणी समान"** समझनेवाले तुकारामजी ने उसके चरणों पर मस्तक रखकर उसको वापस भेज दिया।

तुकारामजी की निर्मल कविता सुनकर किसी भी सहृदय मानव का अंतःकरण शुद्ध हो जायगा। लेकिन मंबाजी जैसे निन्दक उनसे और भी जलने लगे। उस ईर्ष्यालु से तुकारामजी के कवित्वका उत्कर्ष सहा नहीं गया। उसने घोषित किया कि तुकाराम को शूद्र-कुल में उत्पन्न होने के कारण कविता करने का अधिकार ही नहीं है। महाराष्ट्र के तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान रामेश्वर भट्ट ने भी वही निर्णय दिया और तुकाराम को अपनी समस्त कविता इंद्रायणी नदी में डुबा देने का तानाशाही हुक्म हुआ। तुकाराम ने इस आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। किन्तु इससे उनका हृदय अत्यंत व्यथित हुआ। क्या ऐसा भी कोई शास्त्र है कि शूद्र काव्य रचना का अधिकारी नहीं! यदि ऐसा हो तो वह सच्चा शास्त्र नहीं, नितान्त असत्य है। तुकारामजी ने परमेश्वर से न्याय की याचना की। उसके निर्गुण निराकार स्वरूप के समीप उन्होंने सत्याग्रह शुरू किया। एक दिन बीता, दूसरा चला गया; तीसरा भी गया——तुकाराम का सत्याग्रह वैसा ही जारी था। तेरहवें दिन के बाद तुका को परमेश्वर का साक्षात्कार हुआ। आँखें खोलकर देखा, अरे यह क्या? साक्षात् भगवती इंद्रायणी ने तुकाराम का संपूर्ण काव्य स्वयं शिरोधार्य कर संत कवि को अर्पण किया! तुकाराम ने कहा है—

उदकीं राखिले कागद।
चुकवीला जनवाद॥
तुका म्हणे ब्रीद। साच केलें आपुलें॥

तुकाराम को कष्ट देने का पाप रामेश्वर भट्ट को प्रचण्ड रूप में मिला! उस का सारा शरीर जलने लगा। ज्ञानेश्वर ने स्वप्न में दर्शन देकर उसको तुकाराम से क्षमा माँगनें का उपदेश दिया। इस के अनुसार वह तुकाराम की शरण में गया। इस के बाद उस पीड़ा से उसकी मुक्ति हुई। इस अवसर पर तुकाराम ने रामेश्वर को उपदेश दिया।

चित्त शुद्ध तरी शत्रु मित्र होती।
व्याघ्र हे न खाती सर्प तया।
विष ते अमृत आघात ते हित।
अकर्तव्य नीत होय त्यासी॥
दुःख ते देईल सर्व सुखफल।
होतील शीतल अग्नि ज्वाला॥
आवडेल जीवा जीवाचिये परी।
सकळा अंतरीं एक भाव॥
तुका म्हणे कृपा केली नारायणे।
जाणिजे ते येणें अनुभवें॥

"अपना अंतःकरण निर्मल हो तो शत्रु भी मित्र होता है। उसको व्याघ्र नहीं खाता। साँप नहीं डसता। उसके लिये विष भी अमृत बन जाता है और उसकी उत्पात-परम्परा भी हितकर होती है। कोई अनुचित कर्म भी नीतिकारक रूपमें हितावह होता है। दुःख सदा सुखमें परिणत होता है। हृदय शुद्ध रखनेवाले मनुष्य से सब लोग स्वयं प्रेम करने लगते हैं, क्यों कि सभी के अंतःकरण में एक ही भगवान रहता है। मेरी विपत्तियों में भगवान ने मुझे सहायता दी। आप यही अनुभव कीजिये।" रामेश्वर भट्ट को यही अनुभव हुआ था। वे तुकाराम के शिष्य बने। इससे तुकारामजी की कीर्ति बहुत फैली। उनका कीर्तन सुनने के लिये देहातों से असंख्य लोग झुंडके-झुंड आने लगे। उनका यह चमत्कार सुनकर श्री शिवाजी महाराज ने उनको बहुत-सा धन भेंट में भेजा। परंतु —

मुंगी आणि राव
आम्हां सारिखाचि जीव।
गेला मोह आणि आशा
कलिकाळाचा हा फासा।
सोनें आणि माती
आम्हां समान हे चित्ती।
तुका म्हणे आलें
घरा वैकुंठ सगळें॥

अर्थात् राजा और रंक; सोना और मिट्टी हम समान मानते हैं। आपका भेजा हुआ धन लेने की हमें जरूरत नहीं। हमारे यहां तो साक्षात् वैकुंठ याने भगवान विष्णु ही रहते हैं। ऐसा कहकर तुकाराम ने वह धन लौटा दिया। तुकाराम की यह निस्पृहता देखकर शिवाजी महाराज स्वयं उनके दर्शन के लिये आये। सांसारिक जीवन में ऐसी साधना करते हुए भी उनमें ईश्वर-प्राप्ति की लगन बढ़ने लगी। साक्षात्कार के लिये वे तड़पने लगे। जैसे

कन्या सासुरासी जाए।
मागे परतोनी पाहे॥

१९५०

तैसें झालें माझ्या जीवा।
केव्हां भेटसी केशवा ॥
चुकलीया माये।
बाळ हुरू हुरू पाहे ॥
जीवना वेगळी मासोळी।
तुका तैसा तळमळी ॥

ससुराल जाती हुई लड़की बार बार पीछे मुड़कर देखती है वही दशा मेरी है। मासे बिछुड़ा हुआं बालक जैसे बिलखता है, जल बिना जैसे मछली तड़पती है उसी तरह यह तुका व्याकुल है।

कभी ऐसा भी हुआ है कि ऐसे अनन्य भक्त को भगवान दर्शन न दें? तुकाराम को भी ईश्वर का साक्षात्कार हो गया।

"तुका झाला पांडुरंग" और उसके बाद ईश्वर की भक्ति करने में उन्होंनें अपनी शेष आयु अर्पित की। कथा-कीर्तन में वे अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

हां, कीर्तन राष्ट्रिय चारित्र्य निर्माण की अनमोल संस्था है। जन साधारण में ईश्वर के प्रति श्रद्धा निर्माण करना, धार्मिक आचरण के बहाने उनमें सदाचार की प्रवृत्ति बढ़ाना, उनको सच्चे धर्म के उपासक बनाना, आदि कार्य कीर्तनों के ही द्वारा उन दिनों होते थे। कीर्तनों के अवसर पर तुकाराम समयस्फूर्त अभंगों की रचना करते थे। इस प्रकार उनके कमसे-कम तीन हजार अभंग आज उपलब्ध हैं। वही तुकारामजी की वाङ्मय मूर्ति है। आज भी तुकारामजी के निर्मल हृदय का और उनके अमृत के समान उपदेशों का बोध अभंगों में मिलता है। ये अभंग मराठी साहित्य के अमूल्य अलंकार हैं। इतनी भावपूर्ण कविता अन्य किसी मराठी कवि ने नहीं की। प्रत्येक अभंग, मानो तुकाराम के कलेजे का टुकड़ा है। उनमें कैसी उत्कटता है। उनके एक एक अभंग में जैसे भाव-समुद्र उमड़ रहा है। और अभंग के प्रत्येक शब्द से ईश्वर भक्ति की गंगा बहती है। प्रसाद गुण इन अभंगों की सबसे बड़ी विशेषता है। देहातों में ऐसा एक भी घर नहीं जहां इन अभंगो का गायन नहीं होता। अनपढ़ आदमी भी उनके अभंगो को समझ सकता है। **'तुका म्हणे'** यह वाक्यांश हमारे ग्रामीण भाइयों के लिये वेद बन गये हैं। इतना प्रामाण्य तुकाराम के वचनों को मिला है। इसका मुख्य कारण है, उनमें जीवन के अमूल्य तत्वों का समावेश। संसार से उद्विग्न लोगों को भक्ति का राजमार्ग इनमें मिलता है। और जनता को लोक-व्यवहार का ज्ञान भी। पंढरपुर के विठोबा के आर्त भक्त तुकाराम के उद्गारो से हृदय भावनाओं से परिपूर्ण हो जाता है। उनकी कविता ऐसी ही भाव पूर्ण और रसयुक्त है।

तुकाराम सच्चे वैष्णव थे, और वैष्णव के नाते उन्होंने मानवता का संदेश सबको दिया। वे अहिंसा के उपासक थे। उनकी अहिंसा में सज्जनों के संरक्षण के साथ दुर्जनों का दमन भी अंतर्भूत है। प्राणिमात्र पर दया करना वैष्णव धर्म है। पर दया की वास्तविक परिभाषा क्या है। तुकाराम कहते हैं "दया तिचे नांव भूतांचे पालन आणि निर्दलन कंटकांचे।" प्राणिमात्र की रक्षा और कंटक-रूप दुष्टों को दूर करने का नाम ही दया है। इसी लिये वैष्णवों की शक्ति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं "मऊ मेणाहुनी आम्ही विष्णुदास कठीण वज्रास भेदू ऐसे।" वैष्णव पुरुषों के हृदय 'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि' होते हैं। ईश्वर भक्ति के साथ ही यह भावना भी महाराष्ट्र की जनता में तुकाराम ने जागृत की। इन्हीं संतो के बलपर श्री शिवाजी द्वारा स्वतंत्र किया हुआ महाराष्ट्र चमक उठा। आज भारत स्वतंत्र हो गया है। इस स्वाधीनता की रक्षा के लिये तथा भारत का बल बढ़ाने के लिये शिवाजी ऐसे वीरों की और संत तुकाराम जैसे साधु सन्त महापुरुषों की हमें आवश्यकता है। यह जीवन-दायी संदेश संत तुकाराम और उनके गुरु श्री ज्ञानेश्वर ने हमें दिया। इसी लिये तो महाराष्ट्र का हरेक ग्रामीण प्रतिदिन हर्षोत्फुल्ल हो कर भक्तिभाव से विभोर हो उनका प्रभात में नामस्मरण करता है—

"ज्ञानदेव तुकाराम"!

भारतीय लोकगीतों में अन्तर्भावना

[होमवती देवी]

भारत के सभी प्रान्तों में जन्म, मरण विवाह और अनेक अवसरों पर लोकगीत गाये जाते हैं। कुँअर-पूजन, मुंडन और कर्णवेध संस्कारों के अतिरिक्त माता, शीतला देवी, दुर्गापूजन इत्यादि अवसरों पर भी गीत गाने की प्रथा है। यह गीत उन अनपढ़ स्त्रियों द्वारा निर्माण किए जाते हैं जो किताबी ज्ञान से दूर रहकर केवल सामाजिक परम्पराओं के आधारपर ही इन गीतों की रचना कर लेती हैं। इतना ही नहीं; फुटकर गीतों में वे युद्ध से लेकर महँगाई और विज्ञान के अनेक चमत्कारों पर भी गीत बना लेती हैं। छोटी छोटी बातों से प्रभावित होकर भी वे गीतों का निर्माण कर लेती हैं और बिना किसी कापी या कलम पेंसिल के यह गीत जीवनपर्यन्त जबानी याद रक्खे जाते हैं; और फिर दूर दूर तक इनका विस्तार फैल जाता है।

यदि लोकगीतों के ऊपर विस्तार से लिखा जाय या एक ही किसी प्रांत के समस्त लोकगीतों का संग्रह किया जाय तो निश्चय ही वह ग्रंथ संसार के किसी भी बड़े से बड़े ग्रंथ की समता अवश्य करेगा।

लोकगीतों का कहीं ओर-छोर नहीं है न जाने कितने विस्मृत हो चुके और कितनों का निर्माण होगा इसे कोई नहीं जानता। लोकगीत-साहित्य को अभी कोई विशेष स्थान हमारे साहित्यिकों ने नहीं दिया है। यदि इस ओर ध्यान दिया जाय और पूरा प्रयत्न किया जाय, तो यह साहित्य अनन्त होगा और अथाह तो है ही। साथ ही बड़ा रोचक और हृदयस्पर्शी भी।

अन्य प्रांतों के विषय में तो मैं नहीं जानती। परन्तु हमारे प्रांत (उत्तर प्रदेश) में और विशेष रूप से मेरठ से प्रारम्भ होकर सारे पंजाब प्रांत में मृत्युगीतों की भी प्रथा है। इसे चाहे 'विलाप' कहिये या कुछ और; परन्तु हमारे यहां तो इसे 'पल्ला लेना' कहते हैं। यह गीत एक विशेष स्वर और ध्वनि से गाये जाते हैं। जिन्हें कहते समय समस्त नारी-समाज और सुननेवालों की आंखों से अश्रु-धारा बह निकलती है, हृदय विदीर्ण-सा होने लगता है। यह मृत्युगीत युवा-युवतियों के लिए अलग होते हैं और बूढ़े बूढ़ियों के लिए अलग। अविवाहितों के लिए या कहिए कि छोटे छोटे बच्चों के लिए भी नहीं गाए जाते। इन गीतों के ऊपर कभी आगे विस्तार से लिखूंगी। इस समय तो मैं दो चार ऐसे गीतों का उल्लेख करूंगी जिनमें नारी-जीवन की विवशता और कन्या की उपेक्षा की सीमा नहीं।

मुझे आश्चर्य है कि ऐसे गीतों को गाते समय, कन्या की बिदा के समय, सभी की आंखों में आंसू भर आते हैं जो मैंने स्वयं देखा है, किन्तु आज 'हिन्दू कोड' पर

१९५०

वही स्त्री पुरुष छाती कूट कूट कर प्राण देने को तैयार हैं इसके विरोध में, जो पुत्र के समान ही कन्या के जन्म के भागी हैं।

अभी कुछ साहित्यकों ने लोकगीतों की ओर भी ध्यान देना प्रारम्भ किया है। श्री. 'राकेश' जी की एक पुस्तक इस विषयपर मैंने देखी है और आये दिन पत्र-पत्रिकाओं में भी दो चार गीत देखने को मिल जाते हैं। इधर मेरठ प्रांत के गीतों का संग्रह भी शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। परन्तु फिर भी अभी कुछ भी नहीं हो रहा है; हमारे लोकगीत वास्तव में हमारे जीवन के समाज और परम्पराओं के सजीव नमूने हैं। यदि इन की रक्षा न की गई तो हमारी संस्कृति और लोक-रीति की स्मृतियां किसी दिन लोप ही हो जायेंगी। क्योंकि आज की नारी तो फैशन में इतनी डूबती जा रही है कि वह लोकगीतों को केवल 'फूहड़पन' ही कह सकती है, उन्हें सुनने और गाने में उसे तनिक भी रुचि नहीं। फिर ऐसे गीत जोड़ने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

अब इस प्रांत के एक लोकगीत को देखिये जो बेटी की विदा के समय गाया जाता है।

अव मत वोलै मेरी काली कोयलिया।
छोड़ा बाबल का देस....।
आले दिवाले री लाडो! गुड़िया जो छोड़ी
छोड़ा सहेली का साथ....।
जिस दिन बीवी! तेरा जनम हुआ था—
हुई थी बजर की रैन।
टूटे झटोले में सोई पड़ी थी,
पीऊं थी गुड़ की पात,
सोये पड़े थे लाड़ो! पांचों पहरवा,
घर में था घोर अंधेर।
जिस दिन लाला तेरा जनम हुआ था
हुई थीं सोरन की रैन।
पचरंग पलंग पै सेज बिछी थी,
पीऊं थी बूरा की पात।
पांचों पहरवा जाग रहे थे,
बाला था चौमुख चिराग॥
इत्यादि,

उक्त गीत से जिसे यहाँ सुहाग कहते हैं, कन्या और पुत्र के जन्म से ही भेद का लक्षण स्पष्ट है, और वह मरण पर्यंत तक रहता है। पुत्र जन्म से होने वाला हर्ष जिस प्रकार घर-परिवार के वायु मंडल में व्याप्त होता है। कन्या के जन्म से वही वायुमंडल सूना और शोकाकुल हो उठता है, पर इस में दोष किसे दिया जाए, माता-पिता को या कन्या को अथवा विधाता को, जिसने अभागी नारी की सृष्टि की है। ऐसा ही एक दूसरा 'सुहाग' देखिये लड़की विदा होकर जा रही है। चल के रूप में वर्त्तन-गहने-कपड़े-हाथी-घोड़े और अनेक प्रकार की सम्पत्ति दी जा रही है, पर वह अपने पिता-बाबा-ताऊ सभी से अचल सम्पत्ति लेने की इच्छा प्रगट करती हैं जो सदा स्मृतिरूप बनी रहे पर सब लोग कन्या के प्रस्ताव को किस प्रकार ठुकरा देते हैं—उसे चँदेरी का राज इस लिए नहीं देते कि उसका उत्तराधिकारी भाई है।

गहना ले, मेरी बीबी! गहना लेरी,
अच्छा कपड़ा लेरी, नहीं देंगे चँदेरी का राज,
चँदेरी-भइया जी की।
गहना सुसर घर बहौत है जी, कपड़ा बहुत है जी,
हम तो लेंगे चँदेरी का राज;......
चँदेरी सुहावनी जा,
इत्यादि।

गीत कितना मार्मिक है। महिला उत्तराधिकार के विरोधी, तनिक हृदय पर हाथ रखकर सोचें।

एक और गीत में कन्या की विवशता देखिए। बरात जा रही है और छज्जे पर बैठी बालिका अपने वर को देख कर परिवार के लोगों से प्रार्थना करती है कि यह वर तो साँवला है जिसे तुम मेरे लिए चुन कर विवाह कर रहे हो। और वह सब अनेक नुसखे और युक्तियाँ बतला कर उसे समझाने की चेष्टा कर रहे हैं।

छज्जों तो बैठी मेरी रजबन झुरबैजी,
मेरे बाबा जी! ये वर कहिएँ साँवले जी।
घिस के कस्तूरी वर के अंग लगावैजीं,
मेरी बीबी, केसर घोल पिलाइये जी।
छज्जों तो बैठी मेरी लाड़ो झुरबैजी,
मेरे ताऊ जी, चाचा जी, वे वर कहिएँ साँवले जी,
हस्ती के हौदेरी बीबी! गरद उडी है जी,
मेरी लाड़ो, गरद उड़त वर साँवले जी।
इत्यादि

आश्वासन से वे अबोध बालिका को किसी प्रकार बहला रहे हैं, सिर से बला टालनी ठहरी। उस गीत से स्पष्ट है कि कन्या अत्यंत रूपवती तो होगी ही साथ ही बुद्धिमती भी होगी पर भारत की ललना जो ठहरी। कन्या का भार तो पत्थर से भी अधिक भारी और कठोर माना गया है हमारे यहाँ। देखिए निम्न गीत में कन्या कितना आग्रह और निर्देश करती है। अपनी वर की खोज के लिए—

हँस उन के बाबा जी ने, ताऊ जी ने, गोद खिलाई जी राज,
कहो बेटी, गौरा कैसे वर ढूँढों जी राज,
काला मत ढूढ़ों बाबे, कुल को लजावै जी राज,
गोरा मत ढूँढ़ो बाबे, चलत पसीजै जी राज,
लम्बा मत ढूँढ़ो बाबे, सैफल तोड़े जी राज
छोटा मत ढूँढ़ो बाबे, सब गुन खोटा जी राज़,
जोड़ी वर ढूँढ़ो बाबे, पार लगावै जी राज,
इत्यादि

कह कर कन्या अंत में कैसी विनती करती है कि पार लगाने वाला सच्चरित्र और सुशील हो। नीचे लिखे गीत में कन्या विनय करती है कि नदी के किनारे मेरा वर घोड़े पर चढ़ा घूम रहा है, इसपार आने का साधन नहीं जुट रहा है। बाप, मा, बाबा ताऊ सभी से क्रमशः प्रार्थना है कि आप नाव भेज दीजिये तो वह आ जाये; पर वह दो चार उल्टी सुल्टी गालियाँ देकर कह देते हैं कि जिसे तुझे लेने का चाव होगा वह स्वयं चला आयगा——कैसी बेबसी है।

नदिया किनारे २ दुलह असवार फिरें,
लाओ मेरे बाबाजी नाँव दुलह चढि आवेंगे.
ना मेरे नाँव-नवडिया तो ना मेरे केवटिया,
जिस बिगडी के को चाव आपि चल आवैंगे।

ऊपर लिखे गीत-सुहाग नाम से प्रचलित हैं। यह अनेक भावनाओं से ओत प्रोत हैं, और अनेक हैं। सभी का उल्लेख करना तो यहां सम्भव नहीं। इसी प्रकार हमारे प्रांत में गाये जानेवाले भात के गीत हैं जो बड़े करुण हैं; जिन्हें विवाह के उस अवसर पर गाते हैं भी जब बहन अपनी संतान की शादी में भाई के यहाँ कुछ सहायता माँगने जाती है।

इसी प्रकार उन जन्म गीतों में भी कुछ बडे ही मार्मिक और करुण हैं जब

कि लड़की भतीजे के जन्म पर प्रसन्न होकर और सहसा ही दूसरे के मुँह से यह सुसंवाद सुनकर मैके (पीहर) पहुंचती है और वहां उसकी उपेक्षा ही नहीं—अपमान भी किया जाता है। भौजाई अनेक प्रकार के ताने और व्यंगों से उसका स्वागत करती है। कुछ ठोस शृंगारी गीतों का भी चलन है और फुटकर गीतों का तो कुछ पूछिए ही मत। लोक जविन का उनमें जीता-जागता चित्र प्रतिबिम्बित हो उठता है।

* * *

भद्र-संस्कृति और सन्त-संस्कृति

"सारी दुनिया में दो ही तरह की मानव-संस्कृतियाँ हैं — एक भद्र-संस्कृति, दूसरी सन्त-संस्कृति। पहली ऐश्वर्य प्रधान है। यह संसारी ज्ञान-विज्ञान, अधिकार, पराक्रम, वैभव आदि में श्रद्धा रखती है। स्वयंको और अपने लोगों को दुनियाँ में बड़ा बनाना चाहती है। वह सब मनुष्यों का एक-सा अधिकार स्वीकार नहीं करती। उसमें ऊँच-नीच, बड़ा-छोटा, अधिकारी-अनधिकारी आदि भेदों के लिये जगह है। भद्र-संस्कृति आडम्बर-प्रधान है। दूसरी अर्थात् सन्त-संस्कृति गुणप्रधान है। उसमें ज्ञान, श्रद्धा, सौजन्य, समदृष्टि है। भोग और सम्पत्ति में मर्यादा, ऊंच-नीच के भेद-भावको मिटाने पर उसकों ज़ोर रहता है। यह आडम्बर को अच्छा नहीं समझती।

सन्त-संस्कृति सारी दुनियां में एक-सी है। भद्र-संस्कृति में बहुत से रूप-रंग और झगड़े हैं।"

— श्री किशोरलाल घ. मश्रूवाला

कहानी :

एक औरत

"वनमाली"

अठारह साल पहिले देखी उस औरत की तसवीर आज फिर मन की पर्तों को उलटते पुलटते याद हो आयी। आपको भी शायद वह दिलचस्प लगे। इसी लिये उसकी यहाँ चर्चा कर रहा हूँ।

जब की यह बात है तब मैं नागपूर इम्प्रेस मिल नं. ५ से लगे हुए एक मुहल्ले में रहता था। घर के सामने एक बूढ़े मुसलमान की साग-सब्जी की दूकान थी जिसमें सब्जी के अलावा खाने-पीने का दूसरा सामान और अटरम-शटरम कई चीजें मिल जाती थीं। मुहल्ले के गरीब मजदूर — दो दो चार चार पैसों का सौदा लेने दिन भर उसकी दूकान पर पहुँचते रहते। कभी नगद और कभी उधार। कभी सौदा पाते और कभी गाली खाकर अपना-सा मुँह लिए लौट जाते। बड़े मियां की (इसी नामसे उसे सब सम्बोधन करते थे) मुझे यह ज्यादती मालूम पड़ती; लेकिन फिर यह भी सोचता कि दया-धर्म से दूकानदारी कहां चलने की।

बड़े मिया की दूकान क्या थी एक खपरैल थी जिसके तीन चौथाई भाग में उनकी दूकान थी और एक चौथाई हिस्से में दीवारखड़ी करके एक खोली उतार दी गयी थी जिसमें पहिले कोई मजदूर रहता था मगर जो अब बहुत दिनों से खाली पड़ी हुई थी।

एक दिन सवेरे जो उठा और बड़े मियां की दूकान कि ओर नजर फेरी तो देखा की उस खोली में कोई किरायेदार आ गया है। कुछ देर मैं यौंही उधर देखता रहा कि मैंने देखा कि भीतर से कोई औरत मुंह पर घूंघट डाले निकली और हाथ में बाल्टी लिए सड़क पर कुछ दूर नल से पानी लेने चल दी। घूंघट के भीतर से उसके नाक-नक्शे का जो अन्दाज मेरे मन के भीतर बैठा वह कुछ बुरा नहीं लगा। नई उमर। सांवला रंग। छरहरा बदन। ऊपर से शील और लाज। मेरे मन को वह रूप भाया ही। गरीब के पास ऐसा क्या जिसपर वह परदा करे। मगर यह औरत गरीब होकर घूंघट खींचती है तब जरूर इसके पास ऐसा कुछ होना चाहिए जिसे वह लोगों की नजर से बचाकर रखना चाहती है। इस असामान्यता ने मुझे एकाएक वशीभूत कर लिया।

थोड़ी देर बाद एक आदमी भी खोली के भीतर से निकल आकर बाहर खड़ा हो गया और जिधर वह औरत गयी थी उस ओर ताकने लगा। शायद वह उस औरत का आदमी था। उसकी भी नयी उमर। भींगती हुई रेखें। मगर उसके मुँह पर कुछ ऐसी हीनता की छाप दिखी कि मुझे लगा कि वह उस घूंघटवाली औरत के अनुरूप नहीं। उसका साथी उसे नहीं होना था। भले यह मेरा उन दोनों के प्रति अन्याय हो- लेकिन इस बेमेल से मेरे मन में सन्देह का कालापन घिर ही आया।

१९५०

खैर जब बड़े मियां से मेरी मुलाकात हुई तव मैंने पूछा—क्यों जी, तुम्हारी खोली आबाद हो गयी ? तुम्हारे नये किरायेदार कौन लोग हैं ? क्या करते हैं ?

वड़े मियां को शायद मेरे प्रश्नों में रस मिला। इसी से उसने घुमा-फिरा कर मुझे बताया—मालूम नहीं वावूजी। कल शामको वह आदमी मकान की तलाश करता करता मेरे पास पहुंचा और पूछने लगा कि क्या खोली खाली है। मैंने कहा कि हां खाली है। और किराया पूछने पर जब मैंने तीन रुपये बताये तब झट उसने पेशगी किराया मेरे हाथ पर रख दिया और रातको ही अपना थोड़ासा सामान लिए ये दोनों खोली में आ डटे। मैंने पूछा नहीं कि वह आदमी क्या काम करता है। क्यों वह औरत तो भली मालूम पड़ती है।

और वड़े मिया के चेहरे पर एक मुस्कराहट खेल गयी।

मैंने अनजान बनते हुए जवाब दिया—होगी। मुझे क्या !

इसके बाद जब कभी मेरी दृष्टि उस खोली पर पड़ी तब मैंने उसके कपाट बन्द पाये। सुवह शाम ही जब कभी मैंने उस औरत को मुँह पर घूंघट डाले नल तक जाते और वहां से लौटते हुए पाया। उसका आदमी भी बड़े सवेरे न जाने कहाँ चला जाता और रातको न जाने कब लौटता। मुहल्ले के बीच वे दो जन रह रहे थे। मगर न उनका मैंने किसी से कुछ लगाव देखा और न दूसरों का उनसे। शहर के रहने की यही तो खूबी है। सालों साथ रह लीजिये मगर पड़ोसी से कोई जान-पहिचान नहीं होने की। उसे क्या पड़ी कि वह जाने कि आप मुसीबत में हैं या आराम में। उसके जानने के लिए उसके अपने स्वार्थ ही कौन कम हैं।

मेरा यह सब कहने का यह मतलव कि करीब एक महिना गुजर गया लेकिन मेरी उनके बारे में जानकारी इस दायरे से आगे नहीं बढ़ी कि वे मात्र दो आदमी हैं और मेरे पड़ोस में रहते हैं। बस। वे कैसे हैं ? क्या हैं ? क्यों वहाँ हैं जहाँ हैं ? इन सारी बातों से जैसे न मुझे और न मेरे मुहल्लेवालों को कोई दरकार है। इसी बीच एक घटना हुई जिसने मुझे उन दोनों के बहुत नजदीक ला दिया।

वह आदमी तनदुरुस्त तो पहले से ही नहीं दीखता था। इन दिनों उस पर खांसी का प्रबल कोप था। उस की खांसी कोई साधारण ढंग की नहीं थी। रात के सन्नाटे में जब वह बीस पच्चीस मिनट तक लगातार खांसता जाता तब मन में बड़ा भय लगता। ऐसा मालूम पड़ता कि कहीं खांसते खांसते वह अपने सारे प्राण ही न उलट दे। उसकी वह कराह मेरा जी दहला देती। उससे दूर अपने घर में बैठे जब मुझे उसकी खांसी भयानक लगती तब मैं सोचता कि सत्रह अठारह साल की उसकी नयी नवेली औरत पर अकेले में क्या बीतती होगी। जो शायद अभी हाल ही अपने बाप के घर से उसके साथ आयी हो। जिसकी देखभाल के लिए अभी कोई बड़ी बूढी साथ होनी थी उसी के पल्ले क्या ऐसी आफत आकर पड़ने को बची थी ?

मगर मैंने उस औरत के कार्यक्रम में कोई अन्तर नहीं देखा। वह अभी नियम से बड़े सवेरे नल से पानी ले आती और दिन भर घर में बैठी शायद उस आदमी की सेवा टहल किया करती। शाम को फिर वह पानी लेने को जाती और फिर घरके अन्दर दुबक जाती। उस का आदमी भी अब बाहर जाते न दिखता। शायद खांसी ने उसे ऐसा कम जोर कर दिया हो कि चलने फिरने की सामर्थ्य खो बैठा हो। न मालूम तब वे लोग किस प्रकार अपनी जिन्दगी चला रहे थे ? पता नहीं कि बीमारी का भी वह आदमी कोई उपचार कर रहा था या नहीं।

मैं आखिर अपने को न रोक सका। एक दिन बड़े मियां को लेकर मैं उन की खोली पर गया। आवाज दी—क्यों जी, भीतर हो क्या ?

जबाब मिला—हां, बावूजी, भीतर आ जाइये।

मैं भीतर पहुँचा तो कुछ सामान न दिखा। सिर्फ एक टूटी सी खाट पर वह आदमी अपने ऊपर एक मैली चादर लेकर लेटा हुआ था। उसकी औरत एक कोने में सिमटी बैठी थी।

मैंने पूछा—क्यों जी, इतने दिन से दिक हो। कुछ दवादारू भी कर रहे हो? क्या काम करते हो?

उसने बताया—बाबूजी मैं एक होटल में काम करता था। लेकिन बीमारी की वजह से वह भी छूट गया। मैं पहले खुदही असपताल से अपने लिए दवा ले आता था। अब वह भी बन्द है! मैं इस शहर के लिए बिलकुल नया आदमी हूँ। मेरा यहाँ कोई हितू नहीं। आप से एक प्रार्थना है। मेरा हाथ बहुत तंग है। मैंने अपनी औरत से कहा कि मिल जाकर वह कोई काम खोजे। मगर वह सरकने का नाम ही नहीं लेती। आप अपने यहां कोई घरू काम बता देते तो बड़ी मेहरबानी होती।

मैंने कहा — अच्छा यह तो कर दूंगा। मगर तुम्हें अपनी तबियत का भी कुछ ख्याल है?

वह आदमी बोला — भगवान की मर्जी होगी तो अच्छा हो ही जाऊंगा।

मैंने बताया — देखो, मेरी सलाह मानो तो मैं तुम्हें मेयो अस्पताल में भरती करा दूँ। कौन जाने तुम्हारा रोग कैसा हो। ऐसी लापरवाही अच्छी नहीं। तुम्हारी औरत वहाँ तुम्हारी रोज खोज-खबर लेती रहेगी।

मालूम नहीं क्यों वह आदमी मेरी बात पर आना-कानी करने लगा।

तब उसकी औरत ने ही घूंघट में से जवाब दिया — बाबूजी आपकी बड़ी मेहरबानी होगी। आप जरूर इन्हें अस्पताल में भरती करा दें। यहां तो घुलने के सिवाय इनका क्या होगा?

आदमी शायद उसकी बात पर गुस्सा सा दिखा।

उसने पूछा — मेरे बिना तेरा क्या होगा?

औरत ने जवाब दिया—तुम मेरी फिकर मत करो। बाबूजी काम देदेंगे तो मेरा पेट भर जायगा।

आखिर आदमी बड़ी दुबीधा के बाद अस्पताल चलने पर राजी हुआ। मैं उसे अपने एक मित्र की सहायता से भरती करा आया और उसके खाने-पीने का भी प्रबन्ध अस्पताल की ओर से हो गया।

घर का काम काज अभी तक मेरे घर के लोग ही अपने हाथ से कर लेते थे; लेकिन मैंने मां को समझा बुझाकर उस औरत को चार रुपये महिने पर घर के काम के लिए रखवा दिया।

इतना सब हुआ पर मैं नहीं कह सकता कि मेरे और इस औरत के बीच वह घूंघट किसी प्रकार ढीला हुआ। हां जब-तब मां ही मुझे बता दिया करती थीं कि चम्पा (यही उस औरत का नाम था) मेरा बड़ा गुन मानती है। कहती मैंने उसे उबार लिया है।

मैं देखता, चम्पा अपने काम से छुट्टी पाकर रोज बे-नागा मुँह पर घूँघट खींचे अपने आदमी की खबर लेने अस्पताल पहुँचती और तीन चार बजे फिर अपने काम पर चली आती। वह घर में बड़ी गुम-सुम बनी रहती। कभी कुछ आगे-पीछे की अपनी बातें न करती। मैं अपने हृदय की किसी बहुत भीतरी तह में अनुभव करता कि चम्पा के चारों ओर विषाद की जो स्याही फैली हुई है उसका सबसे अधिक काला धब्बा कहीं जरूर है। पर वह कहाँ है इसके जानने का मुझे कोई चारा नहीं दीख पड़ता था।

नसीब से वह चारा जल्दी ही हाथ लगा।

बड़े मियां एक दिन चुपचुप मेरे पास आये और बोले "सुनते हैं आप। यह औरत ठीक नहीं मालूम पड़ती। इसके यहां कोई रिक्शे वाला आने लगा है। मैंने कल अपने कानों सुना। वे कहीं भाग जाने की तैयारी कर रहे हैं। क्या ठिकाना यह औरत कब कूच कर दे। जब काम करने आये तब बाबूजी इस पर कड़ी नजर रखने की आप घर में ताकीद कर दें"।

मैं हैरत में डूब गया। क्या उस औरत का यही परिचय पाना मेरे लिए बाकी बचा था? मैं क्या इसी लिए उतावला हो रहा था कि जानूँ उस घूंघट के पीछे ऐसी निम्न कोटि का रहस्य छिपा है? मैंने जिसे भीतर ही भीतर एक महिमासे मंडित कर लिया था उस पर यह मुझे सरासर झूठा लांछन मालूम पड़ा। मगर उस बूढ़े आदमी को 'मैं यह कैसे बताता कि वह झूठा है और कि उसे जरूर कोई गलत फहमी हुई है।

मैंने इतना ही कहा — अच्छा कह दूंगा।

लेकिन मेरे अन्दर यह बात जान कर जो बेचैनी हो रही थी उसका क्या बयान करूं। अपनी

सारी कल्पना को झूठी साबित हो जाते देख मेरे मन का बुरा हाल था। जिस महिमा से मैंने उसे मंडित किया था वह आज अचानक कुचली जाकर भी तबतक सिर उठा लेती और मैं साहस बटोर कर कहता बड़े मियां को जरूर कोई गलत फहमी हुई। वह ऐसी कभी नहीं हो सकती।

दूसरे दिन सबेरे जब चम्पा काम करके जाने लगी तब मैंने उसे रोक कर कहा —- सुनो तो।

मेरी आवाज पर वह ठिठक गयी।

मैंने पूछा—क्यों? मैं तुम्हारे बारे में यह क्या सुन रहा हूँ?

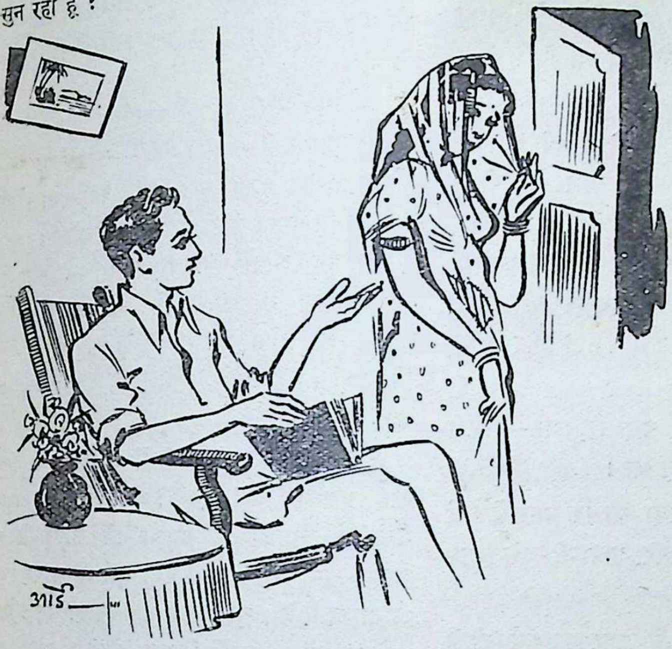

उसने अकचकाकर घूंघट से एक बार मेरी ओर देखा। फिर धीरे से उसका प्रश्न हुआ — क्या बाबूजी?

मैंने कड़ा होकर कह ही दिया उससे—'यही कि तुम्हारे पास कोई रिक्शावाला आता है?'

घूंघट में से उसके चेहरे का जो कुछ भाग दीख पड़ रहा था उससे मैंने जाना कि वह एकाएक फक पड़ गयी है। पर जल्दी ही उसने अपने को सम्हाल लिया। तब वह अपने मुँह का घूंघट हटाकर बोली—अभी तक मैं आपसे लाज करती थी बाबूजी। पर जब आपने आज मेरी लाज खोल दी है तब मैं साफ ही कहूँगी। अगर मैं कहूँ नहीं तो क्या आप विश्वास करेंगे?

मुझे उससे ऐसी दृढ़ता की कभी आशा नहीं थी। मुझे अपने ही प्रश्नपर खीझ आने लगी कि मुझे क्या पड़ी थी उससे पूछने की कि उसके पास कौन आता है और कौन नहीं आता। मैं उसका कौन जो उसकी कोई खबरदारी रखूँ। मेरे यहां वह काम करने आती है। ठीक सलीके से काम करती है। उस काम के वह चार रुपये पाती है। चार रुपये पाती है तो चार रुपये से अधिक का वह काम कर देती है। इससे अधिक मेरा उसके ऊपर दावा क्या?

तो भी—तो भी—

मैंने बताया—मैं भला तुम्हारा क्यों अविश्वास करूँगा?

चम्पा बोली — आप शायद सच ही कहते हों। लेकिन यह दुनिया जो किसी बेमर्द की औरत को देखकर चील के समान उसपर टूट पड़ना चाहती है कब मेरा विश्वास करने चली? फिर मैं भूखी नंगी हूँ। एक ऐसे आदमी की औरत हूँ जो मेरे खाने-कपड़े का भी ठीक प्रबन्ध नहीं कर सकता। तब बताइये क्या ऐसा करना मेरे लिए स्वाभाविक नहीं है?

वह सरल औरत जिसे मैंने सदा अपने मुँहपर घूंघट खींचे देखा, मेरे लिए एकाएक बड़ी रहस्यमयी हो उठी।

मैंने कहा—तो भी मेरी तो तुमसे यही उम्मीद थी कि तुम एक सच्ची हिन्दू औरत के समान अपने आदमी के प्रति ईमानदार ही रहोगी।

चम्पा ने ही बताया — हां बाबूजी मुझे एक सच्ची हिन्दू औरत के समान अपने आदमी से सचाई ही बरतना चाहिये। पर मैं क्या उसकी ब्याहता हूँ जो मुझपर किसी का कोई दावा हो। मैं गांव की लड़की ठहरी। उस उठाईगीरे की बातों में आकर घर से निकल आयी। अबतक

मेरे जेवरों पर गुजर होती रही। अब जब से वह बीमार पड़ा तब से खाने के लाले पड़े हुए हैं। किसी रिक्शेवाले से कुछ कर्ज काढ़ रक्खा है सो वह अब रोज आकर मुझे दिक करता है और न जाने क्या क्या कहता है। पर आप सच मानें मैंने उसे अपनी ओर से कोई बढ़ावा नहीं दिया। मैं हमेशा उससे कड़ाई से ही पेश आयी हूं।

मैंने उसे सान्त्वना देते हुए कहा — मुझे तुमसे यही उम्मीद थी। मुसीबत किस पर नहीं पड़ती। लेकिन मुसीवत में जो अपने धर्म को न छोड़े वही सच्चा आदमी है। तुम्हारा आदमी कैसा भी हो; आखिर तुमने उसे अपना तन दिया है। उसके प्रति तुम्हें अब सचाई ही निभाना चाहिए।

चम्पा कहने लगी — मैंने अब तक उसके प्रति सच्चे ही रहने की कोशिश की है। पर बाबूजी मैं अब और सचाई नहीं निभा सकूंगी। यह बूढ़ा दूकानदार कल अपने किराये का तकाजा करते हुए मुझे समझा रहा था कि मेरा आदमी जल्दी नहीं अच्छा होने का। दर-दर की ठोकरें खाने से तो यह अच्छा है कि मैं किसी और के घर बैठ जाऊं।

यह तुमसे वह बूढ़ा कह रह था — मेरी आवाज़ में आश्चर्य बोल रहा था।

हां बाबूजी। उसने कहा था कि आपको मेरी बातें मालूम हो गयी हैं। और आप भी मुझे काम से छुड़ा देंगे।

न जाने कैसे उसकी अपने ऊपर मजबूती ढीली हो गयी। न जाने कैसी उथल पुथल उसके अन्दर मच रही थी। वह अचानक फफक फफक कर रोने लगी।

किसी परायी सयानी औरत को इस तरह बिसूरते आज पहिली बार मैंने अपनी उमर में देखा। मैंने आज पहिली बार अपनी उमर में यह महसूस किया कि औरत कैसी अबला है।

मैंने चम्पा को समझाया — देखो वह बूढ़ा झूठा है। बदमाश है। मैंने जब तुम्हारी इतनी मदद की है तब मैं तुम्हें निस्सहाय क्यों छोड़ दूंगा। तुम जाओ और जब तक तुम्हारा आदमी लौटकर न आये, तब तक नेकी से अपनी जिन्दगी बिताओ। मैं हमेशा तुम्हारी मदद के लिये तैयार हूँ।

उसी दिन दोपहर को बड़े मियां को एकान्त में बुलाकर मैंने डांटा—क्यों जी। तुम दोनों मशालों में तेल देते हो। चोर से कहो चोरी करो और साव से कहो जागते रहो। यह क्या माजरा है?

बड़े मियां मेरी इस डांट से सिटपिटा गये। फिर तुरन्त बोले — मै नहीं समझा बाबूजी आपने क्या फरमाया?

मैंने कहा—तुम अब क्यों समझने के? मैं तुम्हें भला आदमी समझता था। आज मालूम पड़ा कि तुम बड़े धूर्त हो। तुम्हीं उस औरत को भड़का रहे हो।

बड़े मियां मेरी बात से अप्रतिभ हुए। लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी। बोले—सच बाबूजी उस औरत से मैंने कभी कुछ नहीं कहा-सुना। मैंने कल उससे अपना किराया जरूर मांगा था। इसी से शायद वह आपसे कुछ झूठ-सच भिड़ा गयी है। मैंने कहा था न आपसे कि वह अच्छी औरत नहीं। अपना मतलब साधने के लिए वह जो करे सो थोड़ा। मेरे आपके इतने दिनों के सम्बन्ध पर पानी फेर दिया।

मुझे बड़े मिया की बातों में अविश्वास के लिए कोई गुंजाइश नहीं दिखी। मगर मैं अपनी पहली गलती से चौकन्ना हो गया। मैंने कड़ाई से ही कहा—तुम्हें मुसीवत में पड़ी एक औरत पर रहम आना चाहिये। तुम्हें क्या नहीं मालूम उसके पास धरा क्या है जो तुम्हें किराया देगी। अगर वह किराया न देगी तो मैं दूँगा। मगर आयन्दा उसे सताना मत। समझे!

दूसरे दिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था जब बड़े तड़के बड़े मियां ने आकर मुझ बताया—लीजिये, अब तो आपको मुझपर विश्वास आयगा। वह देखिये खोली खाली पड़ी है। कल रात को ही वह उस रिक्शेवाले के साथ भाग गयी। बाबूजी आप नयी उमर के ठहरे। आप त्रिया-चरित क्या जानें। वह आप पर जाल फेंक रही थी। इसी से मैंने आपको उसकी ओर से अगाह किया था।

मेरे मन में आया कि उस औरत की सचाई का मेरे पास कोई ऐसा सबूत होता जो मैं बड़े मिय

के सामने पेश कर उसके मुँहपर तड़ से तमाचा मार देता। मगर कठोर सत्य के सामने क्या करता? आखिर झक मार बोला — शायद तुम्हीं ठीक हो बड़े मियां। मुझे क्या ख्याल था कि वह ऐसी होगी।

मगर मन में बड़ी विरसता जमती जा रही थी। विश्वास चोट खाकर भीतर ही भीतर उफन रहा था। मैं अपने से कह रहा था कि क्या नेकी का दुनिया में यही वदला मिलता है। क्या आदमी इतना ओछा है कि वह आदमी की दी हुई सहानुभूति को भी नहीं समझता। मैंने उस औरत से कभी कोई वात नहीं चाही। हां, एक वात जरूर चाही कि वह जो कुछ है पर अव नेक वनी रहे। और नेक वनी रहकर मेरी संवेदना की पूरी अधिकारिणी हो। क्या किसी से नेकी मांगना भी गुनाह है जो वह मुझे निस्सहाय दंड भुगतने के लिये छोड़ गयी है। मुझे लगा कि दुनिया में फरेव ही सब ओर प्रवल है। इसी से दुनियादार लोग अपने काम से अपना सरोकार जोड़कर नेकी और भलाई जैसे फिजूल कामों से अपने को वचाये रखते हैं। वे ही सीधे पक्के रास्ते पर चलनेवाले लोग हैं। मेरा ही रास्ता टेढ़ा मेढ़ा और ढलुआ है जो आदमी को किसी ओर भी ढकेल सकता है।

लेकिन एक वात इस दुनिया की वड़ी विचित्र है। यहाँ कुछ भी बंधी लकीर से नहीं होता। मैं दूने आश्चर्य में डूब गया जब मेरी और वड़े मियां की खींचीं लकीरें अचानक किसी ने मेट दीं।

कुछ देर वाद वड़े मियां मेरे पास आये और कहने लगे—मैंने आप से गलत कहा। वह रिक्शे वाला मेरे पास अभी आया था और पूछ रहा था कि चम्पा कहाँ है। मैंने कहा कि मुझे क्या मालूम। मैं तो समझता था कि वह उसके साथ चली गयी। तब उसने बताया कि कल रात उसने साफ इन्कार कर दिया।

यह खवर सुन मेरा दिल खुशी से उछल पड़ा।

मैंने कहा — मैं जानता था बड़े मियां वह ऐसा कभी नहीं करने की। लेकिन मैं चुप था क्यों कि मेरे पास कोई सुवूत नहीं था।

मगर अव सवाल था कि वह गुम हुई तो कहाँ।

यह सवाल भी जल्दी हल हो गया।

पुस्तकें सम्हाले साइकिल पर चढ़े हिस्लॉप कॉलेज जाते हुऐ जव मैं आम रास्ते पर पहूँचा तव चलते राहगीरों की फुसफुसाहट मेरे कानों में पड़ी। वे लोग आपस में कहते जा रहे थे कि कोई जवान अच्छी खासी औरत कल रात जुम्मा तालाव में डूव मरी। उसकी लाश का पुलीस मुआयना कर रही है।

मैं कॉलेज जाना भूल जव घटना स्थल पर पहुँचा तव मैंने देखा कि वही घूंघट वाली औरत थी।

मुझे चम्पा को, जिसे मैंने अपनी पूरी संवेदना का अधिकारिणी समझा था, इस हालत में देख दुःख होना चाहिये था। लेकिन मेरी आखों में हर्ष के आँसू उमड़ आये और मैं खुशी खुशी कॉलेज न जाकर उसके आदमी को खबर सुनाने पहुँचा कि ले, देख जो तेरी व्याहता न थी, जिसे तू वहका कर उसके वाप के घर से निकाल लाया था, जिसके तू जेवर वेचकर खा गया, वही आज दुनिया के हथकंडों से तंग होकर तेरे नाम पर अपनी जान दे वैठी है।

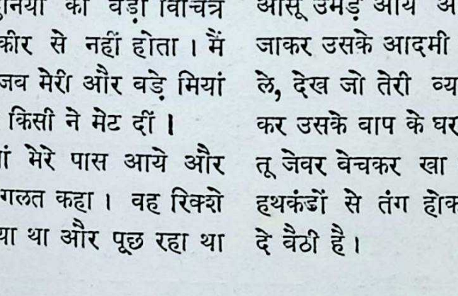

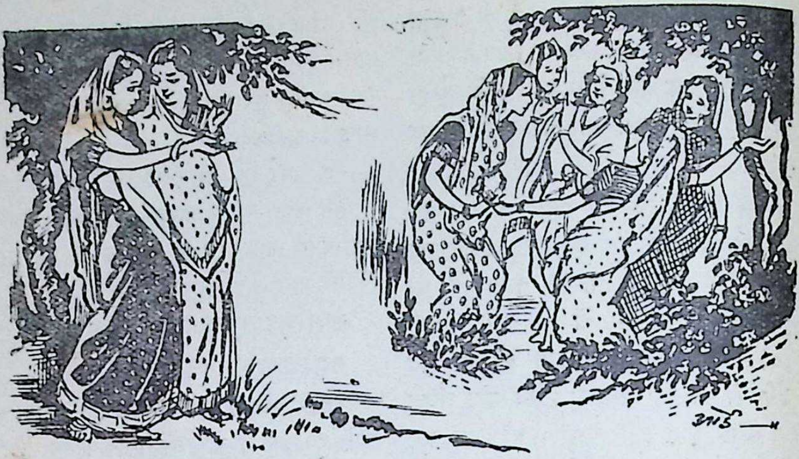

राधा बोल रही जी की

[विनयमोहन शर्मा]

निशि अँधियारी, ऋतु बसन्त सखि घन-निकुञ्ज वननंदन री !
खोज रहे कबसे दिशि-दिशि में थकित चकित दृग-खंजन री !
ले चल वहीं, थमे जिससे यह शाश्वत जी का क्रन्दन री !
रति-रस भीने जहाँ विहंसते छिपे खड़े नँदनंदन री ।

* * *

प्रथम मिलन की बेला आई, चढ़ क्रीड़ा के स्यन्दन री ।
किन्तु मधुर बोलों से उनके बनी स्वयं रसरंजन री ।
भूली बदन वसन की सुधि, सब भूली पूजा-चन्दन री ।
मेरी शैया किसलय उनकी मेरे उर का स्पन्दन री ।

* * *

भूली किन अधरों ने किनका लिया मधुर कब चुम्बन री ।
किन घड़ियों में हुआ हमारा युग युग का परिरम्भण री ।
मेरे मीलित लोचन उनका पुलक ललित वपु-कम्पन री ।
श्रम-सीकर से सिंचित तन यह, उनमें रति का गुञ्जन री ।

* * *

नख-क्षत उर यह, नव कुसुमों का बिखरा कबरी-बन्धन री ।
मेरी ये पायल बज उठतीं, रह रह कर मृदु झनझन री ।
मुरझाई मैं इधर, उधर वे मुकुलित केशि-निकन्दन री ।
राधा-वर्णित मधु-क्रीड़ा का करता 'जय' अभिनन्दन री ।

* * *

ले चल उन कुंजों में जिनमें व्रजबालायें घेरे—
रहती हैं श्री हरि को आतुर पर दिखते ही मेरे—
हाथों से उनके गिर पड़ती वंशी सहज अबेरे[१]।
दूर कटाक्षों से कर देते गोपीजन के भेरे[२]।

* * *

मुझे जलाते हैं अशोक के कोमल किसलय—फूल।
बहनेवाला मृदु समीर भी छू उपवन—सर—कूल।
अलि—गुंजित मधु आम्र-मञ्जरी चुभती है ज्यों शूल।
जग सरसा है, पर मेरे तो हिय में उड़ती धूल।

---

[१] अबेरे-शीघ्र. (अबेर, अ+बेर=देर नहीं, अविलम्ब) [२] भेरे-घेरा.

[अप्रकाशित हिन्दी गीत-गोविन्द से। स्वत्व सुरक्षित]

एकांकी :

अहिल्या

[गोपाल शर्मा]

: पात्र :

रामचन्द्र : अयोध्या के तरुण राजकुमार
लक्ष्मण : राम-भ्राता
विश्वामित्र : राजर्षि, राम के गुरु
गौतम : महर्षि
अहिल्या : गौतम पत्नी
बटोही : शार्ङ्गधर, गौतम का शिष्य

[**स्थान**—गौतम ऋषि का आश्रम । चारों ओर झाड़-झंखाड़ । ऊबड खाबड़ प्रदेश दाहिने पार्श्व में दो टूटी-फूटी वेदियाँ । बाँये पार्श्व में एक बड़ी शिला, पर्याप्त ऊँची । उसीके पास कुछ दिखता-सा, पर्णकुटी का भाग ।

समय—राजा जनक के निमन्त्रण पर महर्षि विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण जनकपुरी की सीमा पर आ गये हैं। सायंकाल हो जाने के कारण वे इसी एकान्त प्रान्त म ठहर कर नदी किनारे सन्ध्योपासन करना चाहते हैं। चाँदनी फैल गई है। पत्तों का मर्मर सुनाई देता है। बहुत दूर बजती हुई शहनाई का मधुर स्वर आरहा है। शहनाई की स्वरलहरी कभी तेज और मन्द सुनाई देती है ।]

राम—(आप ही आप) बड़ी भयानक जगह है! बिखरे हुए पूजा के थाल की तरह इस प्रान्त की वनस्पति कलुषित और अस्तव्यस्त दिखाई देती है। (आगे बढ़कर नेपथ्य की ओर देखते हुए) और वह नदो !—वह भी तो, बुझी आरती की धूम-शिखा सी, न मालूम किस पाप का भार लिए चुपचाप बढ़ती जा रही है। (ऊपर फिर चारों ओर देखकर) इस शुभ्र चाँदनी में भी यह स्थान सुहावना नहीं दिखता। (वेदियों की ओर बढ़कर) किसी समय यह तपोवन अवश्य रहा होगा। कुटियों के अवशेष अभी भी दिखाई दे रहे हैं। यज्ञ की वेदियों को हिंस्र पशुओं ने रोंदा अवश्य है, फिर भी उनकी ईंटों से हवि की गन्ध आरही है। (शिला को देखकर) यह सामने चट्टान सी क्या दीख रही है! अरे हाँ—चट्टान ही तो है—विशाल चट्टान—ठीक है गुरुदेव विश्वामित्र की नैश-साधना के लिए यही स्थान बड़ा उपयुक्त होगा। चलूँ जरा पास से देखूँ। (बढ़ते हैं)

बटोही—(दूसरी ओर से प्रवेश कर) अरे ओ तापस तरुण! ठहरो! उस ओर न जाना (बढ़ता है)

१९५०

राम—(चौंक कर) कौन हो तुम ? मुझे क्यों रोक रहे हो ?

बटोही—(पास आकर) मैं मिथिलावासी हूँ भैया । तुम शायद यहाँ पहली ही बार आये हो । (राम की ओर देखकर प्रसन्न होता हुआ) अ-ह-ह-ह बड़े सुन्दर युवा हो भैया । (गद् गद्) बड़े भले लगते हो ।

राम—(कुछ लज्जित होकर) यों एकटक मत देखो बटोही—मैं तुम जैसा ही तो हूँ ! अच्छा बताओ, वहाँ ऐंसा क्या है जो तुमने मुझे जाने से रोका !

बटोही—तनिक इस सुकुमार तन की तरफ तो निहारो ! जामुन जब खूब पक जाता है न—गदरा . . . गदरा जाता है— बिलकुल ठीक वैसे ही हो । वहाँ भूल कर न जाना !—हाँ—वहाँ आग है आग ! —झुलस जाओगे ! फफोले पड़ जाएँगे इस जामुन पर ! — अँ हँ, मैं तुम्हें न जाने दूँगा वहाँ ।

राम—(साश्चर्य) वहाँ आग है ! (उस ओर देखते हैं)

बटोही—हाँ—वहाँ जमीन पर भी फफोले पड़ गये हैं, उनका पानी नदी में बह जाता है । देखा नहीं नदी का पानी कितना गरम है ? (हाथ पकड़ कर) अच्छा चलो, लौट चलो, तुम्हें पहुँचा दूँ,

राम—तुम्हारी बातें बड़ी विचित्र हैं ! मालूम पड़ता है तुम बहुत थक गये हो, और नींद में भी चलते चले जा रहे हो ।

बटोही—अभी तक तो नहीं सो रहा था — हाँ तुम्हें देखकर जरूर ऐसा लगता है कि कोई सपना देख रहा हूँ ! क्या ही अच्छा होता यदि तुम क्षत्रिय होते तापस !

राम — क्यों ?

बटोही — महाराज जनक ने राजकन्या सीता के लिए स्वयंवर रचा है । बड़ी सुन्दर है वह ! ठीक तुम्हारे ही योग्य !

—मगर तुम तो तापस हो ! क्यों हो न ?

राम—हूँ तो—मगर क्षत्रिय भी हूँ !

बटोही—(प्रसन्न होकर) देखो-देखो मैं सोच ही रहा था कि हो न हो, तुम क्षत्रिय ही होगे—तुम्हारा तेज ही ऐसा है ! फिर कुछ सोचता सा) अ-हाँ, अच्छा यह तो बताओ, तुम धनुष, — तुम धनुष तोड़ सकोगे ?

राम—(हँसकर) अँ ह-ह-धनुष को तो क्षत्रिय भौंह के इशारे से ही तोड़ मोड़ सकता है । यह तो उसके लिए एक सामान्य सी बात है ।

बटोही—(खीझ कर) मगर वह तुम्हारे आखेट का धनुष थोड़े ही है !—हुँ इतनी सी बात भी नहीं समझते—वह ह शिव का धनुष ! सुनते हैं उसे कोई नहीं तोड़ सकता ।

राम—तो क्या इस धनुष को तोड़ कर ही राजकुमारी मिल सकती है ?

बटोही—हाँ, जो उसे तोड़ देगा, राजकुमारी सीता उसी के गले में जयमाला डाल देगी । (शहनाई के स्वर की लहर आती है) सुन रहे हो शहनाई ! स्वयंवर के उपलक्ष में राजप्रासाद में उत्सव हो रहे हैं — मंगल वाद्य बज रहे हैं ! कल सुबह—(फिर कुछ सोचकर) मगर तापस, तुम्हारा नाम क्या है ?

राम—रामचन्द्र ।

बटोही—मगर रामचन्द्र मुझे न मालूम क्यों ऐसा लग रहा है कि राजकन्या सीता तुम्हारे ही योग्य है । तुम्हें ही मिलनी चाहिए ।

राम—मेरे योग्य ?—(हँसते हैं) अच्छा ! तो मुझे धनुष तोड़ना होगा ! मुझी को उसकी माँग में सिन्दूर भरने के लिए अपनी देह का सारा रक्त भुजाओं में दौड़ाना होगा ?

बटोही—हाँ. कितना शुभदिन होगा वह ! सुन रहे हो शहनाई ! फिर यह और भी मीठे स्वर से बजेगी । (फिर एकाएक कुछ याद आने स उत्तेजित सा) मगर नहीं — ठहरो ! — एक दिन ऐसी ही

शहनाई बजी थी ! हाँ बिलकुल ऐसी ही ! इतनी ही मीठी ! वड़ा डरावना था वह दिन ! उस दिन शहनाई की एक एक तान हवा पर नागिन जैसी लहरा रही थी ! ऐसी उठती थी-जैसे बाढ आने से पहले नदी में लहरें उठती हैं ।

राम—(साश्चर्य) अरे तुम बहकने क्यों लगे बटोही ? क्या याद आगया तुम को ?

बटोही—तुम उस चट्टान के पास जा रहे थे न ?

राम—हाँ—तो ?

बटोही—(करुण होकर) वहाँ मत जाना भाई !

राम—आखिर कुछ बताओगे भी !

बटोही—अभी नहीं, अभी नहीं, तुम जान कर करोगे भी क्या ?

राम—(उत्सुक होकर बटोही के कन्धे पकड़ते हुए) अब तुम्हें बताना ही पड़ेगा — मैंने गुरुदेव की तपस्या के लिये वही स्थान चुना है ।

बटोही—(सामने की ओर शून्य दृष्टि से देखता हुआ) उनकी तपस्या भङ्ग हो जायेगी (हाथ हटाकर जाने को उद्यत)

राम—मगर क्यों ?

बटोही—वह मेरी गुरुपत्नी की जीवित समाधि है रामचन्द्र ! (करुणार्द्र होकर शिला दिखाता हुआ) उसकी एक खोह में वह अभिशप्त, परित्यक्ता, बहुत दिनों से चिल्लाती, चीखती नारीत्व को कोसती हुई पड़ी रहती है । संसार की क्रूर भर्त्सनाओं से अपनी रक्षा करने के लिये वह अपने को पत्थर में छुपाये, गुरुदेव की प्रतीक्षा कर रही है ।

राम—तुम कोई शिष्य मालूम होते हो । कौन हैं तुम्हारे गुरुदेव ?

बटोही—महर्षि गौतम ।

राम—(चौंक कर) महर्षि गौतम ? उन्होंने अपनी पत्नी का परित्याग कर दिया है ?

बटोही—(एक लम्बी साँस लेकर) हाँ,–बड़ी करुण कथा है बेचारी की ।

(सहसा चट्टान के पीछे से किसी भयभीत नारी की चीख़ सुनाई देती है वह चीख़ती हुई भागकर रंगमञ्च के दाहिने कोने में खड़ी हो जाती है और दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक लेती है । वह अहिल्या है ।)

बटोही—(घबराकर) देखो वह है !—वह है !! मैं यहाँ नहीं ठहर सकता ! तुम भाग चलो मेरे साथ (हाथ पकड़ कर खींचता है) आओ—आओ !

राम—(अहिल्या की ओर देखते हुए) — ठहरो ! देखने दो ! मुझे कहाँ ले-जा रहे हो । (अन्त में बटोही उन्हे खींच ले जाता है)

[लक्ष्मण चट्टान के पीछे से भाग कर आते हैं । उन्हें देखकर अहिल्या फिर चीखती है]

अहिल्या—(अर्ध-विक्षिप्त-उन्मादिनी-सी) मेरा पीछा मत करो !—मैं तुम्हारी हत्या कर दूँगी ! (लक्ष्मण आगे बढ़ते हैं) मत आओ मेरे पास कपटी ! मेरी आग में तेरी बोटी बोटी राख बन जायगी दुराचारी ! मेरा सर्वनाश करके भी तुझे चैन नहीं ! दूर हो जा मेरे सामने से — वासना के कुत्सित पुतले !

लक्ष्मण—तुम किसपर क्रुद्ध हो रही हो देवि ? मैं लक्ष्मण हूँ, लक्ष्मण—अयोध्या के....

अहिल्या—नहीं, तुम झूठ बोलते हो ! — आज तुम दूसरा रूप बनाकर आये हो — हाँ दूसरा रूप बनाकर आये हो ! यह उससे भी भयानक है ! भीषण इन्द्रजाल है यह—चले जाओ, मैं कहती हूँ चले जाओ यहाँ से !—(गला भर्रा जाता है—रोने लगती है)

लक्ष्मण—क्षमा हो देवि, तुम्हें भ्रम हो गया है....

अहिल्या—(रोते रोते भर्राए गले से) भ्रम ! नहीं अब मुझे भ्रम नहीं हो सकता ! कभी नहीं हो

१९५०

सकता ! तुम इन्द्र हो ! स्वर्ग के व्यभिचारी सम्राट् इन्द्र हो ! अब मुझे धोखा नहीं हो सकता ! मुझे यादहै। एक दिन तुम इसी तरह पूर्णिमा के चन्द्र बनकर आये थे — मेरे जीवन-सागर में भयंकर ज्वार उमड़ आया था—फिर मेरी नाव डूब गई। मुझे बहुत अच्छी तरह याद है। अब तुम्हारा यौवन मुझे पिघला नहीं सकता ! मुझमें लहरें नहीं उठ सकतीं ! मैं ज्वाला-भरी भस्म की ढेरी हूँ ! हा–हा–हा—तुम्हें जला दूँगी हा—हा—हा (पागलों की तरह हँसती है) अपनी राख से अब मदिरा का पात्र नहीं बनाने दूंगी तुम्हें ! हा–हा–हा . . . .

लक्ष्मण—मेरा विश्वास तो करो देवि, मैं इन्द्र नहीं हूँ, लक्ष्मण हूँ ! हम अयोध्या के निवासी क्षत्रिय हैं देवि ! दुखियों की सहायता करना हमारा धर्म है।

अहिल्या—ह हा हा हा — मुझे किसीपर विश्वास नहीं। मैं पुरुष-मात्र पर विश्वास नहीं करती। हा–हा–हा—तुम मेरी सहायता करोगे ? (लक्ष्मण के मुँह की ओर झुककर देखती है) देखूँ तो ! (फिर जोर की हँसी) हा हा ई ई . . . . हीं . . . नहीं, तुम्हारी इन बड़ी बड़ी आँखों में दया की आर्द्रता नहीं—विनोद भरा कौतूहल है ! तुम नारी की वेदना में भीगना नहीं चाहते, उसकी दुर्भाग्य-गाथा सुनकर अपना मनोरंजन करना चाहते हो ! हा–हा–हा—(फिर एकाएक सक्रोध) निकल जाओ यहाँ से—चले जाओ !

लक्ष्मण—(विवश; कंधे हिलाकर) अच्छा जाता हूँ। गुरुदेव की सान्ध्य उपासना के लिए जल लाने गया था कि लौटते समय तुम दिखाई दे गईं—

अहिल्या—(पागलों की तरह हँसते हुए) दिखाई दे गई—ह हा ह हा—नहीं तरुण, यह कहो तुम मुझसे टकरा गये—हा-हा—मैं पत्थर हूँ। मुझे शाप दिया था मेरे ऋषिराज ने—आर्यपुत्र ने ! तभी से मैं एकान्त निर्जन में पड़ी रहती हूँ—एक निर्जीव शिलाखण्ड की तरह !–हा-हा—

लक्ष्मण—कौन हैं तुम्हारे ऋषिराज ?

अहिल्या—तुमने नहीं सुना उनका नाम ?—बड़ा आश्चर्य है—ह-ह-ह ! इतने बड़े तपस्वी का नाम तुमने नहीं सुना—अभी बच्चे ही तो हो। (फिर एकाएक तनकर सिर हिलाती हुई) मैं उनका नाम नहीं ले सकती !—मैं लम्पट इन्द्र के जूठे अधरों से उनका नाम नहीं ले सकती ! वे बहुत बड़े—अत्यन्त गम्भीर महर्षि हैं—बड़ी बड़ी साधनाएँ करते हैं ह-ह-ह—जानते हो वे किसकी उपासना करते हैं ?

(लक्ष्मण चुपचाप अहिल्या के मुख की ओर देखते हैं)

अहिल्या—अरे चुप क्यों हो ? —नहीं जानते ? — मैं बताती हूँ हां — दूर बहुत दूर घने तुषार में छुपा हुआ उसपार एक कमल है—उसे पाने के लिए तपस्वी को — नारी की नदी पार करनी पड़ती है—ह-ह-ह—इस नदी में मोह की भयंकर लहरें उठती हैं !—उसे लपेटकर डुबा देना चाहती हैं !—समझे ?

लक्ष्मण—समझ गया देवि ! तुम्हारे स्वर में भयंकर विद्रोह की आग है !

अहिल्या—मैं भी एक ऐसी ही नदी थी—रस से भरी ! मैंने कहा—तुम गहरे डूबो मेरे देवता, कमल उस पार नहीं—यहीं बीच तल में है ! उन्होंने नहीं माना—वे चाहते थे कि मैं चट्टानों से भरा शुष्क पथ बन जाऊँ — ह-ह-ह मैं नहीं बनी — ह ह नहीं बनी और एक रस का लोभी सारा पानी मचा गया—गंदा कर गया पानी को—ह-ह-ह मेरी निर्मलता कीचड़ से भर गई—ह-ह—तुम मुझसे बात मत करो ! मैं अपवित्र हूँ ! एक महर्षि की व्यभिचारिणी पत्नी हूँ ! जाओ-चले-जाओ।

(नेपथ्य से राम की पुकार—लक्ष्मण ! लक्ष्मण !!)

लक्ष्मण—हाँ आर्य !

राम—(प्रवेश कर) वहाँ क्या कर रहे हो तुम ! गुरुदेव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ! उपासना के लिए कमण्डलु भर लाये ?

लक्ष्मण—हाँ भर लाया हूँ—देखो तो आर्य, यह दुखी नारी इस बीहड़ में अकेली घूम रही है !

राम—जानता हूँ ! चलो मेरे साथ (दोनों बढ़ते हैं)

अहिल्या—(राम से) अरे—ठहरो ! तुम कौन हो ?

राम—लक्ष्मण, तुम चलो (लक्ष्मण का प्रस्थान) मेरा नाम रामचन्द्र है देवि ! मैं अयोध्या के महाराज दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र हूँ !

अहिल्या—(पास आकर ध्यान से देखती हुई) तुम औरों जैसे नहीं दिखते—हाँ—तुम न मालूम क्यों मुझे अच्छे लगते हो ! तुम्हारी बड़ी बड़ी आंखों में कितना स्नेह भरा है ! तुम कितने सुन्दर हो ! ह-ह-ह—

राम—(लजाकर) बड़ा वात्सल्य है तुम्हारे हृदय में देवि !

अहिल्या—(कातर होकर) तुम यहाँ से मत जाओ ! तुम्हें देखते ही जैसे मैं पत्थर से फिर मानवी हो रही हूँ। मेरा रोम रोम पुलकित हो उठा है। सूखी डाल में नई कोपलें आ रहीं हैं!—अरे सुनो शहनाई—हाँ शहनाई—वज रही है ! (प्रसन्नता से मुँह खिल जाता है)

राम—महाराजाधिराज जनक की पुत्री का स्वयंवर होनेवाला है !

अहिल्या—(साश्चर्य) अच्छा !—मेरे भीतर भी जैसे कोई शहनाई वजा रहा है ! बड़ा मधुर है उसका स्वर ! सुनो—इस शहनाई पर इन्द्र की अप्सराओं के पैर नहीं थिरकते। हाँ यह स्वर्ग के राज-प्रासाद की शहनाई नहीं है ! इसे सुनकर देवताओं की धमनियों में मदिरा नहीं वहती !

राम—नहीं देवि ! इसके स्वर से ब्रह्माण्ड के सारे नक्षत्र झंकृत हो उठे हैं ! चराचर एक नई कम्पन से भर गया है। यह नारीत्व की विजय का स्वर है देवि !

अहिल्या—(ठहाका मारकर हँसती हुई) हा-हा — भावुक तरुण, तुम भूल कर रहे हो ! — विवाह नारी की विजय नहीं पराजय है ! वहुत बड़ी—हा-हा-हा—अरे यह किसके पैरों की आहट है (ध्यान से सुनती हुई) कोई इधर ही आ रहा है (घवराकर) कहीं इन्द्र तो नहीं आ रहा है! (भागने को उद्यत) मुझे भाग जाना चाहिए ! हाँ मुझे छुप जाना चाहिये। (बढ़ती है)

(विश्वामित्र और लक्ष्मण का प्रवेश)

विश्वामित्र—ठहरो ऋषिपत्नी !

अहिल्या—(चौंक कर) कौन ! राजर्षि विश्वामित्र !

विश्वामित्र—महर्षि गौतम की पत्नी की यह दशा देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है।

लक्ष्मण—गुरुदेव ! आप इनसे परिचित हैं ?

विश्वामित्र—हाँ वत्स, ये महर्षि गौतम की पत्नी अहिल्या हैं।

राम—इनकी यह अवस्था ?

विश्वामित्र—(एक लम्बी साँस भरकर) बड़ी लम्बी गाथा है वत्स !

राम—किन्तु हमें इनकी सहायता के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिए।

विश्वामित्र—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ ! अच्छा तो इन्हें हम अपने साथ ही जनकपुरी ले चलेंगे।

अहिल्या—नहीं,—नगरवासी आप पर पत्थर फेंकेंगे ! आपको मारने दौड़ेंगे।

लक्ष्मण—क्यों ?

अहिल्या—मैं कुलटा जो हूँ।

राम—नहीं, तम पवित्र नारी हो ! मानवी हो !

अहिल्या—मैं पत्थर हूँ ह-ह-ह- पत्थर ! तुम समझते क्यों नहीं ? मैं नारी की भावुक लालसाओं से मुक्त हो चुकी हूँ ! आर्यपुत्र यही चाहते थे ! संसार यही चाहता है।.... मैं नहीं चलूँगी तुम्हारे साथ ! लोग मुझे मार डालेंगे !

लक्ष्मण—हमारे रहते हुए जनकपुरी का कोई व्यक्ति तुम पर हाथ नहीं उठा सकता ।

राम—आप निरापद रहेंगी हमारे साथ ऋषि-पत्नी ! गुरुदेव, हम इन्हें अपने साथ ले चलेंगे !

अहिल्या—नहीं—मैं भाग जाऊंगी—हाँ, मुझे भाग ही जाना चाहिए ! मैं मरना नहीं चाहती ! (रोने लगती है) मैं आर्यपुत्र की प्रतीक्षा कर रही हूँ। एक-न-एक दिन वे अवश्य मुझे ग्रहण करेंगे। . . .

विश्वामित्र—शान्त हो देवि — वे स्वयं महान् पश्चात्ताप से पीड़ित होंगे। उन्हें शान्ति कभी नहीं मिल सकती । हम तुम्हें उन्हीं के पास ले चलेंगे ।

अहिल्या—मैं क्षमा याचना करती हूँ राजर्षि। अभी नहीं, अभी वह समय नहीं आया। मुझे यहां नहीं ठहरना चाहिये ! (चट्टान की ओर भागती है ।)

विश्वामित्र—(पीछा करते हुए) ऋषि-पत्नी ! ऋषि-पत्नी अहिल्या ! सुनो ! भागो मत !

(अहिल्या "नहीं ! नही !" कहती हुई भागती है, और गौतम ऋषि से टकराकर चीखती है)

गौतम—कौन अभागिन है यह ?

विश्वामित्र—(चौंक कर) कौन महर्षि गौतम ! प्रणाम स्वीकार हो ।

गौतम—राजर्षि विश्वामित्र ? गौतम सादर अभिवाद करता है !

अहिल्या—(उठकर घुटनों के वल) आर्यपुत्र ! मेरे परमप्रिय महर्षि ! आप ?—कितने सौभाग्य का दिन है आज ! शहनाइयो, जोर से बजो ! ओ ऊजड़ तपोवन के पक्षियो ! जाग उठो, चह-चहाओ,—मधुर स्वरों में स्वस्ति वाचन करो ! कल-रव आज नया प्रभात हुआ है । नया सूर्य उगा है !—परों का गूंज भर दो ! नहीं, आपका शरीर मेरे स्पर्श से अपवित्र हो गया है।—मैं–मैं तुम्हारी चरणरज लेकर भाग जाती हूँ । दूर—बहुत दूर ! (भागने को उद्यत)

राम—(सामने आकर रोक लेते हैं) कहाँ जा रही हो देवि ? अव तुम न जा सकोगी !—इधर आओ । (गौतम से) महर्षि, अयोध्या के महाराज दशरथ का पुत्र आपको प्रणाम करता है ।

लक्ष्मण—मैं इन्ही का अनुज लक्ष्मण आपको नमन करता हूँ देव !

गौतम—स्वस्ति वत्स ! स्वस्ति ! परन्तु इस विश्वासघातिनी नारी को तुम रोक क्यों रहे हो !

विश्वामित्र—महर्षि, तुम्हारी तपस्या अधूरी है ! क्रोध को तुमने नहीं जीता । ईर्ष्या अभी भी तुम्हारी साधना को झकझोर रही है। तुमने विश्वास ही पैदा नहीं किया तव उसका घात कैसे हो सकता है ?

गौतम—(तमतमाकर) नारी का धर्म है पति की आज्ञा का पालन करना, उसके जीवन की साधनाओं में सहायक बनना, बाधक नहीं ! मेरा विश्वास था कि यह कुलटा मेरी तपस्याओं में योग देगी–पर–पर . . . इसने मेरे मुँह पर कालिमा पोत दी ! मुझे कहीं का न रखा !

राम—महर्षि, आप महान तपस्वी हैं, पर क्षमा हो, अभी तक आप इस वात को नहीं समझ सके कि ईश्वर ने सृष्टि वनाई तो उसे आशा थी कि मानव उसके नियमों का पालन करेगा । गृहस्थाश्रम स्वयं एक वड़ी तपस्या है । ईश्वर उसमें दाम्पत्य-प्रेम के रूप में रहता है और इसी प्रेम के द्वारा —'एकोऽहम् वहुस्याम्' की साधना करता है। नारी इस यज्ञ में एक कुण्ड के समान होती है । उससे आदमी जलता नहीं—पवित्र होता है ।

विश्वामित्र—(प्रसन्न होकर) धन्य है वत्स राम, तुम सचमुच ही पुरुषोत्तम हो !—मुझे आज तुम पर गर्व हो रहा है !

राम—आपका शिष्य, आपका सेवक गुरुदेव ! वहुत देर से दूर की शहनाई सुन रहा है—जनकपुरी की राजकुमारी के स्वयंवर का मंगलवाद्य सारी दिशाओं में प्रतिध्वनित हो रहा है। मेरी सारी आत्मा उस स्वर में भीगती जा रही है । जैसे एक नई जीवन-शक्ति जागृत हो रही है । एक नई प्रेरणा से मेरे वाहु, संसार में कुछ कर गुजरने को फड़क रहे हैं ! क्या यह नारी, यह प्रेरणा, अपने आप में कुछ नहीं — क्या उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं ? क्या वह

मात्र निर्जीव पशु है जिसे पुरुष किसी रहस्य की साधना में दौड़ता हुआ पीछे घसीटता चला जाये ? छिः यह उसका अपमान है !

गौतम—(मुस्कुराकर) तरुण राजपुत्र, यौवन के आरम्भ काल में स्त्री के प्रति यही भावना होना स्वाभाविक है। परन्तु . . . (गंभीर स्वर से) . . . . गहरे उतरने पर तुम्हें मालूम होगा कि पुरुष की कर्मठ साधनाओं में उसका मोह, उसकी लालसाएँ बड़ा व्यवधान उत्पन्न करती हैं। उन पर विजय पाकर, उस तीव्र उच्छृंखल वासना को कुचलकर अपने पथ पर बढ़ते जाना ही मनुष्य का धर्म होता है।

अहिल्या—शुष्क ज्ञान की वेदी पर जीवन की सरस आवश्यकताओं का होम करना क्या ईश्वर को धोखा देना नहीं है राम ! तुम्हीं बताओ ! क्या यह धोखा नहीं है ? मैं प्रेम की भूखी थी—प्यार चाहती थी प्यार ! वनस्पति वसन्त में लहलहा उठती है ! रंग बिरंगे फूल खिलते हैं। नदी में नई नई लहरें आती हैं ! तरुणों के मन में उमंगें उठती हैं। मैं भी तुम्हारे बहुपाश में बँधकर प्रेम-चर्चा करना चाहती थी ! परन्तु तुम—तुम भागते थे ! शून्य की साधना के लिये ! जैसे प्रेमकी भूख कोई पाप हो ! जैसे तुम्हारा तपस्या के पंखों पर बोझिल लौह खण्ड की तरह लटक जानेवाली मैं कोई भयंकर वस्तु थी !

राम—महर्षि, नारी ईश्वर की शत्रु नहीं है। वह संसार में ही ईश्वर खोजने की प्रेरणा करती है।—सुन्दर व्यवहारों द्वारा ! शुष्क चिन्तन ही जीवन का ध्येय होता तो इस सृष्टि की आवश्यकता ही क्या थी ? स्त्री स्वयं ही साध्य है, पुरुष की मदान्धता के लिए एक स्निग्ध ज्योति है। सरस चेतना है महर्षि ! वह जीवन को कला का रूप देती है और प्रेम वात्सल्य के रंग-बिरंगे जाल बुनकर तुम्हें नीलाकाश की अनन्त सूखी गहराई में डूबने से बचा लेती है !

विश्वामित्र—राम ! मैं मुग्ध हूँ तुम पर ! (महर्षि गौतम से) इस दिव्य ज्योति के प्रकाश में विश्व पर फिर से दृष्टिपात करो महर्षि ! लोक-कल्याण की कामना से ईश्वर को व्यवहार का ही रूप देने के लिए राम का जन्म हुआ है ! तुम्हें इस तरुण पुरुषोत्तम से बहुत कुछ सीखना है। एक नई साधना करना है, संसार में प्रवृत्त होकर।

गौतम—(चकित से) — कितना सौंदर्य हैं !—कितनी शक्ति है ! कितना तेज है ! — कौन हो तुम तरुण राजकुमार ?—(बढ़कर राम को झकझोरते हुए) बोलो — कहीं तुम वहीं तो नहीं जिसे मैं इतने दिनों से खोज रहा हूँ ? — बोलो ! तुम मेरी संज्ञा में नव जीवन की तरह क्यों फैल रहे हो ?

लक्ष्मण—मोह त्यागो महर्षि ! — अपने को और आर्य राम को पहचानने का प्रयत्न करो !

गौतम—(विचलित होकर) कर रहा हूँ, परन्तु—परन्तु . . इन्द्र द्वारा कलुषित इस नारी पर...मैं... मैं कैसे....

लक्ष्मण—आर्य भ्राता के बताए हुए मार्ग से इन्हें स्वीकार करो !—इनके चरणों का स्पर्श ही सब कलुषों को दूर कर देता है !

राम—क्षमा में बहुत बड़ी शक्ति होती है देवर्षि। वह पारस है !—नारी के कलुष का कारण आप हैं। नारी प्रेम माँगे और आपसे मिले उसे भर्त्सना, उपेक्षा, छिः ज्ञानी पुरुष, काश ! तुम ईश्वर को समझने की चेष्टा करने से पहले अपने को समझने का यत्न करते !

अहिल्या—(गद् गद् होकर) राम ! राम ! तुम ईश्वर, — तुम्हीं संसार के कल्याणकारी देवता हो ! मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ भगवन् !

राम—उठो, ऋषिपत्नी ! तुम पवित्र हो, पवित्र करनेवाली हो।

विश्वामित्र—जाओ देवि, पति के चरणों का स्पर्श करो। वे तुम्हें अंगीकार करेंगे ! निर्बलता का नाम ही मानवता है अहिल्ये ! किन्तु एक भूल के पीछे समस्त जीवन की शान्ति को नष्ट

१९५०

करना आत्मप्रवंचना है। (महर्षि से) पश्चात्ताप सवसे बड़ी गंगा है महर्षि!— वह आत्मा की सारी कालिमा धो देती है। ग्रहण करो इस नारी को। — तुम चाहते थे यह नारी शरीर-धर्मों से मुक्त हो। संसार के प्रभावों के प्रति जड़ रहे! यह तुम्हारी भूल थी। — फिर भी यह पतिव्रता इतने समय तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई पत्थर की तरह जड़ रही! — मुझे श्रद्धा हो रही है इस देवी पर! यह-महान है, — महान हैं गौतम! मैं स्वयं चकित हूँ इसके तप पर! — वासना भयंकर आघात करती है ऋषि-राज, मुझे भी कभी कभी अपने पर अविश्वास होने लगता है।

गौतम—(वाहु फैला कर) आओ आर्ये! आओ परम-प्रिये अहिल्या! मैं तुमसे क्षमा-याचना करता हूँ मुझसे, मुझसे वहुत—बड़ा —अपराध हुआ है। (अहिल्या चरणों में गिरती है गौतम झुककर) उठो प्रिये, तुम्हारा स्थान इससे कहीं बहुत ऊँचा है।

अहिल्या—(बैठे बैठे ऊपर देखती हुई) आर्यपुत्र! आर्यपुत्र! क्या तुमने सचमुच ही मुझे क्षमा कर दिया है!—क्या सचमुच ही (रोने लगती है फिर उठकर पार्श्व की ओर देखती हुई) इस समय मुझे रोना क्यों चाहिए? .... (हँसती है) ह-ह-ह-हाँ हंसो अहिल्या! आज की शिहनाइयाँ तुम्हारे ही विवाह की शहनाइयाँ हैं! आज .... मैं फिर से पत्नी वन गई हूँ! राम (मुड़कर) राम! देखो! (अपनी बाहों पर, मुँह पर हाथ फेरती हुई — हँसकर) तुम्हारे चरणों के स्पर्श से ही मेरी इस पाषाण-काया में फिर से जीवन आगया है पत्थर में हजारों झरने फूट पड़े हैं! वायु उसे रोमाञ्चित करने लगी है! देखो (चारों ओर देखती हुई) सारी वनस्पति का रंग उसके मन में लहलहा रहा है! आकाश के तारे हँस रहे हैं! — हा-हा-हा-हा, देखो उधर देखो (वेदियों की ओर सङ्केत करती हुई) निर्जन तपोवन की वेदियों से धूम शिखा लहराती हुई, न मालूम कैसे उठने लगी है! मन्त्रोच्चार से सारा आकाश निनादित है! हा-हा-हा-आर्यपुत्र ने आज सचमुच ही मुझे ग्रहण कर लिया है।

लक्ष्मण—बड़ा शुभ दिन है आज गुरुदेव! पवित्र मिलन-पर्व है।

गौतम—यह पतित-पावन रामचन्द्र की कृपा का फल है वत्स! उनका प्रभाव ही ऐसा है। आज मेरी साधना सचमुच ही पूर्ण हुई! परम पुरुष! मेरा प्रणाम ग्रहण करो!

राम—क्षमा पुरुष का भूषण है, महर्षि—तुमने मदोन्मत्त देवताओं के सन्मुख एक आदर्श रखा है—एक सच्चे मानव बनकर, इन्द्र को सदा के लिए भूल जाइए! वे स्वयं लज्जा और आत्मग्लानि का अनुभव कर रहे हैं! उनकी हजारों आँखें पृथ्वीपर अपना आदर्श देख रहीं हैं!

बटोही—(प्रवेश कर) ठीक कहते हो राजकुमार रामचंद्र! आज तुम्हें देखकर यही लग रहा है कि मानव स्वर्ग के देवताओं से कहीं ऊंचा है! —

राम—कौन! बटोही?

बटोही—हाँ आर्य राम!

गौतम—(आश्चर्यचकित) कौन शार्ङ्गधर? मेरे प्रिय शिष्य?

बटोही—(गौतम के चरणों की ओर (झुक कर) गुरुदेव! मेरा नमन स्वीकार हो (चरणस्पर्श कर खड़ा हो जाता है) आज से मैं मुक्त हुआ! गुरुपत्नी की रक्षा का भार लिया था मैंने — मुझे विश्वास था कि यह दिन अवश्य आएगा। बड़ी प्रसन्नता हो रही है मुझे! — बड़ी प्र.... बोलो भैया लक्ष्मण! बोलो मां अहिल्या — पुरुषोत्तम राजकुमार रामचन्द्र की जय! (सब जयजयकार करते हैं। पटक्षेप।)

अवतरण !

[वसंत अ. शहाणे]

नवीन वर्ष के उपलक्ष्य में एक मित्र ने 'अवतरणों' का एक संग्रह भेंट-स्वरूप भेजने की कृपा की है। उनकी इस अनौखी सूझ ने मुझे मुग्ध कर लिया है। उस संगृहीत अवतरणों एवं साहित्य के अवतरणों के बीच दोनों ध्रुवों जितना अंतर न होने पर भी औचित्य एवं अभिरुचि के दोनों सिरे जितना अंतर तो अवश्य ही है। संग्रह के अवतरण यदि वसंत ऋतु में मंडप पर फूली हुई जाही-जूही के फूल के समान हैं तो साहित्य के अवतरणों को हम बे-परवाही से सजाये हुए उन फूलों का 'पुष्पपात्र' (गुलदस्ता) कह सकते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ कला-हीन कृत्रिमता का स्पर्श होते ही यदि वह लुप्त हो जाय तो क्या आश्चर्य! अतः संगृहीत अवतरणों को यदि हम बंबई के किसी जौहरी की दूकान कहें; तो साहित्य के अवतरणों को विविध अलंकारों से सुसज्जित किसी रमणी की उपमा दे सकते हैं।

किंतु अवतरणों को साहित्य वाङ्मय का अलंकार मानना क्या एक अर्ध सत्य वस्तु नहीं है? यदि केल्कर की भाषा में कहा जाय तो "अवतरणों से यदि साहित्य सुशोभित होता है, तो उससे साहित्य की शोभा नष्ट भी हो सकती है।" डिक्विन्स ने साहित्य के दो विभाग किये हैं—(१) शक्तिशाली वाङ्मय और (२) ज्ञानमय साहित्य। इनमें से ज्ञानमय साहित्य में कभी कभी अवतरणों को बड़ा महत्व प्राप्त हो जाता है। अर्थात् गुलाब के पुष्प-स्तबक में विकसित-पुष्पों की तरह यदि साहित्य में कहीं अवतरण बिखरे हुए दिखाई देते हैं; तो कहीं अवतरणों के हरितवर्ण पत्रों की झुरमुट में से इधर-उधर लेखक का एक-आध वाक्य सिर उठाता दिखलाई देता है।

पुरातन-पण्डितों की तो दुनिया ही दूसरी है। उनकी वह बड़ी बड़ी गलमुच्छें, घेरदार अँगरखे, बेडौल साफे, रातभर खेले जाने वाले नाटक-तमाशे, ट्रान्स-सायबेरियन् रेल्वे की तरह दौड़ लगाने वाले उपन्यास, और अवतरणों की चौखट में सजाये हुए निबंध-प्रबंध! वे 'लघु' जैसे छोटेसे शब्द की ओर हमेशा से ही उपेक्षा-दृष्टि रखते आये हैं। इसी से उनकी दृष्टि में 'अवतरण' मानो ज्ञान के प्रतीक ही थे। गंभीर विद्वत्ता और सुदृढ़ स्वाध्याय के ये अवतरण प्रमाण-रूप ही होते थे। जिस प्रकार हम पत्र लिखते समय कभी कभी "श्री" लिख देते हैं उसी प्रकार प्राचीन साहित्य में किसी निबंध का आरंभ करते समय शीर्षक के साथ ही किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का अवतरण देनेकी प्रथा प्रचलित कर इस प्रकार मानो वह उस व्यक्ति-द्वारा उस लेखक को दिया गया आशीर्वाद ही होता था।

अवतरणों के विषय में ये लोग इतनी विचित्र आत्मीयता अनुभव करते थे, जैसे कि

पूर्व काल में हमारे यहां लड़की को ससुराल भेजते समय उसकी सेवा संभार के लिये दासी को साथ में भेजने की प्रथा थी; उसी प्रकार निबंध के प्रत्येक वाक्य के साथ उसका पृष्ठ पोषक अवतरण रखने की भी प्रथा थी। कभी कभी तो मूल वाक्य की अपेक्षा अवतरणों की ही संख्या अधिक हो जाती थी। मॉटेन नामक फ्रेंच प्रसिद्ध निबंध-लेखक के साहित्य में कमसे कम एक पंचमांश अवतरण अवश्य रहने की बात जेम्स अगेट नाम के आलोचक ने लिखी है। आज कल भी स्कूल-कालेजों में लिखे-जाने वाले निबंधों में यह 'मॉटेन' पद्धति ही विशेष रूप से प्रचलित है। बेचारे विद्यार्थी भी क्या करें? प्रोफेसरों को ही अवतरण — विशेषत: अंगरेजी अवतरण—— अधिक पसंद होते हैं। क्योंकि यदि अवतरण न दिये जायँ तो लेखक का ज्ञान उथला और मर्यादित मान लिया जाता है। इसी कारण विद्यार्थियों में अधिक पंक्तियों के निबंध लिखने और उनमें बड़े बडे अवतरण ठूंसने की स्पर्धा-सी लग जाती है। यहांतक कि कई परीक्षार्थी तो ऐन वक्तपर कुछ न सूझने की दशा में अपने ही वाक्यों को अवतरण चिन्हों के बीच उद्धृत कर देते हैं। क्योंकि उसके साथ किसी भी रशियन अथवा जर्मन लेखक का नाम जोड़ देने से उनका काम चल जाता है। यहांतक कि वह नाम उस विद्यार्थी के सिवाय अन्य किसी को ज्ञात भी नहीं होता। तब बेचारे प्रोफेसर को तो हो ही कैसे सकता है? इसीलिए प्रोफेसर अपने अज्ञान का अनुभव कर लज्जा से सिर नीचा किये उस उत्तर-पुस्तिका को जाँचता है। इस प्रकार अवतरण-रूप सिन्दूर लगाकर पत्थर को भी देवता बना देने का प्रयत्न उन साहसी परीक्षार्थियों द्वारा बेधड़क किया जाता है।

अवतरणों के साधारणत: तीन भेद किये जाते हैं—गलत अवतरण, यथार्थ अवतरण और कल्पित अवतरण। इनमें से यथार्थ अवतरणों के संग्रह तो समय-समय पर निकलते रहते हैं; किन्तु गलत अवतरणों की संख्या बहुत बड़ी रहनेपर भी अबतक कोई अवतरण-संग्रह नहीं निकल पाया है, यही खेद का विषय है। इसी प्रकार कल्पित अवतरणों के बिखरे हुए मोतियों को भी आज तक किसीने चुनकर संग्रह नहीं किया।

इंग्लैण्ड के साहित्य-विषयक पत्रों के रविवार के संस्करणों में कुछ समय तक शेक्सपियर के एक परिच्छेद के विषय में जोरों की चर्चा चली थी और वादविवाद का खासा रंग भी जमा था। अन्ततः उस चर्चा की ओर शेक्सपियर के अभ्यासियों का ध्यान आकर्षित हुआ; और बहुत कुछ विचार विमर्श के पश्चात् यह निर्णय दिया गया कि वह परिच्छेद शेक्सपियर के साहित्य में कहीं भी समाविष्ट नहीं हो सकता।

कुछ अवतरण आधे सत्य और आधे असत्य भी हो सकते हैं, और कई अवतरणों में दो दो तीन तीन व्यक्तियों के वाक्य मिला कर भी लिख दिये जाते हैं।

सामयिक-पत्रों में लेखों के साथ अंग्रेजी के अवतरण देने की प्रथा अनेक लेखकों ने चला रखी है। जिस प्रकार किसी एंजिन-ड्रायवर को केवल मालगाड़ी चलाने से ही संतोष नहीं होता और बीच बीच में सवारी

गाड़ी चलाने की भी इच्छा हो जाती है उसी प्रकार सच्चे और हार्दिक साहित्य-सेवी को केवल अपनी भाषा के ही आँगन में कबड्डी खेलने से संताष नहीं होता, अतः वह अंग्रेजी के अंगूर तोड़ने की भी इच्छा करता है । किन्तु कई बार उसे विचित्र परिस्थिति का सामना करना पड़ता है । हमारे कवियों को 'शेली' का यह वाक्य बहुत ही प्रिय जान पड़ता है :—"The sweetest songs are those which tell us of the saddest thought" (दुःख को मुखर करनेवाले गीत ही मधुर होते हैं ।) किन्तु एक ने इसके बदले यह लिख दिया कि "The saddest songs are those which tell of sweetest thought."

इसी प्रकार बी. ए. का आशय है 'बेच्लर ऑफ आर्ट' अर्थात् 'कला-कुमार'। और तब विवाह का आशय क्या हो सकता है ? अंग्रेजी में विवाह की एक व्याख्या में बतलाया गया है कि किसी कुमार के लिए एम. ए. की उपाधि प्राप्त होने के पूर्व ही बी. ए. की उपाधि त्यागने का अवसर उपस्थित कर देनेवाली सामाजिक संस्था का नाम विवाह है । अर्थात् विवाह करके अत्यंत परिश्रम से प्राप्त की हुई बा. ए. की उपाधि को त्याग दिया जाय । किंतु एक विद्यार्थी की यह व्याख्या नाम को भी न रुच सकी और इसीलिए उसने एक नयी व्याख्या की : "बी. ए. की डिग्री की पूंजी तक पास में न रखते हुए, एम. ए. की डिग्री का लाभ प्रदान करनेवाला विवाह एक प्रकार का सट्टा है ।" उसकी यह व्याख्या यथार्थ और युक्तियुक्त भी थी । क्योंकि उसने अपनी व्याख्या के समर्थन में यह टिप्पणी लिखी थी कि "जब मेरा विवाह निश्चित हुआ, उस समय मैं बी. ए. नहीं था । किन्तु विवाह के पश्चात् मुझे विदित हुआ कि मैं एम्. ए. हो गया हूं ! क्यों कि मेरी पत्नी को अनेक कलाओं का ज्ञान था, यथा— सिलाई, बुनाई, भोजन बनाने की कला आदि । इस प्रकार वह मानों कला का मूर्तिमान प्रतीक ही थी। और ऐसी कला मर्मज्ञ पत्नी का मैं 'मास्टर' बन गया था । अतएव मैंने उस दिन से बी. ए. का नाम छोड़ा ।

चेस्टरफील्ड ने स्त्री की व्याख्या करते हुए लिखा ह—"Women are only children of a larger growth" (स्त्रियाँ मानों अधिक वृद्धि पाये हुए छोटे बच्चे ही हैं। किंतु एक सज्जन को यह व्याख्या पसंद नहीं आई; अतः उसने इसे यों ठीक किया कि "Children are only a larger growth of women" (बच्चों के रूप में जिनकी वृद्धि होती है वही स्त्रियाँ है ।)

अवतरण विद्वत्ता के सूचक चिन्ह भी माने जाते हैं; किंतु जिनके भाषण, विचार और कल्पना बुद्धि के राज्य में प्रचलित हो चुके हैं; वे सभी विद्वान ही रहे हों सो बात नहीं है । शेक्सपियर विशेष विद्वान नहीं था, और न पोप को ही विद्वान कहा जा सकता है और अमेरिका का अब्राहम लिंकन तो स्कूल के द्वार तक भी न पहुँच सका था । किंतु इतने पर भी लिंकन के वाक्य अमेरिकन लोगों की जिव्हा पर आज भी नृत्य कर रहे हैं ! अंग्रेज लोग आज भी शेक्सपियर के शब्दों पर गर्व का अनुभव करते हैं । इसका कारण केवल यही

है कि उसके शब्द अतिशय मार्मिक, अत्यंत अचूक हैं। अन्य किसी शब्दों से उसका आशय व्यक्त नहीं किया जा सकता। अर्थात् वे शब्द अत्यंत अन्वर्थक हैं!

अवतरणों को दूसरों के ज्ञान से उधार ली हुई सामग्री भी कहा जाता है; किंतु इमर्सन ने बुद्धिमान मनुष्य की व्याख्या करके इस आरोप का खंडन कर दिया है। उसके मतानुसार बुद्धिमान मनुष्य सबसे बड़ा ऋण-दाता होता है। ऐसी दशा में उसके अवतरणों का मूल्यांकन करने से क्या लाभ हो सकता है?

इसके विरुद्ध यह भी कहा जा सकता है कि अन्वर्थक अवतरणों द्वारा महापुरुषों के ज्ञान-भण्डार को खोल कर दिखलाया जाता है। सुकरात जैसे महान विद्वान के ज्ञान की भी एक मर्यादा थी। और इसी लिए नम्रता पूर्वक ही क्यों न हो, किंतु उसने अपने ज्ञान की वालू के एक कण से तुलना की थी। मनुष्य का जीवन इतना अल्प है कि उसके लिए पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकना संभव ही नहीं। ऐसी दशा में दूसरे के ज्ञान या पराये चातुर्य और विद्वत्ता को अवतरणों द्वारा प्रगट करने में हानि ही क्या हो सकती है?

किंतु अवतरणों के विषय में अभिरुचि अवश्य निरंतर बदलती रही है। जिस प्रकार कोई लता किसी वृक्ष का सहारा पाकर चढ़ जाती है, उसी प्रकार अवतरण-रूप सीढ़ी लगाकर पुराने साहित्यिक दूसरों के साहित्य-दुर्ग में प्रवेश करते थे। किंतु आजकल की अभिरुचि भिन्न है। किसी प्रसंग-विशेष पर दिया गया एक-आध अवतरण आजकल चल सकता है। किंतु अवतरणों की सेना नहीं काम देती; केवल आगे बढ़ने वाले चतुर गुप्तचर ही काम दे सकते हैं। क्योंकि आज कल जितने ही अवतरण अधिक होंगे, उतने ही अवलक्षण भी अधिक माने जायंगे; और उसी हिसाब से लेखक की अवहेलना भी होगी। दूसरों की तैयार की हुई सामग्री का भोग लगाने वाले के नाते उसका मूल्य आँका जायगा। वर्तमान काल "मैं" का है। आपको क्या जान पड़ता है, वह कहिये; केवल टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। यह समय इसी बात की पुकार मचा रहा है। यह युग सृजनशीलता का है। आत्मलक्षित्व का है। किंतु किसीने यह भी तो कहा है कि 'सृजनशीलता समय को चुरानेवाली स्थिति है। ('Originality is the thief of time") ऐसी दशा में अवतरणों से मौलिकता के संकुचित होने की चिल्लाहट क्या अर्थ रखती है?

किसी सुंदरी द्वारा गुलाब के खिले हुए पुष्प को अपनी वेणी में गूंथने की तरह किसी लेखक-द्वारा अपने लेख में एकाध अवतरण का उपयोग किया जाना उचित हो सकता है। जिस प्रकार मोगरे (बेले) के हार की शोभा उसके बीचोंबीच लगे हुए गुलाब के फूल से बढ़ जाती है।

मिठाई में जिस प्रकार पिस्ता-बादाम से लड्डू में किसमिश या रबड़ी में चिरौंजी से विशेषता आ जाती है; उसी प्रकार साहित्य में अवतरण होने चाहिये।

[मराठी से अनु०—श्री. गोपीवल्लभ उपाध्याय]

कहानी :

विपर्यास

[विष्णु प्रभाकर]

गाड़ी की रफ्तार फिर तेज़ हो गई थी, और अगले पैंतालीस मिनट तक उसके कम होने की कोई आशा नहीं थी। उधर रात बढ़ी आ रही थी। पूर्व में अंधकार गहरा हो चुका था, और दूर दूर तक काले आवरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता था। गिरीश के मन की अवस्था भी कुछ ऐसी ही थी। वहाँ सब कुछ अन्धकार था, परन्तु गाड़ी के चलने के स्वर की भाँति रह रह विचारों की ट्रेन भी शडाकधूं—शडाकधूं खड़क खड़क पुकार उठती थी। तब भूचाल की भाँति उसका शरीर तेजी से सिहर उठता, सिहरन मिट जाती, पर दिल देर तक उस धक्के को महसूस करता रहता — धक् धक्। गाड़ी चलती शड़ाकधूँ — शड़ाकधूँ, हृदय करता धुक्-धुक—।

गिरीश ने करवट बदली तो सामने गाड़ी की दीवार आगई। नीचे के मुसाफिर खिड़की के बाहर का मैदान, सब कुछ आँख से ओझल हो गये पर मन की दृष्टि तो और भी प्रखर, और भी व्यापक हो उठी। उसने जोरसे गर्दन को झटका दिया, मानों उसने अपनी जान में मन को झँझोड़ा हो, पर मन ठहरा निमि का वंशज-विदेह ! उस की पकड़ में कैसे आ सकता था ? अपना काम बेरोक टोक करता रहा, उल्टा जैसे जैसे गिरीश पार्थिव दुनियाँ से दूर हटता गया तैसे तैसे उसकी गति बढ़ती गई। उसने मानों गिरीश को सुनाकर कहा—देखो जी ! तुम अपने को बहुत धोखा देने की कोशिश मत करो। जो कुछ तुम्हें करना है, उसे कर डालो। रोते क्यों हो ? जिस दुनियाँ का भय तुम्हें खाये जा रहा है—विश्वास रखो वह तुम्हारी रत्ती भर भी चिन्ता नहीं करती। मैं सच कहता हूँ, दुनिया ने कभी किसी की चिन्ता नहीं की। बड़े से बड़े महात्मा को उसने काल और समय की गति से ऊपर नहीं उठने दिया — हूँ हूँ हूँ—तुम इतिहास की बात कहते हो, पर विश्वास रखो, इतिहास कभी सचा नहीं होता। उसे किसी उपन्यास से अधिक महत्व देना मूर्खता है। यह बात दूसरी है कि तुम्हारे जैसे बुद्धि-हीन भावुकों ने उसे व्यर्थ का महत्व देकर मूर्खता को ही इतिहास बना डाला है।—

गिरीश फिर तिलमिलाया। उसने आँखें खोल दीं। बिजली पूर्वतः जल रही थी। ऊपर की बर्थवाले मुसाफिर आँखें मीचे लेटे थे। नीचे भी बहुत भीड़ नहीं थी। उसके सामनेवाली बर्थपर केवल दो व्यक्ति रह गये थे—स्त्री और पुरुष। यह कहना अधिक ठकि होगा, वे पतिपत्नी थे और दोनों युवक थे। दोनों स्वस्थ थे, सुन्दर थे और दोनों के नयन मद से भरे थे। पुरुष परिस्थिति को पहिचान कर काफी संयत था, पर नारी रह रह कर उसके कन्धे पर झुक जाती थी, तब पुरुष मुस्करा देता, नारी खिल उठती . . . .

उसने एक क्षण इस दृश्य को देखा, और एक गहरी झुँझलाहट के साथ आंखें फेर ली। मन तो मानो राह देख रहा था, बोला—ओ जी, गिरीश बाबू, बचने की चेष्टा मत करो। स्थिति का सामना करो। वीर बनो। कुछ होने जानेवाला नहीं है। मर भी जाओगे तो विश्वास रखो, दुनियाँ की गति में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। ऊहूँ, यह हाइड्रोजन बम भी फूट पड़े तो क्या होनेवाला है —महानाश ! अरे वह तो एक क्रिया है और क्रिया कहते हैं होने को . . . .

गिरीश क्या करे, कहाँ जाय, यह मन तो उसको पागल कर देगा। पागल . . . . वह फुस-

१९५०

. . . . पागल . . . . पागल . . . . एंक दिन फुसाया — पहले भी दुनियाँ ने उसे पागल कहा था । एक दिन . . . . गिरीश ने सहसा नीचे देखा, पत्नी अपना सारा बोझ, पति के कन्धेपर डाले सोने का उपक्रम कर रही है। गिरीश को कुछ याद आने लगा। एक दिन — यानी बहुत बहुत पहले की बात है जब वह कॉलेज में पढ़ता था-तब कॉलेज के किसी उत्सव में उसने एक कहानी पढ़ी थी। अच्छी कहानी लिखलेने के लिये उसकी जो प्रसिद्धि थी, उस कहानी ने उसमें और भी चार चाँद लगाये थे। उसे सुन कर कई व्यक्ति तो बहुत दिनतक सोचते रहे थे। कई उससे विवाद करने भी आये थे। बधाई देनेवाले तो बहुत थे, परन्तु उन सबमें एक ऐसा व्यक्ति भी था, जो एक प्रार्थना लेकर उसके सामने आया था। प्रार्थना संक्षिप्त थी-मुझे कहानी लिखने का शौक है, पर अभी विश्वास जम नहीं रहा है। क्या आप कभी कभी मेरी शंका दूर कर सकेंगे। उत्तर भी संक्षिप्त था—आप जब चाहें, मुझसे काम ले सकती हैं, पर विश्वास रखिये, विश्वास अपने अन्तर में ही ढूँढ़नेपर मिलेगा. . .।

गिरीश को यह घटना ऐसे याद थी, जैसे वह अभी अभी हुई हो। जैसे वह उस युवती को वहाँ नीचे उस पुरुष के कन्धेपर झुके हुये देख रहा हो। — आश्चर्य, ऐसी कल्पना करके वह काँपा नहीं। बल्कि घटना को आगे बढ़ाता हुआ चला गया, जैसे सिनेमा देख रहा हो। वह युवती आदर का भाव लेकर उसके सामने आई, और देखते देखते प्रेम करने लगी। यह अद्भुत बात हो, ऐसा नहीं कह सकते। जब जब भी युवक युवती मिलते हैं, एक दूसरे को वे प्रेम की दृष्टि से देखते हैं, किन्हीं का प्रेम जम जाता है, किन्हीं का बह जाता है; पर इसका यह आशय नहीं, बहने और जमनेवाले प्रेम में कोई अन्तर होता है। वस्तुतः वह प्रेम होता ही नहीं।” तो वह क्या होता है?”—“वीर पूजा?”

गिरीश फिर उलझने लगा। उसने गरदन को एक ओर ज़ोर का झटका दिया। कहानी कुछ स्पष्ट हुई। युवती का नाम प्रेमा था। देखनेमें अच्छी खासी लगती थी। परी न कहें तो सुन्दर कह सकते हैं। यानी वह उर्वशी नहीं थी मेनका से कम भी नहीं थी। मेनका कौन कम हुई है। तपस्वी विश्वामित्र का तप भंग करके उसने शकुन्तला को जन्म दिया था। तो प्रेमा जब शिष्या बन कर गिरीश के जीवन में आई तो अच्छी खासी कहानी लिख लेती थी। गिरीश को याद है, पहिली कहानी पढ़कर ही उसने पूछा था —

“तुमने लिखी है?”

“जी हाँ।”

“मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है”

‘क्या . . .?’

‘हाँ, मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है। तुम मुझसे अच्छी कहानी लिखती हो।’

प्रेमा लजाकर भी खिल उठी थी। उसने कहा था—“अच्छी कहानी है।”

‘बहुत अच्छी है।’

कोई गलती नहीं?”

गिरीश हँस पड़ा था “मेरी परीक्षा लेती हो?”

‘नहीं नहीं’—प्रेमा काँप उठी थी।

‘नहीं क्यों तुम्हें अधिकार है।’

प्रेमा क्या कहे? गिरीश ही बोला था—तुम अच्छी कहानी लिखती हो, पर इसका यह मतलब नहीं, तुम मुझे अपनी कहानी न दिखाओ। जब भी लिखो मुझे दिखाओ। और जब भी मैं लिखूँगा, तुम्हें दिखाऊँगा।

और जब तक चकित प्रेमा कुछ कहे, गिरीश एक कहानी उठा लाया, बोला—“लो आज ही लिखी है। पढ़कर राय देना।’

कैसी अचरज की बात थी — प्रेमा शिष्या बनने चली थी, गुरु बनकर लौटी। यहाँ तक अचरज हो सकता है। पर इसके आगे जो कुछ हुआ, उसमें तनिक भी अचरज की गुंजाइश नहीं है। शिष्य और गुरु का औसत निकाल लीजिये। साथी आयेगा। सीधा सा गणित का प्रश्न है। तीसरी कक्षा का कोई भी विद्यार्थी इसे निकाल सकता है। वह बात दूसरी है कि वह उसका अर्थ न समझे। स्कूल में रहते कोई भी विद्यार्थी, जो कुछ वह पढ़ता है उसका अर्थ नहीं जानता— ।

गिरीश जैसे ही कथा के छोर को आगे बढ़ाता है, उसका मन तर्क-जाल में फँस जाता है। उससे

निकलने के लिये उसे प्रयत्न करना पड़ता है। इस वार जव निकला तो उन दोनों कहानीकारों का साहचर्य वहुत आगे बढ़ गया था। चुपचाप न जाने कव जीवन के देवता ने उन्हें एक दूसरे के इतना पास ला दिया था कि उन्हें सदा ऐसा लगा करता था जैसे वे एक दूसरे को देखते रहें। गिरीश ने साहस करके एक दिन कहा—"प्रेमा, तुम मुझसे विवाह करोगी ?" 'क्या ?—प्रेमा काँप उठी। इस कथन का कारण प्रश्न नहीं था—प्रश्न की रीति थी।

"मुझसे विवाह करोगी ?" गिरीश ने उसी तरह प्रश्न दोहराया।

प्रेमा ने दृष्टि झुका ली और पैरतक नाखूनों से धरती कुरेदती रही। इन क्षणों में उसने इतना सोचा—इतना सोचा . . . कि समझ में कुछ नहीं आया। गिरीश ने फिर पूछा—"मैं क्या समझूँ?" प्रेमा अनजाने कह गई — जो समझना चाहो !

'तो . . . तो . . . तुम राजा हो . . .

गिरीश आगे कुछ कहे कि प्रेमा सिहर उठी वह क्या कह गई ? क्या इतना कहने का साहस उसमें था ? पर सिहर कर भी उसे दुख नहीं हुआ —सुख हुआ।

लेकिन विवाह आसानी से नहीं हुआ। गिरीश ब्राम्हण की सन्तान था, प्रेमा कायस्थ-कन्या। गिरीश के पिता ने स्पष्ट कह दिया — यह विवाह नहीं हो सकता !

गिरीश ने कहा—यह विवाह होगा !

'क्या . . . . .।'

'जी . . . . .।'

"कुल-कलंक ! कुल-घालक !! कमीने . . .?"

'पिताजी ! अपने को गाली न दीजिये।'

'वदजात ! वोले जाता है। मैं तेरा सिर फोड़ दूँगा। तुझे गोली मार दूँगा।'

गिरीश ने शान्त स्वर में कहा—मार दोगे तो मर जाऊँगा, पर जीते जी विवाह करूँगा तो प्रेमा से।

पिता तड़पकर रह गये। वह लौट आया और विवाह कर डाला। प्रेमा के प्रगतिशलि भाई को तनिक भी आपत्ति नहीं थी। ठाठ से विवाह हुआ। वड़े वड़े साहित्यक पधारे थे और गिरीश का साहस देखिये—प्रेमा को लेकर सीधा पिता के पास पहुँचा। पिता आखिर पिता थे। उनका हाथ उठा —गोली चलाने के लिये नहीं — आशीर्वाद देने के लिये ! बोले—'आख़िर मेरे वेटे हो। जो सोच लिया करके रहे। जियो वेटा ! जियो, वाप का नाम उज्ज्वल करो, पर अव मेरे पास मत आना। अच्छा ! तुम्हें पैतृक सम्पति नहीं मिलेगी ! हाँ जो कुछ मैंने कमाया है उसमें से वहूरानी को उसका भाग मिलता रहेगा।

गिरीश अपने वाप को देखता ही रह गया था। होश आजाने पर उसने कहा था—पिताजी आपने आशीर्वाद दिया, सव कुछ दिया।—

और यहाँ आकर गिरीश न जाने क्यों तेजी से रोने लगा। ऐसा कि हिचकियाँ बंध गईं — ओ मेरे पिताज्ञी ! तुम कहां हो ? देखो तो तुम्हारा आशीर्वाद शाप वना जा रहा है।

गाड़ी को रुकना था। शड़ाक धू . . . शड़ाक धू . . . का स्वर खड़, खड़ खरड़ खरड़ में परिवर्तित होने लगा। कुछ शोर उठा, प्रकाश वढ़ा, कोई एकाकी मुसाफिर ऊपर आया और पाखानेके पास पड़े सामान पर वैठ गया। उससे पूछा — कौन स्टेशन है, भाई ?

क्या नाम लिया, कुछ समझमें नहीं आया। कोई अप्रसिद्ध छोटासा स्टेशन था। गाड़ी कुछ क्षण वाद ही चल पड़ी। फिर वही लम्वा सफर, वही कल्पनाओं का आल-जाल। यह स्टेशन जैसे उसकी कहानी के एक मार्मिक सीमास्थल का प्रतीक था। उनका जीवन वहुत दिनोंतक रंगीनियों में डूवा न रह सका। दोनों कहानीकार नई नई कहानी तो रचते थे, पर जीवन तो कहानियों के सहारे आगे नहीं वढ़ता। वह स्वयँ एक कहानी है, पर उसके पात्र काल्पनिक नहीं, ठोस हैं। वे सदा ही आकाश में नहीं उड़ सकते। उन्हें धरतीपर चलना होता है। लग्नबंधन के वाद एक दिन आया, जव गिरीश को प्रेमा के मदभरे नयनों से धीरे धीरे आँखें चुरानी पड़ीं। उसे जीने के लिये परिश्रम करना पड़ा, और शीघ्र ही वह कहानी लिखने के स्थानपर स्वयँ कहानी वन गया। प्रेमा आरम्भ में तो गिरीश के जीवन की संजीवनी वनी रही; पर फिर धीरे-धीरे उसमें एक परिवर्तन

होने लगा। कहानी-लेखिका के रूप में वह काफी प्रसिद्ध हो चुकी थी। कुछ की दृष्टि में वह गिरीश से कहीं अधिक सुन्दर कहानी लिखती थी, बल्कि वे तो यहाँतक कहते थे—गिरीश की कहानी प्रेमा की कहानी की जूठन होती है। ये लोग लुकेछुपे प्रेमा की प्रशंसा करते, उसकी उक्तियों को गुनगुनाते, उसकी कला को सराहते, उसके व्यंग में रस लेते और आये दिन अखबारों में उसपर लेख लिखते। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि प्रेमा उनकी तरफ झुकने लगी। जिन गोष्ठियो में वह गिरीश के पीछे पीछे जाती थी, उन्हीं में अब वह उसके बिना जाने लगी। वह साहित्य-समाज की चर्चा का केन्द्र-विन्दु बन गई। गिरीश ने इस परिवर्तन को देखा। पहले तो वह मौन रहा, फिर प्रेमा को अपरोक्ष चेतावनी देता रहा। इसपर भी कोई फल नहीं हुआ तो वह ईर्षालु हो उठा। उसने स्पष्ट शब्दों में प्रेमा को रोका। उस दिन वह गोष्ठी में जाने ही वाली थी कि गिरीश ऑफिस से लौट आया; गिरीश ने तीव्रता से कहा—गोष्ठी में जा रही हो?'

'जी हाँ।'

"आज नहीं जाओगी, तो कोई हानि होगी?"

'प्रोग्राम को अस्त-व्यस्त करना निस्संदेह हानिकारक है।'

गिरीश जल उठा —'प्रेमा!'

प्रेमा ने गिरीश को देख भर लिया, बोली नहीं। गिरीश ने उसी तीव्रता से कहा—'प्रेमा, तुम वहाँ नहीं जा सकतीं।"

"और जाऊँ तो?"

"मैं कहता हूँ, तुम नहीं जा सकतीं।"

"मैं जारही हूँ!" प्रेमा ने कहा और चली गई।

गिरीश मुँह बाये, आँखें फाड़े, ठगासा देखता ही रह गया। आगे वढ़कर उसका रास्ता तक न रोक सका। यही नहीं, बहुत देर बाद जब वह चार पाई पर लेटा था तो रह रहकर उसके मन में उठ रहा था—गलती उसकी है उसकी। प्रेमा की नहीं....

एक झटका लगा, कहानी फिर रुक गई। गिरीश नर्व्हस ब्रेकडाउन के रोगी की भाँति भावों के गर्तमें इतना नीचे गिर गया कि उसे अपने ऊपर ग्लानि होने लगी। इतनी ग्लानि कि उसने चाहा कि वह चलती ट्रेनसे कूद पड़े और मर जाये। बहुत देर तक वह इसी प्रकार के आत्मघाती उलूल जुलूल विचारों में फँसा रहा। आगे की कहानी भी बहुत लम्बी नहीं थी। उन दोनों के बीचमें जो खाई पड़ रही थी, वह एक दिन खलीज बन गई। जिस प्रकार गिरीश ने किसी दिन अचानक ही प्रेमा से पूछा था—क्या तुम मुझ से विवाह करोगी, उसी प्रकार प्रेमा ने एक सन्ध्या को स्पष्ट शब्दों में कहा—"गिरीश, हम दोनों एक साथ नहीं रह सकते।"

गिरीश सब कुछ समझता हुआ भी काँप उठा—

'क्या?'

'मैं' जा रही हूँ, और तुम्हें संशय में नहीं रखना चाहती थी। मैं अब नहीं लौटूंगी।'

गिरीश चिल्लाया-'प्रेमा!'

पर प्रेमा उसकी कोई बात सुनने को रुकी नहीं। बाहर चली गई। गिरीश कई क्षण स्तब्ध किंकर्तव्यविमूढ़-सा बैठा रहा, फिर तेजी से उठा और प्रेमा के कमरे में जाकर बोला — तुम इतनी आसानी से मुक्ति नहीं पा सकतीं। तुम्हें जवाब देना होगा।" पर प्रेमा तो वहाँ भी नहीं थी। गोष्ठी में भी नहीं थी। मित्रों के घर भी नहीं थी। वह स्टेशन पर थी। गिरीश ने वहीं कड़क कर कहा —"घर चलो।"

प्रेमा सहसा कुछ समझ न सकी। फुसफुसाई—"मैं . . . मैं . . .

"मैं कहता हूँ, घर चलो।"

न जाने क्या हुआ प्रेमा उठी और चुपचाप खिंचीसी, घिसटती सी चली आई। गिरीश ने बहुत बकझक की, रक्तवर्ण आँखों से देखा, मारने मरने की धमकी दी, आदर्श, प्रेम, समता, सब की बात वह भूल गया। उसे केवल यही याद रहा — प्रेमा उसकी पत्नी है और वह पति है। प्रेमा पर जैसे जादू हो रहा था। वह बोली ही नहीं, रोती रही। फिर कई दिन बीत गये। वे दिन नाटकीय थे, असत्य थे; उनकी दुर्गन्ध से दोनों का मस्तिष्क सड़ रहा था; इसलिये जब उस घटना के दस दिन बाद प्रेमा एकाएक फिर गायब हो गई तो गिरीश पर उसकी पहली प्रति-

क्रिया स्वास्थ्यप्रद हुई। हाँ, उसके बाद वह पागलों की तरह कभी अपने को धिक्कारता हुआ, कभी प्रेमा को कोसता हुआ इधर उधर डोलने लगा। ज्यों ज्यों समय बीतता था त्यों त्यों उसे अपने पर ही क्रोध आता था। वह अपने को ही कायर और अयोग्य समझता था। उसे प्रेमा का पता लग गया था। वह एक पड़ोसी राज्य के एक प्रसिद्ध साहित्यिक के पास ठहरी थी। एक बार तो उसने अभियोग चलाने की बात सोची, पर फिर न जाने क्या हुआ एक दिन सब काग़ज जला डाले। कहा—"जिसे मैं अपनी न बना सका, उसे कानून क्या बना सकेगा ? कानून भी तो मेरा बनाया हुआ है।" यह कलकी ही बात हैं। गिरीश त्रस्त, पीड़ित; पर एक निश्चित धारणा लेकर लौट रहा है। वह अब नये सिरे से जीवन शुरू करेगा। कमजोरी उसे रह-रहकर कचोटती है। पर उसका मन उसें खिजा-खिजाकर आगे ढकेलता है।" हाँ! वह आगे बढ़ेगा, कुछ भी हो आगे बढ़ेगा। किसी की चिन्ता नहीं करेगा। प्राणों की—न प्रतिष्ठा की . . .।

तब रात बहुत गहरी हो गई थी। नीचे और ऊपर सब सो रहे थे। सामने भी बेंचवाले दम्पती भी नींद की लोरियोंसे पराजित हो चुके थे, पर यह क्या ? यह शब्द कैसा ? यह खड़ खड़ — धीमे पर क्रुद्ध स्वर . . . गिरीश उठ बैठा। उसने चारों ओर कान लगाये। उसके बिल्कुल पास एक दीवार के पीछे . . . हाँ हाँ, वह स्त्रियों का डब्बा है। वहाँ कोई लड़ रही है . . . एक क्षण बीता विचारों का तूफ़ान गिरीश के मस्तिष्क में उठ खड़ा हुआ—कौन लड़ता है . . . कोई डाकू . . . शायद किसी नारी के ज़ेवर छीनता है, शायद . . . कि चीख उठी कि गिरीश विद्युत् गतिसे खिड़की खोलकर बाहर उतरा और न जाने कैसे उस डब्बे में जा चढ़ा। देखा एक मुस्तंडा मर्द एक नारी को दबाये हुये उसे बाँधने का प्रयत्न कर रहा है। नारी संघर्ष कर रही है, पर उसकी अवस्था कसाई के हाथमें छटपटाती हुई मुर्गीसे बेहतर नहीं है। वह एकदम चिल्ला उठा — ख़बरदार! और साथ ही उस पुरुष पर टूट पड़ा। बिखरे हुए सामान में उसे एक लोटा दिखाई दिया। उसी को लेकर वह तावडतोब उस पुरुष को पीटने लगा। पुरुष काँपा। वह घबरा गया था। उसने विरोध करना चाहा, पर न जाने क्या हुआ, दूसरे ही क्षण वह कूदा और अन्धकार में खो गया।

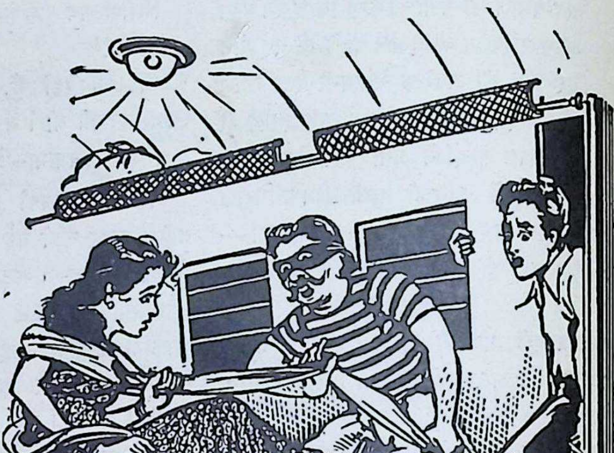

यह सब पलक मारते ही बिना किसी निश्चित योजना के हो गया। जैसे कोई स्वप्न देख रहा हो। जब होश आया तो गिरीश ने देखा—डब्बे में सामान बिखरा पड़ा है और उसी के बीच में लेटी है एक नारी—संज्ञाहीन, अस्तव्यस्त . . . . वह डरा, कहीं मर तो नहीं गई पर रक्त कहीं नहीं था। वह पास आया। उसका हृदय एक उल्लास से भरा

हुआ था। उसने शान्त, पर दृढ़ स्वर में कहा—उठो, अब कोई डर नहीं है।

नारी ने सुना भी हो तो उसे विश्वास नहीं आया होगा, उसी तरह पड़ी रही। गिरीश को आशंका हुई, झुक कर पूछा — क्या अधिक चोट लगी है?

नारी जैसे संसार में लौटी। भयातुर वाणी में उसने कहा—तुम . . . तुम . . . कौन हो? होश के पहले क्षण में उसने गिरीश को डाकू समझा पर . . . पर वह तो स्नेहपूरित स्वर में बोल रहा है। उसकी वाणी में सान्त्वना है, सहानुभूति है. . . तो क्या . . . क्या आकाश से देवता उतर आया है क्या . . . सोचती सोचती वह उठने का उपक्रम करने लगी। उसने एक हाथ फर्श, पर टिकाया। दूसरे हाथों से बालों को ठीक किया। दृष्टि उठाई, गिरीश को देखा। गिरीश ने नारी को देखा—यह क्या? . . . . क्या—उसका सिर भयंकर वेग से घूमने लगा। गाड़ी का शड़ाकधू—शड़ाकधू—शब्द प्रलय की गति से गूँज उठा। दोनों ने एक साथ कहा—तुम . . . तुम . . . !! वह प्रेमा थी। प्रेमा . . . . गिरीश काँपा, थरथराया और घृणा से भर उठा। प्रेमा तूफान के पत्ते की तरह काँपती हुई उठी और बिना एक शब्द बोले, वहीं उसके पास गिर पड़ी। गिरीश ने अब उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। वह शीघ्रता से उसी दरवाज़े की ओर मुड़ा जिस से वह आया था। प्रेमा ने उसे देखा। सिहरकर चिल्ला उठी — ठहरो, क्या कर रहे हो? गिर जाओगे।

गिरीश केवल हँस दिया जोर से।

"गिरीश, गिरीश, सुनो, सुनो तो, मत जाओ, अजी मत जाओ . . . ." कहती कहती वह विक्षिप्त सी दौड़ी, पर तब तक वह बाहर झाँके झाँके, गिरीश अन्धकार में खो चुका था। उसे केवल इतना ही सुन पड़ा — एक बार भावना के वश हो कर मैं गलती कर चुका हूं। अब उसे दोहराना नहीं चाहता। तुम्हारा मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रेमा को लगा, धरती प्रलय की गति से घूम रही है। गाड़ी का स्वर तीव्र हो रहा है। उसका दिल भी उसी गति से धड़कने लगा। उसने खिड़की पकड़ कर अपना सिर दीवार पर टिका दिया। पर उसका शरीर शिथिल होता जा रहा था। देखते देखते, वह फर्श पर गिर पड़ी। उसने चाहा—कोई डाकू आकर उसके जीवन का अन्त कर दे तो, कितना अच्छा हो, कितना अच्छा . . .

लेकिन हुआ यह कि उस बिखरे हुए सामान के बीच संज्ञाहीन, अर्धविक्षिप्त-सी, वह अस्फुट स्वर में बड़बड़ाती रही—अजी, अब मत जाओ। नहीं नहीं, अब मत जाओ . . . .।

मा मा हिंसीः

गुरुदेव रवींद्रनाथ

[‘मा मा हिंसीः मुझे मत मारो]

मनुष्य की समस्त प्रार्थनाओं में यह जो एक प्रार्थना देश-देश में—युग-युग से—चली आ रही है कि ‘मा मा हिंसीः’ यानीं मेरी हिंसा, मेरा नाश मत करो’; मुझे मृत्यु से बचाओ । वास्तव में यह एक बड़े आश्चर्य की बात है । जो शारीरिक मृत्यु उसकी अवश्य होगी उससे बचने के लिए मनुष्य प्रार्थना नहीं कर सकता, कारण ऐसी व्यर्थ की प्रार्थना करने से उसे कोई लाभ नहीं । वह जानता है कि मृत्यु से बढ़कर सुनिश्चित सत्य और कुछ भी नहीं, दैहिक जीवन का विनाश एक-न-एक दिन होगा ही । इस विषय में उसके मन में किसी भी तरह का सन्देह नहीं ।

लेकिन, जब वह कहता है कि ‘मुझे मत मारो ।’ तब वह क्या कर रहा है यह बात उसकी अन्तरात्मा की ओर देखते ही साफ़ समझ में आ जाती है । ऐसा भी अगर होता कि उसकी देह हमेशा बनी रह सकती, तो भी विनाश से उसे कोई नहीं बचा सकता, कारण वह जो प्रतिक्षण का विनाश है । एक के बाद एक हमारे जीवन पर कितनी तरह की मौतें आती रहती हैं, कुछ ठिकाना है! जिन्दगी के छोटे-से समय में बूढ़े हो कर बाहर के सुख-दुःखों की कितनी चोटें हम पर पड़ती हैं और उससे लगातार टूट कर बिखर कर जिस जिन्दगी को हम ढोते रहते हैं, इससे तो हम रोज ही मरते हैं । जिस घर के अन्दर हम अपने जीवन को बन्द रखने की कोशिश करते हैं, उसीमें जीवन कितनी मौतें मरता रहता है, कितना प्रेम और कितना बन्धुत्व मरता रहता है, कितनी इच्छाएँ और आशाएँ हमारी रोज मरती रहती हैं ! कोई ठिकाना है ? इन लगातार होनेवाली मृत्यु की चोटों से हमारा सारा जीवन अत्यन्त व्यथित और पीड़ित हो उठता है ।

जीवन के अन्दर यह जो मृत्यु का दुःख-दर्द हमें बराबर सहना पड़ता है, इस की वजह क्या, यही न कि हम दो जगह

१९५०

रहते हैं। हम परमात्मा में भी हैं, और संसार में भी हैं। हमारे एक तरफ़ है 'अनन्त' और दूसरी तरफ़ 'सान्त'। 'अनन्त' का कोई अन्त नहीं और 'सान्त' का अन्त है। इसी लिए मनुष्य बराबर यही सोचा करता है कि क्या करने से इन दोनो तरफ़ों को सत्य किया जा सकता है। किस तरह अनन्त और सान्त को एक साँचे में ढाला जा सकता है। हमारे इस संसार के पिता, जो पार्थिव जीवन का सूत्रपात कर गये हैं, सिर्फ उन्हीं को पिता मान कर हमारे अन्तःकरण को सन्तोष नहीं होता। कारण हम जानते हैं कि दीखने वाला यह शारीरिक जीवन ख़तम हो जाएगा। इसी से हम दूसरे एक पिता को पुकार रहे हैं जो केवल इस पार्थिव जीवन के ही नहीं; बल्कि चिर-जीवन के भी पिता हैं। उन के पास तक पहुँच जायँ तो हम मृत्यु में वास करते हुए भी अमृत लोक में पहुँच सकते हैं; यह आश्वास, यह विश्वास या प्रतीति, चाहे किसी भी तरह से हो, हमें अपनी अन्तरात्मा से ही मिले हैं। इसी लिए राह चलते-चलते आदमी क्षण-क्षण में ऊपर की ओर देखा करता है। इसी लिए संसार के सुख और भोग-विलासों में रमते हुए भी उसकी आत्मा में एक प्रकार की वेदना जाग उठती है; और तब वह अपनी इच्छा से ही परम दुःख को अपनाने और ढोने को तैयार हो जाता है। क्यों? क्योंकि वह समझता है कि मनुष्य के अन्दर कितना बड़ा सत्य है, कितनी बड़ी चेतना है, कितनी बड़ी ताकत है। जबतक इन्सान छोटी-छोटी बातों के लिए मरता रहेगा तब तक दुःख पर दुःख, मुसीबत पर मुसीबत, चोट पर चोट, उस पर पड़ती ही रहेगी। कौन उसे बचा सकता है? लेकिन ज्यों ही उसे अपने दुःख और चोटों के अन्दर उस अमृत-लोक का आश्वासन या तसल्ली मिलती है त्यों ही उसकी यह प्रार्थना अन्य-सब प्रार्थनाओं के आगे बढ़ जाती है — 'मा मा हिंसीः' बचाओ मुझे बचाओ; रोजमर्रा की मौत के हाथ से, छोटों के हाथ की मार से मुझे बचाओ। मैं बड़ा हूँ; मुझे मृत्यु के हाथ से, स्वार्थ के हाथ से, 'मैं — मैं' के अहंकार के हाथ से मुझे बचाकर ले जाओ। हे परमात्मा, मेरा यह जीवन तुम्हारे उस परिपूर्ण प्रेम में जाना चाहता है; अपने को टुकड़ों में खंड-खंड करके रोजमर्रा अपने अहंकार में घूम-घूम कर मुझे कोई आनन्द नहीं मिल रहा है। मा मा हिंसीः मुझे इस विनाश से बचाओ।

इस संसार में जिस प्रेम की बदौलत इन्सान को अपनी सच्ची जगह मिलती है, दुनिया के सभी मनुष्यों के साथ उसका सच्चा सम्बन्ध कायम होता है, उस परम प्रेम को पाये बगैर आदमी भला कैसे मुसीबतों से छुटकारा पा सकता है? आपसी प्रेम के बिना आदमी पर चारों तरफ से बार बार मुसीबतें आयेंगी ही, पाप की आग उसे जलाकर मारेगी ही। इसी से, संसार की सब पुकारों पर उसकी और एक पुकार बराबर जागती रहती है — "हे अनन्त, तुम अपने भीतर से सारे संसार के साथ मेरा जो नित्य-सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध में मुझे बाँधो, तभी मृत्यु के भीतर से मैं अमृत में पहुँच सकूंगा।"

‘पिता नो बोधि ।’ पिता, मुझे बोध दो, समझ दो । तुम्हारी याद करके अपने मन को हम नम्र करते हैं । प्रति दिन का ओछापन, क्षुद्रता—संकीर्णता — हमें उद्दण्डता की ओर खींचे ले जा रहे हैं । तुम्हारे चरणों के पास जाकर हम अपने अहंकार को बिलकुल भूल जाते हैं । अपनी इस छोटी-सी हद में मैं बड़ा होता चला जा रहा हूँ और कदम-कदम पर दूसरों को चोट पहुँचा रहा हूँ । मुझे तुम हरा दो अपने प्रेम से । आदमी बनकर आदमी से प्रेम करूं; सब से बड़ी जीत तो इसीमें है । हे परमात्मन्, परलोक के पिता, घड़ी-घड़ी की इस मौत के अन्दर मुझे न डालो । हे अनन्त, प्रेम से—भक्ति से—अवनत होकर मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, और उसी नमस्कार से ही मैं बच जाता हूँ । नहीं तो दुःख मुझे पाना ही पड़ेगा । वासना की चोटें मुझे सहनी ही पड़ेंगी । अहंकार का उत्पीड़न मेरे जीवन को प्रतिदिन भार-ग्रस्त बनाता ही रहेगा । जबतक मैं क्षुद्रता की सीमा में आबद्ध हूँ, जबतक अपने ओछेपन की—क्षुद्रत्व की—चहार-दीवारी के अन्दर मैं कैद हूँ, तबतक मेरे पाप इकट्ठे हो होकर विकट मूर्ति धारण करके मेरे चारों तरफ की आब-हवा को विभीषिकामय करते ही रहेंगे; और उसकी भयंकर लपेटों से मैं जलता ही रहूँगा । इसलिए हे पिता, मुझे समझ दो—‘पिता नो बोधि !’

सारे पाश्चात्य जगत् में आज और एक महायुद्ध की आँधी उठ रही है । कितने दिनों से इस आँधी के लिए गुप्त रूप से तैयारियाँ हो रही हैं; कौन कह सकता है कब कहाँ धड़ाका हो उठे ! बहुत दिनों से आदमी ने अपने अन्दर अपने को खूब जोर से बाँध रक्खा है, अपने जातीय या राष्ट्रीय अहंकार को वह जो प्रचंड से प्रचंडतर करता ही चला आ रहा है, उसकी यह बाँधी हुई कैद और घमंड की प्रचंडता किसी-न-किसी दिन अपने-आपको ही चीड़-फाड़कर खतम कर देगी । इतिहास इसका साक्षी है । एक-एक राष्ट्र ने अपने-अपने गौरव में फूलकर काफी उद्दण्डता के साथ अपने को सबसे बढ़कर ताकतवर बना डालने की भरपूर कोशिश की है । वर्म-कवच और अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर हमेशा अपने को दूसरों से अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए अपनी-अपनी तलवारों पर लगातार शानदार सान (तेज धार) चढ़ाई है । और शान्ति-परिषद् (पीस कान्फ्रेन्स) कायम करके अमन कायम करने की भी कोशिशें हुई हैं; लेकिन सर्वत्र बार बार यही देखने में आया है कि बराबर तरह-तरह के तरीके निकाल-निकाल कर तरह-तरह की चालबाजियों से उस मार को, सिर्फ सहारे से, थोड़ी देर के लिए रोकने की कोशिश हुई । मगर हम भूलते हैं । किसी राजनीतिक चाल से क्या मरना रोका जा सकता है ? यहाँ तो इन्सान के गुनाहों का ढेर लग गया है । पापों का स्तूप खड़ा हो गया है । पाप ही तो हमें मारेगा; और मार कर अपना परिचय देगा ! क्या पाप को हम तभी पहचानेंगे जब पूरी तरह मर मिटेंगे ? हाय, हम यह कब समझेंगे कि उस मार से बचने के लिए हमें कहना ही होगा—“मा मा हिंसीः । पिता, तुमने अगर समझ नहीं दी, तो इस मार से हमें अब कोई नहीं

१९५०

बचा सकता।" कभी भी यह सत्य नहीं हो सकता कि मनुष्य सिर्फ अपने भीतर ही अपनी सार्थकता प्राप्त कर लेगा। यह मानना ही पड़ेगा कि तुम हमारे पिता हो, तुम सबके पिता हो। इस बात को मानने पर ही मनुष्य का छुटकारा है। मनुष्य के पाप की आग पिता के इस बोध से ही बुझेगी, नहीं तो वह कभी नहीं बुझ सकती; दावानल की तरह वह क्रमशः चारों तरफ फैलकर सब-कुछ जलाकर भस्म कर देगी। कोई भी राजमंत्री कूट-कौशल का जाल फैला कर उस आग को बुझा देगा, यह हरगिज संभव नहीं। मार खानी पड़ेगी। आदमी को मार खानी ही पड़ेगी।

आखिर आदमी को यह प्रचंड दानवी शक्ति है तो विधाता की ही देन। उन्होंने आदमी को ब्रह्मास्त्र दिया है; और देकर कह दिया है कि 'अगर तुम इसे अपने और दूसरों के कल्याण के लिए काम में लाओ, तभी भलाई है; और अगर पाप के लिए इसका प्रयोग किया, तो यह ब्रह्मास्त्र तुम्हारी छाती में लगकर तुम्हारा ही सर्वनाश कर देगा।' आदमी आज आदमी को सताने के लिए ही अपने इस ब्रह्मास्त्र को काम में ला रहा है। इसीसे आज वह उसी की छाती में घुसा जा रहा है। मनुष्य का हृदय विदीर्ण कर के आज वह पृथ्वी पर खून की नदियाँ बहा रहा है। आज मनुष्य को कौन बचायगा? यह पाप, यह हिंसा, आदमी को आज कैसी जबरदस्त मार मार रहा है! इस मार से अब उसे कौन बचायगा!

हमारे पाप की मूर्ति आज कितनी विकट विराट-विकराल रूप धारण किये हुए है! उसे देखकर क्या अब भी हमारी आँखें नहीं खुलेंगी? वह पाप आज दुनिया के तमाम आदमियों में समा गया है और वही आज एक जगह इकट्ठा होकर खतरनाक पहाड़ के रूप में सब पर टूट पड़ना चाहता है! इस बात को क्या हम नहीं समझेंगे?

अपने देश में भी रोजमर्रा हम आपस में एक दूसरे पर हमला करते रहते हैं, चोट पहुँचाते रहते हैं। आदमी को उसके हक से वंचित रखते हैं और स्वार्थ को सबसे पहली चीज समझकर मतलबी बनते चले जा रहे हैं। यह पाप कितने दिनों से जम रहा है, कितने युगों से इकट्ठा हो रहा है, कोई ठिकाना है! आये-दिन क्या हमें उसकी मार नहीं खानी पड़ रही है? सदियों से क्या हम बार बार मर नहीं रहे हैं? इसी लिए तो यह प्रार्थना है—"मा मा हिंसीः। बचाओ बचाओ; इस विनाश के हाथ से बचाओ। इन सब दुःख शोक के ऊपर जो अशोक-लोक है, अनन्त अन्त के सम्मिलन से जिस अमृत लोक की सृष्टि हुई, वहीं ले चलो। वहीं मौत को जीत कर हम जायेंगे। त्याग से और दुःख से हम जियेंगे। वहीं हमें ले जाकर छोड़ दो, हमें इस मृत्यु से मुक्ति दो, आजाद करो।"

आज अविश्वास के—अदावत के—तूफान में, हिंसा और विद्वेष की आँधी में, खून की बाढ़ में, यही एक बाणी सम्पूर्ण मानव-समाज की क्रन्दनध्वनि के अन्दर से जाग उठी है—"मा, मा हिंसीः।" यह वाणी हाहाःकार करती हुई आकाश विदीर्ण करके ऊपर को उठ रही है—'आदमी को बचाओ, दुनिया की मानव-जाति को बचाओ। मुझे बचाओ।'

इन्सान की यह पुकार युद्ध के गर्जन में मुखरित हो कर आज आसमान के टुकड़े-टुकड़े किये दे रही है ।

स्वार्थ के बन्धन में जर्जर हो कर, राग-द्वेष-क्रोध-लोभ-मद-मात्सर्य की चोट से घायल हो कर, यह जो हम-सब मिल कर आपस में एक दूसरे को चोट पहुँचा रहे हैं, चोट खा रहे हैं, वही प्रत्येक 'मैं' का रोना-बिलखना ही तो आज एक भयंकर विश्वयज्ञ में सम्पूर्ण मानव-जाति की प्रार्थना के रूप में, रक्त-स्रोत के साथ गरज रहा है, 'मा मा हिंसीः।' आदमी मर रहा है, बचाओ। उसे कौन बचायगा ? 'पिता नो असि' तुम जो हम-सब के पिता हो, तुम अपने बोध के द्वारा बचाओ, समझ देकर बचाओ । तुम्हें हम-सब आदमी मिलकर जिस दिन नमस्कार करेंगे उसी दिन हमारा नमस्कार सच्चा होगा । नहीं तो जमीन में लोटपोट होकर मरते-मरते जो नमस्कार करना पड़ेगा! उस मृत्यु से बचाओ । देश देशान्तर में तुम्हारी जितनी भी सन्तान हैं, हे पिता, तुम प्रेम में, भक्ति में, कल्याण में, सब को इकट्ठा करो । अपने चरणों के पास हमरा नमस्कार सर्वत्र व्याप्त हो जाय । देश से देशान्तर में, एक जाति से दूसरी जाति में, एक राष्ट्रसे दूसरे राष्ट्र में सर्वत्र व्याप्त हो जाय । 'विश्वानि दुरितानि परासुव ।' विश्व-पाप की जो रक्त-मूर्ति आज दिखाई दे रही है, उस विश्व-पाप को दूर करो । मा मा हिंसी : । विनाश से रक्षा करो, बरबादी से बचाओ ।

[बंगला से अनु०—श्री. धन्यकुमार जैन]

* * *

"हृदय की सचाई, प्रामाणिकता आर न्यायनिष्ठा का सार यही है कि, मनुष्य पक्षपात रहित हो कर जिसका हक उसे दे, फिर चाहे वह अपरिचित व्यक्ति हो या परिचित, मित्र हो अथवा शत्रु!

न्यायनिष्ठ मनुष्य की सम्पत्ति कभी नहीं घटती, किन्तु चिरकाल तक बढती ही जाती है ।

तुम्हारा मन जब न्याय का मार्ग छोड अन्याय के पथ पर चलने लगे तब समझ लो कि तुम्हारा सर्वनाश बिलकुल निकट आ गया है।"

कृष्णायन से

शिशुपाल-वध

[पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र]

: मूल :

हिन्दी चौपाई

सुने वृकोदर वचन कराला,
सहजहि रक्त दृगन रिस ज्वाला।
भाल विशाल सजग सब रेखा,
भयी वक्र भ्रू वक्र बिसेखा।
भीषण ओष्ठ विखण्डित दशानन,
झपटे भीम करत गुरु गर्जन।
धाय भीष्म गहि कीन्ह निवारण—
'वत्स! सभा यह, नहिं समराङ्गण!'
लखि, करि अट्टहास विकराला,
बोले पुनि अशंक शिशुपाला—
'काह भीम! मोहिं आँख दिखावत,
केहि तुम गराजि तराजि डरपावत?
करि छल जरासंध संहारी,
शौर्य-गर्व बाढ़ेउ उर भारी।
बधेउ न तुम मग पति रण रंगा,
जानत मैं सब कपट-प्रसंगा।

दोहा

विवर पुरी-प्राकार करि, बनि द्विज कीन्ह प्रवेश
हत्यारे तुम वीर नहीं, हतेउ गुप्त मगधेश॥

यहू माहिं नहिं भीम-बड़ाई,
सब पापिष्ठ कृष्ण-अधमाई।
कहत भीष्म जेहि विभु-अवतारा,
तेहि सम जग न अन्य हत्यारा।
नारी-हत्या कर्म कठोरा,
कहत ताहि श्रुति पातक घोरा।

[शंकर बालाजी शास्त्री]

: मराठी रूपान्तर :

मराठी चौपाई

श्रवी वृकोदर वचां कराला,
सहजचि रक्त नयनिं रुष-ज्वाला।
भालिं विशाल जागल्या रेषा,
होत वक्र भ्रू वक्र विशेषा।
दशनें ओष्ठां करित विखंडन,
घाली झडप करित गुरु गर्जन।
धावुनि भीष्म धरी, करि वारण,—
'वत्स! सभा ही, नच समराङ्गण!'
करि विकराल अट्टहासातें,
चेदि अशंक वदे वचनातें,—
'वाटारुनि भीमा! नेत्रांतें,
गर्जुनि भय दाविसि कवणातें?
कपटें जरासंध-संहरिला,
शौर्य-गर्व मानसी बहु भरला।
वधिलें परि न करुनि रण-रंगा,
जाणिं सकल मी कपट-प्रसंगा।

दोहा

विवर करुनि प्राकारिं मग, द्विज-वेषांत प्रवेश,
हत्यारा तूं वीर नच वधिला गुप्त मगधेश॥

ह्यांतहि भीम न वीरशिरोमणि,
ही पापिष्ठ हरींची करणी!
भीष्में गणिलें ज्या अवतारा,
त्या सम जगिं न अन्य हत्यारा।
कर्म कठोर नारिची हत्या,
पातक घोर श्रुतिहि वदती त्या।

कीन्हे हरण पूतना-प्राणा,
तदपि न वीर कृष्ण-सम आना !
को अस आर्य आजु यह देशा,
देत धेनु-वत्सहि जो क्लेशा ?
वत्सहिं जदपि अधम संहारा,
तबहूं कृष्ण धर्म-अवतारा !
निखिल नीति-नय-बन्धन तोरी,
कीन्हीं व्रज यहि घर घर चोरी ।
नाचेउ गोपिन सँग बनि नारी,
तबहूं कृष्ण विष्णु अवतारी !

केलें हरण पूतना-प्राणां,
कृष्णासम तरि वीर दुजा ना !
कवण आर्य वसतो ह्या देशा,
देइ धेनु-वत्सां जो क्लेशा ?
वत्सा परि हा खल संहारी,
तरिही कृष्ण धर्म अवतारी !
निखिल नीति-नय-बंधन तोडी,
केली यानें व्रजिं घर-फोडी ।
गोपींसह नाचत हो नारी,
तरिही कृष्ण विष्णु अवतारी ।

दोहा

सहि न सकहुँ यहि ते अधिक, छल, अनीति अविचार,
अवहि निपातत मैं लखहु, चोर, जार, हत्यार !" ॥

दोहा

सहन न हो याहुनि अधिक, छल, अनीति, अविचार,
पहा धाडितो यमपुरा, चोर, वधिक हा जार !" ॥

अस कहि काढ़ि तीक्ष्ण करवाला
धायेउ श्रीहरि दिशि शिशुपाला ।
लखतहि उठी सभा सक्रोधा,
धाये शस्त्र-सुसज्जित योद्धा ।
पाण्डव, द्रोण, भीष्म, मद्रेशा
भीष्मक, द्रुपद, विराट नरेशा,
संकर्षण सह यादव वीरा,
घेरेउ चैद्यहिं रोष-अधीरा ।
छायेउ भीषण सभा खँभारा,
समुझायेउ हरि, बहुरि निवारा ।
भयी सभा जब शान्त, गँभीरा,
भाषी धीर गिरा यदुवीरा —
'कहे चैद्य दुर्वचन अनेकन,
सुने सकल मैं, रोष न मम मन ।
करत जबहिं कोउ मम उपहासू
परखत मैं निज यम-अभ्यासू !

बोले, काढि तीक्ष्ण करवाला,
श्रीहरि वरि शठ चालुनि आला ।
उठली बघुनि सभा सक्रोधें,
धावति शस्त्र सुसज्जित योद्धें ।
पांडव, द्रोण, भीष्म, भद्रेशहि,
भीष्मक, द्रुपद, विराट नरेशहि,
बलरामासह यादव-वीरें,
वेढियलें चैद्यासि अधीरें ।
सभेमाजि गोंधळ बहु झाला,
पुन्हा वारि हरि, समजवि त्यांला ।
होता सभा शांत, गंभीरा,
बोले कृष्ण गिरा मग धीरा—
" वदे, चैद्य बहु दुर्वचनाला,
श्रविलें सकल, रोष ना आला ।
करित जधीं कुणि मम उपहासा,
परखीं मी निज यम-अभ्यासा !

दोहा

साधु-सुजन-निंद्रा तदपि, सहि न सकहुं पल एक,
कहे पितामहि चेदिपति, वचन अवाच्य अनेक ।

दोहा

साधु-सुजन-निंदा परी, सहुं न शके पळ एक,
पितामहा प्रति बोलला, वचन आवाच्य अनेक ॥

१९५०
करि अनार्य-संगति नित वासा,
बुद्धि विवेक सकल खल नासा ।
सद्गुण अवगुण, धर्म-अधर्मा,
पाप-पुण्य, सत्कर्म-कुकर्मा,
सकत न अन्तर शठ पहिचानी,
गत-विवेक पशुवत् यह प्राणी ।
पितुहित भीष्म जन्म-सुख त्यागा,
सो पाखण्ड अधम कहँ लागा !
ब्रह्मचर्य पुरुषत्व-अभावा !
स्वजन-प्रेम दासत्व कहावा !
गुण-ग्राहकता, पर-गुण-गायन !
नाश-निवारण, समर-पलायन !
सुकृत सकल यहि पाप लखाहीं,
कहे कुवाच्य बचेउ कछु नाहीं ।
तबहुँ शान्त नहिं द्वेष कराला,
गही सभा महि खल करवाला ।

दोहा

तजी सकल मर्याद यहि, विलग होहु महिपाल !
नाचत लखहु कराल वह, काल शीश शिशुपाल ।"

अस भाषत हरि चक्र सँवारा।
उपजेउ अकस्मात उजियारा ।
ज्योति पल्लवित महि आकाशा,
चौंधे दृग, दिशि दशहु प्रकाशा ।
तड़की तड़ित् मनहुँ कहुँ घोरा,
गिरेउ सभा जनु वज्र कठोरा ।
निमिष न कहुँ कछु काहु लखाना,
भागे भीत अवनिपति नाना ।
लखेउ रहे तहँ जे धरि धीरा—
कतहुँ चैद्य-शिर, कतहुँ शरीरा !
कौतुक और भयेउ तेहि काला,
प्रकटी चैद्य-देह तजि ज्वाला ।

नित अनार्य-संगति-सहवासें,
बुद्धि, विवेक सकल खल नाशे ।
सद्गुण-अवगुणिं, धर्म-अधर्मीं,
पाप-पुण्यिं, सत्कर्म-कुकर्मीं,
भेद न शठ वळखी वा मानी,
गत-विवेक पशुवत् हा प्राणी ।
भीष्म, पित्यास्तव, स्वसुखा त्यागी,
तें पाखंड दिसे ह्यालागीं ।
ब्रह्मचर्य ह्या क्लैब्यचि वाटे,
दास्य, प्रेम स्वजनीं जरि दाटे !
गुण-ग्राहकता, पर-गुण-गायन !
नाश-निवारण, समर-पलायन !
सुकृतींत हा पापचि पाहीं,
वदला कुवच, डरे ना काहीं ।
तरिहि शान्त नच द्वेष जहाला,
धरिलें सभेमाजि करवाला ।

दोहा

त्यजिली मर्यादा सकल, दूरचि व्हा महिपाल !
नाचत पहा कराल तिथ, शिशुपालशिरिं काल !"

बोले हरि, प्रेरी चक्राला,
हो प्रकाश सहसा त्या काला ।
ज्योति पल्लवित महि-आकाशीं,
दिपले दृग, द्युति दाहि दिशांसी ।
तडित् घोर जणुं कुठ कडकडली,
वज्र-कठोर, सभेमधिं पडली ।
क्षणभरि कुठें दिसे ना कांहीं,
भिउनि पळाले नृप लवलाही ।
पाहत उभे धरुनि जे धीरा,—
कुठें चैद्य-शिर त्यजुनि शरीरा !
कौतुक आणि होत त्या काला,
प्रगटे चैद्य-वपुंतुनि ज्वाला ।

टूटत व्योम-मध्य जिमि तारा,
होत विलीन असीम मँझारा,
तैसेहि ज्योति आपु प्रकटानी,
आपुहि हरि-पद परसि समानी।

दोहा

विजय-दुन्दुभी नभ बजी, मही नृपन जयनाद,
कीन्ही विनय-स्तुति मुनिन, भरेउ भुवन आल्हाद।

तुटुनि तारका व्योमीं जेवीं,
होत विलीन असीमीं, तेवीं,
ज्योति एक देहांतुनि आली,
स्पर्शुनि हरिपद, स्वयें निमाली !

दोहा

विजय-दुंदुभी ध्वनि नभीं, महिवरि नृप-जय नाद।
करिति मुनी विनय-स्तुती, भरे भुवनीं आल्हाद॥

लाल मिट्टी

एक वृक्ष ने एक मनुष्य से कहा –– "देखोजी, मेरी जड़ें लाल मिट्टी में दूर तक गई हैं और तभी तो मुझमें तुम्हें फल देनेकी सामर्थ्य है।"

उस मनुष्य ने वृक्ष से कहा –– 'देखो न, हमारे बीच कितनी समता है, मेरी जड़ें भी तो लाल मिट्टी के गर्भ में दूर तक गई हुई हैं और जो लाल मिट्टी तुम्हें फलदान की शक्ति देती है, वही मुझे भी कृतज्ञ भाव से फल-ग्रहण करने की शिक्षा देती है।"

— **खलील जिब्रान**

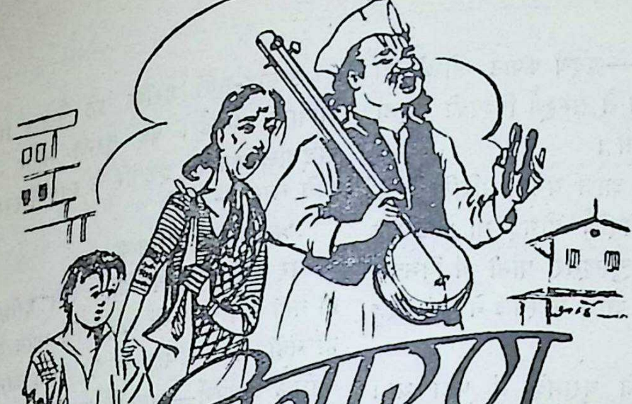

क

हा

नी

भ्रम निवारण

— कुसुमावती देशपांडे.

तिडिडिंऽग . . . तिडिडिंग . . . तिडिडिंग . . . इकतारे की गम्भीर ध्वनि से समस्त वातावरण गूँज उठा ।

हरीश जैसे नींदसे चौंक उठा हो । इकतारे के स्वर मात्रसे ही उसके बजाने वाले की मूर्ति जैसे उसके सन्मुख उपस्थित होगई — इतनी वह उस से परिचित थी ।

चिलकता काला रंग — कंधोंतक विस्तृत कुछ घुंघराले से वाल और सिरपर सफेद गांधी टोपी . . . .

लम्बा खद्दर का कुर्ता, धोती, कभी काला जवाहर जाकिट और उसपर तुलसीकी मालायें . . .

एक हाथ में पीतल के पत्रों से मढ़ा पीतल ही की कीलों से जड़ा और बड़े जतन से रखने के कारण चमकता चिलकता इकतारा, और दूसरे हाथ में खड़ताल पकड़े।

एक कंधेपर झोली ।

तिडिडिंऽग . . . तिडिडिंग . . . तिडिडिंग

मानो नादब्रह्म में विहार करता हो . . . भक्ति-रस में डूबा । हरीश को ब्रह्म की परवाह नहीं थी— भक्ति उसका मार्ग न था । किन्तु उस इकतारे के स्वरसे जैसे उसके बहुत भीतर कुछ झनझनासा उठा — जाने किस आर्त भावना की उसे प्रतीति हुई । वह जैसे अपने से ही बोलने लगा—मानव की आवाज है यह ! कितनी गगन-भेदी — कितनी सजग . . ..

पददलित, बुभुक्षित असहाय मनुष्यता की सम्पूर्ण अनुभूति उसके स्वरमें जैसे केन्द्रित हो उठी थी . . .

तिडिडिंग . - . तिडिडिंग . . . तिडिडिंग

वह ज्यों ज्यों पास आ रहा था, त्यों त्यों हरीश की विचार-धारा अधिक वेगसे प्रवाहित होने लगी, आज हरीश निराश हो बैठा था . . . अत्यंत निराश . . . वैसे तो 'लोकसेवा' का उसका प्रथम वर्ष है । किन्तु पहले ही वर्ष उत्साह की सरिता इतने वेगसे प्रवाहित होती है कि शीघ्रही उसकी तलहटी दिखाई देने लगती है । आज हरीश को चतुर्दिक मरुस्थल दिखाई दे रहा है — शुष्क, अनन्त, कठोर — रेत ही रेत — ! एक साल पहले उसने अपने कार्यका श्रीगणेश किया था —

अपने एक दो साथियों को लेकर वह नगर के दरिद्र नारायणों की वस्ती में घूमने लगा — उनके जीवन का निरीक्षण करने लगा । उसने मनही-मन निश्चय किया — मैं इस वस्ती का रूप ही बिलकुल वदल दूंगा । उसके तरुण मन की कितनी ऊँची उड़ान थी ! सम्भवतः तरुण मन की सर्वंकष आकांक्षाओंकी उड़ान देखकर ही गरुड की कल्पना सूझी होगी । इसीलिये एक ही उड़ान में स्वर्ग-पृथ्वी का पर्यटन करने में वह समर्थ है ।

हरीश सोचा करता — आजतक किसी ने मन से काम करने का प्रयत्न ही नहीं किया ! नहीं तो, अगर प्रत्येक समझदार, शिक्षित, और सम्पन्न व्यक्ति एकेक वस्ती—एक एक फिरका—हाथ में ले-ले तो समाज के सुधरने में कितनी देर लगती है ? सालभर में वह क्या काम करेगा, कितना करेगा इस विचार मात्र से उसका मन खिल उठता । उरूके मानस के उत्तुंग हिमालय [illegible] की कितनी निर्मल गंगा

संचित थी ! उसे लगता—हृदय कपाट खोलते ही उस पावन जल प्रवाह से मैं सम्पूर्ण विश्वको नहला दूँगा — पवित्र कर दूँगा ।

पर वह उत्साह-गंगा आज यथार्थ परिस्थिति के मरुस्थल में शतधा विदीर्ण होगई थी । उसकी चंचल वेगवान धारा चुल्लूभर पानी में विभक्त होगई थी और अन्त में आज मरुस्थल ने पूरी तरह उसे सोख लिया ।

उदास हरीश अपने बरामदे में पड़ा था । उसका मन कहींसे किसी प्रकाश-रेखा की खोजमें विचार-तरंगोंमें भटक रहा था — सुन्न होगया था कि इतने में झनकार सुनाई दी —

तिडिडिंऽग . . . तिड़िडिंग . . . तिडिडिंग . . .

हरीश ने अपने पंख फैलाये — वैसे तो इसके पहले उसने कई बार उस भिखारी का गाना सुना था — कितनी बार उसे देखा था — किन्तु आज उसे एक निराली ही दृष्टि हुई । उसके कान जैसे उस इकतारे का आर्त-स्वर पी रहे थे — पर उसकी आँखें कुछ निराला ही दृश्य देख रहीं थीं—हरीश ने निश्चय किया —

मैं इस आदमी को अपना बनाऊंगा — यह भी तो उनमें से ही है — यह उनके मन पहचानता है उनका दर्द अनुभव करता है — यह अपनें स्वरसे उन्हें जीतेगा—संगठित करेगा इसके मुखसे मैं बोलूँगा, इसके द्वारा उनमें प्रवेश करूँगा । उन्हींमें से एक बनूँगा—आजतक उन्होंने मुझे अपने से दूर रखा — दूसरा समझा — मेरी निर्मल भाव-गंगा उनकी उदासनिता की बालुका में लुप्त हो गई — पर अब . . . इस भिखारी के रूपमें उनके जीवन का जैसे सार ही मेरे हाथ लग गया है । इसका कंठस्वर इतना चैतन्यपूर्ण है, इसका गीत अनुकम्पा से इतना भरा हुआ है कि मेरी आँखों में उनके नये जीवन का जो चित्र अंकित है, उस चित्र से इसे समरस होना ही होगा । बस् — आज से यह मेरी वाणी है —

हरीश को याद आगया—

Scatter as from an unextinguished hearth
Ashes and sparks, my words among mankind!
Be through my lips, to unawakened earth
The trumpet of prophecy—!

उत्साह-मूर्ति हरीश उठ बैठा । भिखारी को आवाज़ लगाई । वह तुरन्त भीतर आया और खड़ताल बजाकर इकतारे के स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगा—

"कान्हाऽऽकुठें गुंतला . . .

पर उन शब्दों की ओर जैसे हरीश का ध्यान ही नहीं गया, या यों कहिये कि ध्यान उसने दिया ही नहीं, क्योंकि वह अच्छी तरह जानता था कि अधिक अर्थपूर्ण—भावपूर्ण शब्दों के अभाव में वह भिखारी 'कान्हा' 'राजसा' आदि शब्द गा रहा था। उसे विश्वास था कि उसके अधिक वास्तविक और महत्वपूर्ण शब्द निर्माण करते ही वह भिक्षुक उन शब्द मुक्ताओं पर टूट पड़ेगा । यह जानते हुए भी हरीश फिर क्यों उसके गीत के शब्दों की ओर देखने लगा ?

इसी तरह उसके साथ रहने वाली उसकी स्त्री की ओर भी हरीश का ध्यान नहीं गया । वह कभी अपने बच्चे को सम्हालती और कभी बगल में लटकती झोली को सँवारती पति की पीठ के पीछे बैठी और पति के गीत आरंभ करते ही उससे भी अधिक अति हृदयंकष और भरे हुए गलेसे उसने पति की आवाज़ में अपनी आवाज़ मिलाई—किन्तु फिर भी वह हरीश को नहीं दिखाई दी उसकी ज़मीन पर लगी—शून्य, उदास आँखें—हरीश को नहीं दिखाई दीं — उसका आर्त स्वर उसे नहीं सुनाई दिया — उसे जो देखना था — दिखाई दे रहा था — जो सुनना था, सुनाई दे रहा था ।

भिखारी का भजन समाप्त हुआ — हरीश ने अब बात चीत शुरू की —

"दिनभर में कितना कमा लेते हो भाई "

"हैं हैं, यही कभी रुपया, कभी आठ आना तो कभी बारह आना . . ." भिखारी दांत निपोरता बोला ।

"तो फिर काफ़ी कमा लेते हो ।"

"क्या साब — एकाध दिन तो मुठ्ठीभर दाने ही मिलते हैं — घर में चार जीव हैं खानेवाले !"

"हूँ ! कहाँ कहाँ घूमते हो ? वहाँ उस तरफ कभी जाते हो—मॉडेल मिल, एम्प्रेस मिल की तरफ—गांजा खेत, शनीचरा . . .

"नहीं साब ! वहाँ तक अपने राम नहीं जाते। बाबू, क्या मिलता है वहाँ ? न पैसा, न अधेला !"

भिखारी ने जैसे जल्दी जल्दी में कह डाला । हरीश कुछ शर्मिन्दा सा हो उठा — पर जैसे साँस रोककर उसने पूछा — अरे, पर कभी तो जाता होगा या नहीं — तेरे ही तो आदमी हैं वे — वहीं रहता होगा तू . . .

“नहीं साब, मैं क्यों रहने लगा वहाँ”— भिखारी जैसे उफन कर बोला । आज कई बरस होगये, वहीं रहता हूँ—धरमपेठ, सिविल-लाइन,— धंतोली, बस् । इन्हीं बस्तियों में आप जैसों के बंगलों में घूमता हूँ—आप जैसों की किरपा से किसी बात की कमी नहीं होती साब —।”

“तू ने कभी कुछ काम नहीं किया . . .?”

नहीं साब—छोटा था तब महाराज के भजनों की चाट लग गई — उनके साथ घूमने लगा — उन्होंने हीं यह इकतारा दिया — बहुत घूमा साब — पूना, कोल्हापूर, बंबई — पर नागपूर जैसा कहीं नहीं साब—ऐसे दयालु लोग कहीं नहीं मिले साब —

जैसे जैसे वह बोल रहा था उसका जी ललचा रहा था। प्रत्येक ‘साब’ के साथ उसकी लालसा बढ़ रही थी—बीच ही में उसने अपना हाथ स्त्री की ओर बढ़ा दिया — तमाखू क बटुए के लिये । उसकी स्त्री “हाय राम” कहकर एकदम खड़ी हो गई । बटुआ पीछे के बंगले में ही रह गया था—वह बच्चे को सम्हालती, झोली हिलाती जल्दी जल्दी चली भी गई, तिसभर भी वह भिखारी अपने स्थानपर से बैठे बैठे उसपर चिल्ला पड़ा—वाह, अच्छा तमाशा है ! एक भी चीज़ का ध्यान नहीं रहता—अगर कहीं . . . . खोगया तो बस होगया . . . अरी ज़रा पैर तो जल्दी बढ़ा” सामने बैठे ‘साब’ की ज़रा भी परवाह न करते हुए उसने अपनी आवाज ऊँची चढ़ाई; पर टस-से-मस न हुआ। भागती हुई—ओझल होती हुई, उस स्त्री की ओर हरीश ने अब देखा—ठिंगनी सी, किसी की दी हुई फटी सी साड़ी लपेटे सिरपर आँचल की किनार फटी—धूल में सने पैर—तब भी उसकी कृशता और शुष्कता स्पष्ट दिखाई दे रही थी —

हरीश के सामने उसका पति बैठा था—एकतारे के तूंबे की तरह उसका मुँह भी ख़ासा चिकना था—माथेपर चंदन का टीका—बाल यत्नपूर्वक बढ़ाये हुए — साफ सुथरा कुर्ता —

हरीश को लगा—उसकी आवाज़ में मानवता की आर्त पुकार तो है—पर वह आलसी पेट की पुकार थी ।

हरीश ने सोचा था—मैं इसे नव जीवन का द्रष्टा बनाऊँगा, पर उसकी आँखें तो महाराज के दर्शनमात्र से सदा के लिये तृप्त हो गई थी—

हरीश ने सोचा था—इसके स्वर के द्वारा मैं सारे संसार में तहलका मचा दूँगा—किन्तु वह तो अपना संगीत धनवानों के द्वार पर बेंच आया था—

क्षणमात्र हरीश को आज कल के कुछ कलाकारों की याद आई ।

वह भिखारी स्वयँ कभी दुखी नहीं हुआ, कभी संतप्त भी नहीं हुआ—साथ ही दुखी संतप्त जनों को अपना कहने तक को तैयार नहीं था—फिर उसे उनके नव जीवन का दर्शन क्यों कर हो ?

वह तो धर्म का सौदा करनेवाला एक विदूषक था, और यह पुण्य कार्य करते करते थकावट आजानेपर अपने ही साथ दरदर भटकनेवाली—गला फाड़कर गानेवाली अपनेही बराबर मेहनत करनेवाली स्त्री को तमाखू के बटुए के लिये नचा रहा था ।

हरीश का मन खट्टा हो गया—भारी हो गया । उसने चुपचाप दुअन्नी-चवन्नी, जो हाथ में लगी उसकी हथेली पर निकालकर रख दी ।

दो पहर भर हरीश का मन बेचैन रहा — भिखारी की कृत्रिम आर्तता पर उसे मन ही मन चिढ़ आरही थी—

शामको हवा बदली—मानो कहती हो—उस बेचारे पर चिढ़ने का तुम्हें क्या अधिकार है ? उसे भगवान ने गला दिया है—थोड़ी-सी बुद्धि दी है । मनुष्य ने भिख मांगने का धर्म सिखाया । दोनों का उसने समन्वय किया — इसमें क्या उसकी गलती हुई ?

उसी हवाने हरीश से पूछा:— तुम्हें प्रकृति ने प्रक्षोभी भावनायें दीं—निरीक्षण शक्ति दी, आँखें दीं, और विचार करने की बुद्धि भी दी । उनमें से तुम केवल भावना ही का उपयोग करते हो—यह क्या उस भिखारी की गलती हुई ?”

[मराठी से अनु०—कु० भारती शर्मा]

दक्षिण का विकट-कवि

[नागेश्वर पशुपति]

दक्षिण में विजयनगर नामक बहुत बड़ा राज्य था। वहां कृष्णदेवराय नामक बड़े पराक्रमी भारतीय साहित्य, कला और संस्कृति के उपासक राजा राज्य करते थे। उनकी सभा में तेनालिराम नाम का एक बहुत बड़ा मसख़रा रहता था जैसे बादशाह अकबर के दरबार में राजा वीरबल। विजयवाड़ा के पास तेनालि नामक ग्राम में, एक ब्राह्मण के घर में, उसका जन्म हुआ था। जब वह लड़का था, तभी से उसमें खूब समय-सूचकता थी, वह प्रत्युत्पन्नमति (तुरन्त उपयुक्त बात या काम सोचनेवाला) था और था अव्वल दर्ज़े का मसख़रा। लड़का बड़ा बातूनी, कुशाग्र बुद्धि और देखने में सुन्दर-सुडौल भी।

एक दिन उस गाँव में कोई साधु आया। तेनालिराम की लम्बी-चौड़ी गप-शप सुनकर प्रसन्न हो गया औरं काली माता की साधना का मंत्रोपदेश दिया, और कहा कि यदि इस मंत्र को जपेगा तो सहस्रमुखी कालिका तुझे दर्शन देगी और यदि तू न डरेगा तो खुश हो कर तुझे मुँहमांगा वर भी देगी। लड़क ने काली माई की उपासना की। समय पर सहस्रमुखी दो भुजावाली काली देवी तेनालिराम के सम्मुख प्रगट हो गई। देवी का वह विकराल रूप देखकर लड़का तनिक भी न डरा; उल्टे ज़ोर से खिल-खिलाकर हँस पड़ा। यह देख देवी ने पूछा—छोकरे! तू हँसा क्यों?' तेनालिराम ने बिनती की — 'देवीजी, मैं इसलिये हँसा कि हम-मनुष्यों को ईश्वर ने एक नाक और दो हाथ दिये हैं; परन्तु जब हमें ज़ुकाम होता है तो दोनों हाथों से अपनी नाक साफ़ करते करते तंग आ जाते हैं। आप के तो एक हज़ार नाकें हैं और हाथ, सिर्फ़ दो ही। अगर कहीं आपको सर्दी-ज़ुकाम हो जाय तो आप ही बताइये, आपके ये दो हाथ कहाँ तक एक हजार नाक साफ़ करने में आपकी सहायता करेंगे?'' लड़के का मज़ाक सुनकर काली उसपर बहुत प्रसन्न हुई और उसे यह वर दिया कि मेरे साथ विनोद करने के कारण आज से तू विकट-कवि हुआ। तेलनिराम ने देवी को इस वरदान के लिये बहुत धन्यवाद दिया और कहा — माई, आपने मुझको बड़ा अच्छा वर दिया। आपकी दी हुई 'विकट-कवि' की पदवी को मैं जब बाईं तरफ़ से पड़ता हूं तो 'विकटकवि' होता हूं और अगर दाहिनी ओर से पढ़ता हूं तो भी 'विकटकवि' होता हूं। उसकी इस वाकचातुरी और समय-सूचकता पर काली माता और भी प्रसन्न हुई और बोली,— 'तेनालिराम! साधारण विकट-कवि नहीं, बल्कि एक दिन तू एक महान् राजमान्य 'विकट-कवि' होगा और दूर दूर तक तेरा नाम फैल जायगा।' थोड़े ही दिनों में तेनालिराम का विकट-कवित्व चारों ओर फैल गया औरं वह विजयनगर के राजा कृष्णदेव के निकट विकट-कवि होकर रहने लगा। पिछली तीन शताब्दियों से आन्ध्रदेश के घर-घर में, वीरबल के चुटकुलों की तरह, विदूषक तेनालिराम विकट-कवि के मनोरंजक लतीफ़े फैले हुए हैं और उनका एक बड़ा भारी संग्रह है।

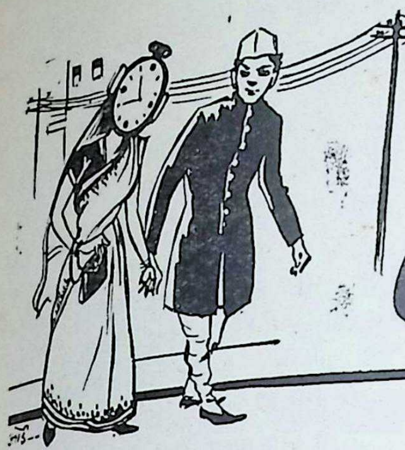

घड़ी

[ज्योतीन्द्र ह. दवे]

"अजी ! कितना समय हो गया, कुछ खबर भी है !"

"हाँ, डेढ़ वजा है ।"

"तो अब सो जाओ । कल सुबह जल्दी नहीं उठोगे ?"

"कहूँ क्या, अभीतक नींद नहीं आ रही है । बस अब केवल छः पेज बाकी रह गये हैं ।"

"मैं कुछ भी सुनने को तैयार नहीं; अब सो जाओ । डेढ़ वज चुका है ।"

*   *   *

"अव उठोगे भी कि नहीं !"

'अभी इच्छा नहीं होती ।'

'नौ वज रहे हैं । आफिस जाने में देरी होगी ।'

'अभी नींद पूरी नहीं हुई ।'

'वह उड़ जायगी, चाय पीलो । मालूम है— नौ वज चुके हैं ।'

*   *   *

'दस वज गये ! अभीतक नहाना नहीं हुआ ! आज जरूर देर हो जायगी ।'

'भोजन करोगे कि नहीं ? साढ़े दस वज रहे हैं ।'

'मुझे भूख नहीं है ।'

'ज्यादा नहीं; केवल दो ग्रास लेलो'

*   *   *

'कितनी देर हो गयी है ! चिन्ता से मैं आधी हुई जा रही हूँ ।'

'क्यों ! अभी तो साढ़े सात ही वजे हैं ।'

'ठीक है । पर रोज साढ़े छः तक आते थे, और आज साढ़े सात हो जाने पर भी नहीं आये । कहो भला ! हमें कितनी चिन्ता होती होगी !'

'काम अधिक होने से देर हो गई ।'

'मैं तो कभी की घड़ी देखें देखकर चिंता कर रही हूँ कि आज क्या हुआ ?'

रातको सोने के पहले घड़ी में चावी देते समय यह विचार कर कि चावी दे कर मैं ही घड़ी को चलाता हूँ, मैं फूला नहीं समाता । परन्तु बात एकदम इसके विरूद्ध है । मैं घड़ी को नहीं, पर घड़ी ही मुझे चावी दे कर चलाती है । वह जब कहती है तब मुझे सो जाना पड़ता है फिर चाहे नींद आती हो या न आती हो । उसकी घुड़की सुन कर मुझे खाना ही पड़ता है; फिर चाहे भूख हो या न हो । चाहे जितनी मीठी नींद आरही हो परन्तु उसका हुक्म होते ही जवरन विछौना छोड़ देना पड़ता है । समय को नापने का दिखावा करती हुई वह हमें ही गतिमान करती है । 'कालो न यातो वयमेव याताः' समय नहीं चल रहा है; हमीं चल रहे हैं—हम पूरे हो रहे हैं । हम समझते हैं कि हम घड़ी को चलाते हैं, पर सच तो यह है कि उसी के इंगित–इशारे पर हम चलते हैं ।

कहते हैं, यंत्रों (मशीनों) ने मानव को मशीन के समान बना डाला है । उसमें भी घड़ी ने तो हद ही कर डाली है । मनुष्य पूरा उसके कब्जे में

है। बर्नार्डशा ने एक स्थान पर लिखा है। 'पुरुष स्त्री-जाति का गुलाम है। क्या, इससे अधम गुलामी दुनिया में क्या कोई दूसरी हो सकती है ?' परन्तु आज मानव- जिस तरह घड़ी का गुलाम बन गया है, इससे बढ़कर कोई गुलामी नहीं हो सकती। फिर भी जो मनुष्य उसकी गुलामी जितनी दृढ़तापूर्वक करता है वह समाज में उतना ही सुसंस्कृत, सभ्य और समय का पाबन्द माना जाता है। घड़ी के शासन-अनुशासन का उल्लंघन करनेवाला क्रांतिकारी नहीं कहलाता उसे 'जंगली', 'असभ्य' की उपाधियों से विभूषित किया जाता है। जो व्यक्ति जितना ही ज्यादा घड़ी का अनुचर, सहचर हो वह उतना-ही ज्यादा सभ्य समझा जाता है, समझे !

उस दिन एक प्रतिष्ठित मित्र ने मुझे आमंत्रित किया।

मैं जब उनके बतलाये हुये समय पर, उनके स्थान पर पहुंचा तो वे वहाँ मौजूद नहीं थे। पूछताछ करने पर पता चला कि "अभीतक वे मेरा इन्तजार करते बाहर चले गये हैं।"

"क्यों ? मुझे तो बारह बजे मिलने के लिये कहा था ? बारह तो अभी बजे हैं।"

'जी नहीं, देखिये; बारह बजकर पाँच मिनिट हो चुके हैं। बारह बजकर चार मिनिट तक आपका रास्ता देखा; उसके बाद ही वे गये हैं।'

'अरे ? पाँच मिनिट भी राह न देखी ?'

'पाँच मिनिट ?' आश्चर्य की पराकाष्ठा बतलाते हुए उस आदमी ने कहा : 'पांच मिनिट वे राह देखें ! आप उनको नहीं पहचानते ?'

'नहीं, भाई ! मैं इस रूप में उन्हें नहीं पहचानता।'

'वे निश्चित समय पर काम करते हैं—जरा-सी देरी उन्हें सह्य नहीं। सुबह ६ बजे उठते हैं, कभी पौने छः या सवा छः नहीं होते। दातून छः बजकर पाँच मिनिट पर; छः बजकर पंद्रह मिनिट पर चाय। दस बजे भोजन। कभी दस में पाँच कम नहीं या पाँच अधिक नहीं। दूकान पर जाने के लिये घर से ग्यारह बजकर ग्यारह मिनिट पर निकलते हैं—उसमें भी कभी एक मिनिट भी कम ज्यादा नहीं होता। आप समझ गये होंगे ?"

खूब समझा ! इतनी नियमित तो शायद घड़ी भी न हो। शायद उन महाशय ने अपने मरने का समय भी निश्चित कर लिया होगा ? यह कहकर जवाब की राह देखे बिना मैं वहाँ से चल दिया।

सभी मनुष्य घड़ी के समय से एक जैसे नहीं होते; फिर भी घड़ी का थोड़ा अधिक प्रभाव तो सभी पर पड़ता ही है। यह सत्य है कि यंत्रों ने मनुष्य को यंत्र सदृश बना दिया है; परन्तु यह भी सत्य है कि मनुष्य ने भी यंत्रों में थोड़ी-अधिक मानवता भी ला दी है। मानव को पूर्ण रूप से यंत्र बना देनेवाली घड़ी में तो दूसरे यंत्रों की अपेक्षा अधिक मानवता है। कई बार तो ऐसा मालूम होता है, वह यंत्र नहीं है—एक इच्छा-शक्तिवाला प्राणी है।

* * *

अपनी जीवन-संगिनी पत्नी से भी घड़ी का महत्व अधिक है। घर का कमरा, पाठशाला, आफिस, नाटक-घर, दवाखाना, हर जगह घड़ी का रहना आवश्यक है। इतना ही नहीं; हमारे हृदय के पास रह कर हमारी कलाई पर कब्जा भी स्त्री की अपेक्षा उसने जबरन का रक्खा है। पत्नी केवल एक बार पाणिग्रहण के अवसरपर हमारा कर-ग्रहण करती है। यह तो प्रतिदिन कर-ग्रहण ही नहीं करती; हाथ पर चढ़ बैठती है। 'नारी बिना घर की शोभा नहीं।' ऐसा भले ही कहने वाले चिल्लाते रहें; परन्तु सच तो यह है कि घड़ी बिना गृह, गृह नहीं। पत्नी की टक्-टक् न सुनें तो चलेगा; परन्तु घड़ी की टक्-टक् सुने बिना कोई चारा नहीं। अपनी प्रियतमा से भी अधिक विशेष सम्मान का ख्याल हमें घड़ी का रखना पड़ता है।

स्त्री की तरह घड़ी भी अलंकाररूप है। माता अथवा पत्नी की तरह वह जगाती भी है और सुलाती भी है। वह घबराती है और आश्वासन भी देती है। घर के बाहर निकाल देती है और वापिस लौटने की उत्कंठा भी हममें वही उत्पन्न करती है। दूसरों के घर में झाँकने की प्रेरणा भी वही देती है। घड़ी को अपना स्वर सुनाना बहुत अच्छा लगता है और वह हमें सुनाने को भी आतुर रहती है। अपने काँटों रूपी हाथों को

फैलाकर मानो वह हमसे कुछ माँगती है; ऐसा प्रतीत होता है। प्रियतमा की तरह उसे भी एक बार देखकर कोई संतुष्ट नहीं होता। उसके मुख-दर्शन की उत्कंठा बार बार होती है। कोमल तथा गंभीर स्वर से वह हमारे श्रवणों का और सुंदर मुखचंद्र से हमारे नयनों का रंजन करती है। स्नेह बिना उसका जीवन नहीं। स्नेह के अभाव में उसकी कार्यशक्ति मंद हो जाती है। उसके घर में रहने से एकांत नहीं लगता। रात्रि में यदि कोई न हो; और नींद न आती हो तो उसकी आवाज़ से हमें सवारा मिलता है कि हम अकेले नहीं हैं।

साहित्य में जिस प्रकार नायिका-भेद बतलाए गये हैं उसी प्रकार घड़ी के भी भेद गिनाये जा सकते हैं। कितनी ही घाड़ियां मुग्धा अज्ञात यौवना जैसी होती हैं, कितनी ही खंडिता। रूपगर्विता तो लगभग सभी होती हैं, फिर चाहे रूप हो या न हो; पर रूप का गर्व तो कुछ घड़ियों को होता ही है। कुछ तो इतनी लजीली होती हैं कि हाथ लगते ही लजवंती के पौधे की तरह लज्जित होकर अटक जाती हैं। धीरा-अधीरा के भेद तो प्रायः सभी जानते ही हैं। तुम चाहे कितना भी समझाओ, धमकाओ, घडीसाज से दुरुस्त कराओ तो भी कितनी ही घड़ियाँ ऐसी होती हैं जो रोज लेट ही चलती हैं, कुछ फास्ट भी। समय के साथ रहना वे शायद नहीं जानतीं। कितनी तो प्रगतिशील होती हैं—प्रोग्रेसिव्ह। निश्चित समय से एक डेढ़ घंटा आगे चलना वे अपना नियम-सा बना लेती हैं। कुछ प्राचीनता की पुजारी होती हैं—कट्टरपन्थी। उनकी दृष्टि भूतकाल की ओर ही लगी रहती है—जब देखो तब।

इन सब से अद्भुत एक घड़ी मेरे पास है। उसने दोनों लक्षणों का सुंदर समन्वय साधा है। धीरा-अधीरा दोनों नायिकाओं के गुण उसने अपने में उतार लिये हैं। दो दिन तक तो वह सारे गाँव की घड़ियों से आगे रहती है और तीसरे दिन सब के पीछे हो जाती है। आज यदि आधा घंटा आगे है तो कल बीस मिनिट पीछे हो जायगी। उसपर किसी प्रकार का विश्वास नहीं किया जा सकता। कब आगे चलने लगेगी कब पीछे भागने लगेगी—इसका भी कुछ ठिकाना नही। घंटे बजाने के समय तो यह अदभुत अनिश्चितता दिखाती है। कब कितने घंटे बजायगी कुछ कहा नहीं जा सकता।

एक समय हमारे यहाँ आये हुए मेहमान को उसने घबड़ा दिया था। उन्हें सुबह की गाड़ी से जाना था। पाँच बजे उठने का निश्चय कर, और उस निश्चय को हम सब पूरा करेंगे ऐसा वचन ले, वे निश्चिन्त होकर सो गये। "छः बज गये। मुझे किसीने जगाया नहीं—अरे! उठो, उठो, छः बज गये।" इस तरह घबराकर वे चिल्लाने लगे।

'अरे! मैं तो अभी सोया हूं। इतनी देर में छः कैसे बज सकते हैं?' कहकर मैं खड़ा हो गया।

'अभी घड़ी में छः बजे हैं, कहकर वे लालटेन को घड़ी के पास ले गये; तब उसमें रात के सवा तीन ही बजे थे।

"अभी तो बहुत देर है"—यह कह हम दोनों निद्राधीन हो गये। थोड़ी देर के बाद "चलो! सचमुच अब पाँच बज गये हैं।" ऐसा कहकर उन्होंने मुझे फिर से जगाया। आँख मलते-मलते आसपास फैले हुए प्रगाढ़ अंधकार को चीर कर मैंने कहा—"नहीं जी, अभी बहुत देर है।"

'नहीं भाई! अभी आठ के टकोरे सुनाई दिये। जब तीन बजे छः घंटे बजे थे, तब आठ घंटे जो बजे हैं तो जरूर पाँच ही बजे होंगे। तुम्हारी घड़ी में तीन घटे अधिक बजते हैं।'

'तुम भूलते हो।'

'उहूँ, जरा देखें तो।'

लालटेन जलाकर घड़ी देखी। उस में चार में दस कम थे। और उसके बाद तो मानों उसे धुन-ही लग गयी; सात बजे तक लगातार घंटे बजाती ही गई। मेरे मेहमान ने इक्कावन तथा मैंने एक सौ तियालीस तक गिनकर आगे गिनने का प्रयत्न छोड़, सोने की तैयारी की और फिर सोने का प्रयत्न छोड़ बातचीत करना शुरू किया; और अंत में फिर सोने की कोशिश कर देखी। इस बीच में हम दोनों में से किसी को भी घड़ी को बंद करने की बात नहीं सूझी। अभी कितने ही दिनों से मैंने उसे चाबी देना बंद कर दिया है। परन्तु उसकी जीने की लालसा इतनी प्रबल है कि अभी भी वह चल ही रही है।

कई घड़ियों की ज़रा ज़रा में कमर की कमानी ढीली पड़ जाती हैं। तुम उसके सामने देखोगे तो उसकी कमान छटक जायगी। कितनी ही घड़ियाँ बहुत आलसी होती हैं। वे केवल पड़ी रहना ही पसंद करती हैं। उन्हें खड़ा रखें तो भी वे नहीं चलेंगी। दीवाल पर लटकाओ अटक जायेंगी। परन्तु टेवल पर या किसी स्थान पर सुलादो औंधे मुँह तो वे अवश्य चलने लगेंगी। कुछ घड़ियों को तो बार बार सर्दी लगते हुए भी मैंने देखा है। जाड़ों के दिनों में तो उन्हें सेकना पड़ता है। सिगड़ी के पास ले जाकर उन्हें गर्म न किया जाय तो दो तीन दिन बड़ी मुश्किल से चलकर वह बन्द हो जाती हैं।

प्रत्येक घड़ी का अपना अलग अलग व्यक्तित्व है। प्रत्येक का दिखावा और स्वभाव जुदा होता है। दर्शकों के हृदय में भी घड़ी को देखकर भिन्न भिन्न विचार आते हैं। कितनी घड़ियाँ बालिका के समान सरल और सुकुमार दिखाई देती हैं, कुछ यौवन की मस्ती से पूर्ण; कुछ गंभीर प्रौढ़ा और कुछ केवल मरने के लिये जी रही हों ऐसी वृद्धा-सी भी दिखाई देती हैं। कुछ घड़ियाँ रसिक जनों की दृष्टि अपनी ओर सदैव आकर्षित रखती हैं तो किसी को देखने का भी मन नहीं होता। कुछ ललचाती हैं, तो कुछ मनःक्षोभ भी पैदा करती हैं। बहुत पहिले हमारे यहाँ एक बड़ी घड़ी थी। धीर गंभीर, प्रौढ, प्रभावशाली और उसका स्वर भी इतना भव्य और गंभीर कि सुननेवाला कुछ समय के लिये स्तंभित हो जाता। हमारा नौकर घड़ी वाले कमरे में जाने से भी डरता था और उसके घंटे सुन थोड़ी देर तक स्तब्ध हो जाता था। मैंने उससे एक दिन पूछा—‘क्यों रे! इस घड़ी को देखकर तू इतना अधिक क्यों घबरा जाता है?

‘मालिक, इस घड़ी को देखकर मुझे अपनी सास की याद आजाती है।’ उसने कहा।

‘सास? इस घड़ी को देख मुझे सास याद आजाती है?

‘परन्तु तू डरता क्यों है?’—मैंने उससे पूछा।

‘मेरी सास का मुँह इस घड़ी के समान ही है। न जाने क्यों मैं उससे बहुत घबराता हूँ। इसी लिये तो मैं वर्षों से सुसराल नहीं जा रहा हूँ। इसी लिये यह ससुरी यहाँ आगई है।’

मतभेद के विषयों में तो घड़ी विद्वानों को भी मात कर देती है। दो विद्वान किसी विषय पर एक मत हो सकते हैं; परन्तु दो घड़ियाँ कभी साथ साथ नहीं चलेंगी। जिस प्रकार प्रत्येक का मत जुदा होता है ठीक उसी प्रकार घड़ी घड़ी में भी भिन्न समय होता है।

अमेरीका के पहिले प्रेसिडेंट के विषय में कई किम्वदंतिया प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक यह है कि प्रेसिडेंट का मुंशी रोज देरी से आता था। एक दिन प्रेसिडेंट ने उसे ठीक निश्चित समय पर आने की सूचना दी। मुंशी ने अपना बचाव करने के लिये घड़ी को दोषी ठहराया और कहा ‘घड़ी लेट थी, इस लिये मुझे आने में देरी हुई।’

‘तो तुम घड़ी बदल दो नहीं तो मुझे मुंशी बदलना पड़ेगा।’ प्रेसिडेंट ने साफ़-साफ़ कह दिया। यह किस्सा मशहूर हो चुका है।

प्रेसिडेंट की बुद्धिमत्ता, शील, उद्योग-परायणता की प्रशंसा करते हुए यह कहना ही पड़ेगा कि घड़ी के बारे में उनका ज्ञान अत्यन्त अल्प था। दूसरी घड़ी ऐसी ही मिलेगी जो हर वक्त ठीक समय ही तुमको बतायेगी? इस विषय में कैसे निश्चित मत दिया जा सकता है? और उनकी ही घड़ी ठीक, उनके मुंशी की घड़ी बेकार, यह भी उन्होंने किस आधार पर मान लिया? संभव है, मान भी लें कि सब घड़ियों से मुंशी की घड़ी पीछे चलती थी अर्थात् वह अल्पमत में थी। तो कहना यह पड़ेगा कि क्या बहुमत के जोर से ही सत्य का निर्णय किया जा सकता है? सत्य तो यह है कि जिस घड़ी पर सारा संसार अधिक से अधिक विश्वास कर अपने सारे काम किये जाता है वे ही घड़ियाँ कम से कम विश्वासपात्र होती हैं। एक घड़ी को ठीक मान दूसरी को बिगड़ी हुई माननेवाले हम हैं कौन? इतना ही नहीं, जहाँ पन्द्रह बीस घड़ियाँ भिन्न भिन्न समय बतलाती हमारे सामने घुड़क रही हों सच वहाँ हम किसको मानें, किसको न मानें? उदाहरण के रूप में आज मैं घर से घड़ी में ग्यारह देखकर निकला और मैंने केवल अपने मुहल्ले की आठ घड़ियाँ देखीं उनमें निम्न समय था—पहली में १०-४५, दूसरी में ११-५, तीसरी में ११-३, चौथी में १०-५२,

१९५०

पाँचवी में ११-१५, छठी में १०-४९, सातवीं में ११-३५ और आठवीं में ९-४५। बताओ अब मुझे क्या समझना चाहिये। यदि इससे अधिक घड़ियाँ देखीं होती तों मैं और भी सन्देह में पड़ जाता। इसलिये मैंने तो यह निश्चय कर लिया कि नौ और बारह के बीच में कोई समय हो गया है, और समय के बारे में निरर्थक विचार करना ही मैंने छोड़ दिया।

इस निरंतर गतिशील विश्व का घड़ी एक सुंदर प्रतिक है। वह हमेशा चला ही करती है; जरा भी नहीं रुकती और यदि रुकती है तो बिगड़कर ही। और इतना अधिक चलकर भी जाती कहीं भी नहीं। जहाँ थे वहीं के वहीं। प्रगतिवादियों की तरह 'मैं हर समय प्रगति करती हूँ' यह विचार कर वह मन-ही-मन फूली नहीं समाती होगी; परंतु अंत में चक्र में बंद होकर ही तो उसे चलना होता है। उसके काँटे भी विचारे घूम फिर कर वहीं आ जाते हैं। मनुष्य एक दूसरे से मिलते हैं, जुदा भी होते हैं। एक संस्कृत कवि ने इसकी उपमा समुद्र में मिलने और जुदा होनेवाली लकड़ियों से दी है। उसके बदले बार बार मिलने और अलग होनेवाले घड़ी के काँटो की उपमा दी होती तो वह अधिक उपयुक्त होता। कई बार तो ऐसा भी लगता है मानो घड़ी का एक काँटा दूसरे काँटे को खोजने के लिये—पकड़ने के लिये—दौड़ रहा है। यह देखकर ग्रीक फिलासफर ने स्त्री और पुरुष को अविभक्त आत्मा के दो अर्धांग बताकर एक अर्धात्मा दूसरे अर्ध भाग की खोज में घूमती है यह जो कल्पना की है वह याद आती है। अविभक्त समय—भगवान के ये दो अर्धांग एक दूसरे की खोज में घूमते हैं। क्वचित् मिल जाते हैं; पर विधि की (अथवा घड़ी की) क्रूर लीला के बल से फिर जुदा हो जाते हैं और भटकने लगते हैं। उनकी यह अनन्त परिक्रमा पूरी ही नहीं होती।

आजकल घड़ियाँ चौकोनी, अष्टकोण, लंब-चौकोनी आदि भिन्न भिन्न बनावट की आती हैं! परन्तु मेरे मन में तो यह पहले से ही निश्चय हो गया था कि घड़ी चौरस ही हो सकती है। गोल हो वही घड़ी, बाकी सब घड़ियाँ विकृत बदशक्ल—बेडौल मजाक सी मुझे लगती हैं। बचपन से घड़ी की गोलाकृति देखकर उसकी दूसरी आकृति हो ही नहीं सकती यह विचार मेरे मन में जम गया है। घड़ी यदि गोल हो, तभी उसमें काँटे कोल्हू के बैल के समान घूमा करते हैं यदि चौरस या अष्टकोणवाली हो तो काँटे उसके कोने में जा बैठेंगे या एकाद कोना फोड़, मार्ग निकालकर भाग जायँगे ऐसा मुझे लगता।

ईश्वर ने मनुष्य को अपनी आकृति के समान ही बनाया है ऐसा कहा जाता है, उसी प्रकार मानव ने भी अपनी मुखाकृति के समान ही घड़ी के मुख की आकृति निश्चित की है और यदि उस आकृति को बदल दिया जाय तो मनुष्य और घड़ी के साम्य में विरोध उत्पन्न हो जावेगा ऐसा मुझे कभी कभी लगने लगता है। शून्य से सृष्टि का सृजन हुआ है यह बात शून्य जैसी घड़ी हमें समझा सकती है।

एक तरह से सोचें तो हम लोग घड़ी के समान हो तो हैं? किसी ने हम में चाबी भर दी है और इसीलिये हम इस संसारचक्र में घड़ी के समान चलते रहते हैं। संसार के अनादि अनंत चक्र में हम निरंतर भ्रमण—निरुद्देश्य और निरुपाय करते ही रहते हैं। कौन कह सकता है कि मानव-जीवन के इस निरन्तर चंक्रमण का उद्देश्य क्या है और कौन-सी जगह पर जाकर यह रुकेगा? हममें भरी हुई चाबी जिस दिन समाप्त हो जायगी उस दिन इस भ्रमण से हमें मुक्ति मिलेगी ऐसा सोचकर मन का समाधान कर लेते हैं; और मोक्ष का बड़ा नाम देकर धर्माधर्म, नीति-अनीति, कार्याकार्य आदि के नये नये काँटे निर्माण कर उसी के द्वारा समय के समान ही अगम्य और अनादि अनंत ऐसे मनुष्यत्व का माप खोजने के लिये हम आत्म-मंथन कर रहे हैं।

मुझे आश्चर्य हो रहा है कि मानवजीवन की तुलना विचारकों ने अनेक वस्तुओं के साथ की है परन्तु घड़ी के साथ क्यों नहीं की ज़ब दोनों कई बातों में समान ही हैं?

[गुजराती से अनु०—श्री. रतनलाल कश्यप]

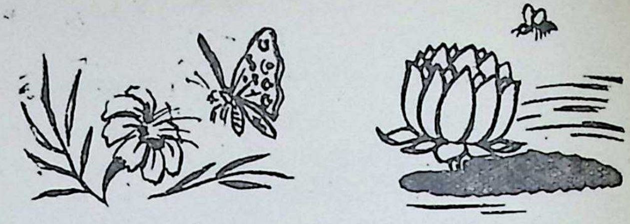

मधु-संचय

(१) धर्म-साधना में समन्वयः

भारत की सांस्कृतिक परम्परा में सम्प्रदायजात भेदों का महत्व नहीं हैं यही कारण है कि एक ही परिवार में विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी पाये जाते हैं । यही नहीं, कोई भी भारतीय एक साथ ही भिन्न सम्प्रदायों में निष्ठा रख सकता है । 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' के अनुसार वह विभिन्न देवी-देवताओं के रूप में विश्व की नियामक परम शक्ति की उपासना कर सकता है । निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है—

अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः
सभामध्ये तु वैष्णवा;
नानारूपधराः कौला विचरन्ति
महीतले ।

बहुधा यह श्लोक निन्दा या उपहास के लिये उद्घृत किया जाता है । किन्तु इस श्लोक में कौल सम्प्रदाय की समन्वयात्मक प्रवृति की ओर सर्वथा सत्य और भारतीय परम्परा के अनुकूल संकेत है ।

प्रसिद्ध मैथिलकवि विद्यापति (१५ शताब्दी) में ऐसी ही धर्मसाधना का परिचय मिलता है । इस विषय पर भी दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य का एक संक्षिप्त लेख 'गंगानाथ झा रिसर्च जर्नल (भाग ६ अंक ३) में प्रकाशित हुआ है, जिससे सांप्रदायिक उदार दृष्टिकोण के मत को पुष्टि मिलती है । अपने अमर ग्रन्थ 'पदावली' के कारण विद्यापति की कृष्णभक्ति और वैष्णव धर्म तो विदित है । किन्तु अभी यह बात उस मात्रा में ज्ञात नहीं है कि वे शैव एवं शाक्त भी थे । 'शैवसर्वस्वसार' में शिवस्तुति कर उन्होंने अपने शैव होने का प्रमाण दिया है । उनकी 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' आज भी बंगाल में वार्षिक दुर्गोत्सव की पूजाविधि पर एक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है । नवद्वीप (नदिया) के एक प्रसिद्ध शाक्त परिवार में उनके एक नवीन तंत्रग्रन्थ का पता चला है । उसका नाम आगमद्वैतनिर्णय है । इस पुस्तक में विद्यापति ने अनेक पूर्वकालीन आगम-ग्रन्थों का तथा अपने विशिष्ट सम्प्रदाय (अस्मत्सम्प्रदाय) और 'पैतृकःपन्थाः' के मतों का निर्देश किया है ।

विद्यापति के एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'भूपरिक्रमण' की सम्पूर्ण हस्तलिखित प्रति कलकत्ता संस्कृत कॉलेज पुस्तकालय में सुराक्षित है । इसमें बलराम द्वारा पापप्रक्षालनार्थ की गई भू-प्रदक्षिणा का वर्णन है । द्रुपद देश, ब्रम्हावर्त, महाप्रयाग, काशीक्षेत्र, सिद्धदेश और जनक-देश—इन ६ क्षेत्रों का रोचक वर्णन इसमें किया गया है । विद्यापति के इस ग्रन्थ का उपयोग संस्कृत में लिखे गये अनेक उत्तरकालीन भूगोलसम्बन्धी ग्रन्थों में पाया जाता है, जैसे भविष्य पुराण का ब्रम्ह काण्ड, देशावली, विवृति, दिग्विजय प्रकाश आदि । इन ग्रन्थों में अनेक दन्त-कथाएं अतथ्य घटनाएं एवं काल्पनिक भौगोलिक नाम बाद

१९५०

में भर दिये गये हैं। तो भी उनके मूल में ऐतिहासिक सामग्री का अस्तित्व निःसन्दिग्ध है। कलकत्ता संस्कृत कॉलेज पुस्तकालय की भविष्य पुराण की प्रति में विद्यापति की जीवनी का रोचक वर्णन आया है। उनके विषय में कहा गया है कि वे "तीरभुक्ति (तिरहुत) प्रदेश के शृंगार-रस वक्ता, वावदूक, सिद्धयश, परम धार्मिक, आद्यादेवी के प्रसाद से प्राप्त कवित्व शक्तिवाले थे। उनके जन्म के विषय में कहा है कि वे गर्भाधान से तेरहवें मास में जन्मे थे। इस विधान में सत्यता का कितना अंश है, यह कहना कठिन है। अस्तु—उपर्युक्त अनेक ग्रन्थों के आधार पर यह तो निश्चित है कि विद्यापति की धार्मिक-साधना समन्वयात्मक और उदार-दृष्टि-पूर्ण थी।

(२) 'रासो' शब्द की व्युत्पत्तिः

'पृथ्वीराज-रासो' हिन्दी में वीरगाथा काल का एक प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य है। इसका नाम 'रासो' कैसे पड़ा, यह एक विवादास्पद विषय है। म. म. हरप्रसाद शास्त्री ने 'राजयश:' शब्द से 'रासो' की व्युत्पत्ति मानी है। पं. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार रासो 'रसायन' का अपभ्रंश है। तासी नामक फ्रेंच विद्वान् ने इसे 'राजसूय' शब्दसे निकाला है। काशीप्रसाद जायसवाल रासो को 'रहस्य' शब्द से जोड़ते हैं। किन्तु अधिकांश में प्रचलित मत 'रासो' का मूलरूप 'रास' या 'रासक' मानता है। गंगानाथ झा रिसर्च जर्नल (भाग ६ अंक ३) में श्री शैलेन्द्रनाथ घोठसाल ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है।

विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण (६ परिच्छेद) में 'रासक' का, एक उपरूपक के भेद के रूप में, उल्लेख है। उसकी विशेपताओं में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं। पांच पात्र, अनेक भाषाओं और विभाषाओं का उपयोग, सूत्रधार का अभाव, एक अंक, नृत्य, ताल, लय का आधिक्य। इस उपरूपक के उदाहरण आज भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध नहीं हैं। विश्वनाथ ने केवल 'मेनकाहित' नामक 'रासक' का नाम लिया है। वह किस कवि का है, या उसमें क्या कथावस्तु थी, इसका जिक्र भी नहीं किया है। तो भी 'रासक' नामक उपरूपक के निर्देश से मध्ययुगीन अपभ्रंश काव्यों के विकास पर प्रकाश पड़ता है।

'रास' शब्द भागवत और हरिवंश में आया है। वहां इसका अर्थ 'गोपियों के साथ कृष्ण का नृत्य' है (रास–रसयति, आनन्द देनेवाला, शृंगार रस का उद्रेक करनेवाला)। शारदी पूर्णिमा की रात्रि के विशिष्ट 'कृष्णनृत्य' की 'क' प्रत्यय लगाकर 'रासक' कहा गया है। शृंगाररस को अभिव्यक्त करने में नृत्य के साथ गीत का भीं प्रयोग किया गया होगा। तबसे 'रासक' का द्विविध विकास हुआ। नृत्य पर अधिक महत्व देने से 'रासक' का रूपान्तर अभिनयात्मक 'कृष्णलीला' में हुआ। नृत्य और अभिनय का घनिष्ठ सम्बन्ध तो 'नाटक' (नृत्–नट् धातु से बना) के नामकरण से ही स्पष्ट है। आगे चलकर 'रासक' एक स्वतंत्र उपरूपक बन गया। सारांश यह कि शृंगाररस प्रधान, नृत्यप्रचुर, अनेक भाषान्वित, कलापूर्ण एकांकी

(लगातार, बिना विच्छेद के) अभिनय को 'रासक' उपरूपक कहा गया। 'रासक' नृत्य और 'रासो' काव्य के बीच का सम्बन्ध जानने के लिये उपर्युक्त 'रासक' उपरूपक का जानना आवश्यक है। एक ओर तो 'रासक' नृत्य का विकास 'रासक' उपरूपक में हुआ, दूसरी ओर उसका विकास 'रासो' काव्य में हुआ। नृत्य के स्थान में गीतों का प्रचलन अधिक होने से कालांतर में नृत्य (अभिनय) को गौण स्थान देकर गीतों को प्रधानता दी गई। 'रासक' के इन गीतों में प्रकृति, ऋतु, प्रेम आदि का वर्णन रहता था इससे 'रासक' में दृश्यात्मकता के स्थान में श्रव्यात्मकता आ गई। 'दृश्य' रासक अब 'काव्य' होगया। देश की राजनैतिक परिस्थिति के अनुसार 'रासक' के गीत श्रृंगाररस की अपेक्षा वीररस को अधिक महत्व देने लगे, या यों कहिये कि श्रृंगाररस को वरिरस का अनुयायी बना दिया गया। फलतः 'पृथ्वी-राज-रासो' ऐसे वीर गाथा काल के प्रबन्ध-काव्यों का उदय हुआ। रासक रासउ, रासो—इस क्रम के अनुसार भागवत का रासक मध्ययुग का रासो कहलाने लगा। साहित्य-दर्पण में उल्लिखित 'रासक' उपरूपक में रासक (दृश्य) और रासक–रासो (काव्य) का समन्वय है। पूर्णतया 'दृश्य' भागवत का रासक पहिले तो 'दृश्य-काव्य मिश्रित' 'रासक' उपरूपक बना, और फिर कालन्तर में पूर्णतया 'काव्य' रासो (प्रबन्ध-काव्य) में उसकी परिणति हुई।

—**श्री. सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी**

ज्ञान-गणित

१. जगत के देव तीनः—

(१) ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) (२) विष्णु (पालक) और महेश (संहारक)।

२. लोक तीनः—

स्वर्ग, मृत्यु और पाताल।

३. गुण तीनः—

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण।

४. अग्नि तीनः—

अग्नि, जठराग्नि और वड़वानल।

५. नाड़ी तीनः—

इडा, पिंगला और सुषुम्णा।

६. वेद चारः—

ऋक्, यजु, साम और अथर्व।

७. वर्ण चारः—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

८. मुक्ति के प्रकार चारः—

सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य और सारूप्य।

९. युग चारः—

सत्ययुग, द्वापरयुग, त्रेतायुग और कलियुग।

१०. मोक्ष चारः—

त्याग, बलिदान, स्नेह और सत्य।

११. पंचभूतः—

पृथ्वी, अप् (जल), तेज (अग्नि) वायु और आकाश।

१२. कामदेव के वाण पांचः—

आम का बौर, मोगरा, कमल, अशोक और नील कमल। कमल, अशोक, आम्र नवमल्लिक और नलिोत्पल।

१३. उन्नति के प्रकार पाँचः—

स्पर्द्धा, सहिष्णुता, सचाई (ईमानदारी), मिलनसार स्वभाव और आकांक्षा।

१४. दर्शन शास्त्र छहः—

सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा।

१९५०

१५. शरीर के चक्र छहः—

आधार, अधिष्ठान, मणिपूर, आग्निचक्र, विशुद्ध और अनाहत।

१६. ऋतु छहः—

हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद।

१७. मुख्य ऋषि सातः—

भारद्वाज, जमदग्नि, अत्रि, वाशिष्ठ, कश्यप, गौतम और विश्वामित्र।

१८. समुद्र सातः—

क्षीर, दधि, क्षार, मिष्ठ, मधु, इक्षु, घृत।

१९. सिद्धियाँ आठः—

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

२०. वसु आठः—

व, सोम, धरा, अनिल, अप, प्रत्यूष, प्रभास और अनल।

२१. भक्ति नौः—

(नवधा भक्ति), स्मरण (भगवान के गुणों की याद), कीर्तन (भगवान के गुणों का कथन), श्रवण (भगवान के गुणों को सुनना), पादसेवन, दास्य, सख्य, पूजन, वन्दन (नमस्कार) और आत्मनिवेदन (स्वार्पण)

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्॥

२२. द्वीप-खंड नौः—

केतुमाल, हिरण्य, इलावृत, भरत, किन्नर, हरिवर्ष, कुरु, रम्य और भद्राश्व।

२३. दिशा दशः—

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊर्ध्व (आकाश) और अधर (पाताल)।

२४. समुद्र-मन्थन के रत्न चौदहः—

सुरा, पारिजात, कौस्तुभमणि, लक्ष्मी, कामधेनु, ऐरावत, अप्सरा, चन्द्रमा, सप्तमुखी अश्व (इन्द्रका घोडा), धन्वन्तरि वैद्य (चीफ़ मेडिकल आफिसर) शार्ङ्ग धनुष, शंख, अमृत और विष।

२५. पूजा के प्रकार सोलहः—

षोडशोपचारः—

आवाहन, आसन, अर्घ्यपाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, परिक्रमा और प्रणाम।

इसी प्रकार शृंगार सोलह, और संस्कार सोलह हैं।

—श्री के. जे. आचार्य

भारतीय भाषाओं पर दृष्टिः—

१. **कन्नडः**—कन्नड भाषा में सौन्दर्यमयी नवीन चेतना "रामाश्वमेध" के रचयिता कविवर मुद्दन्ना के समय से प्रारम्भ हुई थी। इस रचना-परम्परा को बलवती बनाने वालों में बसव शास्त्री, सन्त कवि, पंजे, मंगेश राव, बी. वेंकटाचार्य, बी. टी. मलगनाथ आदि मनीषी हैं। कन्नड भाषा के बाल साहित्य को समृद्ध बनाने में देवुडु होसंगल, बी. एस. मंडल, शिवराम कारन्त और राजरत्न आदि ने प्रशंसनीय कार्य किया। कन्नड़ साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कृतिकारों की पंक्ति में बी. एम. श्रीकण्ठय्या, डी. वी. गुण्डप्पा और मास्ति वेंकटेश अयंगार आदि आदि अग्रगण्य हैं। कविता के क्षेत्र में श्री बेन्द्रे, आधुनिक कवियों में कन्नड के सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं। उनके बाद खानोलकर, के. वी. पुटप्पा, वी. सीतारामय्या, वी. के. गोकाक, पी. सदाशिव राव, आर. एस. मुगली आदि कविगण अग्रगण्य हैं।

कन्नड़-उपन्यास लेखकों में ए. एन. कृष्णराव गोरूर, और एन. के. कुलकर्णी आदि ने बहुत से उपन्यासों का प्रणयन किया है । कहानी-लेखकों में बेटगरी, और गोपाल कृष्णराव के नाम उल्लेखनीय हैं । नाट्य-साहित्यकारो में टी॰ पी. कैलाशम् और आर. बी. जागीरदार का अपना विशेष स्थान है । महिला साहित्यकारों में श्रीमती गौरी अम्मा, कल्याणम्मा और श्यामला विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं ।

* * *

२. **मैथिली**:—वर्तमान मैथिली साहित्य को जन्म देने वाले महामहोपाध्याय मुरलीधर झा, परमेश्वर झा, गंगानाथ झा, मधुसूदन झा, और रामचन्द्र मिश्र हैं । मैथिली के काव्य साहित्य को समृद्ध और तेजस्वी बनाने वाले कवियों में भानुनाथ झा, भोला झा, मुंशी रघुनाथ, ज्ञानदास, अच्युतानन्दन दत्त, और सीताराम झा अग्रगण्य हैं । नाट्यकारों में ईशान झा की कृतियाँ बड़ी मनभावनी हैं । उपन्यासकारों में काशीनाथ झा और गंगानन्दसिंह मुख्य हैं । मैथिली की महिला-सुलेखिकाओं में अरुन्धती देवी, हरिलता और योगमाया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

* * *

३. **मलयाल़म** :— एक विद्वान का कथन है कि समसामयिक मलयालम साहित्य में रविबाबू की गीतांजलि ने परिवर्तन का युग ला दिया । आधुनिक मलयालम के पुनरुज्जीवन का प्रारम्भ मलयालम के साहित्य-सम्राट केरल वर्मा, और थम्पुरान के दिवंगत होने पर हुआ । इस जागरण काल में महाकवि वल्लत्तोल, उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर, न. नारायण मेनन, के. माधव पनिक्कर, कृष्णन् थंपी, शंकर कुरुप, हरि शर्मा, डॉ. सी. कुन्हन् सजा आदि कलाकारों नें मलयालम के साहित्य भंडार को खूब समृद्ध बनाया ।

* * *

४. **पंजाबी** :— आधुनिक पंजाबी साहित्य पर भाई वीरसिंह के व्यक्तित्व और कृतियों का बहुत अधिक प्रभाव है । पुनरुद्धार के इस कार्य में मोहनसिंह वैद्य द्वारा भाईजी को बहुत सहायता मिली है । पंजाबी साहित्य के चमकते सितारों में श्री धनीराम चत्रक, पुर्णसिंह, चरणसिंह, आई॰ स॰ नन्दा, यंग मोहनसिंह, अमृत प्रीतम, नानकसिंह, जोशुआ, फजलदीन और गुरुबख्शसिंह आदि कृतिकारों के नाम आदरपूर्वक लिये जाते हैं ।

* * *

५. **सिन्धी** :—वर्तमान सिन्धी साहित्य में प्राणसंचार करनेवालों में दयाराम, गीदुमल, निर्मलदास, फतेहचन्द, कलीच बेग मिर्जा, अल्लाबख्श अब्रोझी, परमानन्द मेवाराम और कोरूमल चन्दनमल मुख्य हैं । और आजकल साधारण सिन्धी जनता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले साहित्य-सेवियों में किशनचन्द 'बेवस,' हैदरबक्श जेतली, अकबरअली अयास, मेरुमल महेशचन्द्र, जेठमल परसराम, लालचन्द जगतियानी, अन्सारी, राम पंजुआनी, नारायण मलकानी, नानकी गिडवानी और गुली सदरंगानी आदि मुख्य कृतिकार हैं ।

* * *

१३५०

६. **तमिळ:**—आधुनिक तमिल साहित्य को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (१) आरंभिक युग (२) भारती युग और (३) गान्धी युग। कविवर सुब्रह्मण्य भारती उच्चकोटि के कवि और साहित्यकार थे। गान्धीयुग के प्रमुख कृतिकारों में कवि रामलिंगम्, शुद्धानन्द भारती, डी० एस० चोक्कलिंगम्, और आर० कृष्णमूर्ति आदि मुख्य हैं। स्त्री-लेखिकाओं में बी० एम० कोद- नायकी अम्माल, स्वर्णम्माल, अम्बुजम्माल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके सिवा नाट्यकारों और कहानी-लेखकों में माधवय्या कल्की आदि उल्लेखनीय हैं।

* * *

७. **तेलुगु**:—बीसवीं शताब्दी के तेलुगु साहित्य को जन्म देनेवालों में वीरेशलिंगम पन्तुलु, चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंह आदि हैं। आधुनिक तेलुगु साहित्य को समृद्धशाली बनानेवाले साहित्यकारों में जी० राममूर्ति पंतुलु, वेंकट पार्वतीश्वर कवुलु, शिवशंकर शास्त्री, रामराव, वेंकटशास्त्री, सी० नारायणराव और विश्वनाथ सत्यनारायण के नाम गणमान्य हैं।

* * *

८. **उर्दू**:—आधुनिक उर्दू साहित्य में मरहूम डॉ० मुहम्मद इकबाल से पहले सर सय्यद अहमद, शिवली और हाली ने खूब लिखा है। उनके बाद अबुलकलाम आज़ाद, सैयद सुलेमान नदवी, मुहम्मदअली, अवदुल कादिर, काजी अवदुल, सज्जाद, हैदर आदि लेखक खूब चमके। इस काल में गजलें खूब लिखी गईं। अन्य योग्य लेखकों में बदी, जोश मलीहाबादी, कृष्णचन्द अख्तार, अन्सारी, शरार, हसरत, फानी असगर, और जिगर के नाम उल्लेखनीय हैं। आधुनिक राजनीतिक परिवर्तनों के कारण उर्दू को अपना स्थान छोड़ना पड़ा है। यही बात पंजाबी के लिए भी कहनी चाहिए।

* * *

संस्कृत मृतभाषा नहीं है, जैसा कि इसे समझा जाता है। यह भाषा भारत की समस्त प्रान्तीय भाषाओं का प्रधान प्रेरणा-स्रोत ही नहीं है; अपितु इसके प्राचीन और शिष्ट साहित्य का पर्यालोचन, विवेचन, और सम्पादन बराबर होता रहता है। विद्वानों द्वारा इसमें नवीन रचनाएँ भी लिखी जाती हैं। कुछ वर्ष पूर्व, काशी के पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने संस्कृत में "शिवराजविजय" नामक उपन्यास प्रौढ़ गद्य शैली में लिखा था। उनके बाद अनेक विद्वानों ने काव्यों और नाटकों की भी सर्जना की है। अभी कुछ दिन हुए, कलकत्ता के एक संस्कृत विद्वान ने 'बाइबिल' के प्रसिद्ध चार उपदेशों को, वाल्मीकि रामायण की सुलभ शैली में संस्कृतानुवाद में प्रस्तुत किया था।

* * *

भारतीय भाषाओं के साहित्य के भविष्य के बारे में दो शब्द कहना अप्रासंगिक न होगा। हमारी प्रान्तीय साहित्य-सम्पदा अभी तो विकास के प्रथम सोपान पर है। भारतवर्ष के स्वतंत्र हो जाने से सुलेखकों, कलाकारों और साहित्य-निर्माताओं को अपनी प्रतिभा के अनुरूप कार्य करने का पूरा अवसर मिलेगा। प्रान्तों का विभाजन हो

जाने से उन उन भाषाओं के साहित्य की समृद्धि और विकास को अधिकाधिक सुयोग प्राप्त होगा। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रान्तीय अस्मिता के कारण अकेन्द्री भाव की मनोवृत्ति भी जाग उठेगी। फलतः अखिल भारतीय दृष्टिकोण और सर्वदेशीय भावना के लोप होने की भी आशंका है। अतः इन भय-स्थानों से बचना चाहिए। बुद्धिमत्ता इसीमें है कि विकास की सर्वतोभद्र भावना के प्रति हम अपना योग्य दान दें। जो भावना एक विश्व, एक धर्म, एक प्रजा (जाति)और जीवन की एक ही फिलासफी की ओर अग्रसर हो रही है।

—**श्री. गुरुदयाल मल्लिक**

राष्ट्रीय भरोसा और व्यक्तिगत भरोसा

"राष्ट्र व्यक्तियों से बनता है। जैसे उसके योग्य व्यक्ति होंगे, वैसा ही योग्य वह राष्ट्र भी होगा। हममें यह बड़ा भारी दोष है कि हम-लोग पद्धतियों वा संस्थाओं में अत्यन्त अधिक विश्वास रखते हैं और स्वयं मनुष्यों में बहुत कम, जो कि संस्थाएँ और पद्धतियां बनाते और चलाते हैं।"

हे मन जागो मंगल लोके

(स्वर्गीय गुरुदेव र. ना. ठा. की एक सरल सुन्दर बंगाली कविता)

हे मन जागो मंगल लोके,
अमल अमृतमय नव अवलोके,
ज्योति विभासित चोखे ।

हे रो गगन भरी जागे सुन्दर,
जागे तरंगे जीवन-सागर,
निर्मल प्राते विश्वेर साथे,
जागो अभय अशोके ।
हे मन जागो मंगल लोके ।

जागो निर्मल नेत्रे,
रात्रिर पर पावे,
जागो अंतर क्षेत्रे,
मुक्तिर अधिकारे,
जागो मुक्तिर तीर्थे
पुजा पुष्पेर घ्राणे;

पुजा पुष्पेर घ्राणे,
जागो उन्मुख चित्तेर,
जागो अलमान प्राणेर,
जागो नन्दन नेत्रे,
सुधासिन्दुर द्वारे
जागो स्वार्थेर पन्थे,
प्रेममन्दिर द्वारे
हे मन जागो मंगल लोके ।

जागो उज्ज्वल पुण्ये,
जागो निश्चल आशे,
जागो निश्चित शुन्ये,
जागो निर्भय धामे,
जागो संग्राम साजे,
जागो ब्रह्मेर नामे,
जागो कल्याण काजे,
दुर्गम यात्री

दुःखेर अभिशापे
जागो स्वार्थेर प्रान्ते,
प्रेम मंदिर द्वारे
हे मन, जागो मंगल लोके !

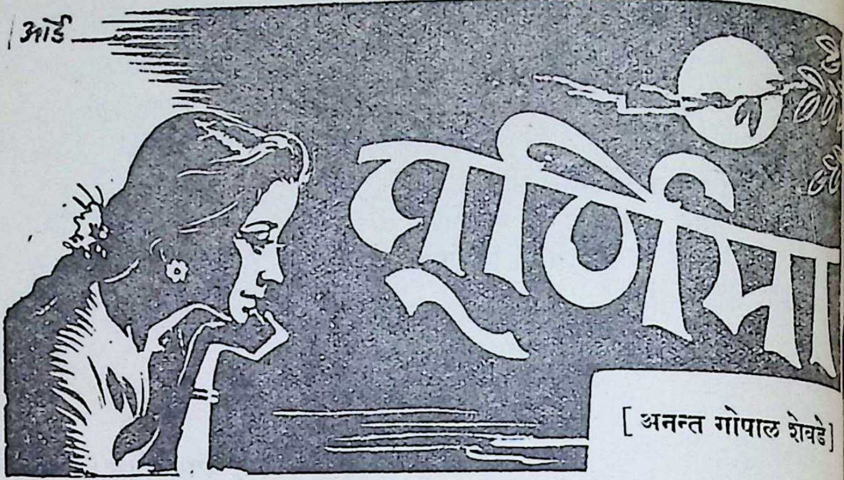

पूर्णिमा

[अनन्त गोपाल शेवडे]

[अब तक की कथाः—

बैरिस्टर पण्डितजी ने पुत्री पूर्णिमा की इक्कासवीं वर्षगांठ के अवसर पर जो प्रीति-भोज दिया उस में नगर के गणमान्य स्त्री-पुरुषों के अलावा पूर्णिमा के कालेज के सहपाठी छात्र और छात्राएँ भी थे। उस समय उसके संगीत का जो आयोजन किया गया था उसे देखकर इन्द्रगढ़ के जमीदार के पुत्र युवक विलासमोहन ने उसे हार्दिक बधाइयां दीं।

लेकिन पूर्णिमा को जो यथार्थ सुख हुआ था वह विनयकुमार के अभिनन्दन का, जो एक बंगाली क्रान्तिकारी का लड़का था और जिसने पूर्णिमा की सफल और गहन संगीत-साधना के लिये उसकी हार्दिक प्रशंसा की थी।

पूर्णिमा को इससे खुशी तो हुई; क्योंकि वह विनयकुमार को आदर की दृष्टि से देखती थी। उसकी निर्भीकता और तेजस्विता का परिचय उसे तब हुआ जब कि वह एक तांगेवाले के पैसे हजम करने के लिये एक गोरे सार्जण्ट को तड़ातड़ पीट रहा था।

किन्तु वह अधिक आकर्षित थी विलासमोहन से, जो 'खाओ-पियो-मौज करो' की जीवन-फिलॉसफी को मानता था और जिसपर अधिकांश में पूर्णिमा का भी विश्वास था।

एक दिन पूर्णिमा ने विलासमोहन को तथा उसके टेनिस के स्त्री-पुरुष मित्रों को अपने घर पर चाय के लिये बुलाया। पार्टी के बाद जब वे बगीचे में टहल रहे थे तो पूर्णिमा ने चट से एक गुलाब का फूल तोड़ कर विलासमोहन को भेंट किया। जिसके कारण वह युवक भविष्य के बारे में न जाने क्या क्या रमणीय सुख-स्वप्न देखने लगा। लेकिन बाद में पूर्णिमा ने देखा कि उसके अंगूठे में से गुलाब का कांटा लग जाने के कारण रक्त निकल रहा है और वह अस्वस्थ हो गई—

इधर विनयकुमार का कॉलेज-यूनियन में 'जीवन के शाश्वत प्रश्न' इस विषय पर ओजस्वी भाषण हुआ जिसे सुनकर पूर्णिमा के अन्तस्तल में भयंकर उथल-पुथल मच गई और वह उदासीनता का अनुभव करने लगी।

उस व्यथित अवस्था में उसने विनयकुमार को मिलने के लिये आमंत्रित किया। विनयकुमार ने पूर्णिमा के विचार और भावनाओं का इतना मार्मिक एवं सत्य विश्लेषण किया कि वह आश्चर्य से दंग रह गई। उसकी चर्चा से उसके 'अहं' को धक्का तो लगा! लेकिन उसके मन को शांति भी मिली। और इसी प्रफुल्लता की मनोवृत्ति में वह विलास की ओर प्रवृत्त हुई।—अब आगे पढ़िये]

दसवाँ-परिच्छेद

: नेकलेस की भेंट :

जिस क्षण विनयकुमार पूर्णिमा से विदा हुआ उसी क्षण से उसकी वेदना कम होती गई और दूसरे दिन प्रातःकाल जब वह उठी तब एक गीत गुनगुनाते उठी । उसने हाथ-मुँह-धोकर चाय पी फिर अपने ही हाथ से फूलों का गुच्छा सजाया । अपनी केश-भूषा ठीक कर वह अपने कमरे से निकली तो ऐसा प्रतीत हुआ कि यह सौंदर्यमयी-रमणी फिर से जीवन का आल्हाद प्राप्त करने के लिये निकली है और उसके हृदय में कहीं भी विषाद का लेश भी नहीं बच रहा है । हॉल में आकर उसने रेडियो लगाया । फिर वह अपने बापू के कमरे में जाकर उनसे मिल आई जैसे उन्हें यह जताने के लिये उत्सुक है कि उसकी प्रफुल्लता दूनी गति से लौट आई है । बंगले का चक्कर लगाकर 'आया' से हँसी मजाक कर, तथा नौकरों-चाकरों से क्षेम-कुशल पूछकर उसने 'शान्ति-सदन' में प्रसन्नता और आनन्द का वातावरण फिर फैला दिया ।

इस समय उसे वह सब अन्तर्वेदना तथा विनय-कुमार की चर्चा एक बीते हुए स्वप्न की तरह लग रही थी ।

विनय कुमार ने उसकी सुप्तशक्ति के प्रति आदर भाव व्यक्त किया था और उससे खुशी भी हुई थी। पर उसने स्पष्ट शब्दों में उसकी भर्त्सना भी तो की थी; इससे उसके स्वाभिमान को धक्का भी लगा था। जीवन की ध्येयवादिता और प्रखरता का जो चित्र विनयकुमार ने उसके सामने रक्खा था उसकी भव्यता से वह घबड़ा उठती थी। उसका वह मन से आदर तो करती किन्तु उसकी यही धारणा थी शायद वह मार्ग उसके लिये नहीं है—तिस पर भी वह विनय कुमार की तथा उसके आदर्शों की मन-ही-मन इज्जत करती थी । उसके जीवन की कहानी से उसे दिलचस्पी थी, उसे जानने की उत्सुकता थी । शायद उससे इस विचित्र युवक के अथाह और अगम्य व्यक्तित्व पर अधिक प्रकाश पड़े । यह भी ठीक है कि विनय-कुमार ने कल शामको आकर उसके जी को हल्का कर दिया था—दूसरे के कष्टों में सेहत पहुँचाने की उसकी ताकत गज़ब की थी । लेकिन मनुष्य हमेशा ही तो इस तरह दुखी नहीं रहता और हमेशा ही तो उसे इस सांत्वना की भूख नहीं लगती । जीवन यदि 'स्पोर्ट' है, आनन्दमय है तो उसका उपयोग करने के लिये ऐसे ही साथी की आवश्यकता होती है—जो आनन्द की स्पिरिट में, आमोद-प्रमोद की भावना में, समरस हो सके-उसमें अपने आपको भूल सके ।

और इसी समय उसे विलासबाबू की याद आ गई, उसे लगा कि उनका टेनिस, होटल, सिनेमा ये सब बातें ऐसी हैं जिनमें वह खुद भी शरीक हो सकती है । इतना ही नहीं बल्कि उसने यह भी अनुभव किया कि विलासबाबू के सौंदर्यवान, ऊंचे-पूरे व्यक्तित्व के साथ वह अधिक निश्चिन्त, अधिक सुखी हो सकती है । विलासबाबू पर उसका जो प्रभाव है वह भी उसके आनन्द का कारण है । उनके जीवन में कहीं कोई गूढ़ता नहीं है, कोई पहेली नहीं, कोई विषाद भी नहीं । सब कुछ खुली हुई किताब की तरह है जिसे कोई भी, कभी भी, पढ़ सकता है । उनके स्वभाव में कोई ऐसी अज्ञात वस्तु नहीं मालूम पड़ती जिसका अन्दाज पहिले से ही न किया जा सके, या जो अपनी नूतनता से आश्चर्य का धक्का दे सके । खेलने-कूदने, खाने-पीने और शारीरिक सौंदर्य में उन्हें बहुत रस मिलता है । बस, इससे ज्यादा पूर्णिमा को जरूरत नहीं है । उनकी मित्रता निस्संदेह उसे सुखी बनाने की शक्ति रखती है, इसी कारण उसकी विलासबाबू से घनिष्ठता बढ़ रही है । पूर्णिमा ने उनका बॅ. पण्डित से भी परिचय करा दिया । विलासमोहन और बैरिस्टर साहब के स्वभाव में भी कहीं कहीं साम्य है, इसलिये उनकी पटती भी खूब है । विलास ने एक बार उनसे आग्रह किया कि वे इन्द्रगढ़ की सैर करने जावें — वहां उन्हें शिकार, डिनर आदि का पूरा साज मिलेगा और इस 'चेंज' को वे जरूर पसन्द करेंगे । इन्द्रगढ़ के वर्णन ने बैरिस्टर साहब के मन पर असर किया और उन्होंने तुरन्त आश्वासन दे दिया कि वे जरूर मौका पाते ही इन्द्रगढ़ जायेंगे ।

इसी बीच विलासमोहन ने अपने पितासे भी बैरिस्टर साहब के बारे में जिक्र किया । राधा मोहन

बाबू को अदालत में काफी काम रहता था इस लिये एक अच्छे बैरिस्टर के नाते उन्होंने पण्डित साहब की ख्याति सुन रक्खी थी। एक बार जब वे शहर आये तब विलास ने अपने पिता का बैरिस्टर पण्डित और उनकी कन्या से परिचय भी करा दिया। दोनों एक दूसरे से मिलकर प्रसन्न हुए। इस खुशीके पीछे राधा मोहन बाबू का उनके हाथ में दो बड़े मुकदमों का सौंपना कितनी हद तक कारण था, यह नहीं कहा जा सकता। पर इतना सच है कि इन दोनों परिवारों की दोस्ती बढ़ती गई। इस मित्रता की बुनियाद पर, आश्चर्य नहीं कि, विलास बाबू का पण्डित साहब के यहाँ आना-जाना ज्यादा बढ़ गया।

एक दिन "मिक्स्ड डबल्स" के टेनिस मैच का आयोजन किया गया। इस समय पूर्णिमा पण्डित विलास बाबू की 'पार्टनर' थी और वीणा बैनर्जी उनके विरुद्ध खेल रही थीं। मैच में विलास और पूर्णिमा का खेल बहुत अच्छा जमा। विलास सफेद मर्सेराइज़ का शर्ट, ग्रेफ़्लॅनेल का पेन्ट तथा सफेद कैनवास के जूते पहिने हुए था। शर्ट का ऊपरी बटन खुला हुआ था जिसके कारण उसकी लम्बी तथा गौरवर्ण गर्दन बड़ी शोभनीय दीख रही थी। उसके 'सर्विस' करने के ढंग में सौंदर्य था और खास कर उस समय पूर्णिमा अपनी प्रसन्न आँखों से उसकी तरफ देखती रह जाती। पूर्णिमा भी अपना खेल कुशलता से खेल रही थी और विलास उसकी प्रशंसा, बीच बीच में, 'स्लेंडिड', "ब्यूटी" 'मार्व्हलस' शब्दों से करता जाता था जिसे पूर्णिमा प्रत्येक बार एक मधुर मुस्कान के साथ स्वीकार करती।

वीणा के पार्टनर आज मिस्टर जैकब की जगह मेडिकल कॉलेज के चेंपियन मिस्टर बरजोरजी थे। वे भी एक कुशल खिलाड़ी थे किन्तु आज, चूंकि वीणा के साथ पहली बार ही खेले थे, या कोर्ट नया था, उनका खेल जमा नहीं। जैसे जैसे वे और वीणा हारते जाते थे वैसे वैसे वीणा चिढ़ती जाती थी। लाख कोशिश करनेपर भी वह अपनी व्यग्रता नहीं छिपा सकी। उसे जो बुरा लग रहा था वह शायद पूर्णिमा से हारने में लग रहा था। आज विलास-पूर्णिमा की जोड़ी क्यों जमी? क्या ही अच्छा होता यदि वह विलासबाबू की तरफ से खेलती? निश्चय ही पूर्णिमा और बरजोरजी को वह हराये बगैर नहीं रहती। इससे भी ज्यादा उसे जो खटकता था वह था पूर्णिमा और विलास का परस्पर आकर्षण और आत्मभाव। कहीं ऐसा तो नहीं है कि विलासबाबू पर विजय पाने में वह पूर्णिमा से पराजित होगी? इस विचार से उसे बड़ी बेचैनी हुई।

मैच खतम हुआ। पूर्णिमा-विलास की जोड़ी ने वीणा-बरजोरजी को हरा दिया। दोनों पार्टियों ने एक दूसरे का हँसकर अभिनन्दन किया—सिर्फ वीणा ही मुँह फुलाए रही। उसके बाद उसे यह भी अखरा कि पूर्णिमा और विलास ने एक दूसरे का अभिनन्दन करते हुए बड़े उत्साह और स्नेह के साथ आँख में आँख मिलाकर हाथ मिलाया। और इससे भी ज्यादा अखरा विलास का पूर्णिमा को अपनी मोटर में बिठाकर ले जाना। पूर्णिमा ने विलास को सलाह दी कि वीणा और बरजोरजी को भी साथ ले लिया जाय। लेकिन विलास ने "उंः" कहकर टाल दिया। जब मोटर चल पड़ी तब पूर्णिमा ने जो उसीके साथ सामने की सीट पर बैठी थी, पूछा—"वीणा को साथ क्यों नहीं लिया—वह जरूर बुरा मानेगी?"

"क्या जरूरत है? आज देखा नहीं वह कितनी मनहूस सूरत बनाये हुए थी? अपने इस आनन्द में वह जरूर ग्रहण लगा देती। मैं यह नहीं बर्दाश्त कर सकता था।"

"पर आज वह इतनी व्यग्र क्यों थी? उसका खेल भी ठीक नहीं जमा।"

"वह नहीं चाहती थी कि तुम मेरी पार्टनर होकर खेलो। वह जगह उसे खुद के लिये चाहिये थी।"

विलास ने पूर्णिमा को आज पहली बार 'तुम' कहा। पूर्णिमा के ध्यान से वह बात छूटी नहीं; किन्तु उसे कोई आश्चर्य न हुआ उलटे उसे प्रसन्नता हुई कि विलास उससे इतनी आत्मीयता से पेश आता है।

"यह आपने काहे पर से कहा?"—पूर्णिमा ने उत्कंठा से पूछा।

"यूँ ही! — ऐसा मेरा ख्याल है। जाने दो, देखो वह प्रिंसेज होटल आ गया—"

"नहीं नहीं ? आप इस तरह बात नहीं टाल सकते। आपको बतलाना ही होगा।" पूर्णिमा ने आग्रहपूर्वक पूछा।

प्रिंसेज़ होटल के पोर्च में मोटर रुक गई और वे दोनों उतरकर एक बगलवाले एकान्त विभाग में गये जहां 'फ़ॅमिली' के लिये इंतजाम था। विलास ने फ़ौरन 'बॉय' को बुलाकर चाय आदि का आर्डर दिया।

"बतलाइये न ? आपने वीणा के बारे में ऐसा क्यों कहा ?" पूर्णिमा ने विलास की चुप्पी देखकर फिर पूछा।

विलास ने सोचा कि शायद मोटर में उतरने की गड़बड़ में बात उड़ जाय। लेकिन जब ऐसा न हुआ तो फिर उसे कहना ही पड़ेगा।

"मेरा अनुमान है कि वह तुमसे द्वेष करने लगी है। उसे अपनी मित्रता पसन्द नहीं है। एक रोज उसने मुझे अकेले अपने यहां चाय के लिये बुलाया था। कहा, यह चीज मैंने खुद अपने हाथों से आपके लिये बनाई है—खानसामे को हाथ भी लगाने नहीं दिया। इस संदेश की मिठाई के पीछे मेरी दो दिन की मेहनत है। आपको मिठाई पसन्द आती है इसलिये खासकर बनाई है। फिर बातचीत के सिलसिले में उसने कहा कि तुम्हें यानी पूर्णिमा को गाना नहीं आता है—वह तुमसे बहुत अच्छा गा सकती है। वह शान्तिनिकेतन में रह आई है कुछ दिन। फिर उसने दो बंगाली गीत सुनाये।

चाय वगैरे के बाद वह मुझे बगीचे में ले गई और मुझे फूलों का एक सुन्दर गुच्छा भेंट किया और कहा—'यह मेरी मित्रता की भेंट है विलासबाबू—आप नहीं जानते कि मैं आपके प्रति कितने सद्भाव रखती हूं। उसकी सब भावभंगी का मैं ठीक ठीक अर्थ तो नहीं लगा सका—शायद कुछ दूर से ही अनुमान कर सकता हूँ।'

"फिर ?"—पूर्णिमा ने उत्सुक होकर चाय उंडेलते हुए पूछा।

"फिर क्या ? उसने जो कुछ दिया वह मुझे स्वीकार करना पड़ा। उसने मुझे अपने यहां बार बार आने का आग्रह किया। मैंने कहा अवश्य—मौका मिलने पर आऊंगा। फिर उसने सिनेमा चलने के लिये मुझसे कहा। मैंने जवाब दिया, आज नहीं—फिर कभी देखेंगे।"

"तब ?"—पूर्णिमा का पुनः प्रश्न था।

"तब क्या ?—मैं घबड़ाया और भागा जान बचाकर"—यह कहकर विलासमोहन खिलखिलाकर हँस पड़ा। पूर्णिमा भी अब की बार दिल खोलकर हँस पड़ी। और यह देखकर विलास भी पुनः जोर से देर तक हँसता रहा।

"तबसे मैं आज तक वीणा के यहां नहीं गया हूं।" विलास ने सांस रोककर कहा, "अब समझीं आज वीणा क्यों इतनी 'सीरियस' थी ?"

"हूं—समझी"—पूर्णिमा ने टोस्ट को मक्खन लगाते हुए कहा। वह भी कुछ गंभीर हो गई थी। वीणा के मुकाबले में पूर्णिमा ने विलास पर अपना प्रभुत्व जमा लिया इससे वह प्रसन्न तो थी। विलास था भी वैसा सुन्दर आकर्षक युवक। लेकिन क्या वीणा सचमुच विलास से प्रेम करने लगी है ? या करना चाहती है ? और यदि सत्य ऐसा ही है और विलासमोहन का यह रुख है तो वह बेचारी जरूर दुख उठावेगी। इसलिये बेहतर है कि वह समय रहते ही सतर्क हो जाय। फिर उसे लगा कि वीणा भावनाशील की अपेक्षा व्यवहारिक अधिक है। इसलिये उसने हर बात दिमाग की सलाह से की होगी, दिल से नहीं। इसी विचार में उसे कुछ संतोष भी हुआ।

आज पूर्णिमा को पहली बार उत्कटता के साथ भान हुआ कि विलास अविवाहित तरुण है जिसके पीछे कोई लड़की पड़ी है। शायद और भी युवतियां हों जो उससे विवाह करने की इच्छुक हों। और हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? वह सुन्दर है, हृष्ट-पुष्ट है, धनिक है, शिक्षित है और अगले साल बैरिस्टरी पढ़ने के लिये इंग्लैंड जाने वाला है। इसके अलावा वह खिलाड़ी है, शायद रसिक भी है। इससे बढ़कर आधुनिक विवाहेच्छु रमणी और क्या चाह सकती है ? और यही सोचते सोचते उसे स्वतः के बारे में भी विचार आया। आज उसने पहली बार इस दृष्टि से विचार किया—पूर्णिमा और विलास ? वह गंभीर हो गई।

"क्या सोच रही हो पूर्णिमा ?" विलास ने उसकी विचारधारा को भंग करते हुए पूछा।

"कुछ तो नहीं!" पूर्णिमा ने घबड़ाकर कहा। एक बार उसने भेदक दृष्टि से विलास की ओर देखा, कहीं वह उसका भाव तो नहीं ताड़ गया है? पर उसकी सौम्य और सरल मुद्रा देखकर उसे ढाढ़स बंधा कि बात ऐसी नहीं है।

"मैं वीणा के बारे में सोच रही थी।" उसने बात टालते हुए कहा। आप क्यों उसके यहाँ नहीं जाते — क्यों उसके साथ सिनेमा देखने नहीं गये? यदि किसी नारी को इतना-सा कह देने से सुख होता है तो प्रत्येक 'जेन्टलमैन' को वह करना चाहिये। पूर्णिमा ने यह विलकुल निर्बोधता के भाव के साथ कहा। नारी का स्वभाव इस समय बड़ी सूक्ष्मता के साथ काम कर रहा था। इस छोटे से प्रश्न में वह बहुत कुछ जान लेना चाहती थी। इसलिये यथार्थ में वह उतनी निर्बोध नहीं थी जितनी दीखती थी।

विलास ने आश्चर्य चकित होकर पूर्णिमा की तरफ देखा। उसका चेहरा प्रश्नांकित था। आवेश के साथ उसने कहा—"यह मैं कैसे कर सकता हूँ पूर्णिमा! तुम शायद नहीं जानतीं कि वीणा जितनी सीधी दिखती है उतनी नहीं है। उस दिन तुम्हारे यहां की चाय-पार्टी में उसने किस तरह मेरा मज़ाक उड़ाना चाहा था, याद है? और फिर मेरा उसके बारे में अच्छा मत नहीं है। वह तुमसे जलती है उसे नाहक प्रोत्साहन देना ठीक नहीं है। वह नाराज हो तो मैं क्या करूं?"

इस विधान से इतना तो मालूम हुआ कि विलास के हृदय में वीणा के लिये कोई स्थान नहीं है। न जाने क्यों उसे इससे किंचित समाधान हुआ। विलास की, उस लड़की के प्रति नाखुशी का एक और कारण है वह पूर्णिमा से जलती है। अर्थात् विलास पूर्णिमा के प्रति अनुराग रखता है और वह वर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई उससे द्वेष करे। यह भी ठीक ही है। लेकिन पूर्णिमा की विलास के प्रति क्या भावना है यह वह नहीं जान सकी। विलास जैसा युवक उससे आकर्षित है, यह उसके लिये सुख का विषय है। यह उसका विजय चिन्ह है। पुरुष पर इस प्रकार की सत्ता उसके लिये गर्व और आनन्द की वस्तु है। अभी तो बस वह इतना ही जानती है। आज उसके हृदय में आल्हाद है और जब वह इस बात का कारण खोजती है तो पाती है कि विलास की पार्टनर बनकर उसने एक मैच जीता है और अब विलास के साथ बैठकर चाय पीने में संलग्न है, खास कर जब कि विलास ने उसके प्रति अपना विशेष आत्म-भाव व्यक्त किया है। आज वह केवल इस आनंद में ही लीन रहना चाहती है, और चाहती है कि वह आनन्द शीघ्र ही समाप्त न हो। इसलिये जब विलास ने प्रस्ताव किया कि सिनेमा देखने चला जाय तब पूर्णिमा ने विना किसी हिचकिचाहट के यह बात मान ली। फौरन विलास ने टेलिफोन से रायल थियेटर में पहिले 'शो' में दो सीट वाला 'वाक्स' रिज़र्व करा लिया। उसने साथ ही यह भी कहा कि जब खेल देखने जाना ही है तो फिर आज के आमोद-प्रेमाद के कार्य-क्रम में कमी न रह जाय —इसलिये डिनर के लिये फिर वापिस प्रिंसेज़ होटल आया जाय और वहां से खाना खाकर फिर अपने अपने घर लौटा जाय। सिनेमा जाते समय वे मोटर 'शांतिसदन' के रास्ते ले जावेंगे— और दरवान को इत्तला देते जावेंगे। यह बात भी मान ली गई। जिस तत्परता से पूर्णिमा ने आज विलास की सब बातें स्वीकार कर लीं और प्रसन्न-वदन से उसका स्वागत किया उस पर से विलास समझ गया कि वह अच्छे 'मूड' में है, और आज वह उससे विशेष खुश है।

वे दोनों होटल से रवाना हुए। लेकिन मोटर रॉयल थियेटर की तरफ न जाकर केन्ट्नमेण्ट की तरफ जाने लगी, जिसे देखकर पूर्णिमा ने आश्चर्य से पूछा,—

"यह रास्ता तो रॉयल थियेटर नहीं जाता। हम कहां जा रहे हैं?"

"अभी पाँच मिनट में मालूम हो जायगा। खेल शुरू होने में पौन घण्टा देर है। उसके पहिले मुझे एक काम और कर लेना है। ज़रा तुम्हें तकलीफ़ होगी—माफ़ करना।

"डोण्ट माइण्ड" (कोई हर्ज नहीं) कह कर वह चुप हो गई।

पाँच मिनट के अन्दर ही मोटर कंन्ट्नमेण्ट की सबसे बड़ी युरुपियन दूकान दि "ग्रेट ईस्टर्न स्टोर्स" के सामने जा खड़ी हुई। दोनों साथ उतरे। स्टोर्स

१९५०

के दरवाजे पर मैनेजर ने बड़ी नम्रता के साथ उनका स्वागत किया। विलास, पूर्णिमा को लेकर 'प्रेजेंटेशन डिपार्टमेंट' में गया जहां भेंट की अनुपम वस्तुएं रक्खी हुई थीं। उस विभाग के चार्ज में एक एंग्लो-इंडियन युवती थी। इन दोनों को देखते ही उसने एक मीठी मुस्कुराहट के साथ उनका स्वागत करते हुए कहा—

"गुड ईव्हींनींग! व्हाट कॅन आय डू फॉर यू? (मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?)!"

उस युवती की नज़र पूर्णिमा के दाहिने हाथ के तरफ़ गई। उसमें कोई अंगूठी नहीं थी। हँसते हुए उसने पूछा—

"क्या कोई 'वेडिंग प्रेजेंट (विवाहोपयुक्त भेंट) बतलाऊं? अभी फ्रांस से बड़ा सुन्दर स्टॉक आया है। अंगूठिया हैं, इअरिंग्ज हैं, नेकलेस है—"

यह सुनते ही पूर्णिमा का मुँह आरक्त हो गया। उसे बड़ा अटपटा लगा। विलास ने ये सब भाव देखे—पढ़े। संकोच और लज्जा की रक्तिमा से पूर्णिमा का चेहरा अधिक सुंदर हो उठा। विलास की बड़ी बड़ी आतुर आंखें इस सौन्दर्य की सुधा का पान करती रहीं। उसने पूर्णिमा के चेहरे पर प्रतिबिम्बित समस्त भावों को पढ़ने की चेष्टा की। किन्तु उसे सन्ताप या नापसंदगी के स्पष्ट भाव ढूंढने से भी न मिले। उसका चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। पूर्णिमा के संकोच और अटपटेपन का निवारण करने के हेतु उसने उस सेल्स गर्ल से कहा—

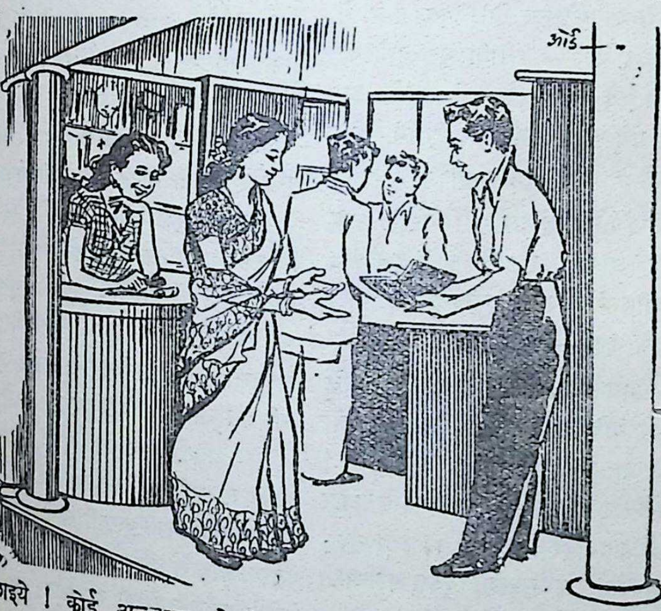

"हां, बतलाइये! कोई अच्छासा नेकलेस बतलाइये।"

जब वह लड़की नेकलेसों के बक्स लाने अलमारियों के पास गई तब इन दोनों को कुछ एकान्त मिला। पूर्णिमा ने कड़ाई से कहा—"यह सब क्या है विलास बाबू। आप क्या कर रहे हैं? यदि यह सब मेरे लिये हो तो मैं कुछ नहीं लूंगी।"

यह सुनते ही विलास का चेहरा फौरन उतर गया और उसका सारा आनन्द काफ़ूर हो गया। पूर्णिमा को भी लगा कि उसने सख्त बात कह दी है। आखिर इतनी कड़ी बात कहने का क्या कारण है! विलासबाबू उसके मित्र हैं और आज वे उसे एक भेंट देना चाहते हैं। यदि वह न लेगी तो क्या उनका अपमान न होगा?

"पूर्णिमा देवी" विलास ने मिन्नत-मनुहार के स्वर में कहा। आप यदि मेरी तुच्छ भेंट न स्वीकारेंगी तो मुझे बड़ा दुःख होगा। और यहां इस भरे बाजार में उस एंग्लो-इंडियन लड़की के सामने अपमान होगा सो अलग। खैर, मैं जबरदस्ती नहीं कर सकता। मर्जी आपकी।" यह कहकर विलास ने अपना मुंह और भी फुला लिया।

पूर्णिमा को बड़ा दुःख हुआ। 'तुम' शब्द की जगह 'आप' का प्रयोग उसके ध्यान से नहीं छूटा। विलास का रंजीदा चेहरा देखकर उसे भी बुरा लगा। उसने फौरन कहा—"माफ कीजिये जो मैंने आपके दिल को चोट पहुंचाई। आप अगर इसी में प्रसन्न हैं तो मैं आपकी भेंट ले लूंगी।"

यह सुनते ही विलास का मुखकमल फिर खिल उठा। पूर्णिमा भी यह देखकर खुश हुई। वह विलासबाबू को एक निमिषमात्र में इतना सुखी बना सकी यह देखकर उसे मन ही मन बड़ा आश्चर्य हुआ, हर्ष भी हुआ। इस प्रकार दूसरों को सुख देने की शक्ति

उसमें है इस जानकारी से उसे विशेष अभिमान और हर्ष हुआ।

दूसरे ही क्षण नेकलेसों का ढेर, टेबल पर आ पड़ा। और लगभग आध घण्टे की जांच पड़ताल के बाद एमेराल्ड के पत्थर लगा हुआ ढाई सौ रुपये कीमत का एक नेकलेस खरीद लिया गया, जिसका डिज़ाइन नूतन और नितान्त सुन्दर था। विलास ने अपना पता दे दिया और बिल मकान पर भेजने के लिये कहा। सेल्स गर्ल ने अपने हाथों से नेकलेस पूर्णिमा को पहनाकर कहा — "You look lovely like a queen!" (आप एक महारानी की तरह लावण्यमयी दिखती हैं)" और अपने विधान के समर्थन में उसने विलासबाबू की तरफ देखकर एक स्मित किया। विलासबाबू ने भी एक स्निग्ध मुस्कराहट के साथ उसकी दाद दी। जब वे दोनों स्टोर्स से निकले तब दोनों के मन में एक ही भाव था कि कितनी होशियार है यह सेल्सगर्ल!

पूर्णिमा नेकलेस की सुन्दरता से प्रसन्न थी। उस भेंट के पीछे भेंटकर्ता की जो भावना थी उसने भी उसे सुख दिया। विलास की प्रसन्नता का तो क्या पूछना है? जब वे थियेटर में अपनी 'रिजर्व बाक्स' में जा बैठे तब खेल शुरू होने में पांच मिनिट की देर थी — बत्तियां गुल होने की थीं। दर्शकों में से कई स्त्री-पुरुषों की आंखें इस युगुल जोड़ी पर गड़ गईं। उनमें कई पूर्णिमा और विलास के कॉलेजों के छात्र-छात्राएं भी थीं।

सिनेमा और प्रिंसेज होटल के डिनर के बाद विदाई का वक्त आया। रात के साढ़े दस बज चुके थे। रात शीतल और आल्हाददायक थी। इसलिये विलास ने कहा—

"पूर्णिमा! अब घर तो जाना ही है। सीधे रास्ते से न जाकर यदि सर्कूलर रोड से चलें, जो पहाड़ी पर से जाता है, तो कैसा अच्छा हो! लगभग दस मील का 'ड्राइव्ह' हो जायगा और बीस मिनिट से ज्यादा देर न लगेगी। बड़ा लुत्फ आयगा। आज के इस सुखद दिवस का अन्त इसी ढंग से होना चाहिये।"

"पर ज्यादा देर न लगाइये। बापू क्लब से घर लौट आए होंगे और मेरी राह देखते होंगे। अब अधिक वक्त बाहर रहना ठीक नहीं।" ऐसा कहकर पूर्णिमा ने अपनी सम्मति दे दी।

मोटर बड़ी रफ्तार के साथ हवा के साथ बातें करती जा रही थी। सामने की सीट पर विलास और पूर्णिमा बैठे हुए थे। दोनों चुप थे और शांतिपूर्वक आनन्द का उपभोग कर रहे थे। हवा के तेज झोकों से पूर्णिमा के बाल उड़ते जा रहे थे। जब मोटर मोड़ पर घूमती तो वे बाल उड़कर विलास के चेहरे से टकराकर उसे उन्मादक आनन्द का अनुभव दे रहे थे। पूर्णिमा के केशों में लगे हुए सुवासिक तेल का परिमल उसके समस्त शरीर में व्याप्त हो रहा था। एकबार पूर्णिमा ने दोनों हाथों से अपने बाल सँवारने का प्रयत्न किया तो उसका दाहिना हाथ विलास बाबू के बायें गाल से छू गया। दोनों एकदम सहम गये। दोनों ने एकसाथ अनुभव किया कि उनके शरीर में रोमांच आ गया है। दोनों के मुँह से एक ही साथ 'सॉरी' निकला। और बात वहीं खतम हो गई।

जैसे वे पहाड़ी का चक्कर लगाकर वापिस लौट रहे थे तो उस पहाड़ी के पाये के पास की मोड़पर जहाँ सिविल लाइन्स के बंगले शुरू होते हैं, विलासबाबू ने देखा कि एक मोटर तेजी से उनकी तरफ आ रही है। टक्कर बचाने के लिये विलास ने अपनी मोटर की गति धीमी कर ली और वह बाँई तरफ मुड़ा। सामने की मोटर भी उसी तरफ से आ रही थी। उसके ड्राइवर ने इस मोटर को देखकर अपनी मोटर भी धीमी करदी। दोनों के फ्लैश लाइट कुछ क्षण के लिये एक दूसरे पर पड़े जिसके कारण उनमें बैठने वाले व्यक्ति देखे जा सकते थे। पूर्णिमा ने देखा कि सामने की मोटर में कई स्त्री-पुरुष सटे हुए हैं जो वेश भूषा से किसी सम्भ्रान्त बंगाली परिवार के मालूम पड़ते थे। उन्होंने भी इस मोटर में बैठे हुए दो व्यक्तियों को गौर से देखा। मोटरें जब एक दूसरे के पास से गुजरने लगीं तो पूर्णिमा ने देखा कि सामने वाली मोटर में से एक रमणी अपनी सीट पर ही उठकर उसकी तरफ गौर से देख रही है, मानों वह उसे पहिचानती हो। और ज्यों ही वह मोटर आगे निकल गई तो पूर्णिमा के मुँह से सहसा निकल पड़ा—

"वीणा!"

१९५०

"हाँ, वह मोटर डेप्युटी अकाउण्टेंट जनरल मिस्टर वैनर्जी की है। मज़ा देखा ?—कितना बड़ा कुलवा एक मोटर में लदा हुआ था, " विलास ने हंसते हुए कहा। "हूँ" कहकर पूर्णिमा चुप हो रही। उसे यह बात खटकी कि वीणा ने उसे रात को ग्यारह बजे के करीब विलास बाबू के साथ मोटर में इस निर्जन विभाग में घूमते हुए देखा। यह अच्छा नहीं हुआ। विलास ने वीणा के बारे में उस दिन जो कहा था वह उसे याद था ही।

चार पांच मिनिट के अन्दर ही मोटर 'शांति सदन' आ पहुंची। एक सुखदायी स्वप्न के भंग होने का वक्त आ गया। मोटर रुकते ही पूर्णिमा ने उतरने की तैयारी करते हुए कहा—

"अच्छा गुड नाइट ! आज के सुखद दिवस के लिये धन्यवाद"। और अपना, दाहिना हाथ मिलाने के लिये आगे बढ़ा दिया।

विलास बाबू ने भावावेश में आकर वह हाथ अपने दाहिने हाथ म लकर बड़े स्नेह के साथ दबाया। पूर्णिमा ने अनुभव किया कि इस पौरुषमय सम्पर्क से उसके शरीर में मानों विद्युत का संचार हो गया है।

आज का दिवस यथार्थ में बहुत सुन्दर बीता। तुमने मुझे आज खूब सुख दिया—मैं इसे कदापि नहीं भूलूंगा" विलास ने स्निग्ध अन्त-करण से कहा

"मुझे भी आज बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ" पूर्णिमा ने अपने मन के भाव से कहा।

"अच्छा-गुड नाइट।" फिर एक बार पूर्णिमा ने कहा और बाँये हाथ में अपना रैकेट सम्हाला।

"गुड नाइट" कहकर विलास बाबू ने पलक मारने के पहिले ही पूर्णिमा का हाथ उठाकर अपने ओठों को लगाया और उसका एक हल्का-सा निःशब्द चुम्बन ले लिया

पूर्णिमा कुछ नहीं बोली। विलास बाबू को पता नहीं चला कि उसकी धृष्टता से वह प्रसन्न हुई है या नाराज। उसने दरवाजा खोला और अपना रैकेट सम्हालते हुए वह उतर पड़ी। जब मोटर फिर से 'स्टार्ट' हुई तब उसने हाथ उठाकर विलास बाबू को विदाई दी। फिर एक बार जोर की आवाज में, स्नेह से 'गुड नाईट' चिल्लाकर विलास बाबू ने मोटर आगे बढ़ाई। उनका दिल बाँसों उछल रहा था और वे अनुभव कर रहे थे कि वे इस कोलाहल पूर्ण मृत्युलोक में नहीं: वरन् किसी आनन्दमय स्वप्न लोक में विचरण कर रहे हैं।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

:माधुर्य भाव का प्रथम स्पंदन:

पूर्णिमा को उस रात नींद कहां ? किन्तु इस बार उसकी अनिद्रा का कारण चिन्ता या विषाद नहीं था। उसे कुछ ऐसे अननुभूत आनंद का अनुभव हो रहा था जो उसने आज तक नहीं पाया था। आज जब से वह विलास बाबू के साथ बाहर गई है तब से उनके विदा होते तक एक एक घटना उसे फिर फिर याद आ रही थी। विलास बाबू का प्रत्येक शब्द, प्रत्येक हाव-भाव, उनकी स्निग्ध और प्रेमल दृष्टि, जिसमें उसने कुछ नवीन भाव देखा—ये सब उसे याद आ रहे थे। सबसे अधिक सुखद अनुभव जिनसे हुआ वे दो प्रसंग थे। एक तो उस समय जब बाल संवारते हुए उसका हाथ विलास बाबू के गाल को स्पर्श कर गया था। और दूसरा जब विदा होते समय, विलास बाबू ने भावना के आवेश में उसके हाथ का चुम्बन लिया। जिस स्थान पर उनके ओंठ लगे थे उस स्थान में एक विचित्र माधुरी का उष्ण स्पंदन का उसे अनुभव हो रहा था। इस समय भी, उस घटना के घंटों बाद, उसे लगा कि विलास बाबू के ओंठों की—सुकोमलता ने उस स्थान को भी नितान्त कोमल एवं आर्द्र बना दिया है। विलास बाबू की मूर्ति उसकी आखों के सामने रम्य होकर कई गुनी सुन्दरता लिये नाच रही थी और उसके हृदय में परम आनंद, परम उल्लास का भाव जागृत हो उठा था।

आज विलास बाबू उसे नित्य के विलास बाबू की अपेक्षा बिलकुल भिन्न दीख रहे थे। उनमें न जानें कहां से सौन्दर्य, स्नेहभावना और अद्भुत रम्यता का नवीन संचार हुआ ऐसा उसे लगा। उनकी प्रतिमा समस्त पुरुष जाति से हटकर, ऊंचा उठकर, उसके लिये एक नवीन अर्थ लेने लगी। और उसका हृदय विलास बाबू के प्रति अत्यंत कोमल भावों से भर गया !

जब विलास बाबू ने उसका हाथ अपने सख्त मज़बूत हाथों में पकड़कर अपने ओठों से लगाया तब वह सोच-समझ भी न पाई थी कि क्या हो रहा है। एक क्षण के लिये उसे ऐसा लगा कि वह इसका प्रतिकार करे। किन्तु इच्छा रहते हुए भी वह प्रतिकार नहीं कर सकी; और न किया। उसका भी उसे कुछ बुरा न लगा। वह अनुभव उन्माद-कारी था जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके शरीर के अंग प्रत्यंग में एक सूक्ष्म कंपन—कोमल रोमांच सिहर उठा।

क्या यही प्रणय का प्रथम स्पंदन है? क्या यही वह प्रीति है जिसके गीत दान्ते, कालिदास, शैली, बायरन, ब्राउनिंग आदि कवियों ने गाये हैं और जिसने समस्त मानव समाज को अपूर्व आनंद की निधि दी है। क्या यही वह अद्भुत प्रणय भावना है जिसने एष्टनी और क्लिओपाट्रा, रोमियो और ज्युलियेट, लैला-मजनू आदि की अमर कहानियों की सृष्टि की है और जो शत शत मानवों को अनादि काल से प्रेरणा, अनुभूति, अभिव्यंजना और परमानंद देती चली आ रही है?

इन विचारों ने उस पर उन्माद का आवरण फैला दिया और उसे अपवे बाह्य भौतिक जीवन का विस्मरण होने लगा। वह कल्पना-रानी के रमणीय साम्राज्य में विचरण करने लगी। इस मधुर स्वप्नावस्था में भला कैसे नींद आ सकती थी?

उधर विलास बाबू भी कुछ ऐसी ही भावना का अनुभव कर रहे थे। किन्तु सबसे प्रमुख जो भावना थी वह यह कि आज उनका विजय-दिवस है। स्त्रियों पर इस प्रकार की विजय पाना उनके लिये कोई नई बात नहीं थी। बड़ी बात भी नहीं थी। आजकल के कॉलेज-जीवन के कृत्रिम वातावरण में पनपने वाली साधारण लड़की जिन बातों पर आसक्त हो सकती है वे सब विलासबाबू में पर्याप्त यात्रा में थीं—रूप, गठीला शरीर, शिक्षा, धन, मोटर और आमोद-प्रमोद की प्रवृत्ति। किन्तु पूर्णिमा जैसी सौन्दर्य-गुण-शील-नारी पर विजय प्राप्त करना निस्संदेह अनोखी बात थी। किसी बड़े से बड़े नर-पुंगव के लिये भी यह विजय अभिमान का कारण हो सकती थी। और पूर्णिमा ने उसके हस्त चुंबन का प्रतिकार नहीं किया, उलटे मोटर स्टार्ट होने के वक्त हाथ हिलाकर उसे स्नेह से विदाई दी तब तो उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि पूर्णिमा भी उससे आकर्षित है, मोहित है। यह सर्वांग-सुंदर रमणी उसके 'प्रणयाराधन' का स्वागत करती है केवल यही उसके सुख-संतोष के लिये काफी है। इससे अधिक गहराई तक जाने का उसे कोई प्रयोजन नहीं। उसकी प्रवृत्ति भी नहीं। यह स्पंदन और कंपन यह सब तो ऐसे समय मामूली तौर पर होता ही है, यह वह जानता है।

पूर्णिमा के बारे में विलास की पूरी तरह यही धारणा थी कि वह क्रीड़ा-प्रिय, विलासासक्त, आमोद-प्रमोद की इच्छुक आधुनिक रमणी है। पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंगे हुए पिता की कन्या है और अनिर्बंध स्वातंत्र्य के वातावरण में पली हुई है। प्रणय-प्रधान सिनेमा चित्र देखने में उसे रस है, खेल-कूद और खाने-पीने से उसे विशेष आकर्षण है। शारीरिक सौन्दर्य तो उसका अनुपम है ही। ऐसी सुन्दर रमणियां फिलासफी की अपेक्षा रोमान्स की भक्त होती हैं, प्यूरिटन की अपेक्षा बोहेमियन होतीं हैं, ऐसी उसकी निश्चित धारणा थी।

हां, उस दिन वर्षगांठ के समारोह में जब उसने संगीत का प्रदर्शन किया था तब न जाने उसमें कहां से कुछ फिलासफी, कुछ गंभीरता और कुछ ऐसी गूढ़ता आ गई थी जिसे विलास समझ नहीं सका था। ये सब बातें विलास के लिये अगम्य हैं, उसके ज्ञान और अनुभूति से परे हैं। इससे उस दिन उसे कुछ अटपटा जरूर लगा था। किन्तु उसने सोचा, स्त्रियां स्वभाव तथा भावना-प्रधान होती ही हैं और कभी जभी उनमें इस प्रकार की रहस्यता, गूढ़ व्यंजना भी आ ही जाती है।

लेकिन यह 'मूड' भी उनकी झक ही है जो क्षण-भंगुर है जैसे जेठ में भूले भटके आनेवाले मेघ जिस प्रकार अस्थायी होते हैं उसी प्रकार। इसलिये उसें विश्वास था कि पूर्णिमा भी अन्य सब आधुनिक रमणियों की तरह सुख-लोलुप है। यही एक कारण था जो विलास उसकी तरफ अत्यन्त आकर्षित था और उसके पीछे दीवाने की तरह पड़ा हुआ था।

१९५०

दूसरे दिन सुबह पूर्णिमा ने वह नेकलेस अपने पिता को बतलाया। अपने मैच, डिनर, सिनेमा का तथा सेमिनरी हिल्स के ड्राइव्ह का जिक्र भी रस-भरे शब्दों में किया। केवल वे दो प्रसंग नहीं बतलाये जो उसके शरीर में एक नवीन स्पन्दन निर्माण कर चुके थे। इतना अधिक खुलकर बतलाने का वह साहस नहीं समेट सकी, यद्यपि उसके और उसके पिता के संबंध काफी स्वतंत्र और खुले थे। किन्तु न जाने क्यों ऐसा लगा कि वह अनुभव उसका अपना निजी अनुभव है; अतएव उसे गोप्य रखना ही अभीष्ट है।

बैरिस्टर पंडित ने बड़ी रुचि के साथ वे सब बातें सुनीं। नेकलेस की भी उन्होंने खूब तारीफ की। वे भी आधुनिक आचार-विचार के व्यक्ति थे ही, इसलिये उन्हें इन सब बातों में कुछ खटका नहीं। उनकी सहानुभूति से पूर्णिमा बहुत प्रसन्न हुई और उसे लगा कि जो भावनाएं वह अनुभव कर रही हैं उनके पीछे उसके प्रिय पिता का वरद हस्त है। उसका दिल बढ़ा, उसे ढाढ़स हुआ।

बैरिस्टर पंडित के मन में एक अस्पष्ट कल्पना आए बिना न रही कि पूर्णिमा और विलास के बीच विशेष आत्मीयता बढ़ रही है। शायद प्रीतिभावना भी जाग्रत हो रही है। इस प्रश्न को व्यावहारिकता की दृष्टि से भी उन्होंने सोचा तो उसमें उन्हें कोई बुराई नहीं दिखी। आखिर विलास में किस बात की कमी है? डेढ़ लाख रुपया आमदनी की जमींदारी का वह एक मात्र उत्तराधिकारी है, केवल सुशिक्षित ही नहीं वरन विलायत भी जाने वाला है, सुन्दर है, शरीर-स्वास्थ्य अच्छा है, इत्यादि इत्यादि। अब और क्या चाहिये? यदि पूर्णिमा इसमें राज़ी है और वह विलास से प्रेम कर सकती है तो वे क्यों इसमें कोई बाधा डालेंगे? उलटे वे तो इसका स्वागत ही करेंगे। किन्तु उन्होंने निश्चय किया कि इस संबंध में अभी जल्द ही कोई निर्णय नहीं करना चाहिये। अधिक हितकर यही होगा कि वे तटस्थ भाव से परिस्थिति को देखें और कुछ दिनों तक पूर्णिमा और विलास की भावनाओं का निकट से सूक्ष्म अध्ययन करें। यदि उनकी भावनाएँ इस ओर दृढ़ मूल हो जाती हैं तो उन्हें कोई एतराज नहीं होगा यही उनकी धारणा है।

उस रात्रि के अनुभव के बाद विलास का बैरिस्टर पण्डित के यहां आना जाना और भी बढ़ गया। पूर्णिमा भी उससे अब अधिक खुलकर मिलने जुलने लगी। जो नवीन भावना उसके हृदय में उत्पन्न हो रही थी उसके लिये पोषक वातावरण तैयार हो गया। ऐसा लगता था कि कहीं से, किसी भी ओर से, उसमें कोई बाधा नहीं है।

पूर्णिमा ने अपने इस नवीन स्पंदन का जिक्र किसीसे नहीं किया — उसने उसे अपने हृदय के दूर को कोने में जहां उसे कोई भी न देख सके, छिपा रक्खा।

विलास के लिये तो भला छिपाने की क्या बात थी? उसके व्यक्तित्व में शायद ऐसा कोई गुप्त स्थान ही नहीं था जहां कहीं कुछ छिपाकर रक्खा जा सके।

बारहवाँ परिच्छेद

: बीती करुण-कहानी :

संध्या हो रही थी। विनयकुमार पैदल ही घूमने निकल पड़ा। आज वह सिविल लाइन्स की तरफ आया था और लौटती बार जब बैरिस्टर पण्डित के निवासस्थान के पास आया तब उसे अकस्मात् इच्छा हुई कि वह अन्दर जाकर देखे, पूर्णिमा है या नहीं। पूर्णिमा से मिलने की विशेष आशा तो नहीं थी, क्यों कि यह उसका क्लब का समय था। लेकिन ज्योंही वह 'शांति-सदन' के अहाते में घुसा त्योंही उसने संगीत के स्वर और एक रमणी के गायन की ध्वनि सुनी। उसने जान लिया कि पूर्णिमा घर पर ही है।

उसने दरवान को इत्तला देने के लिए कहा और संदेशा भिजवाया कि यदि आज पूर्णिमा व्यस्त है तो वह और किसी दिन आयेगा। पूर्णिमा ने ज्योंही विनयकुमार का नाम सुना त्योंही वह गाना बन्द करके बैठ गई और दरवान से कहा कि उन्हें तुरन्त अन्दर ले आवे। विनयकुमार हॉल में आया। वहां पूर्णिमा अपना तम्बूरा लिये गाने की प्रैक्टिस कर रही थी।

पास ही उस्ताद बहादुरखां भी अपनी सितार लिये बैठे थे। साथ में एक तबलची और एक

हारमोनियम मास्टर थे, जो उस्ताद साहब के ही चेले थे ।

गायन में बाधा पहुँचाने के कारण विनयकुमार को बड़ा संकोच हुआ । समस्त उपस्थित लोगों को अभिवादन कर उसने कहा—

" माफ कीजिये, मैंने आपके रंग में भंग कर दिया । आप अपना प्रोग्राम चलने दीजिए, मैं एक तरफ बैठकर सुनता रहूंगा । "

" कोई बात नहीं । " पूर्णिमा ने हँसते हुए कहा " हम लोग अभी खतम ही करनेवाले थे । आप निःसंकोच रहें । "

" लेकिन खतम तो नहीं हुआ है । जरा मैं भी दो एक चीजें सुनूं ! इसमें मुझे बहुत दिलचस्पी है । " विनय ने कहा ।

उस्ताद ने पूर्णिमा की तरफ प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा । पूर्णिमा ने विनयकुमार और उस्ताद बहादुरखां का परिचय करा दिया । विनय की खूब तारीफ की; हालां कि वह उसे बराबर रोकता रहा । कहा, स्कॉलर हैं, विद्वान हैं, वक्ता है, प्रतिभाशाली हैं वगैरः वगैरः । और ज्योंही वह उस्ताद की तारीफ करने लगी तब उस्ताद स्नेह से बोले—

" रहने भी दे बिटिया—मुझ नाचीज बूढ़े में तारीफ की क्या बात है ? "

"जी, तारीफ करने की जरूरत तो ज्यादा नहीं है । मैं खुद भी आपके बारे में कुछ जानता हूँ, " विनयकुमार ने कहा । " पूर्णिमादेवी के साल गिरह के जलसे में मैं हाजिर था और मैंने उस वक्त आपकी कला को देखा था । "

" ओह ! आप तशरीफ लाये थे उस रोज ! " उस्ताद ने खुश होते हुए कहा । " उस दिन तो हमारी पूर्णा बिटिया ने कमाल कर दिया । मैंने खुद भी उम्मीद नहीं की थी कि वह इतनी तैयार हो गई है, फिर औरों की तो बात ही क्या है ! "

विनयकुमार ने देखा कि इस बूढ़े के दिल में पूर्णिमा के लिये कितना अपनापन, कितना स्नेह भरा पड़ा है, जैसे पूर्णिमा उसी की कन्या हो और उस शरीफ बुजुर्ग ने उसे बनाने-बढ़ाने में अपनी पूरी ताकत लगा दी हो । इस बात ने विनय को खूब सुख दिया ।

" जी, हाँ, उस दिन पूर्णिमादेवी के संगीत से आप बहुत खुश हुए थे यह मैंने उसी दिन देखा था । आपकी गीली आँखें उसका साफ सुबूत थी । "

" अच्छा, यह भी देखा आपने ? " उस्ताद साहब ने कुछ अचरज के साथ और कुछ शर्मिन्दा होकर कहा । " तब तो आपकी नजर बहुत तेज है और इन्सान को आपसे बचना चाहिये — कहीं उसकी कमजोरियों का राज आपकी आँखों के सामने न खुल जाय । " और वे ठहाका मारकर हँस पड़े । पूर्णिमा भी हँस दी । वह उस्ताद के इस कथन से पूरी तरह सहमत थी । विनयकुमार के स्वभाव का यह सत्य उसे भी ज्ञात था ।

" जी ऐसी बात तो नहीं है । लेकिन हाँ, इतना जरूर है कि किसी भले आदमी की शराफत, मुहब्बत और अपनापन यदि देख पाता हूं तो उसे भूल नहीं सकता । उस दिन पूर्णिमादेवी की कामयाबी से आपको जितनी खुशी हुई उतनी शायद ही किसी को हुई हो । सच्चे उस्ताद के यही लक्षण हैं । उस दिन मेरा सर आपके सामने इज्जत से झुक गया । और आपकी आंखों के आंसुओं ने मेरे दिल पर गहरा असर किया ।"

" तब तो आप भी बड़े गहरे आदमी मालूम पड़ते हैं । मैं दर असल आपसे मिलकर बहुत खुश हुआ ।" आनंद विभोर होकर उस्ताद बहादुरखां ने कहां । उन्हें यथार्थ में अपनी सच्ची और हृदय से निकली हुई प्रशंसा सुनकर हर्ष हुआ और विशेष मजे की बात तो यह थी यह नया नौजवान उनके दिल के हाल को किस तरह पढ़ गया ! यकीनन्, यह कॉलेज में पढ़ने वाले दूसरे लौंड़ों से कुछ अलग ही मालूम पड़ता है ।

"जी, नावाज़िश है ।" विनयकुमार ने कृतज्ञ होकर कहा । "उस दिन तो आप और पूर्णिमा देवी दोनों ही इस दुनिया से ऊंचे उठकर एक नये निराले आलम में भ्रमण कर रहे थे । संगीत की इतनी सफल समाधि किसी गंभीर तपस्या के बाद ही आती है या फिर उसकी बुनियाद में कोई दिल

१९५०

का दर्द होता है जो हमेशा के लिये हृदय में एक टीस, एक कसक, पैदा कर देता है। वरना इतना ऊंचा कमाल हासिल करना आसान नहीं।" विनयकुमार जान-बूझकर, सोचसमझकर ऐसा बोल रहा था। पूर्णिमा के जीवन की भूमिका और उसके विषाद को तो वह जानता ही था। और बूढ़े उस्ताद की आँखों के आंसुओं ने भी उसे इसी नतीजे पर पहुंचाया था कि उनके भी दिल की तह में कोई एक दर्दीली कहानी जरूर छिपी होगी।

उस्ताद को ताज्जुब हुआ कि इस नये लड़के ने उनके जख्म को इस तरह कैसे छू दिया! एक ही बार तो उसने उन्हें देखा है और इतने में ही वह इतना सब जान गया? अजीब आदमी है! उस्ताद ने दुख की एक गहरी निःश्वास ली जैसे उनको वे सब पुरानी बातें याद आ गई। वे विह्वल होकर बोले—

"ठीक कहते हैं आप, विनयबाबू। यह रहमतगार हाफिज की मेहरबानी है जो उसने मेरे दिल को सेहत देने के सिये मुझे संगीत दिया। वरना मेरा जीना तो मुश्किल था।

जिस खुदावन्द करीम ने इतनी बड़ी चोट दी उसने उसे बर्दाश्त करने की ताकत भी दी और उस मर्ज़ की दवा भी दी। यह सब उसी परवरदिगार की इनायत है।" उस्ताद ने उदास होकर कहा। उनका हृदय बीते हुए जमाने की याद में कातर हो उठा था। पूर्णिमा जो यह सब ध्यान से सुन रही थी, अनुकंपासे द्रवित हो उठी। विनयकुमार भी बगैर और कुछ पूछे-ताछे उस बूढ़े की अन्तर्वेदना समझ गया। लोगों की अन्तर्व्यथा समझने की न जाने उसमें कैसी अद्भुत शक्ति थी।

विनयकुमार कहने को तो इतना सब कह गया लेकिन उस्ताद को दुख पहुँचाने की उसकी मंशा नहीं थी। यूं इस बात का दुख तो उस्ताद को था भी नहीं। उन्होंने देखा कि इस नौजवान के दिल में उनके लिये हमदर्दी का एक दरिया बह रहा है। इस सहानुभूति की भावना ने उन दोनों को आत्मीयता के मीठे और स्नेहार्द्र धागे से बाँध दिया। बात पलटने के लिये उसने कहा—"खैर, उन सब बातों को जाने दीजिए उस्ताद साहब! अब कोई एक चीज सुनाइये अच्छी सी। मैं संगीत पर फिदा हूँ और उस दिन से जब मैंने पहली बार आपका हुनर देखा, मेरी दिली ख्वाहिश रही है कि मैं आपके संगीत को फिर सुनूं। आज मेरी खुशकिस्मती से अच्छा मौका हाथ लगा है।— सुनाइये न?"

"जी हां चचा, सुनाइये कोई अच्छी चीज। मैं सितार से आपका साथ दूंगी।" पूर्णिमा ने भी स्नेहभाव से आग्रह किया।

उस्ताद ने ज्यादा आनाकानी नहीं की। विनयकुमार ने उनके दिल को छू दिया था। इसलिये वे खुद भी संगीत का स्पंदन अनुभव कर रहे थे। तम्बूरा हाथ में लेकर गाने लगे—

"कोई नहीं अपना जगत् में—"

वह एक करुण वेदना-गीत था। उस्ताद खुद गाते गाते आर्त हो उठे थे। पूर्णिमा और विनयकुमार पर भी उसका ऐसा ही असर पड़ा। पूर्णिमा उदास हो गई। विनयकुमार की वेदना भी जाग उठी। यह करुणागीत उसे बड़ा मधुर लगा। गीत जब खत्म हुआ तब सबने एक गहरी सांस ली। फिर फौरन उस्ताद घर जाने को तैयार हुए। उन्होंने विनयकुमार से स्नेहपूर्वक हाथ मिलाया और उसे बार बार मिलने को आग्रह कर गये। उनके साजिन्दे उन्हीं के साथ चले गये। विनय भी जाने के लिये उठा किन्तु पूर्णिमा ने उसे आग्रह-पूर्वक रोक लिया। जब वे तीनों हॉल के बाहर चले गये तब विनयकुमार ने स्तब्धता भंग करते हुए कहा — "अजीब मालूम पड़ता है यह आर्टिस्ट। कितनी गहराई है इसमें! बीती हुई स्मृतियां जगाने की कैसी अद्भुत ताकत है इसके संगीत में। गाता क्या है स्वरों में अपना जीवनरस उंडेल देता है।"

पूर्णिमा ने ये स्निग्ध शब्द सुने। उसे स्मरण हो आया कि विनयकुमार की जीवन-कहानी विचित्र है, और उसके जीवन में न जाने कहां से विषाद आ गया है, ऐसा उसीने एक बार कहा था। आज वह विनय की जीवन-गाथा सुने बिना नहीं रहेगी। उसने विनयकुमार से इसके बारे में तीव्र आग्रह किया।

विनयकुमार भी आज ऐसी मनोदशा में था कि वह अपनी बात कहे। उसने संक्षेप में अपना रोमांचकारी भूतकाल कह सुनाया—

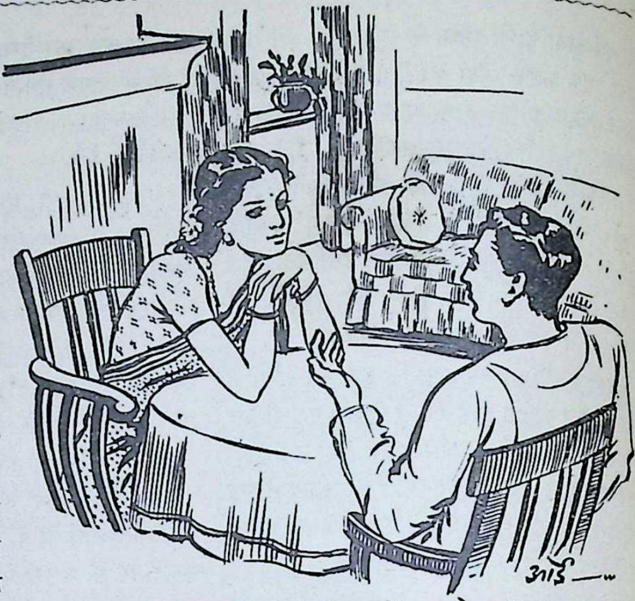

"मेरी कहानी सुनकर न जाने आप क्या सोचेंगी पूर्णिमादेवी ! किन्तु एक बात का विश्वास है कि आपके मनमें मेरे प्रति कुछ सहानुभूति है; और अधिक कुछ नहीं तो कम से कम वही आप मुझे दे सकेंगी। इसलिये मैं अपनी जीवन-गाथा आपको सुनाता हूँ।"

इतना कहकर विनय-कुमार ने अपने रोमांचकारी जीवन की वे सब बातें सुना दीं जो हम पहले ही बतला चुके हैं। जव कहानी खत्म होनेपर थी तव उसने एक निःश्वास लेकर कहा—

"मैं ऐसा अभागा हूँ कि मैं अपने देवतुल्य पिता का मुख भी नहीं देख सका। उनका रक्त-मांस जो मेरे निर्माण में लगा है वही मेरे लिये उनकी देन है और इस शरीर के प्रति मुझे मोह है तो वह केवल इसीलिये कि यह उनकी दी हुई धरोहर है जो मेरे हाथों में सौंपी गई है; ताकि मैं उसे किसी अवांछनीय कार्य से कलंकित न करूं। "पिता का जीवन उल्का ही की तरह रहा। जितने दिन जीवित रहे अपनी आभा से अपने आसपास के जगत को आलोकित करते रहे। मृत्यु भी उनकी कितनी उदात्त थी—कैसा वीर-मरण था वह ! इतिहास इसका साक्षी है कि मातृभूमि की अभ्यर्चना के महान् अर्घ्य में उनके रक्त की बूँदे भी शामिल हुई हैं।

"उनकी तथा मेरी माता की प्रीति भी कितनी अद्भुत थी। कठोर कर्त्तव्य पालन एवं नियति के निर्मम विधान की भूमिका पर उस स्वल्प-जीवी प्रणय का विजय-प्रासाद खड़ा हुआ था। कितना भव्य, कितना उदात्त, कितना महान् ! मैंने अपनी माता की डायरी के पन्नों से जाना कि वह अपने आराध्य के प्रेम में कितनी तन्मय और कितनी समरस थी। पुण्यमयी एवं पावन प्रीति की साधना में उन दोनों ने न जाने कितनी रातें एक दूसरे के स्नेहमय सान्निध्य में—परमैक्य में, अपलक बिताई थीं। डायरी में एक जगह कुछ इस प्रकार लिखा था—'यह मिलन का सुख कितना गूढ़, कितना पूर्ण है ? जैसे संसार के सब प्रश्न सुलझ गये हों, और जीवन परम पूर्णत्व को प्राप्त कर गया हो। हृदय में अपार आनन्द है, परम मांगल्य है। ऐसा लगता है जैसे हम दोनों को एक दूसरे के लिये ही बनाया गया है ! मंगलमय परमेश्वर ! हमें मृत्यु का भय नहीं है। किन्तु हमारा पुनर्जन्म हो तो हमारा पुनर्मिलन भी इसी प्रकार हो, पुनः पुनः हो। वस इससे अधिक हमें और कोई वरदान नहीं चाहिए।' इस लेख के नीचे मेरे माता और पिता दोनों के हस्ताक्षर थे।

"ऐसे दिव्य एवं अलौकिक प्रणय का मैं वरदान हूँ। जिस उदात्त प्रीति ने माता-पिता को अपूर्व आनंद दिया उसी ने माता को पिता की मृत्यु का आघात सहन करने की शक्ति भी दी। और उसी स्नेहमयी माता की गोद में मैंने अपने जीवन के पहले उन्नीस वर्ष बिताये हैं। और एक दिन वह भी मुझे छोड़कर, निश्चिन्त हो, मेरे पिता से, जो उसे वार वार वुला रहे थे, और जिनके पास अवतक वह केवल मेरे ही कारण नहीं गई थी, चिर-मिलन के लिये चली गई। और तव से स्नेह की दृष्टि से मैं विलकूल अकेला हूँ, एकाकी हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि इस भौतिक जीवन में आने

के पूर्व ही मैंने अपने माता-पिता के संयुक्त जीवन में जो सुख पाया वही पाया। अब तो उस सुख की निगूढ़ स्मृति ही न जानें कहीं से मेरे हृदय में आकर बैठ गई है और मेरे जीवन को जगाती है।

"शायद यही कारण है जो में कभी कभी अत्यन्त उदास हो जाता हूँ! उस समय मेरा विश्वास है कि मेरी माता तथा पिता मुझे याद करते होंगे। कई लोगों को यह मेरा पागलपन लगेगा किन्तु मैं अपनी अटूट अविचल श्रद्धा के खिलाफ कैसे जा सकता हूँ? मेरे समूचे व्यक्तित्व का रोम-रोम उस पुण्य स्मृति से व्याप्त है। वही मेरे सुख, कर्तव्य, और अस्तित्व की प्रेरक शक्ति है।—"

विनय-कुमार का प्रत्येक शब्द पूर्णिमा के हृदय में जाकर तीर की तरह लग रहा था। वह इस प्रकार बोल रहा था, जैसे उसके प्राण उसकी वाणी में उतर आये हों। पूर्णिमा की आँखों में अश्रु की धारा बहने लगी। विनय की आँखें भी आर्द्र हो गईं। उस अद्भुत एवं रोमांचकारी जीवन कथा को सुनकर पूर्णिमा का कोमल नारी हृदय गहरी अनुकम्पा से भर गया। उसकी भावनाएं उमड़ पड़ीं। उसे डर लग रहा था कि कहीं उसके संयम का बांध न टूट पड़े और वह फूट फूटकर रोने न लगे। अपनी साड़ी के अंचल से उसने अपने आंसू पोंछे। और जब वह अपने आवेग को न रोक सकी तब—किसी निमित्त को लेकर—बगल वाले कमरे में भाग गई और वहां से बाथरूम में जाकर, उसे अन्दर से बन्द कर, खूब रोई। पांच सात मिनिट में उसका जी कुछ हल्का हुआ। फिर वह अपना चेहरा धोकर तथा पोंछकर हॉल में लौटकर आई तो देखा कि विनय कुमार वहां नहीं है। दरवान ने बतलाया कि बाबू साहब चले गये!

* * *

मेघदूत में कालिदास की एक सूक्ति —

"आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्"

—धन-सम्पदा इकट्ठी करना ही मनुष्य-जीवन का उद्देश्य नहीं है। रुपया कमा कर उसे अपने ही काम में खर्च करना ठीक नहीं है। स्वार्थ-लिप्सा में फँसकर जीवन बिताना श्रेयस्कर नहीं है। धन-अर्जन का एक उद्देश्य भोजन बिना मरनेवाले भाइयों की सहायता करना भी होना चाहिए। धन इकट्ठा करो सही, पर दूसरों के दुःख को दूर करने में भी उसका व्यय करना चाहिये। उत्तम पुरुषों की सम्पत्ति का फल यही है कि वह विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों के दुःखों को दूर करे। ठीक ही कहा है — परोपकाराय सतां विभूतयः।

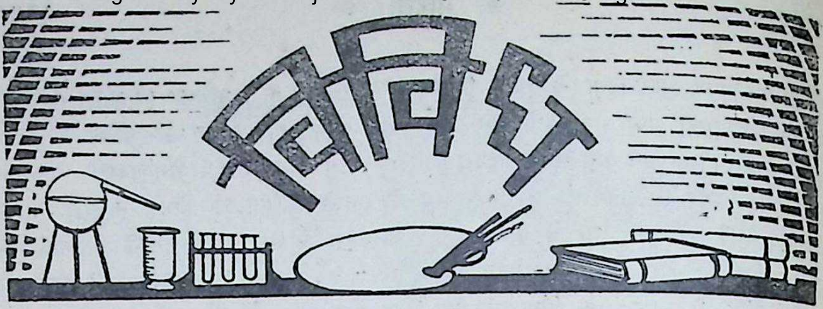

भारतीय गणतन्त्र का प्रथम आम चुनाव :

यद्यपि अधिकृत रूप से भारतीय गणतन्त्र शासन के प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन की तिथियाँ अब तक निश्चित नहीं हैं, तथापि भारत के प्रत्येक राज्य में उसकी तैयारियाँ हो रही हैं। प्रौढ़ निर्वाचन पद्धति पर होने वाले चुनावों विषयक तैयारियों की भूमिका निम्न तालिका से व्यक्त होती है:—

देश की जनसंख्या———३३७,०३८,०००
मतदानाधिकार———१ जनवरी, ५० को २१ वर्ष पूरा करनेवाला व्यक्ति।
अवतक मतदाताओं की संख्या——१७ करोड़।
(जो संसार भर के राष्ट्रों में अग्रगण्य होगी)
गणतंत्रजनसभा सदस्यों की संख्या———४८४
अस्पृश्य जातियों की सीटें————७१
आदिवासी सीटें—————३८

उपर्युक्त तालिका में महिलाओं की सीटें निश्चित नहीं रहेंगी। मतदाताओं की सूची सारे देश में आगामी अक्टूबर मास तक तैयार हो जायगी।

मध्यप्रदेश राज्य में प्रौढ़ मतदाताओं की संख्या १ करोड २१ लाख तक पहुंच गयी है जो इस प्रदेश की जनसंख्या की ६० प्रतिशत है। इस कार्य में शासन को कोई ७-८ लाख रुपये खर्च करने पड़े है।

अल्प संख्यकों की समस्या पर : भारत-पाक समझौता :

अप्रैल १९५० का प्रथम सप्ताह ऐतिहासिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है जब हिन्द विभाजन के पश्चात् पहलीवार ही ऊँचे स्तर पर दो राष्टों के बीच इतनी सदभावना और मैत्रीपूर्ण ढंग पर चर्चायें हुईं। 'न्यूयार्क टाइम्स' अमरीका समाचार पत्र के प्रतिनिधि की भेंट में पाकिस्तानी प्रधान मंत्री के शब्दों से इन वार्ताओं के प्रभाव और भारतीय उद्देश्यों की पवित्रता का संकेत मिलता है जिनसे प्रभावित हो कर पाक-प्रधान मंत्री लियाकत अलीखांन ने ब्रिटेन की सरकार और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सदस्य राष्ट्रों से पाक-सीमाओं की सुरक्षा की गैरन्टी चाही है। भारतीय संसद् में पिछले दिनों प्रधान मंत्री पण्डित नेहरू ने पाकिस्तान स्थित अल्पसख्यकों की सुरक्षा के लिये जिन कड़ी कार्यवाहियों की ओर संकेत किया था, पाकिस्तान सरकार द्वारा उसका अर्थ युद्ध-लगाया गया था। परन्तु गत २ अप्रैल से ५ अप्रैल तक चलने वाली दोनों प्रधान मंत्रियों की मंत्रणाओं से जो अनुभव भारत सरकार के रुख के सम्बन्ध में लियाकत अली खां को हुआ उसके वे अत्यन्त कायल हुए हैं। भारत सरकार इन समस्याओं को सुलझाने के मामले में युद्ध की हिंसात्मक-प्रवृत्ति का कितना सहारा लेना चाहती है, यह इसीसे प्रकट है कि एक ओर जब अन्य राजनैतिक संगठनों द्वारा पूर्वी बंगाल के विरुद्ध पुलिस कार्यवाही की मांग की जा रही थी, भारतीय मंत्रिमण्डल के इक्के-दुक्के सदस्य विरोध स्वरूप त्याग-पत्र देने बैठे थे और तीसरी ओर कहीं साम्प्रदायिकता के अधार पर उत्तेजना मूलक चेष्टायें की जा रही थीं; प्रधान मंत्री पं. नेहरू श्री लियाकत अली के साथ बैठकर शान्तिपूर्ण समझौते के लिये प्रयत्नशलि थे। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान के हक में भी इस समय युद्ध की बात अन्तरिक और बाह्य परिणामों के प्रकाश में अदूरदर्शिता पूर्ण समझी जा रही थी।

प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा कुछ विचारधाराओं को अनसुनी कर जिस भावना से

तात्कालिक उपायों की खोज की गयी वे भविष्य में सफल हुए तो युद्ध के परिणाम स्वरूप प्राप्त हो सकने वाली परिस्थितियों से कहीं अधिक अनुकूल और स्थायी होंगे—यह इस समझौंते से स्पष्ट है। इस समझौते का भारत के साथ अमेरिका, ब्रिटिश मजदूर सरकार, ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल आदि सभी सम्बद्ध क्षेत्रों द्वारा स्वागत किया गया है। अब तक स्वयं पाकिस्तान शासन-समझौते की भावना को लेकर अपेक्षित रूप से अग्रसर हो रहा है।

भारत और पाकिस्तान के बीच दोनों देशों के प्रधान मंत्रियों की लम्बी चर्चाओं के फल स्वरूप हाल ही के उपद्रवों के प्रसंग में हुए ८ अप्रेल के फैसले में ८ मुद्दों का समावेश है इस समझौते की भूमिका इस प्रकार है कि भारत और पाकिस्तान की सरकारें निष्ठापूर्वक इस बात के लिये सहमत हैं कि दोनों देशों के अल्पसख्यकों के धर्म पर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की जायेगी। समान रूप से पूर्ण नागरिक अधिकारों के उपभोग के साथ जीवन, संस्कृति, सम्पत्ति, व्यक्तिगत सम्मान, प्रतिष्ठा की रक्षा करते हुए उन्हें अपने देश में स्वतंत्रता पूर्वक आवागमन की सुविधा उपलब्ध रहेगी। इसके अतिरिक्त अपनी रुचि का व्यापार करने, भाषण और उपासना की नैतिकता के नियमानुसार उन्हें उन्मुक्तता रहेगी। राजनैतिक जीवन में समानाधिकार, पदग्रहण की एकसी सुविधा और सैनिक पदों की प्राप्ति दोनों देशों की सरकारें ध्यान में रखेंगी।

उपर्युक्त अधिकारों के पालन की पूर्ण जवाबदारी दोनों सरकारें अपनें ऊपर लेती हैं। यहां प्रधान मंत्री पं. नेहरु ने स्मरण दिलाया कि भारतीय नवविधान के अनुसार उपर्युक्त सभी प्रकार की गैरण्टी यहां के अल्पसंख्यकों को दी जा चुकी है। पाकिस्तानी प्रधान मंत्री ने भी इसे दोहराकर बताया कि पाक विधान सभा में स्वीकृत ध्येय प्रस्ताव में भी इसी प्रकार की व्यवस्था अल्पसंख्यकों के लिये की गयी है। इस प्रकार दोनों देशों की सरकारों द्वारा इस ध्येय की पुष्टि की गयी है कि दोनों देशों के नागरिक इसी प्रकार भेद भाव हीन होकर प्रजातंत्रिक अधिकारों का उपभोग कर सकेंगे। दोनों देशों के हर नागरिक को अपने शासन के प्रति आस्था रखते हुए शिकायतों को दूर करने में अपने शासन पर ही विश्वास करना होगा।

पूर्वी बंगाल, पश्चिम बंगाल, आसाम और त्रिपुरा राज्य में हाल ही में उपद्रव हुए हैं उनके लिये दोनों देश जिस समझौते पर पहुंचे हैं उसके ८ सूत्रों का विवरण इस प्रकार है :—

१—लोगों को सुविधा पूर्वक एवं सुरक्षित रूप से इधर-उधर आने जाने दिया जावेगा। २—निष्क्रमणार्थी अपने साथ चल सम्पत्ति का जितना भाग ले जाना चाहेगा ले जाने दिया जावेगा। चल सम्पत्ति में आभूषण और अन्य जीवनोपयोगी सामग्री का समावेश होगा। प्रत्येक प्रौढ़ अपने साथ नगद १५० रु० और अल्पवयस्क ७५ रु० ले जा सकेगा। ३—कीमती चीजें बैंकों में जमा की जा सकेंगी। मुद्राओं का विनिमय निर्धारित मान पर हो सकेगा। ४—चुंगीनाकों पर दोनों शासनों का एक एक कर्मचारी नियुक्त रहेगा जिससे निष्क्रमणार्थी तंग नहीं किये जायें। ५—निष्क्रमणार्थी का उसकी अचल सम्पत्ति पर अधिकार माना जावेगा। इसके लिये ३१ दिसम्बर उनके पुनः अपने स्थान में लौट आने की शर्त रखी गयी है। नहीं लौटनेवाले अपनी जायदाद की इसके पूर्व अदलाबदली कर सकते हैं। अचल सम्पत्ति के मालिकों की अनुपस्थिति में उसकी व्यवस्था एक ट्रस्टी कमेटी करेगी। इसके लिये दोनों बंगाल प्रान्तों, आसाम और त्रिपुरा राज्यों की सरकारें कानून बनाकर इन ट्रस्टी कमेटियों का संगठन करेंगी।

भारतीय भाषाओं का संगठित प्रसार-कार्य :

पिछले दिनों विश्वविद्यालय कमीशन द्वारा शिक्षण सम्बधी जो सिफारिशें की गयी थीं उनमें से अधिकांश को केन्द्रीय शिक्षण सलाहकार समिति द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। इसके अनुसार इस समिति द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है कि विधान सभा द्वारा घोषित राष्ट्रभाषा हिन्दी की वैज्ञानिक एवं अन्ताराष्ट्रीय शब्दावली को भारतीय ढाचे में ढालकर ध्वन्यात्मक और उच्चारणों के आधार पर उसका भारतीयकरण किया जाय। उच्च शिक्षा भारतीय भाषाओं में देने का निर्णय समिति द्वारा किया गया है।

भारतीय भाषाओं से अर्थ प्रादेशिक भाषाओं से है किन्तु माध्यमिक और विश्वविद्यालय के शिक्षण में राष्ट्रभाषा और अंग्रेजी का ज्ञान भी शिक्षार्थियों को करना होगा। इसके लिये यह सुविधा रखी गयी है कि कुछ विषयों में हो या सम्पूर्ण विषयों में, छात्र इन भाषाओं को ले सकते हैं। ग्रंथ-रचना एवं शब्दकोश निर्माण कार्य के लिये अलग-अलग उपसमितियाँ नियुक्त की जायँगी।

कुम्भ के महा पर्व की पृष्ठभूमिः

प्रभावाद् अद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसः।
परिग्रहान्मुनीनांच तीर्थानाम् पुण्यता स्मृता॥

उपर्युक्त कथन के अनुसार भूमि, जल, तेज और वहां तप करनेवाले मुनियों की परिग्रहवृत्ति के कारण ही तीर्थों में पुण्यदायी प्रभाव रहता है। इसीलिये भारतीयं तीर्थों का वैज्ञानिक पौराणिक महत्व है।

कुम्भ का मेला भी इसी प्रकार के पौराणिक महत्व को लेकर बड़े समारोह के साथ हमारे यहां सम्पन्न होता आया है। इसका वर्णन पुराणों से लेकर अथर्व वेद तक में मिलता है—चतुरः कुम्भाः चतुर्धा दधामि के प्रमाण के अनुसार हरिद्वार, प्रयागराज, अवन्तिका (उज्जयिनी) और गोदावरी तट पर ही क्रमशः कुम्भ मेला भरा करता है। इसकी पौराणिकता के विषय में कहा जाता है कि समुद्र-मंथन में निकले हुए अमृत-कलश को प्राप्त करने के लिये जब देव-दानवों में छीना-झपटी चल रही थी तब जयन्त के हाथ से वह दानवों के हाथा में नहीं चला जाय इसके लिये गुरु, सूर्य और चन्द्र देवों की ओर से प्रयत्न कर रहे थे। इसी बीच हरिद्वार, प्रयागराज, उज्जैन और गोदावरी पर चार बूंदें 'अमृत-कुम्भ' (कलश) में से गिर पड़ी थीं। अमृत बूंदों का यही अमरत्वपूर्ण माहात्म्य 'कुम्भ' मेला भरने का बाद में कारण बन गया।

कुम्भ मेला भरने के काल का भी पुराणों में निर्देश किया गया है—

कुम्भराशिगते जीवे यद्दिने मेषगे रवौ।
हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्ति वर्जनम्॥

जब बृहस्पति कुम्भ राशिपर और सूर्य मेष पर आते हैं तब कुम्भ-स्नान हरिद्वार में किये जाते हैं। इसी क्रम से प्रत्येक मेला प्रत्येक तीर्थों में पड़ता है। कुम्भ स्नान का पर्व इस वर्ष वैशाख कृष्ण १२ दिनांक १३ अप्रैल १९५० को हरिद्वार में पड़ा था। संसार में अद्वितीय इस पर्वपर इस वर्ष इतनी भीड़ रही कि वर्तमान पीढ़ी ने अबतक वहां ऐसी भीड़ नहीं देखी। लगभग २० लाख साधु सन्तों और गृहस्थों ने इस अवसर पर गंगा में स्नान किया और सूर्यग्रहण के पर्व पर कोई १० लाख व्यक्तियों ने 'हर की पेड़ी' पर स्नान का पुण्य लूटा। इसबार के कुम्भ-मेले में विदेशी यात्री भी आये थे।

: मासिक घटना चक्र :

१ अप्रैल १९५० से ३० अप्रैल १९५० तक

१ अप्रैल—भारत के इतिहास में प्रथम बार केन्द्रीय शासन द्वारा देश-व्यापी सशस्त्र फौजों का एकीकरण।

—बम्बई प्रान्त में सर्वत्र मद्य-पान पर निषेध का बोलबाला, जिसके अनुसार शासन को प्रतिवर्ष ११ करोड़ की हानि होगी। दिनांक ६ अप्रैल को राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद द्वारा मद्य-निषेध का उद्घाटन समारम्भ मनाया गया।

२ अप्रैल—भारत पाकिस्तान के बीच साम्प्रदायिक-समस्याओं के तात्कालिक निबटारे के लिये दोनों राष्ट्रों के प्रधान मंत्रियों के बीच नयी दिल्ली में चर्चा प्रारम्भ। पं. नेहरू द्वारा एक समझौता सूत्र प्रस्तुत करने का अनुमान।

३ अप्रैल—अमरीका के ५० शान्तिवादियों द्वारा महात्मा गांधी के सिद्धान्तों पर उद्जन बम की राक्षसी प्रवृत्ति रोकने के लिये सप्ताह भर का उपवास प्रारम्भ।

४ अप्रैल—करांची में स्थित राष्ट्रपिता की प्रतिमा के आंधी के कथित कारण वहा २०-२१ मार्च को गिरपड़ने की खबर। पाक-शासन द्वारा पुनः स्थापना का आश्वासन।

—प्रयाग, अकोला, बंबई आदि नगरों में हिन्दी के ख्याति प्राप्त कवि, लेखक, पत्रकार और राजनीतिज्ञ पं. माखनलाल चतुर्वेदी के हीरक महोत्सवका हिन्दी जगत में समारोह।

५ अप्रैल—मध्यप्रदेश शासन की विधान सभा द्वारा राज्य में से मालगुजारी प्रथा उन्मूलक का विधेयक स्वीकार। इस कार्य में शासन को लगभग १० करोड़ रुपया क्षतिपूर्ति में देना पड़ेगा।

६ अप्रैल—पूर्वीय हिन्देशिया में सैकड़ों सैनिकों का विद्रोह जिसमें प्रादेशिक हिन्देशिया राष्ट्रीय सैन्य के कमाण्डर और १४० अफसर एवं कर्मचारी गणों पर कब्जा किया गया।

७ अप्रैल—गत २ अप्रैल से नयी दिल्ली में चलने वाली नेहरू-लियाकत अली खां समझोता-वार्ता के प्रसंग में लियाकत अली खां द्वारा भारत-पाक मित्रता समिति को अल्प संख्यकों को समानाधिकार देने सम्बधी आश्वासन।

—मध्यपूर्वीय ७ अरब देशों में सामूहिक सुरक्षा संधि पर हस्ताक्षर। इस प्रकार संसार में अरब लीग का सिल नामक एक नये राजनैतिक गुट का निर्माण। इसमें अरबिया, इजिप्त, ईराक, सौदी, सीरिया, लेबनान, यमन और जोरंग शामिल हैं।

८ अप्रैल—भारत-पाकिस्तान के बीच पूर्व-पश्चिम बंगाल और आसाम के अल्प संख्यकों सम्बन्धी दोनों के प्रधान मंत्रियों की चर्चा के फल स्वरूप समझौते पर हस्ताक्षर। ३ बजे दिनको पाक-प्रधान मंत्री का करांची प्रस्थान।

—भारत के भूतपूर्व गवर्नर-जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने अल्प संख्यकों सम्बन्धी भारत-पाक समझौते पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि इस बार व्यक्त किया विश्वास और पारस्परिक मैत्री का दोनों ओर से पूर्ण निर्वाह होगा।

—समझौते की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप केन्द्रीय मंत्रिमंडल से श्री क्षितीशचन्द्र नियोगी और डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी के त्याग पत्र की खबरें।

—कांग्रेस के साथ समाजवादी दल के सहकार्य सम्बन्धी समाचार को जालंधर में समाजवादी दल की प्रतिष्ठा घटाने वाला बताते हुए आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा कि देश में 'युद्ध जैसा' संकट आ पड़ने पर ही उनका संगठन कांग्रेस से गठ-बन्धन कर सकता है। उनके दल की शर्तें हैं देश में राष्ट्रीयकरण और बिनाशर्त जमीदारी उम्मूलन के उपरान्त ही वे कांग्रेस के सहयोग के लिये खड़े हो सकते हैं।

९ अप्रैल—हैदराबाद के तैलंगाना इलाके में १ और २ हजार के बांच में आतंकवादी संघटन के उपद्रवों में संलग्न होने की खबर। मद्रास और हैदराबाद शासन इस अशान्ति का समाप्त करने में बराबर प्रयत्नशील।

१० अप्रैल—आस्ट्रेलियन ज्यूरिस्ट सर ओवेन डिक्सन सं. रा. संघ द्वारा काश्मीर मामले के मध्यस्थ नियुक्त। भारत-पाक सरकारों द्वारा प्रस्तावित नाम की स्वीकृति।

१२ अप्रैल—भारत-पाकिस्तान समझौते के अनुसार भारत सरकार द्वारा बंगाल, आसाम और त्रिपुरा राज्यों के अल्पसंख्यक कमीशन नियुक्त करने का आदेश।

१३ अप्रैल—हिन्देशिया की संयुक्त राष्ट्रीय सरकार के अध्यक्ष डॉ० सुकर्ण ने 'मकासार के विद्रोह' को समाप्त कर देने के लिये अपनी सेना को ललकारा। इसके बाद ही सैनिक कार्यवाहियां प्रारम्भ, जावा में विद्रोहियों से भीषण मुठभेड़।

१४ अप्रैल—विद्रोही सैनिक कमाण्डर आदि अब्दुल अजीज जकार्ता पहुंचे।

—लाल चीन के हेनान प्रान्त में ७० लाख व्यक्ति भुखमरी के शिकार बने।

—तिब्बत में कम्युनिस्ट हमले का सामना करने के लिये जोरदार तैयारियां।

१५ अप्रैल—पूर्वी हिन्देशिया का बागी सैनिक कमाण्डर केप्टन अजीज जकार्ता में गिरफ्तार। फौजी न्यायालय में मामला।

१७ अप्रैल—पाकिस्तानी प्रधान मंत्री लियाकतअली खां द्वारा प्रधान मंत्री पण्डित नेहरू को २६ अप्रैल को कराची पधारने का निमंत्रण। पंडितजी से प्रार्थना की गयी है कि चूंकि लियाकतअली २९ अप्रैल को लण्डन होकर वाशिंगटन जाने के लिये प्रस्थान कर रहे हैं अतः वे उक्त तारीख को करांची पहुंच जायें जिससे ३ दिन का समय महत्वपूर्ण वार्तालाप करने के लिये प्राप्त हो सके।

—भारतीय प्रजातंत्र का प्रथम आम चुनाव, जो संभवतः १९५१ के वसन्त में होगा, उसके लिये तैयार होनेवाली मतदाता-सूची में १७ करोड़ से ऊपर व्यक्ति होंगे; जब कि देश की जन-संख्या ३३७,०३८,००० है।

१८ अप्रैल—भारतीय संसद् में जन-विधेयक प्रस्तुत। इसके अनुसार वयस्क मताधिकार के अन्तर्गत सार्वजनिक चुनावों तथा प्रतिनिधित्व सम्बन्धी नियम बनाये जायेंगे।

—पख्तूनिस्तान की मांग के लिये पाकिस्तान से समझौता करने के लिये अफगानिस्तान के तैयार होने की एक प्रवक्ता द्वारा घोषणा।

—आगामी २ मई को चन्द्रनगर (फरासीसी बस्ती) भारत में विलिन कर लिया जायगा।

१९ अप्रैल—केन्द्रीय मंत्री-पद से त्याग-पत्र के बाद भारतीय संसद् में डॉ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी का वक्तव्य।

२१ अप्रैल—भारत-पाक व्यापारिक समझौते पर हस्ताक्षर।

२३ अप्रैल—हेनान पर कम्युनिस्टों का अधिकार।

नोटः—भारतीय स्वास्थ्य विभाग द्वारा बताया गया है कि भारत में क्षय और मलेरिया से प्रति वर्ष ६० लाख व्यक्ति मर रहे है।

२४ अप्रैल—केन्द्रीय शिक्षण सलाहकार समिति द्वारा विश्व विद्यालय कमीशन की अधिकांश सिफारिशें स्वीकृत।

—ब्रिटेन पर ९ अरब डालर का युद्धकालीन ऋण-मुक्ति में सहायतार्थ अमेरिका से निवेदन।

२६ अप्रैल—प्रधान मंत्री पं. नेहरू की कराची यात्रा। कराची में ३ मील तक एकत्र जनसमूह द्वारा विराट स्वागत।

२७ अप्रैल—दिन में २॥ घण्टे तक नेहरू-लियाकतअली मंत्रणायें जिनमें काश्मीर समस्या, शरणार्थियों की सम्पत्ति, पंजाब की नहरों के जल का झगड़ा आदि विषय शामिल थे।

२८ अप्रैल—ब्रिटेन द्वारा पौण्ड कर्ज की अदायगी के लिये अमरीका डालर सहायता सम्बन्धी मांग में डालर कर्ज को कुछ अंशों में कम करने के प्रस्ताव से भारत-पाकिस्तान में नाराजी और निराशा।

२९ अप्रैल—राजस्थान में एक आज्ञा द्वारा गौ-वध गैर-कानूनी घोषित किया गया।

—भारत-पाक सरकारों के बीच सम्बन्धों में प्रगति के कारण काश्मीर-समस्या सद्भावनापूर्वक हल होन की भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ में आशा का वातावरण।

—माध्यमिक शिक्षण प्रणाली की एक रूपता के लिये भारत-सरकार द्वारा एक कमीशन नियुक्त करने का प्रस्ताव विचाराधीन।

—भारत-पाक सम्बन्धों की दृढ़ता के लिये भूतपूर्व गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के प्रवासी राजदूत नियुक्त होने की आशा।

३० अप्रैल—पाक प्रधान मंत्री श्री. लियाकतअली खां अमरीका यात्रा के लिये आज लन्दन पहुंचे।

—स्वतंत्र झाड़खण्ड प्रान्त निर्माण के लिये बिहारी आदिवासी जनता की मांग।

—ल० प्र० पु०

साहित्यालोचन

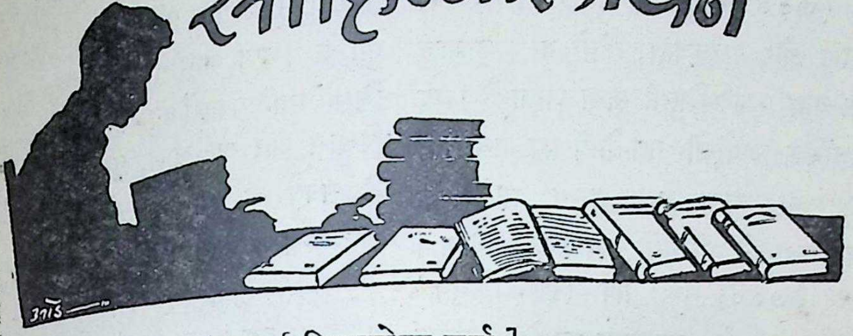

[**विनयमोहन शर्मा**]

(**सूचना** :—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ आनी चाहिए)

‘ अंगरेजी साहित्य-परिचय ’

लेखक : **सर्वश्री दयाशंकर शर्मा और विद्याशंकर शर्मा, प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा ।** पृष्ठसंख्या ३६४, अजिल्द — मूल्य चार रुपया । छपाई, सफाई साधारण ।

यह हिन्दी के उदीयमान अध्ययनशील लेखकों-द्वारा अंगरेजी-साहित्य का परिचयात्मक इतिहास है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य पर अंगरेजी साहित्य का बहुत अधिक प्रभाव है । हिन्दी गद्य का वर्तमान रूप उसी के ढँचे में ढला हुआ है । लघुकथा, एकांकी नाटक, लघुनिबन्ध आदि का विकास उसी की देन है । छायावाद युग की पद्य-कृतियों में आंग्ल कवियों की आत्मा बहुधा प्रतिबिंबित दिखायी देती है । हमारा समीक्षा साहित्य भी बहुत अंशों में उससे अनुप्राणित है । अतएव हिन्दी भाषियों को आँग्ल साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों से परिचित होने की नितांत आवश्यकता है । लेखकद्वय ने प्रस्तुत पुस्तक की रचना कर हिन्दी साहित्य की एक बड़ी भारी कमी को पूरा किया है । वास्तव में अंगरेजी साहित्य का प्रारम्भ १४ शताब्दी से होता है । चॉसर अँगरेजी कविता का पिता माना जाता है । चॉसर के पूर्व एँग्लो सेक्सन और एँग्लो नार्मन साहित्य रचा जा चुका था ।

अँगरेजी साहित्य में दूसरा महत्वपूर्ण युग शेक्सपियर का आता है । जिसका काल सन १५५८ से १६२५ है । इस युग में नाटकों का खूब विकास हुआ । शेक्सपियर के पश्चात मिल्टन का युग आता है । इस युग में धार्मिक राजनैतिक संघर्षों के कारण साहित्य में असंतोष स्पष्ट झलकता है । मिल्टन में यह भावना विशेष रूप से व्यक्त हुई है । यह ‘ प्यूरिटन एज ’ (‘Puritan Age’) कही जाती है । इस युग में गत युग की रोमेन्टिक प्रवृत्ति के स्थान पर बौद्धिक विवेचनात्मक साहित्य का सृजन शुरू हो गया था । अतः इस समय चिन्तन प्रधान कृतियाँ अधिक लिखी गईं । मिल्टन के महाकाव्य ‘Paradise Lost’ और ‘Paradise Regained’ का प्रणयन इस काल की विशेषता है । मिल्टन के उपरान्त

१६०७ से 'ड्राइडन' युग आरम्भ होता है जो १७०० तक चलता है। ड्राइडन—कवि, लेखक और नाटककार, तीनों था। ड्राइडन एक बड़ा काव्य-शिल्पी माना जाता है। वह आधुनिक अंगरेजी गद्य-शैली का जन्मदाता भी माना जाता है। इसने साहित्यिक आलोचना को भी नया रूप प्रदान किया। सन १७०० से 'पोप (Pope) युग' प्रारम्भ होता है। इस काल का श्रेष्ठ साहित्य गद्य में लिखा गया है। स्विफ्ट (Swift), डिफो, एडीसन और स्टील जैसे श्रेष्ठ गद्यकारों का प्रादुर्भाव इसी युग में हुआ। सन १७४५ से १७९८ तक का काल जानसन युग कहलाता है। इस युग की साहित्यिक रचनाएँ संघर्ष-युग का परिचय देती हैं। अंगरेजी साहित्य में यह युग विशेष महत्व रखता है क्योंकि इसी समय साहित्य के विभिन्न अंगों की उन्नति हुई। ओलिवर गोल्डस्मिथ, शेरीडन, गिबन, ह्यूम बर्क, फील्डिंग आदि का प्रादुर्भाव इसी समय हुआ। इसके बाद रोमेन्टिक युग आता है। जिसके प्रसिद्ध साहित्यकार वर्डस्वर्थ, कालरिज, शेली, कीब्स, बायरन, वाल्टर स्कॉट आदि हैं। रोमेन्टिक युग के बाद विक्टोरियन युग आता है जिसका काल सन १८३० और १८९० के मध्य माना जाता है। इस युग की कृतियों पर विज्ञान ही अमिट छाप है। फिर भी इसमें एक ही धारा का अखंड प्रभाव नहीं पाया जाता। इस युग में कारलाइयल, रस्किन, मेकाले, न्यूमेन, वाल्टर पीटर, आस्कर वाइल्ड, चार्ल्स, डिकन्स, थेकरे, जॉर्ज ईलियट, स्टीवेन्सन, स्विन् बर्न, मेथ्यूआर्नेल्ड, टेनिसन, ब्राउनिंग, टामस हार्डी, मेरीडिथ आदि साहित्यकों का नाम हिन्दी साहित्य में काफी प्रसिद्ध है। विक्टोरियन युग के पश्चात आधुनिक युग प्रारंभ होता है जिसमें साहित्यकारों को आस्था और अनास्था, विश्वास और अविश्वास, पुरातन और नवीन के संघर्ष का सामना करना पड़ा। डार्विन और वेल्स ने रूढ़ियों में बसी हुई विचारधारा को गहरी ठोकर दी जिससे चिन्तन का प्रवाह ही बदल गया। उग्र पन्थी तरुण लेखक और लेखिकाओं ने अपने असंयत उत्साह का परिचय विचित्र रीति से दिया। ईश्वर, भाग्य, धर्म और श्रद्धा के प्रति उपहासपूर्ण दृष्टिकोण बरता जाने लगा। आधुनिक युग के प्रसिद्ध नाटककारों में बर्नार्ड शा ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। शॉ ने प्रसिद्ध नाटककार इब्सन का सफल अनुकरण किया। इनके नाटकों का दृष्टिकोण शिक्षात्मक और प्रचारात्मक है। उनके नाटक "कला कला के लिये है" नहीं लिखे जाते। शा के अनन्तर जॉन गालसबर्दी प्रसिद्ध समस्यावादी नाटककार हैं। थियेटरों के एकाधिपत्य के विरुद्ध भी इस युग में आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जो रैपर्टरी आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में कई नाटककारों की कृतियाँ सामने आयीं। आधुनिक उपन्यासकारों में बेनेट, वैल्स, मूर, मेकैन्जी, वालपोल, लारेन्स, हक्सले, जायस, वर्जिइयना कवियों में मेसफील्ड, हार्डी, किपलिंग, इट्स, हाउसमैन वाल्टर डीलामारे, टी. एस. ईलियट आदि का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

आज अंग्रेजी साहित्य विभिन्न दिशाओं की ओर उन्मुख है। तन्त्र के नये नये प्रयोग हो रहे हैं। प्रत्येक भाग अपने को

पूर्ण बना रहा है। ऐसी दशा में हिन्दी साहित्यकारों को अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन निश्चय ही प्रेरणा प्रदान करेगा। हिन्दी साहित्य में आंग्ल कलाकारों के तन्त्र तथा विचारों का किस रूप में ग्रहण हुआ है; यह हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के लिये खोज का विषय हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक को लेखकों ने सरल शैली में लिखकर अपने भाषा-बल का अच्छा परिचय दिया है। हम उनसे हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में योगदान की अपेक्षा करते हैं।

'माटी की मूरतें'

लेखक: **श्री. रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी**, प्रकाशक-**पुस्तक भंडार पटना**। पृष्ठ संख्या १०३, छपाई सफाई आकर्षक, मूल्य तीन रुपया।

बेनीपुरीजी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। उनकी लेखनी में आग और पानी का बल है; भाषा पर उनका पूरा अधिकार है। उन्होंने हिन्दी के कई पत्रों के सम्पादन के अतिरिक्त कई पुस्तकें भी लिखी हैं जिनमें उपन्यास, कहानी, नाटक और स्केच शामिल है। 'माटी की मूरतें' 'स्केच'-पुस्तक है जिसमें ग्यारह व्यक्तियों के रेखाचित्र अंकित किये गये हैं। ये चित्र प्रसिद्ध व्यक्तियों के नहीं है और न ऐसे व्यक्तियों के हैं जिनमें आधुनिक सभ्यता का बनाव सिंगार है। गांव के ही साधारण व्यक्ति इसमें रेखांकित हुए हैं। लेखक उन्हें 'कहानियाँ' नहीं, 'जीवनियाँ' मानते हैं क्योंकि 'ये चलते फिरते आदमियों के शब्द-चित्र हैं'। अंग्रेजी में 'गार्डिनर' के रेखाचित्र बड़े प्रसिद्ध हैं। नमें व्यक्ति के अन्तर और बाह्य रूप को खींचने का यत्न किया गया है। पर भावप्रवणता का अंश कम है। 'माटी की मूरतें' के रेखा-चित्रों में भावप्रवणता प्रधान रूप से है। साथ ही कहानी का औत्सुक्य-तत्व भी पर्याप्त मात्रा में निहित है जिससे पाठक अन्त तक कुतूहल-उल्लास के साथ पात्र के साथ चलता जाता है और अन्त कब आ गया, इसका उसे भान ही नहीं होता। यात्रा समाप्त होने पर पात्र का चित्र उसके मस्तिष्क में अनजाने अंकित हो जाता है। लेखक का कहने का अपना ढंग है। हिन्दू-मुस्लिम एकता का एक भाव-चित्रण देखिये—"उन दिनों हिन्दू मुसलमानों की तनातनी नहीं थी, दोनों दूध-चीनी की तरह घुले-मिले थे। हिन्दू की होली में मुसलमानों की दाढ़ी रँगी हुई थी, मुसलमानों के ताजियों में हिन्दू के कन्धे लगे होते।" बलदेवसिंग का चित्र प्रथम-परिच्छेद में ही अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त हो उठा है।

"टूटे हुए तारे की तरह एक दिन हमने अचानक अपने बीच में आकर उसे धम्म से गिरता हुआ पाया—ज्योतिर्मय, प्रकाश पुँज, दीप्तिपूर्ण! और, उसी तारे की तरह एक क्षण प्रकाश दिखला, हमें चकाचौंध में डाल, वह हमेशा के लिये चलता बना। जिस दिन वह आया, हमें आश्चर्य हुआ; जिस दिन वह गया हम स्तम्भित रह गये!!"

'भौजी' का रेखाचित्र भी हिन्दू परिवार का एक प्रतीक है। लेखक के इस कथन में तथ्य है। "भारतीय परिवार में भौजी का वही स्थान है जो मरुभूमि में 'ओएसिस' का।" लेखक ने उनके चित्रण में अपनी लेखनी को 'रस' से सिक्त बना लिया है,

मानों। तभी उसका यह रूप हैं—"भौजी अभी बिल्कुल किशोरी थीं, उनके अधरों पर पूरा रस नहीं आया था, उनके अंग अभी पूरे भरे नहीं थे....उन्नत ललाट, भवें उठीं हुईं, पतली पतली काले बादलों में घुँघरालापन, जब उन्हें वे खोलतीं तब वे अजीब लहरदार मालूम होते थे, नाक ललाट के नजदीक जाकर जरा चिपक सी गई किन्तु उसका अग्रभाग काफी सुन्दर व मोहक, ओंठ कुछ मोटे किन्तु चिबुक का रसीलापन इस किंचित ऐब को ढँक देता........जब भौजी हँसती, सचमुच मोती झरने लगते यह तो हुआ भौजी का बाह्य चित्रण; उनका आन्तरिक प्रेमल स्वभाव भी लेखक ने बड़ी चतुराई से अंकित किया है।

घर में लोटा-थाली का बँटवारा हो जाने पर भी (संकट के समय) भौजी के हृदय में कभी 'बँटवारा' नहीं हुआ।

रूपा के आजी का चित्र भी बोलता-सा प्रतीत होता है। बैजू मामा, सुभान खाँ आदि चित्रों के साथ पाठक का लेखक के साथ तादात्म्य हो जाता है।

हिन्दी साहित्य में "माटी की मूरतें" अपना एक विशिष्ट स्थान रखती हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं !

'मिट्टी की महक'

लेखकः **श्री· भृंग तुपकरी, रमा प्रकाशन गृह, अम्बाझिरी रोड़ नागपुर। मूल्य १।)।** मुख पृष्ठ भावपूर्ण चित्र से अंकित है।

लेखक नागपुर के उदयोन्मुख साहित्यकार हैं। वे कहानी, निबंध, कविता, नाटक सभी कुछ लिखते हैं। वे आल इंडिया रेडियो में लेखन का ही कार्य करते हैं। प्रस्तुत नाटक अपने संक्षिप्त रूप में रेडियो से प्रसारित किया जा चुका है। इसमें जमींदारों और किसानों के संघर्ष की विषण्ण स्थिति का हृदयद्रावक चित्र अंकित किया गया है। जब गरीबी दो दानों के लिये तरसती है तब अमीरी उन्हीं दो दानों को भूखों के मुख से छीन कर उन्हें अशरफियों में बदल कर अपनी तिजोरी भरती हैं।

जमींदारों की ऐसी मनोवृत्ति ने आज उनका उन्मूलन कर डाला है। कई 'मोहनों' की शव-चिता में जमींदारी का शव जलकर राख हो चुका, हमारे देश में निकट भविष्य में यह समस्या इतिहास बन जायगी। फिर भी युग की प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के लिये 'मिट्टी की महक' जैसे नाटकों का महत्व कम नहीं होगा।

नाटक की कथा रोचक है। उसका 'तन्त्र' चलचित्र के रंगमंच के अधिक अनुकूल है। रमेश, जमींदार धन्ना, पांडे, मोहन, मुनीम आदि के चरित्र प्रायः परिस्थिति के अनुकूल चित्रित किये गये हैं। राधा ग्रामीण वातावरण की उपज नहीं मालूम होती। उसमें नागरी का भावातिरेक है। लेखक ने उसके कंठ में संस्कारी काव्य के उद्‌गारों को भी आरोपित कर दिया है। राधा मोहन से प्रेम करती है; पर उसमें आदर्श की कल्पनातीत भूमिका पायी जाती है। इस दृष्टि से नाटक के श्रृंगार में सात्विकता है। हम लेखक से इससे भी अधिक सुन्दर नाटकों की आशा करते हैं।

'नई धारा' (मासिक पुस्तिका)

सम्पादक :— श्रीयुत रामवृक्ष शर्मा, बेनीपुरी। प्रकाशकः— अशोक प्रेस, पटना।

श्री बेनीपुरी ने मासिक 'हिमालय' के बाद 'नई धारा' को जन्म दिया है। वे अपनी नई धारा के द्वारा गुलाब का गीत गाना चाहते हैं। 'वादों-विवादों' से दूर रहकर 'नई धारा' से वे राष्ट्रभाषा को नई भाव-सुरभि, नई टेकनिक, और सबकुछ ऐसा जो उसे अन्य भाषा-भाषियों के बीच सम्मान से सर उठाने योग्य बनाये; प्रदान करना चाहते हैं। यह प्रथम अंक अंशतः उनके सुन्दर स्वप्न की रूप-रेखा प्रस्तुत करता है। 'दिनकर' का 'गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति', डॉ॰ सत्यनारायण का 'डिरी डोल्मा', प्रो॰ 'रेणु' का तेलुगु-साहित्य, साँवलिया बिहारीलाल वर्मा का महर्षि रमण — "मैं की खोज", श्री शर्मा का आलोचना के नामपर—आदि लेख पठनीय हैं। 'डायरी के पन्ने', 'सब से प्यारी कृतियाँ', 'पत्रांजलि' —स्तम्भ भी रोचक हैं। 'नई धारा' की ये नवीनता लिये अपनी कुछ विशेषताएँ हैं जो अन्य मासिक-पत्रों में नहीं। हम इस नवागन्तुक पत्रिका के उत्तरोत्तर विकास की हृदय से कामना करते हैं। वार्षिक मूल्य १० रुपया है।

* * *

'दक्खिनी हिन्द'

सम्पादक, श्री. रामानन्द शर्मा, प्रकाशक-डायरेक्टर, सूचना और प्रकाशन विभाग, मद्रास राज्य-शासन। सालाना चंदा ४) रुपया; एक प्रति ६ आना।

हमारा यह सहयोगी मद्रास सरकार के प्रकाशन विभाग का मासिक मुखपत्र है। जब १९४७ में, १५ वीं अगस्त को भारत स्वतंत्र हुआ, तब से यह पत्र बराबर निकल रहा है। पत्र का सम्पादन-भार एक ऐसे हिन्दी-तरुण के सुयोग्य हाथों में है जो पिछले ३०-३२ वर्षों से, दृढ़ निश्चय के साथ, दक्षिण में राष्ट्रभाषा के प्रचार में संलग्न है। वे हिन्दी के एक भावुक और प्रतिष्ठित लेखक हैं। तेलुगु, बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के सरस साहित्य-सौरभ से उनका मन व मस्तिष्क सुरभित है। उत्तर से दक्षिण में जाकर राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करने में 'दक्खिनी हिन्द' के सम्पादक के जीवन का, आयुष्य का, एक बहुत बड़ा हिस्सा बीता है, बीत रहा है और आगे भी बीतेगा। श्री. रामानन्दजी उन हिन्दी-सेवकों में से हैं जो दक्षिण और उत्तर के बीच साहित्य एवं संस्कृति का समन्वयकारी सिमेंट कांक्रीट का सुदृढ़ सेतुकार्य एक कुशल इंजिनियर के रूप में कर रहे हैं। अतः ऐसे भाषा-साहित्य-सेवी शर्माजी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। दक्षिण भारत की दृष्टि से इस पत्र की छपाई सफाई, लेख, रचना-सामग्री आदि सब कुछ प्रशंसनीय है। तथापि हमारा इतना कहना अनुचित न होगा कि 'दक्खिनी हिन्द' को "दक्षिण भारत" का रूप देकर दक्षिण प्रान्तों की कला, साहित्य, संस्कृति और साहित्यकारों से सम्बन्धित विषयों को इसमें बढ़ा देने की ओर इसके सम्पादक अवश्य ध्यान देंगे।

ह. क. श.

दृष्टिकोण

(सम्पादकीय)

शिक्षा का उद्देश्य:

अभी कुछ दिन हुए, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरद्वार का सुवर्ण-जयन्ती महोत्सव अपूर्व समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति महान् श्रद्धेय राजेन्द्रप्रसादजी ने इस अवसर पर अत्यन्त महत्वपूर्ण दीक्षान्त-भाषण दिया और उक्त विश्वविद्यालय की प्रगति एवं विकास के लिए अपनी सरकार की ओर से एक लाख रुपये के दान की घोषणा भी की।

अवसे कोई ५० वर्ष पहले, गंगा-तट पर, अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने, उस समय के महात्मा मुन्शीराम ने, एक छोटीसी घास-फूस की पर्णशाला में इस गुरुकुल विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। साधनों की अत्यन्त कमी, अंगरेजों का और उनकी अँगरेजी का वलंद बोलवाला, सन्दिग्ध वातावरण, तव इस महात्मा ने अपने दो पुत्रों, इन्द्र और हरिश्चन्द्र—को ब्रह्मचारी विद्यार्थी के रूप में इस विश्वविद्यालय में प्रविष्ट कर भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर, विश्वविद्याओं की माँ भारती की मौन-साधना आरम्भ की थी। शिक्षा के क्षेत्र में वह एक नये प्रकार का अद्भुत प्रयोग था। भारतवर्ष के सभी छोटे वड़े विद्यालयों — विश्वविद्यालयों में अँगरेजी ही के माध्यम द्वारा भारतीय वालक-वलिकाओं को शिक्षा दी जा रही थीं। भारतीयों को 'अपटूडेट' मनुष्य वनाने के लिए अँगरेज शासक विदेशी शिक्षा दे रहे थे जो भारतकी आत्मा को कुचलती थी, भारतीय व्यक्तित्व को गुलामी की चक्की में पसि देती थी। और उसके साथ ऊपर से भारतीय युवकों को लालचभरी पाश्चात्य सभ्यता एवं पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध का, ऊपर की टीमटाम का, डोज़ दिया जाता था। इस प्रकार की विदेशी सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा के ऊपर युग-युगकी भारतीय सरल साधु संस्कृति और सभ्यता विदेशियों द्वारा कौड़ी के मोल निछावर की जा रही थी। इस प्रकार की शिक्षा ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय हृदय और मस्तिष्क के विकास को अवरोधित कर रखा था। भारतीयता की इस प्रकार की आत्मघाती कुप्रवृत्ति का उच्छेदन करने के लिए भारत की सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा के हेतु एक ऋषि का, क्रान्तिकारी महान् दूरदर्शी नेता का, भारत के प्रांगण में दयानन्द सरस्वती के रूपमें तव अचानक आगमन हुआ। ऋषि ने भारत का भाग्यविधाता वनकर उसके सर्वांगीण स्वराज्य की सिद्धि के लिए जो राजमार्ग निर्माण किया, उसकी पहिली मंजिल थी भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का जीर्णोद्धार कर नये रूपमें, इस नवीन सम्यता के अहंकारी युग में, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का जन्म। ऋषि के सच्चे शिष्य श्रद्धानन्द ने अपने गुरु की उस कल्पना को प्राणवान साकार रूप दिया। उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा उच्चकोटि की शिक्षा देने का निश्चय किया। गुरुकुल विश्व विद्यालय ने अपने लगातार ५० वर्षों के प्रगतिशील शिक्षात्मक प्रयोगों से प्रमाणित कर दिया कि ऊँची से ऊँची शिक्षा सभी विषयों की, हिन्दी माध्यम द्वारा दी जा सकती है।

इस प्रकार की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने भारत की सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर राष्ट्रीय समास्याओं को अपनी दृष्टि में रखकर ही देश के वालक-वालिकाओं को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास की स्वतंत्र शिक्षा दी है। उसका दृष्टिकोण संकुचित नहीं रहा और न यही उद्देश्य रहा कि भारतीय विद्यार्थी केवल भाषा रटें, भूगोल, इतिहास और अर्थशास्त्र की पोथियों के ढेर के ढेर पढें। और वे दिन भी याद हैं, जब इस गुरुकुल विश्वविद्यालय के तेजस्वी बलिष्ठ निर्भीक ब्रह्मचारी वालक

बलकी उपासना करते हुए, सर्वत्र भयवर्जन हो कर विजन वन में हिंसक वनचारी चीतों का हॉकी की स्टिकों से शिकार खेल आते, और जब उनकी स्वयंसेवकता में अभयं सर्व भूतभ्यो का विशुद्ध अहिंसात्मक वातावरण छा जाता, तब वे गुरुकुल की पवित्र भूमि से क्रांतिकारी बंब के विस्फोटों का आतंक वाद हटाकर तत्कालीन गवर्नर-जनरल भारत के वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड को अपना अतिथि बनाते, लाट-साहब सपत्नीक, मद्य-मांस-की पार्टीका परित्याग कर कुलपति स्वामी श्रद्धानन्द की कुटिया में तुलसीदल की चाय और बेसन की घृतपक्व पकौड़ियों का नाश्ता करते और पुलिस, सेना, और सी. आई. डी. के हस्तक्षेप को एक क्षण के लिए भी असह्य समझ कर, जिस गुरुकुल विश्व-विद्यालय के बालक अपने अतिथि गवर्नर-जनरल लार्ड चेम्सफोर्ड की समस्त प्राण-रक्षा का दायित्व अपने प्रेम, विश्वास और अहिंसा के आधार पर ले-लेते, और श्रीमती चेम्सफोर्ड उस तुलसी की पत्तियों की चाय के और पकौड़ियों के स्वाद की प्रशंसा करते करते न थकतीं ।

और कांगड़ी गुरुकुल के ये स्नातक जीवन के क्षेत्रों में, ज्ञान, विज्ञान के विविध केन्द्रों में, अनेक अनुशीलन, अनुसन्धान करते हैं । देश-विदेशों में सम्मानित होते हैं । जहां अच्छे अध्यापक हैं, अच्छे आचार्य हैं, जहां गुरु और शिष्य का सम्बन्ध एक परिवार के समान है, जहां गुरु शिष्य को पुत्रवत् और शिष्य गुरु को पितृवत् मानकर श्रद्धा भक्ति करता है । जहां ऐसा हो और जहां हिन्दी माध्यम द्वारा इस प्रकार की उच्च से उच्च विश्व-विद्याओं की शिक्षा मिलती हो और जिस विश्वविद्यालय में भारत-सन्तानों को ऐसी शिक्षा दी जा रही हो वहां उद्देश्य की सिद्धि क्यों न होगी ! राष्ट्रपिता गान्धी और विश्वकवि रवीद्र जैसे भारत-भाग्यविधाता, सर्वपल्ली राधाकृष्णन जैसे महान् दार्शनिक और अमेरिका, यूरोप तथा एशिया के अनेक विश्व-विद्यालयों के बड़े बड़े शिक्षा-शास्त्री, विद्वान, आचार्य जिस शिक्षा-प्रणाली के उद्देश्यों के आगे नतमस्तक हो सराहना कर गये हैं । गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के स्नातकों ने संसार में भारत-वर्ष का नाम प्रसिद्ध किया है । उस दिन हमारे राष्ट्रपति ने अपने दीक्षान्त भाषण में बहुतसी उपयोगी शिक्षाओं के साथ स्नातकों को शिक्षा के उद्देश्य समझाते हुए कहा,—सत्यं वद, धर्म चर, स्वाध्यायात् मा प्रमद । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव ।—तुम सब सच बोलना, धर्म का आचरण करना, स्वाध्याय का परित्याग कभी न करना, माता पिता, आचार्य तथा अतिथि की सेवा एवं उनका अनुशासन (डिसिप्लिन) पालन करना । ये ही शिक्षा के उद्देश्य हैं ।

क्या भारतवर्ष के अन्य विश्वविद्यालय शिक्षा के उक्त उद्देश्यों को अपनाकर, अपना दृष्टिकोण बदलेंगे और भारत के सच्चे महान सुसंस्कृत नागरिकों के निर्माण में गुरुकुल-कांगडी विश्व-विद्यालय का हाथ बटायेंगे ?

* * *

अपने विश्व-विद्यालयों के सम्बन्ध में :

१५ अगस्त १९४७ के बाद, भारत के पूर्ण स्वतंत्र हो जानेपर, कुछ दिनों से, वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में बहुत कुछ चर्चा हो रही है। आये दिन कमीशन बैठते, हैं उनकी रिपोर्टें प्रकाशित होती हैं । इस स्वतंत्र देश के हितचिन्तकों ने घोषणा की है कि अंगरेजों द्वारा प्रचालित शिक्षा की वर्तमान पद्धति हमारे काम की नहीं है। केन्द्रीय सरकार भी उनकी पुकार पर ध्यान दे रही है । भारत के शिक्षाशास्त्री भी बहुत सतर्क हैं । भिन्न भिन्न लोगों के भिन्न भिन्न मत हैं इस सम्बन्ध में । उद्देश्य और आदर्श निश्चित किये जा रहे हैं । यथार्थ में हमें गहराई से यह सोचना है कि विश्व-विद्यालयों का आदर्श और उद्देश्य क्या होना चाहिये ।

पाठ्यक्रम बना देना, फैकल्टियाँ खोल देना, परीक्षाएँ लेना, परीक्षाओं में उत्तीर्ण करा देना, बड़ी बड़ी डिग्रियां दे देना, कुछ प्रेक्टिकल, कुछ टेक्निकल भिन्न भिन्न विषयों की गन्ध लड़के लड़कियों की नाक में सुंघा देना, और अन्त में विश्वविद्यालय से निकले हुए कृतविद्यों को नौकरी पेशा का पुतला बना देना, विश्वविद्यालयों का मुख्य उद्देश्य नहीं होना चाहिए । उस पद्धति को आमूलाग्र बदल देना होगा । इन विश्वविद्यालयों को भगवती सरस्वती का साधना-मन्दिर बनाना होगा । देश के युवक-युवतियों में ज्ञान, विज्ञान, विद्या, और सत्य

की सच्ची खोज करने का प्रेम उत्पन्न करना होगा। विद्यार्थियों के मस्तिष्क में स्वतंत्र विचार करने की शक्ति जागृत करनी होगी। तात्पर्य यह कि इन विश्वविद्यालयों को अपना पुराना अंगरेजियत का चोला बदलकर भारतीय विद्या, बुद्धि, कला, संस्कृति और सभ्यता का केन्द्रस्थान बनना होगा; जिससे इन विश्वविद्यालयों की शिक्षा का प्रभाव समस्त देशवासियों पर पड़े। इन विश्वविद्यालयों के आचार्य और अध्यापक ऐसे होने चाहिये जो अपनी सारी शक्ति, सम्पूर्ण आयु, अध्ययन-अध्यापन और अनुशीलन में लगा दें जो अधकचरा ज्ञान विद्यार्थियों को न दें, बल्कि वे अपनी ज्ञान-प्रभा के प्रकाश से भारतीय छात्रों की प्रज्ञा को स्वतंत्रतापूर्वक विचार करने की क्षमता प्रदान करें और जिनका चरित्रबल पवित्र प्रभावशाली हो और उस शिक्षा का जनता के जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित हो। यूरोप और अमेरिका के विश्व-विद्यालयों की शिक्षा वहां के जातीय जीवन-क्रम से समरसता रखती है। उसी प्रकार भारतीय विश्वविद्यालयों की शिक्षा का सामंजस्य भी, भारतीय जनता के जीवनक्रम के साथ दूध-चीनी की तरह घुल-मिल जाये। और यह भी सोच लें कि किसी विश्व-विद्यालय की सम्पूर्ण सफलता उसके अधिकारियों और प्रबन्धकर्ताओं पर अवलम्बित रहती है। अतः अनुभवी, दूरदर्शी, योग्य, पक्षपातशून्य अधिकारियों और प्रबंधकर्ताओं का चुनाव करते समय हम बहुत सावधानी रखें। इन विश्वविद्यालयों के छात्रावास हों, जहां साम्प्रदायिकता और जात-बिरादरी के संकीर्ण भावों को न पनपने दिया जाये, सभी छात्र गुरुओं के साथ–'सहनाववतु, सहनौ भुनक्तु, सहवीर्य करवावहै' एक साथ रहें और उनके हृदयों में समभावना, संयुक्तता और समानता उत्पन्न हो।

इन विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम देशी भाषा हो। अंग्रेजी-विदेशी-भाषा में शिक्षा देने की और १५ साल तक उसकी आवश्यकता बतलाना, और उसका ढिंढोरा पीटना अत्यन्त खेदजनक है। भारतीयता पर कुठाराघात करनेवाली यह अस्वाभाविक शिक्षा-पद्धति है। क्या इग्लैंड के कैंब्रिज और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, और अमरीका के वाशिंगटन और केलीफोर्निया के विद्यापीठ एक क्षण के लिए भी किसी विदेशी भाषा का माध्यम स्वीकार कर लेंगे? सारी शिक्षा और दीक्षा देशी भाषाओं द्वारा देने में ही देश का सच्चा कल्याण है। "तेजस्विनावधीतमस्तु"—गुरू का अध्यापन और अन्तेवासी का अध्ययन इन विश्वविद्यालयों में किस दिन मूर्तिमान होगा?

* * *

दिल्ली में भारतीय साहित्य-संगम :

गत महिने में, दिल्ली में, एक बहुत सुन्दर समारोह हुआ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्त्वावधान में, हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ नाटककार और सम्मेलन के पूर्व-अध्यक्ष सेठ गोविन्ददासजी ने और राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति के मंत्री भदन्त आनन्द कौशल्यायनजी ने इस संगम का आयोजन किया था। दिल्ली स्वतंत्र भारतवर्ष की विश्वविदित राजधानी जो ठहरी! राजधानी में सैकड़ों सहस्रों विभिन्न भाषा-भाषी जातियों के लोग रहते हैं। विभिन्न संस्कृतियों का वहां सम्मिलन हैं। भिन्न भिन्न साहित्यों और कलाओं के बड़े बड़े साहित्यकार–कलाकार वहां विराजते हैं। विदेशों के दूतावास वहां हैं। आये-दिन कोई न कोई समारोह, जलसा, कला-प्रदर्शन, साहित्य-सम्मेलन, धार्मिक, साहित्यिक, सांक्रतिक, सामाजिक या राजनीतिक आयोजन होते ही रहते हैं, होने ही चाहिए। इनमें बड़ा आनन्द—बड़ा रस आता है। कभी किसी दिन "जश्ने-जमहूरियत" का शानदार जलसा लाल किले में होता है, उर्दू के बड़े बड़े मशहूर शायर अपना कलाम पढ़ते हैं, भारत के प्राणाधार प्रधान मंत्री पंडित नेहरूजी को हम वहाँ, शेरों और गजलों का लुत्फ लूटते हुए और दाद देते हुए रस विभोर पाते हैं और कभी माननीय जगजीवनराम, गाडगील साहब, या दिवाकरजी-अम्बेडकरजी को किसी साहित्य-समारोह का उद्घाटन करते हुए देखते हैं। हाँ, तो इसी प्रकार का दिल्लीस्थ भिन्न भिन्न भाषा-भाषियों का एक सुन्दर सत्संग-संगम उस दिन सम्पन्न हुआ। भारत की प्रायः सभी भाषाओं के प्रतिनिधि विद्वान् साहित्य-प्रेमियों ने उसमें भाग लेने की कृपा की थी। दक्षिण भारतीय तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम के प्रतिनिधि उसमें थे। प्यारी पंजाबी वाले वहां थे। सिन्धि के सपूत उसमें उपस्थित थे। बंगला, मराठी, गुजराती के गौरवास्पद प्रतिनिधि वहां थे।

कदाचित् नैपाली, काश्मीरी, उडिया, मणिपुरी, असामिया, पश्तो के भी प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित रहे हों। हमारा पूर्वांनुभूत अनुभव है, भारत की राजधानी में, ऐसा संगम-समारोह अवश्य ही अपने निराले ढंग का हुआ होगा। इसमें हृदय का हृदय.से संमिलन कराने का कार्य स्वतंत्र भारत की राजभाषा—राष्ट्रभाषा हिन्दी को नहीं; उसकी प्रतिद्वन्दिंनी अंग्रेजी को करना पड़ा। तब भारत-जननी एक हृदय कहाँ से हो? इन में अधिकांश विद्वान राजनीतिक हैं, भारतीय पार्लमेंट के सदस्य हैं और वे मानते हैं कि उनकी कमजोरी का, उनकी विवशता का, बचाव करनेवाली और उन सब में या उनके विचार में भारत के तमाम प्रान्तों में एकता का भाव उत्पन्न करनेवाली, टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने की शक्ति रखनेवाली अंग्रेजी भाषा ही है। और वे उस दिन भारतीय साहित्य-संगम के तीर्थ पर अंग्रेजी की नौका का, किसी तरह पार उतरने के लिये, आश्रय लिये विना न रहे। उन्हें यह मालूम है कि भारत वर्ष स्वतंत्र है। पूर्ण जागृत है, प्रान्तीय भाषाओं के साहित्यों में और हिन्दी में समन्वय-साधना आरम्भ हो चुकी है; रुढियों की पुरानी जंजीरें टूट रही हैं। आदान-प्रदान के लिए सभी समुत्सुक हैं। हिन्दी के प्रतिनिधि-साहित्यकार उनकी सब प्रकार से स्नेह-सिक्त, नतमस्तक, हो सेवा-शुश्रूषा करने के लिये कटिबद्ध हैं; फिर भी उन विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के साहित्यकारों को हिन्दी—राजभाषा की तरफ अपनी उपेक्षा का भाव और अंग्रेजी की तरफ अत्यन्त मोह-ममत्व बतलाना ही पड़ता है, वे बेतहाशा अँग्रेजी के पीछे दौड़ रहे हैं। अपनी भावाभिव्यक्ति का, व्याख्यान का वाहन, अंग्रेजी को ही बना लेते हैं। तब वे भारत की राष्ट्रभाषा को भूल जाते हैं। यह घोर आश्चर्य और परिताप की बात है!

भारतवर्ष के प्रत्येक भिन्न भाषा-भाषी प्रान्त में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रेमी हजारों की संख्या में और सैकड़ों की संख्या में उसके प्रचारक विद्यमान हैं। फिर भी हमारे नेता, हमारे संसद-सदस्य आँखें मूँदकर समय-कुसमय को ध्यान में नहीं रखते। उन्हें अब समझ लेना चाहिये कि अंग्रेजी का अटल आधिपत्य उनके लिये अधिक शोभा नहीं देता। वे साहस करें और भारत की राजभाषा,—कोमल, मधुर, सरल और सरस हिन्दी में ऐसे संगमों के अवसर पर शीघ्र ही बोलने लग जायें। आवश्यकता आत्मविश्वास की है, दृढ़ इच्छा शक्ति की है।

* * *

अपने सहयोगियों की दृष्टि में—

भारती

'भारती' की लोक-प्रियता को अपनी सद्भावनाओं द्वारा प्रोत्साहन और प्रेरणा का संबल देनेवाले हिंदी-संसार के हमारे सहयोगियों ने स्वतंत्रता पूर्वक जो निम्न सम्मतियां प्रदान की हैं, हम उनका सादर स्वागत करते हैं:—

१. वीणा :— इन्दोर की प्रसिद्ध प्रौढ़ मासिक पत्रिका, लिखती है, "भगवान् भारत वर्ष में गूंजे हमारी भारती" राष्ट्रकवि मैथिली शरणजी गुप्त के इस आदर्श वाक्य को लेकर 'भारती' ने जन्म लिया है। साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व इस पत्रिका का प्रधान लक्ष्य है। राष्ट्रभाषा की सेवा के साथ ही साथ एक बड़े भारी अभाव की इसने पूर्ति की है। समस्त उच्च भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ साहित्य सामग्री को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना इसका एक विशेष और सराहनीय प्रयत्न है। माँ भारती के भंडार को भरपूर भरना और राष्ट्रभाषा को उसका वास्तविक रूप देने के लिए यह एक अनिवार्य आवश्सकता थी। . . . अपने प्रत्येक अंक के लेखकों का संक्षिप्त परिचय देकर प्रगतिगामी सम्पादक ने 'भारती' परिवार से अपना अपनापन स्थापित करनेका प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। विविध भाषाओं की विचार धारा का परिचय देनेवाली 'भारती' एकमात्र पत्रिका है। हम इसका हार्दिक स्वागत करते हैं और आशा करते हैं —यह पत्रिका राष्ट्रभाषा की सेवा करने में सक्षम प्रमाणित होगी।

२. 'वीर अर्जुन' दिल्ली का प्रसिद्ध प्रतिष्ठित विविध विषय सम्पन्न साप्ताहिक :— "नये ईस्वी वर्ष के आरम्भ से यह पत्रिका प्रारंभ हुई है। इसे देखकर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि यह अन्य हिन्दी पत्रिकाओं से भिन्न है। इसके लेखों

का चुनाव सुन्दर है। इसमें विविधता का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि भारत के विभिन्न प्रान्तीय साहित्यों के उत्कृष्ट लेखों का अनुवाद इसमें दिया जाता है। इसी कारण समस्त भारत के चुने हुए कलाकारों की रचनाएं एक साथ इस पत्रिका में मिल जाती हैं। साधारण कोटि के लेखों से इसे भरने की आवश्यकता नहीं रहती। अब तक प्रकाशित इसके चारों अंकों में लेखों, कहानियों व कविताओं का चुनाव बहुत अच्छा हुआ है। यह हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है कि शिक्षित भारतीय विदेशी साहित्य से जितना परिचय रखते हैं, उतना अपने ही देश की प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य से नहीं। 'भारती' पत्रिका इस कमी को निस्सन्देह पूर्ण करेगी।"

३. **'संगम'** लीडर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित, साहित्य, कला संस्कृति का सचित्र सुन्दर साप्ताहिक, हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार इलाचन्द्र जोशी के सम्पादकत्व में :—

"माखनलालजी की 'प्रभा' के बाद मध्यप्रान्त से कोई भी ऐसी पत्रिका नहीं निकल सकी थी, जिसका अखिल भारतीय महत्व होता। यद्यपि मध्यप्रदेश एक ऐसा प्रान्त है जहां हिन्दी की सीमाएँ महाराष्ट्र, गुजरात, विदर्भ प्रान्त और द्राविड़ प्रदेशों को भी छूती हैं, अतः वहां एक ऐसी पत्रकारिता का उदय और विकास स्वाभाविक ही है, जो अपने माध्यम से अ-हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में होनेवाली सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रगतियों का परिचय हमें दे सके। नागपुर से निकलने वाली यह सांस्कृतिक पत्रिका 'भारती' गत जनवरी १९५० से उसी गंभीर उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न है। इसका उदघाटन मध्यप्रान्त के लोकप्रिय मंत्री माननीय पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र के द्वारा हुआ था। इस पत्रिका को दक्षिण भारत, विदर्भ, महाराष्ट्र, महाकोशल और अन्य प्रान्तों के भी प्रमुख लेखकों का सहयोग प्राप्त हैं।.... इसके अंकों की सामग्री और इसके सम्पादक की गंभीर सुरुचि, लगन और परिश्रम का परिचय देती है। विभिन्न प्रान्तीय साहित्यों की प्रगति, उत्कृष्ट मौलिक रचनाएँ और श्री शेवडे का धारावाहिक उपन्यास (पूर्णिमा), साथ ही साथ गम्भीर विचारोत्तेजक लेख और प्रान्तीय साहित्य की नवीनतम कविताओं और कहानियों के अनुवाद, इस पत्रिका की विशेषताएँ हैं।

आज के हिन्दी-पाठक के लिए यह बहुत आवश्यक है कि उसके मानसिक क्षितिज की परिधि अधिक व्यापक हो। उसकी जानकारी केवल हिन्दी भाषी प्रान्तोंतक ही सीमित न रहे, वह सभी साहित्यों में होनेवाले नवीनतम प्रयोगों से सहानुभूति रखे। तभी वह इतना व्यापक दृष्टिकोण बना सकेगा कि वह सच्चे अर्थों में राष्ट्रभाषा का साहित्य बन सकेगा। तभी उसमें समस्त-राष्ट्र के सांस्कृतिक स्पन्दन की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ सकेगी। इस दिशा में "भारती" का प्रयत्न प्रशंसनीय है और हम उसकी सफलता की कामना करते हैं।

४. **"हिंदुस्तान"** दिल्ली के प्रख्यात राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक के साप्ताहिक साहित्यिक-संस्करण रविवार ता० ३० अप्रैल के अंक में 'साहित्य-जगत' स्तंभ में प्रतिष्ठित विद्वान और पत्रकार श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी :—

नागपुर तथा बम्बई से हाल ही में दो महत्वपूर्ण पत्रों का प्रकाशन हुआ है। पहले के सम्पादक हैं हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक श्री हृषीकेश शर्मा और दूसरा श्रीयुत एम० जी० मेनन ने निकाला है। अपने अपने स्थानपर दोनों का ही उपयोग है और दोनों ही जनता के आश्रय को पाने के पूर्ण अधिकारी हैं। भिन्न भिन्न प्रान्तीय भाषाओं में साहित्य की क्या प्रगति हो रही है इस बात के जानने के लिए सुसंगठित प्रयत्न होना ही चाहिए। पी० ई० एन० (P. E. N.) पत्रिका इस कार्य को सफलतापूर्वक अबतक करती रही है, यद्यपि उसके साधन परिमित ही रहे हैं। हृषीकेशजी इस क्षेत्र के लिए नवीन नहीं हैं। 'हंस' में, जब उसका भार श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी (बम्बई) ने लिया था, हृषीकेशजी उनके दाहिने हाथ थे। उसके पूर्व अनेक वर्षोंतक दक्षिण में हिन्दी-प्रचार के लिए उन्होंने जबरदस्त साधना की थी। इन पत्रों की विस्तृत आलोचना तो फिर की जायगी, इस समय हम उनका हार्दिक स्वागत ही करते हैं।

६. **'कर्मवीर'**, खंडवा; मध्यप्रदेश का प्रतिष्ठित और प्राचीन कर्मठ साप्ताहिक 'भारतीय आत्मा' पंडित माखनलालजी चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में:—

'भारती'

हिंदी को राष्ट्रभाषा होने का गौरव प्राप्त हो जाने पर उसकी जिम्मेदारियां अधिकाधिक बढ़ गई हैं। हिंदी के विद्वानों के लिए अब यह परम आवश्यक हो गया है कि वे अन्य भाषाओं के साहित्य तथा जीवन का अवगाहन करें और हिंदी भाषा में अन्य देशी भाषाओं के साहित्य का अनुवाद प्रकाशित करायें।

मध्यप्रदेश की राजधानी नागपुर भारतवर्ष का केन्द्रस्थ नगर है, जहां उत्तर तथा दक्षिण की लगभग ससस्त भाषाओं के प्रतिनिधि मिलते हैं। यहाँ हिन्दी, गुजराती, मराठी, तेलगु, तमिळ, मलयालम आदि भाषाएँ बड़ी आसानी स आदान-प्रदान कर सकती हैं।

'भारती' इसी उद्देश्य को लेकर हिन्दी जगत में उतरी है। अब तक इसके चार अंक प्रकाशित हुए हैं। कहना नहीं होगा कि 'भारती' अपने उत्तरदायित्व के प्रति सतत् जागरूक हैं। यह भारतीय संस्कृति की अग्रदूती है। लगभग समस्त भाषाओं की रचनायें इन अंकों में प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रथम अंक में मराठी-उपन्यास तथा तामिल साहित्य का परिचय हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए विशेष जानकारी प्रस्तुत करता है। यह पहली वार जाना कि मराठी में उपन्यास को 'कादम्वरी' कहते हैं। संस्कृत भाषा में 'कादम्बरी' प्रथम उपन्यास है! इससे मराठी के कादम्बरी की व्युत्पत्ति जानने की इच्छा होती है। भारतीय जीवन तथा चिन्तन की एकता को प्रगट करने में ये लेख विशेष सहायक होते हैं। प्रो० विनय मोहन शर्मा द्वारा जयदेव के 'गीत गोविन्दम्' का हिन्दी अनुवाद तथा श्री. अनंत गोपाल शेवड़े का उपन्यास 'पूर्णिमा' धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रहे हैं। प्रो० वि. मो. शर्मा ने गीत-गोविन्दम् के लालित्य, माधुर्य तथा कोमलता को हिन्दी पदों में ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रखा है। यदि संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का शास्त्रत साहित्य (क्लासिकल) भी हिन्दी में इसी पद्धति पर अनूदित होकर 'भारती' में प्रकाशित होता रहे तो विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। शेवड़े जी कलम के धनी हैं। उन्होंने हिन्दी उपन्यास जगत में एक अच्छा स्थान बना लिया है। 'पूर्णिमा' में उनकी कला अपने उत्कर्ष पर है। समस्त दृष्टियों से 'भारती' इस विषय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका कही जा सकती है।

आशा है 'भारती' अन्य भाषाओं के समाज में अध्यक्षता का भार पूर्णतः निवाह सकेगी।

भगवान् भारतवर्ष में गूंजे हमारी 'भारती'।"

७. **'दक्खिनी हिन्द'** :— मद्रास सरकार के प्रकाशन विभाग का प्रमुख हिन्दी मासिक पत्र, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के एक पुराने अनुभवी, कर्मठ, प्रतिष्ठित हिन्दी प्रचारक और हिन्दी के सुलेखक श्रीरामानन्दजी शमा के सम्पादकत्व में :—

'भारती' का प्रथमांक स्वातंत्र्य गणराज्य दिवस पर प्रकाशित हुआ और दूसरे अंक फर्वरी मार्च को। वह रचनात्मक नवचेतना लेकर आइ ह जिससे समस्त भारतीय साहित्य का समन्वय हो, सर्वोदय हो।

नागपुर मध्यप्रदेश का सांस्कृतिक नगर है। वहां मराठी और हिन्दी हाथ मिलाकर चल रही हैं। ऐसे नगर से 'भारती' का प्रकाशन उज्ज्वल भविष्य का सूचक है। सौभाग्य से 'भारती' को एक ऐसे सुयोग्य सम्पादक मिले हैं जिन्होंने वर्षों दक्षिण भारत, तथा बंबई, वर्धा में रहकर तमिल, तेलगु, कन्नड, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं तथा उनके साहित्य का सुन्दर साहचर्य प्राप्त किया हैं। . . . 'भारती' में तुलनात्मक अध्ययन की सामग्री प्रकाशित हो, ऐसी हमारी माँग है। हृषीकेशजी सें हमारा अनुरोध है कि अनुवाद तो 'भारती' में प्रकाशित हों ही, साथ साथ दक्षिणी साहित्य पर हिन्दी में मौलिक लेख लिखाए जायें। हिन्दी भाषा भाषी राज्यों में अव हिन्दी के इतने अच्छे ज्ञाता उत्पन्न हो गये हैं जो शौक से मौलिक लेख प्रस्तुत कर सकते हैं।

यह देखकर प्रसन्नता होती है कि 'भारती' को दक्षिण के लेखकों का सहयोग प्राप्त है। "'भारती' इन्हें तुलनात्मक अध्ययन की प्रेरणा दे जिससे

सांस्कृतिक लेखों में रंजना शक्ति के साथ ज्ञानार्जन की सामग्री भी उपलब्ध होती चले। 'भारती' में भर्ती के लेखों की भरमार नहीं है, यह संतोष की बात है। हिन्दी के साहित्यिक लेखों का विशेष संचयन 'भारती' करेगी, इसकी आशा तो हम रखते ही हैं; साथ ही हिन्दी के अभाव-अभियोगों पर भी उसकी सतर्क दृष्टि रहेगी। 'भारती' निर्भीक बने, निष्पक्ष रहे, निरन्तर निरलस गति से प्रगति करती जाय और अपने रूप-रंग तथा गुणोत्कर्ष से समस्त भारतीय साहित्य का प्रतिनिधित्व करती अपना नाम सार्थक करे।

'दक्खिनी हिन्द' 'भारती' को प्यार से गले लगाता है—हार्दिक स्वागत करता है—'भगवान्! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती!'

८. युगधर्म :— नागपुर से प्रकाशित भारत वर्षका प्रमुख हिन्दी साप्ताहिक, श्री. राजीवलोचन अग्निहोत्री के सम्पादकत्व में :—

'हिन्दी को अब राष्ट्रभाषा का प्रतिष्ठित एवं दायित्व पूर्ण पद प्राप्त हो चुका है। अतः वह किसी वर्ग, जाति, प्रान्त अथवा स्थान विशेष की भाषा न रहकर आ-सेतु हिमाचल फैले हुए समस्त जनसमुदाय की भाषा बन गई है। कोई पद अथवा अधिकार प्राप्त होनेपर उसके साथ हीं कुछ दायित्व विशेष भी सिरपर आ जाता है। यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी पर आज यही बात घटित होती है। राष्ट्रभाषा का इतना उच्च स्थान प्राप्त करने के बाद उसका कर्तव्य है कि वह अन्त-प्रान्तीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करनेवाली भाषा बने जिससे कि वह भारत के समस्त भाषा-भाषियों की प्रियपात्र बन सके। सचित्र मासिक पत्रिका 'भारती' के नियम और उद्देश्य को पढ़ने से पता चलता है कि वह उक्त ध्येय को लेकर ही अवतरित हुई है।...

अब तक 'भारती' के चार अंक निकल चुके हैं। चतुर्थ अंक हमारे सामने है। नागपुर के उदीयमान कलाकार श्री. नागेश आर्डे द्वारा बनाया गया मुखपृष्ठ का चित्र पर्याप्त आकर्षक है। पाठ्य-सामग्री भी अनुभवी सम्पादक की सुन्दर अभिरुचि तथा चयन-शक्ति का उत्कृष्ट प्रमाण है। लेखकों की नामावली देखने पर पता चलता है कि 'भारती' को पं. माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ. रघुवीर, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं. रूपनारायण पांडेय, पं. हरिशंकर शर्मा, प्रो. विनयमोहन शर्मा आदि हिन्दी के प्रख्यात विद्वानों का सहयोग प्राप्त है। प्रतिष्ठित विद्वानों का सहयोग प्राप्त होना किसी भी पत्र-पत्रिका के उज्वल भविष्य का द्योतक है और 'भारती' को सौभाग्य से वह जन्म से ही प्राप्त है। 'पूत के लक्षण पालने में' लोकोक्ति के अनुसार यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि 'भारती' का भविष्य उज्ज्वल और जीवन लोक-मंगलकारी है।

विषय-विविधता का पर्याप्त ध्यान रक्खा गया है। कहानी, कविता, एकांकी, भाषा-विज्ञान, राजनीति, अर्थ, वसंतोत्सव, हास्य-रस प्रधान लेख आदि विभिन्न विषयों को पत्रिका में समाविष्ट किया गया है। प्रांतीय भाषाओं में पंजाबी, मराठी, बंगला, गुजराती, तथा तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं की कुछ अनूदित रचनाओं के इस अंक में दर्शन होते हैं। स्वर्गीय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकूर की बंगला लघुकथा "आज थी मेरी अभिसार रात्रि" शंभुप्रसाद बहुगुणा की "शेणी-बीजानन्द" कहानी, तमिल-कविता 'सोने का हल', चोरघड़े की मराठी कहानी 'मैं जी गया' और श्री देशपांडे की मराठी कविता 'पुनर्निर्माण', पं. रामपूजन तिवारी लिखित 'शान्तिनिकेतन में वसंतोत्सव' और प्रोफेसर विनय मोहन शर्मा लिखित 'राधा बोल उठी मन की' ये रचनाएँ विशेष रूपसे पठनीय हैं। श्री. अनंत गोपाल शेवडे का धारा-वाही उपन्यास 'पूर्णिमा' भी अपना एक विशेष आकर्षण रखता है।

'भारती' का सम्पादन बड़ी कुशलता से किया जा रहा है। हृषीकेश शर्मा पुराने एवं प्रान्तीय हिन्दी सेवी हैं, अतः उनके सुयोग्य सम्पादकत्व में पत्रिका अपना नाम सार्थक करते हुए अपने निर्दिष्ट उद्देश्य प्राप्ति में अवश्य सफल होगी... गेट-अप और छपाई-सफाई आकर्षक है। एक अ-हिन्दी भाषी प्रान्त से ऐसी उत्तम हिन्दी पत्रिका निकलना और भी अधिक गौरव की बात है!

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. भारत में विवेकानन्द

अभी छप गई — विवेकानन्दजी के भारतीय व्याख्यान, अनु०—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; पृ. सं. ५९९, मूल्य ५) रु.।

२. श्रीरामकृष्ण वचनामृत

अनुवादक—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सुन्दर गेट-अप, तीन भागों में, प्रथम भाग, पृ. सं. ६३२, मूल्य ६) रु., द्वितीय भाग, पृ. सं. ६५७, मूल्य ६) रु., तृतीय भाग, पृ. सं. ८८२, मूल्य ७॥ रु.।

"श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे। उनके वाक्य किसी निरे विद्वान् के कथन नहीं हैं, वरन् वे उनके जीवन-ग्रन्थ के पृष्ठ हैं। —**महात्मा गांधी**

३. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी)

पं० द्वारकानाथ तिवारी कृत, दो भागों में, सुन्दर गेट-अप, प्रथम भाग, पृ. सं. ४३६, द्वितीय भाग, पृ. सं. ४८६, प्रत्येक भाग का मूल्य ५ रु.।

"श्रीरामकृष्ण देव का जीवन-चरित्र हमें ईश्वर को अपने सामने प्रत्यक्ष देखने की शक्ति देता है।"

— **महात्मा गांधी**

४. विवेकानन्द-चरित

(विस्तृत एवं स्फूर्तिदायक जीवनी)

सुविख्यात लेखक श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार कृत, **अभी प्रकाशित हुई**; सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ५५५, मूल्य ६ रु.।

"प्राचीन भारतीय संस्कृति में पगे तथा भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा के अभिमानी स्वामी विवेकानन्द मानवी जीवन की समस्याओं को समझने में नितान्त आधुनिक थे और हम कह सकते हैं कि इस प्रकार उनके जीवन में भारतवर्ष की प्राचीन तथा वतमान संस्कृति का सुन्दर समन्वय हुआ ह।"

— **पं० जवाहरलाल नेहरू**

५. विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप)

शिष्य शरच्चन्द्र कृत, सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ४४८, मूल्य ५। रु.।

स्वामी विवेकानन्द कृत — पत्रावली (दो भागों में), प्रत्येक भाग का मूल्य २=); महापुरुषों की जीवन-गाथाएँ १।); मन की शक्तियां ।।); ईशदूत ईसा ।=); राजयोग १=); स्वाधीन भारत! जय हो! १=); कवितावली ।।=); भारतीय नारी ।।।); शिक्षा ।।=); धर्म-रहस्य १); मेरी समरनीति ।≡); धर्मविज्ञान १।।=); मेरा जीवन तथा ध्येय ।।); मरणोत्तर जीवन ।।); श्रीरामकृष्ण, धर्म तथा संघ ।।=); कर्मयोग १।।=); हिन्दु-धर्म १।।); प्रेमयोग १।=); भक्ति-योग १।=); आत्मानुभूति १।); परिव्राजक १); प्राच्य और पाश्चात्य १।); शिकागो-वक्तृता ।।=); मेरे गुरुदेव ।।=); हिन्दू-धर्म के पक्ष में ।।=); वर्तमान भारत ।।); पवहारी बाबा ।।); विवेकानन्दजी की कथाएँ १।); श्रीरामकृष्ण-उपदेश ।।=)।

पता :—श्रीरामकृष्ण आश्रम, [भा], धन्तोली, नागपुर-१, मध्यप्रदेश

गुरुकुल पत्रिका

हिन्दी की साहित्यिक व सांस्कृतिक मासिक पत्रिका

सम्पादक श्री· रामेश बेदी और श्री· सुखदेव

ख्याति प्राप्त लेखकों और उच्च कोटि के विद्वानों की सुरुचिपूर्ण, रोचक तथा ज्ञान वर्द्धक रचनायें और गंभीर तथा खोजपूर्ण लेखकों के पढ़ने के लिये गुरुकुल पत्रिका पढ़िये।

प्रत्येक अंक की पाठ्य सामग्री हिन्दी का स्थिर साहित्य है। यह साहित्य आपको मानसिक तथा आध्यात्मिक भोजन प्रदान करेगा। स्वास्थ्य सम्बन्धी उपयोगी लेख आपको स्वस्थ और आनन्दित रहने में सहायक होंगे। अपने परिवार को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करने के लिये आज ही मनीआर्डर से वार्षिक शुल्क भेजिए।

वार्षिक मूल्य देश में ४ रु० **विदेश में ६ रु०** **नमूने की प्रति ६ आने.**

पता :— **व्यवस्थापक, गुरुकुल पत्रिका,**

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

ANNOUNCEMENT

Bharati

will be available at the following

HIGGINBOTHAMS

RAILWAY BOOK-STALLS.

1. Adoni
2. Banglore City
3. Belgaum
4. Bellary
5. Coimbatore Jn.
6. Ellore
7. Guntakal
8. Guntur
9. Hubli
10. Madras Central
11. Madras Egmore
12. Madura Jn.
13. Mysore
14. Nidadavole
15. Rajahmundry
16. Samalkot
17. Tanjore
18. Tenali
19. Trichy Jn.
20. Trivendrum Central
21. Vijayawada.

हिंदी और मराठी भाषामें प्रकाशित होता है।

उद्यम

प्रतिमास १५ तारीख को पढ़िये।

धर्मपेठ, नागपुर.

उद्यम में निम्न विषयों पर लेख प्रकाशित होते हैं।

★ लाभदायक उद्योगधंधों की व्यवहारोपयोगी जानकारी।

★ अनाज की खेती, सागसब्जी की बागवानी, और रोगों का निवारण।

★ पशुपालन, दुग्धव्यवसाय और ग्रामोद्योग-संबंधी लेख।

★ विद्यार्थियों के लिये वैज्ञानिक तथा अन्य जानकारी-पूर्ण लेख।

★ आरोग्य, घरू औषधियों संबंधी जानकारी।

★ उद्यम परिवारके हर व्यक्तिकी दृष्टिसे उपयोगी है।

★ संपूर्ण भारत के व्हीलर रेल्वे स्टालों, और हर गाँवके न्यूजपेपर एजेंटों की माँग सतत बढ़ती जा रही है।

★ उद्यम मासिक में हर माह सुधार किया जा रहा है और इसे हर पाठक की दृष्टिसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

★ वर्ष के १२ अंकों में अपने ढंग के दो विशेषांक प्रकाशित होते हैं, जो स्थायी ग्राहकों को वार्षिक चंदे में ही मिलते हैं।

उद्यम के विशेष स्तंभ

★ महिलाओं तथा विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त

★ विभिन्न रुचिकर खाद्यपदार्थ बनानेकी विधियाँ

★ घरू मितव्ययिता

★ उद्यम का पत्रव्यवहार

★ खोजपूर्ण खबरें

★ आर्थिक तथा औद्योगिक परिवर्तन

★ जिज्ञासु जगत्

★ व्यापारिक हलचलों की मासिक समालोचना

★ कृषि, औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों की मुलाकात और परिचय

★ हिंदुस्थान के वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र की उपयोगी जानकारी

★ नित्योपयोगी वस्तुएँ घरही तैयार कीजिये।

★ आजही उद्यम का वार्षिक चंदा रु. ७-०-० भेजकर सर्वोपयोगी उद्यम मासिक मँगवाना प्रारंभ करें।

दी युनायटेड कमर्शियल बैंक लि.

हेड ऑफिस कलकत्ता

चुकता मूलधन : २ करोड़ रुपये
सुरक्षित कोष (रिज़र्व फंड) : ५२॥ लाख रुपये

चेयरमैन : जी. डी. बिड़ला
जनरल मैनेजर : बी. टी. ठाकुर

समस्त भारत, पाकिस्तान, बर्मा और मलाया में बैंक की शाखाएँ हैं, और संसारभर में एजंसी की व्यवस्था है।

जी. ए. रणदिवे
मैनेजर, नागपुर शाखा

Reg. No. N. 1262.

"कृष्णायन"

संत कवि श्री तुलसीदासजी की सुन्दर सरस रामायण की दोहा-चौपाईवाली अत्यन्त रमणीय शैली में भगवान आनन्दकंद श्रीकृष्ण का चरित। लेखक — पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र। मूल्य १२ रु. डाक खर्च अलग।

* निशागीत *

(लेखक—श्री० अनन्त गोपाल शेवड़े, एम. ए.)

एक सुन्दर प्रेमल उपन्यास

एक जनता के सेवक डॉक्टर और नर्स की यह प्रेम-कहानी इतनी जल्दी लोक-प्रिय कैसे हो गई?

क्योंकि उसमें प्राण हैं, सजीवता है, रोचकता है, कथा-तत्व है और मनको पकड़ने का अद्भुत आकर्षण है। एक बार प्रारंभ करनेपर पूरी किये बिना पुस्तक छोड़ी नहीं जाती।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, उदयशंकर भट्ट, विनयमोहन शर्मा, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' आदि द्वारा प्रशंसित —ऑल इंडिया दिल्ली तथा नागपुर रेडियो से चर्चित — विशाल भारत, कर्मवीर, मानवता, देशदूत, शुभचिन्तक आदि पत्र-पत्रिकाओं ने. जिसकी सुन्दर समालोचना की। एक बार अवश्य पढ़िये।

पृष्ठ संख्या १५४; सुन्दर आकर्षक कवर, बढ़िया गेट-अप;
मूल्य २।) रु. डा. ख. अलग.

"गृहविधान"

गृहनिर्माण-कला का संपूर्ण सचित्र शास्त्रीय ग्रंथ। सौराष्ट्र के एक बहुत बडे अनुभवी चीफ इंजीनियर, नगर-निर्माता और सौराष्ट्र-सचिव श्री. वी. सी. मेहता का लिखा हुआ ग्रंथ। इसकी सहायता से कोई गृहस्थ धनी पुरुष २ हजार रुपये से लेकर ३ लाख रुपये तक की आलीशान इमारत, घर, बंगला आदि बनवा सकता है। ४०० पृष्ठ, २०० चित्र मैप डिजाइन वगैरह। राष्ट्रपिता पू. बापू ने आशीर्वाद दिया। स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान ने सुन्दर सम्मति दी और डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र भूतपूर्व दीवान रायगढ स्टेट ने प्रस्तावना लिखी। भवन-निर्माण कला का शास्त्रीय ग्रन्थ है। मूल्य १२ रु. डा. ख. १ रु.

उक्त पुस्तकों के मिलने का पता:—

हिन्दी पुस्तक भंडार, धंतोली नागपुर (१)

Printed by V. M. Kulkarni at the All India Reporter Press and
Published by him at Bharati Karyalaya, All India Reporter Ltd., Nagpur.
D/- 7—5—195

(All Rights Reserved)

भारती

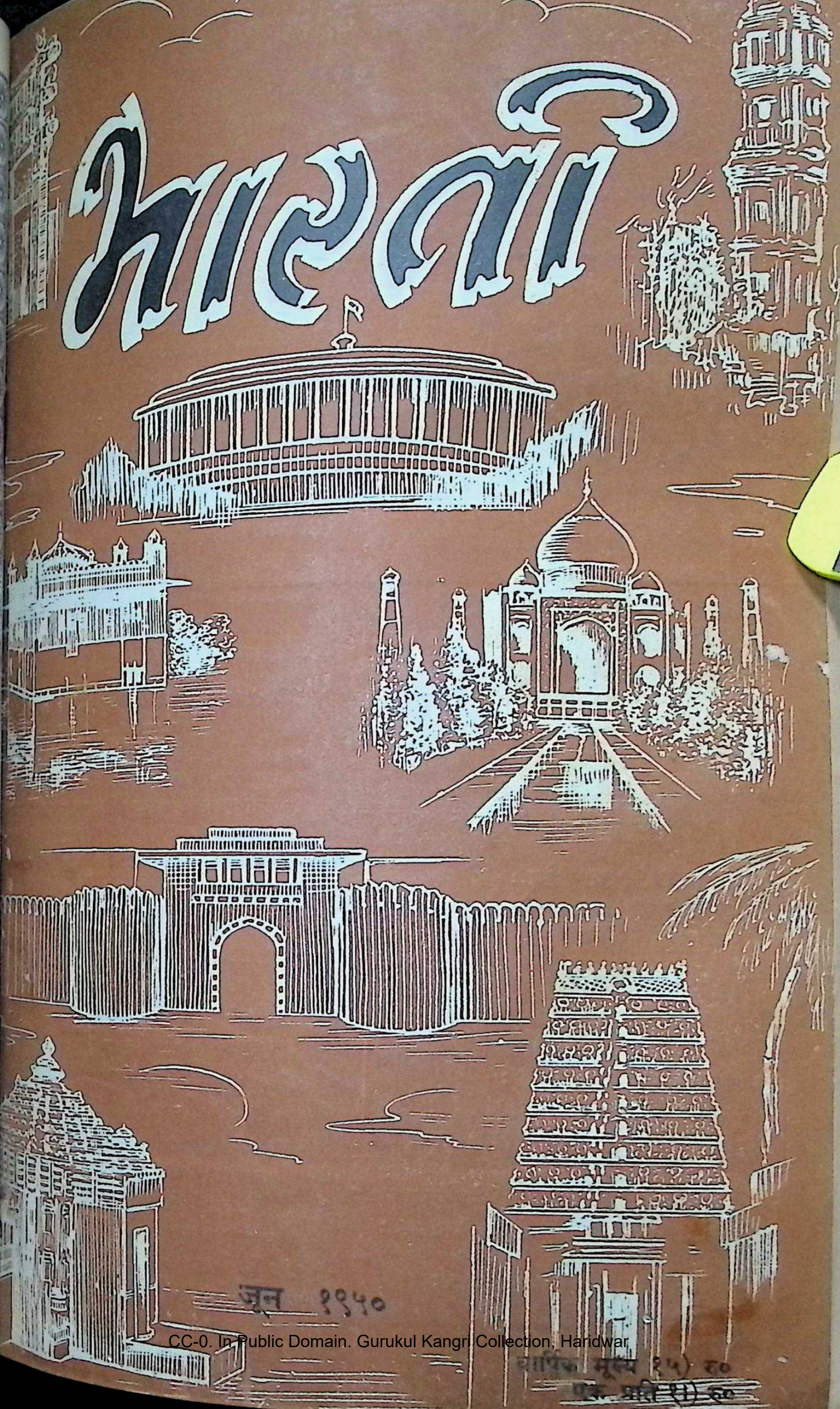

जून १९५०

वार्षिक मूल्य (५) रु०
एक प्रति (१) रु०

इस अंक के लेखक

१. श्री. जैनेन्द्र कुमार :
लब्धप्रतिष्ठ कहानी-उपन्यास कलाकार, जीवनदर्शी संस्कृति के भावुक आलोचक, दार्शनिक, गान्धीवादी आस्तिक। कुछ लिखते हैं, कभी कुछ बोलते हैं। कभी कुछ गुनगुनाते भी है। लोग उसे समझने की सफल—असफल कोशिश करते हैं।

२. श्री. वासुदेव शरण अग्रवाल :
राजधानी दिल्ली के राष्ट्रीय वस्तु-संग्रहालय के संचालक, अभिजात भारतीय साहित्य, कला, संस्कृति और पुरातत्व के विशेषज्ञ विवेचक

३. श्री. डॉ. हीरालाल जैन :
एम. ए., एल. एल. बी., डी. लिट्, नागपुर महाविद्यालय में संस्कृत, पाली, प्राकृत के प्राध्यापक। जैनदर्शन के महापंडित, भाषाशास्त्री और पुरातत्व-के संशोधक, नागकुमार चरित्र, करकंड चरित्र, सावयधम्म दोहा, षट् खंडागम, पाहुड दोहा आदि अनेक अपभ्रंश ग्रन्थों के सम्पादक, अनुवादक, और जीर्णोद्धारक।

४. श्री. राजेन्द्रलाल हांडा :
हिन्दी के अध्ययनशील अनुभवी प्रतिष्ठित लेखक। स्वतंत्र विचारक। राजधानी दिल्ली में सरकारी प्रेस इन्फर्मेशन व्यूरो के एक उच्च कार्यकर्ता।

५. श्री. रामपूजन तिवारी :
परिचय गत अप्रैल के अंक में।

६. श्री. गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'
हिन्दी साहित्य के पुराने मर्मज्ञ, लेखक, अनुवादक पंजाबी, मराठी, गुजराती आदि भाषाविद।

७. श्री. रूपनारायण पांडेय :
परिचय गत अप्रैल के अंक में।

८. श्री. श्रीमन्नारायण अग्रवाल:
एम. ए., वाणिज्य महाविद्यालय (कॉमर्स कालेज) वर्धा के प्रधानाचार्य। शिक्षाशास्त्री, गान्धीवादी सर्वोदय विचार धारा के अध्ययनशील विवेचक, कवि एवं स्वतंत्र विचारक।

९. आचार्य स. ज. भागवत :
महाराष्ट्र के प्रसिद्ध बुद्धिनिष्ठ गांधीवादी विद्वान। तेजस्वी लेखन और ओजस्वी प्रवचन। अनाग्रही वृत्ति। सारी आयु लोकशिक्षण में व्यतीत हुई है। 'जीवन साहित्य' और 'वर्धा शिक्षण योजना' के लेखक।

१०. श्री. भवानीशंकर श्री. पंडित, एम. ए. :
नागपुर महाविद्यालय में मराठी के प्राध्यापक। मराठी के प्रसिद्ध प्रतिष्ठित कवि। 'पिचलेला पाँवा,' 'वीजेची कोर,' 'चौथीचा चाँद' शादि पुस्तकों के लेखक। बाल-साहित्य निर्माण में रुचि। कभी विविध विनोदी लेख लिखते हैं।

११. श्री. जहूरबख्श :
हिन्दी के पुराने लोकप्रिय प्रतिष्टत कहा दिल की बात दिल खोलकर लिखने वाले प्र लेखक। पाकिस्तान जाकर लौटे और अपने भरे दिल को थामकर अपनी जन्मभूमि हि में ही आकर बसे।

१२. श्री. वामन चोरघडे एम. ए. :
परिचय गत मार्च के अंक में।

१३. श्री. नोरि नरसिंहशास्त्री :
आन्ध्रदेशवासी। मातृभाषा तेलगु। वकील, प्रसिद्ध कवि, नाटककार, उपन्यास और लेखक। वकालत के पेशे के साथ आप लगात वर्षों से अपनी मातृभाषा की सेवा कर रहे हैं हँसमुख स्वतंत्र और स्वाभिमानी स्वभाव।

१४. श्री. रामेश्वरदयाल दुवे :
एम. ए., साहित्यरत्न। सुकवि और समा सुन्दर हल्के फुल्के विनोदी लेख और साहित्य-निर्माता। राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति मज़बूत मेरू दंड.

१५. श्री. प्रो. वारणासि राममूर्ति 'रेणु' :
परिचय मार्च के अंक में

१६. श्री. वासुदेव विष्णु मिराशी :
एम. ए.। महामहोपाध्याय। अमरावती के प्रधानाचार्य; संस्कृत, प्राकृत तथा मराठी के विद्वान्। २०–२५ वर्षों से पुरातत्व अनु कर्ता। प्राचीन भारतीय इतिहास के सं सहस्त्रों प्राचीन शिलालेखों और ताम्रपत्रों पर लगभग २०० गवेषणात्मक लेख लिख चुके मौर्य, शातवाहन, वाकाटक, राष्ट्रकूट, शि परमार, कलचुरी, आदि अगणित राजशास तीसरी ईसापूर्व शताब्दी से लेकर १३ वीं श तक का महान् परिश्रम से रत्ती रत्ती संशोधन कार्य आपने किया है। आपका "कालिदास" ग्रन्थ मराठी में नागपुर की ग्रन्थ माला से प्रकाशित हुआ और मरा हृषीकेश शर्मा द्वारा हिन्दी में अनुवादित मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास, प्रसिद्ध प्रकाशक, के यहां से निकला।

१७. श्री. का. श्री. श्रीनिवासाचार्य:
परिचय गत मार्च के अंक में।

१८. श्री. विनय मोहन शर्मा :
परिचय गत मार्च के अंक में।

१९. श्री. अनन्त गो. शेवडे :
परिचय गत मार्च के अंक में।

इस अंक की पाठ्य सामग्री

विषय और लेखक [जून १९५०]

[भारती]

पृष्ठ संख्या

१. आनन्द धारा [ऋषि दयानन्द सरस्वती] ... ४१७
२. भारत की एकता [श्री. जैनेन्द्रकुमार] ... ४१८
३. मंत्रों की मधुमती भूमिका में पृथिवी [श्री. वासुदेवशरण अग्रवाल] ... ४२१
४. करम-रेखा (अपभ्रंश भाषा-कथा) [श्री. डॉ. हीरालाल जैन] ... ४२४
५. प्रगति के पथ पर [श्री. राजेन्द्रलाल हांडा] ... ४२९
६. मानवता के पुजारी रवीन्द्रनाथ [श्री. प्राध्यापक रामपूजन तिवारी] ... ४३५
७. गुरुनानक शाह की एक पंजाबी कविता [श्री. गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'] ... ४४२
८. हारजीत (कहानी) [श्री. पं. रूपनारायण पांडेय] ... ४४४
९. क्या हम चीन से सीखेंगे? [श्री. आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल] ... ४४९
१०. मोती! (लघुकथा) [खलील जिब्रान] ... ४५१
११. अध्यात्म व समाज क्रान्ति (मराठी) [आचार्य स. ज. भागवत] ... ४५२
१२. श्रम सौन्दर्य (मराठी कविता) [श्री प्राध्यापक भवानीशंकर श्री. पंडित] ... ४५६
१३. वीवी आखिर वीवी है (उर्दू कहानी) [श्री. ज़हूरबख्श] ... ४५७
१४. आदिवासी भाइयों के बीच में (गीत) [श्री. प्राध्यापक वा. चोरघडे] ... ४६६
१५. भविष्य (तेलुगु कहानी) [श्री. नोरि नरसिंह शास्त्री] ... ४७३
१६. तेलुगु शतकमाला ,, ,, [श्री. प्रो. वारणासि राममूर्ति 'रेणु'] ... ४७८
१७. पवनार के प्राचीन अवशेष (सचित्र पुरातत्व) [श्री. महामहोपाध्याय वा. वि. मिराशी] ४८०
१८. परमहंस श्री. रमण महर्षि [का. श्री. श्रीनिवासाचार्य] ... ४८४
१९. मुग्ध मधुसूदन (कविता: हिन्दी गीत-गोविन्द) [श्री. प्रो. विनयमोहन शर्मा] ... ४८७
२०. भालो मानुस (बंगला कहानी) [स्व. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर] ... ४९०
२१. पूर्णिमा (धारावाही उपन्यास) [अनन्त गोपाल शेवडे] ... ४९३
२२. विविध [पत्रकार श्री. ललिता प्रसाद पुरोहित] ... ५०७
२३. साहित्यालोचन (ग्रन्थ-समालोचना) [प्रो. श्री. विनयमोहन शर्मा] ... ५१४
२४. दृष्टिकोण (सम्पादकीय) ... ५२०

'भारती' के नियम और उद्देश्य।

(संपादकीय)

१. भारती प्रतिमास ७ तारीख को प्रकाशित होती है।

२. भारती में साम्प्रदायिक अथवा मत-मतान्तरों से सम्बन्धित, विवाद-ग्रस्त लेख प्रकाशित नहीं होंगे।

३. भारती भारत की विशुद्ध अन्तर्प्रान्तीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रगतिशील चिन्तन-प्रधान सचित्र मासिक पत्रिका है।

४. भारती में प्रतिमास लगभग १०० पृष्ठ रहेंगे।

५. किसी लेख, रचना, कविता आदि को छापने या न छापने का, उसे कम-बढ़ करने का और लौटाने न लौटाने का अधिकार संपादक को है।

६. भारती का उद्देश्य समस्त उच्च भारतीय भाषाओं के साहित्य को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना है जिससे वह भारत के समस्त भाषा-भाषियों की वस्तु बन सके।

७. भारती का दृष्टिकोण नव चेतना को लिये हुए रचनात्मक है। वह नये भारत में ऐसे हिन्दी साहित्य का निर्माण चाहती है; जिसमें भारतीय साहित्य का समन्वय हो—सर्वोदय हो।

८. भारती में हिन्दी की मौलिक श्रेष्ठ रचनाओं के साथ साथ —

१ असमिया, २ बंगला, ३ उडिया, ४ नेपाली, ५ काश्मीरी, ६ सिंधी, ७ गुजराती, ८ मराठी, ९ तमिळ, १० तेलुगु, ११ कन्नड, १२ मलयालम आदि १०–१२ प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुई श्रेष्ठ अनूदित उच्च साहित्यिक रचनाएं भी प्रकाशित होंगी।

९. भारती में मनन करने योग्य विविध विषयक लेख, मनोवैज्ञानिक कलात्मक कहानियां, धारावाहिक उपन्यास, कविता, एकांकी, विविध समालोचनाओं का समावेश होगा।

१०. प्रकाशनार्थ समस्त सम्पादकीय व्यवहार नीचे लिखे पते पर कीजिये :—

लेखकों के लिये सूचना :—

'भारती' में प्रकाशनार्थ रचना, आदि कम से कम एक मास पहले, ता. १० तक, सम्पादक के पास भेज देना चाहिए। लेख-रचना सामग्री साफ सुथरे कागज के एक ही ओर स्वच्छ सुपाठ्य अक्षरों में लिखी जानी चाहिए।

अस्वीकृत रचना को वापस मँगाने के लिए डाक-टिकट अवश्य भेजें। लेखकों की अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ 'भारती' में प्रकाशित नहीं की जायँगी।

वार्षिक मूल्य १५ रु.
एक प्रति १।) रु.

संपादक, 'भारती'
C/o. ऑल इंडिया रिपोर्टर लि.
कांग्रेस नगर, नागपुर (१) (मध्यप्रदेश

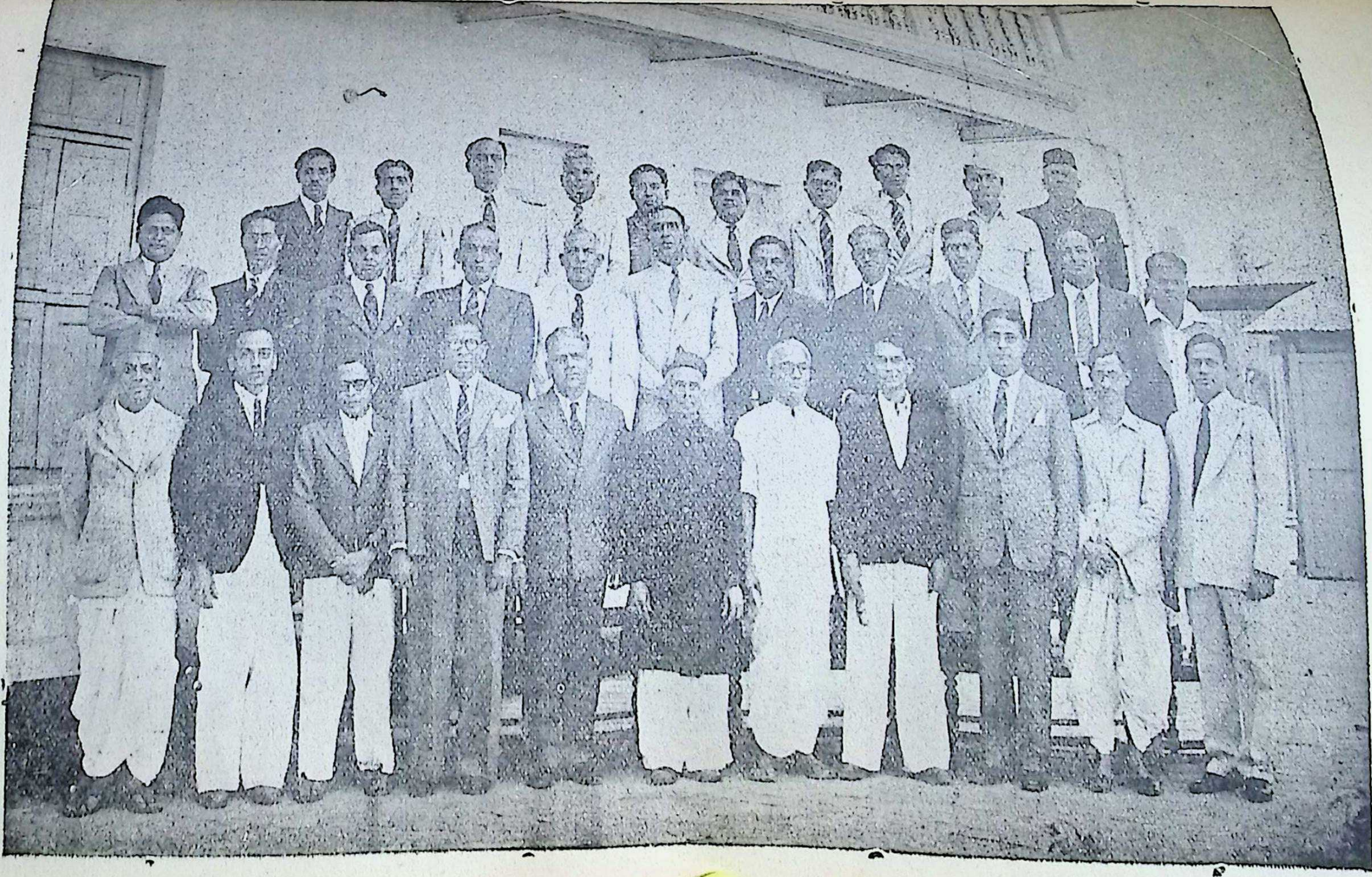

आल इंडिया रिपोर्टर लि. के प्रतिनिधियों का सम्मेलन, १९५०

"भगवान ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।"
—मैथिलीशरण गुप्त.

भारती

सम्पादक
हृषीकेश शर्मा

संचालक
ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., नागपुर

प्रबन्ध-सम्पादक
वि. मा. कुलकर्णी

वर्ष १ * नागपुर, जून—१९५० * अंक ६

आनन्द धारा

भगवान् रस के सागर हैं। इसी रस सिन्धु से बिन्दु बिन्दु लेकर जीव-जगत् में अनन्त रसों का विकास हुआ है। पिता के चित्त में जो पुत्र के लिये वात्सल्य रस, पुत्र के हृदय में जो पिता के लिये श्रद्धा-रस, पति के चित्त में जो पत्नी के लिये प्रेम-रस, पत्नी के हृदय में जो पति के लिये मधुर-रस, माता के चित्त में जो पुत्र के लिये स्नेह-रस, मित्र के मन में जो मित्र के लिये एकप्राणतारूप-रस, शिष्य के चित्त में जो गुरु के लिये शुद्ध श्रद्धारूप रस, भक्त के हृदय में जो भगवान् के लिये भक्ति-रस, ये सभी रस, रस-रूप आनन्दकन्द सच्चिदानन्द श्री भगवान् की आनन्द धारा से उत्पन्न हुए हैं।

—ऋषि दयानन्द सरस्वती

भारत की एकता

[जैनेन्द्र कुमार]

भारत से यद्यपि पाकिस्तान के नाम पर पूरब और पच्छिम से कुछ हिस्सा कट कर अलग हो गया है, लेकिन बाकी सब एक विधान के नीचे जुट कर इकट्ठा भी हो गया है। छोटी मोटी रियासतें विलीन हो गई हैं और अब भारत बिखरा हुआ नहीं है। एक विधान, एक अध्यक्ष, एक कॅबिनेट, एक कानून। राजभाषा भी एक। वही धीरे धीरे, आशा है, राष्ट्र की भाषा भी हो जायगी। भारत अब मुठ्ठीबन्द है और बाहर के हर प्रहार को व्यर्थ कर सकता है।

पढ़ने में आया है कि यह अभूतपूर्व घटना है। इतिहास में पहिले कभी ऐसा नहीं हुआ। भारत अबतक एक नाम रहा है। वह आज की तरह मूर्त और प्रत्यक्ष कभी नहीं हुआ।

इस सबके लिये हम राष्ट्र-पिता कह कर महात्मा गांधी को याद करते हैं। उन्होंने हमको राष्ट्र दिया उसकी आजादी और एकता दी, स्वयं राष्ट्रीयता ही दी। सरकार जो भारतीय एकता की प्रहरी और प्रतीक है, गांधी के नाम की ताक़त से हुकूमत करती है।

लेकिन अपनी सरकार बनी तब गांधी थे। क्या वह इसी एकता से सन्तुष्ट न थे? फ़िर राजधानी दिल्ली के जश्न में वह क्यों न थे? क्यों भाग कर उस पिछड़े और बिछड़े भाग में पहुचे जहाँ आदमी आदमी का दुश्मन बन गया था? वहाँ नंगे पाँव घूम कर घर-घर उन्होंने अलख जगाई कि आदमी चेते, दुई से छूटे और एके में रहे। उन्होंने धुन दी, 'ईश्वर-अल्ला एकहि नाम, सबको सन्मति दे भगवान' वही है और वह एक है। ईश्वर कहो या अल्लाह कहो, या कुछ भी कहो, हम सब एक उसमें हैं। अरे, कौन तुझे ग़ैर है; वहाँ सब तेरे हैं और तू सबका है।

लेकिन जो एकता हमने खड़ी की है वह और नमूने की है। वह निरी भावुक नहीं है, ठोस है। उसका दस्तावेज है, उसका तंत्र है। फ़ौज है, जो उसे सुरक्षित रक्खेगी; कानून है और उसका न्यायालय है जो भीतर से उसे बाँधे रक्खेगा। यह एकता सरकारी है।

निश्चय, बड़ी प्रसन्नता की बात है।

लेकिन कहीं सन्तोष की बात यह न मान ली जाय। कारण एकता सरकार में पहुँच कर असल नहीं होती, मन में उतर कर ही वह सही होती है।

ब्रिटिश साम्राज्य भी यों एक था और कितना अडिग लगता था पर वह खण्ड-खण्ड हुआ और लुप्त हो गया। राज्य बने हैं, उठे हैं, और मिट गये हैं। साम्राज्यों के साथ यही लीला हुई है। कानून में से एकता नहीं बनती। अधिक से अधिक वह वहाँ प्रतिबिम्बित हो सकती है।

भारत समूचे इतिहास में शायद ही कभी एक राज्य रहा हो। रहा भी होगा तो अत्यन्त अल्पकाल के लिये। नहीं तो यहाँ सदैव अनेकानेक राजा और अनेकानेक राज्य रहते आये हैं। उनमें अनबन रही है और वे लड़ते झगड़ते रहे हैं। राज्य हो और फूट न हो, यह बनता ही कब है। बाहर से भी आक्रमण होते रहे हैं। लेकिन इस सब के बीच भारतीयता टूटी नहीं है। वह अखण्ड, अजस्र, अविच्छिन्न रही है। जाने भूमण्डल पर कितनी संस्कृतियाँ उठीं और गिरीं। पर भारत के साथ ऐसा हुआ नहीं दीखता है।

क्यों ?

इस 'क्यों' का उत्तर पाना आवश्यक है। आज के दिन और भी आवश्यक है। कारण, गांधी आज नहीं हैं। गांधी जो भारत की सनातन चेतना का प्रतीक थे, जो भारत की आत्मा थे।

इस 'क्यों' के उत्तर में क्या हम यह नहीं पाते कि भारत की दृष्टि राज्य से अन्यत्र रही है; और उसके लिये महत्व भी कहीं दूसरी जगह रहा है। भारत का नेता आज के दिन भी गांधी हुआ, जो किसी तरह बड़ा न था और हर तरह साधारण था। राजा न था, फ़कीर था। यदि था तो आत्मा की ओर से ही महान् था, अन्यथा हीनातिहीन से समान था। इसी में क्या भारत की ओर का उत्तर समाया नहीं है।

अर्थात् राज्य में और राजाओं (शासकों) के पास वह नहीं है जो जीवन में सारभूत है। वहाँ सख्य नहीं है, वहाँ ऐक्य नहीं है। वहाँ लालसा है, स्पर्द्धा है। दल एक हो कि अनेक हों, विधान संघीय (Federal) हो या एकात्मक (Unitary) हो; तंत्र इस प्रकार का हो या उस प्रकार का हो—इससे कुछ आता जाता नहीं है। जनता महासागर है उसकी छाती पर उठनेवाली लहरों के साथ खेल खेलना राजनीति है। जन-मन की जितनी झलक वहाँ है—बस उतनी ही राजनीति में वास्तविकता है, शेष व्यर्थता है। जन-मन सरकारी कानून से नहीं चलते, ईश्वरीय कानून से चलते हैं। इसलिये भाग्य और भविष्य जन-मन के हाथ है। और वह उनके हाथ है जो ईश्वरीय कानून के समय अधिक से अधिक तत्सम होकर चलते हैं।

राजा अपनी प्रभुता में अनेक रहे हैं, और जीवन भर राज्य-विस्तार या राज्यापहरण के लिये पराक्रम करते रहे हैं। फिर भी भारत ने राम को और कृष्ण को याद रक्खा है जिनपर राजत्व टिकता हुआ दीखता तक नहीं है। बुद्ध, महावीर को याद रक्खा, जिन्होंने राज्य का परिहार किया। शंकर-चैतन्य को और नानक-गांधी को मान दिया कि जो निरीहों में निरीह बन गये। भारत की आत्मा ने इनको पहिचाना और राजाओं-के ऊपर होकर यहाँ से वहाँ तक का भारत इनके प्रभाव के नीचे पनपा। भारत की कल्पना राजाओं और राजनेताओं पर नहीं अटकी। उनके पार आत्मचेताओं पर वह ध्रुव बांध कर जमी रही। परिणाम यह हुआ कि समूचा भारत एक आदर्श, एक अभिलाषा, एक संस्कृति में अनुस्यूत रहा। ऐसे ऋषिकाय

महाप्राण पुरुषों की स्मृति में जहाँ तहाँ तीर्थ बने और साधुओं एवं यात्रियों की टोलियों ने तीर्थकरों के जीवन, मनन और तीर्थों के पर्यटन से समूचे देश में एक ऐक्य को जीवन्त रखा। लड़ाइयाँ होती रहीं; लेकिन जनता अपने कर्मश्रम में अविचल रही। भारत के ये अधिष्ठाता पुण्य-पुरुष जन-मन की भावना-कल्पना से एक क्षण के लिये भी ओझल नहीं हुए।

भारत की एकता यदि आत्मवान पुरुषों में प्रत्यक्ष नहीं होती है, बल्कि राज्यविधान और राजदंड में ही वह प्रत्यक्ष होती है, तो कहना होगा कि वह अपेक्षाकृत जुटाई गई है, प्राणों में उपस्थित नहीं है।

भारत एक था, है, और रह सकेगा तो आत्मा द्वारा। अन्यथा उसकी एकता अनेकता को जन्म देने लग जायगी और यह पराधीनता को निमन्त्रण देना होगा।

आवश्यक है कि उस तरफ हमारा ध्यान जाय। भारत में कई भाषायें हैं और लगभग सब के पास समृद्ध साहित्य है। उसमें देश की आत्मा ध्वनित होती है। भाषा-भेद की वजह से साहित्य भी प्रान्तों में बँट कर और बन्द होकर रह जाय तो यह आत्मघात के समान होगा। अँग्रेजी बीच में आने से यही हुआ है। मौलिक साहित्य, जो यहाँ की धरती से सिंच कर बना है, प्रान्तों में सिमट कर रह गया है और अँग्रेज़ी के जरिये चलनेवाली राजनीति सब के निकट आत्मीय बन आई है। आज भारतीय कुछ है तो सिर्फ राजनीति है। मानो इतर सब कुछ केवल प्रान्तीय और एकदेशी है। इस स्थिति में भारत की निजता उभरनेवाली नहीं है, दबी ही रहनेवाली है। अँग्रेजों के जाने का मतलब अंग्रेजियत का जाना ही यदि नहीं है तो गांधी का हमारे बीच आना व्यर्थ मानना चाहिये।

आज हिन्दी राजभाषा है, लेकिन वह पर्याप्त नहीं है। अर्थात् कानून की, आपसी व्यापार की नहीं बल्कि जीवन की अर्थात् आपसी स्नेह की भाषा उसे बनना होगा। आदान-प्रदान की वह धरती उसे बनना होगा जो हमारी एकता को धारण करे। भीतर से एक होता हुआ भारत ही दुनिया में अपनी जगह रख सकेगा और विश्व की भवितव्यता में अपना पूरा दान दे सकेगा।

वैसा प्रयत्न आज तो लगभग नहीं है। पर अधिक काल उसको टालना खतरे की बात होगी। राजनीतिक एकता हमको डस जायगी, अगर भीतर उसके सांस्कृतिक सत्व न होगा। वह छावनी की, ‘टोटेलिटेरियन डिक्टेटरी की एकता होगी।

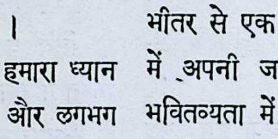

76236

मंत्रोंकी मधुमती भूमिकामें पृथिवी

— वासुदेवशरण अग्रवाल

पृथिवी नये युग का देवता है। इस समय पृथिवी के लिये मनुष्य सब प्रकार का त्याग करने के लिये उद्यत है। पृथिवी के भौतिक रूप पृथिवी पर बसने वाले जन और उस जन की संस्कृति को उन्नत करना ही अब के मनुष्य का सबसे प्रधान कर्तव्य और आदर्श है। मनुष्य का मन स्वर्ग के देवताओं को छोड़ कर पृथिवी के हृदय के साथ जितनी गहराई से मिल सकेगा उतना ही मनुष्य जीवन सुखी बन सकेगा। पृथिवी के साथ जिसका सम्बन्ध है वही धर्म नगद है। जो आदर्श पृथिवी पर प्राप्त किया जा सकता है वही मनुष्य के लिये सच्चा है। इस जीवन में मनुष्य जिस स्थिति को अपने कर्म की शक्ति से प्राप्त नहीं कर सकता उसकी कल्पना भ्रम है। अर्वाचीन मनुष्य के लिये स्वर्ग का राज्य पृथिवी पर आना चाहिए। उसके कर्म और ज्ञान का यही आदर्श है।

पृथिवी के साथ इस प्रकार अपने आपको जोड़ने का भाव अथर्ववेद के पृथिवी-सूक्त में पाया जाता है। पुराने होने पर भी मंत्रों के भाव हमारे जीवन के लिये उपयोगी हैं। वे हमें राष्ट्रीयता की नई व्याख्या बताते हैं और उसमें नया अर्थ भर देते हैं।

यह पृथिवी माता है। मैं उस पृथिवी का पुत्र हूं।

माताभूमि : पुत्रो अहं पृथिव्या :।

यह पृथिवी पहले समुद्र के नीचे छिपी हुई थी। यह उन लोगों के लिये प्रकट हुई जो अपने हृदय में माता के प्रति पुत्र के कर्तव्य का भाव रखते हैं। जिनके हृदय में मातृभूमि के प्रति भक्ति नहीं उनके लिये पृथिवी मिट्टी का ढेला है। माता का अमृत रूपी दूध पुत्रों के लिये होता है। जो सच्चे अर्थों में पृथिवी-पुत्र हैं उन्हीं के लिये सारे कर्तव्य और अधिकार होते हैं। पृथिवी-पुत्र ही नये शब्दों में नागरिक कहलाते हैं।

यह पृथिवी किस के बल से ठहरी हुई है? बड़ी-बड़ी सेनाएं या धन के कुबेर या सुमेरु पर्वत पृथिवी की टेक नहीं है। पृथिवी को धारण करने वाले नियमों में सत्य का स्थान सबसे पहले है। जिस देश में जीवन जितना अधिक सत्य पर टिका है वह देश उतना ही स्वावलम्बी और सुखी है। सच्ची राजनीति सत्य की नीति है। सृष्टि का जो विश्वव्यापी अखंड नियम है जो किसीकी रियायत नहीं करता। जो कठोर बनकर सबको दंड देता है। वह ऋत नामक उग्र नियम इस पृथिवी की रक्षा करता है। पृथिवी के पुत्र अपने लिये किसी से दया की भिक्षा नहीं चाहते। पृथिवी के लिये समर्पित जीवन जिसे दीक्षा कहते हैं, पृथिवी की उन्नति के लिये आवश्यक है। प्रत्येक देशवासी की अपनी साधना या तप पृथिवी को धारण करता है। पृथिवी की उन्नति के लिये ज्ञान और यज्ञ की भावना अत्यन्त आवश्यक है। जब देश में पृथिवी पुत्रों के मस्तिष्क नये ज्ञान से भरते हैं तब देश उन्नति करता है। जब मनुष्यों के हृदयों में मातृभूमि के लिये त्याग की भावना प्रबल होती है तभी पृथिवी उठती है। सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ ये पृथिवी को सच्चे रूप में धारण करते हैं। यह पृथिवी हमारे भूतकाल की साक्षी है। जो आगे आने वाला जीवन है वह भी इसी के साथ नया है। हमारे विकास के लिये अनेक प्रकार के नये लोक यह पृथिवी हमें देती है। यहां असंख्य मनुष्य आपस में मेल से रहते हैं। वे एक दूसरे को बाधा पहुँचाये बिना उसके मैदानों पहाड़ों में और जल प्रदेशों में बसते हैं। अनेक प्रकार की गुण-

कारी औषधियों को पृथिवी जन्म देती है। अन्न और खेती इसमें भरी हुई है। समुद्र और नदियाँ इसमें लहरें मारती हैं। इस पर बसने वाली गौओं के थनों में हमारे लिये अमूल्य भोजन भरा है। सांस लेने वाले, हिलने डुलने वाले अनेक प्राणी इस पर रहते हैं।

जहां हमारे पूर्वजों ने अनेक प्रकार के पराक्रम किये, जहां देवों ने सदा असुरों को पछाड़ा जहां युद्धों में नगाड़ों का घोष सुनने को मिला, जहां नाचते-गाते लोग हंसता सुखी जीवन व्यतीत करते थे, वहीं तो हम सबकी मातृभूमि है। देखो वह भूमि विश्वंभरा है। सब को पालने पोसने का उसमें गुण है। अनेक कोषों की वह खान है उसके वक्षस्थल में सोना भरा हुआ है। उसके ऊपर पूरा एक संसार ही बसा है। सदा जागते हुए देव जिसे भूमि की चौकसी करते हैं, जिसकी रक्षा में कोई भूलचूक नहीं होती, वह भूमि हमारे लिये शहद का मेह बरसाती है। जो भूमि पहले दिखाई नहीं पड़ती थी, जो समुद्र के नीचे छिपी हुई थी, विचारवान लोगों ने ध्यान की शक्ति से जिसे प्रकट किया, अपने चिन्तन से जितना वे नाप सके उतनी ही अधिक जो सामने आई, जिसका अमर हृदय सत्य से ढका हुआ परमस्थान में प्रतिष्ठित है, वह पृथिवी हमें उत्तम राष्ट्र में बल और तेज प्रदान करे। वेग से बहने वाली जल धाराएं जहां समुद्र की ओर बढ़ती हैं, आकाश में व्याप्त जल मेघ रूप में सिमट कर जहां नियम से बरसते हैं, वह भूमि हमारे लिये सब रसों को देने वाली हो, जैसे माता-पुत्र के लिये दूध की धार बहाती है। जिसमें बर्फ से ढके हुए अनेक पर्वत हैं, जिसमें पशुओं से भरे हुए जंगल हैं, जहां काली, लाल, भूरी अनेक रंग की मिटटी है, उस भूमि पर मैं पैर टेकूं, कोई मुझे जीत सके, कोई मुझे घायल न कर सके, हे मातृभूमि, तेरे भीतर से समय-समय पर जो बल उत्पन्न होते हैं उनके साथ हमें जोड़ती रहना, क्योंकि तू माता है हम तेरे पुत्र हैं। जिस भूमि पर नये-नये अनुष्ठानों के लिये हम वेदियां बनाते हैं, जिसमें त्याग भावनाओं से भरे हुए हमारे जीवन अनेक प्रकार के यज्ञ रचते हैं, जिस पर अनेक विक्रम के चिन्ह और कीर्ति स्तम्भ खड़े हैं, वह भूमि रात-दिन बढ़ती हुई हमारा संवर्धन करे। जो हमसे वैर करता है, जो विचार से और घात से धमकाता है, उसे हे भूमि, तुम अच्छी तरह समझ लेना। हे पृथिवी, तुम से उत्पन्न होकर मनुष्य और पशु तुम्हारे ऊपर निवास करते हैं। जब तक तुम्हारे आकाश का सूर्य प्रभात के समय अपनी किरणों से अमृत की वर्षा करता है, तब तक पींढ़ी दर पीढ़ी जीवित रहने वाला तुम्हारा जन-समुदाय अमर है। तुम्हारी प्रजाएँ समग्र या मिली हुई हों। वाणी का मिठास उन्हें प्राप्त हो। हे भूमि, तुम धर्म से धारण की गई हो। तुम्हारी टेक उन नियमों पर है जो संसार को धारण करते हैं। हे महती भूमि, तुम्हारा ठिकाना महान् है। तुम्हारे मन के संकल्पों में बड़ा वेग है। तुम्हारे जीवन का जो सुनहला तेज है, वह हमारे इतिहास के स्वर्ण युगों में प्रकाशित होता रहा है।

तुम्हारे भीतर एक अग्नि है। वही अग्नि धरती, आकाश, पत्थर, पानी, स्त्री, पुरुष, गाय, घोड़े, सब में बसी हुई है। वही सब की हलचल और तेज है। तुमने अग्नि का वस्त्र पहना है। हे माता, तुम्हारे घुटने पर तुम्हारा यह पुत्र बैठा हुआ है। मुझ में ऐसी चमक हो कि मैं तुम्हें भी उसके द्वारा प्रकाशित बना सकूं। मुझे प्राण शक्ति और दीर्घ आयु मिले। हे मातृभूमि, तुम्हारे भीतर एक सुगन्ध है। वह गन्ध जल में, थल में, स्त्री-पुरुषों में, पशु-पक्षियों में, सबमें बसी हुई है। वही तुम्हारी छाप है जिससे प्रकट होता है कि कौन तुम्हारा है। देश में, विदेश में, कहीं भी हम चले जांय, वह तुम्हारी गन्ध हमारे साथ जाती है। हर एक पृथिवी पुत्र तुम्हारा चलता फिरता हुआ टुकड़ा है। जब तुम प्रकट हुईं तब एक कमल तुम्हारी सुगन्धि से भरपूर तुम्हारे ऊपर खिला। सूर्या और सोम के विवाह में जब देवता इकट्ठे हुए तब उसी कमल की सुगन्धि से उनका स्वागत किया गया। आज तक उसी सुगन्धि का उपहार लेकर हर एक कमल खिलता आया है। कितनी पीढ़ियां बीत गईं, पर स्त्री-पुरुषों के शरीरों में बसने वाली वह सुगन्धि आज तक वैसी ही है। उस गन्ध से उत्पन्न वही रूप, वही स्वर, वही तेज, वही गठन, वही मन, वही मस्तिष्क, आज जो तुम्हारे पुत्र हैं उन्हें भी प्राप्त हुआ है। राष्ट्र की

पुरानी परम्परा का यह धागा हर एक पीढ़ी में पिरोया हुआ है।

वृक्ष वनस्पति इस भूमि पर अचल खड़े हैं जिनके पके हुए वीज प्रतिवर्ष पृथिवी पर गिर कर नया-नया जीवन धारण करते हैं । ऐसी विश्व धात्री मातृभूमि को हम नमस्कार करते हैं। हम दाहिने वांये पैरों से विना डगमगाये पृथिवी पर घूम रहे हैं, जो पृथिवी पुत्र सोये, जो लेटे हैं वे उठ कर बैठ जायं। जो वैठे हैं वे खड़े हो जायं। जो खड़े हैं वे चलने लगें । चलना ही जीवन है। मातृभूमि सव मैलों को मांजनेवाली है । इसलिये इस भूमि को विमृग्वरी (मार्जन कर्त्री) कहा जाता है। एक वार इसके साथ हम अपने मन को मिला दें, तो वह सव तरह हम में नया उत्साह, नई कर्म-शक्ति भर कर हमें शुद्ध बना देती है। समाज और व्यक्तियों के मल और दोषों की शोधक पृथिवी है। कुछ समय तक भले ही दोष संचित होते रहें। पृथिवी धैर्य से उन्हें सहती रहती है । किन्तु अंत में पृथिवी की गति क्रिया सबको शुद्ध करके ही रहती है। अपने विचारवान पुत्रों के ध्यान से पृथिवी सदा आगे वढ़ती है । पृथिवी के जो शुद्ध करने वाले रस हैं वे हर पृथिवी पुत्र के शरीर को जब सींचते हैं, तो वह कितना भी हेय हो पृथिंवी के लिये कंचन वन जाता है । पृथिवी की चारों दिशायें हमारे चलने के लिये खुली रहें । हम कहीं किसी दशा में ठोकर न खायें । हमारे नेत्रों में सौ वर्ष और उससे भी अधिक समय तक पृथिवी को देखने के लिये सूर्य का प्रकाश पहुँचता रहे। किसी प्रकार भूमि की क्षति हमारे द्वारा न हो। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त इन छः ऋतुओं का चक्र सदा घूमता हुआ पृथिवी पर नया-नया रस भरता रहे।

पूर्वज ऋषियों ने जिसमें अनेक ऋचाओं का गान किया, जिसमें अनेक यज्ञों के सत्र हुए, जिसमें अनेक नगर और ग्राम वसाये गये, जिसमें पृथिवी-पुत्र खेतों में काम करते हैं ऐसी यह भूमि हमें चारों ओर रमणीक दिखाई पड़े । इसमें भूमि पर अनेक प्रकार के जन वसते हैं जो अनेक भाषाओं के बोलने वाले हैं और अनेक धर्मों के मानने वाले हैं। इस भूमि पर अनेक मार्ग विछे हुए हैं जो इसके चारों खूटों को जोड़ते हैं। अच्छे और बुरे सव ही उन मार्गों पर चलते हैं। इस मातृभूमि पर इसके पुत्रों में ऐश्वर्य है । सवके लिये उनके मन में प्रीति का भाव है । किन्तु यदि कोई उनका तिरस्कार करता है, तो वे उसका घर्षण करते हैं। इस भूमि पर जो सभा और समितियाँ हैं उनमें पृथिवी-पुत्र मातृभूमि के कल्याण के लिये उत्तम भाषण करते हैं। वे जो बोलते हैं उसमें मधु की मिठास मिली रहती है । यह मातृभूमि देखने में सुंदर है। यह विश्व की नेत्री है, अपनी संस्कृति के द्वारा यह सबसे आगे चलने वाली (अग्रेत्वरी) वनी है।

जव यह भूमि महार्णव के नीचे छिपी हुई थी, तव विश्व की निर्माण कर्त्री शक्तियों ने इसका ध्यान किया और यह जल के ऊपर आई ! उस समय विश्वकर्मा ने इसकी मिट्टी में अपनी हवि मिला दी । इसके कारण सव तरह की सामग्री इसके भाग्य-पात्र में समा गई । हे भूमि! तुम कामधेनु हो। जीवन के सव कल्याणों के साथ हमें राष्ट्र और समाज में प्रतिष्ठित करो।

भूमे मातर्निधेहि मा भद्रेया सुप्रतिष्ठितम् ।

संविदाना दिवा कवे श्रिया माधेहि भूम्याम् ।

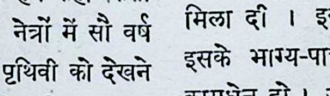

एक अपभ्रंश रास :

करम-रेखा

[डॉ. हीरालाल जैन]

१

हाय ! हाय ! यह क्या हुआ ?

मन्दिर और बगीचे में चारों ओर कोलाहल मच गया। लोग दौड़ पड़े और उन्होंने बड़ी कठिनाई से बालिका को बावड़ी में डूबने से बचाया। माता ने बड़ी आतुरता से, चिन्ता, शोक और हर्ष से प्रेमाश्रु ढालते हुए, अपनी प्यारी पुत्री को छाती से लगा लिया।

अंगदेश में चम्पापुरी नगरी की बात है। नगर क्या था, पृथ्वी पर स्वर्ग खंड ही उतर आया था। वहां इन्द्र के समान वैभवशाली महाराज श्रीवर्धन अपनी वल्लभा पटरानी मदनलेखा के साथ राज्य करते थे। उसी नगर में वासवदत्त सेठ अपनी सेठानी वसन्तश्री के साथ आनन्द से रहते थे—

जम्बू लंछण दीवहो
भारहखेत्तयरे।
अंगदेसु सुपसिद्धउ
चंप्पापुरि णयरे ॥१॥

मठ-देवल-आरामइं
सर-वण अत्थि जहिं।
सावय लोय महामइ
बहु विहसहिं णु तहिं ॥२॥

सग्गखंडु अवयरियउ
णं महिमंडलहिं।
सिरिवड्ढणु तहिं राणउ
समु आहंडलहिं ॥३॥

मयणलेह तहो सुंदरी
जा णिव-वल्लहिया।
जिणह पुज्ज सा विरयइ
जा जगि दुल्लहिया ॥४॥

वासवदत्तु सया तहिं
णिवसइ सेट्ठि पुरि।
घरिणि तासु जणमोहिणि
णाम वसंतसिरि ॥५॥

वसन्तश्री ने एक बालिका को जन्म दिया, जिसकी सुकुमारता और सौन्दर्य का पार नहीं था। सुललित, मृगनयनी, कदलीगर्भ के समान सुकोमल, पूर्णचन्द्रमुखी, कांचन वर्ण—कहां तक कहा जाय! उसका शरीर इतना रूप लावण्य-सम्पन्न था कि और की तो बात क्या उसे देखकर मदन भी अपने आपको भूल जाय। उसने कुल-भवन को अलंकृत किया था, अतएव उसका नाम रखा गया लक्ष्मी। वह वर्ष वर्ष बढ़ती हुई लोगों के चित्त को आकर्षित करने लगी—

तासु धीय उप्पण्णिय
सुललिय मिगणयणी।
केलिगब्भ-सुकुवालिय
पुण्णिम-ससि-वयणी ॥६॥

कंचण-वण्ण मणोहरि
सुट्ठु सुचंग-तणु।
मयणु देखि सइं भुल्लइ
अण्णु कि गणइ जणु ॥७॥

लच्छि णाउ किउ तासु
पसाहिउ कुलभवणु।
वरसि वरसि वड्ढन्ती
लोयहं हरइ मणु ॥८॥

एक दिन सेठानी अपनी अल्पवयस्क पुत्री को लेकर देवदर्शन को गई। सेठानी तो वन्दन-पूजन के कार्य में लग गई, और बालिका उद्यान में खेलने लगी। अकस्मात् खेलते २ वह जल पूर्ण बावड़ी में जा गिरी। लोगों ने दौड़कर बड़ी तत्परता से उसे निकाला।

माता ने अपना बड़ा भाग्य समझा कि उसकी प्यारी होनहार बिटिया बड़े संकट में से बच गई। वह तुरंत उसे मन्दिर के भीतर ले गई। वहां एक साधु महात्मा विराजमान थे। माता ने बालिका को उनके चरणों में डाल दिया और कहा—"महाराज!

यह कन्या आज मरते मरते बची है। इसे आशीर्वाद दीजिये।"

महात्मा ने बालिका की ओर ध्यान दिया। उन्होंने उसका हाथ उठाकर देखा। देखते ही उनके मुख पर विषाद की छाया दौड़ गई, और उन्होंने अपना मस्तक हिलाया—

ताम भडारइं दिट्ठउ
करयलु तहे तणउ।
दिक्खिवि मंथउ धुणियउ
भयउ विसण्ण-मणु ॥ ९ ॥

सेठानी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—"महात्माजी! कहिये, क्या बात है? मेरी कन्या की कुशल तो है? कोई चिन्ता की बात तो नहीं है? इसके भाग्य में क्या लिखा है? जल्दी बतलाइये, मेरा जी अकुला रहा है।"

साधु महाराज ने गंभीरता से कहा — "ठीक तो है, पर जब इसका विवाह होगा तो इसका स्पर्श होते ही पति के जीवन का भरोसा नहीं है।"

सेठानी को मानो बिजली मार गई। उसकी सब आशायें चूर चूर हो गईं। क्या उसकी सुन्दर सुकुमार बालिका जन्मभर वैधव्य का दुख भोगेगी?

तं आयण्णिवि सेट्ठिणि
णं वज्जें हइया।
मुणि वंदइ मणि झूरइ
काउ कियउ दइया ॥ १० ॥
णवणीलुप्पल-सुललिय
जिम सुकुमालियहिं।
किं भणु कालु गमेसइ
हा! महु बालियहिं ॥ ११ ॥

"नहीं! मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगी। भाग्य मुझे छलना चाहता है। मैं भी छल से ही भाग्य को निष्फल बनाऊंगी।"

२

दिन जाते देर नहीं लगती। बालिका लक्ष्मी ने अब यौवन काल में प्रवेश कर लिया है। सेठानी ने एक दिन अपने पति से कहा—"आपको तो अपने व्यापार-धन्धे से फुरसत ही नहीं मिलती। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं ही लक्ष्मी को साथ लेकर तीर्थयात्रा कर आऊं। बहुत दिनों से काशी वन्दना की इच्छा है?"

सेठजी ने उत्तर दिया — "बड़ी अच्छी बात है। धर्मकार्य में कौन रुकावट डाले? और शुभ काम के करने में विलम्ब भी नहीं करना चाहिये; अच्छा, तुम शीघ्र ही यात्रा की तैयारी करो।"

वैसा ही हुआ। लक्ष्मी को लेकर, जन-धन से सुसज्जित होकर, सेठानी बनारस पहुंची। वहां तीर्थ-वन्दना और खूब दान-पुण्य करने के पश्चात् उन्होने अपने पीहर जाने का निश्चय किया। उनका सहोदर धनदत्त कौशाम्बी में रहता था। उसने अपनी बहिन का खूब स्वागत किया और अपनी भानजी को देख बड़ा सुख माना।

एक दिन धनदत्त ने वसन्तश्री से कहा—"बहिन! लक्ष्मी विवाह योग्य है। क्या कहीं उसके विवाह सम्बन्ध का विचार किया है? न किया हो तो यहां देवसेन नाम के एक बड़े भारी सेठ हैं। उनका पुत्र सुन्दर, गुणवान और सब प्रकार से अपनी लक्ष्मी के योग्य वर है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सम्बन्ध कर लिया जाय।

भायर घरि अच्छंती
सा धीयइं सहिया।
इक्कहि दिवसि सहोयरि
धणयत्तें कहिया ॥ १२ ॥
देवसेणु वणिराणउ
णिवसइ सेट्ठि पुरि।
णाउ सुकंत महासइ
गेहिणि तासु घरि ॥ १३ ॥
तासु पुत्तु बलि वुच्चइ
णं जगि कुसुमसरु।
बलि विक्कम सिरिमंतउ
गुण-गण-मयरहरु ॥ १४ ॥
जइ तुहुं भणइ त सुंदरि
दिज्जइ लच्छि तहु।
घरु भल्लउ वरु चंगउ
दिण्णिज्जाइ लहु ॥ १४ ॥

सेठानी की मनचाही हुई। उसने कहा "भैया! जब तुम्हारा मन भरता है तो मुझे स्वीकार ही है।" ब्राह्मण से शुभ तिथि नक्षत्र निकलवाया गया। लग्न बहुत समीप की निकली। इतना समय भी नहीं मिलता था कि घर खबर भेजी जाय व अन्य सम्बन्धियों को विवाह का निमंत्रण दिया जा सके। सेठानी ने कहा—"इस उत्तम मिति को

चूकना नहीं चाहिये। कन्या का पिता यहां नहीं है तो मामा तो है, उसे भी कन्यादान का अधिकार है।" बस, विवाह की तैयारियां होने लगीं। मंडप खूब सजाया गया। समस्त मंगलाचार हुए। वर यात्रा खूब ठाठबाट से निकली। लक्ष्मी का पाणिग्रहण हुआ, किन्तु तीसरी भांवर पड़ते ही मंडप में हाहाकार मच गया। वर को मूर्च्छा आ गई और...।

वलि वीवाहण आयउ
मंगलचारु किउ।
लच्छिहिं सिंहु कर जोडिवि
जा अच्छाइ सुहिउ ॥ १५ ॥
तीजि भांवरि दिंतह देखि
जुविहि छलिउ।
वलि मुच्छाइवि पडियउ
णीसरि जिउ चलिउ ॥ १६ ॥

यह क्या वीती ? सुख के अवसर पर यह दुःख का वज्रपात! वहुत औषधि उपचार किये गये, किन्तु सब निष्फल। रोग का उपचार होता है—क्या मृत्यु की भी कोई औषधि है ?

वर की माता ने बहुत विलाप किया। "हा निष्ठुर दैव! यह तूने क्या किया—

हा हा विहि तुहुं णिग्घिण
काहउ कियउ पइं।
चालउ पुत्त महारउ
हरिवि क्रिणियउ पइं ॥ १७ ॥
झरइ दुद्ध धणजुयलहं
णयणहं अंसु जलु।
त्यहि केम सहारउ
सुण्णउ जगु सयलु ॥ १८ ॥

वसन्तश्री अपना मन मसोस कर रह गई और हृदय की दाह को उसने हृदय में ही दवा दिया। कितने ही दिन किसी प्रकार अपने स्नेहपूर्ण माता के घर रह कर वह अपने पति के पास लौट आई! तीर्थयात्रा से लौटने पर जैसा स्वागत यात्रियों का किया जाता है वह सब हुआ। पर लक्ष्मी के भाग्य की बात यहां किसी ने नहीं जान पाई।

३

एक दिन वसन्तश्री ने अपने पति से बात चलाई—"नाथ! मुझे अब बड़ी चिन्ता रहती है। रातको नींद भी नहीं आती। जिनके घर में सयानी कन्या हो उन्हे चैन कहां ? कोई योग्य वर ढूंढ़िये जो लक्ष्मी का पाणिग्रहण करे, और हमारे भार को उतारे।"

अज्ज वि निंद न आवहि
सामिय चिंत मुहिं।
किज्जउ लच्छि विवाहु गवे—
सहि को वि सुहि ॥ १९ ॥
सुन्दर सुहव सुहाई
कन्न कुमारि सुवा।
अच्छइ घरि लडहंगी
जोव्वण-प्रवण धुवा ॥ २० ॥
नाह, गवेसहि लच्छिहि
चंगउ को वि वरु।
जो वेगें परिणेइ उत्तारइ
मज्झु भरु ॥ २१ ॥

सेठजी को भी अव लक्ष्मी के विवाह की चिन्ता हो गई। खूब खोज-वीन करके अन्ततः एक सुन्दर धन-गुण-सम्पन्न वर मिल ही गया। विवाह की बात भी पक्की हो गई, सेठानी बड़े उत्साह से घर में विवाह की तैयारियां करने लगी।

लक्ष्मी चुपचाप यह सब देख रही थी। अन्ततः उससे न रहा गया। उसने अपने पिता से जाकर कह ही दिया—" पिताजी! मेरा तो विवाह मामा के यहां हो चुका, और मेरे वर की मृत्यु भी हो गई। स्त्री का विवाह वार वार तो होता नहीं। यदि आपको मेरा विश्वास न हो तो माताजी से पूछ लीजिये।"

पुणु विवाहु आरंभिउ
देखइ लच्छि सइं।
चाउ हसंती पुच्छइ
काहउ कियउ पइं ॥ २२ ॥
मज्झु विवाहु अतीतउ
भामरिहिं तियइं।
मामसालि वरु मूवउ
मो देखंतियइं ॥ २३ ॥
तियहि विवाहु कि
केती वार करावियइं।
एण वयणि मो कुलहरु
बप्प लजाइयइ ॥ २४ ॥

सेठ ने अपनी पत्नी से पूछा। अव सेठानी कहां तक सच्ची वात छिपा सकती थी। उसका सव प्रयास निष्फल हुआ। उसकी आशा का अन्तिम तन्तु भी अव टूट गया। वह फूट फूट कर रोने लगी। वासवदत्त भी अव अपने हृदय को नहीं सम्हाल सका। वह भी रो-रो कर अपने भाग्य को कोसने लगा।

भयउ विवाहु ण झुट्ठउ
जइसउ सुव चवइ।
गलि लाइवि सा सुधियहि
वणिवरु चिरु रुवइ॥ २५॥
हा महुधीय सलक्खणि
हा कुलमंडणिए।
काइं खुत्त तउ वीतउ
देसहं दूणीए॥ २६॥

अव इन्हें कौन समझावे? यह कार्य स्वयं लक्ष्मी ने बड़े धैर्य और चातुर्य के साथ किया। वह गद्गद होकर वोली—"पिताजी! आप शोक क्यों करते हैं? जो कुछ पूर्व जन्म में किया है उसका फल जीव को अवश्य ही भोगना पड़ता है। अव हमें शोक छोड़ कर अपने कर्तव्य का विचार करना चाहिये। जितना द्रव्य आप मेरे विवाह में खर्च करना चाहते थे, उतना लगाकर एक देवमन्दिर वनवा दीजिये जहां मैं धर्मध्यान और व्रत अनुष्ठान किया करूंगी और अपना भविष्य सुधारूंगी" पिता ने पुत्री की वात मान ली।

अवगउ वप्प म रोवहि
आवइ पुव्वकिउ।
गग्गर-वयण रुवंती
लच्छिए इम कहिउ॥ २७॥
जेतउ दव्वु विवाहहं
लागइ तेत्तउ लउ।
जिणहरु वेगि करावहि
तुंगु सवित्थरउ॥ २८॥
तेण जि ताम कराविउ
उज्जलु जिण-भवणु।
मज्झि परिट्ठिउ जिणहरु
हय-जम्मण-मरणु॥ २९॥

४

पिता के भवन में धन-वैभव के सव सुख छोड़ कर अव लक्ष्मी के दिन मन्दिर में तप, भजन-पूजन, उपवास और शास्त्र-श्रवण में वीतने लगे। एक दिन ज्यों ही वह उपवास में प्रवृत्त हो कर जप कर के अपनी आंख खोलती है, तो अपने सन्मुख एक दिव्य, आलौकिक रूप को देख कर अवाक् रह जाती है। यह क्या? यह तो उसका कोई सुपरिचित पुरुष है। उस दिव्य शरीरधारी ने भी लक्ष्मी की ओर देख कर मुस्करा दिया, और कहा—"प्रिये, अपना विवाह हुआ, किन्तु मिल कर रहना अपने भाग्य में वदा नहीं था। हमारा वियोग हो गया।"

लक्ष्मी–किन्तु अव तो पुनः संयोग हुआ है। अव मैं आपका साथ नहीं छोड़ूंगी। कमलिनी सूखे सरोवर में नहीं रह सकती। मदजल-शोभी हाथी से रहित विन्ध्य पर्वत में रहकर करिणी क्या करेगी? हंस विहीन हंसिनी को क्या सुख मिल सकता है? नहीं! नाथ, अव आप मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकते। आप जहां जायें मुझे भी वहीं ले चलिये।"

ताम जि ताइं वुलाइउ
णयण कडक्खइणा।
हउं तउ दरिसणि सिंचिय
अमिय झलक्कइणा॥ ३०॥
पुडयणि णाह न सोहइ
मुक्का सरि जलिण।
विंझ ण सोहइ करिणी
मिल्ली मइ गलिण॥ ३१॥
हंसिणि हंसविहूणी
पावइ कवण सुहु।
मइं मेलेविणु णिग्घिण
णाह ण जाहि तुहुं॥ ३२॥
हउं पर पुरिसु ण इच्छमि
तुहुं पर मज्झु वरु।
जहिं तुहुं चलियउ सुन्दर
तहिं महु नेइ घरु॥ ३३॥

देव–प्रिये! ऐसा हठ मत करो। ध्यान रखो, तुम मनुष्ययोनि में हो और मैं हूं देवयोनि में। इस परिस्थिति में हमारा तुम्हारा साथ नहीं वन सकता। वस, एक ही उपाय है। देव की अपेक्षा

मनुष्य का जीवन बहुत ही स्वल्प है। तुम अपने शेष जीवन को उसी साधना में लगाये रहो जिसे तुम स्वीकार कर चुकी हो। तभी, तुम्हारे इस जीवन के उस पार हमारा तुम्हारा संयोग हो सकेगा।

ताम सणेहैं लइयउ
वुल्लइ अमरु पुणु।
तुहुं मांणुसि हउं सुखरु
संगमु कवणु भणु ॥ ३४ ॥
वंभचेरु दिढु पालहि
वय-संजम सहिउ।
तासु जि करि उज्जवणउ
जं व पइं गहिउ ॥ ३५ ॥
पुणु सल्लेहण भावहि
सण्णासें मरहे।
जेम जाहि सुरलोयहो
मइ सिहु संचरहे ॥ ३६ ॥

यह उपदेश देकर देव अदृश्य हो गया। और लक्ष्मी को समस्त संसार ऊजड़ दिखाई देने लगा—

इउ उवएसु पयोसिवि
लच्छिहिं गयउ सुरु।
दिट्ठउ तेण विहूणउ
उज्जडु सयलु पुरु ॥ ३७ ॥

किन्तु लक्ष्मी ने शीघ्र अपने को सम्हाला। "अभी भी सम्मिलन का एक उपाय है।"

बस, परलोक में सम्मिलन की उसी एक आशा से लक्ष्मी अब स्वधर्म-पालन में तन-मन से लीन है।

यह कथानक नया नहीं है, शताब्दियों पुराना है—उस संध्याकाल का है जब अपभ्रंश भाषा वृद्धावस्था को प्राप्त हो गई थी, और उसकी पुत्री हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि का शैशव प्रारम्भ हो गया था। अतएव इस रचना में हमें प्राकृत भाषा का अन्तिम और हिन्दी का आद्यतम रूप देखने मिलता है। तुक वद्ध नये नये छन्दों का आविष्कार भी इस विकास की एक वड़ी विशेषता थी। यह रचना उस युग के गीति-काव्य का बड़ा सुन्दर उदाहरण है। माथुर संघ के मुनि उदयचन्द्र के शिष्य विनयचन्द्र मुनि इसके रचयिता हैं। उन्होंने इसे 'त्रिभुवनगिरि तलहट्टा' में रचा था; और अपनी इस रचना को उन्होंने 'रास' कहा है जो उदाहरणों के अनुसार कोई सौ छन्दों में समाप्त हुआ है। इस रास का उद्देश्य निर्झर पंचमी व्रत के माहात्म्य को प्रकट करना है। यह कथानक अनेक सामाजिक समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है—भविष्य वाणी में विश्वास, विधवा-विवाह, इस जीवन में हार कर परलोक की आशा और उसके लिये धार्मिक अनुष्ठानों का अवलम्बन आदि आज भी भारतीय जीवन के सजीव प्रश्न हैं। जैन-साहित्य में ऐसी रचनाओं की प्रचुरता है। —लेखक।

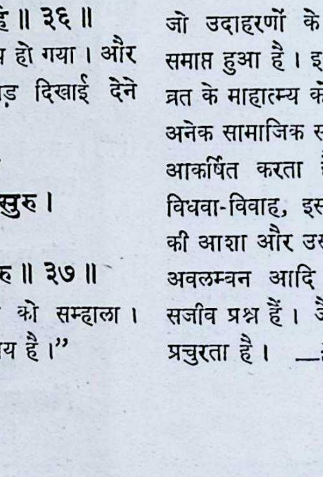

प्रगति के पथ पर

[राजेन्द्र लाल हांडा]

जीवन का लक्षण गति है और ध्येय प्रगति। सृष्टि के आरम्भ से मानव चेतन या अचेतन रूप से आगे बढ़ने के सतत प्रयास में लगा है। बहुतों का ख्याल है कि जैसे एक युग के बाद दूसरा युग आता गया मानव प्रगति करता गया, अर्थात् काल के अनुपात से मानव बराबर आगे बढ़ता आया है। कुछ लोग इस विचार के हैं कि आदिम पुरुष ने प्राकृतिक कठिनाइयों पर कुछ शताब्दियों में ही विजय पा ली, और फिर उसके बाद वह पतनोन्मुख हो गया, अर्थात् गत दो सौ या चार सौ वर्षों में मानव ने वास्तविक प्रगति नहीं की; बल्कि पहले किये-धरे पर पानी ही फेरा है।

प्रगति क्या है? इस के क्या लक्षण हैं? इन प्रश्नों का उत्तर दिये विना इन परस्पर-विरोधी विचारों का मूल्य आंकना सम्भव नहीं।

यह बात निर्विवाद है कि प्रगति का और ज्ञान का, जो प्रगति का ही दूसरा रूप है, जैसा मार्मिक विवेचन हमारे पूर्वजों ने किया है ऐसा विश्व में किसी और जाति अथवा समुदाय ने अभीतक नहीं किया। आर्य लोगों ने इस देश में संस्थापित होने के बाद ही सृष्टि के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा को तृप्त करने के लिए सोच विचार आरम्भ कर दिया था। ऋग्वेद में इस विश्व को रथ माना गया है और स्थान-स्थान पर काल की चक्र से उपमा दी गई है। इसका एक अभिप्राय तो सम्भवत: यह जताना रहा हो कि सृष्टि का सर्व प्रथम नियम गति है, अर्थात् सृष्टि का पहिला लक्षण इसका गतिमान रहना ही है। यदि ऐसा न होता तो ऋषि लोग काल को चक्र की बजाय कुछ और कह सकते थे और विश्व की उपमा रथ से न देकर वृक्ष, पर्वत, समुद्र आदि किसी भी चीज़ से दे सकते थे।

यह वैदिक परम्परा उपनिषदों और पुराणों में भी इसी प्रकार बनी रही। यही 'प्रगति' शब्द के जन्म का इतिहास है। धीरे धीरे यह समझा जाने लगा कि सृष्टि और प्रलय बराबर घूमते रहने वाले काल चक्र की स्थिति के सूचक मात्र हैं। जिस प्रकार चक्र का हर भाग ऊपर नीचे सभी दिशाओं में बराबर घूमता रहता है, उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय, प्रगति और विनाश भी काल-चक्र के अंग के रूप में बराबर घूमते रहते हैं। इस लिए सृष्टि के बाद प्रलय और फिर उसके बाद सृष्टि—यह क्रम सदा जारी रहता है।

हमारे तत्वदर्शीयोंने इस विचार को अधिक तर्कसंगत और आकर्षक बनाने के लिए सृष्टि और प्रलय की भूरि भूरि व्याख्या की है। सृष्टि को उन्होंने चार युगों में बांट दिया।

पहले के बाद दूसरा युग आरम्भ होता है, फिर तीसरा, फिर चौथा और उसके बाद फिर प्रलय। प्रलय के बाद फिर सृष्टि की रचना होती है जो पहले युग से आरम्भ होती है। इस प्रकार मन्वन्तरों में बंटा हुआ यह युग-क्रम अदृष्ट होते हुए भी बराबर चलता रहता है।

इस परिभाषा के अनुसार प्रगति जीवन की वह स्थिति है जो अत्यधिक उन्नत होने पर सृष्टि के नियमों के अनुसार फिर अधोगति को प्राप्त हो जाती है। इस परिभाषा में कितने ही दोष हों, कितनी ही त्रुटियां हों परन्तु यह गुण अवश्य है कि इस से प्रगति और विगति की भावना सहज ही समझ में आ जाती है। बहुत सूक्ष्म और दुर्ग्राह्य होते हुए भी इस सिद्धांत के कारण प्रगति का भावार्थ साधारण मनुष्य आसानी से समझ लेता है। ग्रामीण लोग भी यह जानते हैं कि धीरे चलने से तेज चलना अच्छा और तेज चलने से भागना अच्छा है, परन्तु अधिक तेज भागने से धीरे चलना अच्छा है क्यों कि अंधाधुंध भागने का अर्थ तो ठोकर खाकर गिरना ही है। साफ और स्वच्छ कपड़े पहनने के महत्व को गांव के सभी लोग जानते हैं, परन्तु यदि किसी को सदा ही सफेद कपड़े पहनने का ख़ब्त हो जाये तो वह चिटकपड़िया कहलाता है। ऐसे आदमी को देखते ही गांव के लोग समझ जाते हैं कि सम्पन्नता से उसका वैर हुआ चाहता है। प्रायः गांव वालों की धारणा ठीक सिद्ध होती है।

मानव ने दीर्घकालीन अनुभव की सहायता से सूक्ष्म सूक्ष्म विचारों का तत्व ग्रहण कर उन्हें सरल भाषा में अनूदित कर लिया है। इसीलिए वेद पुराणों में प्रतिपादित प्रगति के सिद्धांत को वह समझ हीं नहीं गया है बल्कि दैनिक जीवन की घटनाओं पर आसानी से उसे लागू भी करता है।

अब लीजिए आधुनिक युग को जिसे विज्ञान के चमत्कार का युग कहते है। इस युग में मानव ने इतनी प्रगति की है और स्वयं काल इतना गतिमान हो गया है कि इस परिवर्तन की व्याख्या के लिये 'क्रान्ति' शब्द तक हल्का दिखाई देता है। एक वह समय था कि सौ मील दूर जगह को लोग परदेस कहा करते थे। इसीलिए तो विरहिणी गाया करती थी "सैयां गए परदेस"। वह भी बिचारी ठीक थी। जहां से घर लौटने में और दुख सुख का संदेश घर पहुंचाने में चार पांच दिन लग जायें, उसे परदेस नहीं तो और क्या कहेंगे। एक तो वह समय था और एक आजका युग है जब दो दिन में कुशलतापूर्वक दिल्ली से लंदन पहुंचा जा सकता है। यही नहीं, आज से चालीस वर्ष पूर्व हमारे शहर के स्कूलों में पांच-पांच छः-छः मील से देहात के लड़के पढ़ने आया करते थे। आना जाना कोई समस्या नहीं थी। एक घंटा पहले घर से चल पड़े तो समय पर स्कूल में जा पहुंचे। उधर स्कूल से चले तो सूरज डूबते तक घर जा पहुंचे। परन्तु आज कल क्या स्थिति है। घर से स्कूल यदि आधा मील दूर है तो लड़के बाइसिकल पर जाते हैं या बस में। इस पर भी यह अफसोस रहता है कि बीस मिनिट स्कूल पहुंचने में खर्च हो गये।

देहाती लोग पहले मुकदमे की पेशी भुगताने या और काम से बीस बाईस मील दूर शहर तक मजे में पैदल चले जाया करते थे। अगले दिन घर लौट आते थे । परन्तु आज अगर शहर ५ मील दूर है तब भी वहां पहुंचने के लिए घूम-फिर कर कहीं न कहीं से मोटर बस पकड़ी जाती है या बाइसिकल का आश्रय लिया जाता है । दूध आदि तो आजकल शहरों में सभी जगह मोटरों या बाइसिकलों पर आता ही है । अमेरिका में न्यूयार्क, वाशिंगटन जैसे नगरों के लिए दूध, मलाई, मक्खन आदि दो सौ मील दूर तक के गांवों से बटोरा जाता है।

अब बोलिए, इस से बढ़कर प्रगति का क्या प्रमाण मिलेगा । इस प्रगति के सामने सम्भव है गति स्वयं लज्जित हो जाए । लोगों के रहन-सहन में, यातायात में, स्वयं काल और देश की भावना में विगत सौ वर्षों में आकाश-पाताल का अन्तर पड़ गया है। क्या इसे प्रगति नहीं कहेंगे । समय बचता है, आदमी अधिक घूम-फिर सकता है, काम अधिक किया जा सकता है, उत्पादन में वृद्धि हो सकती है——बात क्या अनेक दृष्टियों से पहले की अपेक्षा सभी कुछ अधिक उत्तम है । यह उन्नति यन्त्रों के आविष्कार में ही हुई हो ऐसी बात नहीं है। मानव का दृष्टिकोण भी कुछ कम उन्नत नहीं हुआ। कहां तो पहले आदमी दो चार सौ मील जाता हुआ भी घबराता था, और कहां आजकल हर वर्ष लाखों आदमी हर समय विदेश यात्रा में रहते हैं। परदेसीपन की भावना ही लुप्त होती जा रही है । वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श जितना आज मानव की पहुंच के भीतर जान पड़ता है उतना पहले कभी नहीं रहा । अनेक विश्वव्यापी संस्थाएं संसार की समस्याओं पर विचार कर रही है । राजनितिक क्षेत्र में आजकल जो कुछ भी किया जाता है, उदारता इसी में समझी जाती है कि उसे विश्वव्यापी रूप दिया जाय । यहां तक कि आजकल केवल दो देशों में युद्ध असम्भव-सा हो गया है, क्यों कि युद्ध छिड़ा नहीं कि दूसरे देश किसी न किसी पक्ष के साथ आकर मिले नहीं । इसीलिए आधुनिक शताब्दी में दो बड़े बड़े युद्ध हुए हैं और दोनों ही विश्वयुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

इस उन्नति का एक अलौकिक या आध्यात्मिक पहलू भी है। मृत्यु पर मानव ने विजय पा ली है । मरने से मानों डरता हीं कोई नहीं, और न मारने से । इस शरीर को शायद अब सभी "जीर्ण वस्त्र" समझ कर उतार फेंकने को तैयार रहते हैं । परमाणु बम का आविष्कार और उपयोग इसका अकाट्य प्रमाण है । जिज्ञासा मानव की इतनी बढ़ी है कि वह ज्ञान की खोज में हथेली पर जान लिए चारों ओर विचरता है । दो वर्ष हुए परमाणु बम विस्फोट के प्रभावों की जांच के लिए अमेरिकी लोगों ने तैयारी की । इस काम के लिए दूर बियाबान में बिकिनी द्वीप चुने गये । अब प्रश्न यह हुआ कि उन द्वीपों तक परमाणु बम कौन ले जाये और वहां कौन बम के पलीते को आग लगाये। आशंका यह थी कि बम फटते ही सौ मील चारों तरफ सभी कुछ भस्म हो जायगा । इसलिए इस दुरूह परीक्षण के

वास्ते स्वयंसेवक प्राप्त करने के हेतु विज्ञापन दिया गया । ख्याल था कि मौत को मौसी कहने वाले आदमी कम ही निकलेंगे । परन्तु संसार चकित रह गया जब पता लगा कि जितने आदमी आवश्यक थे उससे दस गुने बिकिनी जाने को उत्सुक थे ।

थोड़े दिनों बाद कुछ वैज्ञानिकों को चन्द्र-जगत् की यात्रा की सूझी । बन्दूक के सिद्धान्तों पर एक यन्त्र तैयार किया गया जिसमें गोली की जगह आदमी भरे जाने थे और जिस प्रकार बन्दूक से गोली छूटती है उसी तरह उन आदमियों को चांद की ओर मुंह करके छोड़ा जाना था । आशा थी कि ये आदमी इस प्रकार सौम्य जगत् में पहुंच जायेंगे । वहां से वापस भी आ सकेंगे या नहीं अथवा वहां वे जीवित भी रह सकेंगे या नहीं, इसमें वैज्ञानिकों को सन्देह था । उस यंत्र में डाल कर किसी को अभी तक चन्द्रमा के पास भेजा तो नहीं गया, परन्तु आश्चर्य की बात यह है विज्ञापन के उत्तर में सैकड़ों आदमी अज्ञात सौम्य जगत् की यात्रा को तैयार हो गये । जिज्ञासा और साहस की इस से आगे कल्पना भी कठिन है ।

यह है आधुनिक युग की प्रगति । किन्तु यह चित्र का एक ही पहलू है । इस चित्र का दूसरा पहलू इतना आकर्षक नहीं ।

यह ठीक है कि यातायात में बहुत वेग आया है । जो यात्रा पहले महीनों में होती थी वह अब घंटों में हो जाती है । परन्तु इससे लाभ ? यह प्रश्न टेढ़ा है । जिज्ञासा, साहस, ऐक्य की भावना, और सहकारिता आदि की भावनाएं वास्तव में बहुत उन्नत हुई हैं, परन्तु इनके कारण मानव जाति को जो हानि पहुंची है उसका भी किसीने हिसाब लगाया है ? गति की तीव्रता के कारण मानव धैर्य खो बैठा है । उसे तरह तरह के मानसिक और शारीरिक रोग लग गये हैं । जन साधारण के स्वास्थ्य का मान पहले से कहीं नीचा हो गया है । रही जिज्ञासा और साहस की बात, इनके कारण भी विश्व को क्लेष, ईर्ष्या और खून खराबी ही देखने को मिले हैं ।

जो विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति हुई है उसका मूल्य तो इतना महंगा चुकाया गया है कि कोई भी विचारशील व्यक्ति इसे घाटे के सौदे के अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकता । औसत मानव को शारीरिक स्वास्थ्य, चित्त की शांति और पारिवारिक सुख देकर ही आधुनिकता के ये तथाकथित वरदान मिले हैं । यांत्रिक उन्नति ने अगर दो सुख दिये हैं तो चार को नष्ट कर दिया है और यदि दो सुविधाएं दी हैं तो चार समस्याएं पैदा कर दी हैं ।

ये विचार स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर के थे । उन्होंने एक सुन्दर निबन्ध में आधुनिक सभ्यता और तत्सम्बन्धी प्रगति की कड़ी आलोचना की है । उनका कहना है कि यदि मानव पहले एक दिन में दस मील चलता था और आज एक दिन में पांच सौ मील का सफर तय कर लेता है, तो निस्संदेह इनमें पहला व्यक्ति ही अधिक सुखी था । सुख से अभिप्राय एक मानसिक दशा का है । वह दशा अत्यधिक तीव्रता और हर ओर जल्दबाजी के कारण विकसित

होने के बजाय संकुचित होती जा रही है। आज की अफरा-दफरी से वास्तविक सुख और शान्ति मेल ही नहीं खाते।

ठीक यही विचार गांधीजी के थे। ग्रामोद्योग संघ, सर्वोदय संघ आदि संस्थाओं की स्थापना गांधीजी ने आधुनिकता के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से ही की थी। आधुनिक प्रगति और गांधीजी द्वारा आयोजित प्रगति में दो महान् अन्तर हैं। आधुनिक प्रगतिवाद में व्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं। समाज के लिए भी उतना ही स्थान है जितना प्रगतिवादी अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक समझते हैं। किन्तु गांधीजी किसी भी आयोजन में व्यक्ति की अवहेलना करने को तैयार नहीं थे। अंधाधुंध उत्पादन में उनका विश्वास नहीं था। उत्पादन की हर प्रक्रिया के साथ वे व्यक्ति का सम्बन्ध आवश्यक समझते थे।

दूसरे, गांधीजी तथाकथित प्रगति की अपेक्षा आन्तरिक सुख को अधिक महत्व देते थे। आज के वैज्ञानिक और उद्योगपति उत्पादन को ही अपना ध्येय समझते हैं। उपभोक्ता के विचारों और उस पर उत्पादन का क्या प्रभाव पड़ता है इससे उत्पादक अपना कोई सम्बन्ध ही नहीं समझते। यही कारण है कि ज्यों ज्यों विज्ञान प्रगति कर रहा है और उत्पादन बढ़ रहा है जन साधारण का सुख कम हो रहा है, और परेशानियाँ बढ़ती जा रही हैं।

प्रगति का यही इतिहास है। इन सभी प्रश्नों पर विचार करने के बाद हम सोचने लगते हैं कि क्या प्राचीन तत्वदर्शियों के कथनानुसार हम इतने ऊँचे शिखर पर पहुँच गये हैं कि अब नीचे गिरने के सिवाय और कोई रास्ता ही नहीं। हो सकता है कि यह शिखर झूठा हो और वास्तव में हम बहुत ऊँचे नहीं गये हैं और उस शिखर पर पहुँचना हमारे लिए अभी रह गया हो।

सचाई इसी में है कि अभी हम शिखर पर नहीं पहुँचे हैं। आधुनिक सभ्यता विज्ञान की दृष्टि से वास्तव में काफी उन्नत है, परन्तु इसमें मानवता के गुणों का एकदम अभाव है। इस अभाव के कारण इसकी उन्नति में ही इस के नाश के बीज विद्यमान हैं। आधुनिक प्रगति को सर्वांगीण प्रगति बनना है तो हमें इसमें मानवोचित गुणों का समावेश करना होगा। यदि हम यह न कर सके तो इस प्रगति से मानव समाज के कल्याण की आशा नहीं। वास्तव में यदि देखा जाय तो जिन जातियों को हम असभ्य कहते हैं वे सभ्य लोगों की अपेक्षा अधिक सुखी दिखाई देती हैं। उनका जीवन सीधा-सादा, निश्छल और निर्द्वन्द्व दिखाई देता है। कम से कम यह तो निर्विवाद है कि तथा कथित सभ्य लोगों की अपेक्षा ये लोग जिन्हें हम पिछड़े हुए कहते हैं परम सन्तोष और सुख का जीवन व्यतीत करते हैं। स्वयं फादर एल्बिन जिन्होंने छोटा नागपुर की पिछड़ी हुई जातियों के मध्य वर्षों कार्य किया है, यह कहा करते हैं कि इन लोगों की दृष्टि में बाह्य जगत की सभ्यता ही इन का सब से बड़ा शत्रु है। छोटा नागपुर, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि की पिछड़ी हुई जातियों में जो लोग पढ़ लिख कर

अपने आप को सभ्य कहने लगे हैं वे निश्चय ही अपना सन्तोष खो बैठे हैं; और अपने अनपढ़ भाईयों की दया के पात्र हैं।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि आधुनिक शिक्षा और विज्ञान स्वयं हेय वस्तुएँ हैं, जो सुख तथा शान्ति के साधन नहीं बन सकतीं। स्थिति में सबसे बड़ा दोष सामंजस्य का अभाव है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण प्राचीन जातियों का ही ठीक है, भले ही वे अशिक्षित अथवा असभ्य कहलाती हों। आधुनिकता का प्रतीक प्रगतिवादी लोगों ने आवश्यकताओं की वृद्धि और जीवन के प्रत्येक अंग के यन्त्रीकरण को ही समझ लिया है। यदि प्राचीन लोगों की सात्विकता और आधुनिक युग की शिक्षा तथा विज्ञान में सामंजस्य स्थापित किया जा सके, तब ही मानव सच्ची प्रगति के दर्शन कर सकेगा।

मानवता के पुजारी रवींद्रनाथ

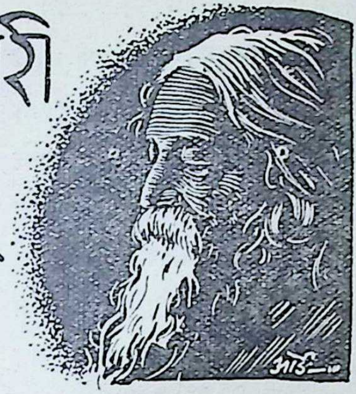

[रामपूजन तिवारी]

उस दिन अपने एक मित्र के साथ शान्तिनिकेतन के कला-भवन में चित्रों की प्रदर्शनी देखने जा रहा था। उन दिनों मैं पहले ही पहल शान्तिनिकेतन आया था। शान्तिनिकेतन के बारे में मेरी अभिज्ञता बहुत ही कम थी, इसलिये यहां की प्रत्येक वस्तु के संबंध में जानने की जिज्ञासा मेरे मन में बराबर बनी हुई रहती थी। मेरे मित्र ने कला-भवन जाते जाते चित्रकला, मूर्तिकला के संबंध में अनेक बातें बतलाईं। बड़े उत्साह से कला-भवन की छत पर रखी हुई गुरुदेव (रवीन्द्रनाथ) की मूर्ति उन्होंने दिखलाई। मूर्ति की अन्य विशेषताएं जो उन्होंने बतलाईं वे तो मुझे याद नहीं; लेकिन वह वस्तु जिसकी अमिट छाप मेरे मन के ऊपर रह गई है वे हैं मूर्ति की आँखें। उस मूर्ति को देखने से लगता है जैसे कोई स्वप्न-द्रष्टा बहुत ऊँचे से दूर, बहुत दूर देख रहा है। मूर्तिकार ने मूर्ति का निर्माण कुछ इस ढंग से किया है कि उसकी आँखें देखनेवाले को बरबस खींच लेती हैं। एक और विशेषता उन आँखों के निर्माण में दीख पड़ती है। एक आँख स्वाभाविक आकार-प्रकार की है और दूसरी पहली से कुछ बड़ी और ऊपर स्थित है, फिर भी मूर्ति में अस्वाभाविकता नहीं है। मूर्तिकार ने किस उद्देश्य से वैसा किया है यह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन मेरे मित्र ने जो उसकी व्याख्या की; वह युक्तिसंगत मालूम होती है। रवीन्द्रनाथ की एक दृष्टि लौकिक थी जिससे कि वे जीवन से विछिन्न नहीं हो सके और दूसरी दृष्टि साधारण से ऊपर थी और यही उनकी मुख्य दृष्टि थी।

उन दिनों रवीन्द्र-साहित्य से मेरा परिचय नहीं के बराबर था। आज भी उसमें विशेष उन्नति नहीं हुई है फिर भी कुछ कुछ जानने का प्रयास मैंने अवश्य किया है। रवीन्द्रनाथ कवि थे, साथ ही मनुष्य की आशा-आकांक्षा, सुख-दुख से पूर्ण परिचित थे। मनुष्य की वर्तमान समस्याओं के प्रति वे जागरूक थे। उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। उनके स्पर्श मात्र से ही क्षुद्र से क्षुद्र वस्तुएं असाधारण सुंदर

हो उठी हैं, लेकिन केवल सुन्दर को लेकर ही उन्होंने अपने को भुलाये रखने का व्यवसाय नहीं किया। मनुष्य को मनुष्य की सारी दुर्बलताओं के साथ मनुष्य के रूप में देखने की कवि ने चेष्टा की थी। उसने अपने चारों ओर की फैली हुई विषमताओं को देखा था। अन्ध विश्वास, कुसंस्कार के कारण मनुष्य मनुष्य से अलग है तथा एक समाज दूसरे समाज से अलग है और इसकी तीव्रता इतनी अधिक बढ़ गई है कि आज यह मानव इतिहास की प्रधान समस्या बन गई है। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक समस्याएँ अपने-आप में इतनी जटिल हो गई हैं कि मनुष्य में एकता स्थापित होना तो दूर रहे, वह एक दूसरे के खून का प्यासा हो रहा है। वैज्ञानिक अन्वेषणों के द्वारा दुनिया बाह्य रूप से एक होती जा रही है लेकिन आंतरिक विभेद उसी तरह से बना हुआ है। इन आन्तरिक बंधनों के मायाजाल को काटकर मनुष्य सहज नहीं बन पा रहा है।

राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक मत मतान्तरों के प्रस्तर खण्डों से निर्मित कारागार में आज मनुष्य कैदी बना हुआ है। उसके सहज विकास में उसके कुसंस्कार बाधक बने हुए हैं। अपना शत्रु वह आप ही बना हुआ है। जब कवि इन बंधनों को देखता है तो उसका हृदय विद्रोह कर उठता है। वह इन कुसंस्कारों, संकीर्णताओं और विद्वेषों से निर्मित कारागार की दीवारों को तोड़-फोड़कर विश्व में प्रेम, दया, मैत्री की धारा बहाना चाहता है।

के नो रे विधाता पाषाण हेनो,
चारिदिके तार बाँधन केनो।
भाङ रे हृदय, भाङ रे बाँधन,
साध् रे आजिके प्राणेर साधन।
लहरीर परे लहरी तुलिया,
आघातेर पर आघात कर।
मातिया जखन उठे छे परान
किसेर आँधार, किसेर पाषाण,
उथलि जखन उठे छे वासना,
जगते लखन किसेर उर
आमि ढालिबो करुणा-धारा
आमि भाङ्गिबो पाषाण-कारा
आमि जगत् प्लाविया वेड़ाबो गाहिया
आकुल पागल पारा।
(निर्झरेर स्वप्नभंग)

चारों ओर हे विधाता इन पत्थरों से निर्मित कारागार क्यों है ? हृदय, इस बंधन को आज तोड़ डालो और प्राणों की साधना को साधो। लहरों पर लहरें उठा कर चोट पर चोट करो। आज जब प्राण पागल हो उठे हैं तो फिर कहाँ का अंधकार और कहाँ का पाषाण। आज जब मन की वासना जाग उठी है तो फिर संसार में किसका भय है। मैं पत्थर निर्मित कारागार को तोड़ सर्वत्र करुणा की धारा बहा दूंगा। मैं सारे संसार को इस धारा से प्लावित कर चारों ओर गाता फिरूंगा। प्रभातकालीन रविरश्मियों ने मानो उसके प्राणों को छू लिया है, आज उसके प्राण जाग उठे हैं। उन्हें किसी प्रकार के बंधन में बांध रखने की चेष्टा विफल सी हो रही है। चारों ओर की संसार की संकीर्णता—कुसंस्कार, जातीयता, धार्मिक विद्वेष, राष्ट्रीय स्वार्थपरता—से जैसे कवि का हृदय छटपटा रहा है। इस बंधन को तोड़ कर वह करुणा की धारा

बहाना चाहता है। उसे इतनी बातें कहनी हैं, इतने गान गाने हैं, इतनी साध, इतने सुख आज उसके मन में हैं कि वह आत्म-विभोर हो उठा है। वह नहीं जानता कि आज उसे क्या हो गया है। उसके प्राण जाग उठे हैं और उसे लगता है जैसे दूर से महासागर के संगीत को सुन रहा है। आज वह उन्मुक्त होना चाहता है, सभी बंधनों को तोड़ फेंकना चाहता है।

की जानि की होलो आजि,
जागिया उठिल प्राण
दूर हते सुनि जेनो
महा सागरेर गान।
ओरे चारिदिके मोर
ए की कारागार घोर
भाङ भाङ भाङ कारा,
आघाते आघात कर
('निर्झरेर स्वप्नभंग')

आघात पर आघात कर कारागार को तोड़ देने के लिये प्राणों की यह ललकार सर्वत्र ही कवि की रचना में पाई जाती है।

अत्याचार सहन करते जाना अपने आप में एक पाप है। कवि का हृदय अत्याचार को देख कर विद्रोह कर उठता था चाहे वह अत्याचार एक जाति के द्वारा दूसरी जाति पर किया जा रहा हो, चाहे एक धर्म के द्वारा दूसरे धर्म पर अथवा एक वर्ग के द्वारा दूसरे वर्ग पर। "उस मूढ़ मूक निर्वाक् जनता को, जिसके ललाट देश पर सौ सौ पुश्त की करुण कहानी लिखी है, जिसके कंधे पर चाहे जितना भार लाद दो, प्राण रहते तक चूँ किये बिना ढोती रहती है," लक्ष्य करते हुए कहा है:—

"मुहूर्त तुलिया शिर एकत्र
दाँडाओ देखि सबे,
जार भये तुमि भीत से—
अन्याय भीरु तोमा-चेये,
जखनि जागिबे तुमि
तखनि से पलाइबे धेये।"
(एबार फिराओ मोरे)

एक मुहूर्त के लिये सिर ऊँचा कर एकत्र खड़े हो जाओ। जिसके भय से तुम भयभीत हो वह तुमसे भी अधिक अपने अन्यायों के कारण भयभीत है। जब तुम जाग उठोगे उसी समय वह भाग खड़ा होगा। इसी प्रकार शताब्दियों से लाखों करोड़ों मनुष्यों को मनुष्य के अधिकार से वंचित कर रखनेवाले तथा उन्हें अपमानित और पद पद पर लांछित करनेवाले अपने देशवासियों के प्रति उन्होंने कहा है:—

हे मोर दुर्भागा देश,
जादेर करे छो अपमान
अपमाने हते हबे
ताहादेर सबार समान।
मानुषेर अधिकारे
वञ्चित करे छो जारे,
सम्मुखे दाँड़ाये रेखे
तबु कोते दाओ नाइ स्थान,
अपमाने हते हबे
ताहादेर सबार समान॥
(अपमानित)

हे मेरे हतभाग्य देश, तुमने जिन लोगों का अपमान किया है उसी अपमान के कारण तुम्हें भी उन्हीं लोगों के समान अपमानित होना पड़ेगा।

जाति-पांति के भेद भाव को लेकर हमारे देश में एक अत्यन्त ही घृणित वातावरण की सृष्टि हो गई है। जातीय श्रेष्ठता का दंभ पद-पद पर देखने को मिलता है। भारतीय इतिहास का विद्यार्थी इस बात से पूर्ण अवगत है कि प्राचीन कालसे

लेकर आजतक इस देश पर नाना जातियों का आक्रमण हुआ है और वे जातियां यहां आती गई हैं और यहां के समाज में घुल-मिलकर एकाकार होती गईं हैं। इन सारी जातियों के सम्मिश्रण से यहां एक विराट् मानव समुदाय का निर्माण हुआ है। बाहर से आनेवाली विभिन्न धाराएं भारतीय महा मानव रूपी सागर में विलीन हो गई हैं। आज उनका अपना अलग अस्तित्व नहीं। यहां आर्य, अनार्य, शक, हूण, द्रविड़ आदि सभी मिलकर एक देह में लीन हो गए हैं! विजय की आकांक्षा से उन्मत्त होकर जय-गान करते हुए, पहाड़ों, जंगलों और बियाबानों को पार करते हुए जो आए, आज वे कहां हैं? वे कहीं दूर नहीं गए हैं, वे सभी हमारे भीतर विराज रहे हैं। विभेदों को मिटाकर सभी एक हो गए हैं। इस ऐतिहासिक सत्य के होते हुए भी आज की नाना संकीर्णताओं, नाना भेद भावों को देखकर ही कवि ने सभी को ऊँचे स्वर से पुकारा है :—भारत के महामानव रूपी सागर के तीर पर नर-देवता के अभिषेक के लिये सभी भेद-भाव भूलकर हे समस्त भारतवासी आर्य, अनार्य, हिन्दू, मुसलमान और खिश्चियन तुम आओ। मंगल-घटक अभी भरा नहीं है। सभी तीर्थों के जल से पूर्ण कलश को पवित्र करने के लिए सभी के स्पर्श की अपेक्षा है, नहीं तो पूजा शेष रह जायगी, मां का अभिषेक नहीं हो सकेगा।

एसो हे आर्य, एसो अनार्य,
हिन्दु मुसलमान—
एसो एसो आज तुभि इंगराज,
एसो एसो खीस्टान।
एसो ब्राम्हण, शुचि करि मन
धरो हात सबाकार—
एसो हे पतित, करो
अपनीत सब अपमानभार।
मार अभिषेके एसो एसो त्वरा,
मङ्गलघट हयनि जे भरा
सबार-परशे-पवित्र करा
तीर्थ नीरे—
आजि भारतेर महामानवेर
सागरतीरे॥

(भारत-तीर्थ)

दरिद्र नारायण की सेवा को ही रवीन्द्रनाथ ने सबसे बड़ी उपासना मानी है। पूजा का स्वांग रचनेवाले फूल, दीप, नैवेद्य लेकर मनुष्य रूपी देवता को छोड़ मंदिर के दरवाज़े पर देवता की प्रतीक्षा में है। लेकिन उन्हें खोजने के लिये दूर भटकने की आवश्यकता नहीं है। उनकी पूजा के लिये भजन, पूजन, साधन, आराधना का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं है। वे तो मिट्टी काटकर खेतों में काम करनेवाले कृषकों अथवा बारहों महीने पत्थर काटकर रास्ता बनानेवाले मज़दूरों के साथ हैं। धूप, वृष्टि सहते हुए वे उन्हीं लोगों के साथ हैं और उनके दोनों हाथ धूल से भरे हुए हैं। अतएव देवता को पाने के लिए स्वच्छ वस्त्रों का परित्याग कर उसी धूल से संबंध स्थापित करना होगा—

तिनि गेछेन जेथाय माटि भेङे
करछे चाषा चाष—
पाथर भेङे काटछे जेथाय पथ,
खाटछे बारो मास।
रौद्रे जले आछेन सबार साथे,
धूला ताँहार लेगेछे दुइ हाते—
ताँरि मतन शुचि वसन छाड़ि
आय रे धुलार, परे॥

(धूला मन्दिर)

आज की दुनिया में मानवता की रक्षा करने वाले, मनुष्य की स्वतन्त्रता तथा सुख-सौविध्य के साधन जुटाने का दावा करने-वाले ऊँचे ऊँचे स्थानों से अपने अपने मत-वाद को उद्घोषित कर रहे हैं। सभी अपने अपने सिद्धान्तों और आदर्शों की श्रेष्ठता स्थापित करने की चेष्टा में व्यस्त हैं। सिद्धान्तों और आदर्शों की धुँआधार बहस में मनुष्य का स्थान नहीं। वह गौण हो गया है और सिद्धान्त तथा आदर्श प्रधान हो गए हैं। नियम-कानून की पाबंदियां तथा लंबी चौड़ी बातों की चहारदीवारी से अपने को घेर कर आज का मनुष्य अपने जीवनकी चरम सार्थकता मानता है। उसकी दृष्टि संकुचित हो गई है। वह मनुष्य को सहज भाव से न देखकर अपने बनाए हुए सिद्धान्तों और आदर्शों की दूरबीन से देखना चाहता है, परन्तु उन्हीं आदर्शों और सिद्धान्तों के मायाजाल में फंसकर रह जाता है, मनुष्य को देख नहीं पाता। वह अपने तथाकथित ज्ञान के भार से स्वयं दबकर पिस रहा है परन्तु सत्य तक उसकी पहुँच नहीं होती। शायद इसीको लक्ष्य कर एक जगह कविने कहा है "जिस पृथ्वी पर आ पड़ा हूँ वहां के सभी मनुष्य अद्भुत जीव हैं। वे दिनरात सिर्फ नियम और सिद्धान्त की दीवार के निर्माण में ही लगे हुए है। बाद में चलकर कहीं ये आँखें (सत्य को) देख न लें इसीलिये ये मानो पर्दा टांग रहे हैं। सचमुच में इस (पृथ्वी) के जीव विचित्र हैं। ये फूल के पौधों को चारों ओर से ढंक देने वाले कनटोप नहीं पहना देते और चन्द्रमा के नीचे चंदोवा नहीं टांग देते यहीं आश्चर्य है! ये स्वेच्छा से अन्धे बने हुए प्राणी बंद पालकी पर चढ़कर पृथ्वी के भीतर न-जाने क्या देखते चले जा रहे हैं।"

जाति-पांति, धर्म, आचार-विचार, राज-नैतिक मतवाद आदि में विरोधी भावनाओं को प्राधान्य देकर मनुष्य जिस उलझन में फंसा हुआ है वह उसका सत्यानाश कर रही है। इसलिये बराबर उन्होंने इन विरोधी भावनाओं और तुच्छताओं का विरोध कर उचित मार्ग की ओर निर्देश किया है। देश की समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि बराबर गई है और उनका समाधान भी उन्होंने बतलाया है। उन्होंने इस देश से प्रेम किया है। देश के मनुष्य, पशु-पक्षी, फूल, हवा सभी को प्यार किया है लेकिन उन्होंने अपने को क्षुद्र तथा संकुचित राष्ट्रीयता से बराबर ऊपर रखा है। उन्होंने मनुष्यको मनुष्य के रूप में देखा है। उसे देखने के लिये उन्हें उसकी जाति, देश अथवा रंग जाननेकी जरूरत नहीं पड़ी है। सन् १९१६ ई. में जापान जाते समय रवींद्रनाथने चीनी समुद्र से एक चिट्ठी लिखी थी। उसमें उन्होंने लिखा है.

"शुरू में ही जहाज के घाट पर चीनी मजदूरों के कामकाज पर नजर पड़ी। प्रत्येक एक नीला पायजामा पहने है और बाकी बदन खुला हुआ है। ऐसा शरीर भी अन्यत्र कहीं देखने नहीं मिला, ऐसा काम भी नहीं।.... काम के ताल-ताल पर शरीर की मांस पेशियों का उभार लहरा उठता है। बड़े-से-बड़े बोझ को ये लोग ऐसी सफाई और तेजी से सहज ही धर-उठा रहे

हैं कि देखकर ही आनन्द अनुभव होता है। सिर से पैर तक कहीं भी अनिच्छा, अवसाद या जड़ता का लेशमात्र लक्षण नहीं। ऊपर से जल्दी करने की ताकीद का प्रयोजन ही नहीं है। उनकी देह के वीणायंत्र से काम संगीत की तरह अनायास बज रहा है। जहाज के घाट पर सामान चढ़ाने-उतारने का काम देखकर मुझे इतना आनन्द मिलेगा, यह बात कभी ध्यान में ही नहीं ला सकता था। ..... हमारे जहाज के ठीक सामने एक और जहाज पर कामकाज से छुट्टी पाकर तीसरे पहर सब चीनी मल्लाह खुले बदन डेक पर स्नान कर रहे थे—मनुष्य की देह में कैसी स्वर्गीय शोभा है, यह मैंने इस तरह पहले और कभी नहीं जाना था।

काम की शक्ति, नैपुण्य और आनन्द को इस पुंजीभूत भाव से एकत्र देख कर मैंने मन-ही-मन समझा कि इस बृहत् जाति के भीतर देश को परिव्याप्त किए हुए कितनी सारी शक्ति और क्षमता संचित हो रही है! यहां मनुष्य पूरी तरह अपने आपको प्रयोग करने के लिये कितने दिनों से प्रस्तुत हो रहा है। जिस साधना में मनुष्य स्वयं ही अपने में सोलह आना व्यवहार करने की शक्ति पाता है, उसकी कृपणता लुप्त हो जाती है, अपने ही निकट वह अपने को धोखा नहीं देता—निश्चय ही वह बहुत बड़ी साधना है। ....

यह इतनी बड़ी शक्ति जिस दिन हमारे आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ वाहन को पा सकेगी अर्थात् जिस दिन विज्ञान को हाथ कर लेगी, उस दिन पृथ्वी में ऐसी कौन-सी ताकत है जो उसे बाधा दे सके? उस दिन उसकी कर्म-प्रतिभा के साथ उपकरण का योग साधन हो जायगा। .... किन्तु जिस जाति के पास जिस दिशा में जितने ही बड़े होने की शक्ति रहती है, उस दिशा में उसे उतना बड़ा होने में बाधा भी आती है—स्वराष्ट्र पूजा से उत्पन्न हो कर। इसके समान सर्वनाशी पूजा जगत् में अन्य नहीं। ऐसी बर्बर जातियों की बात सुनने में आती है जो अपने देश में देवता के निकट अन्य देश के मनुष्य को बलि देती हैं। किन्तु आधुनिक काल की स्वदेश पूजा उससे कहीं भयंकर वस्तु है; वह अपनी भूख बुझाने के लिये समूची जाति-की-जाति और देश-के-देश पर अपना दावा करती है।

हमारे जहाज की बाईं तरफ चीनी नावों का दल है। उनमें पति-पत्नी और लड़के-बच्चे सब मिल कर रहते और काम करते हैं,—कामकाज की वही तसवीर मुझे सबसे आकर्षक लगी। कर्म की यही मूर्ति है, एक दिन इसी की जीत होगी। यदि न हो, यदि वाणिज्य-दानव ही मनुष्य की घर-गिरस्ती, आनंद-आज़ादी आदि को लीलता चला जाए और एक बृहत् गुलाम-सम्प्रदाय की सृष्टि कर डाले तथा उसी की मदद से कुछ थोड़े-से लोगों का आराम और स्वार्थ-साधन करता रहे, तब यह पृथ्वी रसातल को चली जायगी। इन स्त्री-पुरुषों, बाल-बच्चों की, इस तरह एक साथ मिल कर काम करती हुई, छवि को देख कर मैंने एक दीर्घ-निश्वास छोड़ी। कब मिलेगी यह तसवीर भारतवर्ष में देखने! यहां तो मनुष्य अपना

बारह आना अंश अपने आपको ही धोखा दे कर काट रहा है। नियमों का ऐसा जाल फैला है जिससे वह केवल बाधा ही बाधा पाकर, केवल उलझ उलझ कर ही अपनी शक्ति का अधिकांश फिजूल खर्च कर देता है, बाकी अधिकांश को कामकाज में जुटा नहीं पाता। विपुल जटिलता और जड़ता का ऐसा समावेश पृथ्वी में और कहीं नहीं मिलता। चारों ओर केवल जाति के साथ जाति का विच्छेद, नियम के साथ काम का विरोध, आचार-धर्म के साथ काल-धर्म का द्वन्द्व फैला हुआ है।"

इसीलिये गुरुदेव ने मनुष्य-देवता की पूजा को ही वास्तविक पूजा माना है और उस देवता के चरण उसी जगह विराज रहे हैं जहां सब से अधम, दीनातिदीनका स्थान है और वह स्थान सब के पीछे, सबसे नीचे और सर्वहारादल के बीच में है——

जे थाय थाके सबार
अधम दीनेर हते दीन
सेई खाने जे चरण
तोमार राजे—
सबार पिछे, सबार निचे,
सबहारादेर माझे ।
(दीनेर सङ्गी)

* * *

भजन पूजन साधन आराधना
समस्त थाक् पड़े ।

रुद्ध द्वारे देवालयेर कोणे
केन आछिस् ओरे ?

अन्धकारे लुकिये आपन मते
काहारे तुइ पूजिस् संगोपने,

नयन मेले देख देखि तुई चेये
देवता नाई घरे ।

तिनि गेछेने जेथाय मारि भेङे
करचे चावा चाव

पाथर भेङे काटचे जेथाय पथ,
खाटचे बारोमास ।

भजन-पूजन और आराधना सब पड़े रहने दे ! ए अभागे ! तू देवालय के कोने में अपने भीतर के अंधकार में निमग्न होकर किसकी पूजा कर रहा है ? आँखें खोलकर देख, तेरा देवता इस मंदिर में नहीं है। वह वहाँ है, जहाँ किसान मिट्टी खोद रहा है, जहाँ मजदूर पत्थर तोड़ते हुए दिनरात अक्लान्त परिश्रम कर रहा है। —गुरुदेव

पंजाबी कविता :—

शाह सूरादी मक्केदी साखी

[अनु० गणेशदत्त 'इन्द्र']

(परम संत श्री. गुरुनानक साहब जब यात्रार्थ मक्का शरीफ गए थे तव वहाँ काजी रुनक दीन से जो उनकी वातचीत हुई थी, वह वाणी 'मक्केदी साखी' नाम से प्रसिद्ध है। उसी का कुछ अंश यहाँ दिया गया है। यह विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की वात है।)

(मूल)	(अनुवाद)
इक्कोपाक खुदाइ है —	एक हि देव पवित्र वह —
सिरसाहाँ पातिशाहा ।	शाहों का भी शाह ।
बिना वज़ीरे राज है —	विना सचिव शासन करे —
अगंम विअन्त अथाह ॥ १ ॥	अगम अनन्त अथाह ॥ १ ॥
दूजी कुदरति साजिके —	हाथों प्रकृति सँवारिके —
कीत्ती आदम रूप ।	दीन्हा मानव-रूप ।
कान हैवान नबात त्रै —	त्रिगुणमयी यह सृष्टि है —
सिर तीनों के भूप ॥ २ ॥	प्रभु भूपों का भूप ॥ २ ॥
खासे बन्दे कुदरती —	सच्चे सेवक भक्त जन —
सिरजे खुद करतार ।	रचे स्वयं करतार ।
सिफत करने किताव पढ —	है विशेषता शास्त्र पढ —
सम ऊपर सिरदार ॥ ३ ॥	करते ज्ञान प्रचार ॥ ३ ॥
इकदू आदम लक्ख कर —	एक दो मानव देखकर —
लक्खों लक्ख असंख ।	लाखों लाख अपार ।
इक्क जुस्सा रूह इक —	एक जैसे रूह एक सी —
राहशैतान विअन्त ॥ ४ ॥	पर, शैतान अपार ॥ ४ ॥
समनीं राहीं इक्क रब्ब —	एक हरी औ' मार्ग इक —
कुदरत कई रसूल ।	हुए रसूल अनेक ।
इक्कोइक्क खुदाइ नूँ —	एक खुदा की याद से —
मन्ने पवै कवूल ॥ ५ ॥	पूरण होती टेक ॥ ५ ॥

१९५०

बन्दे इक्क खुदाइदे —
हिन्दू मूसलमान ।
दावाराम रसूलकर—
लड़दे बेईमान ॥ ६॥
जोराँ कुफ़र हराम है—
किसेन करहु रंजूल ।
जेती दुनीआ वन्दगी—
दरगह पवै कवूल ॥ ७ ॥
खासा जुसा आदमी—
चुणिआ समना साहि ।
देवे खबर खुदाइ दी—
वेदकतेब सुणाई ॥ ८ ॥
दावाछड्डे मोमनो—
दरगह पवै कबूल ।
चार कतेवा हिन्दुआँ—
चारे कहे रसूल ॥ ९ ॥
इक्कोनूर खुदाई है—
इक्को आदम रूह ।
जानवूझ दावाकरहि—
पवहि कुफर देखूह ॥ १० ॥
इक्कोपाक खुदाइ है
इक्को तसबी हाथ ।
मणके इकसे रंग है
कुफ़र दिखाइआ लाख ॥ ११ ॥
जीवतिआँ मारहि जीवकऊ—
तिहपर छुरी हराम ।
मार मुरदिआ पाक हलाल—
है कुठी खाँ कलाम ॥ १२ ॥
जिसनों कोई मारसी—
सोई मारनेहार ।
किआमती लेखा निब्बडै ।
छुट्टे किवेन यार ॥ १३ ॥
समना इकऊ रूह है—
पंजतन पाक खुदाइ !
वाइ अलाह दी वन्दगी—
पहिरे खाहि गुनाहि ॥ १४ ॥
काइम दाइम कुदरती—
इक उपाइ अलाइ !
चउपड़ वाजी खलकदी—
फिर फिर आवै जाइ ॥ १५ ॥

ईश्वर की सब सृष्टि है —
हिन्दू–मूसलमान ।
राम रहीम के नामपर
लड़ते बेईमान ॥ ६ ॥
परपीड़न औ, दुष्टता—
हैं दोनों दुखमूल ।
जितनी सेवा कीजिये ।
उतनी होय कवूल ॥ ७ ॥
पुण्यात्मा सज्जन चुने—
गए महात्मा सन्त ।
देते दिव्य-सँदेश जो —
पढ़ वेदादिक ग्रंथ ॥ ८ ॥
तजो दंभ हे मुस्लिमो !
तब हो खुदा प्रसन्न ।
चार वेद मंतव्य यह—
करते नित सम्पन्न ॥ ९ ॥
एक ज्योति एक आत्मा—
सब का एकहि रूप ।
जानबूझि जो झगड़ते—
गिरें कुफ्र के कूप ॥ १० ॥
खुदा पाक वह एक हैं—
माला एकहि रूप ।
मन के एकहि रंग के—
एकहिसे प्रतिरूप ॥ ११ ॥
जीवित जीवहि मारते—
जिसपर छुरी हराम ।
मृत को पाक हलाल कर
तब तो सही कलाम ॥ १२ ॥
मारेगा जिसको कोई—
निश्चय मारे सोइ ।
न्यायक़यामत होयगा
बचा सकै नहिं कोइ ॥ १३ ॥
सब का एकहि आत्मा—
पञ्च भूतमय सर्व ।
बाँग पुकारे, किन्तु नहि,—
तजा दंभ औ, गर्व ॥ १४ ॥
यह सब माया जाल है—
जिससे खुदा बचाय ।
दुनिया चौपड़ खेल है
फिर आवे फिर जाय ॥ १५ ॥

हार-जीत

[रूपनारायण पांडेय]

१

सबेरे-सबेरे उस दिन अजित को एकाएक यह ख़याल आया कि वह अपनी पत्नी से बराबर हार मानता जा रहा है। इस बात को लेकर कल उसकी अपनी पत्नी से जो कुछ कहासुनी हुई थी, उसमें भी पत्नी ने जो कुछ कहा था, उसका सार यही था कि उसके स्वामी में इस बारे में भारी दुर्बलता है—वह स्त्री के एक साधारण इंगित से ही खुश हो जाता है और उसी के इशारे पर चलता है। शायद पति-पत्नी के इस सहज संबंध की सीधी राह में कोई बाधा न उपस्थित होती, किन्तु अति उपयोग्य कोई मन की गूढ़ बात मुँह से निकल जाने पर हल्की पड़ जाती है, वैसे ही इस मधुर प्रभुत्व और दासत्व की बात बार-बार आलोचना शुरू हो जाने से कुछ कड़वी हो चली थी। कम से कम उसका माधुर्य तो नष्ट ही हो चला था। इसी से आज सबेरे उठते-ही-उठते अजित ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि वह आज अपने प्रभुत्व को नीचा नहीं देखने देगा; पुरुष-शक्ति के द्वार पर नारी-शक्ति को अपेक्षित देख कर विजय की हँसी हँसेगा। आज वह अपनी स्त्री को बड़ी होने का मौका न देगा।

सोचते सोचते अपने पौरुष का अनुभव करने के लिए आईने के सामने मूछें मरोड़ता हुआ तरह-तरह की मुख-मुद्रा बना कर यह देखने लगा कि किस मुद्रा में उसका मुख रोबदार देख पड़ता है। इसी समय उसकी पत्नी गौरी ने आकर पूछा—क्योंजी, आज चाय नहीं पियोगे? मैं कबतक बैठी तुम्हारी राह देखती रहूँ। फिर चाय ठंडी हो जायगी तो . . . .

अजित गंभीर बनकर जैसे बैठा था, वैसे ही बैठा रहा। स्त्री की ओर देखा भी नहीं। उसके मन के भीतर एक दुर्बलता, बात करने के लिए एक दुर्जय आकांक्षा जोर मारने लगी, किन्तु वह उसे सम्पूर्ण शक्ति से दबाने की चेष्टा करने लगा। इस चेष्टा की प्रबलता से उसका मुँह लाल हो उठा, जैसा कि बहुत जोर लगाने पर अक्सर हुआ करता है। गौरी ने पास आकर पति के शरीर को जरा ठेल कर अपनी बात फिर दोहरानी चाही। अजित अत्यन्त खीझ प्रकट करता हुआ कह उठा—जाओ क्यों परेशान करती हो? इस वक्त मुझे फुर्सत नहीं है।

'सो तो देख ही रही हूँ' कह कर, जरा हँस कर फिर बोली—मर्दानगी ज़ाहिर करने के लिए

बहुत समय पड़ा हुआ है, अभी चाय पीकर मुझ पर एहसान करो।

'फ़ुर्सत नहीं है' कह कर वैसे ही गंभीर भाव से अजित बैठा रहा।

गौरी ने कहा—नहीं पियोगे ?

अजित ने वैसे ही रूखेपन से कहा—नहीं।

गौरी—क्यों ?

अजित—मेरी खुशी !

गौरी—देखो, चल कर पी लो। मुझे बहुत काम करना है।

इसके वाद धैर्य धारण करनेलायक अवस्था अजित की नहीं थी। लेकिन आज उसने स्त्री की बात न मानने का पक्का इरादा कर लिया था। इसीसे उसने उत्तर दिया—रहने दो, तुम जाकर अपना काम करो। मुझे परेशान न करो।

करुणकण्ठ से 'अच्छा' कह कर दोनों अश्रु-सजल आँखें अजित के मुँह पर डाल कर गौरी जाने के लिए उद्यत हुई। उसकी आँखों के उमड़े हुए आँसुओं ने अजित के हृदय को पानी-पानी कर दिया। फिर भी उसने अपनी ज़िद न छोड़ी। बोला—अच्छा सुनो। अगर तुम मेरे उस कुर्ते के बटन अभी टाँक दो, जिसके लिए मैंने कल कहा था, तो मैं चाय पी सकता हूँ। टाँक दोगी ?

'ना' कह कर गौरी आगे बढ़ गई।

उसके पीछे पीछे जाते जाते अजित ने कहा—लेकिन सिर्फ चाय ही नहीं। अगर अभी कुर्ते में बटन न टाँक दोगी तो मैं आज खाना भी न खाऊँगा।

गौरी ने कहा—न खाना।

इतना कह कर गौरी तेजी के साथ भीतर चली गई।

एक लंबी साँस लेकर अजित फिर आकर आईने के सामने खड़ा हुआ। वह अपने हृदय की कोमलता को मिटा देने के लिए जोर-जोर से मूछें मरोड़ने लगा। अनभ्यस्त हाथ के प्रबल झिटके से मूछ के कुछ वाल टूट गये। इससे वह और भी खीझ उठा।

धीरे-धीरे दिन चढ़ने लगा। दिन चढ़ने के साथ साथ अजित का क्रोध भी क्रमशः बढ़ चला। उसने अपने को दृढ़ से दृढ़तर बना लिया। वह आज किसी तरह अपनी स्त्री के आगे हार नहीं मानेगा, किसी तरह नहीं।

'ना, किसी तरह नहीं'—वह उठने ही वाला था कि इतने में गौरी ने आकर कहा—अजी नहा-धो लो। बहुत देर हुई।

'होने दो!' कह कर अजित फिर बैठ गया।

गौरी को और न कुछ कह कर चुपचाप चले जाते देख कर, उसे पुकार कर, अजित ने कहा—देखो स्नान मैं किये लेता हूँ, लेकिन खाना मैं सचमुच नहीं खाऊँगा। अगर तुम मेरा यह काम कर दो तो खा सकता हूँ।

दृढ़ स्वर से गौरी ने कहा—ना, नहीं करूंगी

क्रोध के स्वर में अजित ने कहा — लेकिन न कर दोगी तो . . . .

किन्तु आगे की बात सुनने के पहले ही गौरी वहाँ से चली गई। अत्यन्त क्रोध के आवेश में चटपट नहा-धोकर अजित आफिस के कपड़े पहनने लगा। क्षणभर बाद गौरी ने आकर आँखों में आँसू भरे हुए करुण-प्रार्थना के स्वर में कहा—अजी सुनो तो, मैं खाना परोसे देती हूँ, चल कर खा लो।

कोई उत्तर न दे कर अजित पैर पटकता हुआ चल दिया।

२

अजित के चले जाने पर गौरी रसोई में गई और स्वामी के लिए परोसी हुई थाली का अन्न आँगन में कौओं के खाने के लिए डाल दिया। अन्त में रसोई का सामान उठाकर आले में रख कर, चौका साफकर, आप वैसी ही भूखी-प्यासी पलंग पर जा कर पड़ रही।

अजित से उस दिन आफिस के काम में लगातार भूल पर भूल होने लगी। जितनी ही देर होती जाती थी, उतना ही पश्चाताप की तत्परता से उसका हृदय अधिकाधिक जल रहा था। एकाएक उसे ख़याल आया कि एक किसी काम में फंस जाने के कारण उसे दिन भर भोजन करने का अवसर नहीं मिला था और गौरी दिन भर भूखी पड़ी रही थी। याद आते ही वह फौरन उठकर बड़े साहब के पास गया और सिर-दर्द का बहाना

करके छुट्टी माँगी। छुट्टी लेकर वह सीधा घर की ओर भागा। लेकिन दरवाजे तक जाकर ही लौट पड़ा।

इसका कारण यह हुआ कि गौरी जानती थी, उसके पतिदेव का क्रोध अधिक देर तक नहीं टिकेगा; वह दोपहर के पहले ही लौट आवेंगे। इसी लिए वह उनके आने की राह देख रही थी। उपर की खिड़की पर वह खड़ी राह की ओर ताक रही थी। उसने दूर ही से देखा, अजित तेज़ी से आ रहा है। वैसें ही उसकी उदासी दूर हो गई और वह प्रफुल्लित हो कर द्वार पर आ खड़ी हुई।

अजित आया। उसने देखा, उसकी स्त्री हँसमुख खड़ी है। उसके चेहरे पर उद्वेग या पश्चाताप का कोई चिन्ह नहीं देख पड़ता। इसी समय गौरी की आँखों से अजित की आँखें चार हुईं। गौरी हँस पड़ी। अजित ने सोचा, यह हँसी जैसे व्यंग की है। यह हँसी यह कह रही है, देखा कैसा पछाड़ा! बस, अजित का अन्तःकरण विद्रोह कर बैठा। यह क्यों? वह इतना कमज़ोर क्यों पड़ गया? सच तो है, उसका यह लौट कर असमय आना ही तो उसकी पराजय का प्रमाण है। उसकी स्त्री को तो तनिक भी पछतावा नहीं है; पति के भूखे रहने की कुछ भी ग्लानि नहीं है। कम से कम उसके चेहरे से तो ऐसा कोई भाव प्रकट नहीं होता। यही सोचकर अजित घर के दरवाज़े तक आकर उल्टे पैरों लौट गया।

उस दिन स्वामी या स्त्री, किसी ने कुछ नहीं ख़ाया। दूसरे दिन सवेरे उठते ही अजित ने कह दिया—वह घर में भोजन नहीं करेगा, केवल रातको घर में आकर सो रहेगा। हाँ, अगर आज गौरी उसका कहा कर दे, कुर्ते में बटन लगा दे तो वह अपने इस इरादे को बदल सकता है। इसके उत्तर में गौरी ने तीखे कण्ठ से यह बता दिया कि वह आज क्या, कभी यह काम नहीं कर देगी, उसका स्वामी घर में भोजन करे चाहे न करे, यह उसकी इच्छा!

लाचार अजित को, इच्छा न रहने पर भी, अपनी बात रखनी पड़ी। वह बाहर ही एक होटल में भोजन करता और शामको आफिस से आकर घर में पड़ा रहता। किन्तु जब उसने यह बात कही थी, तब उसका कोई ऐसा इरादा नहीं था, केवल गौरी को पराजित करने के लिए ही उसने इस शस्त्र का प्रयोग किया था।

३

इसी तरह जब एक महीना बीत गया और गौरी ज़रा भी नहीं झुकी तो एकाएक एक दिन अजित यह आविष्कार कर बैठा कि इस तरह बेकार कष्ट पाने से कोई लाभ नहीं है। अरे, अगर स्त्री कोई गलती कर ही बैठे तो मर्द को, जो समझदार होने का दम भरता है, क्या उसका ख़याल करना चाहिए? स्त्रीको मान देना, उसकी बात रखना ही तो पुरुष का कर्तव्य है। इसी में तो पुरुष का महत्व है। अजित ने तय किया कि उसी दिन मेल करके वह सारा झगड़ा मिटा देगा। इसी उद्देश्य से वह शामको घर पहुँचते ही गौरी को पास बुलाकर बोला—देखो, एक साधारण बात के लिए इस तरह मनमुटाव या झगड़ा करना अच्छा नहीं है। क्यों न?

गौरी ने निर्लिप्त भाव से कहा—हाँ, अच्छा तो नहीं ही है।

अजित ने कहा—इससे केवल मुझे ही तो असुविधा नहीं हो रही है, केवल मैं ही तो नहीं कष्ट पा रहा हूँ, निश्चय ही तुमको भी असुविधा हो रही है, तुम भी कष्ट पा रही हो।

गौरी ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि वह इसे स्वीकार नहीं करेगी। कारण, यह स्वीकार करना अपनी ही हँसी करना होगा। उसने वैसे ही रूखे मन से कह दिया—नहीं, मुझे तो तनिक भी असुविधा या कष्ट नहीं है। हाँ, तुमको जब असुविधा हो रही है—कष्ट मिल रहा है, तब……

अजित की छाती में जैसे एक घूसा पड़ा। उसके भीतर का पुरुष पुरुष होकर जाग उठा। अजित ने कहा—यह बात है! इससे तुमको तनिक भी असुविधा या कष्ट नहीं है?

कुछ वक्र हँसी हँसकर गौरी ने कहा—कष्ट काहे का?

अजित ने कहा—अच्छी बात है। तो फिर जैसे चल रहा है, वैसे ही चले।

गौरी ने कहा—मैंने तो इसमें कोई आपत्ति नहीं की। चलने न दो।

गौरी के इस उत्तर से अजित का आहत गर्व लात खाये हुए सर्प की तरह फुफकार उठा । वही तो। वह विजयी होने के लिए जो गर्व लिये फिरता है, वह उसका गर्व आज कहाँ रहा ? सचमुच गौरी तो इस मामले में तनिक भी नहीं झुकी। विद्रोही अन्तरात्मा के प्रबल पीड़न से अजित और एक प्रण कर बैठा—आज से मैं घर में नहीं रहूँगा ।

'तुम्हारी खुशी' कह कर गौरी विजय के गर्व से चली गई। किन्तु अजित के घर से निकलते ही वह धरती पर लोट गई और फफक-फफक कर रोने लगी। उसके विजय-गर्व का आनन्द उसके हृदय के दुःख को नहीं रोक सका। वह वैसे ही उठकर अपने स्वामी को लौटाने के लिए दौड़ी। लेकिन दरवाजे के पास जाकर उसने देखा, उसका स्वामी दुविधा में पड़ा खड़ा है। एक बार आगे पैर बढ़ाता है और फिर रुक जाता है। क्रोध में मनुष्य के अंग-प्रत्यंग में जो एक तेजी आ जाती है, उसका कोई भी चिन्ह उसे ढूँढे नहीं मिला। उसे हँसी आ गई। वह घर के भीतर लौट गई।

४

तीसरे दिन गौरी को अजित का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था कि गौरी कुर्ते के बटन चाहे टाँके चाहे न टाँके, केवल यह स्वीकार कर ले कि उसे कष्ट हुआ तो वह लौट आवेगा, नहीं तो नहीं आवेगा।

गौरी चिट्ठी पढ़कर अपने मन में हँसी। फिर उसके उत्तर में लिखा—तुम्हारे आने या न आने की बात मैं नहीं जानती; हाँ, यह अवश्य कह सकती हूँ कि मुझे कष्ट नहीं हुआ, या नहीं हो रहा है।

दो महीने तक पति ने पत्नी की या पत्नी ने पति की कोई खबर नहीं ली।

नित्य दिन बीतते जाते हैं। अजित अपना घर छोड़कर पास ही के एक होटल में खाता-पीता और रहता है। गौरी के भी दिन एक तरह से बीत रहे हैं, गुजर होता जा रहा है। इस तरह कुछ दिन बीतने पर गौरीके पास के रुपये सब जब खर्च हो गये, तब वह व्याकुल हो उठी। अब वह क्या करेगी ? वह मर सकती है; लेकिन उससे नारीत्व की श्रेष्ठता का दावा कैसे प्रमाणित होगा ? खाने-पीने का कोई उपाय तो वह कुछ कर नहीं सकती। मरने पर, आत्महत्या कर लेने पर, तो वह देखने नहीं आवेगी कि पुरुष नारी के सामने कुछ है या नहीं ? उसे समाज की व्यवस्था के ऊपर से श्रद्धा उठ गई। समाजने स्त्रियों के लिए, पाश्चात्य समाज की तरह, स्वाधीन जीवनोपार्जन की व्यवस्था क्यों नहीं की ? नारी के निर्यातन का, नारी को नीचा दिखानेका अमोघ और नीच उपाय समाजने पुरुष के हाथ में क्यों रख दिया है ? इतने दिन बाद अपने स्वामी के ऊपर भी कठिन हो उठी। यह कैसी बात है ? तो क्या वह उसके ऊपर इस प्रकार नीचता करके अपनी प्रधानता प्रकट करेंगे ? नारी की समाज प्रदत्त, अक्षमता के ऊपर क्या वह अपनी प्रधानता स्थापित करेंगे—अपना पौरुष दिखावेंगे ? निश्चय ही उसके स्वामी इतने नीच नहीं हो सकते कि आपस की प्रतियोगिता का फैसला इस नीच उपाय से करें। क्या सचमुच वह इस उपाय से काम लेंगे ?

वह बैठे-बैठे जब चिन्ता के सागर में डूब-उतरा रही थी, इसी समय एक मनी आर्डर उस के नाम आया। फार्म के कूपन में लिखा था कि कुर्ते में बटन लगाने या लगाने की हामी भर भरलेने पर मैं घर आ जाऊंगा।

रुपये पाकर स्वामी के ऊपर अपार श्रद्धा से गौरी का हृदय गद्गद हो गया। उसने अन्तरिक आनन्द से अधीर होकर, हँसते-हँसते स्वामी को पत्र में लिखा — मैं किसी तरह वह काम नहीं कर दूँगी।

५

उस दिन शामको बड़े जोर की एक आँधी आई। बड़े बड़े पेड उखड कर गिर पड़े। पृथ्वी-मंडल हिल उठा। गौरी का हृदय भी भय से काँप उठा। वह उस समय बरामदे में बैठी सोच रही थी कि उसने अपनी नारी-सुलभ ज़िद को तो पूरा कर लिया, परन्तु क्या इस से वह सुखी है ? आँधी आने पर उसका हृदय एक अभाव की खोज में व्याकुल हो उठा; क्यों कि वहाँ भी प्रचण्ड आँधी

उठी हुई थी। किन्तु कुछ भी हो, जब बार-बार पति की प्रार्थना पर वह 'ना' कर चुकी है, तब, आज स्वयं उपयाचिका होकर वह कैसे कह सकती है कि अजी तुम लौट आओ, मैं हारी। तुम्हारा काम कर दूँगी, उसी में मुझे सुख मिलेगा? फल-स्वरूप वह शय्यापर पडकर दिन-दिन मानसिक व्याधि में क्षीण होने लगी।

एकाएक एक दिन अजितने गतको स्वप्न में देखा — गौरी बीमार होकर पलँगपर पड़ी उसे पुकार रही है। अजित की आँख खुल गई। उसका मन खराब हो गया। स्वप्न उसने प्रातःकाल देखा था। लोक कहते हैं—सवेरे का सपना झूठा नहीं होता। वह सोचने लगा — क्या सचमुच उसकी पत्नी बीमार पड़ गई है? उसने सपने में देखा था, गौरी के बाल रूखे हैं, वेश मलिन है, आँखों में वह स्निग्ध हास्य से उज्ज्वल दृष्टि नहीं है। अजित के हृदय में एकबार हिचक सी हुई। पर उसने सीधी घरकी राह पकड़ी।

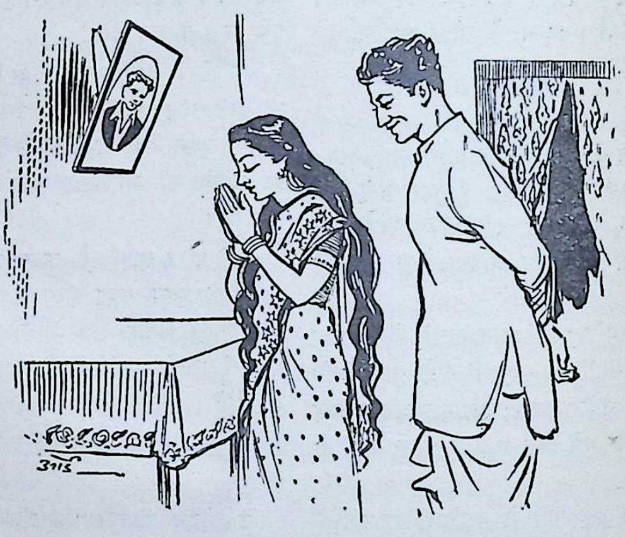

गौरी उस समय उठकर, नित्य कर्म से निपटकर, स्नान करके, पति के कमरे में थी। वह दीवार में लगे हुए पति के चित्र के सामने हाथ जोड़े खड़ी आँखें मूँदे कुछ प्रार्थना सी कर रही थी। अजित चुपके चुपके उसके पीछे जाकर खड़ा हो गया। जैसे ही गौरी घूमी, उसने, अपने को पति के बाहु-पाश में बँधा हुआ पाया। उसे आनन्द या विस्मय प्रकट करने का मौका न देकर आँखों में आनन्द के आँसू भरे हुए अजितने कहा — तुम्हारी ही जीत हुई गौरी, मैं हार मानता हूँ। मेरे कुर्ते में बटन टाँकने की जरूरत नहीं है। तुम स्वस्थ होकर हँसतीखिलती रहो, इसी में मैं अपनी जीत मानूंगा।

गौरीने धीरे-धीरे अपने को पतिके बाहुपाश से अलग किया और बक्स से पति का कुर्ता निकाल लाकर उसे पहनाते हुए बोली — हार जीत का फैसला तो कुछ जटिल हो गया है। क्यों न?

गाढ़ आलिंगन से स्त्री को हृदय से लगाकर अजित ने उत्तर दिया—हाँ। लेकिन मेरे इस पाने की विजय में तो अब कोइ जटिलता नहीं है। हार शायद मेरी ही हुई, लेकिन लाभ उससे भी अधिक हुआ, इस में कोई संदेह नहीं है।

सुख से आँखें मूँदे हुए गौरीने कहा—इसमें भी कोई संदेह है?

* * *

क्या हम चीन से सीखेंगे ?

[श्रीमन्नारायण अग्रवाल]

गत वर्ष मेरे विश्व-भ्रमण का प्रारम्भ चीन से ही हुआ। वहाँ की आर्थिक व राजनीतिक स्थिति बड़ी करुणा-जनक थी। गृह-युद्ध के कारण राष्ट्र की सारी शक्ति उस ओर ही लगी थी। मुद्रा-स्फीति की वजह से आर्थिक हालत बहुत गिर गई थी। कुछ महीने पहिले एक अमरीकन डालर ५ चीनी डालरों के बराबर था। किन्तु हमारे शंघाई पहुंचने के समय एक अमरीकन डालर दो लाख चीनी डालर के बराबर हो चुका था। दूसरे दिन विनिमय दर तीन लाख की, और तिसरे दिन चार लाख। लोगों को बाज़ार में चीनी डालरों के बंडल बग़ल में दबाकर घूमना पड़ता था। लिफ्टवाले को 'टिप' देने के लिये पचास हज़ार डालर दे देना मामूली बात थी। इस तरह चांग-काई-शेक के राज्य में सभी करोड़ पति बन गये थे। यह बात सुनने में विनोद-सी प्रतीत होती है। लेकिन इस मुद्रा-स्फीति की वजह से मध्यम-श्रेणी के लोगों की बहुत दयनीय स्थिति थी। चीजों के मूल्य लाखों गुने बढ़ गये थे जब कि उनका वेतन उस प्रमाण में बहुत कम बढ़ा था। इसलिये उनका जीवन-निर्वाह एक पहेली बन गई थी। ऐसी हालत में साम्यवाद दिन-दूना रात चौगुना बढ़े इसमें आश्चर्य ही क्या ? चांग-काई-शेक की सरकार कम्यूनिस्टों की फौज़ों के सामने हार पर हार खा रही थी। वर्तमान राज्य-प्रबन्ध अपनी लोकप्रियता बिलकुल खो चुका था और लोग कम्यूनिस्टों का साथ इस लिये नहीं दे रहे थे कि वे साम्यवाद के हिमायती बन गये थे; बल्कि इसलिये कि वे चांग की सरकार से तंग आ गये थे और कुछ परिवर्तन चाहते थे !

चांग की 'अलोकप्रियता' का क्या कारण था ? लगभग १५-२० वर्षों तक कूमिंटेंग पार्टी का राज्य जारी रहा। कई वर्षों तक तो चांग की इस पार्टी ने जनता की लगनपूर्वक सेवा की और इसलिये वह लोक-प्रिय बनी रही। बाद में रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार व पक्षपात का बोलबाला हुआ। ऊंचे सरकारी कर्मचारियों के रिश्तेदारों को स्थान दिये जाने लगे और उनकी कार्य-कुशलता की ओर ध्यान न दिया गया। जो कानून जनता के लिये बनाये जाते उनका पालन चांग के कुटुम्बी व ऊचे अफ़सरों द्वारा ही नहीं किया जाता। फिर लोगों से आशा रखना कि वे उन नियमों का पालन करते जायेंगे, मूर्खता ही कही जा सकती है। चांग सरकार के कानून चीन में खुले-आम तोड़े जाते थे और पुलिस उस ओर ध्यान भी न देती और संक्षेप में यही कहना काफी होगा कि चांग सरकार का नैतिक पतन हो जाने से उसका प्रभाव-शून्य हो गया था। इसी वजह से जनता उसका साथ नहीं दे रही थी और कम्यूनिस्टों की विजय-पताका आगे बढती चली जा रही थी।

चांग व श्रीमती चांग शुरू में तो बहुत लोकप्रिय थे ही; क्योंकि वे जनता से सीधा सम्पर्क रखते थे, उनके सुख-दु:ख में शामिल होते रहते थे। बाद में उनके जीवन में ऐश-आराम आया और उनका जनता-जनार्दन से सीधा सम्बन्ध बहुत हद तक टूट गया। इसका फल यह हुआ कि जो नेता कुछ वर्ष पहिले चीन का एकमात्र लोकप्रिय मार्गदर्शक था वह आज अपने ही देश में पराया हो गया है और एक स्थान से दूसरे स्थान को भागा भागा फिरता है। यह है जनता-जनार्दन की शक्ति और अभिशाप!

न्यूयार्क में हम श्रीमती पर्ल बक से भी मिले। वे चीन में करवि २५ वर्ष रही हैं और उस देश की नस-नस पहचानती हैं। पर्ल बक को बड़ा रंज था कि चीन की व उसके पुराने नेताओं की ऐसी दुर्गति हुई। उन्होंने बड़े दु:ख के साथ बतलाया कि किस तरह श्रीमती चांग-काई-शेक अमरीका में अपने देश के लिये भिख मांगने आईं और चेतावनी देने पर भी आलीशान होटलों में रहीं। इसका अमरीकी जनता पर बहुत बुरा असर पड़ा। उन्होंने समझ लिया कि जिस गरीब देश के नेता ऐश-आराम में फंस गये हैं वे अमरीका से कर्ज़ लेकर भी अपने मुल्क का क्या भला करेंगे? सारा कर्ज़ तो उन्हीं के ठाठ-बाट में साफ हो जायगा। फिर अमरीकी सरकार ने भी जान लिया कि चांग-सरकार का अब चीनी जनता से घनिष्ट संबंध नहीं रहा है और जनता की सहानुभूति व सहकार्य के विना चीन को कर्ज़ देना भी बेकार-सा ही होगा। इसी लिये श्रीमती चांग को खाली हाथ लौटना पड़ा वहाँ से।

नेताओं के दोषों के अलावा चीन की साधारण जनता में भी कई दोष हैं। सबसे बड़ी त्रुटि है व्यक्तिगत स्वार्थ! एक सामान्य चीनी पहिले अपना स्वार्थ साधेगा फिर अपने कुटुम्ब व घराने का, और बाद में देश का, जापान में इससे बिल्कुल उल्टी हालत है। किन्तु चीन में 'व्यक्तिवाद' के कारण देश तबाह हो गया है। मुद्रास्फीति की वजह से हरेक चीनी यही कोशिश करता रहता है कि वह ज्यादा-से-ज्यादा धन किस तरह से बटोर ले! सामाजिक जीवन में अनुशासन (शिस्त) की बहुत कमी है! लाइन बनाकर (क्यू) काम करने की पद्धति नहीं है! भारत जैसा ही 'धक्कम-धक्का' चलता है। सफाई का भी बहुत अभाव है—व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में। आलस्य तो सदियों से चीन का साथी बना ही है। प्रारम्भ में तो यह अफीम के कारण था। अब राष्ट्रीय-वृत्ति का एक अंश समझना चाहिये। राष्ट्र के यह दुर्गुण कम्यूनिज़म किस हद तक दूर कर सकेगा यह कहना कठिन है। कुछ लोगों का ख्याल है कि चीन में रूस की तरह साम्यवाद चलना मुश्किल होगा। लेकिन दूसरों का मत है कि कुछ ही वर्षों में चाबुक की मार से चीनियों की बुद्धि ठिकाने आ जायगी और वे उन्हें कम्यूनिज़म को ज़बरन् से स्वीकार कर लेना होगा। किन्तु यह सब तो भविष्य ही बतलायेगा।

हमें तो असली मतलब है अपने भारत देश से! यह स्पष्ट है कि हमारी और चीन

की हालत बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। दुःख तो यह होता है कि जो स्थिति चांग सरकार की १५-२० वर्ष बाद हुई, करीब-करीब वैसी ही हालत हमारे देश में तो लगभग पाँच वर्षों में ही होती दीखती है। अगर हम वक्त पर न चेते तो स्पष्ट है कि भारत की स्थिति चीन से भी बदतर हो जायगी और हमारा उगता हुआ आज़ादी का सितारा जल्द ही डूब जायगा।

ईश्वर करे ऐसा न हो!

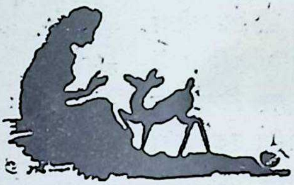

मोती !

एक सीप ने अपनी पड़ोसिन सीप से कहा — "बहन, मेरे पेट में भयंकर पीड़ा हो रही है। वहां कोई भारी-भारी गोल-गोल सी चीज़ जान पड़ती है जिसने मेरे प्राणों को संकट में डाल रखा

दूसरी सीपने गर्वपूर्ण संतोष के साथ कहा — "अजी, आकाश और समुद्र को अनेकानेक धन्यवाद कि मैं ऐसी पीड़ा से मुक्त हूं। भीतर और बाहर सब प्रकार से नीरोग और भली-चंगी हूँ।

तब एक केंकड़ा उधर से जा रहा था; उसने उन दोनों सीपियों की बातें सुन लीं और तन्दुरुस्त—भली चंगी होने की डींग मारने वाली सीप से कहा — 'हाँ-हाँ तुम निरोग और भली-चंगी जरूर हो; लेकिन तुम्हारी पड़ोसिन जिस पीड़ा का भार वहन कर रही है, जानती हो वह क्या है—एक असाधारण बहुमूल्य आबदार मोती।'

—खलील.

अध्यात्म व समाज क्रान्ति

[आचार्य स० ज० भागवत]

भारत में शताब्दियों से जो विचार प्रचलित हैं उनकी अथवा भारतीय संस्कृति की विशेषता आध्यात्मिक है। विश्व के विचारशील लोग भी यही कहते हैं। हमें इस विशेषता को जान लेना होगा, और यह भी गहराई के साथ सोचना होगा कि हमारी यह विशेषता वर्तमान परिस्थिति में और आज के बुद्धिवाद की कसौटी पर किस हद तक खरी उतरती है। इसके विपरीत एक दूसरा विचार भी दुनिया में एक छोर से दूसरे छोर तक चक्कर काट रहा है और उसका परिणाम जगत् के साथ-साथ हम पर भी पड़ रहा है। वह है मार्क्सवाद। आज से ३२ वर्ष पूर्व रूस में जो बहुत बड़ी भीषण क्रान्ति हुई थी, उसका आधार यही मार्क्सवाद था। आज चीन इसी विचार से प्रभावित है और वह रूस के साथ अपना मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। संसार की एक चतुर्थांश जनसंख्या मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। अतः किसी भी विचार-धारा का विवेचन करते समय हम मार्क्सवादी विचारधारा की ओर दुर्लक्ष्य नहीं कर सकते और उसके लिए निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तरों की ओर ध्यान देना चाहिए।

(१) अध्यात्मवाद का मूलतत्व क्या है? (२) उसका उपयोग क्या है? (३) मार्क्सवाद के आव्हान का रूप क्या है? (४) और क्या उसका अध्यात्म से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है?

मार्क्सवाद के विना जीवनवादी बनना नितान्त असंभव है।

मार्क्सवाद अध्यात्मवाद का पूरा विरोधी विचार माना जाता है। वह अध्यात्म पर यह आक्षेप करता है कि वह हमारे समाज-विकास के लिये कभी उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। अध्यातम ने समाज-विकास की शक्तियों को निर्वल कर डाला है। मैं जिस समाज में बड़ा हुआ हूँ उसमें अध्यात्म का एक महत्वपूर्ण स्थान है और मेरे विचार में जीवन की परिणति अध्यात्म को छोड़ और किसी में हो नहीं सकती। साथ ही अन्य वातों का भी महत्व मैं मानता हूं। जब मुझे यह पता चला कि अध्यात्म ने सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की, वह तो एक काल्पनिक एवं व्यक्तिनिष्ठ वस्तु है; तव मैं अपने और अध्यात्म पर आक्षेप करनेवालों के विचारों का तुलनात्मक अनुशीलन करने लगा। यद्यपि गान्धीजी के विचारों का मुझ पर पूरा प्रभाव पड़ा है; फिर भी मुझे मार्क्सवाद का अभ्यास करने की आवश्यकता मालूम हुई। आज मेरा यह विचार दृढ़ हो गया है कि मार्क्स का अध्ययन किये विना मनुष्य पूरी तरह जीवनवादी नहीं वन सकता। इन तुलनात्मक विचारों के फलस्वरूप जो मेरा मत तैयार हुआ है उसे यहां प्रस्तुत करता हूं।

अध्यात्म और सामाजिक क्रान्ति।

इन दोनों के सम्वन्ध में विचार करते समय हमें यह सोचना चाहिए कि क्या अध्यात्म का समाज से कोई सम्वन्ध है? यदि नहीं है, तो समाज की क्रान्ति के वारे में कुछ कहने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहता। अध्यात्म के सम्वन्ध में संसार में अत्यधिक भ्रान्ति फैली हुई है। फिर भी अगर कोई यह प्रश्न करे कि अध्यात्म का किस मानवी जीवन से सम्वन्ध है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि लोगों का ऐसा खयाल है कि उसका सम्वन्ध मनुष्य के मरणोत्तर जीवन के साथ है। परन्तु अध्यात्म में जिस जीवन के विषय में विचार किया जाता है, यदि वह मरणोत्तर जीवन हो तो 'अध्यात्म' का यह अर्थ मुझे कतई पसन्द नहीं है। क्योंकि मरणोत्तर जीवन की अपेक्षा मृत्युपूर्व जीवन कहीं अधिक सत्य है। मरण के वाद कोई जीवन है भी या नहीं; यह नहीं कहा जा सकता। अतः मरणपूर्व जीवन को विकसित करनेवाले तत्व

हमारे अध्यात्म में हों तभी वह उपयोगी हो सकता है।

मरणोत्तर जीवन एक धोखा है।

मैंने तत्वज्ञान का जितना अध्ययन किया है, उससे मुझे यह मालूम हुआ कि मरणोत्तर जीवन एक धोखा है। मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि अध्यात्म का विषय मरणपूर्व जीवन पर ही विचार करता था। यदि किसी को इसमें सन्देह हो तो वह लो० तिलक के गीतारहस्य को, जो भगवद्गीता के मर्म को समझाने वाला ग्रन्थ माना जाता है; पढ़ें। मेरे मत में गीता-रहस्य समाज-जीवन का ही ग्रंथ है। मन को यह विश्वास नहीं होता कि गीता में कहा हुआ ज्ञान ही सत्य है और बाकी ज्ञान मिथ्या है। आज सब बातों का विचार शास्त्रीय दृष्टि से ही किया जाता है। अतः 'गीतारहस्य' पर भी इसी दृष्टि से विचार किया जाना चाहिये। लो० तिलक के कथनानुसार मानव-जीवन के दो ध्येय हैं। प्रथम मोक्ष व दूसरा लोकसंग्रह। आप तिलक के मत से भिन्न मत रख सकते हैं; किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि अब यह बात सर्वसम्मत हो जानी चाहिये। इस सिद्धान्त को मान कर ही हमें आगे बढ़ना होगा। अतः जो लोग मानव-जीवन का आदर्श केवल मोक्ष ही को मानते हैं उनका जीवन व्यर्थ है। इसी के साथ हमें लोक-संग्रह का भी विचार करना होगा। समाज के बिना व्यक्ति का विकास असंभव है, निरर्थक है।

मोक्ष व लोक-संग्रह एक ही हैं।

अब प्रश्न यह है कि क्या मोक्ष व लोकसंग्रह पृथक पृथक चीजें हैं? यदि ऐसा हो तो उसमें मुख्य बात कौनसी है? मेरे मतानुसार ये दोनों बातें एक ही हैं। शुद्ध तत्वज्ञान से यही प्रकट होता है कि मोक्ष ही लोकसंग्रह और लोकसंग्रह ही मोक्ष है। कौनसा मोक्ष? मरण के पूर्व का कि पश्चात् का? इस विषय में गीता-रहस्य कहता है कि मोक्ष का अर्थ जीवन्मुक्तावस्था है। हम अपना बहुत-सा समय मरणोत्तर बातों को समझने में खर्च करते हैं; परन्तु यह व्यर्थ है। कारण, वह एक ऐसी स्थिति है जिसका मैं अनुभव नहीं कर सकता। अतः उस के सम्बन्ध में मुझे धोखा हो सकता है। मरणपूर्व मोक्ष में यह नहीं हो सकता; अतएव मैं मरणपूर्व मोक्ष का भोक्ता हूँ।

हमें मोक्ष मिले और हम लोक-संग्रह खो दें, यह कैसे सम्भव हो सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें ईश्वर का साक्षात्कार हो गया है; परन्तु उन्हें अपने चारों ओर फैली हुई गंदगी नहीं दिखती, समाज के अन्याय नहीं दिखते। मुझे तो ऐसा लगता है कि जिन लोगों को ईश्वर के भव्य दर्शन हो गये हैं उन्हें यह गन्दगी दिखनी चाहिये और उनमें उसे नष्ट करने की प्रेरणा होनी चाहिये। यदि उन्हें यह प्रेरणा न मिले तो मैं कहूँगा कि यह ईश्वर हमारे लिए निरुपयोगी है—निकम्मा। मोक्ष की परीक्षा का हमारे पास एक मानदंड होना चाहिये। जिस प्रकार सूर्य के साथ ही प्रकाश आता है उसी प्रकार मोक्ष के साथ ही लोक-संग्रह आना चाहिये। यह आवश्यक है कि जिस प्रकार प्रकाश के आते ही अंधकार लुप्त हो जाता है उसी प्रकार मंगल के आते ही अमंगल और सद्विचार के आते ही असद्विचार लुप्त हो जाये।

अद्वैत की अनुभूति जीवन्मुक्तावस्था।

मरणोत्तर जग, यदि बहुत हुआ तो केवल श्रद्धा का ही विषय हो सकता है। उसके लिए प्रमाण मिलना सम्भव नहीं है। अतः हमें मरणोत्तर बातें छोड़ देनी चाहिये। अब इस लोक की एक ही बात शेष रह जाती है और वह है; अपनी अनुभूति। हमें इसी जीवन में ऐसी अनुभूति मिल सकती है कि सारा विश्व एक है। यदि मनुष्य की बुद्धि पूर्ण विकसित और ज्ञानमय हो गई तो वह समस्त विश्व से प्रेम करने लगेगा। उसे अद्वैत की अनुभूति होगी, और उसे ऐसा मालूम होने लगेगा कि यहां मेरा कोई वैरी नहीं है। मैं 'निर्वैरः सर्वभूतेषु' हूँ। इसी प्रकार उसकी इन्द्रियाँ भी विश्व के कल्याण के लिए प्रयत्नशील होंगी। मानव की यही अवस्था जीवन्मुक्तावस्था है।

जीवन को शुभ बनाने की जो प्रेरणा दे वही अध्यात्म।

यह विचार मन से दूर हटा देना चाहिये कि अध्यात्म का समाज से कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसा कि लो० तिलक ने कहा है, अध्यात्म पेनशन प्राप्त बूढ़े व्यक्तियों के लिए न होकर जवानों के लिए

है। यह समस्त जीवन किस प्रकार शुभ बनाया जाये। यह प्रेरणा जिसमें हो वही अध्यात्म है।

कर्मयोगी का अध्यात्म श्रेष्ठ है।

अब प्रश्न यह उठता है कि मार्क्सवाद का जो यह सिद्धांत है कि धर्म अफीम की गोली है, क्या वह ठीक है ? इस प्रश्न पर विचार करने पर हमारे ध्यान में यह बात आजायगी कि उनका यह कथन कि अध्यात्म जीवन से पलायन करने का तत्वज्ञान है, बहुत अंशों में ठीक है। फिर भी उन का आक्षेप पूरी तरह सही नहीं है। मैं यह भी नहीं कहता कि मार्क्सवादियों की ही सभी बातें गलत हैं क्योंकि उन्हें इतिहास का आधार प्राप्त हैं। हिन्दुस्थान के अध्यात्म के इतिहास की ओर भी यदि हम दृष्टिपात करें तो भी हमें इस बात का अनुभव होगा। वेदकाल में भी दो प्रकार के अध्यात्मवादी थे। एक वैदिक—दूसरे अवैदिक। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि जिस मनुष्य को आत्म-साक्षात्कार हो गया है वह समाज-जीवन में भी समानता का प्रतिपादन करेगा। यद्यपि वह वेदान्त में अद्वैत सिद्धान्त को मानता है; तो भी उसका आचरण द्वैत पर आधारित रहता है; और चार्तुवर्ण्य (वर्ण-व्यवस्था ब्राह्मण क्षत्रिय आदि) को मानता है। भक्तिकाल में भी दो पंथ थे। नानक, कबीर, चैतन्य, दादू इत्यादि चार्तुवर्ण्य नहीं मानते थे; परन्तु तुलसीदास उसका समर्थन करते थे। यही बात महाराष्ट्र के साधु-संतों के विषय में भी कही जाती है यदि आज अस्पृश्यता निवारण के कार्य में ज्ञानदेव के आधारपर विरोध उत्पन्न हो जाये, तो क्या मार्क्सवादियों के आक्षेप को पुष्टि प्राप्त नहीं होगी। तब मुख्य प्रश्न यह है कि ब्रह्म-साक्षात्कारी होकर भी आप किस समाज-शास्त्र को मानेंगे ? आपका अध्यात्म संन्यासमार्गी होगा अथवा कर्मयोगी ? लो. तिलक के मतानुसार कर्मयोगी का अध्यात्मही श्रेष्ठ है। क्योंकि कर्मयोगी तो लोक का ही विचार करता है।

ज्ञान का महत्त्व क्रिया में।

अध्यात्म का तत्वज्ञान है किस लिए ? और उसका उपयोग ? वास्तव में अध्यात्म का तत्वज्ञान समाज को बदलने के लिये है। वह सामाजिक क्रान्ति के लिये आवश्यक है। ज्ञान का महत्व ज्ञान में नहीं है उस ज्ञान से परिणत होने वाली क्रिया में है। ज्ञान के अनुसार क्रिया बदलनी चाहिये। ज्ञान जीवन से निरपेक्ष हो ही नहीं सकती।

कर्मयोगी का लोकसंग्रह ही सच्चा है।

लोकसंग्रह का क्या अर्थ है ? हम जिस सत्य की तरफ जाते हैं उस सत्य की ओर लोगों को ले जाना ही लोकसंग्रह है। जीवन्मुक्तावस्था की ओर मनुष्यों को ले जाना ही लोकसंग्रह है। यदि इस अवस्था का लाभ सब लोगों को पहुंचाना हो तो उनके हृदयों में सब के लिए प्रेम का निर्माण करना चाहिये। सब की शक्ति तथा सब की इन्द्रियां सब के कल्याण में लग जानी चाहिये। संन्यासी व भक्तिमार्गी लोग भी लोकसंग्रह करते हैं; परन्तु उनका लोकसंग्रह सच्चे अर्थ में लोकसंग्रह नहीं है। कर्मयोगी के लोकसंग्रह को वास्तविक लोकसंग्रह कह सकते हैं। इसका कारण यह है कि संन्यासी वा भक्तीमार्गी लोग हमेशा आत्मा-परमात्मा का ही विचार करते हैं। आत्मा कितनी ही महान क्यों न हो परन्तु उसका ही विचार करना और इह लोक की अन्य बातों की उपेक्षा करना, उन पर विचार न करना अल्पबुद्धि या मूढ़ता की निशानी है।

रसेल का प्रश्न।

रसेल ने अपनी 'विज्ञान और धर्म' नामक पुस्तक में इस विषय का उत्तम रीति से विवेचन किया है। उसके मतानुसार जगत के सब अध्यात्मवादी एक बात के सम्बन्ध में एकमत हैं। वह यह कि यह जगत विरोध-रहित है और इस कारण उनके सामने पाप का प्रश्न (problem of evil) नहीं रह जाता। इसी प्रकार देशकाल-कार्य-कारण-मान से युक्त जो बाह्य विश्व है उसकी समस्या भी उनके सामने नहीं रह जाती। रसेल ने प्रश्न किया है कि क्या जगत् को इस प्रकार की अनुभूति की आवश्यकता है ? उन्होंने इसका उत्तर 'हां' दिया है। वे कहते हैं कि इस प्रकार प्रवृत्ति प्रगतिकारक है; क्यों कि मानवजीवन के प्रश्न हल करने के लिये यह वृत्ति सहायक होती है। अध्यात्म में समस्त जीवन का विचार करने की दृष्टि है। इस प्रकार की अध्यात्मवादी अनुभूति से युक्त मनुष्य अपने आध्यात्मिक ज्ञान का उपयोग जीवन सुधारने के लिए करेगा। अन्याय दूर करते समय वह अपनी

१९५०

ममत्ववृत्ति छोड़ देगा क्यों कि उसका विरोध व्यक्ति से न होकर विचारों से है। समाज-जीवन में जो क्रान्तियां होती हैं उनसे वह अलिप्त नहीं रह सकता, कारण कि अध्यात्म का तात्पर्य जीवन से पलायन करने का नहीं है। इसके विपरीत अध्यात्म ही जीवन है।

साधन शुचिता की आवश्यकता।

अतः यह स्पष्ट है कि यदि हम अध्यात्मवादी हैं तो हमें जीवन की प्रत्येक बात का विचार करना पड़ेगा और जीवन में जो भी सवाल पैदा होंगे उनसे हम दूर नहीं भाग सकते। अध्यात्मवादियों को साधनों की शुचिता पर भी ध्यान देना होगा। साधन शुचिता के सिद्धान्त का प्रथम अंश गांधीजी ने हमें बतलाया था और अध्यात्मविचार की उन्नति की थी। उनके अनुसार, केवल बौद्धिक ही पर्याप्त नहीं है; कि सारा मानव एक है; इस अद्वैत की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अपने हृदय में सबों के लिए प्रेमभाव रख कर शुद्ध साधनों से जीवन की उन्नति के प्रयत्न किये जायें।

रूस के तत्वों से विरोध नहीं।

मार्क्सवाद ने जिस जातिवर्ग-रहित समाज-रचना को साध्य माना है वह अध्यात्म के भी अनुकूल है। अतः रूस की सामाजिक, आर्थिक क्रान्ति के तत्वों का विरोध करने का हमें कोई कारण नहीं दीखता। यह आवश्यक है कि अध्यात्म फ्रेंच व रूसी क्रांति के राजकीय व आर्थिक लोकतंत्र के तत्वज्ञान को मान्यता दे। हिटलर और मुसोलिनी ने अध्यात्म के नाम पर इस विचारधारा का विरोध किया और उन्हें जड़वादी कहा। परन्तु ऐसा कहने से ही काम नहीं चलने का। हमें देखना चाहिये कि इन लोगों का कार्यक्रम क्या है और क्या वह स्वार्थयुक्त जड़वाद है। ईश्वर का न माननेवाला एक व्यक्ति यदि सब मनुष्यों का अवलंब हो तो वह अध्यात्मवादी है। इस दृष्टि से रूस का ध्येय अधिक अध्यात्मवादी है। कारण रूस और जर्मनी, दोनों ने एक से ही साधनों का उपयोग किया है। उन दोनों ने संकुल पद्धति (totalitarian method) स्वीकार की; परन्तु कम्यूनिज्म को आर्थिक प्रजातंत्र मान्य होने से वह फैसिज्म से अधिक पुरोगामी है।

साधन ध्येय की अपेक्षा अधिक आध्यात्मिक।

परन्तु केवल ध्येय का उच्च होना ही पर्याप्त नहीं है। यद्यपि रूस का ध्येय अध्यात्मवादी है परन्तु उसके साधन द्वेष पर आधारित होने के कारण ध्येय की प्राप्ति में बाधक हैं, इसके अतिरिक्त साधनों की अनुभूति मिल सकने के कारण और आज के ध्येय कल के साधन बनने के कारण, साधन ध्येय की अपेक्षा अधिक आध्यात्मिक माने जा सकते हैं। इसी कारण गांधीजी ने उच्च ध्येयों के लिए शुद्ध साधनों पर अधिक जोर दिया था। हम जिन साधनों का उपयोग करेंगे वे हमारी मनोवृत्ति के द्योतक होंगे। हम जो संहारक शस्त्र रखते हैं उनके पीछे अपने मन के द्वेष की धार रहती है। द्वेष की यह धार अध्यात्म से पूर्णतः विसंगत है।

इस अपूर्ण जगत में व्यक्ति अपूर्ण ही रहेगा। फिर भी उसे पूर्णता की ओर जाना है; और उसे नीति के मार्ग से ही अग्रसर होना है। गांधीवाद के पीछे की मुख्य प्रेरणा यही है कि मैं अपना जीवन नीतिपूर्ण और अहिंसक बनाऊंगा और उसी प्रकार समस्त समाज को वैसा ही बनाने का प्रयत्न करूंगा। आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त मनुष्य किसी भी क्रांति से नहीं डरेगा और क्रांति की पूर्ति के लिए किन्हीं भी साधनों का उपयोग नहीं करेगा। जीवन को प्रगतिशील बनाने व मानव-जीवन को मोक्ष की ओर ले जाने के लिए शुद्ध साधनों का उपयोग कर वह क्रांति को सफल बनाने का प्रयत्न करेगा।

[मराठी से अनु०—श्री० राजेन्द्र प्र० भट्ट]

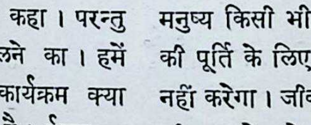

मराठी कविता:—

श्रम सौन्दर्य !

[भवानीशंकर श्री. पंडित]

लोहकार ! कर प्रहार !
-एक-दोन-तीन-चार—
कर प्रहार ! कर प्रहार !!
तप्त लाल लोह खण्ड
*मार्तण्डय काय चण्ड !
पुष्ट दण्ड तव उदण्ड
घण प्रचण्ड उचल[†] मार !
आवेगीं घाल घाव
लोहाला रूप नांव—
दे, जसा असेल भाव,
§हाण घाव बार-बार !
द्युतिवलयी, अंगारक—
उजळतील तव श्रीमुख,
भालिं धर्मकण मौक्तिक—
गुंफतील रुचिर हार !

---

* या कि प्रचण्ड सूर्य है [†] उठा § मार

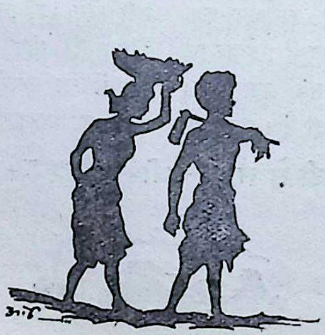

उर्दू कहानी :

बीवी आख़िर बीवी है

ज़हूरबख़्श

[नोट—वर्तमान उर्दू-संसार के प्रमुख लेखकों में हज़रत 'नाकारा' हैदराबादी अपना विशेष स्थान रखते हैं और हास्य-रस के अन्यतम लेखक माने जाते हैं। आप बहुधा घरेलू अथवा पारिवारिक छोटी-सी घटनाओं द्वारा ही सरस, शिष्ट और मनोरम हास्य-रस की सृष्टि करते हैं, वह पाठक के हृदय पर एक मधुर छाप छोड़ जाता है। प्रस्तुत रचना आप ही की एक प्रसिद्ध कहानी के आधार पर लिखी गई है।]

मियाँ के सामने जली हुई रोटी रक्खी है। वह इतनी कड़ी है कि उसे चबाते-चबाते और बीबी के बेहूदापन पर दाँत पीसते-पीसते मियाँ के जबड़े दुखने लगते हैं। तरकारी को एक बार चखने के बाद फिर हाथ लगाने को जी नहीं चाहता। मालूम नहीं, नमक और मिर्च का भाव गिराने से बनियोंका क्या मतलब है। चाय को चाय कहते हुए शर्म आती है। इस रङ्ग-रूप की और ऐसी बे-मज़ा चाय एक पैसा फी प्याली के हिसाब से भी चायखानों में मिलती, तो कोई गरीब-से-गरीब भी पीने की तकलीफ न करता। रह-रह कर मियाँ के जी में आ रहा है कि बर्तन भन्न से मोरी में फेंक दूँ, तरकारी और चाय का छिड़काव आँगन में कर दूँ, बड़बड़ाते हुए उठकर खड़ा हो जाऊं और यह सब इस तरह करूं कि बीवी देखे और सुने।

मियाँ अच्छी तरह जानता है कि उसपर यह ज़ुल्म क्यों ढाए जा रहे हैं और बीवी को इस हड़ताल का क्या मतलब है। बीवी का त्रिया-हठ मियाँ की जिन्दगी को कड़वेपन से भर देता है और उसका जी अक्सर चाहने लगता है कि इस कम्बख्त को बेवा बनाकर क्यों न छोड़ दूँ? वह नाश्ते से हाथ खींच लेता और पेटपर पत्थर बाँधकर बड़बड़ाते हुए उठ खड़ा होता है। फिर दफ्तर जाने के लिये कपड़े पहिनते-पहिनते बीवी से कहता है—'देखोजी तुम्हारी यह फजूल हरकतें मुझे फूटी आँख नहीं भातीं। जानती हो, तुम्हारी यह व्यर्थ की जिद मेरे लिये कितनी तकलीफ-देह है? तुम्हें क्या मालूम कि मेरी आँखें इस वक्त कितनी जल्दी-जल्दी "कुल-हो-अल्लाह" पढ़ रही हैं। क्या तुम समझती हो कि मैं भूखा ही दफ्तर चला जाऊंगा? नहीं तुम गलती पर हो। रास्ते में

बहुत-से होटल हैं——देखो, तुम अपने समझदार मियाँ की रहम-दिली से बेजा फायदा उठा रहीं हो, और....'

मगर बीबी पलङ्ग पर करवट बदलकर रह जाती है। भला यह भी मियाँ की बात का कोई जबाब है ? मियाँ को मालूम है कि बीबीने कल रात से 'चुपशाह' का रोजा रखा है, और उसका इरादा भी रोजा जल्दी खोलने का नहीं जान पड़ता। फिर भी मियाँ अपनी बात का सिलसिला जारी रखते हुए कहता है—'तुम मुझसे इस बात पर नाराज हो कि मैंने तुम्हें कल रातको तुम्हारी सहेली के साथ सिनेमा देखने नहीं भेजा। मैं पहले भी कह चुका हूँ, अब फिर कहता हूँ और इंशा अल्लाह आगे भी कहूँगा——मैंने तुम्हें वह खेल देखने इसलिए नहीं जाने दिया कि मेरे पास काफी पैसे नहीं थे, और....'

अब बीबी उम्मीद के खिलाफ 'चुपशाह' का रोजा बहुत जल्द खोल देती है। रजाई के अन्दर से आवाज आती है—'होटल में जाकर खाना खाने को तो पास में पैसे हैं, मगर मुझे सिनेमा दिखाने को पैसे नहीं थे! ऊँह, तुम्हारी बातों का क्या ठिकाना!....

मियाँ की तबीयत खुश हो जाती है; चलो, बीबी के मुँह से फूल झड़ना शुरू तो हुए। इस मौके से फौरन फायदा उठाना चाहिए। बस, वह कहता है — 'तुम मेरा मतलब नहीं समझीं। यह ठीक है कि मैं होटल में जाकर खाना खाने वाला हूँ। मगर क्यों ? क्या यह सब तुम्हारा ही किया-धरा नहीं है ? सुनो,...'

मगर बीबी क्यों सुनती ? इसके पहले कि मियाँ समझ सके, अब क्या होने वाला है, वह एक सेकण्ड में कमरे से बाहर थी, दूसरे सेकण्ड में पास वाले कमरे के अन्दर, और दरवाजा बन्द। जब मियाँ का ताज्जुब दूर होता है, तो वह दिल में कहता है—'इससे क्या होता है ? दरवाजे के सामने खड़े-खड़े अपना लेक्चर खतम कर दो और याद रक्खो कि तुम्हा लेक्चर इन शब्दों के साथ खतम कि तनख्वाह मिलने के लिये अब सिर्फ एक दिन बाकी रह गया हैं।' बस, वह दरवाजे की तरफ घूमकर बोलना शुरू कर देता है—

'तुम अपनी जिद नहीं छोड़ना चाहतीं, तो न छोड़ो। मेरा इससे क्या बिगड़ा जाता है! मर्द आखिर मर्द है——औरत से हर बात में बढ़कर, बल्कि औरत पर हर बात में अख्तियार रखने वाला। यह तो एक मानी हुई बात है कि औरत की अक्ल मोटी होती है — अजी, ऐसी मोटी, जैसे मेरे जूते का तल्ला। मतलब कहने का यह कि तुम-अब भी अपनी बेजा जिद छोड़ दो। मैं तुम्हें माफ कर दूँगा। बस, यह समझ लो, गोया कुछ हुआ ही नहीं। क्या तुम मेरी वह बात भूल गईं कि माफी में जो मजा है, वह बदले में कहाँ ?.... चलो, गुस्से को थूक डालो और जरा यह दरवाजा खोलो। इतना भी नहीं जानती कि कल तनख्वाह मिलने वाली है। बस, मैं शाम को अपने साथ सिनेमा दिखाने ले चलूँगा।... हाँ तो कबतक तुम्हारे जवाब की राह देखता रहूँ ?'

मियाँ बहुत देर तक बीबी के जवाब की राह देखता रहता है, मगर बेकार। बीबी

की आवाज का तो कहना ही क्या, उसकी चूड़ियाँ तक नहीं खनकतीं । आखिर मियाँ कहता है—अफसोस ! तुम को मेरी कदर नहीं मालुम । कोई और तुम्हारी जगह होती, तो मुझे सर-आँखों पर बिठाती — मेरे पैर धो-धो कर पीती । यह अपनी तारीफ नहीं करता, बल्कि सचाई है । . . . ऐं, तुम हँसती हो ? अच्छा है, हँसो-हँसो, यहाँ तक हँसो कि अल्लाह करे, रोने लगो । अभी क्या है, मेरे बाद तुम्हें मेरी कदर मालूम होगी — तभी तुम्हारी आँखें खुलेंगी । बस, अपने नेक, रहम-दिल पति को याद कर-कर आँसू बहाया करोगी । मगर उस वक्त आँसू बहाने से क्या होगा — हाँ, क्या होगा ? दरवाजा खोलो—पीछे पछताने से बेहतर तो यही है कि दरवाजा खोलो . . . .'

मियाँ के लेक्चर में काफी दर्द भरा है, लेकिन वह जानता है कि दूसरी पार्टी पर उसका जरा भी असर नहीं पड़ रहा है । एक तो कम्बख्त दरवाजा बीच में है, दूसरे बीबी अन्दर कुछ खटपट करने में लगी है । मियाँ को बहुत बुरा मालूम होता है और इससे उसके दिल पर चोट-सी पड़ती है । मगर, वह किसी तरह अपनी तबीयत को सँभालता और बीबी को सीधे रास्ते पर लाने के लिये बहुत-कुछ कह डालता है । दफ्तर का वक्त हो रहा है, फिर भी लगे हाथों बीबी के फर्ज पर एक छोटा-सा, मगर गँठा हुआ लेक्चर फटकार देता है । उसमें बतलाता है कि 'बीबी' शब्द का क्या अर्थ है, उसे क्या क्या करना चाहिए, हिन्दुस्तान की बीबियाँ कैसी होती हैं, वगैरह-वगैरह । उनके बारे में वह जो कुछ जानता है, धड़ाके से कहता है और बीच-बीच में बड़े-बड़े आदमियों के वाक्य भी कहता जाता है, जिससे उसकी हर बात सही साबित होती चले । और इन सब का मतलब क्या निकलता है ? यही कि अगर कोई मियाँ अपनी बीबी के त्रिया-हठ का शिकार हो जाए, तो उसे तनख्वाह मिलते ही बीबी को साथ लेकर सिनेमा देखने जाना चाहिए । ऐसे ही वक्त नौकरानी सदाबहार छतरी लाकर मियाँ को देती है, मगर वह बेचारा दरवाजे के सामने खड़ा खड़ा 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी' का मतलब जाहिर कर रहा है ।

अब बीबी अन्दर कुछ बड़बड़ाने लगती है । मियाँ दरवाजे से कान लगाता और सुनने की कोशिश करता है, मगर सुन कुछ नहीं सकता । हाँ, बीच बीच में 'मैका', 'अम्मा' वगैरह शब्द बार-बार जरूर साफ तौर पर सुनाई पड़ते हैं । मगर मियाँ इसकी परवाह नहीं करता, बल्कि अपनी बात का सिलसिला जारी रखता है । वह क्या-क्या कहता है—यह जाहिर करने की यहाँ न जरूरत है, न जगह । हाँ, उसके लेक्चर का आखिरी हिस्सा बेशक बहुत पुर-दर्द है, जिसमें वह अपना इरादा बताता है—बस, अब मैं बाजार से 'बिहिश्ती जेवर' नाम की किताब खरीद कर लानेवाला हूँ, ताकि तलाक के बारे की सारी बातें मालूम हो जाएँ । वगैरह-वगैरह ।'

कमरे से आवाज आती है—'जाओ-जाओ ! क्या बक-बक कर रहे हो खड़े-खड़े ।'

अब क्या है, मियाँ आपे से बाहर हो जाता है और गरजने लगता है—'क्योंजी, यह बकबक कर रहा हूँ मैं ? देखो, अब तो मैं सख्त गुस्से में आ गया हूँ और तुमको मालूम ही है कि मेरा गुस्सा कितने गजब का होता है।.... और सुनो, बक-बक कर रहा हूँ मैं। वाह, क्या खूब ! सुनो, मैं तुम्हारी सूरत तक तो नहीं देखना चाहता, जबतक तुम अपना यह बेहूदापन न छोड़ दो। अगर शाम तक तुम सीधे रास्ते पर न आई, तो याद रक्खो, मुझसे बुरा कोई न होगा।.... हाँ !...'

* * *

पाँच मिनट भी न गुजरने पाए थे कि मियाँ फिर मक़ान में दाखिल होता है, तो देखता क्या है कि बीबी कमरे से निक़ल कर बाबर्चीखाने की तरफ़ जा रही है। मियाँ पर नजर पड़ते ही वह नाक-भौं चढ़ा लेती और जल्दी-जल्दी पैर उठाने लगती है।

मियाँ आँगन में खड़ा हो कर पुकार लगाता है—'सदाबहार, कमरे में मेज पर मेरी घड़ी रक्खी है; सुना ? लेके-आ। चल जल्दी !'

सदाबहार थोड़ी देर बाद कमरे से जवाब देती है—'सरकार, मेज घड़ी पर नहीं है!'

'मेज पर नहीं है ?—तो पलँग के ऊपर देख !.... लाई ?'

'नहीं है सरकार।'

मियाँ ताज्जुब में आकर पूछता है—'पलँग पर भी नहीं है—फिर गई कहाँ ?.... ऐं !.... जरा दूसरी शेरवानी की जेब में तो देख;.... है ?'

'नहीं है सरकार !'

'ऐं !—कह कर मियाँ कमरे की तरफ़ दौड़ता है और घड़ी तलाश करता है—मेज के ऊपर, मेज की दराज में; पलँग के ऊपर, पलँग के नीचे, बिस्तर के अन्दर, इधर, उधर, मगर घड़ी नदारद ! मियाँ कहना शुरू करता है—क्या हुई ?.... कहाँ गई ? .... मैंने मेज पर रक्खी थी। कौन ले गया ? .... सदाबहार, बेगम साहबा से पूछ कर तो आ—जा, जल्दी आ !.... आई ? अजब हालत है इस घर की। कोई चीज रक्खो, क्या मजाल कि फिर मिल जाए। घर में चोर बस गए हैं।.... आ गई—क्या बोलीं ?'

सदाबहार जवाब देती है—'सरकार, बेगम साहबा कहती हैं, मुझे क्या मालूम, अपने दोस्तों से क्यों नहीं पूछते।'

मियाँ बिगड़ कर कहता है—'मेरे दोस्त यहाँ घर में क्यों घुसने लगे ? मैंने कल शाम को घड़ी मेज पर रख दी थी।.... मैं पूछता हूँ, घड़ी कहाँ है—मेज निगल गई ? सदाबहार, जा, उनके कमरे में देख आ ! हो तो जल्दी ला।'

'ला हौल' पढ़ता हुआ मियाँ कमरे से बाहर निकलता है और बबर्चीखाने की तरफ़ मुँह कर कहने लगता है—'अजब हाल है इस घर का। मालिक की घड़ी खो गई है—कौन ले गया ? किसी को क्या मालूम—दोस्तों से पूछो ! वाह-वाह। गोया सब के नजदीक मेरे दोस्त चोर हैं। तुम मुझसे जलती हो जी, मेरे दोस्तों से भी जलती हो!... क्यों री सदाबहार, मिली घड़ी ?

'कहीं नहीं है, सरकार !'

'काहे को होगी! जब चीज चोरी जाए, तो फिर भला वह मिल सकती है? मैं समझ गया घड़ी किसने चुराई है! मैंने खुद कल शाम को घड़ी मेज पर रख दी थी। उसी वक्त एक मेहमान हमारे घर में आया था। कुछ बुरा-सा नाम है उसका! .... सदाबहार, तेरी बेगम साहबा की जो सहेली कल आई थी क्या नाम है उसका ?'

सदाबहार घबरा कर जबाब देती है—

'जी सरकार, कनीज सुल्ताना बेगम !'

और मियाँ चीख कर कहता है—

तौबा! क्या नाम है! क़नीज सुल्ताना—कनीज सुल्ताना! लौंडी की लौंडी—मलिका की मलिका! खूब! नाम रखने के लिये भी थोड़ी-बहुत अक्ल चाहिए। ऐसे बाप भी किस काम के, जिनको अपनी बेटी का नाम रखना तक न आए। इस अकेली की क्या बात, आजकल की सभी लड़कियों के नाम विचित्र होते हैं। .... बस, वह तूफ़ान हो रहा है कि बद-तमीजी की हद हो गई। इससे तो तौबा ही भली या खुदा की पनाह। पहले लड़कियों के नाम होते थे—आयेशा, रबिया, जमीला बगैरह। मगर अब कहानियों तक में ऐसे नाम सुनाई नहीं देते। अच्छे-भले नाम छोड़कर—अब किसी से पूछो कि ऐ लड़की, तेरा क्या नाम है। तो वह जबाब देगी—मिस क़िबलीस सुलैमान, या सालिका सनम या ... क्या कहूँ, लाहौल बिला कूवत! ... कनीज़ सुल्ताना—घड़ी-चोर कहीं की!'

बावर्चीखाने से एक आवाज़ आती है। जैसे कोई देगची ज़ोर से ज़मीन पर पटक दे और अन्दर ऐसा मालूम होता है कि हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा हो गया है। मियां एक मिनट के लिये मुसकिराता हुआ बावर्चीखाने की तरफ देखता। जरा रुकता और फिर शुरू करता है—देगची-बेगची पटकने से कोई फायदा नहीं, और मुझपर गुस्सा होना बेकार है; क्योंकि कोई औरत अपने खाविन्द को नुक़सान नहीं पहुँचा सकती। मैंने जो कहा है, वह बिलकुल सच है। तुम्हारी सहेली कल शामको तुमसे मिलने आई थी। उसके आने से पहले मैंने घड़ी मेज़ पर रक्खी थी। अब घड़ी गायब है, उसका कोई पता नहीं। आज तक हमारे घर से कोई चीज़ चोरी नहीं गई। मगर अब ... अफ़सोस कि तुम्हारी सहेली ही चोर निकली। ...

बावर्चीखाने में और भी बर्तन गिरने की आवाज़ होती है, मगर मियाँ इसकी जरा भी परवाह न कर धड़ल्ले से आगे बढ़ता जाता है—अगर वह माँग लेती, तो मैं कभी देने से न हिचकता। मगर वह अपनी तबीयत पर काबू न रख सकी, मजबूर होकर चोर बन बैठी। अगर उसे घड़ी की ऐसी ही जरूरत थी, तो अपने शौहर से ... हाँ, कौन है उसका शौहर? उसका नाम और पता बताओ। मैं उसे खत लिखूंगा। ...

बीबी गुस्से से उबल रही है। सदाबहार भी सामने नहीं कि उसी को गालियाँ देकर—कोस-कासकर दिलकी भड़ास निकाल ले। बावर्चीखाने की चीजों पर ही गुस्सा उतारती है। कोई उसको चोर बताता तो शायद वह सुनकर चुप भी हो जाती। मगर मियाँ

को अपनी बेचारी सहेली के लिये ऐसी बातें कहते हुए सुनकर वह आपे से बाहर हो रही है। मियाँ को दिल-ही-दिल में खूब गालियाँ दे रही है — मैं इस शख्स के पाले क्यों पड़ी जो यह दिन देखना नसीब हुआ। मेरी प्यारी कनीज़ सुल्ताना और घड़ी-चोर!

मियाँ कुछ देर रुका रहता है, फिर कहने लगता है — मुझे इसका रंज नहीं कि मेरी घड़ी चोरी गई। गई सो गई; कुछ बुरा न हुआ। समझ लो, जान की खैरात थी। मगर मुझे इसका अफसोस है और सख्त अफसोस है कि एक लड़की ने चुराई। और लड़की भी कैसी? एक शरीफ घराने की और सब से बढ़कर तुम्हारी सहेली। . . . यह न समझो कि मैं पीठ-पीछे उसकी बुराई कर रहा हूँ। नहीं, मैं पीठ-पीछे किसी की बुराई करना बहुत बुरी बात समझता हूँ। लेकिन उससे भी बढ़कर जो बुरी बात है, वह चोरी है, सो भी घड़ी की चोरी। एक छोटी सी चीज के लिये इतना बड़ा गुनाह मोल लेना। . . . तौबा तौबा! मेरी घड़ी चोरी गई, मुझे इसकी कोई परवाह नहीं। मेरे पेट में आग लगी हुई है, मुझे इसकी कोई परवाह नहीं। दफ्तर का वक्त हो गया है। मुझे इसकी कोई परवाह नहीं। मेरी घड़ी चोरी चली गई, मुझे इसकी भी कोई परवाह नहीं। जब तक मैं जिन्दा हूँ और मेरा दफ्तर सलामत है, मैं सैकड़ों घड़ियाँ खरीद कर मुफ्त बाँट सकता हूँ। मगर अब वैसी घड़ी मिलने की कोई उम्मीद नहीं। एक साल हुआ, पैंतीस रुपये आठ आने नकद देकर खरीदी थी। यकीन न हो, तो रसीद उठाकर देख लो। . . . हाँ, तो मैं क्या कह रहा था, पीठ-पीछे किसी की बुराई करना बुरी बात है। बस, मैं तुम्हारी सहेली की पीठ-पीछे हरगिज बुराई नहीं करना चाहता। किसी ने क्या खूब कहा है, वल्लाह—

"है चुगलखोर चोर से बदतर, लूट लेता है दोस्ती का घर!"

अब मियाँ की बातें बर्दाश्त करने लायक नहीं रह जातीं, इस लिये बीबी बड़ी देर से उसकी शान में कुछ बड़बड़ा रही है—इस सोहाग से तो रँडापा हजार दर्जे बेहतर है। इसके साथ ही रँडापे के लिये खुदा से दुवाएँ मांगती है। मैके वह जा नहीं सकती, क्यों कि किराया पास नहीं और मियाँ से बेचारी मांगना नहीं चाहती।

मियाँ कह रहा है — . . . और मैं चिट्ठी के आखिर में लिख दूँगा कि इसे नेक राह पर लाने की कोशिश कीजिए — डण्डे से नहीं, बल्कि समझा-बुझाकर और नसीहत से, प्यार-मुहब्बत से। मेरी घड़ी लौटाने की जरूरत नहीं। अगर कहीं भिजवाई भी, तो मैं लेने का नहीं, उसी वक्त लौटा दूँगा। मेरा मतलब इस खत से यह है कि आपको अपनी बीबी की कुदरती कमजोरियों का कुछ पता चल जाए, जिससे आप भविष्य में होशियार रहें और मेरी घड़ी को यादगार की तरह . . .

बात पूरी भी न होने पाई थी कि इतने में बीबी शेरनी की तरह बावर्चीखाने से निकल आई और चीख चीखकर सदाबाहर को बुलाने लगी। मियाँ देखता है कि बीबी

की आँखों में गजब की चमक पैदा हो गई है। वह खूब जानता है कि इस चमक में आनेवाले तूफ़ान के निशान छिपे हैं मगर इसकी जरा भी परवाह नहीं करता। उधर बीवी की साँस इस तरह चल रही है, गोया वह बड़ी दूर से दौड़कर आई है।

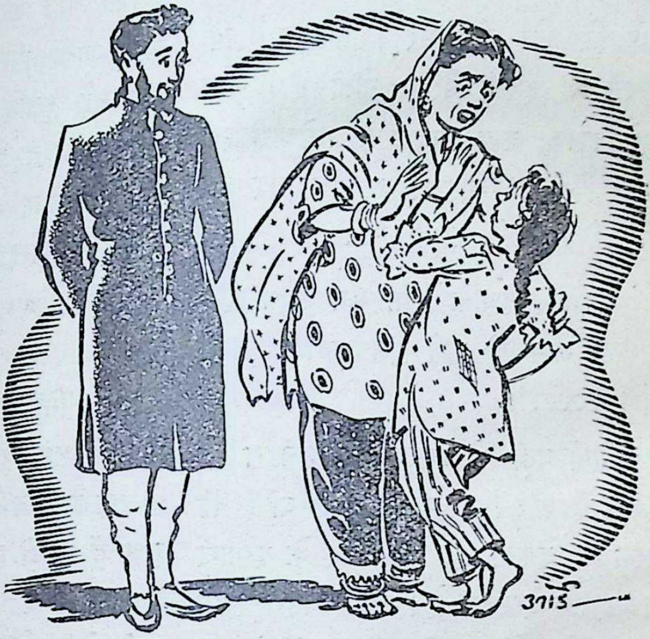

'सदाबहार! अरी ओ सदाबहार! कहाँ मर गई री? क्या कर रही थी मुरदार? आ तो इधर हरामजादी।... यह वक्त झाड़ू देने का है! सबेरे से क्या कर रही थी!'—यह कह कर बीवी उसके मुँह पर तमाचा मार देती और कहती है—'जानती है, मैंने अब तक मुँह नहीं धोया? बधना में पानी रक्खा? क्यों नहीं रक्खा?...' बीवी फिर सदाबहार के मुँह पर तमाचा मारती और कहती है—'साबुन कहाँ है री? नहीं जानती-नहीं जानती? खाना खाना जानती है चुडैल! शह पाकर अब तू शेरनी हो गई है। क्या कहा री? फिर तो कह! अच्छा, अब जबाब भी देने लगी! ठहर, चखाती हूँ मजा!....' इसके बाद ही बीवी बांदी की चोटी पकड़ लेती और उसे लात, घूँसे, थप्पड़ और तमाचे मारती है।

मियाँ चुपचाप खड़ा यह तमाशा देखता है। जब बीवी मार-पीट से छुट्टी पाती है, तो कहती है—क्या समझा है मुझे? यह ज़बान किसी और से लड़ाना। चल, दूर हो यहाँ से! जाकर गुसलख़ाने से साबुनदानी उठा ला। आवाज़ निकाली कि देख,....फिर ऐसा मारूँगी कि हाँ! चल, जा-जल्दी ला! ....आग लगे इस घर में। नौकर ऐसे, और ....सबने मिलकर मेरी नाक में दम कर रक्खा है। सत्यानाश हो ऐसे नौकरों का और ऐसे नौकर रखने वालों का! मैं तङ्ग आ गई इस घर से। खुदा मुझे मौत दे कि इन लोगों से छुट्टी पा जाऊँ। मैं अब्बा को ख़त लिखती हूँ कि आ कर मुझे लिवा ले जाएँ। मैं इस जीने से....और वह हाँफती हुई कमरे की तरफ चली जाती है।

मियाँ सब कुछ सुनता और धीमी आवाज़ में कहना शुरू करता है—ग़रीब सदाबहार मुफ्त में पिटी। कल सिनेमा जाने की इजाज़त न मिली, सहेली घड़ी चुरा ले गई, मैंने साबित कर दिया और कुछ बातें कहीं; बस, जल-भुनकर कबाब हो गई, बेचारी

सदाबहार पर सारा गुस्सा उतारा और मुझे भी जली-कटी सुनाई ।....अरे रे ! देखो न कैसी रो रही है ग़रीब । मुझे इससे बेहद हमदर्दी है । ऐसी अच्छी नौकरानी—जिस में सब अच्छाई ही अच्छाई है और सब से बढ़कर यह बात कि वह चोर नहीं——घड़ी चुराना तो जानती ही नहीं ।....सच है, कोई करे और कोई भरे । ताज्जुब है कि औरतें भी इतनी बेरहम होती हैं । मगर मुझे इसकी क्या परवाह !....बेचारी इस क़दर पिटी है कि छठी का दूध याद कर रही होगी । अरे, यह क्या·...?·

सदाबार हिचकियों के बीच कहती है— सरकार आप की घड़ी गुसलख़ाने में रक्खी है । .....'

मियाँ घड़ी को देखता है, सदाबहरा को देखता है और फिर कनखियों से बीवी की तरफ़ भी देखता है, जो कमरे के दरवाज़े से यह सब देख रही है । उसका चेहरा देखने लायक है और उससे बढ़कर मियाँ का चेहरा—ऐसा जान पड़ता है, जैसे वह मुंह चिढ़ा रहा है; पर सचमुच वह मुसाकिराने की बेकार कोशिश कर रहा है और बार-बार कनखियों से बीवी की तरफ़ देख लेता है। कहता है—'वल्लाह ! मैं भी कैसा भुलक्कड़ हूँ ! सुब्ह् मुँह धोने गुसलख़ाने में गया, तो घड़ी वहीं रखकर भूल आया । अहा हा हा ! कनीज़ सुल्तानाने घड़ी चुराई ! वाह भाई वाह ! यह भी अच्छा मज़ाक़ रहा ।... ऐं ! ही-ही-ही ! बड़ी अच्छी लड़की है वह । क्या प्यारा नाम है उसका—क़नीज़ सुल्ताना ! बिलकुल शायराना नाम है । नाम रखने के लिये भी थोड़ी-बहुत अक्ल चाहिए । ....कनीज़ सुल्ताना ने घड़ी चुराई ! हू-हू-हू, हा-हा-हा !'

अब लड़ाई के मैदान का नक़शा बदल गया है । बीवी धीरे-धीरे एक मलिका की तरह कमरे से बाहर आती है । मियाँ यह देखकर कुछ डरता है । उसकी समझ में नहीं आता कि क्या करना चाहिए । वह एक नई दुलहिन की-सी हँसी हँसने की कोशिश करता है, मगर नाकाम होता है। बीवी के तेवर बदले हुए दिखाई देते हैं, और उसके पास कोई खंभा भी नहीं है कि...

फ़रिश्ते आसमान से यह पुर-दर्द दृश्य देखते और घबराकर रह जाते हैं ।

मगर मियाँ सँभलकर कहता है—'अरे! मैं भी कैसा बेवक़ूफ़ हूँ ! दफ्तर का वक्त हो रहा है और मैं यहाँ बेकार बातों में उलझा हुआ हूँ । घड़ी इधर दे——शाबास सदाबहार, शाबास ! तू आज बिला वजह पिटी। घड़ी चोरी गई——क्यों ? ख़ैर, कोई परवाह नहीं, मैं तुझे एक साड़ी ला दूँगा । बस तनख्वाह मिलने दे । बड़ी अच्छी नौकरानी है तू,....और शाम को सिनेमा देखने भी जाना बेगम साहबा के साथ । समझी ?.... आज का क़िस्सा मुझे उम्र-भर याद रहेगा। लाहौल बिला कूवत ! दफ्तर का वक़्त हो रहा है, भागना चाहिए ।'

गीदड़ की शामत आती है, तो वह शहर की तरफ़ भागता है और मियाँ बीवी से डर कर दफ़तर का रास्ता नापता है । फिर दिन-भर बीवी के गुस्से से बचने और उसको मनाने की तरकीबें सोचता है । ख़ास-ख़ास

दोस्तों से राय लेता है। कोई कहता है—'आँखों में आँसू भर कर माफ़ी माँग लो।' कोई कहता है—'समझा-बुझाकर राज़ी कर लो।' कोई कहता है—'नाक रगड़नी पड़े, तो भी कोई हर्ज़ नहीं। कोई कहता है—'गोली मारो, तलाक दे दो।' मतलब यह कि जितने मुंह, उतनी बातें।

दूसरे दिन—मियाँ के सामने नाश्ता रक्खा है। वह मज़े ले-लेकर खा रहा है। खाना गरम है और ऐसा अच्छा पका है कि मियाँ का दिल बाग़-बाग़ हो जाता है। बीवी के हाथ की पकी हुई तरकारी ऐसी मज़ेदार है कि मुहल्ले-भर में बाट देने को जी चाहता है। इसलिये कि बीवियो देखो, तरकारी इस तरह पकाते हैं। चाय का क्या कहना। ऐसी बढ़िया चाय होटलों में तो क्या, शानदार टी-पार्टियों में भी नसीब नहीं होती।

मियाँ सफल होता है। वह अपनी बीवी को किस तरह राज़ी करता है—इसका हाल यहाँ नहीं लिखा जा सकता। यह एक ऐसा भेद है, जो किसी कीमत पर भी ज़ाहिर नहीं किया जा सकता। सिर्फ इतना लिखना काफ़ी है कि मियाँ को न बीवी की मिन्नत करनी पड़ी, न तलाक की धमकी सुनानी और न नाक रगड़ने ही की ज़रूरत पेश आई।

मियाँ के दोस्तों और ख़ासकर सदाबहार की राय यह है कि वह कलाई की सुनहरी घड़ी और ऊँची एड़ी का जूता जो मियाँ शाम को खरीद लाया है, वही उसकी कामयाबी का असली भेद है। दोस्त कहते हैं कि मियाँ घड़ी और जूते नीलाम से ख़रीद लाया है, मगर मियाँ इसका ज़ोरदार लफ़्ज़ों में विरोध करता है। कहिए, आप की क्या राय है?

आदिवासी भाइयों के बीच में

— वामन चोरघडे

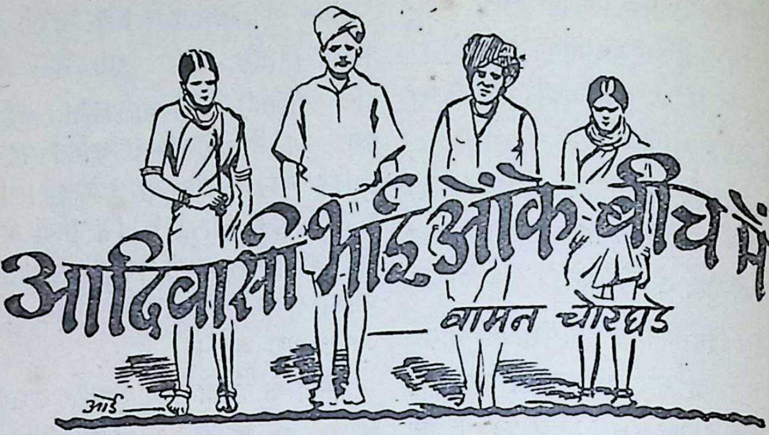

आदिवासियों के जीवन की एक झाँकी देखने का मौका अभी अभी मिला था। बहुत दिनों से इच्छा थी कि इनके जीवन का, रहन सहन का, कुछ परिचय पाऊँ। कुछ खास उद्देश्य को लेकर मैं इन आदिवासियों के बीच गया था। यही उद्देश्य कि इनकी कला और काव्य का, इनमें घुल मिलकर आस्वाद लूँ।

जो कुछ मैंने देखा और पाया, उसे शहरी भाषा और भावना में उतारना आसान नहीं है। मन में आता है कि इन वनवासी भाइयों के जीवन का सच्चा परिचय हम तड़क-भड़कदार रहन-सहनवालों को कुछ न कुछ सिखाने की क्षमता रखता है। कहते हैं कि किसी भी जाति या कौम की सभ्यता का परिचय हमें उसकी कविता, चित्र-कला, गीत और कला में मिलता है। अगर यह सच है तो इनके गीतों की सादगी, उनमें जंगल में सनसन बहनेवाली हवा की तरह भरी हुई भावनाएँ—क्या वे सब उनका परिचय सचमुच में करा देंगी? वैसे तो कुछ ही घंटे मैं इन वनवासी भाइयों में रहा। वहाँ की शीतल सुहावनी हवा, जंगल में से सुनाई देनेवाली परिवर्तनशील तरह तरह की आवाजें, अपनी नित नई रँगरेलियां करनेवाले रँगीले पंछी—वैसे तो ये सब कई बार देख चुका था। लेकिन उस वातावरण में आसमान की नीली चट्टान पर अनंत काल से नित्य नियमित रूप से दिखाइ पड़ने वाले चाँद और सितारे भी कुछ अलग से, अनोखे से जान पड़ते। आज भी जब किसी कारण से उन दिनों की याद मनमें आती है, न मालूम क्यों और कैसे मन अचानक अधीर, भारी भारी सा, हो जाता है।—मन ह्वै जात अजौं वहै।

इन आदिवासियों के कुछ नृत्य और गीतों का परिचय यहाँ कराने की कोशिश करता हूँ। इन नृत्यगीतों में से 'करमा', 'ददरिया', 'सजनी' और नृत्यों में से 'सैला', 'चाचर', 'बैगा' और 'बेमर' का परिचय दे रहा हूँ। जिन आदिवासियों के ये गीत और नृत्य हैं, वे मंडला ज़िले के निवासी हैं। सतपुड़ा के घने जंगलों में इनका जीवन बीतता है। नर्मदा माई की गोद में ये लोग पलते पनपते हैं। रंग इनका होता है इस देश की भूमि

जैसा। और इनका रूप है जंगल की आँधी और पानी में भी अडिग, अचल रहनेवाली चट्टानों जैसा। जीवन इनका जंगली खरगोशों और तीतरों जैसा। खानपान और रहन सहन—इसका हाल तो न पूछना ही ठीक है। अज्ञान इतना कि किसी खाई में पड़े पत्थरों जैसा—लकीर खींचो फिर भी कोई असर नहीं। जब कभी ये लोग हमारे बीच आते हैं, पानी से बाहर निकली हुई मछली की तरह तड़पते हैं, शहर की आबहवा से चौंक जाते हैं, डरते हैं। इनका धरती की ओर निहारना और चुप रहकर टुकुर टुकुर देखना—ख़ैर, जाने दीजिये इन बातों को और पढ़िये इनका 'करमा' गीत।

करमा गीत :

इन गीतों में होती है इनके दैनिक कर्मों की कहानी और मनमें उठनेवाले भावों की भरमार। अक्सर कुछ रसीलापन—दिन-रात की मेहनत से ऊबे हुए दिलों को बहलाने का और दुनियाँ से अलग होकर भी दुनियाँ में रहने का प्रयास इन गीतों में पाया जाता है। आजकल कुछ सुधार और संस्कार होने के कारण ये गीत भक्ति, आदर्शवाद, देशप्रेम अदि का वर्णन भी कर लेते हैं।

राग और नृत्य की दृष्टि से इन गीतों में निम्न प्रकार होते हैं—

(अ) करमाझूमर-झूम झूमकर, मस्त हो कर नाचे और गाये जाते हैं इसलिये 'झूमर करमा' नाम दिया गया है। बतौर मिसाल के यह गीत देखिये—

— गीत —

हाय, चोला रोवत है राम
बिना देखे परान चोला रोवत है रे,
टेक दादर झाँवर झोड़ी ढूंढौं
डोंगर बीच मझार, भैया
सबै पतेरन तोला ढूंढौं
कहाँ लुकै है जाय
—चोला रोवत है रे—(१)
टेक मायाला तै कसके छोड़ै
सुरता मोर भुलाइ, भैया
मोर मड़ैय्या सूनी करके
कहाँ करे पहुनाई
—चोला रोवत है रे—(२)
टेक इन नैनों में नींद न आए
हिरदा होइ गै सूना, भैया
डोंगर डहरी तोला ढूंढौं
बिपदा बढ ग दूना
—चोला रोवत है रे—(३)

चोला = तन, शरीर; परान = प्राण; दादर= ऊँचा भाग; झाँवर = झाड़ी; झोड़ी = नदी-नाला; पतेरन = तरफ; तोला = तुजको; लुकै = छुपे; मायाला = प्यारको; सुरता = याद; मड़ैय्या = झोपड़ी; पहुनाई = मेहमान-दारी; हिरदा = हृदय; डहरी = गली

यह विरह-गीत है। प्रेमिका अपने प्रेमी के वियोग में गाती है। उसका प्रेमी उसे

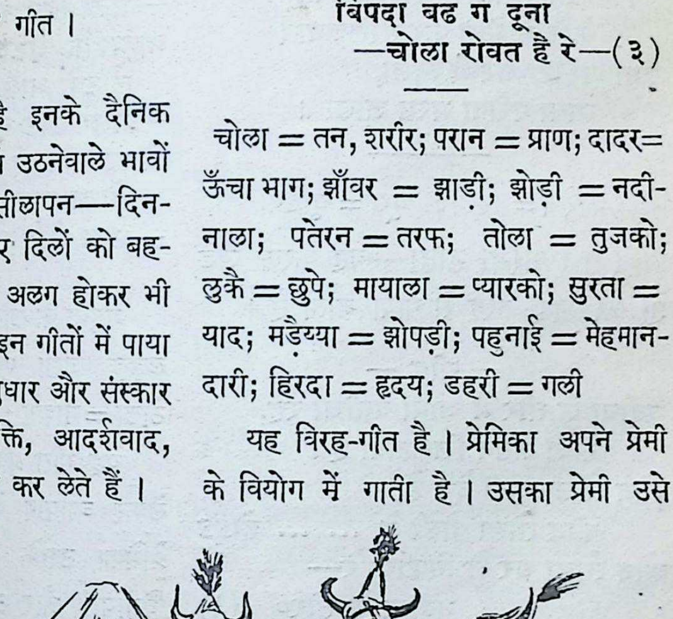

छोड़कर चला गया है। इस तर्ज के कुछ राष्ट्रीय गीत भी अभी अभी समाज शिक्षा की हलचल में रचे गए हैं।

(ब) करमा लहकी—इन गीतों में एक उल्लास है जिससे गाने और नाचनेवाला अत्यधिक प्रभावित होकर लहकने लगता है। इसका उदाहरण लीजिये—

— गीत —

वैठ पहुना बिडी पी ले,
पहुना मगन वडी माया लगे।
पानी तो बरसे वहीं से धूरा,
तोरे राखो निशानी गढा दे चूरा।
माई नरबदा बहै तो पानी,
माया झैटोरे जबै तो जानी।
करिया तो स्याही कगद लिखना,
कैसे के मेटो करम लिखना।
ह़ात चमीटा गरे में माला,
माया परौना भरम जाला॥

करिया = काली; चूरा = चूडियाँ

(स) करमा ठाढा—यह करमा खड़े हो कर सादी तरह से गाया जाता है।

— गीत —

नदीया के तीर में आमा वगीचा रहे,
सेवा जतन सिरझाया है।
कोन तोला गारी देत है,
कोन तोला बोली रे … … होऽऽ
कोन तोला घर लै निकारा रे—
नदीया के तीर० (१)
आंधर झँवर आंधी आइस,
आंधर झाँवर रैरा रे … … होऽऽ
बडेरा में वह गये तो परना रे—
नदीया के तीर० (२)
चौगिरदा लै पानी बरसै,
छुप गए खूब अंधेरा रे … …होऽऽ
डोंगर वीच राह तो भुलाया रे—
नदीया के तीर० (३)

रैरा = हवा; बड़ेरा = बाढ़

(ड) बैगानी झूमर—बैगा जाति का यह एक अलग गीत-प्रकार है। इसका नृत्य भी भिन्न है। जिस तरह करमा झूमर में झूम कर गाते हैं उसी तरह ये गीत भी गाए जाते हैं।

— गीत —

वैला चलिन राई घाट करौंदे,
बैला छोटे छोटे रे।
डोंगरमाँ आगी लगै जरत है पतेरा,
सुन सुन के हीरा मोर जरत है करेजा
—भला छोटे छोटे रे
कुटकी के पेज रांधे माहुल के दोना,
तोरे बिना जोडी मोर होइगै सुना
—भला छोटे छोटे रे
महुवा के लाटा खमेर ठोला,
लौटके आवै हमार टोला
—भला छोटे छोटे रे
पिपर के पत्ता पवन हिलना,
चोला तरस गै कवै तो मिलना
—भला छोटे छोटे रे

महुवा के लाटा = महुआ से बनाया हुआ लड्डू जैसा एक पकवान; खमेर = वृक्ष; ठोला = नाश्ता; टोला = गाँव

यह गीत प्रणय-गीत है। प्रेमी बैलों को लेकर व्यापार के लिये चला है। उसकी प्रेमिका उसके विरह में किस तरह दिन बितायगी और उसका चित्त किस तरह बेचैन होगा इत्यादि वर्णन इस गीत में है। कल्पनाएँ सादी हैं। लेकिन रोजमर्रा के अनुभव इस गीत में कला का रूप लेकर मुखरित हो उठे हैं।

(इ) करमा रागिनी—ये करमा गीत बैठकर गाए जाते हैं। इसमें राग का महत्व

है। सिर्फ एक या दो नाचते हैं और बाकी बैठ कर गातें हैं।

— गीत —

पुरवैय्या वैरन हवा चले,
तेरा मेरा मिलना अब कैसे होय
एक—तेरा मेरा मिलना कूएं पे होय
दूसरा—ननदिया बैरिन पानी भरे—
तेरा मेरा मिलना०
एक—तेरा मेरा मिलना चोके पे होय
दूसरा—जेठनियाँ बैरिन चौका करे—
तेरा मेरा मिलना०
एक—तेरा मेरा मिलना डहर में होय
दूसरा—पडोसिन बैरिन डाँटा लगै—
तेरा मेरा मिलना०

डाँटा लगै = छुप छुप के देखना

इस गीत में प्रेमी और प्रेमिका अपनी भेंट-मुलाकात के विषय में चिंतित हैं। हरेक सुझाव या उपाय उनके निष्फल जा रहे हैं। पूरब की हवा चलने लगी है। अब विरह सहा नहीं जाता। मिलन बिना इस हवा का आगमन बैरिन जैसा दिल में काँटा चुभा रहा है।

ददरिया :

दादर याने ऊँचे स्थलों पर काम करते करते गाए जानेवाले गीतों को ददारिया कहते हैं। आदिवासियों के ये वे गीत हैं जिन्हें ये लोग पहाड़ों पर लकड़ी पत्ता तोड़ते हुए या खेतों में काम करते हुए गाते हैं। इन गीतों में रसिकता मुख्यत: पाई जाती है। प्राय: पुरुष और स्त्री ये गीत होड़ा होड़ी से गाते हैं। एक पद पुरुष कहता है और दूसरी ओर से दूसरे पद में स्त्री उसका जबाब देती है। राग की दृष्टि से ददरिया के कई प्रकार हैं। लेकिन इसमें दो अधिक प्रचलित हैं। एक—ददरिया पठारी और दूसरा—ददरिया कछारी।

(अ) ददरिया पठारी—ये गीत पठारी इलाके में गाए जाते हैं।

— गीत —

एक—कोरा लैले चिरैय्या गोदी में लरका,
कोरा लैले रे दो ऽऽ स०
दूसरा—चले आना, चले आना अकेले
हमारे गलिया, — कोरा लैले०
एक—गलियाँ तो रींगे गडिन गोटी,
अंग छूटे पसीना डुलादे धोती—
कोरा०
दूसरा—लाल बछेरा पे जीन कसना,
भग जाओ सबेरे रात बसना —
कोरा०
एक—आई नरवदा कि लोलन माँ,
बह जावै चिरैय्या हिलोरनमाँ —
कोरा०

चिरैय्या और कोरा = ये पदपूरक हैं। इनका कोई खास अर्थ नही है।

(ब) ददरिया कछारी — ये गीत मंडला हवेली इलाके में गाए जातें हैं।

— गीत —

पुरुष—हे मडलेवाले तेरा नैना नजर में
झूलै यार हे मडले वाले रे दो.
स्त्री—हे मडलेवाले जरा सुनना, बिसर
मत जाना, हमारी गली आना,
हे मडलेवाले रे दो.
पुरुष—पानी तो बरसै पतेरा कोधी,
जरा हँसके तो देखो हमार कोधी,
हे मडलेवाले रे दो.
स्त्री—ऊपर के टोला बोये तो बारी,
तोहे देखन के लाने ललक भारी,
हे मडलेवाले रे दो.
पुरुष—माई नरवदा बडी तो धरमी,
बिज नैया डुलादे लगी तो गरमी,
हे मडलेवाले रे दो.

स्त्री—गइन बजरिया लाइन भाँटा,
मोरी भीजे चुनरियाँ उढा दे छाता,
हे मडलेवाले रे दो.

कोधी = तरफ; बारी = बाड़ी; लाने = लिये.

यह प्रेम का गीत है। इसमें काव्य कुछ नहीं है। कहने की तर्जसे और ढोल्क के ताल से यह गीत और इसके साथ के नाच सुनने देखने में अच्छे लगते हैं।

सजनी :

ये गीत प्यार के प्रसंगों में गाए जाते हैं। जब किसी के मेहमान, प्रेमी या नाते रिश्तेदार आते हैं उस समय मारे खुशीके इन गीतों पर नृत्य सजाया जाता है। प्रेमी के घर आने पर प्रेमिका ने उसके स्वागत में या शिकायत में गाया हुआ यह गीत 'सजनी' कहलाता है। इस में लोग पास-पास सट कर बैठ जाते हैं और टोंली में से एक या दो जन नाचते हैं। मंडला जिले की कहार जाति में इन गीतों का चलन अधिक है।

— गीत —

स्त्री—मुरला रे घर साजन आए
नाचो पंख पसार
घुमड़ घुमड़ के बदरा छाये
शीतल चले बयार
पुरुष—दूर देशके हम परदेसी,
करलो कुछ सतकार
स्त्री—का चाहिये जिमनार तुम्हारे,
का चहिये सतकार
पुरुष—तुम्हारे भोजन चहिये,
नैनों का सतकार
स्त्री—ऐसी बातें कहो ना हमसे,
हो जइ है तकरार
पुरुष—भोला भाला रूप तुम्हारा,
कैसे देऊँ बिसार
स्त्री—आओ साजन हिलमिल कर के
पुरुष—आओ सजनी हिलमिल कर के
दोनों—बंद करें तकरार.

मुरला = मोर; बदरा = बादल; बयार = हवा.

नृत्य के प्रकार :

ऊपर कुछ गीतों के प्रकार दिए हैं। इन प्रकारों में प्रधानता गीतों की होती है और नृत्य उन गीतों में की भावनाओं को प्रभावी करने के लिये होता है। अब नृत्य के खास प्रकार जो प्रचलित हैं, उनको लेता हूँ।

नृत्यों में गीत प्रमुख नहीं। सिर्फ ताल के लिये कुछ एक दो पद चुन लिये जाते हैं और उन्हीं को दोहराते दोहराते नृत्यकी लय बढ़ती जाती है। नृत्य के प्रमुख प्रकार ये हैं—

(१) सैला नृत्य —

सैल याने शैल, पहाड़। यह फौजी नृत्य है। पुराने जमाने में आदिवासी लोग पहाड़ों पर रहते हुए, हाथो में भाला लेकर यह नृत्य प्रस्तुत करते थे। पहाड़पर भाला लेकर प्रस्तुत किया हुआ नृत्य याने सैला नृत्य! नाचते समय जो गीत गाए जाते हैं उनमें राजाओं की वीरता का वर्णन होता है। यह नृत्य बडा जोशाली और वीररसपूर्ण होता है। गाने के लिये कुछ पंक्तियाँ उठा ली जाती हैं। जैसे —

ऐले डुंगरिया पैले डुंगरिया
बीच में रहे मट्टा
मट्टा के ऊपर कीक मारे
झूलिया मँजूरा.

मड्डा = टीला; झूलिया मँजूरा = पूँछवाला मोर.

(२) चाचर नृत्य—

यह नृत्य डंडियों की मदद से प्रस्तुत किया जाता है। लोग गोल घेरे में टोली टोली से बँटकर और डंडियाँ बजा कर नाचते हैं। ताल के लिये एकाध गीत की पंक्ति उठा लेते हैं। जैसे—

तरना को नाना हेमाकलारी
तेरे अंगना

वड़े मतवारी तोर संग बारे
दोऊ बड़े नाचवारे.

(३) बैगा नृत्य—

मंडला जिले के एक विभाग-विशेष में बैगा जाति बसती है। इस जाति का परिचय आदिवासियोंपर लिखीं हुई किताबों में दिया गया है। इस जाति का यह बहुत ही प्रभावी नृत्य है। इसमें शरीर को बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। नाचने वालों के हाथों में ताल बजाने के लिये लकड़ी और बाँस की बनी हुई एक गुलेल सी रहती है जिसे वे लोग चटकोला कहते हैं। जिसमें से चटक चटक आवाज निकलती है। ताल के लिये एकाध पंक्ति उठाली जाती है। जैसे—

लड़नी पड़ गई **बालाघाट हे थाने दार.**

लड़नी = लड़ाई.

(४) बेमर नृत्य—

यह भी बैगा जातिका है। इस नृत्य में नाचने वाले दो टोलियों में बँट जातें हैं और एक टोली दूसरी टोली के कंधों पर चढ़कर नृत्य करती हैं। इन बैगों के खेत पहाड़ी टीलों पर बने रहते हैं, जिन्हें बेमर कहतें हैं, जिन पर से इस नृत्य का नाम रखा गया है। जिस तरह वेमर खेत का जोतना कठिन है उसी प्रकार यह नृत्य भी कठिन है। गीत के लिये एक दो पंक्तियाँ इस तरह होतीं हैं—

हाथ में छल्ला, गरे में माला,
पेट कटारी माया लगाये हो लछमन देवरा

कटारी = कपट; लछमन देवरा = जैसे सीता माई लछमन देवर से मानो शिकायत कर रही है।

इन नृत्यों को प्रस्तुत करते समय जो वाद्य काम में लाये जातें हैं उनमें से एक ढोलक जिसे मादर कहते हैं, दूसरी टिमकी, जो मिट्टी के कटोरे जैसे बर्तन पर चमड़ा मढ़कर बनाई जाती है और जो कमर में बांधकर बाँस की लकड़ियों से बजाई जाती है। तीसरा चटकोला जो बैगा नाच में काम में लाया जाता है और जिसे लकड़ी और बाँस की कमान से बनाया जाता है। इन वाद्यों के अलावा मँजीरा, बाँसुरी, थाली आदि भी काम में लायी जाती है।

वास्तव में नृत्य वह दृश्यकाव्य है। इसे शब्दों में बांधकर आँखों के सामने नहीं रखा जा सकता। देखने से इसकी पूरी पूरी कल्पना आती है। और उस में कितना उल्लास, रस, मस्ती होती है इसे तो अनुभव ही किया जा सकता है। इन नृत्यों की विशेषता यह है कि इस में आम तोर पर टोली की टोली शामिल हो सकती है। सामाजिक दृष्टि से यह अनुकरण की चीज है। नागरी नृत्य में यह चीज़ अनोखी है। इस नृत्य को

देखते समय ताल और स्वर में दर्शक अपने को भूल जाता है और हाथ या पैरों से ताल देने लगता है। कष्टमय जीवन से कुछ समय के लिये छुटकारा पाकर मन को आराम और ताज़गी पहुँचाने की इन नृत्यों में विशेष सामर्थ्य रहती है। वैसे तो आदिवासियों का जीवन याने पगपग पर मौत को बुलाना है। न जाने कब और कैसे मुसीबत आ खड़ी होगी, कोई बता नहीं सकता। ऐसे जीवन में दिल को हिम्मत देने के लिए इन नृत्यों का कितना उपयोग हो सकता है, यह जानने की बात है।

आदिवासियों के नृत्य और काव्य का पूरा पूरा परिचय तो यहाँ नहीं दिया जा सका। समय, अनुभव और अवकाश की कमी! स्वल्प परिचय इस लिये दिया है कि जिन्हें हम लोग पिछड़े हुए, जंगली कहतें हैं, उन से भी कुछ सीखा जा सकता है। आज कल के नागरिक जीवन में जो स्थिरता, एकसापन और स्वार्थपरता आ गई है उसे किस तरह दूर किया जा सकता है, इस पर बड़े लोग विचार कर रहें हैं। पिछड़ी हुई जातियों के उत्थान का प्रयत्न भी जारी है। ऐसे समय में साहित्य और कला का आदान-प्रदान ज़रूरी है। इन पहाड़ी गीतों में शुद्ध हवा की तरह ताज़गी और दिल को तर कर देने लायक जरूर कुछ है। इन में सुख-दुख की भावनाएँ प्रगट की गई हैं बड़ी उत्कटता से। छोटी छोटी बातों से इन आदिवासियों के शरीर में वास करने वाला दिल सुखी हो जाता है और जरा जरा सी बातों से उसमें दर्द पैदा हो जाता है।

[आदिवासियों के नृत्य और गीतों का एक विशेष कार्यक्रम गोविंदराम सेक्सरिया कॉमर्स कॉलेज में वार्षिक स्नेह-संमेलन के अवसर पर दिनांक १९ डिसंबर १९४९ को प्रस्तुत किया गया था। हमारे प्रांत के राज्यपाल परमश्रेष्ठ श्री. मंगलदास पक्वासाजी के कर कमलों-द्वारा इन आदिवासियों के लिये परितोषिक वितरित किये गये थे। गवर्नर महोदय ने इन आदिवासियों की कला के लिये विशेष सहानुभूति-पूर्ण दिलचस्पी बतलाई और उनकी सहायता के लिये ५०१ रु. भेट में दिये। नागपूर में इस तरह का कार्यक्रम एक नयी, अनोखी चीज़ थी। नगर के रसिक सज्जनों ने इसे बहुत पसंद किया था। इस कार्यक्रम के लिये कॉलेज के प्रधानाचार्य श्री. मिलखीराम तोखीजी ने लेखक को विशेष रूप से जबलपूर के इस मंडला जिले के समीप काल्पी गांव में भेजा था। मध्यप्रदेश के शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर श्री. फ्रैंकलिन साहब की सहायता से यह कार्यक्रम आदिवासी छात्रों को यहाँ लाकर प्रस्तुत करना संभव हो सका।]

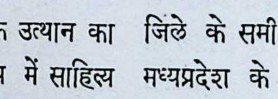

तेलुगु:

भविष्य

[नोरि नरसिंह शास्त्री]

१

आज से छः हजार वर्ष पूर्व संसार में कलि-पुरुष का प्रवेश नही हुआ था। द्वापर का समय था। धर्म-धेनु के दो पाँव कट गये, फिर भी शेष दोनों के सहारे ज्यों त्यों कर वह अपना काम निकाल लेती थी। ऋषि मुनियों पर अभी नैमिश-वन की राह लेने की नौबत नहीं आई थी। अतः भारतवर्ष में यत्र-तत्र पवित्र एवं मनोहर आश्रम निर्मित कर त्रिकालविद् एवं तपस्वी सत्यर्षि निवास कर रहे थे।

ऐसे द्वापर में भार्गव नामक एक महा कवि था। उस ऋषि पुत्र के न कोई परिवार था, न भाई-बंधु। जिसे वह अपना कह सके, न ऐसा कोई गृह था न ग्राम था और न देश। उसकी आयु कितनी थी, इसका भी पता किसी को नहीं था। जब भी देखो, वह एक बालक की तरह दिखाई देता। वह इस विस्तृत संसार एवं अनंत समय में सदा लीन रहता था; यही कारण है कि उससे पृथक उसके अस्तित्व का भान नहीं होता। छहों ऋतुओं में अपनी दिव्य वीणा के तारों को झंकृत कर, अमर संगीत लहरियाँ बहाते हुए गाँव-गाँव, नगर-नगर एवं वन-वन में भ्रमण करता रहता था। उसके संगीत का न कोई स्थान था, न समय ही। कभी कभी मूसलाधार बरसानेवाली मेघावृत प्रावृट् निशाओं में, सलिल-संगीत के स्वर-लय में अपनी रागिनी मिलाकर अद्भुत-रस की वर्षा कर देता, तो वनदेवियाँ चकित हो, एक टक उसकी ओर निहारा करतीं। भयंकर ग्रीष्म के मध्यान्ह में जब सूर्य अपने खर-किरण-जाल से पृथ्वी को संतप्त कर देता, तो उसके गीतों के स्वर वन प्रांत के तरु-कोटरों व गिरि-गह्वरों में गूंजा करते! किसी अज्ञात प्रदेश से निकल कर, फिर किसी अज्ञेय देश की ओर कदम बढानेवाले भगवान भास्कर के अभिमुख हो, साँज-सवेरे अपने अव्यक्त कल-नाद से स्थावर-जंगम प्रकृति को सम्मोहित बना देता! अल्प काल में ही ऋषि-मुनियों की यज्ञ-शालाओं में जाकर अमर साम-गीत कहे जाने योग्य अपने गीतों से वहाँ के तपस्वियों को विस्मय-सागर में डुबो देता। ऐसे प्रशांत व मोहक प्रदेशों के अतिरिक्त, जन-समूहों से ठसाठस भरे हुए सुसभ्य नगर भी यदा-कदा उसकी गीत-माधुरी का स्वाद पा लेते जब कभी वह गलियों में, वीणा की तंत्रियाँ छेड़ते हुए गुजरता तो व्यर्थ के अर्थ-चिंतन में भूले हुए प्राणी भी कुछ क्षणों को उस गीत-जनित ब्रह्मानंद के प्रभाव से आत्मविस्मृत हो जाते। पत्पश्चात् मानों किसी दिव्य सुषुप्ति से जाग कर अपने निन्यानवे के चक्कर में पड़ जाते।

किन्तु आश्चर्य है, उनमें से एक भी भार्गव से दो बोल नहीं बोल लेता! उसके नाम, गाँव तथा जन्म का पता लगाने की इच्छा किसी के भी मन में नहीं उठती। उसकी कविता ही की भांति उसका सारा वृत्तांत उन्हें अदभुत तथा आनंदप्रद प्रतीत होने से उससे कोई किसी भी तरह का प्रश्न नहीं करता। ठीक ही तो है, अपने मृदु मधुर आलाप से समस्त विश्व को आप्लावित करनेवाली वासंती रसवंती कोयल से उसका नाम कोई पूछ सकता है? स्वच्छंद गति से उछलते कूदते फाँदते हुए बीच में प्रस्तर खंडों के प्रतिबंध के सन्मुख रुक झुक के, फिर द्विगुणित वेग के साथ नृत्य-धावन करनेवाली सरिता का उद्गम-स्थान कोई क्या बतावे? सत्य-स्वरूपी प्रणव का जन्मक्रम जानने की आवश्यकता ही क्या है?

संसार में ऐसा कोई भी विषय नहीं रहा जो भार्गव के अनंत-गान की सीमा से अच्छूता रहा हो। अनंत ब्रह्मांड, अगाध सागर, विचित्रताओं

की समाकृति यह प्रकृति, मानव कल्पना की पहुँच में भी बाहर के चौदहों भुवन, अशेष गोल, इन सभी का वर्णन वह अपने गीतों में कर देता। उसकी कविता में विलीन होने के लिये कितनी ही उदात्त वस्तु क्यों न हो, उदात्त नहीं होती; सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु भी तुच्छ नहीं होता। सृष्टि के समस्त पदार्थ उसके संगीत रस में एकाकार हो, प्रवाहमान बनते। साधारण अथवा असाधारण, जिस किसी भी विषय को लेकर वह गान करता— सबको अद्भुत लगता। वह विद्वान् था अथवा मूर्ख, ज्ञानी था या अज्ञानी, कोई नहीं कह सकता था। पृथ्वी, आकाश, पवन, समुद्र, अरण्य, विजन-प्रदेश, जनपद, अंतःकरण तथा समय इन सब में विद्यमान कोई अद्भुत तत्व उसे सर्वदा घेरे रहता। उसी अद्भुत की अनुभूति उसकी कविता के साँचे में ढल कर राग रस के रूप में प्रवाहित होती!

२

बालक के रूप में, विश्व के समस्त अद्भुत तत्वों का गान करते हुये लोक-भ्रमण करनेवाले भार्गव के लिये विश्व का अद्भुत क्रमशः भार बनता गया। न केवल उसी को, वरन् उसके द्वारा समस्त प्रकृति को आनंद देनेवाला वही अज्ञात सृष्टि का 'अद्भुत' कालांतर में उसके लिये दुस्सह बनगया उसे प्रतीत होने लगा कि अतीत, भविष्य तथा वर्त्तमान का स्पष्ट परिज्ञान प्राप्त किये बिना उसके हृदय का भार हल्का नहीं हो सकेगा।

ऐसी दशा में एक दिन सहसा उस ऋषिकुमार का स्वर मंद पड़ गया; हस्तांगुलियाँ प्रकंपित हुईं, मन जडवत् निष्क्रिय बना; निदान वीणा की तंत्रियाँ ढीलीं पड़कर स्वर-सुधा से कोसों दूर जा पड़ीं।

फिर भार्गव क्षण भर के लिये भी न रह सका। सृष्टि अद्भुत है, यह ज्ञान उसके लिये अपर्याप्त हो गया। काल का स्वरूप जानने की तृष्णा असह्य हो उठी। वीणा के स्वर हीन बनते ही वह, त्रिकालदर्शी, एवं नारायण के अमर-तत्व श्रीवेद-व्यास भगवान की सेवा में दौड़ा। उनकी चरण-सेवा को छोड़ अन्य सारी चिंतायें उस समय उसके मन से अलग हो गईं।

विषण्ण तथा आर्त वदन लिये अपनी ओर भागते हुए आनेवाले उस कुमार को देख भगवान-व्यास जी बोले—वत्स! तुम तो बड़े भाग्यवान हो! तुम में यह दीनता कैसी?

भगवान के चरणों में भार्गव गिर पड़ा। बोला—महात्मन्! त्रिकालदर्शी आपके चरणों में बैठ कर भूत भविष्य तथा वर्त्तमान को समझने की शक्ति प्राप्त करने की इच्छा से यह अकिंचन, आपकी शरण में आ गया है।

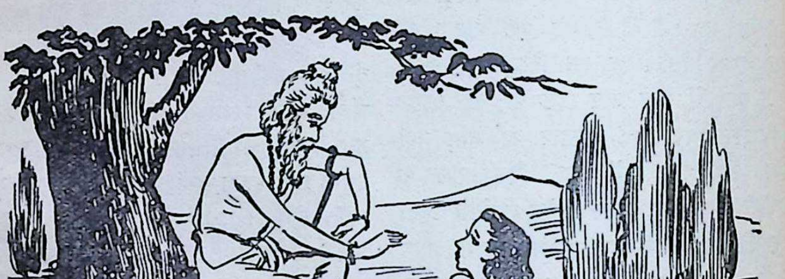

“भूत भविष्य एवं वर्त्तमान के ज्ञान से तुम्हें मतलब? पागलपन की बातें छोड़ कर अपनी अद्भुत संगीत सुधा मेरे कानों में घोलो”। “नहीं भगवन! सृष्टि का यह अद्भुत मुझे खाये जा रहा है। मेरी सहन-शक्ति टूट गई है।

त्रिकाल-ज्ञान की भीख दे कर मुझे इस ‘अद्भुत’ के पंजे से छुड़ाइये प्रभु !”

“वत्स ! तुम भ्रम में हो । त्रिकाल-ज्ञान तुम्हें शांति नहीं दे सकेगा । मेरी बात मानो”

“आपके वचनों का प्रतिवाद मैं नहीं कर सकता । किंतु इस ‘अद्भुत’ के बोझ से मैं दबा जा रहा हूँ । मुझे शांति मिले या न मिले, लाभ हो अथवा हानि, पहले यह भार तो हल्का हो ले । त्रिकाल-ज्ञान प्राप्ति-पर्यंत आपके चरण नहीं छोड़ूँगा । मुझे बचाइये, भगवन् !”

भगवान व्यास जी का हृदय दयार्द्र हो उठा । वे देर तक ध्यान मग्न रहे । भार्गव ने उनके चरण नहीं छोड़े । निदान भगवान ने कहा—।

“उठो वत्स ! चरण छोड़ो । तुमने तो आत्मघाती वर माँगा है । इसी कारण उसे देते मेरा जी नहीं मानता है । चूँकि तुम्हारा आग्रह अधिक है, मैं इस समय तुम्हें भूत का ज्ञान देता हूँ । इस से संतुष्ट हो जाओ ।—अब तुम अपने नेत्र बंद कर लो ।”

अत्यंत विनय के साथ भार्गव ने आँखें बंद कर लीं । भगवान ने अपनी कोमल उँगलियों से उसकी आँखें छू दीं; फिर जाने के लिये कहा ।

भार्गव नेत्र खोले तब तक भगवान अदृश्य हो गये । फिर उसने अपने शरीर की ओर नजर फेरी तो उसका बालक का रूप बदल गया । कौमारावस्था को वह प्राप्त हो गया । इस परिवर्तन पर उसे अत्यन्त विस्मय हुआ । किंतु अतीत के समस्त विषय उसके नेत्रों के सम्मुख नाचने लगे । सारे पुराण व इतिहास करतल-आमलकवत् उसे स्पष्ट हो गये । मृत कितने व्यक्तियों के वचन उसके कानों में अमृत उँडेलने लगे । ‘अद्भुत’ का बोझ हल्का हो गया । उसने बहुतपूर्व उठाई तंत्रियाँ चढ़ा लीं, और मत्त मधुर गान करता हुआ चल पड़ा ।

कौमारावस्था को प्राप्त भार्वग को देख सब लोग चकित हो गये । रूप-रेखा के साथ साथ उसके गीत भी बदले थे । समस्त प्रकृति को अपने में विलीन कर सकने की क्षमता व मधुरिमा उसके संगीत से उठ गई ! केवल स्वर नाद पूर्ण उसके गीत अब छंदोबद्ध बन गये । उसने पहले की भाँति निर्जन स्थानों में गाना भी बंद कर दिया । सृष्टि का सहप, भगवान नारायण के अवतार व लीलायें, भगवान शंकर का माहात्म्य, राजा महाराजाओं की कहानियाँ, इतिहास पुराण आदि सब उस ऋषि कुमार के गायन के विषय बन गये । जनता भी बड़ी तत्परता के साथ झुंड बांध कर उसके पीछे लग गई और उस अतीत के ज्ञाता के मुँह से निकलने वाली विचित्र बातें आनंद-पूर्वक सुनती रही ।

३

इस भाँति कुछ काल व्यतीत हुआ । भार्गव ने अतीत के समस्त विषयों का गान कर डाला ! फिर उसके हृदय में पूर्ववत् गूढ असंतोष की चिनगारी सुलगने लगी । अतीत का ज्ञान उसे पूर्ण संतोष न दे सका । अविदित रहकर अद्भुत लगनेवाले भविष्य व वर्त्तमान का बोझ उसके लिये असह्य हो गया । निदान फिर एक दिन उसकी वाणी ने बोलना बंद कर दिया ।

मारे घबराहट के भार्गव फिर व्यास भगवान की शरण में भागा । उसके आगमन का कारण जान कर भगवान खिन्न हुए—‘हाय रे अभागे ! अपने आनंद से हाथ धो बैठने आये हो ?’ हाथ जोड़ कर भार्गव बोला — ‘ना भगवन, मैं तो अपने हृदय का बोझ हल्का कराने आया हूँ । आपकी अपार करुणा व दया से अतीतज्ञ बन गया हूँ । अब कृपा कर भविष्य व वर्तमान का ज्ञान भी प्रदान कीजिये ।”

लाचार हो कर भगवान कड़ाई के साथ बोले—“अब तो तुम्हें वर्त्तमान का ज्ञान दे रहा हूँ । भविष्य में भूल कर भी मेरे पास न आना । व्यासजी के अदृश्य होते ही भार्गव अपनी वीणा ले कर चल पड़ा । अब वह युवक बन गया था । वर्त्तमान की सभी बातों से वह परिचित हो गया । उन्हीं विषयों को लेकर वह गाने लगा । उसके गीत भी राग एवं लय का अतिक्रमण करने लगे । गीतों से पहले उसे जो आनंद मिलता था, अब वह संतोष में बदल गया । लोग भी परितोष के साथ उसके गीत श्रवण कर मुक्त कंठ से उसकी व उसके काव्य की अत्यंत प्रशंसा करने लगे । —“इस युवक के गीत पहले के अज्ञात व कृत्रिम विधानों को त्याग कर, अब ठीक रास्ते पर आ गये हैं ।”

प्रशंसा के ये वाक्य भार्गव के कानों में पड़े जिनसे

उसे लगातार गीत रचने की प्रेरणा मिली। गीत के बाद गद्य व गद्य के बाद गीत उसकी वीणा एवं रसना के पीछे द्रुतगति से धावित होने लगे। उस अजस्र धारा में सारा विश्व डूबने तिरने लगा।

किंतु यह नवीन वर्तमान-ज्ञान, लोगों के प्रशंसा के वाक्य या स्वयं ही उद्बुद्ध रचना शक्ति इनमें से किसीने भी उस ऋषि-युवक को अधिक समय तक तृप्ति न दी। अल्पकाल में ही उनसे वह ऊब उठा। श्रांत पथिक की तरह अपने अंग प्रत्यंग में वह शैथिल्य का अनुभव करने लगा। कंठ और जिह्वा सूख गये। वीणा रुक गई। भविष्य ज्ञान की तृषा फिर से उसके अंतरंग को जलाने लगी अपने पास फिर कभी न आने की, भगवान व्यास भट्टारक की कठोर आज्ञा उसके कानों में गूँजने लगी। हतबुद्धि की भाँति वह कुछ देर तक स्तब्ध रहा। किन्तु एक दिन बिना उसके ज्ञान के, उसके पैरों ने ले जाकर उसे व्यासजी के सामने खड़ा कर दिया।

४

मेघवर्ण व्यास भगवान की मूर्ति में पहले जैसी मृदुता व सौम्यता अब नहीं रह गई थी, उनकी जगह कठोरता ने ले ली। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि भार्गव पर पड़ी।

भगवान व्यास की आकृति देख बचारा भागव सकपका गया। सारे अंग स्वेदपूर्ण हो उठे। कंपित स्वर में उसने यों करुणा विलाप किया — "भगवन्! आज्ञोल्लंघन करनेवाले इस दीन का अपराध क्षमा हो। यह आकिंचन आपके समक्ष स्वेच्छया नहीं आया है।" फिर उसके नेत्रों से अश्रु बह कर उसकी वीणा को भिगोने लगे।

भार्गव की दुर्दशा पर व्यासजी को बड़ी करुणा आई। उनके मुख की कठोरता हट गई। सर्वज्ञ वेदव्यास क्या नहीं जानते थे कि जहाँ एक बार अज्ञात-विषय को जानने की जिज्ञासा जाग उठी, तो वह तत्संबंधी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने तक शांति नहीं लेने देती है! फिर भी भार्गव के आत्मविनाश में स्वयं साधन बनना उन्हें अभीष्ट न था।

"वत्स! स्मरण रखो, जिस वस्तु की याचना करने तुम आये हो वह तुम्हारा सर्वनाश ही है। भविष्य का ज्ञान कभी शुभ परिणाम नहीं दे सकेगा। यदि संसार में उतना भी अज्ञात एवं अद्भुत-कर विषय नहीं रहा तो तुम जैसे काव्य-जीवी का जीवित रहना असंभव हो जायगा। अतएव अपनी इच्छा प्रकट किये बिना उलटे पाँव लौट जाओ।"

भगवान के वचन सुन कर भार्गव तनिक भी विचलित नहीं हुआ। स्थिर भाव से बोला— 'महात्मन! मेरी इच्छा पूर्ण रूप से सफल कीजिये!'

वे वचन सुन कर स्वयं व्यासजी किंचित विचलित हुए। भार्गव पर उनका जो अगाध वात्सल्य था उसने उन वेद-मूर्ति को संकोच में डाल दिया। किंतु दूसरे ही क्षण लोक-गुरु ने दिल कड़ा कर के कहा — "अच्छा अपने किये का फल भोगो। जाओ तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।" फिर भार्गव के बंद नेत्रों का स्पर्श कर वे अदृश्य हो गये।

भविष्य ज्ञान मिलते ही भार्गव ने कटु-कर्कश स्वर में भयंकर चीख मारी! सर्वनाश!! सदा उसके शरीर का एक अंग बने रहनेवाली वीणा एकबारगी छूट कर नीचे गिरी और टुकड़े टुकड़े हो गई! सारे तार टूट गये! भार्गव बूढ़ा बन गया। उसके सारे केश पक गये। वह त्रिकालदर्शी हो गया। अब उसके लिये संसार में अविदित अथवा अद्भुत विषय कुछ न रह गया। ग्रीष्मागमन से क्षुद्र तथा शुष्क स्रोत की तरह उसका हृदय सूखकर शून्य हो गया।

५

तब से संसार में फिर कभी भार्गव का स्वर सुनने में नहीं आया। उसकी गीत-माधुरी संसार से सदा के लिये उठ गयी। उसकी काव्य-प्रशंसा से कभी न थकने वाले अनंत प्राणी आज उसके गीतों ही को नहीं वरन् उसका नाम तक भुला बैठे

परंतु उसके संगीत से एक समय में ब्रह्मानंद प्राप्त करनेवाली प्रकृति तो पिछली मैत्री का स्मरण कर आज भी उसके लिये आहें भरा करती है; अश्रु बहाती है। अतीत की मधुर-स्मृतियाँ याद कर हरित तृणांकुरों तथा कोमल पल्लवों के बहाने पुलक प्रगट करती है!

[तेळुगु से **अनु०—प्रो० वारणासि राममूर्ति 'रेणु'**]

स्वर्ग--धरा

[रामेश्वरदयाल दुबे]

एक दिवस प्रभु ने विनोद में, पृथ्वी से सानन्द कहा,—
"स्वर्ग बनाना तुझे चाहता, यह तेरा सौभाग्य रहा,"
व्यग्र व्यथित हो पृथ्वी बोली, "हाय, कौन अपराध हुआ,
जिससे गुरुतर क्रूर दण्ड का, निर्मम अरे विधान हुआ,"

प्रभु ने कहा कि "तू कहती क्या ? यह वरदान नहीं अभिशाप,
यह उच्चासन तुझे मिल रहा, बिना परिश्रम अपने आप, !"
"इसलिये तो नहीं चाहती", गौरव धरा साथ बोली,
"मैं वह नहीं, जो पर के सन्मुख फैलाती अपनी झोली,

मेरे जाये मनुज जानते, अपना यह आदर्श ललाम,
स्वावलंब में ही जीवन-सुख, श्रम के विना व्यर्थ विश्राम,
स्वेद सलिल से खेत हरे ये, लहराता अंचल धानी,
मति में, गति में, स्वयंप्रवाहित, गीता-गंगा का पानी,

और नाथ, उस उच्च स्वर्ग में, पतन नहीं, उत्थान नहीं,
जब वियोग ही नहीं, मिलन में होगा सुख का ज्ञान नहीं,
आशा का उल्लास कहां ? जब है न निराशा का अवसाद !
किन्तु यहां जग में जीवन जय, स्वर्ग मृत्यु का बना प्रमाद !

सुख-दुख के कूलों को छूती, यहाँ निरंतर धारा है,
धूप-छाँह की आँख मिचौनी का चल-चित्र हमारा है,
क्षमा, नाथ, मेरी अविनय यह, धरा स्वर्ग से हेय नहीं,
मनुज देव बन सकते, पर वे, देव मनुज बन सके नहीं !

नाथ तुम्हारा उच्च स्वर्ग वह, जितना चाहे बने महान,
किन्तु धरा का विश्वासों में, पलता गतिमय जीवन-गान;
तम-प्रकाश के सन्धि-घनों पर, वर्णों का सौन्दर्य निखरता,
आरोहों-अवरोहों से ही जीवन-गीत मधुर बनता, !"
प्रभु थे चकित, पवन था केवल, प्रतिध्वनि में ही स्वर भरता,
"आरोहों-अवरोहों से ही जीवन-गीत मधुर बनता, !"

तेलुगु शतकमाला

[वारणासि राममूर्ति 'रेणु']

तेलुगु वाङ्मय में शतक-साहित्य का विशिष्ट स्थान है। ईस्वी सन् ग्यारहवीं सदी से लेकर आज तक सैकड़ों शतककार अपनी सुंदर रचनाओं से मातृभाषा का श्रृङ्गार कर चुके हैं। शतक प्रायः नीति, भक्ति अथवा श्रृंगार संबंधी मुक्तक छंदों के संकलन हुआ करते हैं। जैसा कि नाम ही से स्पष्ट होता है। प्रत्येक रचना में एक सौ आठ पद्य हुआ करते हैं। हाँ, ऐसे भी बहुत शतक मिलते हैं जिनकी पद्यसंख्या १०८ से भी अधिक होती है। उदाहरणार्थ, वेमना कवि के तो हजारों नीति एवं वैराग्य संबंधी पद्य मिलते हैं, उन्हें तो आज 'शतक' ही के नाम से पुकारा जाता है। वेमना के अतिरिक्त, गोपन्ना, पोतना, पाल्कुरिकि सोमनाथ, कासुल पुरुषोत्तम कवि, गोगुलपाटि कूर्म कवि, चौडप्पा, धूर्जटि वगैरह तेलुगु के प्रसिद्ध शतककार हैं। भाषा एवं भाव-सौंदर्य की दृष्टि से विचार करने पर इनकी कृतियाँ श्रेष्ठ-साहित्य के अंतर्गत आ जाती हैं। शतक का प्रत्येक पद्य 'मकुट' बद्ध होता है। प्रत्येक पद्य की अंतिम पंक्ति एक ही हुआ करती है जिसमें कवि अपने इष्टदेव का संबोधन अथवा आत्म-संबोधन किया करता है। यही 'मकुट' विधान है। हम 'भारती' के सहृदय पाठकों के सामने कभी कभी इन शतककारों का थोड़ा बहुत काव्यामृत परोसा करेंगे। उसमें प्रांजल भक्ति, नीति व श्रृंगार की मिठास के साथ ही निंदा स्तुति, व्यंग्य-फटकार की नमकीन चटपटी चीजें भी चखने को मिलेंगी।

इस माला-ग्रथन का श्रीगणेश हम, शाब्दिक निंदा की आड़ में अपने अथाह भक्त-हृदय का परिचय देनेवाले श्री कासुल पुरुषोत्तम कवि की अद्वितीय रचना 'आंध्र नायकशतकमु' के एक पद्य के साथ करेंगे। श्री पुरुषोत्तम 'भट्राजु' (भाट) थे। आंध्र प्रदेश के वर्त्तमान कृष्णा जिले के अधिवासी थे। कृष्णा नदी के तीर पर श्रीकाकुलम नामक गाँव में भगवान् आंध्र विष्णु का बहुत ही प्राचीन मंदिर है। महाकवि श्रीनाथ के समय (ईसा का १४ वाँ शतक) वह मंदिर वैभव के मध्याह्न पर था। बाद को आंध्र भाषा के भोज श्री कृष्णदेवराय ने उन्हीं भगवान को अपनी श्रेष्ठ रचना 'आमुक्तमाल्यदा' अर्पित कर दी थी। विजयनगर राज्य के पतन के पश्चात् उक्त मंदिर का वैभव घटता गया। उसकी आर्थिक दुर्दशा यहाँ तक पहुँच गई थी कि नित्योत्सवों की बात कौन कहे, वर्ष में एक बार लगनेवाला 'तिरुकल्याण' (मेला) भी बंद कर दिया गया। अपने इष्टदेव के मंदिर की वह दुस्थिति देख कर कवि के हृदय को बड़ी ठेस लगी। समस्त ब्रह्माण्ड को संकल्प-मात्र से बनाने एवं बिगाड़ने में समर्थ उन परम प्रभु की, अपने ही मंदिर का कारोबार ठीक न रखने की वह अशक्तता भक्त को बहुत ही विचित्र-सी लगी! प्रभु का वह अजीब मनस्तत्व उसकी समझ में न आया। अतः वह भगवान ही से उनकी अशक्तता का कारण पूछने लगा। पुस्तक के प्रारंभ के कुछ पद्य इसी प्रकार प्रश्नात्मक बने हैं। जब बहुत

१९५०

पूछने पर भी भगवान ने कोई जवाब न दिया और स्थाणुवत् खड़े रह गये, तो खीज कर भक्त उनकी निंदा करने लगा। भगवान के अनंत अवतारों के सभी गुणों का अवगुणों के रूप में प्रतिपादन कर अपने मन का बोझ हल्का बनाने का यत्न किया। व्याजनिंदा के आवरण के भीतर समस्त वेदों व उपनिषदों का निचोड़ ढाल कर सारी रचना को पतितपावन बना छोड़ा! यहाँ केवल एक ही उदाहरण दिया जायगा।—

सी०—सकलंबु नीवयै योक मर्रियाकुपै[1]
निच्च बरंडुनाडेंत गळवो !
तन विड्डनि यशोदादेवि पोत्तुल
निडुक मुद्दाडुनाडेंत गळवो !
तक्कुलमारत्त दक्किचुकोनग
निन्नेत्तुक पेंचुनाडेंत गळवो !
भयलेश मेरुगक बल्पामु पडगपै
गंतुलु वैचुनाडेंत गळवो !
ते०—पलुवुगळवाडवेमि प्राबल्कुलंदु
देलिय वरिमुक्कुमुल्लंत[2] गळवो लेवो !
चित्र चित्र स्वभाव ! दाक्षिण्यभाव !!
हतविमतजीव श्रीकाकुलांध्रदेव !!!

(हे प्रभु! अब मुझे तुम्हारी अशक्तता का कारण कुछ कुछ माल्रूम पड़ रहा है। मैंने तुम्हें सदा से 'विराट् पुरुष', 'त्रिविक्रम' आदि नामों के कारण सर्वशक्तिमान समझ लिया है। किंतु तुम्हारे जीवन का जो दूसरा पक्ष भी है वह मेरी दृष्टि से मानों अब तक ओझल-सा रहा।) भला बताओ तो सही, एक तरफ सब ब्रह्माण्ड 'तुम ही तुम' बने हो फिर भी कल्पांत में बरगद के पत्तेपर शयन करते समय तुम कितने थे! (अपने पेट में चौदहों भुवनों को लिये रह कर भी) यशोदा मैय्या की गोद में नन्हे नन्हे पाँवों से ठुनुक ठुनुक खेलते समय तुम्हारी क्या आकृति थी! समस्त विश्व को वश में कर लेने की मोहिनी शक्ति रख कर भी) फूफी राधा की गोदी का खिलौना बनते समय तुम कितने रहे! (साँप की क्रूर प्रकृति से अपरिचित रहनेवाले शिशु ही उसे देख भयभीत नहीं होते।) उसी प्रकार तुम भी भयंकर कालिय नाग के फन पर निडर नाचते समय क्या बड़े (प्रौढ) थे! (नहीं नहीं, तुम तो बिलकुल बच्चे हो। इसकी साक्षी उपरोक्त सभी पुराणकथायें दे रही हैं। फिर तुम में अपना घर संभालने की शक्ति कहाँ से आये? यदि पुराणों के वचन मिथ्या ही समझ, वेद उपनिषद आदि प्राचीनतम ग्रंथों के पृष्ठ खोलें तो वहाँ तुम्हारी और भी मिट्टी पलीद हुई है।) आर्षवाणी ने तुम्हारे 'नीवार शूक' (धान के बीज का काँटा) की बराबरी कर सकने में भी संदेह प्रकट किया है! हे चित्र विचित्र स्वभाववाले (लीलामय) प्रभु! दाक्षिण्य भाव के अवतार!! विमत जीवों के (दुष्ट प्रकृतिवालों के) नाशक श्रीकाकुल के आंध्रदेव!!! (खुल गई न, तुम्हारी विश्वव्यापकता तथा सार्वभौमिकता की कलई!)

अहा! निगूढ भक्तिभावना की कैसी अंतवर्तिनी व्यंजना है!

---

[1] मिलाइये—"करारविंदेन पदारविंदम्,
मुखारविंदेविनिवेशयंतम्
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानम्,
बालं मुकुंदम् मनसा स्मरामि ॥"

[2] " नीवारशूकवत्तन्वी
पीताभास्वस्त्यणूपमा "
—पुरुषसूक्त.

पवनारके प्राचीन अवशेष

[महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी]

वर्धा जिलेके पवनार नामक गांव में महानुभाव श्री विनोबाजी के आश्रम के समीप कुछ मूर्तियाँ मिलने का समाचार कई वर्ष पूर्व समाचार पत्रों में आया था। मैंने बहुत लोगों से सुना था कि स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज के संग्रहालय में भी पवनार में मिली हुई एक सुंदर मूर्ति रक्खी है। इन मूर्तियों को देखने की मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी। किन्तु अन्य कार्यों में व्यग्र रहने के कारण इस के लिये समय नहीं मिल सका। गत अक्टोबर १९४९ मास में ही कुछ मित्रों के साथ पवनार जाकर वहाँ की मूर्तियाँ देखने का अवसर प्राप्त हुआ। ये मूर्तियाँ विदर्भ के प्राचीन इतिहास की एक समस्या पर प्रकाश डाल रहीं हैं; इसलिये उनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया गया है।

पवनार आज एक छोटासा गांव है और धाम नदी के दाहिने तट पर बसा है। इस गांव में अब कोई उल्लेखनीय प्राचीन अवशेष नहीं; परंतु नदी के बाएँ तटपर जहाँ श्री विनोबाजी का आश्रम है, ज़मीन खोदते समय कुछ शिल्प तथा मूर्तियों के प्राचीन भग्न अवशेष मिले थे। उनमें से दो विनोबाजी के आश्रम के पास सुरक्षित हैं। प्राचीन शिल्प के इतिहास की दृष्टि से ये अवशेष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

इनमें से एक को श्री विनोबाजी न एक छोटी-सी पर्णकुटी में रख छोड़ा है और उसे 'भरतभेंट' नाम दिया है। इस शिल्प में चार मूर्तियाँ स्पष्ट दिखतीं हैं। बाईं ओर से वे सीता, राम, भरत और लक्ष्मण हैं। आगे बताया गया है कि इस शिल्प का निर्माण आज से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पहले हुआ है। इस कारण ये मूर्तियाँ अब बहुत अस्पष्ट हो गईं हैं। तथापि उनके मुख पर के भाव अभी भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। सीता अपने दाहिने हाथ से राम का दाहिना बाहु पकड़े हुए है। राम भरत से वार्तालाप कर रहे हैं। उनका बायाँ हाथ भरत के दाहिने हाथ पर है। राम की मुद्रा पर गंभीरता की छटा है। भरत ने अपना सिर कुछ झुका लिया है और उसके मुख पर राम की भेंट का आनंद स्पष्ट व्यक्त होता है। लक्ष्मण मुँह फेर कर खड़े हैं। उनकी मुद्रा उदासीन है। सीता के पास ही एक और आकृति थी। परन्तु अब वह अर्धछिन्न हो गई है। चारों मूर्तियों के वेश सादे हैं। वे केवल अधोवस्त्र पहिने हुए हैं जैसे अंजंटा के चित्रों में पाये जाते हैं। राम तथा लक्ष्मण जटाधारी हैं। भरत के केश लंबे हैं वे उन के कंधों तक आते हैं। सब मूर्तियों का शरीर प्रमाणबद्ध है। लक्ष्मण की देह को दृढ़स्नायुबद्ध दिखलाया है। इस शिल्प में कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती। स्वाभाविकता, संयम, भावाविष्कार आदि गुणों के आधार पर ये मूर्तियां गुप्तकालीन प्रतीत होतीं हैं।

श्री विनोबाजी ने इस शिल्प को 'भरत भेंट' नाम देकर और उस पर यही अंकित करके एक फलक भी द्वार पर लगाया है। यह नाम सार्थक है इसमें सन्देह नहीं। परन्तु 'भरत भेंट' नाम से सामान्यतः रावणवध के पश्चात् श्री रामचंद्रजी का सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, बिभीषण, हनुमान् आदि के साथ नन्दिग्राम आने पर भरत से मिलन ही सूचित होता है। इस शिल्प में चित्रित भरत भेंट चित्रकूट पर्वत पर की है जब लक्ष्मण के मन में भरत के प्रति अत्यन्त क्रोध था। लक्ष्मण की यह वृत्ति इस शिल्प में बड़ी कुशलता से दिखाई है। राम और भरत प्रेम से वार्तालाप कर रहे हैं। परन्तु लक्ष्मण उनकी ओर न देखते हुए विरुद्ध दिशा में देख रहे हैं। अतः यह भेंट चित्रकूट पर्वत पर हुई है इसमें संदेह नहीं।

आश्रम के पीछे मिला हुआ दूसरा शिल्प भी श्री विनोबाजी ने एक छोटीसी कुटी में रक्खा है। इस शिल्प का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर यह निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि वह 'वालि वध' का है जो इस लेख के शीर्षक के साथ ऊपर आ गया है। सुग्रीव के साथ युद्ध करने पर वालि जमीन पर पड़ा है। श्री रामचंद्रजी के तीर से घायल होकर वह व्याकुल हो गया था। तथापि अपने बायें हाथ पर भार डाल कर वह उठ बैठा है। और दाहिने हाथ से अपना सिर संभाल कर श्री रामचंद्रजी की ओर देख रहा है। श्री रामचंद्रजी 'प्रत्यालीढ' स्थान में खड़े हैं। उनका बायाँ पांव आगे है और झुका हुआ है। दाहिना पांव पीछे तना है। बाया हाथ जंघा पर रक्खा है। दाहिने हाथ में कुछ अस्पष्ट वस्तु है। रामचंद्रजी की मुद्रा पर तिरस्कार युक्त अभिमान है। वाली के इस आरोप का प्रत्युत्तर कि—'वृक्षों की आड़ से तीर मार कर तुमने मुझ पर अन्याय किया' वे निम्नलिखित शब्दों में देते हैं—

इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना ।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥

यह समस्त भूमि इक्ष्वाकु राजाओं की है। उस पर भरत राज्य कर रहा है। उसकी आज्ञा से मैं तथा अन्य राजा धर्मपालनार्थ भ्रमण करते हैं। तुझे मारने का कारण यह है कि तू अपने भाई की पत्नी से व्यभिचार कर रहा है। ऐसा लोकविरुद्ध आचरण करने वाले को दण्ड के अतिरिक्त कोई मार्ग मुझे ज्ञात नहीं।'

यह वालिवध का प्रसंग उक्त शिल्प में दिखाया है। रामचंद्रजी का शरीर सौष्ठवयुक्त है। प्रत्यालीढ स्थान से उनके छाती का दाहिना भाग फूला हुआ है। इसमें शिल्पकार की निरीक्षणशक्ति और शिल्प-कौशल का परिचय मिलता है। श्री रामचंद्रजी के गले में एक सादी माला और कमर में कटिबंध है। उनके पीछे लक्ष्मण और सुग्रीव खड़े हैं। पास ही में बड़े आकार के फूल दिखला कर वृक्ष सूचित किये गये हैं, जिनके पीछे से श्रीरामचंद्रजी ने वाली को तीर मारा था। वृक्ष दिखलाने की यह प्राचीन पद्धति गुप्तकालीन शिल्पों में पाई जाती है। सादापन, स्वाभाविकता, संयम, धार्मिकता आदि गुप्तकालीन शिल्पों की विशेषताएँ मानी जाती हैं। वे सारे इन दोनों शिल्पों में विद्यमान हैं। इसलिये यह शिल्प भी निःसंदेह गुप्तकालीन है।

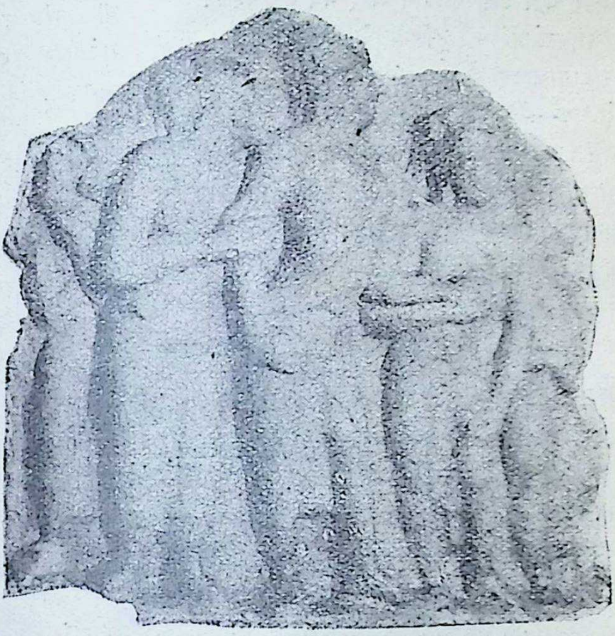

भरतभेंट

इन दो शिल्पों से पता लगता है कि पवनार में श्री विनोबाजी के आश्रम के पास ही धाम नदी के किनारे चौथी-पांचवी शताब्दी में श्री रामचंद्रजी का

एक सुंदर मंदिर था। ये शिल्प उस देवालय की भित्तियों को सजाने के लिये बनाये गये होंगे। अन्य गुप्तकालीन देवालयों में भी इस प्रकार के शिल्प पाये जाते हैं।

यह मन्दिर पवनार में गुप्तकाल में किसने बनाया होगा इसकी उपपत्ति भी किंचित् विचार करने पर लग सकती है। उस काल में विदर्भ पर वाकाटक राजाओं का समृद्ध राज्य-शासन था। उनके उदार आश्रय से उस काल में संस्कृत और प्राकृत साहित्य तथा विविध कलाओं की उन्नत्ति हुई। अजंता के सोलह, सत्रह और उन्नीस नंबर के विहार और चैत्य उसी काल में खोदे गये। वे शिल्प और चित्रकलाओं की दृष्टियों से अद्वितीय हैं। प्रायः सब वाकाटक राजा शिवोपासक थे। किन्तु उनमें से एक—द्वितीय रुद्रसेन भगवान् विष्णु के उपासक बने। इसका कारण उसकी पत्नी प्रभावती गुप्त ही थी। यह रानी सुविख्यात गुप्त सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य की कन्या थी और अपने पिता के समान भगवान-विष्णु की उपासक थी। उसीके प्रभाव से द्वितीय रुद्रसेन विष्णुपासक बने होंगे।

प्रभावती गुप्त केवल विष्णु की उपासक ही नहीं, किन्तु रामभक्त भी थी। ऋद्धपुर में मिला हुआ उसका ताम्रपत्र रामगिरि स्वामी के अर्थात् रामगिरि पर श्रीरामचंद्रजी के चरणों के पास (श्रीरामगिरि-स्वामिनः पादमूलात्) दिया था। कालिदास के मेघदूत से भी यह पता लगता है कि रामगिरि पर श्रीरामचंद्रजी की पादुकाओं की पूजा होती थी। यह रामगिरि नागपुर का निकटवर्ती रामटेक ही है। रामटेक के समीप नगरधन (या नन्दरधन) वाकाटकों की राजधानी (नन्दिवर्धन) थी यह भी अब निश्चित हो गया है।

प्रभावती गुप्ता का पुत्र द्वितीय प्रवरसेन स्वयं शिवोपासक था। तथापि उसने रामचरित्र पर सेतुबंध नामक उत्कृष्ट प्राकृत काव्य रचा। संभवतः वह भी अपनी माता की इच्छा से ही हो।

जब तक वाकाटकों की राजधानी नन्दिवर्धन थी, तब तक प्रभावती गुप्ता समीपवर्ती रामगिरि जाकर अपने इष्ट देवता का दर्शन सरलता से कर सकती थी। परंतु उसके पुत्र द्वितीय प्रवरसेन ने अपने राज्यारंभ से ग्यारह वर्ष के बाद अपने नाम से प्रवरपुर नामक नगर बसा कर उसने उसे अपनी राजधानी बनाया तब प्रभावती गुप्ता को उस नगर में श्रीराम प्रभु के दर्शन के लिये मंदिर की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी और उसी की आज्ञा से प्रवरपुर में (अभी के पवनार में) श्री रामचंद्रजी का उत्तुंग मंदिर बना होगा। संभवतः इस मंदिर की भित्तियों को भूषित करने के लिये ही ये दो शिल्प जड़े गए होंगे।

गुप्त-वाकाटक काल प्राचीन भारतीय इतिहास का सुवर्णयुग माना जाता है। इस काल में संस्कृत और प्राकृत साहित्य के समान स्थापत्य और शिल्पकलाओं की भी अच्छी उन्नति हुई। अभाग्य-वश गुप्त-वाकाटक काल के थोड़े ही शिल्प अभी विद्यमान हैं। उस समय विदर्भ के कई स्थानों में मंदिर बनाये गये होंगे। उनमें से कुछ ही का निर्देश तत्कालीन ताम्रपत्रों में मिलता है। तथापि विदर्भ में अभी तक कहीं भी उत्खनन नहीं हुआ है। इसलिए गुप्त वाकाटककालीन शिल्प अत्यन्त दुर्लभ हैं। उपर्युक्त दो शिल्पों के अतिरिक्त हमें तत्कालीन केवल एक ही शिल्प उपलब्ध है। वह है रामटेक त्रिविक्रम का। ऐसी अवस्था में पवनार में सरलता से प्राप्त इन दो शिल्पों का विशेष महत्त्व प्रतीत होता है।

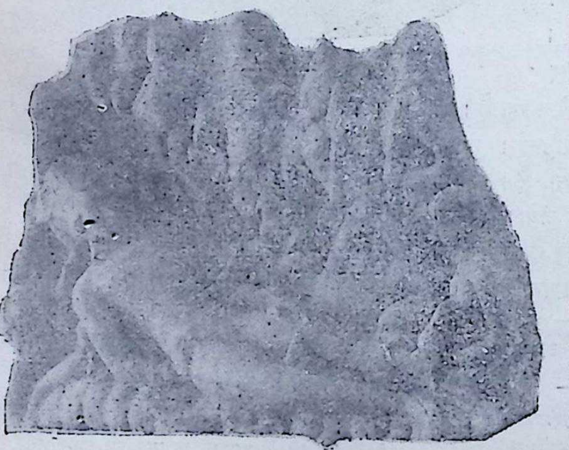

शेषशायी

वाकाटक काल के पश्चात् प्रवरपुर विदर्भ की राजधानी नहीं रहा। तथापि उसका महत्त्व नष्ट नहीं हुआ। क्योंकि उसके बाद के काल के दो मध्ययुगीन शिल्प पवनार में मिले हैं। उननें से एक धाम नदी के तीर पर एक छोटे से मंदिर में रक्खा है। यह शिल्प बड़े आकार का है। उस में शेषशायी विष्णु की भव्य मूर्ति दीखती है। भगवान विष्णु शेषपर लेटे हैं और उनकी नाभि से निकले हुए कमल पर ब्रह्मदेव बैठे हैं। ब्रह्मदेव के चार मुख किसी मिट्टी के गोले को उंगली में दबा कर बनाए गये से दीखते हैं। उसके दोनों ओर अन्य इंद्रादि देव हैं। विष्णु के चरणों के पास बैठ कर लक्ष्मी चरण दाब रही है। इस मूर्ति की खुदाई बिलकुल सामान्य है और वह भारतीय शिल्पकला की निकृष्टावस्था के काल में बनी हुई-सी प्रतीत होती है।

इसके विपरीत एक उत्कृष्ट कलाकृति पवनार में ही मिली थी। वह अभी वर्धा में स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज द्वारा स्थापित किये गए संग्रहालय में रखी है। यह मूर्ति विष्णु की है और काले पाषाण की बनी है। भगवान विष्णु के चार हाथों में शंख, चक्र, गदा और रुद्राक्षमाला हैं। पांव के पास दोनों बाजू में एक एक वामन-मूर्ति सेवक और चामरधारिणी स्त्री है। इसके अतिरिक्त बायीं ओर गरुड और दाहिनी ओर कमल-हस्ता लक्ष्मी है। विष्णु के मस्तक पर का किरीट, गले के हार, श्रीवत्स तथा अधोवस्त्र भी उत्कृष्ट रीति से खुदे हैं। मूर्ति की प्रभावलि भी अच्छी सजाई है। उस पर मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, राम, परशुराम, बलराम, बुद्ध और कल्कि ये दशावतार इसी क्रम से दिखाये हैं। इनमें राम के बाद परशुराम, और कृष्ण के बदले बलराम दिखते हैं यह ध्यान देने योग्य है। यह बात मध्ययुगीन शिल्पों में और कहीं कहीं मिलती है। मूर्ति का बारीक काम, आभूषणों का वैपुल्य तथा उपरिनिर्दिष्ट दशावतार आदि देखने से यह ज्ञात होता है कि यह मूर्ति बहुत पश्चात् की, अर्थात् मध्ययुगीन काल की (ईसा की १०-११ शताब्दी की) प्रतीत होती है।

चतुर्भुज विष्णु

पवनार का महत्त्व मुगल राज्यकाल तक जारी रहा। यहाँ दिल्ली के बादशाह का फौजदार रहता था। वह देवगढ़ और चांदा के गोंड राजाओं से बादशाह का राज-कर वसूल करता था। मराठों की आय में पवनार जिले का बड़ा महत्व था। वहाँ एक कमाविसदार रहता था। यहां एक पुराना किला है जिसनें देवनागरी में लिखा हुआ लेख अभी तक विद्यमान है ऐसा पता लगा है।

पवनार में प्रचुरमात्रा में प्राचीन अवशेष हैं। प्रस्तुत लेख में वर्णन किये हुए शिल्पों से इस बात की पुष्टि होती है कि वाकाटक काल में यह नगर महत्त्वपूर्ण था और वहां श्री रामचंद्रजी का एक सुंदर मंदिर था। पवनार 'प्रवरनगर' का अपभ्रंश है इसमें कोई संदेह नहीं। इन सब प्रमाणों से यह अनुमान किया जा सकता है कि पवनार ईसा की पांचवी शताब्दी में वाकाटक राजाओं की सुसमृद्ध राजधानी प्रवरपुर या प्रवरनगर से भिन्न नहीं। इस विषय का निश्चित प्रमाण उस स्थान का सूक्ष्म निरीक्षण तथा उत्खनन करने पर मिलने की संभावना है। अतः इस स्थान की ओर हम भारत शासन के पुरातत्व-विभाग का ध्यान आकृष्ट करते हैं।

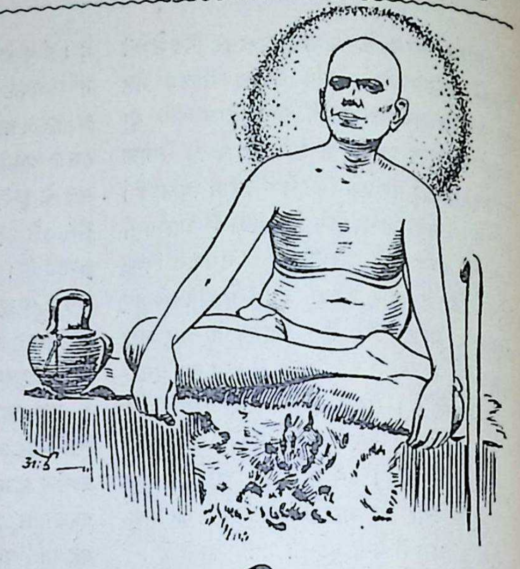

परमहंस श्री रमण महर्षि

[का. श्री. श्रीनिवासाचार्य]

जिनके अस्तित्व मात्र से भारतवर्ष की भलाई है और जिनके दर्शन मात्र से मानव का चित्त विमल होकर परम आल्हाद से भर जाता है, ऐसे महापुरुषों में से श्री रमण महर्षि भी एक थे। यों तो इस देश में सन्तों की कमी न कभी थी और न कभी होगी; लेकिन देह के प्रति अत्यन्त उदासीन निर्मम ज्ञानी जीवन्मुक्त विरले ही पाये जाते हैं। श्री रमण भगवान् किसी को अपनी ओर से कोई उपदेश न देते थे और कई प्रश्नों के पूछने पर एकाध का जवाब बिलकुल संक्षिप्त रूप में देते थे। 'मैं कौन हूँ?' — इस प्रश्न को बार बार अपने आप से पूछते रहा। मैं नाम की वस्तु पंचेन्द्रिय नहीं है, इंद्रियों का विषय भी नहीं है, करण नहीं है, प्राण व मन नहीं है, इन सभी में छिपी हुई सुषुप्ति भी नहीं है। इस प्रकार हर एक चीज़ को निकालेते जाओगे तो अन्त में जो वस्तु बची रहती है वही 'मैं' नाम की चीज़ है। यही ज्ञान-प्राप्ति है। इसी से मोक्ष मिलता है। यही सत्, चित्, आनंद है। जहाँ 'अहं' का अभाव है, वहीं आत्मा रहती है। बस, यही एक परमार्थ है। शुक्ति में रजत की भ्रान्ति जैसे होती है, वैसे ही जगत्, जीव और ईश्वर अलग-अलग से देखने पर सभी मिथ्या हैं। कुल मिला कर देखने पर तीनों एक ही वस्तु—शिव स्वरूप, आत्मस्वरूप में दिखाई देते हैं। विचारों व कर्मों का कारणीभूत मन जब विनाश पाता है, तभी यह भ्रान्ति भी नष्ट हो जाती है। जिस हद तक तुम्हारा आत्मानुभव यानी मनोलय परिपक्व होता है, उसी हद-तक तुम्हारे अंदर की भीति आदि कर्म-वासनाएं दूर होती हैं। जब पूर्णलय की सिद्धि हो जाती है तब सभी वासनाएँ अपने आप नष्ट हो जाती हैं। भगवान् रमण महर्षि के आत्म-प्रदर्शन का यही सार है।

काव्यकण्ठं गणपति शास्त्रीजी जैसे बड़े-बड़े ज्ञानी लोग रमण-महर्षि की शिष्य परंपरा में थे। एफ. हेच. हम्फ्रीस नाम के एक पुलिस अफसर भगवान् के दर्शन के लिए आये, और उनके दर्शन से वे इतने प्रभावित हुए कि तत्काल लौकिक प्रवृत्तियों को त्याग कर वे ईसाई संन्यासी बन गये। दूसरी ओर, कुछ भी न जाननेवाले साधारण जीव और जानवर भी भगवान् के शिष्य बन गये थे। सचमुच मिट्टी को सोना बनाने की शक्ति भगवान् में थी।

भगवान् रमण छोटी-मोटी सिद्धियाँ पाने के पीछे कभी नहीं पड़ते थे। उनका सिद्धान्त यह था कि सच्चे मनोलय के मार्ग में ये सिद्धियाँ रुकावट डालती हैं। जब वे घोर तपस्या में लीन थे, तब उन्हें कई प्रकार की बाधाएँ हुईं। चीटियों व दीमकों ने उनके शरीर को भेद डाला था; ऊधमी लड़कों ने उन पर पत्थर फेंके; परंतु वे अपनी देह को भूल कर समाधि में लीन थे। भगवान् की इस तपस्या को देख कर सारे लोग दंग रह गये।

यद्यपि महर्षि रमण ने दुनिया का नाता तोड़ दिया था फिर भी उनका परिवार बहुत बड़ा था। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के वे माननेवाले थे। आश्रम के आसपास के कुत्ते और बंदर, गाय और गिलहरियाँ, कौए और साँप—सभी जीव उनके पास आते जाते रहते थे। इनको वे अपनी गोद में

देते और प्रेम के साथ बातें करते थे। इनको वे स्वयं भोजन खिलाते थे और बीमार पड़ने पर दवाइयाँ देकर सेवा-शुश्रषा करते थे। एक बार आश्रम की एक बंदरिया के बच्चे हुए, तब महर्षि ने उसके लिए अलग कमरे का प्रवन्ध कर दिया था। ग्यारहवें दिन स्नान व पुण्याहवाचन बड़े धूमधाम से मनाया गया और सब लोगों को बहुत बड़ी दावत दी गई। भगवान् ने अपने आचरण से, 'विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥'— इस उक्ति को चरितार्थ किया था।

आश्रम में हजारों की संख्या में लोग आत थे और खाने पीने की चीजें भरपूर थीं। एक बार कई चोर आश्रम में चोरी करन आये। खिड़की के बाहर खड़े होकर वे धूम मचाने लगे। आश्रम के भीतर महर्षि और उनके इनेगिने शिष्य थे। महर्षि ने चोरों से कहा—"तुम लोग किवाड़ खोलकर भीतर आओ और जो चाहे ले जाओ।" चोरों ने गरजकर कहा—'आप लोग चुपचाप बाहर चले आइये। नहीं तो हम इस कुटिया को जला देंगे।" यह धमकी मिलने पर महर्षि अपने चेलों के साथ बाहर आये। चोरों ने बाहर आते वक्त सभी लोगों को खूब मारा। महर्षि के एक पाँव में चोट लगी, तब उन्होंने अपने दूसरे पैर को भी आगे पसारकर चोरों से कहा—"चाहो तो यहाँ भी दो डंडे लगाओ।" एक चेले को क्रोध आ-गया; वे चोरों को मारने दौड़े। तब महर्षि ने उन्हें रोककर कहा—"यह तो उनका धर्म है। प्रारब्ध कर्म को सहना ही हमारा धर्म है।"

कई वर्षों की कठिन तपस्या के फलस्वरूप महर्षि ने यह मनोलय पाया था; यह आत्म-साक्षात्कार किया था। सभी चीजों में अपने को और अपने में सब चीजों को देखने की यह प्रवृत्ति विरले ही ज्ञानियों में पायी जाती है।

विरुदु नगर से १८ मील की दूरी पर तिरुच्चुळि नाम का एक गाँव है। सन् १८७९, दिसंबर ता. ३० को आर्द्रा दर्शन के दिन एक मध्यम कुटुम्ब में वेंकटरामन् का जन्म हुआ। यह उसी शुभ दिन का स्मारक था, जिस पुण्य पर्व पर भक्त नन्दनार को ज्ञान ज्योति के रूप में शिवजी के दर्शन हुए थे। वेंकटरामन् की शिक्षा दीक्षा पहले तो गाँव के स्कूल में व बाद में मदुरा के अमेरिकन मिशन स्कूल में हुई। जब वेंकटरामन् १७ साल का था तब एक दिन मदुरा में एक रिश्तेदार से उसकी भेंट हुई। यह पूछने पर कि 'आप कहाँ से आ रहे हैं?', उन्होंने जवाब दिया—'अरुणाचल से आ रहा हूँ।' बस, यह सुनना ही था कि वेंकटरामन् एक अभूतपूर्व आनंद का अनुभव करने लगा। अरुणाचल का नाम उसके दिल में बस गया। उसने अपने रिश्तेदार से पूछा—'अरुणाचल कहाँ है?' उन्होंने कहा—'अरे! तुम इतना पढ़ते हो; पर यह भी नहीं जानते! तिरुवण्णामलै नाम का पहाड ही अरुणाचल है।'

इसके थोड़े ही दिनों के बाद शैव सन्तों का चरित्र 'पेरिय पुराण' वेंकटरामन् को पढ़ने को मिला। संतों के भक्ति-भाव ने उसके दिल को पिघला दिया। इन्हीं दिनों मृत्यु के बारे में वह अकसर सोचने लगा। एक दिन बैठे-बैठे वह मृत्यु के बारे में सोच रहा था कि अचानक 'मैं अभी मर जाऊँगा' यह भय उसके मन में उठा। किसी डॉक्टर या दोस्त से सलाह लेने की फुरसत कहाँ थी? 'इसी दम मैं मरनेवाला हूँ। मौत को रोकने के लिए क्या किया जाय?'—इस प्रकार मृत्यु से उद्विग्न होकर, वह अंतर्मुख हो विचार करने लगा। 'यह जो मेरी मौत आयी है, इसका क्या अर्थ है? मरनेवाला कौन है? शरीर ही मरता है। क्या शरीर के मरने पर मैं भी मरता हूँ? शरीर ही मैं हूँ? नहीं, यह शरीर तो जड़ वस्तु है। मैं तो इस से परे आत्मा हूँ। जड़ शरीर के मरने पर भी आत्मा नहीं मरती। मैं अविनाशी नित्य आत्मा हूँ, आत्मा ही सच्ची वस्तु है।' इस प्रकार वह अपने आप कहता जाता था। इस प्रतीति के होने पर वह मृत्यु के भय से छूट गया। उसके बाद ऐसा अनुभव उसे कभी नहीं हुआ। वह उसी दिन से आत्मानुभव में विभोर रहने लगा। अरुणाचल के शिवभगवान् से मिलने की उसकी उत्कण्ठा दिनों दिन बढ़ने लगी।

पढ़ाई में उसका मन नहीं लगा; खाने-पीने व सोने में भी वह बेफ़िक्र रहने लगा। अंग्रेजी व्याकरण में गल्ती करने के कारण एक दिन उसके

मास्टर महाशय ने उस वाक्य को घर पर कई बार ठीक लिख लाने के लिए उससे कहा । पढ़ाई से उसका मन उचट गया; पुस्तकों को उसने एक ओर समेटकर रख दिया और भगवान् का ध्यान करने लगा । उसकी यह हालत देखकर उसके बड़े भाई को गुस्सा आ गया । उन्होंने क्रोधावेश में कहा—'ऐसे निठल्ले से पढ़ाई तो क्या होगी ! यहाँ मेरे घर में तुम्हारा क्या काम है ? ' वेंकटरामन् ने उसी क्षण यह तय किया कि यह अप्रत्यक्ष रूप से अरुणाचल भगवान की कृपा है; उनकी यह सूचना है कि तुरंत मेरे पास चले आओ ।

बडे भाई ने अपनी कालेज फीस भरने के लिए उसके पास पांच रुपये देने को उसकी भाभी से कहा था । उसने अपनी भाभी से ये पांच रुपये लिये । उनमें से दो रुपये और एक चिट्ठी भाई की एक किताब के अंदर मेजपर रखकर, वह अरुणाचल को चल दिया । भाई ने वह चिट्ठी खोली तो उसपर लिखा था —

मैं अपने पिताजी के पास उनके आज्ञानुसार यहाँ से जा रहा हूँ । अच्छे कार्य की ओर **यह** प्रवृत्त हुआ है । इसलिए इसमें शोक करने की ज़रूरत नहीं है । **इसे** देखने के लिए पैसा खर्च न करें । तुम्हारी फीस अबतक भरी नहीं है । दो रुपये हैं । इति । ....

खत के लिखने वाले की दस्तखत नहीं थीं । प्रारंभ का 'मैं' बाद में 'यह' हो गया था ।

१८९६, ऑगस्ट ता. ३१ को गोकुलाष्टमी के दिन दो पहर को दो बजे कई कठिनाइयों के बाद वेंकटरामन् अरुणाचल आ पहुँचा । उसी दिन उसने अपना सिर मुँडवाया और कौपीन धारण कर अरुणाचलेश्वर मंदिर के सहस्रस्तंभ मंडप में जा बैठा । मंदिर के सभी द्वार खुले हुये थे । उस बालयोगी को देखकर सभी दर्शनार्थी उसकी ओर आकृष्ट हुए ।

उसी दिन से यह बालयोगी आत्मचिंतन में रत हुये और बाहर हिंसाओं से बचने के लिए पाताल लिंग नामकी गुफा के भीतर जा कर समाधि में लीन हो गये । यहाँ चीटियों और दीमकों ने इनके शरीर को क्षत-विक्षत देखकर कई भक्तों इन्हें बाहर लाये । रक्त व पीव भरे अपने शरीर से ये बिलकुल विमुख थे । कई घंटों के बाद इनकी समाधि खुली । बाद में और बहुतसी जगहों में इन्होंने तपस्या की । कई ज्ञानियों से इनका समागम हुआ । पळनिस्वामी नामक महात्मा से इन्होंने वेदांत के कई ग्रन्थ सीखे । काव्यकण्ठ गणपति शास्त्रीजी से इन्होंने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया ।

जीवन्मुक्त महर्षि की कीर्तिप्रभा चारों ओर फैलने लगी । भगवान् रमण महर्षि का पुण्य धाम ब्रह्मजिज्ञासुओं का आश्रय स्थल बन गया । एक बार भी जिसने महर्षि को देखा, उसका मन शांति से भर गया ।

अरुणाचल की यह रमण-ज्योति ता० १४ अप्रैल १९५० को परातपर ज्योति में लीन हो गयी । कॅन्सर-जैसे कठिन रोग की वेदना को महर्षि ने जिस धीरज के साथ हँसते-हँसते सहा, उसका बयान नहीं किया जा सकता । अंतिम क्षण तक वे सभी लोगों को मधुर स्मित के साथ दर्शन देते रहे ।

रमणाश्रम में भाषणों व उपदेशों की भरमार नहीं थी; बाजे नहीं बजते थे; कोई उत्सव समारोह नहीं होता था; परन्तु वहाँ था, और कहीं दिखायी न देनेवाला एकान्त मौन । त्रिविध ताप से तपे हुए जीव को वहाँ परम शांति मिलती थी। जात-पाँत, अमीर व गरीब, पंडित व पामर, देश-विदेश, नर-नारी वगैरह ऊँच नीच भाव व भेदों के लिए वहाँ जगह नहीं थी । सर्वात्मभाव से अपने आप में विराजमान भगवान् श्री रमण महर्षि का करुणा कटाक्ष वहाँ फैला हुआ था । रमण भगवान् की विदेह मुक्ति से भारत का एक बहुत बड़ा संत हमारे बीच से उठ गया है । उनके अंतर्धान होने से तमिळनाडु की गरिमा अब कम हो गई है। परन्तु उनका आत्मदर्शन कई शताब्दियों तक अपने आलोक से शांति-मार्ग का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा ।

मुग्ध मधुसूदन

[विनयमोहन शर्मा]

जग-बन्धन सम प्राणों की,
मानी राधा को मन में—

अङ्कित कर भूल गये हरि,
प्रिय व्रजवधुओं को क्षण में ।

अनुतापित पीड़ित फिरते,
मनसिज-बाणों के व्रण में ।

हूले से जमुन-पुलिन पर,
भूले से वृन्दावन में ।

राधा के प्रति—

रूठ गई अपमानित हो लख मुझको गोपी जन में ।
मैं अपराधी रोक न पाया उसको आकुल क्षण में ।
क्या न करेगी, क्या बोलेगी विरह-विदग्धा वन में ?
राधा बिन है शेष मुझे क्या जगती में—जीवन में ?

झूल रहा टेढ़ी भौंहोंमय, भौंर-भ्रमित मुख उसका ।
रंग हुआ है रिस से सत्वर लाल कमल सा जिसका ।
राजित है वह सुन्दर प्रतिमा मन-मन्दिर में मेरे ।
साँसें करती रहतीं जिसके फेरे सांझ-सबेरे ।
किस वन में प्रिय जाऊँ, खोजूँ पद-चिन्हों को तेरे ?
कब तक रहूँ बरसता आँखों में बदली को घेरे ?

जान रहा ईर्षा से तन्वी छिन्न हृदय है तेरा ।
कहाँ गई है ? सुन पायेगी क्या यह अनुनय मेरा ?
मेरे सन्मुख दीख रही तू पल-पल आती जाती ।
क्यों न सजनि ! फिर सहज भाव से युग भुज में बँध जाती ?

क्या न क्षमा अब कर दोगी निज अपराधी को रानी !
मधुमयि ! दर्शन दे दर्दों की कर दो अन्त कहानी !
भूल न होगी अब भविष्य में, यह आँखों का पानी—
साक्षी है, कवि 'जय' के स्वर में गूँजी 'मोहन' वाणी !

वे स्पर्श जनित सुख कोमल,
चल दृष्टिक्षेप रस भीने ।
वह वदन कमल-मधु सौरभ,
वे वचन सुधा मधुलीने ।
वे मधुर अधर बिम्बा सम,
तन्मय करते यों मन को ।
जैसे समाधि में योगी,
विस्मृत कर देते तन को ।
संलग्न ध्यान सखि ! तुझमें
पर विरह-व्यथा यह मेरी ।
भूली है लेष न मुझको,
घेरे है बनी अहेरी ।

अनग के प्रति—

उर पर नाग नहीं, वह छादित श्रेणी कुवलय दल की ।
विष की आभा नहीं, कंठ में माला नील कमल की ।
भस्म नहीं है, शीतल करने विरह-ताप की ज्वाला—
लगा रहा मलयज-रज तन में मैं विरही मतवाला ।
शिव के धोखे अशिव कृत्य क्यों करते मनसिज भोले ।
रोष भरे बरसाते हो शर निशिदिन तरकस खोले ।
आम्रमंजरी के बाणों को मत निज कर में धरना ।
यदि धरना तो धनुपर धर कर शर-संधान न करना ।

१९५०

देख रहे हो मृगनयनी के शर से हिय का छिदना ।
जर्जर मन से सह न सकूंगा तव बाणों का बिंधना ।
निज क्रीड़ा से जीत विश्व को, उस पर शासन करते––
मूर्छित जन पर कर प्रहार क्यों शौर्य-प्रदर्शन करते ?

* * *

*

त्रिभुवन-विजयी अस्त्रों को,
अर्पित राधा को ऐसे––
कर समा गया स्मर उसमें––
कोई हारा हो जैसे ।

भौंहों में 'धनुष' बसा है,
शर-पांत दीठ में बैठी ।
कानों की पाली दिखती,
मानों प्रत्यञ्चा ऐंठी ।

हे तन्वि, नेत्र-शर तेरे,
नित छेद रहे हैं उर को ।
वे व्याल केश भी रह रह
डसते रहते हैं मुझको ।
वे सरस मधुर बिम्बाधर
मुझको मोहाकुल करते ।
उन्नत उरोज क्यों सखि ! इन—
प्राणों में जीवन भरते ?

बंगला कहानी :

भला आदमी

“छि: मैं अत्यन्त भला आदमी हूँ।”

कुसुमी बोला, “तुम क्या क्या बोला करते हो उसका ठिकाना नहीं रहता। तुम जो भले आदमी हो यह भी क्या कहना ही पड़ेगा। कौन नहीं जानता कि तुम उस मुहल्ले के लोटन गुंडा के दल के सर्दार नहीं हो। आख़िर भला आदमी तुम कहते किसे हो।”

“इस बार तुम्हारे मुँह से ठीक प्रश्न निकला है। भला आदमी उसको ही कहते हैं जो अन्याय के सम्मुख भी अपना अधिकार नहीं जनाता, ऐसा वह उदारतावश नहीं करता, बल्कि मन का जोर नहीं होनेसे ही वैसा करता है।”

“जैसे ?”

“जैसे आज ही सबेरे हुआ है। थोड़ा सोच-साच कर लिखने बैठा था उसी समय पांचकौड़ी आकर हाज़िर होगया। जैसे सहारा से झुलसा देनेवाली हवा बह गई, जो कुछ भी मन में ताज़ा था वह सूख गया। वही एक ऐसा प्राणी है जो विधाता के कारखाने से टेढ़ा होकर बाहर निकला था, किसी आदमी के साथ कहीं भी उसका जोड़ नहीं मिलता। एक बार उसने कलकत्ता का उच्चारण ‘कालकुट्टा’ किया था उसी समय से सब लोग उसे ‘कालेकुत्ता’ (अर्थात् काला कुत्ता) कह कर पुकारने लगे। सुनते सुनते उसके कान अभ्यस्त हो गए थे।

स्कूल में उसे कोई भी देख नहीं पाता। हम लोगों के रमेन ने एक दिन उसे रास्कल कह कर उसकी गर्दन पर चढ़ घूँसे से उसकी नाक टेढ़ी कर दी थी——और कह रखा था इसके बाद कान भी टेढ़ा कर देगा।

आते ही वह मेरी चौकी पर बैठ गया जिस पर मैं लिखा-पढ़ा करता हूँ। (मुझ) भले मानुष के मुँह से यह नहीं निकलता कि——“वहाँ पर मैं काम करूँगा।” डेस्क के ऊपर झुक कर जैसे अन्यमनस्क भाव से वह इन-उन चीजों को लेकर इधर से उधर करने लगा। उससे यह कहने में कुछ दोष नहीं होता——“कि वे ज़रूरी चीज़ें हैं, उनको मत उलटो, पलटो।” लेकिन—अब क्या बोलें। कहने लगा, “बहुत दिनों से भेंट मुलाकात नहीं हुई।” फिर शुरू किया, “अरे, हम लोगों के वे स्कूल के दिन कितने सुख के थे।” लंगड़े गोविंद हलवाई की बात उसने छेड़ दी। देख रहा हूँ कि सोने से मढ़ा हुआ मेरा फाउन्टेन पेन चादर की ओट से धीरे धीरे उसके पाकेट की ओर जा रहा है। यह कहा जा सकता था कि “भूल कर रहे हो, कलम तुम्हारी नहीं है बल्कि मेरी है। किन्तु मैं जो भला आदमी हूँ। बड़े आदमी का लड़का है इतनी बड़ी लज्जा की बात उससे कहूँ तो कैसे कहूँ। चोरी करने में लगे हुए उसके हाथ की ओर देख भी नहीं सका। सन्देह हो रहा है कि

कहीं यह न कह बैठे, कि "आज यहाँ खाऊंगा,"—फिर ऐसा मैं कह नहीं सकूंगा कि "नहीं, यह नहीं हो सकेगा।" सोचते सोचते मुझे पसीना हो आया है। हठात् एक युक्ति सूझ गई — मैं कह बैठा "रमेन के यहाँ मुझे अभी अभी जाना है" कालो-कुता ने कहा, "अच्छा ही हुआ, चलो तुम्हारे साथ इकठ्ठा ही जाया जाय। स्कूल छोड़ने के बाद से उसके साथ एक बार भी साक्षात्कार नहीं हुआ।" कैसी विपद है। धप् करके बैठ गया। बाहर की ओर देख कर बोला, "लगता है वृष्टि पड़ रही है।" वह बोला "उससे क्या हुआ। मेरे पास छाता नहीं है तुम्हारे साथ एक ही छाते में जा सकूँगा।" और कोई होता तो ज़ोर के साथ कह देता, "नहीं यह नहीं हो सकता। किन्तु मेरे लिये कोई उपाय नहीं। जो हो, भला आदमी होने पर भी विपत्ति के समय मेरे दिमाग़ में भी बुद्धि का संचार हो जाता है। मैंने कहा, "इतनी असुविधा सहने की जरूरत ही क्या है। न हो तो तुम्हीं छाता लेकर जाओ, और फिर जब सुविधा हो इसे लौटा देने से ही हो जायगा।" और उसने तिलमात्र की भी देरी नहीं की। बोला, "प्लैन तो सुनने में अच्छा है।" छाता बगल में दबा कर चटपट निकल गया। भय था कि कहीं फाउन्टेन पेन की खोज न होने लगे। छाता लौटाने का तो किसी दिन सुयोग नहीं ही होगा। हाय रे, पन्द्रह रुपये का मेरा सिल्क का छाता! छाता नहीं लौटेगा, फाउन्टेन पेन भी नहीं लौटेगा किन्तु सबसे बढ़ कर सुख की बात होगी—कि वह भी नहीं लौटेगा।

"क्या कहते हो भाईसाहब, वह छाता और वह फाउन्टेन तुम नहीं पाओगे?"

"बड़े लोगों के विधान के अनुसार तो फिर पाने की आशा नहीं है।"

"और अशिष्ट विधान के अनुसार?"

"भले आदमियों की जन्मपत्री में तो वह नहीं लिखा जाता।"

"मैं तो भला मानुष नहीं, मैं उसके पास चिट्ठी लिखूँगा, उस बात को जानने की तुम्हें जरूरत नहीं होगी।"

"अरे छिः छिः, नहीं, नहीं, ऐसा भी कहीं होता है। और लिखने से ही क्या होगा। वह कहेगा कि मैंने नहीं लिया है।"

"जानता हूँ, यही वह कहेगा। किन्तु हम लोग जानते हैं कि उसने चोरी की है इसी बात को मैं उसे बतला देना चाहता हूँ।" "सर्वनाश। ठीक यही तो मैं उसे जानने देना नहीं चाहता—बड़े आदमी के लड़के ने चोरी की है —छिः छिः कितनी बड़ी लज्जा की बात है। इस तरह से मेरा न जाने कितना चला गया है उस समय तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था। उस समय ब्राउनिंग की कविता की नई नई धूम थी। बड़े आग्रह के साथ उसे पढ़ रहा था। अपने साहित्यिक बन्धु को बड़े उत्साह से मैंने एक कविता पढ़ कर सुनाई। उन्होंने कहा, "इस किताब को मैं अवश्य ही पढूंगा, तीन दिनों के बाद लौटा दूँगा।" मेरा मुँह सूख गया। मैंने कहा, "मैं अभी इसे पढ़ रहा हूँ।" इतने भले मानुष के स्वर में मैं बोला था कि किताब को मैं रख नहीं सका। कई एक

दिनों के बाद खोज करने पर मालूम हुआ कि वे बहरमपुर एक मुक़द्दमे की पैरवी करने गए हुए हैं। लौटने में देरी होगी। अपने परिचित हॉकर (Hawker) से मैंने कह दिया कि अगर बड़ा एडिशन (संस्करण) पाया जाय तो मुझे ख़बर दे। कुछ दिनों के बाद मुझे ख़बर मिली कि बड़ा संस्करण मिल गया है। पुस्तक बाहर निकालने पर मालूम हुआ कि वह मेरी वही पुस्तक है। जिस पन्ने पर मेरा नाम लिखा हुआ था वही पन्ना फाड़ा हुआ था। मैंने ख़रीद ली। उसके बाद मुझे उस पुस्तक को छिपा कर रखना पड़ता था जैसे कि मैं ही चोर हूँ। मेरी लाइब्रेरी को इधर उधर उलटते पलटते मेरी वह पुस्तक उन्हें मिल गई। उनकी करतूत का मुझे पता लग गया है इसे वे जान गये। चाहे जो हो, वे एक बड़े आदमी हैं।”

“भाईसाहब और अब कहने की जरूरत नहीं होगी, भला आदमी किसको कहते हैं यह मैं अच्छी तरह समझ गया।”

—(स्व० रवीन्द्रबाबू की ‘भालो मानुस’ गल्प का अनुवाद)

* * *

शान्तिनिकेतन!

इसके निर्माण में अनेक महापुरुषों ने योग दिया है। इनमें से सर्वप्रथम महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर थे। जिस स्थान पर ‘शान्तिनिकेतन’ स्थापित है वह पहले एक उजाड़, निर्जन, और अनुर्वर जमीन थी। इसी स्थान पर अड्डा बना कर चोर, डाकू, लुटेरे, बटमार, बदमाश यात्रियों को लूटा करते थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर एकबार किसी मित्र के यहां जाते हुए यहाँ से निकले। दो सप्तपर्णियों की शाखाओं के बीच महर्षि ने अपना डेरा लगाया और कुछ दिनतक यहीं आत्मचिन्तन में तल्लीन रहे। इस जगह की शान्ति और नीरवता ने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। नतीजा यह हुआ कि इस जनशून्य, अनुर्वर स्थान में उन्होंने एक सुन्दर आश्रम स्थापित करने का उसी दिन निश्चय कर लिया। खराब मिट्टी हटा कर अच्छी उपजाऊ मिट्टी वहां डाली गई। भाँति-भाँति के फूलों-फलों के के पेड़-पौधे, वृक्ष, लगाये गये। ठहरने के लिए एक छोटा सा घर भी बनाया। महर्षि ने जनता-जनार्दन की सेवा के लिए उस स्थान को दान कर दिया। शान्तिनिकेतन हरा-भरा रमणीय स्थान बन गया। जहां जाति-पाँति का कोई बन्धन नहीं, न धर्म का, न विश्वास का। शर्त सिर्फ यही कि शान्तिनिकेतन में रहते हुए कोई मांस न खाये और न किसी की निन्दा करे।

* * *

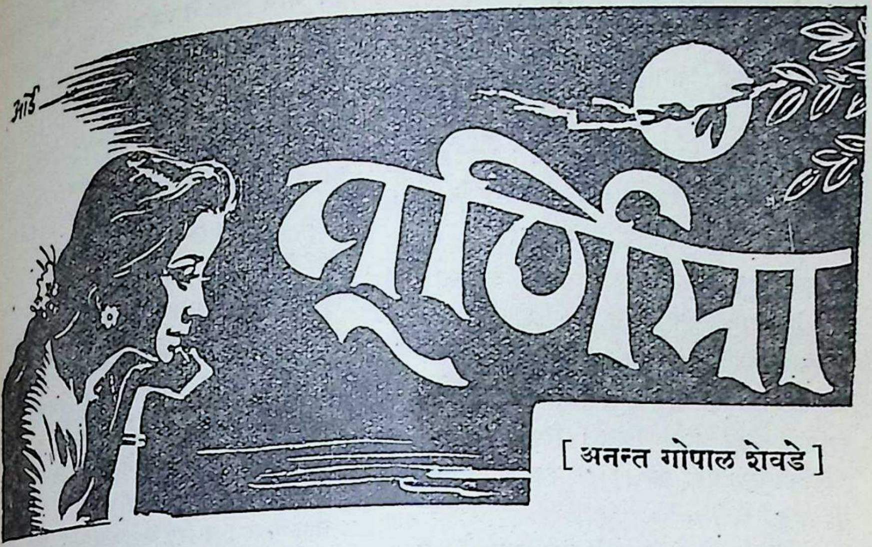

पूर्णिमा

[अनन्त गोपाल शेवडे]

[अब तक की कथा :

बैरिस्टर पण्डित जी की पुत्री पूर्णिमा की उस वर्ष-गांठ के संगीत-आयोजन के उपलक्ष्य में दो युवकों ने भिन्न भिन्न दृष्टि कोणसे बधाइयाँ दीं जो उसकी स्मृति में अंकित हो गईं। एक था 'खाओ-पियो-मौज करो' की जीवन प्रणाली माननेवाला धनिक युवक विलास मोहन, और दूसरा था बंगाली क्रान्तिकारी का तेजस्वी पुत्र विनयकुमार, जो जीवन की गंभीरता की थाह लेना चाहता था।

विलास इस प्रयत्न में था कि किसी न किसी तरह वह पूर्णिमा पर अपना इंम्प्रेशन' जमाये और उसे अपनी ओर अनुरक्त कर ले। सिनेमा, डिनर, टेनिस मैच आदि उपकरणों के द्वारा वह इस दिशा में ढंगों से प्रयत्न कर रहा था।

इसके विपरीत विनयकुमार ने पूर्णिमा का वह स्वरूप भी देखा जिसमें वह दैनिक उच्छृंखल जीवन से ऊपर उठकर अन्तर्जीवन की गहनता और ऊंचाई को पाने का यत्न करती थी। इस पहलू के प्रति विनय को आदर है और उसकी धारणा है कि यह वदि वास्तव रूप में जगाया जाय तो पूर्णिमा एक आदर्श, सत्यनिष्ठ रमणी वन संकती है जो समाज के लिये भूषण होगी।

किन्तु पूर्णिमा की धारणा थी कि उसका प्रेम है तो विलास मोहन से जिसके व्यक्तित्व का कोई भी हिस्सा उसके लिये पहेली नहीं है। विनय का वह अत्यन्त आदर करती थीं; किन्तु मानती थी कि उसका तेजस्वी व्यक्तित्व उसकी पहुँच के परे है। उसके लिये अगम्य है, अज्ञेय है।

विलास ने पूर्णिमा को एक नेकलेस भेंट किया जो फ्रॉंस से आया था। वह पूरा दिन, उन दोनों ने आमोद-प्रमोद में साथ-साथ बिताया जिसके कारण पूर्णिमा के हृदय में माधुर्य भाव का प्रथम स्पंदन हुआ।

इधर एक दिन ऐसा मौका आया कि पूर्णिमा के यहां विनयकुमार पहुँच गया और उसके (पूर्णिमा) के आग्रह से उसने अपनी बीती करुण कहानी सुनाई जिसमें उसके माता-पिता की दिव्य प्रीति तथा पिता की अन्दमान की काल-कोठरी में घटित मृत्यु की चर्चा थी। यह कहानी सुनकर पूर्णिमा का हृदय विनय के प्रति घोर अनुकंपा एवं एक आत्मीयता से भर गया।

दूसरे दिन विलास मोहन जब पूर्णिमा के यहाँ पहुँचा तो उसने यह देखकर कि विनय के प्रति पूर्णिमा सद्भाव रखती है, उसपर डाह के कारण छींटाकशी शुरू कर दी जिसकी पूर्णिमा ने भर्त्सना की। — अब आगे पढ़िये।]

तेरहवाँ परिच्छेद

:सूर्य और धूलिकण:

सुबह लगभग साढ़े आठ बजे जब विलास मोहन पूर्णिमा के यहाँ आया; तब वह हाल में बैठकर रेडियो सुन रही थी।

विलास बड़ा प्रसन्न था। अब उसे दृढ़ विश्वास था कि जब कभी वह बैरिस्टर पण्डित के यहाँ जावेगा तब उसका स्वागत ही होगा।

इस समय बैरिस्टर पण्डित अपने आफिस रूम में बैठे अपने मवक्किलों से माथापच्ची कर रहे थे। प्रॅक्टिस अच्छी थी लेकिन उसके लिये उन्हें मिहनत भी करनी पड़ती थी। पूर्णिमा ने रेडियो वन्द कर चाय के लिये ऑर्डर दिया। विलास ने कहा—"रेडियो क्यों बन्द कर दिया, यह गाना तो पूरा हो जाने देतीं ?"

"नहीं, मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। ज़रा जी उचट गया था इसलिये रेडियो लगाकर बैठी थी। किन्तु उस में भी कोई अच्छा प्रोग्राम नहीं है।"

"आज अच्छा क्यों नहीं लग रहा है ? वाहर देखो कितनी सुन्दर धूप है, बगीचा कैसे फूला हुआ है। मुझे तो मालूम पड़ता है कि दुनिया खूब हँस रही है।"

"यह तो प्रत्येक के मूड़ पर अवलम्बित होता है, विलास वावू! इसीलिये तो फिलासॉफर कहते हैं कि वाह्यजगत हमारे अन्तर्जगत का प्रतिबिम्ब मात्र है" पूर्णिमा ने कहा।

"आज सुवह सुवह ही यह फिलासफी क्यों सूझने लगी। वात क्या है ज़रा सुनाओ तो" विलास ने पूछा।

"कल शाम को विनय वावू आये थे। हम लोगों ने उस्ताद चचा से एक वढ़िया गाना सुना। वह एक सुन्दर वेदना गीत था। हम लोगों की भावनाएँ उमड़ पड़ीं। फिर उसके बाद, न जाने कल वे किस मूड़ में थे, उन्होंने अपनी जीवन गाथा कह सुनाई। कितना रोमांचकारी, कितना विचित्र है उनका भूतकाल का जीवन। कहते हैं-सत्य, कल्पना से भी अधिक अद्भुत होता है। ठीक यही वात उनके जीवन से ज्ञात होती है।"

"अच्छा, फिलासाफ़र महाशय आये थे इसलिये आज सुबह से यह रोनी सुरत बनाकर बैठी हो!" विलास ने व्यंग करते हुए कहा। पूर्णिमा को यह बात सुनकर दुःख हुआ—कुछ क्रोध भी। उसने किंचित् नाराज़ी से ही कहा—"विनय बाबू जैसे गुणशील सज्जन का इस प्रकार मखौल करना शोभा नहीं देता, विलास बाबू। लोगों पर कीचड़ फेंकने का काम सभ्य पुरुष नहीं किया करते। विनय बाबू जैसा योग्य युवक तो विद्यार्थी जगत् में ढूंढे नहीं मिलेगा।"

पूर्णिमा का यह व्यंग सुनकर विलास मोहन ठंडे पड़ गये। आख़िर उनकी पूंजी ही कितनी थी जो ख़तम होने में देर लगे ? उन्हें यह अच्छा न लगा कि पूर्णिमा उन पर ताने कसे और उसी सांस में विनय कुमार की तारीफ भी करे। यह उन से न सहा गया। उनका दिल जल उठा। फिर फ़ौरन उन्होंने पैंतरा वदला। सोचा सीधा हमला तो भौंडा होता है। ज़रा अकल से काम लेना चाहिये।

"नहीं नहीं, मेरा यह मतलब नहीं था कि उन पर छींटाकशी करूं। मेरा कहना सिर्फ इतना ही था कि वे जीवन को जिस गंभीरता के चश्मे में से देखते हैं उस से मेरा मत भेद है।"

"तुम तो जानती ही हो कि मैं जीवन को एक परम आनन्द की वस्तु मानता हूँ। वस, इतनी सी वात है। वाकी उनकी योग्यता के वारे में भला किसका मतभेद हो सकता है ?"

प्रतिस्पर्धी से आधी दूर तक जाकर मिलने में फ़तह होती है, यह विलास वावू वखूवी जानते थे। हवा का रुख़ देखकर फ़ौरन मुँह घुमाना उन के लिये बड़ा आसान था। दुनियादारी को वे खूब समझते थे। उनके वाक्यों का पूर्णिमा पर अच्छा असर पड़ा। उनकी नरमाई देखकर वह खुश हुई। विलास वावू की चतुर आँखों ने फ़ौरन यह परिवर्तन देखा। वोले—"क्या कहते थे, विनय वावू ? ऐसी क्या वात है उनके जीवन में जिसका तुम पर इतना असर पड़ा ?"

"उनके जीवन में जो गूढ दुःख है उसी के कारण वे हम सबकी अनुकंपा के पात्र हैं। वैसे वे बड़े अभागे हैं।" यह कहकर पूर्णिमा ने संक्षेप में विनयकुमार का पूर्ण इतिहास बड़ी दिलचस्पी के साथ कह सुनाया।

"तब इसमें ख़ास बात क्या हुई पूर्णिमा ?"

विलास का द्वेष भाव फिर भड़क उठा। उससे यह बर्दाश्त नहीं हुआ कि पूर्णिमा वियनकुमार के जीवन से इतनी आत्मीयता और हमदर्दी रक्खे। क्यों कि वह बात जो विनय के जीवन को इतना ऊंचा उठा देती है, वह उसके स्वतः के जीवन में बिलकुल गायब है और इस लिये उसका जीवन साधारण है। हज़ारों, लाखों आदमियों की तरह एक ढांचे में ढला है। न उसमें कला है, न सुन्दरता है, न अद्भुतता है। और जो विनय के पास है वह केवल चाहने से विलास को तो मिल नहीं सकता था। फिर उस पर आक्रमण करके उसका महत्व घटाने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है जिससे उन दोनों की तुलना की तराज़ू का तौल ठीक हो।

"ऐसे अभागे तो हमारे देश में कई मिलेंगे पूर्णिमा। और हमारे देश ही में क्या दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं है। उनके दुर्भाग्य से हमें सहानुभूति है किन्तु उनके कार्यों का हम समर्थन कैसे कर सकते हैं! भला विनय के पिता को क्या ज़रुरत थी कि वह गदर पार्टी में शामिल होता? उसे किस बात की कमी थी?"

"अच्छी पत्नी थी, डिग्री थी बुद्धि थी और पैसा भी सुखसे खाने लायक तो था ही। ख़ैर, अगर किसी तरह पकड़ा गया तो वहाँ से माफ़ी मांग कर क्यों न निकल आया? और यदि नहीं आया तो फिर उसने अन्दमान में जाकर भूख हड़ताल क्यों की? यहाँ से वहाँ तक गलती, गलती गलती! जो आदमी खुद के घर को फूँकने ही निकला है उसे क्या किया जाय? खुश क़िस्मती यही है कि विनय इतने के बाद भी पढ़ लिख गया और कमाने खाने-लायक हो गया। अब नौकरी कर ले तो सुखी होगा। नहीं तो रहना कि सड़ना किसी जेलखाने में, कोई सनकीली बात करके"।

विलास! क्या हो गया है विलास को जो आज वह ऐसा कहता चला जा रहा है? पूर्णिमा मन ही मन सोचने लगी। उसे बड़ा दुःख हुआ कि विलास ने यह सब कहा। यदि उसके मन में विनयकुमार के बारे में इतना निरादर था तो अब तक अपने दिल ही में क्यों छिपाये रहा? सूर्य के ऊपर कीचड़ उछालने से क्या हासिल? स्पष्ट है कि विलास के मन और हृदय की बनावट विनय से बिलकुल भिन्न है, एकदम विपरीत है। उसके संस्कारों में एक ही चीज है, जो है व्यवहार, जड़ व्यवहार, भौतिक व्यवहार। न उसमें भावना है, न आदर्श है, न स्वप्नदृष्टि है। सब कुछ सीधा सादा है, साफ साफ, खुला हुआ। जिस चीज ने पूर्णिमा पर इतना गहरा असर किया था, वही विलास के सामने नाचीज़ है, नगण्य है। क्या उसमें और विलास में इतना अधिक फर्क है?

"उनके विचारों और कार्यों के बारे में आपके कुछ भी विचार हों विलास बाबू। किन्तु उनके दुर्भाग्य के कारण क्या वे हमारी सहानुभूति के पात्र नहीं हैं? यह तो ख़ैर मैं भी नहीं समझ पाई कि उनके पिता ने इस प्रकार अपना यौवन, अपना जीवन क्यों कर बर्बाद किया। लेकिन उसका सर्वनाश किया सो स्वार्थ के लिये तो अवश्य

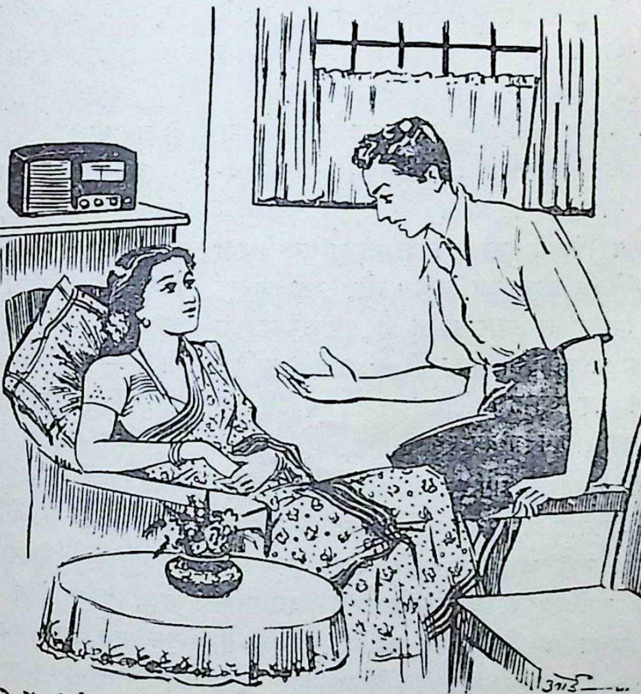

ही नहीं किया । उसमें कल्याण क्या था सो तो मैं भी नहीं जानती, पर इसीलिये उसमें कल्याण रहा ही नहीं होगा, यह मैं नहीं मान सकती । पूर्णिमा ने दृढ़ता से कहा ।

फिर विलास बाबू नरम पड़ गये । यह सच है कि अब वे विनयकुमार से जलने लगे थे । कहीं पूर्णिमा के बारे में वह उनका प्रतिस्पर्धी होने तो नहीं जा रहा है ? इसी एक भावना ने उनमें डाह की भावना पैदा कर दी । और जिस मनुष्य में यह भावना भूले-भटके घर कर जाय तो उसके विवेक, तर्क और बुद्धि का तौल कहाँ रहता है ? यही कारण था जो आज विलास बाबू विनयकुमार के प्रति इतना निरादर व्यक्त कर सके ।

"तुम मेरा मतलब नहीं समझीं पूर्णिमा ।" विलास ने कुछ नरमाई से कहा ।

उनके जीवन में जो तकलीफ है उसके लिए तो मेरे मन में पूरी सहानुभूति है । लेकिन इतना होते हुए भी मैं उनके कार्य, विचार और जीवन की प्रणाली का भक्त नहीं बन सकता ।

ऐसे फिलॉसाफर लोग अपने अपने क्षेत्र में भले ही कुछ कर गुजरें;—और इसके बारे में भी मुझे शक है—लेकिन समाज या देश के व्यवहारिक जीवन में उनका विशेष लाभ नहीं ।

वे जहाँ जावेंगे वहाँ आनन्द और उल्लास पर पानी फेरते ही जावेंगे । इसलिये मेरे जैसे आदमियों की उनसे नहीं पटती ।

अब विलास कुछ तर्क का भी आश्रय ले रहा था—केवल क्रोध का नहीं । और जब मनुष्य इस हालत पर उतर आता है तब उसका कुछ न कुछ परिणाम तो होता ही है । क्योंकि तार्किक हमेशा यह आभास निर्माण करता है कि वह सत्य का प्रतिप्रादन कर रहा है ।

विनयकुमार के बौद्धिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से अभी तक पूर्णिमा का कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं आया था और जितना कुछ संबंध उसके व्यक्तित्व से आया था उससे केवल उसने यही जाना था कि विनय का जीवन भव्य है, विशाल है, अगम्य गूढ़ है । केवल यही आभा उसे दिखी थी और इसी का उस पर विचित्र प्रभाव पड़ा था । वह क्यों और किस प्रकार विनय से आकर्षित थी, प्रभावित थी, यह ठीक से नहीं जानती थी । किन्तु विलास जितना ही खुला है, समझने में आसान है, उतना ही विनय अस्पष्ट है, अज्ञेय है, और इसी कारण 'विनय' उसे कभी-कभी अधिक वांछनीय भी जान पड़ता है ।

विलास के तर्क से पूर्ण रूपेण असहमत होना भी पूर्णिमा के लिये कठिन था । इसलिये वह चुप रही । वितण्डावाद को वह बढ़ाना भी नहीं चाहती थी । बात पलटने के लिये उसने जोर से कॉल बेल बजाई—

"बैरा, अभी तक चाय नहीं लाया ?"

"जी साब"।

बैरा आ ही रहा था । पूर्णिमा चुप होकर चाय उंड़ेल रही थी—कुछ विचार-मग्न भी थी । विलास को लगा कि उसने ज्यादा अप्रिय बात कहकर पूर्णिमा को दुख पहुँचाया है ।

इसलिये अब उस पर कुछ मरहम लगाना भी आवश्यक है ।

"इस प्रकार तुम कभी-कभी उदास क्यों हो जाती हो पूर्णिमा ?" आत्मीयता का भाव लाते हुए उसने कहा "तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारी ऐसी हालत देख कर मैं कितना व्यग्र हो जाता हूँ। भला बताओ तो, मैं क्या करूँ जिससे तुम प्रफुल्ल हो सकोगी ?"

पूर्णिमा के मन पर इस वाक्य की प्रतिक्रिया अच्छी हुई । अच्छा, अब विलासबाबू अपनी उसी पूर्वावस्था पर आ गये हैं, जिससे पूर्णिमा को सुख मिलता है । विलास बाबू का यह सौहार्द उसे आकर्षित किये हुए है, इसीलिये वह भी स्नेह से बोली—"नहीं विलास बाबू । यह ऐसा तो कभी-कभी ही हो जाता है । आप तो जानते ही हैं कि वह मेरा स्वभाव धर्म नहीं है । चिन्ता की बात नहीं है । देखिए इसी क्षण मुझे अच्छा लग रहा है । मैं शीघ्र ही नॉर्मल हो जाउँगी ।"

पूर्णिमा के कथन से उत्साहित हो कर उसने कहा, "तुम ऐसा क्यों नहीं करतीं पूर्णिमा, कि तुम और बापू एक बार इन्द्रगढ़ चलो ? वहाँ एकाध सप्ताह रह लोगी तो तुम्हारी सारी उदासीनता हमेशा के लिये निकल जायगी । बड़ा रमणीय स्थान है । सुन्दर सुन्दर झरने और नदी,

रम्य वन्य-प्रदेश और उनका मनोहारी प्राकृतिक सौन्दर्य, उत्कृष्ट आब हवा, फल-फूलों की विपुलता– यह सब वहां मिलेगा। निश्चय ही तुम वह 'ट्रिप' पसन्द करोगी और बापू भी! क्यों कैसी है कल्पना?"

कल्पना का जितना भी वर्णन विलास ने किया था उससे पूर्णिमा खुश हुई। एकदम खिल कर वह बोल उठी—"बड़ी अच्छी बात है, सच! कभी कभी पहाड़ों और वनों के वर्णन सुन कर मेरे मन में ऐसी आतुर पिपासा पैदा हो जाती है कि मैं उनमें घूमूं-भटकूं। मैं अवश्य ही बापू से यह बात कहूँगी। लेकिन पता नहीं उन्हें वक्त मिलेगा या नहीं। आजकल तो उनका काम इतना बढ़ गया है कि मुझ से बात करने की भी उन्हें फुरसत नहीं मिलती।"

"इसीलिये तो उनके लिये भी यह 'चेंज' लाभदायक होगा। तुम बापू की राय ले लेना और यदि वे आने का समय निकाल सकें तो फिर मैं अपने पिताजी से 'फॉर्मल' निमन्त्रण भेजने के लिये कहूंगा।" विलास बोला।

पूर्णिमा का मुखकमल फिर प्रसन्न हो उठा। बाह्य सुखासीन जीवन एवं आमोद-प्रमोद की पुकार ने उस पर विजय प्राप्त की और उसकी वह सब उदासीनता काफूर हो गई। जब विलास बाबू जाने को उठ खड़े हुए तब उसने उनसे मिलाने के लिये हाथ बढ़ा दिया जो विलास ने बड़े स्नेह से, एक झटके के साथ जोर से दबाया। पूर्णिमा ने फिर अनुभव किया कि इस स्पर्श से उसे सुख मिला है और उसने एक स्नेहपूर्ण स्मित से विलास बाबू को विदा किया।

चौदहवाँ परिच्छेद

कांग्रेसपार्क में क्या सुना?

उस दिन रातको विनयकुमार पूर्णिमा के यहाँ से लौटा तो अन्यमनस्क भाव से ही लौटा था। उसके हृदय में एक अजीब हलचल-सी मच गई थी। उसके भूतकाल के जीवन की स्मृति ने तो उसको विचलित किया ही था। उसमें कोई नई बात नहीं थी। लेकिन जिस बात ने उसे सबसे अधिक आस्चर्यान्वित किया वह थी पूर्णिमा का उसकी करुण कथा सुनकर इतना अधिक व्यथित हो उठना। उसने कभी कल्पना नहीं की थी कि पूर्णिमा के हृदय में उसके लिये इतनी सहानुभूति होगी। यह सच है कि पूर्णिमा के व्यक्तित्व में द्वैत है, दो पहलू हैं, जो एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं, और जिस प्रकार उसका आमोद-प्रमोद में रत होना आश्चर्यजनक नहीं है उसी प्रकार उसका इस तरह किसी उदात्त भावना से प्रेरित हो उठना भी आश्चर्यजनक नहीं है। इसलिये पूर्णिमा विलास के लिये समस्या भले ही रही हो किन्तु बुद्धिमान् एवं प्रतिभाशाली विनय के लिये वह उतनी समस्या नहीं थी। तिस पर भी पूर्णिमा के आंसुओं ने उसके हृदय पर एक गहरा असर किया था जिससे उसे एक विशिष्ट प्रकार का अनिर्वचनीय आनन्द भी हुआ था।

आज विनय अपनी कथा का और पूर्णिमा की भावनाओं का, जो उसने उस रात्रि को व्यक्त होते देखी थीं, विश्लेषण करना चाहता है और जानना चाहता है कि इसमें सत्य क्या है।

पूर्णिमा के बारे में तो वह निश्चित रूप से कह सकता है कि वह विनय के व्यक्तित्व से प्रभावित है और उसमें पूर्णिमा के हृदय को छूने-जगाने की शक्ति है। दो तीन प्रसंगों पर उसने यह देख लिया है। यह शुभ चिन्ह है। यदि पूर्णिमा का हृदय उसके प्रति इस प्रकार प्रतिक्रिया कर सकता है तो उसका जो आदर्श है कि वह पूर्णिमा को ऊँचे उठी हुई, भव्य भूमिका पर आरूढ़ नारी के रूप में देखे, वह सफल हो सकेगा। मनुष्य के मन में यह ज्ञान सबसे सुखदायी होता है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति के जीवन को प्रभावित-प्रेरित करके ऊँचा उठा सका है, और उसका श्रेय उसे है। इसी ज्ञान के कारण तथा इस आदर्श की प्राप्ति की संभावना के कारण, उसे सात्विक सुख हो रहा था। और यदि वह यथार्थ में पूर्णिमा की सुप्तशक्तियाँ जगाने में सफल हो सका तो पूर्णिमा के जीवन का नक्शा ही आमूलाग्र बदल जायगा। इस संभावना ने उसके सामने, जहां तक पूर्णिमा का संबंध है, एक निश्चित ध्येय, एक निश्चित कार्यबिन्दु रख दिया और उसका निश्चय हो गया कि अब उसके तथा पूर्णिमा के सम्बन्ध यूं ही बेलाग से, बेमानी नहीं होंगे किन्तु उनका एक विशेष लक्ष्य होगा।

आज विनय ने यह भी देखा कि पूर्णिमा के बारे मे उसके हृदय में आत्मीयता उत्पन्न होने लगी है। सहानुभूति की संवेदना भी परस्पर रहती है। पूर्णिमा के मातृ सुख विहीन जीवन से उसका हृदय द्रवित हो ही उठा था। उसके जीवन में कभी-जभी जो विषाद वर्षा के मेघों की तरह, न जाने कहां से अकस्मात् आ जाया करता था, उसके कारण उसके दिल में इस पीड़ित नारी के प्रति गहन अनुकंपा थी। और अब तो विनय-कुमार के रोमांचकारी जीवन की कथा सुनकर उसके दिल में करुणा का स्रोत उमड़ पड़ा था—

जो उसकी आँखों में वह निकला था। सहानुभूति का यह प्रतिभाव उन दोनों के बीच स्नेह की एक कोमल रश्मि निर्माण कर रहा था। जो दोनों के लिये सुख की वस्तु थी। लेकिन इससे अधिक और कोई भावना उसके हृदय में थी, यह वह ठीक से नहीं कह सकता था।

उधर पूर्णिमा के मन में भी आत्मविश्लेषण चल रहा था। जब जब वह विनयकुमार के संपर्क में आई है तब तब उसका व्यक्तित्व उसे विद्युत की तरह लहरा गया है। यह कैसा युवक है जो उसके दिल में हमेशा एक तूफान खड़ा कर चला जाता है। और वह उसकी इस चेष्टा का कोई प्रतिकार नहीं कर सकती और न वह अपने आपको उसके उथल-पुथल मचा देनेवाले प्रभाव से मुक्त रख पाती। इस तरह तो उसके जीवन पर किसी भी व्यक्ति का असर नहीं पड़ा था। जो मनुष्य हृदय में इतना तहलका मचा सकता है वह और कुछ करें या न करें, उसी हृदय में अपने लिये अमिट स्थान अवश्य बना लेता है। विनय के प्रति उसका आकर्षण है किन्तु वह यह मानती है कि उसकी यह भावना विलास के प्रति अनुभूत होने वाली भावना से अलग है। विलास से व्यवहार करते समय तो उसके सामने कोई झिझक, कोई संकोच नहीं रहता है। जैसे वह उसी की सतह का है, या कुछ बातों में उससे भी नीचे है। विलास को वह चाहे जिस तरह घुमा-फिरा सकती है, नचा-चला सकती है। लेकिन विनय में तो कोई ऐसी चीज है जो अथाह है, जिसकी शक्ति अज्ञेय है। और यह अज्ञात-तत्व इतना रहस्यमय है कि कम से कम वह तो उसकी थाह नहीं लगा सकती है। उसके स्वतः के मुकाबले में विनय, ऐसा जान पड़ता है, एक ऐसा ऊँचाई पर खड़ा है कि जिसकी बराबरी वह नहीं करने का स्वप्न भी नहीं देख सकती। और इसी कारण वह उसे गुरुपद का स्थान भले ही दें दे किन्तु मित्र का, स्नेही का स्थान देने की हिम्मत नहीं कर सकती थी। वैसे विनय ही उसे मित्र के रूप में स्वीकार कर ले तो यह उसकी कृपा है और इसका सौभाग्य जो आत्मविश्वास, सुरक्षितता और निश्चिन्तता उसे विलास की दोस्ती में अनुभव होती है वह विनय के साथ हर्गिज नहीं होती। इस लिये उसने कभी सोचा भी नहीं कि विनय के जीवन के निकट वह कभी पहुँच सकेगी। यूं विनयकुमार के बिना भी वह अपने अन्तर्जीवन की कल्पना नहीं कर सकती थी। उसकी तरफ आशा, ढाढ़स, शक्ति के लिये वह उसी तरह देखा करती थी, जिस तरह पापभीरु, श्रद्धावान् यात्री तीर्थ-मंदिरों की तरफ देखा करते हैं। उसे लगता था कि कभी-जभी उसे किसी ऐसे अज्ञात वस्तु की क्षुधा लगती है जो उसके बापू, विलास या और कोई आदमी तृप्त नहीं कर सकता, केवल विनयकुमार ही कर सकता है। किन्तु सिर्फ इतना ही, इससे आगे नहीं। सरिता अपने जीवन के लिये आकाश का पानी अवश्य चाहती है, लेकिन मिलने के लिये वह आतुर रहती है सागर से, आसमान से नहीं।

विनयकुमार ने यह जान लिया है कि उसके हृदय में पूर्णिमा के प्रति आकर्षण का प्रादुर्भाव हो गया है। इस आकर्षण का संबंध हृदय से रहता है, हृदय है भावना का केन्द्र। इसलिए पुरुष-स्त्री के बीच का यह आकर्षण दोनों के व्यक्तित्व को गहराई तक छू लेता है। आज शायद इसी के कारण विनयकुमार फिर कुछ अनमनासा है। अतः दिल बहलाने लिए वह आज शहर के सबसे बड़े और सुन्दर उद्यान कांग्रेस-पार्क की तरफ निकल पड़ा है—अकेला।

कांग्रेस-पार्क एक पब्लिक बगीचा है जहां कई नर-नारियाँ और बालक रोज शाम को घूमने, क्रीडा करने, आते हैं। जगह-जगह पर हरी दूब

के बड़े बड़े मैदान है जहाँ कई बेंचे और संगमर्मर तथा लोहे की कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। कई लता-कुंज हैं, जिनके मध्य में बैठने का सुन्दर, स्वतंत्र स्थान है जहाँ लोगों को एकान्त मिल सकता है। कई प्रनय-युगलों की प्रीति के ये साक्षी हैं, स्मृति-चिन्ह हैं। कतिपय युवक-युवतियों ने अपने जीवन की कई सुन्दरतम घड़ियाँ इसी उद्यान में बिताई हैं। पार्क के बीचो बीच एक हौज़ है, जिसमें सुन्दर फव्वारा हैं जिसके आस पास लोगों के मनोरंजनार्थ मिलिटरी का बैंड बजते रहता है। पार्क के एक कोने में महिलाएँ बेडमिंटन खेला करती हैं, दूसरे कोने में बच्चों के लिये झूला, फुटवाल, स्किपिंग आदि के साधन हैं। बच्चे किलकारियां मार कर यहां वहाँ दौड़ा करते हैं, आमोद-प्रमोद के वातावरण में समरस हो जाते हैं। कॉलेज की लड़कियाँ ग्रूप बनाकर भविष्य के प्रेम जीवन के सपने रंगा करती हैं या रोमान्स की चर्चा करती रहती हैं। कॉलेज के लड़के भी इससे ज्यादा अलग रास्ता नहीं अख्तियार करते। हाँ, दोनो ही कभी-जभी अपने प्रोफेसरों का जिक्र करके उनका मज़ाक उड़ाते रहते हैं। कहीं कहीं तो छात्र छात्राओं के एकत्रित ग्रूप्स भी दिखाई देते हैं और वे दुनिया को दिखाते हैं कि वे सबसे प्रगतिशील हैं। इनके अलावा बूढ़े लोग इस पार्क में नहीं आते सो बात नहीं। लेकिन, वे लोग अक्सर पेन्शन याफ्ता हैं और इनकी चर्चा का विषय या तो अपने सरकारी नौकरी के अनुभवों का दुहरा दुहराकर कथन होता है, या आज कल की नयी रोशनी के लड़के लड़कियों की उच्छृंखलता की आलोचनात्मक चर्चा होती है, (जिसका मसाला उनकी आँखों के सामने कॉफी मिलता रहता है) या फिर रामकृष्ण परमहंस या जे. कृष्णमूर्ति या वेदों की चर्चा होती है। हाँ, वे लोग अपने स्वास्थ के बारे में चर्चा किये बगैर नहीं रहते और 'डायटिक्स' या फिजिकल कल्चर के बारे में हरएक के पास कहने के लिये कुछ न कुछ जरूर रहता है!

उद्यान दर असल सुन्दर है। रंग-बिरंगी फूलों की क्यारियाँ, मेंहदी के झाड़ों की कतारें, लता-स्तंभ—ये सब उसके सौंदर्य को बढ़ाते हैं। उस वातावरण में आने के बाद कोई भी मानव प्रफुल्ल हुए बिना नहीं रह सकता था।

इसी प्रफुल्लता और आनन्द की तलाश में आज विनय कुमार आया है, वह एकान्त चाहता था इसलिये एक लता-कुंज की आड़ में जाकर, हरी दूब में, अकेले ही लेट गया। वह अपने ही विचारों में लीन था—बाह्य जगत् का उसे विस्मरण सा हो गया था। कौन आ रहा है और जा रहा है इसका उसे भान नहीं हैं। लेकिन 'पूर्णिमा' का नाम उसके कान पर पड़ते ही वह चौंक उठा, और उसका ध्यान स्वाभाविकता से उस ओर गया जहाँ से यह शब्द आ रहा था। उसने देखा कि चार-पांच युवकों का एक दल जो कॉलेज के विद्यार्थियों का रहा होगा, उस लता-कुंज की दूसरी तरफ बैठा हुआ गप-शप लगा रहा है। वे जहाँ बैठे थे वहाँ आस पास लताएँ ही लताएँ थीं; इसलिये वे दिल खोलकर बातें कर रहे थे उनका ख्याल था कि उनकी बातें किसी के कानों पर नहीं पड़ रही हैं। चर्चा का विषय पूर्णिमा ही थी। क्षण भर के लिये विनय को लगा कि वह वहाँ से उठ जाय क्यों कि दूसरों का गोप्य जानना सभ्य पुरुषों के लिये शोभा नहीं देता। लेकिन फिर उसने सोचा कि यह एक सार्वजनिक बगीचा है, और ये विद्यार्थी जो बोल रहे हैं वह गोप्य विषय नहीं है, और न चर्चा करनेवालों का यह इरादा ही मालूम पड़ता है कि इसे गोप्य ही रक्खा जाय। इस लिये वह कान खोलकर चुपचाप पड़ा रहा।

"तुमने सुना, दुबे, अपने कॉलेज का रोमान्स! बड़ा गुल खिल रहा है—वही मिस पूर्णिमा पण्डित के बारें में"।

"क्या भाई? क्या"? बाकी के सभी युवक एक साथ चिल्ला उठे। "सुनाओ जी, क्या बात है"? ऐसी बात सुनने के लिये किस की इच्छा न होगी? और खास कर पूर्णिमा के बारे में, जिसके सौंदर्य और चंचलता को देखकर लड़कों ने उसका नाम 'बिजली' रखा था।

"नहीं भाई मैं नहीं बतलाता। इस मुकर्जी से ही पूछो। उसे सारा हाल मालूम है। एक एक बात जानता है"—एक ने कहा जिसका नाम श्रीवास्तव है।

"यस मुकर्जी, कम ऑन? बतलाओ कौन वह भाग्यवान प्राणी है जिस पर मिस पण्डित फिदा हो गई हैं?"

' "नहीं जो, ऐसी बातें करना ठीक नहीं है। 'स्कैंडल-मॉंगरिंग' (बदनामी करना) में पसन्द नहीं करता।" मुकर्जी ने बनावटी शिस्टता लाकर कहा।

"अरे भाई, बताओ भी ? आखिर हम लोगों के धीरज की भी कोई हद है। नाहक धर्मराज न बनो। जो असली बात है वह सीधे सीधे बता दो जल्दी।" दुबे ने आग्रहपूर्वक कहा।

"अच्छा भाई, तुम इतना जोर देते हो तो बतला देता हूँ। तुमको छोड़कर अभी तक मैंने किसी से यह बात नहीं कही है।" मुकर्जी ने गंभीरतापूर्वक अपना 'नेतृत्व' संभालते हुए कहा। "वीणा ने मुझे कसम दी थी कि मैं यह बात किसी से न कहूँ।"

"यह वीणा कौन है ? एक ने शरारतभरी मुस्कुराहट से पूछा। 'चुप रहोजी' दुबे ने गंभीरता से कहा।" वीणा बैनर्जी नहीं जानते, जो इस मुकर्जी की ममेरी बहिन है। टेनिस कोर्ट पर नहीं देखा।"

"ओह ! सॉरी ! तुम्हारा मतलब है मिस बैनर्जी से ठीक है। आगे बढ़ो।"

"वीणा ने मुझे बतलाया कि पूर्णिमा और विलास का कोर्टिंग चल रहा है।"

"विलास ! वही अपना घोंघा विलास मोहन" ! दो-तीन-चार लोगों ने एकदम आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, वही। उसने न जाने पूर्णिमा पर कौनसा जादू कर दिया है। सुना है उनका 'लव मैरेज' भी होने वाला है। दोनों साथ साथ पार्टनर होकर मैच खेलते हैं, साथ होटल में डिनर खाते हैं, साथ-साथ 'लन्ह' फिल्म देखने जाते हैं, और"

"हाँ, हाँ, मैंने उन्हें ग्रेटा गार्बो के पिक्चर में बॉक्स में बैठे हुए रीगल थियेटर में देखा था।" श्रीवास्तव बोला।

"ऐसा ? और ? और क्या रे मुकर्जी ?" दूसरे ने पूछा। उसकी उत्कण्ठा तो रुकते नहीं रुकती थी।

"और साथ साथ मध्य रात्रि को दोनों ही, विलास की मोटर पर बैठकर पहाड़ी की सैर करने भी जाते हैं।"

"हैं ! यहां तक बात बढ गई है ? क्या यह सच है ? फिर एक महाशय बोले"।

"अरे सच नहीं तो क्या मैं झूट बोल रहा हूँ ?" मुकर्जी ने भड़ककर कहा "खुद वीणा ने उसे अपनी आँखों से देखा है।"

"क्या कहते हो ? वीणा ने कैसे देखाजी !" फिर वही शंकाकुल महोदय बोले।

"अरे भाई, वह अपनी फॅमिली के साथ एक दिन मोटर में बैठकर ग्यारह बजे रात को एक डिनर से लौट रही थी। इतने में बीच ही में एक बेबीकॉर से भेंट हो गई, जिसमें बैठे थे हमारे लैला-मजनू — दोनों पास ही पास सटकर बैठे थे।"

"सच ?" फिर वही सज्जन, जो आदत से लाचार थे, बोले।

"अरे तुम भी अजीब बेवकूफ हो" मुकर्जी ने नाराजी से कहा—

"इतना सबूत मिलने पर, इस तरह 'रेडड-हेण्ड' पकड़ने के बाद, क्या शक रहा ? अरे सिर्फ इतना ही नहीं उस दिन तो उन दोनों ने एक दूसरे के साथ सारा दिन बिताया। उसी रोज वे वीणा से मैच खेले थे और तब से जो बराबर साथ थे तो न जाने सारी रात रहे या क्या ?"

"अच्छा, यह बात है तभी विलास का आज कल पता नहीं मिलता है। जीते रहो पट्ठे ! मार दिया हाथ। लेकिन यार सच कहूं तो वह बूट मिस पंडित के लिये बिलकुल नालायक है।"

एक महाशय अपनी सहानुभूति का प्याला लेकर दौड़े।

"अरे भाई आजकल की लड़कियों का क्या ! कपड़ों की तड़कभड़क देखी, मोटर देखी, पैसा देखा, रूप रंग देखा और फेंक दिया अपना दिल! दूर तक सोचने की फुरसत किसे है," दुबे ने कहा।

"साइकॉलाजी में लिखा है कि सुन्दर स्त्रियाँ 'स्ट्रांग फिजीक' वाले पुरुषों पर मोहित होती हैं। और यह बात विलास में पर्याप्त रूप में है।" एक साहब ने 'सिचुऐशन' की 'एनेलिसिस' करते हुऐ कहा।

"जो भी हो"—मुकर्जी ने कहा, "जो मैंने कहा वह रत्ती रत्ती सच है। मैं ने तो सुना है कि दोनों का 'एंगेजमेंट' भी होने वाला है और विवाह भी, फिर जल्दी हो जाएगा। विवाह हो जाय तो हो जाय, विलास से ही हो जाय, मुझे कुछ नहीं कहना

है। आखिर दिल ही तो ठहरा । जिससे लग जाय, लग जाय । लेकिन विवाह के पहिले ही इस तरह के दन्द-फन्द करना ठीक नहीं है । वीणा कहती थी कि कालेज की सब लड़कियां इस 'स्कैंडेल' को जानती हैं और अब उनके दिल में पूर्णिमा के लिये कोई इज्जत नहीं रह गई है ।"

"ठीक भी तो है मुकर्जी । अरे माना कि 'मिया-बीवी राजी तो क्या करे काजी' । लेकिन पहिले बाक़ायदा मिया बीबी तो हो लो फिर जो चाहे करो । नहीं तो गिरोगे किसी दिन गड्ढे में ।" दूसरे महानुभाव ने सलाह दी जैसे पूर्णिमा और विलास वहीं उनकी सलाह सुनने के लिये बैठे थे ।

इतने में उस ओर कुछ लड़कियों का एक दल निकल आया जिन्हें देख हमारी 'मुकर्जी एण्ड कम्पनी' चुप हो गई । बात बदलकर वे लोग फिर वहाँ से उठ कर चले गए । लेकिन विनयकुमार अप्रतिभ होकर वहीं का वहीं पड़ा रहा । उन युवकों को मालूम भी न पड़ा कि उनकी चर्चा का श्रोता कौन था और उनकी चर्चा से उस श्रोता के हृदय में कितना भयंकर तूफान मच गया है ।

विनय कुमार का हृदय तीव्र लज्जा ग्लानि और विषाद से भर गया । पूर्णिमा के बारे में इस प्रकार के लोकापवाद फैले हुए हैं इसका उसको पहली बार ज्ञान हुआ, और उसी के कारण उसे लज्जा लग रही थी । पहाड़ी की सैर के बारे में जो कहा गया था और उसके बारे में जो अर्थ लगाए गए थे उससे भी उसे बड़ा दुःख हुआ । सत्य क्या है यह वह नहीं कह सकता था । उसने पूर्णिमा और विलास को दो तीन बार साथ देखा था । पूर्णिमा के सालगिरह के जलसे में उसने विलास पूर्णिमा को एक दूसरे से हँसकर हाथ मिलाते हुऐ देखा था । मोटर में भी साथ घूमते हुए देखा था । लेकिन सिर्फ इतने से ही उस नतीजे पर पहुँच जाना, जिस पर वे विद्यार्थीगण पहुँचे थे, उससे न हो सका और न वह निश्चय-पूर्वक कह सका कि विलास और पूर्णिमा के बीच किस प्रकार के सम्बन्ध हैं, और वे कितनी दूरी तक गये हैं ।

विलास को वह जानता था और उसके बारे में उसका मत अच्छा नहीं था । उसके साथ घनिष्ट सम्बध तो नहीं आया था, लेकिन विनयकुमार को, किसी के स्वभाव को जानने के लिये, घनिष्ट सम्बन्ध की जरूरत नहीं होती थी । उसकी तीक्ष्ण शोधक दृष्टि थोड़े ही में बहुत कुछ देख लेती थी । विनय की धारणा थी कि विलास अपने नाम की तरह विलासप्रिय था और इस दृष्टि से उसका नामकरण बिलकुल उचित था । उसकी आँखों में एक प्रकार की विषयासक्ति थी, जो कुछ स्त्रियों को भले ही अच्छी लगे, विनयकुमार को तो नहीं लगती थी । और उसकी जीवन दृष्टि यही बतलाती थी कि विलास के जीवन मे गहराई नहीं है, गांभीर्य नहीं है; उसके जीवन की इमारत का पाया और दीवारें बहुत कमजोर हैं जिसको दुनिया की असलियत की एक आँधी तहस नहस कर सकती है । और सबसे दयनीय बात यह है कि उस के जीवन में पाशविक तत्वों का ही आस्तित्व है, आध्यात्मिक-मानसिक या सांस्कृतिक तत्वों की एकदम कमी है । क्या ऐसे व्यक्ति से पूर्णिमा प्रेम कर सकती है ? क्या सचमुच वह उस उस पर आसक्त है, या यों ही उसके बारे में लोकापवाद उड़ाया गया है, जैसा कि हमारे समाज में प्रत्येक सुन्दर रमणी के बारे में उड़ाया जाता है ? विलास पूर्णिमा के पीछे दीवाना होकर फिरे तो इसमें आश्चर्य नहीं । वह एक भ्रमर है जो भिन्न भिन्न फूलों पर पराग के लिये बैठता फिरता है । किन्तु पूर्णिमा तो वैसी नहीं हैं । हां, उसके जीवन का एक पहलू विलास के जीवन से मिलता जुलता है । किन्तु वही तो उसका सम्पूर्ण जीवन नहीं है । वह जो उसके जीवन क' दूसरा पहलू है, ऊँचा, गंभीर और गूढ़,-उसका क्या होगा ? उसकी क्षुधा, उसकी शाश्वत पिपासा, विलास के साथ में कैसे शान्त होगी ? और उस अशान्ति में पूर्णिमा कैसे सुखी हो सकेगी ? क्या शरीरिक सुख का प्रथम आवेग समाप्त होने के बाद उसके सामने एक बड़ा शून्याकार न खड़ा होगा ? और वह दारुण निराशा, वह घनीभूत अंधकार क्या उसके जीवन की आनन्द दीप्ति को सदा के लिये बुझा न देंगे ? यदि ऐसा हुआ तो उस भयंकर विषण्णता का भार पूर्णिमा जैसी भावना-प्रवण नारी कैसे सहन कर सकेगी ?

क्या यथार्थ में पूर्णिमा विलास से प्रेम करती है ? न जाने क्यों यह विचार उसे पीड़ा पहुचाने

लगा और वह पीड़ा का अनुभव ऐसा था जो, आज तक उसे नहीं हुआ था। क्यों आज उसके हृदय में इतनी विकलता इतनी बेचैनी उठ पड़ी है। क्यों ? पूर्णिमा क्या करती है, किससे प्रेम करती है इससे उसे क्या प्रयोजन ! हां, वह उसका हित-चिंतक है, मित्र है उसे उन्नतिके पथ पर देखना चाहता है, यह सच है। किन्तु पूर्णिमा के भावनात्मक प्रेमजीवन से प्रीति की भाव-भंगियों से उसका क्या सम्बंध है ! क्या वह पूर्णिमा की अपनी व्यक्तिगत वस्तु नहीं है ? और इसमें उसे पूरी स्वतंत्रता नहीं है ? तर्क अपना काम करता रहा, विचार और दलीलें कूद-फाँद करती रहीं, किन्तु विनयकुमार के हृदय में जो व्याकुलता और तड़पन का आन्दोलन उठा था वह शांत नहीं हुआ। उसका मन आशंकित हो उठा। पार्क में आया था वह अपने विषाद को दूर करने के लिये, किन्तु वहाँ से जब लौटा तब विषण्णता की अधिक मात्रा लेकर लौटा था। रात्रि के अन्धकार के पर्दे में, ज़ब पार्क सूना हो रहा था, उसने अपने आपको एकदम अकेला — मित्र विहीन स्नेह-विहीन पाया और उसे लगा कि उसके हृदय में भी गहन अंधकार, गहन सूनापन भर गया है। उसकी आँखों में तरलता आ गई और निश्वासों में कम्पन।

अपार खिन्नता का भार लेकर वह अपने कमरे की तरफ लौटने लगा। उसके पावों में भारीपन था। गति धीमी थी, जैसे हृदय का भाव पैरों में भी उतर आया हो।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

: सत्य निर्देश :

उस दिन सुशील जब विनयकुमार से मिलने उसके कमरे पर गया तब वह अपने बिस्तर पर लेटा हुआ था। न पढ़ता था न सोया था। एक पतला ब्लैंकेट पैरों पर डाल कर विचार-मग्न पड़ा हुआ था। सुशील ने तुरन्त समझ लिया कि आज विनय के हृदय में कोई उथल-पुथल अवश्य मची है। वह जाकर उसी के बिस्तर पर बैठ गया।

सुशील, विनयकुमार का केवल सहाध्यायी ही नहीं, मित्र भी है, उसके बहुत नजदीक है। वह आदर्शवादी, भावनाशील, सुसंस्कृत युवक है और जितना अच्छा उसने विनयकुमार को समझा है, उतना शायद—विनय की मां को छोड़ और किसी ने नहीं समझा होगा। पहली अंगरेजी कक्षा से दोनों साथ साथ एक ही क्लास में पढ़े, एक ही मैदान पर फुटबॉल खेलें; एक ही साथ कई बार खाना खाया। सुशील के पिता एडव्होकेट थे और उनका मकान विनय की मौसी के मकान के पास ही था इस लिये दोनों के बीच घनिष्टता बढ़ने के लिये अनुकूल वातावरण था। विनय की मां का भी सुशील पर बड़ा स्नेह था। विनय की मां की मृत्यु के बाद तो सुशील के परिवार में विनय के लिये एक खास स्थान हो गया था। विनय था भी बुद्धिमान्, स्नेहशील और प्रतिभाशाली। जहां भी खड़ा होता वहाँ अपने लिये स्थान बना ही लेता। सुशील के पिता भी विनय कुमार को अपने पुत्र जैसा ही लेखा करते थे। इस लिये विनय भी सुशील से कोई बात नहीं छिपाता। केवल इतना ही नहीं, जब कोई भावना, दुख या विचार उसे बेचैन करता, और व्यक्त होने के लिये छटपटाता तो वह सुशील ही था, जिसके सामने वह विश्वास के साथ व्यक्त हो सकता था।

उस समय दर असल विनय विचार मग्न था। कल कांग्रेसपार्क में जो सुना उसने उसके हृदय को गहराई तक उद्वेलित कर दिया था। उसके मन में जो आशंका बार बार झाँक-झाँककर देख जाती थी, वह उसे और भी अधिक विचलित कर रही थी। उसकी भावनाओं में कई बातों का मिश्रण था। पूर्णिमा की बदनामी से होनेवाली व्यथा ही केवल नहीं थी; न सिर्फ यही बात थी कि उस युवती ने विलास जैसे उथले पुरुष को पसंद कर अपने जीवन की राह पर दुख के कांटे बिछा लिये थे। ये बातें तो थीं ही। लेकिन उसे ऐसा लग रहा था कि इससे भी आगे की एक बात और है, जिससे उसका भी सम्बन्ध आता है, और जिसके कारण उसका मन इतना उद्विग्न हो उठा है। और वह है उसका पूर्णिमा के प्रति आकर्षण। यह आकर्षण किस प्रकार का है यह वह नहीं कह सकता था। स्नेहभाव कहाँ समाप्त होता है और ममत्व कहाँ शुरू होता है यह कहना कठिन है। और ममत्व कहाँ समाप्त होता है, और इससे भी आगे प्रेम भावना कहाँ

शुरू होती है, यह कहना उससे भी कठिन है। यदि केवल पूर्णिमा के प्रति उसका स्नेहभाव हो है तो सिर्फ उसे पूर्णिमा की पसन्दगी से मानसिक क्लेश होना ही काफी है। ममत्व है तो यह दुख हृदय में भी व्यक्त हो सकता है। किन्तु उसके हृदय में यह पराजय की भावना कैसी, जैसे पूर्णिमा की इस पसन्दगी ने उसे पीछे ढकेल दिया हो, उसका अपमान किया हो। यह सब क्यों है? इसका अर्थ क्या है? उसे यह क्यों ऐसा लग रहा है? यही प्रश्न उसके मन की कमजोरी बन कर बार बार उठा करते थे।

"क्यों तबीयत खराब है विनय?" अन्दर आते ही सुशील ने आस्थापूर्वक पूछा—"क्या बात है?"

"आओ सुशील। बड़े अच्छे वक्त पर आए। मैं व्यस्त सा पड़ा था। न जाने मुझे आज इतनी खिन्नता क्यों घेरे हुए है? बहुत अच्छा हुआ जो तुम आ गये। मैं तुम्हारे ही बारे में सोच रहा था। शायद तुमने मेरी अनुनय सुन ली।" विनय ने हँसकर कहा लेकिन उसकी हँसी में कुछ उदासीनता थी।

"क्यों कोई मसला है? या कोई चिन्ता सता रही है? या मां की याद आ रही है?" सुशील ने पूछा।

"नहीं, मां की याद तो इस समय नहीं कष्ट दे रही है। चिन्ता भी नहीं है। हो तो शायद प्राब्लेम ही हो सकता है।" विनय ने बगैर किसी संकोच के कहा और उसने कल संध्या को कांग्रेसपार्क में जो सुना था, और उसके कारण उसके दिल में जो तूफान उठा था, उसका सही सही हाल कह सुनाया। उन दोनों मित्रों के बीच कोई परदा तो था नहीं। सब कह चुकने के बाद विनय बोला, "कल से पता नहीं क्यों मुझमें भिन्न भिन्न विचार और भावनाएँ उठ रही हैं, जिनका मैं ठीक से विश्लेषण नहीं कर पाता हूँ। यह भी पता नहीं कि जो सुना है वह ठीक है या नहीं।"

"जो तुमने सुना विनय, वह तो ठीक ही मालूम पड़ता है। कॉलेज में यह जिक्र तो मैंने भी सुना था, टेनिस क्लब में इसकी काफी चर्चा है। लेकिन दादा कहते थे कि बार रूम में भी इसका जिक्र दबी जबान से किया जाता है कि बैरिस्टर पण्डित की लड़की का विवाह तय हो रहा है और सब वकीलों और जजों को एक बड़ा शानदार 'डिनर' खाने का मौका आ रहा है। लेकिन उसमें हमें क्या सरोकार विनय? पूर्णिमा पण्डित का कुछ भी हो, हमें उससे क्या?" सुशील ने पूछा।

"तुम जानते हो सुशील, पूर्णिमा से मेरी मित्रता है। पहले तो उसे मैं बड़ी उथली, उच्छृंखल लड़की समझता था और उसे नापसन्द भी करता था—लेकिन मैंने देखा कि मैं उसके प्रति जुल्म कर रहा था। उसकी वर्ष-गांठ के दिन के गायन ने तुम—शायद नहीं थे वहाँ,—मुझ पर गहरा असर किया। यूनियन के उस दिन के मेरे भाषण ने भी उस पर इसी प्रकार का प्रभाव डाला, जो उसकी जैसी नारी के लिये अस्वाभाविक था। फिर मैं उससे दो-एक बार और मिला और जाना कि उसके जीवन में एक गहरी विषण्णता है जो कभी-कभी उभड़कर उसकी आर्त एवं मूक वेदना बन जाती है। वह भी मातृ-विहीना है सुशील, मेरी ही तरह। मैंने तो मां का प्रेम जाना भी है—उसने बिलकुल नहीं। जैसे मुझे अपने पिताजी के बारे में गूढ़ किन्तु अगाध श्रद्धा है, वैसी ही उसे भी अपनी माँ के बारे में मालूम पडती है। इसी कारण मुझे उसके प्रति गहरी सहानभूति है।'

"हाँ यह स्वाभाविक है। तुम दोनों में कुछ बातें कॉमन मालूम पड़ती है।" सुशील ने बीच ही में कहा।

"हाँ हैं तो सही।" विनय ने अपनी बात आगे बढ़ाई! "फिर एक दिन संध्या को मैं उसके यहाँ गया। उस्ताद की तालीम में वह गाना गा रही थी। उस्ताद ने भी उस दिन एक करुणा-गीत सुनाया। हम दोनों ही उससे विकलित हुए। उसी दिन पूर्णिमा के आग्रह से मैंने उसे अपनी जीवन गाथा कह सुनाई।"

"क्या उसीने कहा था सुनाने के लिये? आश्चर्य है। उस लड़की से तो यह आशा नहीं थी।"

"हाँ, उसीने कहा था। केवल कहा ही नहीं, आग्रह भी किया था। जो था मैंने वह सब कह सुनाया—मेरे माता-पिता का प्रेम, मेरा जन्म पिता की मृत्यु, और फिर माँ का भी महाप्रयाण—

और, कहते कहते वे सारी करुणा स्मृतियाँ मेरे हृदय में जाग उठी और मेरी आँखों में आँसू आ गये। पूर्णिमा के चेहरे पर तो अश्रुओं की धाराएँ वहने लगीं--उसका बाँध टूटा हुआ-सा दीखने लगा। वह अन्दर चली गई और उस भावना के आवेश में, मैंने भी वहाँ अधिक ठहराना उचित न समझा, इस लिये मैं भी वाहर ही बाहर, उससे विना मिले, चला आया।"

"ऐसा ? तब ?" सुशील ने विचारमग्न होकर कहा।

"तब क्या ? तब से मैं आज तक पूर्णिमा से नहीं मिला हूँ। किन्तु इन घटनाओं ने मेरा मन उसके बारे में पूरी तरह बदल दिया है। अव यह धारणा पक्की हो गई है कि पूर्णिमा के जीवन में भी गहराई है। गांभीर्य है, ऊँचे उठने की ताकत है, बशर्ते कि वह ताकत जगाई जाय। मेरा ख्याल है कि उसके व्यक्तित्व के दो पहलू हैं, और बाह्य जगत् के वातावरण या प्रभाव की प्रतिक्रीया उनपर होती रहती है। यदि विलास जैसा उथला, विलास-प्रिय-युवक उसके पास रहे तो उसकी वह क्रीड़ा-प्रियता और आमोद-प्रमोद की वृत्ति सतह पर उठ आती है, और उसका गांभीर्य न जाने कहाँ दबकर बैठ जाती है। लेकिन उसके विपरीत उस पर कोई दूसरा प्रभाव पडे, उसकी प्रेरणा शक्ति कहीं दूसरे सात्विक स्थान से मिले तो वह निःसन्देह बहुत ऊँचा उठ सकती है, और उसका समस्त जीवन श्रद्धा, आदर और मांगल्य की वस्तु हो सकता है। इस सुप्त पूर्णिमाको जगाने की आवश्यकता है, सुशील।"

सुशील ने केवल "हूँ" कहकर बात सुन ली। उसका चेहरा एकदम गंभीर हो गया, जैसे वह किसी जटिल प्रश्न को सुलझाने की कोशिश में अपनी सारी विचार शक्ति लगा रहा हो।

"'हूँ' का क्या मतलब है, सुशील। बोलते क्यों नहीं ? सब चुपचाप सुनते ही चले जा रहे हो ?" विनय ने पूछा।

"तुम अपना कहना तो पहले पूरा करो ! फिर कहूँगा, यदि कुछ कहना हो तो। तुम्हारा प्रॉब्लेम क्या है, यह तो तुमने अवतक बतलाया ही नहीं।"

"मुझे आत्मविश्वास है कि मैं इस सम्बन्ध में पूर्णिमा की सेवा कर सकता हूँ। उसकी सुप्त शक्तियाँ जगा सकता हूँ। पहले तो मैं यह दावा नहीं कर सकता था, लेकिन अब अनुभव से कर सकता हूँ।"

"यह तो मैं भी मानता हूँ।" सुशीलाने तुरन्त कहा।

"मुझे खेद है कि विलास जैसे अगंभीर, विषयासक्त युवक के सान्निध्य में उसका जीवन वर्बाद हो जायगा। आज वह अपने अहित को नहीं समझती है, किन्तु विवाह के बाद वह घड़ी शीघ्र ही आवेगी जब उसे घोर पश्चात्ताप होगा और वह अपनी गलती महसूस करेगी। उसके हृदय को उस समय जो ठेस पहुँचेगी वह पूर्णिमा शायद ही सहन कर सके।" विनय कुमार ने कहा।

"लेकिन यह तो उसका अपना सवाल है न, विनय ! यदि उसका विलास पर प्रेम है, और यह 'लव मैरेज, होने जा रहा है, तो उसे कैसे रोका जा सकता है ? और यदि रोका भी जा सकता तो क्या यह वांछनीय है ?"

"सुशील ? यह प्रेम है ऐसा तुम मानते हो ? मेरी धारणा है कि यह प्रेम नहीं मोह है। आज मोह का पर्दा आँखों पर है, इसलिये ठीक है। लेकिन जिस दिन वह परदा दूर होगा उस दिन जो भ्रम निरास होगा, वह कितना भयंकर होगा ? उस दिन पूर्णिमा को ज्ञात होगा कि सच्चा प्रेम उसे मिला ही नहीं। जो मिला है वह मोह का मायावी-उन्माद है, प्रणय की पवित्र परिणति नहीं।"

"यह सब मैं भी मानता हूँ, विनय। तुम जो कह रहे हो वह रत्ती रत्ती सच है। लेकिन मेरी समझ में अब तक यह नहीं आ रहा है कि इसमें तुम्हारा कहाँ सम्बन्ध आ रहा है, और तुम्हें उसकी चिन्ता क्यों हो गई ? माना, कि पूर्णिमा तुम्हारी मित्र है, तुम उसके हितैषी हो। यह ठीक होगा कि एक दिन जा कर तुम उससे अपना मत नम्रता और स्पष्टता के साथ निवेदन कर दो, हालाँ कि मैं किसी के प्रणय में किसी प्रकार का दखल देना गलत समझता हूँ; यदि पूर्णिमा के हृदय में सचमुच प्रीति की भावना जाग्रत हुई है तो। लेकिन एक मित्र के नाते तुम्हारे जैसे व्यक्ति का, जिसके लिये उसके हृदय में आदर

है, उसे आगाह कर देना अनुचित नहीं है। पर इसे तुम्हें अपना व्यक्तिगत प्रश्न नहीं बनाना चाहिये। अगर वह न सुने तो वह नादान तो है नहीं जो अपना भला-बुरा न जानती हो। उससे तुम्हें दुख क्यों होना चाहिये?" सुशील ने कहा।

"कल रात से मुझे बड़ी अन्तर्व्यथा हो रही है, सुशील। न जाने क्यों यह बात मेरे हृदय को इतना बेचैन कर रही है। मुझे लगता है कि इससे मेरा घनिष्ट सम्बन्ध है। मैंने आज तक तुमसे कोई बात छिपाई नहीं है, आज भी नहीं छिपाना चाहता। मा जब थी तब वह मेरे समस्त विश्वास और स्नेह की गोद थी। और उसके बाद मैंने तुम्हीं से इतना स्नेह और अपनापन पाया है। तुम्हारे सामने मैं अपना हृदय न खोलूं तो अब मेरे लिये और कौनसा स्थान बच रहा है, सुशील?"

विनय का गला रुंधने-सा लगा। विनय के इस अगाध स्नेह की अभिव्यक्ति ने सुशील को भी विचलित कर दिया। इस अगाध स्नेह और विश्वास की थाती को सम्हालने के लिये उसके व्यक्तित्व का रोम रोम उत्कंठित था।

उसकी आँखें भी भर आईं। अपने आपको सम्हालते हुए उसने कहा—

"मैं जानता हूँ विनय, और इसलिये मैं स्वत: को बड़ा भाग्यवान मानता हूँ कि तुम्हारे इस निर्मल स्नेह का पात्र बन सका। कहो निसंकोच होकर कहो, तुम्हें कौनसी बात कष्ट दे रही है!"

"पूर्णिमा के इस निश्चय ने, ऐसा लगता है कि मेरे अन्तर के किसी सुदूर, गोप्य स्थान को ठेस पहुंचाई है। क्या कारण है पता नहीं, लेकिन मैं अनुभव करता हूँ कि मैं पराजित हूँ, उपेक्षित हूँ, मेरा किसी ने अपमान-सा कर दिया है। ऐसा मुझे क्यों लगता है इसका मुझे ही आश्चर्य हो रहा है। कल रात भर मैं इस आश्चर्य के पीछे छिपे हुए सत्य को खोजने का प्रयत्न करता रहा। अब भी मुझे वह सत्य हाथ नहीं लगा है और मेरा मन आशंका और वेदना से भर जाता है। ऐसा अनुभव मुझे आज तक जीवन में नहीं हुआ।"

सुशील के मन में एक कल्पना कहीं से आकर छू गई। उस कल्पना ने उसे आनन्द नहीं दिया, चिन्ता का बोझ दिया। उसने विनय का हाथ अपने हाथ में लेकर स्नेह पूर्वक धीरे से दबाया। उस स्नेहार्द्रस्पर्श में कितनी सहानुभूति, कितनी आत्मीयता भरी थी। जब वह अपनी गहन अनुकंपा का यह सन्देश उसके हृदय तक पहुँचा चुका तब वह धीरे धीरे, किन्तु स्पष्ट शब्दों में बोला—"विनय? जरा मन की थाह लेकर खोजो तो कि कहीं तुम पूर्णिमा से प्रेम तो नहीं करने लगे!"

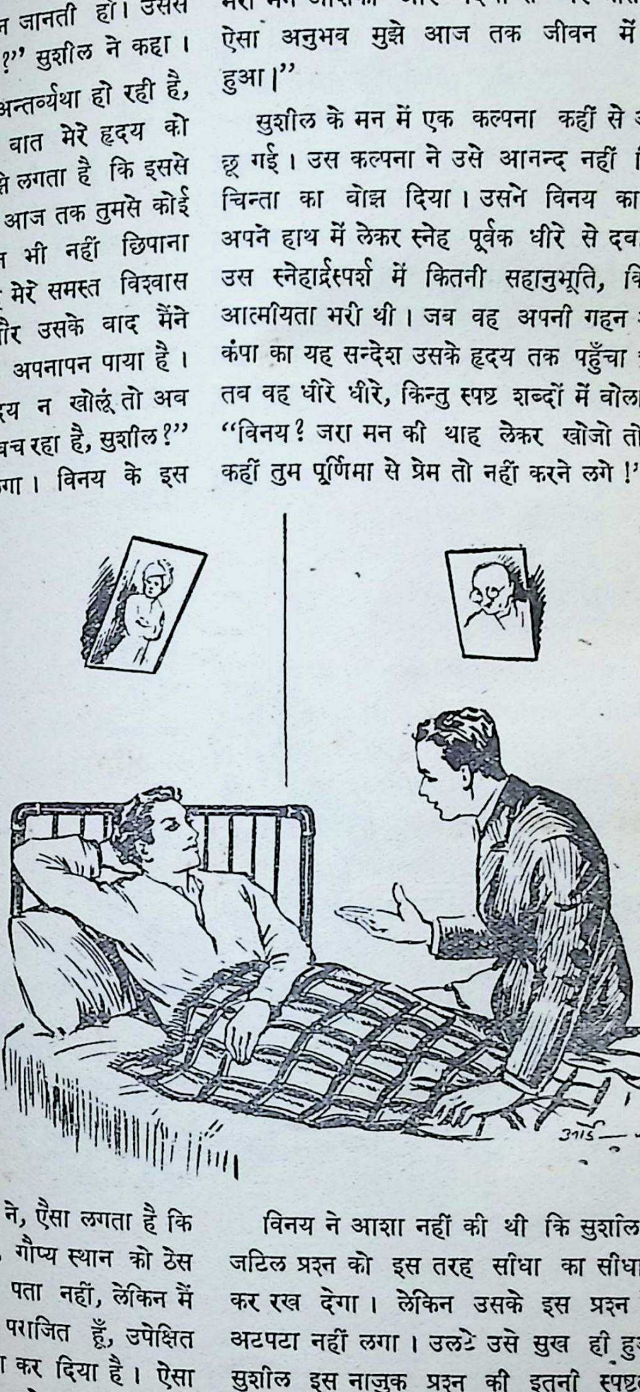

विनय ने आशा नहीं की थी कि सुशील उसके जटिल प्रश्न को इस तरह सीधा का सीधा खोल कर रख देगा। लेकिन उसके इस प्रश्न से उसे अटपटा नहीं लगा। उलटे उसे सुख ही हुआ कि सुशील इस नाजुक प्रश्न की इतनी स्पष्टता से चर्चा करना चाहता है।

"यही एक प्रश्न रह रह कर मेरे सामने कल संध्या से आ रहा है सुशील। और जब मैं यह सोचता हूँ कि कहीं इसका उत्तर 'हाँ' हुआ, तब फिर वह कितनी भयंकर ट्रेजेडी होगी? क्या जीवन में अब तक जितना भोगा है वह काफी नहीं हुआ।" व्याकुल होकर विनय ने कहा।

सुशील का हृदय भी उस ट्रेजेडी की संभावन से दहल उठा। प्रणय के त्रिभुज ने कई बार कई प्रेमी-जनों के हृदयों को दग्ध किया है। क्या उसके एक मात्र परम मित्र के जीवन में भी उस कठोर नियति का दानवीय नृत्य शुरू होगा और उसकी हृदय-निधि के वैभव को आग लगाकर उसे भस्मीभूत कर देगा? सुशील भी एकदम उदास हो गया। चिन्ता और वेदना से उसका चेहरा उतरकर काला हो गया।

"ईश्वर न करे, ऐसा हो" एक गहरी निःश्वास लेकर स्तब्धता को भंग करते हुए सुशील ने कहा, "तुम दुखी न हो विनय। इसके पहिले कि तुम किसी निर्णय पर पहुँचो अच्छा होगा कि तुम एक बार पूर्णिमा से मिल लो। तुम उससे बहुत स्पष्टता से बातें कर सकते हो, यह मैं जानता हूँ। जो भी तुम कहोगे उसकी वह अश्रद्धा या अवहेलना तो नहीं कर सकेगी। कई बातें साफ भी हो जावेंगी। तब तक तुम्हें धीरज रखना चाहिए।"

विनय कुमार कुछ न बोला। दीवाल की तरफ मुँह फेर कर उसने करवट बदली। सुशील ने उसकी पीठ पर ममतापूर्वक धीरे धीरे हाथ फेरना शुरू किया। विनय की आँखों में आँसू आ गये।

* * *

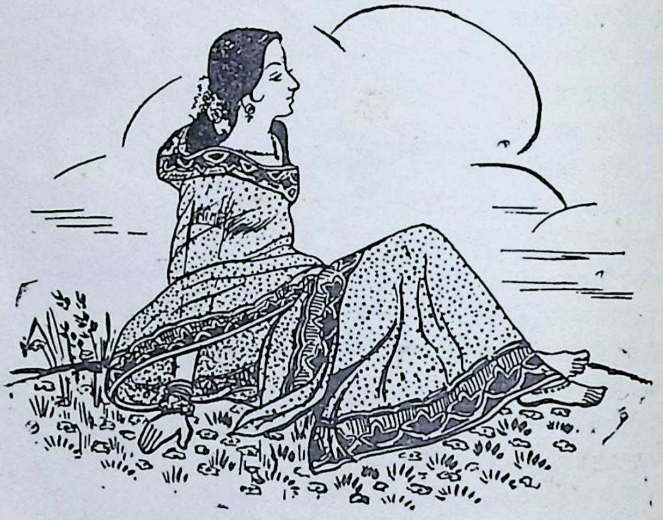

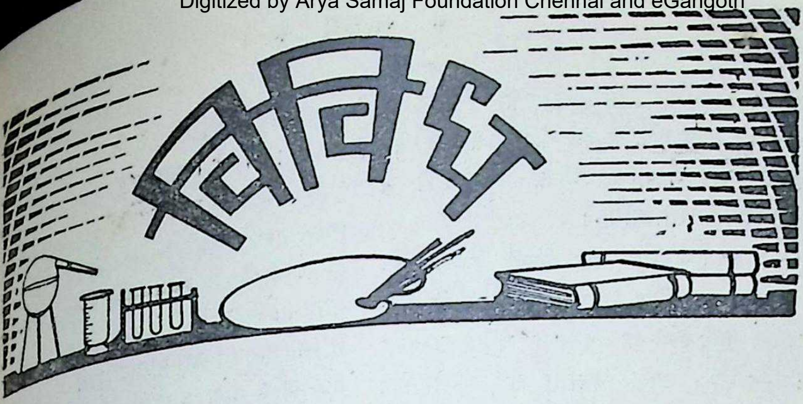

रही-सही दासता से मुक्ति के लिये संग्राम :

केन्द्रीय मंत्रिमंडल में नव-नियुक्त अन्न और कृषि-मंत्री श्री. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने एक स्वागत समारोह में भाषण करते हुए सन १९५१ तक अन्न-स्वावलम्बन के निश्चय को पुनः दोहराया है। आज आर्थिक संकट के कारण सारे देश में अशान्ति का जो वातावरण देखने में आ रहा है उसके कारण ३ वर्ष पूर्व स्थापित स्वराज्य का उल्लास सहसा विलीन-सा हो जाता है। अधैर्य उसका वर्तमान स्वरुप है और हमारी स्वाधीनता को चुनौती के रूप में एक भविष्य हमारे सामने किसी दिन खडा हो सकता है।

जैसा श्री मुंशी जी ने कहा है हमें—'विदेशी रोटियों की दासता के विरुद्ध नया स्वातंत्र युद्ध' छेड़ना है। यह स्वातंत्र-युद्ध कुछ ऐसी रचनात्मक प्रणाली पर हो सकता है जिसके धैर्य में सफलता पूर्ण रूप से निहित है। उत्पादन की वृद्धि-क्या कृषि कार्य में और क्या औद्योगिक क्षेत्र में ही हमारे इस संग्राम कर चिरलक्ष्य है। कृषि कार्य में वृद्धि से ही उत्पादन की वृद्धि सम्भव है। वह देश की खाद्यान्न स्थिति की पूर्ति कर राष्ट्र-मानव के भरण-पोषण में ही सहायक नहीं होगा साथ ही उद्योगों में भी उत्पादन की वृद्धि कर आर्थिक अभावों को पूरा करेगा।

हमारे अन्न और कृषि के मंत्री ने इस संग्राम के लिये एक चतुर्मुखी योजना प्रस्तावित की है। इस योजना के अनुसार आगामी १५ महीनों में २० लाख एकड़ ऊसर भूमि को कृषि-कार्य के योग्य बनाना है। ३ लाख ट्यूब-वेल खोदने हैं। ३० लाख टन खाद्यान्न, १२ लाख गांठ कपास तथा २५ लाख टन जूट या पटसन का उत्पादन करना है। जुलाई के पहले सप्ताह को राष्ट्रीय वृक्षारोपण सप्ताह के रूप में मनाने की योजना आपने दी है। इसके लिये राष्ट्र के धनिकों से ५० वृक्षों और एक नलदार कुंवा बनाने का आपने अनुरोध किया है। इस कार्य में किसानों की सहायता तथा उनकी स्थिति में सुधार का शासन का मन्तव्य भी आपने प्रकट किया है।

राष्ट्र का कल्याण, ज्ञानार्जन, आत्म-सुरक्षा प्रभृति जिन अनेक क्षेत्रों की सम्पन्नता में निहित है उनमें उत्पादन का एक महत्वपूर्ण स्थान है। कारण, प्रगति के अन्योन्य सभी अंग आर्थिक सम्पन्नता पर ही निर्भर हैं। आज हमारे स्वाधीन जीवन का यही अंग शिथिल है जिसे परिपुष्ट करने के लिये हमारे नेता ने उपर्युक्त संकल्प राष्ट्र के सामने रखा है और सार्वत्रिक सहयोग की आशा की है।

भारत-पाक सम्बन्ध और समाचार-पत्र :

नेहरू-लियाकत अली समझौते के पश्चात् यह आवश्यक था कि जिस प्रकार दोनों राष्ट्रों की जनता से समझौते का दृष्टिकोण अपनाने का अनुरोध किया गया था; दोनों राष्ट्रों के समाचार पत्र भी उसी प्रकार उसे सफल बनाने में अपना योग देते। और इसकी पूर्ति नयी दिल्ली में आयोजित की गयी दोनों राष्ट्रों के समाचार पत्रों के सम्पादकों की संयुक्त परिषद द्वारा की गयी।

इसमें भाग लेने के लिये पाकिस्तान समाचार पत्र सम्पादक परिषद के अध्यक्ष पीर अली मोहम्मद रशीदी के नेतृत्व में पाकिस्तानी पत्र सम्पादकों का एक प्रतिमंडल भारत आया ।

प्रधान मंत्री पं. नेहरू के शब्दों में “भारत-पाकिस्तान परस्पर मित्र राष्ट्र ही तक सीमित नहीं रहें, प्रत्युत एक दूसरे के अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध उनके बीच रहें । इसके विपरीत कोई दूसरा रुख भारत पाकिस्तान दोनों के लिये अत्यंन्त भयावह है ।” भारत के विभाजन के बाद से पाकिस्तान और भारत के परस्पर सम्बन्ध जिस क्रमिकता के साथ कटु से कटु होते चले गये उन्हें अच्छा बनाये रखने का कार्य समाचार पत्रों-द्वारा पर्याप्त रूप से किया जा सकता था । परन्तु वैमनस्य के बढ़ते रहने के साथ पाकिस्तानी समाचार-पत्रों में भारत की हर बात उसी सन्देह की दृष्टि से देखी जाने लगी जिस दृष्टि से वहां की सरकार देखने की अभ्यस्त हो गयी थी । पाकिस्तान के विरुद्ध भारत में आक्रमणात्मक तैयारियाँ, भारत की मुस्लिम अल्पसंख्यक जाति के प्रति द्वेषभाव, पाकिस्तान को आर्थिक घेरे में जकड़ने के भारतीय प्रयास—ये और ऐसे अनेक संदेहजनक प्रचार पाकिस्तान में होते रहे जिनके निर्मूल अनुभावों ने पारस्परिक सदभाव की इतिश्री कर दी । जब कि प्रत्यक्ष रूप से भारत-पाकिस्तान को अनेक औद्योगिक सामग्रियां निर्यात करता रहा, पाकिस्तान के अंधाधुन्ध सैन्य संगठन से परिचित होकर भी भारत विचलित नहीं हुआ, भारतीय अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिये और भारत सरकार ने अपनी जनता के असन्तोष का सामना किया । भारतीय प्रधान मंत्री के वार-वार दिये गये स्पष्टीकरण जो आंखों देखा प्रमाण कहा जा सकता है वह अन्ततः सम्पादकों की इस संयुक्त वैठक के अवसर पर देखने मिल गया ।

भारत अपनी राष्ट्रपिता की सत्य और निःश्छल प्रवृत्ति पर अपना शासन संचालित करता है । शान्ति और सुव्यवस्था जिसका ध्येय है—इसका समर्थन पाकिस्तानी समाचार पत्र सम्पादक परिषद के अध्यक्ष श्री के उन शब्दों में मिलता है जो उत्तर प्रदेश में मुख्य मंत्री पण्डित पन्तजी के साथ अल्पसंख्यकों की स्थिति देख कर उन्होंने प्रकट किये हैं । वहां की मुस्लिम जनता उन्हें शान्त और सन्तुष्ट मिली, उसे प्रदेश से निकाल बाहर करने का न कोई षड़यंत्र और न उपद्रव ही उन्हें देखने सुनने मिला । भारत और विशेषतया पाकिस्तान के लिये यह सौभाग्य की बात है कि सम्मिलित पत्रकार परिषद द्वारा ये भ्रान्तियां दूर हुई और पाक पत्रकार दोनों देशों के बीच मैत्री के निर्वाह के लिये १४ सूत्रों का एक ध्येय-पत्र स्वीकार कर गये ।

विश्व बौद्ध-समाज की स्थापना :

महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों को विश्वव्यापी बनाने के उद्देश्य से उपरि लिखित जिस संस्था की स्थापना के प्रस्ताव पर संसार के २७ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने अपने कण्डी अधिवेशन में वहस की है उसका लगे हाथ द्वारिकापीठ के जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्यजी ने विरोध भी कर दिया है कि बुद्ध धर्म हिन्दू धर्म और वेदों के सर्वथा विपरीत है । इसी लिये श्री. आद्यशंकराचार्यजी ने उसका विरोध किया था । तब से आज तक बुद्ध और हिन्दू धर्म उसी अवस्था में पले आ रहे हैं ।

डॉ० आम्बेडकर ने उपर्युक्त समाज के प्रतिनिधियों के समक्ष भाषण करते हुए भारतीयों के एक समूह का उल्लेख किया है जो कि यह चाहते हैं कि अब वह समय आ गया है बुद्ध धर्म को पनपाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये । परन्तु यह विचारणीय है कि किस सीमा तक वह एक शाश्वत तत्व है । यह भी देखना है कि इस धर्म में कितना वेग है ।

भगवान बुद्ध के धर्म के प्रतिस्पर्धी के रूप में देश में एक काल में ब्राह्मण धर्म आया और वह अपने प्रभुत्व विस्तार में सफल भी हुआ । राष्ट्र के धार्मिक जीवन में वर्गों और सम्प्रदायों ने जो-जो दुष्पारिणाम अब तक दिखाये वे किसी प्रकार छिपे नहीं हैं । और राष्ट्र के कल्याण के लिये अब सहसा यह आवश्यक हो गया है कि देश में साम्प्रदायिकता या जातीयता जैसी किसी भेदपूर्ण चीज को तनिक भी प्रश्रय नहीं दिया जाय । हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस बात का

गहरा मनन कर राष्ट्र के धार्मिक जीवन में भी एक सर्वांगीण क्रान्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। आचार्य आम्बेडकर द्वारा बुद्ध-धर्म ग्रहण करना और इस धर्म में विश्वव्यापकत्व के लिये [illegible] की खोज करना इसी राष्ट्रीय आवश्यकता के फलस्वरूप है। विश्व बौद्ध-समाज की स्थापना का बुद्ध धर्मावलम्बियों द्वारा सुझाव धार्मिक प्रचार के लिये स्वाभाविक हो सकता है, किन्तु आचार्य आम्बेडकर जैसे प्रकाण्ड विधानपटु से, जिनके पीछे करोड़ों दलित जातियों का समर्थन है, ऐसी अपेक्षा की जाती है कि प्रथम वे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आधुनिकतम धार्मिक सिद्धान्त में आस्था रख कर अपने अनुयायियों को उसी मार्ग द्वारा धार्मिक वैषम्य से परे लाते ताकि धर्म निरपेक्ष राज्य का महात्मा गांधी का स्वप्न भी पूर्ण हो पाता।

महिलायें बनाम राजनैतिक निपुणता।

'जर्नल फॉर वीमेन' नामक अंग्रेजी पत्र में श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित और श्रीमती रूजवेल्ट के बीच हुई एक चर्चा का उल्लेख है, जिसमें श्रीमती पण्डित ने श्रीमती रूजवेल्ट से कहा है कि उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि अधिकांश महिलाओं को कूटनीतिक जीवन के प्रति आकर्षण होगा। क्योंकि, महिलायें कूटनीतिज्ञ होने के लिये बनायी ही नहीं गयी हैं। और कूटनीतिज्ञता कभी सन्देह की अवस्था में नहीं चलती। कूटनीतिज्ञ कहलाने के जो सामान्य सूत्र माने गये हैं उनमें ये दोनों परस्पर मेल ही नहीं खाते।

यदि एक कूटनीतिज्ञ 'हाँ' कहता है तो उसका अर्थ 'शायद' से होता है। यदि वह 'शायद' कहता है तो उसका मतलब 'नहीं' से होता है। इसी तरह यदि वह 'नहीं' है—तो वह कूटनीतिज्ञ ही नहीं है।

इसके विपरीत यदि एक महिला 'नहीं' कहती है तो उसका अर्थ 'शायद' से लगाया जा सकता है, यदि वह 'शायद' कहती है तो उसके मानी 'हां' है किन्तु यदि वह 'हां' कह देती है तो वह स्त्री ही नहीं है।

एशिया में साम्यवाद का विस्तार।

दूसरे महायुद्ध के बाद जिस महत्वाकांक्षा के साथ साम्यवाद विश्व में व्यापक बनना चाहता है उसका भय राष्ट्रीय चीन के शस्त्रास्त्र डालने के बाद समूचे एशिया महाद्वीप को हो सकता है। चीन में साम्यवादी मावत्सेतुंग सरकार की स्थापना से तिब्बत और ब्रह्मदेश के प्रवेश-द्वारों पर मानो साम्यवादी आतंक छाया हुआ है। और जैसी आज की हालत है, हिन्दी-चीन में यदि उसका मनचाही पूरी हो जाती है तो दक्षिणपूर्वीय एशिया के द्वीपों में वह प्रभुत्व स्थापित करना चाहेगा। यह खतरा एशिया को सीधी चुनौती न कहा जाकर 'मार्शल योजना' और सोवियत रूस के बीच का युद्ध कहा जा सकता है। क्योंकि, एक ओर संयुक्त राज्य अमेरिका साम्यवाद की जड़ें हिला देने के लिये कृतसंकल्प है और दूसरी संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रायः सभी सदस्य राष्ट्रों को मान्य-सा हो गया है कि अमरीकी योजनायें इस दिशा में सफलीभूत होंगी। अमेरिका ने 'मार्शल सहायता' योजना इसके लिये तैयार की है।

अभी इन सारे साम्यवादी खतरों की ओर भारत 'ठहरो और देखते रहो' की नीति अपनाये हुए है। इसका प्रमाण यह है कि इन दिनों फिलीपाइन द्वीपपुंज में चलनेवाली अ-साम्यवादी ७ राष्ट्रों की परिषद जिसमें भारत, पाकिस्तान, लंका, आस्ट्रेलिया आदि देश शामिल हैं भारत ने किसी भी दृष्टिकोण के राजनैतिक समझौते में पड़ने का आदेश देकर अपने प्रतिनिधि नहीं भेजे हैं। तथापि हिन्दी-चीन, जिसमें नानकिन, लेआस, अनाम, कम्बोदिया और कोचीन चायना का २,८६,००० वर्गमील भूभाग आता है, अपनी सुरक्षा के लिये विवश होकर रह जाता है तो भारत को भी तत्काल वर्तमान नीति-बदल कर क्रियात्मक रूप में आना पड़ेगा। हिन्द-चीन के ऐसे भविष्य को लक्ष्य कर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अपने सुरक्षार्थ सहायता योजना के अन्तर्गत शस्त्रास्त्रों से लदे जहाज पहुँचाये गये हैं।

पं० नेहरू की हिन्देशिया यात्रा।

ऐसे ही अवसर पर प्रधान मंत्री पं० नेहरू

हिन्देशिया के भ्रमण पर जा रहे हैं। वहां की जनता यह मानती है कि उसकी स्वाधीनता में एशिया के इस महान नेता का कितना बड़ा श्रेय रहा है। और इसीलिये वह अपने बीच उन्हें देखना चाहती है। दक्षिण-पूर्वीय एशिया के प्रश्नों में सदा चिन्तित रहनेवाले पण्डितजी इस भ्रमणकाल में सिंगापुर, पेनांग और रंगून भी जावेंगे।

सन्देह और घृणा में से विश्वशान्ति का मार्ग।

भारत के रूसस्थित राजदूत डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने गत २४ मई को संयुक्त राष्ट्र संघ के विज्ञान, शिक्षण तथा संस्कृति संगठन को सावधान करते हुए कहा है कि मनुष्य-मनुष्य में भेद और सन्देह की दुष्प्रवृत्ति को शीघ्र नहीं पाट दिया गया तो इसके परिणाम स्वरूप मानव जाति पुनः अन्धाकार युगीन घेरे में फंस जावेगी। आपने राजनैतिक उद्देश्यों से व्यक्तियों पर भी जाने वा ी ज्यादतियां व द्वेष मिटाने तथा जीवन-स्तर ऊँचा बढ़ाने की अपील की है। एक ओर जब आधी से अधिक जनता निकृष्ठ जीवन यापन कर ही है तब क्यों क़र उसकी अवहेलना कर सैनिक और शस्त्रीकरण में राष्ट्रीय सम्पत्ति का भीषण ह्रास किया जाता है। यह तो अपने हाथ से अपने सिर पर संकट बुलाना जैसा कार्य है। अन्तर्राष्ट्रीय सद् भावना का जो एक पारस्परिका लक्ष्य होता है वहीं हमें बढ़ाना है। किन्तु ठीक इसके विपरीत हमारे यहाँ शिक्षण दिया जाता है।

डा. राधाकृष्णन् जैसे गंभीर चिन्तक का उपर्युक्त अनुभव ऐसा कटु सत्य है जिसे विश्व शान्ति के नाम पर अपना प्रभुत्व-स्थापन करने महत्वाकांक्षी राष्ट्र मुश्किल से ही स्वीकार करें। परस्पर सन्देह और घृणा के कारण साम्राज्यवाद. और साम्यवाद एक दूसरे को फूटी आँखों नहीं देखना चाहते। दोनों एक दूसरे को तृतीय महायुद्ध की चुनौती मानकर उद्रजन-बम और मृत्युकिरण के अभूतपूर्व आविष्कारों की दुहाई देकर परस्पर झूक़ जाने के लिये आगाह करते देखे जाते हैं। विश्व के निष्पक्ष प्रेक्षक इस शीत युद्ध में निर्बाध लालसा की दूषित प्रवृत्ति देखते हैं। जिन्हें परस्पर अनाक्रमणात्मक नीति अपनाने और सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण कर देने में ही निर्माणकारी उज्ज्वल प्रभात के दर्शन हो रहे हैं। यदि वास्तव में विश्वशान्ति को एक दिन देखना हो तो ऐसी मध्यस्थ शक्ति पर ही विश्वास करना होगा जो कथित संयुक्त राष्ट्रीय संगठन से परे अपने प्रभाव काम ला सके।

श्री लियाकत अली की अमरीका यात्रा।

पाकिस्तान द्वारा भारत-पाक सीमा सुरक्षा की गैरन्टी की जो मांग गत मास की गयी थी; उसके प्रधानमंत्री श्री लियाकतअली खांने अपनी अमरीका यात्रा में एक स्थान पर उसे स्पष्ट किया है। श्री लियाकत अली का इससे यह आशय है पाकिस्तान को आज भी भारतीय आक्रमण का भय है; अन्य किसी राष्ट्र के आक्रमण का नहीं। पिछले मास की १२ तारीख को पाकिस्तान-अफगानिस्तान के बीच डूरेण्ड लाइन को पाक प्रधानमंत्री ने अन्ताराष्ट्रीय लाइन मानने का अनुरोध कर अपनी सुरक्षा की गैरन्टी चाही थी। किन्तु न्यूयार्क में उस दिन प्रेस कानफरेंस लेते हुए उन्होंने भारत-पाक सीमा सुरक्षा की गैरण्टी यदि पाकिस्तान को प्राप्त हो जाती है तो वह अपने निःशस्त्रीकरण की ओर अनुसर हो सकता है।

अमरीका के दौरे में स्थान स्थान पर श्री लियाकत अली द्वारा जो चर्चायें की गयी हैं उनमें अमरीका की ओर से आर्थिक और शस्त्रास्त्र सहायता प्राप्त करने का उनका उदेश्य निहित है। और यह सहायता भारतीय आक्रमण के भय से भयातर होकर। यहाँ यह स्मरण रखने की बात है कि राष्ट्र मण्डल की ओर से ऐसी गैरण्टी की मांग से भी पहले भारत ने पाकिस्तान के समक्ष प्रस्ताव रखा था कि 'युद्ध विरोधी घोषणा' पर दोनों राष्ट्र हस्ताक्षर कर दें। भारत की उत्कट इच्छा के बाद भी यह पाकिस्तान द्वारा सुझाव के प्रति उदासीनता दिखाई गयी। भारतीय हमले का ही पाकिस्तान को यदि भय है तो उस घोषणा पत्र

पहले ही हस्ताक्षर कर निर्भय क्यों नहीं हो गया। इसके विपरीत अमरीका में जाकर गैरण्टी की मांग करना और शस्त्रास्त्र खरीदने की बात करना यह स्पष्ट बताता है कि भारत के विरुद्ध प्रचार और अपने पक्षमत एकत्रीकरण ही पाकिस्तान का एकमात्र दृष्टि कोण है। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री की अमरीका यात्रा के पीछे अतः यह साफ उद्देश्य था कि प्रथम तो वह भारत के विरुद्ध अमरीका में प्रचार करें और लगे हाथ आर्थिकि सहायता भी सुरक्षा के नाम पर प्राप्त करें।

मासिक घटना-चक्र

१ मई, १९५० से ३१ मई १९५० तक

१ मई—संसार में मई दिवस के समारोह।

२ मई—२५० वर्षों पुराने फरासीसी शासन से चन्द्रनगर की मुक्ति और भारत सरकार द्वारा शासन-ग्रहण।

३ मई—भारतीय दलित वर्गों के नेता और भारत सरकार के विधिमंत्री डा. भीमराव अम्बेदकर ने भगवान बुद्ध की २,४८४ वीं जयन्ती के अवसर पर बुद्ध धर्म स्वीकार किया। आपने अपने अनुयायियों से भी अपने अनुकरण का अनुरोध किया।

४ मई—दिल्ली में आये पाकिस्तानी पत्रकारों के समक्ष प्रधान मंत्री पं. नेहरू ने भारत पाकिस्तान सम्बन्धों का विस्तृत चित्रण एक लम्बे भाषण में प्रस्तुत किया।

—पाकिस्तान सभाचार पत्र सम्पादक सम्मेलन के अध्यक्ष श्री पीर अली मोहम्मद रशीदी ने भारत-पाक समाचार-पत्र सम्मेलन की संयुक्त बैठक में दोनों राष्ट्रों की मैत्री का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये १४ मुद्दों के सुझाव दिये।

५ मई—केन्द्रीय मंत्रिमण्डल पुनस्संगठन—श्री के. एम. मुशी और श्री हरेकृष्ण मेहताब का समावेश।

—तीन सप्ताह की अमारीका-यात्रा मे वाशिंगटन में वहां के नेशनल प्रेस क्लब द्वारा किये गये सम्मान के प्रसंग में पाक-प्रधान मंत्री श्री लियाकत अलीखां ने कहा कि संयुक्त राज्य अमरीका यदि पांकिस्तानी प्रादेशिक सुरक्षा का विश्वास दिलाये तो वे सैन्य संगठन ढीला कर देंगे।

—प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया के संवाददाता का कथन है कि पाकिस्तानो इस सन्देह की आशंका भारत से ही है।

८ मई—भारत और पाकिस्तान समाचारपत्र-सम्पादक समेलनों के अध्यक्ष श्रीयुत कस्तूरी श्रीनिवासन और श्री रशीदी ने संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित कर दोनों

देशों के समाचार-पत्रों से निवेदन किया कि चूं कि स्वतंत्रता की नींच घृणा से नहीं प्रत्युत प्रेम से दृढ बनती है अत: वे इसी प्रेम, सत्य और सहिष्णुता की आवाज उठायें ।

१० मई—दक्षिण आफ्रिका स्थित प्रवासी भारतीयों के लिये सतत जूझने वाले महात्मा गांधी के सहयोगी श्री भवानी दयाल सन्यासी की अजमेर में मृत्यु ।

—रूस के विरुद्ध 'ठण्डी-लड़ाई' में व्यूह रचना संगठित करने के लिये लन्दन में 'तीन बड़ों' की परिषद प्रारम्भ हुई । इसमें ब्रिटेन के विदेशमंत्री अर्नेस्ट बेविन, अमरीकन राज्यमंत्री डीन अयेसन और फ्रेंच विदेशमंत्री मो. राबर्ट सुंमा शामिल हैं ।

१३ मई—भारतीय साम्यवादियों को आगाह करते हुए सरदार पटैल ने एक भाषण में बताया कि हत्या, डाकेजनी आदि उपद्रवों द्वारा भारत को विचलित नहीं किया जा सकेगा और न उसे 'चीन' ही बनाया जा सकेगा ।

१४ मई—भारतीय देशी राजा-मांगरोल और भानवदार के खानसाहब और शेखको राजकोट जेलकी नजर बंदी से मुक्त किया गया ।

१७ मई—केन्द्रीय मंत्रीमण्डल में चक्रवर्ती राज गोपालाचारी और श्री प्राकशजी का समावेश।

—संयुक्त राष्ट्र संघ के सेक्रेटरी जनरल श्री त्रिगवी ली ने अपने विस्वशान्ति मिशन के सिलसिले में मास्को में मार्शल स्तालिन से भेंट की ।

१८ मई—अतलान्तिकक्षेत्र की सुरक्षा और आंतर-सम्बन्धों में विकास के लिये १२ यूरोपीय राष्ट्रों द्वारा अतलान्तिक 'हायकमाण्ड' का निर्माण ।

—गोस्वामी तुलसी दासजी द्वारा लगाया गया ६० फुट ऊंचा वट वृक्ष ४०० वर्ष की आयु भोगकर प्रचंड अंधड़ के साथ धराशायी हो गया । काशी स्थित सकंट मोचन मन्दिर के सामने यह वृक्ष खडा हुआ था ।

१९ मई—साम्यवादी आंतर दक्षिण और दक्षिण पूर्वीय एशियायी राष्ट्रों को राष्ट्रमण्डल की सिडनी परिषदमें ८० लाख स्टर्लिंग की यांत्रिक सहायता देने का निर्णय।

—जैसलमेर के किले कें एक प्राचीन मन्दिर में पाली और संस्कृत ग्रंथों की हस्तलिपियां भोजपत्र पर लिखी प्राप्त हुईं ।

—भारतीय संविधान की धारा ३५१ को कार्यान्वित रखो की दिशा में समस्त प्रान्तों और रियासतों माध्यमिक शालाओं में हिन्दी शिक्षण अनिवार्यरूप से देने का आदेश ।

२० मई—संयुक्त राष्ट्रीय छात्र संघ के दिल्ली अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए प्रधान मंत्री पं. नेहरूने संयुक्त संघ की असफलता को विश्व की एक बड़ी हानि की बात कही।

२१ मई—"पख्तूनिस्तान काबुल के कुछ इने गिने निराश लोगों की मांग है"—इस आशय के श्री. लियाक़त अली के तर्क का आफगानिस्तानियों द्वारा कड़ा विरोध।

२३ मई—प्रेस ट्रस्ट संवाददाता के अनुसार पूर्वीय बंगाल में पुनः शान्ति स्थापित। तथापि सब ओर विशेषतया ग्राम्य जीवन में विश्वास की आवश्यकता।

—खाद्यान्न-स्वावलम्बन सन् १९५१ तक प्राप्त करने के लिये खाद्यान्न मंत्री श्री. के. एम. मुंशी द्वारा चतुःसूत्री योजना पर प्रकाश।

२६ मई—विश्व बौद्ध समाज की स्थापना द्वारा बुद्ध धर्म के प्रसार का इस धर्म के अनुयायियों द्वारा केण्डी सम्मेलन में निश्चय।

२७ मई—राष्ट्रपिता के जन्म स्थान पोरबन्दर में एक 'कीर्तिमन्दिर की स्थापना अक्टूबर मास तक होगी जहाँ महात्मा गांधी की कांसे से बनी मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा की जावेगी। सरदार पटेलने कीर्ति-मन्दिर में उद्घाटन की घोषणा की।

२७ मई—काश्मीर प्रश्न के लिये नये नियुक्त मध्यस्थ सर ओवेन डिक्सन समस्या सुलझाने की बड़ी-बड़ी आशायें लेकर आज भारत आये।

२८मई—दक्षिण आफ्रिका से एशियावासियों को निकाल बाहर करने का, इस देश की सरकार द्वारा नियुक्त, 'एशियायी समस्या जांच समिति' का निर्णय।

२९ मई—भारतीय केन्द्रीय 'फिर बसाओ' समिति की ओर से पं. सुन्दरलालजी के नेतृत्व में आगामी ४ जून को ४ व्यक्तियों का एक सद्भावना मण्डल १४ दिन के पाकिस्तानी दौरे पर जायगा।

—दक्षिण आफ्रिका की गैर-गोरी जातियों की सारी स्वतंत्रता का अपहरण करने और उन्हें देश निकाले के लिये विवश करने के सामूहिक क्षेत्र बिल और गैर कानूनी संगठन बिल का आफ्रिकनों तथा भारतीयों द्वारा विरोध।

साहित्यालोचन

नंदिनी

रचयिता : **स्व. चंद्रकुँअर बर्त्वाल, प्रकाशक : — एज्युकेशनल पब्लिशिंग कंपनी, चारबाग, लखनऊ,** मूल्य २ रु.

चंद्रकुँअर के सम्बन्ध में हिन्दी जगत विशेष रूप से परिचित नहीं है। इसीलिये "वे कब हिन्दी संसार में आये और कब चले गये इसका किसी को पता न लगा"। केदारनाथ के पास पँवालिया ग्राम में उनका जन्म हुआ। यह ग्राम हियालय के अंचल में है। एम. ए. तक शिक्षा प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा लेकर कवि ने लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश किया था। पर स्वास्थ्य की विपरीतता के कारण उसे अपने ग्राम लौट जाना पड़ा। सात वर्षों तक विभिन्न रोगों से संघर्ष लेकर चौदह सितम्बर १८४७ में उसका शरीरान्त हो गया। कवि की प्रतिभा मुक्तक काव्य में विशेष रूप से प्रकाशित हुई है। मुक्तक काव्य भावना-प्रणय होता है। कवि उसमें अपने हृदय के रस को पूर्ण रूप से उँड़ेल देता है। वह कवि का आत्मगान होता है। 'नंदिनी' इसी कोटि की मुक्तक प्रबन्ध कृति है। उसमें कवि का मानसिक जगत प्रतिबिम्बित हो उठा है नंदिनी के विषय में कवि का कथन है — "प्रस्तुत पुस्तिका मेरे आठ वर्षों के जीवन का इतिहास है। प्रथम खंड उस समय लिखा गया था जब यौवन-सुलभ कामनाएँ हृदय में चक्कर मार रही थीं। द्वितीय खंड उस समय लिखा गया था जब मैं रोगों के चंगुल में फँस गया था और मेरे परिवार में अनेक शोकजनक घटनाएँ घटीं। तृतीय खंड उस समय लिखा गया थां जब मैं एका-एक नास्तिक से आस्तिक हो गया और ईश्वर पर दृढ़ विश्वास मेरे जीवनका श्वास प्रश्वास हो गया।"

नंदिनी प्रेमकाव्य है। इसकी सूचना उसकी प्रारम्भिक पंक्तियो में ही मिल जाती है—

"जहाँ देवता रहते लालायित मरने को
मुझे प्रेम की अमरपुरी में अब रहने दो।
मधुर स्वरों में मुझे नाम प्रिय का जपने दो
मधुऋतु की ज्वाला में जी भरकर तपने दो।"

और भी—

मुझे डूबने दो यमुना में प्रिय नयनों की
मुझे रूप की कुंजों में जी भर फिरने दो।"

कवि अपनी प्रेयसी की भुजाओं में बँधने को आकुल दीख रहा है। वह कहता है—

''जिसे देख कर कुछ न दीखता फिर पृथ्वी पर
मेरी वाहें खोज रही हैं वह प्रिय सागर।''

उसकी आकांक्षा भी सुनिये—

''प्यार मुझे कोई गीली आँखों से करती
मेरे ही चिंतन में कोई डूबी रहती।
आती आँगन में, बैठी रहती द्वारों पर
पीली पड़ती ज्योत्स्ना-सी आहें भर।
छाँह किसी की सदा दृगों में फिरती
प्यार मुझे कोई गीली आँखों से करती।''

वह सदा सजल दृगों से अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा करता रहता और आशा की ध्वनि सुना करता है। उसे सलज प्रेम और मृदु भाषा की चाह पल पल आकुल बनाती रहती है। नंदिनी के दूसरे सर्ग में कवि 'प्रसाद' के समान यह अनुभव करता है कि उसने अपनी प्रेयसी की उसके प्रति व्यक्त करुणा को ही भूल से प्रेम समझ लिया था। वास्तव में उसने उसे कभी स्निग्ध नेत्रों से नहीं देखा था—

''प्रेम नहीं वह, प्रेम नहीं वह, मेरे दुःखका—
वह तो था उपचार, भाव था वह तो मुख का
करुणा थी वह मेरे सिरहाने आकर के—
बहलाया जिसने मुझको दो दिन गा कर के
भूल हुई मैं सहज दया को ऐसे समझा
प्रेम नहीं वह प्रेम नहीं वह मेरे दुःख का।

कवि अत्यन्त क्षुब्ध हो कर कहता है—

दर्शन ही तो माँगा था मेरी आँखों ने
एक स्पर्श ही तो माँगा था इन बाहोंने।
तुम्हें लगा छाती से सिर आँखों पर धरना
चाहा था मैंने उर ही तो तुमको देना।

कवि उस विपिन और कुंजों में जाना चाहता है, जहाँ उसकी प्रेयसी किसी की वधू बन कर खड़ी है। कवि अपने मिलन दिवस का स्मरण कर कहता है—

द्वार खोल कर आँगन में जैसे तुम आई
मुख पर आँचल लगा मधु जैसे मुसकाई
मृदुल हाथ रख कर के अपने निर्मल उर पर
नाम लिया जैसे तुमने मेरा आहें भर।
और मुझे आँखों में आँसू पड़े दिखाई—
द्वार खोल कर आँगन में जैसे तुम आई॥

जिसने उसे जीवन प्रदान किया था—"मुसकुराहट वाहों में उठाया था"—वही निर्दय बन कर उसे पैरों के नीचे मसल रही है। इसी लिये कवि कहता है—

अब रोने से कठिन हुआ है मुझको हँसना
अब मरने से कठिन हुआ है जीवित रहना।

असफल प्रेम का परिणाम कवि की असामयिक महायात्रा के रूप में दिखलाई दिया। उसने अपना भविष्य निम्न पंक्तियों में कह दिया था—

नव वसंत में ही मेरे तरु को करना था
मुझको इस उठते यौवन में ही मरना था?"

तीसरे खंड में प्रसाद के 'आँसू' के अंतिम पदों के समान वेदना शांत हो जाती है। जीवन व्यावहारिकता से कवि परिचित जान पड़ता है। अतः वह अपनी लौकिक भावनाओं को आध्यात्मिकता में रंग देता है। तभी वह कहता है—

'दुख ने ही मुझको प्रकाश का देश दिखलाया।
और 'सभी दिशाएँ मित्र, शत्रु हैं आज न कोई।
पाप नहीं प्राणों में मेरे लाज न कोई'

वह अंत में सुख और शांति का संदेश

गाता हुआ अपने काव्य को समाप्त कर देता है।

नंदिनी में अनुभूति की गहराई है और अभिव्यक्ति की बालसुलभ सरलता। इन्हीं दो गुणों के कारण नंदिनी का गीति-काव्यकों के क्षेत्र में एक स्पृहणीय स्थान है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक आंग्ल कवि शेले के स्वर में बोल रहा है। यह हिंदी का दुर्भाग्य है कि कवि अधिक समय तक जीवित नहीं रहा।

'शेर-ओ-शायरी'

(लेखक—**श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय,** प्रकाशक — **भारतीय ज्ञान-पीठ, काशी,** मूल्य ८)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने उर्दू काव्य की गतिविधि पर आलोचनात्मक प्रकाश डालने के साथ ही, उर्दू के इकतीस प्रसिद्ध कवियों के हृदयस्पर्शी पद्यों का संकलन किया है। उर्दू काव्य की श्रीवृद्धि मुसलमानों द्वारा ही नहीं हुई है; हिंदुओं ने भी उसमें हाथ बटाया है। तुर्की में उर्दू का अर्थ लश्कर होता है। अतएव जो भाषा लश्करों में बोली जाती थी और जिसका रूप मिश्रित होता था, उसे उर्दू के नाम से अभिहित किया गया। उर्दू शब्द की उत्पत्ति १८ वीं शताब्दी के बाद हुई है। प्रारम्भ में अमीर खुसरो (१३ वीं विक्रम-शती) जो हिंदी और उर्दू दोनों साहित्य के प्रारंभिक कवि माने जाते हैं, अपनी खालिकबारी में हिंदी या हिंदवी शब्द का प्रयोग करते हैं। उसमें बारह बार हिंदी और पचपन बार हिंदवी शब्द का उपयोग हुआ है। पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने हिंदी का अर्थ हिंद की भाषा और हिंदवी का अर्थ हिंदुओं या हिन्दुस्तानियों की भाषा किया है। वे यह भी कहते हैं कि, हिंदी नाम की सृष्टि हिंदुओं ने नहीं की और न उन्होंने इसका प्रचार ही किया है। वे तो "भाषा" का प्रयोग किया करते थे। अनेक मुसलमान विद्वान लेखकों ने यह सिद्ध किया है कि उर्दू का सबसे पुराना नाम हिंदी ही है। अमीर खुसरो ने जिस भाषा को हिंदी कहा है, उसका उदाहरण उन्हीं की रचना से नीचे दिया जाता है—

"खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग
तन मेरो मन पीऊ को दोउ भये इक रंग।"

यद्यपि खुसरो फारसी के प्रसिद्ध कवि थे, फिर भी उन्होंने जनता की भाषा में सरल रचनाएँ की हैं। उर्दू के वली नामक कवि ने सरल हिंदी भाषा को अरबी-फारसी शब्दों से बोझिल बना कर उसका विदेशी रूप कर दिया जो भारतीयों को अग्राह्य हो गया। वली सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में हुआ है। उस समय उर्दू भाषा रेखता कहलाती थी। वली के युग से ही हिंदी और उर्दू क्रमशः पूरब और पश्चिम की ओर अभिमुख होने लगीं।

उर्दू कविता का प्रारम्भ ग़ज़ल से माना जाता है। ग़ज़ल में १९ बहरें (छंद) होती हैं। ग़ज़ल का अर्थ 'औरतों का वर्णन' होता है। जिस कविता में मिलन-विरह, प्रेम, चाह, कामना, आशा-निराशा होती है वह गजल कहलाती है। गजल में एकांगी प्रेम चित्रित होता है। पुरुष ही इश्क में आहें भरता है उसका पता माशूक को लेशमात्र भी नहीं रहता। उर्दू गजल में "माशूक तीन

१९५०

रूप में दिखाई देता है-(१) स्त्री (२) संदिग्ध (स्त्री है या पुरुष) (३) स्पष्टतया पुरुष।" जिन अशआर (शेरों) में माशूक का क्लीव प्रकट हो, ऐसे शेर बहुत कम हैं। ऐसे अशआरों की संख्या बहुत है जिसमें माशूक साफ मर्द नजर आता है। गजल में 'आशिक' (प्रेमी) स्त्री न होकर पुरुष होता है और 'माशूक' भी अक्सर पुरुष। इस प्रकार का अप्राकृतिक प्रेम भी इकतरफा होता है। भारत के मध्ययुगीन अध:पतन के समय उर्दू काव्य का जन्म हुआ है। इसीलिये उसमें "विलासिता, लम्पटता, कायरता, अकर्मण्यता, प्रतिद्वंद्विता आदि अवगुण प्रविष्ट हो गये हैं।" क्रमशः गजल के बाद उर्दू कविता में कशीदा, मसनवी, मरसिया, नात, तसव्वुफ, रूबाई, नज़्म, गीत, सॉनेट, आजाद नज्म आदि लिखे जाने लगे। उर्दू कविता में गुल, बुलबुल, आशियाँ, कफस, बागबाँ, गुलचीं, सैयाद आदि शब्दों का खूब जमघट है। बुलबुल पर एक कवि की कितनी कोमल कल्पना है—

"झाड़नी है कौन से गुलकी नज़र
बुलबुलें फिरती हैं क्यों तिनके लिये।"

(मयखाना)

इसी प्रकार उर्दू शायरी में मयखाना (मद्यशाला) खूब आबाद होता है। प्रस्तुत पुस्तक दस अध्यायों में विभक्त है। पहिले में उर्दू शायरी का उद्गम है, दूसरे में उर्दू शायरी का मर्म समझाया गया है। तीसरे में गजल के बादशाहों-मीर और दर्द-से परिचय कराया है। चौथे में उर्दू के प्रथम भारतीय कवि नजीर की काव्य प्रतिभा पर प्रकाश डाला गया है। पाँचवे में ज़ौक, गालिब, मोमिन, अमीर मीनाई और दाग़ से भेंट कराई गई है। छठवे में १८५७ की क्रांति के पश्चात् युगान्तकारी शायरों की आलोचना है जिनमें आजाद, हाली, अकबर, इक़बाल, चक़बस्त आदि के काव्य से हम अवगत होते हैं। सातवें में जोश, दानिश, बर्क, सीमाब, अकबराबादी हमारे सामने आते हैं। आठवें में हफीज़, सागर निज़ामी, अख्तर शीरानी, और अर्श की काव्य माधुरी से हम रस-सिक्त होते हैं। नववां अध्याय प्रगतिशील लेखकों का है और दसवाँ हसरत मोहानी, साकिब, फानी, अजगर, जिगर फिराक की रचनाओं को चुने रूप में हमारे संमुख रखा गया है। लेखक ने कलाकारों की रचनाओं को चुनते समय बड़ी सहृदयता और काव्य मर्मज्ञता का परिचय दिया है। इस पुस्तक को पढ़ लेने के बाद हिंदी का पाठक उर्दू कविता के प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। यदि उर्दू कविता नागरी लिपि में छप कर हिंदी जनता के सम्मुख आये तो वह उसे अपनी ही चीज समझेगी। उर्दू को हम हिंदी की एक विशिष्ट शैली ही मानते हैं, जिसमें मुस्लिम और हिंदी संस्कारों का गंगाजमुनी मेल है। पुस्तक का मूल्य आठ रुपया कुछ अधिक प्रतीत होता है।

'दो धारा'

यह श्री. उपेन्द्रनाथ अश्क और श्रीमती कौसल्या अश्क की कतिपय कहानियों का संग्रह है। इसका प्रकाशन नीलाभ प्रकाशन-गृह, ५ खुसरोबाग रोड़ इलाहाबाद द्वारा हुआ है। प्रारम्भ में कौसल्याजी ने अपने पतिदेव अश्कजी का और फिर अश्कजी ने

अपनी धर्मपत्नी कौसल्याजी का रेखाचित्र घरेलू भाषा में मिठास के साथ अंकित किया है। यह तो निश्चित ही है कि यह रेखा-चित्र तटस्थ निरीक्षण-परीक्षण के तत्व से रहित है। इन से दम्पत्ती के जीवन-क्रम की एक झाँकी अवश्य मिल जाती है।

श्री. अश्क की पहिली कहानी "बच्चे" है। इस में बाल मनोवृत्ति और वात्सल्य भाव का सफल चित्रण किया गया है। भाषा में यहाँ वहाँ उखड़ी हुई मराठी के शब्द और वाक्य रख कर वातावरण की यथार्थता की रक्षा करने की चेष्टा की गई है। कोलारकर झुंझलाहट में अपने बच्चे को तमाचा मार देता है जिससे वह गिरकर सिसकने लगता है। बालक निद्रावस्था में भी चौंकता और सिसकता है। यद्यपि कोलारकर के हृदय में भी पश्चाताप होता है तो भी वह सिसकते और चौंकते हुए बालक के पास जाकर उसे छाती से नहीं लगाता। शायद उसका अहं उसे ऐसा करने से रोकता है, पर जब वात्सल्य भावना हृदय को अप्लावित कर चुकी थी तब 'अहं' कहाँ शेष रह गया था? कहानी के शीर्षक पर लोग आपत्ति कर सकते हैं। प्रतीत होता है 'बच्चे' शब्द से सामान्य बच्चों का बोध कराया गया है। यद्यपि कहानी में एक ही बालक की स्थिति है फिर भी वह अपनी जाति का प्रतीक है। "केप्टन रशीद" भी संग्रह की उत्तम कहानियों में से है। "फर्लो" में प्रगतिशीलता पाई जाती है। भाषा और चित्रण इतने यथार्थ हैं कि वे Sur-realism (अति यथार्थ वादिता) की कोटि में पहुँच जाते हैं। यों वातावरण के अनुरूप ही पात्रों का चित्रण हुआ है। अश्कजी मानव-स्वभाव के कुशल चितेरे हैं। कौशल्याजी की भी कहानियों में अश्कजी के रचनातंत्र का अनुकरण और अनुसरण पाया जाता है। निकट भविष्य में हम उन्हें अधिक सफल कहानी लेखिका के रूप में देखने की आशा रखते हैं। हमारा विश्वास है, हिंदी की इनी-गिनी कहानी लेखिकाओं में उन्हें सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त होगा। सुंदर छपी-बँधी पुस्तक का मूल्य ३।) है।

"आजकल" (वार्षिक अंक)

सम्पादक, **श्री. देवेन्द्र सत्यार्थी** प्रकाशक:— **पब्लिकेशन्स डिवीजन (सूचना तथा प्रसार सचिवालय) ओल्ड सेक्रेटरीयट, दिल्ली।** वार्षिक अंक (मई) १९५०। पृष्ठ संख्या ७५। मूल्य आठ आना।

"आजकल" मासिक कुछ वर्षों से भारतीय कला, संस्कृति और साहित्य की प्रशंसनीय सेवायें करते आ रहा है। प्रजातंत्र भारत-सरकार का यह प्रकाशन भारतीय सांस्कृतिक क्षेत्र के लिये गर्व का विषय है। सामग्री संकलन सफाई, छपाई आदि की दृष्टि से यह पत्र हिन्दी के समस्त मासिक पत्रों के लिये आदर्श है। यह कहा जा सकता है कि 'आजकल' के लिए इतना आर्थिक व्यय भार वहन करना भारत सरकार के लिये कोई बड़ी बात नहीं है; पर इस पत्र द्वारा साहित्य और संस्कृति के विकास में केन्द्रीय सरकार जो महत्वपूर्ण कार्य कर रही है, उसकी प्रशंसा जितनी की जाय, कम है।

प्रस्तुत अंक में, पचास से अधिक पृष्ठों

में अध्ययन और मनन की सुन्दर सामग्री विद्यमान है, जिसके लिये सम्पादक महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

विविध विषयक पाठ्य सामग्री की दृष्टि से "आजकल" हमेशा ऊंचे स्थान पर रहा है। श्री. वारणासि राममूर्ति 'रेणु' का "आधुनिक तेलुगु साहित्य" विचारपूर्ण साहित्यिक लेख है, जिसमें आधुनिक तेलुगु साहित्य का सुन्दरतम और वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। महाकवि श्री. पंत की पंक्तियों के अतिरिक्त चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य की तमिल कहानी 'डाक्टर आरोग्यम्' के हिंदी अनुवाद के कारण इस अंक की महत्ता और बढ़ गई है। श्री. सुधीर खास्तगीर का चित्र "लोकगीत" न केवल नयनाभिराम है, अपि तु हृदयग्राही भी है। प्रेमजा चौधरी की कूची की कुशलता का ठोस प्रमाण "धरती की बेटियां" नामक बहुरंगी चित्र श्री. चौधरी की प्रतिभा का द्योतक है। 'संस्कृति और साहित्य के प्रेरणा-स्रोत' के रूप में प्रकाशित फोटो-चित्र भी बहुत सुन्दर हैं। भारतीय संस्कृति और साहित्य की जो सेवा "आजकल" द्वारा हो रही है, वह हिन्दी-प्रेमी भारतीय जनता के लिये हितकर हो! यह हमारी शुभ कामना है!

* * *

युगारम्भ (माखनलाल-अभिनन्दन-अंक)

युगारम्भ (मासिक) लोक चेतना प्रकाशन, जबलपुर द्वारा प्रकाशित, इस अंक के सम्पादक-द्वय — **श्री नर्मदाप्रसाद खरे** और **श्री इन्द्रबहादुर खरे**। पृष्ठ संख्या — १२५, मूल्य ।।।) मुद्रण एवं प्रकाशन सुन्दर।

हिन्दी साहित्य संसार की विभूति और मध्यप्रदेश के गौरव पण्डित माखनलालजी चतुर्वेदी की हीरक-जयन्ति के अवसर पर हिन्दी की जिन पत्र-पत्रिकाओं के अभिनन्दन अंक सामने हैं उनमें 'युगारम्भ' चतुर्वेदी जी के जीवन और साहित्य-साधना सम्बन्धी दीर्घकालीन कार्य का ऐसा संकलन बन पड़ा है कि वह अपना अलग ही स्थान रखता है। दो विद्वान साहित्यकों और पत्र-सम्पादकों ने विषय और स्तम्भ चयन की दृष्टि से श्रद्धेय माखनलालजी के सर्वांगीण व्यक्तित्व को प्रस्तुत अंक में समाविष्ट करने का सफल प्रयास किया है। पत्रिका के मुख पृष्ठपर श्रद्धेय चतुर्वेदी जी के नवीनतम चित्र के नीचे कविवर मैथिलीशरणजी गुप्त का 'जियो सदा माई के लाल' आशीर्वाद है जिसमें — 'लो, पालागन की असीस थी' देकर चरित्र नायक का 'मोटा' लाभ कराया है। आगे अपनी ललित एवं सुगेय कविता में डॉ. रामकुमार जी वर्मा ने 'इस तपस्वी की चरण रेखाका दिशा-निर्देश कराया है। श्रीचंद्रप्रकाश वर्मा, श्री कुमार हृदय तथा श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव ने अपनी अपनी काव्यांजलियां प्रस्तुत की हैं। आगे के ३५ पृष्ठों के 'जीवन' शीर्षक खण्ड में 'जीवन दर्शन' जीवन और साहित्य के अंकन का समन्वय है। अगले ५५ पृष्ठों के 'आलोचना' खण्ड में श्री चतुर्वेदी जी के कवि, गद्यकार, नाटककार, आलोचक, पत्रकार तथा उदात्त राष्ट्रचेता का मननपूर्व अध्ययन मिलता है जिसमें 'कृष्णार्जुन, 'हिमकिरीटिनी', 'साहित्यदेवता' और हिमतरंगिणी पर बहुमुखी प्रकाश पड़ता है। अन्तिम २० पृष्ठों में 'पं. माखनलाल चतुर्वेदी का विशेष साहित्य-चयन अपने शीर्षक के अनुकूल बन पड़ा है जिसकी अधिकांश सामग्री 'युगारम्भ' के द्वारा ही सर्वप्रथम पाठकों के हाथ लगी है। अतः सहयोगी का हार्दिक अभिनन्दन! —ल. पु.

दृष्टिकोण

(सम्पादकीय)

श्री रमण महर्षि का निर्वाण !

चौदह अप्रैल को, भव्यविभूति योगिराज रमण महर्षि ने, ७१ वर्ष की आयु में विदेह-मुक्ति ग्रहण की। इस संसार की यह एक दैवी घटना थी। लगातार ५० वर्ष तक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, तप, स्वाध्याय, ध्यान, ज्ञान और वैराग्य की साधना कर ऋषीश्वर ने उच्च पद प्राप्त किया था। धर्म के तत्व को यथार्थ रीति से जिज्ञासु को समझाने वाले महान सन्तों में रमण महर्षि का स्थान सर्वोपरि था। भारतीय आर्य संस्कृति के और अध्यात्मवाद के वे प्रखर संरक्षक और मार्गदर्शक थे।

जैसा महर्षि का विचित्र-विलक्षण दिव्य जन्म-कर्म, वैसा ही उनका दिव्य, विलक्षण महान मरण भी ! दोनों बातें भगवद्गीता के 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' और 'ध्रुवं जन्म मृतस्य' के अनुसार।

एक सनातनी वकील ब्राह्मण के घर में जन्म। चाचा संन्यासी। बाल्यकाल में रमण एक अति साधारण बालक। देख कर कोई नहीं कह सकता था कि 'होनहार बिरवा के पात चीकने होते हैं' या 'पूत के लच्छन पालने में'। लड़के के लिखने-पढ़ने में कोई प्रतिभाजन्य चमत्कार नहीं। खेल-कूद में विशेष अभिरुचि। बालक-बन्दर एक समान। कसरत करते–डंड-बैठक लगाते, कुश्ती लड़ते। शरारत व मटरगश्ती करते लड़कों के साथ। फुटबॉल खेलने और नदी-तालाब में तैरने का बेहद शौक। पड़ोसी और सहपाठी लड़कों के साथ मारपीट और झगड़ा-फसाद भी। बहुत कम बोलते, गुमसुम बने रहते और सोने में—कुंभकरण सम सोवत नीके, खूब खर्राटे भर कर सोते। पहले ११ वर्ष की आयु तक मातृभाषा तमिल पढ़ी, और मदुरा के एक मिशन हाईस्कूल में १० वीं कक्षा तक पढ़ा—मैट्रिक भी न हो सके। इस भावी संत परमहंस को क्या पड़ी थी मैट्रिक पास करने की ? जीवन की दिशा ने १७ वर्ष की उम्र में एकदम पलटा खाया। लड़के के कर्णरन्ध्र में एक तीर्थयात्री के मुंह से निकला हुआ "अरुणाचल" तीर्थ का पवित्र नाम प्रविष्ट हुआ। बालक की नस-नस में बिजली दौड़ गई। कहीं से तमिल के ग्रन्थ प्राचीन पुराण 'पेरियपुराणम्' की प्रति हाथ लगी। इस पुराण में ६३ द्राविड़ संतों—शिव भक्त नायनारों—का पवित्र

१९५०

चरित्र रमण ने पढ़ा। हृदय में ईश्वर-भक्ति की लहर उमड़ पड़ी। तरुण तन्मय, लवलीन, हो गया। भूख-प्यास—नींद सब हराम! साथी, सहपाठी, यार-दोस्तों का संग छोड़ा। खेल-कूद से जी उचटा। संसार से विरक्ति। जीवन की वृत्ति बदली। सुख, दुःख, लाभ, अलाभ, जय-पराजय, मान-अपमान, शीत-उष्ण समान हो गये। फिर भी अपने बड़े भाई की कटु वाणी काँटे की तरह कलेजे में बहुत गहरी चुभी। तिरस्कार होने लगा। घर से महाभिनिष्क्रमण किया—कभी पैदल कभी बैलगाड़ी पर बहुत दूर चक्कर मनोवांछित तीर्थ, अपनी मंजिल, श्री अरुणाचल तीर्थ पहुँचे। भगवान ज्योतिः स्वयं शिव के चरणों में रमण ने आत्मसमर्पण किया। संसार से सब नाता तोड़ा। १८-१९ साल के लड़के ने संन्यास ग्रहण किया। साधना शुरू हुई। इस तपश्चर्या में सबकी निन्दा, हँसी-मजाक, गाली गलौज, ईंट-पत्थर, वाग्बाण, सब कुछ उसने सहे। रमण अपने कृतसंकल्प से रत्ती भर भी विचलित न हुआ और इस उत्तरोत्तर बढ़ती हुई योगसाधना व तपस्या की प्रतिक्रिया हुई—लोगों की, आप्त जनों की, आप पर अटूट श्रद्धा बढ़ने लगी। जिस आश्रम में महर्षि रहते थें वह अत्यन्त रमणीय था। वहां के पवित्र प्रशान्त वातावरण का इतना गहरा प्रभाव पडता था कि आपसका सहज वैर बिसरा कर, 'येषांच विरोधः शाश्वतिकः' ऐसे अहि-मयूर (साँप मोर) आदि भी मैत्री-भाव से प्रेरित होकर महर्षि रमण के निकट आ जाते, और मोर तो नाच नाच कर उन महर्षि के मनमयूर को नचा देते। आपने वर्षों तक मौन रखा। आश्रम की स्थापना के बाद, आश्रम की दिन-चर्या का महर्षि ने अपनी और आश्रम-वासियों की जीवन चर्या के साथ अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया। पशु-पक्षी, राजा-रंक, अमीर-गरीब, ऊंच-नीच का भेद-भाव वहाँ न रहा। भारतवर्ष के और यूरोप-अमेरिका के बड़े बड़े शत-सहस्र व्यक्ति महर्षि रमण के सत्संग से प्रभावित हुए। सभी धर्मों और विश्वासों के, हिंन्दू, बौद्ध, जैन, सिख, पारसी, मुसलमान और क्रिस्तानी पूरब-पश्चिम के लोग, आपके अनुयायी बने। विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी, राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्रप्रसाद और महान् दार्शनिक पंडित सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जैसे सत्पुरुष भी रमण महर्षि के सामने नतमस्तक हो जाते। इसका कारण है। संसार में पर उपदेश-कुशल बहुतेरे हैं। महर्षि का आचरण मौन-साधना थी। आश्रम में और बाह्य जगत् में पुष्प के सौरभ की तरह उनका आचरण और उपदेश महक कर फैला।

महर्षि संस्कृत के विद्वान्, तेलगु, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के सम्यक् ज्ञाता थे। आप अंग्रेज़ी के मर्मज्ञ होकर भी, अंग्रेज आदि विदेशी भक्तों के साथ वार्तालाप तमिल भाषा में ही किया करते थे। आपका दुभाषिया शिष्य उसका अंग्रेजी में उल्था कर भक्तों को भगवान् की वाणी का मर्म समझा दिया करता था।

ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है। वह कर्तुम्—अकर्तुम्—अन्यथाकर्तुम्—समर्थ है। कुछ समय से महर्षि की बाँई भुजा में प्रचंड

कैन्सर रोग हुआ। चार चार बार उसका ऑपरेशन (शस्त्रक्रिया) हुआ। देश के बड़े बड़े विशेषज्ञ डाक्टरों, वैद्यों, चिकित्सकों ने ऐलोपैथी, होमियोपैथी और आयुर्वेदीय औषधोपचार किये किन्तु सब व्यर्थ! कर्मानुसार देहधर्म का दण्ड सहन कर परमहंस महर्षि रमण ने अन्तमें विदेहमुक्ति प्राप्त की। तेज महातेज में लीन हुआ!

* * *

तेतीसवाँ मराठी साहित्य सम्मेलन:

बंबई में गत मई के १२, १३, १४– दिनांकों में, महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन का ३३ वाँ वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। मरीन ड्राइव के विशाल मैदान में खड़े हुए एक शानदार शाही शामियाने में शत-सहस्र उत्साही साहित्य-समुपासक और मातृ-भाषा भक्त महाराष्ट्र नर-नारी वहाँ एकत्रित हुए थे। उत्साह, संगठन, अनुशासन और व्यवस्था का वहाँ सुन्दर साहित्यिक सामंजस्य था। दलबन्दी का वातावरण वहाँ न था और न था वहाँ स्वार्थसाधन। हमें आखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन की भी इस समय याद आ गई जो उसी मरीन ड्राइव के विशाल मैदान में, विशाल मंडप में, दो-ढाई साल पहले हुआ था जहाँ धींगा-धींगी, अनुशासन–हीनता, अव्यवस्था और उपेक्षावृत्ति का प्रदर्शन हुआ था और जो सम्मेलन भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिन्दी का विराट सम्मेलन कहलाता है। हमारा साहित्य सम्मेलन भाड़ में जाय, अध्यक्ष की छीछालेदर होती रहे, भाषणों, और प्रस्तावों से हमारा क्या वास्ता और क्या बनता बिगड़ता है। हम-हिन्दीवाले तो वहाँ अपने चुनाव का दंगल जीतने की तैयारी से अपने पहलवानों के जोड़ लेकर बंबई, दिल्ली, मेरठ या हैदराबाद जाया करते हैं। और हमारे वोटर भैया दल के दल पहुंचते हैं उस समय आखिरी गाडी से, जब स्थाई समिति का निर्माण होता है। हिन्दी साहित्य कहीं रसातल में जाये, सम्मेलन की गतिविधि का प्रभाव अन्य हिन्दी-प्रेमी अहिन्दी प्रांतीय भारतीयों पर चाहे जैसा पड़े, दक्षिण भारतीय हिन्दी-प्रेमी प्रतिनिधियों का उसमें प्रतिनिधित्व भले ही न रहे; कोई मतलब नहीं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के हमारे देखे हुए पिछले अधिवेशनों की अपेक्षा बंबई का यह महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन कहीं सर्वतोधिक सुव्यवस्थित दर्शनीय एवं नयनाभिराम था। सभी समुपस्थित प्रतिनिधियों और प्रेक्षकों के हृदय साहित्यिक स्फूर्ति, साहित्यिक सौजन्य और साहित्यिक सेवा-भाव से लबालब भरे हुए थे। राजकवि यशवन्त पेंढारकर इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे। राजकवि का सभापति के पद से दिया हुआ भाषण पठनीय है। उसमें महाराष्ट्र और मराठी के लिए नई प्रेरणाएँ हैं। अध्यक्ष के भाषण में कवित्व और विद्वत्व दोनों का समन्वय है। भाषण की शैली अभिजात है। 'भारती' के पाठक जरा सा स्थालीपुलीकन्याय से उसका रसास्वाद लें——

> "* * * विद्वत्तेशिवाय जीविताला कणखरपणा (दृढता) नसला, तर कवित्वाशिवाय त्याला शोभा नाहीं, किंवहुना विद्वत्व जिथें हार खाईल तिथें कवित्व वहार करील."

* * *

आज सार्वत्रिक समाज-जीवनाला अवकळा (हीनता) आली आहे आणि तीमुळें मन व्यग्र झालें हें रास्तच आहे. आणि ह्या परिस्थितीवर तोडगा (रामबाण उपाय) आहे. तो केवळ समाजवादी तत्वज्ञानाचा आहे असेंहि ह्यांना वाटतें व तें प्रतिपादणें त्यांचा हक्कच आहे. पण प्रतिपादणें म्हणजे सर्वच काव्य नव्हे, आणि तेवढ्या प्रतिपादनांतच काव्याचें विसर्जन होणें म्हणजे एक प्रकारची विशाल संकुचितताच होय. ह्या प्रासंगिकतेंतून ही कविता जन्म घेत आहे. राजकीय तत्वज्ञानाचा पुरस्कार करण्यातिरिक्त कवितेला दुसरें कार्य असूं नये असा त्याचा अर्थ निघतो.”

महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन के उन तीन चार दिनों के कार्यक्रमों में साहित्य, संगीत और कला का सुन्दर सम्मिलन था। कई सम्मेलन के और मतलब के प्रस्ताव भी थे। आज साहित्यकार के हृदय में जो जीवन की चिन्ता की चिता धधक रही है उसकी शान्ति के लिए भी वहां पर्याप्त चर्चा हुई थी।

* * *

जापान में हिन्दी शिक्षा :

हिन्दी भाषा को इस बात का बड़ा हर्ष और अभिमान है कि विभिन्न देशों के भिन्न भिन्न भाषा-भाषियों में हिन्दी के लिए नित् नया अनुराग बढ़ता जा रहा है। हिन्दी सीखने की प्रवृत्ति उनमें जागृत हो रही है। इस बात से अधिकांश देशहितैषी विद्वान् सहमत होंगे कि हिन्दी और नागरी ये दो ही ऐसी भाषा तथा लिपि हैं जो सारे एशियाई देशों को भारतवर्ष के साथ ऐक्यसूत्र में बाँधकर संगठित कर सकती हैं। हिन्दी का राष्ट्रीय महत्व भी बढ़ता जा रहा है। अंग्रेजी के हिमायती सभ्य लोग अंग्रेजी का अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होने का दावा पेश करते हैं कि वह पश्चिमी जगत् में यूरोप-अमेरिका में, सर्वत्र समझी और बरती जाती है। उसे ऐसा बनने में वर्षों का समय लगा है। अंग्रेजों के साम्राज्यवाद एवं व्यापारवाद ने ही अंग्रेजी को उस पद पर पहुँचाया है। स्वतंत्र भारत साम्राज्यवादी नहीं है और न है व्यापारवादी। वह तो शान्तिवादी है। भारत विश्व में शान्ति का साम्राज्य ही स्थापित करना चाहता है। वह शान्ति का अग्रदूत है। प्रेम और सेवा के बल पर वह संसार को शान्ति का धाम बनाना चाहता है। और इस शान्ति के सन्देश का माध्यम होगी हिन्दी भाषा। चीन हिन्दी सीख रहा है। वहां के एक विश्वविद्यालय में कुछ चीनी छात्रों को हिन्दी सिखाई जा रही है। अभी अभी ताजा समाचार है, कि भारत और जापान के सांस्कृतिक सम्बन्ध को सुदृढ़ करने के लिए जापान की राजधानी टोकियो के एक विद्यालय में ४० जापानी छात्रों को हिन्दी सिखाई जा रही है। उन्होंने उसमें प्रवीणता भी प्राप्त कर ली है। और उन हिन्दी-प्रेमी जापानी छात्रों को प्रसन्न करने के लिए पुरस्कार रूप चुनी हुई १०० हिन्दी पुस्तकें भारत सरकार ने उक्त जापानी विद्यालय को दान की हैं। हमारी सरकार का यह दान प्रशंसनीय है। हमारा एक सुझाव है, कि भारत सरकार ऐशियाई देशों के प्रत्येक बड़े नगर में, कम से कम वहाँ की राजधानी में, एक २ हिन्दी शिक्षक या हिन्दी-प्रचारक को भेजे। स्वतंत्र भारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी का भाग्य शीघ्र जागे कि एक दिन् वह समूचे एशिया की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन जाय!

अपने सहयोगियों की दृष्टि में 'भारती'

'भारती' की लोकप्रियता को अपनी सद्भावनाओं द्वारा प्रोत्साहन और प्रेरणा का संबल देनेवाले पत्र-संसार के हमारे सहयोगियों ने स्वतंत्रतापूर्वक जो निम्न सम्मतियाँ प्रदान की है, हम उनका सादर स्वागत करते हैं :—

'समाधान' मराठी (३०-४-५०)

भारती

[हिन्दी मासिक पत्रिका. संपादक, हृषीकेश शर्मा; प्रबंध–संपादक, वि. मा. कुलकर्णी; संचालक, ऑल इंडिया रिपोर्टर, लि. नागपूर १; वार्षिक मूल्य रु. १५. एक प्रति १। रु.]

हें उच्च कोटीचें हिंदी मासिक विख्यात राष्ट्रभाषा प्रचारक पं. हृषीकेश शर्मा यांच्या संपादकत्वाखाली येथे गेल्या जानेवारीपासून निघूं लागलें आहे. यांचें संचालकत्व येथील ऑल इंडिया रिपोर्टर लि. या अत्यंत व्यवहार-निपुण संस्थेकडे आहे, तेव्हा या मासिकच्या व्यावहारिक यशाविषयीं शंकाच नको.

सौंदर्य आणि आभिजात्य यांना पायाखालीं तुडविणाऱ्या आजकालच्या हृदयशून्य जमान्यांत जाड मोहोरेदार कागद, कोरीव टाइपाची सुंदर छपाई, स्वच्छ आणि कलापूर्ण बाह्यांग यांचें दर्शन फार दुर्मिळ झालें आहे. या बाह्य गुणांचा सुखकारक संयोग 'भारती' मध्ये दिसून येत आहे. ही देखील कांही कमी शिफारशीची बाब नाहीं.

मागें प्रेमचंद आणि कन्हय्यालाल मुनशी यांनीं भारतीय भाषांतील साहित्याचें आविष्करण करण्याकरितां 'हंस' नामक मासिक हिंदीमध्यें चालविलें होतें, किंवा त्याच धर्तीवर मराठीमध्ये प्रा. बनहट्टी यांनीं भारतीय साहित्य परिषदेतर्फे प्रा. या. मु. पाठक संपादित 'विहंगम' मासिक चालविलें होतें, तशाच प्रकारचा बहुअंशीं 'भारती' मासिकाचा हा प्रयत्न आहे. हिंदी ही आतां घटनेच्या सही शिक्क्यानिशीं राष्ट्रभाषा झाली आहे; तिचें स्वरूप भारतीय भाषांच्या वैशिष्ट्याचें संकलन करणारें आणि भारतीय संस्कृतीचें प्रतिनिधित्व करणारें असावें असे ठरलें आहे. तेव्हा अखिल भारतीय साहित्याचें अनुवाद रूपानें दिग्दर्शन करणारें हें मासिक अगदी योग्य वेळीं निघत आहे. या समयज्ञतेबद्दल संचालक ऑल इंडिया रिपोर्टर आणि संपादक हृषीकेशजी हे अभिनंदनास पात्र आहेत.

नागपूर ही 'मराठीची नगरी' आहे. तथापि संकुचिततेचा तिच्या ठायीं लवलेशही नसल्यामुळें येथील अनेक मराठीचे सुपुत्र हिंदीकडे तितक्याच आत्मीयतेनें बघणारे आहेत. अशा मराठी लेखकांचें साहाय्य 'भारती' ला मिळालेलें दिसतें ही संतोषाची गोष्ट होय. दादा धर्माधिकारी, अनंतराव शेवडे, वा. कृ. चोरघडे ही मंडळी अशांपैकीं होत. शिवाय शं. बा. शास्त्री, आ. रा. देशपांडे, सौ. कुसुमावती देशपांडे, वा. शि. बारलिंगे या नागपुरांतील साहित्यिकांच्या मराठी साहित्यकृतींचा अनुवाद भिन्न भिन्न अंकांतून देण्यांत आला आहे तो निराळाच. इतर ठिकाणच्या मराठी लेखकांपैकीं वि. स. खांडेकर, कॅ. ना. गं. लिमये, काकासाहेब कालेलकर हे अनुवादद्वारा झळकतांना दिसतात. [illegible] एक गोष्ट (नवी सृष्टि),

केटन लिमये यांचा विनोदी लेख आणि कालेलकरांचा छोटासा निबंध अनुवादित करून देण्यांत आला आहे. डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र यांनीं दुसऱ्या अंकांत समर्थांच्या मनाच्या श्लोकांपैकी ६ श्लोकांचा हिंदी अनुवाद मूळ मराठीसह दिला आहे. हा उपक्रम स्तुत्य आहे.

आतापर्यंत जानेवारी, फेब्रुवारी—मार्चचा जोड अंक व एप्रिल असे 'भारती' चे तीन अंक बाहेर पडले आहेत. या तीन अंकांत तमिळ साहित्य व गुजराती साहित्य यांचा परिचय, तमिळ, तेलगू, कानडी, मराठी, गुजराती, बंगाली इ० भाषांतील मौलिक लेख, गोष्टी, नाटिका, कविता इत्यादिकांचे अनुवाद आणि 'तुलसी और कबीर की साधना' या सारखें मूल हिंदी लिखाण मुबलक प्रमाणांत देण्यांत आलें आहे. अनंतराव शेवडे यांची 'पूर्णिमा' नांवाची चालू कादंबरी-दर अंकांत येत असते. अशा उच्च दर्जाच्या लिखाणाचीं उत्कृष्ट बाह्यांगाचीं दरमहा शंभर पानें देण्यांत येतात; त्या मानाने अंकाची कि. १। रु. ही मुळींच जास्त नाहीं. हिंदीप्रेमी सद्गृहस्थांनी यास अवश्य आश्रय द्यावा.

समर्थ संचालकांच्या छत्राखाली या उत्कृष्ट मासिकाची भरभराट होवो असें आम्ही इच्छितों.

तरुण भारत (दैनिक मराठी)
(८ मे ५०)
भारती

(संपादक: **श्री. हृषिकेश शर्मा**; प्रकाशक: श्री. वि. मा. कुलकर्णी, ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., नागपूर नं. १; वार्षिक वर्गणी १५ रु., एका प्रतीची किंमत सव्वा रु., पृष्ठें सुमारें १००.)

'भारती' हें एक उच्च दर्जाचें हिंदी मासिक गेल्या २६ जानेवारी १९५० या दिवशीं भारतीय गणराज्यदिनाच्या सुमुहूर्तावर श्री. हृषिकेश शर्मा यांच्या संपादकत्वाखालीं नागपूर येथील ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., या सुप्रसिद्ध संस्थेनें सुरू केलें आहे. आतांपर्यंत या मासिकाचे चार अंक प्रकाशित झालेले आहेत; त्यावरून या हिंदी मासिकाचें स्वरूप बरेंच स्पष्ट झालें आहे. जानेवारीचा पहिला अंक २६ जानेवारीला प्रकाशित झाल्यामुळें फेब्रुवारी आणि मार्चचा जोड अंक निघालेला दिसतो. अंकांतील साहित्य उच्च दर्जाचें आहे. त्याप्रमाणेंच अंकाची छपाई आणि चित्रकार श्री. आर्डे यांची सजावट हीं दोन्ही उत्कृष्ट आहेत. त्यामुळें प्रत्येक अंक आकर्षक वाटतो. परंतु हेंच कांहीं या अंकाचें एकमेव वैशिष्टय नव्हे. हें केवळ गौण अंग आहे. आणि तें गौण अंग आहे ह्मणूनच कांहीं मासिकाचे संचालक त्याकडे दुर्लक्ष करतात. पण या गौण अंगाचेंहि विशिष्ट महत्त्व आहेच हें ओळखून 'भारती'च्या संचालकांनीं त्याकडे योग्य तें लक्ष पुरविलें आहे.

१५ ऑगस्ट १९४७ रोजीं भारताची फाळणी होऊन स्वातंत्र्य मिळाल्यावर आतां कोणत्या भूमिकेवर सारें 'भरतखंड' एकसंध रहाणार—एकात्म रहाणार, अशी काळजी विचारवंतांच्या मनांत निर्माण झाली. तत्पूर्वी, परकीय सत्तेला विरोध करावयाचा ह्मणून भारतांतील सर्व राष्ट्रकें इंग्रजी भाषेच्या भूमिकेवर एकत्र झालीं होतीं. परंतु सत्तांतर झाल्यावर एक आंतरराष्ट्रीय भाषा ह्मणून

इंग्रजीचा स्वीकार केला व तिचें अध्ययन पुढें सतत चालू ठेवलें, तरी यापुढें हिंदी राष्ट्राला एकत्र आणण्याची भूमिका ती परकीय भाषा बजावूं शकत नाहीं; आणि भारतीय घटना-समितीनें हिंदी भाषेला संघराज्य-भाषा ह्मणून मान्यता दिल्यावर भारतीय राष्ट्रकांचें सांस्कृतिक ऐक्य साधण्याचें कार्य फक्त हिंदी भाषाच पार पाडूं शकेल, हें स्पष्ट झालें. यासाठीं भारतांतील प्रत्येक राष्ट्रकानें आपलें मातृभाषेचें विशिष्ट महत्व, त्याबरोबरच तिच्या मर्यादा ओळखून हिंदी भाषेचा स्वीकार करण्याची व हिंदी भाषीयांनीहि इतर भाषांवर आक्रमण करण्याचा प्रयत्न न करतां हिंदी भाषेबरोबरच सर्व राष्ट्रकांच्या मातृभाषांचें महत्व ओळखून त्यांच्या सांस्कृतिक प्रवाहांना हिंदी भाषेंत योग्य तें प्राधान्य देऊन हिंदी भाषेला संपन्न करण्याची आवश्यकता निर्माण झाली. या परस्पर तडजोडीच्या भूमिकेव्यतिरिक्त फुटीर वृत्तीहि आढळतात. परंतु शेवटीं सर्व फुटीर गटांना वरील निर्णयावरच यावें लागेल, यांत शंका नाहीं. हिंदी भाषेबरोबरच सर्व राष्ट्रकांतील सांस्कृतिक प्रवाह संमीलित करून हिंदी वा राष्ट्रभाषेला संपन्न करण्याच्या जाणिवेंतूनच 'भारती'चा उदय झाला आहे, असें आह्मांला वाटतें. या दृष्टीनें 'भारती'चे नियम आणि उद्देश यांतील सातवें आणि आठवें कलम महत्वाचें आहे. या कलमानुसार 'भारती'चा दृष्टिकोन 'नवचेतनेसह रचनात्मक' आहे. भारतीय साहित्याचा समन्वय आणि सर्वोदय साधणें हा तिचा उद्देश आहे. यासाठीं असमिया, बंगला, उडिया, नेपाळी, काश्मिरी, सिंधी, गुजराती, मराठी, तमिळ, तेलगु, कन्नड, मलयालम इत्यादि दहा-बारा राष्ट्रभाषांतील उच्च साहित्याचा अनुवाद 'भारती'त देण्यांत येणार आहे. या विशाल कार्याची सुरवात 'भारती'नें २६ जानेवारी रोजीं सार्वभौम भारतीय गणराज्यदिनाच्या मंगल दिनीं केली, यांत तिनें निःसंशय औचित्य साधलें, असें म्हणावें लागेल.

हिंदीबरोबरच इतर भारतीय भाषांचाहि परिचय करून देण्याचा 'भारती'च्या संपादकाचा हा उपक्रम निःसंशय अभिनंदनीय व स्तुत्य आहे. परंतु त्यापेक्षांहि हिंदी या राष्ट्रभाषेच्या भूमिकेवर भारतीय खंडाचें ऐक्य साधण्याचा जो प्रयत्न 'भारती' नें सुरू केला आहे, तो अधिक महत्वाचा भवितव्याच्या दृष्टीनें दूरगामी परिणाम करणारा ठरेल. या प्रयत्नांच्या यशावरच 'भारती'चें यश निर्भर राहील. सुदैवानें श्री. हृषिकेश शर्मा यांच्यासारखे कुशल संपादक 'भारती'ला लाभलेले आहेत. त्यांच्या संपादकत्वाखालीं 'भारती' सांस्कृतिक ऐक्य साधूं शकेल, असा आम्हांस विश्वास वाटतो.

नागपुर का प्रसिद्ध दैनिक
हिन्दी लोकमत :—(२२-५-५०)

भारती

२६ जनवरी १९५० से ऑल इण्डिया रिपोर्टर नागपुर के संचालकत्व तथा पं० हृषीकेश शर्मा दृश सफल साहित्यिक के सम्पादकत्व में 'भारती' नाम की एक उच्चकोटि की हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है। भारती के अभी तक तीन चार अङ्क प्रकाशित हो चुके हैं। प्रत्येक में प्रकाशित स्थायी एवं प्रस्तुत साहित्य निर्दोष, सोद्देश्य एवं ज्ञानपूर्ण है। भारती को हिन्दी

76236

के प्रमुख कलाकारों का सहयोग मिला है तो साथ ही पत्रिका में विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि साहित्य को भी प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। विभिन्न भारतीय भाषाओं–मराठी, तेलगू, तमिल, उड़िया, बंगला, गुजराती, पंजाबी आदि के ऊंचे कथा, काव्य व दूसरे साहित्य को देने वाले एक उच्चकोटि के हिन्दी मासिक की आवश्यकता बहुत समय से अनुभव की जा रही थी। स्व० प्रेमचन्दजी तथा श्री क० मा० मुंशी के सम्पादकत्व में निकले मासिक 'हंस' से इस दिशा में एक उद्योग किया गया था, उस समय भी भारती के सम्पादक ने हंस को पुष्ट करने में योग दिया था, प्रसन्नता का विषय है कि अब भारती पत्रिका का प्रणयन कर उसी परम्परा को पुनरुज्जीवित किया गया है। हिन्दी राजभाषा बन गयी है, वह अहिन्दी प्रांतों में उसी स्थिति में गौरवान्वित हो सकेगी जब हिन्दी का साहित्य पुष्ट हो और उसमें अहिन्दी भारतीय भाषाओं के समस्त उत्कृष्ट साहित्य का संकलन हो। यह स्थिति होने पर अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी सरलता से लोकप्रिय एवं राष्ट्रभाषा बन सकेगी। भारती का प्रकाशन इस दिशा में एक सुन्दर प्रयत्न है। वि० स० खाण्डेकर, का० श्री० निवासाचार्य, ज्योतिन्द्र ह० दवे, क० मा० मुन्शी, डोलरराय मांकड, ना० ग० लिमये, धूमकेतु, शीतलकवि वामन चोरघड़े, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर सरीखे श्रेष्ठ भारतीय परन्तु अहिन्दी कलाकारों की चुनी हुई रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद भारती के विविध अङ्कों में प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त आचार्य दादा धर्माधिकारी तथा श्री अनन्त गोपाल शेवड़े सरीखे अहिन्दी मातृभाषावाले परन्तु हिन्दी में ही कलाकृति प्रस्तुत करने वाले श्रेष्ठ कलाकारों का नियमित सहयोग प्राप्त करने में भारती सफल हुई है। भारती का प्रकाशन देश की तथा साहित्य के आवश्यकता के अनुरूप है। पूर्ण विश्वास है कि अन्तः प्रान्तीय भाषाओं से सम्पर्क स्थापित करने में भारती सफल होगी। भारती का वार्षिक मूल्य १५) एक प्रति का १।) रुपये तथा भारती कार्यालय, ऑल इण्डिया रिपोर्टर, नागपुर से प्राप्तव्य है।

नागपुर का प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक "नागपुर टाइम्स"

Dated 4.3.50.

"BHARATI" A Hindi monthly magazine, Editor: PANDIT RHISHIKESH SHARMA; Managing Editor: SHRI V. M. KULKARNI; All India Reporter Ltd., Nagpur: Single copy Rs. 1.4.0, Annual Rs. 15.0.0.

This is a high class magazine published in the Hindi (BHARATI) language which has now been accepted as the State language of India. It is devoted to art, literature and culture. Its aim is to reflect the best trends in the various sister languages of India and present them through the national language so that the people speaking different languages in the country may know more about the cultural trends existing in the various parts of the country. It has been an irony of the situation that an Indian knew more about English literature than about the literature of a provincial sister language other than his mother-tongue. Since Hindi is now going to replace English in inter-provincial intercourse, the importance of the effort made by 'BHARATI' cannot be over-emphasised. It provides a vital link between the important provincial languages

of our country which will bring them closer together, and discourage the separatist tendencies of rivalry and divergence. In this background, this magazine is bound to play a very important role in the future.

The first issue was published on the auspicious Indian Republic Day i. e. January : 26th last, and the publication ceremony was performed by the author of the poetic master-piece "Krishnayan". The first issue contains a portrait of Mahatma Gandhi, the fountain source of all our inspiration and strength. It contains translations of high class literary pieces from Gujerati, Marathi, Tamil etc. and, of course, Hindi. The authors represented in the issue, among others, are: Jyotindra Dave, V. S. Khandekar, Makhanlal Chaturvedi, Vinayamohan Sharma, Kusumavati Deshpande, Udaya Shanker Bhatt, Roopnarayan Pandey, A. R. Deshpande. The printing and get-up is neat and the cover page represents the symbols of our national culture-both ancient and modern. The journal has a brilliant future.

नागपुर का प्रासिद्ध अंग्रेजी दैनिक
"हितवाद"

Dated 1-5-50.

"BHARATI"

We have received for review the February-March 1950 number of BHARATI. Editor: HRISHIKESH SHARMA; Managing Editor: V. M. KULKARNI; Publishers Bharati Karyalaya, All India Reporter Ltd., Nagpur, Annual subscription Rs. 1[illegible], Single copy Re. 1-4-0 which is a Hindi Digest containing a good many articles and short stories by well-known Indian writers. BHARATI is devoted to the noble cause of acquainting its readers with the leading writers of the various Indian languages. Short stories, articles of topical interest and other literary work of Indian writers is translated in lucid Hindi from the original and presented to the readers in attractive compilation. Due to the emphasis on English in Indian education so far, it has been a common experience to see Indian students quote English authors with greatest ease, but fumble for words when asked to say something about writers of Indian languages. With the changed times, however, such utter disregard for literary work of our own country has to be cured by gradual introduction of work of renowned writers of all the Indian languages. And judged from this point of view, Bharti's contribution would be invaluable. The second number under review contains articles and short stories by Kanhaiyalal M. Munshi, Shriram Sharma, Waman Chorghade, Hon'ble Shri Barlinge, Vishwanath Satyanarayana, Gopal Sharma, Capt. Limaye, K. S. Shrinivasacharya, A. G. Sheorey and others. In fact the number offers the reader very rich fare, far in excess the little amount charged for it.

१९५०

'भारती' आप से कुछ चाहती है !

'भारती' के प्रकाशन का उद्देश्य अब आपसे छिपा नहीं है।

१. यह कि 'भारती' हर महीने सुन्दर १०० पृष्ठों में सचित्र, सुरुचिपूर्ण, विविध-

२. यह कि 'भारती' हर महीने सुन्दर १०० पृष्ठों में सचित्र, सुरुचिपूर्ण, विविध-विषयक भारतीय साहित्य, संस्कृति और कला की श्रेष्ठ पाठ्य सामग्री अपने प्रेमी पाठकों के हाथों में प्रस्तुत करती है।

३. यह कि अब समय आगया है कि आपके घरों में जो पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य आदि सामग्री आवे; आप उसकी जागरूक, सतर्क एवं सचेष्ट होकर जाँच पड़ताल करें कि उसमें कहीं रोग के कीटाणुओं की तरह नग्नता, अश्लीलता या गन्दगी तो नहीं भरी हुई है; जो हमारे घरों में कमजोरी, कुविचार, कुरुचि और कुवासना को उत्तेजित करती है, सड़ाँद पैदा करती है, और जो हमारे राष्ट्रीय, जातीय अथवा व्यक्तिगत जीवन को विकारग्रस्त, अस्वस्थ, निर्बल बना कर पतन की ओर ले जा रही है। कृपया अश्लील, नग्न-चित्र, भद्दी, अर्धनग्न, कुरुचिपूर्ण पाठ्यसामग्री और गन्दगी से भरे हुए शर्मनाक औषधीय विज्ञापनों से सुसज्जित पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों को अपने घरों में मत घुसने दीजिए।

४. यह कि जो आपके जीवन को, विचारों को, चरित्र को, रुचि को समृद्ध, संस्कारवान, प्राणवान, स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण बनाए वैसा ही उत्तम साहित्य आप पढ़ें। ऐसा साहित्य जहाँ से मिले, उसका स्वागत करें, उसे अपने घर में स्वतंत्र सूर्य के स्वच्छ प्रकाश की तरह और नीरोग स्वास्थ्यकर हवा के झोंकों की तरह बेरोक-टोक आने दें।

५. यह कि इस महान पवित्र साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्य में आप 'भारती' का हाथ बटावें, उसकी सहायता करें।

६. यह कि आप तो 'भारती' के नियमित पाठक हैं ही; जहा जिस शहर या गाँव में आप हैं, भारती की सहायता के लिए अपनी ओर से कुछ-न-कुछ अवश्य करें। प्रत्येक पाठक 'भारती' का एक नया पाठक बना दे। जिन पुस्तकालयों, वाचनालयों या स्कूल-कालेजों की लायब्रेरियों में वह नहीं पहुँच रही है, वहाँ उसे उत्साहपूर्वक प्रोत्साहन देकर पहुँचा दें।

७. यह कि यथार्थ में सच्चे दिल से, जरासी मेहनत से, आप अपने इष्ट मित्र बन्धुओं में से एक एक नया ग्राहक बना कर भारतीय राज्य एवं राष्ट्र की भाषा हिन्दी के प्रसार में हमारी मदद करें।

८. "भारती" आपकी ऐसी सहायता का सहर्ष स्वागत करेगी। प्रतीक्षा में—

भारतीय ज्ञानपीठ के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

श्री वीरेन्द्रकुमार के कलामय कृतित्व का अनुपम प्रतीक :—

मुक्तिदूत ४।।।)

★ उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है......मर्मज्ञों ने मुक्तकण्ठ प्रशंसा की है......... ★

उर्दू-काव्य के महान् मर्मज्ञ श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय की दीर्घकालव्यापी साधना :— (उर्दू काव्य धारा)

शेर-ओ-शायरी ८)

★ संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे संकलयिताकी अंतर्दृष्टि और गंभीर अध्ययनका परिचय मिलता है......हिंदी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है ★

विदग्ध और विलक्षण साहित्यकार श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की जीवन-झाँकी :—

पथचिह्न २)

★ मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली...... लेखक ने पंक्ति-पंक्ति में अपना हृदय उँडेल दिया है ★

प्रबुद्ध विद्वान् और ओजस्वी ग्रन्थकार
डॉ० जगदीशचन्द्र जैन की प्रासादिक कृति :—

दोहजार वर्ष पुरानी कहानियाँ ३)

★ जैन परम्परा के मनोरंजक उपाख्यान...दो हजार वर्ष पुराने... शैली सरल और सुबोध... ★

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस ४

भारतीय ज्ञानपीठ के उपरोक्त समग्र ग्रंथ
हिन्दी पुस्तक भंडार नागपुर, धंतोली में भी मिलेंगे

हिंदी और मराठी भाषामें प्रकाशित होता है।

उद्यम

प्रतिमास

१५ तारीख को पढ़िये।

धर्मपेठ, नागपुर.

उद्यम में निम्न विषयों पर लेख प्रकाशित होते हैं।

★ लाभदायक उद्योगधंधों की व्यवहारोपयोगी जानकारी।

★ अनाज की खेती, सागसब्जी की बागवानी, और रोगों का निवारण।

★ पशुपालन, दुग्धव्यवसाय और ग्रामोद्योग-संबंधी लेख।

★ विद्यार्थियों के लिये वैज्ञानिक तथा अन्य जानकारी-पूर्ण लेख।

★ आरोग्य, घरू औषधियों संबंधी जानकारी।

★ उद्यम परिवारके हर व्यक्तिकी दृष्टिसे उपयोगी है।

★ संपूर्ण भारत के व्हीलर रेल्वे स्टालों, और हर गाँवके न्यूजपेपर एजेंटों की माँग सतत बढ़ती जा रही है।

★ उद्यम मासिक में हर माह सुधार किया जा रहा है और इसे हर पाठक की दृष्टिसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

★ वर्ष के १२ अंकों में अपने ढंग के दो विशेषांक प्रकाशित होते हैं, जो स्थायी ग्राहकों को वार्षिक चंदे में ही मिलते हैं।

उद्यम के विशेष स्तंभ

★ महिलाओं तथा विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त

★ विभिन्न रुचिकर खाद्यपदार्थ बनानेकी विधियाँ

★ घरू मितव्ययिता

★ उद्यम का पत्रव्यवहार

★ खोजपूर्ण खबरें

★ आर्थिक तथा औद्योगिक परिवर्तन

★ जिज्ञासु जगत्

★ व्यापारिक हलचलों की मासिक समालोचना

★ कृषि, औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों की मुलाकात और परिचय

★ हिंदुस्थान के वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र की उपयोगी जानकारी

★ नित्योपयोगी वस्तुएँ घरही तैयार कीजिये।

★ आजही उद्यम का वार्षिक चंदा रु. ७-०-० भेजकर सर्वोपयोगी उद्यम मासिक मँगवाना प्रारंभ करें।

दी युनायटेड कमर्शियल बैंक लि.

हेड ऑफिस कलकत्ता

चुकता मूलधन : २ करोड़ रुपये

सुरक्षित कोष (रिज़र्व फंड) : ५२॥ लाख रुपये

चेयरमैन : **जी. डी. बिड़ला**

जनरल मैनेजर : **बी. टी. ठाकुर**

समस्त भारत, पाकिस्तान, बर्मा और मलाया में बैंक की शाखाएँ हैं, और संसारभर में एजंसी की व्यवस्था है।

जी. ए. रणदिवे

मैनेजर, नागपुर शाखा

Reg. No. N. 1262.

"कृष्णायन"

संत कवि श्री तुलसीदासजी की सुन्दर सरस रामायण की दोहा-चौपाईवाली अत्यन्त रमणीय शैली में भगवान आनन्दकंद श्रीकृष्ण का चरित।
लेखक — पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र। मूल्य १२ रु. डाक खर्च अलग।

* निशागीत *

(लेखक—श्री० अनन्त गोपाल शेवड़े, एम. ए.)

एक सुन्दर प्रेमल उपन्यास

एक जनता के सेवक डॉक्टर और नर्स की यह प्रेम-कहानी इतनी जल्दी लोक-प्रिय कैसे हो गई!

क्योंकि उसमें प्राण हैं, सजीवता है, रोचकता है, कथा-तत्व है और मनको पकड़ने का अद्भुत आकर्षण है। एक बार प्रारंभ करनेपर पूरी किये विना पुस्तक छोड़ी नहीं जाती।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, उदयशंकर भट्ट, विनयमोहन शर्मा, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' आदि द्वारा प्रशंसित —ऑल इंडिया दिल्ली तथा नागपुर रेडियो से चर्चित — विशाल भारत, कर्मवीर, मानवता, देशदूत, शुभचिन्तक आदि पत्र-पत्रिकाओं ने. जिसकी सुन्दर समालोचना की। एक बार अवश्य पढ़िये।

पृष्ठ संख्या १५४; सुन्दर आकर्षक कवर, बढिया गेट-अप;
मूल्य २।) रु. डा. ख. अलग.

"गृहविधान"

गृहनिर्माण-कला का संपूर्ण सचित्र शास्त्रीय ग्रंथ। सौराष्ट्र के एक बहुत बडे अनुभवी चीफ इंजीनियर, नगर-निर्माता और सौराष्ट्र-सचिव श्री. वी. सी. मेहता का लिखा हुआ ग्रंथ। इसकी सहायता से कोई गृहस्थ धनी पुरुष ३ हजार रुपये से लेकर ३ लाख रुपये तक की आलीशान इमारत, घर, बंगला आदि बनवा सकता है। ४०० पृष्ठ, २०० चित्र मैप डिजाइन वगैरह। राष्ट्रपिता पू. बापू ने आशीर्वाद दिया। स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान ने सुन्दर सम्मति दी और डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र भूतपूर्व दीवान रायगढ स्टेट ने प्रस्तावना लिखी। भवन-निर्माण कला का शास्त्रीय ग्रन्थ है। मूल्य १२ रु. डा. ख. १ रु.

उक्त पुस्तकों के मिलने का पता:—

हिन्दी पुस्तक भंडार, धंतोली नागपुर (१)

Printed by V. M, Kulkarni at the All India Reporter Press and
Published by him at Bharati Karyalaya, All India Reporter Ltd., Nagpur.
D/- 7—6—19

(All Rights Reserved.)

भारती

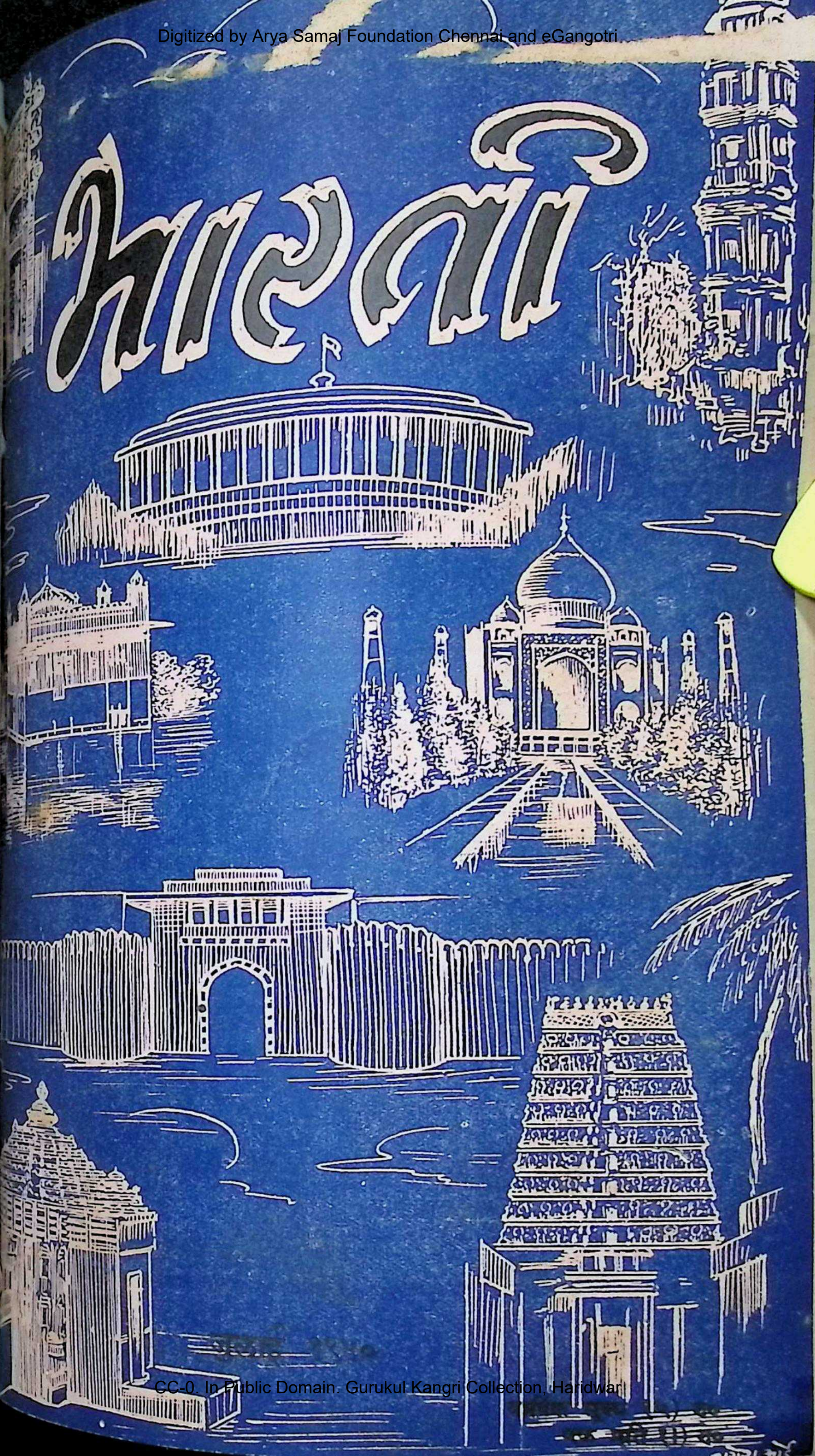

इस अंक के लेखक

१. श्री. हजारी प्रसाद द्विवेदी :
संस्कृत के शास्त्राचार्य। शान्ति निकेतन—विश्वभारती में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष। उच्च कोटि के वक्ता, विचारक और विवेचक।

२. श्री. टी. एन. श्रीकण्ठय्या एम. ए. :
'भारती' के इसी अंक में प्रकाशित 'महाकवि रन्न और उनका गदायुद्ध' लेख मूल कन्नड़ भाषा में श्रीकण्ठय्या जी का ही है। आप कन्नड़ के लब्ध-प्रतिष्ठ लोक-प्रिय कवि, समालोचक और मनीषी अन्वेषक हैं। 'भारतीय संविधान परिषद्' में पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के लिए संयोजित "भाषा विज्ञ परिषद' में कन्नड़ के प्रतिनिधि रहे। मैसूर यूनिवर्सिटी में कन्नड़ के प्रतिनिधि रहे। मैसूर यूनिवर्सिटी में कन्नड़ साहित्य के प्राध्यापक हैं। और इस मूल कन्नड लेख के अनुवादक हैं श्री. नारायण-दत्तजी गुरुकुल-कांगडी विश्वविद्यालय के एक होनहार भावी स्नातक। मातृ-भाषा कन्नड़ है और हिन्दी के अध्ययनशील लेखक हैं। आपके स्व. पिता संस्कृत के महा-पंडित थे और मैसूर महाराजा संस्कृत कॉलेज के प्रिन्सिपल।

३. श्री. हरिशंकर शर्मा :
परिचय गत अप्रैल के अंक में।

४. श्री. भवानी प्रसाद तिवारी एम. ए. :
मध्यप्रदेश के उच्चकोटि के प्रतिष्ठित तरुण कवि। समाजवादी पार्टी के नेता। जबलपुर के साप्ताहिक 'प्रहरी' के सम्पादक। स्वर्गीय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' के मर्मस्पर्शी मनोहर अनुवादक। हमेशा मस्त और मनमौजी मज़ाकिया मिज़ाज।

५. श्री. परशुराम चतुर्वेदी :
एम. ए. (दर्शन शास्त्र), एल. एल. बी.। बलिया में वकालत करते हैं। उर्दू, बंगला, मराठी, संस्कृत, पंजाबी, अपभ्रंश और फ्रेंच का साधारणतः अच्छा परिचय। उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा और सन्त-वाणी का गत २०—२५ वर्षों से गहरा अनुशीलन। सन्त-साहित्य से सम्बन्धित सभी विषयों से आपको साधिकार लिखने का अनुराग है।

६. श्री. आचार्य दादा धर्माधिकारी :
परिचय गत अप्रैल के अंक में।

७. श्रीमती कुसुम पाल नीहारिका :
हिन्दी की एक उदीयमान चिन्तनशील तरुण लेखिका। ललित कलाओं और अभिजात साहित्य-अनुरागिणी। संगीत, नृत्य एवं चित्रकला से विशेष प्रेम। सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयोंपर लेख लिखती हैं।

८. श्रीमती कमला चौधरी :
भारतीय राज्य संसद (पार्लमेंट) की सदस्या। एक गान्धीवादी कर्मठ देशभक्त महिला। भारतीय स्वतंत्रता—आन्दोलन में कई बार कारागार गई। हिन्दी की प्रसिद्ध मनो वैज्ञानिक कहानी-लेखिका। ब्रज भाषा और उर्दू में भी सुन्दर रचना करती हैं। एकांकी नाटक भी लिखे और उमर खैयाम का भी। आज-कल एक मौलिक उपन्यास लिख रही हैं।

९. श्री. 'सुन्दरम्' :
'सुन्दरम्' नाम से भ्रम होता है कि आप तरफके तमिल-भाषी दाक्षिणात्य तरुण हैं; आप गुजराती और अहमदाबाद निवासी। त्रिभुवनदास पुरुषोत्तमदास। गुजरात विद्यापीठ संस्कारी स्नातक हैं। विश्ववन्द्य राष्ट्रपिता की 'सुन्दरम्' पर स्निग्ध छाया छुटपन में चुकी थी। लोकशिक्षण के कार्य में आप हैं। गुजरात की जनता आप की कविता की क़द्र करती है और 'सुन्दरम्' यह गुर्जर काव्य के क्षेत्र में उनका उपनाम है।

१०. श्री. पुरुषोत्तमदास मोदी एम. ए.
एक तरुण अध्ययनशील विद्वान लेखक। गोरख मासिक पत्र 'आरोग्य' के सम्पादकीय विभाग में

११. श्री. रामवृक्ष बेनीपुरी :
हिन्दी-जगत् में यह नाम खूब प्रसिद्ध है। तेजस्वी लेखक, समालोचक, कहानीकार और बाल-किशोर—तरुण साहित्य-निर्माता। मासिक पत्रिका "नई धारा" के सफल

१२. श्री. धर्मवीर भारती एम. ए. :
यही कोई २५, २६ वर्ष के तरुण। प्रयाग विद्यालय के हिन्दी-विभाग में रिसर्च कर रहे हैं। सिद्धों के अपभ्रंश साहित्य पर। हिन्दी के सन्त सिद्ध कवि, सोते-जागते, खाते-पीते और बैठते तरुण धर्मवीर के सरपर सदा सवार रहते 'संगम' साप्ताहिक के सम्पादकीय विभाग में कुछ दिन रहे। आपने अबतक जो कुछ लिखा प्रगतिशील दृष्टिकोण और विचार स्वातंत्र्य के 'गुनाहों का देवता' (उपन्यास), 'मुर्दों का (कहानी संग्रह), और 'प्रगतिवाद : एक (आलोचना) ये आपकी रचनाएँ हैं। उपन्यास, एकाङ्की), कविता, सब कुछ लिखते हैं। अपनी कलम और अपना पसीना।

१३. स्वर्गीय श्री. वी. वी. एस. अय्यरजी :
१९२६ में, मद्रास में इस महान् क्रान्तिकारी पवित्रात्मा के दर्शन किये थे। सत्संग भी किया ट्रिप्लिकनमें, द. भा. हिन्दी प्रचार सभा के कार्यालय समय समय पर वे पधारते थे और अपनी सुनाते थे। हम लोगों को 'पापनाशनम्' नदी के प्रपात में एक दिन समाधि ले ली थी, संसार की प्रवंचना से व्यथित होकर।

१४. प्रो. श्री. गोपाल शर्मा एम. ए. :
परिचय गत मार्च के अंक में।

शेष कवर पेज के तीसरे पृष्ठपर देखिये

इस अंक की पाठ्य सामग्री

विषय और लेखक [जुलाई १९५०]

पृष्ठ संख्या

[भारती]

१. कलाकार का कर्तव्य [आचार्य डॉ. अमरनाथ झा] ... ५२९
२. हमारी संस्कृति की प्रेरणा का स्रोत वैदिक साहित्य [श्री. हजारीप्रसाद द्विवेदी] ... ५३१
३. कन्नड़ महाकवि रन्न और उनका ‘गदायुद्ध [श्री. नारायणदत्त] ... ५३६
४. रिश्वत-रानी (विनोद हास्य) [श्री. हरिशंकर शर्मा] ... ५४२
५. पहेली (हिन्दी कविता) [श्री. भवानीप्रसाद तिवारी] ... ५४७
६. कबीर का समन्वयवाद [श्री. परशुराम चतुर्वेदी] ... ५४८
७. मानवता के भक्तिवीर को श्रद्धांजलि [श्री. आचार्य दादा धर्माधिकारी] ... ५५३
८. काठियावाड़ और गुजरात के गरबा गीत [श्रीमती कुसुमपाल नीहारिका] ... ५५६
९. हरित तृण (बंगाली कविता) [श्रीमती निरुपमा भाववादिनी] ... ५६५
१०. मिसेज़ चोपड़ा (हिंदी कहानी) [श्रीमती कमला चौधरी] ... ५६६
११. अमदावादनुं घर (गुजराती कविता) [श्री. ‘सुन्दरम्’] ... ५७३
१२. तारुण्य और विद्रोह का गायक [श्री. पुरुषोत्तमदास मोदी] ... ५७४
१३. पहली वर्षा ! [श्री. रामवृक्ष बेनीपुरी] ... ५८०
१४. सृष्टिका आखिरी आदमी (ध्वन्यात्मक एकांकी) [श्री. धर्मवीर भारती] ... ५८१
१५. कविता (तमिल साहित्य) [स्व. श्री. व. वें. सुब्रह्मण्य अय्यर] ... ५९०
१६. ठनन् ठननन् (हिंदी कविता) [श्री. गोपाल शर्मा] ... ६०२
१७. मधुव्रत (गुजराती भावकथा) ... ६०४
१८. परकाय प्रवेश (कन्नड़ कहानी) [‘श्रीनिवास’] ... ६०५
१९. स्निग्ध माधव (हिंदी गीत-गोविन्द) [श्री. प्रो. विनयमोहन शर्मा] ... ६१२
२०. आधुनिक फ्रेंच साहित्य की एक झाँकी [श्री. शारदाप्रसाद वर्मा] ... ६१५
२१. मराठी का साहित्य प्रवाह [“प्रभाकर पंडित”] ... ६१९
२२. परितप्ता (हिंदी कहानी) [श्री. देवीदयाल चतुर्वेदी ‘मस्त’] ... ६२४
२३. पूर्णिमा (धारावाही हिंदी-उपन्यास) [श्री. अनन्त गोपाल शेवडे] ... ६२९
२४. विविध [श्री. ललिता प्रसाद पुरोहित] ... ६४३
२५. साहित्यालोचन (ग्रन्थ-समालोचना) [श्री. प्रो. विनयमोहन शर्मा] ... ६४९
२६. दृष्टिकोण (सम्पादकीय) ... ६५४

'भारती' के नियम और उद्देश्य ।

(संपादकीय)

१. भारती प्रतिमास ७ तारीख को प्रकाशित होती है ।

२. भारती में साम्प्रदायिक अथवा मत-मतान्तरों से सम्बन्धित, विवाद-ग्रस्त लेख प्रकाशित नहीं होंगे ।

३. भारती भारत की विशुद्ध अन्तर्प्रान्तीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रगतिशील चिन्तन-प्रधान सचित्र मासिक पत्रिका है ।

४. भारती में प्रतिमास लगभग १०० पृष्ठ रहेंगे ।

५. किसी लेख, रचना, कविता आदि को छापने या न छापने का, उसे कम-बढ़ करने का और लौटाने न लौटाने का अधिकार संपादक को है ।

६. भारती का उद्देश्य समस्त उच्च भारतीय भाषाओं के साहित्य को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना है जिससे वह भारत के समस्त भाषा-भाषियों की वस्तु बन सके ।

७. भारती का दृष्टिकोण नव चेतना को लिये हुए रचनात्मक है । वह नये भारत में ऐसे हिन्दी साहित्य का निर्माण चाहती है; जिसमें भारतीय साहित्य का समन्वय हो—सर्वोदय हो ।

८. भारती में हिन्दी की मौलिक श्रेष्ठ रचनाओं के साथ साथ —

१ असमिया, २ बंगला, ३ उड़िया, ४ नेपाली, ५ काश्मीरी, ६ सिंधी, ७ गुजराती, ८ मराठी, ९ तमिळ, १० तेलुगु, ११ कन्नड, १२ मलयालम आदि १०–१२ प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुई श्रेष्ठ अनूदित उच्च साहित्यिक रचनाएं भी प्रकाशित होंगी ।

९. भारती में मनन करने योग्य विविध विषयक लेख, मनोवैज्ञानिक कलात्मक कहानियां, धारावाहिक उपन्यास, कविता, एकांकी, विविध समालोचनाओं का समावेश होगा ।

१०. प्रकाशनार्थ समस्त सम्पादकीय व्यवहार नीचे लिखे पते पर कीजिये :—

लेखकों के लिये सूचना :—

'भारती' में प्रकाशनार्थ रचना, आदि कम से कम एक मास पहले, ता. १० तक, सम्पादक के पास भेज देना चाहिए । लेख-रचना सामग्री साफ सुथरे कागज के एक ही ओर स्वच्छ सुपाठ्य अक्षरों में लिखी जानी चाहिए ।

अस्वीकृत रचना को वापस मँगाने के लिए डाक-टिकट अवश्य भेजें । लेखकों की अन्य पत्र-पत्रिकाओं में पूर्व प्रकाशित रचनाएँ 'भारती' में प्रकाशित नहीं की जायँगी ।

वार्षिक मूल्य १५ रु.
एक प्रति १।) रु.

संपादक, 'भारती'
C/o. ऑल इंडिया रिपोर्टर लि.
कांग्रेस-नगर, नागपुर (१) (मध्यप्रदेश)

" भगवान ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।"
— मैथिलीशरण गुप्त.

भारती

सम्पादक
हृषीकेश शर्मा

संचालक
ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., नागपुर

प्रबन्ध-सम्पादक
वि. मा. कुलकर्णी

वर्ष १ * नागपुर, जुलाई—१९५० * अंक ७

कलाकार का कर्तव्य

हिन्दी में मौलिक उपन्यास और कहानियां यथेष्ट संख्या में अब प्रकाशित होती हैं इनमें उपन्यास-कला के नियमों के पालन की भी चेष्टा हुआ करती है। पाश्चात्य ग्रन्थों का भी इन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। भारत के जीवन, भारतकी समस्याएं, भारत के नर-नारी, इनसे हमारे उपन्यास-लेखक प्रचुर सामग्री एकत्रित कर सकते हैं। संसार में सभी प्रकार के मनुष्य हैं। जीवन में अनेक रूप के अनुभव हुआ करते हैं। घटनाएं भी कई प्रकार की होती हैं। कलाकार का कर्तव्य है कि वह ऐसे चरित्रों का चित्रण करे, ऐसी घटनाओं का वर्णन करे, जिनसे विश्व का कल्याण हो और मनुष्य का हृदय सत्य और सौन्दर्य की ओर आकर्षित हो।

— आचार्य डॉ. अमरनाथ झा

हमारी संस्कृति की प्रेरणा का स्रोत वैदिक साहित्य

[श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी]

१

वेद हमारे सब से प्राचीन और सब से पवित्र माने जानेवाले ग्रंथ हैं। 'वेद' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ 'ज्ञान' है, वेद अर्थात् चरम ज्ञान। परन्तु 'वेद' कहने से 'कुरान' की भाँति किसी एक धर्म-ग्रंथ का बोध नहीं होता और न 'वाइविल' की तरह एक समय के अनेक सन्तों की वाणियों के संकलन का ही बोध होता है। वेद एक संपूर्ण साहित्य है—और जैसा कि विन्टर नित्स ने कहा है—वह एक 'होल ग्रेट लिटरेचर' का बोध कराता है। आधुनिक विद्वान् नाना कारणों से एक ऐसे शब्द का व्यवहार करते हैं जिससे पुराने आचार्यों के उन संपूर्ण ग्रंथा का बोध हो जाय जिन्हें वे 'श्रुति' या अपौरुषेय ज्ञान मानते थे। यह शब्द है 'वैदिक साहित्य'। वेद और 'वैदिक साहित्य' का व्यवहार अलग अलग अर्थों में होता है। वेद कहने से चार मूल संहिताओं का बोध होता है जब कि वैदिक साहित्य कहने से इन चार संहिताओं के अतिरिक्त और भी साहित्य का बोध होता है। वैदिक साहित्य में निम्नलिखित ग्रंथ समाविष्ट हैं—

(१) ऋक् (ऋच्), यजुः (यजुष्), साम (सामन्), अथर्व (अथर्वन्) नाम की चार संहिताएं। इन्हें ही मूल वेद कहते हैं। इनके लोकप्रचलित नाम हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

(२) ब्राह्मणग्रंथ जो गद्य में लिखे गए हैं और यज्ञविधियों को बताने वाले कर्मकाण्ड ग्रंथ हैं। प्रत्येक ब्राह्मण किसी-न-किसी वेद से संवद्ध है। मुख्य ब्राह्मण ये हैं—ऐतरेय और शांखायन (ऋग्वेद के); तैत्तिरीय (कृष्ण यजुर्वेद का) और शतपथ (शुक्ल यजुर्वेद का); ताण्ड्य या पंचविंश और तवल्कार या जैमिनीय (सामवेद का); और गोपथ (अथर्ववेद का)।

(३) आरण्यक और उपनिषद्। बहुत से आरण्यक, ब्राह्मणों के अन्तिम भाग हैं और आरण्यकों के अन्त में उपनिषद् (रहस्य ग्रंथ) हैं। परन्तु उपनिषदों की संख्या अनेक है। बहुत-सी तो बहुत वाद में लिखी गई हैं परन्तु वारह उपनिषदें प्राचीन मानी जाती हैं। ये हैं—ऐतरेय और कौशातकी (ऋग्वेद); छान्दोग्य और केन (सामवेद); तैत्तिरीय, कठ और श्वेताश्वतर (कृष्ण यजुर्वेद) बृहदारण्यक और ईश (शुक्ल यजुर्वेद) और प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य (अथर्ववेद)। इन में भी दस का अधिक सम्मान है—'ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड माण्डूक्य-तित्तिरिः। ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।' (मुक्ति. अ. १)

इन का कुछ विस्तृत परिचय नीचे दिया जा रहा है।

२

ऋग्वेद-संहिता (या संक्षेप में ऋग्वेद) में सब मिलाकर १०२८ सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त में कई

१९५०

ई ऋच् (ऋक्) या ऋचाएं हैं। ऋच् अर्थात् द्य। ऋग्वेद की कई शाखाएं थीं जिनमें केवल क ही प्राप्य है। शाकल ऋषि की शाखा के रूप में ही आजकल ऋग्वेद प्राप्त है। इसके १०२८ सूक्त दस मण्डलों में विभक्त हैं। ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार शाकल की शाखा ही मुख्य और आदि शाखा है*। ऐतरेय ब्राह्मण में (१४·५) इसके बारे में कहा गया है कि इसका जैसा आदि है वैसा ही अन्त है और जैसा अन्त है वैसा ही आदि है, सर्प की भांति इसकी गति में सकता है, कोई इसकी गति में भेद नहीं कर सकता। इन बातों से जान पड़ता है कि शाकल की शाखा ही प्रधान रही है। यह सबसे प्राचीन भी है। एक-दूसरी शाखा वाष्कल की है जो केवल इसका आकार के विभाजन मात्र में भिन्न है। वाष्कल ने असल में इसी शाखा को अष्टकों, अध्यायों और वर्गों में विभक्त किया है। दोनों प्रकार के विभाग प्रचलित हैं पर शाकलवाला ही व्यवहार में आता है। 'शाखा' शब्द का अर्थ यहां संपूर्ण ग्रंथ का एक अंग नहीं है बल्कि इसका तात्पर्य एक तरह से पाठ और क्रम आदि से है। विभिन्न ब्राह्मण वंशों में ये संहिताएं कुछ-कुछ पाठ-भेद और क्रम के हेर फेर से संकलित हुई थीं (इन्हीं का नाम शाखा है)। आज कल का 'संस्करण' शब्द इसके निकट जाता है। इस प्रकार शाकल शाखा का मतलब हुआ उस विशेष वंश या संप्रदाय का संस्करण भाषा और विषय के अनुसार जिन लोगों ने ऋग्वेद का अध्ययन किया है उनका कहना है कि शाकल शाखा के ऋग्वेद का दूसरे से सातवें मण्डल तक सूक्त अपेक्षा कृत पुराने हैं। इन्हें यूरोपियन पंडितोंने 'फेमिली बुक्स्' वह कर परिचित कराना चाहा है। क्यों कि इन मंडलों में गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज और वशिष्ठ नामक भाषियों और उनके गोत्रजों के साक्षात्कृत मंत्र हैं। भारतीय विश्वास के अनुसार ये ऋषि मंत्रों के दृष्टा हैं रचयिता नहीं अर्थात् उन्होंने योग और तप के बल से इन मंत्रों का प्रथम बार दर्शन किया था। ये मंत्र स्वयं अनादि हैं। आजकल के विद्वान इन्हें रचयिता मानने लगे हैं। हम आगे इन्हें रचयिता ही कहेंगे। आठवें मण्डल में कण्व और अंगिरस और इनके वंशधर ऋषि या जैसा कि आधुनिक पंडित बताते हैं, कण्व और अंगिरस जाति (रेस) के गायकों के बनाए सूक्त संगृहीत हैं। अनुक्रमणी में प्रथम, नवम और दशम मंडल के सूक्तों के रचयिताओंके भी नाम दिए हुए हैं जिनमें कई महिलाएं भी हैं। परन्तु इन नामों के सिवा इन ऋषियों का और कोई परिचय नहीं मिलता। पुराण इतिहास की महानता से ही कुछ-कुछ इनका परिचय मिल सकता है।

- ऋग्वेद की कुछ हस्त लिखित प्रतियों मे 'खिल' (परिशिष्ट) जुड़े हुए मिलते हैं। अष्टम मण्डल के अन्त में तो सभी प्रतियों में 'वालखिल्य सूक्त' मिलता है जिसे आधुनिक पंडित बहुत पुराना मानते हैं। ग्यारह सुपर्ण, सूक्त भी काफी पुराने हैं। पर कोई नहीं जानता कि ये पुराने सूक्त मूल संहिताओं में क्यों नहीं गृहीत हुए। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि संहिताओं के संकलित और संपादित होने के बाद ये सूक्त किसी अन्य परंपरा से स्मरण कर के परिशिष्ट रूप में जोड़ दिए गए हैं। 'शिवसंकल्प' — नामक खिल बाकायदा एक उपनिषद है। इसका (१–१३) प्रारंभिक भाग पुराना बताया जाता है, बाकी परवर्ती।

३

सामवेद-संहिता की कभी अनेक शाखाए थीं। पुराणों में कई सहस्र सामवेदी शाखाओं की चर्चा है। अब केवल तीन का ही पता लगता है। सब से उत्तम संस्करण कौथुमों की शाखा का है। इस चरणव्यूह में महीदासने लिखा है कि सामवेद की सोलह शाखाओ में केवल तीन ही बची हुई हैं, — कौथुमी गुजरात में, जैमिनीय कर्नाटक देश में, टाणायनीया महाराष्ट्र में। परन्तु इन दिनों सामवेद की सभी प्रकाशित पुस्तकें कौथुमी शाखा की ही हैं। शायद यही पुरानी शाखा भी है। कौथुमी शाखा के सामवेद के दो भाग हैं —

---

* ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः
पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनंतरम्॥
यदस्य पूर्वमपरं यदस्य यद्वस्यपरं
तद्वस्य पूर्वम्।
अहेरिव सर्पणं शाकलस्य न
विजानन्ति अतरत् परस्तात्॥

आर्चिक या छन्द आर्चिक अर्थात ऋचाओं का संग्रह और उत्तरार्चिक अर्थात् परवर्ती ऋचाओं का संग्रह, दोनों भागों में कुछ ऋचाएं समान हैं। सब मिलाकर १८१० ऋचाएं हैं, जिनमें से ऐसी ऋचाओं की संख्या यदि घटा दी जायें जो दोनों में आती हैं तो उनकी पूरी संख्या १५४९ होगी। इनमें प्रायः सभी ऋग्वेद में मिल जाती हैं, केवल ७५ ऋचा या पक्ष ऐसे हैं जो ऋग्वेद में नहीं हैं। साधारणतः सामवेद की ऋचाएं ऋग्वेद के आठवें और नवें मण्डल से ही गृहीत हुई हैं। अधिकांश ऋचाएं गायत्री छंद में हैं, या प्रगाढ़ छंद (जो गायत्री और जगती का मिश्रण है) में हैं। दोनों ही छंदों के नाम 'गा' धातु से बने हैं, इसलिये अनुमान किया जा सकता है कि दोनों ही छंद शुरू शुरू में गाने के लिये ही व्यवहृत होते होंगे और सामवेद वस्तुतः गान का ही वेद है। ७५ पद्य जो ऋग्वेद में नहीं मिलते, दूसरी संहिताओं या ब्राह्मणों में मिल जाते हैं। ऋग्वेद की कुछ ऋचाएं सामवेद के कुछ पाठान्तर के साथ मिलती हैं, और कुछ आधुनिक पंडितों का अनुमान है कि वे ऋग्वेद से भी पुरानी भाषा के नमूने हैं। पर अन्य विद्वानों ने इस धारणा का खण्डन किया है। यही अधिक संभव जान पड़ता है कि ऋग्वेद की ऋचाओं को गान के अनुकूल करने के लिये थोड़ा 'पाठ बदल दिया गया है। यज्ञ में उद्गाता सामवेद के मंत्रों का गान करता है।

आर्चिक में ५८५ ऋचाएं हैं। विंटरनित्स ने लिखा है कि यूरोपियन लोग आजकल कहते हैं कि यह पद अमुक सुर (ट्यून) में गाया जाता है, भारतीय इसके ठीक उलटा कहता है। वह कहता है कि अमुक राग (मेलोडी) या सुर (ट्यून) (जिसे वह सामन् (= साम) कहता है) अमुक पद्य में गाया जाता है। इसी लिये पुराना भारतवासी पद्य को 'साम' की योनि कहता है। योनि अर्थात् उत्पत्तिस्थल। इस प्रकार आर्चिक ५८५ साम-योनियों का संग्रह है। विंटरनित्स ने कहा है* कि इसकी तुलना एक ऐसी गान-पुस्तक से की जा सकती है जिसमें गान के केवल एक ही पद्य लय या सुर की याद दिलाने के लिये संगृहीत होते हैं। दूसरी ओर उत्तरार्चिक ऐसी गान-पुस्तक से तुलनीय हो सकता है जिसमें पूरे गान संगृहीत होते हैं और यह मान लिया गया होता है कि इनके सुर और लय पहले से ही जाने हुए हैं। वैसे आर्चिक में ऐसे अनेक सुर बताए गए हैं जिनका उत्तरार्चिक में कोई उदाहरण नहीं है और उत्तरार्चिक में भी ऐसे गान हैं जिनके लिये आर्चिक में कोई सुर नहीं बताए गए; पर यह स्पष्ट है कि उद्गाता की शिक्षा के लिये पहले आर्चिक की जानकारी आवश्यक है, इसे जानकर ही वह उत्तरार्चिक के स्तोत्रों को ठीक ठीक गा सकता है। उत्तरार्चिक में ४०० गानों का संग्रह है जिनमें वह श्लोक (स्तोत्र) भी सम्मिलित है। जिन्हें उद्गाता गाया करता है। अधिकांश गान तीन तीन ऋचाओं के हैं। आर्चिक में ऋचाएं कुछ तो छंदों के अनुसार और कुछ संबोधित देवताओं के अनुसार सजाई गई हैं, पर उत्तरार्चिक में प्रधान प्रधान यज्ञों के अनुसार सजाई गई हैं।

४

यजुर्वेद अध्वर्युवेद कहलाता है। पतंजलि ने महाभाष्य में बताया है कि इसकी १०१ शाखाएं थीं। यज्ञ में अध्वर्यु लोग यजुर्वेद के मंत्रों का पाठ करते हैं। इस वेद की पांच शाखाएं या पांच विभिन्न पाठ प्राप्त हैं।

१. काठक, अर्थात् कठ लोगों की संहिता।

२. कपिष्ठल-कठ-संहिता कुछ थोड़े से छिन्न और अपूर्ण हस्तलिपियों में ही प्राप्त हुई हैं।

३. मैत्रायणी-संहिता, अर्थात् मैत्रायणीय संप्रदाय की संहिता।

४. तैत्तिरीय संहिता या आपस्तंभ संहिता।

इन चारों में परस्पर बहुत साम्य है। इन्हें कृष्ण यजुर्वेद (काला यजुर्वेद) की शाखा कहते हैं।

५. वाजसनेयी संहिता शुक्ल यजुर्वेद* की संहिता

---

* इंडियन लिटरेचर: प्रथम भाग, पृ०

* यजुर्वेद भाष्य की भूमिका में महीधर ने लिखा है कि व्यास के शिष्य वैशंपायन ने अपने याज्ञवल्क्य आदि शिष्यों को चारों वेद पढ़ाये। एक दिन वैशंपायन क्रुद्ध होकर याज्ञवल्क्य से बोले कि तूने मुझसे जो कुछ पढ़ा है उसे छोड़ दे।

(शेष पृष्ठ ५३३ पर)

कहलाती है। इसका नाम याज्ञवल्क्य वाजसनेय के नाम पर पड़ा है। यही इस शाखा के आदि आचार्य थे। इसकी भी दो शाखाएं प्राप्त हैं, कण्व और माध्यन्दिनीय। दोनों में अन्तर बहुत कम है। माध्यन्दिनीय शाखा पुरानी मानी जाती है, उसी का प्रचार भी अधिक है। आधुनिक पंडितों का विश्वास है कि इसके ४० अध्यायों में अन्तिम १५, (या २२) परवर्ती हैं, प्रथम भाग पुराना।

अथर्ववेद संहिता या (संक्षेप में) अथर्ववेद 'अथर्वन्' लोगों के वेदका नाम है। 'अथर्वन्' शब्द बहुत पुराना है और ऐसा अनुमान किया गया है कि शुरू शुरू में यह अग्नियाजक पुरोहितों के लिये व्यवहृत होता था फिर साधारण 'पुरोहित' अर्थ में ही व्यवहृत होता रहा होगा। अवेस्ता में भी अग्नियाजक पुरोहितों के लिये इस शब्द का व्यवहार है। विंटरनित्स ने लिखा है कि इस शब्द का व्यवहार टोना-टोटका यंत्र-मंत्र करने वाले पुरोहितों के लिये होने लगा था। किसी समय देवता के आवाहक पुरोहित का नाम ही टोना-टोटका, दवा दारू, यंत्र मंत्र भी था आज भी आदिम जातियों के पुरोहितों में यह बात पाई जाती है। 'अथर्वन्' ऐसे ही आदि कालीन पुरोहित रहे होंगे। धीरे धीरे सभी जातियों के देवता के आवाहक (= होता) पुरोहित अलग हो जाते हैं और भूतप्रेत आदि से ओझाई करने वाले, टोना-टोटका वाले, यंत्रमंत्र वाले अलग हो जाते हैं। सभी जातियों में प्रथम श्रेणी के पुरोहित अपने को श्रेष्ठ समझने लगते हैं और समाज में भी उनका भाव बढ़ जाता है और दूसरी श्रेणी के पुरोहित हीन माने जाने लगते हैं। कारण स्पष्ट है। एक उत्तम आत्मा (देवता) के आवाहक होते हैं और दूसरे अधम आत्मा (भूतप्रेत) के। 'अथर्वन्' में दोनों का मिलित पूर्ववर्ती रूप है।

परन्तु पूरा नाम 'अथर्वाङ्गिरसः (अथर्ववेद १०।७।२० अर्थात् अथर्वन् और अंगिरस् लोगों की संहिता है। अथर्वन् में जिस प्रकार के मंत्र-तंत्र का विचार है वे शुभ फलदायक होते हैं और अंगिरस् में मारण-उच्चाटन आदि अमंगल फल-दायक। उदाहरणार्थ 'अथर्वन' में रोगाविमुक्ति के मंत्र है तो अंगिरस् में शत्रुनाशन, मारण आदि के। इसलिये अथर्ववेद के पूरे और पुराने नाम में इन दोनों प्रकार के शुभाशुभ, मंत्र-तंत्रों का संग्रह है। किसी समय इस वेद की नौ शाखाएं प्रसिद्ध थीं। किन्तु इस समय सब नहीं मिलतीं। पिप्पलाद और शौनक ये दो शाखाएं ही प्रसिद्ध हैं। इनमें भी शौनक शाखा ही सुसंपादित है। पूरा वेद २० काण्डों में विभक्त है जिसमें दस आथर्वण और दस आंगिरस काण्ड बताए जाते हैं। शौनक शाखा में ७३१ सूक्त हैं जिनमें ६००० के आसपास सूक्त हैं। पैप्पलाद शाखा में १९ ही काण्ड हैं किन्तु गोपथ ब्राह्मण में २० काण्ड वाले वेद की ही चर्चा है। असल में वीसवें काण्ड के सभी मंत्र ऋग्वेद से गृहीत हैं, इस के अतिरिक्त भी बहुत से मंत्र ऋग्वेद से लिये गए हैं। विद्वानों ने हिसाब लगा कर देखा है कि वीसवें काण्ड के अतिरिक्त बाकी अथर्ववेद का लगभग सातवां हिस्सा ऋग्वेद से लिया गया है। अधिकांश गृहीत मंत्र ऋग्वेद के दशम मंडल से और कुछ प्रथम और उत्कृष्ट मंडल से भी लिये गए हैं। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि अथर्ववेद की

(शेष पृष्ठ ५३२ से पढ़ें)

गुस्से में याज्ञवल्क्य ने भी जो पढ़ा था सब उगल दिया जिसे गुरु की आज्ञा से वैशंपायन-शिष्यों ने तित्तिर बन कर खा लिया। यही उद्वान्त ज्ञान तैत्तिरीय संहिता है। याज्ञवल्क्य ने तपस्या करके सूर्य से शुक्ल यजुर्वेद प्राप्त किया। सूर्य से प्राप्त होने के कारण ही इसका नाम 'शुक्ल' यजुर्वेद पड़ा और इसके विरोध में तैत्तिरीय शाखा का नाम 'कृष्ण' यजुर्वेद पड़ा। आधुनिक पंडितों ने दोनों वेदों के विषय वस्तु पर विचार करके बताया है कि शुक्ल का अर्थ है सुसंपादित, स्पष्ट और साफ। जब कि कृष्ण का अर्थ है, असंपादित, अस्पष्ट और घिचिर पिचिर। कृष्ण यजुर्वेद में ऐसे बहुत से अंश हैं जो ब्राह्मण ग्रंथों के अंश से जान पड़ते हैं। शुक्ल में यह बात नहीं है। वह विशुद्ध मंत्रों की संहिता है। कुछ भारतीय विद्वानों का विश्वास है कि रावणकृत भाष्य इस वेद में मिल गया है इसीलिये इसे कृष्ण या काला कहा गया है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा ही संभवतः पुरानी और प्रामाणिक यजुर्वेद है।

भाषा ऋग्वेद की भाषा की परवर्ती है पर दूसरे विद्वानों ने इस बात को नहीं माना ह। वस्तुतः इस प्रकार की बात का कोई अर्थ नहीं होता; क्यों कि ऋग्वेद की भाषा एक काल की नहीं है और न अथर्ववेद की भाषा ही किसी एक काल की है। बहुत से मंत्र अथर्ववेद में ऐसे हैं जो ऋग्वेद के कई मंत्रों से प्राचीन हैं। बहुत से बाद के भी हो सकते हैं। परन्तु इस पर से कोई साधारण सूत्र नहीं बनाया जा सकता। कुछ लोग अथर्ववेद को आसुरी विद्या मानते हैं और इसे बराबर वेदत्रयी से अलग समझे जाने का यही कारण बताते हैं*।

इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दुओं के पवित्र साहेत्य में पुराने जमाने से ही अथर्ववेद की नीति कुछ विचित्र है। त्रयी विद्या में ऋक्, साम और यजुष् का ही उल्लेख मिलता है। कभी कभी तो साफ मालूम होता है कि अथर्ववेद की जानबूझकर उपेक्षा की गई है। शांखायन गृह्य-सूत्र (१-२४-८) में ब्रह्मचारी के उद्बोध के लिये ऋक्, यजुष्, साम, वाक्योक्त और इतिहास-पुराण तक की आवश्यकता समझी गई है पर अथर्ववेद का नाम नहीं लिया गया। बौद्ध ग्रंथों में भी तीन वेदों की चर्चा हैं। बाद में ऋक् (=पद्य), साम (=गान) और यजुष् (=गद्य) ऐसा अर्थ कर के चारों वेदों में 'त्रयी' का ही विस्तार बताकर सामंजस्य स्थापित कर लिया गया है। कभी कभी ज्ञान, कर्म और उपासना को तीनों विद्या (त्रयी) बता कर चारों वेदों में इन का अन्तर्भाव बता दिया गया है।† ऐसा जान पड़ता है कि अथर्ववेद में कुछ जादू टोने-टोटके आदि आर्येतर उपादान अवश्य हैं जिनके कारण इस वेद पर शुरू से ही थोड़ी उपेक्षा का भाव रह गया है।

६

संहिताओं के बाद का महत्त्वपूर्ण साहित्य ब्राह्मण-ग्रंथ हैं। इनमें यज्ञ विधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। कोई क्रिया क्यों और कैसे की जानी चाहिए, इस पर भी चर्चा है। साधारण पाठक के लिये इन ग्रंथों में विशेष सरसता नहीं है। पर ऐतिहासिक दृष्टि से और सामाजिक तथा धार्मिक विकास के अध्ययन के लिये इन ग्रंथों में विशेष सामग्री मिलती है। विभिन्न वेदों के मुख्य मुख्य ब्राह्मणों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। यहाँ संक्षेप में इन का परिचय दिया जा रहा है।

(१) ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद का ब्राह्मण है। यह इतरा (— शूद्रा, दासी?) के पुत्र महीदास की रचना कहा जाता है। इस में ४० अध्याय हैं जो ८ पंचकों में विभक्त हैं। प्रधानतः इस में सोम और राजसूय यज्ञों का विवरण है। किसी किसी ने इसके अन्तिम दस अध्यायों को पर वर्ती रचना माना हैं, पर इस विषय में किसी को संदेह नहीं कि इस की भाषा अन्य ब्राह्मणों की भाषा से प्राचीन है। कौशीतकी या शांखायन ब्राह्मण भी ऋग्वेद का ही ब्राह्मण है और इस ब्राह्मण से बहुत मिलता भी है। इस में तीस अध्याय हैं। आधुनिक पंडित ऐतरेय को तो एक से अधिक व्यक्तियों की रचना मानते हैं पर कौशीतकी या शांख्यायन को एक व्यक्ति कीं ही रचना समझते हैं।

(२) ताण्ड्य या पंचविंश ब्राह्मण सामवेद का ब्राह्मण है। नाम में ही इसके २५ अध्यायों की सूचना है इसमें एक विशेष समाजशास्त्रीय अध्येताओं के आकर्षण की बात यह है कि व्रात्यों को समाज में ग्रहण करने के लिये यज्ञविधि का उल्लेख है। व्रात्यों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। षड्विंश ब्राह्मण नामक एक दूसरा ब्राह्मण वस्तुतः इस से अभिन्न है। उस में केवल एक अध्याय 'अद्भुत ब्राह्मण' नाम से अधिक है जिसे शकुन बतानेवाला वेदांग-जातीय, ग्रंथ कहा गया है। सामवेद का दूसरा महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण जैमिनीय ब्राह्मण है जो ताण्ड्य से पुराना माना जाता है।

---

* असुर इंडिया, पृ. ५१-७१.

† त्रयी विद्यामवेक्षेत वेदे सूक्तमथाङ्गतः।
ऋक् साम वर्णाक्षरतः यजुषोऽ
थर्वणस्तथा॥
— महा० शान्तिपव १३५

विनियोक्तव्य रूपश्च त्रिविधः
सम्प्रदर्श्यते
ऋक् यजुः साम रूपेण मंत्रो वेद
चतुष्टये॥
— सर्वानुक्रमणी।

धार्मिक और पौराणिक कहानियों के विवरण के अध्ययन की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, पर दुर्भाग्यवश इस की जितनी भी प्रतियाँ मिली हैं सभी बहुत छिन्नभिन्न अवस्था में मिली हैं। पूरे ग्रंथ का सम्पादन अभी तक नहीं हो सका हैं। कुछ छिन्न अंशों का ही संपादन किया जा चुका है।

(२) कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण वस्तुतः तैत्तिरीय संहिता का ही परिशिष्ट या अंश समझा जाना चाहिए। इस में प्रतीकात्मक नरबलि या 'पुरुषमेध' की विधा है और हर प्रकार से यह परवर्ती है। परन्तु शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण सब प्रकार से पूर्ण और सुवद्ध ब्राह्मण ग्रंथ है। इस में सौ अध्याय हैं और इसी लिये शतपथ या सौ रास्ता वाला ग्रंथ कहा गया है। वाजसनेयी संहिता (शुक्ल यजुर्वेद, दे० उपर ६४) की भांति इसके भी दो सांप्रदायिक रूप हैं — काण्व और माध्यन्दिनीय। माध्यं० शाखा के शतपथ के सौ अध्याय १४ काण्डों में विभक्त हैं। प्रथम नौ काण्ड वाजसनेयी संहिता के प्रथम अठराह अध्यायों पर टीका के समान हैं और अन्तिम पांच काण्डों से पुराने माने जाते हैं १४ वें काण्ड के अन्त में याज्ञवल्क्य को इस का रचयिता वताया गया हैं। प्रथम से पंचम काण्ड तक उन को ही एक मात्र प्रामाणिक आचार्य मानने की प्रवृत्ति है, परन्तु षष्ठ से नवम तक, जहां अग्निचयन की विधियां वताई गई हैं, याज्ञवल्क्य का नाम ही नहीं लिखा गया बल्कि शाण्डिल्य नामक आचार्य को प्रमाणिक आचार्य समझा गया है। अन्य काण्डों में विविध संस्कारों और कर्मकाण्डों का विधान है। आगे चलकर ऐसा समझा जाने लगा कि प्रत्येक वेद का एक-न-एक ब्राह्मण अवश्य होना चाहिए। अथर्व वेद का गोपथ ब्राह्मण, इसी मनोवृत्तिका फल है। असल में वह वेदांग श्रेणी का ही ग्रंथ है यह परवर्ती रचना माना जाता है।

७

वेद का एक अंश है मंत्र, दूसरा ब्राह्मण। मुख्यतः मंत्रो का प्रयोग यज्ञ की क्रिया में होता है। यज्ञ किसी-न-किसी देवता के उद्देश्य से किसी-न-किसी द्रव्य के त्याग का नाम है। यज्ञ करानेवाले गृहस्थ को यजमान कहते हैं। यजमान की हित चिन्ता करने वाला पुरोहित कहलाता है। ऋत्विज् ऐसा ही पुरोहित है जो यजमान की हित-साधना के लिये यज्ञ-संपादन के लिये नियुक्त होता है। ऋत्विजों में कोई उच्चस्वर से मंत्र उच्चारण करके देवता का आवाहन करता है (होता); कुछ लोग अनुच्च स्वर से मंत्र उच्चारण करते हुए पुरोडाश प्रभृति याज्ञिक द्रव्यों को तैयार करते हैं और देवता के उद्देश्य से आहुति देते हैं (अध्वर्यु) और कुछ लोग साम मंत्रों का गान करके देवता की स्तुति करते हैं। पद्य ग्रथित मंत्र ऋच् (ऋक्), गद्य ग्रथित यजुष (यजुः) और गेय मंत्र सामन् (साम) कहलाते हैं। भिन्न भिन्न ब्राह्मण ग्रंथों में इन मंत्रों की व्याख्या, विनियोग-विधि, उपयोगिता के कारण आदि की आलोचना है और प्रसंग क्रमसे विविध आख्यान आदि का भी सान्निवेश है। यही आख्यानादि आगे चल कर पुराण-इतिहास के रूप में प्रकट हुए हैं।

होता और उसके सहकर्मी ऋत्विज् मुख्यतः ऋक् मंत्रों के विनियोग से देवता का आह्वान करते हैं, अध्वर्यु और उसके सहकारी यजुर्मंत्रों के प्रयोग से आहुति-दान का कार्य करते हैं और उद्गाता और उसके सहकारी साममंत्रों का गान करते हैं। अग्निष्टोम आदि यज्ञों में इन तीनो की जरूरत होती है। विभिन्न वेदों के ब्राह्मणों में जो अन्तर है वह वस्तुतः उन वेदों से संबद्ध यज्ञ क्रियाओं का भेद है। इस प्रकार ऋग्वेद के ब्राह्मण में होता के कर्तव्य पर विशेष जोर दिया गया है, यजुर्वेद के ब्राह्मणों में अध्वर्यु के और सामवेद के ब्राह्मणों में अध्वर्यु के, और सामवेद के ब्राह्मणो में उद्गाता के।

कुछ यूरोपियन पंडितो ने ब्राह्मणों के रचनाकाल को भारतीय साहित्य का वंध्य युग कहा है, क्योंकि उनके मत से इस समय कोई बड़ी दार्शनिक चिन्ता या साहित्यिक सरसता का जन्म नहीं हुआ था। परन्तु यह गलत विचार है। ब्राह्मणों में उन परवर्ती दर्शनिक विचारों और इतिहास-पुराण के बीजभूत विषयों की चर्चा का परिचय मिलता है जिनसे भारतीय साहित्य इतना गौरवान्वित हुआ है। हम आगे उसकी आलोचना करने जा रहे हैं।

कन्नड साहित्य :

कन्नड महाकवि रन्न और उनका "गदायुद्ध"

[श्री नारायणदत्त]

अपनी भाषा के साहित्य की श्री-वृद्धि करनेवाले किसी महाकवि की एक हज़ारवीं वर्ष गांठ मनाने का सौभाग्य किसी भाषा के बोलनेवालों को शायद ही मिला करता है। यह बात भी नहीं है कि सभी भाषाओं के बोलनेवालों को यह सौभाग्य मिला करता हो। यही कारण है कि आज भारत के कन्नड भाषी लोग उचित अभिमान के साथ महाकवि रन्न का–जिसने आज से दस शताब्दी पूर्व अपनी अनुपम कृतियों से प्राचीन कन्नड साहित्य को समृद्ध बना दिया था–श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहे हैं। आज मैं अपने कन्नड न जाननेवाले 'भारती' के प्रेमी पाठकों को रन्न और उसकी अमरकृति 'गदायुद्ध' (मूल नाम–साहसभीमविजय) का परिचय देने का प्रयास कर रहा हूँ, वह भी एक ऐसी भाषा के द्वारा जो न मेरी अपनी है और न ही मेरे मित्रों की।

महाकवि रन्न, कन्नड के और इतर भारतीय भाषाओं के प्रायः सभी पुराने महाकवियों से इस बात में भिन्न है कि उसने अपने चरित्र और अपनी साहित्यक महिमा का उल्लेख करने में अनास्था नहीं दिखाई। इसी से हम यह जान सके हैं कि सन् ९४९ में मुधवोळ्ल् (वर्तमान मुधौल) नामक स्थान में वह पैदा हुआ था। यह मुधौल एक छोटी सी रियासत थी, जिसका हाल में ही बम्बई प्रान्त में विलयन हुआ है। कवि ने अपनी जन्मतिथि नहीं बताई है। इससे हमें इतना लाभ तो अवश्य ही हुआ कि हमें अपने सुभीते के मुताबिक इस वर्ष के किसी भी दिन उसकी एक हजारवीं वर्षगांठ मनाने की स्वतंत्रता मिल गई है।

पुराने जमाने में कवि और कलाकार राजाओं के आश्रय में रहा करते थे। कवि रन्न भी बारी बारी से कर्नाटक के अनेक दरबारों में आश्रित रहा और अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर जल्दी ही यश और धन का पात्र बना। अन्त में वह चालुक्य राजा आहमवल्ल तैलप और उसके पुत्र सत्याश्रय इरिवबेडंग का राजकवि बना। तैलप ने उसे 'कवि-चक्रवर्त्ती' की स्पृहणीय उपाधि से विभूषित किया। सम्भव है कि कवि का अप्राप्य काव्य 'चक्रेश्वर चरित' तैलप के यशस्वी जीवन से ही सम्बद्ध रहा हो। सत्याश्रय अपने पिता तैलप से अधिक सौभाग्यशाली रहा, क्योंकि रन्न ने उसी को अपना 'गदायुद्ध' समर्पित किया है। यह गदायुद्ध कवि की काव्यप्रतिभा के विमल यश की धवल पताका है।

कवि रन्न का एक और भी काव्य हमें मिलता है। वह है 'अजित पुराण' जो लगभग सन् ९९३ में रचित है। इसमें जैन धर्म के दूसरे तीर्थंकर भगवान् अजितनाथ के जीवन

१९५०

और उपदेशों का सरस वर्णन है। अजित-पुराण में जैनधर्म के अनेक मन्तव्यों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यह बात हमारे लिए रुचिकर होगी कि मैसूर राज्य के श्रवण-बेलगोला नामक स्थानपर जो एक पत्थर से निर्मित जैनदेवता गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति है, उसका बनवानेवाला चामुण्डराय भी हमारे कवि के प्रारम्भिक आश्रयदाताओं में से एक था। प्रतिमा के पास ही एक पत्थर पर कवि रन्न का नाम खुदा हुआ है। बहुत सम्भव है कि कवि रन्न के हस्ताक्षर रहे हों। वहाँ 'श्री कवि रन्न' ये शब्द अंकित हैं। लेख दसवीं सदी के कन्नड अक्षरों में है।

अब कवि रन्न के 'गदायुद्ध' को ले लीजिए। यह उस रन्न की उत्कृष्ट प्रौढ़ रचना है और पुराने कन्नड के सब से उत्कृष्ट काव्यों में से एक है। इसका रचनाकाल ठीक ठीक ज्ञात नहीं है। फिर भी कई कारणों से सन् १००७ का काल मान लिया गया है। जैसा कि नाम से ही ध्वनित होता है, इस काव्य की कथावस्तु भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध है, जो महाभारत के अन्त में समन्त-पञ्चक (कुरुक्षेत्र) में हुआ था। कथानक पुराना है; और महाकाव्यों का कथानक पुराना हुआ ही करता है। रन्न से पहले कन्नड के एक और महाकवि—निःसन्देह सब से बड़े कवि—पम्प ने अपने 'विक्रमार्जुन-विजय' में इस कथावस्तु का उपयोग किया है और उस पर अपनी प्रतिभा की अमिट छाप लगा दी है। समूची कथावस्तु और कहीं कहीं तो अभिव्यञ्जना के लिए भी रन्न पम्प का ऋणी है। लेकिन भाव प्रवणता, शैली की प्राञ्जलता, नाटकीय ओज ये सब कवि रन्न की अपनी विशेषताएँ हैं।

रन्न ने अपने काव्य का नाम 'साहस-भीमविजय' दिया है। इससे ध्वनित होता है कि काव्य का नायक भीम है और उसे दुर्योधन पर विजय प्राप्त कराना ही काव्य का उद्देश्य है। कवि ने महाभारत की परम्परा के विरुद्ध भीम को हस्तिनापुर की गद्दी पर अभिषिक्त किया है। और अपनी काव्य चातुरी के बल पर काव्य के नायक और अपने आश्रयदाता सत्याश्रय में एकत्व का आरोप किया है।

पर साथ ही कवि के हृदय में प्रतिनायक के प्रति गहरी सहानुभूति है। कवि ने दुर्योधन के वीर और उद्धत व्यक्तित्व को करुण (Tragic) रूप दिया है। यही रन्न की भारतीय साहित्य को सब से बड़ी देन है। सभी जानते हैं कि भारत के प्राचीन साहित्य में दुःखान्त काव्यों का अभाव है। महाकवि भास का संस्कृत नाटक 'ऊरुभंग' ही इस का अपवाद है जौर जहाँ तक हमें ज्ञात है वह इस प्रकार का एक मात्र अपवाद है। लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि भारत के कवियों ने दुःखान्त करुण पात्रों (Tragic characters) की कल्पना ही नहीं की। महाभारत में तो दुःखान्त करुण पात्रों का सम्मेलन-सा हो गया है। लेकिन शायद इस बात का श्रेय कन्नड के जैन कवियों को ही है कि उन्होंने दुःखान्त करुण रस के महत्व को अनुभव किया और आन्तरिक समवेदना और कल्पना की प्रचुरता के साथ दुःखान्त करुण नायकों

(Tragic heroes) का सृजन किया है। स्वयं महाकवि पम्प ने इस दिशा में नेतृत्व किया है। पम्प का राधेय कर्ण सही अर्थों में एक करुण नायक है। यही बात किसी हद तक उसके दुर्योधन के बारे में भी लागू होती है। रन्न से एक सदी परवर्ती कवि नागचन्द्र के रावण के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। रन्न का प्रतिनायक दुर्योधन अपनी तेजस्विता, अहंकार और शान से भीम को अभिभूत सा करता हुआ स्वयं काव्य का नायक बन बैठा है।

कथासूत्र यहाँ से प्रारम्भ होता है। दुर्योधन अन्तिम दम तक लड़ने के निश्चय के सिवाय सब कुछ हार चुका है। सब भाइयों, भतीजों और पुत्रों के मारे जाने से और इन सब से बढ़ कर प्यारे मित्र कर्ण के मारे जाने से उस का निश्चय, या यूँ कहिये, हठ और भी दृढ़ होगया है। वह अपनी प्राणरक्षा का ख्याल कर ही कैसे सकता है जब कि उस का प्रिय और उस के लिए प्राणों तक की बाज़ी लगा देने-वाला प्रत्येक व्यक्ति मारा जा चुका है। ख़ास कर कर्ण और दुःशासन तो मानो उस की दो भुजाऐं, दो आँखें ही थीं। उनके बिना संसार उस के लिए सूना है, निःसार है। 'पाण्डवों से सन्धि'........ यह कल्पना भी उस के लिए असह्य है। उस के बूढ़े माता-पिता उसे बहुतेरा समझाते हैं, लेकिन सब बेकार; अन्त में वह इस बात पर राज़ी हो जाता है कि अन्तिम निश्चय करने से पूर्व शरशैया पर लेटे भीष्म के पास एक बार अवश्य ही हो आऊँगा।

लेकिन भीष्म के पास जाने के लिए उसे युद्ध क्षेत्र के बीच में से जाना पड़ता है। उस की नज़र उन वीरों पर पड़ती है, जो उस के लिए जूझे हैं और मारे गए हैं। वहीं वह अर्जुन के वीर पुत्र अभिमन्यु का शव देखता है। अभिमन्यु ने ही उस के सब पुत्रों को मारा है। लेकिन दुर्योधन अब सारी कटुता एकबारगी भुला देता है और विनय और आदर के साथ उस दिवंगत वीर के प्रति सम्मान प्रदर्शित करता है। बस, अब उस की सिर्फ़ यही कामना है कि मुझे अभिमन्यु की तरह ही वीरोचित मौत नसीब हो। अपने पुत्रों और भाइयों के शवों को देखता और विलाप करता हुआ वह कर्ण के शव के पास आ पहुँचता है। मर जाने पर भी कर्ण ऐसा ही बैठा है मानों अभी तीर छोड़ना ही चाहता हो। वे छन्द, जिन में दुर्योधन ने मृत मित्र के प्रति अपना आन्तरिक शोक उँड़ेल दिया है, कन्नड साहित्य के अनमोल मोती समझे जाते हैं। शोक के आवेग में दुर्योधन को यह भी ख्याल नहीं रहा है कि मेरा मित्र अब जीवित नहीं है। वह कह रहा है:— "भैय्या, तुम्हारे बेटे वृषसेन की मृत्यु पर तुम्हें सान्त्वना देने आया हूँ। मेरा बेटा भी मारा गया है, तुम मुझे ढाढस बंधाओ चुप क्यों हो ? तुम्हारे इस मौन का कुछ मतलब नहीं समझ में आता। देखो मैं सामने खड़ा हूँ, मैं दुर्योधन, तुम्हारे इस अभिन्न हृदय मित्र-मुझे देखते क्यों नहीं, मुझ से बोलते क्यों नहीं, मुझे गले क्यों नहीं लगाते, आदेश क्यों नहीं माँगते, मुझे सम्बोधित क्यों नहीं करते 'मेरे प्रभु ! मेरे सरकार !'

पहले जैसे ? यह मान क्यों ? तुम्हारी सूरत मेरी नज़रों के सामने है, तुम्हारी मूरत मेरे हृदय में है, तुम्हारे शब्द अब तक मेरे कानों में गूंज रहे हैं, फिर मैं यह कैसे मान हूँ कि हम तुम हमेशा के लिए बिछुड़ गए हैं।"

इसी लय में दुर्योधन विलाप करता जाता है। आख़िर संजय को—जो उस के साथ था—बलात् उसे वहाँ से हटा कर भीष्म के पास ले जाना पड़ता है।

यह कहना अनावश्यक है कि दुर्योधन की 'स्पिरिट' भीष्म के अनुरोध के आगे भी नहीं झुकती। खीज कर वह कहता है:—'मैं राज्य बचाने के लिए नहीं, मान बचाने के लिए लड़ रहा हूँ। जब पाण्डवों ने अपना दूत भेजकर सिर्फ पांच गाँवों की भीख मांगी थी मैंने इन्कार कर दिया था। अब मैं आधा राज्य माँगने दूत भेजूँगा तो क्या भीम तिरस्कृति के साथ हँस नहीं देगा। नहीं, अब शान्ति असम्भव है" भीष्म की नेक सलाह का मान करते हुए वह सिर्फ एक दिन तक जलस्तम्भन विद्या के बल पर वैशम्पायन सरोवर (कुरुक्षेत्र का प्रसिद्ध तीर्थ) में छिपे रहना और अश्वत्थामा की प्रतीक्षा करना मंजूर कर लेता है।

लेकिन विधाता के मन कुछ और ही था। पाण्डवों ने उस के छिपने के स्थान का पता लगा लिया। पांचों भाई कृष्ण के साथ तालाब के किनारे आ पहुँचे। भीम ने दुर्योधन पर ताने कसे और उसे बाहर निकलने के लिए ललकारा:—"तालाब की मछली की तरह तुम इस झील में छिपते फिर रहे हो। हाय, मारे ठण्ड के कैसे बुरी तरह काँप रहे हो तुम! क्या, यह कलंक नहीं है तुम्हारे नाम पर जिसका लोग इतना बखान करते फिरते हैं? यही है तुम्हारी बहादुरी? लानत है ऐसी वीरता पर! जो मरता है वह फिर अवश्य पैदा होता है। निकलो बाहर और उठाओ अपना शस्त्र। लो, तुम्हारा अंग भंग करने के लिए भयंकर भीमसेन आ पहुंचा है।" ऐसे ही दो चार ताने और कसकर भीम ने सिंह गर्जन किया। यह सुन कर दुर्योधन को इतना क्रोध चढ़ा कि पानी में बैठे रहने पर भी उसका शरीर पसीने से तर हो गया। उसने निश्चय कर लिया कि मैं बाहर निकलूँगा, चाहे इसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो। कायर कहलाना दुर्योधन कभी नहीं सहन कर सकता।

वह तालाब से किस तरह बाहर निकला; इसका वर्णन रन्न ने इस पद में किया है। यह पद कन्नड साहित्य के अत्यंत उत्कृष्ट पदों में गिना जाता है। उसे मूल रूप में नीचे उधृत करना चाहता हूँ:—

रसेयिं कालाग्निरुद्रं पोरेमडुवोलंता
सगेमध्यदिं
साहसगर्वालंकृतं तोट्टने पोरेमट्टेल्लिदं
भीमनेन्दे—
पदेसेयं नोडुत्ते मत्तद्भुत नटनिलालोल
कालाक्षिवोल्
दळिळसे कोपारक्त नेत्रं निजभुजगदेयं
तूगिदं धार्त्तराष्ट्रम् ॥

पद के शब्दों की गूंज ही कन्नड न जाननेवालों को भी उस सन्निवेश की निराली छटा का कुछ भान करा देती है। सरोवर की अथाह जलराशि में से दुर्योधन अचानक

ऐसे निकल पड़ा मानो धरती की दरारों में से कल्पान्त की आग निकली हो। घृणा, तिरस्कार और ललकार से उसका चेहरा तमतमा रहा था।

'कहाँ है भीम' चारों ओर देखते हुए वह गरज उठा। ताण्डव करते हुए प्रलयंकर रुद्र की तीसरी आँख की तरह उसकी आँखें अंगारे बरसा रहीं थीं। वह अपनी भारी भरकम गदा घुमा रहा था।

यह था वह दुर्योधन जिसने भीम की ललकार का उत्तर दिया। युद्ध में उसने बड़ी उदाराशयता का परिचय दिया। भीम उसकी गदा की चोट खाकर गिर गया। गिरे शत्रु पर उसने हाथ नहीं उठाया। लेकिन भीम इतना महान् नहीं था। उसने गदायुद्ध के नियमों के खिलाफ दुर्योधन की जांघ पर प्रहार किया।

दुर्योधन लड़खड़ा कर गिरता है। लेकिन इतने से भीम को सन्तोष कहाँ? वह गिरे हुए राजा के मुकुट को ठोकर मारता है और गर्व के साथ यह दृश्य द्रौपदी को दिखाता है, जो ठीक उसी समय अपना अपमान करने वाले की दुरवस्था देखने के लिए कहीं से आ पहुँचती है। दुर्योधन अपना 'उरुभंग'—जांघ का तोड़ा जाना सहन कर सकता है, लेकिन मानभंग नहीं सह सकता।

अश्वत्थामा बहुत विलम्ब से आया। अपने मरते हुए स्वामी को प्रसन्न करने के लिए प्रतिज्ञा की कि मैं पाचों पाण्डवों के सिर लाकर अर्पण करूँगा, जिनसे ताजा रक्त बह रहा हो। आधी रात के समय वह पाण्डवों के शिबिर में छिप कर प्रवेश करता है और पाण्डवों के भ्रम से द्रौपदी के पांचों पुत्रों के सिर काट लेता है।

सूरज उग रहा है। अश्वत्थामा ने पांचों सिर दुर्योधन के चरणों में रख दिये हैं। दुर्योधन को तो सिर्फ भीम का मस्तक चाहिए था। वह एक ही सिर को टकटकी बांध कर देख रहा है जो भीम का सा जान पड़ता है। वह चीख उठता है:—'अरे यह तो भीम का सिर नहीं है। अगर यह उसी का सिर होता तो इतनी शान्ति और उपेक्षा से मुझे न देखता रहता।' उसकी आँखें लाल हो जातीं हैं त्यौरियां चढ़ जातीं हैं, ओंठ कांपने लगते हैं। यह है भावनाओं का तर्क। कहावत है कि मृत्यु सब बैरों का अन्त कर देती है (मरणान्तानि वैराणि)। लेकिन भीम और दुर्योधन का वैर मृत्यु की सीमा का भी उल्लंघन कर जाता है।

कहानी यहीं समाप्त होती है। कवि को कहानी एक सर्ग तक और बढ़ानी पड़ी है, क्योंकि उसे हस्तिनापुर की गद्दी पर भीम का अभिषेक कराना है। लेकिन पहले सर्गों के दुःखान्त करुण रस से हमारा हृदय व्याप्त हो गया है इसलिए वह अन्तिम सर्ग में तल्लीन नहीं हो पाता। स्वयं कवि का हृदय भी तल्लीन नहीं हो पाया है। उसका हृदय भी तो दुर्योधन की दुःखान्त गाथा से विचलित हो गया है। एक दूसरे ही देश के परवर्त्ती कवि मिल्टन की तरह रन्न ने भी अपने प्रतिनायक को निराली ही शान प्रदान कर दी है। 'साहस भीम विजय' (गदायुद्ध का मूलनाम) नाम के सिवाय सभी दृष्टियों से विशुद्ध दुःखान्त काव्य है।

शास्त्रीय परिभाषा की दृष्टि से गदायुद्ध

श्रव्यकाव्यों की श्रेणी में आता है; फिर भी उसका रचना-प्रकार और उसमें पाया जाने-वाला क्रिया बाहुल्य ठेठ नाटकों का सा है। दिवंगत प्रो. बी. एम्. श्रीकण्ठय्या ने मूल श्रव्यकाव्य में से ही नाटकीय अंशों को लेकर 'गदायुद्ध नाटक' का संग्रह किया है। इसमें मूलकाव्य के शब्दों को ही रखा गया है। रंगमंच पर यह नाटक बहुत सफल रहा है।

कवि रन्न रस का स्वामी है। वह वीर और करुण दोनों के निरूपण में समान रूप में सक्षम है। व्यंग के प्रयोग में वह सिद्ध हस्त है। जहां तक शैली का सम्बन्ध है, उसकी शैली निराली और बेजोड़ है। एक समालोचक ने कहा है कि रन्न लोह लेखनी का धनी है।

रन्न को अपनी सामर्थ्य का पूरा भान था और उसे उस पर भरोसा भी था। तभी तो उसने दावा किया है कि मैंने सरस्वती देवी के रत्नकोष के बन्द कपाट खोल दिये हैं। जिन्होंने कन्नड में उस मूल कविता का रसास्वाद किया है वे जानते हैं कि उसके इस दावे में कितनी सचाई है।

[आल इंडिया रेडियो दिल्ली के सौजन्य से]

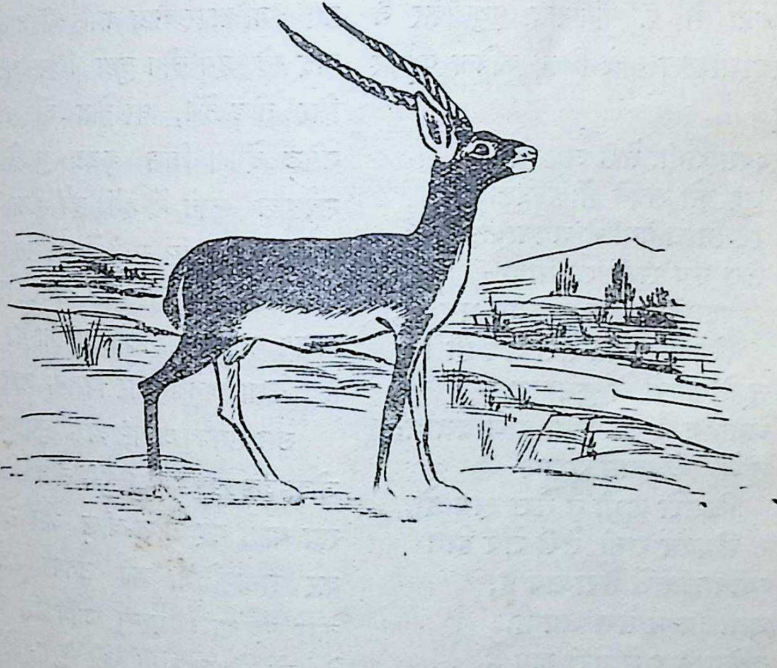

विनोद हास्य :

रिश्वत रानी

[श्री हरिशंकर शर्मा]

कई सप्ताहों की ऊँघा-नीदी और शिथिलता-सुस्ती के पश्चात्, श्रीमती गड़बड़ गोष्ठी का महाधिवेशन आज फिर धूमधाम से हुआ। सभापति का आसन 'हिज़ हैवीनैस' श्री स्वामी गड़बड़ानंद गुणाकर ने ग्रहण किया था। उपस्थिति सन्तोषजनक थी। आज के अधिवेशन में साधारण और असाधारण सभासदों के अतिरिक्त महाशय मटकाराम मिश्र और स्वामी स्वार्थानंद 'सड़सती' भी विशेष दर्शकों की गैलरी में विराजमान थे। सब से प्रथम सभापति जी की आज्ञा से पं. पौंगानन्द पृथुलीकर ने मंगलाचरणस्वरूप नीचे लिखी कविता पढ़कर सुनाई।

रिश्वत रानी, तेरी जय हो!
तुझ को सबने शीश चढाया;
निर्धन धनियों ने अपनाया;
तेरा रूप सभी को भाया–
प्यारी, तुझे न कुछ भी भय हो,
रिश्वत रानी, तेरी जय हो।
तू ने फाँसी से छुडवाए,
अनगिनतों के आशा प्राण बचाए;
तू ने वे-वे काम कराए–
जिससे कभी न तेरा क्षय हो,
रिश्वत रानी, तेरी जय हो।
न्यायालय में तेरा तप है,
धर्मालय में तेरा जप है;
दुनिया-भर में तेरी खप है
चहुँदिशि तेरा पुण्य उदय हो–
रिश्वत रानी तेरी जय हो।

* * *

रिश्वत रानी की स्तुति अभी पूरी भी न हो पाई थी कि सभा में तहलका मच गया! सुधारक-दल बड़े ज़ोर से चिल्ला उठा — 'सभापति जी, यह क्या वाहियात हो रहा है। जिस रिश्वत-राक्षसी ने संसार को तबाह कर दिया; लोगों को नैतिक पतन के गहरे गढ़े में गिरा दिया, आज आपके सभापतित्व और हम लोगों की उपस्थिति में, उसका यशोगान किया जाय! उसकी जय बोली जाय!—प्रशंसा के पुल बाँधे जाँय! आश्चर्य! घोर आश्चर्य!! हम नहीं समझते, यह अनधिकार चेष्टा क्यों की जा रही है। याद रहे, हम लोग दुष्टा रिश्वत-राक्षसी का सिर तोड़ देंगे, घर तोड़ देंगे और धड़ मरोड़ देंगे। जिस कुलटा कुलक्षिणी का सर्वनाश करने में हमें हर्ष होना चाहिए, उसकी आज इस सभा में जय मनाई जा रही है! उसकी क्रूरता को अजर अमर और अक्षय बनाने के लिये प्रार्थना की जा रही है! कैसा अनर्थ और कितना अत्याचार है!

उस समय अल्पसंख्यक सुधारक-दल के जोश-ज्वालामुखी का बुरी तरह विस्फोट हो रहा था। वह चीख़-चीख़ और गरज-गरज कर सभापतिजी को उनका कर्तव्य-बोध करा रहा था। परन्तु अधिकांश लोग ऐसे थे, जो रिश्वत रानी की गुण-गरिमा और महामहिमा बड़े भक्ति-भाव से गाने में निमग्न थे। उन्हें सुधारकों की बातें बहुत बुरी

जाती थीं, सभापतिजी भी खूब ताड़नेवाले थे। उन्होंने मामला बढ़ता देख महाशय मटकारामजी से प्रार्थना की कि वे भी इस विषय पर अपने कुछ विचार प्रकट करें। श्री मटकारामजी मिश्र ज्यों ही बोलने खड़े हुए, त्योंही उनके बेडौल डील को देख कर लोगों की रौद्र भावना हास्य में परिणत हो गयी। आपकी तोंद तम्बू की तरह तनी हुई थी। नाँद-सी नाक कानों से प्रतियोगिता करने को 'अल्टीमेटम' दे चुकी थी। कान एरण्ड पत्रों से समता करने को व्याकुल थे। आपका विशाल भाल वृक्षहीन वंजर भूमि की तरह सपाट था। गाल पखालों की भाँति लटक रहे थे। आँखें तम्बाकू के पिण्डे पर चिपटी हुई दो कौड़ियों की तरह, मुखमण्डल की मरुभूमि में, 'ओइसिस' की तरह टिमटिमा रही थीं। आपका स्वर जी० टी० रेलवे के विशालकाय इंजन की बेसुरी सीटी या खजैले खर की कर्कश रेंकन से शास्त्रार्थ करने को तैयार था। मटकारामजी का ज्ञान निरक्षरता के नगाड़े बजा रहा था और बुद्धि-बल 'इन्सालवेन्सी' का सार्टीफिकेट हासिल कर चुका था। ख़ैर—

महाशय मटकाराम मिश्र बड़ी आन-बान से बोले, अर्थात् आपने अपनी भौंड़ी भाषा में जो अभद्र भाव व्यक्त किये उनका सारांश इस प्रकार है—

भाइयो, आज की सभा में रिश्वत रानी पर, इस प्रकार कोप-कोदण्ड तनते देख कर, हमें बड़ा दुःख हो रहा है। कितनी लज्जा की बात है कि कुछ उद्दण्ड और उच्छृंखल लोग इस अनघा अबला के दाँत तोड़ने और सिर फोड़ने तक को आमादा हैं। क्या कलियुग में देवियों का आदर इसी प्रकार किया जायगा। भरी सभा में एक भद्र महिला के प्रति ऐसे अनुचित और कठोर शब्द सुन कर मुझे बड़ी वेदना हो रही है। महाशयो, आप क्षमा करें, आपकी कर्कश कुचेष्टा पर मुझे रोना आता है, मैं रोना चाहता हूँ, कृपया मुझे थोड़ी देर के लिये रो लेने दीजिए।

पं० मटकाराम मिश्र के पश्चात् स्वामी स्वार्थानन्द सड़सती व्याख्यान-वेदी पर पधारे। आपका वेश विचित्र और आवेश अद्भुत था। स्थूलता शरीर-साम्राज्य ही पर नहीं बुद्धि-वैभव पर भी अपना अटल आधिपत्य स्थापित कर चुकी थी, आपने फरमाया—

भक्तो, आप नहीं जानते, श्रीमती रिश्वत रानी साक्षात् अन्नपूर्णा हैं। इन्होंने वे काम किये हैं, जिन्हें कोई नहीं कर सका। जब सारे साधन समाप्त हो, असफलता की चट्टान से टकराने लगते हैं; जब सारे उद्योग और प्रयत्न बेकारी के कुएँ में पड़ कर हिच हिच हिचकियाँ भरने लगते हैं, तब परम पुण्य-शीला श्रीमती रिश्वत रानी आड़े आती हैं, और शान्त-साधिका अथवा अक्लान्त आराधिका की भाँति सारे काम साध जाती हैं। जिन बड़भागियों ने रिश्वत रानी के दर्शन किये हैं, वे जानते हैं कि ये वरदायिनी देवी किस प्रकार कृपा-वारि की विपुल वर्षा करती हैं, कहीं नकद नारायण के रूप में खनकती-ठनकती हुई पधारती हैं तो कहीं कागजी कार पर सवार होकर नोटों की पोट के रूप में तशरीफ लाती हैं। कहीं हारों और शृंगारों में बिंध-छिद कर दर्शन देती हैं तो

कहीं मालाओं और गजरों की सुगन्धि सूँघती हुई आगे बढ़ती हैं। कहीं फलों और मेवाओं के रूप में नजर आती हैं, तो कहीं घड़ी-छड़ी को सँभाले अन्य-अनन्य रूपों से अपने स्वरूप की बाँकी-झाँकी कराती हैं। प्रीतिभोज में भी इन्हीं की खोज है और 'अभिनन्दन' में भी इन्हीं का वन्दन है। अहा, रिश्वत रानी के असीम उपकारों का कहाँ तक वर्णन किया जाय, इनकी मंजु-मृदुल मूर्ति का कैसे यशोगान हो। इन्होंने कितने ही माई के लालों को, प्राणदण्ड से मुक्त करा कर फाँसी के फन्दे से बचाया और कितने ही को कठोर कारावास के विकराल बन्धनों से छुड़ाया।

जिस सफलता सुन्दरी की प्राप्ति राज-काज और सरकार-दरबार में महीनों तथा वर्षों के पूर्ण प्रयत्न से भी नहीं हो पाती, रिश्वत रानी उसके दिव्य दर्शन और स्पर्शन बात-की-बात में करा देती हैं। अभिप्राय यह कि जिस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तों के हितार्थ, पाप-पुण्य, दोष-अदोष किसी का कुछ विचार नहीं करते, उसी तरह भगवती रिश्वत रानी भी, इन झगड़े-झमेलों में नहीं पड़तीं। उन्हें किसी के गुण-अवगुण देखने का अवकाश ही कहां है। वे तो अपने आर्त भक्तों के उद्धार के लिये सदैव प्राण-पण से तैयार रहती हैं। ऐसी दिव्य देवी का निरादर करना या उनके अति अभद्र भाव दिखाना, भयंकर अपराध और घोर अन्याय है!

स्वामी स्वार्थानन्द 'सड़सती' के बैठते ही, सुधारक-दल से प्रधान वक्ता मिस्टर सुधारक सिंह उठे खड़े हुए और सभापति जी के वार-वार रोकने-टोकने पर भी बोलते गये। आपने बड़ी आवेशमयी वाणी में कहा—

महाशयो, जिस रिश्वत राक्षसी की इतनी महिमा गायी जा रही है, वह देश के लिये कलंक-रूप है। जहाँ उसने सदोष और सापराध व्यक्तियों को फाँसी की टिकटी से बचाने और कारागार से छुड़ाने का अक्षम्य अपराध किया है, वहाँ निर्दोष और निरपराध व्यक्तियों को प्राण दण्ड दिलाने तथा उन्हें जेल में ठेलने की कुत्सित करतूत भी कर दिखाई है। जिधर जाइये उधर ही यह डाकन विकराल मुँह बाए और लाल-लाल दीदे दमकाये अवधूत भुतनी-सी दिखाई देती है। जिस घर में घूँस रहे उसीकी ईंट-ईंट रिश्वत-राँड की राह देखती नज़र आती है परिणाम स्पष्ट है, न ख़ालिस इन्साफ़ सामने आता है, और न सत्य के सच्चे स्वरूप की झलक दिखाई देती है। जिस प्रकार बनावट के बल पर दूध में पानी; घी में घानी और शहद में चाशनी की रंगत आये बिना नहीं रहती, उसी प्रकार रिश्वत-राक्षसी के कारण आज सत्य और न्याय का सुकर स्वरूप भी भौंडा और भयावना बन गया है। देश से, नहीं नहीं, संसार से, इस राक्षसी का जितना जल्दी मुँह काला हो, उतना ही अच्छा है! मिस्टर सुधारक सिंह के बोलते ही विरोधियों की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। अन्धे जोश का ज्वालामुखी लंठता का 'लावा' उगलने लगा। चिल्ल-पौं और शोर-शर की हद न रही। प्रलय काण्ड-सा उपस्थित हो गया। ऐसे समय में सभापति श्री गड़बडानन्द जी

गुणाकर ने बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया। वे अपना सारा साहस समेट कर कहने लगे—

सुनिए साहब, सुनिए! रिश्वत रानी को कोई नष्ट नहीं कर सकता। वास्तव में उन्होंनें संसार के ऊपर ऐसे-ऐसे महान् उपकार किये हैं कि जिनके कारण वे सदैव अजरा-अमरा रहेंगी। राजनीतिक और सामाजिक जगत ही क्यों; धार्मिक और साहित्यिक संसार पर भी किये गये रिश्वत रानी के उपकार उन्हें अनन्त काल तक स्वर्णाक्षरों में अंकित रखेंगे। इस विषय पर मुझे जो कुछ कहना है, पीछे कहूँगा। पहले आप पं. पौंगानन्द पृथुलीकर का व्याख्यान सुनें। वे आपके सामने रिश्वतरानी के सम्बन्ध में अपने मौलिक विचार प्रकट करेंगे।

पं. पृथुलीकर —

महाशयो और महाशयनियो, हम तो धार्मिक जगत् के जीव हैं। सरकार-दरबार या पुलिस-पटवारी से हमारा क्या सम्बन्ध! परन्तु फिर भी हम रिश्वत रानी की अपने ऊपर महती कृपा देखते हैं। इस देवी ने न जाने कितनों को स्वर्ग पहुँचाया, कितनों के पाप काटे; कितनों को वैतरणी में बूड़ने से बचाया और न जाने कितनों को 'धर्म-ध्वजता' का पास पोर्ट देकर अधर्म-धारा पार करने में सहायता दी। सच समझिये, रिश्वत रानी के नष्ट होने से क्या कभी अन्धे, लूले, लँगड़े, काने, कुबड़े, बहरे, बूचे वर भी विधुवदनी वधुओं के कमनीय-कोमल कलेवरों का स्पर्श कर सकेंगे! क्या बूढ़े-खूसटों के अंक-पाश में नवेली अलबेली बालाएं आ सकेंगी। कहने का अभिप्राय यह है कि राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक-क्षेत्र में भी रिश्वत रानी की उज्ज्वल कहानी है। उसे कोई एक क्षण के लिये भी आँख ओझल नहीं कर सकता। रिश्वत रानी हमारी आँखों की पुतली और प्राणों की प्यारी है। यदि आज वह देवी न रहे तो धर्म-धाम धड़ाम से धरणी पर आ पड़े और आसमान से अंगारे बरसने लगें।

पं. पौंगानन्द के भाषण से सारी सभा में सन्नाटा छा गया! केवल एक कोने मे काना फूँसी-सी सुनाई पड़ रही थी। इतने में ही श्रीयुत साहित्य-शिरोमणिजी मंच पर मचकते हुए दिखाई दिये। आप रिश्वत रानी की प्रशस्ति में एक पद्य पढ़कर बोले—

महाशयो, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों की रामेरें तो सबने सुनी-सुनाई, परन्तु साहित्य-क्षेत्र पर रिश्वत रानी का जो असीम उपकार या ज़बर्दस्त एहसान है, उसका किसी ने संकेत तक नहीं किया। सच समझिये, इस देवी की दिव्य कृपा से ही अनेक ऐतिहासिक तथ्यों ने दकियानूसीपन से मुँह मोड़कर अपना अभिनव स्वरूप धारण किया है। इस देवी के विमल वरदान से ही कितने ही निरक्षर महाचार्यों के नगण्य नाम ग्रन्थकारों की गरिमामयी मंजुमाला में ग्रंथित हो गये,—पत्रकारिता के पुण्य प्रभाव से वे ख्याति के क्षेत्र में कबड्डी भरने लगे। रीडर रमणियों को कोर्स का फ़ोर्स दिलाने या पाठ्यक्रम की कल्लोलिनी में निमज्जन कराने का सारा नहीं तो अधिकांश श्रेय रिश्वत रानी को ही है। इस देवी के अमोघ औदार्य से न जाने कितने ग्रन्थों ने प्रक्षिप्त-

पीयूष का पान किया । न जाने कितने लेखक अपनी भ्रम भ्रान्ति दूर कर रिश्वतरानी की चरण-शरण में आये और उसके अनन्य भक्त कहलाये । ज़रा कोर्स साहित्य के व्यवसाय–बहादुरों से पूछिये कि वे रिश्वत-रानी की अपार अनुकम्पा का अटल आश्रय पाकर पूँजी प्रेयसी का पाणिग्रहण करने में किस प्रकार अपना परम सौभाग्य समझते हैं । सम्पदा देवी रिश्वतरानी की रवानी से संस्करणों की कार पर सवार होकर प्रकाशकों के प्रासादों में छम-छम नृत्य करती दिखाई देती हैं । सचमुच अँधेरे घर का उजाला आर उजाले घर की दिव्य दीप्ति या समुज्ज्वल ज्योति यही है ।

अहा, चुनाव-संग्राम में तो रिश्वतरानी का रम्य रूप देखते ही बनता है । वोट भगवान् की भक्ति या शक्ति प्राप्त करने के लिये न जाने कितने रजत-खण्ड रिश्वतरानी के चारु चरणों में अर्पित कर दिये जाते हैं । व्यापारिक जगत् में देंखिये तो कंट्रोल का केसरी, चोरबाज़ारी का जामा या ब्लॅक मारकेटिंग का 'वक़तर' पहन कर निर्भयता पूर्वक दिन दहाड़े दहाड़ रहा है । परमिट-प्रभुता का पवित्र प्रसाद पाकर न जाने कितने भावुक भक्त धन की ढेरी पर फेरी लगा रहे हैं । मिस मुनाफ़ाख़ोरी की 'ख़न्दा पेशानी' ने न जाने कितने कंगालों को बाजलाल और मालामाल बना दिया । अगर कभी किसी पर कोई संकट आया तो रिश्वतरानी ने अपने करुणा-करों से उसे आश्रय दिया–प्रश्रय दिया और अपने अखण्ड एवं तीव्र तेज से विपत्ति-बादली छिन्न भिन्न कर दम लिया । ऐसी हैं ये परोपकार परायणा रम्य रिश्त रानी और ऐसे हैं इनके पुण्य प्रसूत कार्य-कलाप । जो हो, हम तो यहाँ देखते हैं कि जो लोग रिश्वतरानी की उपासना करते, उसे अपनाते, मनाते और रिझाते हैं, वे आनन्द से रहते हैं । परन्तु जिनके शुष्क और शून्य हृदयाकाश में इस देवी की भक्ति-भावना का अलैकिक आलोक नहीं होता, वे परम रंक की भाँति बुरी तरह जविन व्यतीत करते और भूखों मरते हैं ।

श्रीयुत साहित्य-शिरोमणिजी की शैली मनोरंजक और कवित्वमयी थी । उसका उपस्थित जनता पर खूब प्रभाव पड़ा । चारों ओर से 'वाह-वाह' और 'धन्य-धन्य' की ध्वनि होने लगी । ऐसा अनाचार देख सुधारक-दल के दुःख का ठिकाना न रहा । न्याय पर अन्याय, सत्याचार पर अत्याचार और सचाई पर झुठाई का बोलबाला होता देख सुधारक-शिरोमाणि जी से न रहा गया । वे कड़क कर बोले–आप लोग कितना ही बल लगाइये; कैसी ही चाल चलायें, कुछ भी कीजिए, परन्तु अब रिश्वतरानी का नाश हुए बिना न रहेगा । रिश्वत के साथ उसकी सगी-सहेली सिफ़ारिश, खुशामद, रियायत और हिमायत का भी मटियामेट कर दिया जायगा । आप लोगों का कथन स्वार्थपूर्ण है, उसमें खुदग़र्ज़ी की खल भरी हुई है । भले ही यह देश पतन के गहरे गर्त में गिरे, आप को क्या? आप हों, और आप का स्वार्थ ! बस और क्या चाहि......"

श्री सुधारक सिंह की तीखी वक्तृता

सब को बहुत बुरी लगी। सभा में भयंकर और मच गया। अव्यवस्था का ठिकाना न रहा। हाथापाई और मारधाड़ तक की नौबत आगयी। ऐसा गोलमाल तथा गड़बड़ी देख सभापति गड़बड़ानन्द जी अपनी जान बचाकर लम्बे बने और इस प्रकार "गड़बड़ गोष्ठी" का यह अधिवेशन बीच में ही भंग कर देना पड़ा।

पहेली !

[श्री. भवानीप्रसाद तिवारी]

एक पहेली बूझो री, आए दिन बीत चले
सलज-सनेह-सजल दृग भीतर प्यासे कीर पले

रूप, जिसे दिन में दिनकर ने अपने करों उभारा
निशि में दीपक ने अपने सिर ज्योति किरीट सँवारा
तब अरूप अँधियारा बोला,—मैं हूँ दीप-तले
एक पहेली बूझो री, आए दिन बीत चले

मींड़ बीन की सुनूँ कि तब अपने स्वर कैसे गाऊँ !
मेरे स्वर तुम बसो कि मैं तेरी धुन में खो जाऊँ ?
इस मेरी–तेरी सुलझा–उलझी ने गीत छले
एक पहेली बूझो री, आए दिन बीत चले

अपनी बहिया बही चली अपनी पतवार सँभारे
डूबन-डरी भँवर संकुल में खेवन हार पुकारे
पीर हँसी आनन्द मगन जब सुख के तीर खले
एक पहेली बूझो री, आए दिन बीत चले

कबीर का समन्वयवाद

[श्री परशुराम चतुर्वेदी]

समन्वय से तात्पर्य दो वा उससे अधिक विभिन्न बातों के बीच एक ऐसी समानता का प्रतिपादन करना होता है, जिसके कारण उनमें पारस्परिक विरोध का अभाव सूचित होने लगे और वास्तविक एकता भी सिद्ध की जा सके। कबीर साहब के समय विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतवर्ष में इस्लाम एवं हिन्दू धर्म के बीच संघर्ष चल रहा था। बाहर से आए हुए मुसलमान इस देश में प्रचलित हिन्दू धर्म के स्थान पर अपना 'मज़हब' कायम करना चाहते थे और यहाँ के निवासियों पर अपने मूल देशों की संस्कृति लादना चाहते थे। इनमें सफलता प्राप्त करने के लिए वे बल का प्रयोग तक करते थे। दूसरी ओर हिन्दू जाति के लोग मुसलमानों के उक्त प्रयत्नों को उनका बलात्कार तथा अत्याचार समझते थे और उनके धार्मिक विश्वासों को 'परधर्म' की संज्ञा देते हुए उन्हें किसी प्रकार भी स्वीकार करने को उद्यत न होते थे, बल्कि उनका घोर विरोध करते थे। दोनों जातियों के मतों में सैद्धान्तिक भेद लक्षित होता था और दोनों के बाह्याचारों तक में आकाश-पाताल का अन्तर दीखता था। मुसलमानों का कथन था कि हमारा मत ही एक मात्र सच्चा धर्म है और उसके अनुयायियों द्वारा इसका प्रचार होना आवश्यक है। हिन्दुओं की धारणा थी कि हमारा धर्म सनातन है और इसका परित्याग करना किसी भी प्रकार श्रेयस्कर नहीं होगा।

उक्त प्रकार का धार्मिक मतभेद केवल हिन्दुओं तथा मुसलमानों की मूल विचार-धाराओं तक ही सीमित न था। उन दोनों के भीतर भिन्न प्रकार के सम्प्रदायों एवं 'फिरकों' की भी प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं और एक वृक्ष की अनेक शाखाएँ बढ़ती जा रही थीं। हिन्दुओं में शैव, वैष्णव, शाक्त जैसे कई सम्प्रदाय भिन्न देवताओं को इष्ट मानकर बन गए थे। योगी, यती, संन्यासी जैसे अनेक वेशधारियों के वर्ग अपने अपने ढंग से प्रचार कर रहे थे और ऐसे पंथ भी अनेक वर्गों में विभक्त होते जा रहे थे। इन सभी के बीच ऐसी खाइयाँ बनती जा रही थीं, जिनका दिनों दिन चौड़ी होती जाना अनिवार्य-सा प्रतीत होता था। इसी प्रकार मुसलमानों के भीतर भी कई प्रकार के पारस्परिक भेद बढ़ते जा रहे थे। उनके धर्म-प्रचारक पीरों, औलियों आदि का देहान्त होते ही उनके सम्मान में मेले और उत्सव होने लगते और उनके नाम पर विभिन्न 'फिरकों' की परम्परा चल पड़ती। उनकी भिन्न भिन्न कब्रों पर उनके अनुयायी पुष्प तथा दीप चढ़ाने लगते और एक वर्ग का लगाव दूसरे से क्रमशः कम होता चला जाता। ऐसे मतों के बीच वैसी कटुता का बर्ताव न

होने पर भी धर्मान्धता की प्रवृत्ति का बढ़ता जाना अवश्यम्भावी था। यह किसी प्रकार भी हितकर न था और न इसके कारण देश में कभी शान्ति तथा एकता का कोई स्वप्न भी देख सकता था।

उस समय की उपर्युक्त धार्मिक मनोवृत्ति का प्रभाव लोगों के सामाजिक संगठन के विभिन्न पहलुओं पर भी स्पष्ट दीख पड़ता था। हिन्दुओं में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नामक चार जातियाँ प्रधान थीं। किन्तु कालान्तर में इनके भीतर भी कई उपभेद उत्पन्न हो गए थे और प्रत्येक दूसरे को अपने से नितान्त भिन्न मानने लगा था। इतना ही नहीं ऐसी जातियों तथा उपजातियों के अन्तर्गत भेद-भाव की मात्रा यहाँ तक बढ़ गई थी क्रि एक दूसरे से कुछ भी सम्पर्क न रखना चाहता था और बहुत सी उपजातियों को उनमें से कई ने स्पर्श करने तक से इन्कार कर दिया था। जिस प्रकार धार्मिक विभिन्नता के नाम पर एक हिन्दू किसी विधर्मी के साथ संसर्ग रखना पाप समझता था उसी प्रकार वह अपनी जातिगत मर्यादा के आधार पर ऐसी उपजातियों को अस्पृश्य वा अछूत मानने लगा था। मुसलमानों के भीतर भी शेख सैयद, मोमिन पठान आदि नाम के वर्ग चल निकले थे जो परस्पर एक दूसरे को भिन्न समझते थे। यद्यपि इनके बीच पृथकत्व का भाव अस्पृश्यता तक न पहुँच सका था फिर भी, एक के लिये दूसरे को निम्नश्रेणी का समझ कर उसके प्रति अश्रद्धा प्रदर्शित करना एक साधारण-सी बात थी।

आश्चर्य तो यह है कि उक्त भेद भावों तथा विशेषकर उनसे उत्पन्न होने वाले विविध वैमनस्यों पर कोई पूरी गंभीरता के साथ विचार नहीं कर रहा था और न उन्हें दूर करने का साहस ही करता था। प्रत्येक दूसरे की बातों को हेय तथा अपने मन्तव्यों को ही श्रेयस्कर सिद्ध करने में लगा था। ग्रन्थों की रचना होती जा रही थी, उन पर भाष्य एवं टीकाएं रची जा रही थीं; और साधारण से साधारण बातों का भी सूक्ष्म विवेचन होने लगा था। प्रत्येक वर्ग की चाहे वह धार्मिक हो या सामाजिक दूसरे से केवल इसी बात में होड़ थी कि उसका पृथक् अस्तित्व युक्तिसंगत समझा जाना चाहिए। तर्क एवं परम्परागत प्रमाणों के भी आधार पर उसीके अनुयायी मूल दैवी शक्तियों द्वारा लाभान्वित होने के सर्वथा अधिकारी भी माने जा सकते हैं। ऐसे वर्गों का प्रचार करने वालों की रचनाओं की वृद्धि इतनी शीघ्रता के साथ हो रही थी कि सारे देश में वाग्जाल का प्रपंच फैलता जा रहा था। उसे निकट से देखने तथा उसके आवरण की आड़ में पड़े गूढ़ सत्य को पहचानने की समस्या अत्यन्त कठिन हो रही थी। सभी अपनी अपनी दौड़ में लगे थे, अन्धकार नित्यशः घना होता जा रहा था और एक का दूसरे के साथ टकराते रहना अनिवार्य था।

कबीर साहब को, जहाँ तक पता है, कोई दार्शनिक शिक्षा नहीं मिली थी। उन्हें किसी धार्मिक महापुरुष के यहाँ से कोई सुव्यवस्थित सुझाव भी उपलब्ध न था, जिसे

आधार मानकर वे उक्त बातों पर विचार कर सकते! प्रसिद्ध है कि वे निरक्षर भी थे। इस कारण, उनके लिये किन्हीं मान्य ग्रन्थों का अध्ययन कर उसपर मनन एवं चिन्तन कर के कुछ निश्चय करना भी कठिन ही था। अनुमान किया जाता है कि अपने समय की परिस्थिति के सम्यक् निरीक्षण तथा पहचान की उनमें अच्छी योग्यता थी और उससे निकाले गए निष्कर्षों को सत्संग एवं आत्म-चिन्तन की कसौटियों पर परखने में भी वे अत्यन्त कुशल थे। उन्होंने अपने समक्ष की बातों को देखकर निर्धारित किया कि—

जो अमासो आनवै, कल्या सो
कुमिलाइ।
जो चिणियां सो ढहि पडै, जो
आया सो जाइ॥

अर्थात् संसार की सभी वस्तुएँ अस्थिर एवं नाशमान हैं, इनमें स्थायित्व नहीं है और इसी कारण इनमें से किसी को भी सत्य मानकर उसे महत्व देना उचित नहीं। सत्य वही हो सकता है जो शाश्वत एवं चिरन्तन हो और जो सदा अद्वैत तथा एक समान अर्थात् केवल एक मात्र एवं अधिकृत भी रहता हो। इस दृष्टि से विचार करने पर किसी भी सच्चे धर्म का इष्ट कोई नाशमान् व्यक्ति वा 'काया काची मन अथिर' वाला साकार पुरुष नहीं हो सकता। उस एक मात्र सत्य से अनेक की अल्पकालीन वा दीर्घकालीन सृष्टि संभव है, किन्तु मूलतत्त्व तो निरन्तर ज्यों-का-त्यों ही रहेगा।

कबीर साहब ने उक्त सत्य के स्वरूप का निर्णय नहीं किया, उसे कभी निर्गुण कभी सगुणवत् और अधिकतर निर्गुण एवं सगुण दोनों से 'परे' का 'परम पद' कह कर ही व्यक्त किया। किन्तु फिर भी वे उसे व्यक्तित्व प्रदान करने से नहीं चूके और एक कोरे सगुणवादी भक्त की भाँति उसे 'बाप', 'जननी', 'साहब' वा 'पीव' तक कहते रह गए। उनके इन परस्पर विरोधी दो विभिन्न विचारों को देख कर लोग बहुधा टीका-टिप्पणी किया करते हैं और उन्हें दोषी भी ठहराते हैं; परन्तु इस प्रकार का मत सहसा प्रकट कर देना भी किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता। कबीर साहब ने सत्य को जहाँ 'अगम', 'अगोचर', 'अविगत' जैसे शब्दों द्वारा निर्दिष्ट किया है वहाँ उनका दृष्टिकोण एक प्रकार से दार्शनिक का है। किन्तु जहाँ जहाँ पर उन्होंने इसके साथ अपने किसी सम्बन्ध विशेष की ओर संकेत किया है वहाँ वहाँ पर वे धार्मिक स्तर से बोलते हैं। सत्य के प्रति वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि 'जस तूं है तस कोउ न जान, लोग कहैं सब आनहि आन'। परन्तु, फिर भी अपने निकट उपदेशार्थ पहुँचने वालों से वे यह कहा करते हैं कि 'हरि जैसा तैसा रहै, तू हरषि हरषि गुण गाय'। उन्होंने इसी कारण अपने सम्बन्ध में भी यही कहा है कि 'सत्गुरू' ने मुझे तत्व कहा, किन्तु मैंने उसे अपने 'अनुभव के विस्तार' के सीमानुसार ही ग्रहण किया और उसी के द्वारा मेरा कल्याण हो सका।

इस प्रकार कबीर साहब के 'समन्वयवाद' की आधारशिला परमतत्व के केवल, नित्य तथा एक रस होने, उस पर आश्रित बहु-

रूपिणी सृष्टि के अस्थिर होने और उसके विविध अंगों के, उनकी मौलिक एकता के कारण एक समान सिद्ध होने पर स्थित है। इसी कारण उन्हें अधिक तर्क वितर्क करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इष्टदेव के विभिन्न नामों के विषय में वे कहते हैं—

जोगी गोरख गोरख करै,
हिन्दू राम नाम उचारै।
मुसलमान कहै एक खुदाइ,
कबीर के स्वामी घटि घटि रह्यो समाइ॥

अथवा

हमारे राम रहीम करीमां केसो,
अलह राम सति सोई।

अर्थात, हमें भिन्न भिन्न नामों के फेर में न पड़कर उस अद्वितीय परमतत्व को स्वीकार करना चाहिए जो सबके मूल में स्थित सत्य स्वरूप है और जिसे प्रकट करने के ही प्रयत्न में लोग बहुधा विविध नामों के प्रयोग कर डालते हैं। राम, रहीम, करीम, अलह, खुदा वा गोरख जैसे नामों के आधार पर उसे व्यक्ति विशेष के रूप में समझ लेने की आवश्यकता नहीं है। मूलतः वही एक सत्य है जो सर्वत्र व्याप्त हो रहा है और जिसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। विरोध का तो कहीं कोई कारण ही नहीं है। उसके वास्तविक रहस्य को न समझकर लोग एक दूसरे को विरोधी समझ बैठते हैं और यही भ्रम सारे झगड़ों की जड़ है।

इसी प्रकार सामाजिक क्षेत्र में दीख पड़नेवाले पृथक्त्व की भी दशा है। भिन्न शरीरों को धारण करने तथा वंशानुगत क्रमानुसार किसी जाति का परिवार विशेष में जन्म ग्रहण करने के कारण लोग एक दूसरे को अपने से भिन्न मान लेते हैं। ब्राह्मण के घर ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होने मात्र से ही कुछ लोग अपने को उच्चकोटि का व्यक्ति मान बैठते हैं। एक अन्य व्यक्ति जो किसी शूद्र से उत्पन्न हुआ हो अथवा अन्त्यज घर का बालक हो उसे बिना और कारणों के भी नीच कह देते हैं। परन्तु क्या यह ठीक है? क्या उस एक मात्र सत्य के प्राकृतिक नियमों पर विचार करने से ऐसे दो व्यक्तियों में कोई मौलिक अन्तर दीख पड़ता है? उसके मूल स्रोत एवं शारीरिक रचना के नियमों में तो वैसी कोई भिन्नता नहीं लक्षित होती। वे कहते हैं—

जो पै करत वरण विचारै,
तौ जनमत तीनि डांडिकिन सारै॥
उतपति कहाँ भया मैं आया,
जोति धरी अरु लागी माया॥
नहीं कोउ ऊँचा नहीं कोउ नीचा,
जाको प्यार ताही का सींचा॥
जेतूं बांमन बंमनी जाया,
तौ आन बाट है काहे न आया॥
जे तूं तुरक तुरकनी जाया,
तौ भीतरि खतना क्यूं न कराया॥
कहैं कबीर मधिम नहीं कोई,
सो मधिम जा मुखी राम न होई॥

अथवा

हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध, तुम्ह कैसे बाम्हन हम कैसे सूद, छोति छोति करना तुम्ह ही जाए, तौ ग्रमवासे कहें कौ आए॥ आदि—सभी मनुष्य एक ही मानव समाज के अंग हैं। एक विशाल वृक्ष की विभिन्न शाखाओं के समान हैं, सब के मूल की ओर दृष्टि डालने पर उन में कोई अन्तर नहीं दीखता और न इसी कारण, उसके

एक दूसरे को पृथक् का ऊँच-नीच समझने का कोई आधार ही है।

कबीर साहब के साधना सम्बन्धी सिद्धान्तों के अनुसार भी पारस्परिक मत भेद की गुंजायश बहुत कम लक्षित होती है। उनका अपना मत है कि उस एक मात्र सत्य वा अनिर्वचनीय तत्व का परिचय पाकर हमें उसके साथ अपनी एकता वा आत्मीयता का अनुभव करना चाहिए। उससे अपने को किसी प्रकार भी भिन्न न मानकर उसके साथ तदाकारता प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। इसी प्रकार अपने को 'जल में जल' के समान मिल गया हुआ समझते हुए सब कुछ सहज भाव के साथ करते चलना चाहिए। कबीर साहब ने इस आत्मानुभूति को 'सोधी' वा आत्मशुद्धि का नाम दिया है आर इसके अनन्तर एक प्रकार का काया-पलट हो जाने के कारण नवीन स्थिति को पुनर्जन्म वा अन्य जीवन धारण करने का महत्त्व प्रदान किया है। ऐसी दशा को निरन्तर एक रस बनाये रखने के लिए उन्होंने नामस्मरण की साधना को अपनाना बहुत उपयोगी माना है। नामस्मरण द्वारा हमारी 'सुरति' का सम्बन्ध उस नामी के साथ सदा जुटा रहा करता है। जो हमारे शरीर के भीतर एक अपूर्व शब्द के रूप में उठा करता है। इन दोनों का ताना सदा अटूट बने रहने से उस तत्व की कभी विस्मृति नहीं होती और हम बराबर सजग एवं सचेत रहकर अपना काम करते हैं। इस आभ्यन्तरिक साधना को अधिक महत्व देने का कारण इसका हमारे ही भीतर सुलभ हो जाना है। इसके लिए कोई बाह्याचार अपेक्षित नहीं और न किसी प्रकार की सामग्री की ही इसमें आवश्यकता है। पारस्परिक विरोध का अवसर बाह्य साधनों का उपकरणों के विषय में मतभेद उठ जाने पर ही संभव है। ऐसा यदि न हो सके तो अन्य साधनाएँ भी बुरी नहीं। अपने प्रधान उद्देश्य की पूर्ति जिस किसी भी साधना से हो कुछ भी हानि नहीं। अपना हृदय शुद्ध तथा सचा होना चाहिए।

अतएव कबीर का 'समन्वयवाद' न तो किसी प्रकार का 'समझौता' है और न भिन्नवादों से चुनी गई 'अच्छाइयों' का समुच्चय मात्र है, जिसमें किसी को आपत्ति करने का कोई अवसर न मिल सके। यह वास्तव में कोई 'वाद' भी नहीं। यह एक प्रकार का सुझाव है जिस पर स्वयं कबीर-साहब ने अमल किया है और जिसपर निरपेक्ष होकर विचार करने को सभी स्वतंत्र हैं।

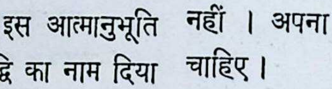

मानवता के भक्तिवीर को श्रद्धांजलि!

[श्री आचार्य दादा धर्माधिकारी]

'महाराष्ट्र में श्रद्धा की कमी है' यह बात जब हमारे राष्ट्रपिता ने कही तब विनोबा जैसे उनके निकटतम अंतेवासी ने बहुत विनयपूर्वक लिखा, जो महाराष्ट्र की अपार और अविचलित श्रद्धा का साक्षात्कार करना चाहता है, वह भक्ति में बेहोश होकर पंढरपुर के पथ पर बढ़ते हुए वारकरियों (तीर्थ-यात्रियों) के दलों को देखे। पंढरपुर-विठ्ठल की नगरी महाराष्ट्र की ईश्वर निष्ठा का तथा व्यापक श्रद्धा का पुण्यक्षेत्र मानी गई है। पंढरपुर के वारकरियों में जिस महाराष्ट्र के दर्शन होते हैं वह महाराष्ट्र राजदरबारों में अपनी नीतिकुशलता से प्रतिपक्षियों की बुद्धि को चकित कर देने वाले नीति-निपुण राजनीतिज्ञों के महाराष्ट्र से कहीं भिन्न है। अपनी शूरता से तथा गुरिल्ला रणनीति की कुशलता से दुश्मन के छक्के छुड़ा देने वाले रणवीर मराठों का महाराष्ट्र इन दोनों महाराष्ट्रों से बिलकुल अलग है। रणक्षेत्र पर महाराष्ट्र की शूरता चमकती थी। राजदरबारों में महाराष्ट्र की नीति-निपुणता की झलक दिखाई देती थी, और पंढरपुर में महाराष्ट्र के सम्पन्न हृदय की दीप्ति दमकती थी। गांधीयुग में जिन्होंने पंढरपुर की श्रद्धा को तथा समर कर्मी की शूरता को महाराष्ट्र के राजनैतिक आंदोलन में अपनी अक्षय निष्ठा के और अतुल धैर्य-बल से समाविष्ट किया है ऐसे कर्मठ महाराष्ट्रियों में साने गुरुजी का स्थान काफी ऊँचा है। बापू के कथन का यह अभिप्राय नहीं था कि महाराष्ट्र में श्रद्धा का ऐकांतिक अभाव है। महाराष्ट्र की श्रद्धा उसके राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिबिम्बित नहीं हुई यही उनके कहने का तात्पर्य था। इस अभाव की पूर्ति करने की पूरी पूरी कोशिश साने गुरुजी ने अपनी अविरत साधना द्वारा की।

बुद्धि श्रेष्ठ या भावना? हृदय श्रेष्ठ या मस्तिष्क? इस भाँति के निरर्थक वाद वाद-विवाद-प्रिय तर्कवीरों नें कई बार निष्कारण उपस्थित किये हैं। एक ने कहा, "भावना बुद्धि की दासी है।" दूसरा कहने लगा "बुद्धि के ज़रिये मनुष्य खुद बोलता है। हृदय के द्वारा अन्तर्यामी भगवान् बोलता है। बुद्धि परिमित है, भावना अपरिमित है, अनंत है।" तर्कशास्त्रियों के ये वाद उन्हीं को मुबारक हों। भावना-सम्पन्न जीवन का अपार वैभव बुद्धिमानों को साने गुरुजी ने दिखलाया। निरे विद्या-रत जनों को तथा शुष्क विज्ञान-वादियों को गुरुजी ने हृदय निष्ठा की दीक्षा दी। विद्यापति की पुरुष परीक्षा में दानवीर, युद्धवीर, आदि नाना प्रकार के वीरों की कथाएँ हैं। लेकिन 'भक्तिवीर' की कथा उस कथा-संग्रह में नहीं है। ईश्वर भक्ति के आवेश में देहभान को भुलाकर

अद्भुत तथा कठिनतर कार्य करने वाले 'भक्तिवीर' पहिले हो चुके हैं। इन भक्तों की अद्भुत-रम्य कथाएँ हम भक्ति-विजय में पढ़ते हैं। गुरुजी 'भक्तिवीर' थे। किन्तु वे मानव-भक्त थे। अबू-बिन-आदम ने देव-दूत से बहुत विनयपूर्वक कहा, हे दूत, यदि तुम ईश्वर भक्तों की नामावलि में मेरा नाम दाखिल नहीं करा सकते तो न सहीं, किन्तु मनुष्य पर प्रेम करने वालों में मेरा नाम अवश्य लिखो। वह मानव-भक्त अबू ईश्वर भक्तों मे भी अग्रगण्य माना गया। ली हंट कहता है उसकी बिरादरी (जमात) बढ़े। साने गुरुजी आधुनिक महाराष्ट्र में अबू की जमात के अनन्य प्रतिनिधि हैं।

एक लेखक महोदय ने रानडे, चिपळूणकर, तिळक, आगरकर, और गोखले आदि पाँच सज्जनों के संक्षिप्त चरित्रों की पुस्तक का 'महाराष्ट्राचे पंचप्राण' (महाराष्ट्र के पंचप्राण) नामकरण किया है। वह कहाँतक यथार्थ है यह मतभेद का विषय है। किन्तु साने गुरुजी के सम्बन्ध में कोई पुस्तक लिखी जाय तो उसे 'महाराष्ट्र का हृदय' यही नाम देना ठीक होगा। साने गुरुजी ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का विनियोग महाराष्ट्रीय युवक-युवतियों के जीवन में हृदय-निष्ठा जगाने के काम में किया। उसमें उन्होंने कोई कसर नहीं रखी। कुछ उठा नहीं रखा। मुक्त हस्त से जीवन लुटा दिया। उन्होंने एकाग्र चित्त होकर अपनी अदम्य क्रियाशीलता उसी काम में लगा दी। उन्होंने कृति एवं उक्ति से अविरत साधना करके महाराष्ट्र की प्रतिभा में नवीनता पैदा की। 'दास-बोध' के रचयिता श्री. समर्थ रामदास ने 'आनंदवन भुवन' का स्वप्न देखा। साने गुरुजी ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी कल्पना से महाराष्ट्र को कल्पवृक्ष का नंदनवन बनाने का घोर प्रयास किया। महाराष्ट्र के जिन्दादिल युवक युवतीयाँ उनके कल्पवृक्ष के अंकुर थे।

गुरुजी ने विवाह नहीं किया। गृहस्थी नहीं बसायी। किन्तु वे एकांतवासी, मानव-विमुख या विरक्त पुरुष नहीं थे। उनके जीवन में जितनी भावोत्कटता थी उतनी ही मधुरता थी। जितनी शुचिता थी उतनी ही रसिकता। इसी लिए उनका साहित्य औरों की अपेक्षा बिलकुल भिन्न है। गुरुजी ने कविताएँ लिखीं। निबंध लिखे। उपन्यास लिखे। कथा-कहानियाँ लिखीं। उनकी रचनाओं में अखंड मिठास है। मिठास के मानी 'स्वाद'। गुरुजी के शब्दों में प्रभाव है—तीक्ष्णता है। 'पंचतंत्र' में नीति कथाएँ हैं। 'हितोपदेश' में उपदेशप्रद कहानियाँ हैं। ईसप की बोध कथाएँ प्रसिद्ध हैं। गुरुजी ने भी बालक-बालिकाओं को बोध प्रबोध कराने के लिए कहानियाँ गढ़ीं—कथाएँ कहीं। विद्यापति ने 'शिशूनां सिद्ध्यर्थं नयपरिचितेर्नूतनधियाम्।' बतला कर अपनी पुरुष परीक्षा की रचना की। गुरुजी ने शिशुओं का अर्थात् ग्रहण धारणापटु नूतनबुद्धि बालकों का उद्बोधन करके उन्हें अनुप्राणित करने के हेतु अपनी स्फूर्तिदायक 'गोड-गोष्टी' (मीठी कहानियाँ) लिखीं। विद्यापति कहता है 'मुदे पौरस्त्रीणां सकल कविता कौतुक जुषां' मैं अपनी 'पुरुष परीक्षा' लिखता हूँ। गुरुजी की कहानियाँ

रोचक हैं, तथा मनोरंजक भी। किन्तु वे पांखलियों को रिझाने के लिए नहीं लिखी गई। मानवी जीवन शुचिर्भूत हो, समृद्ध हो, परिष्कृत हो, उन्हें बस यही लगन सताती थी।

'पत्री' उनकी कविताओं का संग्रह है। उसकी हृदय को द्रवित करनेवाली कविताओं की आर्तता में यही उत्कटता अभिव्यक्त हुई है। इसी तड़पन के कारण उनकी वाणी कभी नहीं थकती थी। उनकी कलम कभी नहीं रुकती थी। वे जब बोलते थे तब एक से एक बढ़कर सरस वाक्य विद्युत् गति से निकलते थे। वे कैसे और कहाँ से निकलते थे यह कौन बता सकता है। जब लिखने लगते थे तब उन्हें शब्दों के लिए सोचना नहीं पड़ता था। अलंकारों के लिए कलम रुकती नहीं थी। कल्पना की सूझ के लिए प्रतीक्षा करना वे नहीं जानते थे। उनकी वाणी में से, उनकी लेखनी में से, उनके अंतःकरण की भावनाओं का ऐश्वर्य अनंत धाराओं से प्रस्फुटित होता था।

भावना किसी भी बंधन को सह नहीं सकती। गुरुजी की ध्येयवादिता संप्रदायातीत, पक्षातीत और संस्थातीत थी। अपने बावन साल के जीवन में संस्था-पक्ष संप्रदाय-हीन ध्येयवाद की धवल ध्वजा को अविरत फहराये रखने की साधना करते करते ही उन्होंने अपनी कर्मभूमि का त्याग किया। लोगों ने कहा 'गुरुजी का जीवन परखे हुए सोने की तरह था। उनका जीवन ही कंचन बन गया'। मेरी श्रद्धा कहती है अपनी विविध और अविश्रांत स्नेहमय साधना से लोहमय और मलिन मनोवृत्तियों को सुवर्णमय बना देनेवाला स्पर्श-मणि साने गुरुजी थे।

गुरुजी भावुक थे। लेकिन उनकी भावना शिथिल या क्रियाहीन नहीं थी। इसी लिए वह निष्प्रभ या निष्प्रभावी नहीं थी। उनके पवित्र और तेजस्वी अंतःकरण की भावना जबतक कार्य में परिणत न हो जाती थी तबतक उन्हें चैन नहीं मिलती थी। प्रचंड जल प्रपात की तरह वह भावना स्थितिवाद प्रतिगामित्व इत्यादि शक्तियों के साथ आवेग से टकराती थी। सारे समाज को हिला कर जगाने की शक्ति उनकी तेजोमय विपुल भावना में थी। उनके उदात्त तथा क्रांतिनिष्ठ अंतःकरण में प्रतिबिंबित होते ही भारतीय संस्कृति का स्वरूप किस प्रकार प्रगतिशील और युगांतरकारी प्रतीत होता था यह जिसे देखना है वह उस विषय पर उनकी लिखी हुई सुंदर पुस्तक अवश्य पढ़ें।

अपने हृदय की स्वाभाविक शुभ प्रेरणा से हमारे—सबके-जीवन को क्रांतिमय तथा प्रसादमय बनानेवाले उस हृदयवान् सेवावीर को मैं प्रणिपातपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ।

(मराठी से **अनु०—श्री यशवंत धर्माधिकारी**)

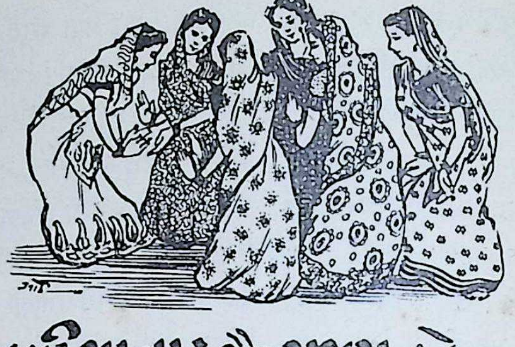

કાઠિયાવાડ ઔર ગુજરાતકે ગરબા ગીત

[श्रीमती कुसुम पाल नीहारिका]

काठियावाड़ और गुजरात में गीतों का प्रचार बहुत प्राचीन समय से चला आरहा है । वह आज भी उतना ही लोक प्रिय है । जन-जीवन का वह एक ऐसा पहलू है जिस के बिना ग्राम-जीवन का चित्र ही अधूरा रह जाता है ।

गरबा एक प्रकार का सामूहिक नृत्य है जो कि गाँवों और शहरों में गोधूलि की वेला में प्राय: देखने को मिलता है। इसमें केवल स्त्रियाँ ही नृत्य करती हैं और कभी कभी स्त्री-पुरुष-वालिकाएं मिल कर भी । यह लोक नृत्य है । इन गरबों को जब गांवों में जाकर गाते हुए सुना जाय तभी उस के वास्तविक रूप और सौन्दर्य को हम जान सकते हैं। उन गरबों की ध्वनि, लय और ताल में वही उल्लास, वही उमंग, वही माधुर्य है जो संयुक्तप्रान्त तथा बुंदेलखंड में आल्हा ऊदल, विरहा तथा राजस्थान और हिमवन्त में पँवारी पाँडव गीत, और जागरों में पाया जाता है ।

गरबे अनेक प्रकार से गाये और नाचे जाते हैं। इस में विविध प्रकार की रीतियाँ हैं । इन के राग भी विविध प्रकार के होते हैं, किन्तु ये सब लोकगीत हैं । यह तो सर्व साधारण जनता के लोक गीत हैं । इसीलिए इन में शास्त्रीय छाया नहीं होती। उन के प्रिय लोकनृत्य हैं । ये गरबे उसी जनता के देश-हृदय गत भावों के दर्शनीय चित्र हैं । इन में गुर्जर-वासियों का उत्साह भरा होता है, उन की सुख-दुःख की स्मृतियाँ और दुःख के आँसू भी उन्हीं में भरे पड़े हैं । इन के रागों में एक अजीव आकर्षण भरा होता है । यदि वे और ढंग के गाये जावें तो वह बात उस में रहती ही नहीं । गरबे तालियाँ दे दे कर गाये जाते हैं । एक ताली से तीन ताली से, डाँडीरों (लकुटों) से, माथे पर वलते दीपकों युक्त घड़े धरे भी । अन्य रीतियों से भी ये गाये जाते हैं । कभी तो फलों की लड़ियों की लडियाँ बँधी होती हैं । नृत्य करने वाले घूमते ही घूमते इन को गूँथते हुए नाचते हैं ।

इन गरबों में लोक जीवन के प्रत्येक अंग के चित्र बँधे हैं । इनके विषय अनेक हैं राज्य संबंधी, सामाजिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक, प्राकृतिक तथा धार्मिक और पौराणिक । गरबों की रचनाएँ सुंदर होती हैं । उन में एक से एक हृदयस्पर्शी कल्पनाएँ होती हैं—भावनाएं मिलती हैं । ये गरबे जनसमूह की सच्ची अनुभूति की भावनाएँ हैं । ग्राम्य जीवन के प्रतिदिन के संघर्ष के अनोखे उदगार हैं । गरबों को देखकर ही उनका महत्व जाना जा सकता है । वे अमूल्य हैं.

आज भी गरबे गुजरात और काठियावाड के

१९५०

प्रत्येक समाज की सुन्दर अनमोल कलात्मक विभूति हैं। संयुक्त प्रान्त की कुछ सुंदर चीजें जैसे कजरी झूले के गीत, आल्हा-ऊदल, अन्य ऐसी चलती हुई चीजें गाँवों में ही पाई जाती हैं। उनकी सीमा गाँवों तक ही है। आजकल का सभ्य समाज उन से परिचित ही नहीं है; किन्तु इस के विपरीत गुजरात और काठियावाड में ये गरवे गाँवों और शहरों में समान रीति से प्रचलित हैं। वंबई और अहमदावाद जैसे शहरों में किसी कॉलेज या स्कूल में कोई भी ऐसा उत्सव नहीं होता जिस में गरवे न हों। गरवे गुजरात और सौराष्ट्र की आत्मा हैं। सौराष्ट्र और गुजरात की रंगभूमियाँ गरवों की प्राण हैं। आज भी प्रतिदिन प्रति संध्या को गुजरात और काठियावाड के ज्योत्स्नामय आँगन और मैदान गरवों से वहाँ की भूमि को धूमिल कर देते है, वहाँ की सव जातियों में—चाहे वह कोली हों, कणवी (कुनवी) हों, सुनार हों लुहार हों, पटेल हों, गरासिंए (राजपूत क्षत्री) हों, वनिये हों, ब्राह्मण हों या क्षत्रिय हों,—गरवों के वही गीत चलते हैं। किसान जैसी (शारीरिक परिश्रम करने वाली —) जातियाँ संध्या को इन गरवों में झूम-झूम कर उस की मस्ती में अपने परिश्रम को भुला देती हैं। गरवे उन के जीवन में नवीन प्राणों का संचार कर देते हैं। उनकी रग-रग में नवीन स्फूर्ति भर जाती है।

काठियावाड़ में अनेकों छोटे-छोटे राज्य हैं। वहाँ राजा और प्रजा के वीच इतना अंतर भी नहीं है। राजा, प्रजा का पोषक और पालन कर्ता है। वह उसके सुख-दुख को जानता है। इन राज्यों में राजगद्दी के लिए—(अन्य प्रकार से उत्पन्न) ईर्ष्या आदि भावों के कारण भी अनेक प्रकार के षड्यंत्र चलते रहते थे। ये राज्य अपनी निजी स्वतंत्रता और सत्ता अब तक रखते थे। जीवन की इन वास्तविकताओं को वतलाने वाले गरवों की कमी नहीं है। उदाहरण स्वरूप कुँवरवा का गरवा देखिए।

भावनगर राज्य की कुँवरी का विवाह जामनगर राज्य के कुँवर के साथ हो रहा है। विवाह और और दहेज देने की तैयारियाँ हो रही हैं। जामनगर में टीका आया है। श्रीफल भी आये हैं। इधर भावनगर की कुँवरी कुँवरवा के हाथ देखने को ज्योतिषी आए हैं। विवाह की रीति संपन्न करने को पंडित लोग भी आ चुके हैं। सुनारों ने सुंदर से सुंदर आभूषण वनाए हैं। उनमें जड़ने के लिए सूरत से हीरे-मोती मँगवाए हैं। कुँवरवा के लिए सुनार, पालकी और पलके (पलंग) वना रहे हैं। तमेरों ने तांवे, पीतल, और चाँदी के झूले, जंजीरें तथा दीविये (दिवटे) वनाई हैं। कपड़े वाले विविध प्रकार के कीमती से कीमती कपडे लाए हैं। जरी, रेशम और मोतियों से टँकी ओढ़नियाँ, लंहगे और चोलियां बनी हैं। कुसंवी लोग कुँवर वा की चुनरी को रंगने आए हैं। हालार (नगर) से पालकी आई हैं। दहेज देने का समस्त सामान एकत्रित हो चुका है। चाचा आ कर कुँवर वा से कहते हैं कि वेटा, तुम्हारे आणें (दहेज) में कोई कमी तो नहीं है। कुँवरवा के अपने भाई नहीं हैं, इसलिए उन की पूर्ति उन के चचेरे भाई रूपसिंह और देवीसिंह करते हैं, धूमधाम से वरात को विदाई दी जाती है। ससुराल में वरात के आमगन की प्रतीक्षा हो रही है। सास-ससुर, नंद, सौतें सभी अपने अपने झरोखों से वाट देख रहे हैं — कुँवरवा कव आती है, । वरात आ पहुँचती है। यथानुरीति स्वागत होता है, किन्तु सौतें— ये रूप की राशि—कुँवरवा को कहाँ देख सकती थीं। वस उन्होंने प्रथा के अनुसार कुँवरवा को चुनरी उढाई। चुनरी ओढ़ते ही —

'साते शोक्यूँ नी आपेल चुँदडी
ओढ़ाढी ने धोली पाडी चीस रे'

कुँवर वा के मुँह से चीख निकलती है। उस में काला साँप छिपा कर रक्खा गया था। वह उसे डस लेता है —

"अगर चंदन ना पोल्या लाकड़ाँ
तुलसी नो नव राख्यो काँई पांर रे,
सोनला वर्ण नी वा नीचे वले
रूपला वरणे उड़े छे काँई धूस रे,
हाथी झूरे छे वा ना चौक मां
घोड़ा झूरे घोड़ा नी घोड़ हार रे,
साचा मोती नी वानी मोजड़ी
जई विखाणी जामनगर दरबार रे,"

अगर-चंदन और तुलसी से कुँवर बा की अंतिम क्रिया होती है। सुनहरी चिता जलती है, रुपहरे धुएँ उड़ निकलते हैं।

सामाजिक गरबों के विषय 'जननी', 'भाभी', 'ननद', 'देवर', 'महियर', 'सास', 'मौसाल' आदि रहते हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों वाली कृत्रिम दुनिया से दूर ग्राम्य-जीवन के सामाजिक स्वाभाविक जीवन के उल्लेख इनमें हैं। एक ग्राम्यबाला विवाह के पश्चात् ससुराल जाती है। इसके बाद उसके जीवन के कितने ही दिन बीत जाते हैं वह अपने मायके नहीं जा पाती। उसे अपने माँ-बाप की, भाई-भाभी की याद सताती है। इतने में ही आस पास के खेतों में वह देखती है कि बेलें फूट निकली हैं और उसके कानों में घुंघरू का शोर मचाते हुए, घोड़ों के आने की आवाज सुनाई देती है—

'घुघरीए घमघमता घोड़ला आव्या'

अब वह अपने मायके जायगी। उसकी आँखों के सामने उसके मायके की छबि नाच उठती है। उसके अंतर की आशा पूरी होती है। कहाँ तो वह सोचने लगी थी कि उसे सब भूल गये हैं—

'मैं जाण्युं जे भूली मुझ ने मात जो
बापू ने अंतर थी छूटी बेटड़ी,
माभलड़ी ना उर नो भाली भावजो
बन्धवड़े उर नो बीसारी ऐनी बहेनड़ी'

सास अपनी बहू को मायके जाने की आज्ञा देती है। बहू, सास के पैर छू कर विदाई लेती है। मायके जाने की खुशी में वह अपने को भूल जाती है। कहती है मुझे अपने पीहर के मार्ग भी शीतल और सुखप्रद मालूम होते हैं। उन रास्तों पर कैसी छाया है। उसे ख्याल आता है उन पुराने वृक्षों का जिन पर जब वह छोटी थी तब झूलती थी। दादा का दरबार याद आता है। माँ का प्रेम—

"मीठो वरसे भावलड़ी नो मेह जो
न्हाऊं ऐना झरझर नीर मां"

वह कहती है माँ के प्रेम की वर्षा मधुर-मधुर बरसती है। अब उस स्नेह के झरझर नीर में मैं स्नान करूँगी। रथ पर वह बैठ जाती है और घोड़े दौड़ते हुए, तीव्र गति से मायके की ओर चल देते हैं। मायका आ जाता है। वह घर भी आ जाता है, और माँ से उसकी भेंट होती है। वह ग्राम्य-वधू अपनी माँ से चिपट जाती है। माँ के प्रति उसकी भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं—

'मीठा मधु ने मीठा मेहुला रे लोल
ए थी मीठो तो मोरी मात रे,
जननी नी जोड़ सखी नहीं जड़े रे लोल'

माँ की आँखें, माँ के स्वर भी प्रेम अमृत की धार हैं—

'अमी नी भरेल एनी आँखड़ी रे लोल
व्हालना भरेला ऐना वैण रे'

"मीठे मीठे मधु और मीठे मेहुलों से भी मीठी मेरी माँ है। संसार में उसकी जोड़ी नहीं मिल सकती। अमृत भरी हुई उसकी आँखें हैं और उसकी बोली प्रेम से भरी हुई है।

माँ का हृदय गद्‌गद हो गया है। आज उसकी बेटी आई है। अपनी बेटी के बिना उसे घर सूना मालूम होता था। दूर भेजी हुई बेटी के लिए माँ जब कुछ न कर सकती थी तो मौन आशीष हां भेजा करती थी। लड़की इसे जानती है और कहती है—'मूँगी आशीष उरे मोकलती रे लोल' और यही नहीं उसकी माँ तो उसके लिए और बहुत कुछ है—

'धरणी गाती ऐ हशे धूजती रे लोल
अचला अचूक एक माय रे लोल
—जननी०

गंगा ना नीर तो वधे घटे रे लोल
सरखो ए प्रेम नो प्रवाह रे लोल
—जननी०

धरती माता भी कभी भूकम्पों के आ जाने से हिल उठती है किन्तु मेरी माँ तो अटल है। गंगा का नीर कभी बढ़ जाता है कभी घट जाता है, किन्तु मेरी माँ के स्नेह का प्रवाह एक समान रहता है। ग्रामीण बाला अपनी माँ के पीछे पागल है। ससुराल जा कर उसे माँ के प्रेम का अभाव रहा। वह अपनी माँ का मूल्य आँक ही नहीं सकती है। माँ तो माँ है। किसी के साथ उपमा दी ही नहीं जा सकती। और भी वह ग्रामबाला कहती है—

१९५०

'बरसे घड़ीक व्योम बादली रे लोल
माडी नो मेघ बारे मास रे
—जननी०

वलती चाँदनी दीसे चाँदनी रे लोल
ऐनो नहीं आथ में उजारा रे '
—जननी०

आकाश में बादल कुछ देर को बरस पड़ते हैं, किन्तु मेरी माँ की स्नेह-वर्षा बारह महीने रहती है। शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की ज्योत्स्ना फैल जाती है किन्तु कृष्णपक्ष में अँधेरी रात ही रहती है। मेरी माँ की चाँदनी सदैव वैसी ही बनी रहती है। वह उदय हो कर कभी अस्त नहीं होती।

अब अपने मायके में—उस छोटे से गाँव में—चारों ओर उसके आने की खबर फैल जाती है। उसकी बचपन की सखियाँ आकर उसे घेर लेती हैं। उससे ससुराल के विषय में और उसके पति के विषय में अनेकों प्रश्न पूछती हैं—" कहो ने सोहागण, सासरी केवी रे।"

और

"केवां सासु नणंद जेठाणी रे ?
केवी पडोसण ने पितराणी रे ?
लोक नवा-नवा धरती अजाणी रे ?
केम करी व्हेनडी ! प्रीतिबंधाणी रे ?
त्यां नहीं दादा ने त्यां नहीं माडी रे,
त्यां नहीं सहियर कोई समाणी रे"

"तुम्हारी सास कैसी है ? ननद जिठानी कैसी है ! अड़ोस पड़ोस कैसा है ? रिश्तेदार कैसे हैं ? वह तुम्हारे लिए पृथ्वी का नया कोना था। अपरिचित भूमि थी। सखी वहाँ प्रेम कैसे हुआ ? वहाँ न दादा थे, न माँ थी, न तुम्हारी कोई सखी थी, सखी तुम वहाँ कैसे मन लगा कर रहीं ?"

'त्यों नहीं भीनता भाई भौजाई रे
नानी मोटी नहीं माडी नी जाई रे
कोण आंखडलीना आँसूडा ल्हू तें रे ?
कोण वली वली मोटलाँ जो तूँ रे ?"

'वहाँ न स्नेहमय भाई थे और न भाभी थी। न, माँ के छोटे बड़े और बच्चे ही थे। तुम्हारे आँसुओं को कौन पोंछता था ! तुम्हारा प्यारा-सा मुखड़ा कौन निहारता था ?'

'बीतक वातडी क्याँ जई करनां रे ?
दाझ्याँ दिले सखि क्या जई ठरनां रे ?
शे भिषे विसर्यां महियर मीठां रे ?
दीठलां कर्म कर्यां अण दोठां रे ?'

'तुम्हारे ऊपर जो सुख-दुख की बीतती थी वह तुम किसे बताती थीं ? अपने जले हुए दिल को कहाँ ले जाकर तुम ठंडा करती थीं ? किस प्रकार से तुमने महियर को भुला दिया ?'

इस पर वह ग्राम-कन्या सब प्रश्नों का बारी बारी से उत्तर देती है। अपने प्रियतम के प्रेम का वर्णन करती है और फिर भी कह देती है।

'तोय न महियर मन की वधूटे रे,
एक घडी एनो तार न टूटे रे,
सूतां सेज लडी मां सोणलां आवे रे
भिंजवे आँख ने तनडा तपावे रे।'

'महियर का स्मरण घड़ी भर को भी नहीं छूटता था। स्मृति का तार क्षण भर को भी नहीं टूटता था। शैयापर लेटे लेटे सपने आ जाते-महियर की याद आ जाती थी। आँखें आँसुओं से भर कर भीग जाती थीं।'

सखियाँ अब उसे और भी सब पूछती हैं। वह कुछ झेंप जाती है। कुछ शर्माती है। किन्तु सखियाँ उसे छोड़ती नहीं। उसे सखियों को सब कुछ बताना ही पड़ता है। वे सब तो जिज्ञासु होकर सुन रही हैं। ग्राम बाला अपनी सुहागरात का वर्णन करती हैं। वह उसे 'रूपाणी रात (रुपहरी रात) कहती है। वह कहती है

'रसनी ए रेल सखि ! साँभरे रूपाणी रात,
घेरा सी आँखडी उजागरे रूपाणी रात !
सखि ओना गीत भरी गाजती रूपाणी रात,
देवो नां दुंदभि बगाडती ए रूपाणी।'

'हे सखि ! मुझे अपनी 'रुपहरी रात' याद आती है। मेरी आँखें जागरण के कारण ढुलकी पड़ रही थीं। सखियों के गीतों से गूँज रही थी वह रात। और देवगण दुंदुभि बजा रहे थे। वही मेरी सुहाग रात थी।'

फिर वह उन्हें 'और भी कुछ' बताती है—

'गंगा ने सिन्धु केरी संगीत रुपाणी रात।
[illegible] रुपाणी रात।।

'गंगा का प्रवाह जिस प्रकार, सिन्धु से जा मिलता है उसी प्रकार मेरा और उनका समागम हुआ।'

वह और सब भी बताती है और अंत में कहती है —

'रस नी रेल ए सदा साँभरे रुपाणी रात,
रहेजो अखंड मारे आँगणे रुपाणी रात।'

'ओ रसभरी मेरी प्रिय मधुर सुहाग रात, तुम सदैव मेरे आँगन में रहना। मैं तुम्हारा स्मरण करती हूँ।'

इस प्रकार अपनी सखियों से अपने पीहर में आकर, वह सुहागिन ग्रामवाला सब कुछ बताती है। कितना वास्तविक हृदयस्पर्शी वर्णन है। सखियों से कभी कुछ नहीं छिप सकता। उसे बताना ही पड़ता है। कैसी मैत्री, कैसा मान कैसे प्रश्न और कैसे सुंदर उत्तर हैं! सखियों के सामने मन खोल कर वह कैसा अच्छा चित्र खींचती है।

इसी प्रकार 'देवर' पर भी अनेकों गरबे हैं। हिन्दू समाज में देवर और भाभी का अनोखा रिश्ता है। भाभी अपने छोटे देवर को खूब बनाती है। देवर भी उसे छोड़ता नहीं। वल्कि और ज्यादा ही चिढ़ाता है 'देवर भाभी पर होली में रंग डालता है, भाभी, देवर पर। भाभी कहतीहै। "होली खेलने को और कोई नहीं मिला, तभी तो मुझे पकडा गया; अच्छा, देवर घबराओ नहीं — तुम्हारे लिए छोटी-सी दुलहिन लाऊँगी।' "ऐने नान्ही सी लाड़ड़ी लावशूं" देवर उसे बहुत प्यारा है। वह अपनी सखी से कहती है 'देरीडी सखी सन मीठे हो।'

अपने देवर से इस प्रकार लाड़ लड़ाती हुई, उस की हँसी-मजाक् करती हुई भाभी को सहसा अपनी ननद का ध्यान आ जाता है और वह 'गरीवड़ी' दीन वन जाती है। उस की शैतानी, हँसी-खुशी सब लुप्त हो जाते हैं, उसे याद आने लगती है अपनी ननद। उसे वात-वात में वुरा लग जाता है वह रुठ जाती है। उसे मनाना पड़ता है। उसकी याद आते ही वह अपनी वड़ी ननद को ससुराल से वुलवा भेजती है। रक्षा बंधन आनेवाला है। संदेशा भेजा जाता है कि तुम जल्दी अपने भैय्या को राखड़ी वाँधने आना। ननंद के विना घर का आँगन सूना मालूम देता है। ननंद के विना राखड़ी कौन वाँधेगा?' वह इन शब्दों में उसे निमंत्रित करती है —

'आवो आवो ने महियर मीठडाँ
तमे आवो ने भारी सासू ना श्वास,
नणदी आवो ने मारे आँगणे!'

ननद से अपने मायके आने को कहती है और कहती है —

'हूँ तो नेह भरा दऊँ नोतरा
व्हेला आवो रे मारा उर ना उजास'

'मैं तुम्हें स्नेहपूर्वक निमंत्रित करती हूँ। मेरे हृदय को प्रकाश देने वाली मेरी प्यारी ननंद तुम जल्दी आना।'

फिर उस ग्राम वाला को अपनी ननंद का रूठना अच्छी तरह से मालूम है, कहीं ऐसा न हो कि वच्चों को विशेष रीति से न वुला भेजने से भी वह रूठ कर न आए' वह चतुर गृहणी अपनी ननद के स्वभाव से पूर्ण रूप से परिचित है। वह तुरंत ही इन शब्दों में वच्चों को भी निमंत्रित कर देती —

'मारा वाला-भोला शां भाणे जडां
घरी अंकेरे ऐने लावजो संग,
ऐने मीठडा लाड लडाववा
उर ऊँडो रे कांई उछले उमंग।'

वह ननद के आने की प्रतीक्षा कर रही है। ननद कब 'रसे भीनी रुड़ी राखड़ी' लेकर आवेगी और भैय्या को वाँधेगी!

इन के अतिरिक्त 'सास', 'ससुरा', 'जेठ' 'नणदोई' आदि गरबों में भी सुंदर भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि काठियावाड़ और गुजरात के सामाजिक जीवन और मानव-प्रकृति के प्रत्येक अंग को भाव भरे गरबों में गाया गया है।

किसी ग्राम वाला को अपनी मोसाल (ननिहाल) की याद आती है उस की भोली आँखें आँसुओं से डवडवा जाती हैं। उस का अंतर अपने ननिहाल को आशीर्वाद देता हुआ वोल उठता है—'अमर रहो ए मध झरंतु मोसाल, ए सुंदर मधु वरसाते हुए मेरे ननिहाल तुम अमर रहो।' उसे याद आ जाती है अपने ननिहाल की। ससुराल के पिंजरे

१९५०

बँध युवती को 'भाभी की मेहमानी याद आती है। नानी की कहानियाँ और मामा के लाड़ याद आते हैं। नानी की याद करती हुई वह कहतीहै—

'जननी नी जननी रे सुख नी सीमडी
जूनी आँखे हीये नवला हेत जो
हसतां ए पंपाळे हळवा हाथ थी
सूकां कर पण स्हेजे थाय सजेत जो।'

'माँ की माँ—मेरी नानी—सुखों की सीमा है, वह अपनी बूढ़ी आँखों से नवीन ममता और वात्सल्य को झुलाती है, हँसती-हँसती मेरी नानी थपकियां देती है और सुलाती है।' उसके प्यार से सूखे हुए हृदय भी फिर हरे हो जाते हैं। वह अपने ननिहाल को मायके से भी ज्यादा ऊँचा स्थान देती है 'महियर थी मोंघां रे महियर मात ना।'

इसी प्रकार भ्रातृ-द्वितीया और वात्सल्य, शृगार और झूले, नदी और वाव, पाँयणी और पनघट पर भी गरबे हैं। हम यहाँ केवल वात्सल्य और पनघट के ही उदाहरण देंगे। गाँव में शरद पूर्णिमा का दिन है—'सोहियर सौ भळी रे रमनी रंग नवों कई रास केरा गान थी रे गाज अवनी ने आकाश' सखियाँ मिल कर रास खेल रही हैं। उनके गान से धरणी और आकाश गूँज रहे हैं। इतने में एक ग्राम-वधू रास को छोड़ कर भाग जाती है—

'आ शुं एकनी रे महियर छोडी
सहुनो संग।
चाली चोंप थी रे रूडा रंग तरेणो
करी भंग।'

सब विस्मय में पड़ जाते हैं। आखिर यह छोड़ कर क्यों चली गई? अनेक संकल्प विकल्प लोग करने लगते हैं—

'आव्यो आकरो रे शूं कै सासू नो
संदेश?
गाणु ना गम्यूं रे रमना रीस चडी
गई छेक?
करतां फूदडी रे आवी अंतर मांहि
उछाल?
काया कोमली रे वेढ़ी न शके
झाझी वार।'

कोई सोचता है कि सासू की कोई कठिन आज्ञा हुई है इसलिए वह चली गई है। कोई सोचता है उसे रास का गाना नहीं पसंद आया इसलिए वह रूठ गई। कोई सोचता उसे घूमते घूमते चक्कर आ गए होंगे। वह कोमल है उसे अधिक देर तक गरवों के गाने में तकलीफ हुई होगी। इसके उत्तर में गरवा है—

'आव्यो आकरो रे नाकैं सासूनो संदेश,
नहीं, नहीं रुसणा रे, लाग्यो थाक नहीं
लवलेश!
पोढ्या पारणे रे आव्या बाल कुँवर कैं याद,
रस भर रास नीरे ऐ थी टूटी मरजाद।'

'उसे न तो सासु का कोई ऐसा आदेश ही आया था जिससे उसके दिल पर चोट लगी है न उसे गरवों से ही रीस चढ़ी थी, न थकावट ही हुई थी। बात तो यह है कि गरवा गाते-गाते उसे पलने में झूलते हुए बाल कुँवर की याद आ गई। वह उसे देखने को भाग खड़ी हुई।' वात्सल्य के भावों से ओत प्रोत यह पंक्ति कैसी सुंदर बन पड़ी है—'पोटिया पारणे रे आव्या बाल कुँवर कैं याद।' फिर इतना ही नहीं और भी है—

'मनहर मोटडां रे जोता है यूं उचरे 'हाश'
अडता अंगने रे उपजे अणमूली उल्लास;
उर आलिंगने रे लेती देव-भवन नी ल्हाण,
चारा चुंबने रे भलती मोक्ष तणी कैं भाराय?'

बच्चे का मुख देख कर माँ के हृदय को कितनी शांति मिलती है। उसके मुख में 'हाश' निकल जाता है। बच्चे के अंग-अंग को छू कर माँ को अनमोल उल्लास होता है। उसे प्यार से छाती से लगाती हुई माँ को देव-भवन भी तुच्छ मालूम होते हैं, और बच्चे का चुम्बन लेती हुई माँ को मोक्ष की भी परवाह नहीं रहती। फिर आगे यह भी है—

'बे छबि आगले रे झोंखां कोटिक शशियर
सूर
ए सुरभि कने रे फीकी फुलडानी कै फोर,
ए रस आगले रे ओछो रास तणो रस रंग
ए पज़ आगले रे सूका भवना भव्य प्रसंग।'

'माँ और बच्चे की उस छवि के सामने हजारों चन्द्र और सूर्यों की ज्योति भी फीकी मालूम होती है। उस प्रेम के सौरभ के आगे रास और गरबे का रस भी कुछ नहीं है। उस अमूल्य घड़ी के आगे मन के उत्तम से उत्तम प्रसंग भी अपनी महत्ता और महिमा नहीं रखते।'

वात्सल्य की भावनाओं को गरबे में देख ही चुके हैं अब पनघट पर के गरबे और उनके भाव और देखते हैं।

पनघट भी गरबे का एक ऐसा विषय है जिस पर न जाने कितनी भावनाओं को लेकर गरबे हैं। कई प्रकार के गरबे केवल पनघट पर ही मिलेंगे। आज भी पनघट पर जाकर पानी भरने की प्रथा चलती है, विशेष कर काठियावाड़ में जहां पानी की तंगी है। गाँवों में सास की बहुओं पर बड़ी धाक रहती है। पनघट पर कुछ क्षणों के लिए उसे आजादी मिल जाती है और दो घड़ी वह विश्राम करती है। ससुराल में तो रात दिन उस से सास काम करवाती रहती हैं, बहू को अपने आँसू भी बहाने का समय नहीं मिलता। इसीलिए वह ग्राम्य वधू पनघट को मायके के तुल्य समझती है। वह कहती है—'वे घड़ी नी महियर भाण्य पनघट पूरे रे।' ससुराल में उसके सिर की ओढ़नी खिसक ही नहीं सकती। घूँघट पट को वह खोल ही नहीं पाती। पनघट पर हवा में उसकी ओढ़नी उड़ जाती है। उसे थोड़ा चैन मिलता है। पनघट जाना तभी तो उसे बहुत अच्छा लगता है। वह कहती है, 'सखी, पनघट ना परियाण भुज ने मीठा रे।' ग्राम्य बाला पनघट जाती है। वहां जा कर उसे आकाश बादलों से आच्छादित दिखाई देता है। उसे तुरंत ही अपने मायके की याद आ जाती है। वह कहती है—

'ओ बादल थी टँकाय महियर मारां रे
ज्यां अंतर ने अकलाट वसतां व्हाला रे'

'इन्हीं बादलों से मेरे मायके वाला गाँव भी घिरा हुआ होगा, जहां मेरे प्रियजन रहते हैं।

एक के बाद एक इस प्रकार नारी जीवन की क्रमानुसार भूमिकाएँ गरबों में मिलेंगी।

प्राकृतिक और काल्पनिक विषयों पर भी गरबे कई मिलेंगे। संध्या, रात्रि, ऊषा, तारे, चाँद, सूरज, ओस, पवन, झरने, सरोवर आदि पर एक से एक सुंदर गरबे मिलेंगे। रितुओं पर भी गरबे हैं जैसे शिशिर पर, वसन्त पर, हेमन्त पर, ग्रीष्म पर, वर्षा पर, इस गरबे में आषाढ़ मास की संध्या का वर्णन है—

'आषाढी साँझना अंबर गाजे
अंबर गाजे ने मेघाडम्बर गाजे।
—आषाढी...

मातेला मोरला टहुका करे,
टहुका करे ने झीनी झरमर रेले।
—आषाढी...

(गरबा गोवालिया ना पावा वागे
पावा वागे ने सुती गोपी जागे।')

'आषाढ़ महीने की संध्या है। आकाश में बादल गरज रहे हैं और उनकी गर्जना ध्वनि से आकाश गुंजित हो रहा है। मस्त मोर टुहुक टुहुक कर रहे हैं। इनकी टुहुक से आकाश से वर्षा की महीन महीन झड़ी लग रही है। (ग्वाले जगे हैं। उनके पाँवों के घुंघरू वज रहे हैं। सोती गोपियाँ चौंक जगी हैं। (संभवतः कृष्ण भी इन्हीं ग्वालों में हैं उनके घुँघरू वज रहे हैं।')

इसी प्रकार—

'आसो मासो ने शरद पूनम की रात जो,
चाँदलियो ऊग्यो सखी मारा चोक माँ।'

'आश्विन महीने की शरद पूर्णिमा की रात है। चन्द्र मेरे आँगन में उदित हुआ है।

इसी प्रकार ऐतिहासिक भी गरबे हैं जिन में कल्पना और भावना के साथ ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है, काठियावाड़ में भावनगर राज्य में माधव बाव का पानी सूख गया; था किसीने उसे शाप दिया था। उस शाप देने वाले ने यह भी कहा था कि यदि इस नगर के राजा अपने मझले पुत्र और पुत्र-वधू का बलिदान जलदेवता को देंगे तो माधव बाव में पानी फिर से आ सकता है। ज्योतिषी भी राजा से यही कहते हैं। राजा तव विवश होकर अपने मँझले पुत्र अभयसिंह को बुलाता है। प्रजा के हित के लिए उसे अपने ही पुत्र का खून देना आवश्यक हो जाता है। जलदेवता कोई साधारण बलिदान भी स्वीकार करेंगे। वह तो पुत्र और पुत्र-वधू की ही बलि लेंगे। बुलवाने पर अभयसिंह

जो कि उस समय घुड़साल में घोड़ों को खिला रहा था, आता है और पिता से बुलवाने का कारण पूछता है, राजाकी आज्ञा और पिता की आज्ञा को पुत्र अभयसिंह हँसते-हँसते स्वीकार करता है। उस की रानी को वह पुछवाता है कि उस की इच्छा क्या है। राजा का दिल रो उठता है। वह इस आघात से टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। राजकुमार की बाघेले वंश की पत्नी भी ससुर की आज्ञा शिरोधार्य करती है। वह मायके संदेशा भिजवाती है और सुहाग की चुनरी और मौड़ (मुकुट) मँगवाती है। अपनी देवरानी से सिर के बालों को गुँथवाती है—वेणी में फूल सजवाती है। ननद से रक्ष-ग्रंथि बँधवाती है। जिठानी से माँग में सिंदूर की रेखा भरवाती है। ससुर से ढोल और शहनाइयाँ बजवाने की प्रार्थना करती है। अपने बालक को झूले में से उठा कर गोद में लेकर दूध पिला कर चूमतां है और फिर उसे झूले में डालकर झुला देती है। उस समय उस के नेत्र आँसुओं से भर जाते हैं। इतने में ही प्रजा महल को घेर लेती है। झाँझ और पखवाज ढोलक और शहनाइयाँ आदि बाजे बजने लगते हैं। वृद्ध राजा व्याकुल और पीड़ित हो कर कहता है कि, हे पुत्र अभयसिंह तुम जा रहे हो अब घोड़ों को कौन खिलायेगा। अपनी पुत्र वधू से वह रो कर कहता है, 'हे मेरी बाघेल-वंशी! मेरे घर को पावन करनेवाली लक्ष्मी तुम भी इस वृद्ध और पगले श्वसुर के कहने से जा रही हो। मुझे बताती जाओ कि अपने पुत्र मानसिंह को किसे सौंपे जा रही हो' वह राजपूत वीर क्षत्राणी अपने ससुर के पैर छू कर कहती है 'हे मेरे ससुर जी! आप चिन्तित न होइये! मेरे मान्य ससुर आपतो हैं ही! फिर मेरी देवरानी उसे दूध पिला देगी; ननद खिलायगी जिठानी बड़ा करेंगी। वात्सल्य प्रेम की धारा को रोक लीजिए। कर्तव्य के मार्ग को वह रोक न दे।' यह कह कर दोनों चलते हैं। वृद्ध राजा आशीर्वाद देते हुए रो पड़ता है। बाप होकर अपने बच्चों का बलिदान दे रहा है, क्या यह उस के लिए कम दुःख की बात थी, राजकुमार और युवरानी, माधव बाव के पास जा पहुँचते हैं। जनता की भीड़ लगी हुई है। यहाँ पर लोहे की साँकलों में बाँध कर इन को बाव में उतारा जाता है। ससुर, जेठ, देवर, ननद से कह बारी-बारी से कहती है 'माधव बाव के नीर दिखाई देने लगे हैं।' ससुर कहते हैं — 'मैं क्या देखूँ? मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हो रहा है।' ननद कहती है — 'मैं क्या देखूँ मेरी राखड़ी बँधाने वाला वीर पाताल को जा रहा है!' इतनी बातें हो जाने पर लोहे की जंजीरें ढीली करदी जाती हैं वे दोनों बाव में उतरने लगते हैं और —

'प्हेले पंगथीए जई पग दीधो,
छब छबियां नीर आव्यां रे
बीजे पगथीए जई पग दीधो,
कांडा समान नेर आव्या रे
तीजे पंगथीए जई पग दीधो,
ढींचण समा नीर आव्यां रे,
चौथे पगथीए जई पग दीधो,
केजे समा नीर आव्यां रे,
पाँचमें पगथीए जई पग दीधो,
हांती समा नीरे आव्यां रे,
छठे पगथीए जई पग दीधो,
परबश पडिआ प्राणीया रे
सातबें पगथीए जई पग दीधो,
लोढा साँकल टूटी रे,
तरी छे चुँदडी ने तरयौ छे मोडिवौ रे
तरे अभयसिंह ना मोडियो रे
गाताँ वाताँ घर मा आविया
आरेडा अणा सेर लागे रे
व्याहला हतां तेने खोले बेसार्यां,
देवला ने पाताल पूर्यां रे

'जब वह प्रथम सीढ़ी उतरी तब छम-छम पानी आता है। दूसरी सीढ़ी पर उतरते, पैर तक तक पानी आ जाता है। तीसरी सीढ़ी पर पैर रखते ही घुटनों तक पानी आ जाता है। चौथी सीढ़ी पैर रखते हैं तो कमर तक पानी आ जाता है। पाँचवीं पर पहुँचते ही छाती तक आ जाता है। छठी पर पैर रखते ही प्राण परवश हो जाते हैं और सातवीं सीढ़ी पर उतरते ही लोहे की जंजीरें टूट कर टुकड़े हो जाती हैं। जलदेवता का बलिदान पूरा हो जाता है। प्राणों की आहुति लेकर माधव बाव पानी से भर जाती है। उस के ऊपर चुनरी इत्यादि तैरते हुए नजर आते हैं। कैसा करुण और हृदय द्रावित कर देने वाला वर्णन है। इस गरबे

का राग भी ऐसा ही है । इसे सुन कर कोई बिना आँसू गिराए वापिस नहीं हो सकता ।

सिद्धराज का भी ऐतिहासिक गरवा है । सिद्धराज जयसिंह, सोलंकी वंश का राजा था । गुजरात में पाटण उस की राजधानी थी । उस ने हरेक प्रकार से प्रजा को सुखी रखा । उन के लिए बाव, कुँवे तालाब, सरोवर औषधालय, विद्यालय तथा धर्मशालाएँ बनवाईं । यही सिद्धराज तालाब खुदवा रहा है । जसमा नामक ओडण ने उसे मोह से बाँध दिया है और वह उस से प्रेम की भिक्षा माँग रहा है । जसमा मिट्टी की टोकरी भर भर कर ढालने जाती है । उस का बच्चा पेड़ पर झूले में पड़ा खेल रहा है । राजा इस रूप-सुंदरी को देखता है, मोहित हो जाता है । वह उस से कहता है कि हे सुंदरी सुन ! तू इस सुंदर काया को ले कर मेरे महल में निवास कर, अन्य ओडणों को यहाँ काम करने दे । ' जसमा उत्तर में कहती है — विना परिश्रम उसे खाना ही नहीं अच्छा लगता ।' सिद्धराज उस से और भी अनुरोधपूर्वक कहता है पाटण चल कर वह नगर, वाग, वगीचे की शोभा देखे । जसमा कहती है कि वनों की प्राकृतिक शोभा नगरों के वगीचों में कहाँ है । फिर राजा उसे सोने, चाँदी, हीरे, मोती, नीलम, पन्नों का प्रलोभन देता है । जसमा कहती है कि उसे तो सागर के तीर के शंखों, सीपों और फूलों की हा मालाएँ अच्छी लगती हैं । हीरे-मोती पन्ने कंकड के समान वताती है । इस प्रकार जसमा उस की सब वातों को काट-काट कर व्यंगपूर्व उत्तर देती है । राजा जब उस के पति के विषय में कुछ कहता है तो वह सुनती ही नहीं । जसमा की दृढ़ता देख कर उसे विस्मय होता है । अंत में जसमा यह कहती हुई चली जाती है—'जो मेरे पति का शत्रु है उस का मुख भी मैं नहीं देखती । इस लोक और उस लोक में मेरा पति एक ही है जिससे मैंने प्रेम-विवाह किया है । मैं अपने प्राण भी उस के लिए दे सकती हूँ ।

'राजा लोके परलोके मारो ए पती रे
प्रीते परण्या माटे आपूं मारा प्राण,
एना शत्रु नुं मुख हूं जोती नथी कदी रे ।'

राजा सिद्धराज निराश हो कर पाटण नगर की ओर लौट जाता है । उस ने भले ही बड़े बड़े राजा और महाराजाओं को अपने सम्मुख झुकाया हो किन्तु किन्तु जसमा के पतिव्रत्य को वह न डिगा पाया ।

धार्मिक और पौराणिक गरवों के विषय साधु-धर्म तथा गृहस्थधर्म दोनों प्रकार के होते हैं । इनमें से किसी किसी गरवे में तो भक्ति और दर्शनशास्त्र के रहस्य भरे पड़े हैं । इन गरवों में अधिक प्रचलित गरवे राधा-कृष्ण के, गोपियों के, उद्धव और गोपियों का संवाद, सावित्री सत्यवान के, गणपति के, शिव-पार्वती के, अव माता के, कौरव-पांडव के, कुंती माता के, भीष्म-कर्ण के, राम-सीता के, मंदोदरी और रावण के, भर्तृहरि और पिंगला के मिलेंगे । जनता में राधा-कृष्ण के गरवे खूब चलते हैं । एक गरवे में गोपियां सोती हुई उठ वैठती हैं क्योंकि कहीं से मुरारी की मुरली की आवाज उन्हें सुनाई दी है—

'हूँ तो झबकी ने जागी राज,
मोरली क्याँ थी वागी ?'

इसके बाद कृष्णजी गंगा और यमुना के बीच खड़े होकर वंसरी वजा रहे हैं । कृष्ण के पास तक पहुँचने के लिए गोपियाँ बेचैन हो रही हैं । किन्तु पहुँचे कैसे ? एक ओर गंगा है दूसरी ओर जमुना। अंत में वे नाव चलानेवाले नाविक को कितने प्रलोभन देती हैं । यहां तक कि तेरी नाव को हम हीरों से जड़वा देंगी उसके चारों ओर सच्चे मोती की घुंघरु माला टकवा देंगी ।

'माछीडा होडी हंकार मनहरि मलवाने,
मारे जाऊ छे पेले पार मनहरि
—मलवाने।

आ काँठे गंगा ने पेले काँठे यमुना
वच मा उभो नंदलाल मनहरि
—मलवाने।

तारी तो होडिये हीरला जडाऊं
फरती मुकाऊँ घुंघट माल मनहरि
—मलवाने'।

इसी प्रकार रास हो रहा है, द्वारका नगरी में रास खेलते खेलते एक गोपी की नथनी खो जाती है । वह जानती है कि कृष्ण ही इस नथ का चोर है—' मारी नथाणी नो छे काना चोर चोर चोर।' वह गोपी कृष्ण से कहती है कि तुम्हें मेरी नथ मिली हो तो मुझे वापिस दे दो ।

'नागर नंद जी ना लाल
रास रमंता मारी नथाणी खोवाई
काना जडी होय तो आल
रास रमंता मारी नथाणी खोवाई

इन धार्मिक और पौराणिक गरबों में साहित्य, समाज, धर्म, पुराण और इतिहास ऐसे मनोहर ढंग से सुरक्षित हैं। काठियावाड़ का लोक साहित्य ऐसे लोक गीतों और गरबों से समृद्ध है। सौराष्ट्र की शुष्क-स्निग्ध भूमि, उसके पशु-पक्षी, उसके मानव, उसका शौर्य प्रेम ये सब एक समय विख्यात और समृद्ध थे। सौराष्ट्र एक स्वर्ण देश था वहाँ की संस्कृति, जीवन-सम्पन्न थी।

आज भी गुजरात और सौराष्ट्र अपना स्थान बनाए हुए हैं। उनके लोक जीवन और साहित्य ने कभी कृष्ण जैसे महायोगी को उत्पन्न किया आज भी गाँधी जैसे बापू को जन्म दे वह भूमि धन्य हुई है। वह दिन शीघ्र समीप आये जब उसके लोक जीवन में व्याप्त काव्य संचित होकर देश गौरव की आनंदमयी शक्ति बने।

* * *

बंगला कविता :

हरित तृण !

[श्रीमती निरुपमा भाववादिनी]

मोरा कचि कचि श्याम तृणदल,
करि जीवनेर पथ सुश्यामल ।
उठि धरणीर प्राण फुँड़िया,
रहि कठिनेर बुक जुड़िया,
राखि घन मखमले मुड़िया,
एइ कंकरमय धरातल ।
मोरा कचि कचि श्याम तृणदल ।

[हम तो हरी हरी कोमल घास के दल हैं। हमीं जीवन के पथ को हरा बनाते हैं। हम पृथ्वी का प्राण तोड़-फोड़ कर ऊपर उठते हैं, कठिन के हृदय को व्याप्त कर हम रहते हैं, हम इस पथरीले धरातल को घने हरित मखमल से आवृत रखते हैं। हम हैं हरी हरी कोमल घास के दल।]

कहानी :

मिसेज़ चोपड़ा

[श्री० कमला चौधरी]

मेरे एक काँग्रेसी मित्र पंडित रामनरेश त्यागी संध्या समय सपत्नीक मेरे निवास-स्थल पर पधारे। साथ में उनकी दोनों लड़कियाँ भी थीं। मैंने सबको आदरपूर्वक बैठाया।

त्यागीजीसे तो नित्य ही साक्षात्कार होता था। उनकी धर्मपत्नी सावित्रीजी के दर्शन कई वर्ष उपरान्त हुए थे। अतः मैंने उन्हीं से वार्तालाप आरंभ किया—

"आपको वहुत दिनों बाद देखा, अच्छी तो हैं ? आप त्यागीजी के साथ कभी देहली क्यों नहीं आतीं ?"

सावित्रीजी ने सरलता से उत्तर दिया — यहाँ रहूँ तो बच्चों की पढ़ाई का नुकसान होता है। ये दोनों लड़कियाँ सातवीं में हैं, इनका एक भाई पांचवीं में है एक तीसरा जमात में। घर में अकेली हूँ, फिर बच्चों को किस पर छोड़ूँ ? जब स्कूलों की छुट्टी होती है तो कभी दो चार दिन को आ जाती हूँ। कल आई थी, मालूम हुआ, आप यहाँ हैं तो मिलने चली आई।

मैंने कहा—बड़ी कृपा की। एक शहर में रहते हुए भी कितने दिनों बाद आपसे भेंट हुई।

"बहनजी, छोटे बच्चों का साथ ठहरा। घर के कामों से छुट्टी नहीं मिलती। इसलिये कहीं आ जा नहीं पाती हूँ। जब कांग्रेस का काम जोरों पर था तब आप लोग आते जाते रहते थे, मुझे भी सब के दर्शन हो जाते थे।

मैंने कहा—हाँ, मेरा भी बहुत दिनों से आपकी तरफ जाना नहीं हुआ। घर के काम तो जरूरी हैं ही, लेकिन बच्चों की देखरेख के साथ ही अपना भी ध्यान रखा कीजिये। आपका स्वास्थ देखने से कुछ अच्छा नहीं जान पड़ता है। पहले से भी अधिक दुबली हो गई हैं।

सावित्रीजी किंचित् मुसकराईं और त्यागीजी की ओर संकेत कर के कहने लगीं — यही शिकायत इन्हें भी है....

त्यागीजी जो अबतक अपने स्वभाव के विपरीत बिलकुल ख़ामोश बैठे थे, एकबारगी जोर से बीच ही में बोल उठे—"बहिनजी, घर में भैंस है, घी, दूध, मक्खन, मठ्ठा सब कुछ होता है, लेकिन इनके पिचके गालों पर न कभी चर्बी आई न सुर्खी ! इस विचार से कि शायद ये घर के काम में बहुत अधिक थक जाती हैं, मैंने कुछ दिनों तक

खाना बनाने को मिसरानी लगा दी किन्तु ये ऐसी की ऐसी ही रहीं।

मैंने उनकी बात को मज़ाक में लेते हुए कहा— "तो इनके स्वास्थ में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ, इसलिये आपने मिसरानी को छुट्टी दे दी ?"

त्यागीजी को हँसी आ गई, बोले — "नहीं, जवाब तो इन्होंने उसे स्वयं ही दे दिया। इनको अपने हाथ से ही रसोई बनाने में आनंद आता है। और फिर आज के ज़माने में नौकर रखना, मेरी जैसी स्थिति के मनुष्य के लिये आसान बात भी नहीं थी। अन्य कार्यों में हाथ रोकना पड़ता था, लेकिन इनकी तन्दुरुस्ती के विचार से मुझे यह सर्व मंजूर था।"

मैं कुछ कहती, उससे पूर्व ही सावित्रीजी कहने लगीं—"मुझे खाना दूसरे के हाथ का नहीं रुचता। जिस यत्न से मैं अपने बच्चों को रसोई कर के खिलाती हूँ, भला मिसरानी कर सकती है! मैं तो प्रारंभ से ही घर के कामों की अभ्यस्त हूँ। गाँव में तो चक्की भी पीसनी पड़ती थी, बर्तन भी माँजने पड़ते थे। शहर में तो ये सब काम नहीं करने पड़ते हैं।

मैंने कहा — यह तो आप ठीक ही कहती हैं। लेकिन एक बार यत्न कर के अपना स्वास्थ सुधार लीजिये। त्यागीजी आपकी ओर से चिन्तित जान पड़ते हैं।

त्यागीजी बोले—हाँ, वहिनजी, जब देखो ये थकी सी नजर आती हैं। कभी चेहरे पर रौनक ही नहीं आती। डॉक्टर कहते हैं — तंदुरुस्ती के लिये शारीरिक श्रम अनिवार्य है, इन्हें उतना काम भी नहीं करना पड़ता, जो शक्ति से अधिक हो और मठ्ठा बिलौने में कसरत भी हो जाती है। खाने पीने की कमी नहीं है। किन्तु इन पर तो कुछ प्रभाव ही नहीं होता। और यहाँ मेरे एक मित्र हैं — मिस्टर चोपड़ा, उनकी वाइफ को मैं देखता हूँ तो मन प्रसन्न हो जाता है। लाल सेब जैसे सुर्ख गाल रहते हैं। और उनकी जैसी आलसी स्त्री शायद कम ही होती है। जिस समय भी जाता हूँ, उन्हें सोफे पर लेटे कहानियों की पत्रिकायें देखता पाता हूँ। घर के किसी काममें हाथ तक नहीं लगावीं। शाम को सिनेमा देख आईं या इंडिया गेट जा कर चाट खा आईं, यही उनकी "एक्सरसाइज" है। किन्तु जाने क्या बात है, चेहरा हर समय दमकता रहता है।"

तभी मुझे सम्बोधित करके सावित्रीजी कहने लगीं — वहिनजी, जब देखो तब ये उनका उदाहरण दे कर मुझे लज्जित करते रहते हैं। यदि वे पढ़ी लिखी स्त्री हैं, कुछ उपाय जानती होंगी। मैं तो गाँव की गँवारिन हूँ। इतना कह सकती हूँ कि मुझे कोई रोग नहीं है। बीस वर्ष इनके घर आये हो गये यही कह दें, कभी मेरी दवादारू में इन्हें पैसा खर्च करना पड़ा हो। भगवानने गोरा गोरा रंग और लाल लाल गाल नहीं दिये तो इसमें मेरा क्या दोष है ? मेरी काठी ही ऐसी है !"

मैंने अनुभव किया, सावित्रीजी का कण्ठ कुछ करुण हो उठा। अतः मैंने त्यागीजीसे कहा — "आप कैसी बात करते हैं। अरे, स्वास्थ प्रकृति की देन है। कोई बहुत सावधानी बरतनेपर भी बीमार रहता है, कोई लापरवाही करके भी स्वस्थ रहता है। इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

किन्तु त्यागीजी ने प्रसंग समाप्त नहीं होने दिया — सावित्री जी के प्रति सफाई पेश करते हुये कहने लगे — इसमें रंग-रूप की क्या बात है ? मैं यह थोडे ही कहता हूँ कि तुम कुरूप हो। लेकिन तंदुरुस्ती तो वह चीज है जो कुरूप को भी रूपवान बना देती है। साँवले रंग में भी यदि रक्त का बाहुल्य होगा तो वह छिपा नहीं रहेगा। मिसेज चोपड़ा नखशिख की कुछ सुन्दर नहीं हैं रंग ज़रूर साफ़ है, किन्तु खूनकी सुर्खी ही ऐसी झलकती है कि जान पडता है तंदुरुस्ती उस स्त्री के मुखपर बरस रही है।

तुरन्त ही सावित्री जी बोल उठीं — "अब यह तो मैं अपनी आँख से देखूँ तो जानूँ। मैं सूखी साखी ज़रूर हूँ, मगर ऐसा नहीं है कि मैंने सुन्दर स्वस्थ स्त्रियाँ ही नहीं देखीं। खत्रानियाँ भी देखीं हैं, कश्मीरनें भी देखी हैं। शहर में रहते पंद्रह वर्ष हो गये पढ़ी लिखी फॅशनेबल स्त्रियों को भी जानती हूँ। वहिनजी, आपने भी देखा है, इनकी भाभी कितनी सुन्दर हैं। सात बच्चों की माँ होगई आज भी लड़की—सी जान पड़ती हैं। लेकिन जैसा बखान ये अपने दोस्त की बहूका करते हैं

कि गाल कन्दारी अनार जैसे लाल लाल चमकते हों ऐसी मैंने अबतक नहीं देखी ! मैं तो बहिनजी इसबार देहली उनके दर्शन करने की इच्छा से ही आई थी किन्तु भाग्यवश वे लोग कहीं गये हुये हैं।"

फिर कुछ हँसकर कहने लगीं—"वहिनजी, जान पड़ता है दोस्त की बहू इनके मन को भा गई है, इसलिये इतना बखान करते हैं। चोपड़ा साहब जान लें तो दोस्ती टूट जाय।"

इस बात से सभी ठठ्ठा मारकर हँस पडे। समीप बैठीं त्यागीजी की दोनों लड़कियाँ भी खिलखिला कर हँस पड़ीं।

त्यागीजी हँसे, किन्तु कुछ झेंप भी गये, और मीठी झिड़की के स्वर में कहने लगे—"लड़कियों के सामने मेरी खिल्ली उड़ाती हो ?"

और फिर मुझ से गम्भीरता से कहने लगे — ख़ैर बहिनजी, आपसे मैं उनकी मुलाकात कराऊंगा देखना मैं कुछ बढ़ाचढाकर कहता हूँ या यथार्थ !

मैंने कहा — "जरूर ! मैं उन से आग्रह करूँगी कि स्वास्थ सम्बन्धी लेख लिखकर पत्रों में छपवायें या ऑल इंण्डिया रेडियो से इस विषय में एक दो भाषण ही ब्राडकास्ट कर दें, जिससे समस्त नारी जाति का कल्याण हो ! वे तो सुशिक्षित आधुनिक महिला हैं, स्वास्थ्य की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न ही होंगी। पुरानी स्त्रियाँ नजर गुजर में विश्वास रखतीं थीं, इसलिये हमारी परिपाटी में तंदुरुस्त को देखकर भी यही कहा जाता है—बड़े दुबले हो गये। अब पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से ये धारणायें दूर हो रही हैं।"

उत्तर में त्यागीजी कहने लगे — मिसेस चोपड़ा बिलकुल मॉडर्न स्त्री हैं। नाराज क्यों होने लगीं।" अनुनय के लहजे में सावित्री जी मुझसे कहने लगीं — बहिनजी आप जरूर उनसे मिलें। जब आप घर आवेंगी तो मैं आपसे उनका वर्णन सुनने आऊँगीं। मगर पक्षपात न करना।

मैंने कहा — "वाह ! पक्षपात क्यों करूँगी ? मैं तो एक जज की हैसियत से सही फैसला दूँगी चाहे त्यागीजी को नागवार भी गुजरे ! और यदि- वे रेडियोपर बोलने को तय्यार हो गईं तो आपको ख़बर कर दूँगी, सुन लेना !"

सावित्रीजी के मुखपर प्रसन्नता झलक उठी। जैसे उन्हें पूर्ण विश्वास था कि त्यागीजी मिसेज चोपड़ा के स्वास्थ वर्णन में अतिशयोक्ति से काम लेते हैं और मेरा फैसला उनके पक्ष को अवश्य कमज़ोर कर देगा।

त्यागीजी ने स्पस्ट कह दिया — "वहिनजी जाने क्या वात है, ये मेरा विश्वास ही नहीं करतीं। जैसे मैं कोई अनहोनी वात कहता हूँ। मुझे क्या पड़ी है जो पराई स्त्री की झूठी प्रशंसा करने बैठूं! जैसे मैं उनपर आसक्त हो गया हूँ, इसलिये तंदुरुस्ती के बहाने उनके रूप की प्रशंसा करता हूँ। अब आप देख ही लेना !

सावित्रीजी हँसते हुअे कहने लगीं—चिड़चिड़ा क्यों उठे ? तुम्हारे वखान करने का ढंग ही ऐसा है, जो अनहोनी वात लगती है। तुम्हारी ही बात नहीं है, सभी पुरुषों की आदत होती है मित्रों की स्त्रियों की वढ़ा चढ़ा कर प्रशंसा करने की।"

मैंने इस प्रसंग को विलकुल मज़ाक का रूप देने की इच्छा से समर्थन करते हुए कहा—"विलकुल ठीक ! सभी पुरुषों को अपनी स्त्रियों में दोष ही दोष नज़र आते हैं और दूसरों की स्त्रियों में गुण! आप ठीक कहती हैं। और मैं जोर से हँस पड़ी किन्तु त्यागीजी ने आधिक गम्भीरता धारण कर के उत्तर दिया—" मैं उनमें नहीं हूँ। कितनी ही वार आपको सुना चुका हूँ। मैं तो अपनी गाँव की इस गँवारिन का अनन्य भक्त हूँ। जब जब मैं कांग्रेस के आन्दोलनों में जेल रहा, इन्हें आर्थिक, शारीरिक और मानसिक अनेक प्रकार की विपत्तियों का सामना करना पड़ा है। जिन्हें चुपचाप सहन कर के इन्होंने अद्भुत संयम का परिचय दिया है। इनके स्थान पर कोई फैशनेबल आधुनिक स्त्री होती तो जेल जाना मेरे लिए एक विकट समस्या होती। न वह चूल्हा फूँकती, न वर्तन माँजती। किन्तु बहिनजी, जेल से आकर मैं इन्हें सूखी-साखी देखता था तो इन पर मैं गर्व करता था। मैं अनुभव करता हूँ, मुझ से अधिक इनका तप है। इनके प्रति मेरे मन में श्रद्धा है। किन्तु अव यह रोगी सी सूरत क्यों वनाये रहती हैं। मुझे और बच्चों को आग्रह कर कर के पेट से अधिक खिलाने की चेष्टा करेंगी, और खुद बासी

रोटी ही खा कर रह जावेंगी। जैसे यह कोई बड़े महत्व की बात है।"

सावित्री ने उत्तर दिया—घर गृहस्थी में अपनी जिह्वा के स्वाद के लिये चीज़ बरबाद नहीं की जाती। कभी बासी रोटी खा ली तो क्या हुआ? बहिनजी, मुझसे तो यदि इन लोगों को खाना न हो तो अपने लिये चूल्हा जला कर खिचड़ी राँधना भी दुश्वार लगता है। वैसे मेरा घर है, कोई मेरा हाथ थोड़े ही पकड़े है। अपना अपना स्वभाव है।

यहीं पर बातचीत का क्रम टूट गया। घड़ी ने टन् टन् कर के आठ का समय बता दिया! सावित्रीजी चौंक कर उठ खड़ी हुईं — "बातों में कितना समय चला गया—ध्यान ही नहीं रहा—मुन्ना रोता होगा। अब बहनजी आज्ञा दीजिये, फिर मिलेंगे।"

और चलते चलते मिसेज चोपड़ा से मिलने का मुझसे फिर आग्रह करने लगीं, जिससे एकबार फिर सब को हँसी आ गई।

२

स्मृति की महिमा भी अद्भुत है। कभी कभी वह बात जो अपने लिये अत्यंत महत्वपूर्ण हो, वह भी स्मरणशक्ति की अवहेलना से भूल कर गहन कूप में ऐसा गोता खा जाती है, जैसे उसका कुछ अस्तित्व ही न हो। और कभी कभी वह बात जो अत्यंत क्षुद्र हो, जिसे याद रखना बिलकुल अनावश्यक हो वह किसी प्रकार भूलती ही नहीं। बल्कि कल्पना में भाँति भाँति के रंग बदल कर स्मृति पट पर ताजी बनी रहती है। और भुलाने के प्रयत्नस्वरूप मन में कुतूहल बढ़ता जान पड़ता है।

इसी प्रकार उस दिन मिसेज चोपड़ा के गालों की सुर्ख़ी का प्रसंग जो छिड़ा वह अपनी स्मृति के लिये महत्वपूर्ण विषय बन गया। जाने क्यों मन में मिसेज चोपड़ा से मिलने के लिये अत्यन्त ही कुतूहल उत्पन्न हो गया। मस्तिष्क किसी अन्य विषय में विमग्न होते हुए भी अचानक उनके बारे में कल्पना करने लगता। इस प्रकार समय समय पर कल्पना में उनके अनेक प्रकार के चित्र बनते बिगड़ते रहे। कई बार इस कल्पना पर मन में खीझ भी उत्पन्न हुई। किसी महत्वपूर्ण विषय में निमग्न होते हुए भी अचानक उनका स्मरण क्यों हो आता है? किन्तु यथार्थ यह है कि मिसेज चोपड़ा से साक्षात्कार करने का विचार मेरे मन की उत्कट लालसा बन गया था। जैसे मन को उनकी प्रतीक्षा थी, और उस प्रतीक्षा ने उतावली का रूप ग्रहण कर लिया था।

कई बार मैंने गंभीरता से सोचा—यह साधारण सी बात कि मिसेज चोपड़ा स्वस्थ स्त्री है, गालों पर रक्त की आभा झलकती है, इसमें इतने आकर्षण की क्या बात है जो उन्हें देखने को मन में ऐसी बेचैनी उत्पन्न हो रही है। किन्तु मन को क्या कहा जाय? उसके लिये तो यह प्रसंग ऐसा बन गया था मानों किसी साधु संत के दर्शन कर के चमत्कार देखना है। किसी अलौकिक वस्तु का दिग्दर्शन करना है। मिसेज चोपड़ा से मिल कर जैसे किसी गहन विषय का रहस्य प्रकट हो जावेगा।

मन की इस उतावलीवश त्यागीजी को देखते ही स्वतः ही मैं प्रश्न कर उठती — "मिसेज चोपड़ा आ गईं?"

और सत्य बात यह है कि नहीं सुनकर मनको दुःख भी होता था, जिसे यथाशक्ति मैंने त्यागीजी पर प्रगट नहीं होने दिया। फिर मन में लज्जा-सी भी उत्पन्न होने लगी—त्यागीजी अपने मन में क्या कहते होंगे। सावित्रीजी से भी अधिक मिसेस चोपड़ा से मिलने को मैं उत्सुक हूँ और क्यों? क्या मेरे मन में भी कुछ सन्देह की भावना जागृत हो गई है। यदि कहीं सत्य ही वे ऐसा सोचते हों मेरे लिये कितनी शर्म की बात है? अतः मैंने निश्चय किया, अब त्यागीजी से मिसेस चोपड़ा के आने के बारे में नहीं पूछूँगी। एक साधारण बात के लिये अपने मन में इतनी जिज्ञासा दिखाना अपनी असहनशीलता का परिचय देना है। किन्तु फिर भी उनको देखते ही उसी प्रश्न को दोहराने का जी करता कि "मिसेज चोपड़ा आ गईं?"

मैंने संयम से काम लिया। लगभग पंद्रह दिन व्यतीत हो गये। इस बीच में त्यागीजी से मिसेस चोपड़ा के सम्बन्ध में कोई बात नहीं हुई। अचानक एक रोज मुझे देखते ही त्यागीजी कह उठे—"बहिनजी, रात मिसेस चोपड़ा आ गईं।"

स्वतः ही मेरे होठों पर मुसकराहट आ गई, पर प्रकट में कुछ लापरवाही के भाव से मैंने केवल अच्छा कह दिया। त्यागीजी उसी उत्साह में कहते गये—मैं आज प्रातःकाल उनसे मिलने गया था। आज शामको चाय पर निमंत्रित कर आया हूँ। कुछ अन्य मित्रों को भी बुलाया है। बहिनजी, आप कुछ पहले चलकर ज़रा सब ठीकठाक करवा देना। मेरा नौकर तो गँवार-सा है, कुछ जानता नहीं; और मिसेस चोपड़ा आजकल का एटीकेट बरतनेवाली मॉडर्न स्त्री हैं।

त्यागीजी की प्रफुल्लता ने मेरा संकोच दूर कर दिया और मन को खुल कर प्रकट होने का अवसर मिला। मेरे मन में कुछ ऐसा उछाह सा भर रहा था, मानों कब की मुराद पूरी होने का अवसर आया है अतः मैंने भी बड़े उत्साह से कहा—

"लंच टाइम के बाद हम लोग यहाँ कुछ ही देर बैठ कर उठ चलेंगे। मैं आपके घर चल कर सब व्यवस्था कर दूँगी, आप चिन्ता न करें।" और उस समय से बराबर एक प्रकार से चाय पार्टी की व्यवस्था ही की योजना बनती रही। बाजार से क्या क्या सामान खरीदा जाय, और वया क्या घर में बनाया जाय, मिठाई के कितने अदद होने चाहिये, रसगुल्ला अच्छा रहेगा या रसमलाई आदि। जैसे न मालूम कितने महान् व्यक्ति को चाय पिलानी है। बल्कि शायद तब भी व्यवस्था के प्रति मन में इस प्रकार की व्यग्रता उत्पन्न न होती, जैसी उस समय हो रही थी किन्तु इस ओर ध्यान ही नहीं गया कि आखिर यह उत्कण्ठा, यह उतावली किसलिये।

ठीक तीन बजे उठकर मैं त्यागीजी के साथ बाज़ार गई। पैस्ट्री, सैण्डविच, एक होटल से तय्यार करवाये, बंगाली मिठाई, नमकीन, फल आदि ख़रीद कर त्यागीजी के घर पहुँची और उनके नौकर की सहायता से आलू के चॉपस्, दही मटर की चाट और प्याज़ की पकौडियाँ तय्यार कीं। त्यागीजी उतनी देर बड़े चाव से मेज सजाते रहे। फलस्वरूप आध घण्टे पहेले ही सब सामग्री सजकर टेबुल तय्यार हो गई।

मैं रसोई से बाहर आई तो त्यागीजी मुझे मेज का निरीक्षण कराके कहने लगे—बहनजी, तुम्हारी साड़ी रसोई में बैठने के कारण मैली सी दीखने लगी है, घर से और कपड़े मँगवालो।

मैंने कहा—उँह्, खद्दर की साड़ी कुछ मैली भी बुरी नहीं लगती है। किन्तु फिर यह सोच करके कहीं मिसेस चोपड़ा मन में मुझे असभ्य गँवार न समझें इसलिये त्यागीजी का प्रस्ताव उचित जान पड़ा और तुरन्त ही ड्राइवर को मोटर पर घर भेज कर मैंने नई रेशम की साड़ी मँगाकर बदल ली। अब कुछ कार्य करने को नहीं रह गया था इस लिये समय कठिनता से व्यतीत हो रहा था। मनकी व्यग्रतावश आँखें बार बार घड़ी की सुई की रफ्तार का निरीक्षण करने लगती थीं।

उसी समय एक दहीबड़ेवाला मटकी सर पर रखे आवाज़ लगाता हुआ दरवाजे के सामने से गुजरा। त्यागीजी कहने लगे—कहें तो दहीबड़े भी खरीद लें। इसके दहीबड़े बहुत अच्छे होते हैं और मिसेस चोपड़ा चाट की शौकीन भी हैं।

मैंने उत्तर दिया—हाँ हाँ ज़रूर लेलो, और स्वयँ उठ कर मैंने दहीबड़ेवाले को अच्छा मिर्च-मसाला और ज़्यादा दही डालने की हिदायत करते हुये दहीबड़े लेकर एक चीनी के डोंगे में मेज पर रख दिये।

समय पर एक एक करके त्यागीजी के मित्रों का आना शुरू हुआ और इधर उधर की बात होने लगी। मुझे ध्यान आया कि पान इलायची भी पहले से ही तश्तरी में लगा कर रख दूँ। इस इच्छा से कमरे में चली गई। इतने में त्यागीजी पहुँचे। धीरे से किन्तु व्यग्रता के सुर में कहने लगे—"मिसेस चोपड़ा आ गईं।"

मैं पान की तश्तरी वैसे ही छोड़कर उनके साथ बाहर निकली। त्यागीजी ने उनसे परिचय कराया। शिष्टाचार स्वरूप बात करते हुए मैंने उन्हें दृष्टिभर निहारा, और टेबुलपर बिठाकर मैं चाय बनाने लगी। सभी लोग बैठ चुके थे।

वार्तालाप प्रारंभ करते हुये त्यागीजी ने कहा—"मिसेस चोपड़ा, मैंने बहिनजी से आपकी बहुत प्रशंसा की थी, इसलिये ये आपसे मिलने की इच्छुक थीं।"

मैंने उनकी ओर दृष्टि डालकर कहा—सत्रमुच मुझे आपको देखकर बहुत खुशी हुई। त्यागीजी

री वाइफ़ सावित्रीजी भी आपसे मिलने को बहुत उत्सुक थीं। आप लोग कहीं बाहर गये हुये थे इसलिये बेचारी निराश ही लौट गईं।

मिसेस चोपड़ा ने अपने कण्ठ स्वर को स्वाभाविकता से भी अधिक मधुर बना कर कहा—"बहुत अफ़सोस हुआ, मुझे मिसेस त्यागी से मिलकर बहुत खुशी होती।"

अपने स्वभाव के अनुसार त्यागीजी कहने लगे—"उससे मिलकर आपको क्या खुशी होती, बेचारी सीधी सादी गाँव की स्त्री है, लेकिन उसे ज़रूर आपको देख कर प्रसन्नता होती।"

आश्चर्यका भाव प्रगट करती हुई मिसेज़ चोपड़ा पूछने लगीं—"तो वे ही मुझसे मिलकर क्यों खुश होतीं!"

उत्तर मैंने दिया—"बात यह है कि, वे स्वयँ बहुत दुबली पतली हैं। त्यागीजी उसके सामने आपकी मिसाल रख कर तंदुरुस्ती ठकि करने का आदेश देते रहते हैं। वे कहतीं थीं मिसेस चोपड़ा से मिलकर कुछ उपाय पूछूँगी।

यह सुनकर मिसेस चोपड़ा के होठोंपर एक गर्व की मुस्कान खेल गई, जिसे मैंने भली-प्रकार लक्ष्य किया। और मुँह नीचा करके चाय के प्याले सबकी ओर बढ़ाने लगी।

तभी मिसेज़ चोपड़ा का तेज़ स्वर कानोंमें पड़ा—"रीता को यहाँ क्यों बुला लिया? सबको परेशान करेगी। में बच्चों को टेबुलपर साथ बिठाना पसंद नहीं करती।"

मैंने उधर आँखें घुमा कर देखा — चोपड़ा साहबकी गोदमें एक ढ़ाई या तीन वर्ष की बालिका थी, जिसे वे मिसेज़ चोपड़ा की समीपवाली कुर्सीपर बिठाने का उपक्रम कर रहे थे। स्त्री का आदेश पाकर कुछ सिटपिटा कर स्तब्ध रह गये।

तुरंतही मैंने कहा — "वाह! परेशान क्या करेगी? उसे बैठने दीजिये, जो कुछ खाती हो, इसे भी दीजियेना।"

सभी ने मेरा समर्थन किया — बालसुलभ लालायित दृष्टिसे खाद्य-पदार्थों को देखती हुई रीता बैठ गई। और मिसेज़ चोपड़ा ने त्यौरियोंपर बल डाले हुये बिस्कुट तोड़कर उसके हाथमें टुकड़ा थमा दिया।

सब लोग खाने पीने लगे। त्यागीजी ने घुमा-फिरा कर मिसेज़ चोपड़ा के स्वाथ्य का प्रसंग छेड़ दिया, जो रीता के आने के कारण समाप्त हो गया था।

मिसेज़ चोपड़ा की वह गर्व भरी मुस्कान लक्ष्य करके मैं भी चाहती थी कि अपने विषय में कुछ कहें, अतः मैंने कहा—

"सावित्रीजी हर समय अपने बच्चों और त्यागीजी की देखरेख में व्यस्त रहतीं हैं, अपनी ओर ध्यान नहीं देतीं। त्यागीजी को उनसे यही शिकायत है।"

मिसेज़ चोपड़ा दर्प के साथ तक़रीर के लहज़े में कहने लगीं—"हमारे मुल्क की औरतों को यह सेन्स ही नहीं है कि अपनी तन्दुरुस्ती कायम रखना कितना जरूरी है। इधर उधर के बेकार काम करेंगी, लेकिन अपनी फिक्र नहीं करेंगी। सारा वक्त चौके-चूल्हेमें बरबाद कर देंगी। इसलिये हमारे देश में औरतों की आँखें कमज़ोर हो जाती हैं। मुँह की खाल स्याह पड़ जाती है और तीस वर्ष की आयु ही में बूढ़ी बीमार-सी दीखने लगती हैं। न तन्दुरुस्ती का ख्याल रखें न रहन सहन का ढंग सीखें। इस विषय में तो हमें विदेश की स्त्रियों से शिक्षा लेनी चाहिये। योरूपियन लेड़ीज को देखिये। चालीस की आयुमें भी लड़की-सी मालूम होती हैं। मेरे ख्याल से तो तन्दुरुस्ती हजार न्यामत है, वरना ज़िन्दगी का लुत्फ़ ही क्या है! मैं तो नित्यनियम से एक्सरसाइज़ करती हूँ। और खाने पीने में बहुत एहितियात रखती हूँ। ज्यादातर वही चीज़ें इस्तेमाल करती हूँ, जो स्वास्थ के लिये लाभदायक हों।"

मैंने खाने की प्लेटें उनकी ओर बढ़ाते हुये कहा—"कुछ खाइये भी तो!"

वे तक़रीर करने में मशगूल थीं, जोशमें तीन चार दही बड़े और मटर की चाट अपनी प्लेटमें डालतीं हुईं मुझसे बोलीं — "आपका क्या ख्याल है?"

मैंने दाद देते हुये कहा—अपने स्वास्थ्य के लिये प्रयत्नशील रहना गुण ही नहीं, धर्म है!"

त्यागीजी ने भी तारीफ की—"आपका फ़रमाना बज़ा है। मैं अपनी वाइफ़ से यही तो कहता हूँ, मेरी फ़िक्र करो, लेकिन साथही अपनी भी रखो।"

मिसेज़ चोपड़ा चायका घूँट भरकर शायद कुछ कहतीं—परन्तु जैसे ही उन्होंने झुक कर प्याला होठोंसे छुआया, उसी समय रीताने किसी को कुछ और वस्तु न देते देखकर स्वयं दही बड़ा लेने के प्रयत्न में छप् से डोंगे में चम्मच गिरा दिया, जिसके फलस्वरूप बहुतसा दही उछल कर मिसेज चोपड़ा के बायें गाल पर पड़ा, शायद कुछ छींटें आँखों में भी चलेगये, उनके मुख से हलकी चीख निकल गई और हड़बड़ाकर कुर्सी से उठ कर खड़ी हे गई।

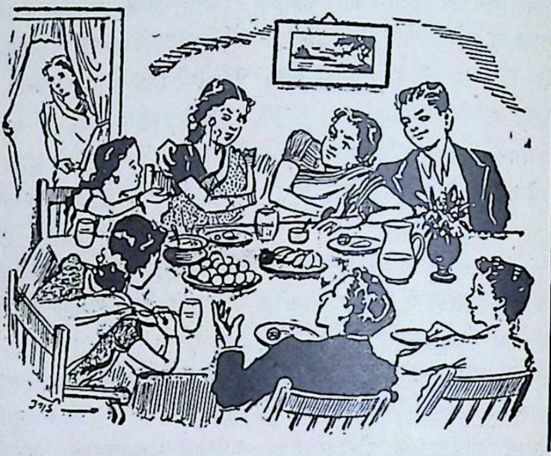

वालिका रीता भी जैसे कुछ अपनी गलती महसूस कर के भयभीत सी हो कर रो उठी। क्षण भर में सब अस्त-व्यस्त से हो गये — कोई पानी लेने दौड़ा, कोई रीता को चुप करने का उपक्रम करने लगा।

मिसेज चोपड़ा आँखें मलतीं हुईं, सारा गुस्सा चोपड़ा साहब पर उतारने लगीं—"मैंने पहले ही कहा था, रीता को टेबुल पर न बैठायें, आप माने ही नहीं।"

वेचारे चोपड़ा साहब रीता को लेकर झेंपते हुए नौकर को देने वाहर चले गये। इतने में त्यागीजी भाग कर कमरे से एक तौलिया उठा लाये और मिसेज चोपड़ा की ओर बढ़ा दिया। घबराहट और आँखों की तिलमिलाहट से परेशान मिसेज चोपड़ा ने कस कर बायाँ गाल पोंछ डाला। बेचारी काफी लज्जित सी हो गई थीं—मुख नीचा किये साड़ी के छींटे साफ करती हुई कहने लगीं—"सॉरी, रीता के कारण बड़ी गड़बड़ हुई, आप लोग चाय पियें।"

मैंने लक्ष्य किया — इस समय सभी का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो गया था और सभी मन्द मन्द मुसकरा रहे थे। त्यागीजी ख़ामोश आँखें फाड़े उनके बायें गाल पर दृष्टि गड़ाये थे। उनकी वह आकृति देख कर मुझे अब हँसी रोकना कठिन हो गया। किन्तु हँसना असभ्यता समझी जायगी, इसलिये बहानेस्वरूप हँसी का कारण स्पष्ट करते हुए मैंने कहा — इन दहीबड़ों ने ग़जब कर दिया।"

लेकिन त्यागीजी ने बात बनने नहीं दी। वे शायद अब सारा रहस्य समझ चुके थे। खिल-खिलाकर हँस पड़े — हाँ, इन दहीवड़ों ने तो रंग ही बदल दिया।"

मिसेज चोपड़ा अब भी अपनी साड़ी झाड़ने में व्यस्त थीं, सुन नहीं सकीं, किन्तु त्यागीजी के पेट में मानों चूहे कूद रहे थे—मानों मिसेज चोपड़ा की तंदुरुस्ती का राज़ खोलने को व्यग्र हों — चोपड़ा साहब के आते ही फिर बोले — अमाँ यार! इन्हें एक ही दाढ़ से मक्खन खिलाते हो क्या, जो खून एक ही गाल पर दौड़ता है।"

यह सुनते ही मिसेज चोपड़ा चौंक पड़ीं, जैसे शरीर में किसी ने बिजली का तार छुआ दिया हो। स्वतः ही उनका हाथ बायें गाल पर चला गया। भागती हुई कहने लगीं — "मुझे माफ़ करें—कपड़े बदलने जाती हूँ।"

किसी प्रकार चाय का प्याला समाप्त कर चोपड़ा साहब भी इज़ाजत माँग कर चले गये। इस काण्ड के बाद फिर पार्टी का रंग नहीं जमा। सभी जल्दी जल्दी चाय समाप्त कर चले गये। त्यागीजी भी लज्जित से हो गये थे इसलिये किसीने भी उस विषय पर फिर बात भी नहीं की।

सब के जाने के उपरान्त त्यागीजी मुझसे कहने लगे—"बहनजी मैं बड़े धोखे में था। लिपस्टिक तो मैं जानता था, किन्तु गालों पर भी कुछ लगाया जाता है इसका कभी अनुमान ही नहीं हुआ।

मैंने कहा — "मैं तो आपके वर्णन करने की शैली की तारीफ करती हूँ, जिसने मेरे मन में

इतना आकर्षण उत्पन्न कर दिया था। यहाँ आकर तो उन्हें देखते ही मैं समझ गई थी। क्या आप सचमुच इसे रक्त का नैसर्गिक रंग समझते थे।"

शर्माते हुए त्यागीजी कहने लगे — और क्या आपसे भी मज़ाक करता; कभी ख्याल तक नहीं आया कि बनावट है। ये क्या चीज़ होती है बहिनजी?"

मैंने मोटर में बैठते हुए कहा — मेरे साथ 'कॅनाट प्लेस' चलिये, अभी ये सारी वस्तुएं खरीदवा दूँगी, जिससे सावित्री जी का रंग भी गोरा हो जायगा, गालों पर खून की सुर्खी भी झलक उठेगी।"

त्यागीजी कहकहा मार कर हँस पड़े — "वह तो वह सब देख कर मेरे झाड़ू मारेगी।"

———

गुजराती कविता:

अमदावादनुं घर

[श्री 'सुन्दरम्']

अमदावाद घर घणां छे एम हतुं घर एक जो,
बहार थी अमे रहेवा आव्यां नोकरी नो लई टेकजो।
आँगणे ऊँचां पगथियां ने पगयिरा नहीं पत्थर जो,
अमारे पायथी चंपल सरी, मजूर शीश थी बिस्तर जो।
ओटला खुणें, संडास अने, संडासनी त्यां सुवास जो,
बाइजीने थया बखाला, ने दादीने चड्यो सास जो।
मेडे हतो वास अमारो, मेडे छापरूं माथे जो,
वर अमारा नळियाँ फेरवे उभा उभा हाथे जो।
छापरे बसी छिपकली ने वसता सो एक उंदर जो,
रातरे खुणें–खुणेंथी काढ़े सरघस फैंक् छछुंदर जो।
चकली हती चूल्हा पासे, चोकड़ी पण त्यां पासे जो,
खालनुं मोढुं दांतियां करे सामुं ज बारे मासे जो।
चकली अेनी चांच खोले एक घड़ी दिन मांहे जो,
पवालुं पाणी पामतां पामतां दम चाल्यो जाय वांसे जो।
कपड़ा धोया चोकड़ी नीचे अर्धी पोल त्यां धोती जो,
खाली थवानी वाटड़ी जोतां आंख थई जाय रोती जो।
घरवाली डोसीनु मोढुं टकमक घडियाल चाले जो,
ओटला खुणे बैठी नाकमां छ शेर छींकणी घाले जो।
घर आगलनो बीजली दीवो शोक्य शो जागे राते जो,
दूधवाला ने छापांवाला नींद नसाड़े प्रभाते जो।
नोकरीए वर जाय अमारा आखे शहेर आलोटे जो,
धरनी धोलकीमांय अमारो जीव घुमाडाय गोटे जो।
गाममां अमे सीमने खूदतां दोड़ता दोटंदोटा जो,
शहेरमां हवे मांजतां हाथ थी लपसी पड़े लोटा जो।
उजड़े अल्या छापरा अद्धर! पोलनी पालो तूट जो जी,
मोकळूं जीवन कोई जिवाडो, कोडी अमारी न लूंट जो जी।

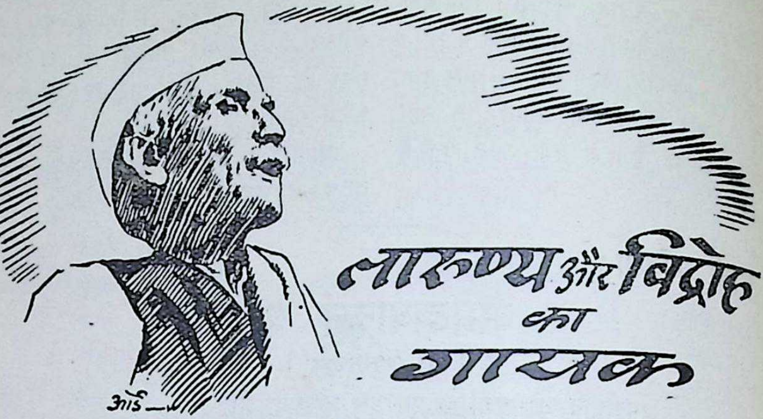

तारुण्य और विद्रोह का गायक

[श्री पुरुषोत्तम दास मोदी]

बलि वेदी पर चढ़ती हुई तरुणाई जिसकी प्रेरणा हो और शूली और काँटों के पथ पर बढ़ने वाले तरुणों का प्रेरणा स्रोत हो, जो देश की मुक्ति के लिए अपने सपनों में आग लगा कर सूझों, और क्रिया के पथ पर रात को दिन बनाकर निरंतर बढ़ता रहे ऐसे तारुण्य का जो आराधक हो, जिसके होठों पर प्यार, प्रलय, प्रणय, पूजा और विद्रोह के स्वर हों जो यह कहने का साहस रखता है कि— "साँस तो बाँस की तरह है, उसका एक सिरा यदि लावण्य स्वरमयी बाँसुरी बनने में लग सकता है, तो दूसरा रण-डंका बनाये जाने में काम आ सकता है।" उस बलि गायक साहित्य देवता पं. माखनलाल चतुर्वेदी की ६१ वीं वर्ष गांठ पर समस्त हिंदी जगत ने एक स्वर से उनकी हीरक जयंती मनाई है।

शरीर से शिथिल होते हुए भी आज उनकी वाणी का ओज, उनके सूक्तों की अभिनवता ज्यों की त्यों ही नहीं है वरन् स्वतंत्र भारत में वह और भी शक्तिशाली हो गई है। आज हम उस प्रतिमा का अभिनन्दन करते हैं जिसके देश का प्रतिबिम्ब उसके जीवनका प्रतिबिम्ब है और वही उसके साहित्य का बिम्ब।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् द्वितीय महायुद्ध आरंभ हुआ, देश में राष्ट्रीय आंदोलन इस बीच चलते ही रहे। द्वितीय महायुद्ध के काल में राष्ट्रीय आंदोलन जोरों से फुँफकारा और अपनी अंतसुप्त प्रकिया कर गया। दमन तथा प्रतिबंधों के कारण साहित्य में मारधाड़ और उच्छृंखलता मची रही। युद्ध के समाप्त होने पर अनेक संकटों पर झूलने के बाद १५ अगस्त आया, ३० जनवरी आयी और अब २६ जनवरी! पर इन सब से गुजरने के बाद आज संक्राति काल में ही आकर हम टिके हुए हैं। यह साहित्य का संक्राति काल है। प्रगतिवाद आज उतार पर है। प्रगतिवाद की कम्युनिस्ट रूढिता और संकुचितता ने उसे मुक्त गगन में विकसित होने का अवसर ही नहीं दिया। आज का कलाकार जनजीवन को अपने

१९५०

बाहुपाशों में कस कर अपनी संवेदनाओं एवं अनुभूतियों की सतह पर सृष्टि करता है।

अभी उस दिन पटना विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री शारङ्गधर सिंह ने मुजफ्फरपुर साहित्य परिषद के उद्घाटन भाषण में संक्रांतिकाल की चर्चा करते हुए कहा था—"एक बार फिर आज नये विचार और शैली का पुरानी मान्यताओं से संघर्ष हो रहा है। व्यंग और उपहास की फूँक से यह चिनगारी बुझेगी नहीं; और भी निखरेगी।"

जब जब समाज में ऐसे क्षण आते हैं, तब युग एक नूतन अभिव्यक्ति का तकाजा करता है। जिस भाँति कलाकार के शब्दों में—"जहाँ तक ब्रह्मा की सृष्टि है, कला वहीं तक सीमित नहीं रहती, उससे आगे भी जाती है।" भरत मुनि द्वारा कथित साहित्य के नवरसों में ही जीवन आबद्ध नहीं है। शास्त्र जीवन के बौद्धिक तथा मानसिक पक्ष हैं, किन्तु साहित्य जीवन का हृदय पक्ष है। उसमें ही वह रस की धारा है जो युग के शाश्वत तत्त्वों को निरंतर प्रज्वलित तथा प्रकाशित रखती है।

जीवन जगत की समस्याओं में प्रवेश करता है; एक समस्या हर बार उसी रूप में लौटकर नहीं आती। जविन एक नया अनुभव पाता है, नया ज्ञान पाता है, उसके मनस्तत्व पर एक नूतन प्रक्रिया होती है। युग चेतना को सहसा बिन पंखों के परिस्थितियों के गगन में उड़ना होता है। नेत्रहीन कलाकार सूर को क्या हम भूल गये। सर्व प्रथम उसी ने साहित्य में वात्सल्य रस की प्रतिष्ठा की थी। पराजित तथा निराश युग बालकृष्ण के आनंददायक कृत्यों में कुंज-कुटीरे यमुना तीरे उसकी वंशी की धुन सूर के गीतों में सुन, सुख का अनुभव करता था।

आज का युग उससे भिन्न है। वह भावनाओं का युग था, यह बुद्धि का युग है। वह मानव युग था, यह शैतान का ज़माना है। आज मनुष्य अपनी हार को हार नहीं मानता, मृत्यु को मृत्यु नहीं। ज़माना उससे तंग है और वह ज़माने से बेज़ार। वायुयानों की भाँति युग भी बड़ी तेजी से दौड़ रहा है। चीन के पैगोडा मंदिर की दीवाल पर चीन की भोली जनता ने अपना आश्चर्य अंकित कर रखा है—"ओ! स्वर्ग के देवताओ! जब कि वायुयान इतनी गति से आकाश में मंडरा रहे हैं, फिर क्यों न तुम भाग जाते।" अर्थात् आज यह संसार देवत्व—यानी मर्यादा, सत्य तथा नैतिकता से परे है।

आज के युग का यह तो नक़शा है। कलाकार किन रेखाओं को उभारे और किन में कौन सा रंग भरे, यह है उसकी समस्या।

माखनलालजी इस युग के उत्सुक और चैतन्य कलाकार हैं। वे शब्दों और नामों से ही नहीं भारत के संस्कार, संस्कृति तथा परम्परा उनकी वाणी में बोल रहे हैं 'भारतीय आत्मा' तो एक प्रतीक मात्र है। देश की धड़कनों पर सदा उनके कान रहते आये है। आज के मसोस की अनुभूति उन्होंने अपनी कला में की है।

बापू की मृत्यु के पश्चात् देश की दशा बदल-सी गई है। प्रत्येक कलाकार ने यह अनुभव किया है और उसे समय-समय पर अपनी रचनाओं द्वारा व्यक्त किया है। १५ अक्तूबर १९४९ को दरभंगा के ओरियंटल

कान्फ्रेंस में काव्य समारोह के अध्यक्ष पद से अपने भाषण में माखनलालजी ने कहा—"साहित्य यदि प्रतिबिम्ब है तो हमने अपनी वाणी में प्रतिबिम्बित होनेवाला महान् बिम्ब (महात्मागांधी) खो दिया।"

माखनलालजी ने अपने भाषण में प्रत्यक्ष रूप से आज की तरुणाई को, आज की कला को विद्रोह के लिए आमंत्रित किया है।—"जिसे हम वर्तमान कहते हैं, वह हमारी साँसों में से इस तरह फिसल रहा है, मानों वह अभी अभी है और अभी ही हाथ से निकल जायगा।"

"आज हम पानी की चट्टान पर अपने सपनों के चित्र बनाने बैठ गये हैं, अतः जो कला की पृष्ठभूमि चुनने में भूल करता है, उसके चित्र धुँधले हों, उसके गीत दुरुह हों, उसके स्वर अर्थहीन हों, और उसकी इच्छायें लोक रुचि तक पहुँचने में असमर्थ हों तो इसमें आश्चर्य क्यों होना चाहिये। इसीलिए भूतकाल यानी इतिहास ऐसे निर्माणों को अपने पास संचित करने से इनकार कर देता है, और वर्तमान काल यानी लोकरुचि उसे सुनने में बहरी हो जाया करती है। यही कारण है कि आज के तरुण को युग ने विद्रोह के लिए आमंत्रित किया है।"

"बीते युग के कलाकारों ने और पाठकों ने कला को स्मरण नहीं त्रिस्मरण माना। कला मानो जगत् के द्वन्द्वों को भुला देने में एक मोहक, कोमल, सुंदर भुलावा रही है। आज का कलाकार, कला में कन्ठों का इतिवृत्त लिखने की क्षमता चाहता है। वह वस्तुस्थिति का विस्मरण नहीं, चित्रण चाहता हैं। वेदान्त का वैराग्य, धन की हृदय हीनता और उदंडता कला की विस्मरण-शीलता का काव्य शास्त्र-विनोद आज के कलाकार के लिए ये सब मानो एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। वह साहित्य को दोनों सिरों से जलाई जाने वाली मोमबत्ती का ऐसा खेल नहीं मानता जिसके प्रकाश के कुछ मानी न हों और जिसका अस्तित्व क्षण भर में नष्ट किया जा सके। इसीलिए आज का कलाकार कालिदास का कला वैभव लेकर तुलसीदास के चरणों में चढ़ने को बाध्य है।"

"आज के चिन्तक के लिए कला अयथार्थ का ऐसा आवरण नहीं है जो यथार्थ के कष्टों से बचा ले जाने के लिए खुद धोखा खा सके और पीढ़ी को भी धोखा खाने के लिए समर्थ कर सके। वह यह नहीं मानता कि प्राचीन कौशल को थोड़ा सा बदल देने से नवीन कला का निर्माण हो जायगा। वह मानव धारणा की समूची पृष्ठभूमि में ही परिवर्तन चाहता है।"

"जो धारणाएँ बहुत बूढ़ी हो गई हैं जिनमें विश्व में चलने फिरने की क्षमता नहीं रह गई है, वे समाधि क्यों न लेलें! यदि वे निन्दित होने से पहिले समाधि ले लेंगी तो इतिहास में ठहरने के लिए जगह पालेंगी, नहीं तो वे साँस लेकर जीने वाला मुर्दा बनकर जियें। भले ही वायुयान की गति से दौड़ते हुए विश्व के द्वारा उनके भाग्य में नष्ट और दुर्गंधित होना ही लिखा है।"

"परम्परा के वैभव के रथों को त्याग कर आज का कलाकार अपने ही पैरों यात्रा करने के लिए बाध्य होगया है।"

आज की कला को जीवन की धूप-छाँह में निखरना होगा। उन्होंने आगे कहा—"जीवन तो मानव की गति को रोकनेवाली रुकावटों से लड़ते हुए उसका नाश करने और अनुकूलता में गड़नेवाले काँटों को उखाड़ फेंकने और युग की पुस्तक के पन्नों के उत्तरदायित्व की स्नेहभरी उँगलियों से पल्टे जाने में ही अपनी परिभाषा देखता है। कला इस जीवन से दूर रहकर कहाँ रहेगी? क्या जीवन जलता रहेगा और कला बाँसुरी बजाती रहेगी? क्या वह इतनी क्रूर, इतनी निष्ठुर हो सकेगी! जिस तरह समुद्र की लहरें सौ-सौ मील आगे और पीछे जाकर भी गंभीर जल में शाश्वत सजगता का निर्माण किये रहती हैं उसी तरह कला को द्रवित, मधुर, शीतल-प्राणमय रहते हुए भी उसमें जीवन को संहारने की शाश्वत सजगता होनी जाहिये।"

"संघर्ष, शोध, ख़तरे, परिवर्तन, क्रियाशीलता और पुरुषार्थ इन सबके बीच हमारी प्राणवान् कला का स्वर प्रतिबिम्बित होना चाहिये। हमारी कला देश की उबासियों जैसा अल्पप्राण न हो। वह स्वासों जैसी महाप्राण होनी चाहिये।"

निर्माण के पथ पर विद्रोह के लिए चुनौती देती हुई 'भारतीय आत्मा' युग के तरुणों का अभिनन्दन स्वीकार करे।

पिछले दिनों उनकी एक कविता सुनी थी—"ओ पूरब के प्रलयी पंथी"। यह कविता माखनलालजी ने अपने गीतों को प्रकाशन के लिए कलेजे पर पत्थर रखकर प्रकाशक के दरवाजे पर पटकते हुए लिखी भी। यह कविता इस बात का प्रमाण है कि देश की तरुणाई उनकी वह बलवान् पूजा है जो उनके सूत्रों का बल बनकर उनकी प्रेरणाओं में उतर पड़ती है। यह कविता उनके गीतों की भूमिका है। जिसके आधार पर भारतीय आत्मा की प्रेरणा और लक्ष्य को हम जान सकते हैं।

आँसुओं का संग्रह कर, उनमें बार-बार न गीला हो और परिस्थिति में मर मर कर जीवितरहने वाला गायक कितने मसोस से आज कह उठता है, जब उसे जगत् के सामने अपने गीतों द्वारा प्रगट होना है—

ओसों की इन लघु बूँदों की,
धारा कैसे बनती बोलो।
अपनी इन जीवित मौतों पर
कौन ज़िन्दगी ढलती बोलो।

तरुणाई जिसका सम्बन्ध है, वह तरुणाई ही जब—

जब तक राग रंग पर वलि-वलि,
होती हो अलमस्त जवानी
जब तक प्रेयसियों की यादों-
पर ढल जाय आँख का पानी।
जब तक प्रश्न चिन्ह बनती हो
सूली की असहाय पुकारें
जब तक प्राण बचा रखने को
हम पशु कोटि-कोटि तन धारें?
जहाँ तरुण शृंगार प्रिय हो
जहाँ युवक की ढीली बाहें।
हुंकारों से बदल बदल कर
कवि ले रहा प्रणय की आहें।

आज जब कि बोलने के साधन सस्ते हो गये हैं, रोडियो, लॉउड स्पीकर, सभी बुरी तरह बोलने और चीखने का सौदा करने लगे हैं; और आज जो जितना अधिक घुमा-फिरा कर कहने का साहस रखता है वही पूजा का पात्र बन भी सकता है।

भारतीय आत्मा ने इसी की ओर संकेत करते हुए लिखा है—

जहाँ तेज भाषा पर दे दे,
उद्धारक का पद अनजाने
वहाँ कौन है? जिसे कहूँ मैं
युग की साधों को पहिचाने।

यहाँ संत तुलसीदास की विनयावली की एक पंक्ति याद आ जाती है—

"वाक्य ग्यान अत्यंत निपुण भव-पार न पावै कोई।"

माखनलालजी ने एक बार मुझसे कहा था—"गांधी और भारत माता मेरे साहित्य के प्रतीक हैं, यथार्थ में गांधी और भारत माता के रुप में कृष्ण की उपासना की गई है।" तभी माखनलालजी ने पूजा और विद्रोह की दुहरी बाँसुरी बजाते हुए साहित्य देवता में लिखा है—"जिस बीन से में रातको तड़पा देनेवाली सोरठ गाता हूँ, उसीसे सुबह विश्व संहारकों से जूझने जाते समय नक्कारे पर डंके की चोट लगाता हूँ।"

हिम-तरंगिणी में उनके गीत की कुछ पंक्तियां हैं—

"मत उकसा मेरे मनमोहन कि मैं जगतहित कुछ लिख डालूं
तू है मेरा जगत कि जग में और कौन सा जग पालूं।

पूजा के फूलों को विद्रोह के धागों में सूत्रों की सूजी से गूँथ कर 'ओ पूरब के प्रलयी पंथी' में माखनलालजी पुकार उठते हैं—

जीने की गुलाम चाहोंने,
जहाँ मरण का मूल्य बिगाड़ा,
बलि की रानी यहाँ पढ़े,
कैसे अपना अस्तित्व पहाड़ा।

* * *

चांग मिटे सोकानों मिट ले?
यूसा का घर बार उजाड़े
आज उगता सूर्य पूर्व का
डुबा बजाते हमी नगाड़े।

* * *

इस जग में जिन घातक प्रभुताओं-
ने घर-घर आग लगाई
मासिक वेतन पर बिक उनकी
पामरता हमने दुलराई।

तरुणों का आवाहन कर उन्हें एक ललकार देते हुए माखनलालजी ने कहा—

उठ तू इस युद्धोत्तर जग की
प्रवंचना में आग लगादे;
ये गुलाम, ये भले आदमी
ले गंगा में डाल वहा दे।

* * *

दिन को रात बना क्यों अगणित,
सपनों का भर स्वाँग रहा है,
एक स्वप्न, बस एक स्वप्न
ही तो तेरा युग माँग रहा है।

* * *

श्यामल रंगों की नदियों में
लाल रंग बह जाये तो क्या?
कुछ करोड़ कायर गणना का,
पावन गढ़ ढह जाये तो क्या?

* * *

फेंक तराजू रे बलि-पंथी
सिर के कैसे सौदे-सहे,
बहुत किये मीठे मुँह जग के
अब उठ आज दाँन कर जहें।

* * *

चार दिनों की सिर्फ चाँदनी
वर्षों का विश्वास न कर तू
जोड़-जोड़ कर कर-पल्लव
भुज दंडों का उपहास न कर तू

* * *

सिर के ऊपर पेट चढ़ाकर
अपना सत्यानाश न कर तू
'जन गण मन अधिनायक' तेरा
उसे विश्व का दास न कर तू

* * *

बूढ़े युग के बूढ़े सपने
नन्हें हाथों से दफना दे
ओ ! पूरब के प्रलयी पंथी
उठ-चल एक भैरवी गा दे ।

* * *

जन-जन अमर उमर दे
मुक्त ! मुक्ति का वर दे ।
तब मैं कलम उठाऊँ
तब मैं फिर कुछ गाऊँ ।

* * *

निरंतर अस्वस्थ तथा वृद्ध होने पर भी उनकी वाणी तथा कलम पर उस शैथिल्य का ज़रा भी प्रभाव न होने से उस योद्धा की स्मरण बेला में 'हदीस' की कुछ पंक्तियाँ याद आ जाती हैं जिनका भाव है—

"अज्ञानी के लिए वृद्धावस्था शरद ऋतु के समान है, परन्तु ज्ञानी के लिए वृद्धावस्था शालमंजरी से युक्त फलों के बोझ से नत प्रफुल्ल बसंत ऋतु के समान है।"

काश माखनलालजी के स्वास्थ्य में भी बासंती बहार लहराती रहती ।

* * *

वह वाणी !

"एक वाणी है, जो झोपड़ियों की कराह को राजमहलों में ले जाकर टकराती है और राजमहलों के अपमानों को झोपड़ियों के सेवा-पथ में मिले प्रभु के प्रसाद की तरह ग्रहण करती है। एक वाणी है, जो गलियों में, कूचों में, झोपड़ियो में, महलों में, पहाड़ों में, गुफाओं में, भीड़ों में, एकान्तों में, विजयों में, विजय-पथ की पराजयों में "चलो-चलो" का स्वर लिये, बराबर सुनाई पड़ती चली आ रही है।"

'साहित्यदेवता'

पहली वर्षा !

[श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी]

दुपहरिया में मैं सोया था—पंखा की गर्म हवा के झोंके से बचने के लिए घर के सारे किवाड़ बंद करके ! अचानक नींद टूटी—देखता हूँ घर का बिजली-पंखा बंद है और बाहर शोर मच रहा है। जैसे, आँधी हो। दरवाज़ा खोला—ओहो, खूब वर्षा हो रही है। यों कहिए कि आँधी और वर्षा दोनों।

बड़ी-बड़ी बूँदें। पेड़ों की डालें पेंगें ले रही हैं कच्चे आम टूट-टूट कर गिर रहे हैं।

इस साल की यह पहली वर्षा है ! पहली वर्षा के साथ क्या आँधी का होना अनिवार्य है ? और जिनकी डंठलें पुष्ट हैं, वे वर्षा से रसीले बन जायँ, उसके पहले क्या कुछ कमज़ोर डंठल वाले आमों का गिर पड़ना लाज़िमी है।

वर्षा समाप्त हुई—झोंके के साथ जो आयी थी, वह झोंके में ही गई। आसमान में छिटपुट बादल के भूरे टुकड़े उड़ रहे हैं। ज़मीन से सोंधी गंध निकल रही हैं। और ये आम के पेड़—तुरत-तुरत नहाकर खड़ी दुल्हन-सी लग रहे हैं ! शाम की सुनहली किरणें इनके पत्तों पर कैसी चम-चम कर रही हैं।

वर्षा के बाद पेड़ों की शोभा देखते मैं कभी नहीं अघाता। पढ़ा था, कवि सत्यनारायन को बी. ए. की परीक्षा देनी थी। परीक्षा के समय के कुछ पहले वर्षा हो गई। बेचारे के मन में, पेड़ों की धुली-धुलाई पत्तियों को देखते ही, कविता उमड़ आई। उधर परीक्षा के पर्चे बँट रहे थे, इधर आप कविता, की पंक्तियाँ पर पंक्तियां लिखते चले जा रहे थे।

सचमुच वर्षा के बाद पेड़ों की शोभा अनुपम हो उठती है। धूल के कण-कण धुल जाते हैं गर्मी के बाद शीतलता पाते ही उनका हरा रंग निखर पड़ता है। पत्तियाँ हँसती-सी मालूम पड़ती हैं। यदि उस पर सूर्य की किरणें तब पड़ने लगें जब तक कुछ बूँदें उन पर इधर-उधर लिपटी हैं, तो फिर क्या कहना ? और यदि वे किरणें संध्या की हुईं ? अहा ! गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

मेरा यह घर भी क्या अनोखा है। सामने आम के कितने घने पेड़ हैं। केले भी हैं। कुछ और पेड़ पौधे भी हैं। शहर में रह कर भी शहर से दूर ! नगर में रहकर भी प्रकृति की गोद में। इन आमों को देखकर एक मित्र ने कहा था—अम्बपाली के लेखक के उपयुक्त ही यह स्थान है।

आज प्रथम वर्षा की इस पहली संध्या को आम का हर पेड़ अम्बपाली बन गया है। वे मुस्कुरा रहे हैं, बाँहें हिला रहे हैं, उँगलियों से इशारे कर रहे हैं, और लगता है, कहीं ये अचल एकाएक नाच न उठें—छम छम ! छमा छम !!

[डायरी से, २०-५-५०]

ध्वन्यात्मक एकांकी :

सृष्टि का आखिरी आदमी

[श्री धर्मवीर भारती]

: ध्वनि पात्र :

१. उद्घोषक
२. भीड़ का एक व्यक्ति जो बाद में सृष्टि का आखिरी आदमी सिद्ध होता है
३. शासक
४. वैज्ञानिक
५. भीड़
६. सेना

समय
[अनिश्चित]
भविष्य

[किसी विशेष राजाज्ञा के समय होने वाली तुरही, शंख और नक्कारे की आवाज़। पृष्ठभूमि में एक व्यक्ति भारी आवाज़ से केवल "सुनो ऽऽ ओ सुनो ऽऽ का आलाप भर रहा है।]

उद्घोषक

ओ इन्सानों!
ओ अनुराजा की सन्तानों
सुनो ओ सुनो!
बोल रहा हूं मैं
भविष्य के एक नगर के चौराहे से
बोल रहा हूँ!
यह भविष्य के अन्धकार में छिपी
सभ्यता की नगरी है,
इस नगरी की देहरी तक पग धरते
इतिहासों ने कितनी मंज़िल तय कर डालीं,
और संस्कृति ने कितनी करवटें बदल लीं।
जिसका नकशा रेगिस्तानों की बालू पर
गरम खून से लिखा गया था;
जिसके शिलान्यास में कितने
नंगे, भूखे, मुर्दा बच्चे दफन हुए थे
तब यह नगरी बस पाई थी।
मैं भविष्य के उसी नगर के चौराहे से
बोल रहा हूँ!

[चौराहे पर बहुत से व्यक्तियों का शोर। भय-त्रस्त स्वर, दबी हुई फुसफुसाहट जो कभी कभी झल्लाहट का रूप ले लेती है। कभी कभी कोई चीख़ पड़ता है छोटे छोटे बच्चों का क्रन्दन, भिखारियों की आवाज़ गाली

गलौज; जो अन्त में उसी फुसफुसाहट में
खो जाता है।]
आवाजाही धक्कामुक्की, चीख पुकारें
यह जो सारा शोर आपको सुन पड़ता है,
सच तो यह नगर डगर में गली गली में
बहुत भीड़ उमड़ी पड़ती है,
और नगर में तिल धरने को जगह नहीं है
शोर बहुत बढ़ता जाता है !
जाने क्यो यह सभी लोग हो रहे इकट्ठे
चौराहे पर;
सभी ओर से उमड़ी आती भीड़
हजारों बच्चे-बूढ़े, पुरुष-स्त्रियाँ जल्दी जल्दी
कदम बढ़ाते चले आ रहे।
लेकिन ये कुछ अजब लोग हैं,
इनके हाथ पांव छोटे हैं,
माथा धँसा हुआ अन्दर को
पेट बढ़ा है आगे निकला,
मांस लोथड़ों जैसी दो गन्दी सी पलकें
झूल रही हैं !
इनकी गति में शान नहीं है।
गन्दे मेढ़क से कीचड़ में
फुदक फुदक कर चलते हैं ये !
दल के दल ये चले आ रहे
जैसे घृणित प्लेग के चूहे
चले आ रहे हों गलियों में
[शीशे के फर्श पर सैकड़ों चूहों की
पगध्वनियों की आवाज़]
जाने क्या है आज
भीड़ बढ़ती जाती है।
इनकी बातों से कुछ नहीं समझ में आता
इनकी बोली बदल गई है !
कहते हैं सदियों पहले इन इन्सानों ने
काला गाढ़ा खून पिया था
सड़े हुए मुर्दे खाये थे
तब से इनकी आवाजें ही बदल गई हैं।
[कुछ घुटते हुए और सिसकियों जैसे
स्वर में भीड़ की आवाज। उनीदे स्वर
में जैसे मंत्र-मुग्ध शव कह रहे हों
"कुछ रहस्यमय कलुष अमंगल होने
को है।"
लगता है यही वाक्य [illegible]

ध्वनि प्रतिध्वनि की ताह वर्तुलाकार लहरों
में फैलता जाता है !]
फिर भी जो कुछ सुन पड़ता है
उससे ज्ञात हो रहा है यह
आज नगर में कुछ रहस्यमय कलुष अमंगल होने
को है
पिछली रात सितारों से रह रहकर
कुछ ऐसी आवाजें आई थीं ज्यों
कोई ज़िन्दा व्यक्ति आग की लपटों में
भूना जाता हो !
और रात से झोंकों में
कुछ भुनते मांस की बदबू सी है !
सारी रात बिताई लोगों ने
भय विव्हल, आतंकित मन !
सुबह हुई तो देखा पच्छिम के पहाड़ पर
एक आग का जलता बादल रंगा हुआ है !
झुलस गये हैं जंगल घाटी
चट्टानें तक चिटख़ गई हैं
जगह जगह पड़ गई सभ्यता में दरार है !
घबराये से लोग घरों से भाग रहे हैं !
चौराहे पर भीड़ जमा है !
कहते हैं यह महासृष्टि का अंतिम दिन है
आज आत्म-हत्या कर लेगी सारी धरती !
लोग बहुत घबराये से हैं,
भाग रहे हैं।
भीड़ हो रही है अनियंत्रित !
[सहसा भीड़ के स्वर को चीर कर फौजी बैन्ड
बज उठता है और शोर को कुचलता हुआ
सैनिक घोड़ों की टापों का स्वर आता है]
लो आगई सुसज्जित सेना
जगह जगह बन्दूक हाथ में लिये सिपाही
खड़े हो गये !
लोग सहम कर शान्त हो गये !
लेकिन यह क्या
उधर दूर पर वहां मच रही है कुछ गड़बड़ !
['चुप रहो', 'बोलने दो उसे' 'हां ! हां ! क्या
करते हो
'मैं कहूंगा मरते दम तक, आदि आवाज़ें आती हैं
आपस में गुंथ जाती हैं; शोर में तबदील हो
जाती हैं]
उधर दूर पर वहां मच रही है कुछ गड़बड़

कई सिपाही एक व्यक्ति को पकड़ रहे हैं
वह उनके वन्धन में
तड़प तड़प कर कुछ कहता है
दो सिपाहियों नें उसकी बाहें पकड़ी हैं
एक हाथ से बन्द कर रहा है उसका मुंह
लेकिन वह भी विना कहे चुप नहीं हो रहा है
वह देखो अव सुन पड़ता है :—

इस व्यक्तिका स्वर

सुनो भाइयो !
हम भी चूहे, तुम भी चूहे
और सिपाही भी चूहे हैं !
जो कि हाथ में उनके वन्दूक है, लेकिन
ये वन्दूकें वाले चूहे भी हैं खेल खिलौने
रंग विरंगी वर्दी वाले
नहीं आग के वादल से ये जीत सकेंगे
[सैनिक कवायद की ध्वनि, विगुल की
आवाज़, वादल की गरज]
मार भले लें हमको, लेकिन
महानाश के तूफ़ानों में
ये भी पीले पत्तों जैसे झर जायेंगे
आज सृष्टि का अन्तिम दिन है
आज सिमट कर आस्मान हम पर टूटेगा
सारी रात सितारों में मरघट सुलगा है
तुम्हें दे रहा हूं चितावनी
मैं ने रात चन्द्रमा पर देखे हैं
लाल खून के धव्वे !
आज चांदनी के संग संग लोहू वरसेगा
यम के अजगर मुँह फाड़ेंगे सासें लेंगे
हम चूहे हैं हम चूहे हैं मर जायेंगे
[भीड़ गमगीन स्वरों में दोहराती है। "हम चूहे हैं मर जायेंगे ! हम चूहे हैं मर जायेंगे।" पहले निराशा, दुख और कसक भरे स्वरों में कुछ लोग गाते हैं फिर और लोग भी स्वर मिला देते हैं। पहले निराशा, अवसाद और मृत्यु से पराजय के पश्चात्ताप का स्वर, फिर अवसाद दृढ़ता में वदल जाता है जैसे चूहे होना और मरना ही उनका भाग्य और उनका जीवन दर्शन है। पर फिर भी एक घवराहट स्वरों में पछाड़ खा रही है। सहसा भीड़ की आवाज को चीर कर उसी व्यक्ति का स्वर आता है हृदय फाड़ लाचारी और नपुन्सक गुस्से का स्वर—"हम चूहे हैं मर जायेंगे।"
गोलियों की धांय धांय। उस के बाद खामोशी,
मरघट का सा सन्नाटा]

उद्घोषक

खत्म हो गया !
उसे सैनिकों की गोली ने भून दिया है।
काली काली सड़क खून से लाल हो गई
उसकी लाश पड़ी है अव तक !
भीड़ महज़ खामोश खड़ी है,
कई भयातुर वच्चे केवल सिसक रहे हैं।
भीड़ महज़ खामोश खड़ी है !
पच्छिम के पहाड़ पर छाये हुए
आग के जलते वादल में
कुछ काली काली लहरें दौड़ रही हैं।
दूर घाटियों में
आँधी विषभरी हवाएं
साँय सांय करती चलती हैं
भीड़ महज़ खामोश खड़ी है।
[सैनिकों का मार्च, वैण्ड पर शाही गत वजने लगती है।
भीड़ फिर गाने लगती है—"वह चूहा था मर गया और हम चूहे हैं मर जायेंगे !"]
सैनिक वांध रहे हैं पांतें
भीड़ रास्ता छोड़ रही है
सुनते हैं अव खुद शासक आने वाला है !
[भीड़ का स्वर तेज होता जाता है।
हम चूहे हैं मर जायेंगे, हम चूहे हैं
क्यों चूहे हैं
क्यों चूहे हैं]
तुरही और नक्कारे की आवाज़
लो खुद नगरी का शासक दौड़ा आया है।
चौराहे के बीचो वीच खड़ा होकर
कुछ वोल रहा है !
सैनिक संगीनों से घेरा डाल रहे हैं।
भीड़ और भी वेकावू होती जाती हैं
यह शासक का ऊंचा स्वर है।

शासक

शर्म करो ! शर्म करो !
मेरी नगरी के रहने वालो !
आखिर इतनी घवराहट क्यों।

महज चूंकि तारों में मरघट जले रात भर।
या कि पच्छिमी पर्वत पर
यह जलता बादल रंगा हुआ है!
ओ कम्बख्तो! भूल गये तुम,
मैंने अपने राज्य-काल में
सोने से मढ़ दीं दीवारें
धरती पर फौलादी चादर चढ़ी हुई है
नदियों पर भी मीलों लम्बे बांध बंधे हैं
फिर मेरे प्रजातंत्र में
बिना वोट के नहीं फूल तक खिलता है जब,
क्या मजाल है
बिना वोट के यहां कयामत झांक सके तो!
लेकिन फिर भी मैं इस बादल को
गोली की बौछारों से
अभी बुझा देने का हुक्म दे रहा हूं!
सेनापति!.....
[भीड में शोर गुल। फायरिंग एक के
बाद कई राउण्ड]

उद्घोषक

सैनिक आसमान पर गोली चला रहे हैं।
लेकिन महाकाल की प्यासी जीभ सरीखा
बादल धीरे धीरे बढ़ता ही जाता है।
[बादल की गरज]
कोई दूर पहाड़ी पर से धीरे धीरे उतर रहा है।
लम्बी दाढ़ी, ढीला चोगा, तीखी आँखें!
कहते हैं वह वैज्ञानिक है, जादूगर है, युगद्रष्टा है।
उसने सात पीढ़ियां देखीं हैं अपनी बूढ़ी आंखों से।
भीड़ उसे रास्ता दे रही,
राजा तक उनके आदर में खड़ा हो गया!
[दो सेकण्ड तक खामोशी]
धीरे धीरे, बढ़ता बढ़ता
वह उस शव तक पहुंच गया है
पड़ा हुआ जो बीच सड़क पर!
[दो सेकण्ड तक खामोशी]
झुका हुआ है वह उस शव पर!
[क्रूर अट्टहास]
उसे देख कर हंसता है वह!
कैसी है खूंखार हंसी यह!
कैसी है खूंखार हंसी यह!
शासक के चेहरे पर है छा गई सिपाही
घबरा कर... लो वह क्या बोला—

शासक

बन्द करो यह हंसी
बन्द करो यह...
बन्द करो...
बन्द...

वैज्ञानिक

[हंसते हंसते]
आखिर आज प्रलय का पहला अक्षर
तुमने लिख ही डाला!
मैंने अपनी इन आंखों से
सात पीढ़ियां बनते और बिगड़ते देखीं
और सुना था
जिस दिन पच्छिम के पहाड़ पर लपटों का बादल
छायेगा,
और सड़क पर एक लाश करवट बदलेगी,
उस दिन इस नगरी का अन्तिम क्षण आयेगा।
ओ इस अन्तिम क्षण तक ज़िन्दा रहने वालो
आज तुम्हारे साथ खत्म हो जायेगी यह
एक सृष्टि की एक सभ्यता की गन्दी बेशर्म कहानी!
यह सोने के महलों में रहने वाले
चूहों की संस्कृति
आज ध्वस्त होनेवाली है।

शासक

बन्द करो यह राजद्रोह!

वैज्ञानिक

...यह द्रोह नहीं है!
तुमने खुद यह मौत बुला ली है अपने पर
देखो अभी करवटें लेगा यह नंगा लावारिस मुर्दा,
और पहाड़ों को चूमेगा।
यह बादल, यह नदियां, यह कठोर चट्टानें
इसका शासन मानेंगीं
यह मुर्दा
पहला शुभ चिह्न है महाप्रलय का!

शासक

सेनापति...

वैज्ञानिक

कहने दो मुझको

शासक

सेनापंति! बन्दूकें...

वैज्ञानिक

इन बन्दूकों से तुम कब तक

अपनी किस्मत को टालोगे ?
यह बन्दूकें मैंनें ही खोजी थीं जिनसे
आज स्वयम् मेरी आवाज़ दवाते हो तुम !

शासक

सेनापति !
इस पागल के पागलपन की कुछ दवा चाहिये !
[फायरिंग]

वैज्ञानिक

आऽऽ!
[भीड़ का शोर गुल। वैज्ञानिक की घायल कराह
भीड़ का फुसफुसाता हुआ स्वरः—
हम चूहे हैं मर जायेंगे।
यह जादूगर चूहों का है,
यह राजा भी चूहों का है
यह मुर्दा भी चूहों का है
हम चूहे हैं, मर जायेंगे]

मेरा गला घोट दो चाहे,
लेकिन कैसे रोक सकोगे
उस भविष्य के बढ़े कदम को
यह वादल तो बरसेगा ही
मुर्दे अपना बदला लेंगे
[पुनः फायरिंग]

आधी भीड़

मुर्दे अपना बदला लेंगे !

आधी भीड़

हम चूहे हैं मर जायेंगे !
[धीरे धीरे दोनों आवाजें आपस में गुंथने लगती हैं। बादल की गरज—बिजली गिरने की तड़प]

उद्घोषक

वैज्ञानिक की लाश उठा कर
पागल जनता भाग रही है !
गरज रहा है वह लपटों का खूनी बादल
सचमुच, सचमुच करवट बदल रहा है मुर्दा
यह क्या वह तो खड़ा हो गया
उसकी पलकें डोल रही हैं,
उसके काले सूखे होंठ हिल रहे हैं कुछ
यह क्या वह तो बोल रहा है !

मुर्दा

भागो मत भागो मत
तुम कब तक भागोगे ?
तुमने खुद मौत बुलाई है, स्वीकार करो
तुम उस नगरी के वासी हो
जिसकी नीवों में छोटे छोटे बच्चों की खोपड़ियां हैं।
तुम उस नगरी के वासी हो
जिसमें भूखे गीदड़ नारी की लाशों के संग सोते हैं।
तुम उस नगरी के वासी हो
जिसमें सपने, हत्या से—हथकड़ियों से—तोले जाते हैं।
तुम उस नगरी के वासी हो
तुम उस नगरी के
उस नगरी के
उस नगरी के
वासी हो
भागो मत, भागो मत
तुम कब तक भागोगे ?
यह मौत तुम्हारी इमारतों की
ईंट ईंट से फूटेगी
यह मौत धरा से उबलेगी
यह मौत गगन से टूटेगी।
यह मौत बुलाई है तुमने
स्वीकार करो।
भागो मत भागो मत !
तुम कब तक भागोगे ?

शासक

[भयत्रस्त स्वरों में]
सेनापति...
[सेनाओं के एलर्ट होने की आवाज़ फायरिंग]

मुर्दा

यह बन्दूकें यह सेनाएं
कुछ काम नहीं देंगी मुझ पर
मैं मृत्यु लोक से आया हूँ
मृत्युंजित हूँ।
मेरे माध्यम से कोई और बोलता है
मैं धरती की जनता की
प्रभु की वाणी हूँ !
जिसके सीने पर तुमने युद्ध रचाये थे
ये भवन बसाये थे जिसके कंकालों पर !
अब तक मैं चुप था,
बोल रहे थे तुम
अब मैं बोलूंगा, मेरी बारी है।
अब तक तुम आगे बढ़ते थे

मै जंजीरों में बंधा घसिटता था पीछे,
अब मेरे कदम उठे हैं
धरती कापेंगी !
अब मेरी वेला आई है ।
मेरे युग युग के नंगे भूखों ने करवट ली है ।
मै बदला लूंगा
ध्वस्त करूंगा यह नगरी
इसकी गलियों में पिघली हुई
आग की नदियां उबलेंगी ।
[भीड़ और जनता के भागने के स्वर]
भागो मत !
कब तक भागोगे ?
धरती के हर टुकड़े के नीचे
कोई लाश इसी मौके के इन्तजार में लेटी है ।
वह कदम तुम्हारे जकड़
चूस लेगी तुमको !
तुम जिनको युग से कुचल कुचल चलते आये
वे अब धरती को फोड़ सतह पर आयेंगे !
यह ज्वालामुखी पहाड़
युगों से नफरत सीने में दाबे
खामोश खड़ा है ।
लेकिन अब यह धधकेगा
खूंखार दानवों की लोलुप जिव्हा जैसी
अनगिन लपटें
इस नगरी को खा जायेंगी !
मुर्दे अपना बदला लेंगे

आधी भीड़

मुर्दे अपना बदला लेंगे !

आधी भीड़

हम चूहे हैं मर जायेंगे !
[भीड़ के भागने के शोर गुल पर यह दोनों आवाजें भूखी चीलों के मानिन्द मड़राती हैं और आपस में गुंथ जाती हैं]

उद्बोधक

भाग रही है भीड़ !
नगर में हाहाकार मच रहा है !
वह मुर्दा स्वयम् हाथ से घावों को दाबे
फौलादी छाया सा
डगमग बढ़ता जाता है पच्छिम को !
वह जिधर जिधर जाता है भगदड़ मचती है
सड़कों पर सन्नाटा छाता,
गरज रहा है रह रह कर लपटों का बादल।
वह धीरे पच्छिम के पर्वत पर चढ़ता जाता है।
लोग अभी तक भाग रहे हैं !
लेकिन कोई राह नहीं है
गलियों से गलियों में दौड़ रहे है जैसे
भूल मुलैयों में पागल कुत्ते भटकें !
वह पहुंच गया है पर्वत के उच्चतम शिखर पर
एक बार आग्नेय दृष्टि से
देख नगर की ओर, देख कह रहा है पर्वत से

मुर्दा—

कितनी सदियों से तुम
नगरी के सिरहाने चुपचाप खड़े हो !
जैसे मरने वाले के सिरहाने यम के मृत्युदूत
अपने मौके की ताक देखते हो गुपचुप !
वह मृत्युपर्व अब आया है !
इन्सान गली-कूचों में पागल कुत्तों जैसा रोता है,
चन्द्रमा खून के छींटों से मुंह धोता है।
तुम भी अपना बदला ले लो !
अनगिन भट्टियां नरक की कबसे धधक रही हैं सीने में
कितना ज़हरीला धुआं युगों से घुटता है।
बस एक पर्त पत्थर की उस पर जमा हुई है
जिससे अब तक महाध्वंस बचता आया है।
आज चूम कर उस पत्थर को गला रहा हूं !
धधको ओ भूखे ज्वालामुखि,
अपनी गहन गुफाओं में बन्दी
जहरीले अग्निदानवों को कर दो उन्मुक्त !
धधकती उल्काओं से
जो धरती का जर्रा जर्रा झुलसा डालें
पिघला डालें !
चूम रहा हूं मैं अपने मुर्दा होठों से काला पत्थर
धधको ओ भूखे ज्वालामुखि !
ओ भूखे ज्वालामुखि !
धधको, धधको, धधको, धधको,

[हजारों कण्ठों का गर्जन–धधको धधको का शवरमंत्र की भाँति पाठ ।

[दो क्षण बिल्कुल खामोशी ।
सहसा गड़गड़ाहट और भयानक विस्फोट धरती के चिटखने तूफानों, के पागल घोड़ों जैसे दौड़ने, इमारतों के ढहने का भयानक शोर । उसीमें भाग दौड़, चीख

पुकार, मार्मिक करुण रोदन। लगता है जैसे नरक के निम्नतम कुण्ड में से यह शोर उबल पड़ता है। धीरे धीरे हजारों बिल्लियों की रोनेकी आवाज़ फिर शोर दूर चला जाता है और अन्त में एक अव्यक्त सिसकी मात्र]

उद्घोषक

नष्ट हो गया!

सब कुछ आखिर नष्ट हो गया।
लाखों वरसों से,
कण कण तृण तृण पर जो निर्माण हुआ था
नष्ट हो गया!

गरज गरज कर वरस रहा है
महानाश का जलता बादल!
पिछली हुई आग की नदियां
नगर डगर को निगल रही हैं।
छोटे छोटे, वच्चे बूढ़े,
तरुण औरतें, झुलस रहे हैं
भुने मांस की तीखी कडवी वदबू से सर घूम रहा है।
कडुआ काला धुआं
झुलसते हुए नगर की
अंतिम चीख़ पुकारों का दम घोंट रहा है।
लाशें सड़े हुए कीचड़ में तैर रही हैं।
यह पिघले सीने की कीचड़!
हंसता है वह
पर्वत की चोटी पर खड़ा हुआ हंसता है!
दोनो हाथों से नगरी पर
पिछली आग उलीच रहा है!
महानाश के वज्रों को वह
उठा उठा कर फेंक रहा है।
आग उसे न जला पाती है,
हवा उसे न डिग़ा पाती है,
चट्टानें उससे टकरा कर टूट रही हैं।
वह ज़िन्दा विद्रोह
तरल नफ़रत से पागल
मृत्युंजित वह
आत्म तुष्टि से वह हंसता है!
उसकी पलकों पर परतें जम गईं राख की!
पिछली हुई आग़ की कीचड़ में घुटनों तक
धसा हुआ है।
लेकिन उसके माथे पर उल्लास फूल सा खिला हुआ है!

इस घाटी से उस घाटी पर
राजमहल से चौराहे तक
गलियों से गलियों में
डगमग घूम रहा है
सड़ी घिनौनी लाशों पर
चलता फिरता वह घूम रहा है!

[धीरे धीरे शोरगुल, क्रन्दन समाप्त। क्षण भर सन्नाटा। केवल उसके भारी पावों का धमक]

अब कोई ज़िन्दा नहीं बचा
सारी नगरी लाक्षागृह जैसी पिघल गई!
अब फैली फैली धरती पर
कोई भी जिन्दा हस्ती साँस न लेती है।
इस मुर्दे ने सम्पूर्ण सभ्यता को चुटकी में मसल दिया।
वस एक हवा का पागल झोंका
भटक रहा है गलियों में
संस्कृति की उखड़ी सांसों का!
एक आग की और खून की महानदी
सिर धुनाती, लाशों को झुलसाती
आगे बढ़ती जाती है!

[नदी की भयानक घर घर और उसमें घुली-मिली सियारों के रोने की आवाज़]

अब धरती पर इन्सान नहीं पैदा होगा!
वह शर्मनाक इतिहास न अब दोहरायेगा!
इस धरती की गोद सदा के लिये
आग से झुलस गई
यह वाँझ धरा
कुछ दिन में अब
मुर्दा ग्रह सी, बिल्कुल ठण्डी पड़ जायेगी।

[सियारों का रोदन एकाएक थम जाता है]

लेकिन यह क्या?

यहाँ खेत की पगडण्डी के पास रुक गया वह,
कुछ झुक कर देख रहा है,
अभी आग की नदी यहां न पहुच पाई है!
देख रहा है क्या वह?
एक वाल गेहूं की लम्बी, दुवली, पतली
मृदुल धूप की चुनरी ओढ़े झूम रही है।
और पास में एक जंगली फूल खिला है।
मुर्दे की वह
राख सनी भूरी सी पलकें आर्द्र हो गईं।
उस गेहूं की तरुण वाल को
आशीर्वादी की निगाह से देख रहा है।

लो उसने तो बदल दिया रुख
हाथ उठा कर
पिछली हुई आग की जलती महानदी को
कहता है कुछ:

मुर्दा

ठहरो !
ओ ज्वालामुखि अपना बंद करो मुख !
धरती के सीने में जहां छिपी थी नफ़रत,
वहीं सृजन का एक बीज यह छिपा हुआ था ।
जो प्रलयंकर तूफ़ानों से नहीं डरा
जो चट्टानों की पर्त तोड़ कर उठ आया है ।
यह भविष्य की नई सृष्टि का प्रथम चिन्ह है,
इसे प्रणाम करो ओ आग उगलते सूरज !
रक्त स्नात ओ चांद !
आग की महानदी ओ ! इसे प्रणाम करो !
इस गेहूं के लघु दाने में
एक नई सभ्यता छिपी है शरमायी सी !
इसमें बसी हुई हैं नव गंधर्व-नगरियां,
इसमें एक नया दर्शन सांसें लेता है ।
नई कल्पना, गीत नया, इन्सान नया,
इस गेहूं की हरी बाल की
शीतल छाया में पनपेगा !
एक सभ्यता मिटा चुका मैं,
इस गेहूं की और फूल की तरल छांव में
एक नई संस्कृति का अब निर्माण करूंगा ।

[नदी की घर घर दुगुनी हो जाती है । सियार फिर रोने लगते हैं ।]

उद्घोषक

लेकिन यह क्या ?
पिघली हुई नदी आगे बढ़ती जाती है
भूखे सापों जैसी लाखों जीभ पसारे
पिघली हुई आग आगे बढ़ती जाती है !
तन कर खड़ा हो गया वह
ललकार रहा है !

मुर्दा

नहीं सुनोगे !
मैं कहता हूं, ठहरो ओ बहरे ज्वालामुखि !
ओ अन्धे तूफ़ान आग के
अपने क़दम न आगे धरना !
खत्म हुआ अब नाश, नया निर्माण हो रहा !
नहीं रुकोगे ?
मैं मृत्युंजित हूं,
तुम मुझे न खा पाओगे !
ओ नफरत के काले दानव !
तुमसे भी मैं हाथ आज़मा लूंगा हँस कर !
ठहरो, ठहरो, ओ नफ़रत की पिघली ताक़त
ओ लपटों की सूनी आंधी !
यह गेहूं की बाल
जंगली फूल
नई दुनिया के पहले चिन्ह अनोखे
इन पर अगर आंच आई तो
चांद सितारों को धरती पर बिखरा दूंगा !

[नदी की घरघराहट और समीप आती है]

उद्घोषक

लेकिन आग नहीं रुकती है ।
महानदी, भूखी दानवी सरीखी
अपने केश बिखेरे
सौ सौ तूफ़ानों के बल से बढ़ती जाती
पहुंच गई लो उसी जगह तक !
उसने गेहूं की बाली को
बाँहें फैला घेर लिया है ।
वह सीने पर उन लहरों को झेल रहा है
खड़ा गले तक दफन आग में, तरल आग में
कदम उखड़ते हैं पर
तनी हुई लोहे सी देह
और माथे पर नई सृष्टि का सपना ।

[धीरे धीरे नदी का शोर घटता है । एक बहुत सुकुमार संगीत गूंजने लगता है और दूर कहीं पर पूजा वेला की घण्टियाँ बजने लगती हैं]

पिघली हुई आग की बाढ़
घट रही है अब,
इन्द्र धनुष्य दो चार उतर आये हैं
उन पर, ज्योति वृत्त से !
पिघली हुई आग की बाढ़ घट रही है अब !
निर्निमेष पलकों से जाने
किस भविष्य को,
नई सृष्टि को देख रहा है ।
किसी नये मानव का सपना
जो इस गेंहूं की शीतल छाया में
खुला सा पनपेगा !

[नदी का शोर कतई बन्द। घुंघरू की आवाज़
और फिर बिल्कुल नीरवता]

बाढ़ खत्म!
धरती फिर ऊपर उभर रही है
एक स्वर्ग संगीत
घाटियों में घुंघरू सा नाच रहा है।
जिसकी लय पर एक नया इन्सान ढलेगा!
जिसकी लय पर ही,
जीवन के सभी मूल्य फिरसे बदलेंगे
जिसकी लय पर
होंठो पर चुम्बन आयेंगे
पलकों में आंसू छायेंगे
जिसकी लय पर एक नई सभ्यता अवतरित होगी
फिरसे!
जिसकी लय पर,
अब प्रशांत ज्वालामुखि के पीछे से
झांक रहा है
नई सृष्टि का पहला सूरज,
खिले गुलाबों सी जिसकी रतनारी आभा
ध्वस्त सृष्टि को फिरसे आलोकित करती है।
टूटे फूटे खण्डहर खिले गुलाब सरीखे सुन्दर लगते
यह आखिरी मनुष्य सृष्टि का,
नई सृष्टि का मनु बन कर आगे बढ़ता है!
यह धरती की नई परत है
मैं भविष्य के और बाद आने वाले
भविष्य के क्षण में,
बोल रहा हूं!
ओ मनु राजा की सन्तानों!
सुनो! ओ सुनो!
बोल रहा हूं
नई सृष्टि का
उद्घोषक मैं!
[तूर्य नाद, शंखध्वनि, मंगलवादन और किसी
नवजात शिशु की प्रथम मुस्कान का सहज,
सुन्दर, सरल संगीत!]

तामिल साहित्य :

कविता

[स्वर्गीय श्री. व. वें. सुब्रह्मण्य अय्यर]

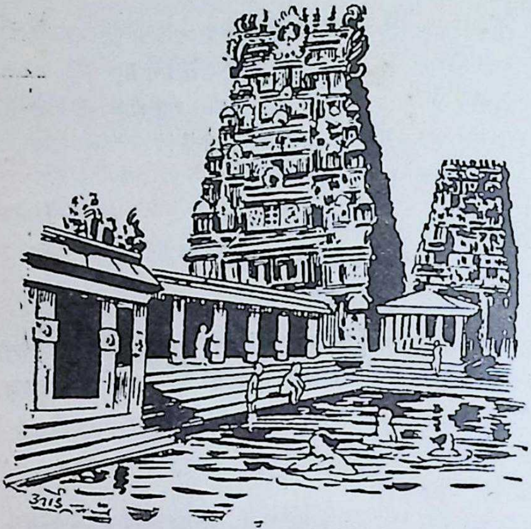

[स्वर्गीय महान् मनस्वी व. वें. सुब्रह्मण्य अय्यर (वी. वी. एस. अय्यर) ने इस लेख को तमिळ भाषा के लिये लिखा था। विषय के प्रतिपादन के लिए अय्यरजी ने उदाहरण भी तमिळ भाषा के ही लिये थे। फिर भी इसमें कई ऐसी वातें है जिन्हें मानना किसी भी भाषा के कवि को अनिवार्य-सा मालूम होगा। कविता की परिभाषा और व्यापकता एक-सी ही होती है, अलग अलग भाषाओं के लिए जुदे जुदे प्रकार की नहीं होती। भाषा के भेद से कविता में फर्क नहीं होता। अतः यह लेख, हालांकि तमिळ को ही लक्ष्य कर लिखा गया है, फिर भी यह समस्त साहित्यिक भाषाओं की कविता के स्वरूप का निर्धारण करता है।

वे महात्मा अव नहीं रहे, फिर भी हम क्यों वैसा समझ कर दुःखित होवें ! इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध कवि तथा गद्य लेखक सदे साहब ने लिखा है—'उनकी मृत्यु को अकाल मृत्यु नहीं कहना चाहिए, जिन्होंने अपना काम समाप्त किया हो; न उनके लिए शोक करना चाहिए, जिन्होंने अशेष यश प्राप्त कर संसार से छुट्टी ली हो'। क्या वह हमारा आदर्श नहीं है ? भगवान ने जिस काम के लिए श्री. अय्यरजी को हमारे बीच में भेजा था उसे पूरा करके, वे असीम यश और गौरव के अधिकारी होकर, करीव दो दशाब्द पहले, जून महीने में, स्वर्ग लोक में परम ज्योति के साथ मिल गये हैं।

उनकी साहित्य-सेवा के प्रमाण, 'मंगैयर्कराशिइन् कादल् और अन्य कहानियाँ', 'चन्द्रगुप्तचरित्र', 'गुरू गोविन्द सिंह', 'वुकर वाशिङ्टन' आदि तमिळ की मौलिक रचनायें, तमिळ वेद "तिरुक्कुरल्" का एक प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद, 'स्टडी ऑफ कम्वन्" (Study of Kamban) शीर्षक 'कम्वरामायणम्' की विस्तृत आलोचना (अंग्रेजी में अप्रकाशित) आदि आदि है।

. इस लेख़ से हम, उस महात्मा के कवि-हृदय को पहचान सकते हैं, जिनका यश, दूर दूर तक, वड़े क्रान्तिकारी के रूप में फैल गया था।—**अनुवादक**।]

* * * *

भाषा मनुष्यमात्र के ज्ञान की नाड़ी है तो कविता, उस भाषा का भी जीवनाधार है। किसी भाषा को दूसरी भाषाओं के सामने खड़े होने का प्रमाण-पत्र देनेवाले, उसके काव्य और कविगण ही हैं। मगर पुराने प्रमाण-पत्रों से कोई लाभ नहीं; उस प्रमाण-पत्र को फिर से ताज़ा बनाते रहने ही से, उसका गौरव स्थायी होगा।

स्पेनिश और पोर्तुगीज़ भाषायें, करीब ४०० बरस पहले लोक प्रसिद्ध थीं। लेकिन उसके बाद वहाँ के लोगों में उन भाषाओं के अच्छे कवि पैदा नहीं हुए; इसलिए उनका वह यश फीका पड़ गया। आजकल अंग्रेजी, फ्रेन्च और जर्मन—यही तीन भाषाएँ दुनिया में सिर ऊँचा उठाये हुए हैं। हमारी मातृभाषा तमिल भी, अपनी प्राकृतिक शक्ति और प्राचीन काव्य साहित्य के कारण, उनके समान ही है; फिर भी, चूँकि आये दिन उसका कोई ऊँचे दर्जे का कवि उत्पन्न नहीं हुआ है, और न हो रहा है, इसलिए वह उन तीन भाषाओं के सामने खड़े हो कर मुकाबला करने में असमर्थ हो गयी है।

इस नवयुग में, कविता की सामग्री सब कहीं बिखरी पड़ी है। महाप्रलय-समान युद्ध रात दिन होता हुआ, चार साल तक जारी रहा। तीन महान् राज्यों ने, अपना सर्वोच्च शौर्य दिखा कर, ऐसी लड़ाई लड़ी कि दुनिया-भर में तबाही और वाह-वाही मच गयी; और आखिर वे शत्रुवश हो गये। उनके राजा और प्रजा, धर्म, शक्ति और मान के बल पर, इस संकल्प से कि शत्रु को हराते तक तलवार को म्यान में न डालेंगे, जोर-शोर से लड़ते रहे। यहाँ हमारे देश और समाज में जितने नये नये जोशीले विचार प्रचलित हैं, वे ही एक महाभारत जैसे प्रबन्ध लिखने के लिए काफी होंगे। हमारे यहाँ की स्त्रियों की हालत, अनाथों का दुःख, अकालपीड़ितों के कष्ट, नवयुवकों की धीर-जीवन-लालसा, जातियों का धर्मावेश, गार्हस्थजीवन आदि के साथ साथ, हमारी चित्रकला, शिल्पकला आदि इतरेतर कलाओं के बारे में भी हमारे कविगण गा सकते हैं। जापान का सुधार, चीन की क्रान्ति, नीग्रो लोगों की बेचैनी, इक़रारी मजदूर बने हमारे भाइयों की मुसीबतें आदि सभी कविता ही के विषय हैं।

इतनी बातों के रहते हुए भी हमारी भाषा में आजकल जितने प्रबन्ध और स्फुट-रचनायें प्रकाशित होती हैं, वे सब, या तो पुरानी परिपाटी के अनुसार होती हैं या नयी परिपाटी के अनुसार हो कर भी निस्तेज और रुचिहीन हैं। स्तोत्र, दशक, शतक, कलम्बक, अन्तादि, कीर्तन, सन्देश आदि जितनी रचनायें अब प्रकाशित हो रही हैं वे सब निःसार हैं। पिछले दस सालों में, हमारी भाषा में, कई तरह के काव्य और स्फुट कविता संकलन निकले हैं। फिर भी उन काव्यों में या स्फुटकविता संकलनों में ऐसा एक भी ग्रन्थ नहीं है जिसमें सच्ची कविता हो! वैसी एक स्फुट-रचना का मिलना भी दुर्लभ हो गया है!

लोग, कविता के लिए तरस रहे हैं। नाटकों के प्रेक्षकों के झुण्ड और स्फुट-रचनाओं के प्रकाशकों को मिलने वाले लाभ ही से हम लोगों की कविता की प्यास का कुछ हद तक अन्दाज कर सकते हैं। उनकी इस प्यास को बुझाने की सामग्री अब नहीं मिल रही है। घोड़ा हरी घांस और साफ पानी चाहता है तो उसका मालिक उसे गोबर-गोमूत्र आदि में गिर कर सड़ी हुई घास और मैला पानी देता है।

लोगों की इस प्यास को बुझाने, अच्छे अच्छे कवियों को आगे बढ़ना चाहिये।

अमुक बात को अमुक रीति से पद्य-बद्ध करना चाहिए—इसका निश्चय हरएक कवि के अपने मनोधर्म पर ही निर्भर है। फिर भी, इसके निश्चय करने में वैयाकरणों का भी कुछ हक है। जब देश के लोग कविता के सही लक्षणों को भूल गये हों, और जब, मनुष्यवर्ग की अभिवृद्धि के अनुसार, कविता के लिए नयी नयी सामग्री उत्पन्न करना हो, तब लोग और कवियों की चेतनाशक्ति को जगाना, वैयाकरणों का ही काम है। इसी उद्देश्य से अब यह लेख लिखा जा रहा है।

यह पूछना कि कविता क्या है, बहुत आसान है। पर उसका जवाब देना बहुत मुश्किल है। यह कहना बहुत आसान है कि क्या क्या कविता नहीं है; काव्यों और प्रबन्धों से कई एक उदाहरण दिखा कर, अमुक-रस और भाव के अभाव से यह कविता नहीं है, और इन के समावेश से यह अच्छी कविता है—यों कहना भी आसान है। इस तरह निश्चय करना भी मुश्किल नहीं है कि सची कविता वह है जो पाठकों के मन में ऐसे ऐसे भावों को उत्पन्न करें। लेकिन, कविता के लक्षण को बिना किसी उदाहरण के, मौलिक रूप में साफ़ साफ़ बताना बहुधा असम्भव है।

किसी भी रचना के दो अंग हो सकते हैं—चाहे वह स्फुट रचना हो या महाकाव्य। एक, उसकी शैली या रचना-पद्धति है, दूसरा, भाव या लक्षित अर्थ है। ये दोनों अंग, जिस रचना में पूर्णरूप से पुष्ट और सुन्दर होंगे वही सची और अच्छी कविता हो सकती है। इन दोनों अंगों में, भाव ही मुख्य है; फिर भी कविता का छन्दोबद्ध होना अनिवार्य है। कोई भी रचना कितने ही सुन्दर और उच्च भावोंवाली हो, अगर छन्दोबद्ध न हो तो वह कविता नहीं मानी जा सकती। अतः कवि को, कविता के स्वरूप या पिंगल शास्त्र के अच्छे ज्ञान की ज़रूरत है।

यह तो ठहरी मानी हुई बात! अतः इसके बारे में ज्यादा लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन आजकल हमारी तमिल भाषा में ऐसे कई पद्यग्रन्थ निकल रहे हैं जो पिंगल के समग्र लक्षणों के ही मुताबिक रचे गये हैं; फिर भी उनमें, 'कविता' कहलाने लायक उस खास लक्षण के अभाव के कारण, वे पाठकों या सुननेवालों के हृदय को छूते तक नहीं।

कविता-रहित पद्य, निर्जीव शरीर-समान है। बिना कविता के, या अपने हृदय के काव्य सौन्दर्य को प्रकट किये बिना, जो पद्य-रचना करते हैं, वे दुनिया को धोखे में डालते हैं। नारियल के तेल को 'घी' कहकर बेचने वाले व्यापारी, इनसे कई गुने अच्छे हैं। क्योंकि वे लोगों की जीभ और शरीर को ही बिगाड़ते हैं; पर ऐसे कविगण, हृदय को अमृत पिलाने के बहाने, निःसार निरर्थक शब्दों को सुनाकर, कानों को फाड़ देते हैं।

अत्युन्नत कविता के लक्षण को संक्षेप में कहें तो, वही वैसी कविता हो सकती है जो मनुष्यबुद्धि को व्यावहारिक दुनिया के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर, अखण्ड भाव-भूमि पर ले जाती हो। कोई भी कवि, चाहे किसी भी भाव या रस का वर्णन कर

सकता है। पर उस भाव या रस को सुनते ही सुनने वालों के हृदय में अखण्ड भाव की छाया पड़नी चाहिए।

कविका हृदय, जितना निष्कलंक रहता है, जहाँ तक उस की बुद्धि सत्य में तैरती रहती है, जहाँ तक वह मनुष्य के सुखदु:खों का प्यार और आदर के साथ तल्लीनता से वर्णन करता है, और उसके मन में जितनी श्रद्धा रहती है, उतनी ऊँची होती है उसकी कविता। वह किसी क्षणभंगुर बात का भी वर्णन करे, उसका भी हृदय से ज्यादा महत्त्व हो जाता है। क्यों कि उसके हृदय की तह से जो बातें निकलती हैं वे अखण्ड और अपार हैं।

आँग्ल भाषा के वैयाकरण मैथ्यू आर्नाल्ड साहब कहते हैं कि नये पद्यों की योग्यता को अजमाने का पारस पत्थर दुनिया के महाकवियों के अनमोल बोल, ही हैं। हम उसे पूरा पूरा मानते हैं। उन महाकवियों की सात-आठ उक्तियाँ हमारे कानों में सदा गूँजती रहें तो हम किसी भी पद्य को परख सकते हैं। उस दर्जे की कुछ रचनाओं को जो हमें पारस पत्थर का काम देती हैं, इधर उध्दृत करें।

[जिस उद्देश्य से लेखक ने ज़ैल के पद्यों को उध्दृत किया है, उसकी पूर्ति, उनको मूल भाषा (तमिल) में मनन करने से ही हो सकती है। फिर भी, उन पद्यों के भावानुवाद नीचे दिये जाते हैं। पर, मूल पद्यों के भावों को दूसरी भाषा में ज्यों का त्यों व्यक्त करना भी मुष्किल है। जहाँ तक हो सका, उस की कोशिश की गयी है॥

—अनुवादक।]

कैकेयी ने रामचन्द्रजी को वन जाने की आज्ञा दे दी। उसे सुनते ही श्री रामचन्द्रजी की हालत कैसी थी? देखिये, महाकवि कम्बन उसका वर्णन करते हैं—

"इप्पोषुदेम्मनोरालियम्बुदकौंळिदे यारुं
शेप्परुङ्गुणत्तिरामन् तिरुमुहच्चेव्विनोकिल्
ओप्पदे मुन्बु पिन्ब्वाचकमुणरक्केट्ट-
वप्पोषुदलर्न्द शेन्तामरैयिनै वेन्ड्दम्मा"!

[अब तक तो श्री रामचन्द्रजी की आँखें कमल के समान थीं। पर उस आज्ञा को सुनते ही उनकी शोभा ने, तभी खिले हुए कमल की आभा को जीत लिया!]

कभी कभी आधा पद्य या एक पंक्ति भी काफी है। महाकवि कम्बन्, रावण के महल में सीता को खोज कर लौटते हुए हनुमानजी का वर्णन करते हैं—

"नेक्कु निन्डनन् नींगुमन्दो! इन्द
नेडुनहर्त्तिरुएन्ना!"

[हाय! इस विशाल नगरी की सौन्दर्य-श्री अभी चली जाने वाली है!—यों समझ कर वह खड़ा रह गया।]

और भी देखिये; हनुमानजी ने पहचान लिया कि सीताजी का चरित्र कलुषित नहीं हुआ है। तब वे कहते हैं—

"यावर्दिगिनिच्चेयलरिदु?"

[अब इधर क्या ही मुश्किल है?—सीताजी के पातिव्रत्य-बल के रहते कौन सा कार्य नहीं किया जा सकता?]

यह तो एक हुआ एक पादार्ध!

जब सीताजी ने जान लिया कि आया हुआ बन्दर रामदूत है, तब की उनकी दशा का वर्णन यों है—

"उय्यल् वन्दुट्टदो! एन्ड्रुविनीपुहुं
कण्णाळ्।"

[मेरे भी अच्छें दिन आगये!—इस

विचार के मन में आते ही, खुशी के मारे, उनकी आँखों से झरने की तरह आँसू बहने लगे।]

“अय्य ! शोल्; ऐयन् मेनि एप्पडिक्करिदि ? एन्डाळ्।”

[सीताजी ने पूछा—आर्य ! कहो; मेरे स्वामी को तुम कैसे जानते हो ?]

ये सभी उद्धरण, कविता की सीमा को दिखाने वाले महावाक्य हैं।

सीताजी के अग्निप्रवेश का वर्णन इस पद्य में कम्बन ने किया है—

“घनत्तिनार्कंडन्द पूण् मुलैयवेहळै
मनत्तिनाल् वाक्किनाल् मरुवुटेनेनिन्,
शिनत्तिनाच्चुडुदियाल्, तीच्चेल्वा ! एन्डाळ्,
वनत्तुषाय्क्कणवकुं वणक्कं पोक्किनाळ्।”

[धधकती आग को देख सीताजी ने कहा—हे अग्निदेव ! अगर मैंने, चाहे मन से हो या वाक् से, किसी दूसरे का आलिंगन किया हो तो तुम क्रुद्ध होकर मुझे जला डालो। फिर अपने वनमाला-भूषित पति की उन्होंने वन्दना की।]

इस पद्य की आखिरी पंक्ति का भाव दूसरे दर्जे के कवियों के हृदय में उत्पन्न नहीं होता। अभी मुझे याद आता है कि मैंने इसके समान कविता-सौन्दर्य को महाभारत के एक श्लोकार्ध में देखा है। भीमसेन ने कईबार कह दिया कि द्रौपदी को दाँव लगा कर जुआ खेलना ठीक नहीं है, पर युधिष्ठिर ने न माना। तब भीमसेन ने कहा—

“हस्तं ते हन्त ! धक्ष्यामि, सहदेवाग्निमानय।”

[तुम्हारे हाथ को अभी जलाये देता हूँ; सहदेव ! लाओ तो आग !]

इतना काफी है। इनका मनन करते करते अगर हमारे कान इनके कविता-सौन्दर्य को पहचानने के आदी बन जायँ तो ‘कौण्टर्फीट कॉइन’ को शब्दमात्र के सुनने से जैसे सराफ पहचान लेता है, वैसे ही हम भी अपने कानों की मदद से अच्छी कविता को पहचान कर अपना सकते हैं और तुच्छ चीजों को दूर फेंक दे सकते हैं। कविता का रहस्य इन पद्यों में अन्तर्गत है। इन पद्यों को पढ़ते वक्त जिस तरह हमारा हृदय विशाल हो जाता है, और हमारे मन में जिस तरह का अलौकिक आनन्द होता है, उसी तरह, अगर दूसरे किसी पद्य को पढ़ने में हो जाय तो उसमें सच्चा कविता-सौंदर्य ज़रूर रहेगा।

तब, इन सर्वोन्नत पद्यों का भाव क्या है ? क्यों हम इनको इतना महत्त्व देते हैं ?—इन प्रश्नों का उत्तर हम वाणी से नहीं दे सकते। जो इन पद्यों को पढ़ते पढ़ते उनमें तल्लीन हो जाते हैं, वे जरूर इन प्रश्नों का उत्तर समझ सकेंगे। तो भी, इन पद्यों की विशेषताओं के बारे में यहाँ कुछ विचार करें तो वह कविता लिखनेवालों और कविता का अनुभव चाहनेवालों को बहुत लाभदायी होगा। अतः यहाँ, उसके सम्बन्ध में भी कुछ लिखें।

प्रथमतः इन पद्यों की शैली और ध्वनि बहुत सुन्दर हैं। पदों में सौष्ठव और लालित्य, तथा वाक्यों में बेरुका प्रवाह और रचना-सौन्दर्य है। अच्छे साहित्य के लिए यह प्रवाह बहुत जरूरी है। अगर किसी कवि के मन में उत्पन्न होनेवाले भाव अति-

१९५०

श्लाघ्य हों तो उसकी शैली भी प्रशंसनीय ही होगी। फिर भी, कवि को चाहिए कि वह, बारबार परिश्रम करके अपने वाक्यों में पदलालित्य का सम्पादन करे।

लेकिन, उपर्युध्दृत पद्यों में शैली-सौन्दर्य ही नहीं, उनमें अन्तर्गत भाव भी पहले दर्जे के हैं। यह भाव गर्भ सत्य की खोज से और ऊँचे विचारों ही से लभ्य है। जो महा-कवि प्राकृतिक दृश्य तथा मनुष्य हृदय से उत्पन्न प्रेम, क्रोध, वीरता आदि मनः प्रवृत्तियों की भक्तिविश्वास के साथ गवेषणा करे, जो प्रस्तुत विषय में अन्तःकरण से तल्लीन होकर मनुष्य हृदय को आकर्षण करनेवाली विविध पद्धतियों में से किसी एक के आश्रित हो उसकी अन्तर्दृष्टि से विवेचना करे, और जो इस प्रकार अपने मन में उत्पन्न भावों को ज्यों-का-त्यों, साहजिक भावों को बिगाड़े विना पद्य-रूप में व्यक्त करे, उसी के पद्य-साहित्य में यह भाव-गर्भ पूर्णतया रहेगा।

ऊपर कह आये हैं कि कविता में सत्य की कितनी आवश्यकता है। लेकिन, कविता कहलाने के लिए, केवल कोई यथार्थ-वर्णन काफ़ी नहीं है। कविगण, प्राकृतिक दृश्योंका ज्यों-का-त्यों वर्णन कर के ही समझ लेते हैं कि हमने भी कविता रच डाली। कवियों के बीच ऐसी एक धारणा बहुत दिनों से हो गयी है कि वर्णनीय घटनां या भावों से एक प्रकार से मिलती-जुलती उपमा या रूपकों के चित्रण ही से वह कविता हो जाती है। मैंने सुना है कि किसी कवि ने एक स्त्री का यों वर्णन किया है—

पिण्डस्तनी कूर्चसमानवेणी !'

“माणीनिरान्तिणि कल तोडर्न्दे परैयिल
वेयिनं शोरि कदिर् मुत्तमिडन्तोरुं किडान्दि-
मैप्पन वेक्किळं शेक्कर् पडर्न्दे वानिडै-
त्तारकै निहर्प्पन पाराय् !”

अर्थात्, ‘लाल लाल मणियों से आच्छादित पत्थरों के ऊपर, बाँस के दरख़्तों से निकली जो मोतियाँ बिखर पड़ी हैं, वे ऐसा दिखती हैं, मानों गोधूलि की लाली से ढके हुए आकाश में नक्षत्रगण प्रकाशमान हों!’ कम्ब-रामायणम के इस पद्य में प्रस्तुत उपमा तो बहुत ठीक है ही, लेकिन, इस में कविता-लक्षण तो बहुत कम है। अतः यह अच्छी कविता कही नहीं जा सकती।

ख़ैर, कुछ दिनों से, पाश्चात्य कवियों में रियालिज्म' (यथार्थवाद) नामक एक पद्धति, प्रचलित है। उन यथार्थवादियों की राय है कि दुनिया की जितनी चीज़ें और घटनायें हैं, वे सबकी सब—चाहे वे कितनी ही अश्लील हों, साहित्य में ज्यों की त्यों वर्णन की जा सकती हैं। साधारणतः इस वर्ग के कविगणों की रचनाओं में सब कहीं, भद्दी चीज़ों और बीभत्स घटनाओं के ही वर्णन मिलते हैं। इस तरह के साहित्य,—चाहे उन की शैली कितनी ही अच्छी हो, चाहे उनमें पदलालित्य और ध्वनिका प्राचुर्य हो, फिर भी अच्छी कवितात्मक मानी नहीं जा सकतीं। तमिल के **‘विरालिविडुदूदु’**, **‘कविकुंजरप्पदङ्गळ्’**, **‘सुब्बरामय्यर् पदङ्गळ्’**, **‘समुद्रविलासम्’** आदि ग्रन्थ उपरोक्त यथार्थवादी ग्रन्थों के ही अन्तर्गत हैं।

अस्तु, प्राकृतिक सामग्रियों में, अश्लीलों को छोड़ कर बाकी का यथार्थ वर्णन किया जाय तो उसमें कविता रहेगी कि नहीं? तो सुनिये, उसमें कविता रहेगी ही। फिर

भी उत्कृष्ट कविता कहलाने के लिए इतना काफी नहीं। और कोई दूसरा अंग चाहिए। संघ-साहित्य का 'मलैपडुकडाम्' अंग्रेज़ी में थामूसन का लिखा 'ऋतुवर्णन' गोल्डस्मिथ के 'श्रान्तपथिक' और 'ऊजड़गाँव'—इन ग्रन्थों को, इस दूसरे दर्जे के साहित्य के ही हम मानते हैं। उनमें प्राकृतिक दृश्य, ध्वनि और भावों का यथार्थ वर्णन बहुतायत से मिलता है। लेकिन, इस लेख के आरंभ में उध्दृत पारस-पद्यों में किसी एक से अगर इन ग्रन्थों के किसी उत्तम पद्यखण्ड की तुलना कर देखें तो कलई खुल जायगी।

"अकन्मलैयिरुम्बिट्टूवान्ड्रिय यानै–
प्पहल् निलै तळक्कुँ कवणुमिष् कट्टङ्क
ल्लिरुवेदिराँङ्केपेत्तन्तिकलेन–
करुविरलूहं पाप्पोंडिरिय
उयिर् शेकु मरापिन् कूट्ट्त्तन्न
वरुं विशै तविरादु मरं मरैयाकाषिमिन्"।

अर्थात् धान के खेतों के रक्षक, पहाड़ के जंगली हाथियों को दूर भगा देने के लिए जो कंकड़ियाँ फेंकते हैं, वे बाँस के बड़े बड़े दरख्तों भी पार कर, आकाश को चीरती हुई आती हैं। उन्हें देख कर, काले काले जंगली बन्दर, अपने बच्चों को लेकर दौड़ते हैं। वे कंकड़ियाँ जान लेने आने वाले यम की तरह, बहुत तेजी से, लक्ष्य पर पहुँचती हैं; अतः हे पहाड़ी पथिको! होशियारी के साथ उनसे बच बच कर, पेड़ों की आड़ से होकर चले जाओ!' मलैपडुकडाम की इन पंक्तियों में कुछ प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बहुत अच्छा हुआ है। लेकिन, इसकी और 'अप्पोषुदलर्न्द शेन्तामरैयिनै वेन्ड्रूदम्मा!' की ध्वनि में कितना अन्तर है!

मगर, कुछ लेखक कह सकते हैं—'प्राकृतिक वर्णन में इतना ही कहा जा सकता है; इससे ज्यादा कहना मुश्किल है।' उनके लिए, इधर, 'सेनाङ्कूर' नामक एक फ्रेञ्च लेखक के 'ओबेरमान्' गद्य-ग्रन्थ से कुछ वाक्यों को तर्जुमा कर देते हैं—

"झील के किनारे जाकर खड़ा हुआ! पानी की छोटी छोटी लहरें किनारे की ओर आती थीं और मुड़ जाती थीं। हवा निश्चल थी। किसी भी चीज़ में चलन नहीं था। बहुत देर तक मैं वहीं रह गया। तड़के का सुहावना समय था। चाँद ने अपनी आखिरी किरणों को धरती और पानी पर बिखरा कर, मेरे मन में अकथनीय शोक को पैदा कर दिया! अस्त होनेवाले चाँद की रजतमयी शोभा से भूषित रात की नीरवता के बीच, झील के किनारे पर अकेले खड़े होकर छोटी छोटी लहरों की भीनी भीनी आवाज़ पर कान लगा कर ध्यानमग्न हो जाने पर, प्रकृति के दृश्य निहायत खूबसूरत मालूम होते हैं!

"हमारे निरर्थक जीवन में, सुख दुःखों को एकसाथ बढ़ानेवाली अवर्णनीय मानसिक उलझन, हमसे बहुत बड़ी, हमारे मन से परे, सर्वत्रव्यापी प्रकृति का अखण्ड भावावेश; दुनिया-मात्र में बहनेवाली आशा, पूर्णज्ञान, खुशी से मोहित करनेवाली परवशता;–इनमें, मनुष्यहृदय में जितना समा सकेगा, उतने का मैंने तब अनुभव किया। उस एक रात में मेरी जिन्दगी के दस लंबे लंबे वर्ष मानों एकदम बीत गये! आहा! जिनके हृदय जरा रहित चिरयुवा रहें वे ही भाग्य-

१९५०

शाली हैं !" *

हमारे ही यहाँ के श्री. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रकृति-वर्णन-शैली के परिचय के लिए, उन के एक पद्य का भी अनुवाद दिया जाता है —

"खिडकी की चौखट पर बैठी हुई एक युवती अपने प्रियतम को पहनाने के लिए पुष्पों का एक सुन्दर हार तैयार कर रही थी। पर, एकदम वह स्तम्भित सी रह गई ! अपने हाथ की माला को भी वह भूल गयी। सुगन्धित सुमन सब धरती पर यों ही पड़े रहे। अपनी हथेली पर चिबुक धरकर वह चिन्तामग्न हो गयी।

"मन्द मन्द बहता हुआ मलयमारुत, रहस्यमयी कुछ बातों को, प्यार के साथ, उस के कानों में गुनगुनाकर चला गया ! उस के एका एक ध्यानमग्न हो जाने का यही कारण है।

"इन्द्रनीलमणि को पराजित करने वाले नीले आसमान पर बादलों के झुण्ड विचर रहे हैं। आकाश में, चिडियाँ उड़ रही हैं। सुगन्धित केसर के फूल पेड से गिरते रहते हैं। पर युवती की नजर, इन प्राकृतिक सौन्दर्यों की ओर जाती ही नहीं।

"स्तब्ध होकर बैठी हुई वह, अपनी व्याकुलता में भी मुस्करा देती है। क्यों ? उस के स्वप्न की दुनिया में, उस की हृत्तन्त्री की मधुर ध्वनि गूँज उठी॥"

अन्त में, अंग्रेजी के महाकवि 'वर्डस्वर्थ' को एक पद्य को, जिसने कि अपनी सारी जिन्दगी प्राकृतिक अनुभूति ही में बितायी है, तमिळ में अनूदित कर दें —

"वानविल तोड्रुमाड्रे मरैयुं
कण्णिनुक्किनिदाय् विळङ्गुं रोजां मलर;
मरुवोषिन्दिलङ्गु वानहन्तान्निल
तण्मदि निन्ड्रु कळिप्पोड्डु नोक्कुम्।
इरविनदहत्ते तारह ओळितरक्कण्
कोळाक्काक्षियदाहुं नीर निलैयेलाम्;
एनवुं पेदैयेक्कैंगु शेन्ड्रिडिनुं
तनियोळियोन्ड्रु उलहिनैत्तरन्दु
मीटचियिन्ड्रूहन्ड्रूदेन्नं तुनि शेर
चिन्तै पेरिदुं तुयररुत्तम्भे !"

[इन्द्रधनुष दिखाई देता है; फिर वहीं ओझल हो जाता है। गुलाब के फूल, देखने में बहुत सुन्दर होते हैं। स्वच्छ आकाश में शीतल चाँद प्रकाशमान है। रात के वक्त नक्षत्रों के प्रकाश के कारण नदी नाले सब देखने की चीजें हैं। फिर भी, बदनसीब लोग, कहीं भी जायँ, चिन्तामग्न ही रहते हैं।]

इन तीनों उदाहरणों में वह अच्छी कविता विद्यमान है, जिसका, उपर्युक्त 'मलैपडुकडाम्' के किसी भी भाग में अभाव है। यह बात, इन उद्धरणों के मूलग्रन्थों को पढ़े बिना, अनुवादमात्र को पढ़नेवालों को भी साफ साफ मालूम हो जायगी।

इस के कारण के बारे में सोचा जाय तो कविता के अन्यतम लक्षण की प्रतीति हो जायगी। 'मलैपडुकडाम्' के उद्धरण को पढ़ने पर, पाठक का हृदय अखण्डकार में लीन नहीं होता—यह तो स्पष्ट है ! पाठकों के मन में वह कुछ प्राकृतिक दृश्यों के चित्रों को खींच देता है, न कि उन के

---

* इस उद्धरण के सभी साहित्यिक दोषों को मैं पूरा पूरा पहचानता हूँ। उस पाश्चात्य कवि के भावों का उल्लेख करना ही मेरा उद्देश्य है। अतः दोषों से भरे रहने पर भी, इन वाक्यों को ज्यों का त्यों इधर उल्लिखित किये देता हूँ। विद्वान् लोग क्षमा करें। —(ले॰)

हृदय में घुसकर, किसी विशेष भावावेश को उत्पन्न करता है; पर इतर तीनों उद्धरण हृदय को विस्तृत करके, प्रकृति के अखण्डाकार के साथ अनन्य कर देते हैं। इनके लेखक, मनुष्य के आनन्द, दुःख, क्षोभ, महद्वस्तु में लीन हो जाना आदि भावों का, आप भी अनुभव करते हैं, हम—पाठकों को भी अनुभव कराते हैं। संक्षेप में कहा जाय तो इन तीनों उद्धरणों में मनुष्यहृदय का ही प्राधान्य है जब कि 'मलैपडुकडाम्' के उद्धरण में उस का जिक्र तक नहीं !

मनुष्य की कविता के लिए, उसके चरित्र, सुख दुःख और मनोभाव ही उपयुक्त सामग्री हैं। दूसरी बातों का समग्र वर्णन इनके अंग रहें तो कोई हानि नहीं। इनसे असम्बद्ध वर्णन, चाहे वे पहले दर्जे के शब्द चित्र हों, उन्हें पढ़ने में विनोद और मज़ा मिले, फिर भी, अच्छी कविता नहीं हो सकती।

लेकिन, प्राकृतिक दृश्यों के साथ मनुष्य के मनोभावों को मिलाकर, रुचि के साथ कविता रचनी चाहिए। तमिळ के आधुनिक साहित्य में, ऐसी कोई भी रचना नहीं है। जब महाकवि कम्बनाडर ही इस दिशा में बड़े दोषी हैं तो दूसरों का पूछना ही क्या ? उत्प्रेक्षा के बारे में ऊपर जो कहा गया है, वह यहाँ भी बैठेगा। रूचिहीन रचना के उदाहरणस्वरूप, कम्बरामायण के बालकाण्ड के आट्टुप्पडलम् के कई पद और उस ग्रन्थ के प्रकृतिवर्णनात्मक पदों में से कई लिये जा सकते हैं। इधर, नमूने के लिए सिर्फ एक पद का अनुवाद दिया जाता है—

"मानं नेर्न्दरं नोक्कि मनुनेरि
पोन तण् कुडै वेन्दन पुहषेन
ज्ञानमुन्निय नान्मरैयाळरकै—
त्तानमेन्नत्तषैत्तदु नीत्तमे ॥"

[मनुधर्मानुयायी महाराजा की कीर्ति और ज्ञानी ब्राह्मणों को दिये जानेवाले दान की तरह नदी का प्रवाह बढ़ता रहा]

इस पद्य में प्रस्तावित पुहष् (कीर्ति) और दानं (दान) किसी अच्छी कविता के लिए भी उचित सामग्री हैं। लेकिन, इस पद्य में प्रस्तुत मनुष्य कृत्यों के प्रतिपादन करनेवाले उपमान और उपमेय के बीच ३६ (छत्तीस) ही का रिश्ता है ! अलावा इसके कि उपमानोपमेय एकत्र विद्यमान हैं, दोनों में आपस में कोई मेल-मिलाप नहीं। अतः इसे पढ़ने पर, पाठक के हृदय में कोई भावावेश उत्पन्न नहीं होता।

एवं, अच्छी कविता के लक्षण का निर्धारण यों हुआ। कविता को चाहिए कि वह, समग्र मनुष्य जाति को दुनिया में जीविका चलाने के ढङ्ग को सिखाये। इसलिए, अच्छी कविता का आधार 'धर्म' होना चाहिए। मगर, इस धर्म मार्ग का ज्यों का त्यों वर्णन करने ही से वह कविता नहीं हो जायगी। वह, सिर्फ एक पाठ्य ग्रन्थ माना जायगा। 'अरञ्चेय विरूम्बु' [धर्म करना चाहो] 'आरुवदु शिनम्' [क्रोध नहीं करना चाहिए] आदि सूत्र, धर्म के स्वरूप को कहते हैं; लेकिन, यह तो साफ है कि इनमें कविता नहीं है। वही अच्छी कविता हो सकती है जो धर्म के आधार पर, बुद्धि की अंगभूत कल्पना शक्ति को अच्छी खुराक दे और प्राकृतिक सौन्दर्य, मनुष्यजीवन के सुख-दुःख, ऊंचे भाव आदि को रूचि के साथ एक करके मनुष्य के हृदय में भावावेशों को पैदा करे।

दुनिया ने उन्हीं कवियों को महाकवि माना है जिनकी रचनायें इन लक्षणों से पूरी पूरी लक्षित हैं। वाल्मीकी, व्यास, कम्बनाडर, होमर, दान्ते, शेक्स्पियर, मोलियर, मिल्टन्, क्त्ते, षिल्लर—ये दस ही कवि अब तक जगप्रसिद्ध कविसम्राट हुए हैं। बाकी सब कालिदास भी—इनके बाद ही आते हैं। क्यों कि, इन दसों के ग्रन्थों ही में उपरिवर्णित सभी लक्षण गठित हुये हैं। सच सच कहूँ तो, ये सभी लक्षण उन्हीं की रचनाओं से सङ्कलित हैं।

हमारे देश में इन लक्षणों से भरे ग्रन्थ रचने की शक्ति बढ़े! अच्छे अच्छे कवि उत्पन्न होकर, तमिळ नाडु के लिए, भरतखण्ड के लिए, सारी दुनिया के लिए आनन्द और दृढ़ता-प्रद काव्यों को रचकर हमारी जाति को यशोदान दें!

मगर चाहिए सच्ची कविता ही। पिछले तीन सौ वर्षों से, बहुधा, तमिळ में, नकली कविता का ही प्रादुर्भाव होता रहा है। कहा जा सकता है कि इन तीन सौ वर्षों में, हमारे देश में, ऐसा एक पद भी रचा नहीं गया है, जिसमें पहले दर्जे की कविता हो। मगर, कडिहैमुत्तुघुलवर, पळपहैचोक्कनादप्घुलवर, अतिमधुरक्कविरायर, काळमेहप्पुलवर—आदि भावरहित नकली कविता रचनेवालों की संख्या बहुत बढ़ गई है!

'वरकवि' कहते हैं; हाँ, सभी सच्चे कविवर्य 'वरकवि' ही होते हैं। जिसके हृदय से उच्चतम भाव और दुर्लभ बौद्धिक सामग्री बाढ़ की नाईं बह निकले, वही, कविता लिखने में समर्थ है। जिनकी बात ऐसी नहीं है, उनकी रचनाओं से, उनके ही नहीं, पाठकों के भी अमूल्य समय की फ़िज़ूलख़र्ची हो जाती है। पर हम यह नहीं कहते कि वरकवि को विद्यार्जन नहीं करना है; अच्छे कवि को चाहिए कि वह अपने समय में प्रचलित सभी कलाओं का भाण्डार बने। उसे पिंगलशास्त्र का खूब अध्ययन करना चाहिए, बारबार पढ लिखकर अभ्यास करके पदलालित्य और ध्वनि को अपनाना चाहिए, और अपने लिए एक खास शैली को निर्मित कर लेना चाहिए। तभी उसकी रचना में माधुर्य, प्रवाह और सुगमता रहेगी। इस तरह परिश्रम किये विना, जो पद्य लिखना शुरू करे, वह अपनी कीर्ति पर, आप ही कुठराघात कर लेता है।

क्यों कि, यह तो कोई सिद्धान्त नहीं है कि कोई विद्वान् पद्यग्रन्थ ही लिखे। नीच दर्जे के कवि (पद्यलेखक) बनने से पहले दर्जे का गद्यलेखक बनना कई गुना श्रेयस्कर है। गद्य के द्वारा भी, दुनिया को, कई तरह की अच्छी सामग्री दी जा सकती है। किसी अच्छे गद्यग्रन्थ की रचना के लिए, महाकवि की जैसी उतनी योग्यताओं की ज़रूरत नहीं है। साधारण पाण्डित्यही काफ़ी है। कार्लैल (Carlyle) साहब पूछते हैं—"अरे भाई! जिस विषय को तुम पद्यरूप में लिखने की कोशिश करते हो उसे अगर तुम उस से भी अच्छी तरह गद्यरूप में लिख सकते हो तो क्यों कर पद्य लिखने का वृथाप्रयत्न करते हो?" अतः, कोई भी, तब तक काव्य लिखने की कोशिश न करे जब तक उसका हृदय सच्ची कविता-सामग्री से भर न जाय

और उसके हृदय में उत्पन्न भाव कविता के बग़ैर किसी भी दूसरी शैली में व्यक्त न किये जा सकें। यह एक पश्चिमी कहावत है कि कवि पैदा होता है, तैयार नहीं किया जाता।

कविता से भरा कोई एक सच्चा काव्य अब हमें मिल जाता तो अभी हमारे देश का उद्धार हो जाता। मरे हुए जीवोंको भी कविता जिलानेवाली है! फ्रान्स में, ११० वर्षों के पहले, एक छोटे से सैनिक ने, एक दिन, रात को अपनी कुटीर में बैठे बैठे, एक पद्यग्रन्थ लिख डाला। वह ग्रन्थ, 'ला मार सेय्येज' नाम से, सब कहीं प्रसिद्ध हुआ और फ्राँसीसियों (फ्रेंच) के बीच एक अव्यक्त आगको सुलगाकर, उसने उन्हें, तत्कालीन मनुष्यवर्ग में सर्वश्रेष्ठ बना दिया। जो इटली के लोग, पहले कंगाल बने थे, वे अब नया जीवन पाकर, शौर्यवान्, सभ्य और बुद्धिमान हो गये हैं, इसका भी कारण, ८० वर्षों के पहले का उनके बीच का कविता प्रवाह ही है। आज भी, जो मनुष्य-वर्ग, यन्त्राभिवृद्धि के कारण उत्पन्न लोभ और बेरहमी से अव्यवस्थित-मनस्थिति के कारण दुर्गुणों का आगार बनने जा रहे हैं, उन्हें उत्तरोत्तर बिगड़ते जाने से रोकने वाली भी कविता ही है।

आज हमारे बीच जो थोड़ा सा धर्म-विश्वास बचा है, वह भी नहीं बचता अगर हमारे बचपन ही में, रामायण, भारत, हरिश्चन्द्रपुराण आदि अच्छे अच्छे काव्यों के अध्ययन के कारण, धर्मचिन्ता, सुशीलता, बड़प्पन, धर्म के लिए प्राण तक को दे देने का साहस आदि सद्गुणों की शिक्षा यदि हमें न मिली होती अगर यूरप में, महात्मा ईसा और उनके अनुयायी सन्तों का चरित्र-चित्रण करनेवाले काव्य नहीं होते तो, उसके सामने, अब तक, सारी दुनिया का स्वाहाकार हुआ होता। यूरप की गतिविधि, अभी इतनी क्रूर है कि अब, इस के कारण, दुनिया भर में महायुद्ध हो रहा है। तब, इन काव्यों के अभाव में, उनकी हालत के बारे में कौन क्या कह सकता है?

इस तरह, जैसे धानके खेत बरसात की प्रतीक्षा में हैं वैसे हम भी अच्छी कविता की टोह में हैं। हमारे सोये हुए विचारों को जगाकर, हमारे सूखे हृदय में बल वीर्य देश-भक्ति, करुणा-कृपा, प्यार, मान, श्रेष्ठता परोपकार आदिसद्भावों को पैदा करने वाले सामर्थ्यशाली महाकवि, हमारे इस देश में पैदा हों! हमारी जाति में इन सद्भावों को अपनाने की लालसा सदा बनी रहती है। लेकिन वह अब अव्यक्त है, गूँगी है। इस अव्यक्त लालसा को स्वरूपदान देने की कोशिश करें! इस गूँगी लालसा को वर-प्रदान देकर, उसे बोलने योग्य बना दें! तभी उनकी कविता में, शक्ति रुचि और फल रहेंगे। करोड़ों लोग, उन कविताओं को गा गाकर खुश होंगें। करोड़ों लोग, अपने लिए, साथसाथ दुनिया के लिए भी फलप्रद कार्यों में संलग्न हो जावेंगे।

एक कवि को, इसके अतिरिक्त और किस कीर्ति की ज़रूरत है? वाल्मीकि, व्यास, कम्बन् और कबीर को उनके ज़माने में जैसी कीर्ति मिली थी, वह आज इसे भी मिलेगी। अगर सरस्वती देवी का कटाक्ष-

वीक्षण इसकी और झुक जाय तो इसमें भी शक नहीं कि यह भी उनकी तरह, अमर यशस्वी बन जायगा।। पर उसे चाहिए कि वह कभी भी निरर्थक शब्द समूहों को, स्वेच्छानुसार अपनी रचना में स्थान न दे; तपस्या से अपनी बुद्धि और हृदय को निर्मल बनाकर, मनुष्य जाति के लिए फलप्रद सामग्री चुन चुनकर, कविता रचे। तभी उसे सरस्वती देवी का अनुग्रह पूर्ण-रूप से प्राप्त होगा।

अगर यह लेख, भले ही मुट्ठी-भर लेखकों के मन में ही जगह पाकर, उन्हें उपरोक्त सत्यों की याद दिलाये और उन्हें जनसमूह के लिए लाभप्रद कविता रचने की प्रेरणा करे तो हमारा यह क्षुद्र प्रयास, व्यर्थ नहीं होगा।

[तमिल से अनुवादक — **श्री. के. एस. चिदम्बरम्**, 'भारद्वाजन्' बी. ओ. एल्; राष्ट्रभाषा-विशारद, हिं. प्र., प्राध्यापक]

* * *

"वर्षा की बूँदों पर —
चढ़ दौड़ी हो पहली मलार
    जो मत्त समीरण का रस पी
    जड़-चेतन विमोहिता वन-श्री
क्षणभर हरिणी-सी चकित खड़ी
हो गन्ध लुब्ध तव चरणों पर यों लोट पड़ी॥"

कविता :

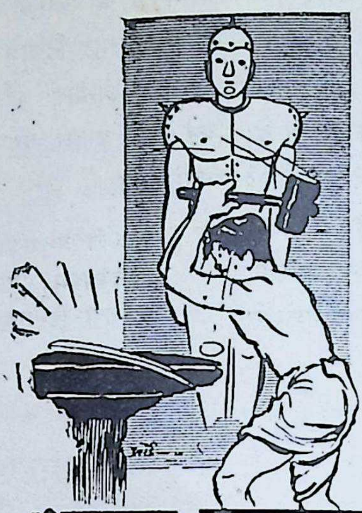

ठनन् ठननन्

[श्री. गोपाल शर्मा]

ठनन्—ठननन् ! ठनन्—ठननन्
अरे, यह कौन पीटे जा रहा है घन ?
सुबह से अर्घ्य दे कर तेल का—
अञ्जलि स्फुलिङ्गों की समर्पित कर
निरंतर अभ्र-भेदी भीम प्रतिमा की—
भयंकर अर्चना का स्वर,
बिना विश्राम भरता जा रहा है कौन,
ठन—ठननन् ! ठनन्—ठननन् ?
अरे, यह कौन पीटे जा रहा है घन ?
विलक्षण देवता, मन्दिर विलक्षण !
या मुझे ही हो गया भ्रम है
गरम हर ईंट, हर खम्भे चढ़ी द्राक्षा !
वहाँ वह कर रहा श्रम है !
हथौड़े पर उछलते कण
लुभाते हैं उसे ज्यों आँख चमका कर

१९५०

निकट बल खा रही है लौ नशीली
हर निमिष परिरम्भ को आतुर।

धुएँ के दीर्घ लहराते स्तरों में—
खूब दिखतीं चिमनियाँ मैलीं

कि तृष्णा की जटा सस्नेह सहलातीं
किसी की अँगुलियाँ फैलीं।

बदन से छूटतीं, मदगन्धिनी, झीनी,
उलझतीं झूमतीं भापें

इन्हीं में नग्न लिप्सा मुस्कराती,—
नाचती धर ज्ञान पद-चापें।

न क्यों फिर सिमिट लज्जा-रक्त होवे
ऊग जीवन की नई कोंपल?

प्रकम्पित कर धरा को—
क्यों न अणिमा का गिरे हो चूर अन्तस्तल?

अरे, तुम ताल देते वज्र पर हो,
मोड़ क्यों उन्मत्त बाहों को?

नहीं चुप कर सकोगे—
प्राण को झकझोरती चीखों-कराहों को।

रुको! ये टीन की जीभें—
सुनहरी लार टपकातीं, बढ़ी आतीं

तुम्हारी पेशियों से छन बरसते—
मोतियों को यूँ निगल जातीं!

तड़कता लौह भी—
भीतर तुम्हारे गूँजता है, वार करता है,

तुम्हारे हर छबीले मोड़ का
सीधा कठिन आकार करता है!

तनिक झुक कर निहारो—
हो गया है आज कितना
क्षीण,—चपटा,—मन!
ठनन् ठननन्! ठनन्—ठननन्
अरे यह कौन पीटे जा रहा है घन?

(अप्रकाशित 'यन्त्र-युग' से)

गुजराती :

मधुव्रत !

संसार ने हम से पूछा—'कौन हो तुम ?'

हमने कहा—'हम हैं मधुव्रती ।'

संसार ने कहा—'कटु से दूर भागनेवाले ?'

हमने कहा —'ना, कटु को मधु बनाने वाले ।'

संसार ने कहा —'अपने को धोखे में रख कर दूसरों को धोखा देने वाले ?'

हमने कहा —'नहीं, सत्य का हिरण्मय ढक्कन खोलनेवाले ।'

संसार ने कहा—'कहां है वह मधु ?' 'कहां है वह सत्य ?'

हमने कहा —'आप इसी प्रश्न की उँगुली पकड़ कर चले चलिए, वही आपका मार्गदर्शन करेगी। मधु ही सत्य है। सत्य ही मधु है । वह सर्वत्र है । सुनिए, यह कोई उल्लास-गीत नहीं है !

मधुवाता ऋतायते
मधु क्षरन्ति सिन्धव : ॥ *

संसार ने पूछा —'फिर कटु कहां से आया ?'

हमने कहा—'मधु की अत्यासक्ति से।'

संसार ने पूछा—'अत्यासक्ति किसे कहें?'

हमने कहा—'उस लालसा को, जिसे हम अपनी मर्यादित शक्ति से न पाकर भी पाना चाहते हैं ।'

संसार ने पूछा —'उससे किस तरह छूटा जाय ?'

हमने कहा—'अपना विकास करके।'

संसार ने पूछा—'विकास किस प्रकार हो ?'

हमने कहा—'मैं का 'अहं' खो देने से।'

संसार ने पूछा—'खो कर भी कुछ पाया जा सकता है ?'

हमने कहा —'जो कुछ प्राप्त हुआ है उसका भान न रह जाना ही सच्ची प्राप्ति है।'

संसार ने पूछा —'क्या इस प्राप्ति से तृप्ति होगी ?'

हमने कहा—'तृप्ति की आकांक्षा अपूर्ण को होती है ।'

संसार ने पूछा —'तो क्या मधुप्राप्ति से तृप्ति नहीं होती ?'

हमने कहा—'नहीं, मधुप्राप्ति से पूर्णत्व प्राप्त होता है ।' मधु ही पूर्ण है ! पूर्ण ही मधु है !

(गुजराती से—**श्री० सुरेश जोशी**)

---

* माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । मधुनक्तमुतोषसि । मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता । मधुमान्नो वनस्पतिः । मधुमानस्तु सूर्य : । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।

—**तैत्तरीय उपनिषद् १९, ३९**

कन्नड़ कहानी :

परकाय प्रवेश

["श्रीनिवास"]

कोर्टने साहब की डायरी का दूसरा भाग।

श्रीरामचन्द्र ने रावण का वध कर विभीषण का राजतिलक करने के लिए जब लंका में प्रवेश किया तब नगर के द्वार पर रखी हुई एक नील-मणि को देखकर उनका मन ललचा गया। द्वार पर ही मन इतना चंचल हो गया तो अंदर का वैभव देखकर कितना चंचल न होगा, यह सोचकर वे वहीं से लौट गये। जनश्रुति है कि उसके बाद लक्ष्मण ने लंका में जाकर विभिषण का राजतिलक किया। इस प्रकार की एक सुन्दर कथा हिन्दुओं में शुरू से ही प्रचलित है।

यह देश हमारे लिए लंका की तरह है। लेकिन हम राम की तरह नहीं है। पाश्चात्य देश के लोग इस तरह इस देश में आ रहे हैं मानो इस देश की संपत्ति ने उनको स्थायी निमंत्रण दे रखा हो। जब से हमारे देश के लोग यहाँ आने लगे हैं, तबसे यहाँ की सम्पत्ति बराबर हमारे देश में पहुचने लगी है। यहाँ पर जो भी अच्छी चीज दिखायी पड़ती है, उसे हम अपने देश ले जाना चाहते हैं। शाहजहाँ का सिंहासन नादिरशाह के साथ फारस चला गया। नादिरशाह फिर नहीं लौटा। हम लोग यहीं बसे हुए सैकडों नादिरशाहों की भाँति इस देश के ऐश्वर्य को थोड़ा-थोड़ा करके ले जा रहे हैं। यहाँ की प्रसिद्ध अनमोल वस्तुएँ यहाँ से विदा हो रही हैं। सारा देश खाली होता जा रहा है।

हाल ही में इसी तरह की दूसरी एक घटना घटी। कुछ दिन पहले मेरी बहन एमिली और उसके पति मेरे यहाँ आये। जान फर्कूवर का इस देश से बड़ा प्रेम है। मेरे विचार में हमारे देश में उनके जैसा शायद ही दूसरा कोई व्यक्ति मिले। वे यहाँ के लोगों व उनकी रहन-सहन से भली-भाँति परिचित हैं। यहाँ की सभ्यता में कौन-सी उत्तम बातें हैं, उनको मालूम है। यहाँ के मंदिरों की शिल्पकला-कुशलता का उन्हें अच्छा ज्ञान है। वे इस बात के अच्छे जानकार हैं कि पुराने जमाने में यहाँ एक बहुत ऊँची सभ्यता थी और उसकी झलक वर्तमान जीवन में भी दिखायी देती है। हम लोगों को इस देश की गरिमा की झाँकी दिखाने के लिए उन्होंने कितना परिश्रम किया है, यह किसी से छिपा नहीं है। इस काम के लिए उन्होंने इस देश में कई बार दौरा किया है। जहाँ-जहाँ मठ-मंदिर हैं, पुराने महल हैं, पुराने घराने के लोग रहते हैं, उन सभी जगहों में भ्रमण करके उन्होंने वहाँ की शिल्प-कला व चित्र-कला का अवलोकन किया है। इस तरह उन्होंने यहाँ की वस्तुओं को देखा ही नहीं है, बल्कि उनकी विशेषताओं का सुंदर वर्णन किया है, जिसके लिए हमारे देश के लोग उनके बड़े आभारी हैं। इन सभी बातों में एमिली ने अपने पति का हाथ बँटाया है और इस देश के प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया है।

फर्कूवर ने या तो माँग कर या खरीद कर यहाँ की चित्र-कला तथा शिल्प-कला का एक सुंदर संग्रह अपने यहाँ तैयार किया है। सब को एकत्रित करके अपना ही एक म्यूजियम बनाने का उनका विचार है। अजंता होते हुए वे यहां पर आये। उनके उत्साह की कोई सीमा नहीं थी। पहले कुछ दिन तक वे अजंता की चर्चा करते रहे एमिली को चुप देखकर मैंने पूछा, तुमको वह कैसा लगा ? उसने कहा—"मुझे तो उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। लेकिन एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी।"

"वह कौनसी बात है?"—मैंने प्रश्न किया। उसने कहा—"वहाँ का एक चित्र देखकर मुझे लगा कि लिखनेवाले ने लिखा तो सही, लेकिन कागज या कपड़े के ऊपर क्यों नहीं लिखा? अगर

ऐसा लिखते तो मुँह-माँगा दाम देकर अपने साथ हम ले जा सकते थे। चट्टानों पर लिख डाला है। कोई ले ही जा नहीं सकता।'' यहाँ की चीजें ले जाने की इच्छा करना कुछ अनुचित है, ऐसा मुझे नहीं लगा। ऐसी दिलचस्पी ठीक ही है, इसमें संदेह नहीं। क्योंकि इन चित्रों में ऐसी खूबियाँ भरी हैं कि उन्हें देखनेवालों में ऐसी इच्छा हुए बिना नहीं रहेगी।

इसी बात के सिलसिले में हमारे प्रदेश के प्रसिद्ध मंदिरों की बात छिड़ी। फर्कूवर ने कहा कि तुम्हारे प्रदेश में, सुनते हैं, मसुमत्ति नामक एक गाँव है और वहाँ किसी एक के घर में बढ़िया चित्र हैं। पूछने पर नाम आदि भी बता दिया। आखिर उन्होंने कहा कि उनके यहाँ से दो-एक चित्र ले जाना चाहता हूँ। क्या तुम इस काम में मेरी मदद कर-सकोगे? मैंने यह सोचकर मान लिया कि इस देश की महत्ता का प्रचार करनेवालों की सहायता करना आवश्यक है। हम लोग कल मसुमत्ति गये थे।

मसुमत्ति एक छोटा-सा गाँव है, जिसकी दशा इतनी बुरी हो गई थी जितनी किसी गाँव की हो सकती है। गाँव के बाहर जहाँ तहाँ कुछ घर दिखते हैं, लेकिन गाँव के अंदर घरों की कुल संख्या चार-पाँच से ज्यादा नहीं होगी। गाँव के सभी लोग किसान हैं। कुछ दिन पहले जब मैं वहाँ गया था, तब एक घर के बरामदे में एक बूढा आदमी बैठा था। उससे मैंने पूछा कि गाँव की दशा ऐसी क्यों हुई है? इस देश के लोगों में सच्चे ज्ञान का प्रचार हो गया है। इनकी प्रत्येक बात में कुछ-न-कुछ गूढार्थ भरा रहता है। यहाँ के काश्तकार भी राजा-महाराजाओं का शिष्टाचार जानते हैं। सामान्य व्यक्ति के जीवन में भी शांत स्वभाव की प्रबलता का परिचय मिलता है। गाँव ऐसा क्यों बना है; इस प्रश्न का उत्तर उस बूढ़े ने यों दिया—''क्या सभी गाँव इसी तरह बनते हैं?'' मैंने कहा कि कुछ गाँव तो तरक्की ही करते जाते हैं। बूढे ने कहा: ''कभी कुछ गाँव तरक्की करते हैं तो और कुछ गिरते भी हैं।'' ''क्या तुम्हारे गाँव की कभी वृद्धि हुई थी?'' मैंने प्रश्न किया। ''जवानी के बिना बुढ़ापा कैसे आ सकता है?'' उसने उत्तर दिया। इसके बाद पूछने पर उसने बताया कि यह पुराण-प्रसिद्ध माहिष्मती नगर है। इसमें कार्तिवीर्यार्जुन राजा राज्य करता था। उसके बाद सैकड़ों राजाओं ने यहाँ राज्य किया। अंत में जब मुसलमानों ने इसपर हमला किया, तब गाँव के सब लोगों ने जान हथेली पर रखकर उनका मुकाबला किया। आगे चल कर यह नगर छोटा-सा गाँव ही बन गया। अब ये चार ही घर बचे हैं। कहाँ माहिष्मती और कहाँ यह गाँव! लेकिन उस बूढ़े के मन में जरा भी संदेह नहीं था। उसने एक पत्थर का मण्डप दिखा कर कहा कि यही वह व्यायाम-शाला है जिसमें सहस्रार्जुन अपने हजारों हाथों से व्यायाम करते थे। जिस सरोवर में वे रोज स्नान करते थे उसे, और जिस मंदिर में वे पूजा के लिए जाते थे उसे भी दिखाया। उसने यह भी बताया कि अर्जुन ने रावण को पकड़ कर यहीं कैद रखा था। एक बार दस सिर के कीड़े की तरह नाचने के लिए उसने रावण को आज्ञा दी। जब रावण ने आज्ञा का पालन करने से इनकार किया, तब अर्जुन ने गुस्से में आकर रावण को ऐसा घूँसा मारा कि रावण उछलकर खड़ा हो गया और उसके दसों सिर पत्थर के मण्डप की छत से जा टकराये और उस पर दस निशान हो गये। उसने कहा कि आजकल भी ये निशान पत्थर पर देखे जा सकते हैं। इस प्रदेश में यह जनश्रुति है कि यहाँ का कोई गाँव या जंगल महापुरुषों के जन्म के लिये अनुपयुक्त नहीं है। यहाँ के लोग अब भी यह भूले नहीं हैं कि भगवान अवतार लेकर जगत में आते हैं! यह सब सुनकर मैंने अपने आप कहा कि यह तो मामूली बात है। लेकिन यह बताने के लिए कि कुछ दिनों के पहले यह एक बड़ा गाँव था, यहाँ कई निशान अब भी मौजूद हैं। एक तो उपर्युक्त पत्थर का मण्डप है। दूसरा इतना बड़ा और एक भवन है जिसके सौ खंभे हैं, जो दस कतार में हैं। भवन की ऊँचाई ज्यादा नहीं है, लेकिन उसके पत्थर कितने चौड़े और कितने भारी! इसके निर्माता कितने चतुर रहे होंगे! विशाल सरोवर है जिसका वर्ग लगभग डेढ सौ गज होगा। समान आकार के पत्थरों से बहुत सुंदर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। ऐसी बढ़िया

कारीगरी का काम उन्हीं लोगों के द्वारा हो सकता है, जिनको अपने काम पर पूर्ण श्रद्धा हो; और जो सुन्दर भवन से प्राप्त होनेवाला आनन्द देख चुके हों। अभी अभी इन सीढ़ियों पर घास, पौधे उग आये हैं और पत्थर ढीले पड़ने लगे हैं। इतना होने पर भी नीचे के पत्थर मजबूत खड़े हैं। आजकल भी पानी की गहराई चारों तरफ बराबर है। इससे यह विदित होता है कि चारों तरफ समान आकार की सीढ़ियाँ बनाने में विशेष चतुराई से काम लिया गया है। यहाँ का मंदिर भी बहुत सुंदर है। लेकिन संभव है, जो आँखें ग्रीक-मूर्तियों की सरलता और हमारे यहाँ के भवनों की धीरता देख चुकी हों, उन्हें यहाँ के भवनों की विविधता व लघुता अच्छी न लगे। किंतु यह कहना ही पड़ेगा कि यहाँ के मंदिर सब प्रकार से अच्छे ही हैं। इस मंदिर का सारा काम बहुत नाजुक है। इसकी दीवारें पत्थरों से बनी हैं। चारों तरफ की पंक्तियाँ समान ऊँचाई पर हैं। इसमें भी कुछ भाग शिथिल होने लगे हैं। मंदिर में एक मूर्ति रखी हुई है। उसे देखने पर ऐसा मालूम होता है कि बहुत दिनों से उसकी पूजा नहीं हुई है। इसके अलावा एक लम्बी कतार में पुराने टूटे-फूटे घर दिखाई पड़ते हैं, जो यह साबित करते हैं कि पुराने जमाने में यह एक बड़ा अच्छा गाँव था। सात आठ गलियों का परिचय कराते हुए उस बूढे ने एक एक करके बताया कि यह सुनारों की गली थी, दूसरी वैश्यों की, तीसरी मछुओं की, चौथी ब्राह्मणों की। लेकिन अब सभी जगहों में सूनापन है। कहीं कहीं टूटी दीवारें हैं। यह सारा देखने के बाद में लौट गया था।

कल मसुमत्ति जाकर जब हमने पता लगाया तब मालूम हुआ कि जिस घर में चित्र रखे हुए हैं, वह इसी बूढ़े का है। हमने जाकर बूढ़े को बुला भेजा। बूढ़े ने बाहर आकर नमस्कार करके हमारा सादर स्वागत किया। शिष्टाचारों की बातों में शायद ही दूसरा कोई इनकी समानता कर सकता हो। बूढ़े की बातचीत में स्वाभाविक बड़प्पन की आभा झलकती थी। फर्कूवर बोले:—

"क्या आप ही कृष्णय्या हैं?"

"जी हाँ, साहब।"

"आप से कुछ काम है, इसी लिए हम यहाँ पर आये हैं।"

"आज्ञा दीजिये।"

"हम सुनते हैं कि आपके यहाँ पुराने जमाने के कई चित्र रखे हुए हैं। उन्हीं को देखने के लिए हम आये हैं।"

"हमारे यहाँ कुछ ज्यादा तो नहीं हैं।"

"जितने भी हों कृपया दिखाइये।"

"इसमें क्या हर्ज है, पधारिये।"

हम जाकर अंदर के बरामदे में बैठ गये।

बूढ़े ने अंदर से कुछ चित्र लाकर हमारे सामने रख दिये। मजमून मामूली था। एक कपड़े पर कुछ किस्म का गोंद लगाकर साधारण रंगों से चित्र बनायें गये थे। देखने पर ऐसा मालूम होता था कि चित्र बड़ी आसानी से खींचे गये थे। कुछ चित्रों पर यह निशान दिखाई पड़ता था कि पहली बार का चित्र पोंछ कर दूसरी बार लिखा गया था। किसी किसी पर पहली बार की लकीरें कुछ रह गई थीं। फिर भी, चित्रकार के हाथ का चमत्कार आश्चर्यजनक ही था। उनमें से एक गोपालकृष्ण का चित्र था, जो इस बात की गवाही देता था कि गोपालकृष्ण कैसा अद्भुत व्यक्ति था, इसका पूरा ज्ञान चितेरे को हुआ था। खड़े होने की वह शान, वह पदन्यास, मुरली हाथों में लेने का वह बाँकापन, मुरली से लगे हुए अधरों की वह छटा; वह नयन-विलास, वक्षःस्थल पर एक तरफ खिसकी हुई वनमाला की वह छवि—एक से एक बढ़कर सब कुछ आकर्षक है। इतना ही नहीं, कृष्ण के पीछे स्थित एक वृक्ष के पत्ते इस तरह निश्चल हैं मानो, मुरली के मधुर गान में सारा वातावरण ही विलीन हो गया हो। गान-सुधा का पान करके चारों तरफ खड़े हुए धेनु, देवता ऋषि व गोपिकायें आनन्दविभोर हैं। चित्र को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों इस चित्रकार को भगवान प्रत्यक्ष हुए हैं। एमिली फर्कूवर के आनंद का पारावार न था। उन्होंने पूछा कि इसके निर्माता कौन हैं?

"हमारे दादाजी हैं।"

"बड़े ही कला-निपुण मालूम होते हैं।"

"उनके जैसा निपुण हमारे घराने में दूसरा कोई पैदा ही नहीं हुआ।"

"क्या उन्होंने और भी कुछ बनाया है ?"

"उन्होंने बहुत-सी तस्वीरें बनाई हैं। लेकिन जितनी बनाई हैं, उनमें से तीन-चौथाई गोपालकृष्ण की ही हैं। प्रभु का चित्र खींचने में उनकी विशेष रुचि थी। उसने हमारे सामने एक चित्रों का पुलिंदा ला कर रख दिया और कहा कि यही वह चित्र है, जो अनेकों के बनाने के उपरांत बन पड़ा है। जैसा कि उसने कहा, उस बण्डल में तीन-चौथाई चित्र गोपालकृष्ण के ही थे। ध्यान से देखने पर एक दूसरे से थोड़ा भिन्न जँचता था। लेकिन यह कहना कठिन था कि किस बात में भिन्नता है। एक एक करके हम सामने रखे हुए सभी चित्र देखते गये।

उस बण्डल में कुल सोलह चित्र मिले। बूढ़े ने कहा—"हमारे दादा एक चित्र बनाते और यह कहते थे कि प्रभुने मुझे ठीक तरह दर्शन नहीं दिये। तुरंत ही दूसरा चित्र बनाना शुरू करते। इस तरह आखिर में जो बनाया था वही आपने अभी देखा है।"

फर्कूवर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा "क्या उन्होंने इस चित्र को पसंद किया था ?"

"जी नहीं, कुछ दिन के बाद दूसरी एक तस्वीर बनाना शुरू किया। उसे शुरू करने के पहले दस-बारह दिन तक वे बराबर भगवान की पूजा करते रहे और शाम सवेरे ध्यानमग्न हो बैठे रहे। उनका जीवन बड़ा ही अजीब था। एक दिन सहसा कुएँ की तरफ से, जहाँ वे ध्यानमग्न बैठे थे, अपनी पत्नी से कहा कि ऐसा लगता है कि आज भगवान ने मुझे दर्शन दे दिये हैं, तुम उनकी पूजा करो। ऐसा कहकर चित्र बनाने बैठ गये। दो पहर के ढलने तक बनाते ही रहे। उसी समय बडे दादा भी पूजा समाप्त कर अपने भाई के पास आकर बैठे। घर के सब बाल बच्चों ने खाना खा लिया। उन दिनों मेरी दादी ने मेरे पिता को अपने गर्भ में धारण किया था। कोई प्रतीक्षा न करें, यह कह कर उन्होंने सबको भोजन करा दिया। सिर्फ दो ही जन छोटे और बड़े दादा, बिना खाये रह गये। अभी अभी चित्र का काम समाप्त हो जायगा, यह समझकर शाम तक बैठे रहे। चित्र को देखने से ऐसा ही मालूम होता था कि अभी समाप्त हो जायगा। इसी समय शोर मच गया कि फौज ने हमला कर दिया है। गाँव के फाटक फौरन बंद कर दिये गये। गाँव के सभी लोग किले की तरफ जाने लगे। हमारे दादा में असाधारण साहस था। "भगवान शायद यह नही चाहते कि मैं यह चित्र पूरा करूँ"—ऐसा कहकर उन्होंने आचमन किया, किले की तरफ प्रस्थान किया। घर की स्त्रियों ने भोजन कर जाने के लिए प्रार्थना की। दादाने यह उत्तर दिया कि भोजन किले की प्रतीक्षा कर सकता है; लेकिन क्या किला भोजन की प्रतीक्षा कर सकता है? बड़े दादा ने कहा कि वह अभी आ जायगा। खाने के लिए जब स्त्रियों ने मजबूर किया, तब पूजा के लिए रखा हुआ एक केला खाकर चल पडे। उस दिन की भीड़ ऐसी वैसी न थी। गाँव के लोग बहुत कम थे। अगर सिपाहियों की मुठ्ठी गरम कर दी जाती, वे चुपचाप चले जाते। किसी ने इस तरह की सलाह भी दी। लेकिन हमारे दादा ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया। जब वे किले के ऊपर जाकर घूमने लगे, तब किसी सिपाहीने आकर उनपर बंदूक से गोली चला दी, वे वहीं जमीन पर गिर पड़े। इतने में खेतों में काम पर गये हुए लोग भी आ गये। सबों ने सेना का मुकाबला किया और उसे हरा भी दिया। उसके बाद कुछ लोगों ने हमारे दादा को ढोकर हमारे घर पहुँचा दिया। उन्हें छाती के पास ही गोली लगी थी। प्राण अभी नहीं गये थे। सुनते हैं कि उन्होने घर लाये जाने के बाद एक बार आँखें खोलकर चारों तरफ देखा। उनके बड़े भाई टकटकी लगाकर देखते ही रह गये। इस वक्त दादा में उतनी स्मृति रही हो जितनी किले की ओर जाने के पहले थी। उन्होंने धीमी आवाज में कहा कि लो, अभी आ जाऊँ, चित्र का काम समाप्त करना है। इतने में प्राण पखेरू उड़ गया। हमारे बड़े दादा अपने भाई का अपने ही पुत्र की तरह पालन-पोषण करते आते थे। वे तो यह कहकर प्रतीक्षा करते रहे कि उनके आते ही खाना खा लेंगे। जब बात कुछ और ही हुई, तब एकदम वे जमीन पर लोटने लगे और यह कहने लगे कि हाय रे, मैंने उसे दो कौर खिलाये बिना ही जाने दिया; भूखे आदमी को

मृत्यु के मुँह में भेज दिया। उनके शोक की सीमा नहीं थी। उसके बाद सब क्रियायें समाप्त हुईं। उस दिन से हमारे बड़े दादा की दशा कुछ विचित्र-सी हो गयी। कुछ दिन तक दरवाजे पर इस तरह इंतजार करते हुए दिखायी देते कि भाई अभी आनेवाला है। तदनंतर वे यह कहते कि उसका मन कैसा हो गया हो कौन जाने, लेकिन हाँ, आयेगा ज़रूर। अब ऐसे आदमियों का आना कभी संभव है ? इसी तरह वे सदा कहा करते थे।

"उस दिन वे जो चित्र बना रहे थे, वह कहाँ है ?"

"अंदर है।"

"उसे लाकर कृपया दिखाइये।"

"उसे किसी को नहीं दिखाना चाहिए, ऐसा बड़ों ने कहा है।"

"यह क्यों ?"

"अधूरा काम है। मुमकिन है कि उसमें कुछ त्रुटियाँ दिखाई पड़ें और कोई यह कह दे कि यह अच्छा नहीं है। कलाकार के लिए यह अपमान की बात है। देखनेवालों की श्रद्धा कम हो जायगी। इसलिए बड़ों ने मना कर दिया है।"

"भाई, आप जो कहानी सुना रहे थे, अगर उसे सुना दिया जाय तो कलाकार की निंदा नहीं होगी। हम तो आप के देवता की पूजा करनेवाले नहीं हैं, हमारी भक्ति घटेगी नहीं। लाइये, जरा दिखाइये।"

"अगर साहब अकेले ही होते तो मैं शायद ही उसे बाहर लाता। अब अम्माजी (मेमसाहिबा) भी आयी हैं। देख कर ही जावें। हमारे बड़े दादा ने मना जो किया था, उसके लिए दूसरा एक कारण था। "मैं लौटकर आऊँगा और चित्र समाप्त करूँगा—" यह जो बात हमारे दादा ने कही थी उसपर हमारे बड़े दादा का पूरा विश्वास हो गया था।"

"वे आनेवाले हैं — इसका क्या मतलब ?"

वे यही समझते थे कि हमारे दादा फिर से हमारे घर में पैदा होंगे, बड़े होकर चित्र की पूर्ति करेंगे। चूँकि वे आनेवाले हैं, अतः उन्हीं के हाथों चित्र का काम पूरा होने तक उसे किसी को नहीं दिखाना चाहिए। यही वजह है कि अब तक वह किसी को नहीं दिखाया गया। मेरे पिता की बीस साल की उम्र तक मेरे बड़े दादा जीवित थे। मेरे पिताजी में दादा जैसी प्रतिभा है या नहीं, इसकी जाँच मेरे बड़े दादा ने की। उन्होंने मेरी भी परख की लेकिन हम दोनों में वह प्रतिभा नहीं थी। उनके आने तक चित्र सुरक्षित रखा जाय, ऐसी ताकीद करके हमारे बड़े दादा ने प्राण त्याग दिये। हमारे पिताजी ने सिर्फ एक बार यह चित्र हमारे गुरू को दिखाया था। आज जब इन देवीजी का चेहरा देखता हूँ तब मुझे ऐसा लगता है कि इन्हें चित्र दिखा दिया जाय। लीजिये, दिखा ही दूँगा।" ऐसा कहते हुए बूढा अंदर गया और दो चित्र लाकर उनमें से एक को हमारे सामने रख दिया।

चित्र देख कर हम सचमुच स्तंभित रह गये। उसमें चित्रकार ने न मालूम कैसा जादू भर दिया था। उसका वर्णन शब्दों में करना असंभव ही है। चित्र इस तरह खींचा गया था मानों उसमें चित्रित हवा भी आँखों को दिखाई पड़े। उसमें वेणुगान की लहरों का लहराना प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता था। कृष्ण के शरीर की छवि को भी बाहर छलकते देख सकते थे। यद्यपि बहुत-सी बातें पिछले चित्रों से मेल खाती थीं तो भी कहीं कुछ ऐसा अंतर कर दिया गया था जिसे पहचानना दुश्वार था। चित्र में एक अपूर्व आभा आ गई थी। करीब अस्सी साल के पहले का होते हुए भी चित्र का रंग तनिक भी फीका नहीं पड़ा था। हम दोनों की अपेक्षा एमिली के मुख मण्डल पर जो उत्साह था वह सीमारहित था। वह टकटकी लगाये चित्र की तरफ निहारने लगी।

"क्या यह वही अधूरा चित्र है ?"

"जी नहीं।"

"बूढे ने उस चित्र के ऊपर दूसरा एक रख दिया।"

"अद्भुत है अदभुत" एमिली बोल उठी।

"वही चित्र था; और भी मोहक था, हम थोडी देर तक चुपचाप देखते ही रह गये।

फर्कूवर ने चित्र देखते हुए कहा—"गाय के पास ही कुछ बनाना शुरू किया गया है, वह क्या है ?" बूढे ने कहा "जब वे बना रहे थे तभी गाँव पर फौज ने हमला किया था और तुरंत वे चले गये। थोड़ी ही देर में चित्र पूरा होनेवाला

ही था। वे क्या बनाना चाहते थे, कौन जाने! हमें तो मालूम नहीं होता।"

गौर से देखने पर ऐसा मालूम होता था कि मानो वह दूसरी एक गाय का चित्र हो। निश्चित रूप से कहना मुश्किल था। एमिली उसी की तरफ देख रही थी। मैंने बूढ़े से पूछा कि वह क्या होगा यह किसी ने भी अबतक नहीं बताया?

बूढ़े ने उत्तर दिया—मेरी लडकी का एक लड़का है। उसने कुछ बताया था, और दूसरा कोई अवतक इस समस्या को सुलझा नहीं सका।

फर्क़ूवर ने बूढ़े से पूछा—अगर आप यह चित्र मुझे बेच देंगे तो मैं अपने देश में आपके दादा की कीर्ति को उज्वल करूँगा। क्या आप देंगे?

बूढ़े ने उत्तर दिया, साहब, जब हमारे बड़े दादा ने चित्र को दूसरों को दिखाना भी मना कर दिया था तब हम उसे कैसे बेच सकते हैं?

फर्क़ूवर:—मैं अपने उपयोग के लिए नहीं माँग रहा हूँ। इससे आपके दादा की प्रसिद्धी होगी और आपके देश का नाम होगा।

बढा:—लौटने का वादा करके जो गये हैं अगर वे आजायँ तो?

फर्क़ूवर:—भैया, यह भी कभी संभव है? जरा सोचिये तो सही।

बूढा:—इसमें हमारा क्या वश चल सकता है? जिन्होंने यह कहा है वे ही जानें। उसका अर्थ हम क्या लगा सकते हैं? जो हो, अगर चित्र यहीं रहा तो हमको यही तसल्ली रहेगी कि हमने बडों की बात का पालन किया। उसके बाद भगवान की इच्छा।

फर्क़ूवर:—तब तो ठीक है। विचार कीजिये। हम चार-पाँच दिनों में लौट आयेंगे। अंतिम निर्णय तभी सुनाइये।

एमिली हमारी बातें सुन रही थी ऐसा प्रतीत नहीं हो रहा था। इतने में उसने मेरी तरफ देख कर कहा—"वे यहाँ क्या बनाना चाहते थे बताऊँ?"

मैंने कहा "बताओ।"

एमिली:—उन्होंने यही बनाने की बात सोची होंगी। एक गाय का बछडा दौडता हुआ अपनी माँका दूध पीने आही रहा था कि भगवान ने मुरली अधरों पर रखकर सुरीली तान सुना दी और वह मुरली की माधुरी से मुग्ध होकर मूर्तिवत खडा रहे गया। माँ का दूध पीने से फिर से भूख लगती है किंतु संगीत-सुधा का पान करने से भूख मिट ही जाती है। संगीत की तान छिड़ गई है यह दिखाने का प्रयत्न यहाँ पर किया गया है। पहला तो साधारण नियमों का पालन करते हुए बनाया गया है और दूसरा उस बात को बताने के लिए चित्रित गया है कि अभी गाना शुरू हुआ है।

बूढा:—तब तो हमारे लडके का कहना ठीक है।

हम:—लडके ने क्या कहा था?

बूढ़ा:—भगवान ने कुछ विचार मग्न होकर अपनी मुरली हाथ में ली है। मुरली की पहली तान हवा में गूँज उठी है। दूध पीने के लिए आया हुआ बछडा दूध पिये ही बिना खडा रह गया है। यही लडके का कहना है। अब अम्माजी भी यही कहती हैं।

यह सोचकर कि लडके की प्रतिभा कितनी होगी हम चकित रह गये। चित्र में सचमुच हवा भी रोमांचित हो गई है ऐसा मालूम होता था। भगवान के मुँह में नवीन भावों की झलक दिखाई पडती थी।

फर्क़ूवर:—भैयाजी, उस लडके को चित्र कला के काम में क्यों नहीं लगा देते? लड़का बड़ा होनहार है, तरक्की करेगा। चित्र हमें बेचने के बारे में आप अपना अंतिम निर्णय उस समय बताइये जब हम चार-पाँच दिनों में लौटेंगे।

एमिली कुछ कहना ही चाहती थी लेकिन बाद को चुप रह गई।

बूढ़े ने बड़े आदर के साथ हमें पान खिलाया। तब हम सब वहाँ से चल पड़े।

दूसरी बार उस जगह जाने का विचार ही हमने छोड़ दिया। पैसे के लालच से मुमकिन है कि बूढ़ा हमें चित्र दे दे। हम भी लेना ही चाहते थे तो भी हम वहाँ नहीं गये।

इसका कारण यों है:—

लौटती बार एमिली पुष्करिणी के पास थोडी देर बैठ गई। फर्क़ूवर ने नाश्ते की चीज़ें खोल दीं। तीनों ने नाश्ता किया और चाय पी ली। उसके बाद एमिली ने कहा, भैया, देखते नहीं, यह पुष्करिणी कितनी अच्छी है!

१९५०

मैं:— बहुत अच्छी है। लेकिन पानी नहीं है। जहाँ तहाँ पत्थर खिसक रहे हैं। देखो यहाँ की शिला को कोई अपना घर बनाने के लिए उठा ले गया है।

एमिली : "भैया, हम भी वैसा ही काम करना चाहते हैं, जैसा कि इन लोगों ने किया है। देखिये न, अब इसमें पानी नहीं है। तो भी कोई हर्ज़ नहीं, इसकी बनावट तो अच्छी है। उगे हुए पौधे घास वगैरह निकाल कर अच्छी तरह देखभाल की जाय तो, यह पुष्करिणी आज नहीं तो कल, चार-पाँच सालों में पानी से भरी पूरी हो जायगी। अब मेरे मन में एक कल्पना उठती है। जब पहले इस पुष्करिणी में पानी लहराता था, जब गाँव की छबीली युवतियाँ पानी भरने के लिए अपनी गगरियाँ लिये यहाँ पर आया करती थीं और उनके पैरों के घुंघुरू बजते सुनाई पड़ते थे। अब भी ऐसा लगता है कि इन सीढ़ियों पर सुन्दरियाँ चढ़ती उतरती दिखाई पड़ती हैं और पैरों के घुंघुरू के बजने की आवाज सुनाई पड़ रही है। अगर पुष्करिणी हो तो पानी एक न एक दिन आही जायगा। और सुन्दरियाँ भी आयेंगी। अगर इसके पत्थर उठा ले जायँ और आनेवाले उसे खराब करते जायँ तो, पानी के आने पर पुष्करिणी ही रहे कैसे ?

"यह तो ठीक है, अब तुम चाहती क्या हो"?

"अगर हम लोग यहाँ अच्छी तस्वीरें, सुंदर विग्रह, और जो भी अच्छी चीज़ें मिलें उन्हें अपने देश उठा ले जायँ तो, अब यह देश फिर से तरक्की करेगा, तब उसका गतवैभव देखने को कहाँ मिलेगा ? भला, इससे इस देश की सहायता होगी?

हम अपने देश ये वस्तुएँ इसीलिए ले जाते हैं कि इस देश का वहाँ पर गौरव बढ़े।

उस देश में, इस देश की कीर्ति के बढ़ने से, इस देश का भला कैसे होगा ? लड़के को तैयारी देने का उपदेश देकर हम वह चित्र ही अपने साथ ले जायँ तो उस लड़के की कैसी मदद होगी ?"

इसके बाद हम तीनों घोड़े पर चढकर अपने गाँव की ओर रवाना हुए। कुछ दूर जाने पर एमिली ने कहा, "भैया, क्या आपको मालूम है कि इस देश के लोग जीव का एक शरीर छोडकर दूसरे शरीर में प्रवेश करने की बात को माननेवाले हैं?"

"हाँ, मैंने ऐसी बात सुनी है।"

"यही परकाय प्रवेश कहलाता है। जब जीव कहीं चला जाता है, तब यदि शरीर को कहीं छिपा कर रख दे अथवा उसका रूप ऐसा विकृत कर दिया जाय, जिससे उसकी पहचान न हो सके तो जीव के लौट आने पर फायदा ही क्या हो ! कहा जाता है कि तब शरीर को न पाकर जीव भटकता रहेगा।

"ठीक है।"

"भैया, जिसको ये लोग भारत माता कहकर पुकारते हैं वह सुंदरी शीत-ज्वर से पीडित होकर पड़ी है। उसके बच्चे चारों तरफ़ बैठे 'अम्मा-अम्मा' कहते हुए रोदन कर रहे हैं। उस माता की शरीर कांति को देखने पर ऐसा मालूम होता है कि उसका जीव अभी आ जायगा। ऐसी हालत में उसके शरीर में विद्यमान चूडियाँ, अंगूठी और अन्य सौभाग्य-चिन्ह उठा ले जायँ और उसका रूप विकृत कर दें तो, जब जीव लौटकर आ जायेगा, संभव है, उसे अपने शरीर की पहचान ही न हो। शरीर ही को उठा ले जाने पर जैसी दशा होगी वैसे ही उसकी भी होगी। बच्चे सब रो रहे हैं। बच्चों की पुकार सुनकर माता का जीव भटक भटक कर एक न एक दिन लौट आयेगा ही। उस समय अगर उसे वह शरीर न मिले तो उसकी कैसी मुसीबत हो जाय ? हमें ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिए।" यह कहते कहते एमिली की आँखें डबडबा आयीं। फर्कूवर ने अपना मुँह दूसरी तरफ कर लिया। उस वक्त वे अपने छोटे पुत्र जार्ज का स्मरण कर रहे थे।

वहाँ से हम लोग चुपचाप लौट आये। उसके बाद चित्र माँगने के लिए फिर न गये।

"इस देश के लोगों की सभ्यता का पतन हो गया है—ऐसा समझकर इस देश में हम अपनी सभ्यता का प्रचार करने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन मेरा डर है कि यह उसी प्रकार दुःखप्रद हो जाय जिस तरह परकाय प्रवेश से होता है।"

[अनुवादक : **श्री. हिरण्मय,** बी. ओ. एल., "साहित्य रत्न" हिन्दी-प्राध्यापक]

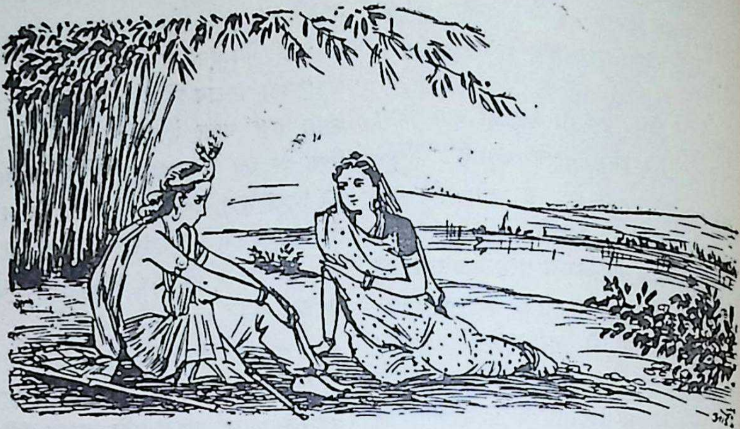

स्निग्ध माधव

[श्री विनय मोहन शर्मा]

यमुना तीरे, वेतस-कुञ्जे, बैठे हैं यदुवंशी
राधा के चिन्तन में अपनी भूले लकुटी-वंशी।
इसी समय सम्मुख हो कोई छाया सी आ डोली
और सखी की व्यथा-कथा सब धीरे धीरे बोली

'वह विरह विदग्धा दीना
माधव, मनसिज विशिख भयाकुल तुम में है तल्लीना।
चंदन और चंद्र किरणों से होती अधिक अधीर,
अहिगण गरल समान विमूर्च्छित करता मलय-समीर।
वह विरह विदग्धा दीना
माधव, मानसिज विशिख भयाकुल तुम में है तल्लीना।
मदन-शरों से अपने पिय की रक्षा में बेहाल.
उर पर बिछा रही है रह रह सजल कमलिनी जाल,
वह विरह विदग्धा दीना
माधव, मानसिज विशिख भयाकुल तुम में है तल्लीना।
शोभित लोल विलोचन जल ढल आनन कमल उदार
राहु दलित विधु से वह उठती ज्यों अमृत की धार
वह विरह विदग्धा दीना
माधव, मानसिज विशिख भयाकुल तुम में है तल्लीना।

१९५०

मृगमद से तव चित्र खींचती-फिर लख उस में "काम"
आम्र-मंजरी-शर धर कर में, करती सलज प्रणाम।
वह विरह विदग्धा दीना
माधव, मनसिज विशिख भयाकुल तुम में है तल्लीना।
तव चरणों में रत माधव ! फिर, कौन बँधाये धीर ?
देख विमुख यह चंद्र जलाकर बढ़ा रहा है पीर !
वह विरह विदग्धा दीना
माधव, मनसिज विशिख भयाकुल तुम में है तल्लीना।
ध्यानमग्न हो चौंक समझती सम्मुख हैं यदुवीर
कभी विलपती कभी कलपती, कभी विहँसती बानी अधीर
वह विरह विदग्धा दीना
माधव, मनसिज विशिख भयाकुल तुम में है तल्लीना।

* * * *

गृह भी वन सा भास रहा है, (बजी कौनसी भेरी ?)
उसे सखी भी दीख रही हैं — घेरे बनीं अहेरी !
श्वासों का उताप लजाता है दावा की आगी।
'काम'—व्याघ्र से डरी डरी फिरती हरिणी सी भागी !

* * * *

है विरह की पीर भारी
छीजती जाती 'बिचारी' !
हार उर का भार बनता
मलय विष की धार बनता
श्वास का आधार बनता ?
दहन का उपचार बनता !
है विरह की पीर भारी
छीजती जाती 'बिचारी' !
आँख में आँसू उमगते
कमल-कण 'सर' में तरँगते।
खोजती दिशि-दिशि सहमते —
"प्रिय ! कहाँ हो तुम विरमते ?
है विरह की पीर भारी
छीजती जाती 'बिचारी' !

पल्लवों की सेज लखती,
“आग सी”—कहती “सुलगती !”
हाथ पर ‘हनु’ धर सरसती ।
बालविधु शोभा बरसती ।
पर विरह की पीर भारी !
छीजती जाती ‘बिचारी,
अहर्निश “हरि ” नाम जपती
मृत्यु क्षण क्षण झलक टलती
गीत में ‘जय’ भींगते हैं
हरि स्वयं आ रीझते हैं
है विरह की पीर भारी
छीजती जाती ‘बिचारी’ !

* * * *

कभी पुलकती, कभी विलपती और विसुध है होती,
‘सी सी’ करके कभी सिहरती, कभी विसँहती, रोती ।
गिरती, उठती, चलती, फिरती, जगती सी सो जाती,
तीव्र ज्वराकुल सी लगती है, पीडा में खो जाती ।
वैद्य ! रसौषधि दे उसको अब फिर से चेतन कर दो ।
इंगित-भाषिणि की जिह्वा में फिर से वाणी भर दो ।
स्पर्शामृत से ‘स्मर-’ बाधा को हे हरि ! सत्वर हर लो,
काँप रही हूं — कहीं न उर को निठुर वज्र सा कर लो !

———

चंदन, चंद, कमल—शीतल द्रव उसे जलाते रहते
किन्तु तुम्हारे शीतल तन का चिन्तन करते करते —
विगत-ताप वह हो जाती है और विहँस है जाती—
जादूगर ! है क्या रहस्य यह; मै न समझ हूँ पाती ?

———

जो राधा पल भर भी पहले विरह न थी सह सकती,
“पलकें क्यों बरबस लगती हैं” —— विधि को कोसा करती,
वही आज पुष्पित मधुऋतु में निरख तरुण आमों को
क्या जाने कैसे रख पाती है पापी प्राणों को ?

[अ-प्रकाशित ‘हिन्दी गीतगोविन्द’ से]

आधुनिक फ्रेंच साहित्य की एक झाँकी

[श्री. शारदाप्रसाद वर्मा]

सन् १८७० में फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के बाद, फ्रान्स पर किये हुए जर्मन आक्रमण से दो बातें प्रकाश में आईं; एक तो तृतीय नेपोलियन के साम्राज्यवादी शासन व राजतंत्र की अयोग्यता सिद्ध होना और उसके विरुद्ध आम जनता में विरोध की तीव्र-भावना जागृत होना; और दूसरे लोकतन्त्र के प्रति जनता की श्रद्धा और आस्था उत्पन्न होना। इन दोनों बातों के परिणाम-स्वरूप फ्रान्स की जनता के हृदय में शिक्षा और साहित्य के प्रति तीव्र अभिरुचि उत्पन्न हुई। फ्रान्स भर के स्कूलों और कालेजों में शिक्षा और साहित्य के पठन-पाठन पर अधिक जोर दिया जाने लगा, और जनता भी इन दोनों में जोरों से रस लेने लगी। इस प्रकार जनतंत्रवाद की भव्य भावना ने फ्रेंच साहित्य तथा शिक्षण-क्षेत्र में प्रवेश किया और उसे पूरी तरह परिप्लावित कर दिया, जिससे कि लोक का सुखद पक्ष निखर आया और जनता के हृदयों पर जमी हुई खिन्नता वह गई।

पूंजीवादी दल ने, जो धर्म के प्रति अभिरुचि रखता था, फ्रान्स के तृतीय जनसत्तावाद का तीव्र विरोध किया। इसके विपरीत फ्रान्स की अधिकांश जनता ने फ्रेंच चर्च और धर्म के विरुद्ध बगावत का झंडा खड़ा कर दिया। जनसत्तावादियों ने इन पूंजीवादियों का खुले खजाने विरोध नहीं किया। फ्रान्स देश में पूंजीवादियों की भी संस्थाएँ उनके आदर्शों के अनुरूप चलती रहीं। सन् १९१४-१८ के महान् विश्व-युद्ध ने रूस और इटली के कलादर्शों में संघर्ष का बीजारोपण किया और इन देशों के कलादर्शों का प्रभाव फ्रान्स पर भी अधिक मात्रा में पड़ा। धीरे धीरे फ्रेंच जनता में साम्यवाद का प्रचार बढ़ने लगा और साहित्य में प्रगतिशीलता का प्रवेश होने लगा तथा जीवन और साहित्य का सम्पर्क स्थापित होने लगा।

आधुनिक फ्रेंच साहित्य के क्षेत्र में कई धाराएँ बहीं: जिनमें प्रमुख प्राकृतवादी, प्रतीकवादी और रोमांचवादी धाराएँ हैं। प्राकृतवादी धारा में फ्लाउबर्ट (Flaubart) ज़ोला, लेयर टाइन आदि प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। प्रतीकवादी धारा में प्रसिद्ध कवि मेलार्म, रिमबाउड, बेरलाँ, बेलरी आदि सम्मिलित हैं। रोमांचवादी धारा में रोस्ताँ, मेडम डी नोइ-पाइल्स, रोमा रोलाँ, जुलेसरोँमा और डुहामेल आदि कवि और साहित्यकार विशेषतया उल्लेखनीय हैं। विश्व-विख्यात साहित्यकार रोमा-रोलाँ फ्रान्स का सांस्कृतिक कलाकार माना जाता है।

पनामा, बोलनगर और ड्रीफस की राजनैतिक घटनाओं ने फ्रान्स की जनता पर क्रान्तिकारी प्रभाव डाला, जिनके परिणाम स्वरूप राजनीति और साहित्य में अधिक

सम्पर्क स्थापित हो गया। तत्कालीन फ्रेंच साहित्य में दो विरोधीवाद जैसे मेलार्म का प्रतीकवाद और जोला का प्राकृतवाद क्रमशः धर्मवाद (क्लरिकेलिज़म) और जन-सत्तावाद (रिपब्लिकेनिज़म) के प्रतिरूप थे जो कि तत्कालीन फ्रेंच साहित्यरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित हुए। धर्मवाद के पक्ष में ब्रन्तियर, फाग्वेत और लेमेतियर इन फ्रेंच साहित्यकारों ने अपनी अपनी कलम चलाई और धर्मवाद के विपक्ष में बेरिस़, अनातोले फ्रान्स और पेगुइ आदि ने जनसत्तावाद के पक्ष का अपने साहित्य-द्वारा प्रबल समर्थन किया। और इस तरह राजनीति और साहित्य का निकटतम सम्बन्ध स्थापित हुआ। परन्तु १८७०-१९४० में लिकोन्ते डी लिस्ले और मेलार्म से लेकर प्राउस्ट, जाइड और पाल-वेलरी तक के काल में विशुद्ध उत्तम फ्रेंच साहित्य का निर्माण हुआ और जिसने राजनीति से तनिक भी अपना कोई सम्बन्ध व सम्पर्क नहीं रक्खा। इसीलिए यह फ्रेंच साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है।

चौदहवें लुई के राजत्वकाल में धर्म की बात छोड़ कर अन्य विषयों पर मेलार्म और वेलरी द्वारा उत्तम साहित्य की रचना की गई। इसके सिवाय मोलियर और रेसीन ने भी साहित्य-निर्माण में हाथ बँटाया। अनातोले फ्रान्स द्वारा जनसत्तात्मक उत्तम साहित्य की सर्जना हुई। उसका जगत्प्रसिद्ध उपन्यास 'थाया' जिसमें सामाजिक मानबिन्दुओं के विरुद्ध विप्लव-भावना का विशद चित्रण है, संसार के सामने आया। स्वच्छंदतावाद के युग में ह्यूगो का आविर्भाव हुआ। उसकी प्रतिभा महाकाव्य गांभीर्य और व्यंग्यात्मक यथार्थवाद के सजीव एवं मनोरम चित्रण में प्रस्फुटित हुई। इसके अनन्तर सन १८७० के पश्चात् मेलार्न ने अपने उत्कृष्ट काव्य द्वारा तत्कालीन युग पर अपनी गहरी छाप छोड़ी और उसकी शिष्य-परंपरा में वेलरी ने 'गुरु गुड़ ही रहे, चेला शक्कर हो गए' इस कथन की पुष्टि की और वह सन १९४० में तृतीय फ्रेंच जनतंत्र का श्रेष्ठ राष्ट्रीय कवि माना जाने लगा और उसकी कविताएँ जन-मन स्पर्शी करने लगीं। सन १८७० से लेकर १८९० तक मेलार्म और सन १९२० से लेकर सन १९३० तक प्राउस्ट ने अपनी अपनी उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं द्वारा तत्कालीन युग पर अपना प्रभाव डाला। प्रतीकवादी महाकवि मेलार्म ने अपने काव्य द्वारा संवेदनशील बाह्य जगत् का सुन्दर चित्रण किया और प्रसिद्ध गद्य लेखक और उपन्यासकार प्राउस्ट ने अपनी कृतियों द्वारा आन्तरिक जगत् का विशद विश्लेषण किया। प्राकृतवादी फ्लाउबर्ट और ज़ोला का प्रभाव संसार के साहित्य पर पड़ा। संसार के अन्य देशों के विशेषकर यूरोप के साहित्यकारों ने उपन्यासादि लिखने में इन दोनों साहित्य महारथियों से प्रेरणाएँ लीं और काव्य-क्षेत्र में महाकवि मेलार्म से। कवि रिमवाइड के काव्य का प्रभाव वेलराइन और मेलार्म पर पड़ा। पर आधुनिक काल में हम फ्रेंच साहित्य का सारा गद्य वाल्टेयर और सारा पद्य महाकवि बोस्वेत के रंग में रंगा पाते हैं।

जब फ्राँस में युद्धों के कारण तृतीय जनतंत्र का पतन होने लगा, तब वीर बाँकुरे

१९५०

सैनिकों की तरह फ्रेंच साहित्य महारथियों जैसे आरागोन, मालराक्स, मन्थरलेन्ट, चेसमन, सेलाइन आदि ने फ्रेंच जनता के गिरते हुए मनों और डूबते हुए हृदयों को बड़ी खूबी तथा वीरता से अपने प्रगतिशील साहित्य द्वारा सम्हाला और इस प्रकार फ्रान्स के साहित्यक आदर्श को पूरी तरह अक्षुण्ण रखा।

स्वच्छंदवादी युग के फ्रेंच साहित्यिक क्षेत्र में काव्य की ही प्रधानता और प्रबलता थी। उपन्यास और उपन्यासकार की कौड़ी बराबर भी पूछ न थी। बालजक पहला व्यक्ति है जिसने फ्रेंच जगत में उपन्यास की उपयोगिता तथा महत्ता का भान कराया और उसकी साख रखी। फिर क्या था ? एलेक्जेन्डर ड्यूमा की उपन्यास फेक्टरी से उपन्यास धड़ाधड़ बरसाती मेंढक की तरह निकलने लगे और इस प्रकार फ्रेंच साहित्य में उपन्यासों का क्रम बँधा और फ्रेंच जनता ने उन्हें अपनाना भी शुरू कर दिया। आगे चलकर फ्रेंच उपन्यास-कला ने काफी उन्नति कर दिखाई और संसार के साहित्य पर अपना असर डाला। इस दिशा में मोपासाँ का नाम विशेष तौर से उल्लेखनीय है। फ्रेंच उपन्यासों में मानवता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पाया जाता है, और उनमें युग की आत्मा के दर्शन होते हैं। हेम्प ने श्रम-समस्या पर प्रकाश डालते हुए 'मेरी फेशी' उपन्यास लिखा। मोन्ट फोर्ट ने नगरों के जीवन के सम्बन्ध में उपन्यास लिखे। ब्लोच ने 'ईट कोपाँ' नामक उपन्यास लिखा, जिसमें इस बातका विशद चित्रण किया गया है कि नारी किस प्रकार सचाई व ईमानदारी से आदिम काल से कौटुम्बिक जीवन की नैया पार लगाती आ रही है और पुरुष किस प्रकार व्यवहार और जीवन में भ्रष्टाचार व अत्याचार करता आ रहा है। फ्रेंच साहित्य में जीन स्लम्बरगर का 'सेन्व सेटर निन' नामक उपन्यास बहुत ऊँचा ठहरता है, जिसमें फ्रान्स के आंतरिक जीवन का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक व मार्मिक चित्रण पाया जाता है। इस प्रकार गिराडडोक्स, चारडोन, मोन्थरलेन्ट, जुलेस रोमाँ, सेलीन, डुहमेल आदि उपन्यासकार विशेषतया उल्लेखनीय हैं। काव्य क्षेत्र में भी फ्रेंच साहित्य अन्य देश के साहित्य से पिछड़ा हुआ नहीं है। फ्रेंच काव्य क्षेत्र में प्रधानतः तीन धाराएँ पाई जाती हैं, जैसे प्राकृतवादी, प्रतीकवादी और रोमांचवादी। प्राकृतवादी धारा में जोला, लेमरटीन, प्रतीकवादी धारा में, लर्ममे, रिमवाउड और बेलरी और रोमांचवादी धारा में रोस्ताँ, अन्नाडी नोइयाइल्स आदि प्रसिद्ध कवि हैं। वेलरी की प्रसिद्ध कविताओं का संग्रह 'पोइसीस' में पाया जाता है। सुपरवाइली आजकल फ्रान्स का बहुत ऊँचा कवि माना जाता है और उसके काव्य की यह विशेषता है कि उसमें सभी काव्य-प्रवृत्तियों का समूहीकरण है। 'सन्स दियू' में उसकी उत्तम कविताएँ संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त बरलेन, आरागोन, जेम्स पॉल क्लाडेल जुल्स रोमाँ, रेजनियर, वरहेरीन और रेसीन आदि प्रसिद्ध कवि हैं। फ्रेन्च काव्य में भावना का साहसपूर्ण संचालन, मूर्तिमत्ता का आकर्षक विधान, व्यंजना की प्रगल्भता, कोमल व ललित कल्पना की ऊँची उडान तथा श्रृँगारिकता की बहार अधिक पाई जाती है। फ्रेंच साहित्य में नाटक एक कमज़ोर कड़ी है। नाट्यकला में पूरी पैठ न होते

हुए और स्वयं अभिनेता न होते हुए और अभिनय कला का परिज्ञान न होते हुए फ्रान्स के उपन्यासकार, कहानीकार तथा कवियों तक ने नाटक लिख डाले। जैसे रोस्ताँ, क्लाडेल, मेटरलिंक, गिराउडाक्स, रोमा रोलाँ, वेलरी और सुपरवाइली आदि, कवि और उपन्यासकारों ने नाटक लिखने में अपने अपने हाथ आजमाए। हास्य-रस लेखक मोलियर ही ऐसा व्यक्ति था जो कि स्वयं अभिनेता और नाटककार था। फ्रान्स के सामाजिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण करने में यह नाटककार अत्यन्त सफल हुआ।

फ्रान्स के प्राचीन नाटकों में तीन चौथाई पद्य का भाग रहता था। फ्रान्सीसी नाटकों में संकलनत्रय जैसे वस्तु संकलन, काल संकलन और देश-संकलन अभीतक पाये जाते हैं। दूसरे उनमें विवाह, तलाक, वर्णसंकर लड़कों के पैतृक उत्तराधिकार तथा अश्लीलता के दृश्यों की भरमार रहती है। आधुनिक काल में रेसीन नामक विश्वविख्यात नाटककार है। वह दु:खांन्त नाटक लिखने में अत्यन्त सफल हुआ है। इसके अतिरिक्त रोस्ताँ, मेतरलिंक, क्लाडिल, रोमा रोलाँ आदि भी प्रसिद्ध नाटककार हैं।

निबंध साहित्य में भी फ्रान्स अन्य देशों के साहित्य से कुछ कम नहीं है। यहाँ भी ऊँचे निबंधकार हो गए हैं:—जैसे मोन्हेगाँ पस्कल ला बूयेंरी, वाल्टेयर आदि। तृतीय फ्रेंच जनतंत्र का प्रसिद्ध निबंध लेखक एलाँ है। उसके निबंधों में केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठाई गई है। मोन्हेगाँ के समान एलाँ प्रतिवर्ष तीन सौ निबंध लिखने की रफ्तार से पचास वर्ष तक निबंध लिखता रहा। उसका 'सोवनिर्स कनसरनेन्ट जुलेस लेग्न्यू' उत्तम कोटि का निबंध माना जाता है। आधुनिक काल में मेरीताँ, जुलियन, वेन्दा आदि प्रसिद्ध निबंध लेखक हैं। फ्रेंच निबंधों में भावों की मार्मिकता, शैली में सरसता, व्यक्तित्व की छाप और भाषा की प्रौढ़ता पाई जाती है। फ्रान्स का समालोचना साहित्य भी उन्नत दशा में है। फ्रेंच अच्छे और खरे समालोचक गिने जाते हैं। आधुनिक काल में सेन्ट बियूवी फ्रान्स का समालोचना साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है। ठिबाउदेत, ब्रनीटियर, फग्वेत, लेमेट्री, गौरमान्त, पेगुइ आदि ऊँचे समालोचक हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फ्रेंच साहित्य ने सभी दिशाओं में उन्नति कर दिखाई है और उसका साहित्य भंडार सब प्रकार से भरा पूरा है। उसमें जीवन और साहित्य का पूरा मेलजोल है। फ्रेंच साहित्य में कला-स्वातंत्र्य और व्यक्ति के प्रति उत्कृष्ट प्रेम का सुन्दर और मंजु मनोहर चित्रण पाया जाता है; दूसरे इसमें नारी सौंदर्य की तीव्र तृष्णा, रूप की ललित लालसा, प्रेम की अतृप्त प्यास और श्रृंगारिकता की भावना भी पाई जाती है। साथ ही साथ अत्यन्त प्रगतिशीलता भी। अंत में फ्रेंच साहित्य में एक बड़ी विशेषता की बात यही कही जा सकती है कि फ्रान्स के बड़े बड़े साहित्यकारों तथा कलाकारों में सर्वतोमुखी प्रतिभा अधिक मात्रा में है, कारण कि एक ही साहित्यकार एक साथ ऊँचा कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार और समालोचक है, जैसे ज़ोला, फग्वेत, पेगुइ और रोमा रोलाँ आदि।

मराठी का साहित्य-प्रवाह

[संकलक और अनुवादक "प्रभाकर पंडित"]

यशवंत और निराशावाद :

इस वर्ष तेतीसवाँ मराठी-साहित्य-सम्मेलन बंबई में, दिनांक १०, ११, १२ मई को संपन्न हुआ। अध्यक्ष थे रविकिरणमंडल के प्रसिद्ध कवि यशवंतराव पेंढरकर 'यशवंत'। उनके परिचय में वि० स० **खांडेकर** ने मई के '**मनोहर**' में लिखा है—

"'यशवंत' की कविता में असंतोष की सिसकियाँ हैं; निराशा का आक्रंदन है। परंतु यह दुख वैयक्तिक जीवन में स्फुरित होने पर भी उसका रूप अंशतः प्रातिनिधिक है। आज के सर्वसामान्य मनुष्य के जीवन के गतिरोध का वह वास्तविक और विदारक चित्र है।

'गुलाम की गिड़गिड़ाहट' (इस कविता का और 'मां' का अनुवाद प्रेमचंद द्वारा संपादित 'हंस' में प्रकाशित हो चुका है) १९२३ में उन्होंने लिखी कविता से १९४९ में 'कवि और कविता' तक (इस कविता का अनुवाद हिंदी में नेहरू-अभिनंदन-ग्रंथ में प्रकाशित हुआ है) यशवंत की इस प्रकार की कविताएं दर्शनीय हैं। सत्ता के और संपत्ति के निर्दय पैरों के नीचे कुचले जाने वाले असंख्य प्राणियों के विविध दुख उनमें प्रतिबिंबित हुए हैं। गर्दन पर जूआ है। पीठ पर चाबुक' यह अनुभव केवल कर्मों से जुते हुए कवि को ही होता है यह बात नहीं है। पेट के लिये आठ पहर मेहनत करनेवाले, कष्ट कर के छाती फोड़ने वाले परंतु दुनिया के साधारण सुखों से वंचित बहुजनसमाज के दैनंदिन जीवन का यह चित्र है। उसमें चाहे विप्लव न हो, परंतु मध्यवित्त-वर्ग की अगतिकता का हृदय-स्पर्शी चित्रण अवश्य है।

जो लोग यह कहते हैं कि यशवंत की कविता पर निराशा की छाया बहुत गहरी है, वे जानते ही नहीं कि उनका जीवन और दर्शन सचमुच में क्या है? उनका व्यक्तित्व भावुक और गंभीर है। उन्हें जीवन की पीड़ा सताती है, अभाव बेचैन करते हैं, अतृप्ति सालती है। अपनी इस भावना को वे अत्यंत व्याकुलता से व्यक्त करते हैं। परंतु इन भावनाओं की काली छाया से डर कर वे हिम्मत नहीं हारते। तीन सदी पूर्व उन्हीं के प्रांत चाफल के आसपास मँडराये हुए रामदास के आशामय दर्शन का मानों उनके मन पर जन्मजात संस्कार है। इन संस्कारों ने उनके भावुक मन में एक प्रकार की तीखी युयुत्सा जागृत की है। भारत में जब असहयोग आरंभ हुआ, तब उन्होंने लिखा—'वाढू दे कारागृहाच्या भिंतिची उंची किती। मन्मना नाहीं क्षिती ॥' (कारागार की दीवारों की ऊँचाई चाहे जितनी बढ़े। मेरे मन में उसकी परवाह नहीं है!)

....जीवन एक सामाजिक यज्ञ है यह जानने वाला और उस यज्ञ में अपनी आहुति आनंद से डालने के लिए प्रस्तुत यह कवि 'जगत्, तुम्हारी सब ही रीति उलटी' कह कर दुनिया की दांभिकता पर जब हमला करता है तब उसकी यह विरति अकेले की नहीं होती। जीवन के अन्याय, अमांगल्य और अप्रामाणिकता से विद्ध कोमल कवि-मन का वह उद्गार होता है। इसीलिए उनकी ऐसी कविताएँ प्रो० वामन मल्हार जोशी बारबार बड़े आनंद से सुना करते थे।

निराशाग्रस्त कलाकार अश्रद्ध बनता है। अश्रद्धा मनुष्य के सामाजिक मन का संकोच करती है। परंतु यह संकोच 'यशवंत' में नहीं है। 'बंदीशाला' नामक खंडकाव्य उनके सामाजिक मन का सामर्थ्य और उनकी प्रतिभा की उड़ान व्यक्त करता है। नौकरी के कारण से यशवंत यरवदा के बाल-अपराधियों की शाला में रहे। वहाँ के बालकों ने उनके कवि-मन को बेचैन बना दिया। आजकल के कथाकारों को भी नया जान पड़ने वाला यह विषय यशवंत ने डेढ़ तप पहिले कितनी कुशलता से अपने काव्य में अंकित किया है। यह देखने पर कहने की इच्छा होती है कि यदि कहीं वे समूचे महाराष्ट्र का प्रवास कर पाते, विविध सामाजिक स्तरों से वे समरस हो सके होते तो मराठी कविता को वे और भी बहुत मूल्यवान देन दे पाते।

....कविता विद्युत् की भाँति होती है। उसे जो पकड़ने जाते हैं वे निन्यानवें प्रतिशत खुद जल जाते हैं, ऐसा 'केशवसुत' (मराठी के नवयुग-जागरण के प्रथम कवि) ने एक निजी पत्र में लिखा है। बचे हुए किसी एक के हाथों वह आ पाती है। उस सौ में से एक बचे हुए के हाथों में आकर भी वह उसे अंशतः दग्ध ही करती है, यह कहना वे भूल गये। परंतु यह एक बड़ी सचाई है। यशवंत के जीवन में उस दग्धता का बड़ा अंश है। अन्य साहित्यिकों की तुलना में कहीं अधिक। कोई साधारण कलाकार होता तो उसके हाथों केवल जिंदगी की राख बची रहती; परंतु उन्होंने राख में के शोले प्रकट किये। दुख पर, दरिद्रता पर, दुर्दैवपर प्रतिभा सदा मान करती है यह गडकरी की तरह उन्होंने भी सिद्ध कर दिखाया।"

मराठी साहित्य-सम्मेलन का अध्यक्षीय भाषण और रेडियो :

'अपने समय के निम्न, मध्यम-वर्ग के सच्चे प्रतिनिधि' कह कर खांडेकरने जिन्हें गौरवित किया है उन्ही 'यशवंत' के अध्यक्षीय भाषण के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश नीचे दिये जा रहे हैं। केवल हिंदी साहित्य सम्मेलन के मंत्रीसे ही—और साहित्य-परिषद के अध्यक्षके भाषण में तो वह विरोध और भी प्रखर रूप से व्यक्त हुआ।—नहीं, परंतु मराठी साहित्य-सम्मेलन का अध्यक्ष भी 'नभोवाणी' के कार्यक्रमोंसे कैसे असंतुष्ट है। यह देखिये :—

'प्रमुख प्रमुख केंद्रोंसे सूर्योदय से मध्यरात्रितक अविच्छिन्न कार्यक्रम चलते रहते हैं। यह अविच्छिन्नता ही अपने आप सें उद्दिष्ट क्यों हो यह समझ में नहीं आता। परंतु समय भरनेका उद्देश्य प्रधान होने पर हर घंटे,

मिनिट और सेकंड की व्यवस्था और सुविधा रखना प्रधान हो जाता है। यह दुर्घट कार्य है। कलाकार थोड़े, नवीनता थोड़ी ! नवीन-ताका हर समय पुरस्कार करने की उपजाऊ मनोभूमि हर योजक में कहाँतक होगी ? कल्पना-कुबेर महा-प्रतिभावान योजक होनेपर भी वह कुछ सुवर्णक्षणों में ही वैसा हो सकता है। नित्य का कार्य हो जाने पर कल्पना मांद्य और प्रतिभा को पंगुता आना स्वाभाविक है। वेला-पत्रक उधर अपना जबड़ा फाड़े खड़ा है। 'वही-वही पद बारबार दुहराये जाते हैं। वही-वही अर्थ फिर हेर; फेर कर आ जाता है !' ऐसी दयनीय स्थिति हो जाती है। योजना लकड़ी के गट्टे की तरह बन जाती है। कलाकार न मिलनेपर चाहे जिसको उस चक्की पर बैठा दिया और उससे वही पिष्टपेषण कराया। कला की यह विडंबना है। इस तरह के पनियल, फीके, रद्दी कार्यक्रम आठ पहर कानपर डालते रहने से अभिरुचि की हानि होती है। जैसे भजन के अखंड सप्ताह में वीणा धरती पर नहीं रखी जाती, सतत उसे कोई न कोई छेड़ते ही रहता है चाहे उस के मनमें भक्ति हो या न हो, आँखों में जागृति हो या न हो, मुख से राम नाम का स्पष्ट उच्चारण हो रहा हो चाहे न हो रहा हो ! ऐसी विद्रूपता इन कार्यक्रमों में आ गयी है। यह सरकारी द्रव्य का अपव्यय है, फिजूल खर्ची है ! आज की यह मिनिट-भरते रहने की भिनभिनाहट और नीरस, बे-स्वाद और अभिरुचि बिगाड़ने वाले कार्यक्रमों की अतिरेकता कम होगी।'

इसी भाषणमें यशवंत ने कहा कि आज के साहित्य को यंत्र-जीवन का वैसा अभि-शाप लग गया है कि जैसे होटलवाला आधा-पक्का, आधा-कच्चा खाना परोसता है। वैसे ही, साहित्यिक अनुभूतिहीन विपुल-साहित्य-सर्जना में निमग्न है। अंत में उन्होंने मराठी 'नव-काव्य' (अतिवास्तवतावादी) रचना-ओं की दुर्बोधता की प्रखर आलोचना की। 'नवकाव्य' नामक मराठी में जो साहित्य-प्रकार श्री. बा. सी. मर्ढेकर द्वारा रूढ हुआ है उसका एक नमूना हम नीचे दे रहे हैं।

'मैं एक चींटी, यह एक चींटी—'

इस शीर्षक से श्री. बा. सी. मर्ढेकर की निम्न कविता 'अभिरुचि' मासिक के दीपावली-विशेषांक में प्रकाशित हुई थी। यह कविता इस नवीन-रचना पद्धति के तिक्त-कशाय का उत्तम उदाहरण है। नीचे कविता का अक्षरशः अनुवाद दिया जा रहा है:—

मैं एक चींटी, यह एक चींटी,
वह (पुरुष) एक चींटी, तू एक चींटी,
यह (स्त्री) एक चींटी, वह (स्त्री) एक चींटी,
पाँच यहाँ की, पाँच फिरंगी;
सहस्र जमी, लक्ष कोटि भी,
अरबो-अरबों और संखों चींटियाँ;
अनंत, अगणित, सब जम गयीं—
कई तो विवरवाली थीं, कई लफंगी
(घुमन्त) थीं !

कोई चींटें काले काले,
कोई लाल, भूरी चींटियाँ
कोई परसों की बरसाती या
बेडर ग्रीष्म में की लवंगी
सावधान कोई पंक्ति बाँध कर
एक के पीछे एक चलती हैं;
कोई बावली, खुदगर्जी
जहाँ शकर मिले वहीं चखती हैं।
व्रतस्थ बनकर, डंक मारती हैं—

कोई; कोई दूसरों को मधुरस पिलाती हैं—
और जीवन बिताती हैं; कोई गर्भमयी
बनाती हैं

साम्राज्ञी को प्रसन्न चतुरा।
इन चीटिंयों में से एक एक को
कौन राजा बनकर खा जायेगा?
पार्थिवता की पराकोटिको
अपार्थिवता की भेट ले जायगा?
—"आया, आया, सस्ते दामोंपर
आया जी आया,

यह चिटिंयों का प्रवाह आया!
खोलो फाटक खोलो!"—

दस-दसपर लोकल गाडी
अपनी खोकली साँस छोडती आयी;
घडीमें के काँटो का मानों
सौदा दिन उदास जम गया।
यह चीटिंयाँ नहीं: यही आदमी हैं;
ऐसे ही शायद् गांधीजी भी थे;
ईसा मसीह और कृष्ण कदाचित
कालीदास और टैकोब्राही?
यह चिटिंयाँ नहीं हैं: यह आदमी हैं:
यद्यपि सब के मन अनामिक हैं;
तार-तार बने मिनिटों का उनपर
सदा स्वाभाविक बुरका यद्यपि है।
शरीरपर सूख गये हैं कई
तरह तरह के मादक स्वेद;
और उन्हीं गंधों की कॉकटेल पीकर
फलाट फार्म (प्लॅट-फार्म) भीत हो गया है!
जैसे किसी पापी की नजर घूमती है
किसी अपरिचिता के उरोजों पर
हम सबकी कायर वृत्ति
इसी प्रकार से जीवन में चलती रहती है।
यह चीटिंयाँ नहीं हैं: यह हैं आदमी:
मां-बाप और भाई-बहन
उन्हें हैं; ओर भी होंगे
बच्चे-बच्ची और भतीजे-भतीजी
—'साल साल पर मरने दे मुआ!
रेस बराबर जीने दो!''—

कीचड में से कीचड उडता है
वैसे अनामिक का नाम रखा जाता है;
अपदाओं की जडें उबालकर
उन अर्कोंपर सपने जमते हैं।
खट्टी डकार जैसे दुखों में शिथिल इंगित हैं,
नाम सोनाबाई, हाथ में काँसे की चूडियाँ,
भरे पूरे घर में यह भ्रष्ट भावना
फूटकर आशा गिनती बैठी है
यादगारों के किनारे पक गये,
जग लोलुपता की हीक आ रही है;
सडी हुई शंकाएँ कई दिखाई देंगी—
ऊपर ऊपर को चमडी जरा छीलते ही।
जूने पूराने उत्साह का
तेल कलही खत्म हो गया;
औसान का उधार 'क्रूच'
कहाँ तक दबाकर कहाँतक पायेगा?
देवता के घर का शाप देवालय में;
आफिस में है कलका ताप;
चिडिया से छोटे मिनिट उड जाते—
मन का दाना सिर्फ सूँघकर।
ऐसे इस संसार में
जीने का भी पहाडा गलत हो गया;
और अंतमें परिस्थिति का
गले से नीचे काढा उतर गया!
"सर्वे जन्तु रूटिनः। सर्वे जन्तु निराशयः।
सर्वे छिद्राणि पंचंतु। मा कश्चित् दुःख-
भाग भवेत्॥"

यह है मराठी नव-कविता का एक नमूना। इस शाखा के प्रमुख कवि हैं: मर्ढेकर, पु. शि. रेगे य. द. भावे, विंदा करंदीकर, 'मन-मोहन' आदि। इस नयी शैली की कविता पर हिंदी की प्रगतिशील कविता की ही भाँति बहुत अनुकूल-प्रतिकूल चर्चा-चल रही है।

भाषा के अनुत्खात क्षेत्रः

मराठी-साहित्य-सम्मेलन के भाषा-व्याकरण-विभाग के अध्यक्ष प्रा. कृ. पां. कुलकर्णी ने भाषाशास्त्र के प्राचीन अध्येता तथा प्रतिशाख्यकार, निरुक्तकार, व्याकरणकार, छन्द-

कार आदि वेदांग-अध्यापक, नारद, यास्क, पाणिनि, सायनाचार्य तथा मध्ययुगीन अध्यापक यथा 'व्याकरण-महाभाष्य' कार पतंजलि, वररुचि, कात्यायन, काशिकाकार वामन, नाव्य व्याकरणकार भर्तृहरि, अलंकारकार भरत वामन, मम्मट, लोल्लट अल्लट आदि परंपराओं की अविच्छिन्नता हेमचंद्रसूरि से लक्ष्मीधर तक बताकर महाराष्ट्र में वर्तमान-कालीन भाषाशास्त्र-संशोधक भांडारकर, दादोबा, वैद्य, राजवाडे, गोडबोले, अ. गरकर, भागवत, दामले आदि का कार्योल्लेख किया। आगे अपने भाषण में उन्होंने भाषाविज्ञान की भारतीय और विदेशी (यूरोपीय) अभ्यास-पद्धतिका अंतर बताया। हमारी पारंपरिक दृष्टि विषयनिष्ठ है; पाश्चात्त्य दृष्टि तुलनात्मक, ऐतिहासिक तत्तत्स्थलकालनिष्ठ है। हमारे यहां केवल विषय के साधनों का अध्ययन है। वहाँ उन साधनों के पीछे के ताने-बाने की भी छानबीन है। हमारे यहाँ निम्न वैयक्तिक प्रयत्न, पी. एच. डी. के प्रबंध आदि उल्लेखनीय है :

लेखक	विषय
प्रो. तुलपुले	— यादव कालीन मराठी का अभ्यास.
डॉ. करंदीकर	— मराठी शब्दसंग्रह की मीमांसा.
डॉ. ग्रामोपाध्ये	— पेशवे कालीन मराठी भाषा का अभ्यास.
डॉ. नगारे	— पुष्पदंत वाङ्मय भाषा.
डॉ. मेहेंदले	— संस्कृत शिला–लेखी भाषा की विचिकित्सा.
कै. मोडक	— मराठी आघात पर निबंध.
प्रो. जोग	— डांग भाषा.

इनके साथही-साथ संस्थागत प्रयत्न भी हो रहे हैं। अधिक होने चाहिये। आगे अपने भाषण में उन्होंने भाषाविज्ञान के संशोधन के अनुत्खात क्षेत्र बताये जो कि हिंदी की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। उनका सारांश यों है :

"मराठी की उच्चारण प्रक्रिया पर शोध होना चाहिये। ध्वनि, उसके उच्च २ स्थान, उनके भेद और अंतर, उनकी परिस्थिति सापेक्षता, इत्यादि का अध्ययन अपेक्षित है। उत्सर्ग बाँधना अनेक उदाहरण-अपवाद और प्रत्यपवाद द्वारा होना चाहिये। अभी तक हमारा संशोधन लेखन-विशिष्ट है। वह भाषण-विशिष्ट होने के लिए ध्वनिमुद्रण की सहायता लेना चाहिये। उपभाषाओं के व्याकरण बनने चाहिये: कोंकणी-अहिराणी-डांग आदि भाषाओं का कुछ कार्य हो रहा है; परंतु और भी आवश्यक है, विशेषतः द्विभाषी सीमाओं पर कार्य होना चाहिये। भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण बनना चाहिये। प्रत्येक कालखंड के उच्चारण, प्रयोग; शब्दसमूह प्राप्त करने के लिये मूल प्रतियों की, हस्तलिखितों की प्रामाणिकता का संकलन होना चाहिये। इसके लिये पाठ संकलन भी आवश्यक है।"

बहुत अच्छा हो यदि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन भी अपनी एक भाषा-विज्ञान परिषद् प्रति वर्ष किया करे। मराठी साहित्य सम्मेलन दर्शन-समाज-विज्ञान आदि परिषदें न करके साहित्य के उपांग भाषा, काव्य, कथा, आलोचना, पत्रकारिता पर अपनी परिषदें करता है। ऐसा और भी गहरा (इंटेन्सिव) प्रयास हिंदी साहित्य निर्माण में भी आवश्यक है। अन्यथा भूसा साहित्य ही हिंदी साहित्य में प्रकाशित हो रहा है; सच्चे दाने बहुत कम हाथ आ रहे हैं।

कहानी :

परित्यक्ता

[श्री. देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त']

आधी रात के गहरे सन्नाटे में जब थका-माँदा सारा संसार गहरे खुर्राटे ले रहा था, तब जमींदार की हवेली गॅस के तीव्र प्रकाश में जगमगा रही थी। इस हवेली का अणु-परमाणु तक एक अजीब मस्ती में घूम रहा था। चौपाल में छमाछम नृत्य के साथ किसी कोकिलकण्ठी का मादक स्वर फूटा पड़ता था। मानो इन्द्रलोक की किसी अप्सरा का यह नर्तन, उस हवेली के अणु-परमाणु में व्याप्त होकर उसे स्वर्ग बना देने की चेष्टा कर रहा हो। नर्त्तकी का एक-एक झमाका—उसके पायल की एक-एक छमछम, वहाँ बैठे हुए रसिकों को मतवाला बना रही थी।

जमींदार के चौपाल में गूँज रहा था नर्त्तकी के पायल का झमझम और जगती के प्रांगण में हो रहा था मेघों से झरती टपकती बूँदों का झमझम। यह पानी जब जोरों से बरसता है, अन्धकार जब घनीभूत होता है और संसार के कितने ही अभागों को चैन से सोने के लिए कहीं कोई समुचित आश्रय भी नसीब नहीं होता, और घने वृक्षों की छाया में गीली धरती पर ही, पैरों को पेट से चिपकाए ये अभागे रात जल्दी खत्म हो जाने की जब मन ही मन भगवान् से प्रार्थना करने लगते हैं, तब ये रईस-जमींदार रातकी अवधि को शायद अधिकाधिक लम्बी बनाने की कामना ले कर आमोद-प्रमोद में डूबे रहते हैं।

इन जमींदार साहब ने बुढ़ापे में अभी-अभी अपना चौथा विवाह किया है। एक कुमारी के साथ अपना शुष्क जीवन सरस बनाने का प्रयत्न किया है। यों कहना चाहिए कि एक ऐसे पुष्प को असमय ही उसके वृक्ष से तोड़कर मसल डालने का पाप इन्होंने किया है, जो कभी अपनी भीनी-भीनी सुगन्ध से संसार को सुवासित करता और स्वयं भी विकसित होकर फूला न समाता। लेकिन जमींदार को यह चिन्ता क्यों हो कि इस बुढ़ापे में जिस कुमारी को वह अपनी पत्नी बना रहे हैं, उसका सुहाग बिन्दु कितने दिनों तक उस बेचारी के मस्तक पर रह सकेगा।

किरण के साथ जमींदार का विवाह हुए लगभग दो महीने हो चुके हैं। परन्तु इस बीच एक दिन भी जमींदार ने ऐसा न जाना कि किरण उनकी पत्नी बनकर उनसे कभी जी खोलकर बोली हो अथवा उन्हें अपना पति स्वीकार कर चुकी हो। किरण ने उन्हें अपना पति माना ही नहीं। यहाँ तक कि सुहागरात को जब जमींदार अपनी इस विजय पर फूले न समा रहे थे कि किरण जैसी एक शिक्षित और सुन्दर कुमारी को धन के बल पर वह अपनी पत्नी बना सके हैं, तभी उन्हें एक ऐसा धक्का लगा कि न तो किसी से इस संबंध में वह कुछ कह सके, न उनकी बुद्धि ही उनका साथ दे सकी।

जमींदार साहब जब प्रणय-दान की आशा सँजोए किरण के शयन-कक्ष में पहुँचे, तो एक सर्वथा अप्रत्याशित घटना घट गई। जमींदार को अपने सामने देखते ही किरण ने झुक कर उनका

१९५०

स्वागत किया और कहा — 'नमस्ते, जमींदार साहब!'

यह सुनते ही ज़मींदार भौंचक-से रह गए। उस शयन-कक्ष की सारी सरसता एक बारगी नीरसता में परिणत हो उठी। ज़मींदार के बूढ़े-हृदय को जबरदस्त ठेस लगी। उनकी सारी उमंगों पर मानो तुषारपात हो गया। किरण के मुख पर अवगुण्ठन का कहीं कोई अस्तित्व न देख कर ज़मींदार को मानो काठ मार गया।

एक क्षण के लिए मानो उनके दिमाग़ में अंधड़ आ गया। उन्हें लगा कि आधुनिक शिक्षा का उद्धत स्वरूप ही शायद आज उनसे खेलवाड़ करने के लिए इस किरण के रूप में आ गया है। तभी किरण ने आगे बढ़कर एक पत्र ज़मींदार के हाथ में थमा दिया। ज़मींदार शून्यवत् हो कर किसी तरह पलंग पर मखमली मसनद के सहारे जा बैठे। उन्होंने जेब से चश्मा निकाला और उसे अपनी बूढ़ी आँखों पर चढ़ाकर उस पत्र को पढ़ने की चेष्टा की:—

श्रीमान् ज़मींदार साहब,

सन्देह नहीं कि दुनिया के रस्म-रवाज़ों का जहाँ तक संबंध है, आप मुझे अपनी पत्नी मान चुके हैं; लेकिन, पत्नी जिसे बनना है, उस किरण के हृदय को परख सकने की यदि आप तकलीफ करें, तो यह जान कर आपको आश्चर्य होगा कि किरण का कोमल हृदय-पुष्प अभी पूर्णतः विकसित नहीं हुआ है। वह तो अब तक मुकुलित ही है, और आप जैसे बूढे माली की छाया देख कर ही वह मुरझाने लगा है। किरण के सारे अरमान और स्वप्निल वरदान आपकी छाया में आकर अभिशाप बन चुके हैं और अनुताप की अन्तर्ज्वाला में भस्म हो कर मुझे परितप्ता बना चुके हैं।

"जब किरण देखती है कि आपका पुत्र किशोर और पुत्री रेखा भी उससे कहीं अधिक वय के हैं, तब किरण आपसे पूछना चाहती है कि उसकी उम्र की तमाम लड़कियाँ क्यों आपकी पुत्री नहीं कही जा सकतीं? यदि रेखा आपकी पुत्री है, तो किरण ने ऐसा क्या पाप किया है कि वह आपकी पुत्री नहीं हो सकती? उसे आप धन के बल पर अपनी पत्नी बनाने पर क्यों तुले हुए हैं? चाँदी के चन्द टुकड़ों पर ख़रीद कर आप एक निर्दय कसाई की तरह क्यों उसका गोवध करने पर आमादा हैं? माना कि आपने मुझे ख़रीद लिया है। परन्तु ख़रीदी हुई वस्तु को नष्ट कर देना तो बुद्धिमानी नहीं है। मानवता का आदर्श उपस्थित करने की बात क्यों नहीं उठती आपके हृदय में?

"जिस घर में तीन तीन पत्नियाँ अपना यौवन और जीवन उजाड़ कर श्मशान की ख़ाक में मिल चुकी हैं, क्या चौथी पत्नी का भी वही हाल न होगा? जब जीवन के पचास वर्ष आप पार कर चुके हैं, तब कितने दिनों तक इस किरण की सुहाग-लतिका को आप हरी-भरी रख सकेंगे? इस अनिवार्य और कटु सत्य पर आप क्यों विचार नहीं करना चाहते? फिर जिस घर में लक्ष्मी की कमी नहीं, सन्तान का अभाव नहीं, उस घर में चौथी पत्नी लाना आपकी अमानवीय कामोत्तेजना नहीं, तो क्या है?

"हो सकता है, आप मेरे प्रत्येक शब्द को ज़हर समझते हों; लेकिन हृदय पर हाथ रख कर ठण्डे दिल से यदि आप इन बातों पर विचार करेंगे तो मेरे शब्द-शब्द की सत्यता पर आप हरगिज़ अविश्वास न कर सकेंगे।

"आपके मन की बात आप जानें; लेकिन मैं अपनी बात आपके सामने स्पष्ट रूप से रख चुकी हूँ। इतना सब लिख चुकने के बाद भी यदि मैंने देखा कि आप मुझे अपनी पत्नी बनाने का हक़ त्याग सकने में असमर्थ हैं, तो किरण का हृदय-पुष्प भी आपके चरणों पर न चढ़ सकेगा। मैं जानती हूँ कि संसार की दृष्टि में जब मैं आपकी पत्नी हो चुकी, तो आप मेरे साथ बलप्रयोग भी कर सकते हैं। परन्तु इतना आप न भूलें कि दुनिया की समझ में मेरा शरीर ही आपको सौंपा गया है—प्राण नहीं। जिस दिन मैं इस प्रकार के बल-प्रयोग का तनिक भी आभास पाऊँगी, उस दिन न तो आपको मेरा शरीर मिलेगा, न मेरे प्राण; बल्कि आपको मिलेगा मेरा शव-मात्र!

—किरण"

२

किरण का यह पत्र पढ़ते ही सुहागरात की सारी उमंग ज़मींदार के शरीर में सहस्रों सर्प-दंशन की पीड़ा उत्पन्न कर बैठी। जब संसार की नज़रों

में बूढ़े ज़मींदार सुहागरात की सरस घड़ियों में आत्मविभोर होने का अवसर प्राप्त कर चुके थे, तब उनके दिल पर क्या बीती, इसे संसार क्या जाने ?

मानव का विवेक जब किसी कामना-विशेष का शिकार होकर खो जाता है और मतवाला-सा होकर वह इष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए तेज पग बढ़ाए जाता है, तब बीच मार्ग में ही कभी-कभी उस पर बिजली टूट पड़ती है अथवा पिस्तौल का अप्रत्याशित धड़ाका भी उसके कानों के पर्दे फाड़ देने की चेष्टा कर उठता है, और तभी उसका खोया विवेक पुनः उसका साथ देने लगता है। तब वह अपने किए कार्यों का सिंहावलोकन करने विवश हो जाता है। परन्तु उसकी कामना रह-रह कर फिर हिलोरें मारने लगती और जागते विवेक को भी दबा देने की चेष्टा करने लगती है।

उस रात में ज़मींदार का भी यही हाल रहा। पत्र पढ़ते पढ़ते उन्हें पसीना आ गया। एक हलकी-सी मूर्च्छना में भी कुछ समय तक वह पड़े रहे। किरणने उनके मस्तक पर अपना भींगा रूमाल रखकर और पंखा झटक कर किसी तरह उनकी मूर्च्छा दूर की। आँखें खुलनेपर जब उन्होंने किरण को अपने उपचार में संलग्न पाया, तो उनकी विचार-धाराओं में फिर हिलोरों का आवर्तन-प्रत्यावर्त्तन होने लगा।

ज़मींदार को लगा कि यदि यह किरण मेरी पत्नी नहीं बनना चाहती थी, तो इसने मेरे साथ अपना पाणिग्रहण ही क्यों होने दिया ? जब विवाह हो जाने पर भी यह मुझे अपना पति मानने के लिए तैयार नहीं, तो अपने माता-पिता को इसने अपनी भावनाएँ बतला कर यह विवाह स्थगित क्यों नहीं करा दिया ? और आज जो किरण मेरे स्पर्श से घृणा करती, मेरे विचारों और कार्यों की धज्जियाँ उड़ाती तथा नए युग में बदले हुए दृष्टिकोण का उल्लेख कर शिक्षा देते हुए शायद आत्महत्या कर लेने का भय दिखला रही है, जब विवाह होने के पहले यह ऐसा नहीं कर सकी, तो क्या अब यह सम्भव नहीं कि धीरे धीरे इसके इस संकल्प में शिथिलता आ जाए और मेरे प्रति इसकी यह घृणा भी धीरे धीरे धूमिल हो जाए ?

इधर ज़मींदार इन विचार-तरंगों पर तिरते अपने पलंग पर तन्द्रा में पड़े थे और किरण उनके सामने ही एक सोफे पर बैठी किसी पुस्तक के पन्ने पलट रही थी। ज़मींदार ने साहस बटोरकर किरण को छेड़ने की चेष्टा की। कहा—'तो किरण...?'

'कहिए, आप क्या कहना चाहते हैं ?' किरण ने ज़मींदार की तरफ देखते हुए पूछा।

'यही कि तुमसे दो-एक बातें... हाँ, बातें करना चाहता हूँ।'

किरण ने अपना शाल सोफे पर एक तरफ धरते हुए कहा — 'दो-एक ही क्यों, आप जितनी बातें चाहें, शौक से कीजिए।'

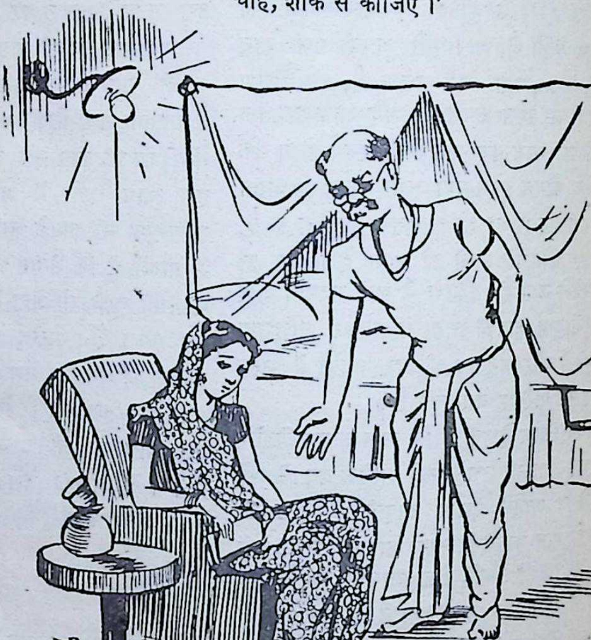

'जब तुम्हें मुझसे इतनी घृणा थी, तो यह विवाह होने ही क्यों दिया ?'

'यह बात मुझसे पूछने की नहीं है। आप स्वयं इसका रहस्य जानते हैं।' किरण ने गंभीर मुद्रा से उत्तर दिया।

'रहस्य!' ज़मींदार ने पलंग पर बैठते हुए कहा—'मैं तो इसमें किसी रहस्य की छाया नहीं देखता!'

'आप क्यों देखेंगे।' किरण ने कहा — 'जुआ खेलनेवाला जब किसी प्रवंचना का आश्रय लेकर अपना दाँव जीत जाता है, तब वह सारी प्रवंचनाएँ भूल जाता है। तो तब हर्षातिरेक में उसे अपनी विजय-मात्र ही नज़र आती है।'

'रहस्य! प्रवंचना!' ज़मींदार ने एक हाथ से अपना मस्तक थामते हुए कहा — 'मैं यह अब तनिक भी नहीं समझ रहा हूँ, किरण!'

'मैं कह चुकी हूँ न, आप इसे समझने की चेष्टा ही नहीं कर रहे हैं। मैं आपको समझाए देती हूँ। ईश्वर ने आपको संपत्ति दी है और उसी ईश्वर ने कुछ लोगों को ग़रीबी और ग़रीबी के साथ सन्तान भी दी है। यों ही सन्तान का लालन-पालन करने के लिए ग़रीब मोहताज रहते हैं। फिर जिन ग़रीबों के पुत्री होती है, उनकी मोहताजी का क्या कहना! बस दुनियाँ में सौदा होने लगता है। किसी की संतान और किसी की सम्पत्ति—दाँव पर लगा दी जाती है। सम्पत्ति-वालों की विजय होती है और सन्तानवाले ग़रीब माँ-बाप का सर्वनाश।'

'लेकिन इसके लिए ग़रीबों को कोई विरोध तो नहीं करता।' ज़मींदार ने कहा — 'पचास बार उन्हें सोचने-समझने का अवसर मिलता है। हज़ार बार उनकी ग़रज़ पड़ती है, तभी यह होता है न!'

'उनकी परिस्थितियाँ उन्हें विवश कर देती हैं।' किरण ने कहा — 'और तुम्हें तुम्हारी काम-पिपासा मदहोश कर देती है। लेकिन यह किरण इन सब बातों को समझती है। इसीलिए उसने जो संकल्प कर लिया है, उसमें हेरफेर की कोई गुंजाइश नहीं। इस विवाह से मेरे माँ-बाप की ग़रीबी भी हर गई और दुनियाँ की दृष्टि में आपका चौथा विवाह भी हो गया। लेकिन मुझे आप न पा सकेंगे, यह पहेली समस्या ही बनी रह गई।

'तो क्या' ज़मींदार ने अपने मस्तक पर आ चुके स्वेद बिन्दुओं को एक रूमाल से पोंछते हुए कहा—'क्या तुम दूसरा विवाह करोगी किरण?'

'हिन्दू नारी के आदर्शों को समझते हुए भी, किरण ने नागिन-सी फुंकार भरते हुए कहा—'दूसरे विवाह की बात करते आपको लज्जा नहीं आती। और, यह समय भी अब आ चुका है—तुम जैसे कामुक धनवानों की ज़बरदस्तियों का शिकार होते-होते हिन्दू नारी इतनी परेशान हो चुकी है कि सदियों से चले आने वाले आदर्शों को भी अब वह बदल रही है।'

जमींदार की अक्ल हैरान थी। वह समझ नहीं सके कि आख़िर यह किरण क्या करने वाली है। उस दिन फिर उन्होंने किरण से कोई बात नहीं की।

३

किरण की खरी-खरी बातों से ज़मींदार का अन्तस्तल तिलमिला उठा। वह रात-दिन परेशान रहने लगे। दिन की घड़ियाँ ज्यों ही समाप्त होतीं, उनके हृदय में एक धूमिल-सी आशा पनपने लगती —संभव है, धीरे धीरे किरण में मेरे प्रति जो घृणा है, वह बदल जाए।

स्वभावतः मानव अपनी कमज़ोरी पर विचार नहीं करना चाहता। वह तो उचित अथवा अनुचित ढंग से अपनी कामना पूरी करना चाहता है।

ज़मींदार ने विवाह के बाद एक मास तक लगातार यही चेष्टा की कि किरण के विचारों में परिवर्तन हो जाए और वह तन-मन से उनकी पत्नी बन जाए। लेकिन किरण में जब कोई परिवर्तन नहीं हुआ, तब ज़मींदार ने उसके दिल को चोट पहुँचा कर उसे अपनी ओर आकृष्ट करने का एक नया तरीका अपनाया।

निकटवर्ती शहर से एक ऐसी नर्तकी को उन्होंने अपनी हवेली में कुछ दिनों के लिए बुला रक्खा, जो सुन्दरता और गाने नाचने में अपना सानी नहीं रखती थी। उसके कोकिल-कण्ठ से विस्तृत स्वर-लहरी उसके पायल के झमझम-झमझम करते मादक स्वर से मिल कर एकरूप हो जाती, तब ऐसा प्रतीत होने लगता कि इन्द्रलोक की कोई

अप्सरा ही भूतल पर उतर आई. है। सुनने-देखने वाले उसके नर्तन पर, उसके एक-एक झमाके पर आत्मविभोर हो उठते।

पास-पड़ोस और गाँव के नर-नारी समझते कि जमींदार ने अपनी चौथी शादी की है न! उसी की खुशी में यह रासलीला हो रही है। ज़मींदार के दोस्त समझते कि किरण जैसी रूप-परी को पाकर ज़मींदार के हौसले बढ़ गए हैं। और ज़मींदार स्वयं मन-ही-मन कहते कि नर्त्तकी का लगातार यह नाच-गाना और मेरी हवेली में ही उसका रहना निश्चय ही किरण के नारीत्व को ठेस पहुँचाएगा और तव सम्भव है, इस ठेस से तिल-मिलाकर वह किसी-न-किसी दिन अपना नारीत्व मेरे चरणों पर अपने आप समर्पित कर बैठे। वह सोचते, कोई भी हिन्दू नारी अपने पति को इस प्रकार किसी नर्त्तकी की छाया में प्रतिपल देख कर चुप न रह सकेगी।

और सन्देह नहीं कि किरण के हृदय में यह सब देख कर जो तूफ़ान उमड़ता, उसके दिल पर जो चोट लगती और नर्तकी के पायल का झमझम सुन कर जो तिलमिलाहट होती, वह वहुत-कुछ ज़मींदार के अनुमान के अनुकूल होती। लेकिन अपने निश्चय पर वह अटल थी। उसे सदा यही लगता कि उसका जविन-उपवन मुरझा चुका है। उसकी वहार असमय ही ख़त्म हो चुकी है। उसे प्रसन्नता थी कि स्वयं परितप्ता वन कर उसने एक सन्मान का कर्तव्य पूरा कर अपने माँ-बाप की निर्धनता को सदा के लिए दूर कर दिया है। अब वह अपने आपको भी ....। और दूसरे ही क्षण किरण के हाथों में एक छोटी-सी शीशी थी, जिस पर लाल अक्षरों में लिखा था—'ज़ंहर'।

किरण का स्पन्दन धीरे धीरे रुक रहा था। उसके नेत्रों में गहरा अन्धकार सिमट रहा था और उसके कानों में ज़मींदार के राग-रंग का—उस नर्त्तकी के पायल का झमझम स्वर धीरे धीरे प्रवेश कर रहा था और इसी झमझम के साथ परितप्ता की सारी चेतना सदा के लिए समाप्त होती जा रही थी।

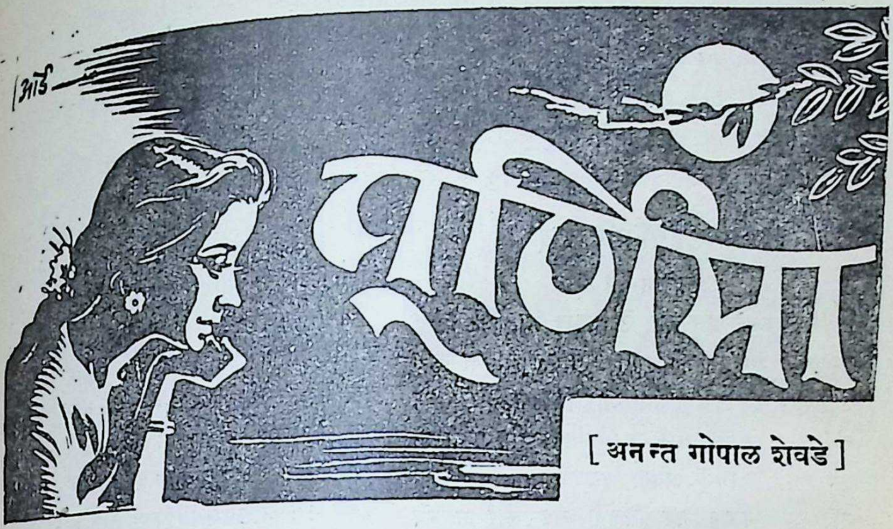

पूर्णिमा

[अनन्त गोपाल शेवडे]

[अब तक की कथा :

बैरिस्टर पण्डित की पुत्री पूर्णिमा को पाने के लिये विलास मोहन अपना जाल फैला रहा था। सिनेमा, टेनिस, डिनर वगैरह साधनों के द्वारा वह अपने प्रयत्न में जुटा हुआ था। पूर्णिमा के जीवन का एक पहलू इस प्रकार के जीवन को पसन्द करता था। यह देख कर विलास को आशा बँधी कि वह पूर्णिमा को पाने में विजयी होगा।

किन्तु पूर्णिमा के जीवन का एक गहरा गंभीर और ऊँचा पहलू भी था जो बंगाली क्रान्तिकारी के तेजस्वी पुत्र युवक विनयकुमार से प्रभावित था। विनयकुमार की बहादुरी, निडरता, गंभीर चिन्तन और ऊँचे विचारों का उस पर गहरा असर था और वह उसका मन ही मन अत्यन्त आदर करती थी।

विनयकुमार की भी धारणा थी कि पूर्णिमा समूची उच्छृंखल, आमोदप्रिय, तितलीनुमा लड़की नहीं है; बल्कि वह भी उच्च आदर्शवादिता और गहन जीवन-तत्त्वों के क्षेत्र में संचार कर सकती है, बशर्ते कि उसका सम्पर्क ऐसे ही वातावरण में बना रहे।

विलास ने पूर्णिमा को एक नेकलेस भेंट किया और उस दिन उन दोनों ने साथ ही टेनिस, डिनर, मोटर की सैर; ग्रेटा गार्बो की प्रणय-प्रधान फिल्म आदि कार्यक्रमों में हिस्सा लिया जिसके कारण पूर्णिमा के हृदय में विलास के प्रति माधुर्य-भाव का प्रथम स्पंदन हुआ।

इधर एक दिन ऐसा मौका आया कि पूर्णिमा के यहाँ विनयकुमार पहुँच गया और उसे अपने जीवन की बीती करूण कहानी सुना बैठा जिसमें उसके माता-पिता की उदात्त प्रीति की, उनके वियोग की, पिता की अन्दमान की काल-कोठरी में घटित मृत्यु की और विनय के एकाकी जीवन की चर्चा थी। यह कहानी सुनकर पूर्णिमा का हृदय विनय के लिये अत्यन्त आत्मीयता और अनुकंपा से भर गया।

दूसरे दिन जब विलास पूर्णिमा के यहाँ पहुँचा तो उसने देखा कि पूर्णिमा विनयकुमार के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसी की प्रशंसा कर रही है। विलास ने डाह के कारण विनय पर छींटाकशी शुरू कर दी जिसकी पूर्णिमा ने भर्त्सना की।

अचानक एक दिन विनयकुमार के कानों पर वे सब लोकापवाद पड़े जो कॉलेज-जगत् में पूर्णिमा और विलास के 'रोमान्स' को लेकर उठे थे। वह घूमने के लिये [illegible] पार्क में गया था और वहीं

हरी दूब पर लेटे लेटे उसने सुना कि कॉलेज के छात्रों का एक दल पूर्णिमा के बारे में चर्चा कर रहा है और उसके विलास के साथ होनेवाले संभावित विवाह का उल्लेख कर रहा है।

यह सुनकर न जाने क्यों विनय का हृदय मार्मिक व्यथा से भर गया। जब उसने अपने मित्र सुशील से इसकी चर्चा की और अपने मन के सारे भावों को उसके सामने खोलकर रख दिया तो सुशील एकाएक पूछ बैठा—"विनय, ज़रा दिल की थाह लेकर सोचो तो कि कहीं तुम स्वयं पूर्णिमा से प्रेम तो नहीं करने लगे?"

विनय की अन्तर्व्यथा देखकर सुशील ने उसे सलाह दी कि वह एक बार जाकर पूर्णिमा से सारी परिस्थिति कह दे ताकि वह लड़की अज्ञान में कोई निर्णय न कर बैठे।—अब आगे पढ़िये!]

सोलहवाँ-परिच्छेद

:अपमान की ठेस:

विनयकुमार इस बात से विकल था कि उसके हृदय में पूर्णिमा के प्रति प्रेम की भावना जाग उठी है। जब तक पूर्णिमा और विलास के संभाव्य संबंध की बातें उसके कान पर नहीं आयी थीं तब तक उसे स्वयं अपनी इस भावना का पता नहीं था। मानव मन कितना गूढ़ और अगम्य है? जब तक कोई प्रसंग नहीं आता तब तक उसकी विभिन्न क्रिया, प्रतिक्रियाओं का स्वतः को ज्ञान नहीं होता। स्याही को अपना रंग काला है यह तब तक नहीं मालूम होता जब तक कि वह कागज पर नहीं उतर आती। मानव जीवन के इस रहस्य में ही उसका समस्त सौंदर्य और महानता समाई हुई है।

आज उसने स्पष्टता से यह स्वीकार कर लिया है कि पूर्णिमा के बारे में उसके हृदय में प्रणय-स्पंदन का प्रादुर्भाव हुआ है। उसकी धारणा है कि पूर्णिमा उसके जीवन के एकाकीपन को, और वह पूर्णिमा के जीवन की विषण्णता को, दूर करने में सफल होगा, और उन दोनों के सहयोग से जो संयुक्त जीवन होगा वह कितना आनन्द-प्रद, लाभप्रद और क्रियाशील होगा? किन्तु, इसके विपरीत यदि उसका विलास से विवाह हुआ तो पूर्णिमा का जीवन तो नष्ट-भ्रष्ट हो ही जावेगा, किन्तु उसके स्वतः के जीवन का अकेलापन, सूनापन वैसा का वैसा ही बना रहेगा। यह ठीक है कि आत्म-हत्या करना या हृदय के टूट जाने के कारण विरक्त हो जाना, ये बातें उसके मन में उठती ही नहीं थीं, क्यों कि वह जीवन-द्रोही नहीं था। जीवन के पुरुषार्थ में उसका दृढ़ विश्वास था और उसके हृदय में ऐसी असीमित शक्ति थी कि वह बड़ी से बड़ी आपत्ति का निराशा का या अन्तर्पीडा का आघात बर्दाश्त कर सकता था।

किन्तु यह सब जो कुछ हो, उसने यह तय कर लिया था सुशील को जो उसके गुप्त प्रेम के बारे में मालूम हो गया सो हो गया, और कोई अब उसे नहीं जानेगा, पूर्णिमा भी नहीं। अपने प्रणय में उसे अटूट श्रद्धा थी। फिर उसे प्रदर्शित करके उसे ओछा क्यों किया जाय?

आज भाग्य ने उसे एक नई वेदना का प्रसाद दिया है। इसे तो सहन करना ही होगा। क्या ही अच्छा होता यदि पूर्णिमा उसकी राह में आती ही नहीं। क्या ज़रूरत थी उस दिन जो वह अपनी साइकिल लेकर सार्जटों के ख़िलाफ़ विनय की मदद करने दौड़ी और आठ आने का अहसान उसके सिर पर लादकर चली गई, जिसका बोझ आज इतना मुष्किल, इतना भारी हो उठा है?

लेकिन वह शिकायत क्यों करे? नियति का यही खेल है। प्रणय दग्ध-हृदयों के विलाप उसके क्रीड़ा-गीत होते हैं। कितने नर-नारियों ने अनादि काल से आज तक इस पीड़ा को बर्दाश्त नहीं किया है? उनके हृदय के घाव-जीवन के अन्त तक वैसे के वैसे ही बने रहे। कोई उन्हें स्नेह का मरहम लगा देने वाला भी न मिला — आँसुओं को सेहत देनेवाला भी न मिला, सहानुभूति का एक शब्द सुनानेवाला न मिला। जहाँ प्रणय के परमेश्वर की अबाधित सत्ता का यह प्रताप है, वहाँ एक अशक्त मानव नर हो या नारी हो, किस प्रकार आवाज़ उठा सके, किस तरह उंगली भी उठा सके? उसे तो अपने भोग को चुपचाप सिर झुकाकर सहन कर लेने तथा टूटे हुए दिल से निकले हुए दो आँसू बहा देने के अलावा कोई चारा नहीं। वह तो अपने अदृष्ट को, भवितव्य

चो, वह कितना ही कठोर क्यों न हो, बर्दाश्त कर ही लेगा। लेकिन पूर्णिमा का क्या होगा? उसकी नियति उसे कहाँ ले जायगी? वह कोमल-हृदया रमणी उसे सहन कर सकेगी? क्या वह दर असल विलास से प्रेम करती है—विलास जैसे उथले, प्रतिभा हीन व्यक्ति से? उसने विलास में कौनसी चीज पाई है जो उस पर छाई हुई है? बुद्धि, ज्ञान, आदर्श, जीवन-दृष्टि, इन सब में से कुछ भी तो नहीं है विलास में, जो जीवन की बुनियाद बनकर उसे विशाल भव्य और सफल बना सके। और यदि उसके जीवन की जड़ इतनी कमज़ोर है, खोकली है तो वह कितने दिन टिका रहेगा?

आश्चर्य तो यह है कि पूर्णिमा जैसी बुद्धिमती स्त्री ने विलास जैसे युवक को पसन्द किया! लेकिन प्रेम बुद्धि के दायरे की बात नहीं है, हृदय के उपनिवेश की है। नारी का प्रेम कब, किस से हो जाय इसका कोई नियम नहीं है। "स्त्रियश्चरित्रं" की गूढ़ता के बारे में विद्वानों ने जो बात कही है वह ठीक ही है। अच्छी अच्छी विद्वान स्त्रियों ने बुद्धिहीन पुरुषों का वरण किया है, और सुन्दर रमणी ने कुरुप नहीं तो असुन्दर पुरुषों को अपना हृदय दिया है। कभी कभी तो आश्चर्य होता है उनकी इस रुचि पर। उसका न कोई यम-नियम है, न कोई माप-तौल। स्त्री-भावनाशील प्राणी है। उसकी भावनाएँ कब किस वस्तु से, किस प्रभाव से चलित हो जाती हैं इसका कोई ठिकाना नहीं है। और इस प्रकार जब स्त्री-पुरुषों में विषमता, बेमेल होता है, और स्त्री के रूप-गुण-धर्म में पुरुष के रूप-गुण-धर्म से भिन्नता होती है तब भी वे एक-दूसरे पर अनुरक्त होते देखे जाते हैं। यही तो नर-नारी के सम्बन्ध का गूढ़तम रहस्य है जो कोई भी मनुष्य आज तक खोल नहीं सका है और न कभी खोल सकेगा।

पूर्णिमा भी आज उसके सामने एक रहस्य बनकर आयी हुई रमणी है। उसने कभी उसके बारे में कल्पना तक नहीं की थी कि वह कोई ऐसा निर्णय कर बैठेगी। उसे आज तक अभिमान था कि वह पूर्णिमा के व्यक्तित्व को एक दुर्दम शक्ति से प्रभावित किए हुए है जिसके असर से वह अपने आपको कभी मुक्त नहीं कर सकेगी। हाँ, यह सच है कि उसने कभी ऐसा नहीं माना था कि उसके इस प्रभाव का सम्बन्ध प्रणयानुभूति से है, जो उसके हृदय में पैदा हो रही थी। पूर्णिमा के हृदय में क्या भावनाएँ हैं यह वह ठीक से नहीं कह सकता था। दो तीन बार उसने विनय के सामने आँसू बहाये हैं, कोई संकोच नहीं माना है। विनय की वह जितनी इज्जत करती है, उतनी शायद किसी युवक की नहीं करती है। विनय के सामने हृदय खोलने में उसे कभी हिचक नहीं हुई है। यह सब तो है, लेकिन इसके आगे?

क्या इस पर से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्णिमा के हृदय में भी विनय के प्रति प्रणय की ऊर्मि पैदा हुई है। यदि विलास और पूर्णिमा के संबंध की बातें, जो उसने कांग्रेस पार्क में सुनी थीं, उसके कान पर नहीं आतीं तो वह शायद ऐसा अनुमान कर सकता था। किन्तु अब तो शायद पूर्णिमा ने दूसरा ही रास्ता अख्तियार किया है।

लेकिन विलास को पसन्द किया है किस पूर्णिमा ने? उसने जो संगीत के ज़रिये ऊँचे उठकर जीवन की गहराई तथा गांभीर्य तक पैठती है, या वह जो टेनिस-रैकेट लिये क्लब, होटल और सिनेमा में घंटों अपना समय बिता देती है? किस पूर्णिमाने यह महत्वपूर्ण निश्चय किया है? यदि पहली पूर्णिमा ने यह किया है तब तो इसमें कोई परिवर्तन हो ही नहीं सकता—क्यों कि फिर तो वह उसने अपने जीवन की समस्त गंभीरता के साथ किया होगा। किन्तु यदि इस निर्णय के लिये वह दूसरी पूर्णिमा आमोद-प्रिय, तितलीनुमा, चंचला-रमणी ज़िम्मेदार है तो फिर संभवतः वह निर्णय बदल भी सकता है। इसके लिये ज़रूरत है पूर्णिमा के सामने उसका द्वैत खोलकर रख देने की। और इस खोलने में उसे पता भी न चले कि खोलनेवाले का हेतु क्या है। एक शुभ चिन्तक मित्र के नाते विनय उस प्रश्न की दोनों बाजुएँ जो खुद पूर्णिमा की समझ में नहीं आयी हैं, उसके सामने सहानुभूति और अपनेपन के साथ रख दे। और फिर इसका अन्तिम निर्णय खुद पूर्णिमा ही करे। ऐसे निर्णय की जिम्मेदारी उसकी अपनी होगी और विनय भी अपना कर्तव्य कर चुकेगा।

इसी में, संभव है, पूर्णिमा अपने हित को और विनय के हृदय की पुकार को सुन ले तो सुन ले। इससे अधिक वह कुछ नहीं करेगा। प्रणय के साम्राज्य में ज़ोर ज़बर्दस्ती के लिये कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार सोचने-विचारने के बाद विनय के हृदय को कुछ शांति मिली। उसके मन का तौल सम्हल गया और बेबसी का भाव नष्ट होकर उसका आत्मविश्वास फिर लौट आया।

इसलिये जब वह पूर्णिमा से मिलने निकला तब उसने अपनी भावनाओं पर काफी संमय पा लिया था। लेकिन पूर्णिमा के बंगले में कदम रखते ही एक क्षण के लिये उसे ऐसा लगा कि वह जीवन की कठिन परीक्षा देने जा रहा है, जिसमें उसके भाग्य का फैसला होनेवाला है। इस कल्पना से कुछ देर के लिये वह घबड़ा गया, लेकिन फिर फौरन सम्हल गया।

पूर्णिमा अकेली हॉल में बैठकर फोटो का एक अल्बम देख रही थी। साथ ही मन ही मन एक गीत गुनगुना रही थी। उसकी पोषाक से जान पड़ता था कि वह कहीं बाहर जाना चाहती है। विनय कुमार के आने की इत्तला मिलते ही वह दौड़कर उसका स्वागत करने के लिये बाहर बरामदे में आ गई और हँसकर बोली—

"आइये, आइये! आज कैसे रास्ता भूल गये?"

इस सस्नेह स्वागत से विनय को हर्ष हुआ। उसने स्मितपूर्वक नमस्कार करते हुए कहा—

"नहीं रास्ता तो नहीं भूला हूँ। साधारणतः रास्ता भूलने का रोग मुझे नहीं है। मैं तो मंज़िल पर पहुँचना चाहता हूँ उसका रास्ता मुझे अक्सर मिल ही जाता है।"

"बैठिये न-आप खड़े क्यों हैं?" पूर्णिमा ने आग्रह से कहा, और फिर अपनी आँखे उसके चेहरे पर गड़ाकर कहा, "यह क्या? आपकी तबीयत अच्छी नहीं है? चेहरा उतरा हुआ मालूम पड़ता है। बुखार-उखार तो नहीं आया?"

पूर्णिमा के इन शब्दोंने उसे सुख दिया। उसने अनुभव किया कि नारी जिस व्यक्ति को चाहती है उसके स्वास्थ्य का सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तन भी उसकी आँखों से नहीं बच सकता। उसने आभारपूर्वक कहा—

"नहीं तबीयत ठीक है। एक दो दिन ज़रासा अस्वस्थ था—मामूली बात थी। अब बिलकुल अच्छा हूँ? आप कहीं बाहर जा रही हैं?"

"क्लब ही जानेवाली थी, लेकिन अब नहीं जाऊँगी। आज अच्छा गेम मिलने की आशा भी तो नहीं है। विलासबाबू इन्द्रगढ़ गये हैं और मिस्टर जैकब तो आजकल बहुत कम आते हैं। वीणाने तो हमारे क्लब का जैसे बायकाट ही कर दिया है। अच्छा हुआ जो आप आ गये। शाम अच्छी बीतेगी। पहले आप यह बताइये कि आप क्या लेंगे, चाय, कॉफी या लेमन ज्यूस?" इतना कहकर उसने घंटी बजाई।

विनय ने चाय के लिये अपनी पसन्दगी ज़ाहिर की।

"मैं आज आपको बधाई देने के लिये आया हूँ" विनय ने बात छेड़ते हुए, कुछ झिझकते हुए कहा।

"किसलिये?"

"आपका विवाह तय हो गया है न? उसीके लिये"।

"कब, कहाँ, किससे?"—पूर्णिमा ने एक ही सांस में पूछा। इस अनपेक्षित सीधे प्रश्न से वह कुछ अकबका गई।

"विलास बाबू के साथ तय हुआ है न! कॉलेज में इसकी अफ़वाह काफी गरम है।"

"ओह! उनके बारे में कहते हैं आप?" पूर्णिमा ने गंभीर होते हुए कहा। उसकी हँसी काफूर हो गई। "अभी तो कुछ 'सेटल' नहीं हुआ है। इसके बारे में अब तक मैं ठीक से निर्णय नहीं कर सकी हूँ।"

विनय ने सोचा, नारी का यह नित्य का स्वभाव है, नित्य का कथन है। यद्यपि वह उसे सुखदायक लगता है लेकिन उसका कोई ख़ास मतलब नहीं है।

"'सेटल' हो या न हो, पूर्णिमा देवी! यह तो आपका व्यक्तिगत प्रश्न है कि आप क्या करें, क्या न करें। लेकिन मैं स्वतः को आपका हितचिन्तक मानता हूँ और मेरा ख़्याल है आप भी मुझे मानती हैं, इसलिये कोई बात कहूँ तो क्षमा करें। अगर न कहूँ तो अपने कर्तव्य से विमुख होऊँगा, ऐसा मेरा ख़्याल है।"

76226

"कहिये न, विनय बाबू! मैंने तो सदैव आपको अपना हितैषी ही माना है। आप जो कहेंगे मेरी भलाई के लिये ही कहेंगे। आप निस्संकोच होकर कहें।"

विनयकुमार को यह सुन कर ढाढ़स बँधा। पूर्णिमा उसके प्रति इतने अच्छे भाव रखती है यह शुभ लक्षण है।

"आप विवाह किसी के साथ भी तय करें लेकिन कृपा कर ईश्वर के लिये आप "स्कैंडल" से अपने आपको बचाएँ। मैं सब कुछ सहन कर सकता हूँ पूर्णिमादेवी, लेकिन आपके बारे में इस तरह लोग भद्दी बातें कहें यह बर्दाश्त नहीं कर सकता।" उसने कातरता से कहा,

पूर्णिमा एकदम गंभीर हो गई। विनयकुमार के हृदय में उसके लिये इतनी उत्कटता के भाव हैं यह देखकर उसे बड़ा सुख हुआ। लेकिन उसके बारे में 'स्कैंडल्स' फैलाये जावें और वे विनयकुमार के कानों तक पहुँचे इस जानकारी से उसे बुरा लगा।

"क्या कहते हैं लोग" ? अपना सारा आत्मिक बल समेट कर पूर्णिमा ने पूछा। उसे विनयकुमार से इस प्रकार की चर्चा करने में कुछ नैतिक डर तो लगता था, लेकिन उसे विश्वास था कि इस पुरुष पर वह पूरा भरोसा कर सकती है और वह उसे किसी भी हालत में धोखा नहीं देगा।

"मुझी से क्यों पूछती हो पूर्णिमा ?" उसने विह्वल हो कर कहा। विनयकुमार की कातरता और सौहार्द ने पूर्णिमा को द्रवित कर दिया। उसने स्नेह से उसे 'तुम' कहा इसमें भी उसे अनुपम सुख मिला।

"आपसे न पूछूँ तो किससे पूछूँ, विनय बाबू ? विलास बाबू ने तो कभी मुझसे ऐसी कोई बात कही नहीं। आपके सिवा मेरा भला चाहनेवाला मित्र कौन है, बतलाइये तो ?"

विनय को लगा, पूर्णिमा सच कह रही है। क्या उसके भी जीवन में उसी की तरह एकाकीपन, सूनापन नहीं है ? उसका हृदय उस युवती के लिये सहानुभूति से भर गया।

"तुम्हारे और तिलास बाबू के सम्बन्ध के बारे में लोग बहुत गन्दी गन्दी बातें फैला रहे हैं और तुम तो जानती ही हो कि ऐसी बातें जल्द फैलती हैं। तुम दोनों का साथ साथ सिनेमा देखना, होटलों में जाना और मध्यरात्रि के वक्त मोटर में पहाड़ी पर अकेले घूमना — ये सब बातें कही जा रही हैं। और जब लोग कहना शुरू करते हैं तो यहीं तो रुकते नहीं — मुझसे ये सब नहीं सुना जाता। तुम्हारा इस प्रकार निरादर मैं नहीं सहन कर सकता, पूर्णिमा।"

पूर्णिमा नीचे मुँह किये चुपचाप सुनती रही। सिर्फ़ उसके मुँह से निकला "ओह ?" और फिर वह विचार-मग्न हो गई। जो बदनामी हुई उससे उसे बुरा तो लगा — दुख भी हुआ। लेकिन दूसरे ही क्षण उसका विचार बदला। उसकी आँखों के सामने उस आमोदपूर्ण दिवस की सारी सुखद स्मृतियाँ नाच उठीं और कुछ देर के लिये वह उन्हीं के आनन्द में बह गई। उसकी नज़र उसके दाहिने हाथ के उस स्थान पर पड़ गई जिस जगह विलास के ओंठ लगे थे, मानों उनके निशान अब भी वहाँ मौजूद हों। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे होश हुआ और इस कल्पना से कि कहीं विनयबाबू ने उसके विचारों को तो नहीं पढ़ लिया वह घबड़ा-सी गई। बोली—

"शुरू शुरू में तो लोग ऐसा कहेंगे ही विनयबाबू ? लेकिन जब 'एंगेजमेंट' ज़ाहिर हो जायगा तब तो उनका मुँह बन्द हो ही जायगा। मैं किस-किस को बकने से रोक सकती हूँ ?"—एक असावधान क्षण में उसके मुँह से, बे-अख्तियार, सत्य निकल पड़ा।

विनयकुमार के दिल पर भयंकर आघात हुआ। उसे अपने आपको सम्हालना मुश्किल हो गया। और कोई होता तो न जाने वहीं क्या परिस्थिति पैदा हो जाती। लेकिन वह विनयकुमार का मज़बूत हृदय था जो इतने कठोर आघात को पी गया, जैसे शिव ने हलाहल का प्राशन किया हो। उसके मन में घोर निराशा छा गई। फांसी की सज़ा सुनने के बाद अपराधी को जो अंधकार आ घेरता है वैसे ही उसे भी लगा। लेकिन वह हारनेवाला पुरुष नहीं था। वह नष्ट हो जायगा, बर्बाद हो जायगा, पर झुकेगा नहीं, रोएगा नहीं, भीख नहीं माँगेगा। जैसे उसका दिल पत्थर का बन गया हो।

"तो क्या तुमने विलास से विवाह करना निश्चित ही कर लिया है पूर्णिमा ?" विनय ने फिर सीधा प्रश्न किया ।

"निश्चय तो अभी नहीं कहा जा सकता । लेकिन शायद हो जाय ! बापू भी इसके विपक्ष में नहीं दीख पड़ते । लेकिन विवाह का विचार आते ही मेरे मन में अनिश्चितता और आशंका का तूफान उठने लगता है और मैं घबड़ा जाती हूँ । कभी कभी तो न जाने क्यों मुझे ऐसा लगता है कि इस सवाल का अन्तिम फैसला करना कितना कठिन है ? शायद प्रत्येक विचारशील नारी के हृदय में विवाह के पूर्व इसी प्रकार का मंथन होता है।"—पूर्णिमा ने कहा ।

"यह है तो बड़ा गंभीर प्रश्न पूर्णिमा ! जटिल भी है । इसी के फैसले पर दो व्यक्तियों का पूरा भविष्य निर्भर रहता है । यही एक घटना सारा जीवन बना-बिगाड़ सकती है । इसलिये इससे चिंता होना स्वाभाविक है ।"

"पुरुष पर तो यह घटना उतनी नहीं छाती जितनी स्त्री पर । प्रणय पुरुष के जीवन का एक ही अंग है । लेकिन नारी का तो वह समूचा अस्तित्व है न ? पुरुष के जीवन में और भी कई बातें रहती हैं—धन, आदर्श महत्वाकांक्षा, जीवन-युद्ध, कीर्ति इत्यादि । लेकिन नारी के लिये तो प्रेम ही सब कुछ है । वह न मिला तो फिर उसके जीवन में रहा ही क्या ?"

"पुरुष पुरुष में अन्तर होता है पूर्णिमा । मैं मानता हूँ कि कई पुरुषों के लिये प्रेम वही दोयम वस्तु है जो तुम कहती हो । पता नहीं उन्होंने सच्चा प्रेम पाया भी है या नहीं; उन्हें तो खाना-पीना, रस-रंग, विषय-विलास ही जीवन का अन्तिम ध्येय मालूम पड़ता है । न उनमें हृदय की गहराई है, न भावनाओं की उत्कटता । कितना उथला और उच्छृंखल होता है उनका जीवन ! उन्हें प्रेम मिले तो क्या और न मिले तो क्या—सब एक है । लेकिन इसके विपरीत ऐसे भी पुरुष रहते हैं पूर्णिमा, कि जिनके हृदय में भावनाएँ हैं, संस्कारिता है, मानवता है, अथाह गांभीर्य है और जो प्रेम करना जानते हैं, जो प्रेम की दिव्य शक्ति को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करते हैं । उनके जीवन में प्रेम सर्व-व्याप्त होता है । उनके लिये प्रेम, विषय-विलास का साधन नहीं, किन्तु बल, बलिदान, आनन्द और मानवता की प्रेरणा देनेवाली अतुल शक्ति है, जिसकी वे एक श्रद्धालु भक्त की तरह नित्य अभ्यर्चना करते हैं । वे स्वतः अपने प्रेम-पात्र के साथ इसी एक मस्तानगी में लीन रहते हैं, और अपने संयुक्त-जीवन को भव्य, उच्च और प्रशांत बनाते हैं । जिन भाग्यवान स्त्री-पुरुषों को इस प्रेम-सुधा का प्रसाद मिलता है वे धन्य हैं, शत शत धन्य हैं ।"

विनय आवेश के साथ बोल रहा था । उसकी आँखें एक उदात्त आभा से चमक रही थीं और पूर्णिमा को लगा कि उनका उज्ज्वल आलोक उसके हृदय पर एक अजीब जादू-सा कर रहा है।

"यथार्थ में वे शत शत धन्य हैं ।" पूर्णिमा, अनजाने, यही शब्द दुहराने लगी, जैसे इनके केवल दुहराने मात्र से ही उसकी गिनती इन भाग्यशाली प्राणियों में हो जायगी ।

"क्या तुम अपने इस नियोजित विवाह में इसी प्रकार का प्रणय-सुख पा सकोगी पूर्णिमा ?—ऐसा तुम्हें विश्वास है ? क्या तुम विलासबाबू के जीवन से अपने जीवन-की नाव बाँध कर इस आनंद-लोक में पहुँच सकोगी ?—ज़रा अपने दिल की थाह ले कर सोचो तो ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुमने उस युवक के शारीरिक-सौंदर्य और धन की तरफ देख कर ही यह निर्णय कर लिया है, और शारीरिक तथा भौतिक सुख की चकाचौंध के सामने तुमने अपने हृदय के परम सात्विक सुख और समाधान की परवाह न की हो ?" विनय ने पूर्णिमा की भावनाओं के आन्दोलन को देखकर पूछा ।

इस स्पष्ट, असंदिग्ध सवाल से पूर्णिमा अस्वस्थ हो उठी । यह प्रश्न उसके मन में कभी उठा ही नहीं, ऐसा नहीं था । लेकिन आज जब कोई इससे प्रत्यक्ष कैफ़ियत तलब करे तो वह क्या जवाब दे ? जवाब उसे पहले भी नहीं मिला था, अब भी नहीं मिला । ऐसे जटिल प्रश्नों का उत्तर भी क्या आसान होता है ? पर विलास को इतना नीचा दिखा देना भी उसे रुचा नहीं ।

उसके मन की अस्वस्थता उसके चेहरे पर भी प्रतिबिम्बित हो उठी । विनय ने उसे देखा और

वह फ़ौरन उसके समस्त अर्थ को समझ गया।

पूर्णिमा चुप ही रही—कुछ न बोल सकी।

"ज़रा ठण्डे दिमाग से सोचो, पूर्णिमा," विनय कहता गया। "विलास को तो तुम जानती ही हो। उसकी प्रवृत्ति और स्वभाव भी तुम से छिपा नहीं है। क्या वह तुम्हारे व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने में, तुम्हारी सुप्त शक्तियों को जगाने में मदद कर सकेगा? क्या स्वयं उसमें यह शक्ति है जो उसकी ज्वाला वह दूसरे को दे सके?—भौतिक व्यवहार-वाद और शारीरिक सुख-विलास के वातावरण में पाला-पोसा गया, धनिक बाप का एकलौता बेटा है वह—"

"विनय बाबू! किसी सज्जन की ग़ैरहाज़िरी में उसकी निंदा करना एक सभ्य व्यक्ति को शोभा नहीं देता," पूर्णिमा ने कड़ाई से कहा। वह विलास बाबू का अपमान नहीं सह सकी और न अपना क्रोध ही छिपा सकी। "विलास बाबू के पिता ने अपने एक मात्र पुत्र को लाड़-दुलार में पाला सो क्या गुनाह हुआ"?

विनय भी इस कड़ाई के शब्दों में भरे हुए अपमान से, और इससे भी अधिक, उनके पीछे की भावना से तिलमिला उठा—

"निन्दा करने का मेरा स्वभाव नहीं है, पूर्णिमा देवी। कड़वा सत्य आपको बर्दाश्त नहीं हो रहा है यह मैं देखता हूँ। लेकिन, मैं उसे न कहूँ तो अपने कर्तव्य की अवहेलना करूँगा। आपके हित के लिये—"

"प्रत्येक मनुष्य अपना अपना हित तो समझता ही है विनय बाबू! लोगों को व्यर्थ ही दूसरों का बोझ उठा कर अपनी ज़िम्मेदारियों को बढ़ा लेने की ज़रूरत नहीं है।"—पूर्णिमा ने क्रोधावेश में कहा। उसके बोलने के तरीके से ऐसा लग रहा था कि उसके मर्म को कहीं गहरी ठेस लगी है और वह उसे बर्दाश्त नहीं कर सकती है।

विनय कुमार भी पूर्णिमा के इस तीव्र एवं कठोर व्यंग से छटपटा उठा। उसने अपने आपको बड़ा अपमानित अनुभव किया। उसके क्रोध की मात्रा इस कारण से और भी बढ़ी कि पूर्णिमा आज विलास पर किये आक्रमण को सहन नहीं कर सकी है। उलटे उन आक्रमणों से उसे बचाने के लिये वह विनय जैसे मित्र की वक्र-दृष्टि की भी परवाह नहीं करती। इसका साफ़ साफ़ अर्थ समझने में अब क्या बाकी रहा?

"ठीक है, आप अगर अपना हित समझती हैं तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है? भगवान आपका भला करे। मेरी ही गलती हुई जो मैंने नाहक आपके मामले में दस्तंदाजी की। लेकिन आप याद रक्खें कि आज आपने अपने एक सच्चे हितैषी का दिल दुखाया है — उसको ग़लत समझा है। शीघ्र ही आपको इसका पश्चाताप होगा। आज आपको भला-बुरा नहीं सूझ रहा है। किन्तु ऐसा कई बार होता है कि पहिले जो सुखकारक दिखता है वही अन्त में परम दुख का कारण बन जाता है और जो पहिले अप्रिय मालूम पड़ता है, वही अन्त में पथ्यकर साबित होता है। आप मेरे शब्दों को याद रक्खें—एक दिन आयगा कि आपको सत्य और असत्य का ज्ञान होगा, प्रेम और मोह का भेद मालूम होगा, और उस दिन आप मुझे स्मरण किये बग़ैर नहीं रहेंगी। उस दिन भी आप पायेंगी कि इस विनय कुमार के हृदय में आपके प्रति वही भाव हैं जो मेरी उत्कट से उत्कट घड़ियों में जागृत हुए हैं। अब मेरा यहाँ कोई काम नहीं है—मैं चलता हूँ। ईश्वर आपको उचित मार्ग दिखलावे! —नमस्कार!"

पूर्णिमा स्तंभित-सी रह गई। विनय कुमार के संताप को वह समझ सकी। उसने विनय का किंचित् अपमान किया ऐसा भी उसे लगा। देखते-देखते बात इतनी बढ़ गई और उस पर वह काबू भी न पा सकी, यह ठीक नहीं हुआ। क्षण भर के लिये उसे लगा कि वह बिगड़ी बात को बनाने की कोशिश करे—

लेकिन विनय कुमार जाने को उठ खड़ा हुआ। आँखें, क्रोध और अपमान से लाल हो गई थीं जैसे एक संतप्त सर्प फूत्कार मार रहा हो। इसके पहिले की पूर्णिमा उसे रोके, रुकने के लिये कहे, विनय कुमार ने अपना कदम बढ़ाया। इस बात की परवाह तक न की कि पूर्णिमा क्या कहेगी, क्या सोचेगी? विनय कुमार का पूरा आविर्भाव ऐसा था कि पूर्णिमा उसे रोकने की हिम्मत न कर

पाई। हज़ार इच्छा रहने पर भी उसने अपने आपको एक विचित्र बेबसी की अवस्था में पाया।

विनय कुमार अपनी लंबी लंबी टाँगे रखता हुआ हॉल में से बाहर जाने लगा। पूर्णिमा ने न जाने कितनी बार सोचा कि वह उसे अब रोके, अब रोके। लेकिन ऐसा करने के लिये वह आवश्यक बल नहीं समेट सकी।

विनय कुमार भी ऐसा पुरुष नहीं था जो किसी नारी के दरवाज़े पर अपमान सहन करने के बाद, एक क्षण के लिये भी रुके। इसी लिये वह तो चलता ही चला गया—लौटा नहीं।

पूर्णिमा उसकी आकृति की तरफ पीछे से स्तंभित-सी देखती रही। और जब वह उसकी आँखों से ओझल हो गया तब उसने अपने हृदय में एक भयानक सूनापन अनुभव किया। उसका दिमाग़ चक्कर खाने लगा और वह अपने आपको न सम्हाल सकी। किसी तरह वह अपने शयनागर में पहुँची। दरवाज़े को अन्दर से लगाकर धड़ाम से अपने विस्तर पर जा पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी।

बैरा जब चाय लेकर हॉल में आया तो देखा कि दोनों पीनेवाले वहाँ नहीं हैं। बोला 'अजीब बात है!"

सत्रहवाँ परिच्छेद

रुग्ण शय्या

विनय कुमार घर लौटा तो देखा कि उसका शरीर काँप रहा है और आँखें जल रही हैं। आइने में देखा तो आँखे सुर्ख़ मालूम पड़ीं। बदन में गरमी भी। ऐसा लगा कि बुखार हो आया है। वह कंबल ओढ़कर सो गया।

आज उसका हृदय असीम विषण्णता से भर गआ। ऐसा लगा कि उसके ढाढ़स का बाँध भी आज टूट गया है। आज तक अपने एकाकी जीवन के दौरान में उसने कम तकलीफें, अपमान या आघात नहीं बर्दाश्त किये थे। एक मजबूत चट्टान की तरह, वह उन उग्र तूफ़ानों की भयंकर आवेगों का सामना करता रहा था। विपत्तियाँ आईं और चली गईं; अग्नि परिक्षाएँ भी हुईं और खतम हो गईं; ववंडर आए और शांत हो गये। लेकिन वह वैसा का वैसा ही खड़ा था-अविचल, अपराजित और अडिग।

किन्तु आज का यह प्रहार, उसे लगा कि, उसकी सहनशक्ति से परे था। दिमाग़ और दिल में एक भयंकर तूफ़ान उठा हुआ था जिसके सामने वह अपने आपको कमज़ोर पा रहा था। आँखों से गरम पानी बहने लगा, गहरी और तप्त निःश्वासें निकलने लगीं। शायद, बुखार का ज़ोर बढ़ गया या विचार चक्र की तीव्रता भयंकर हुई—उसका होश उड़ने लगा और उसे मूर्छा-सी आ गई। रात भर वह इसी तरह पड़ा रहा।

सुबह नित्यानुसार सुशील आया। विनय का कमरा बंद देखकर ही उसका दिल धक् हो गया। यह अनहोनी बात थी। अन्दर गया तो कमरे का अजीब हाल देखा। एक चप्पल पलंग के नीचे तो दूसरी दरवाज़े के पासः पानी का बर्तन खुला पड़ा है, दूध का लोटा ढुल चुका है और बिल्ली दूध पी गई है — और सब कमरा अस्तव्यस्त-सा है। सुशील ने देखा कि विनय कम्बल के ऊपर रजाई ओढ़े, दीवाल की तरफ मुँह किये पड़ा हुआ है।

"हैं, विनय? — क्या हो गया तुम्हें? बुखार है?" उसने विस्तर पर बैठते हुए तथा विनय की ढकी हुई पीठ पर स्नेह से हाथ रखते हुए कहा!

विनय केवल 'हूँ' कहकर वैसा का वैसा ही पड़ा रहा। न हिला न डुला।

सुशील ने कम्बल के नीचे अपना हाथ डालकर विनय का हाथ छुआ। छूते ही बोल उठा—

"अरे, इतना ज़्यादा बुखार चढ़ आया तुम्हें। बदन तो तवे जैसा गरम है। तुमने इत्तला तक नहीं दी?" उसने विनय के गाल पर और कपाल पर हाथ फेरा। अन्दाज़ हुआ कि इस वक्त भी बुखार का दौर ज़्यादा है। सुशील का ममतापूर्ण हाथ गाल पर पड़ते ही विनय ने मुँह फेर कर कृतज्ञता से उसकी ओर देखा। उसकी फूली हुई लाल लाल आँखें और तमतमाया हुआ चेहरा देख कर सुशील को बड़ी व्यथा हुई। उसने सोचा रात भर में विनय में कितना भयंकर परिवर्तन हो गया! क्या क्या न बर्दाश्त किया होगा उसने?

सुशील दौड़कर घर से थर्मामीटर ले आया। बुखार देखा तो उस वक्त भी १०३.५ था। एक

नौकर को वहाँ रखकर सीधा डॉक्टर को बुलाने चला गया।

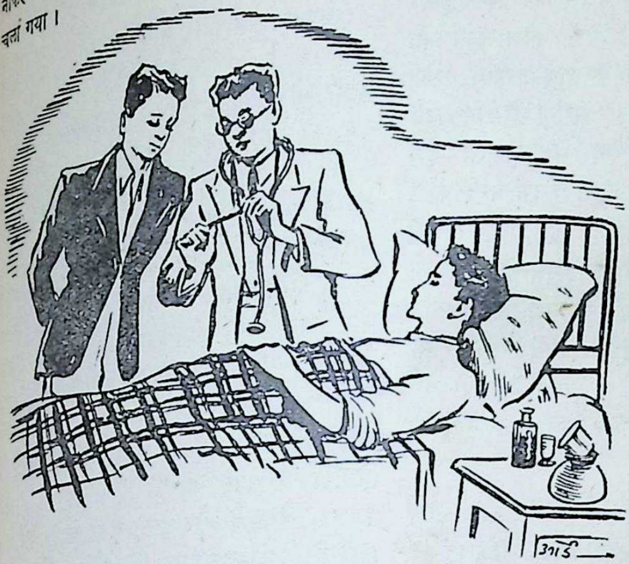

नगर के सबसे मशहूर डॉक्टर मनोहर आये। स्टेथस्कोप से उसके फेफड़े, हार्ट आदि की जाँच की। नाड़ी देखी। कहा, मलेरिया मालूम पड़ता है, घबड़ाने की कोई बात नहीं, शाम तक उतर जायगा।

जब डॉक्टर साहब चलने लगे, सुशील ने उनके सामने पाँच रुपये का नोट रखकर एक कोरा लिफ़ाफा बढ़ा दिया। उसे प्रसन्नता से लेते हुए वे हँसकर फिर बोले—"मामूली मलेरिया है। आता है तब ज़ोरसे ही आता है। लंग्ज़ और हार्ट बिल्कुल ठीक हैं। मैं अच्छी दवा भेज दूंगा। आदमी फ़ौरन भेज दीजिए। लेकिन मरीज़ को हल्का खाना ज़रूर खिलाइए। उससे 'रेज़िस्टेंस पॉवर बनी रहेगी।'"

डॉक्टर साहब के आश्वासन के बाद सुशील को तसल्ली हुई। वह जी जान से विनय की परिचर्या करने में जुट पड़ा। विनय को साबूदाना दूध आदि घर से लाकर ज़बरदस्ती खिलाया। हालाँकि विनय की बिलकुल इच्छा नहीं थी। लेकिन डॉक्टर जो कह गये थे।

लेकिन शाम को भी बुखार उतरने के लक्षण नहीं दिखे। दिन भर में कम से कम बुखार रहा तो १०१ डिगरी। दोपहर को वह फिर चढ़ने लगा और शाम को फिर अपने सुबह के मुकाम पर पहुँच गया—१०३·५°। सुशील ने दवाइयाँ वक्त पर दीं, खाना भी खिलाया लेकिन कुछ न हुआ।

डॉक्टर को जाकर रिपोर्ट दी तो उन्होंने कहा कि सुबह ज़रूर उतर आवेगा। दवाई चालू रक्खो और हाँ, जो कहा वह खिलाने में कसर न करना क्योंकि 'रेज़िस्टेंस पॉवर' बनी रहनी चाहिये। और यदि सुबह न उतरा तो मुझे ज़रूर इत्तला देना, मैं फिर देख जाऊँगा।

लेकिन दूसरे दिन सुबह भी विनय का बुखार नॉर्मल नहीं आया। डॉक्टर ने आकर पूछा कि बदन में दर्द है, पसलियाँ दर्द करती हैं, सर्दी है, खांसी है?—ये सब नदारद। तब मलेरिया ही होना चाहिये। कभी ऐसा आता है कि तीन चार दिन तक नहीं उतरता। क्विनाइन मिक्श्चर जारी रक्खो और हलका खाना देने में कसर मत करो। रोगी की 'प्रतिकार-शक्ति' बनी रहनी चाहिये, यह मेडिकल साइंस का पहला सिद्धांत है।

इसी प्रकार इलाज होता रहा और पाँचवें दिन सुबह भी बुखार नहीं उतरा तो सुशील को चिन्ता होने लगी। सुशील के पिता ने सलाह दी कि एकाध और डॉक्टर की सलाह ले ली जाय। बुखार का इस तरह लगातार बना रहना ठीक नहीं है।

उस दिन सुबह सुशील जब विनय के कपड़े बदल रहा था तब उसने उसकी छाती पर हलके सफ़ेद खसखस सरीखे दाने देखे। देखते ही रोग की असलियत का उसे ज्ञान हुआ, और उसका चेहरा उतर गया। सुशील के पिता ने कहा, ये लक्षण ठीक नहीं है, फ़ौरन जाकर डॉक्टर मनोहर को इत्तला दो और उन्हीं की सलाह से किसी और डॉक्टर को बुला लाओ। अब लापरवाही नहीं होनी चाहिये।

डॉक्टर मनोहर साथ ही किंग एडवर्ड हॉस्पिटल के प्रख्यात फिजिशियन और पॅथालाजिस्ट डॉक्टर बेंकर को ले आये। दोनों ने मिलकर विनयकुमार के शरीर की एकाग्रतापूर्वक जाँच की। खून भी लिया। पूरी परीक्षा करने के बाद उन्होंने गंभीर चेहरे बना कर घोषणा की कि मरीज़ को टायफॉइड हो गया है। सावधानी लेने की ज़रूरत है। हिदायतें दी गईं कि खाना-पीना फौरन वन्द करो, रोगी को पूरा आराम मिलना चाहिये, तनिक भी परिश्रम नहीं पड़ना चाहिये। मुसम्मी, नींबू का रस, दूध और ग्लूकोज़ और उबला हुआ पानी यही वह पी सकता है। इसमें तनिक भी असावधानी हुई तो रोगी की हालत में 'कॉम्प्ली-केशन्स' हो जावेंगे और फिर काबू पाना मुश्किल होगा।

सुशील की चिन्ता की कोई सीमा नहीं थी। साधारण हालत में विनय को किसी भी तरह की बीमारी होती तो वह उसे उसमें से बचा लेता ऐसा उसे आत्मविश्वास था। लेकिन इस समय तो विनय के हृदय को ऐसा जबर्दस्त आघात लगा था जो मनुष्य को जीवन में एकाध बार ही लगता है। दिल के ऐसे गहरे दर्द के साथ ही साथ जब टायफॉइड सरीखे कठिन रोग का दौरा हो तो फिक्र की बात थी ही। सुशील मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करता रहा कि वह उसे कठिन संकट से बचावे। अपने सारे उद्योग और व्यवहार भूल कर वह जी-जान से एकाग्र चित्त हो, विनय की शुश्रूषा करने लगा, जैसे उसके जीवन का वही एकमात्र ध्येय बच रहा हो। इतनी अदभुत सेवा-भक्ति और मित्रप्रेम तो दुनिया में कम ही देखने में आता है।

विनयकुमार की बीमारी की चर्चा कॉलेज में फैल गई। उसकी लगातार गैरहाज़िरी लोगों के नज़रों में खेलने लगी। प्रोफेसरों ने सुशील से विनयकुमार का हाल पूछा। प्रोफेसरों ने प्रिंसिपल साहब से उनका जिक्र किया और वे धीरे धीरे एक एक कर के विनय को उसके कमरे में देख आये। सब को उससे सच्ची सहानुभूति थी। प्रिंसिपल नियोगी साहब ने इलाज के बारे में पूछा तो कहा ठीक है। डॉक्टर मनोहर और बेंकर बड़े काबिल फिजीशियन हैं, उनके हाथ में 'केस' बिलकुल 'सेफ' है।

संस्कृत के प्रोफेसर शास्त्रीजी आये तो उन्होंने कहा कि इस प्रकार के ज्वरों में आयुर्वेद में बहुत सुन्दर औषधियाँ हैं इसलिये किसी अनुभवी भिषग-रत्न को बुला लिया जाय तो ठीक हो। उर्दू-फ़ारसी के प्रोफेसर मुहम्मद शफी साहबने सलाह दी कि यूनानी हिक्मत में तो मियादि बुखार की शर्तिया दवा है और हकीम सदाकतअली साहब को तो इसमें कमाल हासिल है। अंग्रेज़ी के प्रोफेसर घोष बाबू आये तो कहा कि टायफॉइड ही क्या किसी भी बीमारी में, ॲलोपॅथी के चक्कर में पड़ना यानी वक्त और रुपिया बर्बाद करना है, और नाहक तकलीफ बढ़ाकर ख़तरा मोल लेना है। होमियोपॅथी सबसे अच्छी है। वह तो 'नेचर क्युअर' जैसी है और उससे ज़रुर आराम होगा। कहो तो मैं डॉक्टर दास को फौरन बुला सकता हूँ। ख़ास जर्मनी हो आये हैं और दस साल ॲलोपॅथी की प्रैक्टिस करने बाद उनका विश्वास होमियोपॅथी में जमा है। उनसे बढ़कर डॉक्टर तो कोई मिलही नहीं सकता। इस प्रकार सब लोक आये और सहानुभूति और सलाह देकर चले गये।

पूर्णिमा को सात आठ दिन के बाद मालूम पड़ा कि विनय कुमार टायफॉइड से बीमार है। वह सन्न रह गई। उसके मन में पहला विचार यह उठा कि उसकी बीमारी की ज़िम्मेदारी से वह अपने आपको मुक्त नहीं कर सकती। उसे उस दिन शाम का विनय कुमार का क्रोधान्वित भन्नाया हुआ चेहरा याद आया जब वह अपमानित होकर तपाक् से उसके यहाँ से चला गया था। उस घटना ने उसे कम दुखी और बेचैन नहीं किया था। कई बार उसे लगा कि वह विनय कुमार से कहीं मिले और उससे क्षमायाचना करे, तथा उससे पुनः मित्रता की प्रार्थना करे। अब उसे लगने लगा था कि शायद विनय कुमार के दिशा दर्शन और मित्र भाव के बिना उसका जीवन कठिन हो जायगा। कम से कम इतना तो उसे साफ़ साफ़ अनुभव हो रहा था कि विनय कुमार जैसे उज्ज्वल चरित्र [illegible] पुरुष [illegible] और अवहेलना के

१९५०

बने रहते हुए वह सुखी नहीं हो सकेगी क्योंकि यह जानकारी हमेशा उसके हृदय में शूल की तरह चुभती रहेगी। लेकिन उस दिन से उसे विनय कुमार दिखा ही नहीं। कॉलेज में उसकी आँखें उसे खोजती रहीं, लायब्रेरी में भी वह गई। लेकिन उसे पता नहीं लगा। बाद में दफ्तर के हेड क्लर्क से उसे मालूम हुआ कि विनय लगभग एक हफ्ते से टायफॉइड से बीमार है क्योंकि दफ्तर में उसकी छुट्टी की दरख़्वास्त आकर पड़ी है।

जब से पूर्णिमा ने यह सुना तब से उसका चित्त अस्थिर हो गया। इतना अधिक आघात लगा विनय बाबू को! उनके दिल में क्या बीतती होगी इसकी कल्पना करते ही उसका हृदय रो उठा। उसे लगा कि वह उनके सामने घोर अपराधी है। इस कल्पना से उसके दिल में परिताप की ज्वाला जलने लगी।

सारे मान-अपमान को भूलकर, वह शामको कॉलेज से लौटने के बाद साइकिल उठाकर सीधी विनय कुमार के निवास स्थानपर गई। साथ में अपने बगीचे के सुन्दर फूलों का एक गुच्छा बना कर ले गई।

विनय कुमार ने जब दरवाज़े पर उसे देखा तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। सुशील भी पूर्णिमा को वहाँ देखकर दंग रह गया। उन दोनों ने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि पूर्णिमा विनय की हालत जानने के लिये भी कभी आवेगी। सब मित्रगण देखकर चले गये, वीणा बैनर्जी, निर्मला मेहता और कुछ दूसरी कॉलेज की लड़कियाँ भी एक दिन इकट्ठी आकर देख गईं। लेकिन पूर्णिमा उस घटना के बाद कभी आवेगी ऐसा अनुमान सुशीलने तो क्या विनयने भी नहीं किया था। हाँ, वैसे पूर्णिमा के सान्निध्य की उसने कई बार कल्पना की, लेकिन उसकी तरफ से उसने कुछ भी अपेक्षाएँ नहीं रखीं थीं जैसे उसने दिल कड़ा करके उसका दरवाज़ा पूर्णिमा के लिये बन्द ही कर दिया हो। इस बन्द करने में उसे कम दर्द नहीं हुआ था। और यह दरवाज़ा भी ऐसा अजीब होता है जो बन्द करने से बन्द नहीं होता और न खुलने की इच्छा रखने से खुलता ही है।

किन्तु पूर्णिमा भी एक विचित्र सी लड़की थी, जो मजबूती से बन्द किए गये इस दरवाज़े को भी आकर खटखटाने लगी और जिसके सामने उस दरवाज़े को भी खुलना पड़ा। उसने आठ दिन के तीव्र ज्वर से सूखे हुए विनय कुमार के शरीर को देखा। उसके चेहरे पर काफी दाढ़ी बढ़ चुकी थी, आँखें धँस गई थीं, गाल पिचके से मालूम पड़ते थे। बीमारी के कष्ट से हो या उसके हृदय की अन्तर्व्यथा से उसकी आँखों में एक गहरी विषण्णता छा गई थी, जो देखनेवाले के हृदय को गहराई तक छू लेती थी। पूर्णिमाने उसकी आँखों से आँख मिलाकर देखा—वह करुण-दृश्य वह सहन न कर सकी और उसकी आँखों में झटसे आँसू आ गये, विनय की आँखे भी भर आईं और अपने मन की कमज़ोरी छिपाने के लिये वह स्थिर दृष्टि से छत की तरफ देखने लगा।

आते ही पूर्णिमाने फूलों का गुच्छा विनय के हाथ में दे दिया। वह उन सुन्दर फूलों का तथा उनके पीछे की मधुर भावनाओंका सुख उपभोग करने लगा। पूर्णिमाने फिर सुशील को कमरे के बाहर बुलाकर उससे विनय की बीमारीका रत्ती रत्ती हाल पूछा—डॉक्टर कौन है, दवा क्या है, दवा का वक्त क्या है, खाने-पीने का क्या इन्तज़ाम है, डॉक्टर की क्या हिदायतें हैं, शुश्रूषा के लिये कौन कौन, कब कब आता है आदि। इतनी पूछ-ताछ करने बाद वह आकर विनय कुमार के बिस्तर पर बैठ गई और सुशील कुमार यह कहकर कि डॉक्टर के यहाँ जाना है, वहाँ से चला गया।

पूर्णिमा ने गाढ़ स्नेह भरी दृष्टि से विनय की तरफ देखा और विनय ने भी उसकी तरफ इस भेदक नज़र से देखा जैसे वह इस पहेलीमयी युवती के हृदय की थाह लेना चाहता है। दोनों चुप रहे। कुछ क्षण स्तब्ध बैठकर, पूर्णिमा एकदम विद्युत की तरह उठ खड़ी हुई और उसने विनयकुमार के कमरे का संपूर्ण निरीक्षण किया। किताबें यहाँ-वहाँ पड़ी थीं, उन्हें ठीक से जमाया, आलमारियों को भी सजाया, दीवाल की तस्वीरों की धूल साफ़ की।

उन तस्वीरों में एक हज़रत ईसा के सूली पर टंगने का दृश्य था जब वे आसमान की तरफ देखकर कह रहे थे—हे प्रभो! उन्हें क्षमा कर,

क्योंकि वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। दूसरा चित्र भगवान बुद्ध के 'महाभिनिष्क्रमण' का था, जब वे यौवन-प्रमत्ता यशोधरा, राजकुमार, वैभव-प्रासाद, राज-सिंहासन आदि त्यागकर तारुण्य में ही वनवास करने निकले थे। तीसरा-स्वामी विवेकानन्द का तेजस्वी चित्र था! एक सुन्दर जल प्रपात का चित्र था। एक फूलों और फलों के गुच्छ का था। पूर्णिमा प्रत्येक चित्र को निकट से निहारती रही और उनके मालिक की कला-प्रियता का मन ही मन कौतुक करती रही। फिर उसने मेज पर का टेवल क्लाथ वदल डाला। उस पर एक फूलदान धोकर, ताजे पानी से भरकर, उसमें अपने साथ लाया हुआ फूलों का गुच्छा रख दिया और उस छोटी-सी मेज को ऐसे स्थान पर रक्खा जहाँ विनयकुमार की नज़र आसानी से पड़ सके। एक सन्दूक में उसे धोबी के यहाँ के धुले और भी कपड़े दिखाई दिये। उसने विनयकुमार के पलंग की चादरें वदलीं, गिलाफ वदला, उसे पहनने के लिये एक साफ़ शर्ट और पैजामा दिया और कपड़े वदलने में मदद की। पूर्णिमा यह सब विना एक शब्द भी ज़बान से निकाले करती गई और विनयकुमार भी चुपचाप जो वह कराती रही वह करता गया। उसकी आँखों का प्रश्नचिन्ह अब चला गया, और उनमें अब कृतज्ञता के भाव उतर आये। वह मन ही मन अपने अनपेक्षित सौभाग्य पर हर्षित होकर एक निगूढ़ आनन्द का सुख अनुभव कर रहा था। उसे लग रहा था कि जैसे वह कोई रमणीय स्वप्न देख रहा हो।

फिर दवा देने का वक्त आया तो पूर्णिमा ने उसे एक खुराक पिला दी। वाद में उसका कड़वा स्वाद दूर करने के लिये मुसम्वी का रस निकाल कर पिला दिया। और टॉवेल से हलके हाथों से उसका मुँह पोछ दिया। पूर्णिमा ने काम का जितना प्रोग्राम वनाया था वह अब ख़तम हो गया और वह विनयकुमार के पलंग के पास ही एक कुर्सी लेकर वैठ गई। यह सब काम करने में उसे तनिक भी संकोच या हिचक नहीं हुई और जब वह अपने काम में मशगूल थी तब उसकी तन्मयता देख कर तो यही लगता था कि उसे दुनियाँ का संपूर्ण विस्मरण हो गया हो। और वह कुर्सी पर वैठ कर गुनगुनाने लगी और जब उसने देखा कि इससे विनय की दृष्टि में आनन्द और उत्कण्ठा का प्रादुर्भाव हुआ है तो वह फिर धीमी आवाज़ में एक गीत गाने लगी जिसका अर्थ यह था—

'मनुष्य के जीवन में मुसीवतें आती हैं और दुख और निराशा का घनघोर अन्धकार उसे चारों ओर से घेर लेता है।'

'हृदय फटता-सा जान पड़ता है और मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है, वेदना का वोझ सम्हाले नहीं सम्हलता है—ऐसा लगता है कि यही प्रलय काल है, अव जीवन के सव सुख-स्वप्न छिन्न-भिन्न हो गये हैं और महा प्रयाण उसकी फलश्रुति है, जो अपना कदम वढ़ाये चला आ रहा है'—

'लेकिन दूर से क्षितिज के पास उस गहन अंधकार में भी एक ज्योति की रेखा दिखाई पड़ती है, जो ढाढ़स वंधाती है, आशा देती है और मानव की निर्भत्सना करती हुई, कहती सी सुनाई देती है'

"रे अशक्त मानव! रात्रि चिरस्थायी नहीं है। उस प्रगाढ़ निशीथ का अन्त भी होना ही है। इसे कोई मेट नहीं सकता।

उत्तिष्ठ! जागृत! प्राप्य वरान्निबोधत!'

विनयकुमार आँखें मूंदकर एकाग्रता से उस प्रेरणा-गीत को सुनता रहा। उसे वड़ा सुख हुआ। इस समय उसे आत्मविश्वास हो गया कि रोग पर उसको कावू मिल रहा है और वह सफलतापूर्वक उससे मुकावला कर सकेगा।

इसी क्षण सुशील दवा की वोतल लेकर अन्दर आया। उन दोनों को इस स्थिति में देखकर उसे समाधान हुआ क्योंकि वह जानता था कि इसका विनय के स्वास्थ्य पर सुन्दर परिणाम होगा।

पूर्णिमा उठ खड़ी हुई। आकर उसे तीन घण्टे हो चुके थे। कहा—"अव देर हो रही है, जाती हूँ। कल फिर आऊँगी। नमस्कार!" और वह चली गई। सुशील के धन्यवाद स्वीकार करने की भी उसे जैसे फुर्सत नहीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल नौ वजे के करीव एक मोटर विनयकुमार के कमरे के सामने ठहरी और उसमें से वैरिस्टर पाण्डित और पूर्णिमा उतरे। विनय और सुशील को बड़ा आश्चर्य हुआ। साथ में एक नौकर था जिसके मुसम्मी और अंगूरों से

१९५०

भरा एक पिटारा उतारा और विनय के कमरे में लाकर रख दिया। पूर्णिमा अपने हाथ में फिर एक फूलों का गुच्छा लिये हुए थी जो उसने अपने बापू के सामने ही विनय के हाथों में दे दिया। बैरिस्टर पण्डित का विनय से यह पहला ही परिचय था। न जाने रात भर उनसे क्या क्या कह कर पूर्णिमा उन्हें अपने साथ खींच लाई थी। इस तरह की कई बातों में वैरिस्टर पण्डित पूर्णिमा के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया करते थे। उन्होंने बड़ी आत्मीयता के साथ विनय कुमार के बारे में पूछताछ की। विनय कुमार ने दो तीन वाक्यों में उनका स्नेह स्वीकार किया और कृतज्ञता व्यक्त की।

उसी दिन शाम को फिर पूर्णिमा विनय के यहाँ आई। इस वार उसके साथ उस्ताद वहारदुख़ाँ थे। विनय कुमार की तबियत का हाल सुनकर उनके दिल को सदमा पहुँचा और वे भागे-भागे विनय को देखने आये। उनके दिल में तो इस नौजवान ने पहिले ही अपने लिये घर बना लिया था। दूसरे रोज वे अपने साथ एक अच्छे नामी-गिरामी हकीम को ले आये महज़ इसलिये कि वह रोगी की नब्ज़ देखकर कम से कम इसका अन्दाज़ तो कर ले कि बीमारी काबू के बाहर नहीं है। मोतिझिरा के रोग में तो किसी तरह की गड़बड़ होने देना ख़तरनाक है।

इस प्रकार विनय कुमार की शाही बीमारी अपनी मंथरगति से चली जा रही थी। सबके दिलों में उसके लिये हमदर्दी का समुद्र उमड़ पड़ा, जिसका असर रोगी के दिल पर अच्छा पड़ा। संकट काल में मित्रों और हितैषियों की सहानुभूति बड़ी हिम्मत देती है। पूर्णिमा रोज़ आती थी और कम से कम दो घण्टे विनय की तन्मयतापूर्वक शुश्रूषा कर जाती। कभी फूल, कभी फल, कभी कोई सुन्दर फोटो या चित्र वह अपने साथ ले आती ताकि विनय का मन बहले। विनय की परिचर्या में वह इतनी दत्तचित्त थी जैसे वह किसी साधना में लीन हो। उसका टेनिस, सिनेमा, सब छूट गया। विलास बाबू विगड़े, झल्लाये। कई बार कहा कि इस तरह किसी भावना में वह जाना ठीक नहीं है और उसका घण्टों विनय के यहाँ इस तरह बैठना लोकापवाद की दृष्टि से भी उचित नहीं मालूम देता। लेकिन इस बार तो इन सब बातों का उस पर कोई असर नहीं पड़ा। वह तो अत्यन्त तन्मयतापूर्वक अपना शुश्रूषा का कार्य चुपचाप करती चली जा रही थी।

विनय यह सब स्थित्यंतर ध्यान से देख रहा था। विचित्र मालूम पड़ती है यह रमणी! उसने जाने या अनजाने विनय का अपमान कर के उसे घर से निकाल दिया था। आज उसी विनय की परिचर्या में वह अपनी भूख प्यास और जीवन का आमोद-प्रमोद बिलकुल ही भूल गई है। उसने अपना विवाह तय कर लिया है और यह ख़्याल ग़लत न होगा कि उसका भावी पति विलास यह सब बर्दाश्त नहीं करता होगा। लेकिन जान पड़ता है इसकी उसे कोई परवाह नहीं है। और उसके इस कार्य में उसने अपने पिता और उस्ताद वहादुरख़ाँ की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली है। किस निर्भयता और दृढ़ता के साथ वह साधारण शिष्टाचारों की जंज़ीरों को तड़ातड़ तोड़ती चली जा रही है। आश्चर्य की बात है। उसका इस प्रकार आना अच्छा दीखता है या बुरा यह प्रश्न जैसे उसके मन में कभी उठा ही नहीं। जो व्यवहार एक साधारण रमणी हज़ार बार कोशिश करने पर भी नहीं कर पाती वह, पूर्णिमा सरे आम करती है, खुल कर करती है। कोई कुछ भी कहे इससे उसे सरोकार ही क्या? अजीब लड़की है।

पूर्णिमा सचमुच एक गूढ़ पहेली है। नारी तो हमेशा पुरुष के लिये एक पहेली ही रही है, लेकिन पूर्णिमा उन सबसे भी बढ़कर उलझी हुई पहेली जान पड़ती है। उसकी यह आत्मीयता किस बात का द्योतक है-विनय के प्रति स्नेह की, ममत्व की, या प्रणय की? या यह भी उसके द्वैत-जीवन की एक झांकी है? यह भी उसकी एक लहर है? और यदि वह लहर मात्र ही है, और कुछ भावना उसमें नहीं है तो फिर वह क्यों उस दग्ध-हृदय युवक की भावनाओं की तंत्री जगाने आई है जिसका परिणाम एक ही है—गाढ़ वेदना, असीम विषाद! यह तो जिला जिलाकर मारने जैसा ही निर्मम कार्य है। जो दरवाज़ा उसने इतना कड़ा दिल करके खून के आँसुओं का घूँट पी कर, बन्द कर दिया था उसे फिर क्यों वह खटखटाने आई?

क्यों ? क्यों ऽ ऽ ! इस प्रश्न का उत्तर उसे ढूंढे नहीं मिलता था।

यूं उसका दिमाग पूर्णिमा के इस व्यवहार का विश्लेषण नहीं कर सका हो सो बात नहीं है। उसके द्वि-व्यक्तित्व के बारे में उसे पूरा पूरा ज्ञान है और वह यह समझता है कि यदि पूर्णिमा मध्यरात्रि के प्रशान्त समय में विलास के साथ मोटर में पहाड़ी की सैर कर सकती है तो उसकी बीमारी में वह दौड़ कर अत्यन्त एकाग्रभाव से उसकी परिचर्या करने भी आ सकती है। ये दोनों बातें उस रमणी में संभव है, बुद्धिगम्य है। पर वह भावुक युवक इन बातों का अर्थ करे तो क्या करे? इनमें कौनसी बात सच है? विलास के साथ उसका प्रेम-भाव और उसके कारण उस दिन उसका अपमान, या फिर आज की यह निरपेक्ष सेवा? इन परस्पर-विरोधी भावनाओं का वह क्या मतलब लगावे?

किन्तु आज विनय इन सवालों की तह में जाना ही नहीं चाहता और न उनका अन्तिम उत्तर ही जानना चाहता है। आज उसके हृदय में यह ताक़त भी नहीं है कि वह इतनी गहराई तक गोता लगावे। इस समय तो उसके लिये इतना ही काफ़ी है कि उस अप्रिय संध्या में उसने जो आत्यंतिक प्रताड़ना सही, वह आज धुल गई है। मानों उसे उसका प्रतिशोध मिल चुका है। आज उसके लिये यह भी परम समाधान की बात है कि पूर्णिमा ने उसके प्रति पुनः आत्मीयता का मृदुल भाव व्यक्त किया है, और उसकी रुग्णावस्था के पहाड़ से दिनों में उसे बहुत सेहत और सुख पहुँचाया है। इसके लिये वह उसका उपकृत है, अतीव कृतज्ञ है।

इससे अधिक वह कुछ नहीं अनुभव करना चाहता। मीठे सपने उसकी कल्पना के सामने नाचते न हों ऐसी बात नहीं। लेकिन वह उन्हें देखना ही नहीं चाहता क्योंकि उनके टूटने की निराशा का आघात फिर से बर्दाश्त करना उसके लिये कठिन होगा।

एकबार अंगार में उसका हाथ जल चुका है। फिर से वही प्रयोग वह नहीं करना चाहता। इसलिये और सब कुछ भाव उसके हृदय में हों, लेकिन एक बात के बारे में आज विनय वज्र की तरह दृढ़ है कि वह अब कभी भी अपने आप पूर्णिमा के दरवाज़े पर जाकर कोई माँग नहीं करेगा। उसका ममत्व अब सम्पूर्णतया निर्लेप, निरपेक्ष और अनासक्त बन गया है। इस मनोदशा में न आशा के लिये ईप्सा है न निराशा की संभावना। यही स्थितप्रज्ञता की वृत्ति उसके लिये अभीष्ट है।

लगभग दस ग्यारह दिन की चिन्ताजनक स्थिति के बाद थर्मामीटर के पारे ने अपनी अधिकतम ऊँचाई से धीरे धीरे उतरना शुरू किया और इक्कीस दिन के बाद वह नॉर्मल पर आया। सुशील के परिवार की सेवाएँ, पूर्णिमा की परिचर्या, डॉक्टरों के परिश्रम, और विशेषतः सुशील के कई रातों के जागरण को यश मिला। सुशील और पूर्णिमा के आनन्द का पारावार न रहा। वे अपने सारे श्रम इसी खुशी में भूल गये। विनयकुमार ने कई बार स्वतः को धन्य माना कि उसे ऐसे मित्रों की प्राप्ति हुई। उनके उपकार का ऋण वह कब अदा कर सकेगा?

कृतज्ञता के भावों से उसका हृदय कई बार भर आया और आँखें भी। घनघोर तमोमय रात्रि का अन्त हुआ और मंगल-प्रभात का उदय हुआ। साधना सफल हुई और दयामय परमेश्वर की कृपा का आलोक समस्त वातावरण में फैल गया। विनयकुमार का शरीर क्षीण हो गया था किन्तु इक्कीस दिन की रुग्णावस्था से उसकी मानों काया-पलट ही हो गयी हो। सारी गन्दगी और अशुद्धि धुलकर निकल गई थी। इस कष्टाग्नि के कारण उसका मन और हृदय भी विशुद्ध एवं निर्मल हो गया था और उसके चेहरे पर इतनी अशक्तता के होते हुए भी समाधान की सात्विक दीप्ति विराजमान थी। उसकी दाढ़ी बढी हुई थी जिसके कारण वह एक तरुण तपस्वी की तरह कांतिमान दीख रहा था। आज उसके शांत एवं गंभीर चेहरे पर परम आध्यात्मिकता के भाव दृष्टिगोचर हो रहे थे।

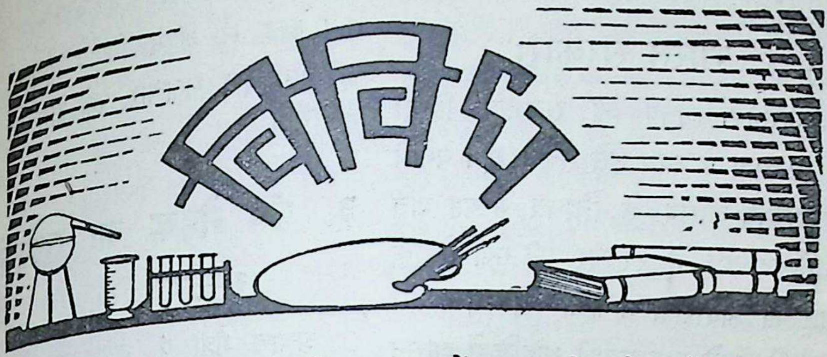

१. अगले आम चुनावों की प्रमाणिकता की दिशा में

अगले साल देश में होने वाले आम चुनावों में प्रामाणिकता बरती जाये—इस उद्देश्य को लेकर भारतीय समाजवादी दल के प्रधान मंत्री श्री जयप्रकाश नारायण ने आगामी १ और २ जुलाई को भारत के समस्त वाम दलों की एक परिषद् आमंत्रित की है। यह याद रखने की बात है कि इन में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ नामक संस्थाओं को निमंत्रित नहीं किया गया है। अन्य जिन संगठनों के प्रतिनिधि इस परिषद के बम्बई-अधिवेशन में निमंत्रित होंगे उनमें समाजवादी दल के अतिरिक्त हिन्दूमहासभा, पीज़ेण्ट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी, मुस्लिमलीग, ऑल इण्डिया शिड्यूल-कास्ट्स फेडरेशन, ऑल इण्डिया डिप्रेस्ड क्लासेस लीग, आदिवासी महासभा के नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ उदारमतवादी श्रमिक और निर्दली नेताओं को भी परिषद् में निमंत्रित किया गया है।

इस परिषद के कारण और लक्ष्य के विषय में बताया गया है कि आज हमारे देश में एकदलीय राज्य है जिसके शासन काल में हम अगले वर्ष सार्वजनिक चुनाव लड़ने जा रहे हैं। अधिकांश वामपक्षियों का मत है जो दल सत्ता में है, वह प्रामाणिक रूप में चुनाव-कार्य का संचालन नहीं करेगा। अतः उल्लिखित विरोधी दलों पर इसका दायित्व आजाता है कि वे स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन के लिये विचार-विमर्ष करें।

गत १९ जून को श्री. जयप्रकाश नारायण जी ने बम्बई की पत्र-परिषद में विषय से सम्बद्ध महत्वपूर्ण प्रश्नों की ओर संकेत करते हुए बताया कि सर्व-साधारण का शिक्षित होना तथा आत्म-निर्णय की भावना का उदय—चुनावों में स्वतंत्रता के लिये महत्वपूर्ण अभिवचन के समान है।

समाजवादी नेता की उपर्युक्त शिकायतों पर विचारार्थ आमंत्रित परिषद के सम्बन्ध में भारत सरकार के मुख्य चुनाव कमिश्नर ने गत् २१ जून को एक पत्र-परिषद में प्रकाश डाला। उठने वाली सारी आपत्तियों पर सन्तोष प्राप्त कर लेने और शंकाओं का समाधान पूर्णतया कर लेने का आश्वासन उन्होंने समाजवादी नेता को दिया है जिस पर स्वयं श्री जयप्रकाश ने सन्तोष और विश्वास प्रकट किया है।

२. भारतीय भाषायें और भारत सरकारः

भारतीय गणतंत्र की राजभाषा हिन्दी की मान्यता के साथ उसे सर्वांग पूर्ण बनाने के केन्द्रीय शासन के निश्चय में यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकार की गयी है कि राष्ट्र की प्रादेशिक भाषाओं को भी समान स्तर में लाने तथा उनकी श्रीवृद्धि में शासन अग्रसर होगा । यह निश्चय हुए अभी एक बरस का समय भी नहीं बीत पाया है कि राष्ट्र भाषा तथा अन्य भाषाओं के समाचार-पत्रों को केन्द्र के इस को निश्चय सन्देह की दृष्टियों देखने के लिये विवश होना पड़ा है । इसके प्रमाण में हमारी भारत-सरकार का वह निश्चय सामने लाया गया है जिसके अनुसार शासन की मान्यता एवं अन्य सुविधायें भारतीय भाषाओं के केवल उन पत्रों को दी जावेंगी जिनका प्रचार न्यूनतम १० हज़ार हो । इस निर्णय से केन्द्र के निश्चय के समान शासन के अधिष्ठाताओं और केन्द्रीय प्रकाशन एवं सूचना विभाग के मंत्री श्री आर. आर. दिवाकर उपर्युक्त आशय के आश्वासन और आदर्श की आलोचना की चीज़ बन गये हैं । क्यों कि इस निर्णय के परिणाम स्वरूप अंग्रेजी भाषा के सम्पन्न समाचार पत्रों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । और भारतीय भाषाओं के पत्रों को, जिन्हें अपने विकास का यह सुकाल प्राप्त हुआ था, अपनी प्रगति में बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। भारत सरकार के इस निर्णय में अ० भा० समाचार पत्र सम्पादक परीषद का अपूर्व प्रभाव कारण माना गया है जिसमें भारतीय भाषाओं के समाचार पत्र सम्पादकों की कोई हस्ती नहीं है । केन्द्र से अपने निर्णय पर पुनर्विचार की माँग इस समाचार पत्रों द्वारा की जा रही है ।

३. पं० नेहरू का सद्भावना-सन्देश :

प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की इस सप्ताह, तारीख २६ जून को समाप्त हुई दक्षिण-पूर्वीय एशियायी राष्ट्रों की यात्रा भारत-के अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों की दृष्टि से उतनी ही महत्वपूर्ण थी जितनी उल्लेखनीय उनकी अमरीका-यात्रा मानी गयी । यों पड़ोसी होने, इन अधिकांश राष्ट्रों की स्वाधीनता में पं. नेहरू का व्यक्तिगत श्रेय होने तथा हमारी और यहाँ के देशों की राष्ट्रीय समस्याएँ लगभग समान होने के नाते यह यात्रा अपना विशिष्ट स्थान भी रखती है । आज हमने तथा इन देशोंने समान रूप से यह अनुभव करने की उत्सुकता दर्शायी है कि इन देशों के पुरातनकालीन सांस्कृतिक सम्बन्ध पुनः दृढ़ हों ।

अपने २२ दिनों के प्रवास काल में पण्डित नेहरू ने हिन्देशिया, मलाया, जावा, बर्मा आदि राष्ट्रों का भ्रमण किया । इस यात्रा के कारणों में जितना यह सत्य है कि वहाँ के शासन और जनता एशिया की इस महान् विभूति को एक बार अपने बीच देखने के लिये लालायित थी, उतना ही सच यह भी है इन नवोदित राष्ट्रों से राजनीतिक सम्पर्क — तीव्रगामी परिवर्तनशील काल में आवश्यक भी था । यद्यपि प्रधानमंत्री पण्डित

नेहरू की यात्रा का, जैसा उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है इस आशय का कोई फौजी संधि करने जैसा उद्देश्य नहीं था; तथापि यह भी मानना होगा कि वे जकार्ता, सिंगापुर, रंगून और अन्य स्थानों की लम्बाई चौड़ाई नापने भर के लिये वहाँ नहीं गये थे।

भारत के समान इन राष्ट्रों की स्थिति न्यूनाधिक रूप में प्रायः एकसी है। साम्राज्यवाद से मुक्त होकर इन्होंने प्रजातंत्रीय जीवन का पृष्ठ इतिहास में प्रारम्भ किया है जिसके समक्ष व्यवस्थाकालीन समस्यायें चतुर्मुखी बिखरी पड़ी हैं । राष्ट्रीय अभावों की पूर्ति, जन जीवन का उच्च स्तर-निर्माण, राष्ट्रीय औद्योगीकरण, उत्पादन वृद्धि राष्ट्रीय स्वावलम्बन आदि सभी अंग सचेष्ट होकर विकासोन्मुख होना चाहते हैं। आर्थिक संकट के इस काल में एशिया के इन राष्ट्रों के समक्ष जो सर्वोपरि प्रश्न है वह है—कम्यूनिज़म की बाढ़ को थाम कर अपने-अपने अनुकूल राष्ट्रवाद को प्रतिफलित करना। यदि पं. नेहरू से इन राष्ट्रों के नेताओं की एतद् विषयक प्रश्नों पर चर्चा हुई हो तो यह कोई असामयिक बात नहीं। क्योंकि आज संसार के राष्ट्र विविध गुट-बन्दियों में रह कर अपनी-अपनी सुरक्षात्मक शक्ति को बढ़ाने के लिये चिन्तित है । तब एशियायी राष्ट्रों का अपना एक संगठन किसी दिन निर्माण हो; यह भी अनिर्वाय है । इस दिशा का प्रयास तब ही सम्भव है जब इन समग्र राष्ट्रों की प्रगति की भूमिका का परस्पर साम्य हो; अतः दक्षिण पूर्वीय राष्ट्र अपनी प्रजातंत्रीय व्यवस्था सुदृढ़ता के साथ करें तथा अपने यहाँ किसी भी विरोधी विचार धारा का प्रवेश न होने देने की क्षमता प्राप्त कर सकें; इस प्रकार के परस्पर उद्देश्य पं. नेहरू की इस यात्रा से पुष्ट हुए हैं जो आगे चल कर किसी सैनिक-संधि के बिना भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं । हम आशा करें कि ये राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक आधारशिला पर नये सिरे से नयी मैत्री के पाये खड़े करेंगे ।

४. कोरिया में गृह-युद्ध की भयानक रणचण्डी

एक लम्बे शीत-युद्ध के बाद गत २५ जून से कोरियन गृह-युद्ध के नाम पर सोवियत प्रभावित उत्तरी कोरिया ने दक्षिणी कोरिया पर जो आक्रमण कर दिया है उससे सारे युद्ध पीड़ित संसार को तीसरे महायुद्ध की संभावनाओं के सामने हठात् ला खड़ा किया है । विश्व के दो बड़े एंग्लो-अमरीकन और सोवियत गुट क्या यूरोप, क्या मध्यपूर्व, क्या दक्षिण पूर्वीय एशिया और क्या सुदूरपूर्व के आपसी स्वार्थों को लेकर द्वन्द्व के अखाड़े में खड़े थे; अन्त में पैसफिक स्थित इस जर्जर देशको ही अपने मल्लयुद्ध का अखाड़ा बनाकर रहे। जब तक ये पंक्तियां पाठकों के हाथों पहुंचेगी, कहा नहीं ज़ा सकता यह गृह-युद्ध क्या स्वरूप ग्रहण करता है।

सन् १९१० से ४५ तक जापानी आधिपत्य में रहने के बाद सोवियत रूस और अमरीका ने जापान से आत्म समर्पण करा उसे 'मुक्ति' दिलाई । और कोरिया

३८वीं समानान्तर-पंक्ति द्वारा उत्तर और दक्षिण कोरिया के नाम से बांट लिया गया। रूस ने अपने ढंग की और अमरीका ने कथित प्रजातंत्रीय शासनों की स्थापना कर सन् १९४८ और ४९ में क्रमशः अपनी-अपनी सैन्य शक्तियाँ वहाँसे हटालीं। तबसे बराबर छुट-पुट सीमावर्ती संघर्ष उत्तर और दक्षिण के बीच होते रहे। उत्तर द्वारा आक्रमण के कारणों में, सीमा प्रवेश कर सैनिक कार्रवाही करने का अभियोग दक्षिण कोरिया पर लगाया गया है। और युद्धारंभ के ३६ घण्टों के भीतर ही जब संयुक्तराज्य अमेरिका इस युद्ध में दक्षिण कोरिया की ओर से कूद पड़ा तो सोवियत पत्र 'प्रवदा' ने उसपर लगे हाथ तीन-चार अभियोग लगा दिये कि अमरीका प्रजातंत्रवाद के विरुद्ध युद्ध कर रहा है, वह शान्ति को भंग कर रहा है और उसने मानो यह समझ लिया है कि संयुक्त राष्ट्रीय संगठन जैसी कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था कार्यरत है ही नहीं! साम्यवादी 'आदर्श' के अनुसार रूस स्वयं भले यह माना करे कि वह स्वयं जो कर रहा है वही प्रजातंत्र का उदार कार्य है किन्तु चीनी घटनाचक्र विश्व की आंखों से अभी ओझल नहीं हो पाये हैं जिनमें 'गृहयुद्ध' ही के नाम पर वह सारा चीन हड़प कर गया है। राष्ट्रीय चीन के पतन के बाद कोई स्वातंत्र्य-प्रिय राष्ट्र यह शायद ही स्वीकार करे कि रूस अपनी निर्धारित साम्राज्य विस्तार की नीति के अन्तर्गत एक राष्ट्र से दूसरे पर अपना पंजा रखता जाये और वे, राष्ट्र इन युद्धों को 'गृह-युद्ध' या प्रजातंत्रात्मक कार्य समझते रहने की भूल करते रहें।

इसी अनुभव और रूसी कार्यक्रम से सजग हो अमरीका ५ डालर की आर्थिक और हवाई-समुद्री बेड़ों तथा शस्त्रों की सहायताओं के साथ दक्षिण कोरिया सहायतार्थ आक्रमण के विरुद्ध खड़ा हो गया है। यह सच है कि अमरीकाने अपने दक्षिणी प्रजातंत्र के विकास के मार्ग उन्मुक्त नहीं किये किन्तु उत्तरी कोरिया भी इतना जागृत नहीं किया गया कि उसी में कोरिया के पुनः अखण्डता की भावना जागृत होती। अतः जब कि गृह-युद्ध के नेपथ्य में से रूस चुनौती देता खड़ा है तब अमरीका के लिये भी एक ही मार्ग था कि वह उत्तर के विरुद्ध अपने खज़ाने के ताले खोल दे और शस्त्रागार उड़ेल दे। इसी का अवलम्बन अवसर की पुकार के साथ ब्रिटेन ने किया है।

यद्यपि द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुए पांच वर्ष हो गये हैं, फिर भी युद्ध, युद्धजनित परिणामों से विश्वमानव मुक्ति पाकर अपनी सामान्य स्थिति में नहीं आ पाया है। ऐसी हालत में जब युद्ध के नाम भर से प्राणी थर्रा उठे तब युद्धाग्निं सुलगाने का इच्छुक कोई भी राष्ट्र विश्व का सामूहिक रूप से शत्रु राष्ट्र है। और यही वस्तुस्थिति अनुभव कर प्रथमतः सं. रा. सुरक्षा परिषदने उत्तरी कोरिया युद्ध स्थगन की प्रार्थना की जिसकी सुनवाई होते न देख उसने विश्व संघ के ५९ सदस्य राष्ट्रों का आव्हान किया है कि वे किस-किस प्रकार की सहायता इस युद्ध के विरुद्ध कर सकते हैं; बतायें।

कोरियन युद्ध में रूस-अमरीकी शत्रुता

में सं. रा. सुरक्षा परिषद की अपने सदस्य राष्ट्रों से सहायता की मांग के प्रसंग में भारतीय रुख प्रकट होने की तीव्र आशा की जा रही थी। अन्ततः भारतने सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव का समर्थन किया है जिसका समर्थन भारतीय प्रमुख विरोधी समाजवादी दलने भी किया है। इधर आस्ट्रेलिया और न्यूझीलेण्डने भी दक्षिण कोरिया की सक्रिय सहायता में भाग लिया है।

आज जब ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं, दक्षिण कोरियन प्रजातंत्रीय राजधानी सिआन भी उत्तरी कोरिया के हाथों में जा चुका है जिसकी रक्षा के लिये खड़े हुए अमरीका की फौजें समय पर नहीं पहुंच पायीं।

मासिक घटना-चक्र

१ जून १९५० से ३० जून १९५० तक

१ जून — 'डेली टेलीग्राफ' के एक संवाद के अनुसार तिब्बत सरकार साम्यवादी चीनी सरकार के समक्ष समझौते के लिये झुकी।

— भारत-पाक व्यापार-परिषद का एकाएक अन्त।

— दक्षिण आफ्रिका की मलान सरकार का जातीय क्षेत्रविधेयक (ग्रूप ऐरिया बिल), जिसे प्रवासी भारतीयों के वहां के रहे सहे अधिकारों का हनन करने वाला प्रस्तावित कानून कहा गया है, द्वितीय वाचन में ६९ : ६१ मतों से स्वीकार कर लिया गया है।

२ जून — प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने त्रिवेंद्रम, कोचीन की यात्रा समाप्त कर कोचीन से हिन्देशिया प्रस्थान किया। पण्डितजी यह यात्रा आय० एन० एस० दिल्ली से कर रहे हैं जिनके साथ श्रीमती इन्दिरा गांधी और दोनों नाती भी हैं।

४ जून — समाचार प्राप्त हुआ है कि संसार का बृहत्तर ज्वालामुखी–मौता लो जिसकी ऊँचाई १३ हजार फुट है; अपनी ऊँची चोटी से ज्वालायें उगलने लगा है। यह दृश्य २०० मील दूर से भी देखा जा रहा है।

७ जून — प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू का जकार्ता (हिंदेशिया की राजधानी) में आगमन। राजमार्ग पर ५० हज़ार जनता और राजसी ठाठबाठ के साथ शानदार स्वागत।

८ जून — अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के अध्यक्षस्थान से जिनेवा में भारतीय श्रममंत्री श्री जगजीवनरामजी द्वारा श्रम और पूंजी को समानता के स्तर पर विश्व में खड़ा करने का अनुरोध।

१० जून — अगस्त आन्दोलन के अमर शहीद स्वर्गीय हेमू कलानी के बूढे पिता को १४० रु० भत्ता दिये जाने की बात पं० नेहरू द्वारा प्रकट की गयी।

११ जून — प्रसिद्ध कथाकार, लेखक और समाजवादी नेता श्री साने गुरुजी का देहान्त। शवयात्रा में १ लाख व्यक्ति सम्मिलित।

१३ जून — मलाया के उपद्रवकारी दस्तों के दमन के पश्चात वहाँ पूर्ण स्वशासन स्थापित करने के निश्चय की ब्रिटिश युद्धमंत्री जान स्टेची की घोषणा।

— चटगांव कांग्रेस अल्पसंख्यक रक्षासमिति द्वारा भारत-पाकिस्तान अल्पसंख्यक विषयक मंत्रियों को, उनके भ्रमण में, एक-एक स्मृति पत्र देकर कहा गया है कि पूर्वी बंगाल में अल्पसंख्यकों पर अब भी अत्याचार जारी।

१५ जून — भारतीय साम्यवादी दल द्वारा अपनी हिंसात्मक नीति में परिवर्तन की योजना।

— भारत सरकार के वन महोत्सव कार्यक्रम के अनुसार जुलाई मास में १ करोड़ वृक्ष लगाने का निश्चय।

१७ जून — हिन्देशिया का भ्रमण करते हुए प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू का सिंगापुर आगमन।

— दार्जलिंग में चक्रवात, बाढ़ और अतिवृष्टि, भीषण प्राणहानि।

१९ जून — मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के नेतृत्व में भारत सरकार के एक सद्भावना मिशन का जुलाई के द्वितीय सप्ताह में ईरान, तुर्कस्तान आदि देशों में प्रस्थान।

२० जून — पं० जवाहरलाल नेहरू का रंगून आगमन।

— इण्डियन एन्टर प्राईज नामक ७३१८ टन के ब्रिटिश जहाज का लाल सागर में भीषण विस्फोट। यह ब्रिटिश जहाज भारत के लिये शस्त्रास्त्र ला रहा था।

२१ जून — आगामी दो महीनों में देश के समस्त हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी में तार देने की प्रणाली की व्यवस्था।

२२ जून — स्वेजनहर से २०० मील चलकर भारत के लिये विभिन्न विस्फोटक सामग्री लानेवाला 'इण्डियन इण्टर प्राइज' जलयान जो सहसा बरबाद हो गया है; सन् १९४५ में ब्रिटेन से खरीदा गया था परन्तु नियमानुसार भारतीय सम्पत्ति में उसे सम्मलित नहीं किया गया था।

— पख्तूनिस्तान की मांग के लिये वजीरिस्तान और निकटवर्ती कबायली इलाकों में ईपी के फकीर के नेतृत्व में समानान्तर आज़ाद पख्तूनिस्तान शासन की स्थापना।

२३ जून — पंजाब में 'सच्चर-फारमूले' के अनुसार शीघ्र देवनागरी लिपि में हिन्दी और गुरुमुखी में पंजाबी के शिक्षण की व्यवस्था।

२४ जून — विन्ध्य-प्रदेश केन्द्र द्वारा शासित होने के निर्णय की केन्द्रीय शासन की घोषणा।

२५ जून — तृतीय महायुद्ध की चिनगारियाँ लिये उत्तरी कोरिया द्वारा दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण। सारे विश्व में रणचण्डी की तीव चिन्ताग्रस्त प्रतिक्रियायें। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा युद्ध-स्थगन की अपील।

२६ जून — कोरिया की राजधानी सीओल का पतन। संयुक्त राष्ट्रसंघ और विश्व के सम्बद्ध राष्ट्रों में निर्णायक मंत्रणायें जारी।

— भारतीय प्रतिनिधि वी. एन. राऊ के अध्यक्षता में कोरिया युद्ध पर सुरक्षा परिषद की बैठक।

२७ जून — अमरीका द्वारा जनरल मेकआर्थर के पास दक्षिण कोरिया की सहायतार्थ जापान से दांड़ पड़ने के आदेश के २४ घण्टों बाद राष्ट्रपति ट्रूमेन की दूसरी घोषणा। पसफिक महासागर के ग़ैर-कम्युनिस्ट राज्यों की रक्षा-सहायता के लिये जनरल मेकआर्थर पर दायित्व सौंपा गया। इसमें दक्षिण कोरिया के सिवाय फारमासा, फिलीपाइन्स, हिन्द-चीन की साम्यवादियों से रक्षा का भी आदेश हैं।

— जनरल मेकआर्थर प्रधान सेनाध्यक्ष नियुक्त।

— दक्षिण-आफ्रिका सरकार की जातीय-दुर्नीति के विरुद्ध ग़ैर-गौरांगों द्वारा 'राष्ट्रव्यापी मातम-दिवस'।

— स्वामी सहजानन्दजी की मृत्यु।

२८ जून — कोरियन गृहयुद्ध के विरुद्ध ब्रिटेन द्वारा समुद्री बेड़ा अमरीका की सहायतार्थ भेजा गया।

— सोवियत समाचार पत्र 'प्रवदा' ने अमरीका की कोरिया को सहायता की टीका करते हुए कहा है कि कोरियन जनता की प्रजातांत्रिक भावना के विरूद्ध अमरीका ने सीधी कार्रवाही की है।

— उत्तरी कोरिया के आक्रमण को सं. रा. सुरक्षा परिषद ने 'शान्ति भंग' करनेवाली कार्रवाही घोषित किया।

२९ जून — भारत सरकार द्वारा कोरिया-युद्ध विषयक सुरक्षा परिषद का प्रस्ताव स्वीकार किन्तु अपनी वैदेशिक नीति में कोई परिवर्तन न करने का निश्चय।

— संयुक्त राष्ट्रसंघ का निर्णय सोवियत रूस द्वारा अवैध घोषित।

३० जून — प्रेसिडेण्ट ट्रूमेन द्वारा कोरिया-युद्ध रूस के विरुद्ध लड़ने को संयुक्त राष्ट्र की ओर से पुलिस कार्रवाही की संज्ञा।

साहित्यालोचन

[श्री. विनय मोहन शर्मा]

भारतीय संस्कृति की रूपरेखा

लेखक:—सर्वश्री **श्री. रामधन शर्मा**, 'शास्त्री' एम. ए. आदि तथा **सरनदास भनोत**, एम्. ए. प्रकाशक — **मेहरचन्द लक्ष्मणदास**, संस्कृत-हिन्दी पुस्तक। विक्रेता, दरियागंज, दिल्ली। मूल्य ४॥.

देश के स्वाधीन होने के बाद से जनता तथा चिन्तकों का ध्यान उसके सांस्कृतिक इतिहास की ओर अधिक जाने लगा है। हाल ही, इस विषय पर प्रवेशात्मक और विवेचनात्मक कई पुस्तकों का भिन्न भिन्न भाषाओं में प्रकाशन हुआ। प्रस्तुत पुस्तक प्रथम कोटि (प्रवेशात्मक) का प्रकाशन है जो उसके नाम से स्पष्ट है। संस्कृति का अर्थ यद्यपि परिमार्जित स्थिति है परन्तु व्यवहार में उससे 'मनुष्य की मानसिक वृत्तियों के संतुलन, उसके विचारों की उत्कृष्टता, भावों की उदात्तता, आचार की पवित्रता और व्यवहार की शिष्टता का ज्ञान होता है।' किसी राष्ट्र की संस्कृति से हम उसके उन संस्कारों से अवगत होते हैं जिन-पर उसके सामाजिक जीवन की आधार-शिला प्रतिष्ठित होती है। संस्कृति का निर्माण समाज की अनेक युगों की साधना का परिणाम होता है। कालानुरूप उसमें सुधार होता रहता है और उसकी व्याख्या की परिधि भी घटती बढ़ती रहती है।'

प्राचीन इतिहास वेत्ता भारतीय संस्कृति को प्राचीनतम मानते हैं। यों मिश्र, यूनान, रोम, चीन आदि देशों की संस्कृतियां कम पुरातन नहीं हैं; परंतु आज वे केवल 'गौरव-गाथा' के रूप में ही सुरक्षित हैं। भारतीय संस्कृति काल की छाती पर कील ठोककर आज तक जीवित है। विद्वानों का यह कथन सत्य है कि, धर्म और दर्शन से संलग्न होने के कारण वह नहीं मर सकी। हमारे जीवन में इन दोनों का अभिन्न सम्बन्ध है।

भारतीय संस्कृति का जन्म कब हुआ यह कहना कठिन है। यों तो अनुश्रुतियाँ सृष्टि के आदि काल से ही उसका जन्म मानती हैं परन्तु जो प्रमाण आज तक प्राप्त हुए हैं उनसे यही कहा जा सकता है कि उसका प्रारंभ तीन हजार वर्ष से पहले हो चुका था। हड़प्पा और मोहेंजोदारो के ध्वस्त

अवशेषों से कुछ लोगों ने यह भी अनुमान निकाला कि भारतीय संस्कृति बेबिलोनिया से उधार ली हुई है। परन्तु इस मत का समर्थन नवीनतम खोजों से नहीं होता। प्रो. 'जैकोबी' और लो. 'तिलक' का मत है कि ऋग्वेद, जिस में भारतीय आर्य-संस्कृति की झलक मिलती है और जो संसार का प्राचीनतम ग्रंथ कहा जाता है, ईसवीं सदी के ६ हजार वर्ष पूर्व से लेकर ४ हजार ५ सौ वर्ष पूर्व के मध्य में रचा गया था। ऋग्वेद-कालीन संस्कृति, आर्य-संस्कृति कही जाती है परन्तु तब से आज तक न जाने कितनी विदेशी संस्कृतियाँ उसमें घुल-मिल गई हैं। अतएव हमें अपनी संस्कृति को आर्य-संस्कृति न कहकर, भारतीय-संस्कृति कहना चाहिए। भारतीय संस्कृति की परंपरा को विद्वान लेखकों ने निम्न भागों में विभाजित किया है—

(१) वैदिक युग (२) रामायण और महाभारत युग (३) जैन और बौद्ध युग (४) पौराणिक युग (५) मुस्लिम युग (६) अर्वाचीन युग।

वैदिक युग ईसा से कई सहस्र वर्षपूर्व से लेकर ८०० वर्ष पूर्व तक माना जाता है। इस युग में संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् का निर्माण हुआ जिनमें धर्म, आचार और आश्रम व्यवस्था आदि विभिन्न-विचार-धाराओं का प्रकाशन हुआ। पुराणों और आख्यानों की रचना इसी काल में हुई। इसी लिए इस काल को हम भारतीय संस्कृति का स्वर्ण युग कह सकते हैं। दूसरा युग रामायण और महाभारत का आता है। इस काल में वैदिक कर्मकाण्डों की जटिलता के कारण वर्ण-व्यवस्था में ऊँच-नीच के भाव प्रबल हो उठे थे, समाज के अनेक व्यक्तियों पर तरह तरह के प्रतिबंध लगा दिये गये थे, और ब्राह्मणों की उत्कृष्टता सर्वमान्य हो रही थी। वर्ण-व्यवस्था के बावजूद अनुलोम-विवाह धर्मसम्मत था। पुरुषों में बहु-विवाह की प्रथा थी और एक स्त्री कई पुरुषों की पत्नी हो सकती थी। पर्दा-प्रथा का भी स्त्रियों में विशेष अवसरों-पर चलन था। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास नामक आश्रमों की संस्था समाज में प्रचलित हो रही थी। राजनीति के क्षेत्र में साम्राज्य और राष्ट्रीय एकता की भावनायें भी विकसित हुईं। धार्मिक क्षेत्र में ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक त्रि-देव की पूजा-प्रतिष्ठा प्रारंभ हुई। इस तरह भक्ति की प्रधानता इस युग की धार्मिक विशेषता है।

ब्राम्हण धर्म में बलि और कर्मकाण्ड की अति हो जाने के परिणाम-स्वरूप जैन और बौद्ध धर्म का उद्भव हुआ। इनको हम सर्वथा पृथक धर्म नहीं मानते। एक प्रकार से ये वैदिक धर्म के ही संस्कारी-रूप हैं। जैन और बौद्ध धर्म के प्रवर्तकों ने ब्राह्मणों की संस्कारी भाषा संस्कृत को त्याग कर अर्ध-मागधी और पाली का सहारा लिया। कहा जाता है कि बौद्ध दर्शन अपनी सरलता के कारण ही प्रचार पा सका। बौद्ध दर्शन का प्रभाव शंकराचार्य पर भी पड़ा। इसीसे कुछ लोग उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध भी कहा करते थे। अशोक इस युग का प्रसिद्ध बौद्ध सम्राट है। चौथा युग पुराणों का आता है। इतिहास और पुराण 'पंचम वेद' कहे जाते हैं।

यद्यपि उनमें धार्मिकता का अंश विद्यमान है फिर भी वे इतिहास के तथ्य से शून्य नहीं है। पौराणिक पंडितों ने वेदकालीन ब्राह्मणों की तरह पुराणों के अध्ययन पर कड़ा बंधन नहीं रखा। ये सब के लिये खुले थे। पुराणों में कथा-कहानियों के रूप में धर्म और दर्शन की अच्छी व्याख्या मिलती है। अनार्य जातियों के धर्म तथा विश्वासों का भी उसमें मिश्रण पाया जाता है। इस युग में वर्णाश्रम व्यवस्था और भी अधिक कठोर दिखलाई देती है। स्त्रियों के प्रति वे अधिक सदय नहीं प्रतीत होते। भक्ति के क्षेत्र में नाम-संकीर्तन की महिमा का प्रचलन इसी युग में हुआ। पुनर्जन्म, तीर्थ, व्रत, श्राद्ध, पूजा-पाठ आदि पर आस्था इस युग में अधिक देखी गई। मुस्लिम-युग में मुस्लिम सभ्यताने प्राचीन भारतीय संस्कृति को गहरा धक्का दिया, फिर भी कतिपय हिन्दू और मुस्लिम संतों के कारण यहाँ एक समन्वयात्मक संस्कृति जन्म ले रही थी। इसी बीच अंग्रेजों के अधिपत्य के कारण आंग्ल संस्कृति ने देश को प्रभावित किया परन्तु देश के कई प्राचीन संस्कृति के उपासकों ने विदेशी सभ्यता के प्रति विद्रोह किया, परिणाम स्वरूप आर्यसमाज, ब्राम्हसमाज, थिआसफी, रामकृष्ण मिशन आदि की स्थापना हुई। और अब अंग्रेजों के जाने के बाद अत्यंत आग्रह के साथ जनता अपने प्राचीन संस्कारों को पुनः जीवित करना चाहती है। प्रस्तुत पुस्तक में भिन्न भिन्न कालों की संस्कृतियों के सम्बन्ध में संक्षेप में ज्ञातव्य बातें कही गई हैं। इस पुस्तक की योजना बहुत कुछ आक्सफोर्ड यूनिवार्सिटी प्रेस से प्रकाशित 'Every day life in Ancient India' से मिलती जुलती है। परिशिष्ट में लेखकों ने इक्कीस पुस्तकों की सूची दी है जिसमें अंग्रेजी और हिन्दी की सहायक पुस्तकों का उल्लेख है। विषय की गहराई और विस्तार में प्रवेश पाने के लिये यह सहायक-ग्रंथ-सूची बड़े काम की है। परन्तु जिन्हें केवल अपनी संस्कृति की रूपरेखा से ही परिचित होना है वे इस पुस्तक से लाभान्वित हो सकते हैं।

कालिदास

लेखक,— **पं. उदयशंकर भट्ट**, प्रकाशक राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड। मूल्य दो रुपया।

यह तीन ध्वनिरूपकों का संग्रह है। वे हैं कालिदास, मेघदूत और विक्रमोर्वशी। ये तीनों रूपक आल-इन्डिया रेडियो दिल्ली से प्रसारित हो चुके हैं और श्रोताओं द्वारा प्रशंसित भी। रेडियो के कारण हिन्दी में रूपकों का प्रचलन अधिक हो रहा है। "रूपक में घटनाओं का संकलन एवं विकास 'सूत्रधार' या 'नरेटर' के द्वारा होता है। इसमें केवल श्रोतव्यता की प्रमुखता के कारण भिन्न भिन्न प्रासंगिक घटनाओं का ग्रन्थीकरण सूत्रधार ही करता है। अतः रूपक में नाटक के अतिरिक्त वे तत्त्व भी आ जाते हैं जिनका नाटकों में आना संभव भी नहीं। इस दृष्टि से नाटक की अपेक्षा रूपक में प्राण-विस्तार अधिक संभव है। इसके साथ ही नाटक की समय-एकता, पात्रएकता, देशएकता तथा अन्य कई बातों का बंधन भी उसमें नहीं होता। उसमें तो केवल होता है ध्येय की ओर वक्तव्य का संकलीकरण।

कालिदास में लेखक ने कवि के समय से लेकर उसकी ग्रंथरचना के उद्देश्य पर सविस्तर प्रकाश डाला है और उसकी प्रेरणा मूलक वृत्तियों का भी उदघाटन किया है। कवि की प्रतिभा का परिचय देने के लिये कालिदास के ग्रन्थों से एक एक प्रसंग ग्रहण कर प्रस्तुत किया गया है। लेखक को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई है। प्रारंभ में बालिकाओं का संवाद दिया गया है। बालिकाओं की भाषा और उसकी अभिव्यक्ति सहृदय संस्कारी किशोरियों सी प्रतीत होती है। पृष्ठ चार पर पहिली बालिका का कथन है "नहाने दे, मेरी प्यारी धरती को नहाने दे, फूलों को पत्तियों को प्यासे पेड़ों को नहाने दे सखी।" ऐसा जान पड़ता है प्रसाद के समान 'भट्टजी' ने अपने प्रत्येक पात्र में जाग्रत काव्यानुरूप सहृदयता पाई है और संस्कारिता भी। रेडियो रूपक ने सूत्रधार की अवतारणा अनिवार्य कर दी है। मेघदूत में एक नहीं तीन तीन सूत्रधार ध्वनिक्षेपित होते हैं। मेघदूत के रूपक में संगीत का साम्राज्य है। 'कालिदास' ग्रथित मेघदूत में यह विशेषता है कि यक्षिणी और मेघ में विशेष संवाद की आयोजना है और उसकी कल्पना में कवि का अपनत्व अधिक है। विक्रमोर्वशीय तीसरा और अन्तिम ध्वनिरूपक है, इसमें भी संगीत तत्त्व की प्रधानता है; चाहे वह अतुकान्त भले ही हो। भट्टजी का स्थान हिन्दी-नाटककारों में बहुत आगे है। भारत के अतीत को सप्राण बनाकर चित्रित करने की कला उन्हें खूब सध गई है। हिन्दी में गीति नाट्य के तो वे आचार्य ही हैं। आशा है 'कालिदास' रूपक प्रेमियों का मनोरंजन करेगा।

तुलसीदास का घर बार

लेखक, **श्री रामदत्त भारद्वाज,** प्रकाशक नॅशनल इन्फरमेशनस एण्ड पब्लिकेशन, बम्बई। मूल्य ६॥ रुपये।

श्री भारद्वाज ने गत दस वर्षों से तुलसी के जीवन पर अधिक श्रम के साथ अनुसंधान किया है और उसी का फल यह पुस्तक है। एक अन्वेषक विद्यार्थी की तरह उन्होंने अपने कथन को सप्रमाण समर्थित किया है। तुलसीदास के जविन के सम्बन्ध में अभी तक निर्विवाद खोज़ नहीं हुई। उन्होंने कहाँ और किस जाति में जन्म लिया, उनके अमर ग्रन्थों के पीछे कौनसी प्रेरक शक्ति काम कर रही थी, उनका पारिवारिक जीवन कैसा था आदि बातों पर अद्यापि प्रकाश नहीं पड़ पाया है। पं० रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास आदि विद्वान राजापुर में उनका जन्म मानते हैं और 'सरयूपारीण-वंशावतंस' समझते हैं। इसके विपरीत मिश्र बन्धु उन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहते हैं और पं० रामनरेश त्रिपाठी उन्हें राजापुर का नहीं 'सोरों' का निवासी बताते हैं। लेखक ने इस पुस्तक में निम्न बातें प्रतिपादित करने का यत्न किया है—

"(१) तुलसीदास का जन्म भारद्वाज गोत्रीय शुक्ल सनाढ्य ब्राह्मण-वंश में, आत्माराम और हुलसी के औरस से सूकर क्षेत्र (जिला एटा) में हुआ। हुलसी का जन्म स्थान तारी (जिला एटा) था।

(२) गोस्वामीजी का विवाह रत्नावली से संवत् १५८९ में हुआ। उनके तारापति

नामक एक पुत्र पैदा हुआ, जो जन्म होने के कुछ वर्ष पश्चात् ही स्वर्ग सिधार गया, एवं गोस्वामीजी ने अपनी पत्नी के आकस्मिक ज्ञानोपदेश से, संवत् १६०४ विक्रमी में, संसार का मायामोह छोड़ दिया।

(३) रत्नावली बदरीनिवासी पं० दीनबन्धु पाठक की पुत्री थीं। इनका जन्म संवत् १५७७ वि० में हुआ, और उसी अभद्रक संवत् १६०४ में, जब तुलसीदास घरवार त्याग कर चले गये, रत्नावली की माता दयावती का देहांत भी हुआ।

(४) रत्नावली ने २०१ उत्तम स्त्री-शिक्षाप्रद दोहों की रचना भी की, जो अनेक स्थानों में उपलब्ध हैं। वह तपस्विनी, पति-परायणा देवी संवत् १६५१ वि० में परलोकवासिनी भी हुईं।

(५) बदरी ग्राम को सं० १६५७ वि० में गंगाजी ने बहा कर नष्ट कर दिया। इसके उपरान्त यह ग्राम दुबारा बसाया गया जो अब भी स्थित है।

(६) व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि नंददास के पुत्र कृष्णदास क्रम से तुलसीदास के चचेरे भाई और भतीजे थे।

(७) बदरी सोरों (वाराह-अकल-सूकर क्षेत्र) के सामने एक ग्राम था, और उन दिनों उनके बीच में गंगाजी बहती थीं।"

लेखक ने अपने निष्कर्षों का आधार सोरों की सामग्री माना है। यदि यह सामग्री जाली नहीं है तो उनके निष्कर्ष प्रामाणिक माने जा सकते हैं। प्रयाग विश्व विद्यालय के प्राध्यापक डा० माताप्रसाद गुप्त ने उक्त सामग्री की प्रमाणिकता पर सन्देह व्यक्त किया है। परन्तु लखनऊ विश्व विद्यालय के डा० दीनदयाल गुप्त उसे प्रामाणिक मानते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने संदेहों का निवारण करने का यत्न किया है। तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली भी कवियित्री थीं और उच्च कोटि की कवियित्री थीं यह बात सोरों की सामग्री के अध्ययन मनन से सिद्ध हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं लेखक ने 'तुलसी' के जीवन पर इस पुस्तक के द्वारा कई दृष्टियों से नया प्रकाश डाला है। तुलसी साहित्य प्रेमियों को इसके निष्कर्षों पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये।

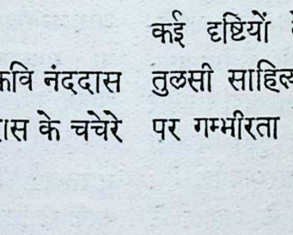

दृष्टिकोण

(सम्पादकीय)

वनमहोत्सव !

भारतीय साहित्य, संस्कृति और सभ्यता का जन्म और सम्पूर्ण विकास भारत के वन-उपवनों में ही हुआ है। ये वन-उपवन नगरों के हृदयभेदी अशान्त कोलाहलों से दूर, प्रशान्त एकान्त में, प्रकृति के सौन्दर्यमय वातावरण में स्थित रहकर उद्विग्न-उदास मानव को सच्ची सुख-शान्ति देने में सदैव समर्थ रहे हैं। वन-उपवन का अस्तित्व, शोभा और समृद्धि वृक्षों पर ही आश्रित रही है, और वृक्षों का जन्म ही श्रेष्ठ है। क्योंकि इनसे प्राणि-मात्र का उपजीवन होता है। वृक्षों के पत्र-पुष्प-फल-मूल-वल्कल और इन्धन, ये सभी पदार्थ हमारे जीवनोपयोगी हैं। मानव के लिये वृक्षों का मेवा और फल जीवनाधार है। परम स्वास्थ्यवर्धक है। साग-सब्जी, शाक, कन्दमूल-फल के आहार से मानव का ओज वढ़ता है, आयु वढ़ती है, उसे ताक़त और ताज़गी मिलती है। अतः वृक्ष से वढ़कर और कौन सच्चा परोपकारी है ? वे आतप की असह्य आपत्ति अपने सर पर झेलते हैं और सघन कुंजों की शीतलमन्द समीर युक्त विशाल छाया दूसरों पर करते हैं। इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत,—ऐसा सहनशील मधुर विनम्र स्वभाव है इन वृक्षों का। नाम इनका कितना कोमल और जीवन को स्पर्श करनेवाला है ! लीजिये—चन्दन, अगरु, चम्पक, वकुल, अशोक, आम्र, नारिकेल, मधूक, वदर, आमलक, दाड़िम, वट, अश्वत्थ, किंशुक, वंश, शाखोट, कुन्द, कार्पास, इक्षु, कमल, कदम्ब, निम्ब, पनस, पलाश, ताल, तमाल, कदली, ये सैकड़ों हज़ारों एक से एक वढ़-चढ़कर। को वड़ छोट कहत अपराधू। आज से दो-ढ़ाई हज़ार वरस पहले, महान् राजकुमार सिद्धार्थ को वहुजन हिताय—वहुजन सुखाय अमर वुद्धत्त्व का लाभ वोधिसत्व वृक्ष अश्वत्थ के नीचे ही हुआ था। और उनसे भी दो-ढाई हज़ार वर्ष पूर्व कलावतार कृष्ण को यमुना तीर-स्थ तरु कदम्ब और बन्सीवट ने अपने तले पूर्ण पुरुषोत्तम वनाया था। भगवान भर्यादा पुरुषोत्तम आर्य रामचन्द्र चौदह वर्ष वन में वसे। स्वधर्म के परिपालन हेतु पांडव भी और इस युग के गान्धी ने पराधीन भारत-वर्ष की मुक्ति का मंत्र वन-उपवन में वास करके ही सिद्ध किया। अपने छोटे-से सेवाग्राम को उन्होंने नाना जातीय उपयोगी पुष्पवान् फलवान् वृक्षों से हरा-भरा बनाया—उस ऊजड गांव को नन्दनवन बनाया। वापू ने अच्छी तरह वतला दिया कि हमारे जीवन में वृक्षों का, पेड़ पौधों का, क्या महत्व है। इस संसार में कोई भी हो, मानव हो या पशु, शाकाहारी हो या मांसाहारी, सव को अन्न, तृण, श्यामल, शस्य, फल, पत्र-पुष्प आदि चाहिए। वन में पेड़-पौधे, वृक्ष-वनस्पति न हों तो मनुष्य मर ही जायें और पशु भी न रहें। हमारे प्राचीन भारतीय आर्योंने इस रहस्य को समझा था। फलतः नगर निवास की अपेक्षा जीवन के अन्तिम

१२५०

समय में वे वन-उपवन निवास को अपने लिए उत्तम समझते थे। इसीलिए वे दुख-दोष, रोग-व्याधि और मनो-मालिन्य से मुक्त रहते थे, स्वर्गीय सुख का अनुभव करते थे। और आज वर्तमान सभ्यता ने इन बड़े बड़े नगरों को दुख-दारिद्र्य का, संघर्ष का, कोलाहल का, अशान्ति का, भोग-लिप्सा का और अपराधों का तथा अनाचार दुराचारों का उघड़ अड्डा बना रक्खा है। इन शहरों में श्रमजीवी मानव अपनी स्वतंत्रता और स्वास्थ्य को खोकर, आज खतरनाक मशीनों के कल-कारखानों में उदरपूर्ति के लिए पराधीन बन कर पशु से भी बदतर बन रहा है। पशु से भी बदतर बने हुए मानव को मानव बनाने के हेतु इस उजड़ी हुई भारतभूमि को फिर से उर्वरा—सर्व सस्याढ्या बनाने, पहली जुलाई को, हमारे प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ने राजघाट पर, प्रथम प्रभात उदय गगने की मंगल वेला में, उस विश्ववन्द्य समाधि के आस-पास वृक्षारोपण किया। भारत में लगाये गये ये दो करोड़ छोटे छोटे पेड़ पौधे बढ़ें, फूलें-फलें और पुण्यमयी भारतभूमि सुजला सुफला मलयजशीतला होकर समृद्धिमती हो। एक स्वप्नद्रष्टा महान् मुन्शी का संकल्प सफल हो।

ये तीन श्रद्धांजलियाँ!

महाराष्ट्र की संत-परम्परा के आधुनिक प्रतिनिधि, सेवापरायण, सात्विक साहित्यकार साने गुरूजी के असामयिक प्राणोत्क्रमण से हज़ारों-लाखों महाराष्ट्रीय नरनारी हतबुद्धि हो कर शोकसंविग्नमानस हो गये हैं। वह साधुता, वह सादगी और भावना-शीलता के साकार रूप थे। तरुणों के, किसानों के, मजदूरों के, समाजवादियों के और विशुद्ध गान्धीवादी देश-सेवकों के स्वर्गीय साने गुरुजी सरदार थे।

और स्वर्गीय स्वामी सहजानन्दजी! न केवल बिहार के ही; अपितु सारे भारत के किसानों की हुंकार से कँपादेनेवाले स्वामीजी सच्चे कर्म योगी थे। स्पष्ट वक्ता थे।

और श्री यूसुफ मेहरअली साहब! उनका भी अकाल देहावसान हमारे लिए दुखदायी हुआ। स्वातंत्र्य प्राप्ति की लड़ाई में अनेक बार कारावास के कष्ट झेले। राजनीतिक क्षेत्र एक अर्से से हमारे यहाँ दंगल का, वादविवाद का, बहस का अखाड़ा बना हुआ है। मेहरअली एक निष्पक्ष सच्चे देश-भक्त और समाजवादी नेता और अजातशत्रु थे।

तीनों महारथी भारत माता के त्यागी सच्चे सपूत थे। उनकी समाधि पर श्रद्धाकणों सहित अश्रुओं की अंजलियाँ समर्पित हैं।

'भारती' आप से कुछ चाहती है !

१. यह कि 'भारती' के प्रकाशन का उद्देश्य अब आपसे छिपा नहीं है।

२. यह कि 'भारती' हर महीने सुन्दर १०० पृष्ठों में सचित्र, सुरुचिपूर्ण, विविध-विषयक भारतीय साहित्य, संस्कृति और कला की श्रेष्ठ पाठ्य सामग्री अपने प्रेमी पाठकों के हाथों में प्रस्तुत करती है।

३. यह कि अब समय आगया है कि आपके घरों में जो पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य आदि सामग्री आवे; आप उसकी जागरूक, सतर्क एवं सचेष्ट होकर जाँच पड़ताल करें कि उसमें कहीं रोग के कीटाणुओं की तरह नग्नता, अश्लीलता या गन्दगी तो नहीं भरी हुई है; जो हमारे घरों में कमजोरी, कुविचार, कुरुचि और कुवासना को उत्तेजित करती है, सड़ाँद पैदा करती है, और जो हमारे राष्ट्रीय, जातीय अथवा व्यक्तिगत जीवन को विकारग्रस्त, अस्वस्थ, निर्बल बना कर पतन की ओर ले जा रही है। कृपया अश्लील, नग्न-चित्र, भद्दी, अर्धनग्न, कुरुचिपूर्ण पाठ्यसामग्री और गन्दगी से भरे हुए शर्मनाक औषधीय विज्ञापनों से सुसज्जित पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों को अपने घरों में मत घुसने दीजिए।

४. यह कि जो आपके जीवन को, विचारों को, चरित्र को, रुचि को समृद्ध, संस्कारवान, प्राणवान, स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण बनाए वैसा ही उत्तम साहित्य आप पढ़ें। ऐसा साहित्य जहाँ से मिले, उसका स्वागत करें, उसे अपने घर में स्वतंत्र सूर्य के स्वच्छ प्रकाश की तरह और नीरोग स्वास्थ्यकर हवा के झोंकों की तरह बेरोक-टोक आने दें।

५. यह कि इस महान पवित्र साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्य में आप 'भारती' का हाथ बटावें, उसकी सहायता करें।

६. यह कि आप तो 'भारती' के नियामित पाठक हैं ही; जहाँ जिस शहर या गाँव में आप हैं, भारती की सहायता के लिए अपनी ओर से कुछ-न-कुछ अवश्य करें। प्रत्येक पाठक 'भारती' का एक नया पाठक बना दे। जिन पुस्तकालयों, वाचनालयों या स्कूल-कालेजों की लायब्रेरियों में वह नहीं पहुँच रही है, वहाँ उसे उत्साहपूर्वक प्रोत्साहन देकर पहुँचा दें।

७. यह कि यथार्थ में सच्चे दिल से, ज़रासी मेहनत से, आप अपने इष्ट मित्र बन्धुओं में से एक एक नया ग्राहक बना कर भारतीय राज्य एवं राष्ट्र की भाषा हिन्दी के प्रसार में हमारी मदद करें।

८. "भारती" आपकी ऐसी सहायता का सहर्ष स्वागत करेगी। प्रतीक्षा में—

मंडल की नई पुस्तकें

(पठनीय, मननीय और संग्रहणीय)

१. **पंद्रह अगस्त के बाद :** महात्मा गांधी के पंद्रह अगस्त १९४७ से लेकर अंतिम लेख तक का संग्रह। आज़ादी तथा उससे पैदा हुई समस्याओं पर सम्यक् विचार, पृष्ठ २४०, सुन्दर छपाई, मूल्य २)

२. **धर्मनीति :** जीवन-नीति और उसके पालन संबंधी नियम-उपनियम का विवेचन करनेवाली महात्मा गांधी की चार पुस्तकों का संग्रह, पृष्ठ २५६, मूल्य २)

३. **बापू की कारावास कहानी :** लेखिका — डा० सुशीला नैयर, आगाखां महल में बापू के बंदी-जीवन के इक्कीस महीनों का हृदय-स्पर्शी व प्रामाणिक इतिहास २८ चित्र, सुन्दर छपाई, मूल्य १०)

४. **सर्वोदय विचार :** आचार्य विनोबा : सर्वोदय और उसके सिद्धान्तों का सूक्ष्म विश्लेषण, मूल्य १॥)

५. **पंचदशी :** भारत के चिंतकों और साहित्यकारों के पंद्रह उच्चकोटि के निबंधों का संग्रह, मूल्य १॥)

मंडल से प्रकाशित **'जीवन साहित्य'** मासिक के ग्राहक बनने से ये तथा मंडल की अन्य पुस्तकें आपको रियायती मूल्य में मिलेंगी। पत्र का वार्षिक मूल्य ४) रु.

व्यवस्थापक — **सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली।**

दी युनायटेड कमर्शियल बैंक लि.

हेड ऑफिस कलकत्ता

चुकता मूलधन : २ करोड़ रुपये
सुरक्षित कोष (रिज़र्व फंड) : ५२॥ लाख रुपये

चेयरमैन : जी. डी. बिड़ला
जनरल मैनेजर : बी. टी. ठाकुर

समस्त भारत, पाकिस्तान, बर्मा और मलाया में बैंक की शाखाएँ हैं, और संसारभर में एजंसी की व्यवस्था है।

जी. ए. रणदिवे
मैनेजर, नागपुर शाखा

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेरो-शायरी मूल्य ८)

[उर्दू के १५०० शेर और १६० नज़्म]

श्री. अयोध्या प्रसाद गोयलीय —

प्राचीन और वर्तमान कवियों में ३१ लोकप्रिय कलाकारों के मर्मस्पर्शी उर्दू पद्यों का संकलन और उर्दू-कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय। **हिंदी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।**

मुक्तिदूत [द्वितीय संस्करण] मूल्य ५)

श्री. वीरेन्द्रकुमार, एम- ए.

हिन्दी में अपने ढंग का सबसे पहला पौराणिक रोमांस। **उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है......मर्मज्ञों ने मुक्तकण्ठ प्रशंसा की है......।**

पथचिह्न [यू. पी. सरकार से एकहजार रुपयों से पुरस्कृत] मूल्य २)

मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली। श्री. शांतिप्रिय द्विवेदी की कोमलकृति रेखाएँ।

दोहजार वर्ष पुरानी कहानियाँ मूल्य ३)

इन कहानियों में प्राचीन भारत का चिन्तन सुरक्षित है। — कर्मवीर खण्डवा।

केवल ज्ञानप्रश्न चूडामणि मूल्य ४)

सम्पादक — श्री. नेमीचन्द जैन ज्योतिषाचार्य।

प्रश्नशास्त्र का अद्भुत ग्रंथ, हिन्दी विवेचन, मुहूर्त, कुण्डली, शकुन आदि के हिन्दी परिशिष्टों में विभूषित। इसके अध्ययन से सामान्य पाठक भी ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

पुस्तक विक्रेताओं को २५% प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस ४

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. भारत में विवेकानन्द

अभी छप गई — विवेकानन्दजी के भारतीय व्याख्यान, अनु०—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; पृ. सं. ५९९, मूल्य ५) रु. ।

२. श्रीरामकृष्ण वचनामृत

अनुवादक—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सुन्दर गेट-अप, तीन भागों में, प्रथम भाग, पृ. सं. ६३२, मूल्य ६) रु., द्वितीय भाग, पृ. सं. ६५७, मूल्य ६) रु., तृतीय भाग, पृ सं. ८८२, मूल्य ७॥ रु.।

"श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे । उनके वाक्य किसी निरे विद्वान् के कथन नहीं हैं, वरन् वे उनके जीवन-ग्रन्थ के पृष्ठ हैं। **—महात्मा गांधी**

३. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी)

पं० द्वारकानाथ तिवारी कृत, दो भागों में, सुन्दर गेट-अप, प्रथम भाग, पृ. सं. ४३६, द्वितीय भाग, पृ. सं. ४८६, प्रत्येक भाग का मूल्य ५ रु. ।

"श्रीरामकृष्ण देव का जीवन-चरित्र हमें ईश्वर को अपने सामने प्रत्यक्ष देखने की शक्ति देता है । "

— महात्मा गांधी

४. विवेकानन्द-चरित

(विस्तृत एवं स्फूर्तिदायक जीवनी)

सुविख्यात लेखक श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार कृत, **अभी प्रकाशित हुई**; सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ५५५, मूल्य ६ रु. ।

"प्राचीन भारतीय संस्कृति में पगे तथा भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा के अभिमानी स्वामी विवेकानन्द मानवी जीवन की समस्याओं को समझने में नितान्त आधुनिक थे और हम कह सकते हैं कि इस प्रकार उनके जीवन में भारतवर्ष की प्राचीन तथा वतेमान संस्कृति का सुन्दर समन्वय हुआ ह ।"

— पं० जवाहरलाल नेहरू

५. विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप)

शिष्य शरच्चन्द्र कृत, सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ४४८, मूल्य ५। रु. ।

स्वामी विवेकानन्द कृत — पत्रावली (दो भागों में), प्रत्येक भाग का मूल्य २=); महापुरुषों की जीवन-गाथाएँ १।); मन की शक्तियां ॥); इशदूत ईसा ।=); राजयोग १=); स्वाधीन भारत ! जय हो ! १=); कवितावली ॥=); भारतीय नारी ॥।); शिक्षा ॥=); धर्म-रहस्य १); मेरी समरनीति ।≡); धर्मविज्ञान १॥=); मेरा जीवन तथा घ्येय ॥); मरणोत्तर जीवन ॥); श्रीरामकृष्ण, धर्म तथा संघ ॥=); कर्मयोग १॥=); हिन्दु-धर्म १॥); प्रेमयोग १।=); भक्ति-योग १।=); आत्मानुभूति १।); परिव्राजक १); प्राच्य और पाश्चात्य १।); शिकागो-वक्तृता ॥=); मेरे गुरुदेव ॥=); हिन्दू-धर्म के पक्ष में ॥=); वर्तमान भारत ॥); पवहारी वावा ॥); विवेकानन्दजी की कथाएँ १।); श्रीरामकृष्ण-उपदेश ॥=) ।

पता :—श्रीरामकृष्ण आश्रम, [भा], धन्तोली, नागपुर-१, मध्यप्रदेश

गुरुकुल पत्रिका

हिन्दी की साहित्यिक व सांस्कृतिक मासिक पत्रिका

सम्पादक श्री· रामेश बेदी और श्री· सुखदेव

ख्याति प्राप्त लेखकों और उच्च कोटि के विद्वानों की सुरुचिपूर्ण, रोचक तथा ज्ञान वर्द्धक रचनायें और गंभीर तथा खोजपूर्ण लेखकों के पढ़ने के लिये गुरुकुल पत्रिका पढ़िये।

प्रत्येक अंक की पाठय सामग्री हिन्दी का स्थिर साहित्य है । यह साहित्य आपको मानसिक तथा आध्यात्मिक भोजन प्रदान करेगा । स्वास्थ्य सम्बन्धी उपयोगी लेख आपको स्वस्थ और आनन्दित रहने में सहायक होंगे । अपने परिवार को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करने के लिये आज ही मनीआर्डर से वार्षिक शुल्क भेजिए ।

वार्षिक मूल्य देश में ४ रु० विदेश में ६ रु० नमूने की प्रति ६ आने·

पता :— **व्यवस्थापक, गुरुकुल पत्रिका,**

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

'भारती' यहां मिलती है।

१. अदोनी
२. अजमेर
३. अमृतसर
४. वंगलोर शहर
५. वलंगीर
६. वडवानी
७. वेलगांव
८. वल्लारी
९. बेतूल
१०. वंवई
११. कोयंबतूर
१२. एलोर
१३. गुंतकल
१४. गुंटूर
१५. हुवली
१६. इन्दौर
१७. जवलपुर
१८. मद्रास सेंट्रल
१९. मद्रास इगमोर
२०. मदुरा (जं.)
२१. मद्रास
२२. मलकापूर
२३. मैसोर
२४. नागपुर
२५. निडडवोल
२६. राजमहेन्द्री
२७. राजकोट
२८. सामलकोटा
२९. सिकंदरावाद
३०. तंजौर
३१. तेनाली
३२. तिरूच्चिनापल्ली
३३. ट्रिवेंड्रम सेंट्रल
३४. विजयवाड़ा

भारती

'भारती' में अपना विज्ञापन देकर व्यापारिक लाभ उठाइये

'भारती' की प्रगति

उत्तर-दाक्षिण में

श्रीनगर कश्मीर से लेकर रामेश्वरम् मद्रास तक

और

पूर्व-पश्चिम में

गोहाटी आसाम से लेकर कराची पाकिस्तान तक

भारती का प्रचार है

विज्ञापन के मासिक दर :—

		पूरा पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
१.	मुखपृष्ठ ४ था	.... १७५) रु.	९०) रु.	५५) रु.
२.	मुखपृष्ठ २ रा और ३ रा	.... १४०) रु.	७५) रु.	४५) रु.
३.	साधारण पृष्ठ	.... १००) रु.	६०) रु.	३५) रु.

पता :—प्रबन्ध-सम्पादक, "भारती"
C/O ऑल इंडिया रिपोर्टर लि.
नागपुर १ (मध्यप्रदेश)

हिंदी और मराठी भाषामें
प्रकाशित होता है।

उद्यम

धर्मपेठ, नागपुर.

प्रतिमास
१५ तारीख को पढ़िये।

उद्यम में निम्न विषयों पर लेख प्रकाशित होते हैं।

- ★ लाभदायक उद्योगधंधों की व्यवहारोपयोगी जानकारी।
- ★ अनाज की खेती, सागसब्जी की बागवानी, और रोगों का निवारण।
- ★ पशुपालन, दुग्धव्यवसाय और ग्रामोद्योग-संबंधी लेख।
- ★ विद्यार्थियों के लिये वैज्ञानिक तथा अन्य जानकारी-पूर्ण लेख।
- ★ आरोग्य, घरू औषधियों संबंधी जानकारी।
- ★ उद्यम परिवारके हर व्यक्तिकी दृष्टिसे उपयोगी है।
- ★ संपूर्ण भारत के व्हीलर रेल्वे स्टालों, और हर गाँवके न्यूजपेपर एजेंटों की माँग सतत बढ़ती जा रही है।
- ★ उद्यम मासिक में हर माह सुधार किया जा रहा है और इसे हर पाठक की दृष्टिसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

★ वर्ष के १२ अंकों में अपने ढंग के दो विशेषांक प्रकाशित होते हैं, जो स्थायी ग्राहकों को वार्षिक चंदे में ही मिलते हैं।

उद्यम के विशेष स्तंभ

- ★ महिलाओं तथा विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त
- ★ विभिन्न रुचिकर खाद्यपदार्थ बनानेकी विधियाँ
- ★ घरू मितव्ययिता
- ★ उद्यम का पत्रव्यवहार
- ★ खोजपूर्ण खबरें
- ★ आर्थिक तथा औद्योगिक परिवर्तन
- ★ जिज्ञासु जगत्
- ★ व्यापारिक हलचलों की मासिक समालोचना
- ★ कृषि, औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों की मुलाकात और परिचय
- ★ हिंदुस्थान के वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र की उपयोगी जानकारी
- ★ नित्योपयोगी वस्तुएँ घरही तैयार कीजिये।
- ★ आजही उद्यम का वार्षिक चंदा रु. ७-०-० भेजकर सर्वोपयोगी उद्यम मासिक मँगवाना प्रारंभ करें।

श्री. "श्रीनिवास"

ए नाम है श्री. मास्ति वेंकटेश अय्यंगार एम. ए. आधुनिक कन्नड साहित्य के अन्यतम महारथी। 'श्रीनिवास' आपका साहित्यिक उपनाम है। कविता-कहानी-नाटक-उपन्यास-एकांकी-समालोचना, जीवन-चरित्र, सब पर कन्नड में सर्वतोमुखी प्रतिभापूर्वक लिखा है। दर्जनों उच्च कलात्मक कहानियाँ लिखी हैं। स्व. प्रेमचन्दजी के 'मानसरोवर' की तरह जिनके नौ भाग निकल चुके हैं। आपकी कहानियों में सामाजिक, पारिवारिक जीवन के चित्र सुन्दर सजीव होते हैं। मैसूर सरकार के अनेक उँचे पदोंपर सम्मानपूर्वक काम कर चुके हैं। अब सरकारी सेवा से निवृत्त होकर 'पानाशन' वृत्ति लेकर साहित्य सेवा में संलग्न हैं। आपकी 'परकाय प्रवेश' कहानी का श्रीमान राजाजी (सी. आर.) ने तामिळ में अनुवाद किया था।

श्री. विनय मोहन शर्मा :

परिचय गत मार्च के अंक में।

१७. श्री. शारदाप्रसाद वर्मा :

एम. ए. बी. टी.। प्रोफेसर। संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान्। अध्ययनशील लेखक।

१८. श्री. "प्रभाकर पंडित" :

आधुनिक हिन्दी – मराठी – अंग्रेजी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान और उच्चकोटि के लब्धकीर्ति लेखक, कविता, कहानी, एकांकी, समालोचना आदि सभी में प्रौढ़ता प्रदर्शित की।

१९. श्री. देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' :

मध्यप्रदेश के प्रतिष्ठित कहानीकार। इंडियन प्रेस, प्रयाग के साहित्य-निर्माण–विभाग में हैं। उक्त प्रेस से निकलनेवाली सुन्दर कहानी-मासिक पत्रिका "मंजरी" के सम्पादक भी रह चुके। कहानी-कला-कौशल में ख्याति प्राप्त।

२०. श्री. अनन्त गोपाल शेवडे, एम. ए.

परिचय मार्च के अंक में।

Reg. No. N. 1262.

"कृष्णायन"

संत कवि श्री तुलसीदासजी की सुन्दर सरस रामायण की दोहा-चौपाईवाली अत्यन्त रमणीय शैली में भगवान आनन्दकंद श्रीकृष्ण का चरित। लेखक — पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र। मूल्य १२ रु. डाक खर्च अलग।

* निशागीत *

(लेखक—श्री० अनन्त गोपाल शेवड़े, एम. ए.)

एक सुन्दर प्रेमल उपन्यास

एक जनता के सेवक डॉक्टर और नर्स की यह प्रेम-कहानी इतनी जल्दी लोक-प्रिय कैसे हो गई?

क्योंकि उसमें प्राण हैं, सजीवता है, रोचकता है, कथा-तत्व है और मनको पकड़ने का अद्भुत आकर्षण है। एक बार प्रारंभ करनेपर पूरी किये विना पुस्तक छोड़ी नहीं जाती।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, उदयशंकर भट्ट, विनयमोहन शर्मा, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' आदि द्वारा प्रशंसित —ऑल इंडिया दिल्ली तथा नागपुर रेडियो से चर्चित — विशाल भारत, कर्मवीर, मानवता, देशदूत, शुभचिन्तक आदि पत्र-पत्रिकाओं ने: जिसकी सुन्दर समालोचना की। एक बार अवश्य पढ़िये।

पृष्ठ संख्या १५४; सुन्दर आकर्षक कवर, वढिया गेट-अप;
मूल्य २।) रु. डा. ख. अलग.

"गृहविधान"

गृहनिर्माण-कला का संपूर्ण सचित्र शास्त्रीय ग्रंथ। सौराष्ट्र के एक बहुत बडे अनुभवी चीफ इंजीनियर, नगर-निर्माता और सौराष्ट्र-सचिव श्री. वी. सी. मेहता का लिखा हुआ ग्रंथ। इसकी सहायता से कोई गृहस्थ धनी पुरुष २ हजार रुपये से लेकर ३ लाख रुपये तक की आलीशान इमारत, घर, बंगला आदि बनवा सकता है। ४०० पृष्ठ, २०० चित्र मैप डिज़ाइन वगैरह। राष्ट्रपिता पू. वापू ने आशीर्वाद दिया। स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान ने सुन्दर सम्मति दी और डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र भूतपूर्व दीवान रायगढ स्टेट ने प्रस्तावना लिखी। भवन-निर्माण कला का शास्त्रीय ग्रन्थ है। मूल्य १२ रु. डा. ख. १ रु.

उक्त पुस्तकों के मिलने का पता:—

हिन्दी पुस्तक भंडार, धंतोली नागपुर (१)

Printed by V. M. Kulkarni at the All India Reporter Press and
Published by him at Bharati Karyalaya, All India Reporter Ltd., Nagpur.
D/- 7-7-1950.

(All Rights Reserved.)

भारती

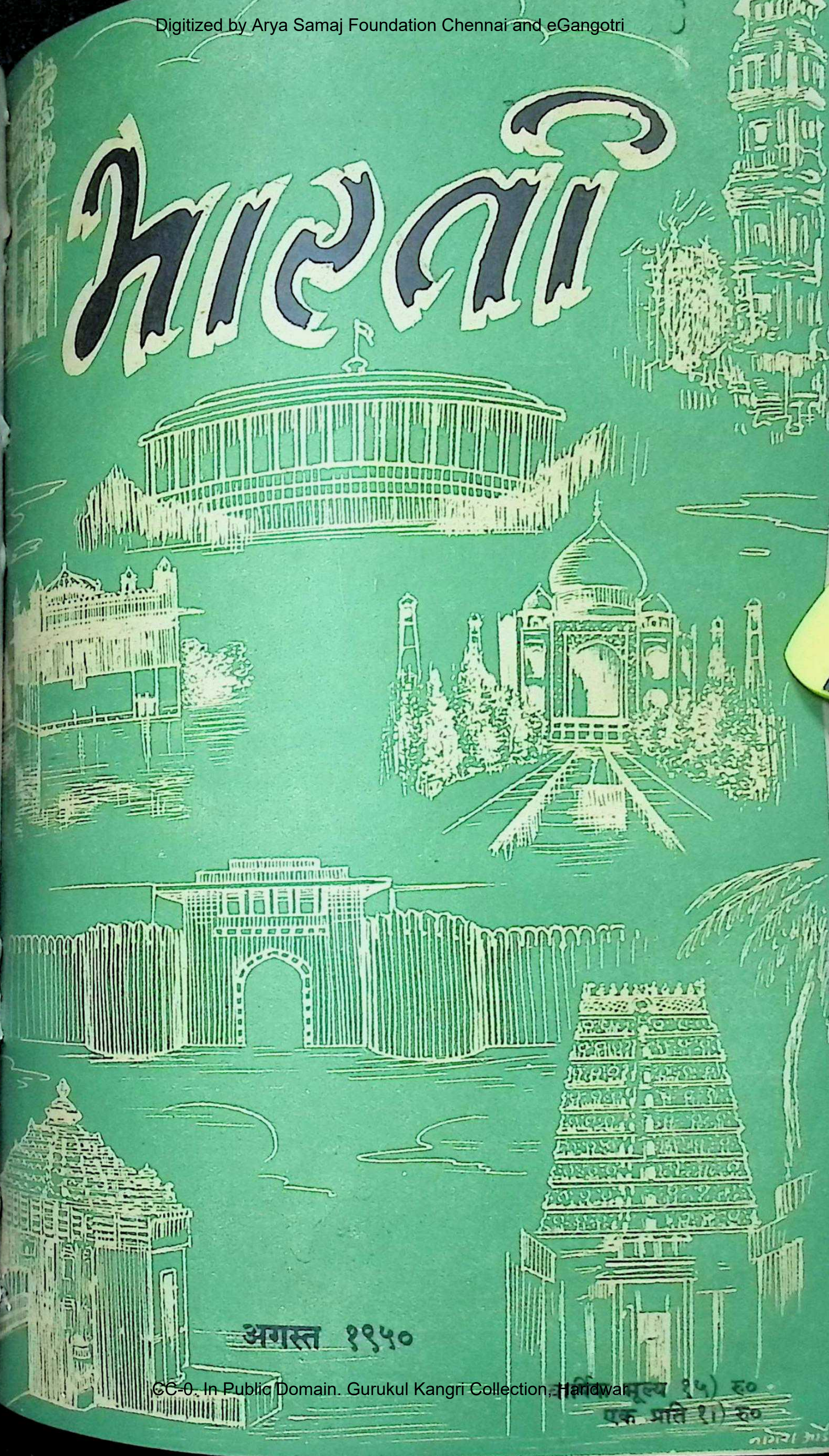

अगस्त १९५०

वार्षिक मूल्य १५) रु०
एक प्रति १।) रु०

इस अंक के लेखक

१. श्री० उदयशंकर भट्ट :

परिचय मई के अंक में।

२. श्री० दादा धर्माधिकारी :

परिचय अप्रैल के अंक में।

३. श्री० विद्रोही :

पूरा नाम श्री जीवनलाल वर्मा। 'विद्रोही' उपनाम (तखल्लुस) है जिसे वे अपनी रचनाओं में रखते हैं। मध्यप्रदेश की तरुणाई का वे अपनी काव्य-प्रतिभा में मौलिक प्रतिनिधित्व करते हैं।

४. श्री० विजयेन्द्रकुमार माथुर, एम० ए० :

परिचय फर्वरी के अंक में।

५. श्री० साने गुरुजी (स्वर्गीय) :

यूनान के महात्मा वीर सॉक्रीटीज (सुकरात) की तरह मृत्यु का स्वयं आलिंगन-चुम्बन करने वाले। मराठी के सात्त्विक समर्थ साहित्यकार। एक क्रान्तिकारी कवि। सानेजी का सारा जीवन ही सेवामय, त्यागमय, वात्सल्यमय और गान्धीजी के आदर्शों के अनुसार मानवतावादी रहा। गत १९४२ के अगस्त-आन्दोलन में, त्रिचिनापल्ली जेल-जीवन में आपने विपुल, सरल, समृद्ध, प्राणवान् साहित्य प्रासाद-गुणयुक्त मराठी में निर्माण किया'। 'श्यामूची आई' गुरूजी का अत्यन्त लोकप्रिय अतिकोमल मराठी उपन्यास है। 'श्यामू की मां' के रूप में उसका हिन्दी अनुवाद भी काफी प्रसिद्ध हुआ। साने गुरुजी आधुनिक महाराष्ट्र के समाजवादी नेता थे।

६. श्री० शम्भुप्रसाद बहुगुणा, एम० ए० :

परिचय अप्रैल के अंक में।

७. श्री० सतीशचन्द्र गुह ठाकुर :

'Indiana' (इंडियाना) अंग्रेजी पत्रिका के सम्पादक। पत्रिका बनारस से निकलती है। श्री सतीशचन्द्रजी साहित्य, कला और संस्कृति के विभिन्न केन्द्रों में, उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य कर चुके हैं। शान्तिनिकेतन विश्वभारती के कला भवन निरीक्षक, काशी विश्वविद्यालय जर्नल के सं० सम्पादक, स्वराज्यभवन प्रयाग के पुस्तकालयाध्यक्ष, प्रयाग विश्वविद्यालय के सह पुस्तकालयाध्यक्ष और डॉक्टर सर यदुनाथ सरकार के तत्त्वावधान में अवैतनिक संग्रहालयाध्यक्ष, विहार विद्यापीठ के प्रा आदि आदि।

८. श्री० रामेश्वरदयाल दुबे, एम० ए० :

परिचय जून के अंक में।

९. श्री० वारणासि राममूर्ति 'रेणु' :

परिचय फर्वरी के अंक में।

१०. श्री० राधाकृष्ण तिवारी, एम० ए० :

मध्यप्रदश के भावुक, कोमल कसक भरे तरुण क

११. श्री० विष्णु प्रभाकर :

परिचय मई के अंक में।

१२. श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी :

हमारी तरुण पीढ़ी के लिए आदर्श सम्पादकाचार्य, हिन्दी-पत्रकारिता का स्तर सदैव ऊँचा रखनेवाले, जिनकी योग्यता पर स्व. दीनबन्धु एण्ड्रयूज, स्व. रा. आनरेबिल श्रीनिवासशास्त्री, केशव पिल्लई और राष्ट्रपिता गान्धी मुग्ध थे। जिनके लेखन में और स्पष्ट कथन में औचित्य और अर्थवाहकता है। वे हिन्दी के अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों की उद्भावना करते हैं और सुझाव देते हैं। उन्हीं के मुँह से, उन्हीं के शब्दों में, चतुर्वेदीजी अपने व्यक्तित्व में, गु, स्वभाव और शैली में आपादमस्तक अराजक हैं।

१३. श्री० विनयमोहन शर्मा :

परिचय मार्च के अंक में।

१४. श्री० कन्हैयालाल सहल :

एम० ए०। बिडला कालेज पिलानी के हिन्दी-सं विभाग के अध्यक्ष। सिद्धहस्त समालोचक। रा स्थानी साहित्य, कला और संस्कृति के मर्म विवेचक।

१५. श्री० 'अंचल' :

हिन्दी-जगत् में प्रसिद्ध श्री रामेश्वरप्रसाद शु 'अंचल' एम० ए०। जबलपुर राबर्टसन कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर। प्रतिभासम्पन्न अति प्रग शील तरुण कवि, कहानी-उपन्यास लेखक और समालोचक। 'अंचल' का कवि डगमगाते मानव को समयबल का संबल पहुँचाने के लिए आत्मलोप और आत्मत्याग की कला का सृजन करता है।

(शेष मुखपृष्ठ के तीसरे पृष्ठ पर)

इस अंक की पाठ्य सामग्री

विषय और लेखक [अगस्त १९५०]

[भारती]

पृष्ठ संख्या

१. आनन्द ध्वनि ! [स्व० गुरुदेव रवीन्द्रनाथ] ... ६५७
२. स्वदेश-वन्दना (कविता) [श्री. उदयशंकर भट्ट] ... ६५८
३. यह अगस्त का महीना (लेख) [श्री. दादा धर्माधिकारी] ... ६५९
४. दो बोल ! (कविता) [श्री. विद्रोही] ... ६६५
५. शाकुन्तल के कुछ प्राकृतिक वर्णनों की सार्थकता (लेख) [श्री. विजयेन्द्रकुमार माथुर] ... ६६६
६. प्रतीक (मराठी) [स्व० श्री. सानेगुरूजी, अनु. कु. भारती शर्मा] ... ६७२
७. सिद्धनाथ साहित्य और गोरखवाणियाँ (लेख) [श्री. शंभुप्रसाद बहुगुणा] ... ६८०
८. प्रभाताकाश गीतपूर्ण ! (बंगाली कविता) ... ६९०
९. 'लिपि भारती' (एक चर्चा) [श्री. सतीशचन्द्र गुह ठाकुर] ... ६९१
१०. संवेदना (ध्वनि नाट्य) (ऑ. इं. रे. सौ.) [श्री. रामेश्वरदयाल दुबे] ... ६९८
११. तेलुगु उपन्यास (तेलुगु साहित्य) [श्री. वारणासि राममूर्ति 'रेणु'] ... ७०८
१२. जो गीतों में कसक उठे (कविता) [श्री. राधाकृष्ण तिवारी] ... ७१३
१३. नई संस्कृति (कहानी) [श्री. विष्णु प्रभाकर] ... ७१४
१४. श्रीराम शर्मा (रेखाचित्र) [श्री. बनारसीदास चतुर्वेदी] ... ७२०
१५. तव विरहे वनमाली ! (कविता) [श्री. विनयमोहन शर्मा] ... ७२८
१६. वीरता की समाधि (लेख) [श्री. कन्हैयालाल सहल] ... ७३०
१७. कैसे दीप जलेगा ? (कविता) [श्री. 'अंचल'] ... ७३३
१८. श्रम का महत्व (निबन्ध) [श्री. केशव गोपाल निगम] ... ७३४
१९. इण्डोनीसिया में हमारी शब्दश्री (निबन्ध) [श्री. डॉ. लोकेशचन्द्र] ... ७३७
२०. दो कविताएँ (कविता) [श्री. प्रभाकर माचवे] ... ७४१
२१. ईद की सौगात (कहानी) [श्री. ज़हूरबख्श] ... ७४२
२२. पूर्णिमा (धारावाही हिन्दी-उपन्यास) [श्री. अनन्त गोपाल शेवडे] ... ७५१
२३. विविध [श्री. ललिता प्रसाद पुरोहित] ... ७५९
२४. साहित्यालोचन [श्री. विनयमोहन शर्मा] ... ७६३
२५. दृष्टिकोण (सम्पादकीय) ... ७६६

* * *

'भारती' के नियम और उद्देश्य।

१. भारती प्रतिमास ७ तारीख को प्रकाशित होती है।

२. भारती में साम्प्रदायिक अथवा मत-मतान्तरों से सम्बन्धित, विवाद-ग्रस्त लेख प्रकाशित नहीं होंगे।

३. भारती भारत की विशुद्ध अन्तर्प्रान्तीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रगतिशील चिन्तन-प्रधान सचित्र मासिक पत्रिका है।

४. भारती में प्रतिमास लगभग १०० पृष्ठ रहेंगे।

५. किसी लेख, रचना, कविता आदि को छापने या न छापने का, उसे कम-बढ़ करने का और लौटाने न लौटाने का अधिकार संपादक को है।

६. भारती का उद्देश्य समस्त उच्च भारतीय भाषाओं के साहित्य को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना है जिससे वह भारत के समस्त भाषा-भाषियों की वस्तु बन सके।

७. भारती का दृष्टिकोण नव चेतना को लिये हुए रचनात्मक है। वह नये भारत में ऐसे हिन्दी साहित्य का निर्माण चाहती है; जिसमें भारतीय साहित्य का समन्वय हो—सर्वोदय हो।

८. भारती में हिन्दी की मौलिक श्रेष्ठ रचनाओं के साथ साथ —
१ असमिया, २ बंगला, ३ उड़िया, ४ नेपाली, ५ काश्मीरी, ६ सिंधी, ७ गुजराती, ८ मराठी, ९ तमिळ, १० तेलुगु, ११ कन्नड, १२ मळ्यालम आदि १०–१२ प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुई श्रेष्ठ अनूदित उच्च साहित्यिक रचनाएं भी प्रकाशित होंगी।

९. भारती में मनन करने योग्य विविध विषयक लेख, मनोवैज्ञानिक कलात्मक कहानियां, धारावाहिक उपन्यास, कविता, एकांकी, विविध समालोचनाओं का समावेश होगा।

१०. प्रकाशनार्थ समस्त सम्पादकीय व्यवहार नीचे लिखे पते पर कीजिये :—

लेखकों के लिये खास सूचना :—

(१) 'भारती' में प्रकाशनार्थ रचना, आदि कम से कम एक मास पहले, ता. १० तक, सम्पादक के पास भेज देना चाहिए। लेख-रचना सामग्री साफ, सुथरे कागज के एक ही ओर स्वच्छ सुपाठ्य अक्षरों में लिखी जानी चाहिए।

(२) लेखक कृपया इस बात को हमेशा ख्याल में रखें कि वे जो कुछ रचना-सामग्री, कविता-कहानी-एकांकी-निबंध-लेख आदि 'भारती' में प्रकाशनार्थ भेजें, वह नवीनतम हो। इतः पूर्व पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित बासी तथा बची खुची न हो। लेखक कृपया सीधे सम्पादक को ही रचनाएँ भेजें। किसी अभिषद-परिषद् या सिंडिकेट आदि के द्वारा नहीं। आपकी भेजी मौलिक और अनूदित रचनाएँ भारतीय साहित्य में स्थायित्त्व ग्रहण करें इस दृष्टि से उनका स्तर उच्च हो।

अस्वीकृत रचना को वापस मंगाने के लिये डाक-टिकट अवश्य भेजें।

वार्षिक मूल्य १५ रु.
एक प्रति १।) रु.

संपादक, 'भारती'
C/o ऑल इंडिया रिपोर्टर लि.
कांग्रेस नगर, नागपुर (१) (मध्यप्रदेश)

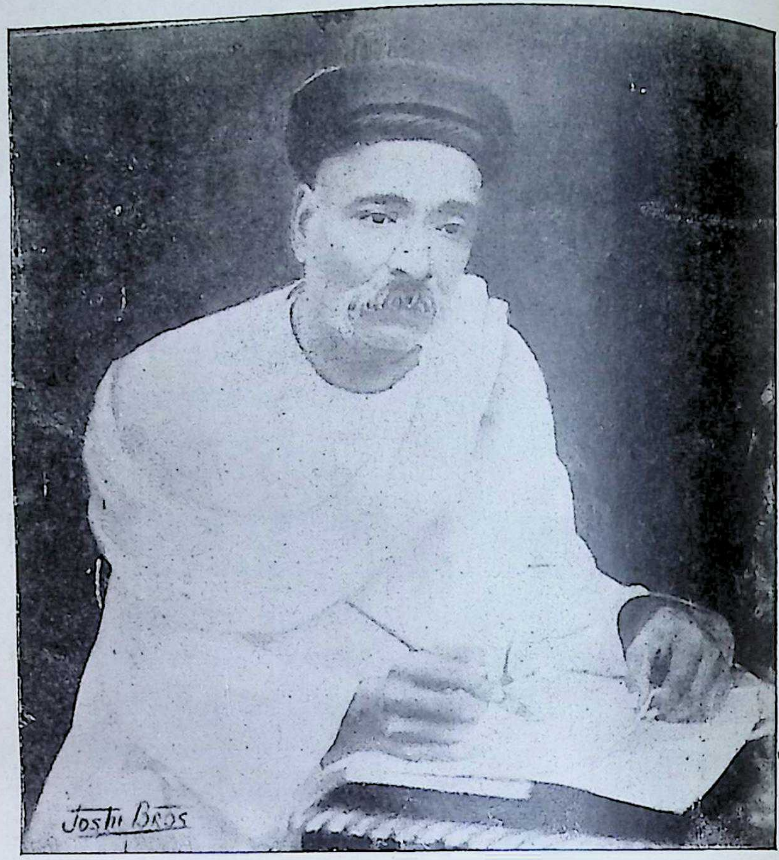

‘नमः श्रीशाय जनतात्मने’

“यह भारतभाग्यविधाता जनतात्मा लोकमान्य तिलक का चित्र है। उनके चरित्र का हम सबको अनुकरण करना चाहिए।”

‘लोकमान्य सदा मेरे लिए अथाह समुद्र रहे।’ —महात्मा गान्धी

" भगवान ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।"
— मैथिलीशरण गुप्त.

भारती

सम्पादक
हृषीकेश शर्मा

संचालक
ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., नागपुर

प्रवन्ध-सम्पादक
वि. मा. कुलकर्णी

वर्ष १ * नागपुर, अगस्त—१९५० * अंक ८

आनन्दध्वनि !

मैं अपनी भूखी-प्यासी मातृभाषा की तरफ़ से, अपने ही देश के विश्व-विद्यालयों के द्वार पर खड़ा हुआ, चातक की तरह उत्कंठित वेदना के साथ प्रार्थना करता हूँ, 'हे शिक्षा-मन्दिर! तुम्हारे अभ्रभेदी शिखर को घेरे हुए जो पुंज—के—पुंज घने श्यामल बादल घूम-फिर रहे हैं, उनका प्रसाद आज फल और अनाज पर बरसने दो; ताकि फूल और पत्तों से यह भूमि सुन्दर हो उठे। मातृभाषा का अपमान दूर हो। युग-शिक्षा की उमड़ती हुई धारा हमारे चित्त की सूखी नदी के रीते मार्ग से बाढ़ की तरह वह निकले। उसके दोनों तट पूर्ण चेतना से जाग उठें, और घाट-घाट पर मुखरित हो उठे आनन्दध्वनि !'

— **स्वर्गीय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर.**

स्वदेश-वन्दना

[श्री. उदयशंकर भट्ट]

स्वदेश को नवीन ज्ञान मान दान दो ।
नवीन प्राण दो प्रवुद्ध स्वाभिमान दो ॥

कि गान गा उठे धरा गिरा अमर अचल
मनुष्य के चरण बढ़ें तिमिर कुचल कुचल
वसन्त खिल उठे अनन्त प्राण भर उठें
अनेक कंठ 'जय स्वदेश' से उभर उठें
विपिन विपिन हरित, सरित सुनीर से वहें
शिखर गगन छुएं चुएं अधीन घन रहें
किसान अन्न दें ललाम वृक्ष छांह दें
मनुष्य को मनुष्य मान मान, राह दें ॥
स्वदेश को नवीन स्वर नवीन गान दो ।
नवीन प्राण दो प्रवुद्ध स्वाभिमान दो ॥

हृदय उदार हो मनुष्य का मनुष्य को
अखंड प्यार हो मनुष्य का मनुष्य को
मनुष्य हम वनें यही अनादि लक्ष्य है
मनुष्य के लिए नींहा मनुष्य भक्ष्य है
कि युद्ध के पिशाच का न नाच हो कहीं
परख सकें मणी मणी न कांच हो कहीं
मनुष्य हो स्वतन्त्र अर्थ का न दास हो
स्वदेश में मनुष्य का नया विकास हो
स्वदेश को नवीन बल नया विधान दो।
नवीन प्राण दो प्रवुद्ध स्वाभिमान दो ॥

स्वदेश को नवीन बन्धु-भाव चाहिये
स्वदेश को न प्रान्त में दुराव चाहिये
न वर्ण जाति भेद का विचार चाहिये
न बन्धु पक्षपात का प्रचार चाहिये
स्वदेश है महान् देव, धर्म है यही
स्वदेश है महान् ज्ञान कर्म है यही
स्वदेश के लिए मरें स्वदेश पर जियें
स्वदेश कीर्तिगान की अमर सुधा पियें।
स्वदेश को नवीन तेज ओज मान दो।
नवीन प्राण दो प्रवुद्ध स्वाभिमान दो ॥

(१५ अगस्त के लिये)

यह अगस्त का महीना

[श्री दादा धर्माधिकारी]

'ऑगस्ट' शब्द के अँग्रजी में दो अर्थ हैं। केवल उच्चारण में 'आघात' का थोड़ा-सा भेद है। एक अर्थ है उन्नत, श्रेष्ठ, और दूसरा अर्थ है साल का आठवाँ महीना। किसी जमाने में इस महीने का नाम Sextilis (सेक्सटिलिस) था। उस वक्त वर्षारम्भ 'मार्च' (कूच) के महीने से होता था। इसलिए यह महीना 'षष्ठमास' कहलाता था। बाद में इसका नाम ऑगस्ट रखा गया। जगद्-विख्यात ज्यूलिस सीजर के पौत्र, रोमन साम्राज्य के सर्वप्रथम सम्राट् 'ऑगस्टस्' का नाम इस महीने को दिया गया। आगस्टस् वड़ा प्रतापी और उन्नत विचारों का सम्राट था। यूरोप के इतिहास में उसका राज्यकाल भौतिक और सांस्कृतिक समृद्धि का एक चिरस्मरणीय पर्व माना गया है। उसके जीवन की कई प्रमुख घटनाएँ संयोगवश इस महीने में घटीं; इसलिए उसकी स्मृति में इसे 'ऑगस्ट मास' का नाम दिया गया। ऑगस्ट का अर्थ है श्रद्धेय, आदरणीय, बहुमानास्पद।

हमारे देश में प्राचीन परंपरा से कई महीनों का विशिष्ट महत्त्व माना गया है। भगवद्गीता में स्वयम् भगवान् श्रीकृष्ण ने "**मासानां मार्गशीर्षोऽहम्**" कह कर अपनी विभूतियों में मार्गशीर्ष मास की गिनती करायी है। श्रावण मास शिव और विष्णु दोनों के उपासकों के लिए विशेष व्रताचरण का मास है। भाद्रपद पितरों के तर्पण का मास है। कार्तिक और चैत्र का माहात्म्य भी सर्वविदित है। इस प्रकार हरएक महीने की महिमा और पवित्रता किसी-न-किसी विशिष्ट व्रतोपासना, भावना या संकेत पर अधिष्ठित है। देव, ऋषि, पितर और सारे संसार में अवस्थित भिन्न भिन्न भूतों के संतर्पण के लिए, प्राणिमात्र की संतुष्टि के लिए, अलग अलग तिथियाँ, पर्व या अवधियाँ निर्दिष्ट हैं। एकादशी और शिवरात्रि के अतिरिक्त, शिव और विष्णु के विशिष्ट 'वार', 'सप्ताह और 'नवरात्र' भी निर्धारित किये गये हैं। सौर कालगणना के अनुसार फरवरी अठ्ठाइस दिन का है। परन्तु 'अठ्ठाइस को फरवरी, चौथे सन् उनतीस' का हो जाता है। चान्द्र काल-गणना के अनुसार हर तीसरे वर्ष अधिकमास या तेरहवां महीना आता है। हमने उसे व्रत और उपासना का विशेष पर्व मान कर 'पुरुषोत्तम मास' कहा है।

इस वर्ष अगस्त में ही श्रावण मास पड़ता है। अठारह अगस्त के दिन 'नागपंचमी' पड़ती है। भूतमात्र की उपासना का यह पुण्य पर्व है। नागपंचमी के दिन 'विषधर' शेष की पूजा की जाती है। परमात्मा न केवल विश्वात्मा ही है, अपितु वह 'भूतात्मा' और 'भूतभावन' भी है। इस लिए भूतमात्र के भावन और अभिभावन का संकेत नागपंचमी में निहित है। ऋषिपंचमी का महत्त्व द्विविध है। उस में ऋषिजीवन की महानता और ऋषभ का महत्त्व दिखाने का उद्देश्य है। गाय और गोवंश के श्रम से उपार्जित हर एक वस्तु को वर्ज्य वतला कर मानवीय जीवन-निर्वाह और संस्कृति में गोवंश की उपयोगिता सूचित की है। इस आत्यंतिक स्वावलंबी और अपरिग्रही जीवन की महत्ता और दुःसाध्यता का प्रत्यय दिलाने के लिए 'ऋषिपंचमी' का व्रत है। नागपंचमी का संकेत इस से भी अधिक उदात्त और पवित्र है। हमारी प्राचीन परंपरा में विष को भी एक उपादेय रत्न माना है। विष भी जब जीवननिर्वाह का साधन वन जाता है, तब वह भेषज हो जाता है। विषधर शेष नाग को ही हमने धरणीधर माना है। विष भी समाज की धारणा का पोषक तत्त्व बन जाता है। मनुष्य की योजकता, हर वस्तु का सदुपयोग करने की उसकी कार्य-कुशलता, विष को भी जीवन का साधन बनाने में है। नागपंचमी का एक संकेत यह भी है।

नागपंचमी में एक दूसरा पवित्र संकेत और भी है। उसमें एक विशिष्ट दृष्टि की सूचना है। धर्मराज की निगाह में दुर्योधन भी 'सुयोधन' है और दुर्योधन की दृष्टि में धर्मराज भी 'युधिष्ठिर' हैं। सांप, विच्छू, जीव सृष्टि के प्रसिद्ध प्राणघातक और उत्पात-तत्पर जन्तु माने जाते हैं। शूकर गन्दा और घृणित है, व्याघ्र हिंसक और निर्घृण है। मत्स्य और कूर्म तुच्छ और मंद हैं। फिर भी भगवान् ने इन सवका रूप लेकर मनुष्य का गर्व-परिहार किया। उसने शेषनाग को अपनी शय्या बनाकर उसे अनन्त की पदवी दी। इस सव का ध्वनितार्थ यह है कि परमात्मा यदि अणुरेणु में विराजमान है, तो वह क्रूर, दुष्ट और पीड़नशील जीवों में भी विराजमान है। अपनी सज्जनता और श्रेष्ठता पर गर्व करनेवाले मानव को भूतमात्र के सामने नम्र वनाने के लिये नागपंचमी की योजना है। मानव अपने हृदय की शुद्धता से शत्रु को भी मित्र वना सकता है और व्याघ्र तथा सर्पों को भी अपना हितू बना सकता है। भाव-शुद्धि का यह उपदेश सन्त तुकाराम जैसे अनुभवी तत्त्वज्ञ ने दिया है। मानव अपने विज्ञानवल से विष का प्रयोग भी अमृत की तरह कर सकता है। यह नागपंचमी का दूसरा सन्देश है। लेकिन यह तभी होगा जब कि हमारी दृष्टि दुर्योधन में भी सुयोधनता के अव्यक्त वीज देखने में समर्थ होगी। इस लिए भावशुद्धि सबसे पहली अवश्यकता है। यही हृदय-परिवर्तन है।

श्रावण मास इस वर्ष अगस्त महीने के साथ आया है यह केवल संयोग है। इस लिए नागपंचमी के विषय में कुछ लिखा। अंग्रेजी राज की स्थापना के वाद सारे भारत में सभी प्रकारके लौकिक व्यवहार में सौर काल-गणना का प्रारंभ हुआ। महीनों के नाम भी अंग्रेजी के ही प्रचलित हुए। भारत के आधुनिक राजनैतिक इतिहास में अगस्त महीने का विशेष महत्व है। हमारे राष्ट्रीय जीवन में कई मुख्य मुख्य परिवर्तन इसी महीने में हुए हैं। इस लिए यहां अगस्त मास का थोड़ासा माहात्म्य वर्णन किया जाता है।

सव से पहले पहली अगस्त की महिमा आती है। यह दिन लोकमान्य तिलक की पुण्यतिथि का और असहयोग आन्दोलन के श्रीगणेश का है। मराठी में कहावत है, **'आजा मरा, नाती हुआ'**। मतलव यह कि पितामह की मृत्यु के साथ साथ पुत्र के जन्म का अर्थ यह है कि कुल की सन्तान-परम्परा अविच्छिन्न रहेगी। अर्थात् दादा की मृत्यु के कारण कुलक्षय का डर नहीं रहा। दूसरी एक धार्मिक परिपाटी भी वड़ी अर्थपूर्ण है। जब हम किसी धर्म-ग्रंथ को पारायण के लिए लेते हैं, तो एक अध्याय समाप्त होने के वाद, पोथी वेठन में लपेटने से पहले अगले अध्याय का पहला श्लोक पढ़ लेते हैं। अभिप्राय यह है कि किसी भी शुभ-कार्य से विराम 'इतिश्री' की भावना के साथ नहीं, वरन 'अथश्री' की भावना से लेना चाहिए। लोकमान्य के देहावसान पर गांधीजी ने जो श्रद्धा-पूर्ण, मृत्यु-लेख लिखा उसमें कहा, 'लोकमान्य मर गये, लोकमान्य चिरायु हों'। इस तरह की घोषणा राजा की मृत्यु के अवसर पर की जाती है। राजा एक व्यक्ति नहीं, राजा एक संस्था है, एक पद है। इसलिए राजा की मृत्यु के मुहूर्त पर उसके उत्तराधिकारी का राज्याभिषेक होता है। शुभ-कार्य का अनुष्ठान करनेवाला कर्म-योगी उद्यापन के शान्तिपाठ के साथ कार्यनिवृत्त होने के वदले एक कार्य के शान्तिपाठ के साथ साथ दूसरे कार्य का 'हरिः ॐ' कर देना चाहता है। लोकमान्य ने स्वराज्यान्दोलन का सूत्रपात किया। जव जव उन्हें 'वलादिव' कार्य-विराम लेना पड़ा, उसके वाद उन्होंने अवसर पाते ही 'पुनश्च हरि ॐ' किया। 'पुनश्च हरिः ॐ', 'फिरसे ओनामा', शीर्षक लोकमान्य को वहुत प्रिय थे। इसी लिए उनकी अन्त्येष्टि के मुहूर्त पर ही गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन का 'हरिः ॐ' किया। स्वर्गीय लोकमान्य के विषय में श्री. चिन्तामणि ने अलाहावाद के 'लीडर' में जो मृत्यु लेख लिखा उसका पहला ही वाक्य था, 'वाल गंगाधर तिलक एक संस्था थे'। राजा जिस प्रकार एक संस्था है, उसी तरह जनता के नायक, जन-प्रतिनिधि, लोकमान्य तिलक भी एक संस्था थे। उनका व्यक्तित्व एक पद पर आरूढ़ था। इसी लिए लोकमान्य के लोकोत्तर उत्तराधिकारी गांधीजी ने लिखा, 'लोकमान्य मर गये, लोकमान्य अमर हों।'

'लोकमान्य' इस देश के पहले जन-नेता थे। नागपंचमी के प्रवर्तकों ने परमात्मा का दर्शन

१९५०

'भूतात्मा' के रूप में करना चाहा। लोकमान्य ने जनता-रूप जनार्दन की आराधना की। उनसे पहले वैधानिक आन्दोलन और सशस्त्र विद्रोह की गुप्त चेष्टाएँ होती रहीं। ये दोनों आन्दोलन जनता के लिये थे। लेकिन वे जनता के आन्दोलन नहीं थे। वे जनताभिमुख भी नहीं थे। वैधानिक आन्दोलन शासनाभिमुख था। वह सरकार के सामने गिड़गिड़ाता था, उससे हुज्जत करता था, उसीके साथ कहा-सुनी भी कर लेता था। दूसरा आन्दोलन भी जनता का हो ही नहीं सकता था। लोकमान्य ने पहले पहले जनता में स्वराज्य की उत्कंठा और उसके लिए सक्रिय यत्न करने की आकांक्षा उत्पन्न की। अंग्रेजी राज्य के लिए असन्तोष और विरोध का भाव जागृत किया। सर वेलंटाइन चिरोल जैसे समालोचक ने उन्हें 'भारतीय असन्तोष का जनक' की उपाधिसे महा महिमान्वित किया। असन्तोष की भावना को भावात्मक रूप देने के लिए उन्होंने 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध हक है', का अद्भुत मंत्र जनता को दिया और विरोध की भावना को कार्यान्वित करने के लिए बहिष्कार का अनुपम साधन बतलाया। उनकी अन्तर्दृष्टि ने देखा कि उस ज़माने में भगवान् को जनतात्मा के रूप में ही अवतीर्ण होना पड़ेगा। इस लिए उन्होंने 'जनतात्मा' को ही अपना इष्ट देव माना और उसीकी उपासना को स्वधर्म माना। अपना 'गीता रहस्य' उन्होंने "**श्रीशाय जनतात्मने**" समर्पित किया। जनतात्मा से तिलक का अभिप्राय 'मानवात्मा' से नहीं था। उन्होंने सर्वसाधारण जनता, याने भारत की प्रजा की जो आत्मा, अर्थात् राष्ट्रात्मा है, उसे जनतात्मा कहा। भारतात्मा या लोकात्मा ही उनके लिए परमात्मा था। विष्णुसहस्रनाम में जिसे लोकाध्यक्ष कहा है, उसी को तिलक ने 'राष्ट्रात्मा' या 'जनतात्मा' कहा है। इस जनतात्मा में प्रबोध, आत्मप्रत्यय और प्रतिकारात्मक शक्ति जागृत करने की अविरत चेष्टा तिलकने की। भारत के साधारण मनुष्य को प्रबुद्धात्मा बनाने के लिए उन्होंने उसे राष्ट्रीय विवेक सिखाया। 'विवेक' का अर्थ है आत्मा और अनात्मा के भेद का बोध। उन्होंने भारतीय जनता का विवेक जागृत किया उसे राष्ट्रीयता और अराष्ट्रीयता का भेद सिखाया। '**सर्वं परवशम् दुःखम्, सर्वमात्मवशम् सुखम्,**' का सूत्र एक दूसरे अर्थ में उसके सामने रखा। नतीजा यह हुआ कि सारे राष्ट्र में स्वाधीनता की और बहिष्कार योग की धूम मच गयी। राष्ट्रीय विवेक प्रतिकार के रूप में साकार हो उठा। १९०५ की सात अगस्त को विदेशी माल के बहिष्कार की घोषणा की गयी।

मुमुक्षा की वृत्ति का विकास विवेक और वैराग्य के अनुसरण से होता है। अनात्मा से होनेवाले लाभ का त्याग वैराग्य कहलाता है। लोकमान्य के समय में भारत के विवेक ने राष्ट्रीय तिरस्कार और प्रतिकार का रूप ले लिया था। राष्ट्रीय असन्तोष की यह दावाग्नि उनके नश्वर कलेवर को जलानेवाली चिताग्नि से और भी अधिक प्रज्वलित हो गयी थी। मानों उस अग्नि की उत्तुंग शिखाओं पर आरूढ़ होकर भारतीय जनता की वेदनाओं की आर्तध्वनि भगवान शेषशायी के सिंहासन तक पहुँचाने के लिए भारत का यह लोक-प्रतिनिधि स्वर्गारोहण कर रहा हो!

लोकमान्य ज्योंही जनतात्मा में विलीन हो गये और उनकी उत्तरक्रिया के नहीं, बल्कि उनके उत्तरकार्य के अधिकारी, सत्याग्रही नीति के प्रणेता और अनुष्ठाता गांधी ने ज्योंही स्वतंत्रता के आन्दोलन की बागडोर सम्हाली, त्योंही, याने ता० १ अगस्त १९२० के प्रातःकाल में ही, भारतीय राष्ट्र के वैराग्य पर्व का शुभारंभ हुआ। वैराग्य में संयम और निग्रह की प्रधानता होती है। इस लिए असहयोग का आन्दोलन राष्ट्रीय तप तथा त्याग का पवित्र अनुष्ठान था। लोकमान्य ने राष्ट्रीय आन्दोलन को जनताभिमुख और जनता-सुलभ बनाया। गांधीजी ने उसे नैतिक धरातल पर रखकर उसकी कार्यक्षमता और शास्त्रशुद्धता बढ़ायी। राष्ट्रीय बहिष्कार-आन्दोलन के प्रभावशाली प्रवर्तक लोकमान्य की पुण्यतिथि गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन की जन्मतिथि हुई। भारत के इतिहास में एक अभिनव नीति और प्रतिकार-प्रणाली का उपक्रम हुआ।

इसी महीने में दो और प्रसिद्ध पुण्यतिथियाँ आती हैं। विश्वभारती की कल्पना और प्रवृत्ति

के आद्यप्रवर्तक तथा अधिष्ठाता गुरुदेव रवि ठाकुर की पुण्यतिथि भी इसी महीने की सातवीं तारीख को पड़ती है। तिलक ने जनतात्मा के रूप में जिस भगवान् की उपासना की, उसीका संकीर्तन गुरुदेव ने 'मानूषेर नारायण' के रूप में किया। 'मानूषेर प्राणेर देवता' का यह उद्गायक और प्रशंसक अपनी गेय वस्तु के साथ सायुज्य पाने के लिए सातवीं अगस्त को यहां से प्रस्थान कर गया। रवि ठाकुर भारत माता के एकनिष्ठ वैतालिक थे, लेकिन वे उसे विश्वभारती के भव्य और उदात्त रूप में देखा करते थे। उनका भारतवर्ष केवल भारतीय जनता का प्रासाद ही नहीं है, यह 'महामानवेर सागर' है। भारत को उन्होंने विश्व की अनुपम प्रतिकृति माना और भारतीय राष्ट्र को विश्वराष्ट्र का अग्रदूत माना। इस लिए उन्होंने करुणाभरी वाणी में 'भारत भाग्य विधाता', विश्व-विधाता, भगवान् से शिकायत की, 'प्रभो, तेरे सिंहासन के सामने हम सब अपनी अपनी अभ्यर्थनाएँ और मांगें लेकर आते हैं; लेकिन हम में से कोई भी तेरे चरणों में अपनी चढ़ोत्री और नैवेद्य नहीं लाता।' वे चाहते थे कि भारतीय राष्ट्र के सभी अवयव माता की वेदी के सामने प्रसाद के याचक बन कर आने के बदले अपनी अपनी चढ़ोत्रियां और नैवेद्य लेकर पहुँचे। जिस अगस्त मास में वैराग्य और तितिक्षा का आदेश गांधी ने दिया उसी अगस्त मास में हमें समर्पण और उत्सर्ग की दीक्षा देनेवाला विश्वकवि अपनी 'जीवनगीतांजली' की मधुरध्वनि से सारे वातावरण को स्पन्दित करता हुआ दिव्य लोक को चला गया।

तीसरी पुण्यतिथि वापू के अनन्य सहयोगी और सहनिवासी महादेव भाई की इसी महीने के तीसरे सप्ताह में आती है। जिस आत्मसमर्पण और तल्लीनता के साथ महादेवभाई ने अपने आपको वापू को सौंप दिया था, उसकी इतिहास में शायद ही कोई मिसाल हो। महादेवभाई वापू के निजी सचिव ही नहीं थे, वे उनके आत्मज और परिचारक भी थे। महादेवभाई का आत्मसमर्पण सम्पूर्ण था, निरपेक्ष था और अपरिमित था। अपने सेव्य व्यक्ति के साथ समरस हो जाने की उनकी शक्ति अपूर्व थी। उन्होंने वापू में अपने आपको मानों खो ही दिया था। वापू के गुणों के विकास में और वापू के कार्य की प्रगति में उन्होंने अपनी सारी शक्तियां और सारे गुण खपा दिये। 'पीर, बबरची, भिश्ती, खर' वाली कहावत सर्व-विदित है। महादेवभाई श्रेष्ठ साहित्यिक थे, उत्कृष्ट रसोइये थे और निष्ठावान् सफइये भी थे। उन्हें साहित्य के निर्माण और परिशीलन में जितना आनंद आता था, उतना ही आनंद पाक-क्रिया और पाखाने की सफाई में भी आता था। महादेव-भाई एक ऐसे रसिक थे जिन्हें आश्रम-जीवन की शुचिता में अनूठा रस आता था। वापू का यह अद्वितीय निजी सचिव, उनके लेखों और भाषणों का यह असामान्य संपादक, यह अद्भुत प्रतिभा-शाली प्रतिनिवेदक और सहयोगी, वापू के ही अनुरूप था। आगाखां प्रासाद की उस विलासभूमि को वापू के दो निकटतम साथियों ने अपनी अस्थियों से पुनीत किया—बा ने और महादेव भाई ने। अपनी सहयोगिनी और आत्मज की भस्म से उस भूमि को एक पुण्यक्षेत्र में परिणत होते वापू ने देखा। उनकी तपःपूत मुद्रा के चारों ओर करुणायुक्त तेज का वलय प्रस्तुत करके बा और महादेव भाई ने अपने आत्मोत्सर्ग को चरम सीमा तक पहुँचाया।

अगस्त महीने में दो और पुण्य श्लोक राष्ट्रीय विभूतियों के पवित्र दिन आते हैं। आधुनिक भारत के जन्मदाता और भारतीय राष्ट्रीयता के पैगम्बर राजा राममोहनराय का जन्म बीस अगस्त, १८२८ को हुआ। भारत में सांस्कृतिक सामंजस्य के सिद्धान्त के अनुष्ठाता और प्राणस्वरूप स्वामी रामकृष्ण-परमहंस देव ने ता० १६ अगस्त, १८८६ के दिन ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त किया। आधुनिक भारतीय राष्ट्रधर्म के संस्थापक की जन्मतिथि और सांस्कृतिक सामंजस्य की साक्षात् प्रतिमा रामकृष्ण परमहंस देव के देहविसर्जन की पुण्यतिथि, इस अगस्त महीने की महिमा को इन दो महान् विभूतियों ने अपने जन्म-ग्रहण और शरीर-विसर्जन से बढ़ाया है।

अगस्त महीना इस दृष्टि से पुण्य श्लोकों के तर्पण का पर्व भी है। हम भक्तिपूर्वक स्वतन्त्रता के मंत्र-दाता लोकमान्य का, विश्वभारती के प्रतिष्ठाता

१९५०

गुरुदेव और आत्मोत्सर्ग के अनुष्ठाता महादेवभाई का तर्पण करते हैं।

हमारे स्वातंत्र्य संपादन के उद्योग में कई युगान्तरकारी घटनाएँ इसी अगस्त मास में घटीं। उन्नीस सौ सत्रह की बीस अगस्त को भारत-मंत्री एड्विन मॉंटेग्यु ने प्रथम जागतिक युद्ध के पश्चात् अपनी प्रसिद्ध घोषणा की। भारतीयों को उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मात्रा में शासन में सम्मिलित करने का संकल्प और उत्तरदायी शासन-प्रणाली को उत्तरोत्तर अधिक प्रमाण में चरितार्थ करने का उद्देश्य इस निवेदन में घोषित किया गया था। इसी अगस्त मास की सोलह तारीख को १९१८ में कॉंग्रेस के बम्बई के विशेष अधिवेशन में मांटेग्यु चेम्सफोर्ड योजना के विषय में महत्वपूर्ण प्रस्ताव किया और १९३५ के भारतीय शासनसुधार कानून के बाद कॉंग्रेस ने सत्ता ग्रहण से पहले अपनी नीति का 'घोषणा पत्र' १९३६ में इसी अगस्त महीने की तेईसवीं तारीख को प्रकाशित किया। इसी अगस्त महीने की पंद्रह तारीख को बीस वर्ष बाद भारतीय स्वायत्त शासन की घोषणा मध्यरात्रि में हुई, भारत में अंग्रेजी सत्ता केवल नामशेष रह गयी, व्यवहार में उसका रंचमात्र भी अवशेष नहीं रहा। जिस अगस्त महीने में भारत से अंग्रेजी सत्ता का अन्त हुआ वह हमारे लिए परम महिमा-संपन्न मास है, इसमें आश्चर्य ही क्या है?

ईश्वर की नियति में कुछ नियम बड़े चमत्कृतिपूर्ण हैं। जो मृत्यु से नहीं डरता वह मृत्युंजय हो जाता है। मरने के लिए हमेशा तैयार रहने का ही नाम मृत्यु को जीतना है। सुनने में बात कुछ अटपटी-सी लगती है, किन्तु है बिलकुल वैज्ञानिक और वास्तविक। स्वेच्छा-मरण का मार्ग मृत्युपर विजय पाने का मार्ग है। ठीक उसी तरह जो स्वेच्छा से बन्धन स्वीकारता है वह बन्धन-मुक्त हो जाता है, क्योंकि उसके लिए बन्धन का भय नहीं रह जाता। भारतमाता के बन्धन काटने के लिए तिलक ने बड़ी वीरतापूर्वक कैदखाने की सजा का स्वागत किया। मरण का आलिंगन करने की तैयारी में से जिस प्रकार अमरत्व की सिद्धि होती है; उसी प्रकार अपनी इच्छा से स्वीकृत बन्धन में से स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। स्पष्ट ही है कि जहां 'अपनी इच्छा' से कोई काम किया जाता है, वहां मनुष्य अपना स्वामी आप होता है। दूसरों की इच्छा के अनुसरण का नाम गुलामी है। तिलक ने देश के लिए जेल जाना प्रतिष्ठित बना दिया। गांधी ने उस नीति का समावेश अपने असहयोग और सविनयभंग के आन्दोलन में कर के उसे अधिक कार्यक्षम और प्रभावशाली रूप दिया। पहले जेल मानहानि और भय का विषय था। अब वह गौरव का साधन बन गया। बन्धन का भय खतम होते ही बन्धन बन्धनकारक न रह कर, मुक्तता का साधन बन गया। मुक्तिकारक बन्धन-स्वीकार की नीति का उपक्रम लोकमान्य ने किया। १९०५ की सात अगस्त को जिस बहिष्कारयोग का आरम्भ हुआ उसकी परिणति ब्रिटिश सत्ता के बहिष्कार में और आगे चल कर असहयोग की नीति में हुई। उसी नीति का विकास सत्याग्रह आन्दोलन में हुआ और अन्त में आठ अगस्त के दिन भारत की ओर से कॉंग्रेस ने अंग्रेजों से भारत छोड़ जाने के लिए कहा। तुरन्त 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू हो गया। नतीजा यह हुआ कि १५ अगस्त १९४७ को भारतीय स्वतन्त्रता की स्थापना हो गयी।

व्रजभूमि को कंस की पीड़ादायक सत्ता में से मुक्त करने के लिए और अपने माता पिता के बन्धन तोड़ने के लिए श्रीकृष्ण ने कारागृह में जन्म लिया। भारतमाता को बन्धन से छुड़ाने के लिए अपनी इच्छा से कारानिवास स्वीकार करने का आरम्भ लोकमान्य ने किया और गांधीजी के जमाने में तो देशभक्तों के लिए 'कृष्णजन्मस्थान' एक पुण्यक्षेत्र ही नहीं, किन्तु निवासस्थान-सा ही बन गया। स्वतंत्रता के संग्राम के सिलसिले में 'जेलयात्रा' का अन्तिम पर्व ता० ९ अगस्त १९४२ को आया। ता० ९ अगस्त को देश के सभी छोटे-बड़े और मध्यम नेता पकड़ लिए गये। बापू, जवाहरलाल, सरदार, मौलाना साहब, राजेन्द्रबाबू आदि, सभी गिरफ्तार कर लिये गये। बापू को विश्वविख्यात धनपति और धनपतियों के धर्माध्यक्ष आगाखां के भव्य प्रासाद में स्थानबद्ध कर दिया गया। बापू के साथ बा थीं। बा का पत्नीत्व 'सहयोगिनीत्व' में कब का विकसित हो चुका था। महादेवभाई थे और बापू के आश्रम-

परिवार के अन्य कुटुंबी जन भी थे। दक्षिण आफ्रिका में बापू ने जेलखाने को ही अपना विश्रामस्थान मानना सीखा था। अब बड़े बड़े आलीशान मंजिल और मरातिब, सौध और अट्टालिकाएं भी उनके लिए कारागृह बन गयीं। एक कवि ने कहा है, 'पत्थर की दीवारों से जेलखाना नहीं वनता।' बापू जैसी असाधारण विभूति को एक भव्य हवेली में बन्द कर के हवेलियों और महलों के भी जेलखाने वनाने की कोशिश की गयी। काँग्रेस-कार्यकारिणी के सदस्यों और राष्ट्रपति को अहमदनगर के ऐतिहासिक किले में नजरबन्द किया गया। ये सब पुराने गढ़ पुराने जमाने में देशरक्षा के साधन थे। अब वे देशभक्तों और देशसेवकों के बन्दीगृह बन रहे थे। १९२१ में मौलाना मुहम्मदअली ने कहा था कि सारा हिन्दुस्तान ही एक वहुत वड़ा जेलखाना है। १९२१ के बाद इस देश के सभी किले, सभी महल और मंजिल और इस देश के प्रमुख नेताओं के घर भी संभाव्य कारागृह बन गये। आजाह हिंद फौज के निर्माता और सेनापति राष्ट्र-गौरव सुभाषवावू का अपना मकान ही उनकी वन्दीशाला थी। उन्होंने देखा कि जव मेरा अपना मकान ही जेलखाना हो गया है तो सारा देश ही एक विशाल जेलखाना है। इस राष्ट्रीय 'वेस्टिल' को तोड़ने के लिए उन्होंने देश के बाहर से उसकी दीवारों पर प्रहार करने का आयोजन किया। भारतीय वीरवृत्ति, त्याग और पराक्रम के इतिहास का एक रोमांचकारी और अभूतपूर्व प्रकरण लिखा गया। सुभाषवावू अमर हो गये! आज भी हनुमान विभीषण, परशुराम और व्यास की तरह इस देश के लोग उन्हें चिरजीवी मानते हैं। कोई विश्वास नहीं करता कि सुभाषवावू अव नहीं रहे।

इस भारतरूपी विशाल कारागृह पर वाहर से हथौड़े की करारी चोटें मारने की चेष्टा आजाद हिंद फौज के कुमार जैसे लोकोत्तर और ब्रह्मचारी सेनानी सुभाषवावूने की और अपनी दिव्य भावना तथा जीवन प्रणाली से इस कारागृहको स्वतंत्रतादेवी का प्रिय निवसस्थान वनाने की चेष्टा अहिंसक प्रतिकार के प्रवर्तक और नेता गांधीजीने और उनके साथियों ने की। देश भक्तों ने स्वेच्छासे और वडी खुशी के साथ गाते बजाते, नारे लगाते, जेल जाने की दीक्षा पायी थी। उनके लिये जेल जाना एक शौक की वात हो गयी। परिणाम यह हुआ कि जेल का जेलपन ही खतम हो गया। जव इस देश के जेलखाने ही स्वतन्त्रता के पुण्यतीर्थ वन गये, तो यह देश जेलखाना कव तक और कैसे रह सकता था!

आठ अगस्त के दिन भारतीय स्वतंत्रता का संकल्प उसी अरवी समुद्र के तट पर विधिपूर्वक और समारोहपूर्वक पढ़ा गया, जिस अरवी समुद्र के किनारे अंग्रेज़ों ने अपनी पहली कोठी वनायी थी। यह युग-प्रवर्तक प्रतिज्ञा उसी वंबई में की गयी जो किसी ज़माने में एक अंग्रेज़ राजा के दहेज की संपत्ति थी और जो आज भी सोने की चिड़िया मानी जाती है। दश दिशाओं को स्पंदित, निनादित और पुनीत करनेवाला यह डिंडिम भारत के उस महाद्वार पर से वजाया गया जिसमें से अंग्रेजी सम्राट और उनके प्रतिनिधि भारतभूमि पर पदार्पण करते थे। वेद-मंत्रों की पवित्र और गंभीर ध्वनि की तरह भारतीय वायु-मंडल में यह प्रतिज्ञा गूंज उठी, दसों दिक्पाल उस ध्वनि से अनुप्रेरित हो गये, देव-लोक में दुंदुभियां वजने लगीं। भारतवर्ष एक अपूर्व उत्कंठा से पुलकित हो उठा! भारतीय स्वतंत्रता के रण-यज्ञ की ये दुंदुभियां ब्रिटिश शासन के अवसान के धौंसे की तरह सारे साम्राज्य-वादियों के हृदयों को दहला और कँपा रही थीं। राम वन-गमन का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी ने लिखा है, '**कुसगुन लंक, अवध अति शोकू, हर्षविषाद-विवस सुरलोकू**'। ता. ९ अगस्त को भारत में यही दिव्यदृश्य फिरसे दिखायी दिया! ता. ८ अगस्त १९४२ के देवदुर्लभ दृश्य के वाद ९ अगस्त का यह रोमहर्षण दृश्य संसार ने देखा! स्वतंत्रता पर अपने प्राण न्यौछावर करनेवाले देश-भक्तों के हृदय में वीरवृत्ति हिल्लोरें ले रही थी, जिनके घर सूने हो रहे थे उन वीरों के परिवारों में एक पवित्र करुणामय और वीरश्री से सुगंधित वेदना थी, जो लोग इन रणदुंदुभियों को स्वतंत्रता के आगमन-सूचक मंगलवाद्य समझते थे, वे हर्ष-विषादाकुल थे। सारे राष्ट्र को एक नयी स्फूर्ति और नये प्रत्यय से अनुप्राणित कर देनेवाले उस पुण्यमुहूर्त का स्मरण भी पुण्यप्रद और प्रेरणाप्रद है।

त्याग, बलिदान और आत्मोत्सर्ग का यह जो अद्भुततरम्य अनुष्ठान ता० ९ अगस्त १९४२ को शुरू हुआ उसकी परिपूर्णता ता० १५ अगस्त के 'पारतंत्र्य-विसर्जन' के महोत्सव में हुई। ब्रिटिशसत्ता के अन्तिम गौरकाय प्रतिनिधि लॉर्ड माउंटबॅटन को उपाध्याय बनाकर ब्रिटिश सत्ता के विसर्जन का संकल्प यथाविधि उसी से पढ़वाया गया। ता० २६ जनवरी जो लोकसूय-यज्ञ का जो समारोह भारतीय लोकराज्य की प्राण-प्रतिष्ठा के मुहूर्त पर हुआ', उसीका यह मंगलाचरण था! अगस्त का अगस्ति और अगस्त्य के साथ नामसादृश्य है। अगस्त्य ने विंध्याद्रि को परास्त किया, दक्षिण में आर्यों के उपनिवेश बसाये, रामराज्य के संस्थापक श्रीरामचंद्रजी को विष्णु का खड्ग, धनुष और अक्षय तूणीर दिये। अगस्त्य बड़ा तत्त्वज्ञ और धनुर्विद्या-विशारद था। इसके जीवन की घटनाएँ लोकक्रान्ति की प्रवर्तक सिद्ध हुईं। अगस्त मास में भारत की स्वतंत्रता की उत्कटता, उसकी प्रतिकार-प्रवीणता और उसकी अडिग-तत्त्व निष्ठा तथा विघ्नों के विन्ध्याद्रियों को परास्त करने की उसकी दृढ़ता का साक्षात्कार समस्त संसार को हुआ, इसी लिए यह अगस्त मास आधुनिक भारत के इतिहास में एक अपूर्व शान्तिप्रवण युद्धपर्व है।

[२४ जुलाई १९५०]

दो बोल !

[श्री॰ 'विद्रोही']

सखि, ऐसे भी दो बोल लिखें !
संसार न क्रय कर सके जिन्हें, प्रियके घर माटी-मोल बिकें !!

जो हों सुख—दुखकी परिभाषा,——
जो सुलझे हों, पर उलझी हो, जिनमें जीवन की अभिलाषा !
परदे की धूमिल बातें जो, हिरदे की गाँठें खोल लिखें !!
सखि, ऐसे भी दो बोल लिखें !

री ! जिनने वह छवि आँकी हो,——
हाँ, जिनके हास-रुदन में ही, आनन्द-कन्द की झाँकी हो !
उनकी गरिमा की महिमा जो अपनी लघिमापर तोल लिखें !!
सखि, ऐसे भी दो बोल लिखें !

जीवन की जय-अपजय ढोकर,—
जो कहने को तो कवि के हों, पर रहें सदा छविके होकर !
जो हों गिनती के दो ही पर, संयोग एक अनमोल लिखें !!
सखि, ऐसे भी दो बोल लिखें !

'शाकुन्तल' के कुछ प्राकृतिक वर्णनों की सार्थकता

[श्री विजयेन्द्र कुमार माथुर]

'भारती' के गत अप्रैल के अंक में प्रकाशित एक लेख में हमने कालिदास के प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल के स्थानों का भौगोलिक आधार पर संक्षिप्त परिचय दिया था। इस लेख में उक्त नाटक में वर्णित कुछ अन्य विशिष्ट बातों का उल्लेख करेंगे जिन पर अभी तक यथेष्ट प्रकाश नहीं डाला गया है।

हमने पिछले लेख में यह प्रमाणित करने का प्रयास किया था कि इस नाटक की भौगोलिक पार्श्वभूमि उत्तर प्रदेश के बिजनौर, मेरठ तथा मुजफ्फरनगर नामक तीन जिलों के कुछ भागों द्वारा बनी है। हस्तिनापुर जिला मेरठ में शक्रावतार तथा शचीतीर्थ जिला मुजफ्फरनगर में तथा कण्व का आश्रम और दुष्यन्त का आखेट-वन जिला बिजनौर में स्थित हैं।

कालिदास प्रकृति के महान् कवि हैं। उनकी सभी रचनाओं में प्रकृति के वर्णन आश्चर्यजनक रूप से अंकित हैं। जहाँ जहाँ उन्होंने किसी विशेष स्थान के सम्बन्ध में प्राकृतिक दृश्यों, पशुपक्षियों तथा पेड़–पौधों के चित्र खींचे हैं वहाँ सभी स्थलों पर ये चित्र स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल एवं ठीक ठीक बन पड़े हैं। प्राकृतिक वर्णनों में काव्यसौन्दर्य के साथ भौगोलिक तथ्य का मेल कालिदास की विशिष्ट कला है। उनकी अद्भुत प्रतिभा का संचार प्रकृति के उजले तथा अँधेरे, विस्तृत तथा संकीर्ण सभी क्षेत्रों में समान रूप से हुआ है। अनेक प्रसंगों में गौणरूप से आनेवाले तथा कथानक की दृष्टि से क्षुद्र तथा उपेक्ष्य दीखनेवाले वर्णनों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ये वर्णन केवल सार्थक ही नहीं; वरन् एक सूक्ष्म दृष्टि से आलेखित चित्र के अपरिहार्य अंग हैं। हमारे इस लेख का उद्देश्य शकुन्तला नाटक के कुछ ऐसे ही अप्रकाशित स्थलों को प्रकाश में लाना है।

प्रथम अंक के प्रारम्भ ही में रथासीन दुष्यन्त एक मृग का पीछा करता हुआ दिखाई देता है– सारथी मृग तथा राजा को लक्ष्य करके कहता है—

"कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्य कार्मुके। मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्" ॥

अर्थात् 'धनुष खींचे हुए तुम्हें तथा काले मृग को देखते हुए मुझे तो तुम (यज्ञरूप) हरिण के पीछे भागते हुए शिव के समान जान पड़ते हो।'

यह वर्णन कण्व के आश्रम के पास ही स्थित वन–प्रदेश का है। पुनश्च, अंक ६ में इसी आश्रम का वर्णन करते हुए दुष्यन्त कहता है

"कार्या सैकतलीन हंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।

शाखालम्बित वल्कलस्य च तरोर्निमातु-
मिच्छाम्यधः
शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां
मृगीम्'॥

'मुझे अपने (अधूरे) चित्र में इतने दृश्य और दिखलाने हैं — मालिनी नदी जिसके रेतीले तट पर हंसों के जोड़े बैठे हैं—नदी के दोनों और फैली हुई हिमालय की तलहटी जहाँ हरिण विश्राम कर रहे हैं — आश्रम के वृक्ष की शाखा पर लटके हुए वल्कल वस्त्र तथा वृक्ष के नीचे काले हरिण के सींग पर अपनी बाईं आँख को खुजलाती हुई मृगी'।

इन दोनों पद्यों से यह स्पष्ट है कि कालिदास ने कण्व के आश्रम से लगे हुए वन-प्रदेश में रहनेवाले जंगली काले मृगों का वर्णन जान-बूझ कर ही किया है। यों तो इस नाटक के द्वितीय अंक छन्द ६ में भी सामान्य हरिणों का वर्णन हैं किन्तु उपर्युक्त स्थलों पर काले मृगों के विशेष उल्लेख से यह विदित होता है कि कालिदास को इस विशिष्ट वन-प्रदेश में रहनेवाले पशुओं का ठीक ठीक ज्ञान था क्योंकि गढ़वाल की तराई में अवस्थित इस जँगल में काले हरिण आज भी पाए जाते हैं।

दूसरे अंक में (छन्द ६) शिकार सम्बन्धी प्रसंग में कुछ अन्य जंगली जानवरों का वर्णन है—

"गाहन्तां महिषा निपानसलिलं
शृंगैर्मुहुस्ताडितम्
छायाबद्ध कदम्बकं मृगकुलं
रोमन्थमभ्यस्यतु।
विश्रब्धं क्रियतां वराहततिभि-
र्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदञ्च शिथिल-
ज्याबन्धमस्मद्धनुः॥"

'जंगली भैंसों को तड़ाग के पानी में सींगों से बारबार पानी को उछाल कर डुबकियाँ लगाने दो,—हरिणों को छाया में इकट्ठे बैठ कर जुगाली करने दो, तालाब में शूकरों के समूह को चुपचाप मोथा घास का विनाश करने दो तथा हमारे इस धनुष को भी इसकी डोरी ढीली करके विश्राम ले लेने दो।'

इस प्रसंग में जंगली भैंसौं, हरिणों तथा वन्य शूकरों का वर्णन आया है—इन पशुओं की स्वाभाविक क्रियाओं का सुन्दर तथा सत्य चित्रण होने के अतिरिक्त यह वर्णन इस बात का भी परिचायक है कि कालिदास को इस स्थान विशेष अर्थात् गढ़वाल की तराई में स्थित जंगली प्रदेश में वास्तव में पाए जाने वाले वन्य-पशुओं का भी यथार्थ ज्ञान था — इन घने वनों में तथा उसके निकटस्थ मैदानों में ये सभी जानवर बहुतायत से मिलते हैं। ख़ास कर, वन्य-शूकरों का शिकार तो इधर के शिकारियों का विशेष प्रिय विनोद है।

इसी पद्य में 'मुस्ता' घास का भी उलेख है—बिजनौर तथा उसके पार्श्ववर्ती ज़िलों में यह घास (Cyperus rotundus) नदियों के कछारों, छिछले तालावों तथा सामान्यतः आर्द्र स्थानों में प्रचुरता से उगती है। इसका स्थानीय नाम 'मोथा' है जो मुस्ता का अपभ्रंश-रूप है। इसकी जड़ें कुछ मीठी होने के कारण जँगली सुअर इस बड़े चाव से खाते हैं। कालिदास के प्रकृति-वर्णन का सौन्दर्य उसकी यथार्थता ही है। मोथा घास जैसी

सामान्यतः उपेक्ष्य वस्तु का उन्होंने अनुकूल प्रसंग तथा विशिष्ट स्थान की पार्श्वभूमि में वर्णन कर के जो मनोहर चित्र खींचा है वह बहुत ही प्रभावोत्पादक तथा वास्तविक है।

पिछले लेख में हम प्रथम अंक के छन्द २९ का उल्लेख करके यह दिखला ही चुके हैं कि इस पद्य में जो जँगली हाथी के द्वारा कण्व के आश्रम में किए गए उपद्रव का वर्णन है वह भी कितना वास्तविक है; क्योंकि तराई तथा हरद्वार के पास के कजली-वन में अनेक जँगली हाथी अभी तक पाए जाते हैं, और प्रायः भटक कर वे ग्रामों की सुनसान सड़कों पर चले आते हैं।

चतुर्थ अंक में शकुन्तला के पतिगृह के लिए जाते समय का हृदयग्राही चित्र कालिदास ने खींचा है। इस प्रसंग में आश्रम के पास ही किसी तड़ाग के निकट एक चक्रवाक के जोड़े का बहुत ही मार्मिक वर्णन है—

"शकुन्तला — हला प्रेक्षस्व, नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्ती आतुरा चक्रवाकी आरटति। दुष्करमहं करोमि—

अनसूया–सखि, मा एवं मंत्रयस्व।

एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।
गुर्वपि विरहदुःखमाशा बन्धः साहयति॥"

'शकुन्तला—सखि देख, अपने सहचर के केवल कमल पत्रों की ओट में छिप जाने पर ही यह चक्रवाकी दुखी होकर विलाप कर रही है। मैं सचमुच दुष्कर कार्य कर रही हूँ।

अनसूया—सखि, ऐसा मत सोच। यह चक्रवाकी भी तो विषाद के कारण लम्बी रात अपने प्रिय से वियुक्त हो कर बिताती है। भारी वियोगदुःख भी मिलन की आशा के कारण सह्य बन जाता है।'

चकवा-चकई भारत के उत्तर के पहाड़ी प्रदेशों से जाड़ा शुरू होने के साथ साथ ही नीचे उतर आते हैं और नदियों तथा तालाबों की कछारों पर बैठे हुए ये प्रायः दिखलाई पड़ जाते हैं। लेखक ने स्वयं शीतकाल में बिजनौर तथा मुज़फ्फ़रनगर जिलोंमें गंगा तथा अन्य नदियों की सुनसान रेती में इन सुन्दर चिड़ियों के जोड़ों को साथ साथ विचरते हुए देखा है और प्रत्येक बार उसे कालिदास के उक्त वर्णन की समीचीनता का बोध हुआ है। यह वर्णन स्थान-विशेष के उपयुक्त तो है ही ऋतु की भी दृष्टि से सर्वथा यथार्थ है—यह बात निम्न पर्यालोचन से भी स्पष्ट हो जायगी।

कालिदास ने अपने इस अमर नाटक में प्रत्येक प्रसंग में स्थानीय समीचीनता के साथ ही साथ समय तथा ऋतुओं का भी पूरा पूरा ध्यान रक्खा है—

यह स्पष्ट ही है कि नाटक का प्रारम्भ ग्रीष्म-काल के आरम्भ में होता है—प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है—"तदिममेव तावत् अचिरप्रवृत्त उपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयताम्"—इत्यादि।

'तो अभी हाल ही में आरम्भ हुए और इसलिए उपभोग के योग्य (अधिक उष्णता न होने के कारण) इस ग्रीष्म ऋतु के विषय ही में कुछ गाओ।'

प्रथम, द्वितीय, तथा तृतीय अंकों के अन्य वर्णनों से भी यह अनुमान-सिद्ध है

१९५०

कि वे ग्रीष्मकाल को लक्ष्य करके लिखे गए हैं—यथा

"प्रियम्वदा—तेन हि अस्यां प्रच्छाय शीतलायां सप्तपर्ण वेदिकायां मुहूर्तकमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोतु आर्यः।"

'प्रियम्वदा—(दुष्यन्त से) तो आर्य सप्तपर्ण की इस घनी छाँहवाली वेदिका पर घड़ी भर बैठकर विश्राम करें।'

(अंक १)

अंक २ के छन्द ६ में (जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है) वर्णित जंगली भैंसों का तालाब के पानी में डुबकियाँ लगाना, हरिणों का छाया में बैठकर जुगाली करना तथा सुअरों क़ा तालाबों में घुसना—ये सब बातें ग्रीष्म ऋतु ही की निर्देशक हैं।

तृतीय अंक के विष्कम्भक में कण्व के आश्रम का एक शिष्य कहता है—"किं ब्रवीषि—आतप लंघनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला"—"क्या कहा? क्या कठिन धूप लग जाने के कारण शकुन्तला बहुत क्लान्त है?"

इसी अंक का ११ वां श्लोक—

"सर एव ताप हेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य॥"

यहाँ ग्रीष्म के अवसान में बादलों के छाने पर उमस का बढ़ना तथा फिर शीतल बूँदों से ताप का दूर होना—यह उपमा ग्रीष्मकाल के वातावरण में कितनी सुन्दर तथा यथार्थ है।

पुनः इसी अंक में के २० वें छन्द में दुष्यन्त का शकुन्तला के प्रति यह कथन—

"किं शीकरैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं सञ्चालयामि नालिनीदलताल वृन्तम्"

('क्या परिश्रम दूर करनेवाले जलकणों से शीतल वायु को वहन करने वाले कमलपत्र के पंखे से तुम्हारी क्लान्ति दूर करूँ?') भी ग्रीष्म का परिचायक हैं।

अतः उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट है कि कालिदास के अनुसार शकुन्तला और दुष्यन्त का प्रथम मिलन ग्रीष्म ऋतु में हुआ। अनुमानतः यह भी स्पष्ट है कि दुष्यन्त के हस्तिनापुर लौट जाने के थोड़े ही दिनों के पश्चात् वर्षा प्रारम्भ हो गई होगी और जैसा देश के इस भाग में (उत्तर प्रदेश के पश्चिमी ज़िलों में) स्वाभाविक रूप से होता है वर्षाऋतु जून के अन्त में आरम्भ होकर सितम्बर तक रही होगी! इस काल में गंगानदी के बहुत अधिक बढ़ जाने के कारण नावों द्वारा आना जाना भी बंद हो जाता है, और बहुत संभव है कि कण्व का यही अनुमान रहा हो कि दुष्यन्त का शकुन्तला को अपने वचन के विरुद्ध बहुत काफ़ी समय तक न बुलाने का कारण वर्षाऋतु में यातायात की कठिनाई ही थी। किन्तु चौमासे के समाप्त होने पर भी जब दुष्यन्त ने कोई सन्देश न भेजा तो ऋषि को अवश्य ही चिन्ता हुई होगी और शरद ऋतु के आते ही उन्होंने शकुन्तला को उसके पति के पास भेजना तय किया। निम्नि उद्धरण से भी यह तथ्य प्रमाणित होता है

"कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्र
सन्ध्या
दार्भमुञ्चत्युटज पटलं वीतनिद्रो
मयूरः।
वेदि प्रान्तात् खुरविलिखितादुत्थित-
श्चैष सद्यः

पश्चादुच्चैर्भवति हरिणः स्वाङ्ग-
मायच्छमानः "
(अंक ४, छन्द ४)

यह वर्णन शकुन्तला के पतिगृह जाने के दिन के प्रातःकाल का है....' जंगली बेरियों पर पड़ी हुई ओस को प्रातःकाल की धूप रंगीन बना रही है, नींद से जागा हुआ मोर कुश के छप्पर पर से नीचे उतर रहा है, यज्ञवेदी के पास की भूमि पर से, जहाँ खुरों के चिह्न बने हुए हैं, उठा हुआ यह हरिण (अँगड़ाई लेते समय) अपने शरीर को फैला कर पिछले भाग से ऊँचा हो रहा है '।

यहाँ सवेरे की ओस तथा हरिण का यज्ञवेदी की उष्ण भूमि में रात को सो जाने का वर्णन, शीतकाल के प्रारम्भ का प्रबल प्रमाण है। जंगली बेरियों पर शरद् ऋतु में ही इस प्रदेश में फूल और फल लगते हैं और उनके पत्ते खूब घने हो जाते हैं। गंगा तथा मालन (मालिनी) नदी की रेतीली भूमि में ये छोटी छोटी झाड़ियाँ शीत-ऋतु के आरम्भ होते ही (कार्तिक मास में) खूब छा जाती हैं। यह बात स्वाभाविक ही है कि कालिदास की तीक्ष्ण दृष्टि से यह मौसमी दृश्य बच न सका। ऊपर चतुर्थ अंक के "एषापि प्रियेण विना"—इत्यादि श्लोक का उल्लेख आ चुका है जिसमें चक्रवाक के जोड़े का वर्णन आया है—यह पक्षी उत्तरी भारत में, अक्टूबर मास में उत्तर के ठंडे प्रदेशों से आकर यहाँ की नदियों तथा झीलों के किनारों पर मार्च तक ठहरता है। इसका इस स्थान में वर्णन भी शकुन्तला की यात्रा के समय का सूचक है और हमारी इस उप-कल्पना को भी कि यह समय शीतकाल रहा होगा प्रमाणित करता है।

कण्व शकुन्तला के जाते समय आँखों में आँसू भरकर तथा रुद्ध कण्ठ से उससे कहते हैं—

" शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से
त्वया रचित पूर्वम्
उटज द्वारि विरूढं नीवारबलिं
विलोकयतः "
अंक (४, श्लोक २२)

' वत्से ! जिन नीवार (एक प्रकार का मोटा चावल) के दानों से तूने पहिले कभी पूजा करते समय बलि दी थी वे अब मेरी कुटी के द्वार पर घने होकर उग आए हैं। इनको देखते हुए तेरे लिए मेरा शोक कैसे कम होगा ? " नीवार-धान्य के उगने का समय अन्य चावलों के समान शीत ऋतु का प्रारम्भ ही है।

शकुन्तला के दुष्यन्त द्वारा परित्याग के पश्चात् उसकी खोई हुई अँगूठी शक्रावतार-वासी एक धीवर को मिल गई। उसको देखते ही दुष्यन्त को अपनी परित्यक्ता पत्नी की स्मृति हो आई और शोकवशात् उसने उस वर्ष का वसन्तोत्सव भी बन्द कर दिया। यह स्पष्ट ही है कि इतनी घटनाओं की अवधि शीतकाल के आरम्भ या मध्य से लेकर वसंत-ऋतु के आगमन तक रही होगी। अंक ६ के आरम्भ में द्वितीय चेटी के इस कथन से कि " कथमुपस्थितो मधुमासः " यह स्पष्ट है कि इस अंक की सारी घटनाएँ वसंत-ऋतु की हैं।

नाटक के प्रारम्भ से लेकर ६ ठें अंक तक की सब घटनाओं की अवधि इस प्रकार

एक वर्ष के अन्दर ही है । अंक ६ के अन्त में दुष्यन्त इन्द्र की राक्षसों के विरुद्ध लड़ाई में सहायता देने के लिए इन्द्रलोक को जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ से वह ३, ४ वर्षों के पश्चात् ही लौटते समय उसने सर्वदमन को देखा जो उस समय अवश्य ही कम से कम ३ या ४ वर्ष का रहा होगा । इसी समय उसका शकुन्तला से भी इतने दिनों के पश्चात् पुनर्मिलन हुआ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि इस नाटक में कालिदास ने कथानक की मुख्य बातों के अतिरिक्त स्थान तथा समय के अनुसार सभी अन्य गौण तथा ऊपरी दृष्टि से महत्त्व-शून्य दीखनेवाले तथ्यों का भी पूरा पूरा ध्यान रख कर उन पर भी अपनी अप्रतिम काव्य-प्रतिभा का सम्पूर्ण प्रकाश डाला है, जिससे उसका निर्मित कथा-चित्र सभी प्रकार से सर्वाङ्गसुन्दर तथा सत्य बन सका है ।

* * *

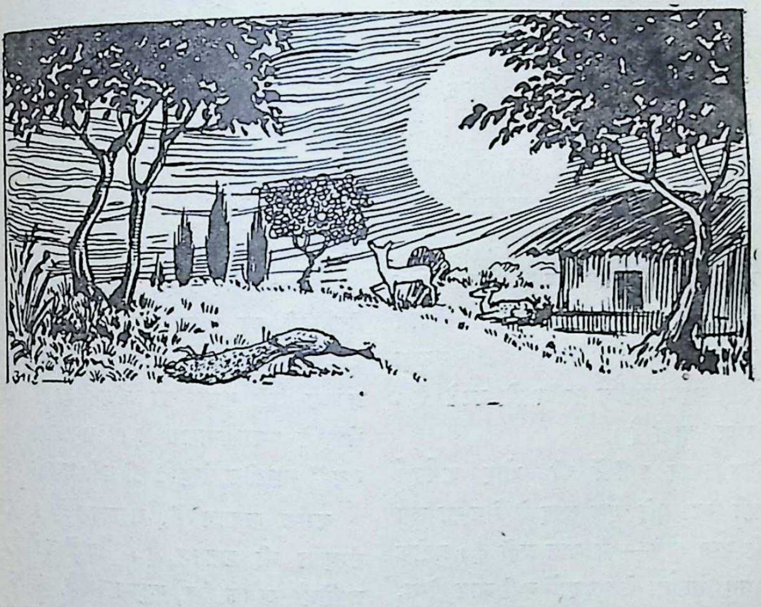

मराठी साहित्य :

प्रतीक

[स्वर्गीय श्री. साने गुरुजी]

प्रत्येक संस्कृति अपने कुछ प्रतीकों का निर्माण करती है। फल में जिस प्रकार उसके सम्पूर्ण वृक्ष का विस्तार समाया हुआ रहता है उसी प्रकार प्रतीकों में भी उनका अपना अनन्त अर्थ निहित रहता है। हमारे यहां सूत्रग्रन्थों की रचना प्रसिद्ध है। हरेक शास्त्रीय सिद्धान्त की सूत्ररूप में रचना की गई है। प्रतीक याने संस्कृति के सूत्र। वस्तुतः प्रत्येक बाह्य क्रिया, आन्तरिक विचारों का प्रतीक है। प्रतीक का अर्थ स्थानापन्न या प्रतिरूप होता है। सैकड़ों कृतियों द्वारा हमारा मन प्रकट होता है। पहले मन झुकता है, फिर मस्तक। पहले मन भर आता है, फिर आँखें। पहले मन क्रोधित होता है, फिर हाथ उठता है। ये क्रियाएँ और कुछ नहीं, मन में फूटे हुए अंकुर हैं।

भारतीय संस्कृति में अनगिनती प्रतीक हैं। उनका अर्थ हमें खोज निकालना होगा। जब अर्थहीन प्रतीकों की पूजा होती है, तब धर्म यंत्रवत् बन जाता है और उस प्रतीक-पूजा का हमारे जीवन पर कोई संस्कार नहीं होता। ऐसे यंत्रवत् प्रतीक व्यर्थ-से लगते हैं। विवेकशील व्यक्ति उन व्यर्थ प्रतीकों को छोड़ देते हैं। जबतक प्रतीकों का अर्थ समझमें न आजाये, तब तक वे ग्राह्य नहीं। उनका मर्म समझ लेने पर वे प्रतीक सजीव हो उठते हैं। उनमें शक्ति आ जाती है।

इन भिन्न भिन्न प्रतीकों की ओर अर्थपूर्ण दृष्टिसे देखने का मुझे एक तरह से रोग-सा लग गया है। वे सत्य होंगे—सो बात नहीं है। प्रतीक के बनते समय निर्माता के हृदय में वही भाव होगा, यह भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु प्रतीकों का नवीन अर्थ करने में हमारा कुछ बिगड़ता भी नहीं; उल्टे अर्थ का विकास ही होता है।

भारतीय संस्कृति में 'कमल' एक प्रधान प्रतीक है। सारे 'प्रतीकों का राजा' भी अगर कमल को हम कहें तो अनुचित न होगा। सारी भारतीय संस्कृति कमल के सौरभ से सुगन्धित है। कौनसी शक्ति है इस कमल में ?

ईश्वर के अंगोंको हम कमल की उपमा देते हैं। कमल-नयन, कमल-वदन, करकमल, पदकमल, चरणकमल आदि कहने में क्या तथ्य है ? इस कमल के पास अलिप्तता एक महान् गुण है। जलमें रहकर भी जलसे वह ऊपर रहता है, पंकमें जन्म लेकर भी पंकसे ऊपर खिलता है। कमल अनासक्त है। ईश्वर, कर्ता होकर भी अकर्ता माना जाता है। यह अखिल विश्व उसीके द्वारा संचालित है, किन्तु वह अनासक्त रीतिसे उसे चलाता है।

कमल में जैसे अलिप्तता है, उसी प्रकार दूसरा भी गुण है—वह है बुरी वस्तु से अच्छा ग्रहण कर खुद का विकास करना। कमल तो कीचड़ से भी रमणीयता ग्रहण करता है—अहर्निश तपस्या कर अपना हृदय मकरंद से परिपूर्ण रखता है। सुंगधि से व्याप्त करता है। उसकी भीनी भीनी खुशबू दिल दिमाग को तर कर देती है।

सूर्य की ओर उसका मुख होता है। प्रकाश देखते ही वह खिल उठता है — उसके समाप्त होते ही वह मुर्झा जाता है—बंद हो जाता है। प्रकाश जैसे कमल का जीवन हो ! भारतीय संस्कृति प्रकाशोपासक है। "तमसो मा ज्योतिर्गमय" भारतीय संस्कृति की यही आरती है।

कमल शतपत्र है, सहस्रपत्र है। भारतीय संस्कृति भी शतपत्र है। सैंकड़ों जातियाँ, उपजातियाँ, अनेक वंश, कुटुम्ब-कबीले, अनेक धर्म, अनेक पंथोंमें से सार लेकर वह बढ़ते रहते हैं। संस्कृति एक एक नया पत्र (पत्ता) जोड़ती जाती है। भारतीय संस्कृति का कमल अद्यापि सम्पूर्ण विकसित नहीं हुआ है,—वह अभी भी विकास के पथ पर है। सृष्टि के अंततक वह विकसित

होता रहेगा। भारतीय संस्कृति अनंत पंखुड़ियों का कमल-पुष्प बनेगी क्योंकि पृथ्वी अनंत है — काल अनन्त है—ज्ञान अनन्त है।

मकरन्द से भरे हुए—खिले हुए पवित्र कमल के गीत गुनगुनाते हुए सैंकड़ों भ्रमर आवेंगे; किन्तु कमल उस तरफ ध्यान नहीं देगा। भारतीय संस्कृति स्वयं स्तुतिस्तोत्र नहीं गाती। संसार भले ही उसकी मनमानी स्तुति करे। भारतीय संस्कृति विना किसी आडम्बर के खिलती ही रहेगी — विकसित ही रहेगी। भले ही विश्व गीता की प्रशंसा करे, भले ही संसार बुद्ध की महानता का वर्णन करे, गांधी को महात्मा कहे — रवीन्द्र को महर्षि गुरुदेव पुकारे — भारतीय संस्कृति अपनी संतान से कहती है—"कर्म में रतो, निंदा स्तुति को ताक़पर रख कर अपने ध्येय में गहरे डूबे रहो" स्वकर्म में जब इतने तन्मय हो जाओगे, तब यश अपने आप दौड़ा आयेगा। संसार तुम्हारा नाम लेगा।

कमल कहता है—अनासक्त बनो, प्रकाश की पूजा करो, अमंगलसे मंगल ग्रहण करो, तप करो, केवल सत्कर्म में लगे रहो, जो कुछ नवीन है नित्य है, उसका संग्रह करो। भारतीय संस्कृति एक शब्द में, और कुछ नहीं, कमल है!

दूसरा महान् प्रतीक है, यज्ञ अथवा होम! भारतीय संस्कृति का अर्थ है त्याग। समाज में एक दूसरे के लिये कष्ट सहन करना होगा, त्याग करना होगा। हमें एक दूसरे का जीवन बनाना होगा। कोई भी संस्कार हो, धार्मिक विधि हो—वहाँ होम अवश्य होगा। आहुति की वहाँ आवश्यकता है। कोई भी ध्येय लीजिये — समाजसेवा का कार्य ले लीजिये — आपको होम अवश्य करना होगा। उत्तरोत्तर होम करना होगा तभी ध्येय की सिद्धि निष्पन्न होगी।

उपनयन संस्कार के समय होम किया जाता है। तुम्हें यदि ज्ञान की आकांक्षा है तो अन्य सारे सुखों का होम करना होगा। "सुखार्थिनः कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।" इसे स्मरण रखना होगा।

विवाह में होम होता है। तुम्हें यदि संसार-सुख की कामना है तो एक दूसरे के लिये व्यक्तिगत इच्छाओं का होम करना पड़ेगा। तभी तुम्हारा गृहस्थ-जीवन सुखी होगा। पति यदि अपनी ही चलावे तो गृहस्थी में सुख कहाँ? गृहस्थी का अर्थ है, सहकार्य, परस्पर लेनदेन! और अंत में गृहस्थाश्रम भी समाज के लिये ही तो है। जब जब समाज की पुकार होगी, तब तब तुम्हें अपने बालबच्चे, तुम्हारा घर, तुम्हारा सर्वस्व अर्पण करना होगा। सेवा का अर्थ है होम!

पवित्रता का दूसरा नाम है चिरयज्ञ! उत्तरोत्तर अधिक पवित्रता प्राप्त करने के लिये क्षुद्र वस्तुओं का होम करना आवश्यक है। सर्वस्व त्याग ही निर्वाण है — मोक्ष है। अपनी आँखों अपनी ही मृत्यु देखना—यही पवित्रता की पराकाष्ठा है।

इस यज्ञ-प्रतीक का ही भस्म-प्रतीक में रूपान्तर हो गया है। सन्ध्या करते समय अथवा पूजा करते समय शरीर में भस्म लगायी जाती है। ईश्वरप्राप्ति —ध्येयप्राप्ति, सुलभ नहीं — उसके लिये होली जलानी होती है। भस्म रमानी होती है। खाक छाननी पड़ती है। स्वार्थ की, सुखलिप्सा की राख बनानी पड़ती है। दसों इंद्रियों की वासनाओं को तथा शरीर को भस्म बनाना पड़ता है। मंदिर में प्रवेश कर रहे हो न? भस्म रमा कर जाओ, ध्येय की पूजा करनी है न? सर्वस्व में आग लगा कर बाहर निकलो। संत तुकाराम ने तो कहा ही है—

"संसारास आग लावूनियां हातें।
मागुतें परोतें पाहूं नये।"

दुनियादारी में आग लगा कर पीछे लौट कर नहीं देखना चाहिये। पीछेवालों का क्या होगा, इसकी तू चिन्ता न कर। तू और तेरा ध्येय! अमलनेर के संत सखाराम महाराज जब पंढरपुर की यात्रा को निकलते, तब वे पहले अपनी कुटिया में दियासलाई लगाते, फिर कहीं निकलते थे। ईश्वर की ओर जाते हुए पीछे कोई झंझट न लगी रहे। देवता की ओर जाना अथवा ध्येय की पूजा करना सत्य पर आरूढ़ सती का महाव्रत है।

हम माथे पर चन्दन क्यों लगाते हैं? ईश्वर को चन्दन लगाने के पश्चात् स्वयं चन्दन लगाना चाहिये। ईश्वर की पूजा कर उसके चरणों में भक्त मस्तक नवाता है, ईश्वर के चरणों पर रखे अपने

भाल पर वह चन्दन लगाता है "यह सिर मेरा नहीं है—यह ईश्वर का है—ईश्वर को मानने वाले विचार ही केवल मेरे इस मस्तक में प्रवेश कर सकेंगे —यह सिर अब प्रभु का हो चुका है। अब यह चपल बंदर का दिमाग़ या आग लगाने वाला गंदगी से भरा सिर नहीं है। अब इस सिर की पूजा होने दो — अब इसे भी चंदन लगने दो।" यही चन्दन लगाने की भूमिका है। चन्दन उस तत्व का प्रतीक है।

भिन्न भिन्न संत साधु और उनके भक्तगण शरीर पर तिलक छापा लगाते हैं, भाल पर, छाती पर, बाहु पर सर्वत्र मुद्रा छाप लगाते हैं। उसका भी यही अर्थ है। यह भाल ईश्वर का, ये हाथ ईश्वर के, यह हृदय ईश्वर का, सब अंगों पर ईश्वर की छाप है। ईश्वर की सेवा में — जनता जनार्दन की सेवा में — मेरा छोटासा जीवन सुखी बनाने के महान् कर्म में मेरे ये अंग चन्दन की तरह घिसेंगे —यही प्रतिज्ञा-रूपी छाप उस पर लगाई जाती है।

हम यज्ञोपवीत धारण करते हैं। पहले इसका जो कुछ भी अर्थ रहा हो, किन्तु मुझे एक दिन उस यज्ञोपवीत में कितना गहन अर्थ मिला। कर्म, ज्ञान तथा भक्ति इन तीनों का एकीकरण है यज्ञोपवीत! तीनों को मिला कर बँधी गाँठ ही ब्रह्मगाँठ है। कर्म ज्ञान व भक्ति इन तीनों को जब हम एक दूसरे में मिलवेंगे तभी ब्रह्म से हमारा साक्षात् हो सकेगा। केवल कर्म से, केवल भक्ति से अथवा केवल ज्ञान से ब्रह्मप्राप्ति नहीं होती। फूल की पंखुड़ी, उसके रंग तथा गंध में विभिन्नता निर्माण करना असंभव है। जिस प्रकार दूध, शक्कर व केशर को हम एक बना देते हैं, उसी प्रकार कर्म, ज्ञान और भक्ति को हमें एकरूप बनाना होगा।

हम सूँघा हुआ पुष्प ईश्वर को नहीं चढ़ाते। वह पुष्प तो भक्त के हृदय का प्रतीक है। उस पुष्प के रूप में हम अपना हृदयपुष्प ही मानों ईश्वर को समर्पित करते हैं। वासनाओं से अछूता शुद्ध हृदय प्रभु को अर्पण करो। जिस हृदय की किसीने गंध नहीं ली, जिसका कोई व्यक्ति स्वामी नहीं, कोई भोक्ता नहीं, ऐसा हृदय प्रभु को अर्पण करो। भक्ति अव्याभिचारिणी है। प्रेम ईर्ष्यालु है। वह प्रतिद्वन्द्विता नहीं सह सकता। केवल एक ही को हृदय दान करो। ईश्वर को देना हो — ईश्वर को दो—जहाँ देना हो वहाँ सम्पूर्णरूप से दो। ताजा, रस से परिपूर्ण, निर्दोष, पूर्ण विकसित, सुगन्धित हृदयपुष्प अपने उपास्य की सेवा में अर्पण करो।

हम भगवान को, ठाकुरजी को भोग लगाते हैं। नैवेद्य अर्पण करते हैं। भगवान को कौनसा नैवेद्य प्रिय है? हमारी सारी क्रियाएँ ही नैवेद्य हैं। उस छोटी सी कटोरी का निर्मल दूध ही तो तुम्हारे स्वच्छ सुन्दर कर्म हैं! ईश्वर को कर्म का भोग लगाना चाहिये। जो कुछ भी करें, ईश्वर के निमित्त करें। "**ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु**" यही प्रत्येक कर्म का अंतिम मंत्र है।

मेरे मन में जिस दिन यह कल्पना आई, उस दिन मुझे ईश्वर पर बहुत दया आई। सोचा; ईश्वर न जाने कितने जन्मों से उपासा है—प्यासा है। घर में बड़ी बूढ़ी पवित्र माँ हो, यदि वह कोई अभक्ष्य अन्न न खाती हो, पर जब उसके बाल-बच्चे प्याज के भजिये अथवा लहसुन की चटनी या इसी प्रकार की कोई त्याज्य तामस वस्तु उसे दें तो वह व्रतधारिणी संयमशील माँ क्या कहेगी? यही कि "बच्चो, मेरा मज़ाक मत उड़ाओ। मैं इन सब चीजों को कभी छूती भी हूँ? अगर देना ही है तो अच्छी वस्तु दो—नहीं तो जाने दो। मेरे आगे गन्दी वस्तु मत लाओ।" कदाचित् भगवान भी यही कहते हों। हम मनुष्य हैं। आज हज़ारों वर्षों से हम जो अन्तर्बाह्य अनन्त क्रियाएं करते चले आ रहे हैं वे सब नैवेद्य रूप में भगवान के सामने जाती होंगी। किन्तु क्या वह नैवेद्य प्रभु स्वीकार करते होंगे? क्या उसका एक भी ग्रास वह ग्रहण करेगा? ईश्वर को नैवेद्य अर्पण करते समय प्रथम हम यही विचार करें।

ईश्वर का हम अभिषेक करते हैं। अभिषेक यानी भरा घड़ा एक साथ उँडेल देना, उलीच देना, अभिषेक नहीं है। 'अभिषेक' हमारा एक प्रतीक है। जिस प्रकार जल की अखण्ड धार शिव शालिग्राम पर गिरती है, उसी प्रकार अन्तःकरण की धार सदैव ईश्वर के चरणों में प्रवाहित रहे, परमात्मा में हमारी मन-बुद्धि पूर्णतया जलधारावत् भगवच्चरणों पर लुण्ठित रहे यही उस अभिषेक का अर्थ है। अभिषेक उस भावना का

१९५०

प्रतीक है। जलाभिषेक तुम्हारे समस्त अस्तित्व का अभिषेक है।

हम दक्षिणा देते हैं। देते समय उस देय वस्तु पर जल छिड़कते हैं। समाज को जो भी दान दो, उसमें हृदयकी आर्द्रता — स्निग्धता — चाहिए। जो कर्म हृदय की आर्द्रता को उँडेल कर किया गया है वह अमूल्य है। हमारे समस्त शुभ कर्म स्निग्ध हों — आर्द्र हों — शुष्क न हों, रूक्ष न हों, कोरी बाह्य सहानुभूति न हो। उनमें हमारी मुँह देखे की प्रीति न हो।

हम दान-दक्षिणा पर तुलसी पत्र रखते हैं। वह तुलसीपत्र रुक्मिणी का है। दक्षिणा चाहे दमड़ी हो, चाहे दस सहस्र हो, उस पर हो तुलसीपत्र-भाव भक्ति रूपी तुलसीपत्र—कौड़ी या रुपये का सवाल नहीं है, सवाल है भाव का। भगवान भाव के भूखे हैं। भाव की सिद्धि भावना से होती है। जिस दान-दक्षिणा पर भक्ति भाव रूपी तुलसीपत्र नहीं, वह दान-दक्षिणा तुच्छ है, सीमित है। किन्तु भक्ति-भाव रूपी तुलसी-दल के साथ दी गई दमड़ी भी धनाधिपति कुबेर के कोटि वैभव से कहीं श्रेष्ठ है।

परमात्मा को पत्र अत्यंत प्रिय हैं। 'पत्रं-पुष्पं-फलंतोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति'। जैसे तुलसी-पत्र, विल्वपत्र, दूर्वा दल आदि। सामान्य लोगों के कर्म भी सामान्य होते हैं। न उनके कर्म में कोई विशेष गन्ध, न कोई ख़ास रंग। किन्तु भगवान को ऐसे ही कर्म प्रिय हैं। सुगन्धित रसमय कर्म तो कोई विरला ही भक्त ईश्वर को भेंट करेगा। हम सामान्य जन तो दुर्बल जीव ठहरे। हमारे सीधे सादे कर्म यदि निर्मल हों तो वे ईश्वर को महान् पुरुषों के कर्मों की अपेक्षा अधिक रुचिकर होंगे। शुद्ध शास्त्रीय सधे हुए संगीत की अपेक्षा छोटे बच्चों के अटपटे तोतले बोल माँ के मनको अधिक प्रिय लगते हैं।

भारतीय संस्कृति में 'स्वस्तिक' चिन्ह का बड़ा महत्व पूर्ण अर्थ है। स्वस्ति का अर्थ है, मंगल—शुभ — भद्र। सब का भला हो, शुभ हो, यही इस चिन्ह का भाव है।

उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार के समय बटु को लँगोटी पहनाई जाती है। कमर में मौंजी (मूँज की रस्सी) बाँधी जाती है। कमर बाँध कर विद्योपार्जन के लिए घर से बाहर निकलो यही इसका तात्पर्य है। लँगोटी लगाना इन्द्रिय निग्रह का प्रतिनिधित्व करना है। तभी ज्ञान की प्राप्ति होगी। संयमी बनो। स्वच्छन्द, स्वेच्छाचारी, उच्छृंखल बन कर कुछ भी न पा सकोगे। विद्या की उपलब्धि के लिए संयम अत्यन्त आवश्यक है।

मौंजी बन्धन — उपनयन — के समय मातृ-भोजन होता है। बटु माता के साथ एक थाली या एक पत्तल में बैठकर भोजन करता है। इतने दिन माँ के साथ रहे, अब दूर जाना होगा — ज्ञानार्जन के लिए। मातृभोजन अन्तिम सहभोजन है। माँ अपने बच्चे को दूर करती है। अबतक सगुण भक्ति थी। अब निर्गुण भक्ति का प्रारंभ होता है। माँ मन में रहेगी। गुरुगृह में गुरु ही माता है। अब से उस उपनीत बालक को नई ज्ञानदात्री माता के साथ नाता जोड़ना है।

ब्रह्मचारी, परिव्राजक, संन्यासी इन लोगों के हाथ में दण्ड का रहना आवश्यक है। इस दण्ड धारण का अर्थ बहुत गहरा है। जिस प्रकार दण्ड सीधा होता है, झुकता नहीं, मुड़ता नहीं, उसी प्रकार ब्रह्मचारी या परिव्राजक को बिना झुके रहना चाहिए। उन्हें मोह के सामने झुक कर पराजित नहीं होना चाहिए। काम-क्रोध आदि सामने आवें तो उनको भगाना चाहिये। अपने मनोविकारों को शान्त करना चाहिये। ब्रह्मचारी या संन्यासी किसी की हाँ-में-हाँ नहीं मिलायगा। वह किसी की जी-हुजूरी या चापलूसी नहीं करेगा। उसका अपना आदर्श है, ध्येय है। वह आदर्शवादी बनेगा। ध्येय समझौता नहीं जानता—सत्य समझौता नहीं मानता। गृहस्थाश्रम में आदि से अन्त तक समझौते की भावना रहती है—थोड़ा मेरा, थोड़ा तुम्हारा। किन्तु ब्रह्मचर्य या संन्यास के मानी हैं प्रखरता। ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी का सिर अपने आदर्श के सम्मुख ही झुक सकता है। गुरु ही ध्येयमूर्ति है। उसका उन्नत मस्तक गुरु के सम्मुख ही नत होगा। अन्यत्र उन्नत ही रहेगा। ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी का ऐसा ही ज्वलन्त तेज है। उस तेज के आगे संसार झुकेगा। दुनिया चरणों पर लोटेगी। जिसके

सम्मुख वासना-विकारोंने पराजय स्वीकार की, उसके चरणों में कौन अवनत न होगा ?

विवाह में, मुहूर्त वेला में, वर-वधू के बीच में 'अन्तरपट' डालते हैं। और ज्योंही अन्तिम तालियाँ बजीं कि अन्तरपट हट जाता है। अब वधू वर में किसी प्रकार के अन्तर की आवश्यकता नहीं रही। इस घड़ी तक अन्तर था; किन्तु अब जीवन एकरूप, एकरस, बन गया है—मिलन हो गया है। तुम मेरी हुई—मैं तुम्हारा हुआ। सप्तपदी की विधि विवाह में सब से महत्व की है। सात डग संग चलें; किन्तु सात डग क्या केवल सात डग हैं? नहीं, हम सदैव साथ रहें—संग चलें। सप्तपदी यानी जीवनयात्रा में हम सदैव साथ रहेंगे, साथ बढ़ेंगे और साथ चढ़ेंगे, साथ गिरेंगे—पड़ेंगे — उठेंगे। सुख-दुःख में एकरूप रहेंगे। सप्तपदी का यही भाव है। सप्तपदी के समय 'अग्नि-प्रदक्षिणा' करते हुए वर-वधू एक-सूत्र से बाँधे जाते हैं। वर-वधू का जीवन-पट एक साथ एक ही सूत्र से एकत्र बुना जायगा। अब अलग अलग जीवन-पट नहीं होगा। दोनों मिल कर सुख-दुःख का एकही ताना-बाना बुनेंगे। इस सूत्र-बन्धन में एकसूत्रता निहित है। हम इस संसार में एकसूत्रता से रहें।

भारतीय संस्कृति के सोलह संस्कारों में ऐसे अनेक प्रतीक हैं। मृत्यु के पश्चात् जब शव को श्मशान ले जाते हैं तब आगे आगे मिट्टी की हँडिया जाती है। अर्थ यह कि यह देह मिट्टी की थी। फूट गई। इसमें रोने-धोने की, शोक करने की, कोई बात ही नहीं है। शव को स्नान कराया जाता है। नये कोरे वस्त्र दिये जाते हैं। क्योंकि उसे नये घर में प्रवेश करना है। उसे शुचिर्भूत्वा ईश्वर की ओर जाना है। मरते समय उसके मुख में तुलसीदल डालते हैं, इसका तात्पर्य यही कि शरीर पर तुलसी-पत्र रख दिया है और यह देह अब भगवान् की हुई।

तीर्थ-यात्रा करनेवाले लोग अक्सर अपने पास भगवा रंग का झंडा रखते हैं। यात्री जहाँ जाता है वहाँ अपने को वह ईश्वर का सैनिक — खुदाई ख़िदमतगार — प्रमाणित करेगा। यही उस झंडे का भाव है। भगवा रंग त्याग का—उत्सर्ग का—सूचक है। संन्यासी का वस्त्र अग्निवर्ण होता है। संन्यास याने सम्यक् न्यास — सम्पूर्ण त्याग, एक महान् यज्ञ। भगवा रंग आग की ज्वाला का होता है। ज्वाला ईषत् रक्तवर्ण होती है। बिलकुल लाल रंग की नहीं।

जगद्गुरू शंकराचार्य के साथ सदा जलती मशाल रहती थी। ज्ञानयज्ञ सदा प्रज्ज्वलित रहना चाहिए। जगद्गुरू को और उसको मान कर चलने-वालों को सदा प्रकाश की पूजा करनी चाहिए। अन्धकार में रहनेसे हमारा काम कैसे चलेगा! ज्ञान-सूर्य को सदा प्रकाशमान ही रहना चाहिए।

जब हम किसी पुण्यक्षेत्र अथवा तीर्थ स्थान में जाते हैं तो किसी अपनी पसन्द वस्तु का त्याग इस लिए करते हैं कि हमें तीर्थयात्रा का स्मरण बना रहे। सिस्टर निवेदिता ने इस रहस्य का एक स्थान पर उद्घाटन किया है। यात्रा जीवन को पवित्रता देनेवाला अनुभव है। यह अनुभव हमारे जीवन में अमर बन कर रहे। गंगा मैय्या के दर्शन और आचमन से जो शैत्य-पावनत्व की अनुभूति होती है, वह वर्णन से परे है, अनुभवैक-गम्य है। वह प्रसन्न पावन अनुभूति हमारी निधि बन जाती है। कोई कहता है, मैंने काशी जा कर कद्दू—कुम्हड़ा छोड़ा, कोई कहता है, गया जा कर गाजर-गोभी छोड़ आया हूँ, कोई कहता है प्रयाग में त्रिवेणी संगम पर प्याज-लहसुन का त्याग कर आया। इस तरह कोई-कुछ कोई-कुछ त्याग करता है। जब जब हम त्याग की हुई वस्तु देखेंगे काशी का स्मरण होगा। गंगा, गंगाधर, गंगोत्री, गंगातीर और वहाँ के प्राचीन ब्रह्मर्षियों, राजर्षियों की तपश्चर्या का स्मरण; शंकराचार्य के अद्वैत की स्मृति, इन सबका अनुभव, क्षणमात्र में जागृत होकर हमारे जीवन में गहरा फैल जायगा। हमारे रक्तमें भिद जायगा।

हम जीवन के महान अनुभवरूपी धनकी रक्षा नहीं करते, इस लिये हम अन्तर्दरिद्री बन गये हैं। हाय भिक्षुक मन!

"भिकारी जरि इतुकी केली मीं वणवण।
रिकामी झोळी माझी जवळ नाहीं कण॥"

जीवन की झोली सदा खाली ही रही! क्यों! सारे अमूल्य अनुभव फटी झोली में से जाने कहाँ बिखर गये? महात्मा गान्धी के दर्शन हुए, उस क्षणभर

के दर्शन को हमें अपने जीवन में सुरक्षित रखना चाहिये — विदेशी वस्त्रों के त्याग से — राष्ट्रीय रचनात्मक प्रवृत्ति से—अस्पृश्यता के त्याग से—उस क्षण का दर्शन सदा के लिये अमर बनेगा ।

अनुभव दो प्रकार से अमर होता है। एक—कुछ वस्तुओं के त्याग से व दूसरा कुछ वस्तुओं के स्वीकार से। जो अमंगल है उसे त्याग दें और जो मंगल है उसे ग्रहण करें ! विदेशी त्यागकर खादीका व्रत ग्रहण करें। खादी व्रत से बापू का दर्शन अमर बन जावेगा। उस घड़ी की याद आवेंगी, उस समय की भावनाएँ याद आवेंगी, वह वातावरण याद आवेगा । ये अमूल्य अनुभव, वे पावन घड़ियाँ ही तो जीवन की निधियाँ हैं ।

हम जब घर छोड़ कर बाहर जाते हैं तो जाते समय हाथ पर दही परोसा जाता है। दही खा कर हाथ धोये नहीं जाते, वैसे ही चाटकर छोड़ दिये जाते हैं। आरोग्य की दृष्टिसे देखा जाय तो यह मूर्खता है, किन्तु भावना की आँखों से देखें तो इसमें हमें सहृदयता दिखाई देगी। दही स्निग्ध वस्तु है। स्निग्धता को न भूलना—स्निग्धता को धो-पोंछ कर न जाना, जाते समय भी तुम्हारे हाथपर स्नेह की स्निग्धता उँडेल रहा हूँ, तुम्हारे ये स्नेह-सिक्त हाथ दो हृदयों को एक बनाने के साधन हैं। आर्द्र हाथ लेकर जाओ, कोरे हाथ नहीं; यही इसका भाव है। हाथ वैसे ही आर्द्र बने रहने दो जिससे वह प्रेम—वह आर्द्रता—तुम कभी न भूलो ।

विवाह के भोज में दामाद के हाथ पर घृत की आपोष्णी (आपोसन) परोसी जाती है। इस विधिमें भी यही भाव है। कन्या की माँ कहती है—" यह प्रेम स्वीकार करो, तुम्हें अपनी कन्या सौंपी—तुम्हारा वह हाथ कठोर न बनने पावे—स्नेहार्द्र बना रहे। प्रेम-पूरित हाथों से इस कन्या का पाणि-ग्रहण करो। परन्तु घृत की आपोष्णी लेने वाले दामाद क्या सचमुच अपने हाथों को प्रेमपूरित रखते हैं ? मेरा हृदय घृत की आपोष्णी देखते ही भर आता है। दामाद का मन भर आता है या नहीं; सो मैं नहीं जानता, पर इस प्रतीक में मुझे सहृदयता का सागर लहराता दिखाई देता है ।

वर वधू के अंगोंपर हलदी चढ़ाई जाती है। वस्त्र भी पीले रँगे जाते हैं। पीले रंग का क्या अर्थ है ? स्वास्थ्य की दृष्टिसे हलदी अच्छी होती है कुछ लोग कहेंगे । किन्तु मेरी राय में तुम्हारी दुनियाँ सोने की बने यही भाव है । शरीर पर पीले सोने के आभूषण भले ही न हों—इस से तुम्हारी गृहस्थी में कोई व्यवधान न आवेगा । कहीं, किसी भी दशा में रहें, आनंद से रहें यही भाव संभवतः उसमें होगा । दिल की दौलत इसमें है । भावनाओं के वैभव की, सहानुभूति के सुवर्ण की,—तुम्हें कभी कमी न खटके यही भाव हलदी सूचित करती है। हम अपना जीवन ही सोने का बना लें—यही भाव निहित है ।

तिल-संक्राति को हम तिलगुड़ देते हैं । तिल है—स्नेह, और हमें स्नेह में गुड़ मिलाना है । आज से हम कृत्रिम ऊपरी दिखाऊ और अंतर्विष-मय प्रेम नहीं देंगे । अब इस प्रेम में सद्भाव होगा, माधुर्य होगा । भूत को बिसरा दें । जीवन का संक्रमण हो—जीवन में क्रान्ति हो, भूतकालीन द्वेष ईर्ष्या के बदले प्रेम के संबंध स्थापित हों ।

हुताशनी होली के महीना भर पहले से ही हमारे यहाँ होली मनाना प्रारंभ हो जाता है । मनुष्य के मन में दबी हुई वैषयिक वृत्तियों को बाहर निकाल कर जलाना यही होली जलने का हेतु है । जो भी मनमें गुबार भरा हो—वमन कर डालो—बक डालो, सारी गंदगी बाहर निकाल फेंको ! दस दिनों तक छोटी होली जलती है, किंतु अंत में प्रचण्ड होली का दहन होता है । हमारे जीवन की सारी गंदगी, जल कर खाक हो गई, यही हमें जग-जाहिर करना है, "देखो ऐ दुनियावालो, तमाम कूड़ा करकट जला डाला" सबके सामने, सबके देखते हुए आग जला कर—राख बना डाली । अब वही राख भस्म के रूप में शरीर में लगानी है । उसी राख से नया जन्म होगा । जीवन पर नया विशुद्ध रंग चढ़ेगा । बिना होली के रंगपंचमी नहीं होती । पहले जीवन का कूडा करकट जलाओ और फिर रंगपंचमी खेलो—तभी तो सच्चा आनंद है । शिवशंकर के मंदिर में मुख से 'बुऽबू' की आवाज़ की जाती है । क्योंकि शंकर ने मदन की होली जलाई थी । मंदिर में कच्छप होता है, उसी कछुवे की भाँति इंद्रियों पर संयम प्राप्त करना होगा ।

"घेई ओढूनी संपूर्ण विषयांतून इंद्रियें ।
जसा कासव तो अंगें तेव्हां प्रज्ञा स्थिरावली ॥'

[जिस तरह कछुवा अंगो को खींच लेता है, उस तरह जब मानव इंद्रियों को विषयों से परे हटा लेगा, तभी वह स्थिर-प्रज्ञ बनेगा। **'कूर्मोगांनीवं सर्वशः'**]

कछुआ इंद्रियसंयम का प्रतीक है। मंदिर में घण्टे वजते हैं। मेरी दृष्टि में इसमें योग के अनहद नाद की कल्पना निहित है। जीव और शिव का ऐक्य स्थापित हो गया—समाधि लग गई, आनंद के मंगल गीत प्रारंभ हो गये, जीवन-मंदिर में मंगलवाद्य निनादित होने लगे, अहर्निश अनहद नाद ध्वनित होने लगा। अनहद का अर्थ है सतत बढ़नेवाला। कहते हैं उत्तरोत्तर बढ़नेवाला अखण्ड नाद सुनाई देता है। घण्टावादन में संभवतः यही अनहद-ध्वनि गर्भित हो या देवता के दर्शनों के निमित्त मंगल वाद्य बजने चाहिये, यह भाव भी हो सकता है। और नहीं तो विश्वव्यापी प्रपंच में मग्न ईश्वर को पुकार कर, घंटी बजा कर कहना कि—हे देव, मुहूर्तमात्र तुम्हारे द्वार आया हूँ, क्षणमात्र तो दुनियाँदारी से मन को वाहर खींचकर अपने गढ़े से सिर बाहर निकालकर तुम्हारे दर्शन कर लेने दो—ऐसा भाव भी हो सकता है।

हमारे यहाँ जलपूर्ण कलश का बहुत महत्व है। विवाह के अवसर पर कुमारिकाएँ भरे कलश लिये खड़ी रहती हैं। जीवन एक माटी का कलश ही तो है। जैसे खाली घड़े का कोई महत्व नहीं, वैसे ही रिक्त जीवन का कोई महत्व नहीं। यदि घट भरा हो तो हम उसे सर पर रखते हैं। इसी तरह अपने जीवन-कलश को हम प्रेम से भरें, सत्कर्मों से भरें, ज्ञान से परिपूर्ण करें, तभी लोग तुम्हें सर-आँखोंपर रखेंगे। भारतीय संस्कृति के ये मंगल कलश मानों कहते हैं — मंगल पूर्ण जीवन बनाओ।

नीरांजनी से भगवान् की आरती उतारने से क्या तात्पर्य है! यही कि जीवन जला कर देवता की आरती उतारना जीवन रूपी मोमबत्ती सदैव ज्वलित रखना—और कहना—मेरे देवता, समाज के लिये जीवन की मोमबती पिघला डाली है। पंचप्राण ही पंचारती है—ध्येय की प्राप्ति के लिये पंचप्राणों की आरती सजानी होती है।

मंदिर में देवता की प्रतिमा के चारों ओर प्रदक्षिणा लगाने से देवता का स्वरूप चित्तमें अच्छी तरह जमता है। प्रदक्षिणा चाहे एक लगाओ चाहे तीन, चाहे ग्यारह, चाहे एक सौ आठ। जितनी ही वार हम प्रदक्षिणा लगावेंगे, मूर्ति उतनी ही अधिक हमारे अंतःकरण में अंकित होगी। इसी तरह, अपने ध्येय के चारों ओर प्रदक्षिणा लगाना आवश्यक है। यदि दरिद्रनारायण की सेवा का ध्येय है तो ध्येयपूर्ति के लिये सदा उनके चारों ओर चक्कर काटने होंगे—उनके रहने के झोंपड़े देखने होंगे—उनका जीवन जानना होगा, तभी दरिद्रनारायण का सच्चा स्वरूप ज्ञात होगा। उनकी आँखों में आँसू हैं या प्रसन्नता, मुखपर तेज है या प्रेतछाया, उन्हें नैवेद्य मिला या नहीं, उनके शरीर पर वस्त्र हैं या नहीं—यह तभी मालूम हो सकेगा। यदि राष्ट्रीय सभा सचमुच ही धरती के लालों को—किसानों को — देवतारूप मानती है तो उसके भक्तोंको चाहिये कि वे गाँवों की प्रदक्षिणा करें। गाँव शिव का मंदिर है। उस गाँव के देवता का क्या स्वरूप है, वह किस हालत में रहता है, क्या खाता है, क्या पीता है, ज्ञान है या नहीं, घरमें दिया है या नहीं, गर्मियों में जल के अभाव में इसकी देह तो नहीं छटपटाती—यह सब देखना होगा—हमें जानना होगा। यदि ज्ञान का ध्येय हो तो दिग्गज विद्वानों के चारों ओर घूमो, उनकी सेवा करो। पृथ्वी, चंद्रमा आदि सूर्य के चारों ओर घूमकर प्रकाश प्राप्त करते हैं—तुम भी निरहंकार बन कर सूर्य के चारों ओर चक्कर काटो—यदि कलोपासक हो तो कलाकारों की परिक्रमा करो।

परिक्रमा करते समय, यही अभिलाषा मनमें हो कि हम जन्मजन्मांतर पर्यंत ध्येय-देवता की पूजा करें! **"सदा माझ्या डोळां जडो तुझें रूप !"** (मेरे नैनोंमें तुम्हारा ही रूप समावे) परिक्रमा के पश्चात् साष्टांग दंडवत् करने के पूर्व हमें निश्चय करना चाहिये कि यह देह दण्डवत् ध्येय की परिपूर्ति में रत रहे। इसलिये परिक्रमा के उपरांत साष्टांग दण्डवत् की विधि है। तत्पश्चात् अंतम मंत्रपुष्प; और अंतिम है महासमर्पण—जीवन पुष्प का चिरसमर्पण।

मूर्तिपूजा भी प्रतीक है। राम की मूर्ति देखते ही राम का सारा जीवन-चरित्र आगे खड़ा हो जाता

है! क्षणभर में सारी रामायण याद आ जाती है—क्षणमात्र में सारी पावनता व्याप्त हो जाती है।

परन्तु पाषाण की मुर्ति के दर्शन करने ज़रा दूर जाना पड़ता है—साथ ही उसके निर्माण में प्रयास भी अभिलषित है। मूर्ति, पुतले, चित्र आदि के रूप में जो प्रतीक बनते हैं वे सहज-साध्य नहीं।

इसलिये 'नाम' सबसे बड़ा प्रतीक है। परमेश्वर का नाम हमने ॐ रखा है। राम कृष्ण आदि बहुत सारे नाम किस लिये? सब नामों का सार है—ॐ। इस ॐ में सम्पूर्ण स्वर, सारे व्यंजन समाविष्ट हैं। यही नहीं, समूचा साहित्य, सम्पूर्ण वेद भी निहित हैं। ॐ तो परमेश्वर की वाङ्मयी मूर्ति है। पाषाण मूर्ति तो भंगुर है, किंतु अक्षरमूर्ति सुलभ तथा अविनाशी है। मेरे अधरोंपर स्थित "राम" की अक्षरमयी मूर्ति कौन धर्मान्ध मुसलमान भंग कर सकता है? इस लिये 'नाम' महान् प्रतीक है। सारा इतिहास जैसे एक 'नाम' मात्र में समाविष्ट है। 'माँ' कहते ही माता का अनंत प्रेम याद आता है, 'बेटा' शब्द याद आते ही माँ को बच्चे की शतस्मृतियाँ स्मरण हो आती हैं। जैसे जैसे काल व्यतीत होता है, इतिहास घनीभूत होते होते नाम में समा जाता है। नामस्मरण, घरमें, बाहर उठते-बैठते, कहीं भी किया जा सकता है। इसके लिये पैसा, फीस, दक्षिणा की आवश्यकता नहीं—"राधेकृष्ण बोल मुख से, क्या लगेगा मोल"

तात्पर्य यह कि सारा संसार नामरूपात्मक है, पर अन्ततोगत्वा वह रूप भी नाम में समा जाता है, केवल नाम शेष रह जाता है।

भारतीय संस्कृति प्रगतिपथ पर है। बदलती संस्कृति में प्रतीक भी नये ही आवेंगे। राष्ट्रीय सभा का तिरंगा झण्डा सर्व धर्मों के ऐक्य का चिन्ह है। खादी भी एक नया प्रतीक है—हिन्दुस्तान के गाँवों की भूखी जनता का स्मरण खादी है। लाल झण्डा भी इसी तरह एक नया प्रतीक है। संसार के श्रमजीवी लोगों का वह एकता का चिन्ह है। हथौड़ा, हँसिया आदि श्रमिकों के प्रतीक हैं।

इस प्रकार प्रतीकों की ओर गहराई से देखने की दृष्टि यदि प्राप्त हो गई तो एक प्रकार का आनंद मिलता है। वे सारी क्रियाएँ, वे सारे चिन्ह, अर्थपूर्ण प्रतीत होते हैं। वस्तु के अंतरंग के स्पर्श की अनुभूति-सी होती है। हम तो रसग्राही हैं—ऊपरी छिलकों से किसे संतोष होगा? भारतीय संस्कृति के अंतरंग का यदि स्पर्श करना हो, उसका सच्चा स्वरूप जानना हो, उसके सच्चे उपासक बनना हो, तो अंतर्रूप को भाँपनेवाली तीक्ष्ण दृष्टि आवश्यक है। तभी इस संस्कृति का अंतरंग प्रेम से विकसित, पवित्रता से परिपूर्ण, त्याग से उज्ज्वलित, माधुर्य से पूर्ण, ज्ञान से अलंकृत, आशा से शोभित, उत्साह से संस्फूर्त, आनंद से पूरित दिखाई देगा और अवश्य दिखाई देगा।

[मराठी से अनु०—कु० भारती शर्मा]

सिद्ध-नाथ-साहित्य और गोरख की वाणियाँ

[श्री० शंभुप्रसाद बहुगुणा]

सिद्धि जिसने प्राप्त कर ली हो वह सिद्ध है। इन्द्रियों को जिसने नाथ लिया वह नाथ है। इन्द्रियों की रक्षा कर जिसने स्वर (नाद)-साधना में सिद्धि प्राप्त कर ली वह सिद्ध-नाथ है। अपनी साधना की सिद्धि के कारण, गोरख सिद्ध और नाथ दोनों ही हो जाते हैं। इन्द्रियों को नाथ कर नाद-स्वर की साधना में जिसने सिद्धि प्राप्त कर ली है उस योगीश्वर की वाणी गोरख वाणी है। शिव योगीश्वर हैं, उनके अनुयायी योगियों की संज्ञा भी योगी- (जोगी) हुई। और शिव ने अपनी देन विष्णु को दे डाली तो विष्णु भी शेषशय्या में क्षीर-सागर में समाधिस्थ रहने लगे। समय आने पर उनके कलावतार तथा पूर्ण अवतार राम तथा कृष्ण को भी वह देन मिली। हिन्दी के मध्यकालीन संत भक्त-कवियों ने शिव का रूप राम, कृष्ण में देखा और कृष्ण तथा राम ने जोगी शिव को पाया। सूर, रसखान, तुलसी, मीरा के स्वर इस रूप-दर्शन के साक्षी हैं।

सिद्ध यद्यपि वह है जिसे साधना के क्षेत्र में सफलता प्राप्त हो गई हो किन्तु कालान्तर में वे लोग भी सिद्ध कहलाने लगे जिन्होंने सफलता देने वाली उस प्रणाली को अपनाया जिसके द्वारा अन्य योगी-साधकों को सिद्धि प्राप्त हुई। सिद्धों की विचार प्रणाली का संवंध भारत की प्राचीनतम योग-शैव-संत धारा से है। महाभारत, रामायण, कालिदास और भवभूति के ग्रंथों में सिद्धों तथा शैव योगियों का उल्लेख उसी तरह मिलता है जिस तरह जैन तथा वौद्ध साहित्य में वह पाया जाता है। आगे चल कर नाथ, सूफी तथा संतों, वैष्णवों और शाक्तों के साहित्य में भी उसका स्वरूप विकसित हुआ है।

योग-साधना, तपस्या, स्वर-सिद्धि, इन्द्रिय-निग्रह के लिए यद्यपि किसी स्थान ही विशेष पर जाना नितान्त आवश्यक नहीं है, किसी विशेष ही प्रणाली से सिद्धि प्राप्त हो यह भी जरूरी नहीं; किन्तु फिर भी जन-कोलाहल से दूर एकान्त वन पर्वतों और हिमप्रान्तों की रम्य प्रकृति के सात्विक स्थलों पर शीत उष्ण से बचने के लिए विभूत (भस्म) का शरीर पर लेप, मृगचर्म का प्रयोग तथा प्राणायाम विज्ञान, शरीर-साधना आदि के क्रमशः उपयोग से इन्द्रिय-निग्रह, मन-निग्रह तथा ब्रह्म-चिन्तन में कुछ अधिक सुविधा रहती ही है। इसी से प्राचीन समय से ही साधक ऋषि-मुनि वन-पर्वतों में, हिम-प्रान्तों, विन्ध्याटवी, नीलगिरि, गिरनार, आवू, कैलाश, नीलाचल, वद्रिकाश्रम आदि में सिद्धि साधना हेतु जाते रहे हैं।

साहित्य में भी शैव-नाथ-योगियों तथा सिद्ध-नाथ-संतों का विशेष संवंध इन पर्वतीय भागों में विशेष रूप से पाया जाता है। सिद्धि के पश्चात् जन-जीवन के कल्याणार्थ ये लोग जन-समाज के वीच भी समय-समय पर आते रहे हैं और उनकी वाणियों, उपदेशों, भजनों विचारों आदि का लेखा उनके श्रद्धालु भक्त भी करते रहे हैं। सिद्धनाथ लोग भी काश्मीर, नैपाल, आसाम, वंगाल, विहार, उड़ीसा, संयुक्त-प्रान्त (काशी, गोरखपुर, गढ़वाल, नीलगिरि, सिंहल, नागनाथ (हैदरावाद), गुजरात, राजस्थान (उज्जैन) उत्तरी सीमाप्रान्त आदि में विशेष रूप से हुए। इन स्थानों में अब भी इनके केन्द्र हैं और मढ़ियाँ पाई जाती हैं। इन स्थानों में पाये जाने वाले जन-जीवन के गीतों में भी इन सिद्धनाथ योगियों की विचार-धाराओं का जल बहता चला आ रहा है।

ईसा की आठवीं शताब्दी से ले कर तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी तक चौरासी सिद्ध हुए। लुई पा, लीला पा, डेरू पा, सरह पा, भीत पा, गोरक्ष पा, चौरंगी पा; तंती पा, काण्ह पा, चरपटी पा आदि, भिन्न भिन्न वर्गों से आये हुए सिद्ध थे। डोम, चमार, धूनी, छीपी, लुहार, जुलाहे, जुग्गी, कोरी आदि वर्गों के लोग इनके अंतर्गत विशेष रूप से आये। इन वर्गों के संस्कारों का प्रभाव किसी न किसी

अंश तक उनके जीवन और उपदेशों में पाया ही जाता है। लोगों को जब तक वे अपने चमत्कारों से चकित कर सके, उनकी धाक जमी रही; बंगाल, बिहार और उड़ीसा के विक्रमशिला, उदन्तपुरी केन्द्र उनके स्वरों से गूँजते रहे।

रासायनिक क्रियाओं के प्रयोग से शरीर को अमर बनाया जा सकता है ऐसा इन लोगों का विश्वास था। इन रासायनिक क्रियाओं का भेद सब को नहीं बताया जा सकता। यह गुह्य बात है, रहस्य की क्रिया है; किन्तु अपने समाज के व्यक्तियों से उसके विषय में अन्य लोगों के सम्मुख बात किस प्रकार की जाय? इसके लिए मुद्राओं, चक्रों और सांध्य भाषा का प्रयोग किया जाना स्वाभाविक ही था। आधुनिक युग में इनकी इस सांध्य भाषा को 'रहस्यमयी-भाषा' और 'प्राचीन-तम हिन्दी' नामों से भी पुकारा गया है। इस भाषा में अर्ध-मागधी, प्राकृत, अप-भ्रंश, और खड़ी बोली के रूप भी मिले हुए हैं। इस प्रकार के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

१

काया तरुवर पंच विडाल।
चंचल चित पईठो काल।
दिठ्ठ करिअ महासुह परिनाम।
'लुई' भनइ गुरु पुच्छिय जान।

२

भाव न होई, अभाव न जाई।
अइस सँवोहें को पतिआई,
'लुई' भनइ वट हुलक्ख विनान।
तिअ धाए विलसइ उह लागे ना।

३

सून करुनरी अभिन वारें,
काअ, वाक, चिअ।
विलसइ 'दारिक',
गअनत पारिय कूलें।

४

अलक्ख लख चिता महा सुहें।
विलसइ 'दारिक' गअनत पारिय कूलें।

५

जहि मन, पवन न संचरइ,
रवि-ससि नाह पवेस।
तहि वट चित्त विसाम कस
'सरहे' कहि उववेस।

६

अपने रचि रचि भव निर्वाना।
मिछें लोअ बँधावए अपना।
अंभे न जानहूं अचिन्त जोई।
जाम-मरन भव कैस न होई।
जइसो जाय, मरन वी तइसो।
जीवंते मअलें नाहि विशेषा।
जा एथु जाम मरने विसंका।
सो करउ रस रसानेरे कथा।
जे सचराचर तिअस भमंति।
ते अजरामर किमपि न होंति।
जामे काम कि कामे जाम।
'सरह' भनति अचिन्त सो धाम।

८

ऊँचा ऊँचा पवत तोहिं वइस
सवरी वाली।
मोरिंग पीच्छ पराहिन सवरी,
गिवत गुंजरी माली।
उचत सवरो, पागल सवरो,
माँ कर गुली गुहाड़ा तोहारि।
निज घरनी नाचे सहज सुंदरी!

८

जो मन गोएर आला जाला।
आगम पोथी इष्टा माला।
मन कइसें सहज बोल वा जाय।
काअ वाक चिअ जसु न समाय।
आले गुरु उएसइ सीस।
वाक पथाथीत काहिब कीस।
जे तई बोली ते तई टाल।
गुरु बोध से सीसा काल।
भनइ 'कन्ह' जिन रअन विकसइआ।
कालें बोंब संबोहिअ जइसा।
काहे रि घिनी मेलि अच्छहु कीस।
वेटिल हाक पड़अ चौदीस।
अपना मांसे हरिना वैरी।
खनह न छाड़अ भुकु अहेरी।
तिन न च्छूपई हरिना पिवइ न पानी।
हरिना हरिनि रि निलअ न जानी।

हरिनी बोलअ हरिना सून हरिआ तो।
ए बन च्छाही होइु भान्तो।
तरं गंते हरिनार खूर न दीसअ।
'भूसुक' भनइ मूढ़ा हिअहि न पइसइ।

जन-समाज के लोग तो सिद्धों के आध्यात्मिक अथवा गुह्य-समाज के भावों की भाषा में अपनी भाषा का ही प्रयोग पा उस से अपने ही अर्थ लेते थे, किन्तु इन लोगों का अपना रहस्यमय अर्थ भी रहता था जिसे उनके सगे संगी ही समझते थे। जब कभी सरलतम जन-जीवन के शब्दों का द्वयार्थक प्रयोग करना होता था तो शब्दों को विशेष वस्तुओं का प्रतीक मान लिया जाता; इस प्रकार की भाषा में सामान्य अर्थ ऊटपटाँग हो जाता था। प्रतीकों का वीज-अर्थ ज्ञात हो जाने पर, अर्थ सुलझा हुआ, ठीक प्रतीत होने लगता। इस शैली की वाणियाँ उलट वाँसियाँ कहलाईं। आगे चल कर कबीर, सूर, तुलसी आदि ने भी इस कूट शैली को अपनाया। और मुसलमान कवियों में भी यह चली। अमीर खुसरो की वुझौवल पहेलियों में इस शैली का जटिल रूप नहीं दिखलाई देता। कारण यह है कि उन्होंने संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में आती हुई परंपरा को अपनाया। फिर अमीर खुसरो के नाम से जो हिन्दी कविता मिलती है वह वारहवीं तेरहवीं ईसवीं शताब्दी के अमीर खुसरो की न हो कर औरंगजेब-कालीन अमीर खुसरो की हो सकती हैं,। तेरहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो (१२५५ ई–१३२५ ई) ने हिन्दी की कविताएं की थीं इस के पक्ष में तत्कालीन अथवा वाद के इतिहास में प्रमाण नहीं मिलते। इसके विपरीत ऐसे उल्लेख अवश्य मिलते हैं जो संकेत देते हैं कि वारहवीं तेरहवीं शताब्दी का विद्वान कवि अमीर खुसरो हिन्दी को घृणा की दृष्टि से देखता था।

सिद्धों की प्रतीक भाषा शैली का युगानुकूल विकसित रूप नई विशेषताओं सहित आधुनिक युग के हिन्दी काव्य-साहित्य में प्रेम संबंधी काव्य में पाया जाता, है और उसे 'छायावादी प्रणाली की भाषा' कहा जाता है,। संस्कृत साहित्य से चली आती हुई कूट शैली में पद्य लिखने की प्रवृति को वढ़ाने में उलटवाँसियों का भी कुछ-न-कुछ हाथ रह सकता है। कूट काव्य का जन्म हुआ तो भावाभिनय की मुद्रा शैलियों और शृंगारी साहित्य के अंतर्गत किन्तु चमत्कार-प्रियता, पांडित्य-प्रदर्शन और विषय-गोपन प्रणालियों के रहस्य ने उसका विकास अन्य क्षेत्रों में भी कर दिया। चमत्कारवादिता जहाँ केवल शब्द-जाल भर वन जाती है अर्थ वहाँ वुझौवल से भी कठिन हो जाता है। सामान्य रूप से वह गोरख-धंधा कहलाता है। किन्तु गोरखनाथ से उस का कोई संबंध नहीं, रासायनिक क्रियावाले तांत्रिकों के माया जाल से अवश्य है। इन तांत्रिकों का भी प्रभाव आठवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी तक के सिद्धों पर उसी भाँति पाया जाता है जिस तरह उन पर शांकर अद्वैत, शाक्त मत, भर्तृहरि के शतकत्रय, मुसलामीनी-सूफी विचार धाराओं तथा प्राकृत अपभ्रंश कालीन चारण साहित्य का प्रभाव है। युग की वदलती हुई चेतनाओं में ये सिद्ध सामान्यतः प्राचीन चेतना की क्षीण होती हुई ध्वनियों के अवशेष प्रतीक के रूप मे चलते हैं। उठता हुआ जीवन आध्यात्मिक, सामाजिक, तथा राजनैतिक क्षेत्र में नाथों, जैन साधुओं, सूफियों, संतों, चारणों, दर्वारी व मांडलीक कवियों और आचार्यों तथा उनके अनुयायी धार्मिक सुधारकों तथा भक्त कवियों के आन्दोलनों से संचालित होने लगता है। मुसलमानों के सिन्ध के आक्रमण (११२ ई) से ले कर मुगलों के आरंभिक युद्धों (पानीपत का पहला युद्ध १५२३ ई) तक का साहित्य इस प्रकार वहुमुखी प्रवृत्तियों का साहित्य है। उस में भाषाओं का भी वहुमुखी विकास हुआ। न केवल व्रज भाषा, डिंगल, पिंगल, बुंदेलखंड़ी, अवधी, का ही विकास उस समय से होने लगता है वरन् वोलचाल की खड़ी वोली भी अँकुवाने लगती है। चौदहवी पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते आते तो वह व्यापक रूप से काव्य में भी काम में आने लगी थी। दोहा, चौपाई, अरिल्ल, छप्पय, कवित्त, राग-रागिनियाँ (पद), कड़खे इन शताब्दियों के प्रमुख छंद हिन्दी काव्य में रहे।

सिद्धों के अंतर्गत होते हुए भी गोरख ने जैन-शैव-योगियों की आध्यात्मिक परंपरा को अपनाया। रासायनिक क्रियाओं को उन्हों ने अधिक महत्व

नहीं दिया । चित्तशुद्धि के लिए, शरीर शुद्धि की आवश्यकता है, इसलिए छटे-छ मासे, यौगिक क्रियाओं से काया-कल्प करना उन्होंने आवश्यक बताया है।

अवधू अहार तोड़ौं, निद्रा माड़ौं,
कबहुँ न होइगा रोगी, ।
छठे छ मासै काया पलटिबा,
ज्यूं को की विरला बिजोगी ।

आहार-व्यवहार में वे संयमवादी रहे हैं । मांस, मदिरा, भाँग, स्वादु भोजन की तृष्णा, इन्द्रिय लोलुपता आदि को वे दुर्व्यसन-दुर्वलता मानते हैं—

जोगी होइ पर निंद्या भषै ।
मद मांस अरु भांगि जो भषै ।
इकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई ।
सति सति भाषंत गोरष राई ।
अवधू मांस भषंत, दयाधरम का नास ।
मद पीवत तहां प्राण निरास।
भाँगि भषंत ग्यांन ध्यांन षोवंत ।
जम दरवारी ते प्राणी रोवंत ।
चढ़तो पित्त ऊतरतां संतापै ।
देह विसर अरु निद्रा व्यापै ।
चुधि विन वकै विकल होय जाय ।
तातैं गोरष भाँगि न षाय ।
यंद्री का लड़वड़ा, जिभ्या का फूहड़ा ।
गोरष कहै ते पतषि चूहड़ा ।
काछ का जती, मुख का सती ।
सो सत पुरष उत्तमो कथी ।
जिभ्या इन्द्री एकै नाल ।
जो राषै भो वंचै काल ।
पंडित ज्ञानी न करासि गरब ।
जिभ्या जीती जिन जीत्या सरब ।

सब कुछ देखना, सुनना, मौन रहना और सबके साथ दया-धर्म का व्यवहार करना यही जोगी-साधक के लिए उत्तम जीवंन-व्यवहार है—गृहस्थी के लिए भी वह इस धर्म को वतलाते हैं । वाद-विवाद, पोथी-पत्रा का ज्ञान, सांप्रदायिक गर्व, आदि में समय नष्ट करना बुद्धिमानी नहीं । हिन्दू और मुसलमान, मुल्ला और पंडित, काजी और पुरोहित जो इस झगड़े में फँसे हैं उन्हें गोरख ने फटकारा है । वाहरी वाना बनाकर वने हुए साधु नामधारियों और संन्यासियों को भी उसी तरह फटकार कर सत्य, ब्रह्म-चिन्तन और आध्यात्मिकता के पथ पर जीवन को लगाने का उपदेश दे कर गोरख ने बाद की शताब्दियों में आनेवाले कबीर के लिए मार्ग खोल दिया ।—

पढ़ि पढ़ि पढ़ि केता मुवा ।
कथि कथि कहा कीन्ह ।
वढ़ि वढ़ि वढ़ि वहु घटि गया ।
पार ब्रह्म नहिं चीन्ह ।
हिन्दू ध्यावे देहरा,
मुसलमान मसीत ।
जोगी ध्यावे परम पद,
जहां देहरा न मसीत ।
हिन्दू ध्यावैं राम को,
मुसलमान खुदाइ ।
जोगी ध्यावैं अलस कौं,
तहां राम अछै न खुदाय ।
काजी मुलां कुरांण लगाया,
ब्रह्म लगाया वेदं ।
कापड़ी संन्यासी तीरथ भ्रमाया,
न पाया नृवांण पद का भेवं ।
महंमद महंमद न करि काजी ।
महंमद का वौहत विचारं ।
महंमद साथि पैकंबर सीधा,
ये लख अजी हजारं ।
दरवेस सोइ जो दर की जाणैं ।
पंचे पवन अपूठा आणै ।
सदा सुचित रहै दिन राति ।
सो दरवेस अलह की जाति ।
हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा,
धीरे धरिबा पावं ।
गरब न करिबा सहजैं रहिबा,
भणत गोरष रावं ।
गिरही सो जो गिरहै काया ।
अभि अंतर की त्यागै माया ।
सहज सील का धरै शरीर ।
सो गिरही गंगा का तीर ।
नाथ कहै तुम आपा राषौ ।
हठि करि वाद न करणां ।

यह जग है काँटे की वाड़ी।
देखि देखि पग धरणां।
मन मैं रहिणा भेद न कहिणां।
बोलिवा अमृत वाणीं।
अगिला अगनी होइवा अवधू।
तौ आपण होइवा पाणीं।
गोरख कहै सुणहु रे अवधू,
जग में ऐसे रहणा।
आँखैं देखिवा, कांनै सुणिवा,
मुख मैं कछू न कहणां।

गोरख अपनी विचारधारा का प्रसार भारत के एक ओर आसाम से लेकर दूसरे ओर उत्तरी सीमा-प्रान्त और उत्तर में वदरिकाश्रम से लेकर दूर दक्षिण में सिंहल द्वीप तक घूम-घूमकर उस युग में कर रहे थे जब कि उत्तरी भारत में मुसलमान तो तलवार के बल से और सूफी प्रेम-विरह की गाथाओं में अपने धर्म का प्रसार कर रहे थे। वंगाल-विहार तंत्र-मंत्र परंपरा के सिद्धों के प्रभाव से जगना चाहता था। दाक्षिण में आल्वार संतों की विचार धारा के अतिरिक्त दार्शनिक दिग्गज आचार्य अपना घर सँभालने में लीन थे। महाराष्ट्र और गुजरात में श्वेताम्वर दिगम्वरों में भेद वढ़ने पर भी जैन साधु तथा शैव तथा पौराणिक वैष्णव परंपरा के संत तथा सूफी अपनी विचारधाराओं का प्रसार कर रहे थे और सोलंकी, चौहान, राठौर, गहरवार, पँवार, पाल आदि वंशो के राजा दर्प में चूर हुए, अपने मांडलीकों सहित एक दूसरे से लड़ते झगड़ते हुए भी मुसलमानों से मोर्चा ले रहे थे। संस्कृत साहित्य के आचार्य, ध्वनि और रसशास्त्र के विवेचन करने में व्यस्त थे, इस साहित्य में दर्शन, नाट्य, काव्य, नीति आदि साहित्य भिन्न-भिन्न शैलियों में शास्त्रीय पद्धति मे रचा जा रहा था; धार्मिक आचार्य नई परिस्थितियों के अनुकूल अपने धार्मिक विधानों में व्यापकता लाने की व्यवस्था दे रहे थेऔर प्राकृत तथा अपभ्रंशों मे भी इन इन चेतनाओं को व्यक्त करनेवाला साहित्य इतनी विपुल मात्रा में रचा जा चुका था कि अव देशी भाषाओं में भी वह, अभिव्यक्ति पाने लगा था। चेतना के इस वहुमुखी विकास के साहित्य युग को हिन्दी साहित्य के अब तक के अधिकांश इतिहास लेखकों ने वीरगाथा काल कह कर जो भूल की है उसे सुधारने का अवसर अव आ गया है। हिन्दी भाषा के विकास के इतिहास में भी इस प्रकार की भूलें विशेष कर खड़ी वोली हिन्दी और उर्दू के विकास के इतिहास में आज तक हुई हैं। उर्दू की कहानी शाहजहा के समय से और खड़ी वोली हिन्दी की उन्नीसवीं शताब्दी से आरंभ की जाती है। अव उसे आठवीं शताद्दि से आरंभ करने से ही हम सच्ची कहानी कह पावेंगे। खड़ी वोली हिन्दी का विकास आठवीं शताद्वी ईसवी से मुसलमानों के भारत आक्रमण से उसी भाँति होने लगता है जिस भाँति प्राकृतों तथा अपभ्रंशों का विकास शकों-हूणों के आक्रमण समय से होने लगा था। गोरखनाथ के समय तक आते आते उस का जो विकसित रूप, गोरख तथा अन्य योगियों की वाणियों मे दिखाई देता है वह अस्वाभाविक नहीं है, यह आध्यात्मिक चेतना ही अस्वाभाविक या सहसा आई हुई है जो गोरख तथा अन्य नाथों और संतों की वाणियों में पाई जाती है, उत्तरी भारत में राजस्थान का विशेष राजनैतिक महत्व होने से शैव-योग-सूफी संत तथा परंपरा का भी वहाँ उसी भाँति महत्वशाली प्रभाव रहा है जिस भाँति चारण शृंगारी काव्य का। इसी लिए वहाँ शताद्दियों तक ये विचारधाराएँ लोक-जीवन मे वहती रहीं। पन्द्रहवीं शताब्दी में इन विचारधाराओ ने मीरा के स्वरों में उच्चाति उच्च भावातिरेक की अभिव्यक्ति पाई है। गोरख की ही नहीं, सूफी संतों, शैवयोगियों और वैष्णव संतों की विचारधाराएँ उनमें विद्यमान हैं। यदि नहीं हैं अथवा अभाव के रूप में हैं अथवा विरोध के रूप हैं तो शास्त्र, शस्त्रकलह, गर्व-महत्वाकांक्षाओं की संकीर्ण व्रत्तियाँ और सांप्रदायिक झगड़ों अथवा खींचातानियों की प्रव्रतियाँ। गोरख ने जोगी के जो लक्षण वताएँ हैं, कवीर ने जिन्हें स्वयं तथा अपने गुरुभाइयों रैदास आदि के द्वारा राजस्थान, गुजरात तक पहुँचाया है मीरा में वे विद्यमान हैं। रैदास उन के गुरु माने ही जाते हैं। गोरख, कवीर, रैदास का प्रभाव उत्तरा खंड में भी विद्यमान है। गोरखाओं का राज्य, गढ़वाल का राज्य गोरखनाथ और सत्यनाथ

के वरदानसे तव तक फलता फूलता माना गया है जब तक वे सत्य-दया, धर्म आदि का व्यवहार करते रहेंगे। इस विश्वास को संत, चित्रकार, इतिहासकार, मन्मथ पंथी, श्रीनगर, गढ़वाल, वासी मौलाराम (रचना काल १७०६ ई. १८२५ ई.) ने सन १८१६' इसवी के लग भग लिपिवद्ध किया है—

श्री गुरु गोरष नाथ यह
दीयो तुम्हैं वरदान।
धर्म कर्म जव लौं रहै,
होय न तव लौं हान।
सत्यनाथ को वर गहे;
भयो पूर्ण निरुपाध।
दिन-दिन प्रति घटने लग्यौ,
वाढ़न लग्यौ फिसाद।

पूर्वी गढ़वाल में लंगूर गढ़ी, कमलेश्वर, श्रीनगर, देवलगढ़, नागपुर, नागनाथ तथा पश्चिमी गढ़वाल में अव भी नाथ पंथी गोरख-अनुयायी योगी पाये जाते हैं। वहाँ उनकी गिरी, पुरी, सरस्वती और भारती ये चार परंपराएँ चलती हैं। मोलाराम स्वयंनाथ पंथी योगी थे। उनके वंशज श्री. वालकराम शाह अव भी श्रीनर (गढ़वाल) में विद्यमान हैं।

गोरख की आध्यात्मिक विचार धारा और उस की अभिव्यक्ति जिस ढंग से हुई है उसी ढंग को आगे चल कर कवीर, नानक, मीरा, दादू आदि में भी हम उसे पाते हैं। शब्द, गगन-मंडल, शून्य, अमृत निर्झर, ग्यांन गुरु, मनचेल, अगम अगोचर वालक, पटदल, नाद, विन्दु आदि गोरख वाणी में विद्यमान हैं—

ग्यांन सरीषा गुरु न मिलिया।
चित्त सरीखा चेला।
मन सरीखा मेलू न मिलिया।
तार्थं गोरष फिरै अकेला।
नीझर झरणैं, अमीर पीवणां।
पट-दल वंध्या जाइ।
चंद विहूंणा चाँदिणा,
तहाँ देष्या गोरष राइ।
गगन मंडल मैं सुंनि द्वार,
विजली चमकै घोर अंधार।
ता महि ज्यंदा आवै जाइ।
पंच तत्व मैं रहै समाइ।
गिगन मंडल मैं गाय वियाई।
कागद दही जमाया।
छाँछि छाँणि पिंडता पीवीं।
सिधा भाषण षाया।
वसती न सुन्यं, सुन्यं न वसती।
अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं वालक वोलै।
ताका नाँव धरहुगे कैसा।
सवद हमारा षर तर षांडा।
रहणि हमारी साची।
लेषै लिषी न कागद माँड़ी।
सो पत्री हम वाची।

गोरख वाणी में विरह वेदना, भौतिक गुरु-गौरव तथा पौराणिक अवतार भावना का विश्वास का एक प्रकार से अभाव है कवीर आदि संतो में वैष्णव सूफी संतों तथा हिन्दू आचार्यों की विचार धाराओं के प्रवल प्रवाह के युग में विद्यमान रहने से ये चली आई हैं। काशी का वास और रामानंद का शिष्यत्व कभी किसी हद तक उस के कारण हैं। फिर लोक जीवन से विद्यमान ये भाव विचार धाराएँ कवीर की वाणियों के भौतिक रहने के कारण भी उन में मिल जा सकती हैं। मीरा आदि की वाणियों तथा भजनों के विषय में भी यही वात कही जा सकती है। मध्यकालीन संतों ने रूढ़ियों और संकीर्णताणों को छोड़ा है। उनका खंडन-मंडन आध्यात्मिक जीवन के लिये भी अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के विचार से किया गया है। सूक्ष्म चिंतन, सहज रहनि, इंद्रिय निग्रह, विन्दु धारण, नाद साधना, सरल दया, निष्कलुष व्यवहार तथा विरह प्रेम भाव सहित संतो का जीवन चला; उन्होंने अपने अपने विचारों से लोगों-को निष्कर्मण्य नहीं वनाया, भौतिक पाशविक वल के सहारे टिकी हुई आसुरी प्रवृत्तियों का दास होने से अवश्य वचाया। इसी का प्रभाव था कि सगुण वैष्णव भावना के राम-कृष्ण शाखा के तुलसी-सूर आदि भी निर्गुण सगुण का सापेक्षिक महत्व वतलाने में सगुण को श्रेष्ठ प्रतिपादित करते हुए भी योगमार्ग, निर्गुण संप्रदाय और नाथ पंथ के

प्रबल प्रभाव से अछूते न रह सके। 'मानस' के लोमश कागभुशुंडि संवाद में लोमश को हीन नहीं बताया गया है। सूर के उद्धव गोपी प्रसंग में भी उद्धव ने अपना मत परिवर्तित नहीं किया है। इसके विपरीत शिव अपनी सती के आगे लोमश की प्रशंसा ही करते देखे जाते हैं और राम भी गीता के कृष्ण की भाँति यही कहते हैं 'मुझे भक्तों में ज्ञानी भक्त सब से प्रिय हैं'। कृष्ण काव्य-धारा में तो मुरली नाद ब्रह्म की ही प्रतीक बन गई।

संत-योग परंपरा ने सगुण वैष्णव भक्ति को, सूक्ष्म चिन्तन को, जिस जल का दान किया है वह नाथ पंथी योगियों में उपनिषदों के स्रोत से बहता चला आ रहा था। कबीर से लेकर गोरख की जिस विचार-धारा को हम अपभ्रंश साहित्य से पहुँचते देखते हैं वह गोरख तक संस्कृत, प्राकृत और देशी भाषाओं के माध्यम द्वारा पहुँची। उस में उपनिषदों का जल शैव योगी अपनी विचारधाराओं के युगानुकूल रंगोंसहित लेते आये थे। यह धारा संतों-वैष्णवों तक ही सीमित नहीं रही। वरन् आधुनिक युग तक भी पहुँची है। गांधी में तो वह उनकी कबीर पंथी माता के द्वारा भी पहुँच सकती है; किन्तु रवीन्द्र में वह बावले जोगियों, क्षितिमोहन सेन, तारादत्त गैरोला आदि के द्वारा पहुँची और उपनिषदों के अध्ययन से भी। हिन्दी में हम उसे जयशंकर प्रसाद तथा चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के साहित्य में विकसित होते देखते हैं। महादेवी तथा निराला में भी वह वैदिक साहित्य तथा उपनिषदों के माध्यम से आई है।

सिद्धों ने निम्न-स्तरों के लोगों के लिए भी अपने संप्रदाय के द्वार खोल दिये थे। संतों और भक्तों ने भी उनके लिए रुकावट नहीं की। शर्त केवल एक थी—'भक्ति की भावना हो'। गोरखनाथ ने भक्ति के स्थान पर आत्म-शुद्धि और संयम की शर्त लगा कर उन्हें अपनाया है। इन दो प्रतिबंधों को लगा कर उन्होंने सिद्धों के आचार-व्यवहार और आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा उठाया।

गोरख ने दोहा, चौपाई और पद शैली को अपनाया है। उनकी भाषा सिद्धों की भाषा से अधिक विकसित इस अर्थ में है कि वह खड़ी बोली के अधिक निकट है। गोरख की वाणियों में खड़ी बोली के विकसित स्वरूप के पहले आने का भी कारण है। खड़ी बोली का विकास, मुसलमानों के प्रसार के साथ घने रूप से संबद्ध है। उसका जन्म ही उत्तरी पश्चिमी भारत में हुआ, जहाँ मुसलमान पहिले आये।

गोरखनाथ का कार्यक्षेत्र नैपाल, आसाम, बंगाल, संयुक्त प्रान्त, हिमवन्त, राजस्थान, महाराष्ट्र, सिंहल सभी प्रान्तों में रहा किन्तु उत्तराखंड, पंजाब और उत्तरी सीमान्त प्रदेश में उन्होंने विशेष रूप से कार्य किया। डाक्टर मोहनसिंह तो गोरख की जन्म-भूमि तक को उत्तरी सीमा-प्रान्त में बतलाते हैं।

गोरख अपना कार्य ईसा की दशवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में कर रहे थे। उनकी वाणियों से भी प्रकट है कि वे काजियों-दरवेशों के संपर्क में थे। मुसलमानों के अधिकार में आये उत्तरी-पश्चिमी भारत में कार्य करने से उनकी भाषा का खड़ी बोली के मेल में अति निकट पड़नेवाले रूप में होना स्वाभाविक है। उनकी भाषा सिद्धों की भाषा की अपेक्षा इसी लिए अधिक विकसित हो पाई है। सिद्धों का केन्द्र बिहार-बंगाल का भूमि-भाग था जहाँ मुसलमानों का अधिकार कुछ देर में हुआ। यह वैसी ही बात है जैसी आधुनिक युग में कलकत्ते में योरोपवासियों का राज पहिले हुआ तो उनके संपर्क में आने से हिन्दी का जो स्वरूप बना उसका विकास बंगाल से पहिले और पंजाब में देर से हुआ।

गोरखनाथ की जन्मभूमि उत्तरी सीमाप्रान्त में हो न हो, इतना निश्चय है कि बंगाल ने उनको उत्पन्न नहीं किया। डाक्टर सुकुमार सेन ने अपने 'उत्तर भारत के नाथ संप्रदाय की परंपरा में बंगाली प्रभाव' शीर्षक एक लेख में जो कि नाथूराम प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ में छपा है गोरख की वाणियों में बंगाल के पयार छंद, व्याकरण के भाषा रूपों और शब्दों को देख कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि गोरख की जन्मभूमि बंगाल थी। वैसे वह बंगाली स्वभाव की वह एक सामन्य प्रवृत्ति है कि वे स्वीकार ही नहीं कर सकते कि प्रतिभासंपन्न व्यक्ति बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी हो सकते हैं। रवीन्द्रनाथ के जीते जब वे छिपे नाम से अपनी कविताएँ छपवाते

ये किसी बंगाली सज्जन ने उन कविताओं के रचयिता कवि को पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी में ढूँढ़ निकाला था। अब शायद ऐसे भी बंगाली विद्वान निकल आयेंगे कि रवीन्द्रनाथ की कविताओं को अंगरेजी भाषा के शब्द-व्याकरण के रूपों और छंदों में देख वे यह सिद्ध करने में लग जायेंगे कि रवीन्द्रनाथ की जन्मभूमि इंगलिस्तान में भी है (बंगाल में नहीं)।

गोरखनाथ की जन्मभूमि कहाँ थी? परंपरा, अनुश्रुति, तथा साहित्य के आधार सभी का एक साथ अध्ययन करने से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि गोरखनाथ को उत्पन्न करने का श्रेय नैपाल को है जो कि राजा जनक के समय से ही शैव-योगियों का केन्द्र रहा है, जहाँ पशुपति नाथ आज भी विद्यमान हैं। जहाँ के गोरखा लोग अपने 'गोरखा' नाम के साथ गोरख का स्मृति-सम्बन्ध किये हैं और जिसकी संयुक्तप्रांत से छूती सीमा पर गोरखपुर आज भी नाथपंथी योगियों का प्रधान केन्द्र है। मौलाराम ने जो कि स्वयं नाथ-पंथी थे, गोरखाओं के राज्य को गोरख के वरदान में फूलता फलता बताया है। नैपाल आज भी विश्व के लिए विचित्रताओं का देश है। योगियों के विषय में चमत्कार पूर्ण कहानियाँ जन-सामान्य में प्रचलित हो ही जाती हैं। गोरख चरित, अठरहवीं शताब्दी के आरंभ में लिखा गया गुजराती ग्रंथ है उस में गोरख के कई जन्मों की विचित्र-विचित्र कथाएं लिखी गई हैं। कहीं वे गाय के गोबर से जन्मते दिखाए गये हैं तो कहीं उस राख से जो गाय के गोबर में फेंक दी गई थी।

गोरख सिद्ध थे किन्तु वे नाथ भी कहलाते हैं। गढ़वाल के मंत्र-साहित्य में उनका स्मरण उसी भाँति किया जाता है जिस भाँति शिवजी तथा हनुमानजी का। और शिव तथा हनुमान योगियों में भी आदर से पूजे जाते हैं, वन्य-शबरों के बीच भी। सिद्धों की वाणी में शबर-शबरी का उल्लेख व्यर्थ ही नहीं हुआ है। शबरी के विषय में राम कथा का संयोग काव्य के लिए उर्वर सिद्ध हुआ है इस सम्बन्ध में स्वतंत्र लेख भी लिखा जा सकता है।

दशवीं शताब्दी से पहिले नाथान्त नाम शैव योगियों के मिलते हैं, शैव योगियों से पहिले जैन तीर्थकरों के। योग का सम्बन्ध कृष्ण से भी रहा है। वे गीता के योगेश्वर हैं (यत्र योगेश्वर कृष्णः।) किन्तु योगियों के ईश्वर शिव, 'योगेश्वर' नहीं, 'योगीश्वर' हैं। शिव कृष्ण और राम का एकीकरण मध्यकालीन संतो-भक्तोंने खूब किया है। रसखान अपने भाव जगत में एक ही मूर्ति में आधा शरीर शिव का और आधा कृष्ण का देखते हैं।

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि
नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी ध्वनि ओठन पै, उत
डामर नाद से बाजत री।
रसखानि पितंबर एक कँधा पर
एक बघंबर राजत री।
कोउ देखहु संगम लै बुडकी निकसे
यह भेख विराजत री।

तुलसी, अपने इष्टदेव राम के जन्म पर एक जोगी को अवध में लाते हैं जिन्हें बुलाकर कौशल्या अपने शिशु राम का हाथ दिखलाती हैं (गीतावली) 'मानस' में तुलसी ने राम को शिव का और शिव को राम का अनन्य भक्त ही नहीं बताया हैं; बल्कि शिव से ही राम का मूल आदि चरित्र कहलवाया है। शिव को ही राम-कथा का आदि रचयिता माना है—(रचि महेश निज मानस राखा)। तुलसी ने हनुमान को भी शिव का अवतार बताया है। नाथ पंथ में भी एक 'हनुमंत' हो गये हैं, जिन की वाणियाँ उपलब्ध होती हैं। उत्तराखंड के रक्षा मंत्रों में गोरख नाथ के साथ-साथ 'हनुमंत वीर की आँण पड़े' कह कर हनुमंत वीर की भी आँण दी जाती है।

कृष्ण-भक्त कवियों में रसखान ही ने नहीं सूरदास, नंददास आदि ने भी शैव धर्म तथा नाथ पंथ की बातों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपनाया है। सूरदास के विषय में तो कहा भी जाता है कि वल्लभ संप्रदाय को गौरवान्वित करने से पहिले वे शैव थे। किन्तु उन के तथा नंददास आदि के साहित्य में कृष्ण की मुरली को नाद ब्रह्म का प्रतीक माना गया है—'.....जोग माया-भी मुरली.....नाद ब्रह्म की जननी...' अविगत, अनुभूति गम्य आनंद को इन्द्रिय-ग्राह्य न पा कर ही, इन्द्रियों के

लिए भी रम्य आधार प्रस्तुत करने के विचार से सगुण लीला के पद गाये गये हैं — 'सव विधि अगम अगोचर जानि ताते सूर सगुण लीला पद गावे।' निर्गुण के योग का और उन के अनुयायी उद्धव का गोपियों द्वारा जो विरोध ऊपर से दिखलाई देता है वह वास्तविक रूप में विरोध नहीं है, सूक्ष्म जटिल और स्थूल-सरल का भेद ही है वह। वह विरोध उसी प्रकार का विरोध है जैसा स्वयं योगियों अथवा संतों ने, लोगों की अनुभूति रहित, बाहरी प्राण-हीन प्रणाली का किया है।

सिद्धों और नाथों की परंपरा में प्राणों के लिए एक शब्द पवन भी है। पवन का धर्म है उत्पन्न 'नाद' को प्रसारित करना। 'नाद' अग्नि के सहाय्य से उत्पन्न होता है। यह अग्नि, जीवन-कंपन में विद्यमान रहने वाली शक्ति है। नाद-पंथी योगियों के अलावा भारतीय वैद्यक-शास्त्रियों तथा संगीताचार्यों ने भी 'नाद' का मूल प्राणों के कंपन में नाभि-स्थित कमल में माना है। योगियो ने सहस्त्र दल कमल की भँवर गुफा के ब्रह्म-रंध्र में चेतन तत्व को ज्योतिलोक में, जहाँ अनंत सूरज श्रेणियों के प्रकाश का चन्द्र विहूना चाँदना, गगन शिखर का अनामी अंगम अगोचर बालक रहता है उस के मुख के बोलने से उत्पन्न अनाहत नाद को सुनाया है। गगन की गर्जना का प्रयोग वे इसी नाद के लिए करते हैं—

गगन गरजि बरसे अभी
बादल गहिर गभीर,
चहुँ दिसि दमके दामिनी
भींजे दास कबीर।

गोरख ने इस देश में ही अमीरस निर्झर बताया है —

नीझर झरणें अमीरस पीवणां,
षट दल बंध्या जाइ।
चंद विहूँणा चाँदिणा,
तहाँ देख्या गोरष राइ।

इसी गगन मंडल में वे सुंनि द्वार बताते हैं घोर अंधकार में बिजली चमकने का उल्लेख करते हैं और कहते हैं उस में 'ज्यंद' (जिंद का आवागन रहता है वह पंच तत्व में समा कर रहता है—

गगन मंडल में सुंनिद्वार,
बिजली चमकै घोर अंधार।
ता यहि ज्यंदा आवै जाइ।
पंच में रहैं समाइ।

गोरख का वह ज्यंद है जो पहुँचे हुए योगी का समानार्थी है न कि निरीश्वरवादी व्यक्ति का जैसा कि पंडित चन्द्रवली पांडे आदि समझते हैं।

गोरख, कबीर, मीरा ने आदि अनाहत नाद को सुना। गगन शिखर अगम के देश के गगन शिखर के ब्रह्म को पहिचाना और अमृत निर्झर में स्नान किये। रामतीर्थ उस अपार सौन्दर्य के ही परम हंस पथानुगामी हंस थे। चन्द्रकुँवर वर्त्वाल का हंस अपने गीतों को गगन की कोमल हंसी के सरोवर में गाते गाते उस मधुमय देश में पहुचा है जहाँ की भूमि मधुमती है जहाँ दिगन्तों में मधु की सरिताएँ वहती हैं और उस सरिता के तीर मधुदेश की राज कुमारी (देव कन्या, सौन्दर्य प्रभा, वन देवी, प्राची कुमारी, लहर लहर स्वर-स्वर की कंपन कविता, जल में चरण डुवो कर वैठी रहती है)—

जहाँ मधुमती भूमि जहाँ हैं
वहती मधु सरिताएँ।
जहाँ दिगन्तों से वहती हैं
मधु से सिक्त हवाएँ,
उसी देश की राजकुमारी
मधु-सरिता के तट पर
वैठी है उदास हो
अपने नयनों में मुझ को धर
आँखों में कल्याण तुम्हारे
चरणों में जग मंगल
स्पर्शों में विकास की पीड़ा
हँसने में मुख निर्मल।
तुम नव जीवन की वर्षा-सी,
घिरी हुई कुसुमों से।
राज रही होगी विद्युत सी
सुरधनुसी मेघों से,
तरुणाई की मधु मयि सरि के
तट पर एक शिला पर।
वैठी होगी तुम मृदु हँसती
जल में चरण डुवो कर।

—[चन्द्र कुँवर वर्त्वाल कृत 'गीत माधवी' से]

गोरख अपनी इंद्रियों कों, वृत्तियों को, नाथ कर नाद को सुन पाये इस लिए, उन का पंथ ही नाद

१९५०

'नाथ' पंथ कहलाया और कृष्ण परंपरा के भक्तों में कृष्ण की मुरली नाद-पंथ की मुरली बन गई। इसी मुरली को चन्द्र कुंवर ने अंतर मुरली कहा है। इसी ज्योति कमल के प्रकाश में उनकी चेतना ने अमृत निरंतर पहिचाना। इसी देश में जीवामृत हो रहने की कामना की; और ज्योति नागिनी जागृत कुंडलिनी, के दर्शन किए।

'नाथ' शब्द ईश्वर-प्रभु वाची ही नहीं; प्रतीक अर्थ में पशु के नाक को छेद कर उस में रस्सी बाँधना भी 'नाथना' है। काबू में न आने वाली इन्द्रियों को पवन से भी चंचल मनको—उस की अस्थिर वृत्तियों को—योग-संयम-साधना से नाथ ने वाले संप्रदाय में इतिहास की दृष्टि से पाशुपात संप्रदाय के लोग पहिले आते हैं। ये लोग आरंभ में शैव योगी थे। शिव और उनके आभूषण 'नाग' प्रतीक रूप में थे। आगे चल कर पाशुपत-संप्रदाय शाक्त प्रणालियों से प्रभावित हो कर उसी भाँति विकृत हो गया जैसे बौद्ध धर्म समय के प्रभाव से विकृत होकर मंत्र-तंत्र-यान से युक्त होकर रासायनिक क्रिया के विश्वासी सिद्धों में हो गया था।

किन्तु दसवीं ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दी में यदि एक ओर काण्ह आदि सिद्ध अपने मंत्र-तंत्र वाले सिद्ध संप्रदाय को रसातल पहुँचा कर पालवंश के भी काल का कारण बन रहे थे और प्राचीन भागवत संप्रदाय को परकीया भाव प्रधान रूप धारण कर बंगाली भागवत वैष्णव-संप्रदाय को चैतन्य करने के चारण बन रहे थे तो दूसरी ओर आत्म-शुद्धि की डोरी से पाशविक वृत्तियों को नाथनेवाले नाथ योगी गोरख अपने महत्व पूर्ण विकासोन्मुखी विजय घोष की दुंदुभी भी बजा रहे थे। उस समय उत्तर पश्चिम की सीमा पर यामुनी वंश राज्य कर रहा था। बौद्ध, शैव, योगी तथा सूफी उस भूमि भाग में भी जमे हुए थे। यह वह समय था जब जयानक कवि पृथ्वीराज-विजय काव्य में अपने सोये विष्णु को जगा रहे थे।

अपने विचारों, प्रभावों तथा कार्यों से, जनता के हृदय में स्थान बना उनके जीवन को आध्यात्मिकता के पथ पर संचालित करने वाले योगियों में गोपीचंद, भर्तृहरि, आदिनाथ, और गोरखनाथ के नाम आज दिन तक श्रद्धा के साथ लिए जाते हैं। नाथ योगियों में दसवीं ग्यारहवीं ईसवी शताब्दी में गोरख सबसे महत्वपूर्ण नाथ हुए। उनके बाद नाथों की एक परंपरा-सी चल पड़ी। जलंधरनाथ, चौरंगीनाथ, बालानाथ, चौणवनाथ, चुणकरनाथ, रुद्रनाथ, चित्रनाथ, भूचरनाथ घासीनाथ, गरीबनाथ, पृथ्वीनाथ, लालनाथ, सत्यनाथ, देवलनाथ आदि आदि कई नाथों की वाणियाँ उपलब्ध होती हैं। इनका महत्व नेपाल, कामरूप, बंगाल, राजस्थान, महाराष्ट्र, पंजाब और हिमवंत में आज भी है। सोलहवीं शताब्दी ईसवी में उज्जैन, अलमोड़ा, श्रीनगर (गढ़वाल), नागनाथ (गढ़वाल), नागनाथ (हैदराबाद), गोरखपुर, और काशी नाथों के प्रमुख केन्द्र थे। उस समय के गढ़वाल और कुमाऊँ के इतिहास में देवलनाथ, सत्यनाथ का महत्वपूर्ण उल्लेख मिलता है। राजाओं की मुहरों की छाप लगे भूमिदान आदेश-पत्र भी मिलते हैं जिनमें इन योगियों का उल्लेख है। मंत्र-साहित्य और लोकगीतों में तो इनके नाम आते ही हैं। इनकी गढ़ियाँ, सिद्ध-पीठ, गुफाएँ इन प्रान्तों में भिन्न-भिन्न स्थानों में पाई जाती हैं। इनके अनुयायी कानों में सींगी के कुंडल पहिनते हैं। मुंड पर मुँडासा बाँधते हैं। रुद्राक्ष धारण कर शिवचंदन लगाते हैं। भगवाँ वस्त्र पहिनते हैं, कंथा, विभूति भी धारण करते हैं किन्तु आध्यात्म चिन्तन और योग-विद्या का संबंध इन से अब छूट-सा चला है। सँपेरे भी इसी संप्रदाय के अनुयायी हैं। उनके पास प्रतीक साँप, नाद-बीन अब नहीं रहते हैं वरन् रहते हैं वास्तविक साँप-बीन। नाद-मंत्र वे अब नहीं जानते हैं। जानते हैं तो जादू मंत्र; भस्म विभूति से उन्हें सरोकार नहीं, जड़ी-बूटी विद्या विष-विद्या वे अब भी जानते हैं। गढ़वाल में देवलगढ़ प्राचीन राजधानी थी जहाँ सत्य-नाथ, देवलनाथ आदि की मढ़ियों पर कई राजनैतिक भी महत्वपूर्ण लंबे शिलालेख अंकित हैं। गये वर्षों भारत-सरकार के पुरातत्व विभाग ने इन शिलालेखों की अनुमुद्राएँ उतारी हैं। उन्हें पढ़ने और प्रकाशित करने का काम अभीतक हुआ नहीं है।

कृष्ण की मुरली से नाथ-पंथियों की नाद-बीन का संबंध माना जाता है। कालिय नाग और गोपियों में भी कुछ लोग नाथों का संबंध मानते

हैं। राम-साहित्य की अपेक्षा कृष्ण-साहित्य पर नाथ-पंथ का अधिक गहरा प्रभाव देख कर यही कहा जा सकता है कि नाथ-पंथ राजवर्ग के लोगों को उनके साहित्य को उतना नहीं प्रभावित कर सका जितना स्वच्छंद वर्ग के जन–जीवन के लोगों को। भर्तृहरि और गोपीचंद अवश्य अपवाद के रूप में आते हैं।

सिद्धनाथ-साहित्य का अध्ययन बीसवीं शताब्दी में अनेक विद्वानों ने किया है, जिनके निबंध प्रकाश में आ चुके हैं। इनमें से मेरे देखने में, डाक्टर शहीदुल्ला, हरप्रसाद शास्त्री, राहुल सांस्कृत्यायन, डाक्टर मोहनसिंह, डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, कर्नल ब्रिग के लेख आगे हैं। इधर पिछले कुछ वर्षों में श्री रांगेय राघव ने आगरा विश्व-विद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के लिए गोरखनाथ का अध्ययन किया है। उनके परिश्रम का परिणाम अभी प्रकाशित नहीं हुआ। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी भी शांतिनिकेतन में इस साहित्य का अध्ययन शायद कर रहे हैं। उनके अध्ययन के निष्कर्षों के लिए अभी हमें प्रतीक्षा करनी होगी। किन्तु काशी नागरी प्रचारिणी सभा में नाथ-साहित्य की जो पोथियाँ है उनका अध्ययन भी कोई कर रहा है या नहीं इसका मुझे पता नहीं।

प्रभाताकाश गीतपूर्ण !

'बाजाओ आमारे बाजाओ।
बाजाले जे स्वरे प्रभात आलोके
सेई स्वरे मोरे बाजाओ।
जे स्वर भरिले भाषा भोला गीते
शिशुर नवीन जीवन वाँशिते
जननीर मुख–ताकानों हासिते,–
सेई सुरे मोरे बाजाओ॥

[बजाओ, मुझको बजाओ। जिस स्वर में प्रभात के आलोक को बजाते हो उसी स्वर में मुझे भी बजाओ। जो स्वर भाषा-रहित शिशुके गीत में, उसकी नवीन जीवन-वंशी में, माता की मुखदेखी हँसी में भरते हो, उसी सुर में मुझे भी बजाओ।]

—रवीन्द्रनाथ

एक चर्चा:

'लिपि भारती'

(श्री सतीशचंद्र गुह ठाकुर)

भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा का नाम 'भाषा भारती, (Lingua indica) स्वभाव से ही मिल जाता है, चाहे वैकल्पिक रूप से उसे हिन्दी या हिन्दुस्तानी कहें, सुसंस्कृत या सुप्राकृत कहें। सारे भारतवर्ष में यदि एक-लिपि (Common-script) कभी गृहीत हो जाय, तब उसका नाम भी 'लिपि-भारती' पड़ जाना युक्तियुक्त है। देशवासी भी 'भारती' नाम से परिचित होंगे हिन्दुस्तानी या इन्डियन नाम तो विदेशियों से प्राप्त हुआ था यह शुद्ध भारतीय नहीं है।

हम तो राष्ट्रभाषा को सर्वमान्य भी देखना चाहते हैं। हमारे देशमें आज सर्वमान्य भाषा नहीं है। **(हो चुकी है। -सं.)** हिन्दी या बंगला नहीं, ऊर्दू या पंजाबी भी नहीं, तामिल या तेलगू भी नहीं। एक दिन था जब संस्कृतभाषा को भारतवर्ष की सर्वमान्य भाषा (Common language) का पद मिला था। श्री चैतन्य महाप्रभु के समय तक वह प्रचलित थी। पर आज संस्कृत चलती भाषा नहीं रही।

राष्ट्रभाषा बन जाने से ही भाषा सर्वमान्य नहीं होती, तथा सर्वमान्य न होने पर आज जिसे राष्ट्रभाषा का पद मिला, कल इस पद से उसका भ्रष्ट हो जाना भी असम्भव नहीं; अतः हमारा प्रयत्न होना चाहिये कि हम भाषा को सर्वमान्य बनाने के साधन ढूँढ़ निकालें।

फिर, भाषा का प्रश्न ही मुख्य नहीं। वह तो आगे आ जाता है। सबसे पहले तो वर्णमाला व लिपि का प्रश्न आता है, उसके बाद शब्दसंचय का अर्थात् प्रधान तथा कौन से महोदधि से शब्दरत्न संचय करना है, सभी भारतीय भाषाओं की मातृ-स्वरूप भाषा संस्कृत से या ग्रीक लैटिन से अथवा हिब्रू से या अरबी फारसी से अथवा आधुनिक अंग्रेजी, जर्मन या चीनी जापानी भाषा से।

संसार की दस-बारह श्रेष्ठ व मान्य भाषाओं में हिन्दुस्तान की दो एक भाषाएँ भी गिनी जाती हैं। भाषातत्त्व की दृष्टि स विचार करने पर आधा दर्जन भारतवर्ष की ही निकलेंगी तथापि हमारी भाषाओं को महत्व कम दिया जाता है। कारण यह है कि व्यवहारिक क्षेत्र में हमारी सभी भाषाएँ कमज़ोर हैं, सर्वमान्य तो हैं ही नहीं।

सर्वमान्य किसे कहते हैं। सामान्य रूप से जिस भाषा को देशभर में सब कोई मानते हैं। जो भाषा वैज्ञानिक है, जिसका व्याकरण तथा भाषा-शैली सरल नियम-बद्ध है, जिसमें कठिन से कठिन भाव व्यक्त हो सकते हैं, जिसकी साहित्य-संपदा अधिक है, प्राणवन्त है तथा उन्नतिशील है; सर्वोपरि है जिसकी लिपि सरल-उपयोगी व वैज्ञानिक होने के कारण देशभरमें ग्रहणीय है, इत्यादि।

भाषा अक्षर या वर्ण से बने हुए अर्थ-युक्त पद से गठित मानी जाती है। संसार में चार पांच प्रसिद्ध वर्णमालाएँ हैं, उनमें भारतीय वर्णमाला एक है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से 'अकारादि' से 'ह' कार पर्यन्त जो वर्णमाला चलती आई है वही संसार भर में सब से सुन्दर, उपयोगी तथा पूर्णरूप से वैज्ञानिक है। (Alphabeta Indica) इस विषय में सभी .भाषाशास्त्री एकमत हैं। हम उसे 'भारतीय वर्ण·माला' कहते हैं। भारत में आगे चल कर दो–तीन बोलियों के क्षेत्र में अरबी वर्णमाला का भी प्रचलन हुआ—

—अरबी वर्णमालाने हिन्दी को द्विधा विभक्त किया नागरीमें लिखी हुई हिन्दी तो हिन्दी नामसे चली पर अरबी में लिखी हुई भाषा को 'हिन्दुस्तानी (या आगे चल कर ऊर्दू) नाम दिया गया। आज दोनों स्वतंत्रता का दावा करती हैं।

पर आज तक भारतवर्ष में 'अ' कारादि 'ह' कार पर्यन्त वर्णमाला का ही प्रभाव सर्वत्र सर्वोपरि है; तथा नेपाल, भूटान, तिब्बत, वर्मा, श्याम, सिंहल आदि देशों में , किसी रूप में प्रचलित हैं। मध्य एशिया, कोचीन, मलाया, यवद्वीप, बालिद्वीप, सुमात्रा सेलेवो फिलिपीन महाचीन आदि देशों में भी भारतिय वर्णमाला का आंशिक रूप से प्रचार है।

वर्णमाला और लिपि दो वस्तु हैं, एक नहीं। वर्ण या अक्षर लिपि से लिखा जाता है। एक ही वर्णमाला अनेक लिपि से लिखी जा सकती है। भारतीय वर्णमाला विभिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न लिपि से लिखी और छापी जाती है। उनमें, वर्तमान समय में प्रधानतः नागरी या देवनागरी, बंगला गुजराती, गुरुमुखी, तेलगू, तमिल, कन्नड़, मलयाली, आदि हैं; पर सभी में दोष त्रुटियाँ बहुत हैं। भारतीय 'वर्णमाला' सब से सुन्दर, उपयुक्त तथा वैज्ञानिक होते हुए भी, भारतवर्ष की एक भी लिपि निर्दोष नहीं, इसके फलस्वरूप आज परिस्थिति ऐसी हो गई है कि देश के कितने ही भाषा-शास्त्रियों के मत से हमारे लिये यूरोप की रोमन लिपि व वर्णमाला ग्रहण करना ही सुलभ व फलप्रद माना जा रहा है। तुर्किस्तान ने आधुनिक काल में अपनी लिपि समस्या को इसी तरह हल किया है।

अब हमें विचार कर के देखना है कि यह बात हमारे लिये ठीक है या नहीं। हमें स्वीकार करना ही होगा कि 'रोमन' या 'रोमक' वर्णमाला अवैज्ञानिक होनें पर भी रोमन लिपि व्यवहारिक क्षेत्र में हमारी लिपियों से अधिक उन्नत तथा उपयोगी है। अनेक भाषाओं में प्रचारित एक ही विज्ञापन–जैसे, रबिन्सन् बार्ली के प्रथम युग में उसकी प्रस्तुत–प्रणाली सेवन–विधि संवलित प्रचार पत्र–सामने रख कर देंखे तो मालूम होगा कि रोमन लिपि में मुद्रित अंग्रेजी फ्रांसीसी आदि यूरोपीय भाषाओं के लिखने में जितना स्थान लगा, नागरी, बंगला, गुजराती तमिल, अरबी, आदि लिपि में छपी हुई सभी भारतिय भाषाओं में लिखित अंशों को उसी बात के लिये, कहीं अधिक स्थान देना पड़ा। हमारी लिपियों की अनेकता या विभिन्न प्रांतयि रूप दूसरा अन्तराय है। यूरामेरिक पाश्चात्य देशों में करीब करीब सभी भाषाएँ एक मात्र सामान्य रोमन-

लिपि से लिखी जाती हैं, इससे वहाँ के लोग बड़ा लाभ उठाते हैं. रोमन लिपि में पहले 'बड़े-हाथ' (बड़े आकार के अक्षर) Capital का रूप ही था। ईसा की दूसरी तीसरी शतक से लिपि में एक 'छोटे-हाथ' का Minuscules या small letters रूप प्रवर्तित हुआ। रोमन लिपि की वैज्ञानिकता व व्यवहारकुशलता उसी समय से अनुभूत होने लगी। रोमन लिपि या आदि ग्रीक लिपि के 'बड़े हाथ' के Capital अक्षर सरल हैं। हमारी पुरानी ब्राह्मी लिपि भी इसी तरह सरल थी। परन्तु ब्राह्मी के बाद उससे उत्पन्न सभी लिपियाँ क्रमशः जटिल होने लगी। युक्ताक्षरों का रूप तो चीनी अक्षरों के समान जटिल हो गया। हमारी लिपि में आज तक 'छोटे हाथ' का Minuscules प्रचलित नहीं हुआ।

अब उपाय क्या है? भारतीय वर्णमाला को तिलांजलि दे कर तुर्किस्तान के आदर्श को लेना अर्थात् रोमन वर्णमाला को ग्रहण करना अयौक्तिक, अव्यवस्थित, अशोभन तथा अपरिणाम-दर्शक पागलपन होगा, क्योंकि हमारी 'वर्णमाला' का तो दोष नहीं है, उल्टे वह सर्वश्रेष्ठ ही है। एकमात्र 'लिपि' का ही प्रश्न है। लिपि में आवश्यक सुधार कर लेने से ही हमारी वर्णमाला, लिपि तथा भाषा सभी ही पूर्णतया श्रेष्ठत्व प्राप्त कर सकते हैं।

वस्तुतः लिपि का सुधार अनिवार्य है। केवल नागरीलिपि का थोड़ा बहुत सुधार होने से ही हमें सन्तोष नहीं मिलेगा, भारतवर्षीय सभी आधुनिक लिपियों के बारे में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण लेकर वस्तुस्थिति की उपलब्धि करना हमारा प्रथम कार्य है।

हमारा ध्येय क्या है, यह समझ कर सभी प्रान्त के लिपिविद् कलाकार पंडितों को विचार करना चाहिए। सबसे उत्तम तो यह होता यदि किसी एक सर्वमान्य भारतीय लिपि (Scripta indica) से ही हमारी सभी भाषाएँ लिखी जातीं; पर इस समय वह तो बहुत दूर की बात है। प्रयत्न इस विषय पर आज तक बहुत हुआ। लगभग ५० वर्ष हुए कलकत्ते के एक 'लिपि-विस्तार-परिषद' ने 'देवनागर' मासिक (आगे चलकर त्रैमासिक) पत्र के द्वारा इस महत्व पूर्ण कार्य को हाथ में लेकर कुछ दूर बढ़ाया था। पीछे लिपि सुधार का प्रयत्न होने लगा। पर आज तक कोई योजना सर्वमान्य नहीं हुई।

लिपिसुधार की एक नयी योजना हम विद्वज्जनों के सामने रखते हैं, जिसमें रोमन लिपि के सभी गुण वर्तमान हैं, तथा भारतीय वर्णमाला का वैज्ञानिक श्रेष्ठत्व भी पूरी तरह मौजूद है। पर उसे पेश करने से पहले देश की लिपि सम्बन्धी वर्तमान परिस्थिति का एक सिंहावलोकन कर लेना उचित होगा। भारतवर्ष के उत्तर-पूर्वी भाग में जो क्षेत्र विद्यमान है, जिसमें असमिया भाषा, बंगला भाषा तथा मिथिला भाषा प्रचलित है, उसमें प्रायः एक ही लिपि चलती है, जिसे हम बंग-लिपि कह सकते हैं। इस क्षेत्र के दक्षिण-पूर्व में ओड़् भाषा एक स्वतन्त्र ओड़् लिपि से लिखी जाती है जो कि पूर्वोल्लिखित तीन भाषाओं तथा

लिपियों से सम्बन्ध-युक्त है। केवल लिपि के विषय में जो कुछ भेद है; सो भी ताड़-पत्र में लिखने की आवश्यकता से उत्पन्न हुआ था। कोण-विहीन तथा आड़ी शीर्ष रेखा विहीन वक्र-लेखन इस लिपि की विशेषता है। इन चारों भाषाओं के विस्तर्णि क्षेत्र को हम 'पूर्वाचल' नाम दे कर पहला भाषा-क्षेत्र मान सकते हैं। दूसरे में, उससे और भी उत्तर तथा पूर्व के प्रतिवेशी क्षेत्र में नेपाली, भूटानी, तिब्बती, बर्मी व स्यामी लिपियाँ प्रचलित हैं, जो कि भारतीय अकारादि वर्णमाला का ही व्यवहार करती हैं। और पश्चिम की तरफ चल कर हम एक तीसरा विस्तीर्ण भूखंड पाते हैं, जहाँ बिहारी, हिन्दी (पूरबी, केन्द्रीय व पश्चिमी) तथा मराठी भाषा का क्षेत्र है, जिसमें सर्वत्र एकमात्र नागरी या देवनागरी लिपि प्रचलित है। चौथा और भी कुछ पश्चिम जाकर हमें पंजाबी का क्षेत्र मिलता है, जहाँ गुरुमुखी लिपि चलती है। उसके आसपास राजपूताना है, जहाँ की लोक-भाषा तथा लिपि डिंगल है। पाँचवाँ गुजरात व कच्छ की तरफ 'गुजराती' लिपि प्रचलित है। छठा मराठी क्षेत्र के दक्षिण की ओर जाता है, इसके कर्नाटक प्रान्त में कन्नड़ लिपि पाते हैं। सप्तम, केरल मलबार में मलयाली लिपि का है। अष्टम, तमिलनाडु में तथा सिंहल के उत्तर तरफ थोड़े अंश में तमिल लिपि का एवं नवम, सिंहल में सिंहली लिपि का है। अब उत्तर की ओर वापस आते हुए हमें दशम क्षेत्र तेलुगू लिपि का मिलता है। इस आंध्र देश की लिपि, और भी कुछ उत्तर की और की ओड़ लिपि से थोड़ी बहुत मिलती-जुलती भी है। इस ओड़ लिपि के बारे में हम प्रथम 'पूर्वाचल' क्षेत्र के विवरण में कह चुके हैं। इन सब के अलावा एकादश क्षेत्र में है अरबी लिपि का हिन्दुस्थानी संस्करण, जिसे लोग उर्दू लिपि या हिन्दुस्तानी लिपि भी कहते हैं। उसने प्रधानतः नागरी लिपि के इलाकों में इधर उधर अपना क्षेत्र बना लिया है, और इस तरह संयुक्त-प्रान्त, विहार तथा निजाम राज्य में विस्तीर्ण है। सिंध, उत्तर-पश्चिम, सीमान्त प्रदेश, तथा काश्मीर में भी प्रायः उर्दू लिपि के ही रूप चलते हैं। किसी किसी स्थान में पुनः भारतीय लिपि (यथा नागरी) ग्रहण करने का विचार हो रहा है, सिंधु देश के साधु श्री वस्वानी प्रमुख विद्वानों ने अन्दोलन चलाया।

हम पहले ही कह चुके हैं कि उल्लिखित सभी लिपियाँ रोमन की अपेक्षा व्यावहारिक क्षेत्र में हीन हैं।

सारे भारतवर्ष में सभी भाषाओं के लिये एक सर्वमान्य साधारण लिपि चलाने के उद्देश्य से, तथा लिपि सुधार के लिये 'लिपि-विस्तार परिषद्' ने जिस काम को शुरू किया, आगे चल कर बहुतेरी नई नई संस्थाओं तथा व्यक्तियों ने उसे बढ़ाया। आज भी इसका काम चल रहा है, इनमें निम्नोक्त सभी उल्लेखनीय हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद; तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन-प्रयाग; इन्हों ने लिपि सुधार के प्रश्न को सामने रखा। काका कालेलकर की लिपि परिषद भी कई

दिनों से इस विषय में अग्रसर है। व्यक्तिगत प्रयत्नों में श्री. बाबूराव विष्णु पराड़कर का नाम पहले ही लेना चाहिए। अपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १९३८ के सिमला अधिवेशन में समापति के अभिभाषण में एक योजना दी थी। बनारस के चित्रकार, श्री केदारनाथ शर्मा ने एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें एक योजना है। बनारस दुर्गाकुन्ड के विद्वान श्री श्रीनिवास जी ने 'राष्ट्रलिपि और साक्षरता' नाम से आगे चल कर "प्रतिसंस्कृत देवनागरी एक योजना" का प्रचार किया; श्री कृष्णराव नारायण भम्बारे ने 'नागरी लिपि सुधारणा' नामक (बड़ोदा १९३७) पुस्तक प्रकाशित की। श्री दुर्गादत्त गंगाधर ओझा का लेख भी 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में (८: ११-१७) निकला था। डाक्टर श्री. धीरेन्द्र वर्मा का लेख 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका में (१९९७ वि०) प्रकाशित हुआ था; डॉक्टर श्री. हीरानन्द शास्त्री का लेख, 'बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी के जर्नल' खंड २३ में निकला था; श्री. ए. लतीफ ने जुलाई १९२६ की एशियाटिक रिव्हयू में लिखा। डाक्टर जेड़. ए. अहमद का संग्रह १९४१ इसवीं में इलाहाबाद से निकला, जिसमें २५ नेताओं के मतामत संगृहीत हैं। श्री एन. आर सुब्रह्मण्यम् ने 'स्क्रिप्ट प्रॉब्लेम' नाम से एक पुस्तिका ऑल इन्डिया कॉमन स्क्रिप्ट एसोसिएशन के मार्फत् १९३८ इसवीं में मद्रास से प्रकाशित की। वर्तमान लेखक ने १९०७ ई० में कलकत्ते की 'डान सोसाइटी' के मासिक पत्र में एक लेख प्रकाशित किया था। एक समय इसी पत्र में दो चार पृष्ठ बंगला के भी नागरी अक्षरों में छपते थे। तभी से हम ने इस विषय पर कुछचिन्ता की और १९३५ में काका कालेलकर के साथ में हमारे उद्भावित 'मुख्य व सामान्य काय की लिपि का रूप (Capital & small letters) लिपि परिषद में पेश किया। १९४२ की ओरियन्टल कान्फरेन्स के बनारस अधिवेशन में एक योजना भी पेश की थी, जिसका सारांश Summaries of papers में निकला भी था। पर अधिवेशन की इस सभा में अनुपस्थित न रहने के कारण उसे विधिपूर्वक उपस्थित नहीं कर पाया। १९४७ की दूसरी पी. ई. एन कान्फरेन्स, बनारस, में डाक्टर श्री एम. डी. मनोहर ने एक नयी योजना दी थी, साथ ही साथ इस लेखक ने भी एक निबन्ध पढ़ा था जो कि उसके विवरण में छपा है। वयोवृद्ध बाँकुरा निवासी अध्यापक श्री योगेशचन्द्र राय; विद्यानिधि कलकत्तेके वृद्ध साहित्यिक श्री राजशेखर वसु, बंगदेशस्थ 'जातीय शिक्षा परिषद्' के श्री. हीरेन्द्रनाथ दत्त तथा 'विश्वभारती' के संस्थापक कविवर श्री. रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि प्रधान व्यक्तियों की प्रेरणा से 'आनन्द बाज़ार पत्रिका' ने भी लिपि का कुछ सुधार कार्यक्षेत्र में दिखाया, जिस सुधरी हुई लिपि का श्री. विभूतिभूषण मुखोपाध्याय के उपन्यास 'नीलांगुरीय' में पूर्णतया तथा 'शनिवारेर चिठि' मासिक पत्रिका में एक बार आंशिक रूप से प्रयोग भी किया गया। आनन्दबजार पत्रिका तो बराबर लाइनो यंत्र से नूतन अक्षरों को ही चला रही है। इससे लाभ हुआ कि भारतवर्ष की सभी देशभाषाओं में निकलने दैनिक पत्र

निकलते है, उनमें 'आनन्दबाजार' पत्रिका ही कम स्थान में ज्यादा संवाद दे पाती है। प्रचार भी इसका सबसे अधिक है। हाल ही में नागरी के क्षेत्र में 'नवनागरी' 'बरदास लिपि' आदि चेष्टाओं का उदाहरण हम पा रहे हैं।

अब हम प्रस्तुत 'लिपि भारती' का रूप आपके सामने रखते हैं। हमारा प्रस्ताव यह है कि नागरी या देवनागरी लिपि के इलाकों में वर्तमान नागरी या सुधरी हुई प्रतिसंस्कृत नागरी रूप को ही 'मुख्य काय 'अक्षर' (Capital form) रूप से जारी रखें जो नयी योजना की जाती है उसे 'सामान्य वक्र 'अक्षरी' (Normal form minuscules small letters) छोटे हाथ मान लें जिससे साधारण सभी लेख लिखे जा सकें। मुख्य काय अक्षर का व्यवहार विषेश अवसर पर ही करें, जैसा कि, रोमनलिपि में वाक्य के आदि अक्षर या नामके आद्याक्षारों के लिए व्यवहार करने की रीति प्रचलित है। लेखक के सुझाव के अनुसार विषेश स्थान पर पूरा शद्ब या वाक्य तक मुख्य काम 'अक्षर' लिपिमें (अर्थात वर्तमान प्रचलित नागरी रूप में) लिखने का अधिकार रहेगा। देशभर में मुख्य—काय 'अक्षर' वैकल्पिक रहेगा ही; जो चाहे उसे जहाँ तक खुशीसे व्यवहार करे। पर 'सामान्य काय' की भी अक्षरी का यथेच्छ व्यवहार करने का अधिकार सबको होना चाहिए।

इसप्रकार अन्य सभी लिपियों के इलाके में प्रचलित लिपि ही 'मुख्य—काय' (अक्षर) मानी जायगी—जैसे गुजरात में गुजराती लिपि—पर सामान्यकाय 'अक्षरी' लिपि सर्वत्र एक ही होगी। फल यह होगा कि आसाम, बंगाल तथा मिथिला आदि बंग-लिपि के क्षेत्र में प्रचलिति बंग—लिपि को 'मुख्य काय अक्षर' रूप का स्थान दे कर 'सामान्यकाय' 'अक्षरी' को साधारण रूप में व्यवहार करेंगे। यह 'सामान्य—काय अक्षरी लिपि' ही सारे भारतवर्ष में सर्वमान्य लिपि Common script मानी जाय। पढ़ देखें, उदाहरण पर ध्यान दें।

'लिपि भारती' दावा करती है कि इसे ग्रहण करने से भारतवर्ष को निम्नोक्त लाभ हो सकता है:—

१. अक्षर परिचय सहज ही में होगा, हस्तलेखन सहज होगा, लेखनी बारंबार उठानी या रोकनी नहीं पड़ेगी, साक्षरता सहज ही में फैलेगी।

२. एक अक्षर से दूसरे अक्षर का भ्रम न होगा—हस्त लेखन सहज होगा; नागरी में लिखा हुवा 'खाना' शद्ब को 'रवाना' पढ़ जाने की संभावना न रहेगी।

३. सभी प्रकार का मुद्रण (मोनो तथा लाइनो टाईप, टेली प्रिंटिंग-तक) सुलभ या सहज साध्य होगा। कई स्माल कैंप आदि नाना प्रकार के टाईप से मुद्रण को अधिक उपयोगी कर सकेंगे। देशस्थ 'श्रुतिधर' पद्धतियों (Stenography) का सममान (Standardization) संभव होगा।

४. यंत्र—लेखन (Typewriting) की कठिनाई दूर होगी।

५. पढ़नेमें आँखों को कम कष्ट पहुँचेगा। रोमन लिपिमें (विशेषतः उसके

छोटे-हाथ के अक्षरोंमें यह गुण विद्यमान हैं; चीनी जापानी अक्षरोंमें यह गुण कम है, हमारी नागरी आदि सभी लिपियोंमें भी कम ही है।

६. सर्वोपरि क्षुद्र प्रादेशिकता का मनोभाव घट जाने की संभावना आ जायगी, अपि तु हरेक प्रांत भी प्रचलित लिपि का प्राधान्य मुख्य काय "अक्षर" रूपमें रह जायगा। (इस समय 'छोटे हाथ' या 'सामान्य-काय', "अक्षरी" ही सामान्य या सर्वमान्य बन जायेंगे।) अंतमें एक दिन आयेगा जब प्रांत प्रांतमें प्रचलित लिपियों में स एक सामान्य रूप 'बलवान् ही अंतमें श्रेष्ठ रह जायगा' इस नीति के अनुसार उपयुक्ततम मुख्य-काय 'अक्षर' सर्वत्र चालू हो जायेगा तब बड़े हाथ के भी मुख्य काय 'अक्षर' भी प्रांत प्रांतमें विभिन्न रूप से न होकर सारे भारत वर्ष में एक ही सामान्य रूप ग्रहण कर सकेंगे। अर्थात् पूर्ण रूपसे सर्वत्र 'एक लिपि' हो जायगी। जब तक यह अवस्था पूर्ण रूपसे नहीं आ जाती तब तक भी 'एक-लिपि' सामान्य काय 'अक्षरी' रूपसे सर्वत्र रहेगी——प्रांत प्रांत की विशेष लिपि मुख्य काय रूप से रह जाने से तद्वत् प्रदेशवासियों के क्षुब्ध होने के कारण भी न रहेंगे।

संक्षेप में रोमन लिपि के सभी गुण हमारी एक-लिपि में आ जायँगे, अपि तु भारतयि वर्णमाला का वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक श्रेष्ठत्व भी पूर्ण रूप से होगा।

दश प्रतिशत साक्षरता को दशगुणा करना हो तो लिपि को वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक श्रेष्ठत्व देना आवश्यक है; एक बार अवैज्ञानिक लिपि सिखा कर उसे बदलते रहना साक्षरता की चेष्टा का अन्त करना है। अक्षर के द्वारा ही संस्कृति अक्षय हो कर रह जाती है, उसे प्रतिसंस्कृत रूप दे कर सुधार लेना है। वैज्ञानिक एक-लिपि के देश भर में चल जानेसे साक्षरता तथा संस्कृति रक्षा के विषय में परम लाभ होगा। इस सुधरी हुई लिपि के नमूने मेरे बनाये हुए चित्र फलक में लिपि-सुधार के पक्षपाती 'भारती' के इस अंक में अन्यत्र देखेंगे।

* * *

ध्वनि नाट्य :

संवेदना !

[श्री. रामेश्वर दयाल दुबे]

सूत्रधार—महाभारत के भीषण संग्राम का अन्तिम अध्याय । विराम की बेला आ पहुँची है। भगवान् कृष्ण की कृपा और पांडवों के पुरुषार्थ से पुण्य की विजय आर पाप की पराजय हो चुकी है । रक्त रंजित मेदिनी पर वीरत्व का इतिहास लिखा जा चुका है । भावी युग के पुण्य प्रभात की अरुणिमा अभी आ नहीं पाई, अतीत की छाया अब भी है, किन्तु अतीत को जाना ही है । वह रुक नहीं सकता और अनागत भविष्य को आने से कौन रोक सकता है ? वर्तमान की देहली पर अनागत, अतीत बनता रहता है !

महाभारत के पश्चात 'एक नये युग के, एक नये अध्याय के, प्रारंभिक क्षण। पांडवों के विजयोल्लास की आनन्द यामिनी का प्रथम प्रहर । भगवान केशव को वृकोदर (भीम) से विनोद करने की सूझी है ।

* पहली झाँकी *

केशव—**(हंसते हुए)** भीम ! . . . अरे भूल गया । वृकोदर कहना चाहिए । सुना है, दुर्योधन के साथ द्वन्द्व युद्ध में एक गदा तुम्हारी पीठ में भी लगी थी ।

भीम — **(हंसी)** नहीं केशव, पीठ में लगती, तो कुछ बुरा न था, वह तो पेट में लगी थी, पेट में।

केशव — हः हः हः . . . . तब तो नगाड़े पर चोट बैठी । पेट खाली था या भरा ? बड़ी मीठी ध्वनि हुई होगी ? हः . . . हः . . हः . . .

भीम — तुम बड़े कुटिल क्रूर हो केशव ! किसी के प्राण निकलें, और तुम्हारा खेल हो ।

केशव — लेकिन वृकोदर, आज तुमने बड़ी वीरता का काम किया । मैं समझता था रसोई घर में ही तुम वृकोदर हो, किन्तु आज तो तुमने बैल जैसा काम भी किया ।

भीम — हलधर बलदाऊ के, भाई हो न भाई ! तभी तो तुम्हारी दृष्टि वृषभ पर पड़ती है . . . . या फिर किसी वृषभानुजा पर । अच्छा केशव, अब परिहास छोड़ो; कुछ भोजन की व्यवस्था करो, भोजन की । बड़ी भूख लगी है ।

केशव — भोजन की ? या विशेष भोजन की ? आज तो विजयोत्सव की यह आनंद यामिनी है। आज तो वृकोदर, तुम्हारे लिए विशेष भोजन की व्यवस्था हुई है ।

भीम — अच्छा !! ऐसी ही आनन्दमयी सूचना देते रहो, मेरे माखनलाल ! देखो भाई, और जो हो, सो हो, खीर अवश्य बने ।

केशव — सब कुछ बनेगा, पर तुम्हें भर पेट नहीं दिया जायगा ?

भीम — क्यों, ऐसा क्यों ?

केशव — ऐसा इसलिए कि, जहाँ तुम्हारा पेट भरा, कि तुम खर्राटे लेने लगोगे । और फिर तुम्हारी इस नासिका के दो विवरों से जो ध्वनि निकलेगी, उसके सामने मेरा पांचजन्य और अर्जुन का शंख देवदत्त, दोनों के दोनों, अपनी हार स्वीकार करने के लिए विवश होंगे।

भीम — केशव, क्या सचमुच सोते समय मैं जोर जोर से खर्राटे लेता हूँ ?

केशव — आज जाग कर देख लो न।

भीम — तुम ठीक तो कहते हो । यही किया जाय। **(कुछ रुककर)** लेकिन जग कर सोते समय के खर्राटे कैसे सुन पाऊँगा ?

केशव—हः हः हः हः इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि शरीर के आकार और उसमें रहने वाली बुद्धि में एक अनुपात होना चाहिए ।

भीम—हो...ना...चा...हि...ये । शब्दकोष में एक ही तो सर्वोत्तम शब्द है, और वह है यही "चाहिए"। इस एक शब्द के बल पर लोग पंडित बन जाते हैं, कोविद कहलाते हैं, विद्वान हो जाते हैं...नेता...अनुभवी...उपदेशक; और न जाने क्या क्या ?

केशव—ओ हो। तुमने तो शब्दकोष भी देखा है, वृकोदर! मैं समझता था कि तुम केवल भोजनशाला से ही परिचित हो ।

(पार्थ का प्रवेश)

पार्थ—केशव ! धर्मराज बड़े दुखी हैं । लाख कहने पर भी, वे यहाँ नहीं आये ।

केशव—कहाँ हैं ?

पार्थ—विजन वन की उसी शिला पर बैठे, वे न जाने किस भाव-सिन्धु में डूब रहे हैं । देखते हुए भी वे कुछ देख नहीं रहे हैं । उनके अर्ध निमीलित नेत्रों में सम्पूर्ण अतीत, और अतीत की सम्पूर्ण घटनायें . . . जैसे एकत्रित हो गई हैं । क्षितिज की नभ नीलिमा में उनकी पुतलियाँ उलझी ही रह जाती हैं । शोक की इतनी घनी छाया, मैंने उनके मुख मंडल पर कभी नहीं देखी । मैं उनके लिए चिन्तित हो रहा हूँ ।

भीम—चिन्तित तो मैं भी हो रहा हूँ केशव !

केशव—तुम वृकोदर, किसलिए चिन्तित ?

भीम—क्या पचास बार कहलाओगे ? चिन्तित हूँ भोजन के लिए । देखते हो, कितना विलम्ब हो रहा है ।

पार्थ—असमय का परिहास अच्छा नहीं होता भीम ! धर्मराज की दशा शोचनीय है ।

भीम—भैया पार्थ ! बड़े भाई पर मुझे दया आती है । वे आवश्यकता से अधिक धर्मभीरु हैं । संकल्प की दृढता और भावावेश, ये दोनों जीवन को सफल बनाने के लिये आवश्यक उपकरण हैं । धर्मराज में उनके स्थान पर, धर्मभावना है, नैतिक भावना है, और है सब से अधिक करुण भावना । और इस त्रिवेणी का भार उठाये हुए, उन्हें इस महाभारत के भीषण संग्राम में, चलना पड़ा है, एक सूत्र संचालित कठपुतले की भाँति । और ये रहे सब के सूत्रधार . . . केशव, तुम्हारे सखा, सारथी ।

केशव—यह व्यंग है या विनोद ? इसका कोई विशेष अर्थ तो नहीं है, पार्थ !

पार्थ—नहीं, केशव ! व्यंग, युद्ध की भूमि में उष्णता भरते हैं और विनोद, विजय की घड़ियों में शीतलता । ऐसा लगता है भीम को आज विनोद करने की सूझी है ।

केशव—व्यंग और विनोद . . . मैं दोनों के लिये प्रस्तुत हूँ, पार्थ ।

पार्थ—तुम सदैव मेरी श्रद्धा के अधिकारी हो केशव ! विजयोल्लास की इस आनन्द-यामिनी में, मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ । कल्याणी-गीता का मधुर उपदेश हृदय में समा चुका है । निष्काम भावना से कर्म करने पर, उसके पाप-पुण्य की छाया प्राणों पर नहीं पड़ती, और दुख-सुख की सीमा तो बहुत पहले ही छूट जाती है । क्या आज पुनः परीक्षा लेने की सोची है केशव ?

केशव—नहीं पार्थ, जो उत्तीर्ण हो चुका, उसकी पुनः परीक्षा कैसी ? मुझे धर्मराज का स्मरण हो रहा है । उन्हें सम्हालना है । उनका हृदय कोमल ही नहीं—कोमलतम है ।

पार्थ—मुझे आज्ञा मिले । मैं यथासाध्य शीघ्र ही उपस्थित होऊँगा ।

(प्रस्थान)

भीम—देखो केशव, अब विलम्ब नहीं होना चाहिए । भोजन की व्यवस्था. . .

केशव—भोजन, भोजन, इच्छा होती है, तुम्हारा नाम ही भोजन-भट्ट रख दूँ। क्यों वृकोदर? भीमसेन में तो एक ही "भ" है, भोजन भट्ट में दो "भ" हैं दो "भ"।

भीम—नाम बाद को रखना, पहले चलो भोजन करें। हाँ, अगर तुम्हें धर्मराज और अर्जुन के साथ भोजन करना हो तो, तुम यहाँ बैठो, मैं चला। सहभोजन की अपेक्षा, मुझे भोजन अधिक प्रिय हैं। और भोजन में मुझे शिष्टाचार तो बिलकुल पसन्द नहीं। उसके स्थान पर आम का अचार ले सकता हूँ।

केशव—अच्छा, अच्छा, चलो पहले तुम्हारी उदर-समस्या हल की जाय।

(दोनों का प्रस्थान)

: दूसरी झांकी :

(मधुर संगीत की ध्वनि हो रही है)

* * * *

सजनी, रज़नी बीत गई।
बने रंगीले बादल के दल, अंधकार पर जीत हुई।
चली मधुर पुरवैया, आली,
झूमी लता, हँसी हरियाली,
लाज भरी कलियों से अलि की, नई-नई सी प्रीत हुई।
सजनी, रजनी बीत गई !!

पार्थ—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, संगीत का प्राण कविता ही है।

भीम—नहीं भाई, यों कहो, कविता का प्राण संगीत है।

केशव—दोनों ही ठीक हैं। कला के क्षेत्र की यही मधुर कहानी है। जब अंगों का संतुलित विकास होता है, सुगठित शरीर का स्वास्थ्य तभी शोभा पाता है। सप्त स्वरों के आरोह—अवरोह में जब एकरसता उत्पन्न होती है, संगीत की स्वरलहरी तभी हृदय को छूती है। जीवन के विस्तीर्ण क्षेत्र में, इसी समन्वय की साधना मानव को करनी चाहिए। संयमित व्यक्तित्व समाज का भूषण होता है, पार्थ !

पार्थ—केशव आप मानें, न मानें, संयमी तो हम लोग हैं।

केशव—कैसे ?

भीम—कैसे ! क्या भूल गये ? जब गीता का सम्पूर्ण ज्ञान पार्थ को दे डाला, तब तुम्हारे पास कैसे शेष रहेगा। अरे भाई . . .

"या निशा सर्वभूतानां तस्याम् जागर्ति संयमी"

पार्थ — (हंसते हुये) अच्छा, अच्छा, सुना केशव, विजयोल्लास की इस आनन्द-यामिनी में जो यह "रात्रि-जागरण" हुआ है, उसकी ओर भीम का संकेत है। हः हः हः हः।

केशव—हः हः हः हः !

पार्थ—(गुनगुनाते हुए) बने रंगीले बादल के दल, अन्धकार पर जीत हुई। रजनी बीत गई। अन्धकार पर प्रकाश की विजय का नाम ही 'प्रभात' है केशव !

केशव—इसी लिये तो हम "तमसो मा ज्योतिर्गमय' के आकांक्षी रहते हैं। जीवन की सफलता प्रकाश में ही है। अंधकार की छाया में तो पाप और मृत्यु आंख-मिचौनी खेला करते हैं।

[दूत का प्रवेश]

दूत — सर्वनाश हो गया, सर्वनाश हो गया। नीच नराधम ने सर्वनाश कर डाला !

धर्मराज—क्या, क्या क्या ? क्या हुआ दूत ? सर्वनाश ? क्या कह रहे हो, दूत ?

पार्थ—क्या, क्या दूत, क्या हुआ ? सर्वनाश ? कैसा सर्वनाश ? किसका सर्वनाश ? कौन नीच नराधम ? कौन नीच नराधम ? स्पष्ट कहो, दूत !

दूत—न कह सकूँगा, न कह पाऊँगा । जल्दी चलिये । जल्दी चलिये । आतताई अश्वत्थामा ने, क्रूर कृपाचार्य ने, अकृती कृतवर्माने सर्वनाश कर डाला . . . सर्वनाश कर डाला ।

भीम—कौन ? अश्वत्थामा ? कृपाचार्य ? कृतवर्मा ?

केशव—देवी द्रौपदी कुशल से तो हैं ? उसके पुत्र ? पांचाल वीर ?

दूत—म . . . हा . . . रानी द्रौपदी . . . अभागिनी द्रौपदी . . . पुत्र-वंचिता द्रौपदी । द . . य . . . नी . . . या . . . द्रौपदी । राक्षस ने पांचों पुत्रों की हत्या कर डाली ।

पार्थ—केशव । यह क्या सुन रहा हूँ . . . क्या सुन रहा हूँ ?

धर्म—हाय राम ।

पार्थ—चलिए केशव, अब यहाँ ठहर नहीं सकता ।

केशव—चलो पार्थ, भीम ! धर्मराज ! (रुककर . . . धीमे स्वर में) अंधकार की छाया में पाप और मृत्यु आँखमिचौनी खेला करते हैं । [प्रस्थान]

:तीसरी झाँकी:

श्यामा—महारानी जी ! भगवान कृष्ण पास खड़े हैं ।

द्रौपदी—(चौंककर) कृष्ण ! कृष्ण ! भैया कृष्ण ! (रोती है)

केशव—शांत हो द्रौपदी !

द्रौपदी—भैया केशव ! (रोती है) शान्त होऊँ ? कैसे शान्त होऊँ ? मेरे लाल, मेरे पांचों लाल, मेरे पांचों प्राण (रोती है)

केशव—दुर्भाग्य का यह अन्तिम आघात है, देवि ! इसे भी सहना ही पड़ेगा । द्रौपदी ! शान्त हो ।

द्रौपदी—दुर्भाग्य ? दुर्भाग्य ? शान्त होऊँ ? हाँ शान्त होना ही पड़ेगा । अबला हूँ न ! सहना और रोना . . . नारी के भाग्य में इतना ही है केशव ! हाय ! धर्मराज की धर्मध्वजा उड़ती ही रही, गांडीव की टंकार होती ही रही, और इधर एक नहीं . . . पांच पतियों का संरक्षण पानेवाली अभागिनी नारी पर दुर्दैव, दुर्भाग्य, आघात करता ही रहा ।

धर्म—हाय केशव !

द्रौपदी—भैया केशव ! शान्त रहने का उपदेश दे रहे हो ? मुझे ? द्रौपदी को ? मर्माहत द्रौपदी को ? पुत्र-वंचिता द्रौपदी को ? गीता के उपदेश देने की इच्छा हुई है क्या ? तो श्रोता शिष्य सामने ही खड़ा है . . . नतशिर, विनय मूर्ति !

पार्थ—प्रिये !

द्रौपदी—(कठोर स्वर में) मैं इस सम्बोधन की भूखी नहीं हूं आर्य-पुत्र । तुम कौरवों से युद्ध करते रहे हो, यह गांडीव अब मुझे दो । मैं अपने दुर्दैव से, दुर्भाग्य से, युद्ध करूँगी । (रोती है) मेरे पांचों पुत्र . . .

धर्म—केशव, केशव, हृदय बैठा जाता है, प्राण उड़ा जाता है ।

केशव—नकुल, सहदेव, भैया धर्मराज को अन्यत्र ले जाओ । (द्रौपदी से) बहन द्रौपदी । आघात सहने ही के लिए होते हैं; हाँ, सहकर बैठे रहने के लिये नहीं ।

भीम—(दाँत पीस कर) आततायी अश्वत्थामा ! सोते हुए सिंहशावकों की यह निर्मम हत्या ! नीच ! पामर ! गदा से तेरा मस्तक चूर-चूर न कर दिया तो, मेरा नाम भीम नहीं ।

द्रौपदी—केशव भैया केशव, (रोती है) मैं क्या करूँ ? हाय मेरे पांचों पुत्र !

केशव—शान्त हो द्रौपदी ! तुम कई बार मूर्छित हो चुकी हो, देखो, शान्त हो, शान्त हो ।

पार्थ—केशव । धमनियों में उष्ण रक्त उबल रहा है । प्राणों की कसक क्रोध बन चुकी है । तुम्हार महाभारत को अन्तिम विराम की आवश्यकता है । चलो सारथी, अश्वत्थामा का आततायीपन मुझे पुकार रहा है । मैं अब एक क्षण के लिये भी नहीं ठहर सकता यहाँ । जब तक उसके शरीर को पंचभूत में न मिला दूँगा, मुझे चैन न मिलेगी ! केशव, चलो अविलम्ब ।

द्रौपदी—नहीं आर्यपुत्र । तुम उसका वध न करना । केवल बाँध कर उसे यहाँ लाना । (दाँत पीस कर) उसके प्राणों की मैं प्यासी हूं । मैंने कभी कृपाण नहीं उठाई, परन्तु उस हत्यारे, चांडाल का सिर मैं अपने हाथों काटूँगी । और तब उसके मस्तक पर पैर रख कर पुत्रशोक का स्नान करूँगी । हत्यारा ! आततायी !! नराधम !!! (मूर्छित होती है)

केशव—शान्त हो द्रौपदी । इतनी उत्तेजित न हो । एक नारी के लिये इतनी उत्तेजना अशोभनीय है । नारी का हृदय माखन जैसा कोमल, भक्ति जैसा पवित्र होता है । यह संसार शिशु इन्हीं कोमल वृत्तियों की लोरियों में पलता है । नारी का मातृ-रूप इसीलिए पूजनीय है । दया, क्षमा और करुणा जैसी कोमल वृत्तियों का पालन नारी-हृदय ही करता है ।

श्यामा—भगवन्, देवी द्रौपदी मूर्छित हैं ।

केशव—चिन्ता न करो, श्यामा । शोक के आवेग में मूर्छा हितकर ही होती है । तुम उचित उपचार करना । पार्थ मेरी प्रतीक्षा कर रहा है । (प्रस्थान)

* * * *

सूत्रधार—पुत्रशोक कितना मर्मांतक होता है, शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता । दीना द्रौपदी इतनी शोकाभिभूत हो गई कि संज्ञा हीन-सी रहने लगी । उसकी लम्बी मूर्छा को उसकी सखियाँ निद्रा समझती हैं और उसके विलाप-कथन को प्रलाप ।

: चौथी झाँकी :

श्यामा—यदि महारानी इसी तरह कुछ देर और सोती रहें, तो इन्हें विश्राम मिल जायगा । तब तक चल कर, मैं अन्य काम समाप्त कर लूँ ।

(जाना चाहती है—इतने में द्रौपदी चौंक पड़ती है)

द्रौपदी—नहीं, नहीं, नहीं नहीं, अबला नारी, नहीं, नारी नहीं, मैं नारी से ऊपर उठूँगी । मैं मां बनूँगी अब, मां बनूँगी ।

श्यामा—महारानी, महारानी, शान्त हों । यह क्या कह रही है आप ? क्या कुछ स्वप्न देखा आपने ?

द्रौपदी—ओह, ओह, स्वप्न...यह स्वप्न था । ओह !

श्यामा—हां देवी, यह स्वप्न ही होगा । आप सो रहीं थीं । सहसा आप चौंक पड़ीं । शान्त हों आप ।

द्रौपदी—नहीं श्यामा, यह स्वप्न नहीं था. . .स्वप्न नहीं था । देव के मुख से कैसी उदात्त भावनायें सुन रही थी । मन डूबा जा रहा था, हृदय ऊपर उठ रहा था । मैं माँ बनूँगी अब । मुझे मातृत्व मिला है । वह स्वप्न नहीं था, श्यामा ।

श्यामा—स्वप्न को सिद्ध तो क्या किया जा सकता है ? परन्तु है यह सत्य, कि जो आप देख रही थी, वह स्वप्न ही था । यहाँ न कोई देव था और न उसके उदात्त भाव. . .पलकों की ओट में जो स्वप्न रहते हैं, वे चाहे कटु हों या मधुर, होते असत्य ही हैं ।

द्रौपदी—हो सकता है श्यामा, यह स्वप्न ही हो । किन्तु मेरे निकट वह सत्य से भी कुछ अधिक है ! स्वप्न !! हाँ, वह स्वप्न ही था । किन्तु अब वह स्वप्न नहीं रहेगा । मैं उसे साकार बनाऊँगी । ऐसे स्वप्नों को साकार बनाने में ही जीवन की सार्थकता है ।

श्यामा—धृष्टता क्षमा हो, क्या मैं स्वप्नवृत्त सुन सकती हूँ ?

द्रौपदी—श्यामा, मेरी सखी श्यामा; देव की वाणी अब भी कानों में गूंज रही है । आज ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जो कुछ अब तक किया गया, अच्छा हुआ, ठीक होकर भी ठीक नहीं था ।

१९५०

श्यामा—हो सकता है।

द्रौपदी—हो नहीं सकता, यही है। अपने आस-पास एक संकुचित घेरा घेर कर मानव कितना सीमित और दयनीय बन जाता है। क्षुद्र मानव, जब अपनी अधिकार लिप्सा में, अत्यन्त सीमित "कुछ" को अपना कह कर सन्तोष लाभ करता है, तब वह यह भूल जाता है कि उसने कितने व्यापक विश्व-धन से अपने को वंचित कर रखा है। हृदय की व्यापकता में ही जीवन की सार्थकता है, श्यामा।

श्यामा—कुछ समझ नहीं पा रही हूं, देवि !

द्रौपदी—श्यामा, आज ही तो समझ में आया है। अपने और पराये की मोह भावना का वही तो परिणाम होता है जो इस नर-संहार में हुआ है। आज आत्मग्लानि से गली जा रही हूँ। देखती हूँ, स्पष्ट देखती हूँ, जिसे सबने "धर्मयुद्ध" कहा, उसके पीछे अधिकार-लिप्सा ही थी, अपने पराये की भावना ही थी। सीमित और संकुचित दृष्टि ही थी। ओह, अभी जो मैंने देखा, सुना; तुम उसे स्वप्न कहती हो। यदि इस स्वप्न को ही पहले देख पाती, तो इस १८ अक्षौहिणी की हत्या न होती, हिंसा का ऐसा ताण्डव नृत्य न होता। ओह, व्यक्ति-स्वार्थ को ही अब तक हमने धर्म माना, और मानवधर्म की उपेक्षा की।

श्यामा—महारानी, आपको विश्राम की आवश्यकता है।

द्रौपदी—महारानी, नहीं, नहीं, नारी केवल नारी, नारी भी नहीं, माँ केवल माँ, नारी की सार्थकता माँ में ही है। नारी एक क्षण के लिये पत्नी है, अनन्तकाल के लिये माँ है।

पत्नी रह कर जो कुछ किया है, उसका स्मरण भी भयावना है। श्यामा ! मातृहृदय रखने वाली नारी . . . मैं यह सब कर सकी। कैसे कर सकी ? यही आश्चर्य है !

श्यामा—आप शान्त हों, आपके प्राणों की कसक को अनुभव करती हूं। पुत्र का शोक ऐसा ही मर्मान्तक होता है, और फिर एकसाथ पांच पुत्रों की हत्या।

द्रौपदी—पांच पुत्रों की ? केवल पांच पुत्रों की हत्या ? नहीं, पगली, तुम नहीं समझोगी। जिस जननी जाति के अनन्त बच्चे, निरीह बच्चे, सदा के लिये सो गये, उसके प्राणों की पीड़ा को तुम कैसे समझोगी ? श्यामा !

श्यामा—दुखी न हों महारानी। जिनके विशाल हाथों में गांडीव है, उनके लिये अश्वस्थामा का सिर प्राप्त करना कोई बड़ी बात नहीं। धैर्य धरें आप। दूत से सूचना मिली है कि अश्वत्थामा पकड़ लिया गया है और बांध कर लाया जा रहा है।

द्रौपदी—लाया जा रहा है ? (उत्सुकता से) तो ठीक।

श्यामा—हाँ महारानी। साथ ला रहे हैं। तुम्हारे सामने ही वह दंडित किया जायगा, ताकि उस नराधम, आतताई की हत्या से तुम्हें सन्तोष मिल सके।

द्रौपदी—उसकी हत्या से मुझे सन्तोष मिल सके ? ठीक है, ठीक है। यही कहोगी, श्यामा; आज तक तो यही होता रहा है। किन्तु . . . किन्तु . . .

श्यामा—अपराध क्षमा हो, मुझ से कुछ भूल हुई ?

द्रौपदी—नहीं, श्यामा, भूल तो हो चुकी, जो होनी थी, अब और क्या होगी ? वह अश्वत्थामा को साथ ला रहे हैं, यह सुन कर सन्तोष हुआ।

* * * *

(घोड़ों की टापों की आवाज़, रथ के रुकने की आवाज़, उतरने की आवाज़)

भीमसेन—आ गये केशव ! लेकिन तुम से अधिक आज इस अश्वत्थामा को देख कर मैं प्रसन्न हूँ। कहो निशावीर ! नराधम। आ गये ?

अश्वत्थामा............(मौन)

भीमसेन—मौन है ? क्यों, क्या मुँह में जिव्हा नहीं रही ? ले दुष्ट, अपना स्वागत तो स्वीकार कर।

(घूंसा मारने और कराहने की आवाज)

केशव—अरे, यह क्या ? वृकोदर ! हाथ चलाने लगे । आगत का इस तरह स्वागत ? अभी ठहरो। देखो, धर्मराज को बुलाओ । देवी द्रौपदी कहाँ हैं ?

भीमसेन—द्रौपदी, मर्माहत द्रौपदी । वह इस समय जीवन और मरण के मध्य में हैं, केशव, दासी से सूचना मिली है, वह बार-बार मूर्छित हो जाती है । मूर्छा दूर होने पर प्रलाप करने लगती है । हृदय का दाह शायद मस्तिष्क तक पहुँच गया है ।

केशव—अच्छा, तो वहीं चले । पार्थ, अश्वत्थामा को वहीं ले चलें । इसका दण्डविधान वहीं होगा।

* * * *

(थोड़ा अवकाश)

द्रौपदी—आ गये, भैया केशव !

केशव—हाँ, आ गया हूँ देवि, और यह हैं पार्थ; और यह रहा अश्वत्थामा . . . आततायी, क्रूर, जिसके प्राणों की तुम प्यासी थी ।

पार्थ—प्रिये, धर्मराज को आ जाने दो । फिर इस आतताई अश्वत्थामा का अतिथि-सत्कार तुम्हें करना होगा ।

भीम—इसके प्राण चाहे कृपाण ले, चाहे गांडीव का कोई बाण, किन्तु इसके मस्तक पर मेरी गदा जरूर पड़ेगी । वह इसका अधिकारी भी है । जानते हो, केशव ! अवंतिराज के "अश्वत्थामा" नामक हाथी को इसी मेरी गदा ने समाप्त किया था । यह भी तो अश्वत्थामा है "कुंजरो वा नरो" ।

केशव—जो बन्धन में पड़ा है उसका अपमान करना उचित नहीं, भीम !

द्रौपदी—उसे बन्धनमुक्त कर दो, भैया केशव ! वह दया का अधिकारी है ।

पार्थ—बन्धनमुक्त ? दया का अधिकारी ?

(धर्मराज का प्रवेश)

केशव—आइये धर्मराज । लीजिये, आपके पार्थ आततायी अश्वत्थामा को पकड़ लाये हैं ।

धर्मराज—देख रहा हूँ केशव !

केशव—क्यों धर्मराज ? आप इतने गंभीर क्यों हैं ? प्रकृति तो ठीक है न ?

धर्मराज—मन की स्वस्थता ही प्रधान है, केशव ! जिसे मैं खो चुका हूं । और तुम सब जिसे "विजय" कह रहे हो, मेरे निकट वह पराजय से भी अधिक है ।

केशव—कैसे धर्मराज ?

धर्मराज—धर्मराज ! धर्मराज !! जब कोई "धर्मराज" कह कर मुझे सम्बोधित करता है तो इच्छा होती है, यह मेदिनी फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ। कौन-सा अधर्म है जो तुम्हारे इस धर्मराज ने नहीं किया ? इस अश्वत्थामा को ही लो । अवन्तिराज का हाथी अश्वत्थामा मारा गया था, यह नहीं; परन्तु गुरु द्रोण को धोखा देने के लिये मैं असत्य-भाषी बना था। और यह भीषण नर-संहार ! इतने आत्मीय जनों की हत्या का पाप मुझ पर है। नाश... सर्व नाश ! रक्त से भीगी धरा पर पैर रखना भी कष्टकर है, और हम चले हैं विजयोन्माद में उस पर राज्य करने ।

पार्थ—तब क्या, जो हुआ...बुरा हुआ ?

धर्मराज—ऐसा भी नहीं कह सकता, पार्थ ! पंक से ही पंकज जन्म लेता है । पंकज की हम प्रशंसा ही करते हैं, किन्तु पंक की मलिन छाया भी मन पर पड़ती ही है ।

केशव—अच्छा पार्थ ! जिस करुण प्रसंग को इस क्रूर अश्वत्थामा ने आरम्भ किया था, अब उसका अन्त भी अश्वत्थामा के द्वारा ही किया जाय । (द्रौपदी से) देवी द्रौपदी, अश्वत्थामा प्रस्तुत है । अब नारी के कर की कृपाण उठे । तुम उसके प्राणों की प्यासी थीं न ?

द्रौपदी—नहीं भैया ! मानव की जब कृपाण उठती है तब मानव का ही पतन होता है । उसी कृपाण को उठा कर नारी गिर कर कहाँ जायेगी, कहा नहीं जा सकता । आज अश्वत्थामा का प्राण नहीं, उसका जीवन मुझे चाहिए ।

केशव—कह क्या कह रही हो यह ? इसका अर्थ ?

द्रौपदी—द्रौपदी का नारीत्व मर चुका है, केशव ! पुत्र खो कर आज उसे मातृत्व मिला है । अश्वत्थामा को मुक्त कर दो, केशव !

पार्थ—क्या ? अश्वत्थामा मुक्त किया जाय ? यह क्या कह रही हो, प्रिये !

भीम—वह अब मुक्त नहीं होगा, हाँ, जीवन से मुक्त अवश्य होगा ।

द्रौपदी—नहीं, नहीं, आज न द्रौपदी की कृपाण ऊपर उठेगी, न गांडीवधारी का गांडीव और न भीमकाय गदा. . .आज तो मातृत्व की भावना ऊपर उठेगी, मानवता ऊपर उठेगी ।

भीम—केशव, मैं कह रहा हूँ पहले इस अश्वत्थामा के प्राणों को बिदा कर दिया जाय, फिर यह आपकी मानवता ऊपर उठती रहे ।

केशव—ठहरो भीम ! मंगलमय प्रभात होने जा रहा है । क्षमा की शीतल छाया पृथ्वी पर उतर रही है । उतावले न बनो, भीम ! क्षमा करना भी एक भूषण है ।

पार्थ—क्षमा ? क्षमा ?? आततायी—वधार्हण—को क्षमा ? यह न होगा । केशव ! अन्धकार के काले परदे में सोते हुए पांच पुत्रों के प्राणों को लेने में जिसे तनिक भी संकोच न हुआ, उसे क्षमा किया जाय ? यह कदापि न होगा । मैं उसका वध करूँगा ।

द्रौपदी—नहीं नहीं, नहीं नहीं, अब यह सब कुछ न होगा । बहुत हो चुका, बहुत हो चुका । पुत्र-वंचिता नारी के प्राणों की पीड़ा का समझो आर्यपुत्र ! मेरे पांच पुत्र. . .मेरे पांच पुत्र । उन्हें खो कर ही आज समझ पाई हूँ कि पुत्र-शोक क्या होता है । शोक की वेदना प्राणों को मरोड़ रही है । कसक इतनी असह्य हो सकती है, यह आज ही जाना । हतपुत्रा मैं तो हुई ही, अब वही वेदना अन्य को न देने दूँगी । अन्य को हतपुत्रा न होने दूँगी. . . न होने दूँगी । अश्वत्थामा के प्राण लेकर, उसकी माता को, दीना गौतमी को वही पीड़ा न दो, आर्यपुत्र !

भीम—नहीं भाई पार्थ ! तुम अपना प्रण पूरा करो । द्रौपदी पागल हो गई है ।

द्रौपदी—अरे नहीं. . मैं पागल नहीं हो गई हूँ । आज ही तो पागलपन दूर हुआ है । मैं गांडीव, कृपाण, गदा, अब कुछ न उठने दूँगी । मैं हाथ जोड़ती हूँ, अंचल पसार कर अश्वत्थामा के प्राणों की भीख मांगती हूँ ।

अश्वत्थामा—ओह, ओह, देवी द्रौपदी ! प्राणों के लोभ से नहीं, सरल श्रद्धा से विनत नराधम अश्वत्थामा का पद-वन्दन स्वीकार करो. . .जग. . .जननी नारी !

भीम—चांडाल के मुख में वेद ? चुप रह नराधम !

द्रौपदी—मैं उसे क्षमा करती हूँ । उसे मुक्त कर दो, आर्यपुत्र !

भीम—यह कृपा, यह क्षमा, असामयिक है, अप्रासंगिक है ।

द्रौपदी—कृपा और क्षमा कभी असामयिक नहीं होती ।

पार्थ—दया ? क्षमा ? करुणा ? नहीं नहीं, आतताइयों के लिये वे नहीं है । मैं वध करूँगा इसका ।

द्रौपदी—नहीं. . .नहीं, जो जितना अधिक पतित . . .पापी है, वह उतना ही अधिक हमारी करुणा का अधिकारी होता है । भैया कृष्ण, दया करो, दया करो; अश्वत्थामा को छुड़ा दो ।

केशव—पा. . .र्थ. . .।

पार्थ—नहीं केशव। यह नहीं हो सकता। पार्थ की प्रतिज्ञा पूरी ही होगी।

केशव—अच्छा, तो फिर जैसी इच्छा।

द्रौपदी—भैया, भैया, यह तुम क्या कह रहे हो? जिस प्रतिहिंसा की करालाग्नि को मैं अपने अश्रुजल से, करुणा-जल से शान्त करना चाहती हूँ, तुम उसी का समथन कर रहे हो!

केशव—तुम अनुचित नहीं कर रही हो, द्रौपदी; पार्थ भी उचित ही कह रहा है।

द्रौपदी—उचित ही कह रहे हैं? अच्छा, तो मैं हिंसा का खेल अब यहाँ नहीं खेलने दूँगी।

(बढ़कर अर्जुन का हाथ पकड़ती है, कृपाण पकड़ती है, पार्थ छुडाने का प्रयत्न करता है।)

पार्थ—मेरा हाथ छोड़ दो, छोड़ दो।

(द्रौपदी नहीं छोडती है। पार्थ ज़बरदस्ती छुड़ाता है. . .द्रौपदी गिर पड़ती है।)

पार्थ जाना चाहता है. . .

(इतने में कृष्ण उसका हाथ पकड़ लेते हैं।)

द्रौपदी — (गिरते हुए) हे राम, इस मातृ-हृदय को क्या करूँ?

पार्थ — यह क्या केशव? द्रौपदी से जब हाथ छुड़ा पाया तब तुमने धर लिया।

केशव — हाँ पार्थ, एक से तुम हाथ छुड़ा सके, पर दूसरे से तुम छुटा न सकोगे।

पार्थ — यह क्या केशव। अभी तुमने मेरे मत का समर्थन किया और अब तुम्हीं रोकने चले?

केशव — सिद्धान्त का समर्थन मैं अब भी कर रहा हूँ, पार्थ, किन्तु . . . .

पार्थ —किन्तु; क्या कहा किन्तु? केशव, इस किन्तु को मेरे मार्ग की बाधा न बनने दो। यह 'किन्तु'—'परन्तु' बड़ी घातिनी है। कितने शुभ कार्य, इस एक 'किन्तु'—'परन्तु'—के कारण ही होते-होते रुक जाते हैं।

केशव—'किन्तु' को तुम इतना भयानक न समझो, पार्थ! जब भावनाएँ प्रचंड बन कर आंधी बन कर, झंझावात का वेग ले कर आगे बढ़ना चाहती हैं, तब वे, यह नहीं देखतीं कि उनकी इस द्रुतगति में कितनों की दुर्गति हो रही है, कितने तन-तरु धराशायी हो रहे हैं। पार्थ! ऐसे ही भावावेश को यह "किन्तु" . . . विवेक का प्रतीक बन कर थोड़ी देर के लिये रोक लेती है . . . रोक लेती है . . . विवश करती है . . . कुछ सोचने के लिये . . . कुछ विचार करने के लिये।

पार्थ—नहीं केशव। यह किन्तु . . . हमारे ही हृदय की वह दुर्बलता है जो विवेक का रूप धारण कर सामने आती है। हमारा ही भय, हमारा ही आलस्य, हमारी ही कायरता . . . इस "किन्तु" के रूप में उपस्थित होती है।

केशव—गम्भीर पार्थ! वस्तु और घटना को इतने हलके रूप में देखने की आवश्यकता नहीं है। तुम आततायी अश्वत्थामा को ही मारना चाहते हो न? अवश्य मारो। मैं अब "किन्तु" भी नहीं कहूंगा। तुम उसे सुनना भी कब चाहते हो।

द्रौपदी—भैय्या कृष्ण, क्या यह प्रतिशोध की भावना कभी शान्त ही न होगी? क्या यह हिंसा का युग कभी समाप्त ही न होगा? और यह सब कुछ होगा आदर्श के नाम पर? सिद्धान्त के नाम पर? संस्कृति के नाम पर?

केशव—ठहरो पार्थ! मेरे एक प्रश्न का उत्तर दे दो। फिर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना।

पार्थ—वह क्या?

केशव—क्या तुम परिवर्तन पर विश्वास नहीं करते?

पार्थ—(भावावेश में) प्रसंग से बाहर का प्रश्न उठा कर आप मेरा गतिरोध न करें, केशव, नहीं तो।

केशव—"नहीं तो" (उपहास की हंसी! गम्भीरवाणी में।) भावावेश को इतना अवकाश कहाँ कि वह विवेक को साथ लेकर चले। तभी तो तुम्हारे मुख से यह "नहीं तो" सुन रहा हूँ। (प्रखरता के साथ) मेरा प्रश्न तुम्हारे उत्तर की अपेक्षा कर रहा है, पार्थ!

पार्थ—क्षमा करें, केशव, परिवर्तन संसार का शाश्वत नियम है। उस पर अविश्वास कैसा ?

केशव—तब तुम्हारा यह क्रोधावेश व्यर्थ है, पार्थ !

पार्थ—किस प्रकार ?

केशव—तुम जिस अश्वत्थामा को मारना चाहते हो, वह अश्वत्थामा अब है कहाँ ? वह तो पश्चात्ताप की अग्नि में जल चुका है . . . देवी द्रौपदी की करुणधारा में डूब चुका है। स्वर्ण की शुद्धि अग्नि से होती है और मानव की पश्चात्ताप से।

पार्थ—मैं कुछ कहना चाहता हूँ . . . केशव।

केशव—नहीं पार्थ, ठहरो, तुम्हें इस समय कुछ सुनने की आवश्यकता है। देखते हो . . . इस द्रौपदी को . . . जिसने कभी पार्थ की धमनियों में प्रतिहिंसा का रक्त भरा था, कौरवों से प्रतिशोध लेने के लिये समराग्नि को धधकाया था . . . और आज वही द्रौपदी, करुणा की कोमल कथा-सी, मर्माहत की नीरव व्यथा . . . सी, गोमुखी गंगा बन रही है . . . संसार शिशु के लिये अपना अनन्त मातृत्व लिये हुए।

पार्थ—देख रहा हूँ, केशव।

केशव—और देखते हो, इस अश्वत्थामा को ? जिसने सदैव पाप का ही पक्ष लिया, अधर्म के ही कृत्य किये, और अभी उस दिन, यामिनी के अन्धकार में, उस नीरव शिविर में, सोते हुए वीरों की हत्या की . . . और आज . . . वही अश्वत्थामा, हृदय के अन्तरतम में सौ-सौ बिच्छुओं का दंशन अनुभव कर रहा है। पश्चात्ताप में तप कर, आत्मग्लानि में गलकर, द्रौपदी की शीतल करुणा के कोमल सांचे में ढल कर, जो मूर्ति तैयार हुई है वह अश्वत्थामा की हो कर भी अश्वत्थामा की नहीं रही।

पार्थ—यह मैं क्या अनुभव कर रहा हूँ, केशव। मेरे हाथ शिथिल . . .

केशव—ठीक है, पार्थ ! कृपाण को म्यान में स्थान दो। शर अब तूणीर में ही विश्राम करेंगे।

पार्थ—जैसी हरि की इच्छा।

केशव—अश्वत्थामा ! सुनते ही तुमको क्षमा दान मिला है।

अश्वत्थामा—मैं उसे चाहता नहीं, केशव। क्षमा का भार मुझ से उठाये न उठेगा। मैं मृत्यु चाहता हूँ मृत्यु। वह मेरी आत्मा को, पापात्मा को शान्ति देगी। मृत्यु केवल मृत्यु !

केशव—हिंसा के व्यवसायी ! इतना सब कुछ हो जाने पर भी तुम मृत्यु के ही प्रेमी रहे . . . जीवन के नहीं ? अबतक दूसरों को मृत्यु बाँटते रहे, अब स्वयं मरण का वरण करना चाहते हो। शान्त हो, अश्वत्थामा ! भावावेश में, इन पुण्य घड़ियों को अशान्त न बनाओ। हिंसा पर मातृत्व की विजय हो रही है। देवी द्रौपदी को प्रगाम करो। करुणा कादम्त्रिनी की शीतल फुहार का रस ताप-तप्त मेदिनी को शीतल करने आ रहा है उसका स्वागत करो !

(गीत सुनाई पड़ता है)

करुणा कादम्त्रिनी बरसे।
ताप-तप्त इस दग्ध धरा पर शान्ति सुखद सरसे॥
ईर्षा-द्वेष और हिंसा की बहे न वायु विषैली।
अब न अधिक मानव जीवन की चादर होवे मैली॥
मातृभाव हित, स्नेह-प्यार-हित
अब न मेदिनी तरसे।
करुणा कादम्विनी बरसे॥

(संगीत धीरे धीरे शान्त हो जाता है)

तेलुगु साहित्य :

तेलुगु-उपन्यास

[श्री वारणासि राममूर्ति "रेणु"]

प्राचीन तेलुगु साहित्य का रूप रुपये में साढ़े पन्द्रह आने पद्यमय ही रहा । केवल चम्पू काव्य ग्रन्थों में यत्र तत्र गद्य को स्थान मिला है । स्वतंत्र रूप से गद्य साहित्य का उद्‌भव एवं विकास आधुनिक युग की विशेषता है । १९ वीं शती का चतुर्थ चरण तेलुगु गद्य साहित्य का जन्मकाल माना जाता है । स्व० श्री. परवस्तु चिन्नय्य सूरी इसके जन्म दाता कहे जा सकते हैं । उन्हीं ने सर्वप्रथम, "नीति चन्द्रिका," नामक अपनी पुस्तक में गद्य को स्वतंत्र रूप से स्थान दिया है ।

गद्य साहित्य के प्रधान अंग उपन्यास को तेलुगु में "नवला" कहते हैं । इसके जन्म दाता स्व० श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु थे जिन्होंने अंगरेजी के प्रसिद्ध लेखक गोल्डस्मिथ की रचना The Vicar of the Wakefield को ध्यान में रख कर अपना उपन्यास "राजशेखरचरित्रमु" लिखा था । श्री पंतुलुजी आधुनिक तेलुगु साहित्य के विधाता माने जाते हैं । वे ब्रह्म समाजी थे । सनातन रूढियों तथा परम्परा के कट्टर विरोधी । यही कारण है कि समाजसुधार सम्बन्धी विचारों से ही 'राजशेखरचीरित्रमु' भरा पडा है । इस सर्वप्रथम उपन्यास का अंग्रेजी में अनुवाद भी हो चुका था और इंग्लैंड में सर्वत्र उसकी प्रशंसा भी हुई थी। इस प्रकार तेलुगु में उपन्यास साहित्य का सूत्रपात हुआ है ।

श्री वीरेशलिंगम् के बाद उनके शिष्यों तथा अनुयायियों ने उन्हीं के पदचिह्नों पर चलकर उपन्यास रचना की शृंखला जारी रखी है । उनमें श्री चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इन्होंने एक-आध बंगला उपन्यासों के अनुवादों के साथ साथ तीन चार ऐतिहासिक रचनायें भी की थीं । उनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय "अहल्याबाई" और "सौंदर्य तिलक" है । 'रामचन्द्र विजयमु' नामक एक और उपन्यास में तेलुगु जविन का प्रधान रूप से चित्रांकण हुआ है । इनकी रचनाओं के कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन तथा वातावरण बहुत ही आकर्षक होते हैं । इनकी भाषा और शैली दोनों निर्दोष एवं चुटीली होती है । अंग्रेजी उपन्यासकारों में स्काट के साथ इनकी तुलना की जा सकती है । आकस्मिक घटनाओं का जिस सफाई के साथ अपने उपन्यासों में प्रतिपादन करतेहैं वह कौशल देखते ही बनता है । श्री चिलकमर्ति

जी उत्तम श्रेणी के वक्ता भी थे। उनकी वाणी श्रोताओं को मंत्रमुग्ध बनाये रखती थी।

श्री लक्ष्मीनरसिंहम् के बाद धीरे धीरे साहित्य विकसित होता गया। साथ साथ पुस्तकों के प्रकाशन-कार्य में भी दिक्कतें बढ़ती गईं। बीसवीं शती के प्रारम्भ में उन असुविधाओं को हटाने के उद्देश्य से कई पुस्तक-प्रकाशन-मंडलियाँ निकल पड़ीं। इनमें प्रधान रूप से उल्लेखनीय चार हैं, 'विज्ञान चंद्रिका मंडली', आंध्र प्रचारिणी ग्रन्थमाला, 'राम विलास ग्रन्थ माला' और 'सरस्वती ग्रन्थ मंडली'। इन संस्थाओं ने तेलुगु साहित्यकों को, विशेष कर उपन्यासकारों को जो प्रोत्साहन दिया था वह सर्वथा प्रशंसनीय है। 'विज्ञान चंद्रिका मंडली' की ओर से कई ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए। श्री. वेलाल सुब्बारावजी की "रानी संयुक्ता" केतवरपु वेंकटशास्त्री जी की रचना 'रायचूरुयुद्मम्' तथा मोगराजु नारायणमूर्ति जी की प्रसिद्ध कृति "विमला देवी" के नाम इस प्रसंग पर विशेष सम्मान के साथ लिये जा सकते हैं। इनमें दूसरा उपन्यास "रायचूरुयुद्मम्" की कथा तेलुगु देश के अतीत क इतिहास के साथ सीधा सम्बन्ध रखती है। उसके वर्णनों तथा घटनाओं का निर्वाह आद्योपान्त रोचक एवं कुतूहल वर्धक होता है। दूसरी संस्था 'आनन्द प्रचारिणी ग्रन्थमाला के साथ तेलुगु उपन्यास क्षेत्र में एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है। तब तक जितनी रचनायें निकली थीं उनमें से अधिकाँश या तो अनुकरण रहे या मौलिक कृतियाँ। कोरे अनुवादों की संख्या बहुत ही कम थी। किन्तु इस ग्रन्थ माला ने अनुवादों का बाज़ार गर्म रखा। बंगला तथा कन्नड़ भाषा की अनेक कृतियाँ तेलुगु में अवतरित हुईं। इस माला का बहुत सारा काम श्री बालांत्रपु वेंकटराव तथा ओलेटि पार्वतीशम् नामक जोड़े के कवियों के हाथों से सम्पन्न हुआ था। ये वेंकटपार्वतीश-कवुलु के नाम से प्रसिद्धि पा चुके थे। इन अनुवादों की कथावस्तु प्रायः एक सी शृंगार प्रधान रहती। बाह्य प्रकृति तथा प्रणय के विशद वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। एक "प्रमदावनमु" नामक उपन्यास को छोड़ कर और किसी में भी तेलुगु जीवन अथवा इतिहास से सम्बद्ध कोई विषय नहीं है। अनुवाद की यह परम्परा धीरे धीरे जासूसी रचनाओं में परिणत होगई। फिर क्या था, उपन्यासकार अपने मस्तिष्क की सारी उर्वरता एक से एक बढ़ कर अजीबोग़रीब घटनाओं तथा विचित्र प्रसंगों को ईजाद करने में ख़र्च करने लगे। दर्जनों की संख्या में हल्के ढंग की किताबें छपती गईं। इस प्रकार के साहित्य के द्वारा और कोई प्रयोजन भले ही सिद्ध न हुआ हो किन्तु इतना तो अवश्य हुआ कि जनता में उपन्यास-पठन के प्रति विशेष रुचि पैदा हो गई। शेष दोनों संस्थाओं का कार्य भी बहुत कुछ इन्हीं के अनुरूप चला।

तब तक याने बीसवें शतक की प्रथम दशाब्दी तक स्थाली-पुलाक-न्याय के अनुसार यत्र तत्र तेलुगु जीवन से सम्बन्ध रखने पर भी, सोलहों आना उसका समग्र रूप, वेष, भूषा, भाषा, व्यवहार, चाल-ढाल तथा वातावरण प्रतिबिंबित करने वाला, सही माने में

मौलिक कहा जा सकनेवाला, एक भी उपन्यास देखने में नहीं आया था। वह कमी पूरी कर दी है वयो-वृद्ध तपस्वीलेखक एवं समाज सुधारक श्री उन्नब लक्ष्मी नारायण पंतुलु की "मालपल्ली" याने चमारों-की-बस्ती नामक उपन्यास ने। सभी दृष्टियों से यह ग्रन्थ तेलुगु उपन्यास क्षेत्र का उज्वल रत्न कहा जायगा। इसी में पहली बार दलित जातियों, हरिजनों की पुकार हमारे कानों में पड़ती है। इसकी भाषा सीधी सादी, आम बोलचाल की है। शैली ठेठ देहाती घरूपन लिये पाठकों के दिलों पर तेलुगु जीवन की तस्वीर खींचती है। रचना में आद्योपान्त कहीं भी, किसी भी प्रकार की कृत्रिमता, वक्रता अथवा छिपाव की बू नहीं आती। पात्रों के चरित्र एवं स्वभाव चित्रण, समय परिस्थिति तथा वातावरण के साथ पूरा पूरा मेल खाते हैं। चमार भगत रामदास का पात्र लेखक की अपूर्व सृष्टि ही कहा जायगा। शील साधना, दृढ़ता, सहिष्णुता, सत्याग्रह और अपने हकों के लिये मर मिटने की धुन ये सभी मिल कर उस हरिजन के जीवन को सुन्दर और सुवासित कुसुम बना देते हैं। उपन्यास को पढ़ते समय बार बार श्री प्रेमचन्दजी के पात्र सूरदास की याद आ जाती है। ऊँच नीच के भेदभाव का खंडन तथा समता का प्रतिपादन, यही दो लेखक के प्रधान उद्देश्य मालूम होते हैं। अन्यान्य पात्रों का सहज चित्रण, वातावरण, कथावस्तु की पृष्ठ भूमि के वर्णन में प्रदर्शित औचित्य, अकृत्रिम कथोपकथन, चलती शैली से बूँद टपकाने वाली घरेलू मिठास, जेलों के भीतर का क्रूर वातावरण एवं दलित जातियों पर उच्च वर्णवालों द्वारा होने वाले रोमांचकारी अत्याचार, इन सभी ने मिलकर रचना को आंध्र पाठकों के गले का हार बना डाला है। इस अपूर्व मौलिक कृतिने न जाने कितने युवक लेखकों के हौसले बढ़ा दिये; कितने बोलचाल की भाषा के उपासकों की पीठें ठोंकी। सचमुच यह घटना तेलुगु साहित्य की एक सुन्दर क्षतिपूर्ति कही जा सकती है। श्री. लक्ष्मीनारायण जी को यदि मौलिक सामाजिक उपन्यास का पितामह कहें तो इसमें कोई असंगति नहीं होगी।

इन आदर्श लेखक की लेखनी से प्रेरणा पाकर कई युवक साहित्यकार उपन्यास के मैदान में उतर पड़े और अपनी सुन्दर कृतियों से साहित्य की श्रीवृद्धि की। उनमें से कतिपय व्यक्तियों की रचनाओं का यथा सम्भव आगे विवेचन किया जायगा। इस छोटे से लेख में इससे अधिक की गुंजाइश नहीं।

सबसे पहले लब्ध-प्रतिष्ठ महाकवि श्री. विश्वनाथ सत्यनारायण जी ने इस दिशा में कदम बढ़ाया। उनका बृहत् उपन्यास, "वेयिपड़गलु" याने सहस्र-फणा, उपन्यास साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे उपन्यास कहने की अपेक्षा गद्यका एक महाकाव्य कहा जाय तो समीचीन होगा। इसमें तेलुगुवालों के सांस्कृतिक एवं सामाजिक-जीवन-रूपी शेषनाग के सहस्र-फण, याने संख्यातीत पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। सनातन आर्य-धर्म के प्रति बढ़ी हुई उपेक्षा एवं अनादर के परिणाम-स्वरूप समाज का जो आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक तथा शारीरिक पतन होता आया है उसका क्रमपूर्ण

दिग्दर्शन, तथा किस प्रकार गत-गौरव की पुनरुपलब्धि के लिये भगवान के अस्तित्व तथा धर्म में पूर्ण आस्था का रखना आवश्यक है इसका प्रतिपादन, बड़ी तर्कयुक्त व ज़ोरदार भाषा में किया गया हैं। रचना के नायक धर्मराव स्वयं धर्म के मूर्ततत्वं हैं, आदर्शों के आदर्श, गिरिका नामक एक समुज्वल स्त्री पात्र के द्वारा, दक्षिण के मन्दिरों की देवदासी प्रथा के के पवित्र आशय का मर्म खोलकर रखा गया है। विशेषकर मेरी अल्प मति में, देवी गिरिका के चरित्र की सृष्टि लेखक की अगाध साधना का अमृत फल है। वह दृश्य, जिस में भगवान गोपाल कृष्ण के सामने सर्व रसों की मूर्ति बनकर, षडऋतुओं के शृंगार से सराबोर, शरश्चान्द्रिकापर्व से धवलित यामिनी में, अपना तन मन एवं यौवन वारकर, कभी वासक-सज्जा, कभी अभिसारिका कभी प्रोषित-पतिका- आदि नाना रूप धारण कर वह नृत्य करती है, और वह दृश्य जिसमें सात दिन तक निर्जला रहकर, अपने जीवन-सर्वस्व को नृत्य गान से रिझा रिझाकर, अन्त में उसके दिव्य प्रेम की वेदी पर अपने प्राणों की पूर्णा हुति देकर निश्चेतन गिर जाती है, भुलाये नहीं भूलाते!

नर्तकी गिरिका मानों समस्त चराचर जगत को अपने साथ कर लेती है। और एक स्त्री पात्र 'मंगम्मा' के यथार्थ–चित्रण के द्वारा कुशल लेखक ने यह दिखाया है कि, किस प्रकार अत्यन्त भ्रष्ट चरित्र वाली, छिनाल–छतीसी में प्रवीणा औरत भी हमारे तिरस्कार की नहीं, अपितु अनुकम्पा व दया की ही पात्र है। उसका उद्धार भी भगवान की शरण में जाने से हो सकता है। इस प्रकार आदर्शवाद एवं यथार्थवाद का सुन्दर मिश्रण इस महान कृति की विशेषता है। किन्तु कथावस्तु में शृंखला का निर्वाह जिसे 'यूनिटी आफ ऐक्शन' कहते हैं इसमें ठीक ठीक नहीं हो पाया है। इन्हीं लेखक की एक ऐतिहासिक रचना 'एकवीरा' उपन्यास कला की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। समय, स्थान, कथावस्तु एवं विचार धारा की शृखला का पूरा २ निर्वाह उसमें मिलता है। विशेष कर कथावस्तु–ग्रथन में प्रदर्शित कला के विचार से इसका स्थान तेलुगु के और सभी उपन्यासों से ऊपर ही कहा जायगा। इसका अनुवाद तामिल भाषा में हो गया है और नाटक के रूप में रेडियो पर भी उसका सफलता पूर्वक प्रदर्शन हो चुका है। 'चेलियलिकट्टा' 'धर्मचक्रमु' वगैरह इनके अन्य सफल उपन्यास हैं।

श्री. सत्यनारायण के बाद प्रसिद्ध कलाकार एवं चित्रकार श्री. अडिवि बापिराजु का नाम आदर के साथ लिया जायगा। इनके कई उपन्यास हैं जिन में 'नारायणराव' और 'हिमबिन्दु' श्रेष्ठ माने जाते है। 'नारायण राव' सामाजिक उपन्यास है जिसमें वर्तमान आन्ध्र-जीवन का यथार्थ एवं सुन्दर चित्रण अंकित है। इसमें यात्रा सम्बन्धी विषयों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। दूसरी रचना 'हिम–बिन्दु' मेरी सम्मति में अपेक्षाकृत अच्छी है। इसकी कथा वस्तु आन्ध्र शातवाहन राजाओं के गरिमामय स्वर्णयुग से सम्बन्ध रखती है। घटनाओं तथा पात्रों का बिम्ब-ग्रहण कराने में श्री. बापिराजु सिद्धहस्त

हैं। उनकी हिमबिन्दु और विषकन्या के रूप भुलाये नहीं भूलते। विषकन्या की सृष्टि विशेषकर लेखक की उर्वर कल्पना का सबल प्रमाण है। महामात्य राक्षस की विषकन्या का उल्लेख मात्र विशाखदत्त ने किया है, किन्तु श्री. बापिराजु हमारी आंखों के समक्ष ही उसका पालनपोषण करते हैं, उसकी भयंकर साथ साथ सुन्दर आकृति दिखाते हैं, और अन्त में उस हालाहल से अमृत की सृष्टि कराते हैं। 'कोनंगी', 'तुपानु', 'गन्नारेड्डी' इनके अन्य लोकप्रिय उपन्यास हैं।

श्री. नेरि नरसिंह शास्त्री जी का 'नारायण–भट्टु' नामक ऐतिहासिक उपन्यास, जिस में ११ वीं शती के आन्ध्र–प्रदेश का वातावरण अंकित है, हाल ही में प्रकाशित हुआ है। समूची रचना आर्य–धर्म के विरोधी तत्कालीन बौद्ध तथा जैन मतों की कटु आलोचना से भरी है।

अब तक आधुनिक उपन्यासकारों में से यहाँ केवल उन्हीं की रचनाओं का जिक्र किया गया है, जिनका उद्देश्य धर्म की प्रतिष्ठा रहा। एक 'मालपल्ली' को छोड़ कर शेष सभी रचनाओं की भाषा ग्रान्थिक याने व्याकरण–बद्ध ही रही, बोलचाल की नहीं। व्याकरण के नियमों के साथ-साथ, धार्मिक तथा नैतिक सिद्धान्तों को भी धता बता कर 'काम' की प्रवृत्ति को ही प्रधानता देकर रचना करने वाले उपन्यासकारों के अगुआ श्री. गुडिपाटि वेंकटाचलम् हैं। इन्हें आन्ध्र भाषा का फ्राइड कह सकेंगे। इनकी रचनायें बहू–बेटियों के बीच पढ़ने लायक नहीं हैं। दुर्भाग्य से इनका प्रचार भी यथेष्ट है। इनके अलावा श्री. कोव्वलि बन्धुओं के पचासों उपन्यास रातों रात छपते जा रहे हैं। इनमें भी युवा तथा युवतियों को पतन की ओर लेजानेवाला वही आकर्षण रहता है। यों तो प्रत्येक रचना के मुख–पृष्ठ पर कोई नीति अथवा उपदेशपूर्ण सूक्ति बड़े बड़े अक्षरों में दी जाती है, जिसका प्रतिपादन एवं समर्थन ही पुस्तक का लक्ष्य कहा जाता है। किन्तु उस कोयले की खान में हीरे को ढूंढने के लिये हमें अणुवीक्षणी की ज़रूरत पडती है! अंग्रेज़ी के रेल्वे 'लिटरेचर' की तरह इनकी भी पहुँच देश के कोने कोने में है।

शिष्ट हास्य को साहित्य का प्रधान लक्ष्य बनाकर रचना करने वाले उपन्यासकारों में श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री अग्रणी हैं। अपनी मौलिक रचना 'बॅरिस्टर पार्वतीशमु' में इन्होंने एक सनातन धर्मावलम्बी युवक की विलायत की यात्रा का बहुत ही हास्य पूर्ण एवं रोचक चित्र खडा कर दिया। यह एक सुन्दर चरित्र–प्रधान उपन्यास है। बॅरिस्टर पार्वतीशमु का पात्र लेखक की अनोखी सृष्टि है।

इधर पांच छः वर्षों से उपन्यास-क्षेत्र में अनुवादों की संख्या बढ़ती जा रही है। ये अनुवाद बंगला हिन्दी व अंगरेजी से हो रहे हैं। शरत बाबू की सभी रचनाओं के चार चार महाशयों ने अलग अनुवाद प्रस्तुत किये। प्रेमाश्रम सेवासदन वगैरह हिन्दी उपन्यासों के भी अनुवाद हो चुके हैं। अलेग्जेंडर ड्यूमा के 'ब्लेक ट्यूलिप' तथा मैक्सिम गोर्की की

'मदर' के अनुवाद भी क्रमशः 'नल्लकलुवा' और 'अम्मा' के नाम से हो गये हैं। इनके अलावा 'विश्व-साहित्य-माला' नामक एक प्रकाशन संस्था की ओर से रूसी साहित्य का बहुत सा अच्छा बुरा अंश तेलुगु में लाया गया है। इन अनूदित रचनाओं के साथ श्री. इलिन्द्र रंगनायकुलु जैसे कुछ उदीयमान लेखक भी मौलिक चीज़ें साहित्य की भेंट कर रहे हैं। इस प्रकार तेलुगु उपन्यास साहित्य का भविष्य वहुत उज्वल नज़र आता है। इस छोटे से भाषण में कई दूसरे ऐसे महानुभावों का उल्लेख करना सम्भव नहीं हो सका है, जिन्होंने अपनी अमूल्य रचनाओं से तेलुगु साहित्य की सेवा की है और कर रहे हैं।

जो गीतों में कसक उठे

[श्री राधाकृष्ण]

दुख दुलराये नेह प्यार से
जो गीतों में कसक उठे
पीर भरा अपनत्व, स्नेह–
से युक्त दुखों का डेरा
प्राणों को छू सका, वना—
गीतों का रैन-वसेरा
रैन कटी अँधियारी काली
लो प्रकाश कण चमक उठे!
शूलभरी शाखा पर कली—
ने, अधम सांस जो पाई
और निशा की श्यामा साँसों–
से, कुछ गति जो पाई
रैन कटी अँधियारी काली
लो पराग कण महक उठे!
शक्ति समेट पंख में पंछी
शून्य गगन में भटके
वोझ लिये जीवन का, निशि–
में किसी वृक्ष पर अटके
रैन कटी अँधियारी काली
लो प्रातः ही चहक उठे!
स्नेह सरोवर ये सुख की
धीमी दो-चार लहर क्या?
भरा वेदना से जीवन, सुख–
के दो-चार प्रहर क्या!
अनवोले दो वोल दुःख के—
भले, आँख ये छलक उठे!
छू न सका प्राणों को, साँसों–
समा न पाया जो स्वर
वह सुख का संगीत, भला–,
क्या पूरेगा जीवन भर?
भली व्यथा की रैन हमारी
जो गीतों में कसक उठे!

कहानी :

नई संस्कृति

श्री. विष्णु प्रभाकर

मैं आज आपको अपनी लम्बी यात्रा की एक घटना सुनाने जा रहा हूँ । आप जानते हैं जब भी कोई नये प्रदेश में जाता है, तो उसे सब कुछ नया नया जान पड़ता है, और वह नयापन प्रायः अच्छा लगता है, आंखों को भी और मन को भी; लेकिन मैं मान लूँ पहिले पहल मुझे यह नयापन अच्छा नहीं लगा । मेरा कुछ ऐसा विचार हुआ कि यहाँ का मनुष्य मशीन बन गया है । वह मशीन की तरह चलता है तो केवल चलता ही रहता है । ठहर कर विचार करना वह भूल गया है । ठहरने को वह मौत मानता है । चलने को वह प्रगतिशीलता की शर्त कहता है । कुछ समझ में नहीं आया । लगा जैसे यहाँ तो शब्दों के अर्थ ही बदल गये हैं । जैसे मैं किसी नई दुनिया में भटक गया हूँ । तब मुझे मेरी दशा उस मुसाफिर की सी जान पड़ी जो सुरम्य प्रदेशों की खोज करता हुआ मरुस्थल में जा पहुँचता है ।

लेकिन हर अन्धकार के बाद प्रकाश और हर मरुस्थल के बाद हरियाली होती है और अन्त क्यों, हर अन्धकार के भीतर भी प्रकाश चमकता है, हर मरुस्थल के बीच में भी शाद्वल हरित भूमि होती है । कल जब मैं खिन्न मन एकाकी भटक रहा था, तो घूमते-घूमते एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया जिसे पाप और पुण्य दोनों का प्रतीक माना जाता है । उसके बाहर एक बड़े बोर्ड पर लिखा हुआ था....ठहरिये । यह वह स्थान है जहाँ आपके दुख दर्द का इलाज हो सकता है । जहाँ आप सहायता और सहानुभूति पा सकते हैं....।

मैं ठिठक गया । कैसी अद्भुत बात है ! क्या इस देश में सहायता और सहानुभूति सरे बाज़ार विकने लगी है । लेकिन मैं कुछ सोचूँ कि मेरी दृष्टि अन्दर के अहाते पर जा पड़ी । एक छोटी सी भीड़ वहाँ इकट्ठी हो गई थी और वहीं क्यों, बाहर जहाँ मैं खड़ा

था वहाँ भी उत्सुकता और उत्तेजना का वातावरण बना हुआ था। आने–जाने वाले वहाँ ठिठक जाते थे और फिर मुँह आगे बढ़ा कर अचरज के स्वर में बातें करने लगते थे। अचानक मैंने सुना मेरे पीछे वाले लम्बे व्यक्ति ने धीमे, पर दृढ स्वर में कहा....जी हां। वह हत्यारा है।

सच! किसको मार डाला इसने?

अपने बच्चों को।

क्या!....गांधी टोपी वाले व्यक्ति आस्मान से गिरे....क्या कहते हो?

मैं ठीक कहता हूँ। इसने अपने दो बेटों और एक बेटी को आज ही ज़हर देकर मार डाला है।

जैसे वे सन्नाटे में आ गये। दो क्षण तक कोई कुछ नहीं बोला; पर तभी धक्का देते हुए पीछे से कुछ और व्यक्ति आगे बढ़ आये। वे आगे के मनुष्यों के कंधों पर से उचक कर भीतर झांकने की कोशिश कर रहे थे और साथ ही साथ उत्तेजित स्वर में बोलते भी जाते थे।....

देखें तो कैसा है वह बाप जिसने अपने बेटी-बेटों को मार डाला।

वडा विचित्र हत्यारा है। कैसी शकल है उसकी!

अजी राक्षस है राक्षस।

घोर कलजुग आ गया है। न जाने क्या होने वाला है।

एक मोटे और नाटे भाई मुस्कराये, फिर मुँह बनाकर बोले....होने को क्या शेष रहा है। अपने हाथों को तो देखो, वे किस किस के खून से रंगे हुए हैं।

यह मानो तर्क नहीं कुतर्क था। तोतों में कोई हँस आ मिला था। तोते भड़क उठे। एक चेचक के दाग वाले मनुष्य ने तीव्रता से कहा....वह और बात थी!

और क्या थी? क्या वह हत्या नहीं थी?

वह हत्या थी लेकिन शैतानियत की, दुश्मन की। अपने लख्ते ज़िगर की नहीं।

नाटे भाई भी कम तेज नहीं थे, बोले.... वह शैतानियत की हत्या नहीं थी। वह स्वयं शैतानियत थी। वह आत्महत्या थी।

उत्तेजना बढ़ने लगी और भीड़ भी। सभी उस तथा–कथित हत्यारे को देखने आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे थे। मुझे उस उत्तेजना में कुछ अद्भुत नयापन मालूम दे रहा था और सच बात तो यह है मैं कुछ देर तक तो कुछ समझ नहीं सका था। धीरे धीरे जब हत्या और हत्यारे की बात मेरे मस्तिष्क में स्पष्ट हुई तो मुझे लगा....मुझे आगे बढ़ कर उसे देखना चाहिये।

बस मैं आगे बढ़ा। मुझे रास्ता बनाने के लिये तनिक भी परिश्रम नहीं करना पड़ा। जैसे काई फटती है उसी तरह वह छोटी सी भीड़ मार्ग से हटती चली गई। विदेशी से सभी भय खाते हैं। मैं जब अहाते के परले कोने पर पहुँचा तो सब लोगों की दृष्टि के साथ साथ मेरी दृष्टि सामने की छड़ों के उस पार जा कर अटक गई। देखा....सामने थाने का वह कमरा है, जिसमें नये अपराधी रखे जाते हैं। इस समय उसमें एक स्टूल पर एक युवक बैठा है। उसकी वेश भूषा बताती है कि वह निचली मध्यम श्रेणी का युवक है.... इकहरा बदन, गौर वर्ण, उन्नत ललाट, बड़े

बड़े नेत्र, किंचित मोटी नाक, दृढ़ ठोड़ी और सूखा मुख। उसके नेत्रों में न भय है, न पश्चात्ताप, न करुणा है न क्रूरता....

मैं कांप उठा....यह हत्यारा! हत्यारा यह!! नहीं, नहीं, मैं व्यर्थ ही इसे हत्यारा समझ बैठा। वह अवश्य कोई और है।

यह सब पलक मारते ही हो गया। दूसरे ही क्षण मैंने सुना कुछ लोग बातें कर रहे थे—वह....वह जो स्टूल पर बैठा है.... ।

वह हाँ, वह.... ।

वही है।

वह हत्यारा है।

जी हाँ।

मुझे फिर भी विश्वास नहीं आया लेकिन अविश्वास का भी कोई कारण नहीं था। तो इस सौम्य युवक ने हत्या की है और वह भी अपनी सन्तान की।....अपनी सन्तान की। क्या यह पागल है? नहीं, यह तो किसी भी समझदार से अधिक समझदार लगता है....लेकिन पागल के सिर पर क्या सींग होते हैं?....सिर पर नहीं होते पर आँखों में अवश्य होते हैं। आँखें दिलका दर्पण होती हैं, पर इसकी आँखों में तो अद्भुत दृढ़ता है और दृढ़ता भी वह जो भयानक नहीं है बल्कि देखने वाले को विश्वास से भरती है। तो... मैं और आगे बढ़ा....कोई अन्तर नहीं.... और आगे बढ़ा। एक अधेड़ सज्जन "यही राक्षस है" कहते हुए तेजी से पीछे लौट गये। वे लौटे तो कुछ और लोग धक्कमधक्का करते हुए आगे बढ आये। अब वह युवक शान्त भाव से दृष्टि उठा कर हमारी ओर ताकने लगा। सहसा मेरी दृष्टि से उसकी दृष्टि मिली। मैं सिहर उठा....क्षण भर में लगा जैसे कातरता का समुद्र लहरा रहा है। दूसरे ही क्षण चट्टान की सी निश्चलता ने उसे छिन भिन्न कर दिया। आंखों के आगे तिरमिरारे से उठे। कुछ समझ में नहीं आया। पास में एक सिपाही खड़ा हुआ बन्दूक की जाँच कर रहा था। उससे पूछा....क्या यही है?

जी हाँ....सिपाही ने कारतूस को निकाल कर फिर डालते हुए कहा....यही है।

इसने अपने बेटी-बेटों की हत्या की है।

जी हाँ।

यह स्वीकार करता है।

यह अपने आप थाने में कहने आया था।

मस्तिष्क में कुछ विकार है!

माळूम तो नहीं होता। तब तो कुछ उत्तेजित भी था पर अब तो बिल्कुल शान्त है।

सिपाही कुछ समझदार जान पड़ा। हिम्मत करके पूछा .... दो बातें कर सकता हूँ?

किससे?

इसी युवक से।

सिपाही कुछ जवाब दे कि इसी समय अन्दर से एक अफसर तेजी से निकला और बाहिर की ओर चला। उसे रास्ता बनाने के लिये भीड़ से धक्कमधक्का करना पड़ा। वह क्रुद्ध हो उठा और झल्लाता हुआ बोला.... सबको बाहिर निकाल दो।

उसके वाक्य पूरा करने से पहिले ही भीड़ छटने लगी। कुछ लोग तो आप ही एक दूसरे

को कुचलते हुए चले गये। कुछ को सिपाहियों ने निहायत अदब के साथ रास्ता दिखा दिया। लेकिन कुछ थे कि फिर भी कन्धे उचका कर ताकते झाँकते रहे। इसी बीच सिपाही ने मुझसे कहा....इसने अपनी कहानी लिख कर दी है। आप अन्दर जाकर पढ़ सकते हैं।

बस मैं वहाँ से हट कर इन्स्पेक्टर के पास पहुँचा। मैंने उन्हें अपना पूरा परिचय दिया और वह कहानी पढ़ने की आज्ञा चाही। इन्स्पेक्टर ने कागज मुझे देते हुए कहा.... पढ़िये। बड़ा अजीबोगरीब मामला है।

मैं बोला....यह दुनियाँ ही बड़ी अजीब है।

वे हंस पड़े और मैं कहानी पढ़ने लगा। अक्षर यद्यपि बहुत सुन्दर नहीं थे परन्तु अद्भुत रूप से स्पष्ट थे। वे बताते थे.... युवक एक बुद्धिशील और दृढ निश्चयी व्यक्ति है। उसकी कहानी बहुत लम्बी थी। पर मुझे जो कुछ याद रह गया है वही बताने का प्रयत्न करूँगा। उसने ऐसे शुरू किया था—

मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ वह क्षणिक आवेश का काम नहीं है। बहुत लम्बे अरसे से मैं उस पर सोचता रहा हूँ। मैं उसकी पूरी ज़िम्मेवारी अपने ऊपर लेता हूँ। विश्वास मानिये मैं जान बूझ कर अपनी बेटी और दोनों बेटों की हत्या करने जा रहा हूँ। प्रश्न उठ सकता है कि आख़िर मैं ऐसा क्यों कर रहा हूँ। क्योंकि मैं नहीं चाहता वे जैसे हैं वैसी अवस्था में जीवें। मैं नहीं चाहता उनके कारण मेरा राष्ट्र दुर्बल कहलावे। वे जीवन भर दुखी रहें और मरघिल्ले पिल्लों की तरह मौत के आने तक चीं-चीं करते रहें। वे मुझे और मेरी पत्नी को जन्म भर गालियाँ देते रहें जैसे कि मैं अपने माँ-बाप को देता रहता हूँ। मैं यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता।

आप शायद समझ गये होंगे मेरे बच्चे कैसे हैं? कभी आपने डाक्टरों के इश्तिहार देखे हों तो दवा के प्रयोग से पहिले उनके बीमारों की जो अवस्था दिखाई जाती है उससे भी खराब अवस्था मेरे बच्चों की है। उनमें न रक्त है, न मांस। वे मात्र हड्डी और खाल का मजमुआ हैं। में उन्हें देखता हूँ और रोता हूँ। मैं अपने को कोसता हूँ और अपने माँ–बाप को गाली देता हूँ। मैं भगवान से रह रह कर पूछता हूँ.... अजी ओ सिरजनहार। तुम कहीं सुनते हो तो मुझे इतना बता दो, आख़िर इन बच्चों का क्या अपराध है....। मैं सच कहता हूँ मैंने लगातार कई कई रातें आँखों में काटी हैं। अपने बड़े बच्चे को छाती से चिपका कर बहुत बार रात्रि के शान्त क्षणों में फूट फूट कर रोया हूँ। मैंने उसके उभरी नसों वाले सींक से हाथों को बार बार सहला कर अपने आप से पुछा है....क्या ये मनुष्य के हाथ हैं? क्या इनसे वह अपना, अपने राष्ट्र का, मानवता का भार उठा सकेगा। क्या वह सदा पैरासाइट, दूसरे का आश्रय लेने वाला नहीं बना रहेगा? क्या इसकी ज़िन्दगी नावदान के बिलबिलाते हुए कीड़े से बेहतर होगी?

मैं सच कहता हूँ ये विचार मुझे तिलमिला देते हैं। मैं पागल हो उठता हूँ। मैंने अपनी पत्नी से इन बातों की चर्चा

की है। वह मेरी बातों को समझती है पर फिर भी माँ है, ममता में जकड़ी हुई माँ। एक दिन बोली....जो कुछ करता है भगवान करता है। जो कुछ हो रहा है ठीक हो रहा है। भगवान अवश्य कुछ अच्छा चाहते हैं !

मैंने जबाब दिया....निस्सन्देह वे अच्छा चाहते हैं। और वह अच्छा यह है कि हम उसके संसार को शक्तिशाली बनाने के लिये इन कीड़ों को नष्ट कर दें।

जैसे बिजली गिरी हो। हतभागिनी सी वह मेरे बच्चों की माँ मेरा मुँह देखने लगी। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। कई क्षण बाद बोली....तुमने क्या कहा था ?

मैं तब बहुत उत्तेजित हो उठा था। मैंने कुछ जवाब नहीं दिया पर इससे बात का अन्त नहीं हुआ। दम-घुटन और भी बढ़ गई। बच्चे इन बातों को नहीं समझते हैं सो बात नहीं। मेरा उन्हें अजीब तरह से देखना। बार बार उनसे कहा....तुम बीमार क्यों रहते हो ? तुम मोटे क्यों नहीं होते ? उनकी माँ का उन्हें क्रोध में भर कर पीटना हर घड़ी उसकी मौत की कामना करना.... इन सब बातों का अर्थ वे अच्छी तरह जानते हैं। एक दिन जब मैं चुपचाप बैठा हुआ कुछ सोच रहा था तो मेरा बड़ा लड़का, जो कठिनता से पांच वर्ष का होगा, मेरे पास आया और बोला....पिताजी....।

मैं चौंक पड़ा। तीखे स्वर में कहा.... क्या बात है ?

उसने सरल भाव से पूछा....पिताजी ! मोटा कैसे होते हैं ?

सच् कहता हूँ यह सुनते ही मेरा हृदय टुकड़े टुकड़े हो गया था। मैं कई क्षण ठगा सा देखता रहा फिर उसे उठा कर गले लगा लिया। बोला नहीं गया। बहुत देर तक फफक फफक कर रोता रहा....ओ भगवान। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता। कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता।

ऐसे अवसर आने पर कई बार मैंने आत्महत्या करने का विचार किया; पर इससे तो बच्चों की और भी दुर्गति हो जायेगी तो........तो क्या करूँ ? न मैं उनके लिये धन और दूसरी सुविधाओं का प्रवन्ध कर सकता हूँ जो उन्हें स्वस्थ राष्ट्र का स्वस्थ नागरिक बना सके। न में स्वयं मर कर उनकी रक्षा कर सकता हूँ। साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि मैं किसी भी तरह अपने राष्ट्र, देश और मानवता के पतन का कारण बनूँ....

आख़िर मैंने यह निश्चय किया कि मुझे, मेरी पत्नी तथा तीनों बच्चों को अपने आप समाप्त हो जाना चाहिये। हमारे रहने से संसार की सरासर हानि है। न रहने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। मैंने यही बातें समझ कर अपनी पत्नी को भी मना लिया। वह आसानी से नहीं मानी। यद्यपि वह बहुत दुखी है तो भी उसने मुझे बार बार मना किया, रोई पर और कोई रास्ता नहीं था। उसे मेरी बातें माननी पड़ी। हमने यह तय किया कि पहले तीनों बच्चों को ज़हर देंगे। जब वे समाप्त हो जायेंगे तो हम दोनों भी ज़हर खा लेंगे।....

पुनश्च करके फिर लिखा था....अन्तिम क्षण में मुझे एक बात सूझी कि में जिन्दा रहूँगा और कानून का खेल खेल कर फाँसी

पर चढ़ूँगा ताकि दुनियाँ को अपनी दर्दभरी कहानी समझा सकूँ।

अन्तिम दो लाईनें, जो आज ही घसीटी गई जान पड़ती थीं, बड़ी जल्दी में लिखी गई थीं....मैंने अपने बच्चों को मार डाला पर मेरी पत्नी कायर निकली। वह ठीक समय पर भाग गई। मैं उसे दोष नहीं देता। वह मां है।

कहानी यहाँ आकर समाप्त हो गई थी। मुझे उस समय कैसा लग रहा था यह मैं स्वयं नहीं जानता। मुझे इतना ज्ञात है कि मैं तब सीधा युवक के पास पहुँचा। भीड़ अब भी लगी हुई थी और लोग उचकते तथा एक दूसरे को धक्का देते हुए उसे देख देख कर तरह तरह की टिप्पणियाँ कर रहे थे। मानो वह चिड़ियाघर का कोई अद्भुत जन्तु हो। वह छड़ों को पकड़े शान्त भाव से खड़ा था। मुझे देख कर वह कुछ सावधान सा हुआ। मैंने यंत्रवत हाथ जोड़ कर उससे कहा.... तुम महान हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ.... पर, पर यदि तुम अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये संसार से संघर्ष करते तो मैं तुम्हें प्यार भी करता। देखो तो यह कैसे अच्छा लग सकता है कि कोई बाप अपने बच्चों को मार डाले। यह बुरी बात है तुम ....

मैं आगे कुछ कहूँ कि उसकी आंखें मेरी आंखों से मिलीं। क्या कहूँ .... उन आँखों में कितनी करुणा थी, कितनी आग थी। मुझे लगा जैसे मैं आपाद-मस्तक जल उठा हूँ। मेरे प्राण झुलस रहे हैं। बस मैं वहाँ एक क्षण भी नहीं रुक सका। एक क्षण भी नहीं। तेजी से भीड़ को धक्के देता हुआ सड़क पर आ गया। तब मैं बुरी तरह हांफ रहा था और पसीना....

लेकिन यह क्या? यह किसने झँझोड़ा? किसने पुकारा....अजी उठो भी। अन्तु का बुखार तेज हो रहा है। किसी भी तरह किसी डाक्टर को एक बार बुला लाओ न। जाओ जी। देखो तो कैसे मछली की तरह तड़प रहा है....

ऐं....कौन? तुम....? मैंने आँखें मलीं, देखा आँखों में आंसू भरे सामने पत्नी खड़ी है और पास में बच्चा तीव्र ज्वर में तड़प रहा है।....ओह, तो मैं स्वप्न देख रहा था ....स्वप्न....

क्षण भर के लिये उसकी भयंकरता ने मुझे जड़ सा बना दिया। साथ ही मुझे खुशी हुई मैंने अपने बच्चे की हत्या नहीं की.... नहीं की। नहीं, नहीं, यह ग़लत है। बेशक मैंने उन्हें ज़हर नहीं दिया पर मैं उनकी निरन्तर हत्या कर रहा हूँ। वे रोग और दुर्बलता के चक्रव्यूह में फँस कर तिलतिल कर दम तोड़ रहे हैं। और मैं हूँ कि उन्हें बचाने में असमर्थ स्वप्न देख रहा हूँ। यह मोह नहीं है तो क्या है। कायरता और किसे कहते हैं....नहीं, नहीं मैं अब स्वप्न नहीं देखूंगा मैं संघर्ष करूँगा। मैं संघर्ष करूँगा। मैं जीवन के अन्तिम क्षण तक जीता रहूँगा।

एक रेखाचित्र :

श्रीराम शर्मा

[श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी]

'आइये, आपका परिचय अपने एक भाई और हिन्दी के सुलेखक से करा दूँ। इन्हें आप जानते हैं ?

प्रताप–सम्पादक स्वर्गीय गणेश शंकरजी विद्यार्थी ने एक टोपधारी और वन्दूक लिये हुए सज्जन की ओर इशारा करते हुए पूछा। उस वक्त उनकी बातचीत मगर के शिकार के बारे में चल रही थी। मैंने कहा 'मेरा परिचय इनसे नहीं है' गणेशजी ने उनका नाम बतलाया श्रीराम शर्मा। मैंने शिष्टाचार-वश सिर्फ इतना ही कहा 'आप के दर्शन कर बड़ी प्रसन्नता हुई' और अपने काम में लग गया! मैंने समझा कि ये यूरोपियन प्रवृत्ति के कोई हिन्दुस्तानी साहब हैं और इनकी तथा हमारी मनोवृत्ति में एक ऐसी खाई होगी जिसे लाँघकर गम्भीर परिचय प्राप्त करना सम्भव नहीं और यदि सम्भव हो भी तो उससे लाभ क्या! 'शिकार खेलना तो रहा दूर मैंने तब तक बन्दूक का स्पर्श भी नहीं किया था! तब मैं प्रत्येक शिकारी को हृदय हीन ही समझता था!

मेरे उपेक्षा भाव को स्वाभिमानी श्रीराम जी ताड़ गये और एक हल्की सी मुस्कराहट उनके चहरे पर दीख पड़ी, जो शायद व्यंगात्मक थी। यह लगभग तीस वर्ष पहिले की बात है। श्रीरामजी उन दिनों भी बहुत अच्छा लिख लेते थे पर उन्हें भिन्न भिन्न नामों से लिखना पड़ता था और वे प्रताप-परिवार के तो ख़ास आदमी थे। श्रीरामजी के स्वाभिमान को शायद कुछ धक्का लगा और मेरी उस उपेक्षा का दुष्परिणाम यह हुआ कि तीन वर्ष तक बहुत निकट—सात आठ मील के फासिले पर—रहते हुए भी हम लोग नहीं मिल सके और जब मैं पं. झावरमल्लजी के साथ उनके ग्राम पर गया भी तब भी उन्होंने कोई विशेष बातचीत नहीं की।

कद मझोला, शरीर सुगठित, चेहरे पर मर्दानगी, आंखों में लालिमा, बातचीत में जनपदीय शब्दों का प्रयोग, चाल में दृढ़ता और स्वभाव में अक्खड़पन श्रीरामजी के इस रूप में एक पौरुषमय अदा है, निराला आकर्षण है जो उनके व्यक्तित्व को विशेषता प्रदान करता है।

पर जो भी व्यक्ति श्रीरामजी को निकट से नहीं जानते वे उनके विषय में मेरी तरह भ्रमात्मक अनेक धारणाएँ बना लेते हैं! पिछले बीस वर्षों में मुझे श्रीराम जी के सम्पर्क में आने के पचासों ही अवसर मिले हैं और मैं विना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि वे अत्यन्त कोमल हृदय के व्यक्ति हैं और उन में कई ऐसे गुण पाये जाते हैं, जो अब दुर्लभ हो रहे हैं।

महाकवि अकबर ने कहा था:—

"मगर एक इल्तमास इन नौ-जवानों से मैं करता हूँ खुदा के वास्ते अपने बुजुर्गों का अदब सीखें" श्रीराम जी इस

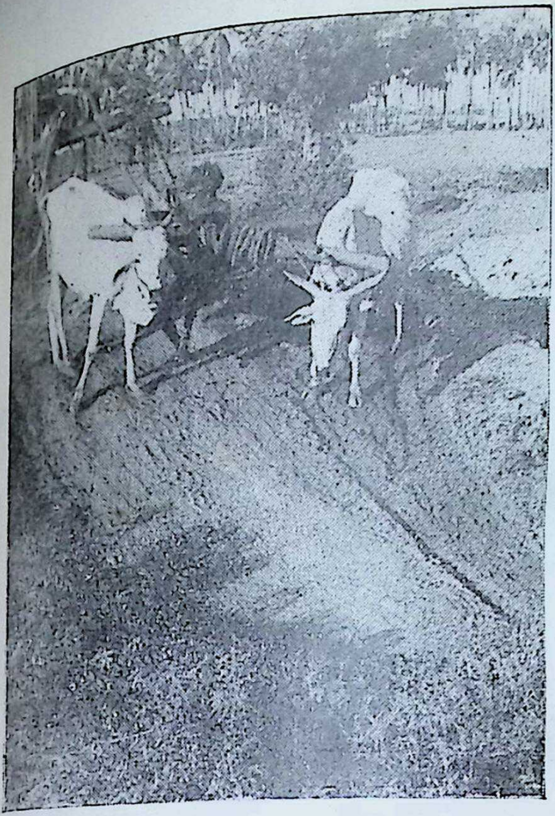

जीवनश्रम

श्रमपरिहार

अपनी मस्ती का ढोल

छोटी ग्वालिन

१९५०

गये गुज़रे जमानेमें भी "बुजुर्गों का अदब" करते हैं। हिंदी जगत् में उनकी अनन्य श्रद्धा के पात्र मुख्यतया तीन व्यक्ति रहे हैं।

आचार्य द्विवेदीजी, पद्मसिंहजी और गणेशजी और इस त्रिमूर्ति के प्रति उनकी श्रद्धाभावना इतनी प्रबल रही है कि उस त्रिमूर्ति का प्रभाव उनके चरित्र पर ही चित्रित हो गया है। गीता में भगवान ने ठीक ही कहा है "यो यच्छ्रद्धः स एव सः" अर्थात् जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही उसका स्वरूप बन जाता है। वे द्विवेदीजी की तरह "देहाती" होने में अपना गौरव मानते हैं [दर असल "देहाती" शब्द द्विवेदीजी तथा शर्माजी के संसर्ग से अपना दोष खो बैठा है।] पद्मसिंहजी की तरह सहृदय हैं और यदि गणेश जी की तरह उन्हें 'शहादत' नहीं मिली तो इसमें उनका कोई अपराध नहीं; गत १९४२ के आन्दोलन में यह गौरव उन्हें कभी भी मिल सकता था!

इनके सिवाय एक दूसरी त्रिमूर्ति भी थी जिसके प्रति शर्माजी अत्यन्त श्रद्धालु थे—महात्मा जी, रामानन्द बाबू और दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़, और श्रीरामजी की यह श्रद्धा खोखली नहीं, बिल्कुल ठोस है।

दीनबन्धु की अन्तिम बीमारी के दिनों में वे कलकत्ते से प्रति सप्ताह कई कई दिन के लिये उनकी सेवा करने शान्ति-निकेतन जाते थे और उनके अन्तिम दिनों में बराबर उनकी सेवा में उपस्थित होते रहे। और बड़े बाबू (श्री. रामानन्द चट्टोपाध्याय) को तो श्रीराम जी पितृतुल्य ही मानते रहे हैं। कई वर्ष से 'विशाल भारत' का सम्पादन वे सर्वथा निस्वार्थ भाव से करते रहे हैं। "बड़े बाबू ने जिस पत्र के कारण पचीस हज़ार का घाटा सहा, उसके लिये हम लोगों का कुछ कर्तव्य तो है ही" बस पूज्य कर्तव्य भावना ने शर्माजी के सहस्रों घंटे व्यय करा दिये हैं; और सो भी ऐसी परिस्थिति में जब कि उन्हें अपने समय का प्रत्येक क्षण जीविका अर्जित करने के लिये लगाना चाहिये था। और महात्मा जी के प्रति भी श्रीरामजी की जो श्रद्धा है वह शुद्ध तथा चरम कोटि की है। बापू द्वारा निर्धारित कार्यक्रम के वे कायल हैं और अपने समय का अधिकांश उसी की पूर्ति में लगाते रहते हैं।

श्रीरामजी जन्मतः ब्राह्मण होने पर भी स्वभावतः क्षत्रिय हैं और वृत्ति के अनुसार किसान। लेखनकार्य उनके लिये गौण है और कभी भी उसे उन्होंने प्रथम स्थान नहीं दिया और आजकल तो मसिजीवियों की उथली अनादर्शवादिता तथा छिछली व्यावसायिकता से वे काफी उद्विग्न हो उठे हैं। जहाँ तक पत्रकार कला और साहित्य का प्रश्न है श्रीराम जी भूतकाल में रहते हैं और शायद ही किसी 'प्रगतिशील' लेखक को वे अपनी ओर आकर्षित कर सकें। प्रेम विषयक कविताओं से उन्हें चिढ़ हो गई है (प्रेम पयोनिधि में धँसना तो रहा दूर, वे उसके किनारे भी नहीं गये!) और कई बार उन्होंने प्रेमी कवियों से बहुत ही बेजा सवाल किये हैं:—

"आप की शादी होगई है या नहीं ? यदि नहीं तो पहले शादी कीजिये, कविता उसके बाद" कोई भी स्वाभिमानी लेखक इस प्रकार का ऊलजलूल उपदेश सुनने के लिये तैयार नहीं हो सकता । 'सैक्स' के विषय में उनके विचार प्राचीनता लिये हुए हैं और प्रगतिशील महिलाओं से वे उल्टे झेपतें हैं ! 'क्रान्ति' शब्द के साथ खिलवाड़ करनेवालों अथवा अनैतिक उपायों का आश्रय लेनेवालों से उन्हें अत्यन्त घृणा है । श्रीरामजी का यह स्वभाव ही है कि जिनसे वे प्रेम करते हैं उनसे अत्यन्त प्रेम करते हैं और जिनसे घृणा उनसे घोर घृणा ! श्रीरामजी का सर्वोत्तम मनोहर रूप उनकी मैत्री में ही दीख पड़ता है । वे उन अल्प-संख्यक व्यक्तियों में हैं जो अपने मित्रों के लिये अधिक-से-अधिक आत्मत्याग कर सकते हैं । आत्मविज्ञापन से वे कोसों दूर हैं । उनकी परदुख-कातरता और क्रियात्मक सहानुभूति के सैकड़ों ही दृष्टान्त दिये जा सकते हैं । हाँ, डूनकी हाँकनेवाले दम्भियों से उन्हें बड़ी चिढ़ है । कलकत्ते में एक बार वे हमारे यहाँ ठहरे । उन दिनों राय के अनुयायी — रायिस्ट-युवकों की मीटिङ्ग अक्सर हमारे घर पर ही होतीं थीं । श्रीरामजी ने एकाध बार उनके वादविवादों को सुना और फिर कहा "क्या फालतू छोकरे आपके यहाँ इकट्ठे होते हैं । इनमें से एक भी 'क्रांन्ति' का अर्थ नहीं समझता और ये घंटों 'क्रान्ति' 'क्रान्ति' बका करते हैं ।" अपने सम्मान्य अतिथियों के विषय में इस प्रकार की कटु आलोचना सुनने के लिये हम बिल्कुल तैयार न थे । हमने शर्माजी से बहस भी की । तब उन्होंने कहा "चौबेजी ! कभी हम किसी असली क्रान्तिकारी से आपका परिचय करावेंगे" और उन्होंने अपने वचन का पालन भी किया । 'आसामी बाब' नामक क्रान्तिकारी को हमारे यहाँ भेज दिया जो समस्त उत्तर भारत के क्रान्तिकारियों के नेता थे !

शर्माजी सस्ती भावुकता के बहुत विरोधी हैं । कोई भी किसान जिसे अन्न के दानों के लिये पृथिवी तथा प्रकृति से निरन्तर संघर्ष करना पड़ा हो और उनसे भी भयंकर सरकारी मुलाजिमों और जमींदारों से, अपने हृदय में निरर्थक कोमलता को आश्रय नहीं दे सकता । उन्होंने अपने यहाँ टमाटर, पपीता, मटर इत्यादि की खेती की थी । चकोतरा इत्यादि फल भी लगाये थे । दुर्भाग्य-वश वहाँ कुछ बन्दर पहुच गये । श्रीरामजी ने उन्हें अपनी बन्दूक का निशाना बनाकर परम धाम भेज दिया । पन्द्रह वर्ष पहले एकबार उनके साथ उनके ग्राम में टहल रहा था । पीपल के एक ऊँचे पेड़ को बतलाते हुए आप बोले 'कुछ दिन पहले यहाँ एक 'ज्ञानगुनसागर' आ गये थे और वे इस पीपल के सबसे ऊँचे भाग पर जा बिराजे । मैं उन दिनों टाइफाइड से बहुत कमजोर हो गया था, फिर भी धीरे धीरे यहाँ आया, निशान लिया और वे महाशय टपक पड़े ! खेत में उन्हें गाड़ दिया । बहुत अच्छी खाद बन गई' ।

मेरे मुँह से निकल गया "बड़े हिंसक हैं आप ! श्रीरामजी बोले 'किसानों के लिये इस प्रकार की हिंसा क्षम्य ही नहीं, अनिवार्य भी है । या तो फिर हमीं लोग पपीते

और टमाटर खालें या फिर बन्दर ! कौन खावे ! आप ही फैसला कीजिये' मैं इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सका । सन् १९४७ में जब 'हरिजन' में महात्माजी ने भी 'बन्दरों के मारे जाने का' समर्थन किया तब मुझे शर्माजी का बारह वर्ष पहले का सवाल याद आ गया । अभी कुछ दिन पहले आपसे एक महानुभाव ने कहा हमारे आम तो सब के सब बन्दर खा जाते हैं ! क्या किया जाय !' श्रीरामजी ने कहा 'आमों की रक्षा हो सकती है । उपाय हम कर देंगे । पचास फीसदी आम हमारे ! ' वे महाशय राजी हो गये । श्रीरामजी ने जो उपाय किया उसे बतलाने की जरूरत नहीं ! मालूम नहीं कि उन महाशय ने अपनी ओर से शर्त का पालन किया या नहीं ! जब श्रीरामजी अपने ग्राम जाते हैं तो कितने ही किसान कृषि विनाशक जन्तुओं की अन्त्येष्टि करने के लिये उनसे आग्रह करते हैं । अभी उस दिन उन्होंने कहा 'ज्यादा वक्त तो हमारे पास था नहीं, फिर भी तीन नीलगाय धुनक दीं । नीलगाय (जो वस्तुतः गाय नहीं होती) खेती का बेहद नुकसान करती हैं और स्वर्गीय महावीर प्रसादजी द्विवेदी भी उनके विनाश के घोर पक्षपाती थे । द्विवेदीजी श्रीरामजी की व्यवहारिक किसान बुद्धि से बहुत प्रसन्न हुए थे । अभी कुछ दिन पूर्व रेल से चोरी करने वाले कुछ भ्रष्टाचारियों की खासी मरम्मत आप के ग्राम के निकट होगई थी ! इससे प्रतीत होता है कि श्रीरामजी के गाँववालों ने उनसे कुछ सीख लिया है ! कुछ वर्ष पहले एक महानुभाव ने हमें एक मनोरंजक घटना सुनाई । 'हमने अपने गाँव के लिये इक्का किया ही था कि इतने में दरोगा जी के सिपाही ने इक्केवाले को डाटते हुए कहा कहाँ जाता है ! चल बे ! दरोगाजी ने बुलाया है । इक्केवाला होशियार था, प्रत्युत्पन्न मति था, तुरन्त बोला 'मुझे चलने में कोई ऐतराज नहीं, पर पंडितजी के गाँव किरथरे जा रहा हूँ ।' सिपाही झेंपकर बोला 'तो जा, रहने दें' इक्केवाला अपनी सूझ के कारण बेगार से बच गया ! इस प्रकार शर्माजी के दृढ़ व्यक्तित्व ने न जाने कितने गाँव वालों को सरकारी अनाचारों से बचाया है !

पशु, पक्षी, वन, पर्वत, खेत और खलिहान, चन्दा, चमार और गोविन्दा अहीर तथा पीताम्बर धोबी, इन सब के साथ श्रीरामजी की गहरी दोस्ती है और इन्हीं के द्वारा उनकी भाषा-शैली का निर्माण हुआ है । उन्होंने अपने जीवन से शिक्षा पाई है और वही वास्तविक शिक्षा है । और अनेक बार उन्होंने अपने खून से लिखा है, इसी कारण उनकी लेखनशैली में सजीवता है । स्वर्गीय पंडित पद्मसिंहजी शर्मा ने श्रीरामजी के लेखों पर मुग्ध होकर लिखा था:—

'श्रीराम शर्मा प्रसिद्ध और सिद्ध अचूक निशाना लगानेवाले शिकारी हैं, आपके लेखों का निशाना भी सीधा पाठकों के हृदयों पर जा कर बैठता है— पढ़ने वाला लोट पोट हो जाता है....आप लेखों में शिकार [वध्यपशु] और शिकारी की चित्तवृत्ति का ऐसा जीता जागता चित्र खींचते हैं कि देखकर सहृदय पाठक आश्चर्य चकित रह जाता है—लेखक का कलम चूमने को जी

चाहता है। आप की वर्णन शैली बड़ी सजीव, भाव विश्लेषण मनो-विज्ञान-सम्मत और भाषा विषय के अनुरूप बड़ी सुघड़ होती है।"

पर सबसे बढ़िया प्रमाणपत्र श्रीराम जी को, स्व० आचार्य द्विवेदीजी से मिला था। जब हम लोगों ने साथ साथ दौलतपुर की तीर्थयात्रा की थी। द्विवेदीजी ने एक दिन हम से कहा "चौबेजी, तुम भाषा लिखना श्रीरामजी से सीख लो" श्रीरामजी इस बात से बहुत सकुचा गये और फिर हमसे बोले "कहीं इस बात को छाप न देना।" हिन्दी के युग निर्माता द्विवेदीजी तथा अद्वितीय शैलीकार पद्मसिंह जी के इन कथनों के बाद श्रीराम जी की भाषाशैली के विषय में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि श्रीरामजी अपने को कोई बहुत अच्छा शिकारी नहीं मानते, बल्कि "शिकारी लेखक" नाम भी उनको अप्रिय है; क्योंकि उससे यह ध्वनि निकलती है कि उनकी वृत्ति ही शिकार खेलने की है जो सर्वथा असत्य है। कहते हैं कि जब लैनिन काम करते करते बहुत थक जाता था तो अपना स्वास्थ्य लाभ करने के लिये शिकार खेलने चला जाता था और वहाँसे चित्त की एकाग्रता तथा शारीरिक परिश्रम के कारण तन्दुरुस्त होकर लौटता था। कम्यूनिस्टों के घोर विरोधी होते हुए भी श्रीराम जी इस विषय में आचार्य लेनिन के अनुयायी हैं।

"भाग्य भँवर के थपेड़ों से व्याकुल, शरीर से क्लान्त और सम्बन्धियों तथा मित्रों से त्याज्य—एक प्रकार से उपेक्षित और भुलाया हुआ—मैं कष्टों के रसातल की ओर धीरे धीरे सरक रहा था।....पके आम की तरह भीतर ही भीतर घुला जाता था।....पर युद्ध करने की प्रवृत्ति अथवा भगवान की प्रेरणा से दृष्टि सर्वदा आशा प्रभात की ओर रही है, इसलिये डेढ़ वर्ष उपरान्त उस अन्धकार काल में एक आशा किरण दिखाई पड़ी और सबसे पहले मैंने शिकार खेलने का प्रोग्राम बनाया और वह भी सात आठ दिन के लिये।"

शिकार एक बहुत ही खर्चीला व्यसन है और श्रीरामजी जैसे साधारण स्थिति के व्यक्ति के लिये यह कभी भी सम्भव नहीं रहा कि वह उसे स्वीकार कर सके।

"गृहस्थी-भार-शृङ्खला से जकड़े और चिन्ता-चिता पर जलते व्यक्ति को किसी प्रकार वर्ष में दो चार दिन मन बहलाव और प्रकृति दर्शन के लिये मिल जायँ—और उन दिनों वह घर द्वार को भूल सके—तो उसे भाग्यशाली समझना चाहिये। मेरी गणना ऐसे ही भाग्यशाली व्यक्तियों में की जा सकती है" साधन सम्पन्न शिकारी व्यक्ति श्रीरामजी से और श्रीरामजी उनसे ईर्षा करते हैं! उनके पास ठीक निशाना लगाने वाली लेखशैली नहीं और इनके पास फालतू कारतूस तथा उच्च कोटि की बन्दूक नहीं!

जब हमारे अधिकांश लेखक नगरों की सकरी गलियों में ही चक्कर लगाया करते हैं, गल्पों तथा उपन्यासों में इधर सुकुमार बालिकाऐं अपने प्रेमी युवकों का स्मरण करती

१९५०

हुई सूखती जाती हैं तो उधर विरही प्रेमियों की हृत्तंत्री के तार टूटते हुए सुनाई पड़ते हैं, तब मानो श्रीरामजी उनसे कहते हैं—

"आप भी कहाँ भटक रहे हैं ! छोड़िये उन चिराभ्यस्त कूचों और गलियों को और मेरे साथ कुछ वन्य प्रकृति का भी अनुभव कीजिये—वहाँ स्वतंत्र आकाश के नीचे मुक्त पवन के साथ विचरण कीजिये।"

हम उन दिनों की याद कभी नहीं भूल सकते जब कि उनके एक-से-एक बढ़िया लेख हमें 'विशाल भारत' में छापने के लिये मिलते थे। उनके शिकार सप्ताह के वर्णन ने जमना की कछरों की जो सैर कराई वह भी हमारे लिये स्मरणीय रहेगी।

उनके लेखों में कहीं आप चन्दा चमार को लंगोटा पहने, नंगे शरीर और नंगे पैर जेठ की दुपहरी में कंकड़ खोदते हुए पावेंगे तो कहीं हकीम पीताम्बर को (जो जाति का धोबी था, बिल्कुल बेपढ़ा !) अपने इलाज से सैंकड़ों पशुओं की जान बचाते हुए देखेंगे। कभी वे आप को टिहरी मसूरी सड़क के जंगलों और झाड़ियों की सैर करावेंगे तो कभी उस भिलंगना नदी का दृश्य दिखलावेंगे जिसके तट पर स्वामी रामतीर्थ ने अपना शरीर त्याग किया था। उनकी शिकार के कितने ही वृत्तान्तों को पढ़कर रोमांच हो आता है। कहीं आप उनकी रान पर सुअर की काँपें पड़ती हुई देखेंगे, उन्हें कराहते हुए सुनेंगे और खून के परनाले बहते हुए दृष्टिगोचर होंगे तो कहीं वे बाघ से बाल बाल बचते हुए दीख पड़ेंगे। जब विशाल भारत में उनके लिखे रोमांचकारी वृत्तान्त छपे थे तो कई व्यक्तियों ने हम से पूछा था—"क्या श्रीरामजी सचमुच बाघ का शिकार करते हैं, या यों ही किस्से गढ़ देते हैं ?" इस प्रश्न को सुनकर हमें खेद हुआ था। बात वास्तव में यह थी कि उन दिनों शिकार-साहित्य की हमारे यहाँ बहुत ही कमी थी और वह कमी अब भी ज्यों-की-त्यों विद्यमान है, यद्यपि एकाध लेख इस विषय पर कभी कभी निकल जाता है। स्वयं अपनी तथा देश की परिस्थितियों ने श्रीरामजी को इधर कई वर्षों से शहर में रहने के लिये मजबूर कर दिया था और इसे हम दुर्भाग्य ही मानते हैं कि देश के स्वाधीन होने पर भी श्रीरामजी के जीवन संघर्ष में किसी भी प्रकार की कमी नहीं हुई। वे मर्द आदमी हैं और अपने कष्टों का किसी से जिक्र भी नहीं करते। ग्राम्य जीवन से आप अपनी शारीरिक शक्ति तथा आत्मिक दृढ़ता से ही घोर से घोर गार्हस्थिक दुर्घटनाओं में अविचलित रहे हैं। सन् १९४२ के आन्दोलन में आप, आप के बड़े भाई, पुत्र और पुत्री सभी जेल में ठेल दिये गये और तत्पश्चात् दो बच्चों की मृत्यु ही हो गई—एक तीन वर्ष का था और दूसरा दस वर्ष का। आज ऐसे ऐसे व्यक्ति हमारे शासक बन गये हैं जिनका त्याग श्रीरामजी के बलिदान का सहस्रांश भी नहीं है और जिनमें श्रीरामजी की योग्यता का शतांश भी नहीं, पर श्रीरामजी ने अपने बारे में कभी चिन्ता नहीं की। त्याग की हुंडी भुनाने वालों में वे नहीं हैं।

एक बात हमें ईमानदारी के साथ कहनी पड़ेगी कि कई वर्ष से श्रीरामजी की

साहित्यिकता में निरन्तर कमी होती जा रही है और इसे हम हिन्दी साहित्य क्षेत्र का दुर्भाग्य ही मानते हैं। ग़नीमत यही है कि उनकी साहित्यिक कला के क्षीण होने के साथ ही साथ उनकी जीवन कला का उत्तरोतर विकास होता जाता है।

श्रीरामजी के पैर प्रारम्भ से ही ठोस ज़मीन पर रहे हैं और अब वे अपने को सुदृढ़ चट्टान पर खड़ा हुआ पाते हैं। 'अधिक अन्न उपजाओ' और 'वृक्षारोपण' इत्यादि का कार्यक्रम उन्होंने शायद बीस वर्ष पहले ही प्रारम्भ कर दिया था और यदि उनको साधन और सुविधाएँ मिलें तो वे किसी भी बड़े-से-बड़े प्रान्त को और भी धनधान्य समृद्ध बनाने की सामर्थ्य रखते हैं। श्रीरामजी का शासन में विश्वास है; पर उत्तर प्रदेश के शासकों का आप में विश्वास नहीं। आजकल आप आगरा विकास-समिति के प्रधान हैं और उसी में तन्मय! उनसे आप बात करें तो वे कभी हिसार की गायों की चर्चा करेंगे तो कभी आलुओं की फसल की। कभी खाद का ज़िक्र आवेगा तो कभी साग तरकारी का। जानवरों को अच्छा चारा कैसे मिले, गोवंश की उन्नति कैसे हो, आगरा रेगिस्तान बनने से कैसे रोका जाय, पशु-प्रदर्शिनी का प्रबन्ध कहाँ किया जाय, पौधों की नर्सरी कहाँ कहाँ लगाई जायँ, बस अब यही प्रश्न उनके दिमाग़ में चक्कर काटा करते हैं। हम उनसे पत्रकारों की दुर्दशा का वृत्तान्त कह रहे थे; पर वे हमें बतला रहे थे कि इतने इतने बड़े इतने हजार मन आलू हमारे जिले में हुए। श्रमजीवी पत्रकार भले ही सूख कर छोहारा बन जायँ, इसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं—वे श्रमजीवी पत्रकार संगठन के भी कायल नहीं—उन्हें चिन्ता इस बात की है कि हिसार से जो साठ गायें वे लाने वाले हैं उन्हें यथोचित ढङ्ग से कैसे वितरित किया जाय।

अभी उस दिन हम लोग साथ-साथ टहल रहे थे। मेरे मुँह से एक वाक्य निकल गया "आजकल साहित्य के लिये सर्वथा समर्पित (डेडिकेटेड) आत्माएँ नहीं दीख पड़तीं" श्रीरामजी ने गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा [मानों वे मेरे पक्ष के खोखलेपन को भाँप रहे हों।] और बोले "चौबेजी, मध्यकालीन युग के तुलसी और कबीर को छोड़कर आप क्या एक भी साहित्यसेवी का दृष्टान्त ऐसा दे सकते हैं जिसने भूखे रहकर अमर साहित्य की रचना की हो?"

श्रीरामजी जिस उच्च कोटि की तराजू पर साहित्यिकों को तोलना चाहते हैं उस पर तो अधिकांश हलके ही साबित होंगे। श्रीरामजी की साहित्यिकता के ह्रास का एक कारण यह भी है कि अपने से योग्यतर साहित्यिकों या पत्रकारों का सम्पर्क उनके लिये अप्राप्य है, जिनसे उन्हें कुछ प्रोत्साहन मिल सकता, और जो उनसे निचले दर्जे के हैं, उन्हें वे अपने बहुगंधी मन के कारण प्रोत्साहित नहीं कर सकते! कठिनाई यही है कि रामानन्द बाबू और सी. वाइ. चिन्तामणि का अवतार इस देश में बहुत वर्षों बाद होगा और बेल्सफोर्ड जैसे पत्रकार के उत्पन्न होने में भी अभी देर है!

१९५०

हर्ष की बात है कि श्रीरामजी शहर को छोड़कर, ग्रामजीवन को फिर अपनाने का निश्चय कर चुके हैं और फिरोज़ाबाद से (जिसे वे चूड़ीनगर कहते हैं) छ:मील दूर अपनी कुटी का निर्माण कर रहे हैं। यह समाचार आस-पास के भेड़ियों के लिये निकटस्थ जंगली भेड़ियों के लिये और फिरोज़ाबाद के शहरी भ्रष्टाचारी भेडियों के लिये भी अत्यन्त अशुभ है! श्रीरामजी का सारा क्रोध अब नष्टप्राय ज़मींदारी प्रथा से उतर कर औद्योगिकता पर आ गया है और यदि उनको कहीं अहिंसात्मक तोपें मिल जायँ तो वे हमारे नगर फिरोजाबाद को धराशायी किये बिना न मानें!

हमें दृढ विश्वास है कि ग्राम्य जीवन से श्रीरामजी का खोया हुआ साहित्यिक यौवन पुन: लौट आवेगा और राजनैतिक रेगिस्तान से निकल कर वे साहित्योपवन का निर्माण करेंगे। सार्वजनिक रूप से हम श्रीरामजी को यह बतला देना चाहते हैं कि हम लोग छोटे छोटे आलुओं से ही सन्तोष कर लेंगे यदि श्रीरामजी हमें 'गंगा का जीवन चरित' लिख दें और 'बोलती प्रतिमा' जैसे दस बीस रेखा-चित्र। दीर्घकाय आलू उगानेवाले कृषि विशेषज्ञों की हमारे यहाँ कमी नहीं, पर 'बोलती प्रतिमा' और गंगा-मैया की जीवनी लिखनेवाले अत्यन्त दुर्लभ हैं!

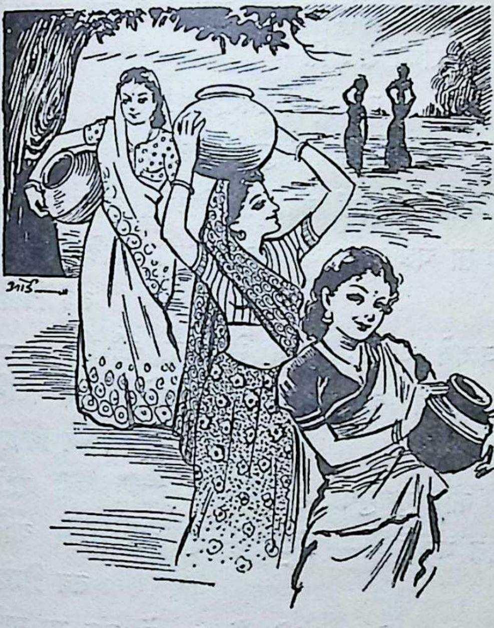

तव विरहे वनमाली !

[श्री. विनयमोहन शर्मा]

कृष्ण का सखी के प्रति—

मैं बैठा हूँ यहीं और सखि राधा से जा कहना—
"कब तक निठुर और उत्पीड़न मुझको है यह सहना?"

सखी का राधा के प्रति—

तव विरहे वनमाली !
पल पल आकुल आली !

विवश बनातीं 'काम' लहरियाँ मिलकर मलय समीरे,
चलदल-सा चल जाता जी जब, हँसतीं कलियाँ धीरे।
तव विरहे वनमाली !

प्राण जलाने आती हैं नभ से चन्दा की किरणें,—
मदन–शरों से व्याकुल हो कर लगते उठने–गिरने
तव विरहे वनमाली !

मधुपों की गुनगुन से मूँदे हैं कानों को रहते
रात रात भर सुधि—पीड़ा में हैं आँखों से बहते
तव विरहे वनमाली !

कलित धौत परित्याग बसे हैं वन में तप सा साधे
दर्दों से धरती पर लेटे रटते " राधे ! राधे ! "
तव विरहे वनमाली !

१९५०

कवि जयदेव लीन है अतिशय हरि के विरहविलासे
भाता है यह रस जिसको अति उसमें 'ज्ञान' प्रकाशे

* * *

रति-सुख-सारं, मधु अभिसारं, मदन मनोहर वेशम्
न कर नितम्बिनि ! गमन विलम्बन अनुसर निज हृदयेशम्
धीर समीरे यमुना तीरे बैठे हैं वनमाली
गोपी-पीन-पयोधर-मर्दन-चंचलकर-युगशाली

नाम सहित संकेत ध्वनित कर कोमल वेणु बजाते
तव तन चुम्बित पवन–रेणु से उरको समुद सजाते
पंखी के उड़ने से तरु के पत्ते जब हिल जाते
आती हो यह जान हृदयमें शंका से खिल जाते

शीघ्र वहीं पर किसलय दल की शय्या ललित रचाते
और पंथ पर चौंक चौंक कर आँखें सजल बिछाते
त्याग मुखर नूपुर सखि सत्वर साड़ी नीले रंग की-
पहिन, चलें इस तिमिर पुंजमें कुंज-ओर क्यों ठिठकी ?

रति विपरीते, पीते ! राजित (होगी जैसे) घन पर बिज्जु-शलाका
हरि–उर–उपहित मौक्तिक माला होगी तरल बलाका
पंकज-नयने ! दल शय्या पर अपने जीवन-धनसे
बाह्य आवरण त्याग न मिलती कैसे प्रमुदित मन से ?

रात सिरानी, पिय अभिमानी कर न सजनि ! अब देरी
जा कर उनसे सत्वर मिल ले——इतनी अनुनय मेरी
तेरे आने की आशा जब लगती पल पल घटने
तभी विकलता बढ़ जाती है, लगता धीरज हटने

कभी प्रतीक्षा——दृगसे लखते और उसाँसें भरते
हो कर भ्रांत कुंज में जाते फिर आँखों से ढरते
बार बार शय्या रचते हैं——खूब साधना साधे
मदन कदन परिक्लान्त कान्त हैं तेरे री सखि ! राधे !
श्री जयदेव कथित यह वाणी हरि–राधा–रस सानी
मुदित हृदय उस का करती है जिसने 'ध्वनि' पहचानी ।

[अ-प्रकाशित हिन्दी गीत गोविंद से]

वीरता की समाधि

[श्री. कन्हैयालाल सहल]

शौर्य से सम्बन्ध रखने वाले उपाख्यानों की प्रचुरता राजस्थानी साहित्य में मिलती है और यह स्वाभाविक भी है; क्योंकि शौर्य राजस्थान का अभिन्न अंग-सा बन गया था। वह शौर्य केवल पुरुषों तक ही सीमित नहीं था; यहाँ की वीर नारियों ने भी मौका पड़ने पर अपने अद्भुत शौर्य-पराक्रम का परिचय दिया था। राजस्थान की वीरांगनाओं ने जौहर की धधकती हुई ज्वाला में जहाँ अपने प्राणों की आहुति दी, वहाँ हाड़ा रानी जैसी बहुत सी वीर नारियों ने हाथ में चमचमाती हुई तलवार लेकर वीरतापूर्वक शत्रु-सेना का सामना भी किया थां।

हिन्दी के बहुत से कवियों ने भी राजस्थान में प्रचलित अनेक शौर्य-सम्बन्धी उपाख्यानों को अपने काव्य का विषय बनाया है। यहाँ एक उपाख्यान को राजभाषा हिन्दी के 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्य के रचयिता यशस्वी कवि श्री दिनकर के शब्दों में ही पढ़िये—

" अम्बर (जयपुर) के महाराज जयसिंह का विवाह कोटा राज्य की राजकुमारी हरावती के साथ हुआ था। रानी हरावती गौरवशालिनी राजपूत रमणी थीं और ससुराल में भी अपने पितृ-राज्य का ही लिबास पहना करती थीं। उस समय के पहनावे में एक चीज़ ' जूप ' कहलाती थी जो ओढ़नी या चादर के किस्म की होती। अम्बरवालों ने बहुत पहले ही दिल्ली के बादशाह (सुल्तान) और दिल्ली राजघराने के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। दिल्ली की रहन-सहन को अपनाने वाला पहला राजस्थानी राज्य अंबर ही था, जहाँ स्त्रियाँ भी अपने स्वदेशी वेश को पिछड़ा हुआ और पुराना जान कर दिल्ली के लिबास को अपनाने लगी थीं। महाराज जयसिंह की इच्छा थी कि उनकी महारानी भी कोटा के भद्दे लिबास को छोड़कर नये ढंग का लिबास पहनें, जो दिल्ली के अनुकरण पर राजघराने में चल रहा था; किन्तु महाराज की हिम्मत नहीं हो रही थी, कि वे रानी के सामने अपनी इच्छा प्रकट कर दें—

आखिर एक दिवस रानी
का कुछ प्रसन्न मुख पाके,
हसी-हँसी में राजा
बोले कैंची एक उठा के—
देवि! थान-भर जूप आपका
है कुछ मुझे अखरता
इसमें तो दब कर रह जाती है
सारी सुन्दरता।
ज़रा देखिये अँबर की
सुंदरियों का परिधान
भला आज कल कौन
ओढ़ती तीस हाथ का थान।
अच्छा हो, दें छोड़ आज—
से यह पोशाक पुरानी,
नई काट के वस्त्र करें
धारण अँबर का रानी।
अगर हुक्म हो, काट गिराऊँ
यह कोटा का झूल,

अंबर का परिधान आज से
रानी करें कबूल।
आगे कहें-कहें कुछ तब तक
चमकी तेज कटार,
कोटा की सिंहनी काँपती
हुई उठी हुंकार—
"सावधान हों महाराज,
बोलें सँभाल कर बोली,
कोटा की बेटी सह सकती
ऐसी नहीं ठिठोली,
दिल्ली में बिकती जो पोशाकें
इज्जत के मोल,
पहना करें उन्हें अंबर के
महाराजजी खोल।
नहीं चाहिए मुझे आपका
यह अमूल्य परिधान,
कोटा की बेटियाँ पहनती हैं
इज्जत—सम्मान।
वह सम्मान गुँथा है इसके
तार—तार के साथ,
खबरदार जो कभी लगाया
फिर चादर पर हाथ।
याद रहे, रखते हैं
जैसी कैंची राजकुमार,
उससे कहीं तेज चलती है
कोटा की तलवार।"

२

किस प्रकार दो वीर राजपूतों ने अकबर बादशाह के सामने अपनी शक्ति की परीक्षा दी थी, इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उपाख्यान वीर-भावना के इतिहास में अमर हो गया है—

"दो वीर राजपूत अकबर बादशाह के दरबार में नौकरी के लिए उपस्थित हुए। दोनों युवक समवयस्क, निर्भीक, साहसी और दृढ़–निश्चयी से लगते थे। बादशाह ने कुछ गर्व से, अभिमान से और अवहेलना से दोनों को देख कर मुस्कुराते हुए कहा—पहले दोनों अपनी अपनी शक्ति की परीक्षा दें। शक्ति की परीक्षा! आश्चर्य-मिश्रित भावों से भरे ये शब्द दोनों के मुँह से सहसा एक साथ निकल पड़े। अस्त्र–व्यवसायी वीरों के पास तलवार लेकर प्राणों के साथ खेलने के सिवा शक्ति तथा वीरता का और प्रमाण हो ही क्या सकता था? दोनों की विहँसती नजरें एकबार क्षण भर के लिए मिलीं। आंखों की मूक भाषा में ही दोनों ने हृदय की गूढ़ भाषा को पढ़ा जैसे उसमें लिखा हो—जाति के गौरव तथा कर्मठ जीवन के प्रमाण के लिए प्राणों का क्या मूल्य? म्यान से निकल कर दोनों की तलवारें क्षण भर के लिए मिलीं फिर साथ ही शून्य में, अधर में टिकीं मुड़ीं घूमीं, अर्ध चन्द्राकार बनाती सनन्न् सनन्न् करतीं, जीभ–सी लपलपातीं, तड़ित् से भी तीव्र गति से दायें–बायें, ऊपर–नीचे, शून्य में, वायु में, अपना अस्तित्व खोतीं घूमती रहीं–फिर साथ ही दोनों के प्रतिद्वन्दी को जमीन पर सुला दिया।

बादशाह यह देख कर स्तब्ध-से रह गये। भरा दरबार जैसे आश्चर्य में डूब कर मूक बना था। इतने अत्यल्प समय में यह अघटित घटना इस तरह अनायास घटेगी, यह किसी ने स्वप्न में भी न सोचा था। उस वीर जाति के प्रति बादशाह का हृदय श्रद्धा भक्ति तथा सम्मान से गद्गद हो गया, जिसके ये दोनों सपूत आदर्श की टेक के लिए बिना किसी असमंजस के अपने प्राण तलवारों की नोक पर रख कर निर्भीक हँसते हँसते मिट गये थे। बादशाह ने आगे बढ़ कर उस गरम-गरम रक्त का अपने हाथ से अपने सिर पर तिलक किया और भरे

दरबार में प्रतिज्ञा की कि आज से वह इस जाति की आजन्म प्रतिष्ठा कर अनजान में हुए इस पाप का प्रायश्चित करेगा।

इतिहास साक्षी है कि इस प्रतिज्ञा-पालन ने अकबर को कितना महान् बनाया और दोनों की वीर गति ने उनकी जाति को। *

इस उपाख्यान को ले कर श्री दिनकर ने 'बल या विवेक' शीर्षक एक कविता लिखी है जिसका उपसंहार करते हुए आप कहते हैं—

"दोनों कट कर ढेर हो गये
पूरी हुई कहानी,
लोग कहेंगे, भली हुई
यह भी कोई कुरबानी?
हँसी-हँसी में जान गँवादो
अच्छा पागलपन है,
ऐसे भी क्या बुद्धिमान
कोई देता गरदन है?
मैं कहता हूँ बुद्धि भीरु है
बलि से घबराती है।
मगर वीरता में गरदन
ऐसे ही दी जाती है।
सिर का मोल किया करते हैं
जहाँ चतुर नर-ज्ञानी,
वहाँ नहीं गरदन चढ़ती हैं,
वहाँ नहीं कुरबानीं।
जिसके मस्तक के शासन
को लिया हृदय ने मान
वह कदर्य भी कर सकता है
क्या कोई बलिदान?"

बुद्धिवाद की दृष्टि से इस तरह का शौर्य यद्यपि भावोन्माद के अतिरिक्त और कुछ नहीं, तथापि विशुद्ध शौर्य का उपासक तो इस भव्य आत्मोत्सर्ग पर अपने आप को सौ जान से निछावर कर देगा। कलावादी संप्रदाय का आलोचक जिस प्रकार कला के अतिरिक्त कला का अन्य कोई प्रयोजन स्वीकार ही नहीं करता, उसी प्रकार सच्चा शौर्य किसी बाहरी प्रयोजन को लक्ष्य में रख कर प्रवृत्त नहीं होता। निश्चय ही नौकरी करना उक्त दोनों राजपूतों के जीवन का चरम ध्येय नहीं था, नौकरी तो उनकी शौर्यमयी मनस्विता के पीछे पीछे मारी मारी फिरती थी।

जो प्राणों को प्यार करता है वह प्राणों को खो बैठता है। इसी लिए अमर हो गये राजस्थान के वे राजपूत, जिन्होंने प्राणों का कभी मोह नहीं किया। मैं दुनिया में राजस्थान के अतिरिक्त ऐसे किसी देश को नहीं जानता जहाँ उल्लासपूर्वक मरण-महोत्सव मनाया गया हो। धरती माता! वज्र जैसी मांस पेशियों वाले, फौलादी स्नायुओं वाले, पर्वत की तरह अडिग रहनेवाले, देश और धर्म की रक्षा के लिए युद्ध की विभीषिकाओं से खेलनेवाले तथा उच्चादर्शों की रक्षा के लिए प्राणों का व्यापार करनेवाले वे साहस के पुतले क्या आज तेरे गर्भ में विलीन हो गये!

दिनकर ने ठीक ही लिखा है "राजस्थान की मिट्टी वीरता की समाधि है। इसने हमारे अपरिमेय रक्त का पान किया है। अत एव यह आशा स्वाभाविक ही है कि किसी दिन वह हमारे लिए फूल और नई तलवारें भी उगल दे। इस मिट्टी पर खड़ा हो कर भावनाओं को रोक रखना कठिन है। यहाँ आते ही भावनाशील मनुष्य की कल्पना में अनेक तलवारें एक साथ झनकार उठती हैं, पूर्वजों का रक्त मानों नींद से जग कर

---

* इस सम्बन्ध में देखिये नवम्बर १९४७ के 'किशोर' में प्रकाशित श्री हलधर चौधरी 'दीन' का 'शक्ति की परीक्षा' शीर्षक उपाख्यान।

धमनियों में खौलने लगता है तथा भारतीय नारी के बलिदान की गौरव-शिखा, चित्तौड़ की चिता मनश्चक्षु के सामने साकार हो जाती है। पैर यह सोचकर ठिठकने लगते हैं कि कहीं अगले कदम पर किसी वीर पुरुष की समाधि न हो और हृदय अधीर हो कर धरती से सचमुच ही अनुरोध करने लगता है कि—

" कह दे उनसे जगा कि
कब से उनका रथ खाली है
वालू की कणिका में
किस गौरव की रखवाली है?'

कैसे दीप जलेगा ?

[श्री० 'अंचल']

डूब गयी सन्ध्या मेघों-
में कैसे दीप जलेगा ?
घिरी पवन की घटा—चाँदपर लोभी बादल छाये।
अभी क्षणों में बरसेंगे ये घंटों झड़ी लगाये ।
मंदिर में हो रही आरती बजती है घड़ियाली ।
मेरा तुलसी चौक पड़ा है सान्ध्य विभा से खाली ।
सन सन चलती पवन,
करूँ क्या कैसे दीप जलेगा ।।
कितने खेल खेलते हैं नभ में रह रहकर ये बादल ।
क्यों न मना कर देता कोई—क्यों उलीचते हो जल ॥
नित्य नये फूलों के वन में पानी बरसा जाते ।
पल पल में नित नया खेल ये ढूँढ़ कहाँ से लाते ॥
मैं इनसे हैरान हुई हूँ
कैसे दीप जलेगा ?
बादल गरजे—धड़क उठी फिरसे नदिया की छाती ।
सावन गगन बिलीन—ज्वार—हिल्लोलित पवन सँघाती ॥
भीगी चली संध्या दीपक की बेला बीती जाती ।
मैं कदम्ब के तले लिये कोरा दीपक सकुचाती ।
बरस रहे मेघ झड़ी में
कैसे दीप जलेगा ?
मेरा मन तो कभी न काँपा जब जब तमने घेरा ।
करता रहा चूर तमसा को जल जल जीवन मेरा ॥
जब जब आया पूर व्यथा में मैंने स्वप्न सजाया ।
कैसे दीप जले ऐसे में मन यह समझ न पाया ।
नभ में बिजली चमकी—भूपर कैसे दीप जलेगा ।
डूब गई सन्ध्या मेघों-
में कैसे दीप जलेगा ॥

श्रम का महत्त्व

[श्री· केशवगोपाल निगम]

मैं हैरान था कि कल ही तो बाबू साहब दफ़्तर में उधार के लिये हाथ फैला रहे थे और आज सारा परिवार होटल में खाने गया हुआ है। क्वार्टर के आगे खेलते पड़ौस के बच्चों से खोद-खोद कर मैंने पूछा, परन्तु एक ही उत्तर मिला, "होटल खाना खाने गये हैं।"

मैं इसी दुविधा में था कि बाट देखूं अथवा अपना रास्ता पकड़ूँ कि सामने से मित्र महोदय अपने परिवार के साथ चले आ रहे थे। मुझे देखते ही बड़े प्रेम से बोले, "आओ भाई आओ, अच्छा ही हुआ जो हम समय पर आ गये, अन्यथा तुम चले ही जाते।"

क्वार्टर के भीतर जाने पर जब मैंने प्रसंगवश सपरिवार होटल जाने का ज़िक्र छेड़ा तो ज्ञात हुआ कि बाबू साहब का नौकर चला गया है और अपना खाना बनाना श्रीमतीजी की शान के ख़िलाफ़ है।

ऐसे ही एक अन्य सज्जन हैं। स्वयं बड़े साफ़ सुथरे रहते हैं। लोगों का अनुमान है कि वह दिन में तीन बार कपड़े बदलते हैं और इनके पास कम से कम ३०० सूट हैं। आज तक किसी ने उन्हें मैला कपड़ा पहने नहीं देखा। एक दिन संयोग से उनके घर जाना पड़ा। उनके ड्राईंग रूम यें इस प्रकार चीज़ें अस्तव्यस्त पड़ी थीं गोया कि अभी लोग दंगाई लूट-पाट करके गये हैं। दीवारों और फ़र्श पर धूल की एक मोटी तह जमी हुई थी। शिकायत के तौर पर नाक-भौं चढ़ा कर बोले, "क्या करें साहब, नौकरों ने तो आजकल नाक में दम कर रखा है। कोई टिकता ही नहीं और फिर उन बेचारों का भी क्या कसूर है। जब हमीं आप एक-दूसरे के नौकर को ज्यादा का लालच देकर तोड़ने लगते हैं तो उनको क्या कहा जा सकता है।"

"यह बात तो है।"

"बिलकुल साहब। अभी हम लोग ऐसा करना छोड़ दें तो एक दिन में उनका दिमाग़ ठिकाने आ जाय।"

"लेकिन हमीं लोग अगर स्वावलम्बी वन जायें और सोलह आने उन पर आश्रित न रहें तो कैसा रहे?"

"हाँ....बात तो ठीक है, उन्होंने कुछ झेंपते हुए कहा और फिर एक खिसियानी हँसी हँस कर बोले, "साहब कुछ भी हो, झाड़ू देना अथवा खाना बनाना तो अपने से हो नहीं सकता।"

इन दो उदाहरणों की बात जाने दीजिये। यह हमारे समाज के ९० प्रतिशत स्त्री-पुरुषों के ऐसे ही विचार हैं। पुरुष हैं कि हिल कर पानी पीना अपनी शान के खिलाफ़ समझते हैं। हाथ-पैर हिलाना ही हेय समझा जाने लगा है। स्त्रियां बस यहीं चाहती हैं कि घर नौकर

के भरोसे चले और वह दिन भर आराम करती रहें। पति दिन भर कठोर परिश्रम करके जो कुछ कमाये उसका अधिकांश अंश उनके मेकअप, साज-सिंगार और साड़ियों के लिये दे दे। मेरा कहने का मतलब यह नहीं है कि स्त्रियाँ घर के काम में ही जुटी रहें और पुरुष दफ्तर के काम के अतिरिक्त कुछ करें ही नहीं। अपने किसी भी काम को करने में कोई झिझक नहीं होनी चाहिये। चाहे खाना बनाना हो, चाहे झाड़ू देना। स्त्री-पुरुष दोनों ही समय पड़ने पर पीछे न रहें। आज घरेलू नौकरों की जो विकट समस्या है उसका मूल कारण यही है समाज में इस भावना का घर करना कि हाथ-पैर हिलाना पढ़े-लिखे लोगों की शान के ख़िलाफ़ है। माँग अधिक है और पूर्ति कम। इस अवस्था में यदि घरेलू नौकरों के दिमाग़ आसमान पर चढ़ जायँ तो आश्चर्य ही क्या है।

वहुत से पेशे इसलिये ही नहीं अपनाये जाते कि उसमें हाथ-पैर की मेहनत करनी पड़ती है। जात-बिरादरी वाले क्या कहेंगे। इस थोथी भावना के कारण ही हमारा समाज भीतर ही भीतर खोखला होता जा रहा है। पंजाब के शरणार्थी ने श्रम के महत्त्व को भली भांति समझा। कोई वहाँ कुछ भी करता था, यहाँ आकर जो भी काम मिला बस जुट गया। अभी किसी और प्रान्त पर ऐसी विपत्ति आती तो अधिकांश भीख माँगते हीं नज़र आते। पाकिस्तान में अधिकांश शरणार्थी इस तथ्य को सिद्ध कर रहे हैं। एक सिख सज्जन हैं। उनका पाकिस्तान में लाखों का व्यापार था। यहाँ खाली हाथों आये और लाँड्री (धोबी-ख़ाना) खोल ली। अब उनका कई हज़ार रुपये महीने का व्यापार चल रहा है। आरम्भ में सरदार जी और सरदारनी स्वयं ग्राहकों के घर से कपड़े लाते थे और स्वयं ही धोकर पहुँचा आते थे। आज बीसियों नौकर लगे हुए हैं। जब सरदारजी मैले कपड़ों का गट्ठर पीठ पर लाद कर निकलते थे तो देखने वालों का दिल टूटने लगता था परन्तु उनके चेहरे पर अदम्य आत्म-विश्वास और उत्साह की भावनाएँ खेला करती थीं। ऐसे कर्मठ के आगे भाग्य को भी सिर झुकाना पड़ता है।

अमेरिका और इंग्लैंड के वैभव को देख कर तो हमारी लार टपकती है, परन्तु हम यह नहीं देखते कि इसके लिये उन देश के निवासियों ने कितना श्रम किया था। इंग्लेंड के प्रधानमंत्री हैं श्री एटली साहब। इतने बिशाल साम्राज्य की बागडोर उनके हाथ में है, परन्तु अवकाश के समय बागवानी करते हैं प्रायः सभी अंग्रेज़ अथवा अमेरिकन अवकाश के समय कुछ श्रम करते हैं। उससे मन और शरीर पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है और कुछ बचत भी होती है। परन्तु हमारे देशवासी माली बनें, दर्जी का पेशा अपनायें, यह नहीं हो सकता। मैले कपड़े पहन लेंगे परन्तु धोयेंगे नहीं, गंदे घर में रह लेंगे परन्तु झाड़ू नहीं देंगे।

एक आम बहाना तो यही बना दिया जाता है कि साहब इन कामों के सीखनें के लिये अवकाश किसे है। ठीक है। गप्प

लड़ाने, महरी की खुशामदें करने और नौकरों के अड्डों के चक्कर काटने से अवकाश कहाँ। अभी उस दिन एक साहब शिकायत कर रहे थे कि एक महीने से सुबह-शाम घंटों नौकर ढूँढ़ने में व्यतीत कर रहा हूँ, परन्तु नौकर नहीं मिलते। बलिहारी आपकी मनोवृत्ति की! काश, आप इस समय घर के काम काज करने में श्रीमतीजी का हाथ बटा कर नौकर की समस्या को ही समाप्त कर देते। अब तो हाल यह है कि अगर घर में पति महोदय दबते हैं तो होटल में खाना खाइये, गंदे घर में रहिये और नौकर ढ़ूँढ़ने में असफल रहने पर श्रीमतीजी की फटकार सुनिये, और अगर श्रीमती जी दबती हैं तो फिर चाहे बीमार हों चाहे दम लबों पर हो पति देवता की चौबीसों घंटे सेवा करती रहें।

श्रम के प्रति हीन भावना के कारण ही हमारा समाज लड़खड़ा रहा है। कमाने वाला एक और खाने वाले दस। फिर जीवन के मानदण्ड के ऊपर उठने की बात करने वालों की बुद्धिमानी पर कौन नहीं हँसेगा। विदेशों में प्रायः प्रत्येक कॉलेज जाने वाला लड़का, लड़की अवकाश के समय कुछ हुनर सीख कर कुछ कमाने लगते हैं, जिससे वे अपने माता-पिता पर भार मात्र नहीं रह जाते। परन्तु एक तो हमारे यहाँ ऐसी कोई व्यवस्था नहीं और यदि हो भी तो सीखता कौन है। कितने ही लड़के-लड़कियों के अभिभावक की मृत्यु होने पर उनकी पढ़ाई छूट जाती है। अभी अगर उन्हें कुछ हुनर आता तो वह अपनी पढ़ाई जारी रख सकते। कॉलेज के ख़र्चों और फ़ैशन का भार उठाने में असमर्थ होने पर जो गुल खिलते हैं उसकी ओर अभी बहुत कम लोगों का ध्यान गया हैं। सैकड़ों उदाहरण ऐसे मिल जायँगे जहाँ फ़ैशन खर्च की पूर्ति के लड़कियों ने अपने सतीत्व तक को बेच डाला है। लड़कों ने चोरी तथा जेब काटना आरम्भ कर दिया। अभी अगर अवकाश के समय कुछ हाथ-पैर हिलायें तो यह नौबत न आये। भविष्य में भी यह उनके काम हीं आयगा। हुनरमन्द कभी भूखा नहीं रह सकता। इस मनोवृत्ति के अपनाने से समाज का प्रत्येक अंग स्वावलंबी बन सकता है। प्रत्येक अंग बोझ न रह कर समाज की प्रगति में सहायक बन सकता है।

आज हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है श्रम के महत्व को भली भांति हृदयंगम करने की। हमें कर्मठ व्यक्ति चाहिये, विचारक नहीं। सोचने विचारने का समय गया, अब काम करने का समय है। आलस्य हमारा स्वभाव बन गया है जिसके परिणामस्वरूप निराशा का साम्राज्य छाया हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि हम लोग कमर कस लें। कमर कसते ही निराशा का स्थान आशा और उत्साह ले लेंगे। देश को उन्नत बनाने की बड़ी-बड़ी योजनायें धरी ही रह जावेंगी यदि हमने जी तोड़ कर परिश्रम नहीं किया। विदेशों के वैभव को देख कर ललचाने की बजाय उस अध्यवसाय की ओर निहारना चाहिये जिसका कि वह वैभव परिणाम है। श्रम की उपेक्षा घातक है, इसके महत्व को समझने में ही हमारा परित्राण है।

76236

इण्डोनीसिया में हमारी शब्दश्री

[डॉ. लोकेशचन्द्र]

"जावा" शब्द का प्रादुर्भाव संस्कृत के यवद्वीप की संक्षिप्ति से हुआ है। रामायण में पहिली वार यह शब्द मिलता है। परन्तु यह कहना बहुत ही कठिन है कि यह स्थल रामायण में किस शताब्दि में लिखा गया। संभावना यही है कि यह विक्रमाब्द की प्रारंभिक शतियों का होगा। "जावा" इण्डोनिसिया का सबसे महत्वपूर्ण और सबसे वड़ा द्वीप है। सांस्कृतिक दृष्टि से और आज राजनैतिक दृष्टिकोण से भी यह अपना विशेप स्थान रखता है। इसी महत्त्व के कारण आज हम अपने अधिकांश उदाहरण इसी प्रदेश से लेंगे। यह वह प्रदेश है जहां पर भारतवर्ष के अनेक शिल्पियों नें जाकर संसार की स्थापत्यकला का आश्चर्य "वोरोवडूर" स्तूप वनाया था, जो आज कराल काल के थपेड़ों के पश्चात् भी पूर्ववत् गरिमा के साथ खड़ा है, भलेही उसकी भव्यता आज पुरानी हो चुकी हो। यह वह प्रदेश है जहां पर कि दक्षिण भारत से गई हुई वर्णमाला समयानुसार परिवर्तन होती हुई आज भी सुरक्षित है। यह वही भूमि है जहां पर कि आज की जनता मुसलमान होते हुए भी महाभारत पर आश्रित वायाङ् अर्थात् छाया चित्रों को वहुत उत्सुकता के साथ देखने के लिए इकट्ठी होती है। अर्जुन इन खेलो में सदा ही अभिनेता रहता है चाहे भारतीय परंपरा के अनुसार उसने उस कथानक में भाग लिया हो या न लिया हो। जावा निवासियों को रामायण और महाभारत पर वहुत गर्व है और वे भारतीयों से कहते है "रामायण और महाभारत की घटनाएं हमारे देश में घटीं थीं, उनमें वर्णित राजा, रानियाँ, तथा अन्य पात्र हमारे देश में जन्मे थे, उनमें वर्णित नगरियां हमारे देश की विलुप्त नगरियां हैं।" वे यह कभी मानने के लिए तैयार नहीं कि रामायण और महाभारत उनके यहां कहीं वाहर से आये हैं क्योंकि वे उनके सभ्य वनने से लेकर आज तक उनके एकमात्र प्रमोद के साधन रहे हैं, इतना ही नहीं; वे उनके जीवन के साथ इतना अधिक ओतप्रोत हैं जितना कि खानापीना, क्योंकि वे जीवन को आमोद और प्रमोद स्वरूप ही जानते हैं।

जावा भाषा की ऐतिहासिक दृष्टि से तीन अवस्थाएं है — (१) प्राचीन, (२) मध्यकालीन, और (३) अर्वाचीन। प्राचीन भाषा को प्रायः "कवि" कहा जाता है। वैदिक काल में कवि विद्वान् का पर्यायवाची था और जिस काल में यह भारत से जावा में गया तब भी इसका यही अर्थ रहा होगा। कवि भाषा में अधिकांश ग्रन्थ संस्कृत के अनुवाद है अथवा उसकी परंपरा से पूर्णरूपेण ओतप्रोत हैं। यथा — कवि में आपको पूरा रामायण और महाभारत मिलेगा। कई स्थानों पर ये अनुवाद हैं और कई स्थलों में संक्षेप। इनकी भाषा में संस्कृत की शब्दावलि भरी पड़ी है और यदि कोई इसका कोष देखे तो वह कहेगा कि इस भाषा में वंगला की अपेक्षा भी अधिक संस्कृत शब्द हैं। भारतीय परंपरा पर आश्रित ग्रन्थों में नवीन विचार धारा का निर्माण भी हुआ है। अगस्त्यपर्व एक इस प्रकार का ग्रन्थ है। भारत की आज सबसे अधिक पढ़ी जानेवाली धर्मकृति भगवद्गीता का अनुवाद भी "कवि" में मिलता है और यह वर्तमान भारतीय शाखा से बहुत प्राचीन है। 'कवि' में संस्कृत के व्याकरण रचे गये और कोष भी। उदाहरणार्थ "कृतभाषा", "अमरमाला", आदि। ये दोनों कोष अमरकोष की भांति विषयानुसार हैं। प्राचीन काल में अमरकोष एशिया की लगभग प्रत्येक साहित्यिक भाषा में अनूदित हुआ या अनुकरण किया गया। पिछली शती में अंग्रजी में Roget का Thesaurus of English words and phrases भी इस पर आधारित है। कृत भाषा का अर्थ संस्कृत भाषा है। जावा में त्रिवर्ण शब्दों को संक्षिप्त करके द्विवर्ण बनाने की प्रवृति बहुत प्रबल है। इसी प्रवृत्ति के कारण "संस्कृत" शब्द का पहिला वर्ण लोप करके "कृत" बना दिया गया।

मध्यकालान जावा की भाषा प्राचीन से बहुत दूर नहीं गई थी — न विचार धारा में और न व्याकरण में। इसमें पूर्ववत् संस्कृत प्रभावित ग्रन्थ लिखे जाते रहे।

अर्वाचीन जावा भाषा कई प्रकार की है। मुख्यतः उसके तीन भेद कहे जा सकते हैं—"क्रम", (२) पुस्तकों की भाषा जिसे "आधुनिक कवि" कहते हैं, (३) और डांको। "क्रम" शिष्ट और कुलीन लोगों की भाषा है। आधुनिक कवि साहित्य और कुछ अंश तक समाचार-पत्र, पत्रिकाओं की भाषा है। डोको सर्व-साधारण बोलचाल में प्रयुक्त भाषा है। इन तीनों में ही संस्कृत शब्द मिलते हैं परन्तु पहिली और दूसरी में विशेष रूप से प्राधान्य है। प्राचीन काल में शिलालेख आदि संस्कृत में लिखे जाते और राजकाज का कार्य भी उसी में होता। राजवंश और राजसभ्यों में वही भाषा सामान्य रूप से प्रचलित थी। आधुनिक कवि प्राचीन कवि से विकसित हुई है और अपनी शैली, विचार, पदावलि आदि के लिए उसकी ओर देखती है। इसमें प्राचीन कवि का अंश बहुत है और सामान्य व्यक्ति इसे सरलता से नहीं समझ पाते। भारतीय प्रभाव के हेतु दार्शनिक और धार्मिक अभिनति स्पष्ट झलकती है यद्यपि उसमें आजकल की राजनैतिक मनोवृत्ति का आभास होने लगा है और कोई आश्चर्य नहीं कि यह आभास ही उसका प्रमुख रूप बन जाए। डोको सर्वसाधारण सामान्य की भाषा है। यहाँ पर यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि इण्डोनीसियाई भाषाओं में अपने से उच्च और आदरणीय व्यक्ति के लिये मानवाची पदावलि इतनी अधिक और भिन्न है कि वह एक स्वतन्त्र भाषा ही कही जा सकती है। क्रम में इस प्रकार की मानवाची पदावलि का समावेश है। डोको में इसका अभाव है। यद्यपि डोको भाषी जब अपने से बड़े व्यक्ति के साथ बातचीत करेगा तब वह क्रम की मानवाची पदावलि का प्रयोग करेगा ही। यथा डोको में "रूप" शब्द है, परन्तु क्रम में उसके लिए "वेर्नि" का प्रयोग करते हैं। जावा की लिपि, जैसा कि ऊपर कहा गया है, भारत से ली गई थी। जावा की देशीय भाषाओं में महाप्राण वर्णों का अभाव है। वे संस्कृत शब्दों को लिखने के लिए प्रयुक्त होते हैं, और वह भी विरले। उदाहरणार्थ धनवाची अर्थ को वे "अर्त" ("त" के साथ) लिखते हैं। सस्कृत शब्दों में हा आने के कारण महाप्राण अक्षरों वाले पद आदरद्योतक बन गए। आजकल यदि किसा का संमानपूर्वक नाम लिखना हो तो महाप्राण अक्षरों का आधक से अधिक प्रयोग करने का प्रयास किया जाता है — "द" के स्थान पर "ध", "क" के स्थान पर "ख"।

किसी भाषा के अपभ्रंश से उसके प्रसार और प्रभाव की मात्रा का अनुमान किया जा सकता है। संस्कृत के अपभ्रष्ट शब्द जावा में बहुतायत से विद्यमान है। उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

"सए" अच्छा, जो कि सत्य का रूपान्तर है। क्रम में ही "सलीर" शरीर। प्राचीन कवि में "मार्गि" मार्ग में। "वाग्य" भाग्य, "दिव्य" दिव्य, "कार्य" काम, "कुद" क्रोध, "कुर्दक" क्रोध (क्रोध के साथ क प्रत्यय लगा कर जैसे कि बाल के आगे क लगा कर बालक)। डोको अथवा सामान्य भाषा में आगे के अर्थ में "गनि" शब्द बोला जाता है जो प्राचीन कवि में "अगनि" था। प्राचीन कवि में संस्कृत के दूसरे पर्याय भी प्रयुक्त हुए हैं—अनल, दहन, वह्नि, पावक। "क्रम" में भस्म के लिए "बस्मि" चलता है। जहाँ पर कि आदर दिखलाना हो वहां पानी के लिए "तोय" पद है। "सुख" का जावा में महाप्राणाक्षरों के अभाव से "सुक" रूप मिलता है।

संस्कृत के अपभ्रंशों के अतिरिक्त जावा में शब्दों को संस्कृत रूप देने की चेष्टा की गई है। उदाहरणार्थ — उन्हें "रस" शब्द बहुत सरल और असंस्कृत प्रतीत हुआ। इसका संस्कृत रूप "रस्व" बना दिया गया। इसी प्रकार अनेकों शब्दों में "व" अथवा "य" वाला संयुक्ताक्षरमय पद बनाने की चेष्टा की गई है — मत्स्य का "मत्स्व", विष का "विस्य" अथवा "विस्व"। संस्कृतकरण में सब से अधिक "र" का प्रयोग किया गया है। जैसे कि सूर्यवाची पतंग को "पर्तंग" कर दिया गया और प्राचीन

१९५०

कवि में सूर्य के लिए “ ह्यङ् प्रतंगपति ” कई वार मिलता है। इसी प्रकार प्राचीन कवि में पश्चिम “ प्रचिम ” सिद्धान्त का “ श्रीदान्त ”, पादप का “ प्रदप ”, जलधि का “ जलाद्रि ” । इनमें “ श्रीदान्त ” और “ जलाद्रि ” विशेष ध्यान देने योग्य है। ऊपर की मनोवृत्ति के विपरीत कभी कभी संस्कृत शब्दों को जावा की भाषा के अनुकूल रूप देने के उपाय भी किए गए हैं— उदाहरणस्वरूप, साहित्यिक जावा भाषा में दयिता का “ दयिन्ता ” रूपान्तर (अनुनासिक जोड़ कर)।

इधर उधर कुछ प्राचीन संस्कृत प्रयोग मिलते हैं जो हमारी आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्राप्य नहीं। यथा “ इन्द्र ” आंख की पुतली। “ इन्द्र ” और “ इन्द्राणी ” शब्द संस्कृत के योगग्रन्थों में खब्वी और सज्जी आंखों की पुतलियों के लिए प्रयुक्त होते थे। इसी प्रकार जीविका के अर्थ में “ यात्रा ” शब्द भी कुछ विचित्र है। क्रम में अग्निवाचक “ व्रम ” अथवा “ ग्रम ” ब्रह्मा से व्युत्पन्न है। यह अर्थ नवीन प्रतीत होता है।

जावा की भाषा द्विवर्ण प्रिय है। यह प्रवृत्ति इसकी अपनी शब्द संहति के विकास में भी पाई जाती है। जैसे कि प्राचीन कवि में “करातुआन्” का अर्थ राजकीय निवास स्थान था। “ रातु ” राजा, क उपसर्ग और आन् प्रत्यय सप्तम्यर्थ थे। परन्तु आजकाल यह द्विवर्ण “ कातोन् ” में परिवर्तित हो गया। इसका प्रभाव भारतीय शब्दावलि पर भी पड़ा है। संस्कृत “अभिप्राय” का अर्वाचीन जावा भाषा में केवल “ प्राय ” ही रह गया, कुसुम का “ सुम ”। इस संक्षिप्ति की प्रवृत्ति के कारण अनेकों भारतीय शब्द, आज विना ऐतिहासिक संतति जाने पहिचानने कठिन हो गए हैं। उदाहरण—तवे। “ तवे ” क्षन्तव्यम् का रूपान्तर है। प्रारंभिक “ क्षन् ” और अन्तिम प्रकार का लोप कर के “ तव्य ” रह गया। मध्यकालीन जावा भाषा में “ य ” का “ ए ”, हो गया और “ व ” और “ ब ” के अभेद से “ तवे ” रूप बन गया। “ तवे ” प्राचीन काल में अपने से ऊंचे व्यक्ति को संबोधित करते हुए कहा जाता था। परन्तु आजकल यह नमस्ते के स्थान पर प्रयोग होता है। यह जावा से हॉलण्ड में भी पहुंच गया है — शासकीय संबन्धों के कारण। वहां पर यह श्रमिकों, सैनिकों आदि निम्नवर्ग के लोगों में प्रचलित है।

भारतीय शब्दों के रूप परिवर्तन के अतिरिक्त अर्थपरिवर्तन भी हुए हैं। “ मन्त्री ” आधुनिक जावा में पुलिस के अर्थ में प्रयोग होता है। प्राचीनकाल में भारत के समान वह मन्त्री अथवा सचिव वाचक था। परन्तु डच लोगों के आने के पश्चात् सामान्य जनता का शासन के साथ जो संपर्क होता था वह पुलीस से और यह कोई आश्चर्य नहीं कि वे उसे राजा के मन्त्री के साथ घड़बड़ा गए (?) इसी प्रकार, “ देस ” का आधुनिक जावा भाषा में गांव अर्थ है। आधुनिक जावा की भाषा में मियंग मेंडक को कहते हैं। यह “व्यंग” का विकृत रूप है। व्यंग का शब्दार्थ वि+अंग “ = विविध वर्ण के अंगों वाला ” है।

शब्दों में कई वार मानव की स्मृतियां सुरक्षित रहती हैं और इनसे पुरानी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अवस्थाएं अनुमान की जा सकती हैं। भवनवाची “ यसन् ” इसका उज्ज्वल उदाहरण है। प्राचीन समय में मन्दिरों, स्तूपों, चण्डियों के वनाने से मनुष्यों को यश की प्राप्ति होती थी। साथ ही साथ महलों को छोड़ यदि विशाल और पक्के भवन उस समय बनते तो वे केवल उपासनागृह होते थे। यश के साधन होने के कारण उपासना-गृहों को “यसन्” कहा जाने लगा होगा और धीरे धीरे अर्थविस्तार करते हुए वह प्रत्येक विशाल भवन के अर्थ में प्रयोग होने लगा। यह शब्द उस प्राचीन काल की स्मृति नवीन करा देता है जब कि जावा द्वीप के ग्राम ग्राम में विशाल मन्दिर वनाए जाते थे, जिनका प्रोज्ज्वल प्रतिनिधि वोरोवडूर का महान स्तूप है जो आज के अभि-यन्ताओं के लिए भी आश्चर्य है।

राजाओं और सुलतानों के नामों के पहिले “ दूलि ” शब्द अंग्रेजी के Your Majesty के समान आदरार्थ जोड़ा जाता है। लोकतन्त्र के अभ्युदय के साथ साथ अब यह “ है ” शीघ्र ही “ था ” में परिणत हो जाएगा। हमारे यहां भी पदरज और पदधूलि संमानार्थ प्रयुक्त ह। प्राचीन भारतीय शिलालेखों में “ देवपाद ” और प्राचीन

जावा भाषा में "पादुका" इसी अभिप्राय के द्योतक हैं।

आधुनिक जावा की भाषा अपनी नवीन जागृति के साथ साथ नवीन शब्दों की आवश्यकता को अनुभव करने लगी है। यह आवश्यकता बहुत कुछ सीमा तक संस्कृत से पूरी की जा रही है। जैसे कि समाचार पत्र के लिए "वार्ता" शब्द। द्विचक्र (bicycle) के लिए "पादयन्त्र"। मराठी में "पैरगाड़ी" में प्रयोग होता है। अंग्रेजी के secretary के लिए "सतिय रहसिय" (संस्कृत में सत्य-रहस्य) बनाया है जो सत्य में ही रहस्य रखता हो। संस्कृत से पारिभाषिक शब्दावलि लेना कोई नई बात नहीं। यह प्राचीन परंपरा से चली आई है। प्राचीनकाल में व्याकरण, दर्शन आदि अर्थ पारिभाषिक विषयों के शब्द संस्कृत पर आश्रित होते थे अथवा उसे सीधे लिए जाते थे। आधुनिक जावा के व्याकरण से कुछ शब्द लेंगे—"अक्सर" (उच्चारण बंगला के समान अक्सोरो), स्वर। द्वित्वकरण जावा की भाषा की विशिष्टता है। यह अनेक प्रकार का है। यदि प्रारंभिक वर्णसमूह का द्वित्वकरण हो तो उसे जावा के वैय्याकरण "द्विपूर्व" और यदि अन्तिम वर्ण समूह का हो तो "द्विवसान" (संस्कृत द्वि अवसान) कहते हैं।

इसके अतिरिक्त उनके आधुनिक ग्रन्थों के संस्कृत नाम रहते हैं। नवीनतम स्त्रियों की पत्रिका निकली है जिसका नाम "वनिता" है। इसका अभी पहिला अंक ही प्रकाशित हुआ है। मुसलमान होते हुए भी वे संस्कृत शब्दों को अपना समझते हैं। एक कला पर पत्रिका है जिसका नाम विद्यावती है। आज भी जावा के मुस्लिम संस्कृत नामों को कुलीनता का प्रतीक मानते हैं और उन पर उन्हें गर्व होता है।

बहुत से इण्डोनीसिया के भौगोलिक नाम संस्कृत के हैं। यथा — सुकबूमि (शुद्धरूप सुखभूमि), इन्द्रमायु, पूर्वोलिंगो (शु० रू० पूर्वलिंग — बंगला की भांति अ का ओ उच्चारण होता है), मदुरा, नगर (बालि के एक नगर विशेष का नाम) सिंगराज (शु० रू० सिंहराज—बालिद्वीप की राजधानी)। इण्डोनीसिया में बहुत से नगरों के नाम "कार्ता" शब्द जोड़ कर बनाए गए हैं। संस्कृत में इस प्रकार का कर्त प्रत्यय का त्रिकर्त शब्द (जैमिनीय ब्राह्मण में, सामान्य रूप त्रिगर्त) पंजाब की कांगडा घाटी के लिए आता है। जावा में इसके अनेक उदाहरण हैं — पूर्वकार्ता, सुरकार्ता, योग्यकार्ता (Jogyakarta डच में J का उच्चारण "य" है) और जाकार्ता अपनी राजनैतिक स्थिति के कारण आज भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गए हैं। जाकार्ता में प्रारंभिक "जा" जय का रूपान्तर है।

विश्वविख्यात कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर (Rabindranath Tagore) की जावायात्रा की एक घटना स्मृति में जाग उठती है। कवि एक सुल्तान के अतिथि थे। ये दोनों केवल दुभाषिए द्वारा ही वार्तालाप करते। एकबार सुल्तान कवि को प्राकृतिक दृश्य दिखाने ले जा रहे थे। उनकी मोटर जब एक नदी पार करने लगी तब सुल्तान ने कवि को नदी के बहुत से पर्यायवाची सुनाए। इनमें अधिकांश शब्द संस्कृत के थे। कवि प्रफुल्लित हो उठे और दोनों में अतीत की स्नेहमयी स्मृति जागृत हो उठी और कुछ क्षण पूर्व के विदेशी चिर परिचित मित्रों की भांति स्नेह सूत्रों से बध गए।

इस पर से स्पष्ट है कि पुराने सांस्कृतिक संपर्क नवीन एक जगत् के निर्माण में कितने सहायक होंगे। मानव यदि अपनी खोई हुई शान्ति को खोजना चाहेगा तो उसे अनुभव होगा कि भंगुर व्यापारिक और कूटनीतिक संबंध ही पर्याप्त नहीं अपितु उसे चिरस्थायी और निष्काम सांस्कृतिक संबंधों की आवश्यकता भी है।

* * *

दो कविताएँ

१. अपने बालक के प्रति —

तुम बढ़ कर क्या सोचोगे शिशु
ऐसे ही स्वतंत्र भारत में—
तुम्हें तुम्हारे मात-पिता ने
बड़ा किया था इस संगत में ?
जब कि वनस्पति का ही था घृत
और शुद्ध पय था डिब्बे का
जब खाद्यान्नों का था संकट,
नहीं जातियों में था एका !

तुम बढ़ कर क्या सोचोगे शिशु
ऐसे ही थे पूर्वज-संचित ?
जो न जुटा पाते थे दाने,
विदेशियों पर थे नित आश्रित ?
जहाँ बुद्धिजीवी लड़ते थे,
पूँजी-शासित थी सब मेधा
स्वेदाश्रित कृषि, नर नरभक्षक,
विटामिनों से विरहित मैदा !

तुम बढ़ कर क्या सोचोगे शिशु
यदि तेरा यह दीन पिता जो
पाता मनोनुकूल काम तो
रचता निज मन की न चिता जो
तो शायद इस देश, राज को
दे पाता वह अधिक लाभ निज
करता उन्नत इस समाज को
गिरा सभी की और नकाब निज

तुम जब बड़े कभी होगे शिशु
मत करना इस जन की निंदा
मैं अपने कर्तव्य न पूरे
कर पाता हूँ, हूँ शरमिंदा
मगर एक तुम याद रखोगे
स्वाभिमान से भरे पिता ने
की न याचना, की न खुशामद
सहे दैन्य के लाखों ताने !

—श्री प्रभाकर माचवे

२. क्षणिकाएँ—

(१)

उस दिन कवियों की मजलिस में
चली प्रेम की ज्यों हां चर्चा
मिस्टर लखमीचंद कह गये :
बड़ा प्रेम में होता खर्चा !

(२)

रायबहादुर अंग्रेजों से
पाते रहे सदा ही आदर
पर न उन्हें निज शासक मानें
यद्यपि ओढ़ें खादी-चादर ।

(३)

मिस डॉ० ने पत्रों में देखा
जब कि विवाह-विषय विज्ञापन
लिखा प्रार्थना पत्र तुरत ही :
मैं लेती हूँ दुगना राशन ।

(४)

श्री०—को उपाधियों का था बहु
प्रेम । अतः भटके दरदर वे
कोई डिग्री न मिली बनते
जादू के ही प्रोफेसर वे !

(५)

आलोचकजी संभल-संभल कर
अपना कलम-कृपाण चलाते
दोधारा खाँडा था बहुत खुरदुरा
केवल मूठ हिलाते ।

(६)

रजपूती थी शान पुरानी
मगर जेब में चार टके थे
मूँछों को मरोड़, दरवानी
माँग रहे कुल-नाम न लेते ।

—श्री प्रभाकर माचवे

ईद की सौग़ात

कहानी

श्री ज़हूरबख़्श

सन ११८७ ई० की बात है। फ़िलिस्तीन की समर-भूमि में अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित अगणित मुस्लिम और ईसाई वीर आमने-सामने खड़े थे। दोनों दल एक-दूसरे को अग्नि-मय नेत्रों से घूर रहे थे और इस प्रतीक्षा में बेचैन हो रहे थे कि कब सेनापतियों से आदेश मिले और कब हम प्रतिपक्ष के रक्त से होली खेलना प्रारम्भ कर दे।

भला किस लिये ?

इस बात का निर्णय करने के लिये कि दोनों में अधिक धर्म-धुरन्धर कौन हैं—मुस्लिम या ईसाई ? इस बात का निर्णय करने के लिये कि दोनों में अधिक शक्ति-सम्पन्न कौन हैं—मुस्लिम या ईसाई ? और, सब से अधिक इस बात का निर्णय करने के लिये कि दोनों में जेरूसलम के वास्तविक अधिकारी कौन हैं—मुस्लिम या ईसाई ?

फ़िलिस्तीन में जेरूसलम एक अद्भुत स्थान है। यहूदी, ईसाई और मुसलमान उसे समान रूप से तीर्थ मानते और अपने अपने अधिकार में रखने के लिये शताब्दियों से समर-यज्ञ में मर कर रक्त की अपरिमित आहुति देते आए हैं। जब तक यहूदी बाहु-बल के धनी रहे, उसका स्वामित्व भोगते रहे। उसके बाद क्रमशः रोमन और बाइजेण्टाइन-साम्राज्य ने उसका आधिपत्य प्राप्त किया। परन्तु मुस्लिम-शक्ति ने अपने उदय-काल में ही बाइजेण्टाइन साम्राज्य को सदा के लिये जेरूसलम से खदेड़ दिया। बाइजेण्टाइन-साम्राज्य के अधिपति ईसाई थे। जब उनके हाथ से जेरूसलम निकल गया, तो यूरोप की ईसाई शक्तियों में हलचल मच गई और वे पुनः जेरूसलम पर अधिकार जमाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहने लगे। लगभग ढाई सौ वर्ष बाद सन १०९९ ई० में उनका प्रयत्न सफल हुआ। उन्होंने मुस्लिम जाति के अनुमानतः एक लाख आबाल-वृद्ध, नर-नारी तलवार के घाट उतार दिए और उनके निर्दोष रक्त से जेरूसलम का तर्पण किया। भला उत्साह और उद्योग में जीवन और जाग्रति की साँसें लेनेवाली मुस्लिम जाति यह भीषण पराजय कैसे भूल सकती थी ? उसके लिये तो यह भीषण पराजय सदा आँख में किरकिरी का काम किया करती थी। अन्त में उसने अट्ठासी वर्ष बाद सन ११८७ ई० में मिस्र और इराक़ के महापराक्रमी सुल्तान सलाहुद्दीन ऐयूबी के नेतृत्व में फ़िलिस्तीन पर प्रचण्ड आक्रमण किया।

१९५०

उस समय सम्राट गाइडी ल्युसिगगन फ़िलिस्तीन का अधिपति था। वह स्वयं वीर पुरुष था। इसके अतिरिक्त उसे यूरोप के ईसाई नरेशों की ओर से भी तन, मन, धन के रूप में प्रचुर सहायता प्राप्त हो रही थी। उसकी दृष्टि में इस युद्ध का एक ही उद्देश्य था—ईसाई या तो सदा के लिये जेरूसलम, फ़िलिस्तीन और सीरिया से हाथ धो लें, या फिर सदा के लिये मुस्लिम-शक्ति को चूर-चूर कर डालें। इसलिये वह पूर्ण बल-विक्रम के साथ सुल्तान सलाहुद्दीन ऐयूबी के सामने पहुँचा।

परन्तु इस बार जेरूसलम की ओर से ईसाइयों का सौभाग्य-सूर्य अस्त हो चुका था। मुस्लिम योद्धा आत्मोत्सर्ग की भावना से युद्ध कर रहे थे—प्राण हथेली पर रखकर लड़ रहे थे। उनके सामने सम्राट गाइडी ल्युसिगनन का रण-कौशल, बल, वीर्य और शौर्य कुछ काम न आया। भयानक मार काट के बाद वह अपने सभी सेनापतियों और अगणित सैनिकों सहित सुल्तान के हाथों बन्दी हो गया। परन्तु सुल्तान जैसा वीर था, वैसा ही सभ्य और शिष्ट था। वह सौजन्य ही में वीरत्व की परिणति समझता था। उसने तदनुकूल ही बन्दियों के साथ व्यवहार किया और उनको पद मर्यादा के अनुसार प्रतिष्ठा पूर्वक बन्दी-गृहों में भिजवा दिया। इतना ही नहीं, उसकी ओर से मुस्लिम सेना के लिये भी एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई, जिसका अभिप्राय था—'विजित ईसाई जनता को अभयदान दिया जाता है। उसके साथ कहीं किसी प्रकार का अत्याचार न किया जाए।'

सुल्तान ने एक नियम-सा बना रक्खा था। वह बहुधा प्रतिष्ठित युद्ध-बन्दियों को अपने पास बुलाता था। उनसे वार्तालाप करता था—उनके सम्बन्ध की आवश्यक और मनोरंजक बातें जानने की चेष्टा करता था। जब युद्ध जन्य क्लान्ति और चिन्ता कुछ दूर हुई, तो एक दिन सुल्तान ने 'चार्ल्स दि बोडेल' नामक एक नौजवान सेनापति को अपने दरबार में बुलाया। यह वह ईसाई वीर था, जो सुल्तान के लिये मृत्यु का अग्रदूत बन कर युद्ध-भूमि में पहुँचा था। यह वह ईसाई वीर था, जो युद्ध भूमि में बड़ी सतर्कता से सुल्तान की घात में लगा हुआ था और अवसर पाते ही उसपर तीर-वेग से टूट पड़ा था, परन्तु जिसे सुल्तान ने स्वयं पलक मारते पकड़ लिया था, और अब युद्ध-बन्दी बना कर रख छोड़ा था।

ईसाई वीर ने दरबार में पहुँचते ही सुल्तान के प्रति यथा-योग्य सम्मान-भाव दिखाया, फिर वह तनकर खड़ा हो गया। सुल्तान ने उस पर चोटी से लेकर एड़ी तक गहरी दृष्टि डाली और तब उसे बैठ जाने का संकेत किया। परन्तु ईसाई वीर बैठा नहीं, ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा और वीर-दर्प से बोला—'आला हज़रत अगर मुझे इस लिये बैठने की इज़्ज़त बख़्श रहे हैं कि मैं ज़ख़्मी हूँ, तो मैं आला हज़रत को यक़ीन दिलाता हूँ कि मेरा ज़ख़्म कुछ ऐसा गहरा नहीं है, जिससे मैं खड़ा न रह सकूँ। गुस्ताखी माफ़ की जाय, मैं आला हज़रत से यह भी अर्ज़ कर देना चाहता हूँ कि

अगर आज मुझे किसी तरह इस कैद से छुटकारा मिल जाए, तो मैं कल ही आलो हज़रत के ख़िलाफ़ मैदाने-जंग[1] में हथियार चलाता दिखाई दूँगा।'

सुल्तान के होठों पर मुसकान की रेखाएँ उभर आईं। उसने प्रभाव-पूर्ण स्वर में कहा 'सूरमा दुश्मन, जानता हूँ-समझता हूँ, इसीलिये तुम्हारी इज्जत करता हूं। यह तो मैं तुम्हारे ही मुँह से सुन रहा हूँ कि तुम जख्मी हो और इस खयाल से मैंने तुम्हें बैठने के लिये इशारा भी नहीं किया था। इस कद्र[2] हानी की खास वजह तो तुम्हारी वह अजीबो[3] गरीब बहादुरी है, जिसपर कोई भी इन्सान हजार जान से फ़ख्र कर सकता है, औरं जिसे मैं खुद मैदाने-जङ्ग-में अपनी आँखों देख चुका हूँ। लेकिन अब तुम अपने को जख्मी बतलाते हो, तो मैं तुम्हारे जख्मों की इज्जत[5] अफ़जाई के लिये अपने तख्ते शाही से उतर कर नीचे खड़ा होता और तुमसे दरख्वास्त करता हूँ कि इस तख्त पर-जो पाक कुरबानियों के पाक चबूतरे पर बिछा हुआ है-मेरे घुटने से घुटने मिलाकर बैठो।'

यह कहते-कहते सुल्तान ने अपनी लोहे जैसी भुजाओं में इसाई सूरमा को मिट्टी के पुतले की तरह उठा लिया। फिर वह उसे तख्त पर बिठाते-बिठाते मुसकिराकर बोला 'बहादुर, तुम इतनी जल्दी हमारी कैद से निकल भागने की फिक्र करने लगे। भला तुम्हें यहाँ आए अभी दिन ही कितने हुए है?'

'बेशक, मैं निकल भागने की फिक्र में हूँ और हरगिज यह वादा नहीं कर सकता कि कैदखाने में चुपचाप पड़ा रहूँगा।'

तुम्हें माल्रूम है, मुस्लिम कौमने कायदा बना रक्खा है कि जो जङ्गी कैदी अपना फहिया अदा कर देता है, वह छुटकारा पा जाता है। बहुत-से कैदी फहिया अदा कर छुटकारा पा भी चुके हैं। फिर तुम क्यों निकल भागने की फिक्र में पडों? बस, अपना फहिया अदा करो और घर का रास्ता लो। क्या ईसाई कौम तुम्हारी रिहाई के लिये फहिया न देगी?'

'मैं चाहता ही कब हूँ कि कोई मेरा फहिया दे! मुझे खुद निकल भागने की हिकमतें माल्रूम हैं!'

तो क्या ईसाई कौम मैं तुम्हारा कोई रिश्तेदार नहीं है?'

है क्यों नहीं! मेरा एक सगा छोटा भाई है। उसका नाम फ्रेडरिक दि बोडल है। वह जेरूसलम के 'सेण्ट जॉन अस्पताल में बीमारों की खिदमत करता है और इसी नेक काम में अपनी तमाम जिन्दगी बिताने का फैसला कर चुका है! इस अस्पताल में आनेवाले मरीज की हर मुमकिन खिदमत की जाती है-हर मुमकिन ख्वाहिश पूरी की जाती है। मरीज जो कहता है वही किया जाता है; जो चाहता है, वही पाता है। फ्रेडरिक के अलावा वहाँ मेरा एक और भी रिश्तेदार है।....

'कौन रिश्तेदार है वह?'

मेरी मँगेतर[7]....जिनों बीफ! वह वतन से मेरे साथ ही इस पाक मुल्क में आई है। यह तय हो चुका था कि जिस दिन मुस्लिम फौजों का सफाया होगा,हम दोनों जेरूसलम में एक-दूसरे के साथ शादी करेंगे और फतह की खुशी मनाएँगे। यह भी तय हो चुका था

१९५०

कि अगर मैं मैदाने जङ्ग में काम आया, तो जिनो वीफ या तो सेण्ट जॉन के अस्पताल में जख्मियों की ।खिदमत किया करेगी या फिर किसी खानकाह[८] में चली जाएगी और महजब की खिदमत में अपनी जिन्दगी गुजार देगी। बस, दुनिया में ये ही दो आदमी हैं, जो मेरी कुछ फिक्र कर सकते हैं।'

यह कहते-कहते चार्ल्स जैसे कुछ सोचने लगा और क्षण-भर मौन धारण करने के उपरान्त बोला—'आला हजरत मेरी असलियत से वाकिफ हो ही चुके हैं; बस अब अपने सिपाहियों को हुक्म दीजिए कि वह मुझे कैद खाने में ले जाएँ।....और, अगर बदला लेना चाहें, तो मैं खुशी से तैयार हूँ। आखिर मैंने आला हजरत की जिन्दगी का ।चिराग बुझा देने के लिये कसर ही क्या बाकी रक्खी थी। मगर मेरी एक अर्ज—छोटी-सी अर्ज है। मुझ से बदला लेने के पेश्तर अपना कोई आदमी जेरूसमल भेज दीजिए, 'जो फ्रेडरिक और जिनो वीफ को जिबह कर डाले।'

सुल्तान ध्यान—पूर्वक उसकी बातें सुनता रहा, फिर मुसकिराकर मधुर स्वर में बोला—'बहादुरी के लिहाज से तुम जरूर नौजवान हो; मगर आदमी की परख के लिहाज से बच्चे हो—महज बच्चे। .... खैर अभी तो कैदखाने में जाओ; मगर मेरे बारे में तुम्हें अपने खयालात बदलने के लिये बहुत जल्द मजबूर होना पड़ेगा।'

* * *

सन्ध्या का समय था। शीतलता के भार से वायु मन्द-मन्थर गति से बहने लगी थी। थोड़े ही दिन पहले युद्ध समाप्त हुआ था। इसलिये लोग स्वभावतः भयभीत थे और दिन रहते ही आना जाना बन्द कर देते थे फलतः चारों ओर स्तब्धता-सी फैल गई थी। परन्तु ढलती हुई आयु का वह यात्री निर्भय आगे बढ़ता जाता था। अन्त में लक्ष्य पर पहुँच कर उसने सेण्ट जॉन अस्पताल का फाटक खटखटाया। वेश-भूषा से वह स्पष्टतः ईसाई मालूम होता था। उसके कन्धे पर लाठी थी, और लाठी के ऊपरी छोर पर आवश्यक सामान की पोटली बँधी हुई थी।

यद्यपि जेरूसलम पर सुल्तान सलाहुद्दीन का अधिकार हो चुका था, तथापि उसने सेण्ट जॉन अस्पताल के कार्य-क्रम में किसी प्रकार की रुकावट डालना तो दूर रहा, बल्कि इस का आदेश दे रक्खा था कि ईसाई रोगी और यात्री अस्पताल में जब चाहें, निर्भय आ-जा सकते हैं। इसलिये सन्तरी ने यात्री की आहट पाते ही अस्पताल का फाटक खोल दिया। यात्री निरंसकोच भाव से अस्पताल में पहुँचा और वहाँ के कर्मचारियों से अपनी चिकित्सा के लिये प्रार्थना करने लगा।

अस्पताल के कर्मचारियों ने यात्री की यथोचित आव भगत की। उसे एक ठण्डे कमरे में ठहराया और उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिये एक आदमी नियत कर दिया। यात्री ने हाथ—मुँह धोकर अपनी क्लान्ति दूर की। फिर स्वच्छ सुकोमल शैया पर आसन जमाते जमाते सामने खड़े हुए व्यक्ति पर एक तीक्ष्ण दृष्टि डाली और गम्भीर स्वर में कहा—'सुना है, आप लोग किसी भी बीमार की ख्वाहिश नहीं ठुकराते, बल्कि बीमार जो चाहता है, वही करते हैं।'

'आपने जो सुना है, वह सच है।'

'अगर सच है, तो मैं चाहता हूँ कि बिरादर बोडेल मेरी खिदमत करे।'

'आप का मतलब कहीं बिरादर फ्रेडरिक दि बोडेल से तो नहीं है?'

'दुरुस्त फरमाया आपने। मेरा मतलब इसी बिरादर से है।'

'आपकी यह ख्वाहिश पूरी हो जाएगी।'

'और मुझे पानी पिलाने का काम किसी ऐसी बहिन के सिपुर्द कीजिए, जो बीमारों की खिदमत करती हो।'

'भला यह कैसे हो सकता है। बहिनें सिर्फ बीमार औरतों की खिदमत करती हैं मर्दों की नहीं।'

आश्चर्य यात्री के नेत्रों में झाँकने लगा। वह मुँह बनाकर बोला-'इतनी जल्दी बदल गए। आप अभी-अभी कह चुके हैं न कि यहाँ किसी बीमार की ख्वाहिश नहीं ठुकराई जाती।'

शिकारी मानो स्वयं अपने फैलाए हुए जाल में उलझ गया, कर्मचारी को विवशता के स्वर में उत्तर देना पड़ा—'अच्छा-अच्छा, आप की यह ख्वाहिश भी पूरी हो जाएगी। ....बस, और कुछ?'

'लेकिन मैं चाहता हूँ कि बहिन जिनोवीफ मुझे पानी पिलाया करे।'

'यकीन कीजिए, ऐसा' ही होगा।'

कर्मचारी ने जाकर अपने प्रधान अधिकारी को इस अनोखे बीमार यात्री की अभिलाषाओं का समाचार दिया। प्रधान अधिकारी पहले तो चकित-विस्मित हुआ, फिर कुछ सोच कर बोला—'कोई हर्ज नहीं, भाई फ्रेडरिक-दि-बोडेल उसकी खिदमत में रहेगा और बहिन जिनोबीफ उसे रोज़ चार बार पानी पिलाया करेगी।'

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही फ्रेडरिक कुछ आवश्यक वस्तुएँ लेकर यात्री के कमरे पहुँचा। उसके चेहरे पर उदासी मानो फूटी पड़ती थी। यह देखते ही यात्री ने उससे पूछा—'क्या मैं जान सकता हूँ कि आप इतने उदास क्यों हैं?'

'फ्रेडरिक एक दीर्घ निश्वास त्याग कर बोला—कुछ न पूछिए साहब! मेरा एक बहादुर भाई है—चार्ल्स दि बोडेल मैदाने-जङ्ग में ईसाई फौज के साथ वह भी सुल्तान का क़ैदी हो गया हो। बस, उसी की फिक्र में दिन-रात घुलता रहता हूँ।'

'मगर यह तो कोई बड़ी बात नहीं है। आप उसका फ़ाहिया भिजवा दीजिए। वह क़ैद से छुटकारा पा जायगा।'

'मैं गरीब आदमी हूँ। फ़हिया अदा करने के लिये मेरे पास रक्खा ही क्या है।'

'क्या यहाँ एक भी ऐसा ईसाई नहीं है, जो इस कारे[१]-सवाब में आप की इमदाद कर सके?'

'हम लोग परदेशी हैं। यहाँ सिर्फ मजहब और कौम की खिदमत करने के ख़याल से आए हैं। भला कहीं पैसे लेकर ख़िदमत की जाती है? फिर मेरा भाई बहादुर है, वह मर जाना पसन्द करेगा मगर पैसे देकर आज़ादी ख़रीदने के ख्याल को भी दिलमें जगह न देगा। आप ही बतलाइए, मैं गलत तो नहीं कहता।'

'फ्रेडरिक के जाते ही जिनोबीफ पानी का घड़ा लेकर आ गई। यात्री उसे ध्यानपूर्वक पढ़ने की चेष्टा करने लगा—'साँचे में

१९५०

ढली हुई अतीव सुन्दर देह-यष्टि, कुहरावृत पङ्कज-पुष्प–सदृश मुख-मण्डल और विशाल साश्रु नील-नयन। आकर्षण की उस मनोरम सृष्टि को देखते-देखते यात्री क्षणभर के लिये मानो अपने आपमें खो गया। फिर अपने कर्कश स्वर को यथा-सम्भव मधुरिमा में रंगते रंगते बोला—तुम्हें मालूम है, इस अस्पताल में हर मरीज़ की ख्वाहिश पूरी की जाती है?'

जिनोवीफ़ के कण्ठ में मानो वंशी कूक उठी—'मालूम है।'

यात्री ने पुरुष-सुलभ-स्वर में निस्संकोच भाव से कहा—तब तुम्हें मेरी ख्वाहिश भी पूरी करनी पड़ेगी।'

जिनोवीफ़ के हृदय से सिहरन की एक लहर उठी और विद्युत् के समान शरीर-भर में व्याप्त हो गई। वह कम्पित विगलित स्वर में बोली—'मैं एक दुखियारी औरत हूँ—बदकिस्मती के हाथों लुटी, सरमों के हाथों पिटी और गमों के हाथों मरी। भला मैं आप की कौन-सी ख्वाहिश पूरी करने लायक हूँ?'

यात्री ने आग्रह किया-'बस, यही बतला दो कि तुम्हारी भोली-भाली आँखों में ये फ़ुरात[१०] और एजला[११] क्यों उमडी हुई हैं?'

'मगर इससे आप को फायदा क्या होगा।'

'फ़ायदा क्यों न होगा। मेरी ख्वाहिश तो पूरी हो जाएगी।'

जिनोवीफ कुछ प्रकृतिस्थ हुई और करुण स्वर में बोली—'नहीं मानते, तो सुनिए। मैं बड़े-बड़े अरमान ले कर चार्ल्स दि बोडेल के साथ इस मुल्क में आई थी। हम दोनों ने आपस में तय यह किया था कि चार्ल्स जङ्ग में हिस्सा लेने जाएगा और मैं यहाँ जख्मियों की ख़िदमत करूँगी। इसके बाद जिस दिन मुसलमान शिकस्त खाएँगे, हम दोनों शादी के बन्धन में बँधकर एक हो जाएँगे और फतह का जशन[१२] मनाएँगे। मगर यह दुनिया है, यहाँ इन्सान सोचता कुछ है, होता कुछ है। बद-क़िस्मती से चार्ल्स आज सुल्तान का क़ैदी है। मैं उसकी सूरत देखने को तरसती हूँ और मेरे अरमान सरमे की आँख से पिघल-पिघल कर—आँसू बन-बन कर आँखों की राह बहते हैं।'

'आख़िर इस तरह परेशान होने की क्या जरूरत है। सीधी-सी तो बात है। चार्ल्स फहिया दाखिल कर दे और आजादी हासिल कर ले।'

'बहादुर लोग खून दे कर आजादी हासिल करते हैं, पैसे दे कर नहीं।'

'माना, मगर इन्सान को मौक़ा-महल देख कर भी तो काम करना चाहिए।'

'उसूल मौके की ओट में कुरबान नहीं किए जाते।'

'यह कहते-कहते जिनोवीफ का हृदय भर आया और उसके नेत्रों से बड़े-बड़े अश्रु-बिन्दु गिर कर भूमि सींचने लगे।

यात्री आश्वस्त स्वर में बोला—'छिः पगली। ....रोती है। अल्लाह पर भरोसा कर। वह बड़ा कार साज़[१३] है। मैं कहता हूँ, दुःख की यह बदली बहुत जल्द फट जाएगी और तू सुख का सूरज उगता हुआ देखेगी।'

* * *

पहला दिन बीता, दूसरा दिन बीता, परन्तु बीमार यात्री ने भोजन का स्पर्श भी न किया। फ्रेडरिक आग्रह करते-करते थक गया, परन्तु उसने उत्तर में हर बार

अ-स्वीकृति सूचक सिर हिलाया। यदि कभी कुछ कहा भी, तो यही कि मैं एक चीज़ खाना चाहता हूँ। परन्तु लाख-लाख पूछने पर भी यह न बतलाया कि आखिर वह कौन सी चीज़ खाना चाहता है। अब तो अस्पताल में बड़ी हलचल मची। क्या कर्मचारी, क्या अधिकारी—सभी यात्री की जीवन-रक्षा के प्रश्न को लेकर चिन्तातुर हो उठे और आपस में कहने लगे—'अजीब बीमार है यह—एकदम ढीठ और ज़िद्दी। न उसकी बीमारी का पता चलता है, न उसके यहाँ आने का मतलब मालूम होता है। अगर वह इसी तरह भूखों मर गया, तो हमारा अस्पताल बदनाम हो जाएगा।'

परन्तु तीसरे दिन जिनोवीफ़ हाथ धो कर उसके पीछे पड़ गई और नेत्रों में आँसू भर कर कातर स्वर में बोली—'आप भूखे पड़े रहें और हम लोग खाएँ–पिएँ यह तो बड़ा गुनाह है। या तो कुछ खाइए, या फिर उस चीज़ का नाम बतलाइए, जो आप खाना चाहते हैं।'

अब तो यात्री बड़े पसोपेश में पड़ा, आख़िर उसने उत्तर दिया—'मैं भुना हुआ गोश्त खाना चाहता हूँ।'

'तौबा! इतनी सी बात के लिये आप खुद दो दिन से भूखों मर रहे हैं और हम लोगों का परेशान कर रहे हैं।'

'मगर एक शर्त है।'

, कहिए तो सही।'

'तुम्हारा दावा है कि इस अस्पताल में किसी मरीज़ की कोई बात नहीं टाली जाती।'

'आपने अब तक जो कुछ कहा है, वही किया गया है न? अब और जो ख्वाहिश हो, कह डालिए, वह भी पूरी की जाएगी।'

'तुम्हारे बड़े डॉक्टर साहब के पास असल अरबी घोड़ा है न?'

'हाँ, है तो!'

'मैं उसी की रान का भुना हुआ गोश्त खाना चाहता हूँ।'

जिनोवीफ़ सन्नाटे में आ गई, आँखें फाड़-फाड़कर यात्री का मुँह ताकने लगी। फिर सूने-सूने स्वर में बोली—'मगर वह घोड़ा बहुत कीमती है—डॉक्टर साहब को जान से ज्यादा प्यारा है।'

यात्री ने निर्णय के स्वर में उत्तर दिया—कुछ भी हो, मैं खाऊँगा तो उसी घोड़े की रान का भुना हुआ गोश्त; नहीं तो कुछ भी नहीं।'

'ज़रा सोचिए तो सही, आप की यह माँग कितनी अनुचित है! जीभ के ज़रा से जायके के लिये इतना कीमती और प्यारा जानवर काट डाला जाए—यह तो गुनाह—बेलज्जत है। भला इसे कौन समझदार आदमी गवारा करेगा?'

फिर इस अस्पताल के मुलाजिम किस मतलब से मेरे सामने वार-बार यह कुबूल कर चुके हैं कि यहाँ किसी मरीज की कोई ख्वाहिश नहीं ठुकराई जाती?'

'खैर, मैं आप की यह माँग डॉक्टर साहब के सामने पेश कर दूँगी।'

'तो जल्दी करो! डॉक्टर साहब से कह दो कि मैं मर भले ही जाऊँ, वह अरबी घोड़े की रान के गोश्त को छोड़कर और कुछ खानेवाला नहीं। अगर डॉक्टर साहब सचाई पर कायम हैं, तो उनको मेरे लिये अपना प्यारा घोड़ा हलाल करना ही पड़ेगा। समझीं?'

यह सुनते–सुनते जिनोवीफ उदास मुद्रा में चली गई और थोड़ी देर बाद फ्रेडरिक के

साथ प्रसन्न मुद्रा में लौटे आई और यात्री से बोली–'प्यारे भाई, डॉक्टर साहब ने आप की ख्वाहिश मंजूर कर ली है। वह देखिए खिड़की के रास्ते, लोग उस अरबी घोड़े को हलाल करने के लिये, लिये जा रहे हैं।'

यह सुनते ही यात्री में जैसे बिजली कौंध गई। वह छलांग मार कर अपने बिछौने से उठा, खिड़की पर पहुंचा और मेघ गम्भीर स्वर में चीख पड़ा–'खबरदार, घोड़े को जिबह न करना !'

इसके बाद ही उस अनोखे यात्री ने अपने ऊपरी वस्त्र उतार कर फेंक दिए। अब वह दिव्य अरबी परिच्छद धारण किए हुए खडा था। देखते देखते फ्रेडरिक और जिनोवीफ का कौतूहल विस्मय का रूप ग्रहण करता हुआ भय के क्षेत्र में प्रविष्ट हो गया और वे चीत्कार कर उठे। उनका चीत्कार सुनते ही अस्पताल के सभी छोटे-बड़े कर्मचारी उस कमरे में आ पहुंचे और यात्री पर दृष्टि पड़ते ही मारे भय के पीपल के पत्ते सदृश थर–थर काँपने लगे।

यात्री के कोमल कान्ति–युक्त, किन्तु तेजस्वी मुख-मण्डल पर प्रसन्न मुसकान खेल रही थी। उसने धीरे-धीरे अपना दाहिना हाथ कुछ ऊपर उठाया और सम्बोधन के स्वर में कहा 'डरो मत ! जो शख्स इस वक्त तुम से बात कर रहा है, जानते हो, वह कौन है ? वह और कोई नहीं, खुद सुल्तान सलाहुद्दीन ऐयूबी है। वह तुम्हारे अस्पताल का मुलाहिजा करने आया है और अपनी आँखों यह देखकर बहुत खुश हुआ है कि तुम लोग वाकई इन्सान हो और बड़ी सचाई से–बड़ी ईमानदारी से मरीजों की खिदमत करते हो।'

सुल्तान का कथन समाप्त होते-होते वह कमरा 'सुल्तान सलाऊद्दीन ऐयूबी–जिन्दाबाद के गगन-भेदी नाद से गूँज उठा।

यह समाचार वनाग्नि के समान चारों ओर फैल गया और नगरनिवासी दल बाँध-बाँध कर सुल्तान के दर्शनार्थ अस्पताल की ओर चल पड़े। परन्तु अब सुल्तान वहाँ कहाँ था ! वह तो उसी समय वहाँ से निकल गया था।

* * *

धीरे-धीरे हज़रत ईसा के मीलाद[१४] की ईद[१५] निकट आ गयी। मनुष्य स्वभावतः प्रथा-पूजन का प्रेमी होता है: क्योंकि प्रथा-पूजन की ओट में उसे नव-जीवन की झलक दिखाई देती है। इसलिए युद्ध में पराभूत ईसाई भी ईद मनाने की तैयारियाँ करने लगे। सुल्तान ने ईसाई बन्दियों को भी आज्ञा दे दी कि वे प्रसन्नता-पूर्वक अपना त्योहार मनाएँ। उसके बाद उसमें एक दिन चार्ल्स दि बोडेल को अपने पास बुलाया और उससे कहा—'तुम्हें मालूम है, हज़रत ईसा के मीलाद की ईद करीब आ पहुँची है ?'

'जी हाँ !'

'मैं इस मौके पर तुमसे एक ख़ास काम लेना चाहता हूँ। वह सिर्फ़ तुम्हारे हाथों पूरा हो सकता है, और किसी के हाथों नहीं।'

'मैं ख़िदमत के लिये तैयार हूँ, बशर्ते कि उससे मेरी क़ौम को कोई नुक़सान न पहुँचे।'

'बिलकुल नहीं !'

'बस तो फ़रमाइये !'

'मैं एक ख़त तुम्हारे सुपुर्द करूँगा, मगर तुम उसे रास्ते में हरगिज़ न पढ़ सकोगे।'

'बेहतर है!'

'तुम ख़त लेकर जेरूसलम जाओगे और सेण्ट जॉन अस्पताल के बड़े डॉक्टर के हवाले कर दोगे।'

'मैं ऐसा ही करूँगा।'

'मगर कब? ठीक ईद के दिन, रात के वक्त, जब कि सब लोग खुशियाँ मना रहे होंगे। समझ गये न?'

'जी हाँ!'

'बस, तो जाओ!'

यह कह कर सुल्तान ने एक लिफ़ाफ़ा चार्ल्स के हाथ में दे दिया। चार्ल्स लिफ़ाफ़ा लेकर कुछ, सोचने लगा। फिर धीरे से बोला—'मगर. . .!' और, इसके बाद जैसे उसकी जिव्हा अवरुद्ध हो गयी—वह कुछ कहने में असमर्थ हो गया।

'मगर क्या? बोलो न—चुप क्यों हो गए?'

'मैं कैदी हूँ। अगर कहीं बेईमानी करूँ, धोखे-बाज़ी से काम लूँ और भाग निकलूँ तो? . . . आपने मुझ पर यकीन कैसे कर लिया?'

'मेरे नादान बच्चे! अभी तू यह भेद नहीं जानता। सुन मैं तुझे बतलाता हूँ। जिस इन्सान में इन्सानियत होती है, उसी में बहादुरी होती है, और जिस इन्सान में बहादुरी होती है, उसके दिल में बेईमानी-धोखेबाज़ी के अंकुर पनप भी नहीं सकते। बस जा! मैं तुझ पर यक़ीन करता हूँ।'

सुल्तान का यह विश्वास पाया, तो चार्ल्स के चेहरे पर आत्म-गौरव की आभा फूट निकली। वह सुल्तान के प्रति यथेष्ट सम्मान प्रदर्शित कर वहाँ से चल दिया और ठीक समय पर सेण्ट जॉन अस्पताल के क्षेत्र में जा पहुँचा। वहाँ सभी लोग उत्सव मनाने में व्यस्त थे और आमोद-प्रमोद की लहरों में बहे जा रहे थे। परन्तु फ्रेडरिक और जिनोबीफ़ एक ओर उदासी में डूबे बैठे थे। कर्तव्य-शील चार्ल्स ने उन पर सूक्ष्म दृष्टि डाली, ठण्ढी साँस छोड़ी और आगे बढ़ते-बढ़ते सुल्तान का लिफाफा बड़े डॉक्टर के सामने रख दिया।

डॉक्टर ने लिफाफ़ा खोल कर पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था—

'सुल्तान सलाहुद्दीन सेण्ट जॉन अस्पताल की मेहमान नवाज़ी[१६] के लिये शुक्र गुज़ार[१७] है। बिरादर फ्रेडरिक दि बोडेल की मुहब्बत-भरी ख़िदमत के एवज़ उसकी बहुत-बहुत तारीफ करता है, और बहिन जिनोवीफ़ की ममता-भरी ख़िदमत के बदले उसके मँगेतर चार्ल्स दि बोडेल को 'ईद की सौग़ात' के तौर पर भेजता है। उम्मीद है कि बहिन जिनोवीफ यह सौग़ात पा कर अपने कुल रंजोग़म भूल जाएगी।'

---

१ युद्ध-भूमि, २ गुण-ग्राहकता, ३ अनोखा, ४ गर्व, ५ सम्मान-वृद्धि, ६ मुक्ति-धन, ७ वाग्दत्त, ८ साधु-आश्रम, ९ पुण्य-कार्य, १०-११ इराक की नदियाँ, १२ उत्सव, १३ काम बनानेवाला, १४ उत्पत्ति, १५ खुशी, १६ अतिथि-सत्कार, १७ कृतज्ञ.

धारावाही उपन्यास :

पूर्णिमा

अनन्त गोपाल शेवड़े

[**अवतक की कथा :**

वैरिस्टर पण्डित की सुन्दरी कन्या पूर्णिमा को पाने के लिये विलासमोहन टेनिस, सिनेमा, डिनर, नेकलेस की भेंट आदि उपकरणों का उपयोग करके अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न करता जा रहा था। पूर्णिमा के स्वभाव का एक पहलू इसी प्रकार के जीवन को पसन्द करता था और इस लिये वह विलास की ओर आकर्षित हो रही थी।

किन्तु पूर्णिमा के जीवन का एक गंभीर और उदात्त पहलू भी था जो तेजस्वी तरुण विनयकुमार से प्रभावित था। विनय एक आदर्शप्रिय, सिद्धान्त-निष्ठ और कर्मठ युवक था। उसकी धारणा थी कि पूर्णिमा यदि उचित वातावरण में रहे तो वह भी उच्च आदर्शवादिता और गहन जीवन-तत्वों के क्षेत्र में संचार कर सकती है और समाज के लिये एक उपयोगी अंग साबित हो सकती है।

पूर्णिमा स्वयं विनय के प्रति अत्यन्त आदर और श्रद्धा का भाव रखती थी लेकिन उससे मन ही मन कुछ डरती भी थी; क्योंकि उसकी धारणा थी कि विनयं उसकी पहुँच के परे है, उससे ऊंचा है जिससे वह समरस नहीं हो सकती।

विलासमोहन तो 'खाओ-पिओ-मौज करो' की 'जीवन-प्रणाली' को माननेवाला छैल छबीला नौजवान है जिसको वह पूरा पूरा समझ सकती है और जिसे वह मन चाहा नचा भी सकती है। इस लिये उसका ख्याल है कि उसका प्रेम विलास से ही है।

एक दिन जब विनयकुमार अकेला ही काँग्रेस पार्क में हरी दूब पर लेटा हुआ था तब अचानक उसने कॉलेज के विद्यार्थियों के एक ग्रूप द्वारा पूर्णिमा और विलास के विवाह के बारे में चर्चा सुनी जिसके कारण उसका हृदय न जाने क्यों घोर व्यथा से भर गया।

यह देख कर उसका मित्र सुशील एकाएक उससे पूछ बैठा—"कहीं तुम स्वयं पूर्णिमा से प्रेम तो नहीं करने लगे?"

विनय इस परिज्ञान के कारण लगे हुए आघात को सहन नहीं कर सका क्योंकि उसने देख लिया कि सुशील जो कह रहा है वह सच है। लेकिन उसने साथ-ही-साथ यह भी निश्चय कर लिया कि वह पूर्णिमा को एक बार आगाह कर दे कि विलास के साथ विवाह करने में वह भयंकर भूल कर रही है क्योंकि इसमें केवल दुःख और निराशा के और कुछ हाथ लगनेवाला नहीं।

वह पूर्णिमा के यहां जाता तो है लेकिन जब वह विलास के और उसके विवाह की चर्चा करता है तो वह एकदम उस पर उलट पड़ती है और तेज़ी से कह डालती है कि वह औरों के मामलों में हाथ न डाले। विनय अपमानित होकर उसके यहां से लौट आता है—क्रोध और ग्लानि से कांप उठता है।

प्रणय-भंग और अपमान के आघात से विनय लड़खड़ा उठता है—एकदम बिस्तर पकड़ लेता है। डॉक्टर घोषित करते हैं कि उसे टायफाइड हो गया है जो कम से कम २१ दिन रहेगा।

यहां पूर्णिमा स्वयं विनय के चले जाने के बाद पश्चात्ताप और आत्म-ग्लानि अनुभव करती है। जब उसे पता चला कि विनय बीमार है तब उसकी धारणा पक्की हो गई कि वह स्वतः उसकी बिमारी के लिये बहुत कुछ जिम्मेदार है। वह सारे बन्धनों को तोड़कर विनयकुमार की रुग्णशय्या के पास दौड़ी चली आती है और इस प्रकार तन्मयता के साथ उसकी शुश्रूषा करती है जैसे वह अपमान की घटना हुई ही न हो।

घोर शारीरिक एवं मानसिक व्यथा के बाद विनय का बुखार उतरता है और डॉक्टर की सलाह के मुताबिक वह आबहवा बदलने के लिए सतपुड़ा की शैल मालाओं में स्थित पचमढ़ी जाने का निश्चय करता है।—अब आगे पढ़िये।]

अठारहवाँ-परिच्छेद

: नगाधिराज की दीक्षा :

इक्कीस दिन के लगातार बुखार के कारण विनयकुमार बहुत कमजोर हो गया था। बिस्तर पूरी तरह छोड़ने के लिये उसने लगभग तीन सप्ताह और लिये। उस बीच में तीन-चार बार उस्ताद बहादुरखां आये और चूंकि विनय को संगीत से प्रेम था, अपनी चीज़ें सुना गये। पूर्णिमा भी कभी कभी अपना गाना सुना देती थी। पूर्णिमा और विनय को कई बार एकान्त मिला किन्तु कभी किसी ने उस संध्या की अप्रिय घटना का दूर से भी उल्लेख नहीं किया, जिसके बाद विनय इस लम्बी बीमारी का शिकार बना था। मानों ऐसी कोई घटना घटी ही नहीं। लेकिन दोनों के अन्तस्तल में उस घटना का कोई नामोनिशां नहीं बचा था ऐसा भी नहीं था। पूर्णिमा के व्यवहार में परिताप का भाव कभी-कभी व्यक्त हो जाता था और विनयकुमार के हृदय में विरक्ति का। उसके सारे वर्त्ताव में अकृत्रिम संयम था जो दिन ब दिन बढ़ता-सा नजर आ रहा था। बस केवल इतनी-सी बात छोड़ कर उन दोनों के व्यवहार में बिलकुल खुलापन था, जैसे दो निकट मित्रों के बीच होता है।

कई बार विनय ने पूर्णिमा के प्रति उसकी सेवा, परिचर्या और स्नेह के लिये परम कृतज्ञ भाव व्यक्त किये। इस कृतज्ञता प्रकाश से उस रमणी को भी सुख होता था, विशेषतः इस जानकारी से कि उसने अपने अपराध का प्रायःश्चित्त कर लिया है और वह विनय कुमार जैसे मित्र के काम आ सकी है, उसे सुख पहुँचा सकी है, खास कर ऐसे संकट के समय जब वह दुर्धर रोग के पंजे में जकड़ा हुआ कराह रहा था। ईश्वर ने उसे ऐसा अवसर दिया इसके लिये मन ही मन उसने धन्यवाद भी दिये। किन्तु रह रह कर उसे जो आश्चर्य हो रहा था वह इस बात से कि विनय कुमार जैसे धीर-गंभीर पुरुष को उस संध्या की घटना ने इतने भयंकर रूप से कैसे विचलित कर दिया, जैसे उसके समस्त व्यक्तित्व में एक घोर उथल-पुथल मच गई हो, जिसने उसे जड़ से हिला दिया हो। विनयकुमार के जीवन में इससे भी कठिन कई प्रसंग आये होंगे और उन सब में से वह एक शक्तिशाली पुरुष की तरह अधिक सबल होकर ही निकला है। फिर इस बार वह क्यों इतना विचलित हो गया था?

विनय को इतनी तकलीफ़ें बर्दाश्त करनी पड़ीं इस से उसे दुख तो हुआ था। किन्तु उसके जीवन में वह बिलकुल नगण्य नहीं है, वह भी उसके अन्तर्जीवन को इस तरह जोर से आन्दोलित कर सकती है इस कल्पना से पूर्णिमा को एक विचित्र प्रकार का सुख भी हुआ। अपनी शक्ति पर उसका विश्वास अधिक दृढ हो गया।

विनयकुमार के कमज़ोर स्वास्थ्य की तरफ देखकर डॉक्टरों ने उसे पहाड़ पर जाने की सलाह दी। दिसम्बर की छुट्टियाँ भी आने वाली थीं और उसके बाद तो सीनिअर क्लासें प्रायः बन्द ही हो जाती हैं। इस लिये विनयकुमार को अपने लेक्चर्स की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। प्रिंसिपल नियोगी साहब ने भी इस सलाह का समर्थन किया। सुशील ने भी जोर दिया। विनय ने भी इस सूचना का विरोध नहीं किया। पहाड़ और प्राकृतिक सौन्दर्य से उसे उत्कट प्रेम था। वन्य प्रदेशों के भव्य एवं उदात्त वैभव में—फल-फूलों से सुशोभित हरे और घने वृक्षों में, चट्टानों से लढ़नेवाले निर्झरों के कल-कल निनाद में, तथा खग वृन्दा के स्वाभाविक एवं मधुर गायन में वह

१९५०

पागल हो उठता था। उसका हृदय आत्मविस्मृत हो प्रकृति देवी के प्रशान्त सौन्दर्य में विलीन हो जाने के लिये सदैव आतुर रहता था। इस लिये उसने बगैर आना-कानी किये इस सलाह को मान लिया और वह एक दिन शाम को सुशील के साथ तथा एक विश्वस्त नौकर साथ में लिये पैसेंजर गाड़ी से पचमढ़ी के लिये रवाना हो गया। वहाँ के एक ईसाई सज्जन के बंगले में उसे एक सुन्दर ब्लाक मिल गया था। चूंकि इस वक्त सीजन नहीं था इस लिये किराया सस्ता ही देना पड़ा। वहीं उसने अपनी छोटी सी गिरस्ती जमा ली। सुशील ने तीन-चार दिन ठहरकर उसकी सारी व्यवस्था लगा दी। वहीं का एक और जानकार गोंड नौकर रख लिया जो उसे घुमाने के लिये जंगलों और पहाड़ों में ले जाता और घर का नौकर भीकू उसके खाने-पीने का तथा व्यक्तिगत आराम का इन्तज़ाम किया करता था। सुशील के लौटने के बाद विनय को कुछ अकेला-अकेला सा लगा लेकिन उसने जल्द ही इस एकाकीपन की भावना पर अपना काबू पा लिया और घूमने फिरने में, प्राकृतिक सौन्दर्य की सुधा का पान करने में वह इन सब बातों को भूलने सा लगा। आधी तबीयत तो केवल वायु परिवर्तन के कारण ही तन्दुरुस्त हो गई और बाकी अब वह यहाँ रह कर कमा लेगा।

पचमढ़ी में वह अकेला था, और अकेला ही रहना चाहता था। इस समय वह अपने विचारों और भावनाओं के साम्राज्य का एकाकी निवासी ही होकर रहना चाहता था। यहाँ तक कि उसके बंगले के मालिक के साथ, जो ईसाई डॉक्टर थे तथा उनके परिवार के साथ भी उसने विशेष परिचय बढ़ाने की कोशिश नहीं की। सुबह दूध और फल का नाश्ता लेकर वह अपने 'गाइड' के साथ घूमने निकलता तो चार-चार पांच-पांच घण्टे तक सतपुड़ा पर्वत की वन-राजियों के बीच में अदृश्य हो जाता। क्रमशः उसका घूमना बढ़ते-बढ़ते आठ-दस मील आसानी से हो जाता था। बी फॉल, लिटिल फॉल, वॉटर्स मीट, धूपगड़, हांडीखोह, पथरचट्टा, महादेव—एक-एक करके ये सब सौंदर्य के वह स्थान देख आया। प्रत्येक के पास पत्थरों बैठकर उनसे विचार-विनिमय और भावों का आदान-प्रदान किया करता। जब इस प्रकार उसकी मूक-सौन्दर्य साधना चलती तब उसका 'गाइड' इस अजीब 'बाबू' की तरफ आश्चर्यान्वित हो टकटकी लगाकर कुछ देर तक देखता और फिर जब उसकी समझ में कुछ न आता तो अपने खीसेमें से बीड़ी का कट्टा निकाल कर किसी चट्टान के पीछे जाकर धौंका करता। उसकी विचार-तन्द्रा में कोई भंग न हो इस लिये विनय उस 'गाइड' को एक दिन की आड़ से एक बीड़ी का कट्टा और माचिस ले दिया करता, जो उसकी तनख्वाह के अलावा था। 'गाइड' बड़ा प्रसन्न। इस नये बाबू की लहर को वह समझे या न समझे, लेकिन वह उससे निहायत खुश था।

विनय ने ऐसे कई स्थान खुद के लिये चुन लिये थे जहां चट्टान पर बैठकर वह अपनी विचार-साधना की समाधि में बेखटके लीन हो सकता था। आस-पास ऊँचे ऊँचे घने हरे झाड़ों की छाया थी सामने पहाड़ अपने पीठ पर वृक्षों और चट्टानों का भार लिये, आराम कर रहे थे। नील-वर्ण आकाश में कहीं-कहीं शुभ्र-मेघ दिखाई देते थे। शिशिर का सूर्य चमकता था; दूरसे किसी उन्मत्त निर्झर का कलकल निनाद पार्श्व संगीत की तरह समस्त वातावरण के आल्हाद की श्री वृद्धि करता था, कहीं से टिटहरी आकर इस प्रशान्त वातावरण की शान्ति को भंग कर जाती और उसकी ध्वनि की झांई उन्हीं पहाड़ियों पर कुछ क्षण तक गूज करती। कभी कभी किसी झाड़ पर तोते बैठे हुए दीख पड़ते, कहीं वृक्षों पर रंग-विरंगे फूल दृष्टि गोचर होते। सारा दृश्य आल्हाद-प्रद ही नहीं हृदय को उद्वेलित करनेवाला, भावनाओं को उन्मीलित करनेवाला था। विनय कुमार नगाधिराज के साम्राज्य के इस महान वैभव की छत्र-छाया में न जाने कितने क्षण, कितने समय तक बैठा रहता-सोचते-विचारते, अनुभूति करते—

पहाड़ों के बीच में बैठकर, उसे लग रहा था कि वह भी ऊंचा उठ गया है और मैदान के सुख-दुखों को, आघातों और अपमानों को वह सदा के लिये भूल जाना चाहता है। पिछले कुछ महिनों का इतिहास उसे याद आया। उसके जीवन में पहली बार ही ऐसी रमणी आई थी जिसके प्रति उसके हृदय में प्रीति की ऊर्मि जाग्रत

हुई थी। आज तक वह किसी भी नारी के सामने हारा नहीं, झुका नहीं; छोटा नहीं बना। किन्तु जिस नारी के प्रेम को वह सम्पादन करना चाहता था वही आज उसे पराजित करके दूर ढकेल कर भाग खड़ी हुई है, और वह भी अपना मस्तक ऐसे व्यक्ति की गोद में छिपाने के लिये जिसमें गहराई नहीं, भावनाओं की उत्कटता नहीं, तथा ऐसी गुण सम्पन्न युवती के स्नेह और आदर का भार सम्हालने की शक्ति नहीं। परम आश्चर्य की बात यही है। नारी के हृदय के भावावेशों का विश्लेषण कौन कर सकता है? वह स्वतः भी कई बार नहीं जानती कि इसके हृदय की क्षुधा क्यां चाहती है, किसे चाहती है? बे-समझे, बे-जाने वह प्रणयावेश में किसी को वरमाला पहना बैठती है और बाद में फिर किसी दूसरे को वह माला क्यों न पहनाई इसके लिये पश्चात्ताप करती बैठती है। किन्तु उस समय तो अस्थिरता, हृदय-कम्पन और अशान्ति के बाद भी वह तो यही मानती है कि उसका निर्णय सही है और उसके इस फैसले में दस्तन्दाजी करने का किसे भी अधिकार नहीं है, क्योंकि प्रीति व्यक्तिगत भावनाओं के साम्राज्य की एकमात्र अंधिष्ठात्री है और वहाँ दूसरे का शासन नहीं चल सकता। यही तो पूर्णिमा ने किया था। और जब इसे रोकने का दूर से इशारा मात्र करने का उसने प्रयत्न किया था तब वह किस भीषणता से एक क्रुद्ध नागिन की तरह उस पर टूट पड़ी थी? नारी सब कुछ सह सकती है पर जिस पुरुष को वह अपने प्रेम का पात्र बना लेती है उसका अपमान या निन्दा तनिक भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। उस पुरुष को साथ लेकर तो वह सारे संसार से लड़ने के लिये तैय्यार हो जाती है और अनुभव करती है कि इतनी ताकत उसमें यथार्थ में है। विनय ने सोचा, उसे प्रणय का प्रथम अनुभव हुआ वह भी कितना वेदनामय था? इकतर्फा तो था ही। लेकिन सबसे दुख की बात तो यह थी कि पूर्णिमा ने उसे समझा ही नहीं। जो हीरा उसके हाथ में अपने आप चला आ रहा था वह उसने चमकीला पत्थर समझ कर दूर फेंक दिया। दुनिया कहती है कि वह हीरा है, किन्तु जिस एक रमणी को उसे हीरा मानना आवश्यक था वही उसकी कद्र न कर सकी तो फिर उस हीरे को भी उस अभागे न्यायासन का फैसला चुपचाप मान लेने के सिवा चारा ही क्या रह जाता है?

किन्तु प्रणय का अनुभव भला हो या बुरा हो, यह तो अपना अपना भाग्य है जो विधाता ने प्रत्येक मानव की जन्म-पत्रिका पर लिख दिया है। प्रणय कोई मिट्टी का घरौंदा नहीं जो जब चाहे तब बनाया जा सके। न वह कोई बाजार की वस्तु है जो दूकान पर खरीदी जा सके। टेनिस के खेल में तो जिनके नाम से चिट्टी निकली वे ही पार्टनर (साथी) हो जाते हैं। लेकिन जीवन के खेल में तो साथी का निर्वाचन इतना सरल नहीं है। वहां तो दोनों हृदयों का आकर्षण, भावनाओं का आदान-प्रदान, इकसाँ होता है। एक बाजू भी कमजोर हो जाय तो प्रणय का प्रसाद बनेगा ही नहीं। इस लिये विनय-कुमार अब कभी पूर्णिमा के रास्ते से जायगा भी नहीं। जो उसकी किस्मत में लिखा है वह उसे हिम्मत के साथ बर्दाश्त करेगा। किसी भी हालत में वह जीवन से मुँह नहीं मोड़ेगा। व्यक्तिगत जीवन में उसके दिल को गहरा जख्म लगा है और उसका भरना दुस्तर है, पर उस जख्म को दुनिया के सामने दिखा कर आँसू बहाना भी तो कायरता है, पराजय है। इस प्रकार पराजित होना, उसके जैसा प्रखर स्वाभिमानी तरुण गवारा नहीं कर सकता।

सतपुड़ा की उत्तुंग पर्वतमालाओं ने उसे एक ही सबक सिखलाया। न जाने कितनी शताब्दियों से ये पर्वतराज खड़े हुए हैं। भगवान रामचन्द्र के वनवास के ये साक्षी रहे हैं, सीता माता के विलाप की प्रतिध्वनि में इन्होंने भी विलाप किया है; बुद्ध देव के भिक्षुओं को इन्होंने अपने उर में स्थान दिया है। सम्राटों का बनना-बिगड़ना इनकी आँखों के सामने हुआ है; गदर, युद्ध, बलवे इन्होंने देखे हैं, गोंडों की वीरगाथावो के ये ही प्रांगण बने हैं; मानव जाति का उत्थान और पतन भी इन्हीं के सामने हुआ है।

घनघोर वर्षा, कड़ाके की सर्दी और आतप्त सूर्य की धूप—ये सब इन्होंने सहन किये हैं; तूफान के दौर और भूकंप के धक्के भी इन्होंने सहे हैं—लेकिन वे खड़े हैं, शांत, गंभीर, अचल,

१९५०

अपराजित। उनकी समाधि को कोई भी शक्ति भंग नहीं कर सकी है—और न प्रलय काल तक कर सकेगी।

विनय भी इसी प्रकार अपने जीवन के पथ पर अविचल अडिग खड़ा रहेगा—अन्त तक खड़ा रहेगा, अपने महा प्रयाण के दिवस पर्यन्त खड़ा रहेगा।

अपने जन्मदाता पिता का महोत्सर्ग, जीवनामृत पिलानेवाली माता का विरह और न जाने कितने कितने अपमान और आघात आजतक उसने हिम्मत से सहन किये हैं।—

और आज एक रमणी द्वारा किए गये प्रणय-भंग के आघात को भी वह पुरुष की तरह, बहादुरी के साथ—सतपुड़ा के पर्वतराजों की प्रेरणा के प्रसाद से—सहन करेगा और हँसकर सहन करेगा।

इस सवक को सीखकर उसने स्वतः में असीम शक्ति का अनुभव किया और इस सुप्त बल के ज्ञान ने उसका हृदय अभिमान और समाधान से भर दिया। जैसे उसके जीवन का आनन्द फिर लौट आया हो।

उन्नीसवाँ-परिच्छेद

:विवाह चर्चा:

विनय जब पचमढ़ी चला गया तब पूर्णिमा मानों उस ओर से बिलकुल खाली हो गई। डेढ़ महीने तक उसे खूब मिहनत पड़ी, शरीर और मन दोनों को काफी बोझ उठाना पड़ा। उसके खेलकूद, सिनेमा, होटल सब वन्द हो गये थे। यहां तक कि संगीत की प्रेक्टिस भी रुक गई थी। विनय जब तक बीमार था तब तक उसका ध्यान जैसे इन बातों की तरफ गया ही नहीं। लेकिन ज्योंही विनयकुमार ने शहर छोड़ा, त्योंही वह अपना सारा श्रम भुलाने के लिये आमोद-प्रमोद के साधनों की ओर दुगनी शक्ति से आकर्षित हुई मानों इन डेढ़ महीनों की कसर मय ब्याज के निकाल लेना चाहती हो। इन छः हफ्तों के काल में विलास ने उसे तंग भी बहुत किया, वह झुंझलाया भी, नाराज़ हुआ, नाराज़ी में इन्द्रगढ़ चला गया, लेकिन यह सब पूर्णिमा ने सहर्ष सहन किया और इस समाधान के साथ सहन किया कि प्रीति और ईर्ष्या साथ ही साथ चलते हैं। प्रीति जितनी उत्कट होती है, ईर्ष्या भी उतनी ही तीव्र होती है। विलास की इन नाराज़ियों को उसने इसी दृष्टि से देखा। उसे विश्वास था कि विलास को मनाने में उसे कोई देर न लगेगी, और हुआ भी ऐसा ही। जब पूर्णिमा विलास के पास लौट आई, और उसके टैनिस मैच, सैर, सिनेमा, चाय पार्टी के कार्यक्रम धड़ल्ले के साथ शुरू हुए तब उसका सारा क्रोध एक ही दिन में काफ़ूर हो गया और उसे लगा कि उसका अरण्यवास अब समाप्त हो चुका है। जल्द ही वह भूल भी गया कि विनयकुमार की बीमारी जैसी कोई घटना उसके और पूर्णिमा के बीच दीवाल बनकर आई थी। उसे गुस्सा जल्दी आता था, वह उतर भी जल्दी ही जाता था। गहराई से कभी कोई बात उसे छू गई हो, ऐसा नहीं हुआ। उसमें गहराई तो थी भी नहीं, इसलिये कोई बात छुए तो कहाँ छुए? पूर्णिमा भी विलास के सान्निध्य में तथा उभड़ी हुई क्रिड़ा-प्रियता के आवेश में पूरी तरह प्रवाहित हो गई। विलास तो क्या, वह खुद भी भूल गई कि अभी हाल ही, छः सप्ताह के लिये उसे एक विलकुल विचित्र और भिन्न अनुभव के चक्र में से गुजरना पड़ा था। विनयकुमार की जैसे विस्मृति हो गई हो! पूर्णिमा का स्वभाव ही यह था कि वर्त्तमान क्षण की अनुभूति में ही सर्वतः लीन हो जाती। कभी कभी जो बात आँखों से ओझल हो जाती उसका अस्तित्व ही उसे मालूम न पड़ता। लेकिन जब इससे विपरीत मनोदशा का उसे दौर आता तो वह, आँखो से ओझल ही क्या, कल्पना लोक की वस्तु के लिये, जिसे उसने कभी देखा नहीं, अनुभव किया नहीं, विव्हल होकर रो उठती। वही उसका द्वैत-भाव, द्वैत-जीवन, जो उसे एक पहेली बनाए हुए था।

लेकिन इस समय तो वह हँस-खेल कर अपनी सारी थकावट निकाल देना चाहती है और भूल जाना चाहती है कि जीवन में गहरे प्रश्न हैं, जीवन में गूढ़ता है, जीवन में युद्ध है। आज तो उसे ऐसा लग रहा था कि जीवन क्रीड़ा है, स्पोर्ट है, आमोद-प्रमोद का साधन है। दबी हुई भाफ जब फूट पड़ती है तब दूनी शक्ति के साथ, अपने सारे बन्धनों को तोड़ताड़ कर फूट पड़ती है।

ऐसी मनःस्थिति में विलास कब चूकनेवाला था? उसे लगा कि वह और पूर्णिमा अब यथार्थ में अपने स्वाभाविक रंग में आ गये हैं। और इस हेतु उसने ज्यादा से ज्यादा मजा लूटने की गरज़ से अच्छे अच्छे कार्यक्रमों का आयोजन किया।

दिसम्बर का महीना था। जाड़े का मौसम था लेकिन अभी ऐसा जाड़ा नहीं पड़ा था जो तकलीफदेह हो। और वैसे यहाँ सख्त जाड़ा तो कभी पड़ता ही नहीं। सारा शहर मौसम के संगीत में आनन्द का वातावरण धारण किये हुए था। सिनेमा घरों में अच्छी से अच्छी फिल्में दिखाई जातीं थीं। यूनिवर्सिटी के टेनिस मैचों का भी वह वक्त था। कालेज के स्नेह-सम्मेलनों का, छात्र-छात्राओं के मनोविनोद का, नाट्य, नृत्य संगीत आदि कलाओं की प्रतियोगिता का यही मौसम था। उसी महीने में इंग्लैंड की क्रिकेट टीम हिन्दुस्थान में आई थी और उसका प्रान्त की टीम से मैच था। इसी मौके का लाभ उठा कर एक सिनेमा घर के मालिक ने उदयशंकर और उसकी पार्टी के कलाकारों के नृत्य-कार्यक्रमों का आयोजन कर डाला था। इसीलिये प्रान्त के कोने कोने से मध्यम और उच्च श्रेणी के नर-नारीगण शहर आये थे।

क्रिसमस की छुट्टियाँ शुरू होनेवाली थीं। रेलवे ने रियासती टिकट भी शुरू कर दिये थे। लोग अजन्टा की गुफाएँ, असीरगढ़ का किला, भेड़ाघाट के मार्बल रॉक्स, और अधिक महत्वाकांक्षी लोग आगरे का ताजमहल, देहली-ग्वालियर के किले और फतहपुर-सीकरी के ऐतिहासिक स्थान या सिंहाचलम्, भुवनेश्वर, साक्षीगोपाल आदि तीर्थ-क्षेत्र देखने की तैयारी कर रहे थे।

सलोना मौसम था और उसका असर लोगों पर जादू किये हुए था।

विलास और पूर्णिमा ने भी इस आमोद-प्रमोद के प्रवाह में अपने आपको पूरी तरह छोड़ दिया। क्रिकेट ग्राउंड, टेनिस कोर्ट, पिक्चर हाऊस, थियेटर, होटल, दूकानों इत्यादि में वे दोनों साथ साथ दिखाई देने लगे और लोगों की आँखों में खास कर कालेज के युवकों और युवतियों की नजरों में भरने लगे। उनके प्रेम और विवाह के बारे में जहां तहां चर्चा होती थी। विघ्नसंतोषी लोगोंने बदनामी का प्रचार-आन्दोलन शुरू कर दिया जिसमें पूर्णिमा के निराश और अज्ञान प्रेमियों ने तथा वीणा बैनर्जी जैसी ईर्ष्यायुक्त युवतियों ने उत्साहपूर्वक हिस्सा लिया।

जब बात यहां तक फैल चुकी थी, तब बैरिस्टर पण्डित ने अपनी लाड़ली के हित में यही अच्छा समझा कि इस भावी विवाह की घोषणा किसी सुन्दर अवसर पर कर दी जाय। विलास उन्हें पसन्द था और वह बैरिस्टरी पढ़ने के लिये विलायत जाने वाला था यह बात उन्हें विशेष भली मालूम पड़ती थी। उनकी धारणा थी कि पूर्णिमा भी विलास पर अनुरक्त थी और उनका परस्पर व्यवहार और बर्ताव देखकर वे इस संतोषदायक नतीजे पर पहुँच चुके थे कि इस प्रीति-विवाह के कारण उनकी एकमात्र कन्या सुखी हो सकेगी और वे अपने जीवन की सब से बड़ी जिम्मेदारी से सफलतापूर्वक मुक्त हो सकेंगे। इसी हेतु उन्होंने तय किया कि पहिले पूर्णिमा से इसके बारे में बातचीत कर ली जाय।

जब बैरे ने आकर इत्तला दी कि "साहब बुलाते हैं" उस समय पूर्णिमा रेडियो लगा कर अपने पिता के लिये एक स्वेटर बुन रही थी। खाना हो चुका था। हरे शेड की बत्ती लगा कर गरम ओवर कोट पहन कर वह हॉल में बैठी हुई थी। कान रेडियो के संगीत की तरफ लगे हुए थे आँखे और हाथ बुनने में मशगूल थे।

अपने पिता का बुलावा आते ही वह फौरन रेडियो बन्द करने उठी। हाथ की ऊन और सूजियां वैसे ही टेबल पर रख दीं और वह उनके 'स्टडी' रूम में गई जहाँ वे इस समय बैठे हुए थे।

बैरिस्टर पण्डित अपने दफ्तर में टेबल लैम्प के सहारे एक मोटी कानून की किताब पढ़ रहे थे—या पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। वे भी बड़े चेक डिजाइन का ओवर कोट पहने हुए थे और उनके बाएँ हाथ में एक सुलगा हुआ चिरूट रक्खा था जिसकी बेशकीमती तम्बाकू की खुशबू सारे कमरे में फैली हुई थी।

१९५०

ज्यों ही पूर्णिमा अन्दर आई त्यों ही उन्होंने स्नेह से उसका स्वागत करते हुए सामने की कुर्सी पर बैठने के लिये कहा। पूर्णिमा फौरन ताड़ गई कि आज किसी गंभीर विषय पर चर्चा होने वाली है और हो न हो, उसके विवाह का सवाल ही छिड़ने वाला है। वह इससे घबड़ाई नहीं, उलटे मन-ही-मन उसे गूढ़ आनन्द हुआ।

बैरिस्टर साहव ने घंटी बजा कर वैरे को बुलाया और उसे कॉफी लाने का हुक्म दिया।

"मैंने तुम्हें इसलिये बुलाया था 'पूर्णा कि—तुम से कुछ बातें करूं। आज अगर चाहो तो एक महत्वपूर्ण सवाल का फैसला मैं करना चाहता हूँ।"

"जी?" पूर्णिमा ने नीची आँखें करते हुए सौजन्य से कहा।—

तुम्हारे इक्कीस वर्ष भी पूरे हो गये हैं और यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो तुम्हारा विवाह करने का मेरा इरादा है।"

"जी!" जब पिता की और उसकी इच्छा एक हीं थी तो उससे फौरन सहमत हो जाने में ही फायदा है, पूर्णिमा ने सोचा।

"तुम्हारी मां के जाने के बाद इसी एक जिम्मेदारी के भार को मैं बड़े जतन से वहन करता चला आ रहा हूँ और यदि उसे सफलता से अदा कर सका तो मैं एक बड़े कर्तव्य से मुक्त हो जाऊंगा। विवाह के वाद तुम्हें सुखी देख कर तुम्हारी मां की आत्मा बड़ी प्रसन्न होगी।"

पूर्णिमा को लगा कि आखरी बात कहते कहते बैरिस्टर साहव के शब्दों में कुछ कम्पन आ गया है। अपनी मृत पत्नी की स्मृति आते ही उनके हृदय में भावावेश उमड़ आया। पश्चिमी सभ्यता में पलने के कारण वे तो नहीं मानते कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य कहीं रहता है,—वह तो पंचत्व में 'मैटर' में विलीन हो जाता है। लेकिन आज वे भावना के दौर में अनजाने वही बातें कर रहे थे जो उनकी पत्नी ने कई बार कही थीं।

पूर्णिमा को सुख हुआ कि इतने वर्षों के बाद भी 'बापू' उसकी मां की पवित्र स्मृति को अपने हृदय में बनाए हुए हैं। उनकी भावुकता को देख कर उसका हृदय भी एक क्षण के लिये भर आया। बोली—

"आप जो करेंगे बापू, उसमें मैं राजी हूँ। मैं जानती हूँ आप जो करेंगे, मेरे हित के लिये ही करेंगे।"

बैरिस्टर साहब को पूर्णिमा की बात सुन कर बड़ी खुशी हुई। प्रसन्न होकर बोले—"मैं जानता था पूर्णा कि तुम मेरी बात टालोगी नहीं। पर मैं भी तुम्हारी इच्छा के खिलाफ कोई बात नहीं करना चाहता।"

पूर्णिमा जानती थी कि इस वाक्य का एक एक शब्द कितना सही है। आज तक उसके पिता ने उसे कितनी स्वतंत्रता दी थी, एक शब्द से भी न पूछा कि वह क्या करती है, कहाँ जाती है, किसके साथ उसकी मित्रता है? अपने पिता के परम विश्वास की वह पात्री है इसमें उसकी योग्यता उतनी जिम्मेदार नहीं है जितनी उसके बापू की उदारता, यह बात उसके दिल को छुए बगैर नहीं रहीं। उसने कृतज्ञ भाव से अपने पिता की तरफ देखा मात्र और अपनी आँखे फिर नीची कर लीं।

अपने चिरुट का एक कश लेकर बैरिस्टर साहब ने कहा—

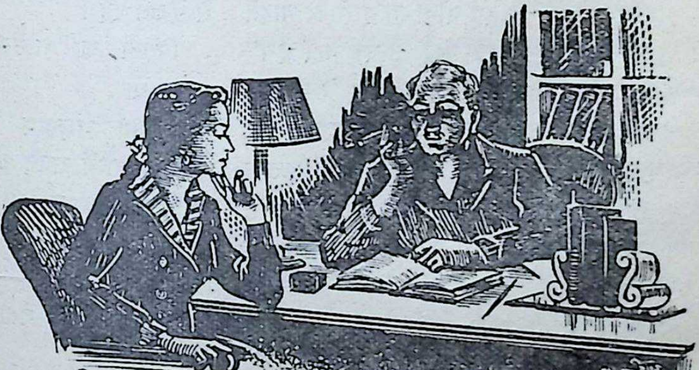

"किसके साथ विवाह करोगी यह तुमने सोचा है बिटिया?"

और फिर फौरन उन्हें भान हुआ कि इस प्रकार का सीधा सवाल करना ठीक नहीं है,—उसका उत्तर मिलना भी कठिन है—वे बोले—

“विलास बाबू के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है?” यह उनका ‘लीडिंग’ प्रश्न था, जिसके लिये उन्होंने पूर्णिमा को आज बुलाया था।

इतनी प्रगतिशलि, सुधार-प्रिय नारी होते हुए भी पूर्णिमा को अपने पिता के इस सीधे, प्रत्यक्ष सवाल से संकोच ही हुआ। उसके चेहरे पर विनय के तथा कपोलों पर लज्जा के आरक्त भाव छिटक गये और उसकी आँखें फिर नीची हो गईं। हिन्दू स्त्री के जन्म-जन्मान्तर के संस्कार मानों अपनी सार्वभौम सत्ता का प्रदर्शन करने के लिये एक बार अपनी छटा दिखा गये हों।

पूर्णिमा मौन थी; उसकी उंगलियाँ अलपीन रखने की ‘कुशन’ से खेल रही थीं।

बैरिस्टर पंडित ने उसके चेहरे पर उठनेवाले भावों को देखा और उसका अर्थ लगाने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। अंग्रेज़ी कहावत ने उन्हें सिखलाया था कि मौन अर्ध-सम्मति का लक्षण होता है। उन्हें इससे खुशी हुई। वैसे उन्हें कल्पना तो थी कि पूर्णिमा विलास को पसन्द कर चुकी है, लेकिन आज इस सवाल का तस्फिया हो गया,—उसके बारे में कोई शक-शुबहा न रहा। पूर्णिमा के संकोच को भंग करते हुए उन्होंने पूछा—

“क्या तुम्हारा ‘इंगेजमेंट’ (विवाह-निश्चय) हो चुका है?”

“जी नहीं, ऐसी औपचारिक चर्चा या निश्चय तो कुछ हुआ नहीं, लेकिन हम दोनों एक दूसरे को चाहते हैं, इसके बारे में मुझे तो कोई सन्देह नहीं है।” पूर्णिमा ने संकोच दूर करते हुए ढिठाई से कहा।

“सो तो मैं भी देख रहा हूँ, बिटिया। पर क्या तुम नहीं सोचतीं कि इस सम्बन्ध में विलास बाबू तथा उनके पिता से बात पक्की कर ली जाय? बात एक बार तय हो जाय तो मैं निश्चिन्त हो जाऊंगा।”

“इतनी जल्दी क्या पड़ी है बापू? हमारा ‘इंगेजमेंट’ तो हुआ-सा ही है। परीक्षा हो जाने के बाद यदि इसके बारे में कदम उठाया जाय तो कोई हर्ज है?”

“हर्ज तो नहीं है लेकिन अगले सितम्बर में विलास विलायत चला जायगा, उसके पहिले विवाह हर हालत में हो जाना चाहिये ऐसा मेरा ख्याल है। अगर तुम परीक्षा तक रुक जाना चाहो तो मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं। लेकिन बातचीत इन्ही बड़े दिन की छुट्टियों में तय कर ली जाय तो अच्छा। मेरा विचार है कि क्रिसमस की छुट्टियों के कुछ दिन इन्द्रगढ़ में बिताये जायँ—राधामोहन बाबू के दो निमंत्रण आ चुके हैं उनकी जमींदारी का क्या हाल है यह भी आँख से देख आऊंगा, तुम्हारा भावी घर कैसा है यह भी जान लूंगा। हो सके तो तुम भी चलना।”

पूर्णिमा इस कल्पना से नाच उठी। “हां बापू! बहुत अच्छा ‘आयडिया’ है। मैं जरूर चलूंगी। मैंने इन्द्रगढ़ कभी देखा भी नहीं। विलास बाबू ने जो वर्णन किया है उस पर से जान पड़ता है बड़ा सुन्दर प्रदेश है— जंगल, नदी, पहाड़ियां, फल-फूल। ओह! बड़ा मज़ा आवेगा। मैं ज़रुर चलूंगी।”

बैरिस्टर साहब ने सोचा आज बात यहीं खतम कर देना उचित है। कॉफी बन कर आयी और उसे उन दोनों पिता पुत्री ने साथ बैठकर पिया।

जब पूर्णिमा मुदित होकर तितली की तरह फुदकती हुई अपने कमरे की तरफ जाने लगी तब वे उसकी पृष्ठाकृति की तरफ बड़े स्नेह-भाव से देखते रहे।

पितृत्व का वात्सल्य उनकी आंखों से फूट पड़ता था।

पूर्णिमा आल्हाद के मारे फूली नहीं समाती थी। वह सीधे अपने कमरे में आयी और बिस्तर पर धड़ाम से कूद पड़ी और खुशी खुशी कम्बल ओढ़ लिया।

गुनगुना ने लगी—

“प्रेम नगर में बनाऊंगी घर मैं—

जुलाई मास का प्रमुख घटनाचक्र

- ★ कोरिया में शान्ति के भारतीय प्रयास
- ★ भारतीय साम्यवादियों द्वारा नव पथग्रहण
- ★ काश्मीर प्रश्न में समझौते के प्रयास
- ★ फिल्म जगत में नवयुग निर्माण के लिये
- ★ काँग्रेस के य चुनाव
- ★ भारतीय कलाकृतियों का विदेशों में व्यवसाय
- ★ अतीत के अवशेषों का पुनरुत्थान

[**श्री ललिताप्रसाद पुरोहित**]

कोरिया युद्ध और भारत

गत २५ जून से दक्षिण कोरिया उत्तरी कोरिया के आक्रमण से युद्ध की जिन ज्वालाओं में धधक उठा है, उन्हें सुलगाने वाला रूस और पानी लेकर दौड़ने वाला अमरीका आज समरांगण में खुल कर खेल रहे हैं। शीत-युद्ध का यही परिणाम हो सकता था। सुदूर और मध्यपूर्व में साम्यवाद के क्रमिक विस्तार के विरुद्ध अमरीका की युद्ध-घोषणा संयुक्त राष्ट्र संघ की 'पुलिस एक्शन' कही गयी है। इस 'शुक्ति-युद्ध' में ब्रिटिश कामनवेल्थ, एंग्लो अमरीका गुट्ट और संयुक्त राष्ट्र-संघ सब एक साथ हैं।

अपनी स्वाधीनता के साथ भारत एशिया में जिस वृहत्तर शक्ति को लेकर अवतीर्ण हुआ है उसका महत्व विश्व के राजनीतिपटु राष्ट्रों में पूर्णतः प्रकट है। अतः यह स्वाभाविक है कि भारत को इस परिस्थिति में महत्त्वपूर्ण हाथ बटाना पड़ता। किन्तु अपनी वैदेशिक नीति की जिस धरती पर भारत खड़ा है वह इस युद्ध-स्थिति में भी किसी प्रकार भी खिसकती नहीं नजर आ रही। भारत द्वारा राष्ट्रमण्डल में स्वतंत्र गणतंत्र राज्य की अपने यहां स्थापना, संयुक्त राष्ट्र संगठन में शान्ति और विश्वमैत्री की नीति को लेकर उसकी सदस्यता, साम्यवादी भाव-त्से-तुंग सरकार की मान्यता कुछ ऐसे दूरदर्शितापूर्ण कार्य रहे हैं जो आज के विस्फोटक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष में बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं। और उस दिन जब, कोरियाई युद्ध की विभीषिका से मुक्ति के लिये शस्त्रास्त्रों से परे शान्तिपूर्ण समझौते का निवेदन प्रधानमन्त्री पं० नेहरू ने किया तो शान्ति-पिपासु विश्वमानव बड़ा आशान्वित होकर उसके सुपरिणामों की याचना करने लगा होगा। साम्यवादी चीन को मान्यता देने वाला अ-साम्यवादी राष्ट्र विश्व में केवल भारत ही था जो यह अपील करने भर का अधिकारी नहीं था प्रत्युत अवसर आता तो सोवियत रूस और एंग्लो अमरीकन गुट्ट के चरम सीमा पर पहुंचे हुए झगड़ों में मध्यस्थता भी कर सकता था।

यह कह सकना कठिन होगा कि रूस ने पं० नेहरू की इस अपील का स्वागत इसलिये किया कि वह युद्ध से घबराता है अथवा अमरीका और इंग्लैण्ड उसे मान्य इसलिये नहीं कर पाये कि वे स्वयं रूस की हेकड़ी भुला देना चाहते हैं या ऐसी किसी समझौता-वार्ता को वे अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। इसका निर्णय तो शान्ति-प्रयास की अवहेलना के परिणाम ही करेंगे; तथापि गत विश्व-युद्ध जर्जरित राष्ट्र और कोरिया की भूमि पर

बसने वाली पिछड़ी निरीह लक्ष-लक्ष मानव आत्माएं ही आज इसका उत्तर दे सकती हैं कि पं० नेहरू के प्रथम शान्ति प्रयासों की अवहेलना उन्हें आये दिन कितनी मंहगी पड़ सकती है।

भारतीय साम्यवादी दल की नीति में परिवर्तन

भारत में साम्यवादी संगठन ने हाल ही में अपनी नीति बदल कर यह घोषणा की है कि चीनी राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के अनुभवों पर अब इसकी भी नीति आधारित होगी। आगे से साम्यवादी संगठन का उद्देश्य कृषक वर्ग की एकता स्थापित करना होगा। इसी के साथ अबतक की जाने वाली हिंसात्मक कार्रवाईयों को त्यागने का पार्टी ने निश्चय किया है।

भले ही, आज तक लुके-छिपे रूप से पार्टी ने देश में हिंसात्मक और तोड़फोड़ की नाशकारी नीति का अवलम्बन कर देश में अपना आतंक विस्तार करना चाहा हो परन्तु यह प्रत्यक्ष है इसमें उसे सफलता नहीं मिली। स्वयं पार्टी का इन कार्यों के द्वारा अपना अभीष्ट प्राप्त करने का जोश ठण्डा पड़ गया हो। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में देश के पार्टी के नीति-परिवर्तन के विषय में विश्वास लाना चाहिये ? तथापि जहां एक ओर इसका स्वागत किया जा सकता है वहां एक सन्देह भी राजनीतिक जगत में विद्यमान है कि इसके पीछे पार्टी का कोई छिपा उद्देश्य तो नहीं है?

साम्यवादी नेता श्री. डांगे की इस घोषणा के बाद भी सरकार को पूर्णरूप से सावधान रहने की आवश्यकता है; क्योंकि चीन में साम्यवादी शासन स्थापित होने और पूर्वीय एशियाई राष्ट्रों में उसके विस्तार—प्रयासों के समय ही सदा रूसी प्रेरणाओं पर चलने वाले इस संगठन द्वारा ऐसा नया मार्ग ग्रहण करना सर्वथा सद्भावनात्म कदम नहीं माना जा सकता।

काश्मीर प्रश्न पर त्रिदल-मंत्रणा

भारत पाकिस्तान के बीच एक लम्बे अरसे से चलनेवाले काश्मीर संघर्ष को सुलझाने के निमित्त संयुक्त राष्ट्र संगठन द्वारा नियुक्त मध्यस्थ सर ऑवेन डिक्सन के साथ दोनों देशों के प्रधान मंत्रियों की परिषद ५ दिनों में १७ घण्टे चलने के बाद २५ जुलाई को समाप्त हो गई। यद्यपि इस समय किसी निर्णय पर न पहुंच कर मंत्रणायें समाप्त कर दी गई हैं तथापि उन्हें मंत्रणाओं का असफल अन्त नहीं कहा गया है। इस पर भी मंत्रणाओं का सुझाव बताता है कि पूर्णतः सफलता या सफलता की दिशा में होनेवाले जैसे प्रयास की दिशा में यह परिषद नहीं हुई। सर ऑवेन ने कहा बताते हैं कि यदि दोनों राष्ट्रों की किसी निर्णय पर पहुंचने की संभावना न हो तो यही उचित होगा कि वे स्वयं अपने अब तक प्राप्त किये गये अनुभवों पर से प्रारम्भिक सुझाव दें।

मंत्रणाएँ, जैसा स्पष्ट है उन्हीं प्रत्यक्ष मुद्दों को लेकर हुई हैं जिनमें जनमत-गणना, काश्मीर से फौजों की वापिसी और विस्थापितों को पुनः अपने स्थानों में बुलाकर बसाना। ज्ञात हुआ है कि आज़ाद काश्मीर से अपनी-अपनी फौजें वापस बुलाने के प्रश्न पर दोनों राष्ट्रों में मतभेद हो गया। भारत स्वयं यह नहीं चाहता और न इसके लिये पाकिस्तान के सामने कोई प्रस्ताव ही रखना चाहता है। ये मंत्रणाएँ अगले मास में कराची में पुनः प्रारम्भ होंगी जिसके लिये अभी कोई तिथि निश्चय नहीं कि गई है।

चलचित्रों का निमार्ण और लोकहित

केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित 'सिने व्यवसाय जांच समिति' इधर देश में घूम कर भारतीय चलचित्रों की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में जनमत एकत्र कर रही है। इस उद्योग का कारण स्पष्ट है कि आये दिन फिल्म-निर्माण कलात्मकता और आदर्श से कुछ इतना दूर हट गया है कि वह धनसंचय का व्यवसाय मात्र रह गया है। इतना ही नहीं यदि इस ओर दुर्लक्ष्य ही रहा तो राष्ट्रीय संस्कृति, आचार-विचार और नैतिकता पर बड़ा हृदयभेदी आघात पड़ने की संभावना है।

यह निर्विवाद है कि श्रमजीवी मानव को मनोरंजन नितान्त आवश्यक है और मनोरंजन भी यदि आदर्शों तथा उपदेशों के बोझ से लदा हुआ सामने आयगा तो वह एक अतिरिक्त श्रम और

१९५०

उभरने की सामग्री स्वयं बन बैठेगा। ऐसी हालत में मनोरंजन की सीमाओं में परिबद्ध होकर जनता के सामने आना अपेक्षित है। परन्तु मनोरंजन इस श्रेणी का भी न हो, जो शील चारित्र्य तथा नैतिकता से सर्वथा गिरा हुआ, अस्वाभाविक, उत्तान शृंगार पूर्ण, अगाध रूप से अश्लील आदि दुर्गुणों से भरा हुआ हो।

नाट्यकला दृश्य काव्य की वह पद्धति है जिसमें श्राव्य और दृश्य दोनों की रस लहरी एक साथ प्रवाहित होती है। मनोरंजन का यह अंग सुगम, सुग्राह्य तथा सुविधाजनक होने ही के कारण इतना व्यापक बन पाया है। नाट्य निदर्शन और लेखन की यही सफलता है कि अभिनय दर्शकों के लिये बिना बोझाला बने अपने साध्य को प्राप्त कर ले। अधिकांश में सिने-जगत में अश्लीलतम चित्र बने हैं। स्पष्ट स्थिति यह है कि व्यवसाय बड़ा आकर्षक है। हालाँ देखा यह गया है; एक स्थान पर 'खिड़की' हप्तों चल रहा है किन्तु 'समाधि' सदृश राष्ट्रीय माने जानेवाले चित्र बालकों को नहीं दिखाने का आदेश निकलता है। पारस्परिक हित ही इसके कारण हो सकते हैं।

कांग्रेस के ये चुनाव

पिछले दो महीनों में देश में कांग्रेस संघटन में नये चुनावों की काफ़ी सरगर्मियां रही हैं जो कांग्रेस अध्यक्ष के निर्वाचन के पश्चात अगस्त के मध्य तक समाप्त होने जा रही हैं। यह स्मरण रखने की बात है कि अगले आम चुनाव कांग्रेस के इन नव-पदारूढ़ दलों के नेतृत्व में ही संचालित होंगे। अतएव जहां कांग्रेस के अन्तर्गत विरोध का प्राबल्य है वहां इन चुनावों में दोनों दलों द्वारा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों में आरूढ़ होने के लियें पर्याप्त प्रयत्न किये हैं। राष्ट्र में सत्तारूढ़ इस संगठन द्वारा पदों को हस्तगत करने के लिये चुनाव-राजनीति में जो पथ अपनाया गया है वह कांग्रेस के कार्यक्रमों में रुचि रखनेवालों तथा अन्य राजनैतिक संगठनों द्वारा खेद जनक बतलाया गया है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने स्थानीय राजनीति से ऊपर रह कर सदा एतत्सम्बधी शिकायतों में अपने निर्णय दिए हैं। इससे शासन के बाहर होनेवाले और अल्पमत दलों को न्याय मिलने की पूर्ण सुविधा प्राप्त हुई है। जहां अधिक अनियमितायें होने की शिकायतें थीं ऐसे—पश्चिम बंगाल, आंध्र, महाकोशल, विदर्भ, राजस्थान जैसे प्रान्तों में कांग्रेस कार्य समिति की प्रेरणा से चुनाव कमिश्नर नियुक्त किये गये हैं ताकि वे प्रत्यक्ष जांच करके निष्पक्षतापूर्वक चुनाव होने देने में सहायता प्रदान कर सकें।

कांग्रेस अध्यक्ष के पद के लिये अब तक राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन, आचार्य कृपलानीजी और श्री शंकरराव देव के नाम सामने आये हैं। श्री देव ने अपना आवेदनपत्र भी प्रस्तुत कर दिया है।

देशी कला-कृतियों के प्रति विदेशों में आकर्षण

भारतीय व्यापार के इतिहास में यह संवाद एक नये अध्याय की भूमिका कही जायगी कि भारत-निर्मित कलाकृतियों के प्रति विदेशी आकर्षण पुनः जाग्रत करने का अभिनव प्रयास उत्तरप्रदेश राज्य-शासन ने प्रारम्भ किया है जिसमें आशातीत सफलता भी मिली है।

इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं कि किसी समय ढाके की मलमल के बिना गोरांग रमणियां किसी के प्रणय सूत्र में नहीं बंधती थीं और स्वतंत्र भारत को अब पुनः वह सुअवसर प्राप्त है कि अपने यहां निर्मित कलापूर्ण सामग्रियों के प्रति नयी रुचि का विस्तार कर दे।

उत्तर प्रदेश शासन ने अपने राज्य में निर्मित बनारसी रेशम की सामग्रियों, मीनाकारी के बर्तनों, भारतीय प्राचीन मन्दिरों के नमूनों पर बनी आकर्षक टी-सेटों जैसी अनेक चीजों को विदेशों के अपने राजदूतावासों या व्यापारदूतावासों में प्रदर्शनार्थ सजाया है तथा पसन्द की गयी चीजें मांग के अनुसार पहुंचाने की व्यवस्था भी की है। राज्य के कुटीरोद्योगों में बनी देशी कृतियों के विदेशों में व्यवसाय के निमित्त वाशिंगठन, न्यूयार्क, टॉरेण्टो, सिडने आदि स्थानों में ये शोरूम रखे गये हैं। पिछले वर्ष पेरिस में भी ऐसी व्यवस्था वहां के कला-प्रेमियों के आकर्षण की वस्तु बन गयी जहां [illegible] का माल अभी भेजा गया है।

नयी दिल्ली स्थित प्रधान मंत्री पं. नेहरू के निवास स्थान में भी एक ऐसा ही शो रूम सजाया गया है जिस से विदेशी आगन्तुक इन निर्मितियों से देख सकें। व्यवसाय वृद्धि के लिये सचित्र पुस्तिकायें प्रकाशित की गयी हैं। शासन को यह विश्वास है कि यह व्यवसाय आगे चल कर बड़ी लोक प्रियता प्राप्त करेगा।

भारतीय ललित कलाओं में पुनर्जीवन

भारत के अतीत कालीन वे 'भग्नावशेष' जो हमारी गहरी अज्ञानावस्था में निर्जन पर्वतों, पथरीले पंथों और धंसते जाते भू-खण्डों में से कराह-कराह कर पुनर्जीवन की याचना कर रहे हैं एक वह 'लय' जो भूमि से वायु पंखों पर सवार हो; आकाश की दूरी नापने बरसती मेघ-बूंदों पर बैठी लौट आती हो—बुझते दीपों को ज्योति से आलिंगन कराती हो। एक वह 'तूलिका' जो स्वप्न में आ दीखने-वाले छलिया को अपने कौशल द्वारा बांध कर साक्षात् ला खड़ी करती हो। एक वह 'कारीगरी' जिसके कमाल राजप्रासाद के किसी कक्ष को जलाशय के भ्रम में बदल डालने में समर्थ हों—जिसने किसी विश्व-सुन्दरी की करुणा के अश्रु-विन्दु को स्वर्ग से धरती पर ला उतारा हो;—अपने आकर्षण में युग की आत्मा को फिर एक बार आनन्दविभोर कर देने के लिये अपने प्रबल वेगमय बांधों को तोड़ ज्वार की नाईं बाट जोहती खड़ी उस शक्ति ने–विस्मृत गौरव ने–एक दिन स्वयं संभल और शक्ति-संचय कर उसे अंगुलि पकड़ कर उठाया। जीर्ण, जर्जर कलेवर में से सिसकती उसकी आत्माने कुछ अपने तईं, और शेष इतिहासों के, पुराणों के पन्ने पलट-पलट कर अपना गत वैभव बताया। किन्तु आज उन्हें संवारने संभालने की फिर वारी है।

कला लक्ष्मी और सरस्वती की ऐसी सहेली है जो साधना में स्वर्गिक आत्मानंद की अनिर्वचनीयता-से सरावोर है। वह हाट और गली में रुपये की तीन वाली चित्रकारी या पान के ठेलों पर आलापती ध्वनियों से साध्य नहीं की जा सकती। जिस प्रकार तथागत के भिक्षापात्र पर आज काषाय वस्त्र पहने सुबह-शाम के भिक्षु छा गये हैं और कबीर के रहस्यमय गीतों की न जाने कितने कबीर-पंथियों ने जान निकाल डाली है उसी तरह कला बाजार-भाव के लिये आज ऐसे चौराहे पर ला खड़ी की गयी है कि सच्चे कलाकार की कल्पना करना ही हम भूल गये हैं।

आज वास्तव में यदि हमारी बहुमुखी कला के पुनरुत्थान का समय आया है तो उसकी मृतप्राय अवस्था से उसे ऊँचा उठाने के लिये शासन को ऐसे मार्गों का अवलम्बन करना होगा जिनके द्वारा कला और केवल कला की आराधना की जा सके और सच्चे कलाकारों की पीढ़ी का निर्माण हो सके। उदाहरणार्थ—हमारी संगीत कला का उत्थान हम फिल्मी धारा की संगीत प्रणाली में नहीं देख पाते जहां भारतीय संगीत कला के नाम पर घना अन्धकार है। शिल्पकला, नक्काशी, कढ़ाई आदि हस्तकौशल में कुशलता ढूंढ़ने हम यंत्रों से बननेवाली स्मृतियों के कारखानों में जाते हैं। शिल्पकला और नक्काशी के काम जहां ठेके देकर होते हों वहां कला के दर्शन दुर्लभ हैं। सच्ची कला हमारी प्रयत्नशील और समृद्ध सरकार को वहां मिलेगी जहां उस झोंपड़ी में भूखों बैठा एक कलाकार ऐसी मूर्ति का निर्माण कर रहा है जिसे देख कर आप कह उठें कि—"क्या ही अच्छा होता यदि यह विधाता होता!" फिर भी आप उसकी निर्मिति की कीमत नहीं पटा सकते। अनेक प्रसंग ऐसे आते हैं जब एक काम एक व्यक्तिविशेष को पूरा करने के लिये सौंपा जाना चाहिये था किन्तु अन्त तक वह दूसरे ही के द्वारा पूरा होता है और इच्छित व्यक्ति वंचित रह जाता है। अतः हमारे शासन की यह भावना जहां सर्वथा स्तुत्य है कि वह हमारे प्राचीन अवशेषों के पुनरुद्धार के लिये अग्रसर हुई है वहां यह भी आशा है कि वह साथ ही साथ कला की पारखी बन कर ऐसे अनेक कलाकारों को भी खोज-खोज कर निकालेगी जो प्राचीनता को नवीन बनाये रखने के लिये नयी पीढ़ी का निर्माण कर सकें।

* * *

सूचनाः—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए।

साहित्यालोचन

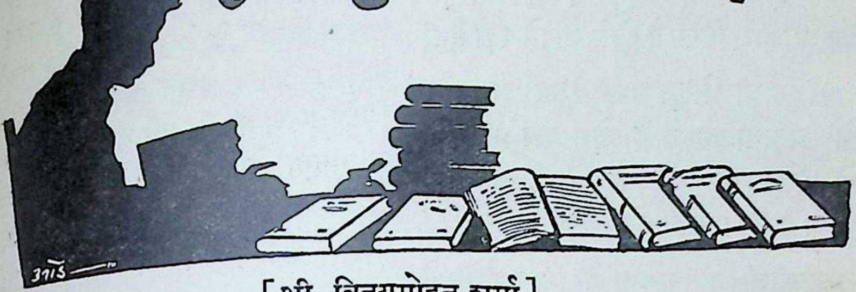

[श्री. विनयमोहन शर्मा]

'अच्छी हिन्दी'

(लेखक-**पं. किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री**
प्रकाशकः **जनवाणी प्रेस एन्ड पब्लिकेशन्स लिमिटेड, ३६, वाराणसी रोड स्ट्रीट कलकत्ता ११**

भाषा का प्रवाह जनता के कण्ठों में अबाध गति से बहता रहता है। पंडित-समाज की भाषा कृत्रिम होती है। उससे लोक-भाषा के प्रकृत रूप का ठीक ठीक परिज्ञान नहीं होता। व्याकरण का कार्य जन-भाषा के सिद्ध रूप को प्रस्तुत करना है। अतएव वही व्याकरण विज्ञानसम्मत समझा जाना चाहिये जो भाषा के व्यावहारिक रूप पर आधारित हो। हिन्दी में अनेक व्याकरण—ग्रंथ प्रचलित हैं परन्तु उनमें से बहुत कम भाषा की वर्तमान प्रकृति के आधार पर लिखे गए हैं। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान लेखक की प्रवृत्ति भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर सतत रहती है। इसीलिये आप का मत तथाकथित भाषा-शास्त्रियों से प्रायः नहीं मिलता।

कुछ वर्ष पूर्व "हिन्दी-शब्द-सागर" के अन्यतम संपादक श्रीरामचन्द्र वर्माजी ने "अच्छी हिन्दी" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी; जिसका प्रचार देश में चारों तरफ हुआ। अपनी 'अच्छी हिन्दी' में वर्माजी ने कई स्थलों पर प्रचलित लोक भाषा के विरुद्ध निर्णय दिया है। वाजपेई जी ने उसकी आलोचना करते हुए यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि 'अच्छी हिन्दी' वास्तव में 'भद्दी हिन्दी' का उदाहरण है। अच्छी हिन्दी का क्या रूप होना चाहिये, इसका नमूना शास्त्रीजी ने अपनी उक्त पुस्तक में लिख कर पेश किया है। इस पुस्तक में आदि से अन्त तक वर्माजी की अच्छी हिन्दी के भद्देपन पर ही कटाक्षयुक्त प्रकाश डाला गया है। और ऐसा करते समय यहाँ-वहाँ भाषा के इतिहास, शब्दों की व्युत्पत्ति, शब्दोच्चारण, वाक्य-विन्यास मुहावरों के सही रूप, विराम-चिन्हों के प्रयोग, तथा व्याकरणों और कोषों पर विचार करने के साथ साथ भाषा सम्बन्धी प्रमादों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और संशोधन करने का भी यत्न किया गया है। बाजपेईजी के तर्क निराधार नहीं हैं। परंतु उनकी आलोचना—शैली बड़ी तीखी है और व्यक्ति को केन्द्र बनाकर चलती है। इस प्रकार की शैली आज के युग में पिछड़ गई है। नीचे शास्त्रीजी की आलोचना—शैली के कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं :—

१. "धन्य वर्माजी! यह सौभाग्य तो हिन्दी को मिलना था कि इसके एक सपूत ने 'स' उपसर्ग का पता लगाया।"

२. सिया राम शरण गुप्त, सावधान! अब अपने 'अग्रज' को छोड़िये—'बड़े भाई साहब'

लिखिएगा ! खबरदार ! वर्माजी खुलासा चाहते है ।'

३. 'हम वर्माजी से पूछते हैं कि किस मूर्ख ने यह व्याकरण लिखा है जिसे आपने पढ़ा है ?'

४. वर्माजी 'से' उड़ाकर केवल 'इसे' और 'उसे' चलाना चाहते हैं बोझ कम करने के लिये । बोझ इस 'को' का हिन्दी पर इतना अधिक है कि वर्माजी को असह्य हो उठा ।''

शास्त्रीजी का कहना है कि वर्माजी ने उनकी 'लेखन-कला' का अनुकरण किया है। उदाहरण के तौर पर आप लिखते हैं।:– 'एक ही लेखक कभी "लिये" लिखता है कभी 'लिए'। इसी तरह 'चाहिये' और 'चाहिए' भी। स्वयं वर्माजी की भी यही स्थिति रही। मेरी 'लेखन कला' छपने से पहले आप अव्यय 'लिए' और क्रिया प्रति रूपक अव्यय 'चाहिए' को 'लिये' और 'चाहिये' ही लिखते थे। संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर में (केवल एक पृष्ठ का) आपका 'निवेदन' है, जिसमें आधे दर्जन से भी अधिक बार यह अव्यय 'लिये' के रूप में ही आया है। वर्माजी अपनी रचनाओं में 'चाहिये' ही लिखते रहे हैं, देख लीजिये। 'लेखन कला' छपने के बाद आप लिए' और 'चाहिए' ही लिखने लगे।

श्री रामचन्द्र वर्मा ने 'अच्छी हिन्दी' के बाद 'हिन्दी प्रयोग' नामक एक और पुस्तक लिखी है। परिशिष्ट में शास्त्रीजी ने 'हिन्दी प्रयोग का नमूना (?) भी प्रस्तुत किया है; जिसमें वर्माजी के हिन्दी-प्रयोगों की अपने ढंग से छान-बीन की गई है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस पुस्तक में वर्माजी अच्छी हिन्दी लिखने के अधिकारी नहीं हैं, यही 'पदे पदे' प्रतिपादित किया गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य ही यह है—

"'आचार्यस्य महाबुद्धेः, रामचन्द्रस्य वर्मणः ।
अच्छी हिन्दी' सुविख्याता, तट्टीका बुध्यतामियम् ॥"

अच्छी हिन्दी समझने के लिये 'अच्छी हिन्दी' के साथ साथ 'अच्छी हिन्दी का नमूना' पढ़ना भी अनिवार्य है। आशा है, 'अच्छी हिन्दी' के लेखक ने बकौल शास्त्रीजी के जिस प्रकार लेखन कला से हिन्दी की शिक्षा ग्रहण की है उसी प्रकार 'अच्छी हिन्दी का नमूना' के सुझावों को ग्रहण करके 'अच्छी हिन्दी' के अगले संस्करण में उचित संशोधन कर देंगे। "वादे वादे जायते तत्वबोधः ।"

राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण

लेखक–**पं. किशोरीदास बाजपेई शास्त्री**
प्रकाशक—**जनवाणी प्रकाशन, हरासन रोड. कलकत्ता।**

हिन्दी के राष्ट्रभाषा-पद पर आसीन हो जाने के पश्चात् एक ऐसे व्याकरण की आवश्यकता थी जिसे पढ़ कर अहिन्दी भाषा-भाषी शुद्ध हिन्दी बोलना और लिखना सीख जायें। अहिन्दी भाषा-भाषियों के सामने हिन्दी का लिंग-विधान बहुत मुश्किल दिखाई देता है। साथ ही विशेषण संबंधी गड़बड़ी भी उन्हें उलझन में डालती है। शास्त्रीजी ने इन सब उलझनों को सुलझाने के लिये सरल हिन्दी का स्पष्ट रूप इस छोटे से व्याकरण में प्रस्तुत किया है। शास्त्रीजी की विषय-प्रतिपादन-शैली अत्यन्त सुबोध है। अतः इसके राष्ट्रभाषा के शुद्ध रूप के प्रचार में निश्चय ही सहायता मिलेगी। शिक्षा-संस्थाओं में यह पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकार की जानी चाहिये।

प्यारे राजा बेटा

(भाग १, भाग २)

लेखक—**श्री. रिषभदास राँका**। प्रकाशक–**श्री. मूलचन्द बड़जाते, सहायक मंत्री, भारत जैन महामण्डल वर्धा, मध्यप्रदेश।**

लेखक जब जेल-जीवन व्यतीत कर रहा था तब उसने प्रस्तुत पुस्तकों की पत्र-कथाएं

१९५०

लिखी थीं। कहानियों में 'महापुरुषों की मानवोचित श्रेष्ठता को ध्यान में रखते हुए प्रयत्न किया गया है कि बालकों पर काल-गत या देशगत धार्मिक या साम्प्रदायिक अन्ध विश्वास कट्टरता, द्वेष अथवा ऐसा ही कोई विकार भाव न जमने पाये'।

जिन महापुरुषों के चरित्र अंकित हैं उन में से कुछ ये हैं—भगवान् महावीर, भगवान् गौतम बुद्ध, सत्यवीर सुकरात, सम्राट कुमार पाल भगवान् श्रीकृष्ण, धर्मराज युधिष्ठिर, पैगम्बर मुहम्मद साहब, अब्राहिम लिंकन, महात्मा टालसटॉल आदि।

कहानी की भाषा अत्यंत सरल है—बालकों के समझ में आने योग्य हें। पुस्तक का दृष्टिकोण 'सर्व धर्म समन्वय' की भावना लिये हुए है। इन पुस्तकों से हिन्दी बाल साहित्य की निश्चय अभिवृद्धि हुई है। प्रत्येक अभिभावक को इन पुस्तकों को बालकों के हाथ में देना चाहिये।

श्री रामकृष्ण उपदेश

प्रकाशक **श्री रामकृष्ण आश्रम नागपूर मध्यप्रदेश**। मूल्य १०)

भगवान रामकृष्ण परमहंस ने मानव—आत्मा के उद्धार के संबंध में जो उपदेश प्रदान किये हैं, उनका संकलन स्वामी ब्रम्हानंदजी ने किया था। उन्हीं का यह हिन्दी--रूपान्तर हैं। उपदेशों में ईश्वर, माया, अवतार, जीव अवस्था के भेद, गुरु, साधना का अधिकारी साधना में विघ्न, साधना के सहायक साधना में अध्यवसाय, ध्यान, सिद्ध अवस्था 'युगधर्म आदि विषयों पर श्री परमहंस के विचार व्यक्त हैं। धर्म-जिज्ञासुओं को इन उपदेशों से लाभ उठाना चाहिये।

ज्ञानयोग

लेखक—**स्वामी विवेकानन्द**।

प्रकाशक—**श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर, मध्यप्रदेश**।

इस पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द द्वारा वेदान्त पर किये गए भाषणों का संग्रह है; वेदान्त के गहन तत्वों का स्पष्ट विवेचन है। प्रारंभ में स्वामी विवेकानन्द द्वारा रचित 'संन्यासी का गीत' बड़ा उद्बोधक है। स्वामीजी के विचारों का पाश्चात्य देशों में बड़ा आदर है, उनके व्याख्यानों पर प्रकाशित ग्रंथ बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। आशा है, हिन्दी जगत् 'ज्ञानयोग' का उत्साह के साथ स्वागत करेगा और प्रकाशक के पवित्र उद्देश्य को सफल बनाने में सहायक होगा।

सरल राजयोग

लेखक—**स्वामी विवेकानन्द**।

प्रकाशक—**श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर**।

मूल्य ८ आना।

राजयोग, योग वह की उच्च भूमिका है जिसकी साधना मन के संस्कार की अपेक्षा रखती है। अमेरिका में जिस भद्र महिला के निवास स्थान पर स्वामीजी ठहरे थे, वहीं उन्होंने योग साधना पर कुछ छोटे मोटे भाषण दिये थे। उन्ही भाषणों को श्रीमती बुल ने (जिनके घर में स्वामीजी अतिथि होकर विराजे थे) कलमबन्द (लिपिबद्ध) कर लिया था। प्रस्तुत पुस्तक उसी अंग्रेज़ी पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है। राजयोग की प्रारंभिक बातों के जिज्ञासुओं को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

* * *

दृष्टिकोण

(सम्पादकीय)

लोकमान्य तिलक को श्रद्धांजलि !

दो दल थे इस देश की राजनीति में। एक था नरम दल और दूसरा गरम दल। पहला अँगरेज-शासकों की हाँ-में-हाँ मिलाता, जी-हुजूरी करता, राजनीतिक क्षेत्र में फूंक-फूंक कर कदम रखता और कहीं किसी कर्जन-कलेक्टर ने धमकी-बन्दरघुड़की दिखा दी तो वह कुम्हड़बतिया की तरह कुम्हला जाता। देश में उसका भी इक्के-दुक्के बोलबाला था; बहुत कम; किन्तु जैसे देश का बहुमत आज काँग्रेस के हाथ में है, उसी प्रकार ४०-४५ वर्ष पहले, अपने दलबल-सहित गरम दल का ही भारतीय जनता पर प्रभाव था। गरम दल ही गुरुत्वाकर्षण का केन्द्रबिन्दु था। वही दल तब भारत का नेतृत्व करता था। उस समय भारत के तीन प्रान्त—पंजाब, महाराष्ट्र और बंगाल, राष्ट्रीय स्वातंत्र्य यज्ञ के लिए होता और आहुति दोनों बने हुए थे। लाल-बाल-पाल उस यज्ञ के अध्वर्यु थे। लाल थे लाला लाजपतराय, बाल थे बाल गंगाधर तिलक और पाल थे विपिन चन्द्रपाल। यह तारुण्य-त्रिमूर्ति तत्कालीन राजनीति के सूत्रधार थे। १९५० का भारत — आज का भारत — बाबू विपिन चन्द्रपाल को भूल गया है। लाजपतराय सचमुच महान् थे; किन्तु न जाने उन्हें भी हम भूलते-से जा रहे हैं। और बाल गंगाधर की लोकमान्यता तो आज भी करोड़ों भारतीयों के मस्तक पर महान् मुकुट की तरह विराजमान हैं। वे हमारे प्राणों में प्रेरणारूप हो गये हैं, और कई शताब्दियों तक प्रेरणाप्रद रहेंगे। तिलक ने घोर कठोर तपस्या की, भारत को पूर्ण स्वतंत्र बनाने का उन्होंने स्वप्न देखा। भारत को "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूंगा" का महामंत्र उन्होंने दिया। गान्धीजी ने लोकमान्य के स्वप्न को सत्य प्रत्यक्ष किया। भारत ने अँगरेजों से अपना जन्मसिद्ध अधिकार-स्वराज्य लेकर ही दम लिया। लोकसंग्रह और लोककल्याण के लिए लोकमान्य विश्वसाहित्य के भण्डार को एक बहुत बड़ी अनमोल देन "गीतारहस्य" के रूप में दे गये, जिसे उन्होंने स्वर्गागार सम कृष्णजन्मस्थान कारागार में लिखा था। १९२० की १ ली अगस्त के पूर्वतक लोकमान्य भारतीय राष्ट्र के कर्णधार रहे। ३१ जुलाई के, रात के १२ बज कर ४० मिनट पर भारत राष्ट्रसूत्रधार लोकमान्य ने अपना अवतार समाप्त किया। पहली अगस्त के प्रातःकाल सारा भारत रो पड़ा था। बंबई समुद्रतट-चौपाटी पर चन्दन चर्चित चिता में, पांच छः लक्ष शोक-संविग्नमानस मानवों के मुख से निकले कोटि कोटि जयघोष के साथ लोकमान्य के पार्थिव शरीर का अग्निसंस्कार पहली अगस्त को हुआ और उसके साथ एक अद्भुत दैवी चमत्कार भी, कि एक १८ बरस का नौजवान मुसलमान लड़का स्व० लोकमान्य की धू धू-धाँय धाँय करती चिता में "अरे तिलक महाराज! आप तो चल बसे; अब हम कैसे जियेंगे" यह कहते कहते कूद पड़ा था। आज से ३० वर्ष पहले उसी पहली अगस्त को म० गान्धी भारत-भाग्य-विधाता तथा शोकान्धकार में भटकते निराश राष्ट्र के प्रकाशदाता बने थे। बंकिमचन्द्र की निम्नलिखित

१९५०

पंक्तियों में अब हम लोकमान्य को नत मस्तक हो श्रद्धांजलि अर्पण करें—

तुमि विद्या तुमि धर्म,
तुमि हृदि तुमि मर्म,
त्वंहि प्राणाः शरीरे,
बाहु ते तुमि मां शक्ति,
हृदये तुमि मां भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गडि मन्दिरे, मन्दिरे !

स्वातंत्र्य की तीसरी वर्षगांठ

इस १५ अगस्त १९५० को, हिन्दुस्थान को आज़ाद हुए पूरे तीन वर्ष होते हैं। जिन अगणित प्रेरणाओं, साधनाओं, कष्टों और कुर्बानी-बलिदानों द्वारा हमारे नेताओं ने राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के नेतृत्व में, १९४७ में, १५ वीं अगस्त को स्वतंत्रता प्राप्त की थी, उसकी अमरगाथा संसार के इतिहास के पृष्ठों में सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी। बापू ने इस मुकम्मिल आजादी को हासिल करने में देश को अहिंसात्मक सत्याग्रह, ग्राम-उद्योग, चरखा, ग्रामसेवा, अस्पृश्यता, राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रभाषा आदि सामूहिक समग्र रचनात्मक कार्यों की अपार शक्ति वाला अमोघ अस्त्रबल अंग्रेजों के पैर उखाड़ फेंकने के लिये दिया था। १५ अगस्त अपना एक खास महत्व रखता है। आज अंग्रेज भारत छोड़ कर चले गये थे। गौराङ्ग अंग्रेजों की गुलामी की काली छत्रछाया सदा के हम पर से दूर हटगई थी। किन्तु हन्त! अंग्रेजी भाषा की गुलामी नहीं हटी; हम और भी १५ वर्षों-तक इसके दास रहेंगे। अब हम ही इस देश के मालिक हैं और यह महान भारतवर्ष हमारा है इस भावना को देने वाला यही पवित्र स्मरणीय दिवस है। आज तीन वर्ष बाद भारत संसार में एक विशाल संघराज्य के रूप में अपना मस्तक समुन्नत किये हुए खड़ा है। किन्तु जो उल्लास, उत्साह और खुशी उस ४७ के १५ अगस्त के दिन हम अनुभव कर रहे थे वह अब नहीं रह गई है। हमारे सामने बड़ी बड़ी जिम्मेवारियाँ, समस्याएँ और पेंचीदा सवाल खड़े हो गये हैं! संसार में अशान्ति तो है ही; भारत में भी वह पल-पल पर बढ़ रही है। जनता और जनता के प्रतिनिधियों को एकहृदय हो कर उन सभी समस्याओं को सुलझाना है। आज हम इन तीन वर्षों में यह अनुभव कर रहे हैं कि आजादी तो मिली, पर बरबादी भी बेहद हुई, प्रगति हमारी रुक गई है। चारों ओर असंतोष है और यह असंतोष लाखों करोड़ों लोगों में है। आवश्यकता एक बहुत बड़ी गहरी सर्वोदयमूलक ठोस सामाजिक क्रान्ति की है। अगर हम नहीं चेतते हैं इस मौके पर, तो डर इस बात का है कि हाथ में आई हुई राजनीतिक आजादी को हम कहीं खो न बैठें। सबको इस अवसर पर भगवान सन्मति दें जिससे इस देश में, स्वातंत्र्य, सुख और शान्ति की सरिता सदैव बहती रहे। हमारी आजादी फिर से कहीं मृगजल—मरुस्थल न बन जाय।

मध्यप्रदेश के प्रधानमंत्रीजी चिरायु हों!

श्वेत शुभ्र परिधान, ७४ वर्ष की वय। पूरा आपादमस्तक बुढ़ापा। किन्तु उत्साह में, योग्यता में, कार्यक्षमता में और राजकाज की संलग्नता में अपने बल सामर्थ्य से नव युवकों को भी मीलों पीछे छोड़ जाने वाले वयोवृद्ध पूज्य पंडित रविशंकर शुक्लजी—मध्यप्रदेश के प्रधानमंत्री—आयु के ७५ वें वर्ष में पदार्पण कर चुके हैं। हमारे प्रान्त की यह धवल बुजुर्गी स्वस्थ, सबल, सामर्थ्यवती और दीर्घायु हो, यही हमारी शुभ कामना है!

आदरणीय विद्वानों की दृष्टि में—

"भारती"

(जून के बाद)

'भारती' समस्त भारतीय (अन्तः प्रान्तीय) साहित्य के प्रकाशन की उच्च भावना को लेकर मध्यप्रदेश की राजधानी नागपुर से गत २६ जनवरी को प्रजातंत्र-स्वतंत्र--संघराज्य स्थापना के अवसर पर गो-धूलि वेला में, अवतीर्ण हुई थी। मासिक साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र में यह एक मौलिक भावना है। हमारी इस भावना को जिन बड़ों के शुभाशीर्वादों और सद्भावनाओं का संबल मिला है, इस छः सात मास की अल्प अवधि में उसे सारे भारत में जो आदर और लोकप्रियता मिली है, उससे 'भारती' को बल मिल रहा है, प्रेरणा मिल रही है, और जो [illegible] मिल रहा है—

स्पीकर भवन, लखनऊ
११-७-१९५०

श्रीमान् श्रद्धेय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडनजी अपनी शुभकामना व्यक्त करते हैं—

"हिन्दी के पुराने सेवक और लेखक मेरे मित्र श्री. हृषीकेश शर्मा के संपादकत्व में "भारती" नामक मासिक पत्रिका कई मास से, नागपुर से, प्रकाशित हो रही है। मैं उसका स्वागत करता हूं। उसका यह उद्देश्य विशेष रीति से रुचिकर हुआ कि देश की विभिन्न भारतीय भाषाओं का उच्च साहित्य हिन्दी में इस पत्रिका द्वारा प्रकाशित किया जाय।

यह कार्य देश की भिन्न भिन्न भाषाओं में सौहार्द पैदा करने का उत्तम मार्ग होगा और देश के एकीकरण में सहायक होगा।"

चिरगांव से राष्ट्रकवि श्रद्धेय मैथिलीशरणजी गुप्त—

"प्रिय शर्माजी, 'भारती' मिली। बहुत ही सुन्दर निकल रही है। उसका अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही प्रभावोत्पादक हैं। स्वास्थ्य सुधारते ही कुछ भेजूंगा।"

राजनांदगांव से सुप्रसिद्ध 'साकेतसन्त' के कवि और साहित्यकार डॉ. बलदेवप्रसादजी मिश्र एम. ए. एल. एल. बी. डी.-लिटः—

"प्रियवर, 'भारती' के प्रत्येक अंक को मैं बड़ी अभिरुचि के साथ पढ़ता हूँ। आपकी 'भारती' बड़े ही उच्च उद्देश्यों को लेकर राष्ट्रभाषा और राजभाषा हिन्दी का पथ प्रशस्त करने आई है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'भारती' भारत की हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का अनेक प्रकार से हितसाधन करेगी।"

हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ राष्ट्रीय कवि, सुलेखक और साहित्यकार श्री. पंडित रामनरेशजी त्रिपाठी सुलतानपुर सेः—

"प्रिय भाई हृषीकेशजी,

'भारती' के चार अंक मिले। आप ही ने भिजवाये होंगे। हिन्दी में इस समय यह अद्वितीय पत्रिका है। लेखों का संकलन बहुत ही उच्च कोटि का है। हिन्दी में ऐसे मासिक-पत्र की इस समय बड़ी ही आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति आपके हाथों हो रही है, यह जान कर हर्ष हो रहा है।

नागपुर के लब्धप्रतिष्ठ सुकवि, साहित्यिक, नागपुर विश्वविद्यालय रामायण-मंडल के मंत्री और कृषि-कालेज के प्रोफेसर पं० रामनारायणजी मिश्र, एम० एस० सी० :—

"प्रिय भाई, आपकी सम्पादित पत्रिका 'भारती' के दर्शन हुए। अनेक धन्यवाद! यह निःसन्देह उच्चकोटि की मासिक पत्रिका है। इसका अन्तरंग और बहिरंग दोनों मनोमोहक हैं। 'भारती' का प्रत्येक पृष्ठ आपके उत्साह का साक्षी है।.... विभिन्न भारतीय वाङ्मय धाराओं का संगम हिन्दी के पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने का आपका 'भारती' के द्वारा प्रयत्न वास्तव में स्तुत्य है। इससे अखिल भारतीय संस्कृति-संजात भावसम्बन्धी एकता और उससे धीरे धीरे राष्ट्रीय ऐक्य का प्रचार होगा जो परम वांछनीय है।"

मसूरी हिमशिखर अंचल से हिन्दी के उदीयमान लेखक और एकांकीकार श्री सत्येन्द्र शरत्—

'भारती' के अंक मिले। मुझे तो यह मासिक पत्र बहुत ही अधिक भाया। हिन्दी की श्रेष्ठ उच्च रचनाओं के साथ साथ अन्य भारतीय भाषाओं की सुन्दर अनूदित रचनाएं देने की आपकी कार्य-योजना अत्यंत सुन्दर और एक नवीन आदर्श है।"

श्री राजेन्द्र कालेज झालावाड, राजस्थान के हिन्दी संस्कृत प्रोफेसर श्री गणेशरामजी शर्मा :—

जनवरी से जुलाई तक के सब अंक मैंने पढ़े। 'भारती' का उच्च धरातल हिन्दी साहित्य के विकसित स्वरूप के अनुरूप है। 'भारती' को पढ़ कर एक नई प्रेरणा, नई अन्तःस्फूर्ति मिलती है। ऐसी उत्तम कोटि की सर्वांगसुन्दर पत्रिका का सम्पादन करने के लिए आपको बधाई! 'भारती' को देख

र हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल मालूम होता है।
री यह शुभ कामना स्वीकार कीजिये—

विविध विषय राजल्लेखमाला विशाला;
सरस मधुर काव्यैः सत्कथाकान्तरूपा।
कविकुलकलकीर्तिर्वैजयन्ती स्फुरन्ती;
प्रसरतु भुवनेऽस्मिन् 'भारती' पत्रिकेयम्॥

—प्राध्यापकः श्रीगणेशरामः

(२४-७-५०)

अपने सहयोगियों की दृष्टि में 'भारती'

बंबई का सुप्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक और अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विदुषी श्रीमती सोफिया वाड़िया द्वारा सम्पादित दी इंडियन पी० ई० एन० [The Indian P. E. N. of Bombay] लिखता है :—

BHARATI.

The plethora of Hindi journals and periodicals in recent times has not infrequently prompted the sober reader to wonder if the introduction of some principle were justified in order to regulate aimless-over production and unwanted duplication. Against this psychological background the emergence of a new magazine should ordinarily evoke similar reactions but we are happy to observe that "Bharati" a new Hindi Monthly from All India Reporter, Nagpur, is a refreshing exception. It aims at bringing the writers of modern Indian Languages into fellowship of creative endeavour, selecting the representative writings of these and presenting writings of these and presenting them through authentic Hindi translations. It is only meet that Hindi should fulfil this all-India function and be a living force for the forging of the bonds of union in the present shoddy world of strife and parochialism. We congratulate its able editor, Shri Hrishikesh Sharma for this laudable venture. We trust that some more aspects of cultural endeavour, such as music, art, architecture, etc., will also be included in the journal. The annual subscription is Rs. 15/- and it is being published since the 26th January, 1950.

(June, 1950).

स्वर्गीय देशभक्त आगरकरजी का पुराना, प्रसिद्ध साप्ताहिक हिंदी-स्वराज्य खंडवा से—

भारती (मासिक)

नागपुर के भारती कार्यालय से उपरोक्त मासिक पत्रिका रायल साईज में निकल रही है। अब तक ५, ६ अंक निकल चुके हैं। पं. हृषीकेशजी शर्मा के संपादकत्व में मासिक बहुत ही सुन्दर ढंग से निकल रहा है। हिन्दी मासिक पत्रिकाओं में सुन्दर और मनोमोहक छपाई का लाभ जिन गिनी-गिनी पत्रिकाओं को प्राप्त है, उन्हीं में 'भारती' भी एक है। मई का अंक जो हमें प्राप्त हुआ है उसे देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि अहिंदी लेखकों की सुन्दर रचनाओं को स्थान भी 'भारती' में दिया जाता है। इस रीति से हिन्दी-अहिन्दी भाषाओं की रचनाओं का सुन्दर समन्वय हमें भारती में दिखाई देता है। आज जो नीति और दृष्टिकोण तथा गुणग्राहकता का परिचय 'भारती' दे रही है उसे देखते हुए यह निःसंशय कहा जा सकता है कि 'भारती' निश्चय ही 'हिन्दी भारती' की अनुपम सेवा कर रही है। 'भारती' के अंक पठनीय होने पर भी मूल्य की अधिकता के कारण हिन्दी-जनता-जनार्दन इस मधुसंचय से वंचित ही रहेगा अपनी निष्कांचनता के कारण। ऐसी सुन्दर पत्रिकाओं को यदि सरकारी सहायता प्राप्त हो और उसका उपयोग मूल्य के कमी करने में हो सके तो काफी लाभ हो सकता है।

पत्रिका का सम्पादन तथा छपाई आदि सुन्दर होने से वह मन को बरबस अपनी ओर खींच ही लेती है।

श्री. सताराचन्द्रजी के "लिपि भारती" लेख के आधार पर, जो इसी अंक में अन्यत्र पृष्ठ ६९१ पर प्रकाशित है, ये ब्लाक तैयार किये गये हैं :—

'लिपि-भारती' सामान्यकाय 'अक्षरी'—दण्डरूप

Lipi Bharati Normal form—Upright

(*Scripta Indica*)

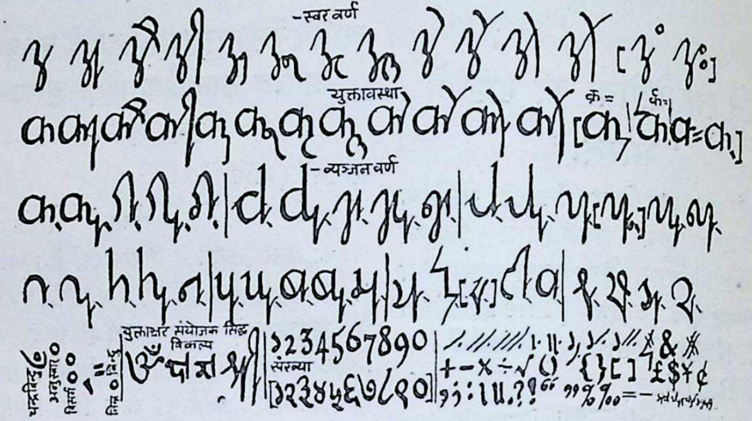
-स्वर वर्ण
युक्तावस्था
क =
र्क =
-व्यञ्जन वर्ण
चन्द्रबिन्दु
अनुस्वार
विसर्ग
युक्ताक्षर संयोजक चिह्न
विकल्प
ॐ
श्री
1234567890
संख्या
१२३४५६७८९०
+ − × ÷ √ ( ) { } [ ]
& £ $ ¢
% %o = −

'लिपि-भारती' लेखन का नमूना तिर्यक् रूप

'जनमनगण-अधिनायक' गीत—प्रथमांक

Specimen writing—Italic

Initial shows a regional Capital form

मुख्यकाय अक्षर आद्याक्षर प्रांतीय मुख्यकाय अक्षर; अवशेष सकल सामान्यकाय अक्षरी

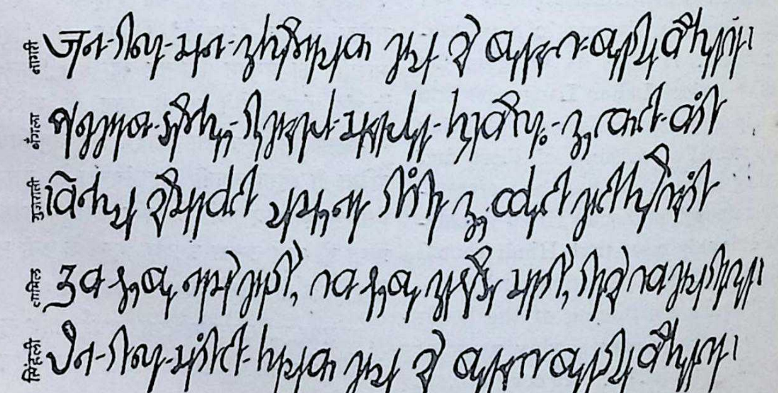
नागरी
बँगला
गुजराती
तामिल
सिंहली
मैथिली
१९४९

'भारती' आप से कुछ कहना चाहती है

१. यह कि 'भारती' के प्रकाशन का उद्देश्य अब आपसे छिपा नहीं है।

२. यह कि 'भारती' हर महीने सुन्दर १०० पृष्ठों में सचित्र, सुरुचिपूर्ण, विविध-विषयक भारतीय साहित्य, संस्कृति और कला की श्रेष्ठ पाठ्य सामग्री अपने प्रेमी पाठकों के हाथों में प्रस्तुत करती है।

३. यह कि अब समय आ गया है कि आपके घरों में जो पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य आदि सामग्री आवे; आप उसकी जागरूक, सतर्क एवं सचेष्ट होकर जाँच पड़ताल करें कि उसमें कहीं रोग के कीटाणुओं की तरह नग्नता, अश्लीलता या गन्दगी तो नहीं भरी हुई है; जो हमारे घरों में कमजोरी, कुविचार, कुरुचि और कुवासना को उत्तेजित करती है, सड़ाँद पैदा करती है, और जो हमारे राष्ट्रीय, जातीय अथवा व्यक्तिगत जीवन को विकारग्रस्त, अस्वस्थ, निर्बल बना कर पतन की ओर ले जा रही है। कृपया अश्लील, नग्न-चित्र, भद्दी, अर्धनग्न, कुरुचिपूर्ण, पाठ्यसामग्री और गन्दगी से भरे हुए शर्मनाक औषधीय विज्ञापनों से सुसज्जित पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों को अपने घरों में मत घुसने दीजिए।

४. यह कि जो आपके जीवन को, विचारों को, चरित्र को, रुचि को समृद्ध, संस्कारवान, प्राणवान, स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण बनाए वैसा ही उत्तम साहित्य आप पढ़ें। ऐसा साहित्य जहाँ से मिले, उसका स्वागत करें, उसे अपने घर में स्वतंत्र सूर्य के स्वच्छ प्रकाश की तरह और नीरोग स्वास्थ्यकर हवा के झोकों की तरह बेरोक-टोक आने दें।

५. यह कि इस महान पवित्र साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्य में आप 'भारती' का हाथ बटावें, उसकी सहायता करें।

६. यह कि आप तो 'भारती' के नियामित पाठक हैं ही; जहाँ जिस शहर या गाँव में आप हैं, भारती की सहायता के लिए अपनी ओर से कुछ-न-कुछ अवश्य करें। प्रत्येक पाठक 'भारती' का एक नया पाठक बना दे। जिन पुस्तकालयों, वाचनालयों या स्कूल-कालेजों की लायब्रेरियों में वह नहीं पहुँच रही है, वहाँ उसे उत्साहपूर्वक प्रोत्साहन देकर पहुँचा दें।

७. यह कि यथार्थ में सच्चे दिल से, ज़रासी मेहनत से, आप अपने इष्ट मित्र बन्धुओं में से एक एक नया ग्राहक बना कर भारतीय राज्य एवं राष्ट्र की भाषा हिन्दी के प्रसार में हमारी मदद करें।

८. "भारती" आपकी ऐसी सहायता का सहर्ष स्वागत करेगी। प्रतीक्षा में—

मंडल की नई पुस्तकें

(पठनीय, मननीय और संग्रहणीय)

१. **पंद्रह अगस्त के बाद :** महात्मा गांधी के पंद्रह अगस्त १९४७ से लेकर अंतिम लेख तक का संग्रह। आज़ादी तथा उससे पैदा हुई समस्याओं पर सम्यक् विचार, पृष्ठ २४०, सुन्दर छपाई, मूल्य २)

२. **धर्मनीति :** जीवन-नीति और उसके पालन संबंधी नियम-उपनियम का विवेचन करनेवाली महात्मा गांधी की चार पुस्तकों का संग्रह, पृष्ठ २५६, मूल्य २)

३. **बापू की कारावास कहानी :** लेखिका—डा० सुशीला नैयर; आगाखां महल में बापू के बंदी-जीवन के इक्कीस महीनों का हृदय-स्पर्शी व प्रामाणिक इतिहास २८ चित्र, सुन्दर छपाई, मूल्य १०)

४. **सर्वोदय विचार :** आचार्य विनोबा : सर्वोदय और उसके सिद्धान्तों का सूक्ष्म विश्लेषण, मूल्य १।।)

५. **पंचदशी :** भारत के चिंतकों और साहित्यकारों के पंद्रह उच्चकोटि के निबंधों का संग्रह, मूल्य १।।)

मंडल से प्रकाशित **'जीवन साहित्य'** मासिक के ग्राहक बनने से ये तथा मंडल की अन्य पुस्तकें आपको रियायती मूल्य में मिलेंगी। पत्र का वार्षिक मूल्य ४) रु.

व्यवस्थापक :— **सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली।**

दी युनायटेड कमर्शियल बैंक लि.

हेड ऑफिस, कलकत्ता

चुकता मूलधन : २ करोड़ रुपये
सुरक्षित कोष (रिज़र्व फंड) : ५२।। लाख रुपये

चेयरमैन : जी. डी. बिड़ला
जनरल मैनेजर : बी. टी. ठाकुर

समस्त भारत, पाकिस्तान, बर्मा और मलाया में बैंक की शाखाएँ हैं, और संसारभर में एजन्सी की व्यवस्था है।

जी. ए. रणदिवे
मैनेजर, नागपुर शाखा

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेरो-शायरी मूल्य ८)

[उर्दू के १५०० शेर और १६०, नज़्म]

श्री. अयोध्या प्रसाद गोयलीय —

प्राचीन और वर्तमान कवियों में ३१ लोकप्रिय कलाकारों के मर्मस्पर्शी उर्दू पद्यों का संकलन और उर्दू-कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय। **हिंदी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।**

मुक्तिदूत [द्वितीय संस्करण] मूल्य ५)

श्री. वीरेन्द्रकुमार, एम्. ए.

हिन्दी में अपने ढंग का सबसे पहला पौराणिक रोमांस। **उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है……मर्मज्ञों ने मुक्तकण्ठ प्रशंसा की है……।**

पथचिह्न [यू. पी. सरकार से एक हजार रुपयों से पुरस्कृत] मूल्य २)

मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली। श्री. शांतिप्रिय द्विवेदी की कोमलकृति रेखाएँ।

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ मूल्य ३)

इन कहानियों में प्राचीन भारत का चिन्तन सुरक्षित है। — कर्मवीर खण्डवा।

केवल ज्ञानप्रश्न चूडामणि मूल्य ४)

सम्पादक — श्री. नेमीचन्द जैन ज्योतिषाचार्य।

प्रश्नशास्त्र का अद्भुत ग्रंथ, हिन्दी विवेचन, मुहूर्त, कुण्डली, शकुन आदि के हिन्दी परिशिष्टों में विभूषित। इसके अध्ययन से सामान्य पाठक भी ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

पुस्तक विक्रेताओं को २५% प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस ४

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. नवीन प्रकाशन

(१) ज्ञानयोग — स्वामी विवेकानन्द, मू० ३); (२) सरल राजयोग — स्वामी विवेकानन्द, मू० ॥); (३) स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप, मू० १।); (४) वेदान्त — सिद्धान्त आर व्यवहार — स्वामी शारदानन्द–विवेकानन्दजी के गुरु-भाई-कृत मू० ।≈).

२. श्रीरामकृष्ण वचनामृत

अनुवादक—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सुन्दर गेट-अप, तीन भागों में, प्रथम भाग, पृ. सं. ६३२, मूल्य ६) रु., द्वितीय भाग, पृ. सं. ६५७, मूल्य ६) रु., तृतीय भाग, पृ. सं. ८२२, मूल्य ७॥ रु.।

३. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी)

पं० द्वारकानाथ तिवारी कृत, दो भागों में, सुन्दर गेट-अप, प्रथम भाग, पृ. सं. ४३६, द्वितीय भाग, पृ. सं. ४८६, प्रत्येक भाग का मूल्य ५ रु.।

"श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे।"

— **महात्मा गांधी**

४. विवेकानन्द-चरित

(विस्तृत एवं स्फूर्तिदायक जीवनी)

सुविख्यात लेखक, श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार कृत, **अभी प्रकाशित हुई**; सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ५५५, मूल्य ६ रु.।

"प्राचीन भारतीय संस्कृति में पगे तथा भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा के अभिमानी स्वामी विवेकानन्द मानवी जीवन की समस्याओं को समझने में नितान्त आधुनिक थे और हम कह सकते हैं कि इस प्रकार उनके जीवन में भारतवर्ष की प्राचीन तथा वर्तमान संस्कृति का सुन्दर समन्वय हुआ है।"

— **पं० जवाहरलाल नेहरू**

५. विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप)

शिष्य शरच्चन्द्र कृत, सुन्दर गेट-अप, पृ.सं. ४४८, मूल्य ५) रु.।

स्वामी विवेकानन्द कृत — भारत में विवेकानन्द, ५; पत्रावली (दो भागों में), प्रत्येक भाग का मूल्य २≈); महापुरुषों की जीवन-गाथाएँ १।); मन की शक्तियां ॥); इशदूत ईसा ।≈); राजयोग १≈); स्वाधीन भारत! जय हो! १≈); कवितावली ॥≈); भारतीय नारी ॥।); शिक्षा ॥≈); धर्म-रहस्य १); मेरी समरनीति ।≋); धर्मविज्ञान १॥≈); मेरा जीवन तथा ध्येय ॥); मरणोत्तर जीवन ॥); श्रीरामकृष्ण, धर्म तथा संघ ॥≈); कर्मयोग १॥≈); हिन्दु-धर्म १॥); प्रेमयोग १।≈); भक्ति-योग १।≈); आत्मानुभूति १।); परिव्राजक १); प्राच्य आर पाश्चात्य १।); शिकागो-वक्तृता ॥≈); मेरे गुरुदेव ॥≈); हिन्दू-धर्म के पक्ष में ॥≈); वर्तमान भारत ॥); पवहारी बाबा ॥); विवेकानन्दजी की कथाएँ १।); श्रीरामकृष्ण-उपदेश ॥≈)।

परमार्थ प्रसंग — (स्वामी विरजानन्द — विवेकानन्दजी के सन्यासी शिष्य तथा रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष कृत) कपड़े की जिल्द ३॥); कार्ड बोर्ड की जिल्द ३।)

पता :—श्रीरामकृष्ण आश्रम, [भा], धन्तोली, नागपुर-१, मध्यप्रदेश

गुरुकुल-पत्रिका

हिन्दी की साहित्यिक व सांस्कृतिक मासिक पत्रिका

सम्पादक, श्री· रामेश बेदी और श्री· सुखदेव

ख्यातिप्राप्त लेखकों और उच्च कोटि के विद्वानों की सुरुचिपूर्ण, रोचक तथा ज्ञान वर्धक रचनायें और गंभीर तथा खोजपूर्ण लेखकों के पढ़ने के लिये गुरुकुल पत्रिका पढ़िये।

प्रत्येक अंक की पाठय सामग्री स्थिर साहित्य है। यह साहित्य आपको मानसिक तथा आध्यात्मिक भोजन प्रदान करेगा। स्वास्थ्य सम्बन्धी उपयोगी लेख आपको स्वस्थ और आनन्दित रहने में सहायक होंगे। अपने परिवार को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करने के लिये आज ही मनीआर्डर से वार्षिक शुल्क भेजिए।

वार्षिक मूल्य देश में ४ रु० **विदेश में ६ रु०** **नमूने की प्रति ६ आने.**

पता :— **व्यवस्थापक, गुरुकुल पत्रिका,**

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

'भारती' यहां मिलती है।

१. अदोनी
२. अजमेर
३. अमृतसर
४. बंगलोर शहर
५. बलंगीर
६. बडवानी
७. बेलगांव
८. बल्लारी
९. बेतूल
१०. बंबई
११. कोयंबतूर
१२. एलोर
१३. गुंतकल
१४. गुंटूर
१५. हुबली
१६. इन्दौर
१७. जबलपुर
१८. मद्रास सेंट्रल
१९. मद्रास इगमोर
२०. मदुरा (जं.)
२१. मद्रास
२२. मलकापूर
२३. मैसोर
२४. नागपुर
२५. निडडबोल
२६. राजमहेन्द्री
२७. राजकोट
२८. सामलकोटा
२९. सिकंदराबाद
३०. तंजौर
३१. तेनाली
३२. तिरूच्चिनापल्ली
३३. ट्रिवेंड्रम सेंट्रल
३४. विजयवाड़ा

दि ट्रस्ट ऑफ इंडिया

अॅशुअरन्स कंपनी लिमिटेड

द्वैवार्षिक बोनस
हजारीं रुपये दहा
आयुष्याचे विम्याचे काम करणारी
प्रमुख महाराष्ट्रीय कंपनी

दि ट्रस्ट ऑफ इंडिया

हाऊसिंग सोसायटी लिमिटेड

विमेदारांच्या वसाहती व स्थावराचा
व्यवहार करणारी कंपनी

अध्यक्ष:— श्रीमंत जगन्नाथ महाराज पंडित.
मॅनेजर:— व्ही. एच. देशमुख, बी. ए.

मुख्य कचेरी: ६ बुधवार पेठ, लक्ष्मी रोड, पुणें नं. २

भारती

'भारती' में अपना विज्ञापन देकर व्यापारिक लाभ उठाइये

'भारती' की प्रगति

उत्तर-दक्षिण में

श्रीनगर कश्मीर से लेकर रामेश्वरम् मद्रास तक

और

पूर्व-पश्चिम में

गोहाटी आसाम से लेकर कराची पाकिस्तान तक

भारती का प्रचार है

विज्ञापन के मासिक दर:—

		पूरा पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
१.	मुखपृष्ठ ४ था	.... १७५) रु.	९०) रु.	५५) रु.
२.	मुखपृष्ठ २ रा और ३ रा	.... १४०) रु.	७५) रु.	४५) रु.
३.	साधारण पृष्ठ	.... १००) रु.	६०) रु.	३५) रु.

पता:—प्रबन्ध-सम्पादक, "भारती"

C/O ऑल इंडिया रिपोर्टर, लि.

नागपुर १ (मध्यप्रदेश)

हिंदी और मराठी भाषामें
प्रकाशित होता है।

उद्यम

प्रतिमास
१५ तारीख को पढ़िये।

धर्मपेठ, नागपुर.

उद्यम में निम्न विषयों पर लेख प्रकाशित होते हैं।

★ लाभदायक उद्योगधंधों की व्यवहारोपयोगी जानकारी।
★ अनाज की खेती, सागसब्जी की बागवानी, और रोगों का निवारण।
★ पशुपालन, दुग्धव्यवसाय और ग्रामोद्योग-संबंधी लेख।
★ विद्यार्थियों के लिये वैज्ञानिक तथा अन्य जानकारी-पूर्ण लेख।
★ आरोग्य, घरू औषधियों संबंधी जानकारी।
★ उद्यम परिवारके हर व्यक्तिकी दृष्टिसे उपयोगी है।
★ संपूर्ण भारत के व्हीलर रेल्वे स्टालों, और हर गाँवके न्यूजपेपर एजेंटों की माँग सतत बढ़ती जा रही है।
★ उद्यम मासिक में हर माह सुधार किया जा रहा है और इसे हर पाठक की दृष्टिसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

★ वर्ष के १२ अंकों में अपने ढंग के दो विशेषांक प्रकाशित होते हैं, जो स्थायी ग्राहकों को वार्षिक चंदे में ही मिलते हैं।

उद्यम के विशेष स्तंभ

★ महिलाओं तथा विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त
★ विभिन्न रुचिकर खाद्यपदार्थ बनानेकी विधियाँ
★ घरू मितव्ययिता
★ उद्यम का पत्रव्यवहार
★ खोजपूर्ण खबरें
★ आर्थिक तथा औद्योगिक परिवर्तन
★ जिज्ञासु जगत्
★ व्यापारिक हलचलों की मासिक समालोचना
★ कृषि, औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों की मुलाकात और परिचय
★ हिंदुस्थान के वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र की उपयोगी जानकारी
★ नित्योपयोगी वस्तुएँ घरही तैयार कीजिये।
★ आजही उद्यम का वार्षिक चंदा रु. ७–०–० भेजकर सर्वोपयोगी उद्यम मासिक मँगवाना प्रारंभ करें।

श्री० केशवगोपाल निगम :

हमें अधिक परिचय की जिज्ञासा है। दिल्ली के सरकारी सुन्दर सचित्र "आजकल" मासिक के सहकारी सम्पादक।

श्री० डॉ० लोकेशचन्द्र :

एम० ए०, पी० एच डी०। प्रसिद्ध बहुभाषा-विज्ञानाचार्य डॉ० रघुवीर के तरुण सुपुत्र। हालैण्ड विश्वविद्यालय से अभी अभी 'डॉक्टरेट' की पदवी ले कर आये हैं।

श्री० प्रभाकर माचवे :

एम० ए०, साहित्यरत्न। प्रगतिशील लब्धप्रतिष्ठ कवि, लेखक, कहानीकार, एकाङ्की-ध्वनिनाटक-कार और समर्थ समालोचक।

१९. श्री० जहूरबख्श :

हिन्दी संसार में ख्यात एक मुसलमान हिन्दी सेवक। मनोवैज्ञानिक सुन्दर सामाजिक कहानी-लेखक। इस अधेड़ उम्र मुसलमान मानव का शरीर भारत की मिट्टी से बना है। भारत ही उसका देश है और लगातार ३० वर्षों से राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा कर रहा है।

२०. श्री० अनंत गोपाल शेवडे, एम० ए० :

परिचय फर्वरी के अंक में।

Reg. No. N. 1262.

"कृष्णायन"

संत कवि श्री तुलसीदासजी की सुन्दर सरस रामायण की दोहा-चौपाईवाली अत्यन्त रमणीय शैली में भगवान आनन्दकंद श्रीकृष्ण का चरित। लेखक — पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र। मूल्य १२ रु. डाक खर्च अलग।

* निशागीत *

(लेखक—श्री० अनन्त गोपाल शेवड़े, एम. ए.)

एक सुन्दर प्रेमल उपन्यास

एक जनता के सेवक डॉक्टर और नर्स की यह प्रेम-कहानी इतनी जल्दी लोक-प्रिय कैसे हो गई?

क्योंकि उसमें प्राण हैं, सजीवता है, रोचकता है, कथा-तत्व है और मनको पकड़ने का अद्भुत आकर्षण है। एक बार प्रारंभ करनेपर पूरी किये बिना पुस्तक छोड़ी नहीं जाती।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, उदयशंकर भट्ट, विनयमोहन शर्मा, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' आदि द्वारा प्रशंसित —ऑल इंडिया दिल्ली तथा नागपुर रेडियो से चर्चित — विशाल भारत, कर्मवीर, मानवता, देशदूत, शुभचिन्तक आदि पत्र-पत्रिकाओं ने जिसकी सुन्दर समालोचना की। एक बार अवश्य पढ़िये।

पृष्ठ संख्या १५४; सुन्दर आकर्षक कवर, बढिया गेट-अप;
मूल्य २।) रु. डा. ख. अलग.

"गृहविधान"

गृहनिर्माण-कला का संपूर्ण सचित्र शास्त्रीय ग्रंथ। सौराष्ट्र के एक बहुत बडे अनुभवी चीफ इंजीनियर, नगर-निर्माता और सौराष्ट्र-सचिव श्री. वी. सी. मेहता का लिखा हुआ ग्रंथ। इसकी सहायता से कोई गृहस्थ धनी पुरुष ३ हजार रुपये से लेकर ३ लाख रुपये तक की आलीशान इमारत, घर, बंगला आदि बनवा सकता है। ४०० पृष्ठ, २०० चित्र मैप डिजाइन वगैरह। राष्ट्रपिता पू. बापू ने आशीर्वाद दिया। स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान ने सुन्दर सम्मति दी और डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र भूतपूर्व दीवान रायगढ स्टेट ने प्रस्तावना लिखी। भवन-निर्माण कला का शास्त्रीय ग्रन्थ है। मूल्य १२ रु. डा. ख. १ रु.

उक्त पुस्तकों के मिलने का पता :—

हिन्दी पुस्तक भंडार, धंतोली नागपुर (१)

Printed by V. M. Kulkarni at the All India Reporter Press and
Published by him for Bharatiya Karyalaya, All India Reporter Ltd., Nagpur.
D/- 7-8-1950.

(All Rights Reserved)

76336

अंक की पाठ्य सामग्री

और लेखक [सितम्बर १९५०]

पृष्ठ संख्या

... ७७१

एल. वी. डी-लिट्] ... ७७२

विद्यालंकार] ... ७८१

७८८

९०

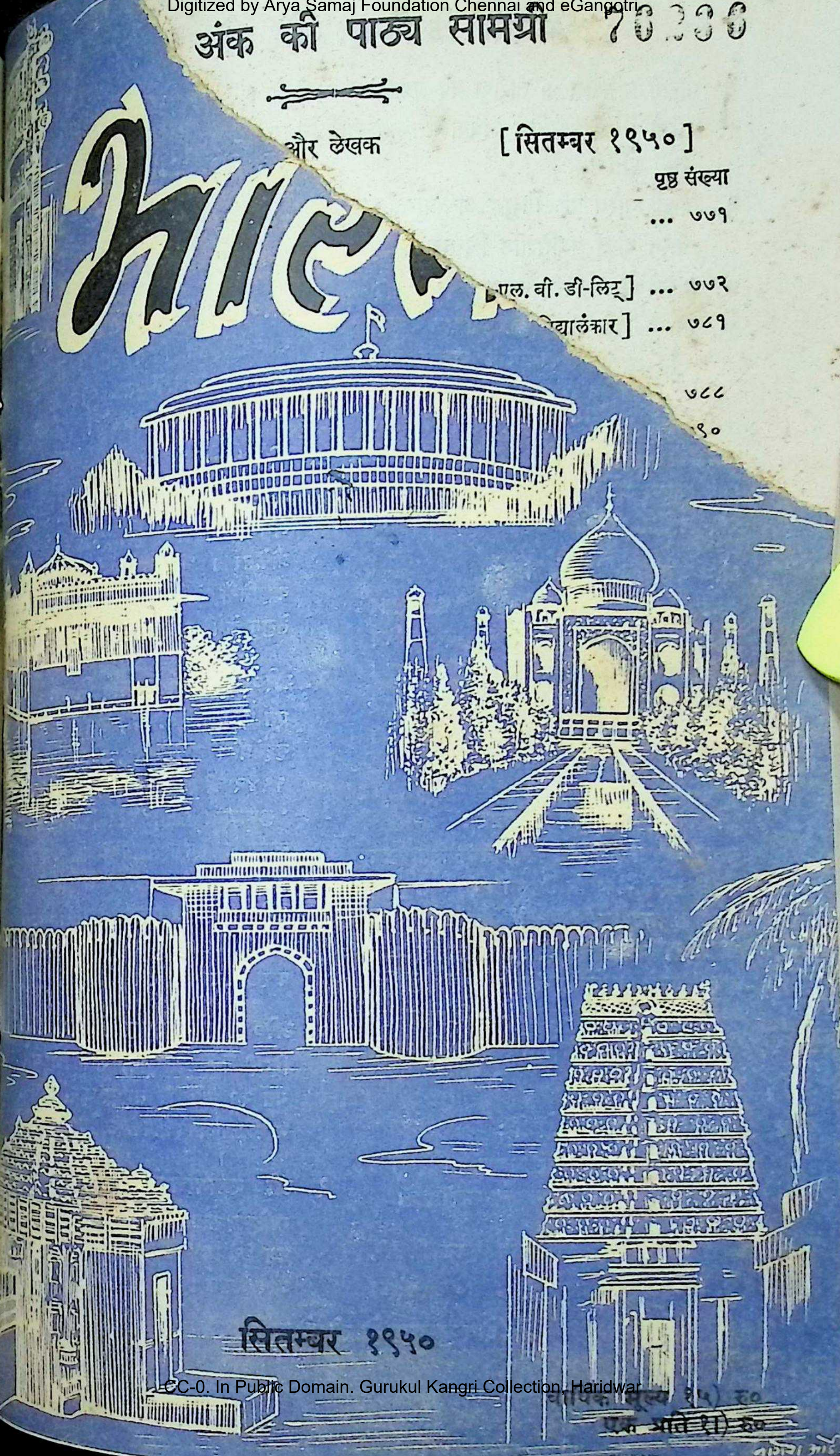

सितम्बर १९५०

वार्षिक मूल्य ६) रु०
एक प्रति ॥) रु०

" कृष्णायन

संत कवि श्री तुलसीदासजी
चौपाईवाली अत्यन्त रमणीय शैली ।
लेखक — पंडित द्वारकाप्र साकेत-
विज्ञान' आदि
। कुछ वर्षों तक नागपूर
हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष और
सत के दीवान भी । मराठी के मधुर
मनोद्बोधक " मनाचे श्लोक" का आपने
समश्लोकी हिन्दी रूपान्तर किया है। आजकल
आप स्वास्थ्य ठीक न रहने से जन्मस्थान राजनादगांव में ही रहते हैं।

२. श्री० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार :

लब्ध प्रतिष्ठ कहानी-लेखक। दिल्ली से, भारत सरकार के प्रकाशन विभाग से प्रकाशित सुन्दर सचित्र हिन्दी मासिक पत्र " विश्वदर्शन " के सम्पादक। चन्द्रकला, भयका राज्य, अमावस, वापसी, ये हैं चन्द्रगुप्तजी के श्रेष्ठ कहानी संग्रह। नाटक भी आपने लिखे हैं।

३. श्री० विष्णु सखाराम खांडेकर :

मराठी के अंत्यन्त लोक-प्रिय, लब्धप्रतिष्ठ, उच्च कोटिके कहानी-उपन्यास लेखक। सरल साफ सुथरी मराठी में अन्तर्द्वन्द्व, मनोभावों और मनोविकारों की झाँकी, जीवन की विविध रसात्मकता और उच्च विचारों के सुन्दर संकेत और तीव्र संवेदन, और निष्कर्ष, यह खांडेकरजी की विशेषता है। हिन्दी में आपकी कहानियों और दो-एक उपन्यासों के अनुवाद हुए हैं।

४. श्री० प्रभुदयाल अग्निहोत्री :

बी. ए., व्याकरणाचार्य और काव्यतीर्थ। हिन्दी के तरुण उदीयमान कवि, लेखक और आलोचक।

५. श्री० 'धूमकेतु,' ६. श्री० राम पूजन तिवारी, १४. श्री० कन्हैयाल सहल, १५. श्री० उदयशंकर भट्ट, १७. श्री० गणेश दत्त शर्मा 'इन्द्र' १८. श्री. विनयमोहन शर्मा १९. श्री० जहूर बख्श, २०. श्री० अनन्त गोपाल शेवड़े, इनके परिचय 'भारती' के गत अंकों में देखिये।

७. श्री० कृष्णकिंकर सिंह एम. ए. :

शान्तिनिकेतन विश्व भारती में चीन-भवन के अध्यक्ष। कुछ वर्षों तक चीन के विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक रहे।

८. श्री० 'अमरेन्द्र' :

आन्ध्र देश वासी। पूरा नाम सी. नरसिंह शास्त्री। अंग्रेजी साहित्य में एम. ए. और गुंटूर कालेज में प्रोफेसर। 'अमरेन्द्र' उपनाम से वे तेलुगु में कहानियाँ, रेडियो एकांकी, लेख आदि लिखते हैं। तेलुगु के शिष्ट प्रगतिशील लेखक हैं।

९. श्री० पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र :

एम ए. एल. एल. बी., मध्यप्रदेश शासन के समर्थ गृहमंत्री। साहित्यकार, प्रवक्ता और सम्पादक। १९४२ की स्मरणीय अगस्त-क्रान्ति के दीर्घ कालीन 'कृष्णजन्म स्थान' में निर्मित 'कृष्णायन' महाकाव्य ने जिनकी कीर्ति में चार चाँद लगा दिये। और समग्र 'कृष्णायन' के मराठी पद्यानुवादक **श्री० शंकर बाबाजी शास्त्री** संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, बंगला, गुजराती और हिन्दी के साहित्य-पारखी तथा समालोचक हैं।

१०. श्री० महादेव साहा पी. एच. डी. :

हिन्दी में अन्तर्राष्ट्रीय, राजनीति, अर्थ, समाज, गत २२ वर्षों से मज़दूर-आन्दोलनकारी, नेतृत्व, भाषातत्व आदि विषयों के प्रौढ अध्ययनशील लेखक।

११. श्री० रमानाथ अवस्थी :

साहित्य, कला और संस्कृति के प्रतिनिधि साप्ताहिक पत्र 'संगम' के सह-सम्पादक। उदीयमान कवि और लेखक।

(शेष मुखपृष्ठ के तीसरे पृष्ठ पर)

इस अंक की पाठ्य सामग्री

70336

विषय और लेखक [सितम्बर १९५०]

[भारती]

पृष्ठ संख्या

१. आधुनिक सोवियट साहित्यिक के मन में ... ७७१
२. हमारी सांस्कृतिक समस्याएँ (लेख) [श्री. डॉ. पं. बलदेवप्रसाद मिश्र; एम. ए. एल.-एल. बी. डी-लिट्] ... ७७२
३. हिन्दी साहित्य में गत्यवरोध (लेख) [श्री. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार] ... ७८१
४. रे सागर, अगस्त्य आया (मराठी कहानी) [मूल ले. श्री. वि. स. खांडेकर और अनु०—श्री. राजेन्द्रप्रसाद भट्ट] ... ७८८
५. गीत (कविता) [श्री. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, व्याकरणाचार्य, काव्यतीर्थ] ... ७९०
६. नवीन विचारणा की भूमिका (गुजराती) [ले. श्री. 'धूमकेतु' और अनु०—श्री. शंकरदेव विद्यालंकार] ... ७९१
७. रवीन्द्रनाथ के वर्षा गीत (बंगला) [श्री. प्रो. रामपूजन तिवारी एम. ए.] ... ७९२
८. चीन के प्राचीन समाज में नारी [श्री. कृष्णकिंकर सिंह एम. ए.] ... ७९८
९. अन्धा भगवान (तेलुगु कहानी) [मूल ले. श्री. 'अमरेन्द्र' और अनु०—श्री. 'करुण'] ... ८०६
१०. श्रीकृष्ण जन्म-प्रकरण ('कृष्णायन' से मराठी में) [मूल ले. श्री. पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र और अनु०—श्री. शं. वा. शास्त्री] ... ८१३
११. सोवियट रूस और भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध [श्री. डॉ. महादेव साहा पी. एच. डी.] ... ८१६
१२. आवाज़ उसी की होगी, पहचानो (कविता) [श्री. रमानाथ अवस्थी] ... ८१९
१३. आधुनिक कवि : नारियों की अदालत में (ध्वनि एकांकी) [श्री. कु. तारा पोद्दार एम. ए.] ... ८२०
१४. अरुणोदय ! (मैथिली कविता) [श्री. 'यात्री'] ... ८२५
१५. मूमल का गीत (राजस्थानी) [श्री. प्रो. कन्हैयालाल सहल एम. ए.] ... ८२६
१६. नया नोकर (एक शब्दचित्र) [श्री. उदयशंकर भट्ट] ... ८३०
१७. सुलेमान का मन्दिर (कहानी) [श्री. 'रावी'] ... ८३३
१८. स्वस्तिक (लेख) [श्री. गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'] ... ८३४
१९. राधा 'आवास गृहे' (कविता) [श्री. प्रो. विनयमोहन शर्मा एम. ए. एल.-एल. बी.] ... ८४०
२०. नर्तकी (कहानी) [श्री. मास्टर ज़हूरबख्श] ... ८४२
२१. जन्माष्टमी (बंगला कविता) [श्री. सत्येन्द्रनाथ दत्त] ... ८५३
२२. पूर्णिमा (धारावाही हिन्दी-उपन्यास) [श्री. अनन्त गोपाल शेवडे] ... ८५५
२३. विविध [श्री. ललिता प्रसाद पुरोहित] ... ८६८
२४. साहित्यालोचन (समीक्षा) [श्री. विनयमोहन शर्मा] ... ८७३
२५. दृष्टिकोण (सम्पादकीय) ... ८७६

'भारती' के नियम और उद्देश्य।

१. भारती प्रतिमास ७ तारीख को प्रकाशित होती है।

२. भारती में साम्प्रदायिक अथवा मत-मतान्तरों से सम्बन्धित, विवाद-ग्रस्त लेख प्रकाशित नहीं होंगे।

३. भारती भारत की विशुद्ध अन्तर्प्रान्तीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रगतिशील चिन्तन-प्रधान सचित्र मासिक पत्रिका है।

४. भारती में प्रतिमास लगभग १०० पृष्ठ रहेंगे।

५. किसी लेख, रचना, कविता आदि को छापने या न छापने का, उसे कम-बढ़ करने का और लौटाने न लौटाने का अधिकार संपादक को है।

६. भारती का उद्देश्य समस्त उच्च भारतीय भाषाओं के साहित्य को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना है जिससे वह भारत के समस्त भाषा-भाषियों की वस्तु बन सके।

७. भारती का दृष्टिकोण नव चेतना को लिये हुए रचनात्मक है। वह नये भारत में ऐसे हिन्दी साहित्य का निर्माण चाहती है; जिसमें भारतीय साहित्य का समन्वय हो—सर्वोदय हो।

८. भारती में हिन्दी की मौलिक श्रेष्ठ रचनाओं के साथ साथ —
१ असमिया, २ बंगला, ३ उड़िया, ४ नेपाली, ५ काश्मीरी, ६ सिंधी, ७ गुजराती, ८ मराठी, ९ तमिळ, १० तेलुगु, ११ कन्नड, १२ मलयालम आदि १०–१२ प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुई श्रेष्ठ अनूदित उच्च साहित्यिक रचनाएं भी प्रकाशित होंगी।

९. भारती में मनन करने योग्य विविध विषयक लेख, मनोवैज्ञानिक कलात्मक कहानियां, धारावाहिक उपन्यास, कविता, एकांकी, विविध समालोचनाओं का समावेश होगा।

१०. प्रकाशनार्थ समस्त सम्पादकीय व्यवहार नीचे लिखे पते पर कीजिये :—

लेखकों से खास निवेदन :—

(१) 'भारती' में प्रकाशनार्थ रचना, आदि कम से कम एक मास पहले, ता. १० तक, सम्पादक के पास भेज देना चाहिए। लेख-रचना सामग्री साफ, सुथरे कागज के एक ही ओर स्वच्छ सुपाठ्य अक्षरों में लिखी जानी चाहिए।

(२) लेखक कृपया इस बात को हमेशा ख्याल में रखें कि वे जो कुछ रचना-सामग्री, कविता-कहानी-एकांकी-निबंध-लेख आदि 'भारती' में प्रकाशनार्थ भेजें, वह नवीनतम हो। इतः पूर्व पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित बासी तथा बची खुची न हों। लेखक कृपया सीधे सम्पादक को ही रचनाएँ भेजें। किसी अभिषद-परिषद् या सिंडिकेट आदि के द्वारा नहीं। आपकी भेजी मौलिक और अनूदित रचनाएँ भारतीय साहित्य में स्थायित्त्व ग्रहण करें इस दृष्टि से उनका स्तर उच्च हो।

अस्वीकृत रचना को वापस मंगाने के लिये डाक-टिकट अवश्य भेजें।

वार्षिक मूल्य १५ रु.
एक प्रति १।) रु.

संपादक, 'भारती'
C/o ऑल इंडिया रिपोर्टर लि.
कांग्रेस-नगर, नागपुर (१) (मध्यप्रदेश)

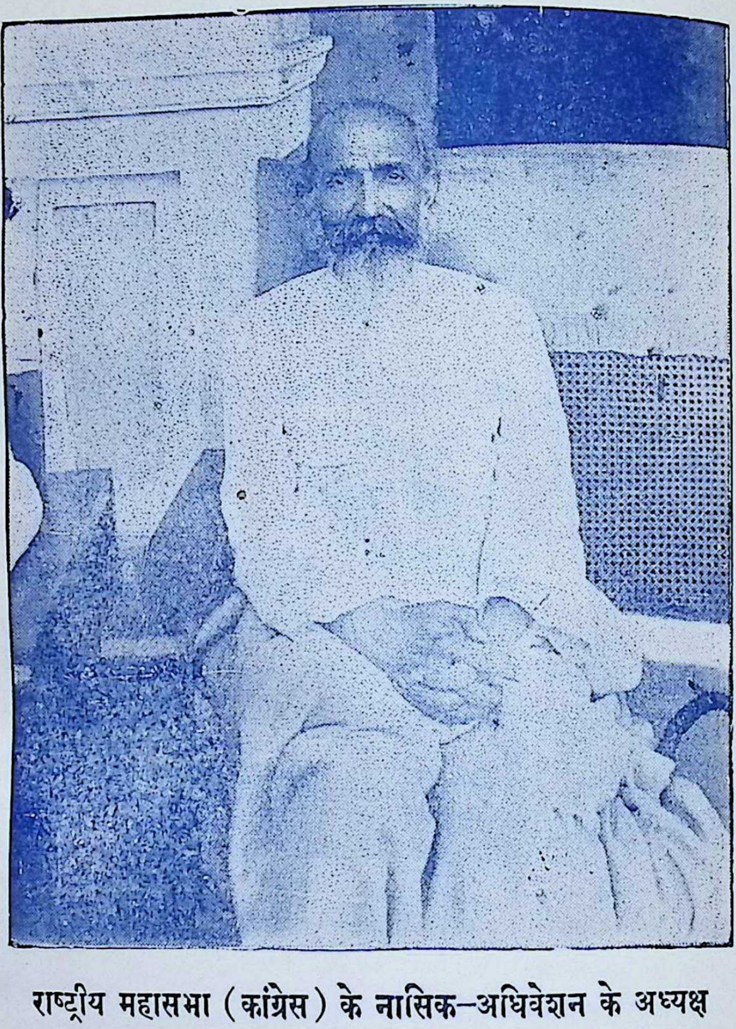

राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के नासिक-अधिवेशन के अध्यक्ष
राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडन

“भगवान ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।”
— मैथिलीशरण गुप्त.

भारती

सम्पादक
हृषीकेश शर्मा

संचालक
ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., नागपुर

प्रबन्ध-सम्पादक
वि. मा. कुलकर्णी

वर्ष १ * नागपुर, सितम्बर—१९५० * अंक ९

आधुनिक सोवियट साहित्यकार के मन में

“हमारी सबसे बड़ी प्रसन्नता इस बात में है कि हम मानवता के विकास में अपने को मिटा सकें। यह मानव के अस्तित्व का महानतम अर्थ और आदर्श है और इस महान वलिदान की तैयारी में अगर हम पूरा एक जीवन बिता दें तो कोई बड़ी बात नहीं। जिस जीवन में संघर्ष न हो, निर्माण की टीस न हो, एक ऐय्याश की ज़िन्दगी जिसके अपने पंख न हों और जो केवल स्वार्थ के उद्देश्यों से संचालित होती हो, वह मानव को पतित बना देती है और उसकी आत्मा को कमज़ोर बना देती है। उसे वह आनन्द, वह निश्छल, नैसर्गिक और स्वर्गिक आनन्द कभी नहीं मिल पाता जो उन लोगों को मिलता है जो इतिहास के चक्के को आगे बढ़ाया करते हैं।”—**ए. क्रॉन**

◆

हमारी सांस्कृतिक समस्याएँ

[श्री डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र]

संसार में तीन प्रधान जातियाँ हैं—काकेशियन (आर्य), मंगोलियन (चीनी) और यूथोपियन (अनार्य)। यूथोपियन संस्कृति का सभ्य समाज में कोई स्थान नहीं है। मंगोलियन (चीनी) संस्कृति अवश्य बहुत पुरानी और महत्वपूर्ण है; परन्तु एक तो इस समय वह स्वतः रूसी संस्कृति से आक्रान्त है और दूसरे हम भारतीयों के साथ उसका कोई विशेष संपर्क भी नहीं है। कम से कम ऐसी स्थिति तो न कभी आई और न अब भी है कि उस संस्कृति का अपने देश में हमारी संस्कृति के साथ किसी प्रकार का संघर्ष हो। अब रही काकेशियन संस्कृति। सो पहिले उसके तीन प्रधान भेद थे—(अ) भारतीय संस्कृति, (आ) इस्लामी संस्कृति, और (इ) ईसाई संस्कृति (यूरोपीय संस्कृति)। अब एक चौथा भेद और हो गया है जिसे (ई) रूसी संस्कृति (मार्क्सवादी या साम्यवादी संस्कृति कह सकते हैं। चारों संस्कृतियों की अपनी अपनी विशेषताएं हैं और विश्वमानव के कल्याणार्थ चारों के पास कुछ ऐसे तत्व अवश्य हैं जिनसे समग्र मानव जाति लाभ उठा सकती है। संभव है कि कभी ये सब संस्कृतियाँ मिल कर एक हो जावें; परन्तु यदि उनमें पारस्परिक सहयोग और सामंजस्य की भावना विद्यमान है—और प्रत्येक समझदार व्यक्ति को चाहिए कि वह उनमें सहयोग और सामंजस्य की भावना बढ़ावे—तो उनकी भिन्नता भी विश्व के सांस्कृतिक उद्यान की शोभा और उपयोगिता बढ़ाने वाली ही समझी जायगी। इसमें डरने की कोई बात नहीं।

अभिमान को लोग बुरा कहा करते हैं। परन्तु श्रद्धा विश्वास की वृद्धि में और भावना तथा क्रिया को प्रेरणा देने में तर्क की अपेक्षा अभिमान ही अधिक सहायक हुआ करता है। गोस्वामी तुलसीदासजी के समान निरभिमानी महात्मा भी कह गये हैं **"यह अभिमान जाय नहिं भोरे, मैं सेवक रघुपति पति मोरे।"**

स्नेह और अभिमान का घनिष्ट संबंध है; क्योंकि ममत्व का ही दूसरा नाम है अभिमान। मिथ्याभिमान ठीक नहीं, परन्तु तर्क जिस अभिमान का पोषण करे उसे त्याग देना बुद्धिमानी नहीं है। इस दृष्टि से हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक भारतीय को निश्चय ही भारतीय संस्कृति का अभिमानी होना चाहिए। अन्य संस्कृतियों की जो अच्छाइयाँ हैं वे या तो इस संस्कृति में पहिले ही से विद्यमान हैं या इसमें विना किसी रोक-टोक या विघ्नबाधा के सादर ग्रहण की जा सकती हैं। और इस संस्कृति की कुछ ऐसी विशेषताएं भी हैं जो अन्य संस्कृतियों में न तो मिल रही हैं और न शायद मिल ही सकती हैं। भारतीय संस्कृति की पहिली विशेषता है उसकी सर्वंसहता अर्थात् सहिष्णुता। वह आस्तिकों, नास्तिकों, जड़वादियों, चेतनवादियों सभी के साथ अपना सामंजस्य स्थापित किये हुए है। न वह रूसियों की तरह धनिकों और धार्मिकों के साथ शत्रुता ही करती है और न मुसलमानों अथवा ईसाइयों की भाँति केवल मुहम्मद साहब अथवा केवल ईसामसीह को ही जगत् उद्धारक मान कर चलती है। विरोधियों ने अपने अपने संकीर्ण सिद्धान्तों की न जाने कितनी लाठियां उस पर चलाईं परन्तु समुद्र की तरह वह प्रशान्त गंभीर ही बनी रही और कालान्तर में उसने अपने ऊपर आक्रमण करने वालों को भी शीतलता प्रदान कर आत्मसात कर लिया। इस संस्कृति की दूसरी विशेषता है उसकी सर्वग्राहकता। गंगा की धारा न जाने कितनी धाराओं का जल ग्रहण करती जा रही है फिर भी वह पतितपावनी गंगा ही है। भारतीय संस्कृति का क्रमिक इतिहास बताता है कि इसने भी न जाने कितनी संस्कृतियों के उत्तम तत्व ग्रहण किये और अब तक करती जा रही है। इतना ही नहीं; बल्कि इसने मानव-

१९५०

जीवन के सभी पक्षों को जितनी व्यापकता के साथ ग्रहण किया है वह अन्य संस्कृतियों में नहीं देखा जा सकता। इसी प्रकार की और भी अनेक विशेषताएं इस संस्कृति में हैं। तर्क के क्षेत्र में व्यक्ति-स्वातंत्र्य को जितना अधिक स्थान इस संस्कृति ने दिया है उतना अन्य संस्कृतियों में—विशेष कर इस्लामी संस्कृति और रूसी संस्कृति में—दुर्लभ है। अतएव इस संस्कृति पर भारतीयों को स्वभावतः ही स्नेहपूर्ण अभिमान होना चाहिए। ऐसे अभिमान ही के कारण सर्वसाधारण भारतीय इसके प्रति आस्थावान हो कर इसके द्वारा परस्पर एक राष्ट्रीयता के बंधन में बंधे रहेंगे। यह बंधन न रहा और कोरे तर्क को खुली छूट दे दी गई तो भारतीय राष्ट्रीयता के खतरे में पड़ जाने की पूरी पूरी संभावना समझिये। सभी कोई तो परिपक्व बुद्धि के नहीं रहा करते। अतः तर्क की झँझरी नाव पर बैठ कर संसार की समस्याओं के सागर पार करना सब का काम नहीं।

भारतीय संस्कृति का सच्चा अभिमानी तर्क को सदैव यथोचित आदर देगा और अपनी बुराइयाँ त्यागने तथा दूसरों की अच्छाइयाँ ग्रहण करने के लिये सदैव तत्पर रहेगा। परन्तु वह प्रत्येक वस्तु को भारतीय ढंग पर और भारतीय शब्दावली में ही सोचने की पहिले चेष्टा करेगा। यदि कभी उसे उपयुक्त भारतीय शब्दावली अथवा उपयुक्त भारतीय ढंग का अभाव दीख पड़ेगा, तभी वह विदेशी (अभारतीय) शब्दावली और विदेशी (अभारतीय) ढंग को अपनाने की इच्छा करेगा। राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति में यह बात तो होनी ही चाहिए। अतः भारती संस्कृति में प्रभु, दान, संस्कार, व्रत, उपवास जैसे शब्द रहते हुए ख़ालिक, मालिक, रहीम, रहमान ऑल्माइटी, ज़कात, चेरिटी, सेक्रामेण्ट, रोज़ा, फ़ास्ट आदि ला घुसेड़ने की क्या आवश्यकता है। विदेशी शब्दों के साथ विदेशी भावनाएँ भी आती हैं जब तक कि वे विदेशी शब्द अपनी भाषा में अच्छी तरह पच न गये हों। इसी प्रकार यदि किसी भी तत्व के विवेचन का भारतीय परम्परा वाला ढंग पूर्ण तर्क-सम्मत जान पड़ता है तब कोई आवश्यकता नहीं कि उसका बहिष्कार ही किया जाय और उसके बदले जानबूझकर नया ढंग चलाया जाय। भारतीय संस्कृति प्रधानतः वैदिक संस्कृति का ही परिष्कृत रूप है। वैदिक संस्कृति ही विकसित हो कर "सनातन धर्म" के रूप से इस देश में व्याप्त है। संस्कृति को "धर्म निरपेक्ष" रखने के लिये हम साम्प्रदायिक बातों को भले ही दूर कर दें परन्तु तर्क पूर्ण व्यावहारिक बातें, जो हमें सनातन धर्म के द्वारा प्राप्त हुई हैं उन्हें, दूर करना मानों अपनी संस्कृति की भारतीयता को ही दूर कर देना होगा। अतः अपनी संस्कृति के विवेचन में यदि हमारा दृष्टिकोण सचमुच ही भारतीय है तो हम निश्चय ही सनातन परिपाटी का—सनातन धर्म द्वारा प्रकट किये गये ढंग का यथोचित आश्रय लेंगे बशर्ते कि वह पूर्ण तर्क सम्मत ढंग हो। जैन समाज, बौद्ध समाज, ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, सिख समाज, आदिवासी समाज आदि आदि भले ही अपने को सनातन धर्मी न कहें परन्तु सनातनधर्म द्वारा दी हुई तर्क-सम्मत व्यावहारिक संस्कृति के वे भी विरोधी नहीं। उन सब ने मिल कर अब उसे हिन्दू संस्कृति का, तथा उनके साथ अन्य अहिन्दुओं ने मिल कर उसे भारतीय संस्कृति का, रूप दे दिया है। अतएव सनातन धर्म की जो शब्दावली भारतीय संस्कृति को ग्राह्य हो चुकी है अथवा उसकी परम्परा के सर्वथा अनुकूल जान पड़ रही है उसी शब्दावली में इसके तत्वों की चर्चा उपयुक्त होगी। उस ढंग और उस शब्दावली के साथ अपना ममत्व हो तो वह स्वभाविक ही है।

किसी राष्ट्र की राष्ट्रीयता तभी तक है जबतक उसे बाहरी संघर्ष का भय है—सामूहिक रूप से आत्मरक्षा का ख्याल है। यह भय दूर होते ही वह या तो व्यक्तिवादी बन जायगा अथवा अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़ चलेगा। मनुष्य के निसर्गजात राग-द्वेषमय स्वभाव की प्रवृत्ति अन्तर्राष्ट्रीयता की अपेक्षा व्यक्तिवाद ही की ओर विशेष रहा करती है। उसके मन की बनावट ही ऐसी है। रागद्वेष को ऊर्जस्वल बनाकर—"वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना तक पहुँचा देना और इस प्रकार मन के अस्तित्व ही को अथवा व्यक्ति के व्यक्तित्व ही को मिटा कर उसे निर्वाण पदवी तक पहुँचा देना प्रत्येक महोपदेशक का ध्येय रहा है। परन्तु मानव समाज के इन लखों वर्षों के जीवन काल में इने गिने लोग ही इस अवस्था तक पहुँच सके हैं। शेष का तो यह हाल है कि

यदि कोई संकट अथवा सामूहिक स्पर्धा का अवसर आया—उदाहरणार्थ शेर आया या विदेशी राष्ट्र अथवा गुण्डों ने चढ़ाई की—तब प्रतीकार के लिये अनेक लोग एक हो गये और शत्रुको मार भगाया । और, जब शत्रुका भय जाता रहा तब अपनी अपनी राह अलग अलग हो गये और पारस्परिक स्पर्धा में ही डूबने उतराने लगे ।

देश-काल-पात्र की भिन्नताएँ प्रत्येक व्यक्ति (और समाज) के स्वार्थ में भिन्नताएँ उपस्थित करती ही हैं और इस भिन्नता के कारण संस्कृति में भी भिन्नता होना स्वाभाविक हो जाता है । व्यक्ति व्यक्ति की संस्कृति अलग, कुटुम्ब कुटुम्ब की संस्कृति अलग, जाति जाति की संस्कृति अलग और राष्ट्र राष्ट्र की संस्कृति अलग, परन्तु आत्मविस्तार और आत्मरक्षा के लिये जब जैसी संस्कृति पर जैसा ज़ोर देने की आवश्यकता हो तब वैसा ज़ोर देना ही पड़ता है। जब राष्ट्र की सामूहिक रक्षा का प्रश्न हो तब व्यक्ति की अथवा जातिकी संस्कृतियों को गौणत्व दे कर राष्ट्रीय संस्कृति पर ही ज़ोर दिया जाता है। जब ऐसी स्थिति न हो तब व्यक्ति (सम्प्रदाय) अथवा जाति की संस्कृतियाँ सिर उठाती हैं । युधिष्ठिरजी के इस कथन में किः—

"वयं पंच वयं पंच परस्पर विवादने
अन्येषां विग्रहे प्राप्ते वयं पंचाधिकं-शतम् ।"

बड़ा गहरा तत्व निहित है।

भारतीय राष्ट्र के भीतर जिन अनेक प्रकार की संस्कृतियों के दर्शन हो रहे हैं उनमें प्रमुख वे चार हैं जिनकी चर्चा पहिले हो चुकी है अर्थात् (१) सनातनी संस्कृति, (२) यूरोपी संस्कृति, (३) इस्लामी संस्कृति और (४) रूसी अथवा मार्क्सवादी संस्कृति। ईसाई (यूरोपी) संस्कृति में सहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है । अब अंग्रेजों का राज्य भी यहाँ से चला गया अतः इस संस्कृति के पीछे राजसत्ता का जो बल था वह भी जाता रहा । इसके कट्टर अनुयायियों की संख्या भी इस देश में अधिक नहीं । अतः सनातनी संस्कृति से — भारत की परम्परागत संस्कृति से — स्पर्धा करने की अपेक्षा उसके साथ घुलमिल कर चलने का मार्ग ही इसका मार्ग रहेगा। इस्लामी संस्कृति के संबंध में ठीक यही बात नहीं कही जा सकती। भारतीय ईसाइयों ने तो कभी भी अपने को भिन्न राष्ट्रीय नहीं माना परन्तु दुर्भाग्यवश भारतीय मुसलमानों ने पहिले शासक मनोवृत्ति और फिर लीगी मनोवृत्ति के फेर में पड़कर अपने को भिन्न राष्ट्रीय सिद्ध करना चाहा । अतएव वे भाषा, भेष और भावना में अपना रास्ता अलग ही निकालते रहे । अब, जब कि पाकिस्तान का एक स्वतंत्र राष्ट्र बन चुका है और भारत के बचे हुए मुसलमान उस नये राष्ट्र में न जाकर यहीं के राष्ट्रीय नागरिक बन कर रहना चाहते हैं, तब उनके लिये यह परम आवश्यक हो गया है कि वे पाकिस्तानियों की अपेक्षा भारतीयों से अधिकाधिक संस्कृति-साम्य रखना प्रारम्भ कर दें । अन्यथा वे भारतीय राष्ट्र के विश्वास पात्र अंग कभी न बन सकेंगे और उसके लिये सदैव संकट ही सिद्ध होते रहेंगे । अपनी विधान परिषद ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करके ऐसे संस्कृति-साम्य के लिये मार्ग एकदम प्रशस्त कर दिया है क्योंकि भाषा-साम्य के सहारे भावना-साम्य होना कुछ कठिन नहीं रहता । संस्कृति के सम्बन्ध में मुसलमान भाइयों ने जहाँ सहिष्णुता से और हिन्दी की शब्दावली से काम लेना प्रारम्भ कर दिया कि फिर हिन्दुओं से उनका सच्चा एका होने में विशेष विलम्ब न लगेगा । दोनों ही न केवल एशियायी हैं वरन् अध्यात्म परक आस्तिक्य भावना-वाले भी हैं । दोनों ही मानव-बंन्धुत्व के समर्थक और वर्ग संघर्ष के विरोधी हैं । अतः भारतीय मुस्लिम नेताओं का यह परम कर्तव्य है कि वे शीघ्रातिशीघ्र भारतीय मुसलमानों के हृदयों से पाकिस्तानी मोह हटाकर ऐक्य संवर्धिनी भारतीय राष्ट्र-संस्कृति की ओर उनमें प्रबलतम आकर्षण उत्पन्न करें ।

अब रही मार्क्सवादी संस्कृति । सो यह अब इतनी प्रबल होती जा रही है कि इसे किसी भी प्रकार उपेक्षणीय कहना सत्य पर पर्दा डालना होगा । संसार-व्यापिनी आर्थिक दुरवस्था ही इसके पनपने और दिन दूनी रात चौगुनी फूलने-फलने का प्रधान कारण है । मार्क्सवाद का केंद्र है रोटी । इस रोटी के लिये मार्क्सवाद हिंसा के पथ का वर्ग-संघर्ष सिखाता है, ईश्वर और आध्यात्मिकता को गोली मार देने की बात कहता है तथा मनुष्य

व्यक्तित्व को शासन की श्रंखला में एकदम जकड़ देना चाहता है। मार्क्सवाद में तोते की आज़ादी के पर कतर कर उसके खिलाने के लिये दाड़िम और दाख के ढेरों की व्यवस्था की जा रही है। परन्तु क्या तोता वास्तव में इस व्यवस्था से सुखी होगा ? क्या मनुष्य के व्यक्तित्व में रोटी के राग के अतिरिक्त और कोई वस्तु ही नहीं ? इस समय अधिकांश लोगों को रोटी की बड़ी आकांक्षा है इस-लिये मार्क्सवाद बहुत अच्छा लग रहा है। परन्तु जब यह आकांक्षा पूरी हो जायगी तब क्या होगा ? फिर; रोटी प्राप्त करने के लिये भी क्या रक्त रंजित मार्ग ही एक मात्र मार्ग है ? इसका क्या भरोसा कि रोटी दिलानेवाले प्रबन्धक उन्हीं रोटियों की तरतमता के लिये कभी परस्पर ही हिंसा के उपायों का प्रयोग न करने लग जावेंगे। रोटी बड़ी कि रोटी का उपभोग करनेवाला बड़ा ? इसलिये किसी भी संस्कृति के केन्द्र में रोटी को रखकर चलने की अपेक्षा रोटी का उपभोग करनेवाले मनुष्य को — व्यक्ति को—रखकर चलना अधिक श्रेयस्कर है। कहावत है कि बाणासुर ने पाशव शक्ति को केन्द्र में रखकर अपनी संस्कृति का विस्तार किया। जब तक संसार में उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी रहा तब तक तो वह खूब विजयी रहा परन्तु जब कोई बाहरी प्रतिद्वन्द्वी न रहा तब उसने स्वभाव से विवश होकर मानस के शिव से ही—कल्याण तत्व से ही—संघर्ष करने की ठानी। उसने अपना संघर्षमय-द्वेषमय-स्वभाव ही बना लिया था। अतएव और करता ही क्या। परिणाम में वह एकदम विनष्ट हो गया। अतएव व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव की उपेक्षा करके जो केवल रोटियों का राग अलापते हैं और एतदर्थ द्वेषपूर्ण हिंसा का पथ प्रशस्त बताते हैं वे विषभरी मिठाई का क्षणिक आकर्षण देकर परिणाम में कितनी भयंकर वस्तु दे रहे हैं यह सोचने और समझने की बात है।

मार्क्स्वादी संस्कृति का प्रवाह कोरी बातों के बांध से नहीं रोका जा सकता। उसके लिये बड़ी शक्तिमत्ता की आवश्यकता है। उसमें रोटी एक ऐसी ठोस चीज़ है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतएव भारतीय संस्कृति को यदि मार्क्सवाद के विध्वंसात्मक अंशों से बचाना है तो उसके कर्णधारों का परम कर्तव्य है कि वे उस मार्क्सवाद के सृजनात्मक अथवा रचनात्मक अंशों को शीघ्रतिशीघ्र अपनी संस्कृति में आत्मसात् कर लें अथवा अपनी संस्कृति के सहारे यह स्पष्ट कर दें कि रोटियों की सुचारु व्यवस्था करनें में वे मार्क्सवादियों की अपेक्षा अधिक सक्षम हैं। यदि उनसे ऐसा नहीं हो सकता तो आर्थिक क्षेत्र में वे मार्क्सवाद के उत्तम तत्वों का निःसंकोच प्रचलन हो लेने दें परन्तु साथ ही उच्च स्वर से यह भी घोषणा करते रहें कि व्यति के जीवन में केवल आर्थिक क्षेत्र ही नहीं वरन् आध्यात्मिक क्षेत्र भी है जहाँ द्वेष के बदले प्रेम का राज्य रहा करता है और इसलिये केवल रोटी ही नहीं; वरन् समूचा मानव-व्यक्तित्व ही मनुष्य के अध्ययन और चिन्तन का विषय होना चाहिए। यदि ऐसा न किया गया तो निःसन्देह भारत की राष्ट्रीयता शीघ्र ही संकटापन्न हो जायगी। चीन आदि का हाल देखते हुए हमें शीघ्रातिशीघ्र सतर्क हो जाना चाहिए। खेद है कि विश्ववंद्य महात्मा गांधी इस समय हमारे पथ-प्रदर्शक के रूप में नहीं हैं परन्तु उन्होंने जो "गांधीवाद" हमें दिया है उसके सहारे हम भारत की आध्यात्मिकता का और रूस की भौतिकता का सहज ही सामंजस्य कर सकते हैं। भारत के कुछ समाजवादी नेतागण इस प्रकार का प्रयत्न कर भी रहे हैं। उन्हें सफलता मिले या न मिले यह दूसरी बात है। ऐसे सभी प्रयत्नों की तह में व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन प्रधान होना चाहिए। उसी के सहारे हम भारतीय संस्कृति के उन उत्तम तत्वों को सामने ला सकते हैं जो पूर्णतः तर्क-सम्मत होने के कारण सभी को सहज ही ग्राह्य हो सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि मनुष्य में विकास की प्रवृत्ति निसर्ग से ही हुआ करती है। इस विकास के लिये मार्ग भी तीन ही रहा करते हैं—ज्ञान (knowing), क्रिया (willing) और भावना (feeling) के। इनके कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व के—उसके अहं के—तीन रूप माने गये हैं। ज्ञान प्रधान अहं को बुद्धि समझिये, क्रिया प्रधान अहं को मन और भावना-प्रधान अहं को चित्त। मन की पूर्णता अथवा उसके सर्वोत्कृष्ट

आदर्श का नाम है 'सत्', बुद्धि की पूर्णता (सर्वोत्कृष्ट आदर्श) का नाम है 'चित्' और चित्त (भावना) की पूर्णता का नाम है 'आनन्द'। जिस प्रकार केवल प्रसंगगत प्रधानता के तारतम्य से ही हम एक अहं के तीन अलग अलग रूप मान लेते हैं—वास्तव में वे तीनों अलग अलग हैं नहीं; उसी प्रकार सत्-चित्-आनन्द भी वास्तव में एक ही तत्व हैं। उसी एक तत्व के प्रभु, भगवान, आदि हजारों नाम गिनाये जा सकते हैं। इस तरह विचार करने पर विदित होगा कि प्रत्येक व्यक्ति ही अणु सच्चिदानन्द है और वह निसर्गतः ही पूर्ण सच्चिदानन्द होने की प्रवृत्ति रख रहा है। ज्ञान मार्ग से उसने ज्ञान (अनुभवात्मक ज्ञान) और विज्ञान (प्रयोगात्मक ज्ञान) के विविध क्षेत्रों में इस प्रवृत्ति को चरितार्थ किया है। भावना मार्ग (अथवा भाव-मार्ग) से उसने विविध कलाओं और विविध साधनाओं के द्वारा इस प्रवृत्ति को चरितार्थ किया है तथा केवल भावतुष्टि के लिये उसने अपने अमूर्त आदर्श अपने पूर्ण सच्चिदानन्द की मूर्तियों की भी कल्पना कर डाली है और उन मूर्तियों के अनुसार उसे व्यक्तित्व दे कर उसके नाम, उसके रूप, उसकी लीलाएँ और उसके खास खास धाम तक सोच डाले हैं। इन नाम रूप लीला धाम की विविधताओं पर झगड़े मचे और इसीलिये विविध सम्प्रदाय वाले विविध धर्मों में "तू तू—मैं मैं" मची। समझदार लोग हर किसी को अपनी अपनी भावनाओं के अनुसार खुली छूट दिया करते हैं क्योंकि विचार जगत् की सत्यता एक बात है तथा भाव जगत् की सत्यता दूसरी बात है। विचार जगत् का एक ही सत्य भाव जगत् के क्षेत्र में पहुँच कर अनेकों सत्यों का रूप धारण कर लेता है। सत्य के विभिन्न क्षेत्रों में जब कल्पना-जगत् की परियों तक की गुंजाइश है तब भाव जगत् के श्रद्धास्पद आराध्यों की गुंजाइश क्यों न हो।

व्यक्ति के लिये सबसे प्रबल मार्ग है क्रिया का; क्योंकि उसका जीवन स्वतः एक क्रिया है और उसकी नैसर्गिकी प्रवृत्ति का क्रिया से ही घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रत्येक जीवित व्यक्ति दो सम्बन्धों से बँधा है। एक है उसका देह सम्बन्ध और दूसरा है उसका जीव-सम्बन्ध। (जो जीव का देह से भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मानते वे भी मनबुद्धि चित्त वाले चेतन अहं को तो मानेंगे ही। उसे माने बिना गति नहीं। मनोविज्ञान का शास्त्र यह सिद्ध कर ही रहा है। अतः चेतन अन्तःकरण चतुष्टय को ही—मनबुद्धि चित्तवाले अहं को ही—वे "जीव" समझें।) इन दो सम्बन्धों के कारण व्यक्ति की जन्मजात प्रवृत्ति के भी दो ढंग हो जाते हैं। देह सम्बन्ध से यह जन्मजात प्रवृत्ति आत्मरक्षा (self-preservation) और वंश विस्तार (race-preservation) के रूप में व्यक्त होती है। आहार और विहार अथवा 'रोटी' और 'बेटी' की सब समस्याएँ इन्हीं दोनों रूपों के अन्तर्गत हैं। पेट की चपेट सबसे प्रबल है इसलिये रोटीवाद को लेकर ही मार्क्सवाद ने अपनी नई संस्कृति रचकर खड़ी कर दी। मनुष्य के अतिरिक्त शेष सब जीवों में—पशु, पक्षी, कीट पतंगों में—आहार और मैथुन की प्रवृत्तियों का सम्यक् नियंत्रण निसर्ग द्वारा—प्रकृति द्वारा—ही हुआ करता है। मनुष्य विवेकशील है इसलिये अपेक्षाकृत स्वतंत्र है। इसलिये वह आहार विहार की प्रवृत्तियों को समुचित संस्कारों द्वारा परिष्कृत और सुसंस्कृत करता रहता है। अतः हमारे क्रिया मार्ग अथवा कर्म मार्ग का एक महत्वपूर्ण अंग है। "संस्कार" जिसे मार्क्सवाद के मुकाबिले में बहुत अच्छी तरह खड़ा किया जा सकता है। अब रहा जीव-सम्बन्ध; सो इस सम्बन्ध से हमारी जन्मजात प्रवृत्ति व्यापकता की ओर—विश्वबन्धुत्व की ओर—अग्रसर होती है। मनुष्य समाज-बद्ध प्राणी है। यह समाजबद्धता उसके लिये निसर्गजात है। इसी का नाम समझिये विश्वबन्धुत्व। इस विश्वबन्धुत्व की सहायक जो क्रियायें हैं उन्हीं का नाम है "आचार"। अतः कर्म मार्ग में संस्कार और आचार—इन दो का स्वभावतः ही बहुत बड़ा महत्व है। संस्कार और आचार के विविध क्षेत्रों द्वारा मनुष्य अपने पूर्ण सच्चिदानन्दत्व की प्रवृत्ति इस कर्म-मार्ग से चरितार्थ करता चला जा रहा है।

व्यापकता अथवा विश्वबन्धुत्व में स्वभावतः ही कई स्तर रहा करते हैं। व्यक्ति से बड़ी इकाई है कुटुम्ब; उससे बड़ी जाति, उससे बड़ी इकाई है राष्ट्र, और उससे भी बड़ी इकाई है अखिल मानव

१९५०

समाज। तब कहीं विश्वबन्धुत्व आता है। इन अनेक स्तरों के कारण मनुष्य के आचारों का भी इसी तरह वर्गीकरण कर दिया जाता है। उसके व्यक्तिपरक आचार अलग; कुटुम्बपरक आचार अलग, जातिपरक आचार अलग, राष्ट्रपरक आचार अलग और विश्वपरक आचार अलग। निचली इकाई के आचारों की अपेक्षा उंचली इकाई के आचार अधिक मान्य हैं क्योंकि वे विश्वबन्धुत्व के अधिक समीप हैं। परन्तु, जिन व्यक्तिपरक आचारों से सच्चे प्रेम की, सच्चे सत्य और अहिंसा की, सच्चे शील सौजन्य और परोपकारिकता की, पुष्टि होती है—वे कुटुम्ब, जाति और राष्ट्र के विपरीत भी पड़ें और मानवजाति के किसी विशिष्ट देशकाल में विद्यमान रहनेवाले महत् अंश के भी विपरीत पड़ें तो भी वे अधिक मान्य होंगे क्योंकि वे सच्चे विश्वबन्धुत्व के साधक ही रहा करते हैं। हमारा भारतीय अर्थशास्त्र इसी लिये अर्थ और काम को—रोटी और वेटी की समस्याओं को — धर्म की मर्यादा पर रख कर चलता है। रूस और योरोप की सभ्यताएँ अथवा संस्कृतियाँ भले ही यह कहें कि पहिले कामनाएँ बढ़ाओ, फिर उनकी पूर्ति के अनुकूल अर्थ का उपार्जन करो और उस उपार्जन में यदि आवश्यकता पड़े तो दूसरों के गले भी घोंट दो, वही तुम्हारा धर्म हो जायगा। काम+अर्थ+धर्म (कामार्थ धर्म) का यह क्रम जो विश्वबन्धुत्व पर निश्चय ही प्रहार कर रहा है किसी प्रकार मनोविज्ञान शास्त्र का सम्मत सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता। धर्मार्थ काम का क्रम ही नैसर्गिक और उत्तम क्रम है और अतएव इसके लिये व्यक्ति-स्वातंत्र्य को भी वही मान प्राप्त होना चाहिए जो समाज-स्वातंत्र्य को है। व्यक्ति पर समाज का नियंत्रण अवश्य रहे परन्तु वह एकदम पंख-कटा तोता न वना दिया जाय। अन्यथा फिर व्यक्तिपरक आचारों का वास्तविक मूल्य ही क्या रहेगा।

व्यक्तिपरक आचारों में स्वभावतः ही तप, दान और यज्ञ का वड़ा महत्व होना चाहिए। पाठक इस नामावली से चौंकें नहीं क्योंकि यह हम पहिले ही कह चुके हैं कि भारतीय संस्कृति के तत्व यदि मनोवैज्ञानिक आधार पर भी दिये जावेंगे तो भी उनमें यथासम्भव हिन्दी की वही शब्दावली प्रयुक्त होगी जो सनातनी पद्धति से हमें मिली है। आत्मपुष्टि का जो कर्म है उसे ही तप समझना चाहिए। लोकपुष्टि का जो कार्य है उसे ही दान समझना चाहिए और आत्म (व्यक्ति) तथा लोक (समाज) में सामंजस्य स्थापित करनेवाली परिस्थिति की पुष्टि के लिये जो क्रिया होती है उसे ही यज्ञ समझना चाहिये। तप से शक्ति का संग्रह होता है, दान से समाज की विषमताएँ दूर होकर उसका समुचित भरण पोषण होता है और यज्ञ से विश्व की शक्तियों का संशोधन और परिष्कार किया जाता है। तप को व्यक्ति के धर्म का एक प्रकार से पर्याय समझना चाहिए। इसके दो भेद हैं—(अ) सामान्य और (आ) विशेष। सामान्य के दस प्रधान भेद माने गये हैं जो विज्ञान सम्मत भी हैं। सत्य, अहिंसा और अस्तेय चित्त के तप हैं। धी, विद्या और क्षमा बुद्धि के तप हैं तथा इन्द्रियनिग्रह, दम और धृति मन के तप हैं। शौच, देह तथा अन्तःकरण दोनों ही का तप है। ये ही दश सामान्य धर्म हैं जो प्रत्येक व्यक्ति में विकसित होने चाहिए। विशेष धर्म के अन्तर्गत भारतीय परम्परा वर्णाश्रम धर्म को महत्व देती है। शरीर की अवस्था के भेद से आश्रम धर्म की सृष्टि हुई है और स्वभाव की अवस्था के भेद से वर्णधर्म की सृष्टि हुई है। ''वयसा आश्रमः'' और ''कर्मणा जातिः'' का सिद्धान्त तो एकदम विज्ञान सम्मत है। इसमें किसी को किसी प्रकार की शंका होनी ही न चाहिये। परन्तु आजकल संसार में वर्गविहीन समाज स्थापित करने की एक लहर सी चल पड़ी है; और अपने देश की विधान सभा ने मनुष्य मनुष्य के समानाधिकार के संबंध मे जो निर्णय किये हैं उनके आधार पर कई लोगों ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया है कि अब वर्णधर्म की कोई गुंजाइश नहीं रहीं। ऐसे विचारक यह मनोवैज्ञानिक सत्य तो भुला ही नहीं सकते कि कुछ मनुष्य स्वभावतः ज्ञान-प्रधान, कुछ कर्म-प्रधान और कुछ भावासक्ति-प्रधान रहा करते हैं। वे ही तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं। फिर; वर्ग विहीन समाज की कल्पना भी कोरी कल्पना ही है क्यों कि समान गुण शील वाले मनुष्य स्वभावतः ही अपना अलग अलग वर्ग बना लिया करते हैं। इसी नियम से ये जातियाँ बन गईं। जातियों में जों वंश परम्परा की बात आई वह भी वंशानुक्रमविज्ञान के

कारण। यह अवश्य है कि आजकल जातियों में जन्म तथा कर्म की पूरी पूरी पवित्रता निभ नहीं रही है इसी लिये "जन्मना जातिः" के सिद्धान्त को ही एकमात्र सिद्धान्त मानकर बैठे रहने में कोई सार नहीं रह गया। फिर भी जाति भेद की मान्यता का विषय ऐसा है कि उसमें किसी प्रकार की हठधर्मी अच्छी नहीं। जो इसे नहीं मान दे रहे हैं उनका समाज फूले फले परन्तु जो लोग इसे मान्यता दे रहे हैं वे भी भारतीय राष्ट्र के अंग बड़े मजे में माने जा सकते और बने रह सकते हैं। गौतमबुद्ध से लेकर आज तक अनेकों ने भारतीय जाति भेद प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई परन्तु इसने स्वतः किसी न किसी प्रकार जीवित रह कर भारत की सामाजिक व्यवस्था और उसकी स्वतंत्र राष्ट्रीयता को भी जीवित ही रखा। उसका जहाँ तक संशोधन आवश्यक हो वह आवश्य किया जाय और यदि वह विश्व की शक्तियों की प्रेरणा से समय के प्रवाह में आप ही आप दूर वह जाय तो ठीक ही है अन्यथा उसके साथ व्यर्थ की हठ धर्मी न की जाय। इसी लिये हमारे विचार में भारतीय राष्ट्र की हिन्दू जाति में (उसके हिन्दू वर्ग में) एक अजातीय जाति का आस्तित्व भी स्वीकार कर लिया जाय जो जाति पांति न मानने वाले जन्मना ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों सब को मिला कर चले। और ईसाई मुसलमान सिख आदि जातियों के समान एक वढ़ने घटने वाली अस्थिर सी जाति (अर्थात, ऐसी जाति जिसके सदस्य इच्छानुसार अन्य जाति में जा सकते हैं अथवा अन्य जाति के सदस्य इच्छानुसार इस जाति में आ सकते हैं) समझी जाय। जातीयता और अजातीयता का, वर्ग विभेद और वर्ग विहीनता का, इसी ढंग पर सुंदर मनो वैज्ञानिक सामंजस्य हो सकेगा। जिस जाति के वर्ग किसी भिन्न जातीय व्यक्ति को अपनी जाति में न सम्मिलित करना चाहें उन्हें इसके लिये दवाव भी न डाला जाय। किसी भी कुटुम्ब के साथ यह हठ तो किया ही नहीं जा सकता कि वह चाहे जिस आगन्तुक को अपने में सम्मिलित कर ही ले। फिर जाति के साथ ऐसी ज्यादती कैसे की जा सकती है। हाँ, यह तो उस जाति के कर्ण धारों ही के सोचने की वात है कि जिस जाति के व्यक्ति तो अजातीय विजातीय होते रहें परन्तु अजातीय अथवा विजातीय व्यक्ति जिस जाति में प्रवेश तक न पा सकें वह जाति कितने दिनों तक जीवित रह सकेगी और इस जनतंत्र के युग में कितने दिनों तक प्रतिष्ठा पाती रह सकेगी।

संस्कारों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। गर्भाधान, जातकर्म (प्रजानन), अन्न प्राशन, विवाह (दाम्पत्य) और अन्त्येष्टि (मृत्यु) की निसर्ग-नियंत्रित प्रक्रियायें तो प्रकृति के सभी प्राणियों में देखी जा सकती हैं। मनुष्य में मनुष्यता, तथा विशेष कर उसकी लोक-सेवा भावना, की सिद्धि के लिये अक्षरारंभ, यज्ञोपवीत (उपनयन) और दीक्षा के संस्कार उपर्युक्त पांच संस्कारों में और जुड़ जाने चाहिए। इन तीनों में उपनयन संस्कार ही विशेष महत्व का है क्योंकि अक्षरारंभ तो उसकी भूमिका ही के सदृश है और दीक्षा संस्कार को उसी की परिणति समझना चाहिए। हमारे विचार में उपनयन संस्कार ही वह साधन है जिसके सहारे भारतीय राष्ट्र का व्यक्ति मार्कसवाद् का जादू दूर भगा सकता है। हाँ, आवश्यकता इस वात की है कि युगधर्म के अनुसार उस संस्कार को नई अवस्था के अनुकूल व्यवस्थित कर दिया जाय। व्यक्ति में अनुशासन और समाज-सम्वद्धता के उज्वल भाव भरने ही के लिये इस संस्कार का आयोजन किया जाता है। दण्ड (डण्डा) प्रत्यक्ष ही अनुशासन का चिन्ह है। और सूत्र (रस्सी) सम्बद्धता अथवा संगठन का। धर्म+अर्थ+काम के तीन तार ब्रम्हग्रन्थि में जोड़कर व्यक्ति के हृदय पर स्मृति स्वरूप रख दिये जाते हैं ताकि वह अपने कर्तव्यों का सदैव स्मरण रखे। उसे बताया जाता है कि जन्म से ही वह देव, ऋषि और पितरों का ऋणी है अर्थात उसने परिस्थिति, सांस्कृतिक-परम्परा और शारीरिक-सम्पत्ति के रूप में जो कुछ पाया है वह देवों, ऋषियों और पितरों का दिया हुआ ऋण है — उनकी रखाई हुई धरोहर है। इन तीनों वस्तुओं को अपने प्रयत्न से और भी अधिक योग्य वना कर (अर्थात् इस ऋण की रकम पर व्याज की रकम वढ़ाकर) इसे समाज के कल्याण में लगा देना ही उस ऋण से मुक्त होना है। उसी अवस्था में वह व्यक्ति कर्मों से सन्यास ले कर स्मृति रक्षा के उन तीनों तारों से मुक्त हो सकता है। उपनयन संस्कार के दिन

१९५०

से ही उस व्यक्ति के सब आचरण इसी ध्येय के अनुसार ढाले जाते हैं। आजकल यह संस्कार विकृत हो गया है और इसकी महत्ता केवल कुछ ही अंशों में, और वह भी ब्राह्मणों ही तक सीमित, रह गई है। परन्तु इस संस्कार का पुनः संस्कार कर देना कोई कठिन बात नहीं है।

जो इस संस्कार के परम्परागत रूप को पकड़े बैठे हैं, उन्हें छेड़ने से कोई लाभ नहीं। खण्डन मण्डन में शक्ति का अपव्यय करने की अपेक्षा नये निर्धारित मार्ग पर रचनात्मक रूप से चल निकलना अधिक अच्छा है। इस दृष्टि से उपनयन संस्कार का एक नया संस्करण राष्ट्र के सामने रखा जाय। पुराना संस्कार द्विजों तक सीमित है, यह नया संस्कार सब के लिये आवश्यक कर दिया जाय। पुराने संस्कार के लिये पत्रों से शुभ मुहूर्त देखे जाते हैं, इस नये संस्कार के लिये स्वातंत्र्य-दिवस ही सर्वोत्तम मुहूर्त स्थिर कर दिया जाय। पुराने संस्कार में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति की अलग अलग दीक्षा होती है, नये संस्कार में सामूहिक रूप से यह दीक्षा दी जाय। पुराने संस्कार में पुराने ढंग के दण्ड, सूत्र, आचार्य, पद्धति और प्रतिज्ञाओं आदि का विधान है; नये संस्कार में नये ढंग के गणवेश (अथवा स्काउटों या होमगाड़ों के से दण्ड सूत्र आदि का) तथा नये ढंग की प्रतिज्ञाओं आदि का विधान हो। मैं स्वानुशासित रहूँगा, मैं सर्वमानवों में समभाव रखूँगा। मैं मनसा वाचा कर्मणा पवित्र रहूँगा, मैं राष्ट्र की समृद्धि का साधक रहूँगा, और, मैं लोक-संग्रही देशभक्त रहूँगा। इन पांचों प्रतिज्ञाओं में समय की मांग की प्रायः सभी बातें आ गईं हैं। इन अथवा इसी प्रकार की अन्य आर्य—प्रतिज्ञाओं का इस संस्कार के साथ समुचित समावेश कर दिया जाय। यदि कौमार्य की अवस्था से ही भारतीय वालक ऐसी दीक्षा में भली भाँति दीक्षित कर दिये जावेंगे तो फिर उन्हें मार्कसवाद सरीखी किसी भी हानिकारी विदेशी संस्कृति के चक्कर में आ जाने का डर अधिक न रहेगा।

तीन ऋणों वाला सिद्धान्त अर्थात परिस्थिति (धन जन आदि) सांस्कृतिक परम्परा (ज्ञान, भावना तथा क्रिया की शक्तियां) और शारिरिक सम्पत्ति (अपना पेट, अपनी पीठ तथा अपना बाहुबल भी) — इन तीनों को विश्व कल्याणार्थ रखाई हुई धरोहर समझने वाला सिद्धान्त महात्मा गांधी के ट्रस्टीशिप वाले सिद्धान्त को अपना अंग बनाता हुआ, समाज के आर्थिक वैषम्य को दूर करने में पूरी तरह समर्थ हो सकता है। उपनयन का संस्कार इस सिद्धान्त को प्रत्येक बालक के चित्त में भला भाँति जमा सकता है। आर्थिक वैषम्य (और आर्थिक ही क्यों, सभी प्रकार के अवांछित वैषम्य) को दूर करने वाले इस अमोघ अस्त्र के साथ ही साथ दान का अस्त्र भी यदि उचित रीति से बटता जाय तो सोने में सुगंध ही समझिये। दान तत्त्व को कई लोग स्वेच्छाकृत समाजवाद (Voluntary Socialism) कहा करते हैं। यदि किसी के पास धन की, विद्या की, शक्ति की अधिकता है तो वह उस अधिक वस्तु का, अभाव-ग्रस्त लोगों में, विना किसी प्रतिफल की इच्छा के, वितरण कर दे। यह है दान-तत्व। वर्तमान समय की दान प्रथा में अनेक दूषण आ गये हैं। उपनयन संस्कार के समान इस तत्व के भी पुनः संस्कार की आवश्यकता है। राज्य और समाज दोनों के सहयोग से इस प्रथा का सुन्दर व्यावहारिक रूप स्थापित किया जा सकता है। कलियुग का यही प्रधान धर्म माना गया है और भारतीयों के प्रायः सभी संस्कारों के साथ (जात कर्म, अन्न प्राशन, अक्षरारंभ, उपनयन, विवाह, दीक्षा, अन्त्येष्टि आदि के साथ) इस प्रथा का परिपालन किसी न किसी रूप में अवश्य किया जाता है। अतः सम्प्रति दस तत्व के परिमार्जन की भी बड़ी आवश्यकता है।

उपनयन और दान की सुव्यवस्था के साथ ही प्राचीन आचार्यों ने शासन में भी ऐसी व्यवस्था रखी थी कि अर्थ-वर्धक लोगों के हाथ में (अर्थात् वैश्यों और शूद्रों के हाथ में—जो क्रमशः वस्तु-वर्धक और कला-वर्धक लोग थे) शासन की बागडोर न रहे और शासन की व्यवस्था निर्धारित करनेवालों (अर्थात् ब्राह्मणों और क्षत्रियों) के हाथ में अर्थोपार्जन की कृतियाँ न रहें। अब तो वस्तु-वर्धक (Capitalists) और कला-वर्धक (Labourers) अर्थ लोलुपों के बीच द्वन्द्व छिड़ा हुआ है और शासन व्यवस्था वे ही लोग निर्धारित करनेवाले हैं

जिन्हें ये लोग ऊपर भेजें। यदि निर्वाचित सदस्य भी इन्हीं के-से स्तर वाले रहे तब वह द्वन्द्व सुलझना कठिन ही है। हां, यदि निर्वाचित होकर आनेवालों की योग्यता के संबंध में कुछ ऐसे कड़े नियम बना दिये जावें जिनके कारण वे आर्थिक समस्याओं को तटस्थता की वृत्ति रख कर सुलझाने में सक्षम हो सकें तो देश का बहुत बड़ा कल्याण हो।

यदि किसी भी व्यवस्था में अनुशासन की उत्तम परम्परा न हो तो वह व्यवस्था ठीक ठीक चल नहीं सकती। भारतीय संस्कृति के तत्वों के पीछे भी इसी प्रकार अनुशासन की उत्तम परम्परा रहनी चाहिए। दण्ड अथवा अनुशासन अथवा नियंत्रण को मनुमहाराज ने जो 'धर्म का प्रतिरूप' बताया है (दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः) वह ठीक ही कहा है। शासन के हाथ में सब तरह का दण्ड रहता है परन्तु यह बात नहीं है कि राज-दण्ड के अतिरिक्त और कोई दण्ड रहता ही न हो। समाज दण्ड भी प्रायः उतना ही प्रभावशाली माना गया है और आत्म-दण्ड की महिमा तो इन दोनों से भी श्रेष्ठ है। आत्म-दण्ड, कुटुम्ब-दण्ड, लोक-दण्ड (जिसके अंतर्गत जाति-दण्ड, राष्ट्र-दण्ड और समाज-दण्ड आ जाते हैं) और राज-दण्ड—इस प्रकार अनुशासन मार्ग के ये चार दण्ड उल्लेखनीय हैं। प्रायश्चित्त की (व्रत, उपवास, यज्ञ, दान, तप आदि की) सम्पूर्ण व्यवस्था आत्म-दण्ड के अंतर्गत है। जाति विच्युति, भोज भिन्नता, लोकापवाद, सत्याग्रह, बहिष्कार (असहयोग) और धरना ऐसे छः प्रकार के दण्ड लोक-दण्ड कहे जाते हैं। प्रथम तीन दण्ड तो समाज के हाथों पहिले ही से थे। शेष तीन अभी अभी स्पष्ट हुए हैं। लोकापवाद में अब मौखिक आलोचना, समाचार पत्रों में विज्ञप्तियाँ तथा भाँति भाँति की भर्त्सनाएँ—लज्जित करना, धिक्कारना, डांटना, डांड़ना, पृथक् करना आदि—सम्मिलित हैं। सांस्कृतिक व्यवस्था की प्रत्येक विश्रृंखला के लिये, देश काल पात्र का विचार रखते हुए, किसी न किसी प्रकार का लोक-दण्ड बरता जा सकता है जो राज-दण्ड का पूरक होकर काम करेगा। परन्तु चेष्टा सदैव यही होनी चाहिए कि व्यक्ति स्वकृत विश्रृंखला का स्वतः ही इस प्रकार अनुभव कर ले कि वह आत्म-दण्ड के लिये—प्रायश्चित्त के लिये—स्वेच्छा से प्रवृत्त हो जाय। सुंदर स्थायी व्यवस्था के लिये इससे बढ़ कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। जो लोग अपनी सांस्कृतिक अथवा सामाजिक व्यवस्था का समूचा भार राज-दण्ड पर छोड़ कर ही निश्चिन्त हो जाना चाहते हैं वे बहुत बड़ी भूल करते हैं। यह आत्म-निर्भरता का नहीं वरन् आत्मिक दासता का लक्षण है। अतः सांस्कृतिक तत्वों के सुमर्यादित प्रचलन में लोक-दण्ड को उसकी पूर्व प्रतिष्ठा फिर से मिलनी ही चाहिए। व्यक्ति स्वातंत्र्य का इसी नियंत्रण के सहारे समुचित विकास हो सकेगा और विश्व का कल्याण भी इसी पद्धति से सम्पादित होगा।

* * *

अंजलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम्।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा॥
"अंजुलिगत शुभ सुमन जिमि समसुगंध कर दोऊ"
—'मानस'

हिन्दी साहित्य में गत्यवरोध

[श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार]

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध ही में मानव जाति दो महा नाशकारी विश्वयुद्धों का अनुभव प्राप्त कर चुकी है। सब मिला कर सम्पूर्ण विश्व पर तथा भिन्न-भिन्न देशों, संस्थाओं या संस्कृतियों पर इन दोनों युद्धों का क्या क्या प्रभाव पड़ा, यह तुलनात्मक अध्ययन का एक बहुत मनोरंजक विषय है। हिन्दी साहित्य पर भी इन दोनों युद्धों का बहुत गहरा प्रभाव पडा है। परन्तु यह एक विचित्र-सी प्रतीत होने वाली सचाई है कि हिन्दी साहित्य पर इन दोनों युद्धों का प्रभाव एकदम परस्पर विपरीत-सा प्रतीत होता है। प्रथम महायुद्ध ने हिन्दी साहित्य को न केवल एक बलवती नवचेतना प्रदान की थी, अपितु युद्धजन्य परिस्थितियों का प्रभाव हिन्दी साहित्य की नवीन धाराओं को प्रबल वेग के साथ आगे बढा ले चला था। परन्तु दूसरे महायुद्ध ने हिन्दी साहित्य की प्रगति में एक बहुत बड़ा, गत्येवराध उत्पन्न कर दिया है।

प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ तक न केवल हिन्दी साहित्य ही ; अपितु हिन्दी भाषा का वर्तमान रूप भी अपने शैशव में था। प्रथम महायुद्ध की भारतीय सेनाओं में भरती होकर इस देश के जो हजारों-लाखों ग्रामीण सैनिक समुद्रपार हो आये. उन्होंने वापस आकर न केवल भारत का राजनीतिक कायाकल्प कर दिया, अपितु देश के सांस्कृतिक उत्थान में भी भारी सहायता दी। परिणाम यह हुआ कि भारतीय भाषाओं के साहित्य ने नई करवट ली। हिन्दी का क्षेत्र इस देश की भाषाओं में सबसे अधिक विशाल था। भारतवर्ष की अधिकांश प्रान्तीय भाषाओं के क्षेत्र में उसका प्रवेश था, इससे स्वभावतः नवचेतना का सबसे अधिक और व्यापक प्रभाव हिन्दी पर पड़ा।

हिन्दी को प्रथम महायुद्ध से प्राप्त इस शक्तिशाली नवचेतना का सबसे बढ़कर निर्माणात्मक प्रभाव हिन्दी कविता और हिन्दी कहानी पर पड़ा। इन दोनों के बाद क्रमशः उपन्यास, नाटक, आलेचना और वैज्ञानिक साहित्य का स्थान है।

तत्कालीन हिन्दी कविता और हिन्दी कहानी की आधारभूत परिस्थितियों में जो भेद था, उसे हृदयंगम कर लेने की आवश्यकता है। हिन्दी कविता की परम्परा निस्सन्देह बहुत प्राचीन और बहुत उच्च है—परन्तु उस परम्परागत हिन्दी कविता की न केवल भाषा ही वर्तमान हिन्दी नहीं थी, अपितु उसका विषय भी प्रधानतः भक्ति और शृंगार तथा अंशतः वीर रस तक सीमित था। वर्तमान हिन्दी में—जिसे तबतक खड़ी बोली कहा जाता था— उन दिनों जो कविता हो रही थी, वह आज एक श्रमसाध्य तुकबन्दी के समान जान पड़ती है। यह श्रमसाध्य तुकबन्दी भी मध्यकालीन रीति और अलंकारों

की भारी शृंखलाओं से मानों जकड़ दी गई थी। इन शृंखलाओं से मुक्त होने के लिए हिन्दी कविता को एक भारी संघर्षमें से गुज़रना पड़ा।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक (सन १९२१ से लेकर १९३० तक) में हिन्दी कविता में प्राचीन रूढ़िवाद के विरुद्ध विद्रोह और नये भावों के प्रवेश का जो अदम्य प्रयत्न हुआ (वास्तव में उसे प्रयत्न न कह कर सहज विकास कहना चाहिए) उस का नेतृत्व मुख्यतः इन चार व्यक्तियों ने किया; जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा। इसी दशक में बालकृष्ण शर्मा नवीन तथा माखनलाल चतुर्वेदी ने भी हिन्दी कविता को नवीन राजनीतिक तथा सांस्कृतिक चेतना देने में उपयोगी भाग लिया। मेरी राय में हिन्दी कविता के विकास की रफ़्तार बीसवीं सदी के चौथे शतक अर्थात सन् १९३१ से १९४० तक और भी तेज़ हो गई और इसमें पन्त और महादेवी वर्मा के अतिरिक्त बच्चन ने विशेष रूप से भाग लिया। अन्य भी कितने ही श्रेष्ठ कवि इस चतुर्थ दशक में चमके, उन सबके नाम गिनाना यहां अभिप्रेत नहीं है। फिरभी उदाहरण के लिए राम कुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, दिनकर, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, मिलिन्द, नरेन्द्र आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इन सब के तथा अन्य भी कितने ही नवीन कवियों के सहयोग से हिन्दी कविता ने करीब आधी सदी की मंजिल बीस बरसों (१९२१ से १९४० तक) में ही पार कर ली और उसमें माधुर्य, सहजपन और परिपक्वता के अतिरिक्त भावों की उच्चता और विविधता का भी यथेष्ट समावेश हो गया।

हिन्दी कहानी का तो एक तरह से जन्म ही प्रथम महायुद्ध के बाद हुआ। हिन्दी कहानी के सर्वश्रेष्ठ लेखक श्री प्रेमचन्द उसी युग की उपज हैं। जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है, हिन्दी कविता को प्राचीन निर्जीव रूढ़ियों का उच्छेद करने के लिए एक भारी संघर्ष में से गुजरना पड़ा, परन्तु हिन्दी-कहानी के लिए ऐसी कोई बाधा नहीं थीं। कहानी हिन्दी में एकदम नई चीज़ थी और उसे अपने लिए स्वयं नई प्रथाओं और नवीन मापदंडों का निर्माण करना था। यही कारण है कि हिन्दी कहानी का विकाम हिन्दी कविता से भी अधिक तेज़ी से हुआ। यह हिन्दी का सौभाग्य था कि हिन्दी कहानी का जन्म होते ही उसे प्रेमचन्द का सा महान प्रतिभाशाली कलाकार प्राप्त हो गया। उपन्यास लेखक–के रूप में तो नहीं परन्तु कहानी-लेखक के रूप में मैं उन्हें संसार के सर्वकालीन सर्वश्रेष्ठ कोटिके कलाकारों में गिनता हूं। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी कहानी को बहुत शीघ्र कितने ही अन्य श्रेष्ठ लेखक भी प्राप्त हो गए। सुदर्शन, कौशिक, और जयशंकर प्रसाद से लेकर जैनेन्द्र, वात्सायन तथा यशपाल तक।

काल के दृष्टिकोण से हिन्दी कहानी का भी विकास बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक (सन १९२१ से १९४० तक) में ही सब से अधिक हुआ। मैंने ऊपर कहा था कि हिन्दी कविता ५० बरसों की मंज़िल २० बरसों में पार कर गई, परन्तु हिन्दी कहानी के सम्बन्ध में यह कहने में भी अतिशयोक्ति

१९५०

न होंगी कि वह एक सदी की मंज़िल १५ बरसों में (अर्थात सन १९२१ से सन १९३५ तक) पार कर गई। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि विश्व के कितने ही देशों में पूरी एक सदी के क्रमिक विकास के बाद कहानी जिस ऊंचाई तक पहुंच पाई थी, हिन्दी में कहानी ने वह ऊंचाई १५ बरसों में ही प्राप्त कर ली। गहराई, भाव-प्रवणता और टैकनीक इन तीनों दृष्टियों से हिन्दी कहानी का बहुत श्रेष्ठ विकास उक्त १५ बरसों में हुआ।

साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भी प्रथम महायुद्ध के बाद हिन्दी साहित्य ने अंकित करने योग्य उन्नति की। विशेषत: उपन्यास के क्षेत्र में। नाटक और आलोचना की दृष्टि से भी हिन्दी साहित्य एक दम अछूता नहीं रह गया। वैज्ञानिक साहित्य को छोड़ कर अन्य सभी क्षेत्रों में प्रथम महायुद्ध के बाद हिन्दी सचेतन रूप से क्रियाशील रही।

परन्तु दूसरे महायुद्ध ने एकाएक हिन्दी पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव डाला। युद्ध के दिनों में हिन्दी साहित्य के प्रकाशन में जो गत्यवरोध उत्पन्न हुआ था, उसके कारण तो बहुत स्पष्ट और मुख्यत: भौतिक थे। वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाना, कागज़ की कमी तथा तज्जन्य कंट्रोल, छपाई के बहुत महँगे दर आदि के कारण पुस्तकों का प्रकाशन कम हो गया। लेखकों के लिए जीवन निर्वाह इतना कठिन बन गया कि उनमें से कितनों ही को आल इंडिया रेडियों, महायुद्ध के प्रचार विभाग की शाखओं अथवा फिल्म लाइन में नौकरी करने के लिए लाचार हो जाना पड़ा। कितनें ही लेखक विचार स्वातंत्र्य के कारण जेल के सीकचों के पीछे बन्द कर दिये गये। इन लेखकों को जेल में नई रचनाएँ करने का अवसर तो अवश्य मिला, परन्तु युद्ध के दिनों में वे रचनाएँ प्राय: प्रकाशित नहीं हो पाईं। युद्धकाल में जनता की आय बढ़ गई थीं, लोग पहले की अपेक्षा पुस्तकें अधिक खरीदने लगे थे, तब भी हिन्दी साहित्य के नवीन प्रकाशन की रफ़्तार उपर्युक्त कारणों से, स्वभावत: कम हो गई थी।

लोगों का ख्याल था कि युद्ध समाप्त हो जाने पर आर्थिक परिस्थितियों के कुछ अंश तक सुधरते ही हिन्दी-साहित्य के नव सृजन तथा प्रकाशन में वसन्त ऋतु का आगमन होगा और वह प्रचुरता से पल्लवित, पुष्पित तथा सुरभित हो उठेगी। परन्तु वैसा नहीं हुआ। महायुद्ध समाप्त हुए आज ५ बरस बीत गये, फिर भी एक व्यापक जड़ता और ह्रास की भावना जैसे आज भी हिन्दी साहित्य की सभी धाराओं को जकड़े हुए है। न सिर्फ यह कि अभीष्ट अथवा कम से कम आनुपातिक उन्नति का अभाव दिखाई दे रहा है, बल्कि एक तरह का ह्रास स्पष्टत: दृष्टि गोचर हो रहा है। सन १९२१-से लेकर १९४० तक हिन्दी में जो कुछ लिखा गया, सब मिला कर वह श्रेणी और मात्रा (qulatity & quantity) दोनों की दृष्टि से उस हिन्दी साहित्य की अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ है, जो सन १९४१ से १९५० तक लिखा गया। मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि पिछले १० वरसों में हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य लिखा ही नहीं गया, अथवा १९२१ से १९४० तक केवल श्रेष्ठ साहित्य ही लिखा गया। मैं तो सब मिला कर ही उपर्युक्त स्थापना कर रहा हूँ।

सबसे अधिक ह्रास मुझे हिन्दी-कहानी में दिखाई दे रहा है। प्रेमचन्द के युग से हिन्दी कहानी की जो धारा एकाएक अत्यन्त बलवती और जीवनपूर्ण बन गई थी, जो १९३६ में प्रेमचन्द के देहावसान पर भी कुंठित नहीं हुई, वह पिछले ८, १० वरसों में स्पष्टतः न केवल क्षीण अपितु कुछ अँशों में गन्दली भी बन गई है। यह स्थिति मेरी राय से सचमुच चिन्तनीय है, क्योंकि हिन्दी कहानी के भविष्य की उज्ज्वलता पर मेरा अगाध विश्वास रहा है।

हिन्दी कविता का ह्रास द्वितीय महायुद्ध के बाद सबसे कम हुआ है। वह आज भी प्राणवान है, परन्तु वह भी अपनी उन्नति का अनुपात कायम नहीं रख सकी। यह कहने में भी अनौचित्य न होगा कि उसकी उन्नति नगण्य सी हुई, अर्थात् १९४० के बाद उसका धरातल ऊंचा नहीं हुआ।

परन्तु एक दृष्टिकोण से हिन्दी कविता की वर्तमान दशा भी चिन्तनीय कही जा सकती है। वर्तमान हिन्दी कविता अपने जन्म के साथ ही भारतवर्ष की राष्ट्रीय चेतना को प्रतिबिम्बित करने लगी थी और मेरी राय से इसी तथ्य ने उसे सजीव, शक्तिशाली और लोकप्रिय बनाया था। परन्तु महायुद्ध के बाद से हिन्दी कविता भारतवर्ष की लोक-चेतना का बहुत कम प्रतिनिधित्व कर पा रही है। बंगाल के अकाल की क्षीण-सी प्रतिध्वनि हिन्दी कविता में अवश्य सुनाई दी थी, परन्तु महायुद्ध के बाद देश के विभाजन से उत्पन्न हुई दशाओं की प्रतिध्वनि हिन्दी कविता में कान लगाकर सुनने की कोशिश करने पर भी सुनाई नहीं देती। आज देश को जिन नवीन आदर्शों, भावनाओं और नवीन की आवश्यकता है, उनके मापदंडों से हिन्दी कविता बहुत पीछे रह गई है। इस दृष्टि से कहीं-कहीं उसमें चमकदार चिनगारियां जरूर दिखाई दे जाती हैं, परन्तु भावना की जिस महाज्वाला की आज देश को आवश्यकता है, वह हिन्दी कविता में नहीं है।

समय की दृष्टि से हिन्दी कविता के पिछड़ जाने का सबसे बड़ा उदाहरण महाप्राण राष्ट्रपिता बापू के बलिदान के बाद दिखाई दिया। भारतवर्ष के लम्बे इतिहास की वह एक सबसे भीषण, दारुण, करुण घटना थी। देशके इतिहास में पहली बार करीब ३२ करोड़ भारतीयों को सामूहिक रूप से यह अनुभूति हुई कि उन्होंने एक साथ अपने पिता को खो दिया है। जितनी महान और जितनी ऐतिहासिक वह अनुभूति थी, उसका एक अंश भी यदि हिंदी कविता में सही सही प्रतिबिम्बित हो पाता, तो वह अत्यन्त प्राणवान बन जाती।

प्रथम महायुद्ध के साथ ही हिन्दी उपन्यास का जन्म हुआ था। १९२१ में हिन्दी उपन्यास अपनी शैशवावस्था को पार नहीं कर पाया था। सन १९४७ तक यदि वह शैशव पार कर गया होता, तो देश के विभाजन के बाद, जो ऐतिहासिक अनुभूतियां लाखों करोड़ों भारतवासियों को हुईं, उनको प्रतिबिम्बित कर वह संसार के अत्यन्त श्रेष्ठ उपन्यास साहित्य से तुलना करने लगता। परन्तु वैसा नहीं हुआ। प्रथम महायुद्ध के १० वर्ष बाद हिन्दी उपन्यास जिस उम्र का शिशु दिखाई देता था, आज दो से ऊपर

और दशक बीत जाने पर भी, वह लमभग वैसा ही शिशु बना हुआ है।

नाटक और आलोचना, साहित्य के यही दो क्षेत्र हैं, जिनमें बीसवीं सदी की पंचम दशाब्दी में भी हिन्दी साहित्य ने यत्किंचित् उन्नति की है। हिन्दी प्रान्तों में अब से कुछ समय पहले तक रंगमंच का एकदम अभाव था। अब शिक्षा के प्रसार और विश्वविद्यालयों के वातावरण के थोड़े बहुत सुधार के साथ साथ हिन्दी प्रान्तों में भी रंगमंच का विकास प्रारम्भ हुआ है। जिस मन्दगति से रंगमंच का यह विकास हो रहा है उसी मन्द परन्तु स्थिर गति से हिन्दी का नाटक साहित्य भी उन्नति कर रहा है। हिन्दी नाटक साहित्य की उन्नति का एक अंश आल इंडिया रेडिओ को भी है, जिस की आवश्यकताओं से प्रेरणा पाकर हिन्दी के कितने ही लेखक अब ध्वनि—नाटक लिखने लगे हैं।

आलोचना एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जिसमें धीरे धीरे परन्तु अंकित करने योग्य गति से विकास हो रहा है। सन १९३८ तक की श्री पद्मसिंह शर्मा की आलोचना शैली से सन १९४५ की पं. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना का परस्पर मिलान करके यह भेद अच्छी तरह देख लिया जा सकता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिन कारणों ने वर्तमान हिन्दी साहित्य का गत्यवरोध किया है, वे कारण आलोचना पर लागू नहीं होते।

अब प्रश्न यह है कि इस गत्यवरोध के कारण क्या हैं?

मेरी राय से इस व्यापक गत्यवरोध के कारण निम्नलिखित हैं :—

१. प्रथम महायुद्ध से हमारा सम्बन्ध बहुत ही परोक्ष रूप में था। हमारे तब के शासकों ने हमें जबरदस्ती उस युद्ध का भागीदार बनाया था। यद्यपि उस युद्धमें भारतवर्ष ने जन और धन से बहुत बड़ी सहायता दी थी, तथापि युद्ध ज्वर के अतिरिक्त उस युद्ध से सीधे रूप में हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। इस में सन्देह नहीं कि प्रथम महायुद्ध ही में भारतवर्ष की सर्व-साधारण जनता के हजारों लाखों नागरिक यूरोप के मोरचे पर एक साथ पहली बार पश्चिमी सर्व-साधारण जनता के सम्पर्क में आये और इस तथ्य ने उनके दृष्टिकोण में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। तथापि उस महायुद्ध के समाप्त होते ही जैसे विश्व इतिहास का एक अध्याय समाप्त हो गया और हमारे देश के इतिहास का दूसरा अध्याय शुरू होगया, जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन के पनपने और शीघ्रता से बढ़ने की गौरवमय कहानी अंकित है। उस महायुद्ध के बाद महात्मा गांधी के नेतृत्व में सारा देश जैसे एक लक्ष बना कर, एकाग्रचित्त से उन्नति के नवयुग की ओर अग्रसर होने लगा। देश की उस नवचेतना में केवल एक ही बात बाधक थी, जो इस देश में दो विभिन्न राष्ट्रों की सत्ता मानने पर आग्रह के रूप में उग्रता से उभरी। पिछले ६०० सालों में इस्लाम का भारतीय संस्कृति से जो संघर्ष हुआ था, उसमें इस्लाम भारतीय रंग में रंगता चला गया था, परन्तु हिन्दू समाज की आन्तरिक कमजोरी ने जो

अपने ही भीतर एक तरह के स्थायी हीन मानव समाज (inferior society) का जन्म दिया था, उस हीन समाज का एक काफी बड़ा अंश न केवल इस्लामी समाज का अंश बन गया, अपितु वह भारतीय हिन्दू धर्म के प्रति एक गहरी घृणा की भावना भी अपने साथ लेता गया। गर्ज़मन्द लोगों ने उस घृणा की भावना को, जागृति के इस युग में खूब उकसाया और इसी उकसाहट के परिणाम स्वरूप सन १९४७ में पाकिस्तान का जन्म हुआ। अवगति के इस एक अपवाद को छोड़ कर यह कहा जा सकता है कि एक स्वतंत्र राष्ट्र के जन्म का सूत्रपात इस देश में प्रथम महायुद्ध के बाद शुरू हुआ और उसके साथ ही साथ देश की कला संगीत, साहित्य, संस्कार सभी में नवचेतना समाविष्ट हो गई।

परन्तु दूसरे महायुद्ध की घटनाओं का सीधा प्रभाव हमारे देश पर भी पड़ा। हमारे देश के एक सीमाप्रान्त, यहां तक कि हमारे देश की सीमा के भीतर भी युद्ध का सीधा प्रभाव पहुंचा। युद्ध के दिनों ही में हमारे देश में स्वाधीनता का आन्तरिक युद्ध भी लड़ा जाता रहा। और युद्ध समाप्त होते न होते, घटनाओं की रफ्तार इतनी तेज़ हो गई कि मानों वे भागने लगीं। कितनी ही बड़ी—बड़ी घटनाएं हमारे देश में पिछले पांच सालों में हो गुज़रीं और अभी तक उन की रफ्तार कम नहीं होने पाई। यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि पिछले १० बरसों में अर्थात् १९४० से अब तक, हमारे देश ने करीब एक सदी का मार्ग तै कर लिया। यों तो विज्ञान ने काल और दूरी के व्यवधान पर इतनी विजय प्राप्त कर ली है कि उन्हें मापने के पुराने मापदंड आज बेकाम के होगये हैं, तथापि हमारे देश को पहली बार घटनाओं की उस नई तेज़ीका सामना करना पड़ा। स्वाधीनता प्राप्ति, देश का विभाजन, पंजाब का हत्याकांड, दो करोड़ की आबादियों का परिवर्तन, काश्मीर, हैदराबाद, पूर्वी बंगाल, अन्न की समस्या ये सब तथा अन्य भी कितनी ही बड़ी—बड़ी बातें इतनी शीघ्रता के साथ हमारे देश के सामने आयीं कि उन्होंने हमारी बौद्धिक चेतना को क्षण भर का भी विश्राम नहीं लेने दिया। अर्थात् किसी भी चीज़ या किसी पहलू को संस्कार देने की फुरसत हमें जरा भी नहीं मिली। घटनाओं की रफतार साहित्य अथवा कला के विकास की रफतार से इतना आगे बढ़ गई कि साहित्य और कला दोनों एका एक युग से पिछड़ गये।

इस प्रथम कारण ने भारतवर्ष भर के साहित्य में गत्यवरोध उत्पन्न किया। परन्तु इस उपर्युक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण के अतिरिक्त विशेष रूप से हिन्दी साहित्य में गत्यवरोध उत्पन्न करने वाले कारण कुछ और भी हैं और अब उन्हीं का निर्देश किया जायगा।

२. हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने का आन्दोलन एक युग से जारी था। इस आन्दोलन को ज्यों-ज्यों सफलता मिलती गई, हिन्दी का राजनीतिक बल बढ़ता गया। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि हिन्दी के आन्तरिक और बाह्य दोनों मूल्यांकन बदलते गये और इस प्रक्रिया में बाह्य मूल्यांकन बढ जाने से हिन्दी साहित्य की अपेक्षा हिन्दी राजनीति अधिक बलवती बनती गयीं। इस प्रवृत्ति ने हिन्दी

१९५०

साहित्य के विकास पर बहुत विपरीत प्रभाव डाला। भाषा के साहित्य से भाषा की पालिटिक्स के अधिक महत्वपूर्ण हो जाने पर किसी भी भाषा के साहित्य का कुंठित हो जाना स्वाभाविक है।

३. देश में साम्प्रदयिकता की भावनाएं बढ़ने का एक प्रभाव यह भी हुआ कि उर्दू और हिन्दी एक दूसरे से खिंच कर दूर दूर होने लगीं। उर्दू पर फारसी अरबी प्रभाव बढ़ने लगा और हिन्दी में हिन्दी के सैकड़ों हज़ारों स्वीकृत शब्दों का बहिष्कार केवल इस आधार पर किया जाने लगा कि उन का स्रोत विदेशी है। इस प्रवृत्ति का आधार साहित्य कदापि नहीं था, यह सब भी हिन्दी या उर्दू के पोषकों की पालिटिक्स का परिणाम था। स्वभावतः इस प्रवृत्ति ने हिन्दी के रूप का बैलेंस न सिर्फ बदल दिया; बल्कि बिगाड़ तक दिया। यह परिस्थिति भी हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं और तया उनके साहित्यों को कुंठित करने का कारण बनी।

४. गत्यवरोध का एक कारण देश की बुद्धिजीवी जनता के मापदंडों का बदल जाना भी है। बदली हुई परिस्थितियों ने उनके मापदंडों को ऊंचा कर दिया, कम से कम पूर्णतः बदल दिया। जिस साहित्य से कल तक लोगों का सन्तोष हो जाता था, आज वह उन्हीं पाठकों को अधूरा और पिछड़ा हुआ प्रतीत होने लगा है। उधर साहित्यकार अभी तक अपने को उखड़ी हुई सी असहाय होकर मझधार में तैरती हुई सी दशा में अनुभव कर रहा है। वह अभी तक अपने लिए नये मापदंडों का निर्माण नहीं कर पाया। चारों तरफ बिखरे हुए और ऊंचे स्वरों में अपनी ओर पुकारते हुए कितने ही नये पुराने आदर्श उसे सुनाई देते हैं, परन्तु वह निश्चित नहीं कर पाता कि वह अपने लिए किन मापदंडों को स्वीकार करे। इस युग के प्रगतिशील आन्दोलन और उनके नित नये मूल्यांकन इसी परिस्थिति का परिणाम हैं। विचारों और आदर्शों की यह द्रव-अवस्था साहित्य के सांचों में पहुंच कर भी ठोस मूर्त रूप धारण नहीं कर पाती।

५. देश के स्वाधीन हो जाने पर भी इस देश के तथाकथित बुद्धिजीवी लोगों में हिन्दी के प्रति अभी तक एक गहरी अनास्था, जो घृणा की सीमा तक जा पहुंचती है, विद्यमान है। कुछ क्षेत्रों में तो यह भावना और भी बढ़ गई है। सम्भवतः बुझते हुए दीपक की आखिरी लौ के समान। भाग्य से यही समाज अभी तक अधिकारारूढ़ समाज है और इस स्थिति में है कि साहित्य के प्रति प्रश्रय अथवा अवज्ञा का वातावरण बना सके। अभी तक इस प्रभावशाली वर्ग का अधिकांश भाग हिन्दी के प्रति अवज्ञा का वातावरण बनाने में सहायक हो रहा है। हिन्दी साहित्यकारों में अभी वह ओज नहीं कि वे इस विपरीत परिस्थिति की उपेक्षा कर सकें। अतः यह तथ्य भी, कम से कम आंशिक रूप में साहित्यकार को कुंठित करने का कारण बन रहा है।

* * *

मराठी :

रे सागर, अगस्त्य आया

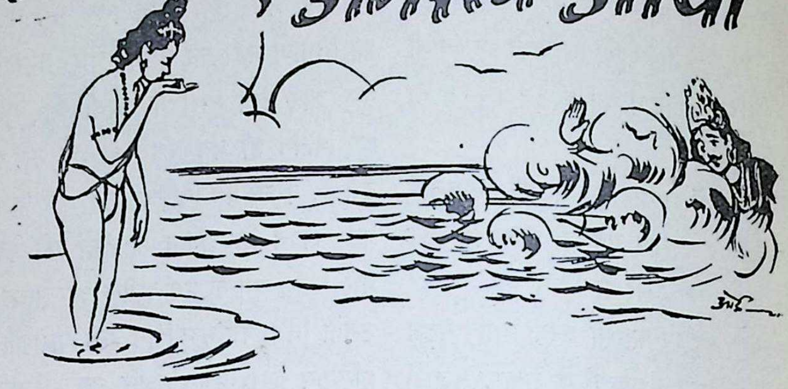

कहानी

[श्री. वि. स. खांडेकर]

कहानी बहुत पुरानी है। एक दिन सागर ने पृथ्वी के स्वर्णमय पर्वतों के रत्नखचित शिखर दूर से देखे। सूर्य की उन पर सुनहरी किरणें पड़ रही थीं। पर्वत–शिखर चमक रहे थे। मानो कुबेर ने अपना समस्त भंडार उन शिखरों पर ही ला कर रख दिया हो। सागर ने अपने भंडार की ओर देखा तो उसमें शंख, फेन-फसूकर और बालू के सिवाय कुछ नहीं था।

सागर पृथ्वी से याचना करने आया। उसने अपनी लहरों में जूही–चमेली के फूल भर कर उन्हें पृथ्वी के चरणों में अर्पित किया और गंभीर स्वर में वसुमती पृथ्वी के औदार्य का स्तोत्रपाठ किया।

पृथ्वी प्रसन्न हो गई।

सागर ने वर माँगा और पृथ्वी ने वर दे दिया। उसने केवल प्रदक्षिणा और अभिषेक के जल की तीर्थ के रूप में याचना की। पृथ्वी को आश्चर्य हुआ। उसने अपने मन में कहा, 'सागर बिलकुल पागल मालूम पड़ता है। उसे इतना भी ज्ञान नहीं है, कि वह रत्नगर्भा से रत्न तो माँगता।'

वरुण मेघकुंभों से नित्य पृथ्वी का अभिषेक किया करता था। पृथ्वी की आज्ञानुसार सब पर्वत–शिखरों के अभिषेक का जल पहले की तरह पर्वतों के नीचे स्तर में जमा न रह कर सारे का सारा सागर की ओर ही प्रवाहित होने लगा। धीरे धीरे उस जल के साथ पर्वत-शिखरों के रत्न भी बह बह कर नीचे जाने लगे। उनके कंचन शरीर धुल गये। फलतः सागर रत्नाकर बन गया और रत्नगर्भा पृथ्वी कंगाल हो गई।

पृथ्वी सागर के कपट को समझ गई। किन्तु तब तक वह पूरी तरह कंगाल हो चुकी थी। चंद्रमा दूर से उसकी प्रदक्षिणा किया करता था। पृथ्वी ने उसे अपनी यह परिस्थिति समझाई। चन्द्र को विश्वास ही न हुआ कि जो सागर उसे देखते ही हर्ष-विभोर होकर नाच उठता है वह कभी ऐसा कपट करेगा। पृथ्वी ने सूर्य से बिनती की; परन्तु वह तो जलपान करने के कारण सागर का एहसानमन्द था। कोई भी अपनी सहायता करने को तैयार नहीं है; यह देखकर पृथ्वी गुस्से के मारे थर–थर काँपने लगी। किन्तु इससे केवल बेचारी की छाती फटने

१९५०

और सुन्दर नगर-भूषणों के नाश होने के अतिरिक्त और कोई लाभ न था। अधिक क्रोधवश होने के कारण उसके नेत्रों से अत्यन्त तप्त ज्वालारस बहने लगा। परन्तु वह यह समझ गई कि इस तरह रोने से तो अपना ही कलेजा जलता है!

किसी समय की वैभवसम्पन्न पृथ्वी-माता निराश मन से विचार करने लगी। पर्वत पाषाणमय हो गये; शहरों की श्री—शोभा लुप्त हो गई, राजाओं के कोष में भी रत्न नहीं रहे। समस्त रत्नों को अपने अन्तस्तल में रख कर सागर पृथ्वी के दैन्य—दारिद्र्य का उपहास कर रहा है।

पृथ्वी माता ने अपने पुत्रों की ओर आशा से देखा। अनेक बृहस्पति उठे, और सागर के पास जाकर मधुर मनोहर शब्दों में उससे प्रार्थना करने लगे। किनारे पर से ही रत्नों की याचना करनेवाले इन दुर्बलों को सागर ने जवाब दिया—"आप लोगों में रत्नों की रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं है। इस लिये मैंने उन्हें अपने पास रख लिया है। जिस दिन आप समर्थ हो जायेंगे उसी दिन वे आपको वापस मिल जायेंगे। शब्दवीर बृहस्पति विजय का आनन्द मनाते हुए लौटे गये। शब्दों से वैभव नहीं मिलता; यह बेचारों को मालूम ही न था।

* * *

कई वर्ष बीत गये। सागर का यह विचार पक्का हो गया था कि पृथ्वी की प्रजा असमर्थ है। इससे त्रस्त होकर पृथ्वी ने अपने वीर पुत्रों की ओर देखा। उन्होंने सागर पर आक्रमण किया, किन्तु उसकी प्रचण्ड लहरों के थपेड़ों के सामने वे टिक नहीं सकते थे। कुछ वीर पृथ्वीपुत्र तुरन्त किनारे पर लौट आये। परन्तु जिन्होंने सागर के हृदय में घुसने का साहस किया उनके मृत शरीर भी नहीं मिले।

पृथ्वी की निराशा चरम सीमा को पहुंच गई। वह सोचती कि जिस तरह पतिंगा दीपक में जलकर प्राण दे देता है, उसी तरह मैं भी सूर्य की ज्वाला में जल कर प्राण दे दूँ। उन्मत्त सागर की लहरें आकाश को छू रही थीं। इतने में कहीं से मधुर, किन्तु गंभीर गर्जन ध्वनि आई—

'माँ डरो मत!'

ये शब्द एक ऋषिकुमार के थे। वह तुरन्त सागर के पास पँहुचा और रत्नों की माँग की। कुमार की दुर्बल देह देखकर सागर ने जोर से हँसकर मजाक किया—'अजी ब्रह्मचारीजी! भ्रमचारीजी! स्नानसन्ध्या छोड़ कर इस झंझट में क्यों पड़ते हो? मेरी एक ही लहर तुम्हें नष्ट कर देगी।'

ऋषिबालक ने सागर के शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। वह समुद्र में घुटने भर पानी में खड़ा हो गया और गहरी की हुई हथेली में जल ले कर मंत्र जपने लगा। उन्मत्त सागर खीझ कर बोला—'ऋषि महाराज' गर्दन नीची कर वेद मंत्रों का पाठ करने के उपयुक्त यह स्थान नहीं है। अपने प्राण व्यर्थ ही संकट में मत डालो।'

ऋषिकुमार कुछ सुन नहीं रहा है, यह देख कर सागर ने पहाड़ों जैसी ऊँची लहरें उस पर उछालीं; परन्तु कुमार तक नहीं पहुँची। कुमार ने मंत्र जप कर आचमन करना आरंभ किया। सागर का पानी वेग से सूखने लगा।

एक–दो–तीन ! अथाह जलराशि की जगह मरुस्थल दीखने लगा।

पृथ्वी के रत्न पृथ्वी को वापस मिले। ऋषिकुमार की पीठ पर प्रेम से हाथ फेरते हुए वह बोली––वत्स ! तुम्हारा नाम क्या है ? जहाँ पंडितों-बृहस्पतियों और योद्धाओं की पराजय हुई वहाँ तुम्हें विजय कैसे मिली ?'

प्रणाम कर कुमार ने उत्तर दिया–'माँ ! मेरा नाम अगस्त्य है। तुम्हारी ही कृपा से मेरी विजय हुई। मेरे पास पंडितों के–बृहस्पतियों के–शब्द नहीं हैं, योद्धाओं के आयुध भी नहीं हैं। तुम्हारी-अटल भक्ति ही मेरा वक्तृत्व है और वही मेरा हथियार है'।

ऋषिकुमार ने दयार्द्र अन्तःकरण से सागर का जीवन उसे लौटा दिया। फिर से मरुस्थल के स्थान में जल लहराने लगा। अगस्त्य तपश्चर्या के लिए वन चले गये। पृथ्वी को वैभव शालिनी देख कर कभी-कभी सागर के मन में उसका वैभव अपहरण करने का मोह उत्पन्न होता है। अतीत की बात भूल कर वह वेगपूर्वक आगे बढ़ने लगता है। सागर का मर्यादा-उल्लंघन ध्यान में आते ही वृक्ष-लताएँ और बालुकाकण उच्च स्वर से गर्जना कर कहने लगते हैं–– "रे सागर, अगस्त्य आया! सागर! अगस्त्य आया!" तत्काल सागर का मुँह सूख जाता है, उसकी महत्त्वाकांक्षा पीली पड़ जाती है और जितने वेग से वह आगे आता है, उतने ही वेग से वह बहुत पीछे भी हट जाता है।

[मेराठी से अनु०—श्री० राजेन्द्रप्रसाद भट्ट]

गीत

[प्रभुदयाल अग्निहोत्री]

आज गगन में बादल छाये।
ये भू के उच्छ्वास उठे अम्बर का अन्तर छूने,
किन्तु व्योम उर में पीड़ा वन दूख उठे हैं इने
कसक उठे मेरे मन में प्रिय, सूखे दुःख हरि पाये।
मुन्द्रसुरज ले घन गायक ने सुरति रागिनी फूँकी
कण्ठ खोल उड़चली चातकी मुग्ध मयूरी कूकी
प्रकृति वधू के अंग अंग पर स्नेहांकुर उठ आये ।
भरे भरे से नयन बावरे, मरे मरे स्वर आते,
विहँस विहँस घन के परदों में मेरे प्रिय छिप जाते
वरस पड़ो मेरे अन्तर में हे मेरे मन भाये
आज गगन में बादल छाये।

गुजराती :

नवीन विचारणा की भूमिका

[श्री. 'धूमकेतु']

संसार में युद्ध अनेक बार हुए हैं और आगे भी होते रहेंगे। प्रत्येक युद्ध का कोई न कोई कारण होता है। किसी महान् सिद्धान्त की स्थापना के लिए युद्ध होते हैं—यह वस्तुस्थिति भयंकर होने पर भी समझ में आ सकती है। मध्यकाल में अपनी "टेक" रखने के लिए युद्ध होते थे। उससे पुराने काल में सुन्दरी स्त्रियों के निमित्त युद्ध होते थे। अर्वाचीन काल में व्यापार-विस्तार के लिए युद्ध होते हैं। ये युद्ध भी इस बात का निर्णय करने के लिए होते हैं कि कौन-सी जाति व्यापार करके दूसरी जाति या राष्ट्र को लूट सकती है। चौपट कर सकती है।

परन्तु, इस बात का निर्णय करने के उत्साह में युद्ध करने वाले तथा न करने वाले सभी देशों व राष्ट्रों को इतनी अधिक क्षति सहन करनी पड़ती है कि युद्ध की समाप्ति पर बड़ी विचित्र परिस्थिति पैदा हो जाती है। जिस धन और व्यापार के लिए युद्धों का प्रारंभ होता है उनका स्वरूप ही बदल जाता है।

आज तक तो "धन" एक प्रकार की 'सत्ता' समझा जाता था। भविष्य में धन एक प्रकार की शोभा माना जायगा। धन प्राप्त करने के मार्ग भी परिवर्तित हो जावेंगे। हमारे देश की संस्कृति ने सदैव "विद्या" के बाद "लक्ष्मी" को स्थान दिया है। यूरोप ने विज्ञान को विद्या से भी अधिक महत्व प्रदान किया है। पृथ्वी पर जितने भी भौतिक दृश्य हैं, उन्हें उनके सत्यस्वरूप में खोजना और उससे शक्ति प्राप्त करना विज्ञान का काम है। जहाँ विज्ञान रुक जाता है, वहाँ से विद्या प्रारंभ होती है। आजकल दी जानेवाली सामान्य शिक्षा का नाम विद्या नहीं है। विद्या तो बड़ा प्राणवान् शब्द है। विद्या का अर्थ है—अपने को तथा सबको सत्य स्वरूप में पहचानना। इस दृष्टि से विद्या आत्मा की एक प्रकार की कला है। इस प्रकार की विद्या को राष्ट्र में लक्ष्मी की अपेक्षा अधिक सम्मान-पूर्ण पद दिया जाता था। यह था हमारे देश की संस्कृति का जीवन-व्यापी प्रभाव। यूरोप के संसर्ग से हमें दो वस्तुएं मिली हैं—विद्या का तिरस्कार और वित्त (धन) की पूजा।

आनेवाले युग में विद्या का सत्कार होनेवाला है। उस विद्या का स्वरूप इस प्रकार का होगा—सरल, सादा, स्वच्छ और शांत जीवन—जीवन के रहस्यों को जानने की मानव मात्र की अभीप्सा! मनुष्य को इस बात की प्रतीति होगी कि अधिक से अधिक संग्रह की शक्ति में ही महत्ता समाई हुई है, यह ज्ञान अशुद्ध है। मानव मन में यह विश्वास प्रवुद्ध होगा कि प्रजा के प्राणों को सुरक्षित रखने वाली रक्त-वाहिनियाँ ग्रामों में निहित हैं, बड़े बड़े नगरों में नहीं। मनुष्य को यह प्रतीति होगी कि जीवन के साथ सुसंगत हो कर चलनेवाला विज्ञान ही उसके लिए उपयोगी हो सकता है। धन, संग्रह की वस्तु नहीं अपि तु त्याग की वस्तु है। उसे संग्रह करनेवाला धनपति नहीं कहलावेगा, अपितु, उसका त्याग करके उसे देश की समृद्धि में परिवर्तित कर देनेवाला ही सच्चा धनपति समझा जायगा। यंत्र बलवान् हैं, परन्तु मानव उनसे भी अधिक बलवान् है। इस प्रकार की अनेक नवीन विचारणाएं युद्ध के पश्चात् प्रजाओं के मन में उद्भूत हो रही हैं। इन विचारणाओं को अपनाने के लिए अभीष्ट प्राथमिक ज्ञान यदि जनता में नहीं होगा तो हमारे देश की व्यवस्था विरुद्ध ही रहेगी और अपने यहाँ मंथन-युग ही चलता रहेगा, नवीन युग का मंगल प्रभात तो दूर ही रहेगा। अपने देश की संस्कृति में से जो तत्व प्राप्त करने योग्य हैं, उन्हें प्राप्त करके इस युग में आत्मसात् करने योग्य प्राथमिक कार्य भी यदि संपन्न हो जाय तो फिर हमारा देश किसी भी विचारणा के लिए तैयार है—ऐसा हम कह सकते हैं।

जब तक यह अवस्था नहीं आ जाती, तब तक पश्चिम का अनुकरण करके हमारे देश ने धन के विषय में जो अशुद्ध विचार प्राप्त किए हैं, उसी प्रकार के अशुद्ध विचार समस्त नवीन विचार-धारा से भी उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होते रहेंगे। अतः आज तो हमारे समक्ष नवीन विचारणा को अपनानेवाली स्थिर भूमिका का प्रश्न ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह स्थिर भूमिका जिस प्रकार रची जायगी उसी आधार पर नवीन विचार-धारा प्रजा को प्राणवान् या निष्प्राण बना सकेगी।

[अनुवादकः—श्री. शंकरदेव विद्यालंकार]

बंगला :

रवीन्द्रनाथ के वर्षागीत

[श्री. रामपूजन तिवारी]

रवीन्द्रनाथ की वर्षा-संबंधी कविताओं और गीतों में प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति कवि के आकर्षण और सहज अनुराग का परिचय सर्वत्र ही मिलता है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में कवि का मन सहज ही रम जाता है। बाह्य सौन्दर्य के साथ उसके अन्तर का सामंजस्य स्थापित हो जाता है। कवि अपने अन्तर के आनन्द, विरह-कातर आकुलता का प्रत्यक्ष दर्शन प्रकृति के व्यापारों में करता है। जीवन के संघर्षों और द्वन्द्वों से परे होकर वह आत्मविभोर हो उठता है। उसका मन, उसका हृदय, प्रकृति की गति से गति मिलाकर ताल ताल पर नाच उठते हैं। रवीन्द्रनाथ का वर्षा ऋतु के प्रति एक अद्‌भुत आकर्षण था। शान्ति-निकेतन में वर्षा ऋतु के दो उत्सव प्रत्येक वर्ष बड़ी धूम-धाम से मनाए जाते हैं। उनमें एक वृक्ष-रोपण है और दूसरा वर्षा-मंगल। ये दोनों उत्सव गुरुदेव को अत्यन्त प्रिय थे।

आकाश में उमड़ घुमड़ कर बरसनेवाले मेघ, हरी हरी घास, पेड़, पौधे और लताएँ बरसात में खिलनेवाले फूल, कल कल करती हुई दोनों किनारों को तोड़नेवाली नदियों की धारा किस प्रकार कवि को प्रभावित करती थी इसका अनुमान उनकी कविताओं से हम सहज ही लगा सकते हैं।

आज नव वर्षा का आगमन हुआ है। आकाश में गरजते हुए मेघ एक-पर-एक आ रहे हैं। कहीं कातर कपोत अपने खोंते में बैठे हुए कांप रहे हैं और दादुर-ध्वनि चारों ओर सुनाई पड़ रही है, सजल मेघों का नील अंजन उसकी आँखों में लगा हुआ है। आज उमड़ते घुमड़ते बादलों की माया को देखकर नाच उठनेवाले मयूरों की भांति कवि का हृदय सैकड़ों रंगबिरंगे भाव उच्छ्वासों से पुलकित होकर नाच रहा है, आज उसका अवश हृदय नाच रहा है।

हृदय आमार नाचे रे आजिके,
मयूरेर मतो नाचे रे, हृदय नाचे रे।
शत वरनेर भाव-उच्छवास
कलापेर मतो करे छे विकास,

१९५०

आकुल परान आकासे चाहिया
उल्लासे कारे याचे रे।
हृदय आमार नाचे रे आजिके,
मयूरेर मतो नाचे रे॥
गुरु गुरु मेघ गुमरि गुमरि
गरजे गगने गगने गरजे गगने।
धेये चले आसे बादलेर धारा,
नवीन धान्य दूले दूले सारा,
कुलाये काँपिछे कातर कपोत,
दादुरि डाकिछे सघने।
गुरु गुरु मेघ गुमरि गुमरि
गरज गगने गगने॥
नयने आमार सजल मेघे
नील अंजन लेगे छे, नयने लेगे छे।

प्रकृति के प्रति कवि के सहज आकर्षण के साथ साथ इन कविताओं में कवि के जीवन-दर्शन का भी परिचय मिलता है। इसी लिये जहां कवि का हृदय मयूर की भांति आकाश के मेघों को देखकर नाच उठता है वहाँ उसके विरह कातर आकुल प्राण उल्लसित होकर आकाश की ओर देखते हुए न जाने किसकी चाहना कर रहे हैं।

रवीन्द्रनाथ ने विभिन्न ऋतुओं के संबंध में कविताएँ लिखी हैं, लेकिन लगता है जैसे उनको वर्षा ऋतु अत्यधिक प्रिय थी। जैसे कवि ने अपनी सौन्दर्यमयी सृष्टि का प्रत्यक्ष दर्शन वर्षा ऋतु में किया है। वर्षा ऋतु की प्रत्येक वस्तु उसे अपनी ओर खींच लेती है और उस आकर्षण से वह बरबस खिंच जाता है। आकाश में दल के दल मेघ आ आकर पुकार जाते हैं आओ, आओ, आओ। कवि के हृदय में आम, जामुन और काश वन के समान पुलक का संचार हो जाता है और वह मेघों के आमंत्रण को सुनकर ही कुहुक उठता है आ रहा हूँ, आ रहा हूँ, आ रहा हूँ।

आकाश तले दले दले मेघ जे डेके जाय
आय आय आय।
जामेर बने आमेर बने रव उठे छे ताइ
जाइ, जाइ, जाइ।
उड़े जावार साध जागे तार पुलक-भरा डाले
पाता य पाता य।
नदीर धारे बारे बारे मेघ जे डेके जाय—
आय आय आय।
काशेर बने क्षणे क्षणे रव उठे छे ताइ
जाइ, जाइ, जाइ।
मेघेर गाने तरी गुलि तान मिलिये चले
पाल-तोला पाखाय।

जिस प्रकार से मेघों के गान के साथ पाल रूपी पंखों को फैलाए हुए नौकाएं तान मिलाकर चली जा रही हैं उसी प्रकार कवि का हृदय भी बादलों के सुर-में-सुर मिलाकर मुखरित होता रहता है। इसी लिये विरह के ताप से जलनेवाले कवि का हृदय यक्ष की तरह कह उठता है: हे श्यामल सुन्दर, ताप और तृष्णा को दूर करनेवाली सुधा को लेकर आओ क्योंकि विरह-कातर विरहिणी की टकटकी आकाश की ओर लगी हुई है। तमालकुञ्ज के पथ की स्निग्ध छाया में उसने अपने व्यथित हृदय को बिछा रखा है और उसके नयनों में करुण रागिणी झंकृत हो उठी है। बकुल-कलिकाओं की माला उसने गूंथ रखी है। प्राङ्गण में मिलन-वांसुरी बज रही है। तुम अपनी मञ्जीर अपने साथ लेते आओ जो चञ्चल नृत्य के छन्द में छन्द मिला कर बजेगी। और तब कहीं पर कंकण बज उठेगा कहीं पर किङ्किणी बज उठेगी और साथ ही साथ नूपुर भी झंकृत हो उठेगा।

एसो श्यामल सुन्दर
आनो तव तापहरा तृषाहरा संगसुधा।
विरहिणी चाहिया आछे आकाशे॥

से जे व्यथित हृदय आछे बिछाये
तमालकुंजपथे सजल छायाते,
नयने जागि छे करुण रागिणी ॥
वकुल मुकुल रेखे छे गाँथिया,
बाजि छे अङ्गने मिलन बाँशरि ।
आनो साथे तोमार मन्दिरा,
चञ्चल नृत्येर बाजिबे छन्देसे—
बाजिबे कङ्कण, बाजिबे किङ्किणी,
झंकारिवे मञ्जरी रुनु रुनु ॥

और संभवतः विरह विदग्धों को शान्ति पहुँचाने वाले मेघ ने मानो कवि की प्रार्थना स्वीकार कर ली है। हर्षध्वनि करते हुए काले काले मेघ झूमते हुए आ रहे हैं। पृथ्वी हर्षोत्फुल्ल हो उठी है। मत्त वर्षा का आगमन देख कर नीप मञ्जरियों के प्राण आनन्द से सिहर-उठे हैं और कैङ्कारध्वनि करने वाले पागल मयूरों का दल नृत्य कर रहा है। कवि ने इसके बाद जिस वातावरण की सृष्टि की है उससे पाठक को उन दिनों की याद आ जाती है जब कि आज की तरह से ही रेवा नदी के तट पर स्थित श्याम शैल शिखरों पर काले काले मेघ झूम झूम कर बरस पड़े होंगे और उस कल्पना-लोक की मनोहर सृष्टि करने वाले कवि की वाणी मेघदूत और ऋतु-संहार के रूप में फूट पड़ी होगी।

ओइ आसे ओइ अति भैरव हरषे
जलसिञ्चित क्षितिसौरभ-रभसे
घनगौरवे नवयौवना बरषा
श्याम गम्भीर सरसा ।
गुरुगर्जने नीपमञ्जरी शिहरे,
शिखीदम्पति केकाकल्लोले बिहरे ।
दिग्वधूचित-हरषा
घनगौरवे आसे उन्मद बरषा ॥
कोथा तोरा अभितरुणी पथिकललना,
जनपदवधू किङ्किणीकल-कलना,
मालतीमालिनी कोथा प्रियपरिचारिका,
कोथा तोरा अभिसारिका ।
घनबनतले एसो घननील वसना,
ललित नृत्ये बाजुक स्वर्णरसना,
आनो वीणा मनोहारिका ।
कोथा विरहिणी, कोथा तोरा अभिसारिका॥
आनो मृदंग, मुरज, मुरलीमधुरा,
बाजाओ शंख, हुलुरव करोवधूरा—
एसे छे बरषा, ओगो नव अनुरागिनी,
ओगो प्रियसुख भागिनी ॥

इस वर्षा-पुरुष की अभ्यर्थना के लिये हे तरुणी पथिक-ललनाओ ! तुम आओ। जनपद वधुओ, तुम कहां हो। अरी ओ अभिसारिकाओ, आज दिग्वधुओं के चित्त को आनंद से पूर्ण करने वाले इस उन्मत्त वर्षा-पुरुष का स्वागत करो। आज शत शत युग के कवियों के गीत से वनवीथिकाएं मुखरित हो उठी हैं।

शतेक युगेर कविदले मिलि आकाशे
ध्वनिया तुलिछे मत्तमदिर वातासे
शतेक युगेर गीतिका ।
शत शत गीत-मुखरित वनवीथिका ॥

इसी लिये उन कवियों के सुर में सुर मिला कर कवि ने गाया है कि हे प्रिये, आज की रात्रि को भूलना नहीं। आज जूही के परिमल से सनी हुई सजल वायु आ रही है और तमालकुञ्जों के घनान्धकार में दादुर की आवाज सुनाई पड़ रही है इसलिये आज तुम भी कदम्ब की डाल में झुलना डाल दो। फूलों का पराग ऊपर से झरता रहेगा। अधरों से अधरों का एवं अलकों से अलकों का मिलन होगा। इस आनन्द की तुलना कहां हो सकेगी। सखी, आज कदम्ब की डाल में फूलों की डोरी से झुलना बांध दो।

यूथी परिमल आसिछे सजल समीरे,
डाकिछे दादुरि तमालकुञ्ज तिमिरे—
जागो सहचरी, आजिकार निशि भूलोना,
नीपशाखे बाँधो झुलना ।

कुसुम पराग झरिबे झलके झलके,
अधरे अधरे मिलन अलके अलके—
कोथा पुलकेर तुलना ।
नीपशाखे सखी, फूलडोरे बाँधो झुलना ॥

एक जगह रवीन्द्रनाथ ने लिखा है, कि "अपने भीतर तथा अपनी निज की दुनिया में और कोई रहस्य न देख पाने के कारण मैं शान्त हूँ। मेरे मन में आता है जैसे मैं बिल्कुल पूर्ण हूँ और अपनी निज की दुनिया को भी पूर्ण माने बैठा हूँ। इसी समय पूर्व दिगन्त से स्निग्ध अन्धकार से आच्छन्न करता हुआ शत शताब्दी पूर्व का कालिदास का वह मेघ आ उपस्थित होता है। वह हमारा नहीं है और न हमारी निज की दुनिया का हीं; वह हमें चिरविच्छेद की वेदना का अनुभव कराता हुआ एवं चिरमिलन का आश्वासन देता हुआ न जाने किस अलकापुरी की ओर, किस चिरयौवन के राज्य की ओर, और किस चिरसौन्दर्य की कैलाशपुरी के पथचिन्हरहित तीर्थ की ओर, आकर्षित करता रहता है। उस समय पृथ्वी का जो कुछ भी हमारा जाना हुआ है वह तुच्छ हो जाता है और जिसे नहीं जान सका वही बड़ा हो उठता है। जिसे पाया ही नहीं वही पाई हुई चीज से अधिक सत्य जान पड़ने लगता है। वर्षा-संबंधी इन कविताओं में हमें रवीन्द्रनाथ के प्रकृति-प्रेम तथा सौन्दर्य के प्रति सहज आकर्षण के दर्शन होते हैं। लेकिन इसके साथ ही विरह-कातर आकुल प्राणों का किसी अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रेमनिवेदन नाना रूप धारण कर प्रकृति की विभिन्न वस्तुओं में प्रकट हुआ है। उनके वर्षा-गीतों में उनके जीवन-दर्शन का भी परिचय मिलता है और इन गीतों में सीम-असीम के चिर-विरह एवं चिरमिलन के खेल भी पाठक के हृदय को आकृष्ट करते हैं। इसलिये जहां इन गीतों में विरही की वेदना घन वर्षा के मेघ और छाया के संयोग से सजलरूप धारण करती है और अशान्त पवन में उसके सुर का परिचय मिलता है वहां पृथ्वी और आकाश के मिलन का भी आयोजन है।

अश्रु भरा वेदना दिके दिके जागे ।
आजि श्यामल मेघेर माझे
बाजे कार कामना ॥
चलि छे छूटिया अशान्त वाय,
क्रन्दन कार तार गाने ध्वनि छे,
करे के से विरही विफल साधना ॥

न जाने किस विरही की विफल साधना चल रही है कि अशान्त वायु की हू हू करनेवाली ध्वनि में उसका क्रन्दन सुनाई पड़ता है। पता नहीं आज इन श्यामल मेघों के बीच किसकी कामना का स्वर सुनाई पड़ रहा है। इस चिर-विरह के साथ चिर-मिलन का भी खेल चल रहा है। आज पृथ्वी और आकाश का मिलन हो रहा है। उस मिलन के छन्द में मालती की गन्ध से वादल और पवन मतवाला बने हुए हैं। इस उत्सव-आयोजन में श्रावण की वीणा बज रही है और प्राणवन्त होकर श्यामल मिट्टी आनन्द से सिहर उठी है। नदी के दोनों कूल-आकुल होकर नदी की तरंगों के साथ नाच उठे हैं। वर्षा से मुखर होकर बन का हृदय काँप रहा है और नवघन के बीच बिजली चमक उठी है।

धरणीर गगनेर मिलनेर छन्दे
बादल बातास माते मालतीर गन्धे।
उत्सव-सभा माझे
श्रावणेर वीणा बाजे,

शिहरे श्यामल माठि प्राणेर आनन्दे ॥
दुइ कूल आकुलिया अधीर विभंगे
नाचन उठिल जेगे नदीर तरंगे ।
कोंपिछे बनेर हिया
बरषणे मुखरिया,
बिजलि झालिया उठे नव घन मन्द्रे ॥

वर्षा ऋतु रवीन्द्रनाथ के मन में जिस विरह-वेदना का संचार कर जाती है वह अपार्थिव है। एक अजान, अपरिचित के लिये कवि का अन्तर प्रतीक्षा करता रहता है। वह अन्तर का प्रियतम पकड़ाई नहीं देता और उसके निष्ठुर आघात से हृदय चूर्ण विचूर्ण हो जाता है। फिर भी वह आयेगा और उसके साथ मिलन संभव हो सकेगा और तब जन्म जन्मान्तर की वेदना से क्षत विक्षत हृदय उसके कोमल स्पर्श को पाकर उत्फुल्ल हो उठेगा, यही आशा चिर-विरही को है। उसे सब जगह उस प्रियतम का अनुभव होता है। प्रत्येक क्षण वह नवीन नवीन वेष धारण करता है। शायद श्रावण को उसका आभास मिला है इसी लिये उसके जानेवाले पथ पर उसने अपने कोष का संपूर्ण जल ढाल दिया है।

श्रावण, तुमि बातासे कार आभास देले।
पथे तारि सकल वारि दिले ढेले ॥

इसी लिये आज विरहिणी को इस घनान्धकार रात्रि में जब जोरों की आंधी चल रही है उस प्रियतम के अभिसार के लिये जाने की उत्कंठा है। उसकी आँखों में नींद नहीं। वह बार बार दरवाज़ा खोलकर देख रही है। बाहर कुछ देख नहीं पाती। प्रियतम के पास जाने का रास्ता भी नहीं समझ पाती और वह न जाने सुदूर किस नदी के पार, किस गहन कानन के किनारे इस अंधेरी रात्रि में रास्ता तय कर रही है।

आजि झड़ेर राते तोमार अभिसार,
परानसखा बन्धु हे आमार ॥
आकाश काँदे हताश-सम, नाइ-जे घूम
नयने मम—
दुयार खुलि हे प्रियतम, चाइ जे बारे बारे॥
बाहिरे किछु देखिते नाहि पाइ,
तोमार पथ कोथाय भावि ताइ।
सुदूर कोन नदीर पारे, गहन कोन बनेर
धारे,
गभीर कोन अन्धकारे हतेछ तुमि पार॥

वर्षाकाल के सजल श्यामल घन एक-पर-एक आते हैं और चले जाते हैं। कभी जोरों की वृष्टि पड़ने लगती है और बिजली कौंध उठती है। आकाश के काले मेघों को देख कर मयूर-दम्पति मत्त हो कर नाच उठते हैं। बकुल, मालती और कदम्ब फूलों की गन्ध से सना हुआ पवन बहता रहता है। कहीं मेंढकों की आवाज सुन पड़ती है। हरी हरी घास से सारी पृथ्वी ढंक जाती है। भरी हुई नदी की धारा दोनों किनारों को प्लावित कर देती है। वर्षा के ये सभी मनोहारी दृश्य कवि चित्त को आकृष्ट करते हैं फिर भी उसका मन अन्तर्मुखी हो कर ही प्रकृति के आनन्द का उपभोग करता था। उसके सभी सुखःदुख, हर्ष-विषाद, हंसी-रोदन उस जीवन-देवता को लक्ष्य कर ही सार्थक होते थे। उसी के मिलन की आशा में ही मानो उसकी सारी शक्ति नियोजित थी। तभी मेघों पर मेघ आ आकर जमते जाते हैं और अंधकार होता जाता है और चिरविरही प्रियतम की आशा में दरवाजे पर अकेला बैठा हुआ है। कार्य-संकुल दिन में नाना काज लिये हुए अनेक लोगों के बीच में वह भूला हुआ रहता है लेकिन आज तो वह उसी की आशा लगाए हुए बैठा है। अगर

आज भी वह दर्शन न दे और उसकी अवहेलना करे तो ऐसी वर्षा की वेला किस प्रकार कटेगी। दूर अनन्त की ओर टकटकी लगाए हुए वह बैठा है और उसके प्राण हवा के साथ क्रन्दन करते फिर रहे हैं।

मेघेर परे मेघ जमेछे
आँधार करे आसे,
आमाय केनो बोसिये राखो
एका द्वारेर पाशे।
काजेर दिने नाना काजे
थाकि नाना लोकेर माझे,
आज आमि-जे बोसे
आछि तोमारि आश्वासे॥
तुमि यदि ना देखा दाओ,
करो आमाय हेला,
केमन करे काटे आमार
एमन बादल-वेला।
दूरेर पाने मेले आँखि
केवल आमि चेये थाकि,
परान आमार कैंदे
बेड़ाय दुरन्त बातासे॥

रवीन्द्रनाथ ने वर्षाऋतु के अनेक गीत लिखे हैं। वर्षा के दोनों रूप शान्त और भयंकर उन्हें प्रिय हैं। आकाश के काले काले मेघों को देख कर न जाने क्यों मानवचित्त उदास हो उठता है और न जाने किस के मिलन की प्रतीक्षा करता रहता है। इन गीतों में वह प्रियतम कभी स्त्री के रूप में दीख पड़ता है और कभी पुरुष के रूप में। इन वर्षा-गीतों को पाठक जैसे जैसे पढ़ता आगे बढ़ता है उसे लगता है जैसे कवि का अन्तर बराबर यह कहता रहता है,

आज आमि-जे बोसे
आछि तोमारि आश्वासे॥

* * *

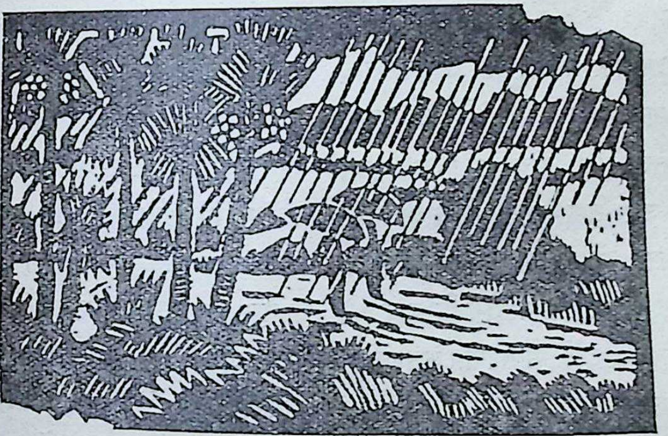

(शान्ती निकेतन से लेखक के सौजन्य से प्राप्त चित्र)

चीन के प्राचीन समाज में नारी

[श्री. कृष्ण किंकर सिंह]

समाज शास्त्रियों का अनुमान है कि प्रागैतिहासिक चीन का सामाजिक ढांचा मातृसत्ता प्रधान था। प्राचीन काल के लोक-गीतों के संग्रह 'काव्य संहिता' से पता चलता है कि उन दिनों स्त्रियों को अपनी इच्छानुसार घूमने-फिरने, शादी-विवाह करने आदि की आज़ादी थी। पर चीन के ज्ञात इतिहास से इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि समाज में स्त्रियाँ स्वतंत्रता का उपभोग करती थीं या उनका स्थान पुरुष के समकक्ष या ऊँचा था। चीन की प्राचीन पुस्तक 'इ चिङ्' में सृष्टि-तत्व का वर्णन है। उसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि याङ् और यिंङ् के योग से सृष्टि की रचना हुई। याङ् पुरुष वाचक और यिंग स्त्री वाचक है। याङ् सूर्य, प्रकाश, शक्ति, बुद्धि आदि का और यिङ चन्द्रमा, अंधकार, निर्बलता, अज्ञान आदि का प्रतीक माना गया है। इससे पता चलता है कि स्त्री तत्त्व पुरुष तत्त्व से निम्न माना गया है। जब तक चीन में सामंतवादी व्यवस्था थी तब तक स्त्रियों को कुछ स्वतंत्रता थी भी; पर राजतंत्र कायम होने के बाद से तो स्त्री-पुरुष के दर्जे में काफ़ी असमानता बढ़ती जाने लगी। इसका कारण यह हुआ कि सामंतवादी युग की अंतिम शताब्दियों में चीन में कनफ्युशस, मेनसियस तथा अन्य बड़े बड़े महात्मा तथा दार्शनिक हुए। इन दार्शनिकों ने स्त्रियों के लिये जो विधान बनाए उनसे स्त्रियों का दर्जा बहुत ही कम हो गया। स्त्रियाँ घर के बाहर के कामों के लिये अयोग्य मानी गईं। उनके लिये चहारदीवारी के अंदर अपने कार्य-कलाप को सीमित करने का विधान बना। कनफ्यूशस का मत स्त्री के संबंध में यों है—"स्त्री पुरुष से उतनी ही भिन्न है जितनी पृथ्वी स्वर्ग से। स्त्रियाँ वास्तव में मनुष्य ही हैं पर उनका दर्जा पुरुष से कम है। अतः स्त्रियों की शिक्षा का उद्देश्य उन्हें नम्र-से-नम्र बनाना है—उनके मस्तिष्क की वृद्धि या विकास करना नहीं। यह प्राकृतिक नियम है कि स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रखना चाहिए तथा उन्हें अपने मन का नहीं करने देना चाहिये।"

महात्मा कनफ्यूशस तथा उनके सम्प्रदायवालों ने स्त्रियों के लिये जो विधान बनाया, उनके अच्छे-बुरे का जो माप दंड कायम कर दिया वे तब से याने आज से दो हजार वर्षों से भी अधिक पूर्व से—आधुनिक काल तक चीन में मान्य रहे। स्त्रियों के लिये कानून बनाने में कनफ्यूशी मतावलम्बी स्त्री-पुरुष दोनों थे। कनफ्यूशस की सामाजिक व्यवस्था में परिवार का बड़ा महत्व है। परिवार के सभी सदस्यों को परिवार के मुखिया के नियंत्रण में रहना पड़ता था। पुरुष ही मुखिया हो सकता था, स्त्री नहीं। हाँ, अगर परिवार में कोई पुरुष नहीं होता

१९५०

और बच्चे नाबालिग़ तथा काम काज के अयोग्य होते तो परिवार की सबसे वृद्धा स्त्री भी मुखिया का पद ले सकती थी । पर बच्चे के बालिग़ होते ही उसे यह पद छोड़ देना पड़ता था । चीन के एक प्राचीन धार्मिक ग्रंथ 'लि चि' में स्त्रियों के तीन कर्तव्य बताए गए हैं—(१) कुमारी अवस्था में वे पिता के आश्रय में रहें, (२) विवाह होने पर पति के आश्रय में और (३) विधवा होने पर पुत्र के आश्रय में । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज में स्त्रियों का दर्जा पुरुष के अधीन रखा गया था । चीनी धार्मिक ग्रंथों में माता-पिता की भक्ति पर बड़ा जोर दिया गया है । पर पिता की भक्ति पर जितना जोर है उतना माता की भक्ति पर नहीं । पितरों की पूजा चीनी परिवार का प्रधान धार्मिक अनुष्ठान है । पर स्त्रियाँ उसमें भाग नहीं ले सकती थीं । दूसरे धार्मिक अनुष्ठानों में भी स्त्रियों को उस तरह से भाग लेने का अधिकार नहीं था जैसा पुरुष ले सकते थे । स्त्रियों के लिये सतीत्व और धर्म-परायणता, मधुर मित भाषण, नम्रता और सदाचरण तथा गृह कार्य में निपुणता आदि गुणों का होना अनिवार्य माना गया था । 'इ चिङ्' नामक ग्रंथ में लिखा है—"स्त्रियों का क्षेत्र घर के अंदर है और पुरुषों का घर के बाहर," 'लि चिङ्' नामक एक और ग्रंथ में इसका उल्लेख है कि 'पुरुषों को भीतरी मामलों में और स्त्रियों को बाहरी मामलों में दखल नहीं देना चाहिए ।" पर व्यवहार में अकसर पुरुष घर के मामलों में दखल देते थे । हाँ, स्त्रियों के लिये बाहर के मामलों में दखल देने की बात दूर रही तो वे घर के बाहर भी नहीं निकल सकती थीं । स्त्रियों के लिये बिना पर्दे के घर से बाहर निकलना, पुरुषों के साथ बैठना या बातचीत करना आदि एकदम मना थे । पर समाज में एक वर्ग ऐसा अवश्य था जो इन नियमों से परे था और वह था गरीब वर्ग जिन्हें घर के बाहर जाकर अपनी जीविका के लिये काम करना पड़ना था ।

आर्थिक दृष्टि से स्त्रियाँ पुरुषों के अधीन थीं । उन्हें सम्पत्ति में कुछ भाग नहीं मिलता था—वे स्वयं पुरुषों की सम्पत्ति होती थीं । जब घर से बाहर निकलना अपराध था तब नौकरी आदि करने की बात ही नहीं उठती । आर्थिक कारण से गरीब पिता अपनी कन्याओं को बेच देते थे और वे अमीरों के घर रखेली या दासी होती थीं । उच्च और मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ आर्थिक उन्नति के कार्य में हाथ नहीं बँटाती थीं । पर गरीब परिवार की स्त्रियाँ खेतों में काम करती थीं, घर में कपड़े बुनती थीं, कपड़े के जूते तैयार करती थीं और परिवार के मवेशियों की देखभाल करती थीं । क्योंकि बिना काम किए उनके लिये जीवन निर्वाह करना कठिन था । पर इन कामों से होने वाले आर्थिक लाभ के उपयोग करने का अधिकार पुरुषों को था स्त्रियों को नहीं । उन्हें अगर किसी प्रकार की सम्पत्ति होती भी तो उस पर उनके पतियों का अधिकार होता । रोज़गार के तौर पर स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति करती थीं; दो परिवारों के बीच शादी-विवाह ठीक करा देती थीं, धाई का काम करती थीं, दूसरों के लिये पुजा-आराधना करती थीं । स्त्रियाँ बौद्ध संघ या ताओ धर्म में दीक्षित होकर भिक्षुणियाँ भी हो जाती थीं ।

कानूनी दृष्टि से भी स्त्रियों का दर्जा पुरुषों से बहुत ही निम्न था। पुरुषों के लिये पर-स्त्री-गमन दोष नहीं माना जाता था पर पुरुष अपनी पर-पुरुष-गामिनी पत्नी की हत्या तक कर सकता था और इसके लिये उसे कोई सज़ा नहीं मिलती थी। अगर कोई पति अपनी पत्नी पर किसी तरह का अत्याचार करता था तो उसे उतनी सज़ा नहीं मिलती थी जितनी एक अजनवी पर अत्याचार करने पर उसे मिलती। इसके विपरीत अगर कोई स्त्री अपने पति पर किसी तरह का अत्याचार करती तो उसे एक अजनवी पर अत्याचार करने से मिलने वाली सज़ा की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर सज़ा भोगनी पड़ती। पुरुष जब चाहते अपनी स्त्री या रखेली को दूसरों के हाथ बेच देते या कुछ दिनों के लिये बंधक रख देते थे। यद्यपि यह काम अवैध था पर था प्रचलित अवश्य। चूंकि सम्पत्ति में स्त्रियों को कुछ हिस्सा नहीं मिलता था इसलिये उन्हें पुरुषों के अधीन रहना पड़ता था। पुरुष अपनी कन्याओं को बेच सकते थे और इस पर कोई प्रतिबंध नहीं था। चीन में तलाक देने का अधिकार स्त्री-पुरुष दोनों के लिये प्राचीन काल से चला आ रहा है। सामंती युग तथा राजतंत्र के प्रारम्भिक युग में स्त्रियाँ भी आवश्यकता पड़ने पर बिना किसी के हस्तक्षेप के इस अधिकार का उपयोग करती थीं। पर बाद में इस प्रकार के नियम-कानून बनते गए कि स्त्रियों के लिये तलाक का अधिकार बहुत सीमित हो गया और पुरुषों को एक तरह से इसका एकाधिकार मिल गया। परम्परा से यह बात चली आती थी कि निम्न कारणों के होने पर पुरुष तलाक का अधिकारी है–(१) अगर पत्नी सास-ससुर की अवज्ञा करती है, (२) अगर वह बाँझ है, (३) अगर पर-पुरुष-गामिनी है, (४) ईर्षालु है, (५) अगर वह किसी प्रकार के दुःसाध्य रोग से पीड़ित है, (६) अगर वाचाल है, और (७) चोर है। बाद में इन सात कारणों में और भी अनेक नियम-कानून जोड़ दिए गए। जहाँ तलाक देने के संबंध में पुरुषों के लिये इस तरह के अधिकार थे वहाँ उन पर कुछ प्रतिबंध भी थे। निम्न तीन कारणों के होने पर पुरुष तलाक नहीं दे सकता था–(१) अगर स्त्री ने उसके पति के माता-पिता की मृत्यु होने पर तीन वर्षों तक मातम मनाया है, (२) अगर पति का परिवार पहले गरीब था पर अब समृद्ध हो गया है और (३) अगर ऐसा कोई परिवार नहीं है जिसमें तलाक के बाद स्त्री जा कर रह सकती है। तलाक की प्रथा चीन में बहुत कम व्यवहार में आती थी क्योंकि समाज में पुरुष तथा स्त्री दोनों के लिये यह इज्ज़त की बात नहीं मानी जाती थी।

एक रिवाज जिसने चीनी स्त्रियों को एकदम पंगु बना रखा था और उन्हें पुरुषों के अधीन कर दिया था वह था उनके पैरों का बांधा जाना। जब लड़कियाँ ४ से ६ वर्ष की होती थीं याने जब वे कुछ अधिक तेज़ी से बढ़ने लगती थीं तब माता उनके पैरों को कपड़े के लम्बे लत्ते से कस कर बांध देती थीं। कस कर बांधने से पैर की हड्डियों और मांस पेशियों का बढ़ाव रुक जाता था, पंजा मुड़कर नीचे की ओर हो जाता था। पैर के ऊपर का मांस फूल जाता था और इस प्रकार पैर छोटा हो जाता था। कस कर बंधे रहने से रक्त संचालन

१९५०

में रुकावट आ जाती थी तथा कभी कभी मांस सड़ जाता था। पैर बांधने का मुख्य उद्देश्य पैर को छोटा करना था। इससे पैर न केवल छोटा हो जाता था बल्कि उसकी आकृति इस प्रकार की हो जाती थी कि स्त्रियाँ एक तरह से पंगु हो जाती थीं। वे तेजी से नहीं चल सकती थीं। दौड़ना तो दूर रहा तथा अधिक दूर भी वे नहीं जा सकती थीं। कहा जाता है कि पहले यह रिवाज केवल उच्च वर्ग में प्रचलित था और यह रईसी का प्रतीक था। पर बाद में यह फैशन हो गया और सभी वर्गों में प्रचलित हो गया तथा सुन्दरता का प्रतीक बन गया। लम्बे पैर वाली स्त्रियों याने स्वाभाविक पैर वाली स्त्रियों का समाज में कुछ मान नहीं रहा। उन लड़कियों की शादी होना कठिन होता जिनके पैर बंधे न होते। समाज में उनकी भर्त्सना होती। यहां तक कि स्वाभाविक पैर वाली वेश्याओं तक की पूछ नहीं थी। इस कारण माताओं की यह जिम्मेवारी हो गई थी कि वे अपनी-अपनी बेटियों के भविष्य को सुखमय बनाने के लिये उनके पैरों को अवश्य बांधें। इस तरह पैर बांध देने से उनकी स्वाभाविक वृद्धि में जो रुकावट आ जाती थी उससे लड़कियों को असह्य वेदना होती थी। पर वे इसे हँसी-खुशी से सहन करती थीं क्योंकि बिना पैर छोटा किए उनका भविष्य जीवन सुखमय नहीं होता था। जिन कन्याओं के पैर उनकी माताओं ने किसी कारण से बांध कर छोटे नहीं किये वे बड़ी होने पर अपनी-अपनी माता को कोसती थीं क्योंकि छोटे पैर के अभाव में समाज में उनकी पूछ नहीं होती थी। पैर बांधने का बडा बुरा प्रभाव स्त्रियों के स्वास्थ्य पर पड़ता था और वे कितने प्रकार के रोगों का शिकार हो जाती थीं। इतना ही नहीं, रोग होने पर उनके लिये औषधि तथा वैद्य की भी व्यवस्था ठीक से नहीं होती थी। वैद्य अक्सर मर्द होते थे और स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं; इसलिये मर्द वैद्य औरतों की चिकित्सा उनकी हालत सुन कर ही करते थे। वे रोगिणी को देख उसकी परीक्षा नहीं कर सकते थे। अधिक से अधिक वे पर्दे के भीतर बैठी रोगिणी की नाड़ी छू सकते थे। पैर बांधने की कला पर कितनी ही पुस्तकें चीन में लिखी गई हैं और छोटे पैर के वर्णन से चीनी साहित्य भरा पड़ा है। बहुत से लोग इस पैर बांधने की प्रथा को स्त्रियों के सौंदर्य वृद्धि के साधन रूप में मानते हैं। पर वास्तव में यह प्रथा स्त्रियों को घर के भीतर सीमित कर देने के रूप में प्रारम्भ हुई थी।

अगर हम प्राचीन चीन की स्त्रियों के बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक के जीवन पर एक दृष्टि डालें तो यही जान पड़ेगा कि उनका संपूर्ण जीवन पुरुष के अधीन था। चीन के साहित्य में, चीन के दर्शन में, चीन के समाज में कहीं भी स्त्रियों के लिये बहुत सम्मान की भावना नहीं मिलती। कन्या के जन्म होने से माता-पिता प्रसन्न नहीं होते थे। यद्यपि सुन्दर कन्याओं के प्रति माता-पिता दोनों का आकर्षण होता था। पहले चीन के लोग लाभ-हानि के रूप में पुत्र तथा कन्या के जन्म की बात सोचते थे। पुत्र होने से वह अधिक काम करेगा अतः अधिक उपार्जन करेगा। कन्या काम कम

करेगी तथा वह शादी होने पर दूसरे परिवार में चली जाएगी । इसलिये आर्थिक दृष्टि से कन्या का जन्म परिवार के लिए लाभदायक नहीं माना जाता था । सो पुत्र की अपेक्षा उसका सम्मान भी कम था । सामंत काल में राजपरिवार में पुत्र तथा कन्या के प्रति होने वाले व्यवहार के संबंध में एक कवि ने लिखा है कि "पुत्र को गदीदार पलंग पर सुलाया जाता, सुन्दर कपड़ा पहिनाया जाता, तथा खेलने के लिये राजदंड दिया जाता । .....पर कन्या को जमीन पर सुलाया जाता, फटा-चिटा कपड़ा पहनाया जाता तथा खेलने के लिये खपड़ा दिया जाता । बड़ा होने पर पुत्र को साहस के साथ बोलना सिखाया जाता पर कन्या को नम्र हो कर धीरे धीरे बोलने । कन्या को किसी प्रकार की किताबी शिक्षा यहाँतक कि अक्षर ज्ञान कराना भी ठीक नहीं माना जाता था । होश संभालते ही चीनी कन्या अपनी माता को, पुरुष की प्रधानता थी; पर घरेलू कामों में मदद करने लगती थी । उसे सुदक्ष गृहिणी, आज्ञाकारी पत्नी तथा नम्र पतोहू बनने की शिक्षा मा द्वारा दी जाती थी । कन्या की उम्र ज्यों ज्यों अधिक होती उस पर कड़ी निगरानी रखी जाती ताकि उसका किसी लड़के से प्रेम संबंध न हो जाए । कन्या हत्या तथा कन्या बिक्री दोनों ही चीन में खूब प्रचलित थे । शादी हो जानेपर कन्या अपने पति के परिवार की हो जाती थी ओर पिता के परिवार से उसका संबंध कम हो जाता था ।

शादी–विवाह के मामले में स्त्री को पति चुनने या अपनी शादी के संबंध में कुछ बोलने का अधिकार एकदम नहीं था । माता–पिता जिस किसी पुरुष के साथ उसकी शादी कर दे सकते थे । शादी के पहले लड़कियों का लड़कों से प्रेम करना या प्रेम की याचना करना एकदम मना था। पर यह काम लड़कों के लिये भी मना था । पर ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें लड़की-लड़के के बीच विवाह के पूर्व ही प्रेम हो गया था । पर अक्सर इस तरह के संबंध का अंतिम परिणाम दुखदायी होता था क्योंकि माता पिता यह सहन नहीं कर सकते थे कि लड़के-लड़कियाँ अपने मन से विवाह करें । यह प्रथा भी प्रचलित थी कि दो परिवारों के बीच यह पहले ही तय हो जाता था कि अगर उनमें से किसी एक के घर पुत्र और दूसरे के घर पुत्री हुई तो दोनों के बीच शादी कर दी जाएगी । ऐसी अवस्था में माता-पिता अपनी पुत्री को बचपन में ही उसके भावी सास–ससुर के घर भेज देते थे और वहीं उसका लालन-पालन होता था तथा घर-गृहस्थी की शिक्षा मिलती थी । बाल-विवाह खूब प्रचलित था । बहु विवाह कानून विरुद्ध था पर लोग रखेली रख सकते थे । शादी के बाद जब लड़की अपने पति के घर जाती तो वहाँ वह प्रथम पुत्र वधू के कर्त्तव्य को पूरा करती फिर पत्नी के कर्त्तव्य को । इस तरह कहा जा सकता है कि उसपर पति की अपेक्षा सास–ससुर का अधिक आधिपत्य होता । उसे अपनी सास–ससुर की सेवा आदर के साथ करनी पड़ती तथा बराबर उनकी आज्ञा का पालन करना होता । सास-ससुर के जगे रहने पर पतोहू का अपने घर में जाकर रात में सो जाना ठीक नहीं माना जाना था । पति उससे कितना भी अप्रसन्न क्यों न हो अगर सास-ससुर उससे प्रसन्न

१९५०

हैं तो उसे पति कष्ट नहीं पहुंचा सकता, उसे तलाक नहीं दे सकता। पति के घर उसका सबसे अधिक सम्पर्क सास के साथ होता था। ससुर और जेठ के साथ उसका सम्पर्क नहीं रहता। दिन में पति के साथ भी उसका कम सम्पर्क होता। सास का पतोहू के साथ बुरा व्यवहार करना चीनी परिवार की आम बात थी। बुरे व्यवहार से तंग आकर कभी कभी पतोहू आत्महत्या तक कर लेती थी। चीनी साहित्य इस प्रकार के बुरे व्यवहार की कथा-कहानियों से भरा पड़ा है। परिवार में पतोहुओं के बीच आपस में खूब कलह होता था और इसका बुरा परिणाम यह होता कि परिवार के सदस्य अलग अलग रहने लगते थे।

एक समय आता है जब परिवार के वृद्ध पुरुष या स्त्रियाँ चल बसती हैं या काम करने में असमर्थ हो जाती हैं। तब परिवार की देख-भाल की जिम्मेवारी युवा पुरुषों पर आती है। परिवार का सबसे बड़ा युवा पुरुष मुखिया होता था और उसकी पत्नी घर के भीतर प्रधान होती थी। तभी उसका वास्तविक पत्नी रूप सामने आता था क्योंकि सास-ससुर के रहते अक्सर उसका पतोहू रूप ही अधिक मालूम हो पाता था। पत्नी का प्रधान कर्त्तव्य अपने पति की सेवा करना तथा उनकी आज्ञा पालन करना हो जाता था। यहां एक बात खयाल रखने की है कि चीनी समाज में विवाह का उद्देश्य संतान पैदा करना था—आनन्द-मौज उड़ाना नहीं। अगर संतान के साथ साथ आनन्द भी जीवन में मिलता था तो अच्छी बात थी; नहीं मिलता था तो कोई बुरी बात नहीं मानी जाती थी। यद्यपि कानूनन स्त्री का दर्जा पुरुष से निम्न था तथा परिवार के सभी कामों में ऐसी स्त्रियों की संख्या कम नहीं थी जो अपनी योग्यता तथा बुद्धि से अपने-अपने पति पर शासन करती थीं। यह एकदम सत्य है कि चीन के पुरुष अपनी पत्नियों के गुलाम होते हैं। पत्नी रूप में चीनी स्त्रियाँ अपने-अपने पति की आज्ञा पालन करती थीं, संतान पैदा करती थीं और घर की व्यवस्था में हाथ बटाती थीं।

चीन में रखेली रखने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। पर अब यह प्रथा मिट रही है। पहले प्रायः सभी समृद्ध पुरुष रखेली रखते थे। रखेली रखना रईसी और इज्जत की बात मानी जाती थी। अतः उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग की विवाहित स्त्रियों को परिवार में रखेलियों का सामना करना पड़ता था। निम्न वर्ग में रखेली रखने की प्रथा कम थी क्योंकि यह काम इस वर्ग के लोगों के आर्थिक सामर्थ्य के बाहर की बात थी। पर रखेली अक्सर निम्न वर्ग की स्त्रियाँ होती थीं जो आर्थिक कारण से यह पेशा अख्तियार करती थीं। यहां एक बात ध्यान देने की है कि पुरुष अविवाहित अवस्था में नहीं; विवाह के बाद ही रखेली रख सकता था। रखेली चुनने में पुरुष स्वतंत्र था याने वह अपने पसन्द से रखेली रख सकता था—माता-पिता इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे। पर शादी तो उसे अपने पिता-माता की इच्छानुसार उनके द्वारा चुनी हुई लड़की से करनी पड़ती थी। अतः मन पसन्द रखेलीपर पुरुष का प्रेम अधिक होता था। पर परिवार में रखेली का दर्जा

विवाहिता पत्नी से बहुत निम्न होता था। अक्सर विवाहिता पत्नी और रखेली के बीच कलह होता था पर रखेली को दबना पड़ता था। पति द्वारा रखेली रखे जाने पर विवाहिता पत्नी हस्तक्षेप नहीं कर सकती थीं, यद्यपि वह मन से इसे नहीं पसन्द करती थी। पर जब कहीं कोई प्रथा चल पड़ती है तो कालान्तर में लोग उसके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि बुरी होने पर भी वह नहीं खलती। चीन की पत्नियाँ भी पतियों द्वारा रखेली रखे जाने की प्रथा से अभ्यस्त हो गई थीं। एक पुरुष एक से अधिक रखेलियाँ रख सकता था।

परिवार में वृद्ध स्त्रियों याने माता, दादी आदि-का बड़ा सम्मान था। वे तो सज्जनता की प्रतीक मानी जाती थीं। परिवार में अगर कोई बालिग़ पुरुष नहीं होता था तो माता या दादी घर की मुखिया होती थीं तथा परिवार की व्यवस्था करती थी। पर बालिग़ पुत्र या पौत्र या किसी निकट पुरुष संबंधी के होने पर माता, दादी, चाची आदि को मुखिया पद नहीं मिलता था। यद्यपि पुत्र के लिये माता-पिता की भक्ति पर सदा जोर दिया जाता था पर माता और पिता के बीच किसी तरह का मनमुटाव या कलह होने पर पुत्र को पिता का पक्ष लेना पड़ता था, माता का नहीं। पिता की मृत्यु के बाद माताओं को अपने बालिग पुत्र के अधीन रहना पड़ता था। इस तरह माता रूप में भी चीनी स्त्रियों का सम्मान पुरुष के समान ही था। पर चीन में ऐसी माताओं के अनेक उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने अपनी योग्यता और बुद्धिमानी से अपने पुत्रों को बड़ी से बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के योग्य बनाया था।

विधवाओं की दशा समाज में अच्छी नहीं थी। उनके लिये शादी का द्वार खुला था। पर समाज में उनका विवाह करना सम्मान की बात नहीं मानी जाती थी। इसलिये वे प्रायः शादी ही नहीं करती थीं। लोक-विश्वास यह था कि पति की मृत्यु होने पर भी उसकी आत्मा अपनी पत्नी की सेवा चाहती है और मरने पर भी उसका अधिकार पत्नी पर बना रहता है; अतः विधवा को शादी नहीं करनी चाहिए। विधवा द्वारा जीवन भर पुनः नहीं शादी करने पर मृत्यु के बाद उसकी कब्र पर स्मारक रूप में पत्थर की पाटी लगाई जाती थी जिसपर उसकी गुण-गाथा लिखी होती थी। इस तरह के सैकड़ों स्मारक तो मैंने स्वयं वहाँ देखे हैं। स्त्री के मरने पर पुरुष तुरन्त शादी कर सकता था। पर पति के मरने पर अगर उसकी विधवा पत्नी शादी करना भी चाहे तो वह तीन वर्ष के बाद कर सकती थी क्योंकि चीन में मृत्यु के बाद अशौच तीन वर्ष का माना गया है।

चीनी स्त्रियों के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा भी बड़ा मनोरंजक था। स्त्रियों द्वारा पुण्य अर्जन का हिसाब यों था:—ऐसे प्रति दिन के लिये एक पुण्य जब स्त्री अपनी सास-ससुर के प्रति कर्तव्यपरायण तथा उनकी आज्ञाकारिणी रहेगी तथा पति की अच्छी सेवा करेगी। पति तथा सास-ससुर की बीमारी की दशा में जितने दिनों तक सेवा करेगी हर दिन के लिये एक-पुण्य। पति तथा सास-

ससुर की मदद के लिये अपने प्रसाधन की सामग्रियों के बेचने पर तीन पुण्य। सास-ससुर के क्रोध को मन में बिना रंज लाए चुपचाप सहलेने पर हरबार के लिये तीन पुण्य। पति द्वारा सताए जाने पर उसके अत्याचार को भी चुपचाप सहलेने पर हरबार के लिये तीन पुण्य। पाप का हिसाब यों था कि अगर पति कोई अच्छा काम करता है और पत्नी उसके विरुद्ध बोलती है या बुरा काम करने पति से कहती है तो हर शब्द के लिये एक पाप। पड़ोसी के साथ शांति पूर्वक नहीं रहने से एक पाप। दूसरों के साथ ताश खेलने से हरबार के लिये पांच पाप। गंदी चीजों या गन्दे दृश्य देखने जाने से ३ से १० तक पाप, लिखे या छपे कागज में सूई-तागा रखने से १० पाप। पति के असुन्दर होने के कारण उससे घृणा करने पर एक हज़ार पाप। इस प्रकार कितने पाप-पुण्य का चीनी स्त्रियों को लेखा-जोखा रखना पड़ता था।

प्राचीन काल में चीनी स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार नहीं था। निम्नवर्ग में तो यह एकदम नहीं था। मध्यम और उच्च वर्ग की स्त्रियाँ भी निरक्षर होती थीं। किसी किसी विद्वान परिवार में स्त्रियों को शिक्षा अवश्य दी जाती थी। इस लिये कुछ उच्च कोटि की विदुषी स्त्रियाँ भी हुई हैं जो कला, काव्य तथा इतिहास के क्षेत्र में अपनी अमर कृतियाँ छोड़ गई हैं। स्त्री-शिक्षा के संबंध में प्राचीन काल में यही धारणा थी कि "पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ परिवार में झंझट पैदा करती ही हैं" तथा "अपढ़ स्त्रियाँ ही धार्मिक होती हैं।" इस तरह की भावना के कारण स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार एकदम नहीं हुआ था। पर परिवार में उन्हें बचपन से घरेलू कामों जैसे कपड़ा बुनने, कसीदा काढ़ने, जूता बनाने, खाना पकाने, बच्चों की देख भाल करने, मां-बाप तथा सास-ससुर की सेवा करने, सच्चरित्र बने रहने, नम्र तथा मधुर भाषिणी होने आदि-की शिक्षा अवश्य मिलती थी।

चीन ऐसे विशाल देश में एक तरह का रीति-रिवाज तथा सामाजिक जविन पाया जाना असंभव है। फिर भी, ऊपर जो कुछ चीनी स्त्रियों के बारे में कहा गया है वह प्रायः संपूर्ण चीन पर लागू था। स्थान तथा वर्ग भेद से अंतर अवश्य था—जैसे दक्षिण चीन में स्त्रियाँ पहले भी खेतों में काम करती थीं, कुली वगैरह का नाव खेने का तथा अन्य काम भी करती थीं! इन काम करने वाली स्त्रियों में सभी के पैर बांधने की प्रथा नहीं थी। उपरोक्त विवरण से जान पड़ता है कि प्राचीन चीनी स्त्रियों की लगभग वही दशा थी जैसी भारतीय स्त्रियों की। पति तथा परिवार के पुरुष मुखिया की प्रसन्नता पर उनका अस्तित्व कायम रहता था। इस तरह के बंधन के बीच भी चीनी इतिहास में ऐसी कन्याओं, पत्नियों, माताओं तथा विधवाओं की चर्चा है जिन पर कोई भी देश गर्व कर सकता है।

तेलुगु-कहानी :

अन्धा भगवान्

[श्री० 'अमरेंद्र']

करुणा ! तुमने अच्छी तरह सोचा है ? यह ऐसा विषय नहीं है कि जिसका जवाब तत्क्षण दिया जा सके ।

"जी हाँ, मैंने खूब सोचा है । तुम नाहक चिन्ता मत करो । मेरी बात पर विश्वास करो ।"

"वाह ! विश्वास क्यों नहीं तुम्हारी बात पर ! लेकिन मैं यही जानना चाहता हूँ कि तुमने खूब विचार करके ही यह कहा है कि नही ।"

"तुम्हारी तरह हर छोटीसी बात के लिये माथा पच्ची करना मैं नहीं जानती । फिर इसी में इतना विचार करने की मेरे ख्याल से कोई बात ही नहीं है ।" करुणा की यह बात सुनकर उसका पति शास्त्री चुप हो गया । इस पर और बहस करना उसने अनावश्यक समझा ।

प्रतिक्षण करुणा की आँखों के सामने उसके देवर का ही चेहरा नाचने लगा । करुणापूर्ण उस दीन मुख को देखकर करुणा का हृदय द्रवीभूत हो रहा था । उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि वास्तव में इसमें सोचने की कोई बात ही नहीं । वह महसूस कर रही थी कि मानो वह उसका कर्तव्य है जो भगवान ने उसे सौंपा है और कैसे भी हो उसको पूरा करना चाहिये ।

लेकिन शास्त्री को न जाने क्यों भय हो रहा था, कि उन दोनों से इसका भार उठाते बनेगा या नहीं । वह अच्छी तरह जानता है कि करुणा की बातें उसके दिल की गहराई से निकली हैं, लेकिन डर उसे इस बात का है कि वह अपनी बात पर दृढ़ रह सकेगी कि नहीं ।

दूसरे दिन सूर्योदय के पहले वे दोनों रवाना हुए । घर के सामने गाड़ी खड़ी थी । करुणा गाड़ी में जा बैठी । उसके साथ उसका देवर भी था ! करुणा के पीछे उसका पति आया अपने पिता शर्माजी के साथ । शर्माजी की आँखों से अश्रु धारा बह रही थी । मुँह से बात नहीं निकलती थी । चित्रवत् उनकी ओर देखते खड़े रह गये । आखिर किसी तरह उमड़ते हुए दुःख को रोककर वे इतना ही बोल सके, "आज से तुम ही उसके माँ-बाप— ।" आगे उनका कंठ रुद्ध हो गया ।

शास्त्री ने उनको दिलासा देते हुए कहा—"पिताजी, चिन्ता न कीजिये। कोई डर नहीं। अब हमको विदा दीजिये ।" यह कहकर वह भी गाड़ी में बैठा ! साहस करके करुणा ने भी कहा, । आप कोई चिंता न करे । भगवान की कृपा से सब ठीक हो जावेगा । हमें विदा दीजिए ।" करुणा की बातों में शर्माजी को अभयदान की ध्वनि सुनाई दी । करुणा की बातों से उनका दुःख हवा में बादलों की तरह हलका हो गया और विलीन भी। एक क्षण के लिए उनके चेहरे पर संतोष की रेखाएँ ।खिंच गईं ।

देखते ही देखते गाड़ी आँखों से ओझल हो गई । शर्माजी का शरीर तो वहीं खड़ा था । लेकिन मन गाड़ी के साथ भाग रहा था । उनके हृदय में एक तूफान मचा हुआ था । उनका मन व्यग्र हो रहा था कि फिर उसको कब देख सकूँगा । वे अपना अंधकारमय भविष्य देखकर डर रहे थे कि दिन कटेंगें कैसे ? दिल में दुःख का समुद्र उमड़ रहा था । इस तूफान में दूर क्षितिज से दौड़ी आती हुई उषा की अरुण कांति ने उनको कुछ शांति प्रदान की । स्वस्थ होकर उनका मन कहने लगा, "हाँ ठीक है । मेरे वस में क्या है ? मैं तो एक ऐसा असहाय दर्शक मात्र हूँ, जो खड़े-खड़े देखते रहने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकता । यह तो नाटक की भाँति ऐसा चलता ही रहेगा ।" अपनी असहायता को महसूस कर मनुष्य को विपत्ति के समय एक प्रकार का संतोष तथा शांति लाभ होता है । उसे एक प्रकार की सांत्वना मिलती है।

१९५०

यही सांत्वना अब शर्मजी को अपनी असहायता का ज्ञान होने पर मिली। इस विवशता में उन्होंने कुछ मानसिक शांति पाई।

“बाबूजी ! अकेले क्यों खड़े हैं ?” तानपूरे के तार को छेड़ते हुए बूढ़े बैरागीने पूछा।

“सब चले गये भाई” आँखे पोंछकर चबूतरे पर बैठते हुए उन्होंने कहा।

२

“देखा तुमने ! हमारे मधु के साँप* के कान हैं (बड़े तेज कान हैं) चींटी की पद-चाप भी सुन लेता है।”

“हाँ हाँ, उसकी जीभ भी बहुत पतली है। हम जो शब्द बोलते हैं उसको वह आसानी से दुहरा देता है।”

“इतना ही नहीं। उसकी पहचानने की शक्ति भी बड़ी तेज है। बाहर चप्पल की आवाज हुई कि ‘भाई’ कहकर उछलने लगता है। घर के किसी भी कोने में रहूँ, मेरी चूड़ियों की आवाज़ सुनकर ‘भाभी, भाभी,’ कहता है।”

“अरे ! देखो हमारी आवाज सुनकर अभी जाग पड़ा है।” कहते हुए शास्त्री ने झूले में से मधु को उठा लिया। मधु अपने नन्हें नन्हें हाथों से शास्त्री के मुँह और नाक वगैरा टटोलने लगा। शास्त्री को दया आ गई। मधु का मुँह चूमकर उसने पूछा, “यह कौन है ? मधु ?”

खिलखिला कर हंसते हुए मधु ने प्यार भरी बोली में कहा, “भाभी”। उसके गालों पर नन्हें गड्ढे, उसके हंसमुख चेहरे को विचित्र सुन्दरता प्रदान कर रहे थे। झट करुणा ने उसे अपनी गोद में लिया और उसके कोमल घुँघराले बालों को संवारने लगी। उसके चाँद से सुन्दर मुख की ओर देख कर करुणा की आँखों में पानी भर आया। यह देख कर शास्त्री ने कहा, “यह क्या करुणा !” करुणा ने आँखें पोछते हुए कहा, “कुछ नहीं। मुझे तो यही दुःख होता है कि भगवान की इस पर इतनी छोटी नज़र क्यों पड़ी !” अवरुद्ध कंठ से शास्त्री ने कहा, “हाँ, मुझे भी इसी का दुःख होता है। जिसने इतना सुन्दर मुख दिया उसने दोनों आँखें देने में क्यों कृपणता की ? उसको इस पर इतनी भी दया क्यों नहीं आई।”

करुणा की गोद में किलकारियाँ मारते हुए मधु की समझ में नहीं आया कि भाई और भाभी क्या बातें कर रहे हैं ! इसलिये अपनी नन्हीं हथेलियों से ताली बजाते हुए गाने लगा “लाम लाम” (राम, राम), उसको उस संगीत में इतना अलौकिक आनंद मिला कि वह बिलकुल उसमें लीन हो गया। उसकी तन्मयता देख कर करुणा को अपार हर्ष हुआ। वह कहने लगी, “देखिए ! हमारे मधु के कंठ की मधुरता ! मेरा ख्याल है गंधर्वों का भी कंठ इतना मधुर तथा श्राव्य नहीं होता। गाओ मधु ! तू कितना अच्छा गाता है !” मधु और भी तन्मयता के साथ ‘लाम् लाम् चीता लाम्” गाने लगा। शास्त्री को विश्वास हुआ कि उसका छोटा भाई बड़ा होकर अच्छा गवैया बनेगा। उसने कहा, “करुणा। अगर भगवान की कृपा दृष्टि रही तो हमारा मधु प्रसिद्ध गवैया बनेगा।”

‘ज़रूर ! इतना अन्याय करके भगवान क्या इसकी इतनी भलाई भी नहीं करेगा !’ आशा भरे स्वर में करुणा ने कहा।

मधु के भाग्य में अंधा होना ही नहीं; बल्कि पवित्र मातृ-स्नेह से वंचित होना भी लिखा था। शास्त्री के बाद बाईस वर्षोपरांत उसकी माता गर्भवती हुई और मधु को जन्म देकर करुणामय भगवान की आज्ञा के अनुसार उसके पालन-पोषण का भार करुणा पर छोड़ कर उसने सदा के लिये आँखें बंद कर लीं। ससुराल में आकर एक साल भी पूरा नहीं हुआ कि इस प्रकार अपने अंधे देवर को पालने का भार करुणा पर आ पड़ा जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

३

रात का सोने का समय था। अपने बिस्तर पर बैठ कर मधु ऊँचे स्वर में गाने लगा, “रघुपति राघव राजाराम।” अपने कमरे में बैठा हुआ शास्त्री कोई पुस्तक पढ़ रहा था। मधु की गान-मधुरता ने मानों उसको आकृष्ट कर लिया और वह आकर

---

*आन्ध्र देश में तेज़ कानों को सांप के कान कहते हैं। यह एक कहावत है—उसके साँप के कान हैं। यानी साँप की श्रवण शक्ति के समान तेज़ श्रवण शक्ति। —सं०

उसके बिस्तर पर बैठ गया। भाई की आहट पाकर मधु चुप हो गया। शास्त्री ने उसकी ठोड़ी पकड़ कर कहा, “देखो मधु! मुझ से क्यों डरते हो? गाओ। डर काहे का? मैं भी सुनूँगा। गाओ न?” लेकिन शर्म से झुका हुआ मधु का सिर न ऊपर उठा और न उसके होंठ ही हिले। इतने में रसोई घर में से आकर करुणा ने मधु के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, “गाओ! मधु! तुम बहुत अच्छे हो।” भाभी का आसरा पाकर मधु गाने लगा “पतित पावन सीताराम”।

सुनते सुनते शास्त्री की आँखें भींग गईं। मधु के स्वर में एक अव्यक्त वेदना तथा करुणा भरी हुई थी जो श्रोताओं के हृदयों को मसोस डालती थी। साथ ही इस व्यथा को भुलानेवाली मधुरता भी थी उसमें।

गाना समाप्त होने के बाद करुणा आँखें पोंछती हुई वहाँ से चली गयी। शास्त्री वहीं बैठ कर शून्य दृष्टि से मधु की ओर देखने लगा। उसकी समझ में नहीं आता कि अपने अंधे छोटे भाई का जीवन कैसे संभाला जाय? वह उसे छोड़ भी नहीं सकता। किसी तरह उसका भार संभालना ही होगा। अपने बूढ़े बाप को मधु की कोई चिंता न होने पावे यही उसका कर्त्तव्य है। उसने अपने पिताजी को वचन भी दिया था, अब उसे निभाना ही चाहिये। मधु की दृष्टि हीनता को उसे कोई जीविका दिला कर पूरा करना चाहिये। लेकिन उसके लिये यह संभव हो कैसे सकेगा? अपने अल्प वेतन से पारिवारिक खर्च चलाना भी मुश्किल हो जाता है। ऐसी हालत में अपने छोटे भाई के लिये क्या कर सकेगा? सोचते सोचते उसे भविष्य अंधकार मय दीख पड़ा।

इतने में मधु सो गया। शास्त्री उसे चादर उढ़ाकर चला गया।

“करुणा! मधु को पाठशाला में भर्ती करावें क्या?” शास्त्री ने पूछा।

“ज़रूर”

“लेकिन, सोचता हूँ कि वह हमारी शक्ति के बाहर की बात होगी।”

“जो भी हो! उसे पढ़ाना ही चाहिये। भगवान ने उसके प्रति अन्याय किया ही है, तो क्या हम भी उसे निराधार छोड़ दें।”

“तो क्या करने को कहती हो,”

“हम भले ही एक ही जून खायें, लेकिन मधू को स्कूल में भर्ती करना होगा। पढ़ाई के साथ साथ संगीत भी सिखलाना होगा।”

“तो कल ही भर्ती करावें?”

“हाँ देर काहे की। मधु संगीत सीख जाय तो, मैं समझती हूँ कि वह अद्वितीय गायक होगा। उसके कंठ खोलते ही न जाने क्यों शरीर सिहर उठता है।”

“हाँ करुणा! वह जो भी गाता है उसमें हृदय को पिघलाने वाली क़सक भरी होती है; मानों अपने प्रति अन्याय करने वाले भगवान से कुछ दीनता-भरी-विनयकर रहा हो वह! अच्छा तो कलसे ही वह स्कूल में जावेगा।”

४

मधु जिस पाठशाला में भर्ती हुआ उसमें अंधे, बहरे और गूँगे लड़के ही पढ़ते थे। एक दिन मधु अपनी क्लास में एक बड़ी किताब के सामने बैठा अपनी उंगलियों से अक्षर टटोलते हुए पुस्तक पढ़ रहा था। इतने में एक अंधी लड़की वहाँ आई। उसने मधु का कोमल कंठ सुनकर मुस्कराकर पूछा, क्यों जी! तुम्हारा नाम क्या है?”

“मेरा नाम! मधुसुदन”

“इतना बड़ा नाम! क्या केवल “मधु” अच्छा नहीं होगा? मैं तुम्हें ऐसा कहूँ तो तुम्हें गुस्सा तो नहीं आयगा”

“गुस्सा काहे का। सब लोग मुझे मधु ही कहते हैं।”

“तो मधु! मैं भी तुम्हें ऐसे ही बुलाऊँगी।”

“हाँ, तो अपना नाम नहीं बताओगी?”

“तुम्हारे पूछे बग़ैर क्यों बताऊँ?”

“अच्छा! तो अब पूछता हूँ; बताओ न?”

“तो सुनो, मेरा नाम है ‘सुधा’”

“कितना प्यारा नाम है”

· · ·“और तुम्हारा . . .?”

“अपने नामके सम्बन्ध में मैं क्या कहूँ?”

“तुम्हारा नाम भी प्यारा है। बहुत प्यारा है।”

“अच्छा! तो सुधा बताओ! तुम्हारा गांव कहाँ है?”

१९५०

"मुझे मालूम नहीं।"

"तुम्हारे माँ-बाप कहाँ हैं ?"

"वह भी मुझे मालूम नहीं।"

"तो तुम हमेशा यहीं रहती हो !"

"हाँ"

इतने में संगीत-अध्यापक आये। उन्होंने पूछाः-—

"मधु! कल का गानेका अभ्यास कर लिया!"

"जी हाँ"

मधु पर संगीत अध्यापक का विशेष प्रेम था। मधु गाने लगा और सुधा वॉयलिन बजाने लगी। गाना होने के बाद मधु के सिरपर हाथ फेरते हुए अध्यापक ने कहा, "इतना सुरीला कंठ बड़े भाग्य से ही मिलता है। भगवान चाहें तो तुम अच्छे गायक बनोगे।" यह कह कर अध्यापक चले गये।

ये बातें सुनकर सुधा मारे खुशी के उछल पड़ी। अपनी तारीफ़ सुनकर भी उसे इतनी खुशी न होती। लेकिन शरारत से वह बोली, "वाह जी मास्टर साहब की तारीफ सुनकर फूले नहीं समाते हो? मधु ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया "जाने दो! तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारी वॉयलन-वादन-कला की प्रशंसा मैं करूँगा।"

५

"रो मत मेरे लाल! तुम्हारे पिताजी के आने का समय हो गया। आते ही होंगे। ग्लाक्सो लायेंगे। चुप रह बेटा" करुणा अपने बेटे को गोद में उठाकर उसे पुचकार रही थी लेकिन उस बच्चे को इन बातों से संतोष कहाँ और भी ज़ोर से रोने लगा। करुणा ने उसे झूले में लिटाकर सुलाने की कोशिश की। बच्चे का पेट 'लीवर' की बीमारी से फूला हुआ था, और हाथ-पैर कमजोर हो गये थे। इस पर इतनी देर तक ज़ोरों से रोने और असहनीय क्षुधा से पीड़ित होने के कारण बच्चा बदहवास होकर सो गया।

बड़ी देर के बाद-शास्त्री खाली हाथों घर लौट आया। करुणा को अपना मुँह नहीं दिखा सका। घर में दीप टिम टिमा रहा था, अंतिम साँसे लेने वाले प्राणी की भाँति। करुणा ने पति की ओर देखा और बिना कुछ कहे ही सब बातें समझ गई। असह्य वेदना से उसका हृदय जलने लगा। हृदय की ग्लानि रोके नहीं रुकती। दिल की इस परिस्थिति में करुणा को पति पर बहुत क्रोध हुआ। वह समझने लगी उसके और उसके पुत्र के प्रति भारी अन्याय किया जा रहा है। वह अपने क्रोध को रोक नहीं सकी, लेकिन उबल भी न सकी। अतः बड़े प्रयत्न से क्रोध को रोककर इतना ही बोली, "तो अब क्या करने को कहते हैं ?"

शास्त्री धीमी आवाज़ से बोला, "क्या करूं महिने का अंत है। कहीं कर्ज नहीं मिला। सब से पूछकर देख लिया।

करुणा रुष्टता से बोली, "बच्चा भूख से तड़प-तडपकर बदहवास होकर सो गया। मेरी जान को रो रहा है। ऐसों को संतान ही काहे दी ? बला टल जाती यदि पैदा होते ही मर जाता।"

शास्त्री को आश्चर्य हुआ। बोला, "तुम क्या कह रही हो करुणा ?"

"क्यों, झूठ थोड़े ही कह रही हूं। बच्चे को खिलाना-पिलाना भी हमको मुश्किल हो जाता है। मेरी बात गलत है ? सचमुच इसके जीने से किसका क्या बनता बिगड़ता है ?"

"क्या तुम मुझे कसाई समझ रही हो जो अपने बेटे को अपने ही हाथों मार डालूँ। क्या मैं उसको तुमसे कम प्यार करता हूँ?"

"क्या फायदा है? जब कि उसकी जान बचाने के लिये हाथ आगे नहीं बढ़ते ?"

"अब क्या करूँ ? बताओ तो मुझ से क्या गलती हुई।"

"आप जो चाहे कीजिए। प्यार हो तो उपाय आप ही आप निकल आवेगा। "जहाँ चाह वहाँ राह।" इतना कह कर करुणा अंदर चली गई।"

शास्त्री विचार-मग्न हो गया। कहीं कर्ज़ नहीं मिला। महिने का अंत होने के कारण सबको रुपये की तंगी है। अपने पुत्र के दूध के लिये हाथ में एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। अगर पिताजी को लिखें तो—। गाँव में दस्तावेज़ बेच कर वे अपने दिन काटते हैं। वे कहाँ से भेजेंगे ? अगर कुछ पूछें भी तो अपना पेट काट कर भेजेंगे। इतना ही नहीं; बड़े व्यथित भी होंगे। तो अब इस संकट से बचने का उपाय ही क्या ? शास्त्री किसी निर्णय

पर पहुँच नहीं सका। झूले में बदहवास सोए हुए बच्चे के ऊपर झुक कर देखा। आँखों से आँसू बहने लगे।

"चावल लाना भूल गये क्या? करुणा ने अंदर से पूछा।"

"भूला तो नहीं, लेकिन—" शास्त्री की ज़बान रुक गई।

"तो वेतन मिलने तक उपवास ही करना है? करुणा ने पूछा। उसकी आवाज़ काँप रही थी। शास्त्री से कोई जवाब देते नहीं बना। वैसे ही सिर झुका कर खड़ा रह गया।

अंदर से करुणा क्रोध के मारे जल रही थी। इतने दिनों से किसी तरह उसने सब तकलीफें बड़े धैर्य के साथ झेलीं।

कभी पति के ख़िलाफ़ कुछ नहीं बोली। लेकिन आज—जब अपने कलेजे का टुकड़ा अपनी ही आँखों के सामने भूख के मारे तड़प रहा है तब—उससे रहा नहीं गया। हृदय में से दुःख और क्रोध उमड़ उमड़कर आ रहे थे। काँपती हुई आवाज़ और धधकते हुए हृदय से वह बोली, "अब मुझ से सहा नहीं जाता प्रभो।"

ये बातें शास्त्री के दिल में सुई की भाँति चुभ गयीं। उसने कहा, "मुझ जैसे अभागे की पत्नी बनने से तुमको ये तकलीफें उठानी ही पड़ेंगी।" यह बात सुनते ही करुणा चौंक पड़ी। कठोरता से उसने जवाब दिया, "अवश्यंभावी कष्टों का सामना करने में मैं पीछे नहीं हटती। मैं तो इतना ही कहती हूँ कि अपने हाथों मोल लिए हुए कष्टों का सामना करने की मुझ में क्षमता नहीं है।" इतना कह कर उसने शास्त्री की ओर देखा। उसके काटो तो खून नहीं। "तो ये सब तकलीफें मैंने अपने हाथों मोल ली हैं? क्या तुम ऐसे निष्ठुर और पाषाण-हृदयी की कल्पना भी कर सकती हो, जो अपने इकलौते बेटे और प्यारी पत्नी को भूखों मार डाले। क्या सचमुच तुम समझ रही हो कि इस सब का कारण में ही हूँ?" बड़े आवेश में आकर उसने पूछा। इन सब प्रश्नों के उत्तर के रूप में करुणा ने एक प्रश्न पूछा, क्या आगे पीछे देखने की ज़रूरत नहीं है। शास्त्री ने क्रोध से पूछा, "तुम्हारा मतलब?" "मतलब तो कुछ नहीं। मैं आपको याद दिलाती हूँ कि हम दोनों के पोषण का भार भी आपके ही ऊपर है। बस।" करुणा ने कहा।

इस बात ने शास्त्री के दिल पर जैसे चाबुक मार दिया! वह तिलमिला उठा। अवाक् खड़ा रह गया। थोड़ी देर में संभल कर उसने समझा कि करुणा का मतलब क्या है और वह किस लिये उसे दोषी ठहराती है। लेकिन इसी करुणा ने उस दिन इतनी हिम्मत बंधायी? इसी ने अपने अंधे भाई को स्कूल में भर्ती कराने पर बहुत ज़ोर दिया। यह ख्याल आते ही शास्त्री का सिर चकराने लगा।

"करुणा! तुम्हें याद नहीं कि—" शास्त्री की बात काट कर करुणा तीक्ष्ण स्वर से कहने लगी, "आप जो पूछना चाहते हैं वह मैं जानती हूँ। मैं मानती हूँ कि मैंने ही कहा कि मधु का सारा भार हम उठावेंगे। उसको विद्या और संगीत सिखलावेंगे। लेकिन अपने कलेजे के टुकड़े को भूखों मार कर नहीं। क्या अपने ही हाथों अपने घर में आग लगाऊँगी? मैं कोई देवी थोड़े ही हूँ। मैं भी मामूली स्त्री हूँ।"

शास्त्री आश्चर्य से अवाक् रह गया। करुणा फिर कहने लगी, "हमको मिलनेवाले मुठी भर चाँदी के टुकड़ों में आधा देवर को भेज दें तो हम यहाँ खायें क्या? आप जो कुछ भी करें, इस महीने से वैसा भेजने नहीं दूँगी।"

"क्या करोगी?"

"करूँगी क्या! हम दोनों मिल कर किसी कुएँ में डूब मरेंगे। और क्या करेंगे?"

इतने में दरवाजे पर खट-खट की आवाज़ हुई। "भाभी! दरवाज़ा खोलो ना!" मधु की आवाज़ सुन पड़ी। करुणा ने जल्दी से दरवाज़ा खोला। भाभी के हाथ पकड़ कर मधु टटोलते हुए अंदर आया।

"कौन लाया है तुम्हें मधु? आये कितनी देर हुई?" आश्चर्य से शास्त्री ने पूछा।

"गोपालम् के साथ आया। मुझे यहाँ पहुँचा कर वह चला गया। बहुत देर हुई।"

"तो बुलाया क्यों नहीं?" करुणा ने पूछा।

"कई बार बुलाया। दरवाजा खट-खटाया।" मधु ने कहा। यह जवाब सुनकर करुणा का शरीर

पानी पानी हो गया। चेहरा पीला पड़ गया। मारे शर्म के सिर झुक गया। वह मधु की ओर देख न सकी। "जरूर उसने हम दोनों की बात-चीत सुनी होगी। सुनकर कितना व्यथित होगा ? उसका मन बहुत कोमल है, जो ऐसी कड़ुवी बातें सुन नहीं सकता। लेकिन मेरी बातें भी झूठ नहीं थीं। तो भी इनको सुन कर उसका मन कितना दुखी हो रहा होगा।" ये विचार बिजली की भांति करुणा के मन-में दौड़ गये और वह इस वेदना से जली जा रही थीं।

मधु धीरे धीरे टटोलते हुए झूले के पास गया और सोए हुए बच्चे पर हाथ फेरा। झट चीख उठा, "भाभी," करुणा लपककर आयी और झूले में से बच्चे को निकालकर "हाय मेरे लाल "कहकर धड़ाम से गिर पड़ी और रोने लगी।

शास्त्री मूर्तिवत् खड़ा रह गया।

"बाबू !* कहकर मधु जमीन पर गिरकर रोने लगा। उसकी आँखो से आँसुओं की धार फूट पड़ी।

करुणा का दुःख देखकर वहाँ का वातावरण द्रवित होने लगा। बड़ी देर तक बच्चे की लाश गोद में रखकर करुणा रोती रही। इस हृदय विदारक दुःख के साथ यह वेदना भी कि मधु का दिल कितना घायल हुआ होगा उसके हृदय को जगने लगी।

६

"मधू !" अकले यहाँ क्यों हो बैठे ?—बोलते थीं नहीं—"सुधा ने उसके हाथ अपने हाथों में ले कर पूछा।

"कुछ नहीं सुधा ! मैं जा रहा हूँ।"

"कहाँ ?" उत्सुकता से सुधा ने पूछा।

"कहीं भी हो। मेरा जीवन सब के लिये भार है।"

"सब के लिए ! नहीं। यह भूल है।"

"भूल नहीं, सच है सुधा। मेरे लिये मेरे भैया-भाभी कितनी तकलीफें उठाते हैं। उनकी मैं कुछ भी मदद कर नहीं सकता। क्या करूँ मैं जी कर ! काश। मेरे पैदा होते ही मेरी माता ने मुझे मार डाला होता !

"छिः ऐसी बातें मत कहो।"

"नहीं सुधा ! मैं सच कह रहा हूँ। कल तुम मुझे देख न पाओगी।"

"मैं भी देखूँगी कहाँ जाते हो ? सब स कह दूँगी। हाथ पैर बँधवा दूँगी।"

"तुम्हारा भला हो सुधा। मुझे जाने दो। किसी से मत कहो। मैं अब अपने भाई और भाभी का मुँह नहीं देख सकता। मुझे जाने दो। मेरे जाने से किसी को कोई चिंता या तकलीफ नहीं होगी।"

"मधू ! तुम भूलते हो। क्या तुम समझते हो किसी को दुःख नहीं होगा।" कहते कहते सुधा की अंधी आँखों से पानी की दो बूँदे मधु के हाथों पर पड़ीं। मधु ने सुधा के चेहरे पर हाथ फेरा। उसके उड़ते हुए बाल ठीक किए। अज्ञात आनंद से विह्वल हो गया।

"मैं भी आऊँगी" सुधा ने कहा।

"कहाँ ! "मधु ने आश्चर्य से पूछा।

"तुम जहाँ जाओगे वहीं।"

"नहीं। मैं ऐंसी जगह जा रहा हूँ जहाँ से फिर आना न हो।"

"छिः ऐसी बातें मुंह से न निकालना। इतने कायर क्यों बनते हो ? हम दोनों कहीं चले जायँगे। तुम गाओ। मैं 'फिडिल' बजाऊंगी। गाते गाते देश देशान्तर घूमेंगे। हमारे पेट के लिए कोई कमी नही होगी।" सुधाने कहा। ये बातें सुन कर मधु की जान में जान आई। उसके हृदय में अनेक आशाएँ जाग उठीं। उसने कहा, "तो ठीक है सुधा ! कल ही चलेंगे।"

७

"क्यों जी ! मधु का कुछ पता मिला ? न जाने उसका क्या हुआ हो ?" भीगीं आँखें पोंछते हुए करुणा ने कहा। मधु के जाने के बाद करुणा को हमेशा उसी की याद आती रहती है। एक तो नौ महीने की गर्भवती और उसपर यह चिंता !

तलाश करते करते शास्त्री निराश हो गया। रोज की तरह उलटे पाँव लौट आ कर उसने निराशा और वेदना भरी आवाज़ से कहा, "कहीं पता नहीं मिला मधू का। सारी खोज बेकार गई। कौन मुँह ले कर पिताजी के पास जाऊँ ?"

"सब भार हमारे ऊपर रखा। मैं मुझ कलमुँही ने उसे कितनी दिल जली बातें सुनाई ! वह कितना व्यथित हुआ होगा। मुझे उचित दंड दीजिये भगवान् ! नहीं तो मुझे शांति नहीं मिलेगी।"

---

* आन्ध्र में बच्चो के लिए प्यार और बड़ों के लिए आदर का संबोधन है।

“इसमें तुम्हारा क्या अपराध है करुणा ! क्यों इतनी चिंता करती हो ? ”

“मेरा नहीं तो और किसका अपराध है ! बेचारा न जाने कहाँ होगा !

“कहीं भी हो उसको कोई तकलीफ नहीं होगी। भगवान ही उसकी रक्षा करेगा । ”

“मै तो यही चाहती हूँ । भगवान से यही प्रार्थना करती हूँ कि वह सुखी रहे । ” इतना कहकर करुणा कराहने लगी शास्त्री जल्दी दोड़कर दाई को ले आया । ”

रात भर करुणा को बड़ी तकलीफ हुई । पौ फटते फटते प्रसव हुआ । शिशु को नहलाते हुए दाई ने चिल्ला कर कहा, “बच्चे के आँखें नहीं हैं माँजी।”

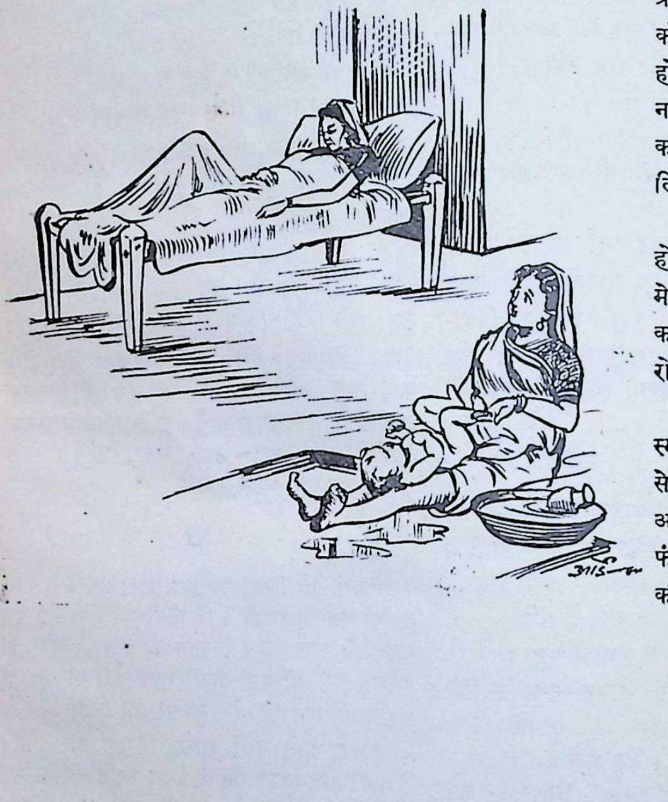

यह बात सुनकर करुणा मूर्छित हो गई । सौरी के बाहर से शास्त्री चिल्लाया, “क्या ! बच्चे के आँखे नही हैं ? करुणा की जान का तो खतरा नहीं है ? ”

“नहीं ! ” दाई ने कहा ।

बड़ी देर के बाद करुणा ने होश संभाला । ‘हाय भगवान, कैसा प्रायश्चित्त है ! ’ कहकर ज़ोर ज़ोरसे रोने लगी । कमरे के बाहर शास्त्री अंधे शिशु और तिल मिलाती हुई माता की ओर देखता हुआ मूर्तिवत खड़ा रह गया । कुछ क्षणों के बाद सँभल कर सांत्वना देने लगा, “दुःख मत करो करुणा ! इसे प्रायश्चत क्यों समझें । भगवान का प्रसाद समझ कर स्वीकार करें । रोने से क्या होगा । हमारे वश में कुछ नहीं है । कहते हुए कपड़े से अपना मुह ढाँप लिया ।

“रोकर कुछ नहीं होगा । लेकिन न रोने से मेरा हृदय फट जायगा” कहकर करुणा फूटफूटकर रोने लगी ।

पति पत्नी मधु का स्मरण करके अज्ञात वेदन से कुम्हला गये । किसी अदृश्य शक्ति के हाथों में फंसी हुई कठपुतील्या की तरह तड़पने लगे ।

मराठी कृष्णायन :

श्रीकृष्ण-जन्म प्रकरण

[श्री पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र-विरचित "कृष्णायन" से]

[अनुवादक :—श्री शं० वा० शास्त्री]

(मूल)	(मराठी अनुवाद)
चौपाई : प्रविशत तनु गुरु जगत-विधाता	येतां उदरीं विश्व-विधाता
भयी असह्य भार कृश माता ।	भार असह्य होत, कृश माता ।
पीत कान्ति युत देह प्रकाशी	पींत कान्तियुत देह प्रकाशे
उष:काल जनु शशि निशि भासी ।	उषःकालिं जणुं निशि·शशि भासे ।
सुमरि सुमरि निज शिशुन विनाशा	स्मर-स्मरुनी निज तनुज-विनाशा
विलपति अंब, न उर उल्लासा ।	विलपत अंब, न वरि उल्हासा ।
जानि हरिहु जननी दुख-भारा	जननी-दुःख-भार हरि जाणे
स्वप्न मिस सूचेउ अवतारा ।	निज अवतार सुचवि स्वप्नाने ।
सोवत निशि निरखेउ महतारी	निद्रित रात्रिं पाहि तैं माता
वामन दिव्य वेष मनहारी ।	वामन दिव्य-वेष सुखदाता ।
घृत चक्रादिक वैष्णव लांछन	धृत चक्रादिक वैष्णव लांछन
करत सतर्क गर्भ संरक्षण ।	करित सतर्क गर्भ-संरक्षण ।
बहुरि विलोकेउ आपुहिं माता	पुनरपि स्वयें माय बघताहे
खगपति-पृष्ठ गगन-पथ जाता ।	खगपति-पृष्ठिं गगनिं जाता हे ।
जागि प्रभात जननि बड़ भागी	उठुनि प्रभातिं जननि भाग्याची
कहेउ स्वप्न स्वामिहिं अनुरागी ।	वर्णी पतिस कथा स्वप्नाची ।
दोहा : पुलकित सुनतहि शूर-सुत,	पुलकित परिसुनि शौरिसुत,
कहत तियहिं सनमानि	वदे करुनि सन्मान,—
"त्रेता येही स्वप्न शुभ,	"त्रेतायुगिं शुभ स्वप्न हें,
देखे दशरथ-रानि ॥	कौसल्येसहि जाण ॥
सोरठा : गर्भ माहिं यहि बार,	गर्भामधिं तव आज,
विष्णु तेज श्री राम सम,	विष्णु-तेज श्रीरामसम
आये जगदाधार,	आला जगदाधार,
होई है विफल न नभगिरा" ॥	होइ न निष्फल नभ गिरा" ॥
चौ० : सुनि पति-वचन हृदय भरि आवा	पति-वच श्रवुनि भरुनि उर आलें
आनँद वारि विलोचन छावा ।	आनंदाश्रु-पूर्ण दृग झाले ।
बीतेउ क्रम क्रम दोहद त्रासा	दोहद-त्रास क्रमें गत झाला
पुष्ट सर्व अवयव तन भासा ।	अवयव पुष्ट, तेज देहाला ।
जीर्ण पत्र जनु लता विहायी	जीर्ण पत्र जणुं लता त्यजोनी
शोभित नव मनोज्ञ पुनि पायी ।	नव लेण्याने दिसे उठोनी ।

चहति दिवस निशि गर्भ दुरावा
घटा ओट चह चन्द्र छिपावा ।
गयेउ वसन्त, ग्रीष्म ऋतु आयी
विगत ग्रीष्म, वर्षा नियरायीं ।
मास भाद्रपद, पख अँधियारा
रोहिणि नखत, दिवस बुधवारा ।
तिथि अष्टमी, समय अधराता
कृष्ण जन्म जग-मंगल-दाता ।
गगन घटा गरजत घिरि आयी
धरणि बाल रोदन ध्वनि छायी ।
तड़कि तड़कि उत नभ तड़ित,
भरेउ अखंड प्रकाश,
इत महितल शिशु शशिवदन,
कीन्हेउ निशितम नाश ॥
छायी ज्योति अपार,
धरा गगन एकहि भये,
भयेउ कृष्ण-अवतार,
अखिल विश्व उद्धार हित ॥
देखी दंपति बालक शोभा
रूप अनूप प्राण मन लोभा ।
हृदय-कुमुद शशिमुख लखि फूला
कंस नृशंस सुमिरि उर शूला ।
जनु मज्जत सुरसरि भव तरणी
बोरेउ कोउ सहसा वैतरणी ।
जननि अधीर सवेग उसासू
झर झर झरे विलोचन आँसू ।
छिन्न हृदय जनु मौक्तिक हारा
झरि मुक्ताफल रहे अपारा ।
विलपति, कहति, "विपति पति ! टारहु
करहु युक्ति कछु तनय उबारहु ।
छल बल नाथ ! अबहिं कछु कीजै
सुत पहुँचाय अनत कहुं दीजै ।
नाहिंत निश्चय कंस सँहारहि
होत प्रभात वत्स मम मारहि ।"
धाय धाय पति पद परी,
पुनि पुनि तिय अकुलानि,
निराधार वसुदेव उर,
बाढ़ी पल पल ग्लानि ॥
सोचत,-धिक पुरुषत्व !
धिक् जन्महु नृपकुल विमल

निशि दिनि पाहि गर्भ लपवाया
घनां आड चंद्रा दडवाया ।
जात वसंत, ग्रीष्म ऋतु आला
विगत ग्रीष्म, वर्षा मग आला ।
भाद्र मास, नक्षत्र रोहिणी
कृष्ण पक्ष, बुधवार त्या दिनीं ।
अष्टमीस, अर्धी निशि जातां
कृष्ण जन्म, जग-मंगल-दाता ।
नभिं घनघटा गर्जती झाली
बाल रुदन-ध्वनिमय महि झाली ।
चमचमुनी तिथ नभिं तडित्,
भरी अखंड प्रकाश,
इथ महितालिं शिशु-शशि-वदन,
करी निशा-तम-नाश ।
उजळे ज्योति अपार,
धरा गगन एकचि बने
होइ कृष्ण-अवतार,
अखिल विश्व उद्धारणा ।
दंपति पाहत, बालक शोभे
रूप अनूप बघुनि मन लोभे ।
मुख-शशि हृदय-कुमद-दल खुलवी
कंस-स्मृति उरिं शूल उपजवी ।
जणुं मज्जत सुरसरिमाधिं तरणी
गिळत तिजसि सहसा वैतरणी ।
जननि अधीर, श्वास जड़ भारी
झर-झर झिरपत लोचन-वारी ।
मौक्तिक हार छिन्न जणुं झाले
मुक्ता-मणि अनिवार गळाले ।
विलपे, वदे "विपत्तिस टाळा
करा काहिं, बाळा सांभाळा ।
युक्ति, शक्तिच्या वरुनि उपाया
अन्य सुरक्षित स्थलिं झणिं न्याया ।
ना तरि कंस निश्चयें मारी
प्रातोदयिं वत्सा संहारी ।"
पुन्हां पुन्हां चरणावरी,
घे लोळण वसु-राणि
निराधार वसुदेव-मणि,
प्रति पळिं वाढे ग्लानि ॥
चिंती, धिक् पुरुषत्व,
धिक् जन्महि नृपकुलिं विमल

१९५०

धिक् विद्या वर्चस्व,
सकत रच्छि नहिं निज सुतहु ॥
जबहिं सहठ कछु युक्ति विचारत
दुर्गम दुर्ग देखि हिय हारत ।
तेहि पै निशि घन गरजत घोरा
दामिनि दमकति शब्द कठोरा ।
धीरज वारिधि सहज गँभीरा
बाष्प कंठ वसुदेव अधीरा ॥
दंपति सुत विलोक बिलखाहीं
एकहि एक लखहिं, पछिताहीं ।
विनु अवलंब मातु पितु जाना
सहसा प्रकट भये भगवाना ।
निमिषहि महँ शिशु वेष दुरावा
रूप चतुर्भुज प्रभु प्रकटावा ।
जलधर देह, कमल दल लोचन
विद्युत वसन, भाल गोरोचन ।
कौस्तुभ कंठ, वक्ष वनमाला
उर श्रीवत्स-इन्दु-द्युति-जाला ।
शिर किरीट, कुंडल श्रवण,
ब्रह्मसूत्र कटिधाम
शंख, चक्र, वारिज, गदा,
चतुर्हस्त अभिराम ।

धिक् विद्या, वर्चस्व,
शकें रक्षुं ना निज सुतहि ॥
निश्चय करुनि युक्ति जैं चिंती
खचविति धैर्या दुर्गम भिंती ।
पुन्हां रात्र ! गर्जन मेघांचें
कडकड करित दामिनी नाचे ।
सहज गंभीर निधी धैर्याचा
शौरि अधीर, स्फुरे ना वाचा ।
दंपति सुता पाहती, रडती
विलपत एक दुज्यातें बघती ।
निरवलंब उभयां जाणोनी
दावी रूप प्रभू प्रगटोनी ।
निमिषामाधिं शिशु-वेष निमाला
धारि चतुर्भुज प्रभु रूपाला ।
जल धर-देह, कमल-दल-लोचन
विद्युत् वसन, भालि गोरोचन ।
कौस्तुभ कंठिं, वक्षिं वनमाला
उरिं श्रीवत्स इन्दु-द्युति ज्याला ।
शिरिं किरीट, कुंडल श्रवणिं,
ब्रह्म सूत्र कटि धाम
शंख, चक्र, वारिज, गदा,
चतुर्हस्तिं अभिराम ॥

* * *

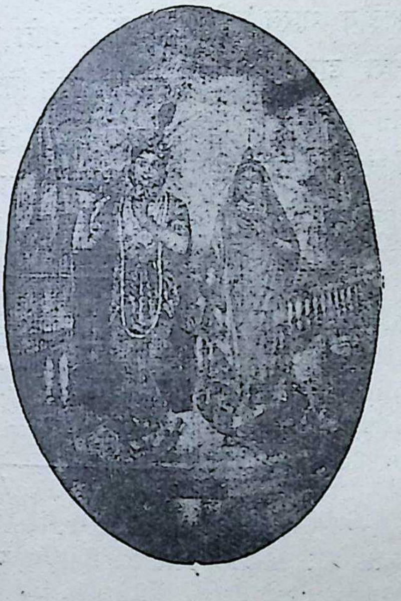

सोवियट रूस और भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध

[**श्री महादेव साहा पी० एच० डी०**]

रूस और भारत का सम्बन्ध बहुत पुराना है। भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों की बात तो अलग रही, इतिहास के कितने ही अध्यापकों तक को यह मालूम नहीं कि वास्को डी गामा (१४९८) के करीब तीन वर्ष पहिले ही मास्को के निकट के त्वेर (आधुनिक कालिनिन) शहर का निवासी अफनासियन निकितिन नामक एक व्यापारी वोल्गा नदी, कैस्पियन समुद्र के रास्ते ईरान होता हुआ १४६६ में विजयनगर साम्राज्य के बीदर नगर में पहुंचा था। व्यापार और घुमक्कड़ी के लिये वह कई साल तक हिन्दुस्तान में रह कर (१४६६-७२) अपने देश लौट गया। रूसी भाषा में "खोजदेनिये जात्रि-मोरया अफनासिया निकितिन" तीन समुद्रों के पार अफनासियत निकितिन की यात्रा:[1] नामक अपनी पुस्तक में यह यात्रा विवरण छोड़ गया है, जो तत्कालीन भारत की कितनी ही बातों पर प्रकाश डालती है। रूसी भाषा के अलावा किसी दूसरी भाषा में उसकी पूरी पुस्तक नहीं मिलती। लन्दन की हेमल्यूट सोसायटी से आर. एच़. मेजर साहब[2] ने १८५७ में निकितिन की यात्रा का एक संक्षिप्त विवरण प्रकाशित कराया था। सिवेल साहब[3] ने अपनी पुस्तक विजयनगर दी फारगट्न एम्पायर में निकितिन को चार पन्ने (१०२-५) दिये हैं। गद्जी[4] ने अपनी पुस्तक में निकितिन की यात्रा का संक्षिप्त विवरण दिया है। लेनपूल ने अपनी 'मिडिवल इंडिया' में और पर्यटकों के विषय में लिखा है, उनकी भारत यात्रा संबंधी पुस्तकों की विस्तृत सूची भी दी है, पर निकितिन वहां नहीं है। हिन्दी में इस पुस्तक का अनुवाद परमावश्यक है।

व्यापार संबंध

तैमूरलंग के वंशज बाबर को रूस का ज्ञान था। रूस से व्यापार संबंध स्थापित करने के लिये उसने अपने दूत ख्वाजा हुसेन को मास्को भेजा था। लेकिन रूसी शासकों के मंगोलों के प्रति संदेह के कारण बाबर को सफलता नहीं मिली। प्रथम पीटर को सामन्ती रूस में पश्चिमी युरूप के वैज्ञानिक अनुसंधानों और विचारों का लाने वाला कहा जाता है। स्थल मार्ग से हिन्दुस्तान आने में असफल हो उसका एक दूत सेम्योन मलिनिकोक १६९५ ई० सूरत में उतर कर औरंगजेब से मिला था। मलिनिकोक ने आगरा दिल्ली भी देखी थी लेकिन इस देश से लौटते हुए वह

ग्रंथसूची

[1] "Khozdenie za tri morya Afanasiya Nikitin" (Journey Across the Three seas of Afanasiya Nikitin) in Polonoe sobranie russkikh letopisey" (Full Collection of Russian Cronicles) Vol. VI, pp. 330-58.

[2] India in the Fifteenth Century Edited with introduction by R. H. Major, London, the Hakluyt Society, 1857.

[3] R. Sewell, Vijayanagar : The forgotten Empire, pp. 102-105.

[4] N. K. Gudzy — A History of Early Russian Literature, New York, 1949.

१९५०

शेरवान में मर गया और उसके साथ उसका यात्रा संबंधी रोजनामचा भी जाता रहा। दोनों देशों में सरकारी तौर से संबंध भले ही न रहा हो; पर हिन्दुस्तानी व्यापारी मास्को के पास तक पहुंच जाया करते थे। १६२५ ई० में वोल्गा और कैस्पियन समुद्र के संगम पर बसे हुए अस्त्राखान नगर में हिन्दुस्तानियों के लिये एक कारवां सराय बनाई गई थी। पिछली शताब्दी के अंत और इस शताब्दी के पहिले दशाब्द में कैले (फ्रांस) से कलकत्ता तक की दश वर्षों से पैदल यात्रा करने वाले स्वामी विवेकानन्द के मंझले भाई महेन्द्रनाथ दत्त दक्षिणी रूस के रास्ते आये थे। इन्होंने कैस्पियन समुद्र को दो दो बार पार किया था और अस्त्राखान के भारतीयों के बारे में पता भी लगाया था। उस समय वहां कितने ही हिन्दुस्तानी मौजूद थे। वाकू के ज्वालामाई हिन्दू तीर्थ की बात कितने ही लोगों को मालूम है। मिडनाईट बाक्स इन पर्सिया के अमरीकी व्यापारी पर्यटक ने पिछली शताब्दी में लिखा था कि वाकू में ज्वालामाई के मंदिर में कितने ही साधु रहा करते थे और वहां के प्रधान पुजारी पंजाबी साधु हुआ करते थे।

प्रसिद्ध अभिनेता

लेकिन रूस और हिन्दुस्तान के सांस्कृतिक परिचय का आरम्भ १७७५ ई० के पहिले न हो सका। मास्को के निकट वासे यारोस्लावल प्रान्त की राजधानी उसी नाम की नगरी बहुत प्राचीन है। निकितिन के त्वेर ही की तरह वोल्गा के तीर पर बसी है। इसी नगर का रहने वाला प्रसिद्ध गायक और अभिनेता गेरासिम लेबेदेफ[५] लन्दन के रूसी दूतावास में नौकर था। वह ज़बरदस्त घुमक्कड़ भी था। दूतावास की नौकरी छोड़ कर उसने ईस्ट इंडिया कम्पनी की क्लर्क की नौकरी ले ली और इस तरह १७७५ ई० में कलकत्ते के फोर्ट विलियम किले में जा उतरा। कम्पनी की नौकरी भी वह अधिक दिनों तक न कर सका। नौकरी करते हुए संस्कृत, हिन्दुस्तानी, बंगला आदि भाषायें उसने अच्छी तरह सीख लीं और कुछ वर्षों के बाद कम्पनी की नौकरी छोड़ कर लाल बाजार में अपनी नाट्यशाला खोली। अभिनय में खुद भाग न लेने पर भी उसने वर्षों अपनी नाट्यशाला चलाई, अभिनय के लिये कितने ही विदेशी नाटकों का बंगला में अनुवाद किया। कलकत्ते में २५ वर्ष (१७७५-१७९९) रहने के बाद वह लन्दन लौट गया और वहां से १८०१ ई० में चाल्ह हिन्दुस्तानी का व्यावर व्याकरण[६] नामक पुस्तक प्रकाशित कराई।

---

[५] लेबेदेफ के कामों का वर्णन जिन पुस्तकों में मिलता है उनमें कुछ निम्नलिखित हैं—(क) H. N. Das Gupta — History of the Bengali Style (in four Volumes) Vol. I; (ख) व्रजेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय—वंगीय नाट्यशाला, इतिहास; (ग) Linguistic Survey of India, Vol. IX (part I), pp. 10 and 18 (1916); (घ) Adelung — Mithridales, I. 185. (1806).

[६] Collaquial Grammar of Hindusthani (London, 1801). इस पुस्तक का पूरा नाम इस प्रकार है—

A grammar of the pure and mixed East Indian Dialects, with Dialogues affixed spoken in all the Eastern Countries, methodically arranged at Calcutta, according to the Brahmenian System,

(See page 818 column 1)

इसमें उसने इन्डो यूरोपीय भाषाओं के संबंध प्रवर्तक एशियाटिक सोसाईटियों की माता बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के संस्थापक सर विलियम जोन्स (१७४६-१७९४ ई०) की कितनी ही बातों का खंडन किया। रूस की तत्कालीन राजधानी पटिर्सबुर्ग लौट कर जार अलेक्जेन्डर के हुक्म से १८०५ में पहिली बार उसने नागरी टाइप ढाले। १८०५ में हिन्दू धर्म और आचार व्यवहार पर उसकी पुस्तक७ रूसी भाषा में प्रकाशित हुई।

बंगाल एशियाटिक सोसायटी

प्लासी की लड़ाई के बाद हिन्दुस्तान में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव मजबूत होने लगी और १७६५ में बंगाल बिहार की दीवानी कम्पनी के हाथों में आई। दक्षिण और पश्चिम में कम्पनी का राज फैलने लगा। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने दूसरे यूरोपीय प्रतिद्वन्दियों को पछाड़ दिया। अब उसने इस बात को भलीभांति समझ लिया कि उसे भारत में शासन भी करना है। इसीलिये १७७३ ई० में रेगुलेटिंग एक्ट पास हुआ। १७७२ में, वारेनहेस्टिंग गवर्नर हो कर आया। १७८१ ई० में उसने चार्ल्स विलकिन्स से भगवद् गीता का अंग्रेजी में अनुवाद कराया। १७८८ ई० में रूसी विद्वान नोवीकोफ ने इसी से एक रूसी अनुवाद प्रकाशित कराया। १७८३ ई० में सर विलियम जोन्स कलकत्ते की सुप्रीम कोर्ट के जज बनाये गये और उसी साल के अंत में वह कलकत्ता पहुंचे। जनवरी १७८४ में एशियाटिक सोसायटियों की माता कलकत्ते की बंगाल एशियाटिक सोसायटी की नींव पड़ी।

१७८९ में जोन्स का शकुन्तला का अनुवाद८ प्रकाशित हुआ। १७९० में लन्दन से भी इसका एक संस्करण प्रकाशित हुआ। रूसी भारतीय ज्ञान के कितने प्यासे थे इसका पता इसी बात से चल जाता है कि १७९२ में याने अंग्रेजी अनुवाद के प्रकाशित होने के दो वर्षों के अंदर ही मास्को से रूसी अनुवाद भी निकला।

इसके साथ इक्के दुक्के रूसी विद्वान रूसी में संस्कृत साहित्य के अनूठे ग्रंथों का अनुवाद और रूसी तथा संस्कृत भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते रहे।

१८११ तक फ्रांज बप्प ने इन्डो यूरोपीय भाषाओं के आपसी संबंध को भाषा विज्ञान-

---

(cotinued from page 817 column 2)

of the Sanscrit Language. Comprehending literal explanations of the compouud words, and circumlocutory phrases, necessary for the attainment of the Indian of that language, etc. Calculated for the use of Europeans. With remarks on the Errors in former Grammars and Dialogues of the Mixed Dialects called Moorishor Moors, written by different Europeans; together with a Refutation of the Assertions of Sir William Jones, respecting the Sanscrit Alphabet; and several specimens of oriental poetry, published in the Asiatic Researches, London, 1801.

[७] Investigations into the Habits and Customs of the Indian People (in Russ.), St. Petersburg, 1805.

[८] Sacontala or The Fatal Ring An Indian Drama by Calidas : Translated from the original Sanskrit and Prakrit, Calcutta : Printed and sold by Joseph Cooper for the benefit of Insolvent Debtors. MDCCLXXXIX (1789).

१९५०

के आधार पर सुप्रतिष्ठित कर दिया था। रूसी विद्वानों ने इस दिशा में कुछ पहिले से ही काम शुरू कर दिया था। इसका फल यह है कि १८११ में रूसी और संस्कृत के तुलनात्मक अध्ययन पर पीटर्सबुर्ग से एक पुस्तक[1] रूसी और फ्रान्सीसी में प्रकाशित हुई। १७८४ में बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की स्थापना के फलस्वरूप एशियाई देशों और विशेषकर के भारतीय साहित्य आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यूरोप के विद्वान बेचैन हो उठे। पिछली शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में यूरोप के कितने ही देशों में एशियाई ज्ञान के सम्बन्ध में अनुसंधान करने के लिए विद्वत् परिषदें स्थापित हुईं। इनमें रूस की एशियाटिक ऐकेडमी सबसे पहले स्थापित हुई थी। १८९० में सेंट पीटर्सबुर्ग में इसकी नींव डालते हुए इसके प्रतिष्ठाताओं ने ऐलान किया——

> In the last years of the eighteenth century there has been a transformation in the attitude to human civilization .... The accidental reasons for this revolution are the success of the British in India, the mastery on the part of German scholars of the sacred language of the Brahmans, the works of Zoroaster and the text of the Bible, and also the foundation of the Asiatic Society at Calcutta.

इसके बाद पेरिस में सोसायते एशियातिक (१८२२), ब्रिटिश एशियाटिक सोसायटी १८२४, जर्मन प्राच्यविद्या अनुसंधान-शाला (१८४९ के बाद) बनी और रूस तक सारे यूरोप में भारततत्व के पठन-पाठन तथा खोज की धूम सी मच गई।

---

[1] Relations between Sanskrit and Russian Language (St. Petersburg, 1811).

* * *

आवाज़ उसी की होगी; पहचानो !

[श्री रमानाथ अवस्थी]

दिल डूब गया है जिसका मेरे दिलमें, आवाज़ उसी की होगी पहचानो।
जिसके जीवन की रात मुझे चन्द्रमा बनाती है,
जिसके सोने के लिये रात आकाश सजाती है,
वह मुझे प्यार से चूम-चूम कर जीने को समझाता,
मैं उसी रूप के राग स्वरों में गूँथ-गूँथ कर गाता,
मेरी आँखों में जिसके अश्रु चमकते, मैं उसी रूप का ताज मुझे पहचानो।
जिसके चरणों की धूल राह पर फूल बिछाती है,
जिसके नयनों की प्यास मुझे बरसात बनाती है,
मैं उसे बाहु में बाँध काल से प्यार माँगता हूँ,
मैं उसे जीत कर आज उसी से हार माँगता हूँ,
मैं जिसका हूँ वह दूर नहीं है मुझ से, तकदीर उसी की है मेरी पहचानो।
जो हँस-हँस मेरे दुर्दिन मेरे सीने में भरता है,
जो मुझे हृदय में भर कर अपनी मंजिल तय करता है,
मैं उसे बुलाता लिख-लिख पाती सुधियों के पंखों पर,
मैं उसे उठाकर चलता अपनी कविता के कन्धों पर,
जिसका यौवन काँटों को सेज समझता, मैं उसी जवानी का जबाब पहचानो।
जिसके प्यासे स्वर नभ पर बादल को रह रह भरमाते,
जिसके आँसू पत्थर के दिल को भी रोना सिखलाते,
मैं उन नयनों के गीत धरा के दिल पर लिखता जाता,
मैं सूखे-सूखे स्वर से गीले दिल के गीत सुनाता,
दिल बोल रहा है जिसका मेरे स्वर से, मैं उसी हृदय की साँस मुझे पहचानो।

ध्वनि एकांकी:—

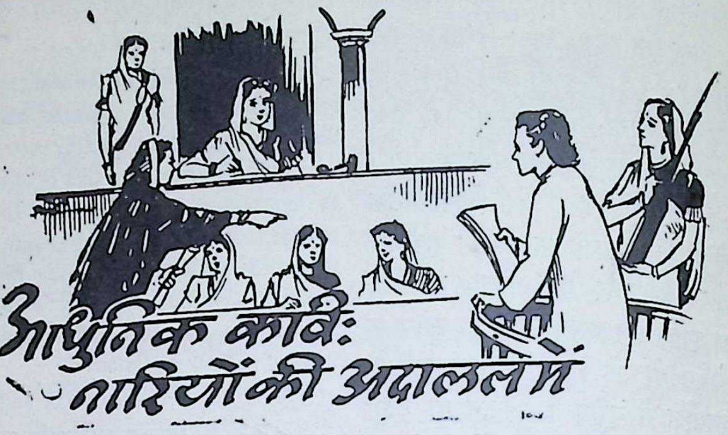

आधुनिक कवि: नारियों की अदालत में

[श्री. कुमारी तारा पोद्दार]

शान्ति का आभास देने वाला संगीत, फिर नगाड़े पर धमाधम चोट . . . फिर एक स्त्री की कड़कती आवाज़:—अड़बड़ गंज के निवासियो ! आज न्यायालय में सनसनी खेज मुकदमें पेश होने वाले हैं । देश के प्रसिद्ध कविगण न्यायाधीश श्रीमती पन्ना देवी के सामने उपस्थित किये जावेंगे । प्रथा के अनुसार सरकारी वकील श्री नथुनीदेवी के आरोपों के पश्चात आरोपियों को अवसर दिया जायगा कि वे अपनी सफाई स्वयं दें । देश की हुकूमत का निर्णय यह है कि यह मामला हर नागरिक के जीवन से गहरा सम्बन्ध रखता है । इस लिये बेरोक टोक हर स्त्री अपने पति और बालबच्चों को लेकर न्यायालय में उपस्थित हो सकती है...डम...डम...डम...

[दृश्य परिवर्तन]

न्यायालय—कमरे में झुंड, धक्कम धुक्की का असर ।

(उपस्थित व्यक्तियों की आपस में फुसफुसाहट...वह देखो वह हैं सरकारी वकील श्री नथुनी देवी ।)

दूसरा—शः शः शः चुप . . . वह तो देखो चपरासी लाल पगड़ी और सुनहरा बेल्ट बाँधे ।

पहला—चपरासी ? या चपरासिन ?

दूसरा—ऐ . . . जोर से नहीं . . . जानते नहीं स्त्री-राज्य है . . . नारी की अदालत है यह ।

पहला—देखो न क्या ग़ज़ब किया है इन औरतों ने . . . बेचारे पुरुष दुबके हुए खड़े हैं एक ओर ।

दूसरा—और कैसी लहराती घूम रहीं हैं ये देवियाँ ।

पहला—जैसे . . .

(डेक्स पर डंडे की फट फट आवाज . . . न्यायालय में स्तब्धता)

चपरासी—स्त्री की आवाज़ . . . ख़ामोश ख़ामोश । शान्तता रखिये । डेक्स पर फिर डंडे की आवाज़ । न्यायाधीश पन्ना देवी का गंभीर स्वर: आज की कानूनी कारवाई शुरू हो . . . वकील नथुनी देवी ।

पन्ना—आज का पहिला मुजरिम पेश हो ।

नथुनी—आज का पहला मुजरिम है, अडबड गंज का प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि श्री छायाचंद 'आत्मेश' ।

चपरासी—मिस्टर छायाचन्द आत्मेश हाज़िर है . . . मिस्टर छायाचन्द !

छायाचंद—हाजिर है । मिलेडी ।

नथुनी—मेम्बराने जूरी और मिलेडी . . . ये क्षीणकाय, चश्माधारी, अस्त व्यस्त लंबे से बाल, ढीली धोती, और कुर्ता पहिने हुए व्यक्ति मिस्टर छायाचंद 'आत्मेश' हैं । ध्यान से

१९५०

देखिये, इस नन्हीं सी देह में विनाश की कितनी क्षमता है। इन पर अनेक आराप हैं। एक स्त्री समाज के आत्महनन का आरोप है। किस प्रकार सो अभी आपको म समझाय देती हूं। (जनता की उपस्थिति का और चलबिचल का आभास)

चपरासी—खामोश, शान्त रहिये।

पन्ना—नथुनी देवी, आगे चलिये।

नथुनी—यस मिलेडी . . . ये हैं छायाचंद 'आत्मेश' आप रहस्यवादी कवि कहलाने का दावा करते हैं। पर इनके कार्य हैं, अपने रबड़ छंदों से कविता-कामिनी का गला घोंटना। शिथिल भावनाओं से जनता को उलझन में डालना और समस्त दुर्बलताओं का आरोप स्त्री-वग पर करना।

(जनता से एक आवाज़ सरासर झूठ है . . . सरासर गलत है।)

चपरासी—शान्त रहिये।

पन्ना—बयान जारी रहे।

नथुनी—यस मिलेडी . . . तो मेम्बराने जूरी आपके सामने मैं यह सिद्ध करना चाहती हूँ कि किस तरह ये कवि महोदय स्त्री की आत्मा का हनन करते हैं। इसके पहिले आपके सामने रहस्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि रखना आवश्यक है। रहस्यवादी कवि ये मानते हैं कि आत्मा परमात्मा से बिछुड़ गई है, इस लिये संसार में मनुष्य दुखी रहता है।

एक आदमी—इसमें आपको क्या आपत्ति है?

नथुनी—आपत्ति यह है कि ये कवि अपने आपको स्त्री रूप में देखा करते हैं और जीवन के संघर्ष में जितनी कमज़ोरी अपने में पाते हैं, उस सबका आरोप स्त्री का स्वांग लेकर ही किया करते हैं जग को गालियाँ ही देना है, तो स्त्री का रूप लेकर क्यों? अपनी दुर्बलता ही प्रकट करनी है तो विरहणी का ही रूप स्त्री को क्यों दिया जाय? उदाहरण के लिये ये पंक्तियाँ लीजिये। —

चली चलो सखि दूर, बजाती
हृत्तंत्री के टूटे तार
छूट जगत के इन जालों से
सार्थक बने प्रेम व्यापार।

इस प्रकार निष्क्रिय बनाने वाले प्रेम की दुहाई देना, जगत से भागने का सतत उपदेश, सारे नुष्य समाज का नुकसान है। इसके सिवा अश्लील भावनाओं का प्रदर्शन भी आत्मा परमात्मा के मिलन की आड़ में करना स्त्री-मर्यादा का अपमान है। स्त्रियाँ इसे कभी बरदाश्त नहीं करेंगी . . . मेम्बराने जूरी, 'आत्मेश' की रचनायें स्त्रियों को दुर्बल हृदय बना रही हैं इस लिये इनको कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाना चाहिये।

न्ना—अपराधी 'आत्मेश', तुम कुछ कहना चाहते हो?

आत्मेश—आज्ञा हो।

न्ना—आज्ञा है, कहो।

आत्मेश—निवेदन यह है कि, मैंने नवीन तो कुछ नहीं किया। रहस्यवाद की परम्परा का ही अनुकरण किया है। दोष तो परम्परा चलानेवालों का है, मैं निर्दोष हूँ।

नथुनी—कवियों के हृदय होता है, बुद्धि नहीं . . . नहीं तो आपकी दलील का थोथापन आप स्वयं जान लेते। कवि 'आत्मेश', रहस्यवाद की परम्परा जिसने चलाई वे मर खप गये, उन्हें अदालत में नहीं लाया जा सकता। जब वे बातें चल गईं तब चल गईं और अब आपने गलती की, तो बेटे को अधिकार नहीं मिलता कि वह भी वही गलती करे। अब समय बदला है। आवश्यकतायें बदली हैं, ज़माने का तकाज़ा बदला है। दावा हमें परम्परा से नहीं, बनाये रखनेवालों से है।

(जनता से प्रशंसा सूचक ध्वनियाँ)

आत्मेश—लेकिन मिलेडी, पुरुष भी तो मेरी कविता पर आपत्ति कर सकते थे। उन्होंने तो हमेशा प्रशंसा की। यहाँ तक कि मेरी पिछली रचना पर मुझे 'रविरश्मि' पुरस्कार भी मिला है।

नथुनी—यह कोई बचाव नहीं। यदि पुरुषों की अक्ल मारी गई है, तो स्त्रियाँ भी उनका अंधानुकरण करें ऐसी कोई बात नहीं। आज बहुत से देशों का संचालन पुरुष कर रहे हैं। जैसे, हिन्दुस्तान को लीजिये, और देखिये उस देश में कितनी अव्यवस्था और अशान्ति है। हमारे नगर की सुव्यवस्था आज विश्व की ईर्षा का विषय है। आज नारी ही पुरुषों को मार्ग दिखा सकती है—बचा सकती है।

आत्मेश—इसी लिये. . .तो मैंने सारे काव्य और सृष्टि को स्त्री-मय कर दिया, फिर आपका रोष क्यों?

नथुनी—वाक्पटु हो। पर काव्य दुर्बल स्त्री-मय किया तो यह अपकार है, उपकार नहीं।

आत्मेश—कोमलता स्त्री का आभूषण है।

नथुनी—बकवास है। इसी पाखंड ने स्त्री को कहीं का नहीं रखा है।

सुनिये—**यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर,**
तो वह नारी उर के भीतर।

वह कोमलता नहीं, कवि को तो यह रूप प्रिय होना चाहिए।. . .

हंसती, बतलाती सहोदरा-सी जन-जन से।
यौवन का स्वास्थ्य झलकता-सा. . .आतपसा तन से॥
कुल-वधू-सुलभ संरक्षणता से हो वंचित।
निज बंधन खो, तुमने स्वतंत्रता की अर्जित॥
स्त्री नहीं, आज मानवी बन गई तुम निश्चित।
जिसके प्रिय अंगों को छू अनिलातप पुलकित॥

(वाह वाह की ध्वनि)

आत्मेश—परन्तु रहस्यवाद की रचनाओं में तो कोमलतम भावनाओं का प्राधान्य आवश्यक है।

नथुनी—जी नहीं, आपकी धारणाओं में परिवर्तन आवश्यक है। आज स्त्री को आपने खिलौना समझ लिया है।

युग युग की बंदिनी, देह की कारा में निज सीमित।
वह अदृश्य अस्पृश्य विश्व को गृहपशु-सी ही जीवित॥

जनता—वाह! वाह! और कहिये। (डंडे की आवाज़)

चपरासी—शान्त रहिये! शान्त रहिये।

पन्ना—यह कवि-सम्मेलन नहीं, अदालत है। कृपया अपने को संयत रखें। अपराधी आत्मेश! तुम्हें कुछ कहना है?

आत्मेश—जी, कुछ नहीं। सिर्फ यही कि भविष्य में अपना सुधार करूँगा।

पन्ना—यह पश्चात्ताप प्रकट कर तुम कोर्ट की दया के अधिकारी हो गये। तुम्हें केवल १०० रुपया जुर्माना और सख्त ताकीद के साथ छोड़ा जाता है। (जनता में वाह वाह)

चपरासी—खामोश!

पन्ना—दूसरा मुजरिम पेश हो।

चपरासी—श्रीमान अन्तोदय 'कपीश' हाज़िर हैं! श्रीमान अन्तोदय कपीश हाज़िर हैं?

अन्तोदय—हाज़िर है। (ये कवि भिनभिनाते हैं)

नथुनी—ये हैं अन्तोदयजी कपीश। इनके नायक की तरह इनके काम भी बे-सिर-पैर के रहते हैं। उदाहरण के लिये. . .

१९५०

झिल-मिलाती धूप या घन गंभीर छाया-सी है।
देह स्वर्णिम लता-सी या किरण काया-सी है॥
चम्पक कलीसी देह लतिका चन्द्रमुख अम्भोज है।
सूखे लहरियों की चढ़ी कुछ बाढ़ भी है, ओज है॥

अर्थ इनसे पूछा जाय तो ऐसा समझाते हैं कि स्वयं नहीं समझते, पर शब्द देखिये तो सीधा नखशिख वर्णन-सा रहता है। इनकी कवितायें मस्तिष्क को उलझन में डालनेवाली और अनैतिक वाद को प्रोत्साहन देनेवाली होती हैं।

पन्ना—आपको कुछ कहना है अन्तोदय 'कपीश' जी?

अन्तोदय—मैं जो लिखता हूँ, वह समझता नहीं, और जो समझता हूँ वह लिखता नहीं। मेरी रचनाऐं समुद्र का गर्जन और अमा की नीरवता के साथ विचरतीं हैं। आप मेरा मूल्य नहीं जानतीं यह मेरा नहीं आपका दुर्भाग्य है।

[जनता में हलचल]

नथुनी—आप अदालत का अपमान कर रहे हैं।

अन्तोदय—मेरे शब्दकोष में मान अपमान शब्द नहीं हैं। मैं इन दोनों से परे हूँ।

पन्ना—आपको अपनी रचनाओं के पक्ष में कुछ कहना है।

अन्तोदय—जो कहना है, वह कह नहीं सकता...जो नहीं कहना है...

पन्ना—बस बस, अदालत का व्यर्थ समय बरबाद हो रहा है। आपको तुरंत देश निकाले की सज़ा दी जाती है। क्यों कि न हम आप के योग्य न आप हमारे। आप कहीं अन्यत्र जाकर कवितायें कीजिये।

[जनता में हंसी]

पन्ना—ख़ामोश! तीसरा मुजरिम?

चपरासी—निर्मलचंद धावक हाज़िर है। निर्मलचंद धावक हाजिर है।

निर्मल—हाजिर है।

नथुनी—यह आज का आख़िरी मुकदमा है, और सबसे ज्यादा सनसनीपूर्ण। धावक हमारे नगर के प्रगतिवादी कवि हैं। स्त्रियों में देवी की क्षमता है, पर आजकल की स्त्री को देवी तो क्या, स्त्री भी मानने को तैयार नहीं। क्योंकि, इनका कहना है...स्त्रियाँ आजकल तितलियाँ बन गईं, फैशन की पुतलियाँ बन गई हैं, मातृत्व को बिसार चुकी हैं। कुछ दिन पूर्व इन्होंने एक कविता लिखी। उसके शब्द और साहित्य देखिये...

'ये परी सी चमचमातीं, मगर धोखा न खाना भाई रे,
थर पे थर पाउडर जमातीं, धोखा देने आई रे,
आजकल की नारी है, इसका दिखावा देख लो,
ऐ बचो इन नारियों से, न बचे तो जोगियों का भेख लो।'

इनकी स्त्री ने आपत्ति की तो इन्होंने अपनी स्त्री का अपमान कर दिया।

(जनता में कई आवाज़ें...हैं, अपमान कर दिया। स्त्री का अपमान स्त्री राज्य में यह भयंकर अपराध...)

पन्ना—आप अपनी सफाई पेश कर सकते हैं, श्रीमान धावक।

धावक—धन्यवाद मिलेडी। इसके पहिले कि, मैं कुछ कहूं...मैं बता देना चाहता हूँ कि हम प्रगतिवादियों का ध्येय जनता को, सुलाना नहीं, जगाना है।

आत्मेरा—वाह! वाह!!

पन्ना—हाजरीन, खामोश रहें। यह रंगमंच नहीं। धावकजी, मतलब की बात संक्षेप में कहिये।

धावक—यस मिलेडी। मैंने जो कविताएँ की हैं उसमें मैंने समाज की बुराइयों को दिखाने का प्रयत्न किया है। प्रगतिवाद की परम्परा के महान कवि पन्तजी ने कहा है—

लहरी सी तुम चपल लालसा, श्वास नर्तित,
तितली सी तुम फूल, फूल पर मंडराती मधुक्षण हित
मार्जारी सी तुम नहीं प्रेम को करतीं आत्मसमर्पण
तुम्हें सुहाता रंग प्रणयधन मद-मद आत्म प्रदर्शन,
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर तितली, मार्जारी,
आधुनिके, तुम नहीं कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी।''

इसी सिलसिले में मैंने आधुनिक फैशन की खिल्ली उड़ाई है।

नथुनी—और सब स्त्रियों को तितली कहा है?

धावक—जी!

नथुनी—अच्छा होता यदि साथ ही पुरुषों की भ्रमरवृत्ति की भी आप खिल्ली उड़ाते, जो स्त्रियों को इन सौंदर्य-प्रसाधनों को अपनाने को बाध्य करती है। आपके ही पन्तजी ने कहा है—

'अंग अंग उसका नर के वासना चिन्ह से मुद्रित
वह नर की छाया, इंगित, संचालित, चिरपद कुंठित।'

अब कहिये दोष किसका है?

धावक—मैं सारे संसार को एक ही समय तो सुधार नहीं सकता।

नथुनी—इसी लिये अभी आप सारी बहादुरी स्त्रियों पर दिखा रहे हैं।

धावक—जी, मैं झूठी प्रशंसा का आदी नहीं।

नथुनी—क्या कहते हैं आप? क्या स्त्रियों में कोई अच्छा गुण दिखाई ही नहीं दिया? आपके ही आदर्श 'पंत' जी कहते हैं. . .यदि स्वर्ग कहीं पृथ्वी पर है, तो वह नारी उर के भीतर।

धावक—जी, ये मतलब नहीं मेरा।

नथुनी—फिर क्या मतलब है आपका? आपके कुछ बंधु हैं. . .जो स्त्री को देवी बनाये देते हैं और आप हैं कि उसे स्त्री मानने को तैयार नहीं। कवि महोदय उसे स्त्री ही रहने दीजिये? न वह देवी है, और न राक्षसी।

धावक—मैंने राक्षसी तो कभी नहीं कहा कविता में उसे. . .

नथुनी—कविता में न सही, वास्तविकता में ही सही। कल आपने अपनी श्रीमतीजी को राक्षसी कहा।

धावक—आह! विश्वासघात और वह भी मेरी ही पत्नी द्वारा। अब ऐसी पत्नी को राक्षसी कहा, तो क्या झूठ कहा?

पन्ना—श्रीमान धावक, आप भूल रहे हैं. . .यह स्त्री-राज्य है, नारी की हुकूमत है, और यहाँ नारी का अपमान भयंकर अपराध माना जाता है। आपको अपनी स्त्री से सबके सामने क्षमा माँगनी होगी, नहीं तो कठोर दंड मिलेगा।

धावक—मैं नहीं मांगूंगा, मैं नहीं मांगूंगा!!

(चारों ओर से आवाज़ें. . .आपको क्षमा मांगनी होगी! मांगनी होगी!!)

धावक—मैं नहीं मांगूंगा, नहीं मांगूंगा, नहीं मांगूंगा!!!

(दृश्य परिवर्तन)

निर्मल—नहीं मांगूंगा, नहीं मांगूंगा. . .

उनकी पत्नी—(हिलाती हुई), क्या नहीं मांगोगे? उठो भी, आठ बज रहे हैं?

निर्मल—नहीं मांगूंगा। ऐं. . .कौन?. . .तुम. . .क्या. . .

पत्नी—मैंने कहा, उठो भी। क्या स्वप्न देख रहे थे?

निर्मल—ऐं. . .हां! हां!! स्वप्न ही होगा।

१९५०

पत्नी—होगा का क्या मतलब ? क्या हुआ ? कुछ कहो भी ?

निर्मल—होता क्या ? कल तुमने कहा था न कि ये कविगण व्यर्थ बिना मतलब लंबी चौड़ी हाँकते चलते हैं; और रात तक हमारा इसी बात पर वादविवाद होता रहा।

पत्नी—वादविवाद होता रहा, कि तुम लड़ते रहे। मुझे बोलने का अवसर ही कहाँ दिया तुमने।

निर्मल—सुनोगी भी ! वही तो. . .रात में स्वप्न में जज बनके मेरी जान ले रही थीं।

पत्नी—क्या कहते हो ?

निर्मल—झूठ नहीं सच कहता हूँ।

पत्नी—तो ऐसा क्या देख डाला ?

निर्मल—आधुनिक कवि नारी की अदालत में।

* * *

अरुणोदय !

[श्री 'यात्री']

: मैथिली कविता ;

जयति अरुणोदय !
जयति सिन्दूरी-किरण !!
भ रहलि रक्ताभ प्राची
अति मुदित मनसँ गवइ छथि भैरवी कत
सव्यसाची
समुद्यत अधिकार-लाभक हेतु
इतर-साधारण क्रमहि सँ मेल जाइछ
आक्रमणकारी तथा दुर्दान्त
छाड़ि कँ अनुताप-अनुनय,, क रहल संघर्ष
निकट अछि पापग्रहक अवसान
निकट अछि पुण्याह
निकट अछि जयमंगलाक विराट आविर्भाव
सफल होएत घटस्थापन आब
फाठि रहलइ ए अन्हारक काँढ़
जयति अरुणोदय, जयति सिन्दूरी-किरण !

: अर्थ :

जय अरुणोदय ! जय सिन्दूरी किरण ! तुम्हारी जय हो। पूरव दिशा में लाली छिटक आई है। कितने ही सव्यसाची (दुर्धर्ष क्रांतिकारी) प्रसन्न मनसे भैरवी-राग में गा रहे है...

अपने अधिकारों को हासिल कर लेने पर आमादा जनसाधारण दिन प्रतिदिन आक्रमणशील तथा दुर्दान्त होता जा रहा है। वह पछतावा और अफसोस करके अपना समय अब नहीं गँवाता, बल्कि संघर्ष कर रहा है।

बुरे ग्रहोंका अंत निकट है।
शुभ दिन समीप है।

जय मंगला (जनवादी विजय) विराट आविर्भाव होने ही वाला है।

अब मंगल घट की प्रतिष्ठा सफल होकर रहेगी। क्योंकि अंधकारका कलेंजा फटा जा रहा है...जय हो इस अरुणोदय की ! सिंन्दूरी किरण, तुम्हारी जय हो !!!

[अनु. श्री ना. न.]

मूमल का गीत

[श्री. कन्हैयालाल सहल]

मूमल का नाम राजस्थान के लोक-साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है । वह लोद्रवा की राजकुमारी थी । उसके सौन्दर्य की महक दूर दूर तक छाई थी । बड़े बड़े राजकुमार उसके साथ विवाह करने के लिए इच्छुक थे । लोद्रवा से ४ मील की दूरी पर उसका महल था जिसे आज भी संसार 'मूमल की मैड़ी' कह कर पुकारता है । महल के चारों ओर काच नदी बहती थी । नदी के किनारे उद्यान था । उसी में मूमल जवानी के मदहोश तराने गा गाकर अपनी आन्तरिक आकुलता को थपकियाँ दिया करती थी ।

मूमल ने एक प्रतिज्ञा की थी । उसके साथ वही विवाह कर सकेगा जो काच नदी को तैर कर पार करले । मूमल भोग विलास की भूखी नहीं थी । उसे चाहिए था एक वीर पति जिसकी ख्याति से दिग दिगन्त गूँज उठे ।

सूमरे सोढों का सामन्त महेन्द्र खेलता—खेलता ऊमरकोट से लोद्रवा आ पहुंचा । वह प्यास के मारे तड़प रहा था, थका था, हारा था । रेगिस्तान की चिलचिलाती धूप में काच नदी के उसपार मूमल का हरा-भरा महल देख कर मूमल से मिलने की तीव्र आकांक्षा से वह व्याकुल हो उठा । काच नदी को तैर कर पार करने वाले राणा पर मूमल ने अपना तन मन निछावर कर दिया ।

महेन्द्र और मूमल—मूमल और महेन्द्र । प्रेम का पौधा पनपने लगा । महेन्द्र ऊमरकोट से दौड़ा आता और मूमल की गोद में सोकर अपनी प्यास बुझाता । मूमल के एक बहिन थी जिसका नाम था सूमल । एक दिन सूमल पुरुष वेश में मूमल के साथ खेल रही थी । थक कर दोनों बहिनें सो गईं, एक दूसरे से लिपट कर।

महेन्द्र आया । उसने देखा--मूमल एक पुरुष के साथ लिपटी सोयी है । वह चौंक उठा । उसने निश्चय किया कि एक बिलासिनी नारी की वासना का कीड़ा वह नहीं बनेगा । वह लौट गया, हमेशा के लिए लौट गया ।

मूमल रोती रही, बिलखती रही । रोते रोते उसकी आंखें सूज गईं किन्तु महेन्द्र न आया। विरह-व्यथा ने मूमल के प्राण ले लिये । महेन्द्र ने जब यह सुना तो वह भी तड़प-तड़प कर मर मिटा । आज भी राजस्थान का नारी-हृदय जब चमचम करते चाँदी के टीलों के उसपार सोये महेन्द्र को मूमल की विरह व्यथा का संदेश भेजता है तो सारा मारू रो पड़ता है। राजस्थान में आज भी मूमल के सौन्दर्य की प्रसिद्धि है । मूमल का निम्नलिखित गीत राजस्थान की साधारण जनता में अत्यन्त प्रचलित है —

काली रे काली काजालिये री रेखड़ी रे
हाँजी रे, कालोड़ी काँठल में चमकै बीजली
म्हांरी वरसाले री मूमल, हालै नी ए आली
जे रै देस

न्हायो मूमले माथाइयो रे मेंट सूं
हाँजी रे कड़ियाँ तो राल्या मूमल केसड़ा
म्हांरी जग मीठी मूमल, हालै नी ए आली
जे रै देस

१९५०

सीसड़लो मूमल रो सरूप नारेल ज्यूं
हाँजी रे, केसड़लां माडेची रा वासिग—नाग ज्यूं
म्हाँरी जग-वाली अे मूमल, हालै नी अे अमराणे रै देस

नाकड़लो मूमल रो खाँडाअिये री धार ज्यूं
हाँजी रे, आँखडल्याँ रँग भीनी री रतना-लियाँ
म्हाँरी अमरत-भर मुमल, हालै नी अे रसीले रै देस

होठडला मूमल रा रेसमिये रे तार ज्यूं
हाँजी रे, दाँतड़ला ऊजल—दंती रा दाड़म-बीज ज्यूँ
म्हाँजी हरियाली अे मूमल, हालै नी अे अमराणे रै देस

पेटड़लो मुमल ए पींपलिये रै पान ज्यूं
हाँजी रे, हिवड़लो मूमल रो साँचे ढ़ालियों
म्हाँरी नाजुकड़ी मूमल, हालै नी अे रसीले रै देस

जाँघडली मूमल री देवलिये रे थंम ज्यूँ
हाँजी रे, साथलड़ी सपीठी पींड़ी पातली
म्हाँजी माड़ेची मूमल, हालै नी अे अलीजे रै देस

जायी रे मूमल इथे लोद्रवाणे रे देस में
हाँजी रे माणी रे मूमल ने राणे महँदरे
म्हाँजी जेसाणी री मूमल हालै नी अे अमराणे रै देस ॥

अर्थात् काले कज्जल की पतली सी रेखा मूमल की सुन्दर आँखों में ऐसी शोभा दे रही है मानो बादलों की घटा में बिजली चमक उठी हो। बरसात के समय प्रेमियों के हृदय में अमृत बरसाने वाली मूमल। प्यारे के देश को चल।

प्रिय-मिलन के लिए मूमल ने मेट से सिर धोकर स्नान किया और अपने लम्बे केश-पाश को सुखाने के लिए कमर तक छितरा लिया। ऐ जगत की मीठी मूमल, प्यारे के देश को चल। मूमल का शीश सुन्दर नारियल जैसी गठन का है और उसका केश पाश वासुकि नाग जैसा है। ऐ जगत की प्यारी मूमल, राणा महेन्द्र के देश अमरकोट को चल।

मूमल की सुन्दर नाक खाँडे की धार की तरह तीखी है और आँखें रसभरी और रतनारी हैं। हे अमृतभरी मूमल, प्यारे के देश को चल।

मूमल के ओंठ रेशम के तार की तरह बारीक, पतले और कोमल हैं। इस उज्वल-दंती प्रेमिका के दाँत दाड़िम के बीज की तरह हैं। पावस की हरियाली की तरह प्रेमियों के हृदय को हरित कर देने वाली मूमल प्रेमी के देश को चल।

मूमल का पेट पीपल के पत्ते की तरह है उसका हृदय-स्थल साँचे में ढला हुआ, सुडौल है ऐ नाजुक मूमल प्रिय के देश को चल।

मूमल की जंघा देवालय के खंम की तरह है; जंघा का निम्न भाग सपाट और पिंडली पतली है। हे माड देश (जैसलमेर) की आदर्श सुन्दरी मूमल, अलबेले प्रियतम के देश को चल।

मूमल लोद्रव देश (जैसलमेर राज्य की प्राचनि राजधानी) में पैदा हुई और राणा महेन्द्र की वह प्रेम की रानी प्रणयिनी बनी।

ऐ जैसलमेर की हमारी मूमल, राणा महेन्द्र के देश को चल।

मूमल का उपाख्यान दूसरे रूप में भी प्रचलित है जो नीचे दिया जाता है ‡

मूमल गूजर राजाओं के वंश में उत्पन्न हुई थी। अपने पिता की मृत्यु के बाद उसने

---

‡ विशेष विवरण के लिए देखिये History of India as told by its owen historians pp. 344-347 (Elliot)

देश पर शासन किया। शहर के सीमान्त-प्रदेश पर उसने एक महल बनवाया था और बड़ी दूर बाहर से लेकर दरवाजे तक मय दानव की-सी कला-चातुरी से एक ऐसी पत्थर की नहर का निर्माण किया गया था जो देखने में बिलकुल पानी से भरी हुई नदी की तरह मालूम पड़ती थी। महल के द्वार पर पत्थर की दा सिंह मूर्तियाँ बनवा कर रखवा दी गई थीं जो इतनी सजीव और भयंकर जान पड़ती थीं कि देखने वाले के होशहवास गुम हो जाते थे। महल के अंदर बैठने के कमरे में सात पलंग रखे हुए थे जो बिलकुल इकसार जान पड़ते थे। इनमें से छः पलंगों के नीचे एक एक-गहरा कुआँ खुदवा दिया गया था और रुई के पहल जैसी हलकी चीज से इस तरह आच्छादित करवा दिया था कि इनमें से किसी पर बैठते ही बैठने वाला सीधा कुएँ में पहुँच जाय। सातवाँ पलंग वस्तुतः बैठने के उपयुक्त था मूमल ने यह घोषणा करवा दी थी कि मैं उसी को पति के रूप में वरण करूँगी जो नदी और सिंहों की परवाह न कर महल तक पहुँचेगा और बैठने के उपयुक्त पलंग पर जा बैठेगा।

एक दिन हमीर सूमर अपने तीन साथियों के साथ शिकार को गया हुआ था। उसके साथ राणा महेन्द्र भी था जो उसके मंत्री का साला होता था। रास्ते में एक जोगी मिला जिसने मूमल के सौन्दर्य की इतनी अधिक प्रशंसा की कि हमीर सूमर के हृदय में मूमल को देखने की इच्छा बलवती हो उठी। हमीर निर्दिष्ट पथ पर चला; किन्तु कृत्रिम नदी को वह असली नदी समझ बैठा और आगे बढने की उसकी हिम्मत न हुई। हमीर के दो साथियों की भी यही हालत हुई। अंत में राणा महेन्द्र मूमल के दर्शन के लिए चला। एक बार तो कृत्रिम नदी को देख कर वह घबराया किन्तु अपने भाले से जब उसने नदी की गहराई का पता लगाना चाहा तो उसे पता लग गया कि नदी का वस्तुतः कोई अस्तित्व ही नहीं है। तुरन्त ही नदी पार कर वह सिंहों तक पहुँचा। सिंहों की तरफ जब अपना भाला उसने फेंका तब सिंहों की पोल खुल गई। तब वह मूमल की एक दासी द्वारा महल के उस कमरे में ले जाया गया जहाँ सातों पलंग रखे हुए थे। सब पलंग एक ही तरह के जान पड़ते थे; महेन्द्र ने सोचा कि यहाँ भी बिना चतुराई किये पार न पड़ेगी। उसका भाला यहाँ भी बड़ा काम आया। उसकी सहायता से उसने पता लगा लिया कि छः पलंग बैठने के उपयुक्त नहीं हैं। तब ७ वें पलंग पर वह जा बैठा। दासी ने मूमल को जाकर सब हाल कह सुनाया। मूमल तुरन्त आई और महेन्द्र को देख कर अत्यन्त हर्षित हुई। मूमल ने महेन्द्र को पति के रूप में वरण कर लिया। महेन्द्र ने वह रात मूमल के महल में ही बिताई। प्रातः काल महेन्द्र अपने साथियों से मिला और सारी घटना उन्हें कह सुनाई। हमीर सूमर ने यह इच्छा प्रकट की कि महेन्द्र उसे भी एक बार मूमल के दर्शन करा दे। राणा महेन्द्र हमीर सूमर को गड़रिये के वेश में अपने साथ ले गया। हमीर सूमर के हृदय में महेन्द्र के पति ईर्ष्या की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने महेन्द्र को कैद कर लिया। जेल के पहरेदारों से राणा महेन्द्र ने दोस्ती कर ली। बडी तेज चलने वाली सांड़िनी (ऊंटिनी) परा

76236

१९५०

सवार होकर वह हर रात मूमल के पास पहुँचता और रातों रात गुप्त रूप से जेल में लौट आता।

एक रात मूमल संयोगवश अपनी बहिन से मिलने के लिए गई हुई थी। पीछे से महेन्द्र आया। मूमल को वहाँ न देख उसके चरित्र पर उसे सन्देह हुआ और वह मूमल से बिना मिले ही लौट गया। उस रात के बाद महेन्द्र ने मूमल के यहाँ जाना भी बन्द कर दिया। महेन्द्र की इस उपेक्षा से बेचारी निर्दोष मूमल बड़ी दुःखी हुई। कारागार से मुक्त होकर महेन्द्र भी अपने देश को चला गया था। तलाश करती करती मूमल महेन्द्र के देश पहुँची। वहीं महेन्द्र के महल के सामने मूमल ने अपना महल बनाया जिससे खिड़की में होकर कभी कभी वह महेन्द्र की झलक पाती रहे किन्तु मूमल अपने प्रिय के दर्शन करने में सफल न हो सकी। अंत में जब मूमल ने देखा कि उसके प्रिय का हृदय उसकी ओर से बिलकुल फिर चुका है तो उसने निराश होकर अपने प्राण त्याग दिये। मूमल की मृत्यु का समाचार जब महेन्द्र के पास पहुँचा और जब उसे पता चला कि वियोग में घुल-घुल कर उसने प्राण त्याग दिये तो महेन्द्र भी अत्यन्त विह्वल और अधीर हो उठा। प्राणों की असह्य पीड़ा का भार अब प्रेमी भी न सह सका। उसके भी प्राण-पखेरू उड़ कर उस लोक को चले गये जहाँ से कोई लौट कर नहीं आता। निर्दोष और हतभागिनी भारतीय नारी! क्या दुःख की संवेदना के लिए ही तेरा जन्म हुआ है? हिन्दी के यशस्वी कवि श्रीमैथिलीशरणगुप्त ने ठीक ही कहा है—

"अविश्वास ही अविश्वास हा!
नारी के प्रति नर का
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं
स्वामी है वह घर का।" (द्वापर)

* * *

"अबला जीवन हाय!
तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और नयनों में पानी।"

देश पर शासन किया। शहर के सीमान्त-प्रदेश पर उसने एक महल बनवाया था और बड़ी दूर बाहर से लेकर दरवाजे तक मय दानव की-सी कला-चातुरी से एक ऐसी पत्थर की नहर का निर्माण किया गया था जो देखने में बिलकुल पानी से भरी हुई नदी की तरह मालूम पड़ती थी। महल के द्वार पर पत्थर की दा सिंह मूर्तियाँ बनवा कर रखवा दी गई थीं जो इतनी सजीव और भयंकर जान पड़ती थीं कि देखने वाले के होशहवास गुम हो जाते थे। महल के अंदर बैठने के कमरे में सात पलंग रखे हुए थे जो बिलकुल इकसार जान पड़ते थे। इनमें से छः पलंगों के नीचे एक एक-गहरा कुआँ खुदवा दिया गया था और रुई के पहल जैसी हलकी चीज से इस तरह आच्छादित करवा दिया था कि इनमें से किसी पर बैठते ही बैठने वाला सीधा कुएँ में पहुँच जाय। सातवाँ पलंग वस्तुतः बैठने के उपयुक्त था मूमल ने यह घोषणा करवा दी थी कि मैं उसी को पति के रूप में वरण करूँगी जो नदी और सिंहों की परवाह न कर महल तक पहुँचेगा और बैठने के उपयुक्त पलंग पर जा बैठेगा।

एक दिन हमीर सूमर अपने तीन साथियों के साथ शिकार को गया हुआ था। उसके साथ राणा महेन्द्र भी था जो उसके मंत्री का साला होता था। रास्ते में एक जोगी मिला जिसने मूमल के सौन्दर्य की इतनी अधिक प्रशंसा की कि हमीर सूमर के हृदय में मूमल को देखने की इच्छा बलवती हो उठी। हमीर निर्दिष्ट पथ पर चला; किन्तु कृत्रिम नदी को वह असली नदी समझ बैठा और आगे बढ़ने की उसकी हिम्मत न हुई। हमीर के दो साथियों की भी यही हालत हुई। अंत में राणा महेन्द्र मूमल के दर्शन के लिए चला। एक बार तो कृत्रिम नदी को देख कर वह घबराया किन्तु अपने भाले से जब उसने नदी की गहराई का पता लगाना चाहा तो उसे पता लग गया कि नदी का वस्तुतः कोई अस्तित्व ही नहीं है। तुरन्त ही नदी पार कर वह सिंहों तक पहुँचा। सिंहों की तरफ जब अपना भाला उसने फेंका तब सिंहों की पोल खुल गई। तब वह मूमल की एक दासी द्वारा महल के उस कमरे में ले जाया गया जहाँ सातों पलंग रखे हुए थे। सब पलंग एक ही तरह के जान पड़ते थे; महेन्द्र ने सोचा कि यहाँ भी बिना चतुराई किये पार न पड़ेगी। उसका भाला यहाँ भी बड़ा काम आया। उसकी सहायता से उसने पता लगा लिया कि छः पलंग बैठने के उपयुक्त नहीं हैं। तब ७ वें पलंग पर वह जा बैठा। दासी ने मूमल को जाकर सब हाल कह सुनाया। मूमल तुरन्त आई और महेन्द्र को देख कर अत्यन्त हर्षित हुई। मूमल ने महेन्द्र को पति के रूप में वरण कर लिया। महेन्द्र ने वह रात मूमल के महल में ही बिताई। प्रातः काल महेन्द्र अपने साथियों से मिला और सारी घटना उन्हें कह सुनाई। हमीर सूमर ने यह इच्छा प्रकट की कि महेन्द्र उसे भी एक बार मूमल के दर्शन करा दे। राणा महेन्द्र हमीर सूमर को गड़रिये के वेश में अपने साथ ले गया। हमीर सूमर के हृदय में महेन्द्र के पति ईर्ष्या की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने महेन्द्र को कैद कर लिया। जेल के पहरेदारों से राणा महेन्द्र ने दोस्ती कर ली। बड़ी तेज चलने वाली सांडिनी (ऊँटिनी) पर

76236

१९५०

सवार होकर वह हर रात मूमल के पास पहुँचता और रातों रात गुप्त रूप से जेल में लौट आता।

एक रात मूमल संयोगवश अपनी बहिन से मिलने के लिए गई हुई थी। पीछे से महेन्द्र आया। मूमल को वहाँ न देख उसके चरित्र पर उसे सन्देह हुआ और वह मूमल से बिना मिले ही लौट गया। उस रात के बाद महेन्द्र ने मूमल के यहाँ जाना भी बन्द कर दिया। महेन्द्र की इस उपेक्षा से बेचारी निर्दोष मूमल बड़ी दुःखी हुई। कारागार से मुक्त होकर महेन्द्र भी अपने देश को चला गया था। तलाश करती करती मूमल महेन्द्र के देश पहुँची। वहीं महेन्द्र के महल के सामने मूमल ने अपना महल बनाया जिससे खिड़की में होकर कभी कभी वह महेन्द्र की झलक पाती रहे किन्तु मूमल अपने प्रिय के दर्शन करने में सफल न हो सकी। अंत में जब मूमल ने देखा कि उसके प्रिय का हृदय उसकी ओर से बिलकुल फिर चुका है तो उसने निराश होकर अपने प्राण त्याग दिये। मूमल की मृत्यु का समाचार जब महेन्द्र के पास पहुँचा और जब उसे पता चला कि वियोग में घुल-घुल कर उसने प्राण त्याग दिये तो महेन्द्र भी अत्यन्त विव्हल और अधीर हो उठा। प्राणों की असह्य पीड़ा का भार अब प्रेमी भी न सह सका। उसके भी प्राण-पखेरू उड़ कर उस लोक को चले गये जहाँ से कोई लौट कर नहीं आता। निर्दोष और हतभागिनी भारतीय नारी! क्या दुःख की संवेदना के लिए ही तेरा जन्म हुआ है? हिन्दी के यशस्वी कवि श्रीमैथिलीशरणगुप्त ने ठीक ही कहा है—

"अविश्वास ही अविश्वास हा!
नारी के प्रति नर का
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं
स्वामी है वह घर का।" (द्वापर)

* * *

"अबला जीवन हाय!
तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और नयनों में पानी।"

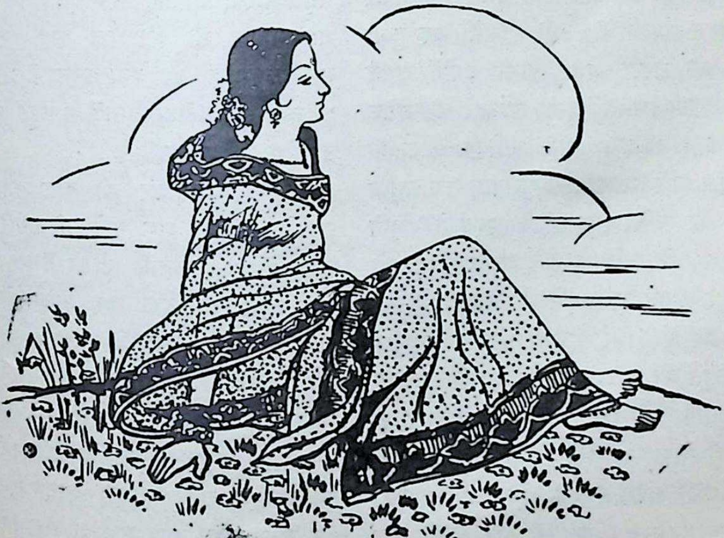

एक शब्द चित्रः

नया नौकर

[श्री. उदयशंकर भट्ट]

मेरे यहाँ नौकर सदासे एक समस्या रहा है। वैसे तो यह युग समस्याका ही है। मकान की समस्या, खाने पीने की समस्या, नौकरों की समस्या, जीवन और एक समस्या वन गया है। एक न एक समस्या आये दिन मुँह फाड़े जीवन के छोटे भुनगे को खाने के लिये तैयार रहती है। हम लोग इस युगमें जहाँ पुराने समय से मीलों आगे बढ़ गये हैं और पैदल, रथ या घोड़े की सवारी छोड़कर टमटम से उतर कर साइकिल और साइकिल छोड़कर मोटर और हवाई जहाज में जा बैठे हैं— वहाँ हम एक दूसरे के अधींन भी कम नहीं हो गये हैं। घर पर खाना खाने की बजाय नभचुम्बी होटलोंमें चमचमाती मेज और गौरव से मनुष्य को लपेटनेवाली कुर्सियों पर, कपड़ोंमें चमचमाते बैरा, बॉय के हर क़दम पर हजूर, सरकार, की खुशामदी पुकार से मदोन्मत्त प्राणोंमें हमारे दबे हुए अभिमान जहाँ उभरते हैं, वहाँ डालडा, सूरज मार्का के तैलाभिपक्व पदार्थों में जैसे जीवन का नया रस भी पाते हैं। और दूध की बजाय प्रेयसी चाय को एकबार भी "स्वर्गादपि गरीयसी" होटलमें बैठ कर जिसने अधरमें लगाया है, निश्चय ही उसे अनुभव हुआ होगा कि अव तक की जिन्दगी का उसका वहुत वड़ा भाग या तो व्यर्थ गया या फिर उसका जीवन वास्तव में उसी दिनसे शुरू हुआ है। रहने को तड़क भड़क सभी युगोंमें अपने ढंगकी है लेकिन इस पश्चिमी सभ्यता की चटक मटक तो कतई नई है। इसने सात्विक भोजन से मछली, मांस और जलपान से सुरापान तक मनुष्य को पहुँचा कर न केवल मनुष्य के हृदय में" शुनि चैव श्वपाकेच' में शुनि के प्रति अगाध श्रद्धा को जाग्रत किया, उसने आत्मतृप्ति के नेत्र-यज्ञमें क्लब की वेदिका पर दो विरोधी यौवनों के भेदाभेद को भी पराभूत कर डाला है और मनु के भक्ष्याभक्ष्य की भूमिका को मिटा कर नये संस्करण का प्राक्कथन भी लिख डाला है। वस्तुतः अव तो यह जानना भी कठिन है कि अव अभक्ष्य क्या है? और जव अभक्ष्य कुछ भी नहीं है तो फिर हवाई जहाजों द्वारा अगम्य भी क्या रह सकता है। इसी अर्थ में स्त्रीलिंग "अगम्या" भी क्या रह पायगी? मुक्त छंद ने जो जीवन की नई व्याख्या शुरू कर दी हैं, उसके होते हुए वाणी की तरह क्रिया भी मुक्त हो गई। लोग कहते हैं हमारी नियम विधान की अव्यहारिक दुकान का सामान पुराना है। आज नये दृष्टिकोण में उसका 'ओवरहालिंग' होना ज़रूरी है। और यदि 'अपरूटिंग' हो तो भी किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। यह शुभ-लक्षण है। जैसे गरमी के दिनों में मुँह पर चिपकन आजाती है, यह सव भी उसी तरह धों डालने के समान हैं।

अरे हां, तो मैं आजकी उदग्र समस्याओं और खासकर नौकर की समस्या पर कुछ कहने जा रहा था। मुझमें यही तो ऐव है कि मैं कोई वात शुरू करके कहां से कहां जा पहुंचता हूं। आपने चार आदमियों में वैठकर इसका अनुभव किया होगा कि मिलते ही वातचीत शुरू हुई घर के हालचाल से, देश और राजनीति से, और उड़ते उड़ते पहुँच गये चंद्रलोक में, या ग्रहों और समुद्र की तह में, मानों दर्शन और विज्ञानपर नया थीसिस लिख रहे हों। और स्त्रियों के नख से शिख पर चढ़ते चढ़ते परियों के पंखों पर उड़ते सबने देखे होंगे। जव मनुष्य की दौड़ का कोई अंत नहीं है तो मन की दौड़ का क्या कहना? उसे सूरदास के "देख्यो एक मनोहर वाग" के पेड़ों पर चढ़ कर उड़ते क्या देर लगती है?

हाँ, तो मैं नौकर की वात कह रहा था। इन गर्मियों के शुरू हाते ही हमारे गृहचक्र को सुव्यवस्थित रखनेवाले नौकर ने घर जाने की जो रट लगाई उसे देख कर मालूम होता था, जैसे कोई संस्कृत का विद्यार्थी पाणिनि का सूत्र घोंट रहा है। वहुत समझाया भले आदमी, तुमने वायदा किया था, जाते समय कोई नौकर दे कर जाओगे।'

पर वह अपनी प्रतिज्ञा को ऐसे भूल गया, जैसे नवविवाहित छात्र कॉलेज जाना भूल जाता है। एक दिन उसका बड़ा भाई आ कर कहने लगा—

१९५०

बाबूजी, इसका हिसाब कर दीजिये। यह अभी नौ बजे की गाड़ी से घर जा रहा है। और इसके साथ ही घर का एक अधूरा काम छोड़कर नौकर महाशय ने अपनी पोटली संभाल ही तो ली। घर भर के प्रार्थना, अनुनय, फटकार आदि शास्त्रीय अशास्त्रीय प्रयोग करने पर भी वह टस-से-मस न हुआ। और ऐसे खड़ा रहा जैसे इसका हमारा कभी कोई संबंध रहा ही न हो। जैसे वह उन व्यक्ति के समान है जो बाज़ार या रेल में आते जाते बैठे मिल जाते हैं। उसके चले जाने के बाद मैं सोचता रहा, यह मोह या बंधन किसी कारण से होता है, स्वाभाविक तो मनुष्य का रूप यही है। और यह स्वाभाविकता आज के युग की सबसे बड़ी देन है। आप बाज़ार में एक चीज़ खरीदते हैं, पैसा देते हैं, चल देते हैं। न नमस्कार न रामराम! उस लेन-देन तक ही आपका उसका सम्बन्ध रहा। नौकरों में यह भावना उदग्र रूप से काम करती है। वह चला गया। फिर क्या था? घर उसी समय से ऐसे लगने लगा जैसे घर अनाथाश्रम हो। एक गिलास माँगने और पानी देने पर बच्चों की भौंहें तनने लगीं। जैसे उनसे कोई अनुचित काम कर लेने को कहा जा रहा हो। एक का तानपूरा छूटा, दूसरे का उपन्यास। छोटे लड़कों के स्कूल के काम में विघ्न पड़ने लगा। राशन पहाड़ पर चढ़ने के समान हो गया। साग सब्जी एक मुसीबत बन गई। पान कैसे लगे, धोती गमछा स्नानागार में कौन रखे? और सबसे विकट समस्या थी कमरों की सफाई, बर्त्तन, चौका, भंगी को पानी, आंगन धुलाना। काम के नाम से सब बच्चे एक दूसरे को ऐसे देखते जैसे बैल लाल कपड़े को देखता है और विचक जाता है और उन्होंने सुना ही न हो, या कि कहनेवाले ने किसी भारतीय के सामने चीनी भाषा में बातचीत की हो। कुछ नज़र बचाकर कोनों की शरण चले गये। कुछ के सवाल इतने पेचीदा होगये कि उन्हें साथियों के घर जाना पड़ा। इधर श्रीमतीजी के सामने तो मानों छप्पर आ गिरा हो। शरीर से भारी होने के कारण उन्हें चिन्ताशील हो जाना पड़ा। उस तन्मयता को देखकर मुझे लगा कहीं इनमें कविता के बीज तो नहीं फूट निकले? जो मुंशी अजमेरी की तरह बिना लिखे ही काव्य सृजन करने लगी हैं। मतलब यह कि शाम तक घर की दशा श्रीगणेश के वाहन का मैदान बनती दिखाई देने लगी। कहीं कपड़े पड़े हैं, कहीं खाट औंधी हो गई है। कहीं गोह की तरह बुहारी लेटी है। कहीं गिलासों, कटोरियों, थालियों में भिडन्त हो रही है, और पैरों की ठोकर खाकर वे ऐसे बोलने लगते हैं, जैसे मैखाने में चुक्कड़बाज़! या कोई जलतरंग की प्यालियों में डंडा मार बैठे। और टन्न से उसकी जो शब्दतरंगें उठती हैं तो यह जानना वादक को भी कठिन हो जाता है कि यह कौनसा स्वर है, तीव्र या कोमल, संवादी या विसंवादी। घर में बिस्तर ऐसे फैल गये जैसे नया मकान बदला हो। कहीं दरी सिकुड़ रही है, तो कहीं चादर कोने में पड़ी है जैसे चूहे की ताक में भूरा बिल्ली का बच्चा। तकिये बीच में लेट लगा रहे हैं। ठीक ठीक जगह बिछी रहने वाली खाटों ने विद्रोह कर दिया। ढक्कन से ढकी रहनेवाली सीने की मशीन न्यूडिस्ट हो गई। रेडियो की अंगिया उतर गई। टेबिल फैन ऐसे लगने लगा जैसे अभी धुलहड़ी खेलकर आया हो। और पानी के घड़े तो किसी पीर की मज़ार के घड़ों को भी मात करने लगे। उठते बैठते नौकर की रट इतनी बढ़ गई, कि सारा घर जीवन के लिये छटपटा उठा। और मैंने देखा कि विवशता के इस अभिशाप की छाया जैसे प्रत्येक के मुखपर व्याप्त हो उठी है। और इसके साथही केवल पर खड़ी मनुष्य जाति की मनोवृत्ति का चरम विकास भी पा लिया। किंतु जो आदत एक बार पड़ जाती है, वह अपने से बचकर एक वृत्त बना लेती है। उसीके चारों ओर घूमना उसका काम हो जाता है। क्यों कि वह एक पहाड़ की चोटी है जहाँ से हटने पर गिरने का भय बना रहता है। उसीको पकड़े रहने में मनुष्य के अभिमान का कल्याण भी है। शायद बिना मनके जो काम किया जाता है उसे बेगार कहते हैं। किंतु बेगार में करने वाले से वह काम नहीं लिया जाता जिसके वह अयोग्य हो। तो इसके लिये कौनसा उपयुक्त शब्द होगा जो बिना इच्छा के घृणा के साथ स्वाभिमान को विवशता के नीचे दबाकर किया जाता है। मैं वह शब्द अभी तक नहीं ढूँढ़ पाया। फिर भी मुझे मानना पड़ा इस व्यक्ति के लिये मेरे पास निश्चय ही शब्द की कमी

है। काम तो हुआ ही। फिर भी हर एक के भीतर एक तीव्र आकांक्षा नये नौकर के लिये जाग रही थी। क्या आप इसे सचेतन जागृति नहीं कह सकते ?

और मुझे तो सचमुच घरमें काव्य की तरह सबके मुखपर संचारी और स्थायी भाव दिखाई देने लगे। रस निश्चय ही मुझे वहाँ प्रमुख रूप से कोई नहीं मिला नहीं तो एक काव्य बनाया तैयार था। दिन बीतने और रातें छीजने लगीं।

फिर भी प्रातः चिड़ियों के चहचहाने के साथ, मैं नौकर-स्तोत्र का पाठ नित्य सुनता रहा। किंतु किया क्या जा सकता था ? हर सामान की तरह नौकर मिलने की कोई दूकान तो है नहीं। जहाँ से कोई जाकर ख़रीद ले। हाँ, ज़रा ऊँचे दर्ज़े के नौकर तो बिना दूकान, बिना कारखाने के भी मिल जाते हैं। एक दुगदुगीपर जितने कहिये उतने मिलें। एक विज्ञापन पर चाहे जितने प्रार्थनापत्र मय टिकटों के ले लीजिये। ज़रा और आगे बढ़ें तो 'अनपेड़ एप्रेण्टिसों की भी सेना आपको मिल जायगी। स्त्री और पुरुष दोनों की शिक्षाका इससे अधिक और महत्व क्या होगा कि एक तरफ़ शुष्क साठ-सत्तर रुपयेपर पढ़ा लिखा व्यक्ति अपना यौवन समर्पण करने को तैयार है और दूसरी तरफ़ अशिक्षितों का भाव एकदम चोर बाज़ारी माल की तरह। आप कहेंगे पढ़ा लिखा वह काम नहीं कर सकता, हाँ ठीक है पर पढ़ा लिखा जो काम करता है, जितना आत्मा को बेंचने का सौदा करता है, अनुचित खुशामद, चापलूसी, कानाफूसी, षड्यंत्र ख़िदमंत करता है, वह क्या अपढ़ कर पाता है। वह अपने से नीचे के लोगों को पीस ड़ालने को न तो तैयार रहता है और न अपने मालिकों के तलवे सहलाने की क्रिया में ही निपुण होता है। वह भीतर वाहर से स्पष्ट है। और उतनाही सम्बन्ध भी रखता है जितने से उसके ठेके के दाम वसूल होते रहें। इसका कारण कदाचित् हमारे देश की अधूरी शिक्षा का है, जिसने उसके स्वार्थ से और स्वार्थसिद्धि के लिये नीच से नीच कर्म भी हँसी खुशी कर डालने की कलामें शिक्षित युवक को निपुण बना दिया है। दायित्व भावना से रहित पठित मनुष्य के मस्तिष्क को एकदम निकम्मा बना दिया है।

मैं भी कहाँ बहक गया। हाँ तो आपने सुना होगा कि कभी कभी मनुष्य के ऊपर तन्द्रा आती है, यह ज्योतिषियोंका विश्वास है, और वही विश्वास मनुष्य के भीतर भी पैठ गया है। वह सुबहका नियम होगा। घर के लोग बे मनसे अपना अपना काम कर रहे थे। ऐसे जैसे अंग्रेजी जमाने में भारतीय बे-मन से सेना में भरती किये जाते थे। कोई बिस्तर लिये बे-तरतीबीसे उसे इधर उधर पटक रहा था और कोई सो रहा था इस लिये कि कहीं जल्दी उठने पर काम न करना पड़े। जितनी देर भी सोकर गुज़र जाय उतना ही अच्छा। भूत के डरसे बचने का सब से बड़ा उपाय यह है कि आदमी आँख मचि ले। उस में दो लाभ हैं—नींद आगई तो अच्छा ही है न आई तो भूत तो दिखाई न देगा। इस मामले में वे लोग जरूर अभागे समझे जावेंगे जिन्हें सबेरे नींद नहीं आती। इसलिये बिस्तर उठाने और काम करनेवाले उनसे 'इन्फीरियर' थे जो सो रहे थे। इसी समय सामने से चौकीदार सोलह सत्रह साल के गोरखे लड़कों के साथ आया। मैं उसे जानता हूँ। वह हमारे ही मुहल्ले का चौकीदार है। वह टूटी फूटी हिन्दी बोल कर काम चला लेता है। उसे देखते ही घर के आदमी समझ गये, यह नया आदमी और कोई नहीं नौकर है। बच्चे उछल पड़े। बड़े आते जाते रुक गये। सोते हुओंने पटाक से आँखें खोल दीं। श्रीमतीजी कमरे से बाहर निकल आईं।

रामबहादुर, क्या यह नौकरी करेगा ? श्रीमतीजी ने पूछ ही तो लिया।

'ज़रा बड़ा है।'

'अरे तो क्या दूध पीता चाहिये।'

'नहीं, यही ठीक है।'

लड़कों की आलोचना आरंभ हुई।

'आँखें बिज्जूसी हैं चिमचिमी।'

'गोरखा है गोरखा।'

'चुटिया देखो ज़रा, कैसी खड़ी है, जैसे मोम लगाकर खड़ी की है या रस्सी बटी है।'

'आपकी हजामत तो देखिये। बाल क्या हैं नागपुरी टोपी है।'

'और बनियाइन, अरे क्या हलवाई के यहाँ कड़ाही घिसते रहे हो।'

चौकीदार बोला—'अभी गाँव से नया आया है। मेरा भाई है।'

'भाई' सुनकर सब चुप हो गये।

क्या नाम है तुम्हारा ? मैंने पूछा।

चुप!

कहाँ रहते हो ?

चुप!

तो क्या हमारी बोली नहीं समझता।

समझता नहीं, पास रहेगा तो समझ लेगा। काम करेगा।

तब कैसे काम चलेगा ?

काम करेगा साहब थोड़ी तनखा दे दीजिये।

यह सुनते ही खाट पर लेटी श्रीमतीजी उछल पड़ीं। हाँ, हाँ, ठीक है, बर्तन, चौका, झाड़ा-बुहारी तो कर ही लेगा।'

'जी'

और दो चार बातों के बाद नौकर रखना तय पाया। चौकीदार उसे छोड़ कर चला गया। नौकर आ गया, यह जान कर सबने संतोष की साँस ली। सब लोग हाथ-पर-हाथ धर बैठ गये। अब काम शुरू हुआ। किसी ने पानी माँगा। किसी ने कुछ। पर यह क्या, वह तो कुछ समझता ही नहीं। केवल नाम पुकारने पर वह फटी फटी आँखों से मुसकरा कर देखने लगता, और जड़ की तरह चुप! इसी बीच में एक आवश्यक काम से बाहर उठ कर चला गया। यही कोई एक सवा घण्टा मुझे बाहर लगा होगा। लौट कर देखा तो घर में हंगामा मच रहा है। धड़ाधड़ उस नौकर पर पानी की बाल्टियाँ उँडेलीं जा रही हैं। और वह कूद कूद कर हँस रहा है। बच्चे तड़ातड़ तालियाँ बजा रहे हैं। एक ओर जमादारिन खड़ी तमाशा देख रही है। वह भी उस शोर में पूरा सहयोग देने में व्यस्त है। जम दार बाहर खड़ा चिल्ला रहा है। श्रीमतीजी सप्तम में उसे डाँट रही हैं। और वह नया नौकर आनंद से उछल उछल कर पानी डलवा रहा है। वह मस्त है। जैसे कुछ हुआ हीं न हो। और मैं हैरान था। बात क्या हुई, क्या बात है, क्या माजरा है ? अरे कोई बोलो भी तो। पर वहाँ कौन सुनता। सब उस प्रकरण में तन्मय होकर पूरा सहयोग दे रहे थे। मैं आगे बढ़ा पूछा, चिल्लाकर पूछा — "क्या बात है, क्यों इस बेचारे की दुर्दशा की जा रही है ?" मेरे पहुँचने पर कुछ शान्ति सी हुई। मालूम हुआ, जमादारिन को पानी देते समय इसने उसीकी बाल्टी उठा कर नल के नीचे लगा दी। इस लिये सचैल स्नान का आयोजन हुआ। खैर वह मैंने जैसे तैसे समझा-बुझाकर शान्त किया। और दूसरे कपड़े पहनने को दिये। पर उसे तो जैसे गरमी में स्नान का मौका मिला। वह हँस हँस कर संकेत से और बाल्टी डालने का आग्रह कर रहा था। और भीगे कपडों से खिल खिलाकर हँस रहा था। इस एक घंण्टे के भीतर जो कुछ उसने किया उसकी अमर कहानी इस प्रकार थी।

यह भी कोई आदमी है। जड़ है जड़। बुहारी लेकर कमरे में झाड़ू लगाने का ढंग बताया तो उतनी ही लगाई। इससे पहले आप बुहारी ऐसे देखने लगे जैसे साँप है। और नज़र बचते ही आप कालीन पर पैर पसार कर लेट गये, और लगे मुस्कराने। दूसरा बोला—इसे मुसकराने की बीमारी है। मैंने कहा — "मुसकराने की बीमारी भी खूब रही।" खैर वहाँ से उठाया तो नल को खोलने और बंद करने का तमाशा ले बैठे। जमादारिन पानी लेने आई तो लगा उसका मुँह गौरसे देखने। जैसे उसे छुए ले रहा हो। उसने यह देखकर गाली देना शुरू कर दिया। और उसके पानी माँगने पर, बाल्टी उठाकर नल के नीचे लगा दी।

इसके साथ ही श्रीमती बोलीं — हम इसे नहीं रखेंगे। ढाई सेर खायगा, न काम का न काज का।

'पूरा बौड़म है। बौड़म।

'घोंचूं'

इसके साथ ही मैंने जब उधर देखा तो वह टांग पसारें, बैठा हँस रहा था। जैसे इस घर का उस पर कोई प्रभाव ही न पड़ा हो—आत्मलीन। शिशु की तरह अबोध!

लघु कथा :

सुलेमान का मंदिर

[श्री. रावी]

एक वार इस भूलोक के प्रवन्धक देवताओं ने पृथ्वी के सभी राजाओं के पास सँदेसा भेजा कि वे एक एक ऐसा मन्दिर वनवाये जो अत्यन्त सुन्दर हो और धरती पर होने वाले कोई भी उत्पात उसे नष्ट न कर सकें।

सभी राजाओं और वादशाहों ने एक से एक वढ़कर मजवूत चट्टानों और धातुओं के मन्दिर वनवाये; लेकिन वादशाह सुलेमान ने–जो वहुत वुद्धिमान कहा जाता था—पानी में थोड़ीसी मिट्टी सनवा कर उसी गीली मिट्टी का एक छोटासा मन्दिर वनवा लिया।

जब देवता लोग सभी मन्दिरों का निरीक्षण करते हुए, अनेक राजा-महाराजाओं के साथ सुलेमान के राज्य में पहुंचे तो सुलेमान उन्हें अपना मन्दिर दिखाने ले गया।

दूसरे राजाओं–वादशाहों को सुलेमान का वह मन्दिर देखकर वड़ा आश्चर्य हुआ; लेकिन सुलेमान ने पूरे वल के साथ उन्हें विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि उसका मन्दिर कभी भी नष्ट नहीं होगा। इसके वाद उनके सामने ही उसने उस मन्दिर में आग लगवा दी और उसकी जली हुई मिट्टी को हवाओं ने चारो ओर विखेर दिया।

* * *

मेरे कथागुरु का कहना है कि वादशाह सुलेमान के मन्दिर की यह कहानी आजतक किसी ने लिखी नहीं थी; यद्यपि कुछ इतिहासकारों और कथाकारों ने लिखा है कि उसने जेरूसलम में एक अत्यन्त भव्य मंदिर वनवाया था। मेरे कथागुरुका यह भी कहना है कि दूसरे राजाओं-वादशाहों के वनवाये हुए लगभग सभी मंदिर इस समय तक नष्ट हो चुके हैं, लेकिन सुलेमान के उस जलाये हुए मंदिर की मिट्टी से वने हुए उसी नमूने के सैकड़ों हजारों सुदृढ़ और सुसज्जित मंदिर आज भी संसारके वड़े वड़े नगरों में वने हुए हैं। कथागुरु के इस कथन में इतना मैं भी अपनी ओरसे जोड़ सकता हूँ कि मेरे नगर में भी सुलेमान का वह मंदिर वना हुआ है और मैं प्रतिदिन अपनी दैनिक मजदूरी, और मास में एक वार अपने मासिक परिश्रम का वेतन लेने के लिए उस मंदिर में जाता हूँ; और सुलेमान के ऐसे मंदिरों से सम्वन्ध रखने वालों की संख्या इस समय भी हजारों–लाखों में गिनी जा सकती है।

स्वस्तिक

[श्री० गणेशदत्त "इन्द्र"]

'स्वस्ति' शब्द का अर्थ है क्षेम, कल्याण, आनन्द, सुख इत्यादि। वेदों में स्वस्ति-परक पचीसों मंत्र हैं। वैदिक कर्मकाण्ड में प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व 'स्वस्तिवाचन' नामक विधि सम्पन्न होती है। स्वस्तिकारक कार्य 'स्वस्तिक' कहलाता है। प्राचीन युग में आर्यों ने, एक स्वस्तिकारक चिन्ह विशेष निश्चित कर लिया था जो स्वस्तिक कहलाता था। उस समय उस चिन्ह का रूप कुछ भी रहा हो किन्तु आज उसका सर्वमान्य निश्चितरूप :—

स्वस्तिक का वर्त्तमानरूप
चित्र नं० १

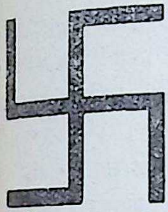

यह है। प्रत्येक हिन्दू स्वस्तिक को आज इसी रूप में मानता है। यह रूप पहले से चला आता है, ऐसा माना नहीं जा सकता। पहले इसका रूप यह था :—

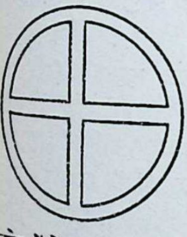

स्वस्तिक का
आरंभिक रूप
चित्र नं० २

ऋग्वेद में ऐसी अनेक श्रुतियाँ हैं जिनमें देवताओं से स्वस्ति (क्षेम, कल्याण) के लिए प्रार्थना की गई है*। इनमें एक मंत्र विशेष विचारणयि है। वह मंत्र यह है—

"भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं
दैव्यंजनम्।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावा पृथ्वी-
मरुतः स्वस्तये॥"
(ऋग्वेद मं० १० सू० ६३।९)

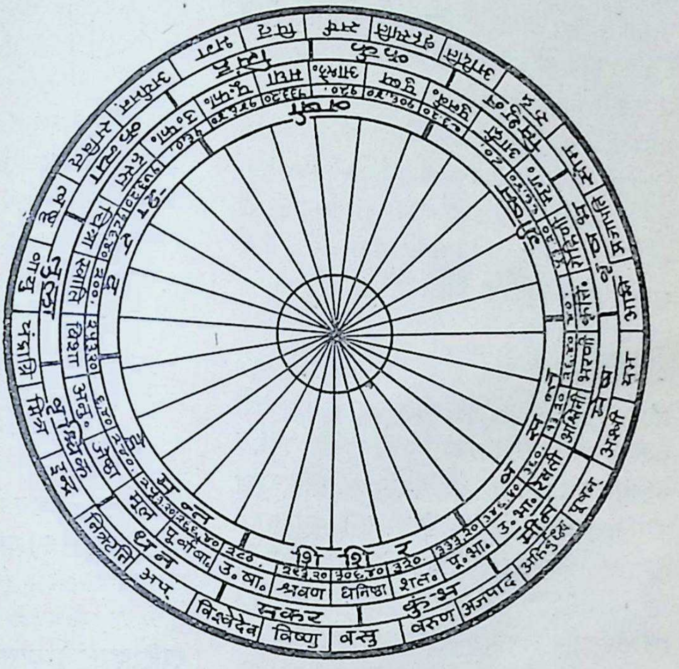
निऋति
अप.
विश्वेदेव
विष्णु
वसु
वरुण
अजपाद
अहिर्बुध्न्य
पूषन
अश्वी
यम
मूल
पूर्वाषा.
उ. षा.
श्रवण
धनिष्ठा
शत०
पू. भा.
उ. भा.
रेवती
अश्विनी
भरणी
ज्येष्ठा
अनु०
विशा
स्वाति
चित्रा
इन्द्र
मित्र
धन
मकर
कुंभ
मीन
शिशिर

दैवतगोल चित्र नं० ३

इस मंत्र में आए 'अग्निं मित्रं वरुणं भगं' य चार नाम विशेष मननीय हैं। इन चारों देवों के नामोल्लेख के रहस्य को समझने के लिए हम यह दैवतगोलस्थ राशिनक्षत्र का एक मान-चित्र यहाँ दे रहे हैं :—

इस मानचित्र में २७ नक्षत्रों को दिखाया गया है।

---

* स्वस्तिनोमिमीतामश्विनाभगः स्वस्तिदेव्यदिति-
रनर्वणः।
स्वस्तिपूषा असुरोदधातु नः स्वस्तिद्यावा पृथिवी
सुचेतुना॥
स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य
यस्पति :।
बृहस्पतिं सर्वगणंस्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो
भवन्तुनः
विश्वेदेवानो अद्यास्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः
स्वस्तये
देवा अनन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्तिनोरुद्रः पात्वंहसः॥
इत्यादि
(मं० ५ सू० ५१)

प्रत्येक नक्षत्र का देवता भी उसी के सामने लिखा है। ऋग्वेद के उक्त मंत्र में वर्णित अग्नि, मित्र, वरुण और भग नामक चारों देवों को देखिए। कृत्तिका नक्षत्र का देवता अग्नि है। अनुराधा का मित्र है। शततारिका का वरुण है और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र का है भग। अव यदि हम अग्नि से मित्र तक और वरुण से भग तक सीधी रेखाएँ खींचें तो चित्र नं० २ में बताया स्वस्तिक का रूप वन जायगा। इस प्रकार स्वस्तिक की उत्पत्ति वेदों से है। स्वस्तिक का यह वैदिक रहस्य है। वैदिक युग में स्वस्तिक का प्रादुर्भाव, ऋषि मुनियों की केवल कल्पना, रेखाओं का व्यर्थ खींचा जाना अथवा चित्रकला नहीं है। गगनमण्डल स्थित समस्त ग्रह-नक्षत्र और राशियों से कल्याण की कामना की गई है। समस्त नभोमण्डल संसार पर क्षेम, आनन्द और सुख की वृष्टि करे, यह स्वस्तिक का मूल वीज है।

अग्नि से मित्र तक और वरुण से भग तक सीधी रेखाएँ खींचने पर समान रूप के कोण नहीं वनेंगे। वन भी नहीं सकते, क्योंकि खगोल २७ नक्षत्रों में विभाजित है। एक नक्षत्र दूसरे नक्षत्र की बिलकुल सीध में हो नहीं सकता। पूर्णसंख्यक विभाजन होने पर ही रेखाएँ सीधी हो सकती हैं; किन्तु ऊनसंख्या २७ होने से यह असंभव है। इसीलिए आगे चल कर स्वस्तिक का रूप :—

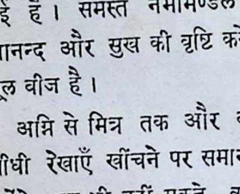

मध्यकालीन
स्वस्तिक
चित्र नं० ४

यह हो गया। यह रूप कव था यह वताया नहीं जा सकता। फिर भी इतना तो निश्चयपूर्वक माना जा सकता है कि स्वस्तिक का यह रूप आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व रहा होगा। धीरे धीरे इसकी आकृति में परिवर्त्तन आरंभ हुआ और रेखाओं के अन्तिम छोर नुकीले न होकर समान मुटाई के हो गए। इसे वनाने में रेखा को लचक देनी पड़ती थी, जो कलाकार के हाथों ही ठीक वनती थी। इसलिए सर्वसाधारण ने एक दूसरी को पार करती हुई सीधी रेखाएँ वना कर उनके सिरे की रेखाओं को मोड़ कर स्वस्तिक वनाना आरंभ कर दिया। और तव उसका रूप यह था।

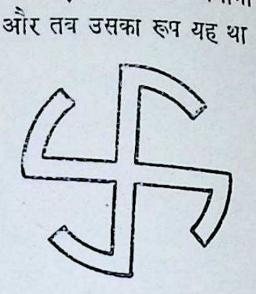

स्वस्तिक का शुद्धरूप
चित्र नं० ५

यजुर्वेद का एक मंत्र है जो स्वस्तिक की उत्पत्ति का कारण उसी प्रकार है जिस प्रकार ऋग्वेद का पूर्वकथित ''भरेष्विन्द्रं०'' आदि मंत्र। यह मंत्र कर्मकाण्ड में अपना प्रमुख स्थान रखता है और प्रत्येक शुभ कार्य में इसका विनियोग है।

'' स्वस्तिनइन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्तिनो वृहस्पतिर्दधातु ॥ ''

अध्याय २५, मं० १९

अर्थात् — (वृद्धश्रवाः) वहुत ज्ञान और यश धन से युक्त (इन्द्र) इन्द्र (नः) हमें (स्वस्तिदधातु) सुख प्रदान करे। (विश्ववेदाः) समस्त ज्ञान एवं ऐश्वर्यों का अविपति (पूषा) पूषन् (नः) हमें (स्वस्तिदधातु) कल्याण सुख प्रदान करे। तार्क्ष्य-व्यापक शक्तिमान परमेश्वर (अरिष्टनेमि) अखण्ड सर्वशक्तिमान सर्वव्यापक विष्णु (नः स्वस्तिदधातु) हमें कल्याण तथा सुख प्रदान करे और (वृहस्पति) महान् वेदवाणी का पाठक वृहस्पति (नः स्वस्तिदधातु) हमारा कल्याण करे।

इस वेदमंत्र में चार वार ' स्वस्ति ' शब्द आया है और चार देवों से कल्याण की कामना की गई है (१) वृद्धश्रवा इन्द्र (२) विश्ववेदाः पूषन् (३) तार्क्ष्य अरिष्टनेमि और (४) वृहस्पति। अव आप चित्र नं० ३ खगोल देखिए। हस्त नक्षत्र का देवता सवितृ अर्थात् इन्द्र है और ठीक उसके नीचे रेवती नक्षत्र का देवता पूषन् है। अरिष्टनेमि अर्थात् विष्णु श्रवण का देवता है और पुष्य नक्षत्र का देवता वृहस्पति है। नक्षत्रों में शुभ नक्षत्रों के साथ उनके शुभ देवताओं का होना इस मंत्र की

१९५०

विशेषता है। आप सवितृ से पूषन् तक और विष्णु से बृहस्पति तक सीधी रेखाएँ खींचिए, स्वस्तिक का आकार बन जायगा। तात्पर्य यह कि समस्त नभोमण्डल हमारा कल्याण करे। नभस्थ राशिचक्र, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह, तारक-मण्डल, अन्तरिक्ष, मेघ, विद्युत, द्युलोक, पवन, वृष्टि, आदि सभी हमें सुख प्रदान करें।

जब हम सवितृ से पूषन् तक रेखा खींचते हैं तो वह रेखा शरद ऋतु से वसन्त ऋतु में आती है। ये दोनों ऋतुएं मानवस्वास्थ्य में विकृति उत्पन्न करने वाली हैं। इनमें भी शरद ऋतु स्वास्थ्य के लिए अधिक अहितकर है। वेदों में ऐसे अनेक मंत्र हैं जिनमें शरद ऋतुओं से बचने की कामना की गई है[*]। इस वेद मंत्र में स्वस्तिकामना सत्र से प्रथम सवितृ से करने का तात्पर्य स्वास्थ्य की कामना है। क्योंकि आयुर्वेद के मतानुसार भी यही ऋतु अधिक रोगोत्पादक है। इसी लिए कहा जाता है कि "वैद्यानां शारदी माता पिताच कुसुमाकरः।" वैद्यों के लिए शरद् ऋतु माता के समान स्तन पायिनी पोषिणी है[†] और वसन्त पिता के तुल्य हितकर है। शरद् ऋतु कार्त्तिक अगहन में रहती है इस लिए आचार्यों ने कार्त्तिक के अन्तिम आठ दिन और मार्गशीर्ष के प्रथम आठ दिन ये १६ यम की दाढ मानी हैं[‡]। ये दोनों ऋतुएँ हमें शुभ फल-दायिनी हों यह स्वस्तिक का मुख्य उद्देश्य है। हम इन ऋतुओं के विकारों से बचें। विष्णु हमारा पोषण करे और बृहस्पति हमें ज्ञान दे। स्वास्तिक हमारी महदाकांक्षाएँ, शुभ कामनाएँ, उत्तम स्वास्थ्य, विपुल सम्पत्ति, यश, ऐश्वर्य, परमज्ञान आदि की प्राप्ति की कामनाओं का प्रतीक है।

स्वस्तिक की उत्पत्ति, निर्माण, स्वीकृति, सम्मान, आदि बातें प्राचीन आर्यों की गहरी सूझबूझ, वैज्ञानिकता, और गंभीर विचार धारा पर निर्भर है। यह चिह्न केवल रेखाचित्र, मकानों को सुसज्जित करने के निमित्त, या चली आनेवाली परम्परा तथा अर्थ हीन वस्तु नहीं है। बल्कि गूढ़, रहस्यमय, तत्त्वयुक्त, बुद्धि का चमत्कार है। स्वतिक का वैज्ञानिक आधार है जो समस्त ब्रह्माण्ड की सुख-सम्पदाओं का प्रतिनिधित्व करता है। यही कारण है कि हजारों वर्ष बीत जाने पर भी, स्वस्तिक के रहस्य और अर्थ को न समझने पर भी, हिन्दुओं में यह चिन्ह, सुख शान्ति प्रदाता मंगलप्रद, और कल्याणकारी माना जाता है।

भारत में विभिन्न धार्मिक क्रान्तियों में स्वस्तिक का अक्षुण्ण रहना उसकी महत्ता का द्योतक है। बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म ने भी स्वस्तिक को नहीं छोड़ा। उसे परम पवित्र, श्रेष्ठ चिन्ह मान कर स्वीकार किया है। भगवान् बुद्ध के पादचिन्हों में १२ स्वस्तिक अंकित हैं। इसलिए बौद्ध लोग स्वस्तिक को बड़े ही पवित्र, आदर भाव से देखते हैं। बुद्ध भगवान की एडियों और अंगुलियों में स्वस्तिक के चिन्ह होने से यह उनका परमाराध्य और आदरणीय है। बौद्धों के साथ ही साथ विदेशों में यह स्वस्तिक पहुँचा और वहाँ के निवासियों ने भी इसे अपनाया।

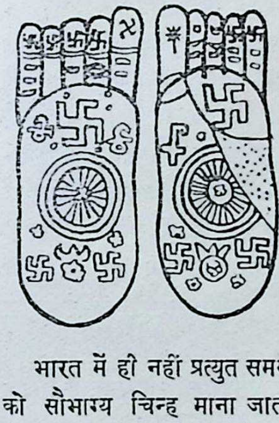

भगवान बुद्ध के
पाद चिन्ह
चित्र नं. ६

भारत में ही नहीं प्रत्युत समस्त देशों में स्वस्तिक को सौभाग्य चिन्ह माना जाता है। स्वस्तिक का चिन्ह सहस्राब्दियों से पवित्र स्थानों और पवित्र वस्तुओं पर अंकित होता आया है। मंदिरों, मूर्तियों और ध्वजा पताकाओं में अति प्राचीन काल से यह अंकित होता चला आया है। प्राचीन देव मंदिरों और शिला लेखों में स्वस्तिक देखा जाता है। मूर्तियों के सिंहासनों पर, वेदी पर और पीठिकाओं पर इसके चित्र खुदे पाए जाते हैं। संवत् प्रवर्त्तक महाराजा विक्रमादित्य के राज्यध्वज पर लाल रंग से

---

[*] "पश्येमशरदः शतम्, जीवेमशरदः शतम्, शृणुयामशरदः शतम्, प्रब्रवामशरदः शतम्।"
इत्यादि।

[†] "कार्तिकौवैद्यमातरौ"

[‡] "कार्त्तिकस्य दिनान्यष्टौ अष्टाऽऽग्र हायणस्यच। यमस्य दशना ह्येते लघ्वाहारी सजीवति।"

अंकित स्वस्तिक का बृहद् चिन्ह ध्वज के मध्य में रहता था।

बर्मा और चीन में स्वस्तिक का वही आदर है जो भारत में है। वहाँ ग्रंथों, चित्रों, मकानों तथा वस्त्रों पर भी इसे ससम्मान स्थान प्रदान होता है। यहाँ तक कि शरीर के भागों—जैसे भुजा, कलाई, स्तन आदि पर भी गोदाया जाता है। जापान तो हजारों वर्ष पहले से इसका प्रयोग करता आ रहा है। कोरिया में भी स्वस्तिक का प्रचलन है। यद्यपि इन दिनों योरोप में स्वस्तिक का प्रचार नहीं है तथापि बहुत समय पूर्व योरोप इसका अनन्योपासक रहा है*। उत्खनन कार्य में भू-गर्भ से उपलब्ध वस्तुओं पर स्वस्तिक के चिन्ह पाए जाते हैं इससे स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ विस्मृत युग में स्वस्तिक एक आदरणीय चिन्ह समझा जाता था। ट्राय नगर के प्राचीन भग्नावशेषों की खोदाई में ऐसी कई मिट्टी और धातु की वस्तुएँ मिली है जिन पर स्वस्तिक पाया गया। ये वस्तुएँ आज से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व की मानी जाती हैं। काकेशस के पास कोबन स्थान से एक आभूषण मिला है जिस पर वर्त्तमान आकृति के सुन्दर तीन स्वस्तिक अंकित हैं। यह आभूषण ढाई हजार वर्ष पहले का कहा जाता है। उत्तरी अमेरिका में स्वस्तिक का प्रचलन पाया जाता है। ईसा की ४ थी शताब्दि की कुछ वस्तुएँ वहाँ पाई गई हैं जिन पर स्वस्तिक खुदा हुआ है। अंग्रेज इतिहासकार मि० एल० जी० वेलस ने अपनी "इतिहास की रूप रेखा" नामक पुस्तक में स्वीकार किया है कि स्वस्तिक का आरंभ पाषाण युग से होने का पता चलता है। यही सर रे लंकेस्टर का भी मत है।

स्वस्तिक को 'गामाडियन' भी कहते हैं। ग्रीक भाषा में गामा का आकार Γ यह है। ऐसे चार गामा समकोण पर एक दूसरे से मिला दिये जायें तो स्वस्तिक वन जाता है। इसीलिए स्वस्तिक का नाम गामाडियन पड़ा।

पेरिस (फ्रांस) के एक विद्वान ने स्वस्तिक के सम्बन्ध में एक अजीब उड़ान भरी है। उसका कथन है कि स्वस्तिक की उत्पत्ति 'सारस' नामक पक्षी से हुई है। सारस का चित्र बिगड़ते बिगड़ते इस रूप में पहुँच गया और वह स्थायी हो गया। परन्तु वह ठीक उसी तरह की कल्पना है जिस प्रकार 'गजवदन गणेश' और ॐ के आकार प्रकार को खींच तान कर। 'स्वस्तिक' का रूप सिद्ध करने का प्रयत्न कुछ लोगों ने किया है। सारस के चित्र का विकृत रूप तीन रेखाएँ हो सकती हैं जो स्वस्तिक का रूप कदापि नहीं मानी जा सकती।

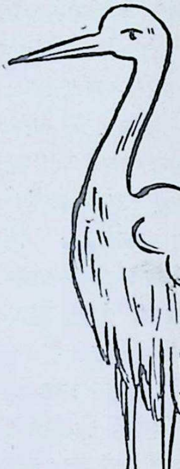

सारस पक्षी
चित्र नं० ७

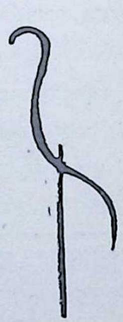

रेखामय सारस का चित्र
(विकृत)
चित्र नं० ८

इन चित्रों के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि स्वस्तिक की उत्पत्ति सारस नामक पक्षी से कदापि नहीं हो सकती। केवल कल्पनाओं के पंख लगा

---

* जर्मनी की राष्ट्रपताका में 'स्वस्तिक' चिन्ह आज भी अंकित है।

१३५०

कर किसी वस्तु के सम्बन्ध में सोचने से उसके मूल तक नहीं पहुँचा जा सकता।

राजपूताना आदि प्रान्तों में स्वास्तिक को 'साथिया' कहते हैं। यह शुद्ध शब्द 'सातिया' होना चाहिए जो अंक ७ को ४ जगह एक केन्द्र बिन्दु पर लिखने से स्वास्तिक का रूप बन जाता है। जिसका रूप ऐसा होगा। चित्र नं० ४ से इसका साम्य है। इसका सातिया नाम सार्थ कहा जा सकता है।

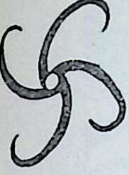

अंक ७ से निर्मित
स्वस्तिक
चित्र नं० ९

स्वस्तिक की दिशा-प्रदर्शक रेखाओं के अन्त से जो छोटी छोटी रेखाएँ खींची जाती हैं, वे कभी कभी उल्टी दिशा में भी भूल से बना दी जाती हैं। पृथ्वी का परिभ्रमण पश्चिम से पूर्व की ओर है इसलिए स्वस्तिक की शिरोरेखाएँ भी पश्चिम से पूर्व की ओर अर्थात् स्वस्तिक बनाने वाले के बाएँ से दाएँ ओर खींची जानी चाहिए। चूँकि पृथ्वी, नभ आदि सभी गोल हैं इसलिए स्वस्तिक की भुजाएँ भी गोलाकार होनी चाहिए जैसी चित्र नं० ५ में हैं। यही स्वस्तिक का शुद्ध रूप है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से भी ठीक जँचता है।

जिस प्रकार खगोल के आधार पर स्वस्तिक की उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम की सीधी रेखाएँ हैं, उसी प्रकार स्वस्तिक की भुजाएँ उपदिशा; ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य के दिग्पालों द्वारा स्वस्ति की कामनाओं की सूचक हैं।

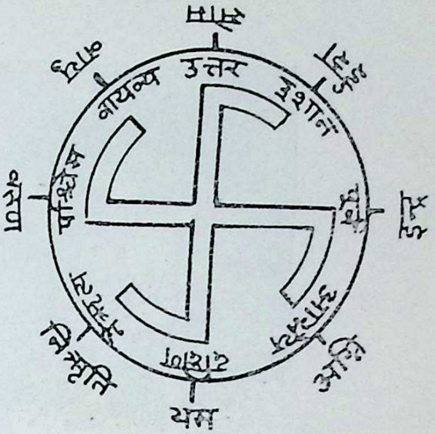

दिग्पाल और दिशाएँ
चित्र नं० १०

इस चित्र से स्वस्तिक की भुजाओं की उत्पत्ति का रहस्य ज्ञात हो जाता है। आकाशस्थ दैवत गोल के चार देवता और भूगोल के चार दिग्पाल देवताओं द्वारा सुख, आनन्द, ऐश्वर्य, समृद्धि, वृद्धि, ऋद्धि, क्षेम, कल्याण, मंगल आदि शुभ कार्यों का प्रतीक यह स्वस्तिक है। स्वस्तिक का निर्माण वैज्ञानिक है और यह चित्र या खिलौना नहीं है बल्कि प्राचीन आचार्यों की एक अनुपम सूझ है जिसका आधार भूगोल और नभोमण्डल है। कुछ लोग स्वस्तिक की भुजाओं में उपभुजाएँ और लगा देते हैं किन्तु वे अनुचित हैं। स्वस्तिक आर्यों का पवित्र, शुभ एवं सौभाग्यचिन्ह है, यह निर्विवाद है जिसमें ब्रह्माण्ड के समस्त देवों का प्रतिनिधित्व निहित है। विद्वानों को स्वस्तिक के सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ खोज करना है। यह तो उस महान् कार्य की एक छोटीसी उपक्रमणिका मात्र है जिसे अतिसंक्षिप्त रूपरेखा मात्र कहा जा सकता है।

कविता :

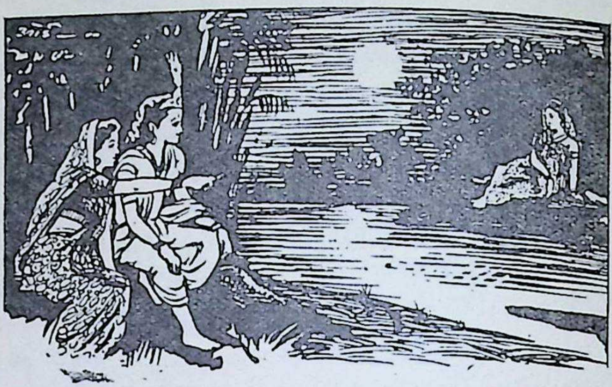

राधा 'आवास-गृहे'

[श्री. विनयमोहन शर्मा]

हे हरि, राधा आवास-गृहे
कब तक वियोग का त्रास सहे
पल पल दिशि दिशि देख रही है
मधुर अधर रस पीते
"कहाँ दूर हो, कहाँ निकट हो
हे मेरे मन चीते ?"—
यह कह कर तुमसे मिलने को
ज्यों व्याकुल हो बढ़ती
गिर पड़ती है पथमें क्षणमें
क्षणमें है उठ पड़ती
हे हरि राधा आवास-गृहे
कब तक वियोग का त्रास सहे
किसलय कोमल वलय धारकर
रति-चिन्ता-रस साने
कभी रचाती रास मुग्ध हो
माधव निज अनुमाने
बार बार कहती है "सखि कब
आयेंगे वनमाली ?"

१९५०

जान जलद सम तम को—"तुम हो"
भूल उठी मतवाली
हे हरि, राधा आवास-गृहे
कब तक वियोग का त्रास सहे

करने लगी उसीका चुम्बन—
आलिंगन मधुभीनी
तव विलम्ब से वासक सज्जा,
(लज्जा खो तन छीनी)

रोती और विलपति रहती
कवि 'जय' की यह वाणी

सुनते हैं जो जन इस जग में
पाते गीत कल्याणी
हे हरि, राधा आवास-गृहे
कब तक वियोग का त्रास सहे

* * * *

विपुल पुलक तन, अतुल ललक मन, ध्यान-सुरति-सुख लीना।
मिलन-कल्पना-रस सागर में डूब रही मति दीना॥
पत्तों की आहट से आने की जब शंका होती।
सजा अंक मृदु शैया सत्वर उत्सुक है अति होती॥
कल्प, तल्प, संकल्प भाव में यद्यपि उलझी रहती।
तुम बिन नहीं काट पाती निशि घड़ियाँ गिनती रहती॥

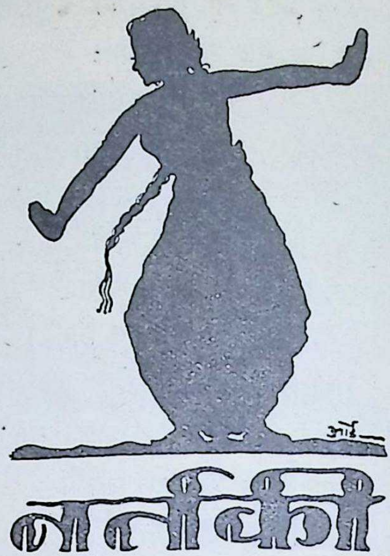

नर्तकी

[श्री· ज़हूर बख्श]

क़िज़िलबाश १ और मुगल सेनाएँ आपस में गुँथीं हुई थीं और मृत्यु के भीषण व्यापार में संलग्न थीं । तलवारें चमक–चमक कर आपस में टकराती थीं, नर-रक्त पान करती थीं, फिर भी शान्त होने का नाम न लेती थीं । यद्यपि किज़िलबाश सेनाएँ सुदूर ईरान से मन्जिल-पर-मन्जिल तय करती हुई आई थीं, तथापि उनमें जो जोश-खरोश विद्यमान था, वह मुगल सेनाओं को छू भी न गया था । किज़िल्बाश सेनाएँ बहादुरी के जौहर २ दिखाती हुई, अविराम गति से अपने घोड़े आगे बढ़ाएँ जाती थीं, और भोग-विलास की गोद में साँसें लेने वाली मुगल सेनाएँ उनकी बहादुरी के सामने चकित-विस्मित और हैरान परेशान होकर रह जाती थीं । वह बार–बार आक्रमण करती और बार-बार पीछे हटने के लिये विवश होती थीं । उधर क़िज़िलबाश सेनाएँ बार-बार विजय नाद से आकाश प्रकम्पित करती थीं, इधर मुगल सेनाएं बार-बार सिर धुनती और करुण चीत्कार करती थीं। भला असम शक्तियों का यह युद्ध कब तक चल सकता था ? अन्त में कुछ तो संगठन के अभाव से और कुछ, समय पर सहायता न मिलने से मुगल सेनाएँ बराबर पीछे हटने लगीं ।

सहसा एक तेजस्वी सरदार अपने श्यामकाय घोड़े को एड़ लगाता हुआ किज़िल्बाश सेनाओं से आगे बढ़ा–लम्बा सुड़ौल श्यामल शरीर, अतीव सुन्दर अंड़ाकार मुखड़ा, कुछ ऊपर की ओर उठी लम्बी नाक, आकर्ण विस्तीर्ण नेत्र, चढ़े हुए तेवर, चमकीले कवच तथा अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित । वह व्यक्ति और कोई नहीं, स्वयं ईरान का अधिपति वीर शिरोमणि नादिरशाह था । उसने अपनी तलवार आकाश की ओर उठाई और क़िज़िलबाश सेनाओं को सम्बोधन करते हुए भैरव स्वर में कहा—

'ईरान के सपूतो ! बस, यही वक्त है।

१९५०

अपनी मर्दानगी के वह जौहर दिखाओ कि इन बुज दिल मुगलों के दाँत हमेशा के लिये खट्टे हो जाएँ ।....तुम्हारी मर्दानगी ने इनकी जड़ें उखाड़ कर रख दी हैं । तुम्हारी खून की प्यासी तलवारों ने इनकी कतारें-की-कतारें काट कर रख दी हैं ।....तुम्हारे खौफ से ये डरपोक खरगोशों की तरह पहाड़ी खोहों में छिपने के लिये मजबूर हो गए हैं । ....बस, अब यह मैदान तुम्हारे हाथ आया ही चाहता है । ज़रा ग़ौर से सुनो, हिन्दुस्तान की बेशुमार दौलत तुम्हें कितने जोरों से पुकार रही है । .... प्यारे जवाँ मर्दों, हिम्मत से काम लो; .... देखो, एक भी मुगल बचकर न निकलने पाए '।

यह कहकर वह बज्र के समान मुगल सेनाओं पर झपटा और उसकी सेनाएँ उन पर तूफ़ान के समान कट पड़ीं और चारों दिशाओं में रक्त क़ी धुआँधार वर्षा करने लगीं । देखते देखते युद्ध-भूमि मुगल सैनिकों की लाशों से पट गई और कितने ही मुगल सेनापति और सरदार क़िज़िलबाश बीरों के हाथ बन्दी हो गये । युद्ध के इस परिणाम से मुगल सैनिकों के रहे-सहे धैर्य तथा साहस ने भी जबाब दे दिया और वे प्राण लेकर भाग निकले । अब विशाल हिन्दुस्तान नादिरशाह की मुट्ठी में था और उसका प्रतापी मुगल-सम्राट् मुहम्मदशाह ? वह तो अब नादिरशाह की दया का भिखारी था ।

इसके बाद देहली ने जो बिपत्ति देखी, वह मानवता के माथे पर कलंक का टीका लगानेवाली—रक्त में डूबी हुई अमर कहानी है ।

* * *

मुगल दरबार में दोनों सम्राट् मयूरसिंहासन पर आसीन थे । नादिरशाह के नेत्रों मे चमक थी और होंटों पर व्यंग-पूर्ण मुसकान । परन्तु मुहम्मदशाह के नेत्रों में न वह मदभरी चितबन थी, न होंठों पर वह मोहक मुसकान । चित में मानो अस्थिरता और उदासी का घोर संग्राम हो रहा था । चेहरे पर जो पीलापन छा गया था, उसके भीतर से मानसिक चिन्ता और उद्विग्नता के लक्षण स्पष्ट रूप से झाँक रहे थे । हाय ! अब उस मयूरासन पर उसका अधिकार कहाँ था, जिस पर वह सदा बड़ी आन-बान से बैठा करता था ! हाय ! अब उस हिन्दुस्तान का पता कहाँ था, जिस पर वह कल तक स्वतन्त्रता-पूर्वक शासन करता था । हाय ! अब उस स्वर्गीय वैभव का कहाँ ठिकाना था, जिसे वह कल तक देवराज के समान भोगा करता था । अब तो अतीत की स्मृतियाँ शूल की अनी सदृश उसके हृदय में गड़ रही थीं, और उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे क्या वज़ीर, क्या अमीर, क्या नौकर-चाकर, क्या अपने-बिराने—सभी उसपर घृणा की दृष्टि डाल रहे हों—धिक्कार की वर्षा कर रहे हों । दरबार भरा हुआ था, परन्तु चारों ओर गहरी स्तब्धता परिव्याप्त थी । अवसर ही ऐसा था, भला कोई किसी से कहता भी तो क्या कहता ? अन्त में नादिरशाह ने मुहम्मशाह की ओर देखते हुए वह स्तब्धता भङ्ग की—'बिरादरमन्, आज तो आप चुप-चुप नज़र आ रहे हैं ।'

मुहम्मदशाह निस्सन्देह विलासी था, परन्तु वह दिग्बिजयी तैमूर का वंशज था, हिन्दुस्तान का सम्राट् था; नादिरशाह के प्रश्न ने जैसे उसके आत्म-गौरव पर आघात किया और उसकी चेतना तड़प उठी—'आप खुद शाहंशाह हैं, एक शिकस्त खाए हुए शाहंशाह की दिली

हालत का बखूबी अन्दाज़ लगा सकते हैं। शाहंशाह मुसकिराते-मुसकिराते बड़ी से बड़ी नाकामी और तबाही बरबादी सह सकता है मगर मैदाने-जंग में अपनी शिकस्त हरगिज़ बर्दाश्त नहीं कर सकता। जिस वक्त वह मैदाने-जंग से शिकस्त खाकर लौटता है, हिम्मत और दिलेरी उसका साथ छोड़ देती है। काश शिकस्त का मुँह देखने के पहले हम मैदाने-जंग में काम आ जाते।

'सचाई तो यह है कि आपने हमारे साथ जंग करने में ग़लती पर ग़लती की है। क्या एक शाहंशाह यह बर्दाश्त कर सकता है कि दुश्मन उसके मुल्क में फ़तह पर फ़तह पाता हुआ आगे बढ़ता आये और वह आँखों पर पट्टी बाँधे ऐश के मज़े लूटता रहे?'

'क्या हमारी फ़ौजों ने कुरबानी देने में कोई कसर बाकी रक्खी? यह दूसरी बात है कि किस्मत ने हमारा साथ नहीं दिया।'

नादिरशाह व्यंग की तीखी हँसी हँसकर बोला—'बिरादरमन्! इन्सान को भेड़-बकरी की तरह कटवाना कुरबानी देना नहीं कहलाता। रहा किस्मत का सवाल, सो वह तो एक ढोंग है—नाकारा इन्सानों को बहलाने का सहारा है। ज़रा ग़ौर कीजिए, हम ईरान से मंजिल-पर-मंजिल तय करते, मुश्किलों पर क़ाबू पाते देहली तक आ पहुँचे और आप देहली से करनाल तक न पहुँच सके! क्या इसमें भी किस्मत कोई रोड़ा अटकाए हुए थी?'

नादिरशाह का एक-एक शब्द मुहम्मद-शाह के हृदय में उतर गया। भला वह इस कटु सत्य का क्या उत्तर देता? लज्जा ने बलात् उसके मस्तक को अवनत कर दिया, और नादिरशाह ने वार्तालाप का प्रवाह बदलने के अभिप्राय से कहा—'बिरादरमन्, आज हमारी तबीयत बहुत सुस्त मालूम होती है। मुमकिन हो, तो दिल-बहलावे का कुछ सामान मुहैया[३] कीजिए।'

'बहुत बेहतर' कहते हुए मुहम्मदशाह ने एक ख़ोजासरा[४] को आदेश दिया—'नूर को हाज़िर करो।'

थोड़ी देर बाद एक ओर से पर्दा उठा और दरबार-कक्ष में एक पंख-हीन परी दिखाई दी उठते-उभरते हुए यौवन के मद में चूर, मनोरम गौर-वर्ण में कुन्दन की आभा, गोलाकृति मुखड़े में चौदहवीं के चाँद की छबि, प्रफुल्लित कपोलों में पाटल-पुष्प की लालिमा, विशाल कजरारे-रतनारे नयनों में मोहिनी, लम्बी नुकीली नाक में आकर्षण और पतले-पतले रक्तिम अधर पल्लवों में मुसकान। यही नूर थी, मुग़ल दरबार की सर्व श्रेष्ठ नर्त्तकी, जिस पर मुहम्मद-शाह को अभिमान था। नादिरशाह ने उस पर चकित-विस्मित होकर दृष्टि डाली, और मानो एक ही घूँट में रूप का वह छलकता हुआ प्याला पी लिया।

देखते देखते साज़िन्दों ने चङ्ग, रबाब आदि वाद्य यन्त्र सँभाले। नूर ने भी उनके ताल में ताल तथा स्वर में स्वर मिलाया और नाचना-गाना प्रारम्भ किया। मुग़ल दरबार ने पहले भी कई बार उसका नाच देखा था, गान सुना था। परन्तु आज तो उसके नाच-गान में बात ही दूसरी बोल रही थी। आज तो वह मानो अपनी कला

की पराकाष्ठा प्रदर्शित करने के लिये दरबार में आई थी और उसकी प्रत्येक गति से — प्रत्येक तान से–यही ध्वनि उत्थित होती थी — 'लो, सङ्गीत और नृत्य की साक्षात् जीवित प्रतिमा देखो।' फलतः रूपरस-गन्ध का पारखी मुग़ल-दरबार आत्म-विस्मृत हो गया और रह-रह कर 'आफरीं[५]-सह आफ़रीं ....' मरहबा[६]-मरहबा' के निनाद से गूँजने लगा। नादिरशाह मे विस्मय-विमुग्ध होकर चारों ओर दृष्टि घुमाई और शायद मन में कहा—'यह दुरवस्था और कला के प्रति यह निष्ठा ! तभी....'

नर्तकी अचानक तीक्ष्ण कटाक्षों से दर्शकों के हृदय पर बिजलियाँ गिराती, मेहँदी के रंग से रंजित लाल–लाल कोमल हथेलियों पर अनोखी भाव भंगिमा से फूलों की थाली सँभालती, सुकुमार कलाइयों को बल देती हुई आगे बढ़ी और मुट्ठियाँ भर-भर कर बड़ी अल्हड़ता से राजसिंहासन पर फूल बरसाने लगी। ईरान का युवराज रजाकुलिखाँ राज–सिंहासन के पास ही बैठा था। फूलों की एक बौछार उसपर भी पड़ी। वह पहले से ही नूर को प्यासी आँखों से देख रहा था। फूलों की बौछार पड़ते ही आत्म-चेतना-शून्य हो गया-इस क्षण भंगुर संसार को जैसे बिलकुल भूल गया, और जब तक चैतन्य हुआ, तब तक नूर काँपती सहमती अपने स्थान पर वापिस जा चुकी थी।

वाद्य यन्त्रों की ध्वनि शान्त होते ही नादिरशाह ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—'हम सच कहते हैं, यह नाच देखकर, यह गान सुनकर हमारी तबीयत बाग-बाग हो गई।'

मुहम्मदशाह नूर को सम्बोधन करते हुए बोला—वाकई तूने आज कमाल कर दिखाया। खुश हो कि तुझे इसका इनाम तेरी उम्मीद से कहीं बहुत ज्यादह मिलेगा।'

नादिरशाह ने मुसकिराकर कहा—'बिरादरमन्, ईरान की हसीनाएँ[७] अपने हुस्न पर नाज[८] किया करती हैं। अब हम जाकर उनसे कहेंगे कि हिन्दुस्थान में भी हुस्न की कमीं नहीं है।'

मुहम्मदशाह नूर की ओर देखते हुए बोला-'अफसोस ! यहाँ ऐसी कोई चीज नहीं है, जो तेरे शानदार कमाल[९] पर बतौर इनाम दी जा सके। खैर, यह ले।' यह कहते–कहते उसने अपने कण्ठ से मोतियों का बहुमूल्य हार निकालकर नादिरशाह की ओर बढ़ाया।

नादिरशाह ने हार लेकर नूर को दे दिया और कहा—'वाकई बहुत बढ़िया हार है ! तेरे रुपहले लिबास पर मेल भी खूब खाएगा। अच्छा बोल, हम अपनी तरफ से तुझे क्या दें ?–'इसके बाद वह चुप हो गया, कुछ सोचता रहा और तब जेब में हाथ डालते–डालते बोला–'सचमुच तू बड़ी खुश किस्मत है। इस वक्त हमारे पास एक ऐसी चीज़ मौजूद है, जो तेरी उम्मीदों से भी कहीं बढ़कर साबित होगी और तेरी आँखों में चकाचौंध पैदा कर देगी।

सब लोग उत्सुकता-पूर्वक नादिरशाह की ओर देखने लगे और उसने जेब से एक हीरा निकालकर नूर को देते हुए कहा–'ले देख यह हीरा ! है न बेश कीमती ? हम इसे काबुल के खजाने से लाये तो थे अपने वास्ते, मगर अब तेरा हुनर देखकर सोचते हैं कि तू ही इसकी मुस्तहक[१०] है।'

नूर ने दोनों सम्राटों के प्रति कृतज्ञता-पूर्वक यथा-विधि सम्मान प्रकट किया। इसके बाद वह अपने साजिन्दों के साथ वहाँ से चली गई—कुछ हारी-हारी सी, कुछ थकी-थकी सी, कुछ भूली-भूली सी, मानो उसने दरबार में खोया तो सब कुछ हो और पाया कुछ भी न हो।

नूर ने सचमुच आशा से अधिक सम्मान पाया था, आशा से अधिक पुरस्कार पाया था, परन्तु तज्जन्य हर्ष और उल्लास का उसके चेहरे पर आभास भी न था, विषाद की श्यामलता-सी अवश्य छाई हुई थी। जब सहेलियाँ और बाँदियाँ आ कर प्रसन्नता के आवेश में बधाइयों की झड़ी लगाने लगीं, तो वह खिन्न हो कर बोली—'देहली का सफाया हो चुका है, दुश्मन घर में घुसा बैठा फतह का जशन[११] मना रहा है, मालूम नहीं अभी और क्या होने वाला है और तुम्हें सुहल-बाजियाँ सूझ रही हैं। जाओ, मुझे हैरान मत करो; इस वक्त मेरी तबीयत ठिकाने पर नहीं है।'

जब एक-एक कर सभी सहेलियाँ और बाँदियाँ चली गयीं, तो नूर एक सोफे पर जा बैठी और न जाने, क्या-क्या सोचने लगी। फिर आप-ही-आप बोली—'मेरी निगाहें गलती नहीं कर सकतीं—धोखा नहीं खा सकतीं। ....आखिर वह मुझे लगातार क्यों देख रहे थे? मेरी नज़रें बारबार उनकी नज़रों से मिल कर चार हुईं और झुक कर रह गईं!.... मगर नहीं, यह सब धोखा है। भला ऐसा क्यों कर हो सकता है?...जहाँपनाह मुझे एक खुशरंग तितली कहा करते हैं। मगर तितली की जिन्दगी का मकसद क्या होता है? यही कि वह फूल-फूल को रिझाए, फूल-फूल का रस चूसती फिरे, फिर भी अपनी प्यास न बुझा पाये। यह भी कोई जिन्दगी-में-जिन्दगी है।...मगर आह! वह ललचाई हुई प्यासी प्यासी निगाहें।...या अल्लाह! यह रात जशन ले कर आई है या मेरी तबाही का पैगाम[१२] क़िज़िलबाश परसों चले जाएँगे। उनके साथ वह भी चले जाएँगे...हमेशा के लिये... एक जख्मी दिल में अपनी रङ्गीन याद छोड़ कर....आँसुओं के दरिया में डूबती-उभरती एक बद-नसीब शख्सियत[१३] का हाल मालूम किए बगैर।...'

सहसा एक बाँदी के साथ वहाँ एक ईरानी युवक प्रविष्ट हुआ—लम्बा कद, गौर वर्ण, छरहरा शरीर, पुष्पसदृश प्रफुल्लित गोल मुखड़ा, शालीनता से परिपूर्ण विशाल रसीले नयन, निश्चय की दृढ़ता प्रकट करने वाली लम्बी नुकीली नासिका और भरी हुई बाँकी काली चमकीली मूछें, सचमुच वह युवक ईरानी सौन्दर्य का एक मनोहर आदर्श था। उसे देखते ही नूर चौंकी, घबराई, खड़ी हुई और हाथ बाँधते बाँधते कम्पित कण्ठ से बोल उठी—'कौन... शहजादा आलम?... आह! आँखों पर ऐतबार नहीं होता।'

शाहजादे ने कोच पर बैठते-बैठते कहा—'तुम हमें पहिचान गईं नूर?'

'वली-अहद[१४] ईरान को पहिचानना क्या कोई मुश्किल काम है हुजूर?'

'लेकिन हम तुम्हारे पास वली-अहद की हैसियत से नहीं आये।'

'हुक्म दीजिए, लौंडी, शहजादा-आलम की क्या खिदमत कर सकती है?'

'हम खिदमत लेने नहीं आये—हम तो तुम से कुछ कहने आए हैं।'

'फ़रमाइये ।'

'हम...हम तुम से यह कहने आए हैं कि तुम बहुत अच्छा नाचती हो—बहुत अच्छा गाती हो....'

'शहजादा-आलम की इस मेहरबानी के लिये लौंडी बहुत बहुत शुक्र अदा करती है।'

'वाक़ई हमें तुम्हारा नाच-गान बहुत पसन्द आया। लेकिन उस वक्त अब्बाजान के अदब-लिहाज़ से हम न तो तुम्हारी तारीफ़ कर सके और न तुम्हें कुछ इनाम ही दे सके।'

'मेरे लिये शहज़ादा-आलम की खुशी और पसन्दगी कहीं बड़े-से-बड़े इनाम से बेहतर है।'

रज़ाकुलीखाँ ने अपनी उँगली से अँगूठी निकालते हुए कहा—'अगर्चे यह एक हक़ीर[१५]-सी चीज़ है और हरगिज़ वली-अहद-ईरान की हैसियत के क़ाबिल नहीं है, फिर भी नूर, इसे यह समझ कर कुबूल करो कि इसके साथ एक तड़पते हुए दिल की याद है।'

नूर के नेत्रों का आयतन विस्तृत हो गया। परन्तु जब रज़ाकुलीखाँ ने अँगूठी आगे बढ़ाई, तो नूर का हृदय धड़क उठा और उसने संकुचित होकर हाथ पीछे खींच लिया। रज़ाकुलीखाँ हैरान होकर बोला—'आख़िर यह इनकार—यह झिझक क्यों?'

नूर ने भीत स्वर में अटकते-अटकते उत्तर दिया—'लौंडी की यह मजाल नहीं हुजूर! ....लेकिन....लेकिन बेहतर था कि आपने यह मेहरबानी दरबार में की होती।'

'तुम हमारे अल्फ़ाज़[१६] भूल गई? अभी-अभी हमने क्या कहा था कि दरबार में अब्बाजान थे, वहाँ उनका अदब था—लिहाज़ था।'

'मेरा यह मतलब नहीं है।....लोग दरबार में देते हुए देख लेते, तो बात ही कुछ और हो जाती।....अब इसे मेरी उँगली में देखेंगे, तो वह क्या कहेंगे—क्या समझेंगे?....मैं तो मारे शर्म के मर जाऊँगी"

'तुम इसे इनाम समझ कर मत लो, बल्कि हमारी मुहब्बत की निशानी समझ कर कुबूल करो....मुहब्बत की निशानी न किसी के सामने दी जाती है, और न किसी को दिखाई ही जाती है।

यह कहते-कहते रज़ाकुलीखाँ ने अँगूठी धीरे-से नूर की उँगली में पहिना दी, सन्तोष की साँस ली और मुसकिरा कर कहा—'नूर, क्या तुम हमें अपनी कोई निशानी न दोगी?'

नूर-शायद अपने सौभाग्य पर आत्म-विस्मृत हो गई, शायद किसी स्वर्णिम संसार की कल्पना में भूल गई और शाहज़ादे के प्रश्न का कोई उत्तर न दे सकी। जब शाहज़ादे ने अपने प्रश्न की पुनरावृत्ति की, तब कहीं वह चैतन्य हुई और विमुग्ध स्वर में बोली—'मैं एक अदनी-सी लौंडी हूँ, भला मेरे पास ऐसी कौन-सी चीज़ हो सकती है, जो आप जैसे आला[१७] रुतबे[१८] वाले शहज़ादे को नज़र करूँ?'

'चीज़ की क़ीमत कोई हक़ीक़त नहीं रखती, बशर्ते वह मुहब्बत से दी गई हो—दिल खोल कर दी गई हो। फिर तुम्हारे पास तो वह चीज़ है, जो बेशक़ीमती है, इस दुनियासे भी ऊपर है—बहुत ऊपर है।'

'यानी?'

'दिल!'

'दिल ? दिल तो मैं सभी निसार [१९] कर चुकी, जब मैंने दरबार में आप पर फूल बरसाए थे । मगर....मगर....'
मगर····मगर····']

'मगर क्या ?'

'एक हक़ीर लौंड़ी कैसे इतनी खुश–किस्मत हो सकती है कि बदले में वह भी एक सल्तनत के चश्मो. [२०] चराग स दिल पाने की उम्मीद कर सकें ?'

'आह नूर–भोली–भाली नूर ! तुम नहीं जानती ! सल्तनत के चश्मो-चराग भी इन्सान होते हैं । सल्तनत के चश्मो-चराग भी अपने पहलू में दिल रखते हैं । सल्तनत के चश्मो चराग भी दिल का लेना देना जानते हैं । खैर, कोई हर्ज नहीं, हमारे पास तुम्हारी निशानी है–बहुत अच्छी निशानी !'

नूर ने हैरान हो कर पूछा-'मेरी निशानी ? कहाँ है ? देखूँ !'

रज़ाकुलीखाँ जेब से फूल निकाल कर बोला 'यह देखो,····तुम्हारे बरसाए हुए फूल !···· क्या ये तुम्हारी निशानी के लिये कम है ?···· हम इन्हें हमेशा अपने पास रक्खेंगे और इन्हीं में अपनी तसल्ली का सामान तलाश किया करेंगे !'

'या अल्लाह ! मैं यह क्या सुन रही हूँ !····कानों पर यक़ीन नहीं आता !'

'यक़ीन करो नूर, तुम जो सुन रही हो, ठीक सुन रही हो ! हम कल या परसों यहाँ से कूच कर जाएँगे । शायद यही हमारी पहली और आखिरी मुलाकात है ।····आह ! अब तो यह जिन्दगी यों ही गुज़रेगी–जुदाई के सदमे सहते-सहते, तुम्हारी याद में सर्द आहें भरते-भरते !····शहंशाह-ईरान यहाँ से फत्तेह पाकर–बहुत-कुछ लूट कर जा रहा है। मगर वली–अहद–ईरान ? वह तो यहाँ से शिकस्त खा कर-अपना सब कुछ लुटा कर जा रहा है ।····अगर साथ कुछ ले जा रहा है, तो अपना टूटा हुआ दिल और उसे बहलाने वाली क मोटी याद ! अच्छा खुदा [१] हाफ़िज़-ऐ जानेमन, खुदा हाफ़िज़ !···'

नूर का नवनीत-सदृश हृदय मानो वियोगाग्नि की आँच से पिघल उठा और नेत्रों के मार्ग से जल-बिन्दुओं के रूप में टपकने लगा।

* * *

जब विजयी नादिरशाह की वीर-वाहिनी वापिस पहुँची, तो ईरान में मानो हर्षोल्लास का सागर उमड़ आया । इस विजयोपलक्ष्य में लोगों ने हृदय खोलकर अपने-अपने घर सजाए, दीपक जलाए ओर बड़े समारोह से विविध प्रकार के उत्सव मनाए । जब नादिरशाह ने इन उलझनों से अवकाश पाया, तो एक दिन अपने इष्ट-मित्रों, मन्त्रियों, सेनापतियों, सरदारों, अमीरों आदि को निमन्त्रित किया और उनको अपनी विजय का परिणाम दिखाया । एक ओर मुगल–ऐश्वर्य का प्रतीक मयूर-सिंहासन रक्खा था, दूसरी ओर करोड़ों रुपये का द्रव्य पड़ा था, तीसरी ओर परियों का समूह विद्यमान था, जिसमें मुरझाई हुई कली के समान नूर भी खड़ी थी ।

नूर का सौंदर्य तभी नादिरशाह की आँखों में गड़ चुका था । उसने नूर को पुरस्कृत अवश्य किया था, परन्तु देहली--दरबार में रहने के लिये नहीं—मुगलों का मनोरंजन करने के लिये नहीं । इसी लिये वह चलते

१९५०

समय उसे आग्रह–पूर्वक अपने साथ लेता आया था। अब जो उसके तुषारावृत कुमुदिनी-पुष्प सदृश मुखड़े पर दृष्टि पड़ी, तो नादिरशाह का मन हाथ से जाता रहा। जब सब निमन्त्रित व्यक्ति चले गये, तो उसने एक खोजासरा से कहा—इस हसीना को अभी हमारे दीवानखाने में हाज़िर करो।'

खोजासराने तत्काल शाही आदेश का पालन किया। मुसकान की रेखाएँ नादिरशाह के होंटों पर बिखर पड़ीं और उसने नूर से पूछा—"तुम वही नाचनेवाली नूर होन ?

'जी आलीजाह !'

'तुम्हारी किस्मत जाग उठी है ! बस, खुशियाँ मनाओ। तुम बहुत जल्द ईरान की मलिका" बनने जा रही हो !....'

'जहाँपनाह, मैं एक अदनी लौंडी हूँ—भला इतना आला मरतबा पाने लायक कैसे हो सकती हूँ ?'

'लौंडी जब थीं, तब थीं, अब तो तुम ईरान की मलिका बनोगी—ईरान के तख्त पर बैठोगी।'

'हुजूर, लौंडी की कीमत तो तभी तक है, जब तक वह लौंडी है।'

'मगर तुम्हें लौंडी बनाकर नहीं रक्खेंगे, मलिका बनाकर रक्खेंगे। आज शाम को ही तुम्हारे साथ बाकायदे निकाह पढ़ाएँगे। बोलो, क्या कहती हो ?'

नूर सन्नाटे में आ गयी। उसके हृदय के उद्गार होंटों पर फड़के, परन्तु प्रकट न हो सके। भला महामहिम ईरान-सम्राट के प्रश्न का क्या उत्तर देती वह निसहाय असमर्थ नर्त्तकी ? उसे चुप देख नादिरशाह ने फिर कहा—'बोलो-बोलो नूर, ताकि हम हुक्म ज़ारी कर दें।'

'आलीजाह, लौंडी को सोचने-समझने के लिये कुछ वक्त मिलना चाहिए।'

'हाँ-हाँ खूब सोच-समझ लो। हम कल शाम तक तुम्हें वक्त देते हैं।'

धीरे-धीरे दिन बीता, सन्ध्या का झुटपुटा हुआ और शीताधिक्य से इधर-उधर सन्नाटा-सा छा गया। यह अवसर पाते ही रज़ाकुलीखाँ नूर के विश्राम-कक्ष में पहुँचा। नूर बिछौने पर पड़ी थी, हृदय की वेदना से कातर थी और करवट-पर-करवट बदल रही थी, उच्छ्वास-पर-उच्छ्वास छोड़ रही थी। रज़ाकुलीखाँ की आहट पाते ही वह उठकर बैठ गयी और सूनी-सूनी आँखों से उसका मुँह ताकने लगी।

यद्यपि रज़ाकुलीखाँ पिता की इच्छा-अभिलाषा से अवगत हो चुका था, तथापि उसने जैसे अपने कानों पर विश्वास करने के लिये नूर से पूछा—'क्या बातचीत हुई अब्बाजान से ?'

नूर ने सिसकियाँ भरते-भरते उत्तर दिया—'मत पूछिए शहज़ादा आलम ! मैं सुख भोगने के लिये इस दुनिया में नहीं आई। मेरी किस्मत टुकड़े टुकड़े हो चुकी है और मेरे चारों तरफ मायूसी की आग भड़क उठी है। आह ! मैं कैसे-कैसे अरमान लेकर यहाँ आई थी। अगर ऐसा जानती, तो देहली से आगे पैर भी न मारती। वहीं ज़हर खाकर सो रहती।'

परन्तु शाहज़ादे की जिज्ञासा शान्त नहीं हुई, उसने स्वभावतः फिर वही प्रश्न दोहराया—'बतलाओ तो सही, अब्बाजान ने कहा क्या है ?'

नूर ने हिचकियाँ लेते-लेते उत्तर दिया—आलिजाह मुझे अपनी मलिका बनाना चाहते हैं। बस, आज की रात और कल का दिन बीच में है, इसके बाद वह मेरे साथ निकाह पढ़ा लेंगे।'

शाहजादे ने हताश भाव से कहा—'जब यह बात है, तो इस तरह सदमा बर्दाश्त करने की क्या ज़रूरत ? हमारा कहना मानो नूर इस रंजो-गम पर खाक ड़ालो, खुशी से अब्बाजान के साथ निकाह पढ़ाओ, ईरान की मलिका बनो और ऐश-आराम की जिन्दगी बसर करो। हम हरगिज तुम्हारे रास्ते में रोड़ा न बनेंगे, बल्कि तुम्हें खुश देखकर खुश होंगें।

शाहजादे के शब्दों से जैसे नूर के अन्तर में अग्नि धधक उठी और तज्जन्य गर्मी से उसकी आँखों के आँसू सूख गये। इसके साथ ही मानो उसके रोम-रोम में छिपी हुई आर्यनारी तिलमिला कर जाग पड़ी। वह निर्निमेष भाव से शाहजादे का मुँह ताकने लगी, और एक-एक शब्द को तोलती हुई बोली—'आप भी कैसी बात करते हैं शहजादा-आलम ! मैं हिन्दुस्तान की औरत हूँ। आप को मालूम है, हिन्दुस्तान सती औरतों का मुल्क है ? वहाँ की औरत जिन्दगी में सिर्फ एक बार एक ही मर्द को अपना दिल देती है। फिर ख्वाब में भी गैर मर्द की ख्वाहिश नहीं करती। अगर बद किस्मती से बेवा ही जाती है, तो अपने शौहर की लाश के साथ चिता पर बैठकर जल मरती है। मैंने नाचने-गाने का पेशा ज़रुर किया है, मगर खुदा गवाह है, मेरा जिस्म पाक है-मेरा दिल साफ है। मैं तवायफ नहीं हूँ, जो तन-मन की दूकानदारी करती फिरूँ। ज़रा सोचिए, जो दिल मैं आपको दे चुकी हूँ, वह आलीजाह के हवाले कैसे कर दूँ ?'

'फिर ?'

'फिर क्या, आलीजाह को मेरी मिट्टी मिलेगी, मुहब्बत नहीं। मैं आज ही रात को ज़हर खाऊँगी और इस दुनिया से कूच कर जाऊँगी।'

'जानेमन, ऐसा हरगिज़ न करना !'

'इसके अलावा और चारा[२४] ही क्या है ?'

'हमारे साथ तकलीफ़ बर्दाश्त कर सकोगी ?

आपके साथ ? आपके साथ तो मैं हँसते-हँसते गरजते हुए समुद्र में डूब मरूँगी—धधकती हुई आग में जल मरूँगी।'

'हम यह ताज, यह तख्त, यह हुकूमत ठुकरा देंगे, किसी दूर-दराज जगह में जा बसेंगे और जिंदगी के सच्चे लुत्फ़ हासिल करेंगे। बोलो, चलोगी हमारे साथ ?'

'भला यह भी पूछने की बात है ?'

'बस, तो तैयार हो जाओ। हम सवेरा होने से पहले ही यह जगह छोड़ देंगे।'

यह कहकर शाहजादा चला गया।

परन्तु दुर्भाग्य-दोष से एक ख़ोजासरा के कानों में इन बातों की भनक पड़ गई। उसने तत्काल जाकर नादिरशाह से कहा—'हुजूर मा-बाप हैं। अगर जान बख्शी जाए तो कुछ गुजारिश करूँ।'

'जो कुछ कहना हो, बेखौफ़ कहो।'

हुजूर वली अहद उस देहलीवाली हसीना को भगाने की फिराक[२५] में हैं। ग़नी मत यही है कि वह उनके साथ भागने को तैयार नहीं है। मगर वली अहद साहब तो उसे धमकाते हैं, कहते हैं कि तू हमारे साथ चल, हम बहुत जल्द जहाँपनाह को कत्ल कर

१९५०

शहंशाह बनेंगे और तुझे अपनी मलिका बनाएँगे। मैं खुद अभी-अभी अपने कानों उनकी बातें सुनकर चला आ रहा हूँ।'

नादिरशाह के नयनों पर रूई जलती थी। उसे बात करते क्रोध आता था और जब क्रोध आता था, तो वह अन्धा हो जाता था—अपना विवेक खो बैठता था। ख़ोजासरा की बात सुनते ही जैसे उसकी क्रोधाग्नि पर पेट्रोल पड़ गया। फिर उसने न जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता समझी, न पूछताँछ करने की। बस, उसी समय रज़ाकुलीख़ाँ को बन्दीगृह की अँधेरी कोठरी में डाल दिया और नूर के विश्राम-स्थल पर सन्तरियों की व्यवस्था और भी कठोर कर दी।

दूसरे दिन सन्ध्या-समय शाही महल उज्वल आलोक में जगमगा रहा था। ख़ोजासरा चमकीले-भड़कीले वस्त्र पहिने इधर-से-उधर और उधर-से-इधर दौड़ते फिरते थे और कुछ बाँदियाँ नूर को नई दुल्हिन के साज से सुसज्जित करने में तन्मय थीं। राज-महिषी की वेश-भूषा में नूर का उदास रूप पहले की अपेक्षा और भी मोहक, और भी आकर्षक, प्रतीत होने लगा। यह देखते-देखते एक बाँदी अपनी सुध-बुध खो बैठी और सहसा बोल उठी—'मलिकए-आली, आप बेशक ईरान पर ही नहीं, शहंशाह पर भी हुकूमत करेंगी।'

नूर एक राजसिंहासन पर गाव-तकिये के सहारे बैठी थी। परन्तु वह राजसिंहासन उसे आग की चिता के समान मालूम हो रहा था और उसके प्राण भीतर-ही-भीतर ऐसे छटपटा रहे थे, जैसे पानी के अभाव में मीन। जब दासियाँ वहाँ से चली गईं, तो नूर के व्यथित हृदय में रुका हुआ अश्रुप्रवाह नेत्रों के बाँध तोड़ कर बह निकला। शाहज़ादा रज़ाकुलीख़ाँ मानो अदृश्य रूप से नूर के सामने आकर खड़ा हो गया और उसका एक-एक वाक्य—एक-एक शब्द नूर के कानों में गूँजने लगा। शाहज़ादे की दी हुई अँगूठी उसकी उँगली में जगमगा ही रही थी। अचानक उसका वह हाथ ऊपर उठा, अँगूठी के झलमलाते हुए हीरे पर उसकी दृष्टि पड़ी और जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। बस, नूर ने बार-बार बड़े प्यार से हीरे का चुम्बन किया, फिर उसे अँगूठी से निकाल कर निगल लिया और तब एक दीर्घ उच्छ्वास के साथ हृदय के समस्त व्यथा-भार को वायु में फेंक दिया।

थोड़ी देर बाद वहाँ नादिरशाह ने मुसकिराते हुए प्रवेश किया—दो दिलों के अरमान लूटने के लिये, दो दिलों के संसार विनष्ट करने के लिये और दो दिलों के खून स अपनी तृषाग्नि बुझाने के लिये। नूर उसी तरह गाव-तकिये के सहारे बैठी थी—स्पन्दन हीन निश्चेष्ट शरीर, फैली-पथराई हुई बड़ी-बड़ी पुतलियों में बेबसी, कपोलों पर आँसुओं द्वारा अंकित हृदय की व्यथा के सूखे चित्र।

नादिरशाह की मुसकान होंठों पर ही विलीन हो गई। वह विस्मित हुआ और घबराकर 'यह क्या जानेमन!' कहता हुआ आगे बढ़ा। उसके हाथ का स्पर्श होते ही नूर का शरीर एक ओर लुढ़क गया और

राजमुकुट झनझना कर भूमि पर जा गिरा। आह! नर्त्तकी सौभाग्य के शिखर पर पहुँच चुकी थी—सब कुछ पा चुकी थी; परन्तु भाग्य के दोष से भग्न मनोरथ हो चुकी थी, इसलिये सब कुछ ठुकरा चुकी थी। उसका प्राण-पंछी उड़कर न जाने किस दिव्य लोक में चला गया था, इस लोक में तो केवल सूना तन-पिंजर पड़ा रह गया था। उधर बन्दी-गृह की काली कोठरी में ईरान का युवराज नूर की याद में सिर धुन रहा था, इधर राजमहल के आलोक में ईरान का सम्राट पागल के समान आँखें फाड़-फाड़ कर नूर का निर्दोष चेहरा, निष्प्रभ चेहरा, ताक रहा था।

---

१ ईरान का एक फ़िरका, २ खूबी, ३ प्रस्तुत, ४ नपुंसक, ५-६ प्रशंसात्मक शब्द, ७ सुन्दरी, ८ घमंड, ९ कौशल, १० अधिकारी, ११ उत्सव, १२ सन्देश, १३ व्यक्तित्व, १४ युवराज, १५ तुच्छ, १६ शब्द, १७ उच्च, १८ पद, १९ निछावर, २० नेत्र और दीपक, २१ रक्षक, २२ महारानी, २३ हम, २४ उपाय, २५ टोह

* * *

प्यारे श्रीकृष्ण!

हर क़दम पै बाद-ये-ज़िन्दगी बहाओ फिर,
अय गोपाल, झूमकर बन्सरी बजाओ फिर।

* * *

हाँ उठाओ बन्सरी, बन्सरी उठाओ फिर,
अय गोपाल, झूमकर बन्सरी बजाओ फिर।

* * *

व्रजकी फ़ज़ाओं को नशे में रचाओ फिर,
अय गोपाल, झूमकर बन्सरी बजाओ फिर।

* * *

मुस्करा के गाओ फिर गा के मुस्कराओ फिर,
अय गोपाल, झूमकर बन्सरी बजाओ फिर।

* * *

बन्सरी बजाओ फिर दो-जहाँ पै छाओ फिर,
अय गोपाल झूमकर बन्सरी बजाओ फिर।
जिस तरह भी हो सके एकबार आओ फिर,
अय गोपाल, झूमकर बन्सरी बजाओ फिर।

—'सागर' निज़ामी

[कठिन शब्दार्थः—बाद-ये-जिन्दगी = जीवनकी मदिरा; फ़ज़ा = विस्तृत क्षेत्र; दो-जहां पै = दो दुनिया में (एक इन्सान की दुनिया और दूसरी खुदा की दुनिया अर्थात् मर्त्य लोक और स्वर्ग लोक)]

बंगला कविता :

'जन्माष्टमी'

[स्वर्गीय—श्री० सत्येन्द्रनाथ दत्त]

विश्वे आजि ओतः प्रोत तड़ितेर सघन स्पन्दन,
विद्युतेर दौत्य चले मिलाइते छिन्न भिन्न मेघे;
अन्ध-करा अन्धकारे बन्ध दृष्टि, यामिनी गहन ,
वन्दीर मन्दिरे हाय क्षुब्ध झंझा आछाड़िछे वेगे ॥
लुप्त यतो गतिपथ भरा वरषार अश्रुधारे,
जागे उपवासी चित्त विश्वासेर वित्त बुके करि ,—
गतिहीन मुक्तिहीन प्रव्यथित शृङ्खलेर भारे—
आनन्देर नाहि लेश, जागि' तबु यापिछे शर्व्वरी ॥
एले कि एले कि ओगो गुप्तचारी शिशु यादुकर ?
मधु-दैत्य अधिकारे मोह-घेरा मधुरा नगरे ?
प्राचीरेर हेर-फेर—लोहार कबाट भयङ्कर,—
ता'सबे भेङे कि एले अपथेर माझे पथ क'रे ?
एले कि आनन्द रूप ! पुलकिया सुप्त नीप बन,—
फणी फणा छत्र शिरे शान्त शिशु आनन्दे-निर्भय !
राखालेर कोल दिते आचारीर ना शिते पारण
एसो तुमि दर्पहारी । एसो प्रेमी ! एसो सर्व्वजय !
एसो आलो-करा कालो ! एसो फिरे कालिन्दीर कूले,
बाजाओ मुरली तव,—यमुना उजान याहे बय,—
एसो रास-नृत्ये फिरे दोले दुले झुलनाय झुले
एसो तुमि हे किशोर ! रिक्त शाखे एसो किशलय !
एसो इन्द्र-अर्घ्य-हारी ! नव वेद करो उच्चारण !
नियम-दारुण देशे होक फिरे तारुण्येर जय;
भय पाण्डु-पाण्डवेर एसो वन्धु ! एसो जनार्दन !
एसो पाञ्चजन्यधारी कंसेर वंशेर चिरभय ।

वर्षे वर्षे युगे युगे जागे देश प्रतीक्षाय,
तव जन्मतिथि-दिने कीर्त्तनि तोमार कीर्तिकथा,
एले कि विचित्र-कर्म्मा ! पुनराय एले कि धराय ?
जरा भरा भारतेर चित्तवासी चिर-तरुणता ।

: उक्त कविता का छायानुवाद :

तड़ित् के सघन स्पन्दन से संपूर्ण विश्व ओत प्रोत है और छिन्न भिन्न मेघों को मिलाने के लिये मानों विद्युत दौत्य-कर्म कर रहा है। घोर अन्धकार से दृष्टि बन्धी हुई है, गहन रात्रि है। हाय, आज वन्दी के मन्दिर पर क्षुब्ध झंझा वड़े वेग के साथ आघात कर रही है। वर्षा की अश्रुधारा से पथ लुप्त हो गया है । विश्वास का धन हृदय में लिये हुए भक्त का चित्त जागृत है। वह गति हीन है, वह मुक्ति हीन है और शृंखला के भार से दवा हुआ है। उसमें आनन्द का लेश भी नहीं है फिर भी जगकर वह रात्रि यापन कर रहा है। ओ गुप्तचारी जादूगर शिशु ! क्या तुम आ गये ? मधु-दैत्य के अधिकार में मोह से घिरी हुई मथुरा नगरी में क्या तुम आ गये ? इतना ऊँचा प्राचीर, लोहे के भयंकर कपाट क्या इन सवों को तोड़ फोड़ कर जहाँ रास्ता नहीं वहाँ भी रास्ता वनाकर क्या तुम आ गए ? सुप्त कदम्ब वन में पुलक का संचार करते हुए और सर्प के फण पर निर्भय, शान्त होकर नृत्य करने वाले हे आनन्द रूप क्या तुम आ गए? राखाल वालकों को (ग्वाल बालोंको) आलिंगन करनेवाले तथा निष्ठा वानों के आचार की उपेक्षा करने वाले हे दर्पहारी, हे प्रेमी, हे सर्व्वजय तुम आओ। हे आलोक विखेरने वाले कृष्ण, तुम फिर कालिन्दी के कूल पर आओ और फिर से अपनी मुरली वजाओ—यमुना आज प्रतिकूल दिशा में वह रही है—हे किशोर, फिर रास-नृत्य करते हुए झुलना पर झूलते हुए तुम आओ। रिक्त शाखा पर नव पल्लव की भांति आओ। हे इन्द्र के अर्घ्य का हरण करने वाले, नये वेद का उच्चारण करो। कठिन नियमों के जाल में देश जकड़ा हुआ है, फिर से तारुण्य की विजय हो। भय से पाण्डुर हुए पाण्डवों के वन्धु, हे जनार्दन, हे पाञ्चजन्य के धारण करने वाले हे कंस की जाति के चिर भय के कारण तुम आओ। देश युग युग से सालों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। तुम्हारी जन्मातिथि के दिन तुम्हारी ही कीर्ति-कथा का कीर्तन होता है। हे विचित्र कर्मा, क्या सचमुच तुम फिर इस धरा पर आ गए ?—रा. ति.

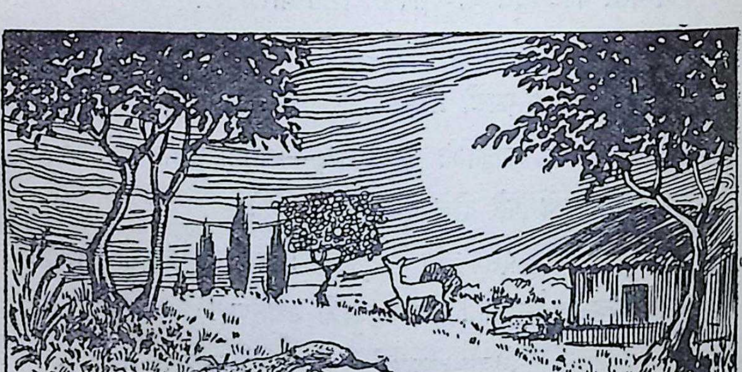

धारावाही उपन्यास :

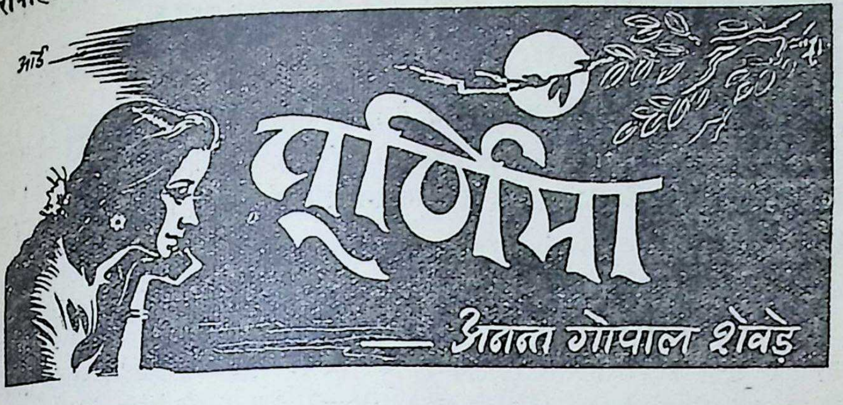

[अब तक की कथा :

बैरिस्टर पण्डित की पुत्री पूर्णिमा को पाने के लिये विलास मोहन प्रयत्न शील है। वह ' खाओ–पियो–और मौज करो ' की जीवन प्रणाली को मानता है और टेनिस, सिनेमा, डिनर आदि उपकरणों के द्वारा पूर्णिमा पर अपना प्रभाव जमाने की कोशिश करता है।

कु. पूर्णिमा के स्वभाव में एक अजीब प्रकार का द्वैत है। एक पहलू तो ऐसा है कि जो विलास मोहन की जीवन-प्रणाली से ही आकर्षित है; इस लिये उसकी धारणा है कि उसका सच्चा प्रेम विलास-मोहन ही से है।

किन्तु उसके जीवन का दूसरा एक और पहलू है जो गंभीर है, उदात्त है और जिस पर कर्तव्य-निष्ठ एवं आदर्शप्रिय विनय कुमार का असर है। विनय कुमार का वह अत्यन्त आदर करती है, उससे कुछ डरती भी है, क्योंकि उसकी धारणा है कि विनय उससे बहुत ऊँचा है जिसके साथ वह समरस नहीं हो सकती।

विनय को पूर्णिमा का यह तितली की तरह बन-ठन कर कूदना-फुदकना बिलकुल नहीं भाता है। उसे विश्वास है कि यदि वह सत्प्रवृत्ति और सत्प्रभाव के वातावरण में रही तो बहुत ऊँचा उठ सकती है। पर यह कैसे हो ?

एक बार अचानक कांग्रेस पार्क में उसके कान पर यह बात आ पड़ती है कि विलास और पूर्णिमा का 'एंगेजमेण्ट' हो गया है जिसके कारण उसका हृदय घोर व्यथा से भर जाता है। यह देखकर उसका मित्र सुशील उससे एकाएक पूछ बैठता है— "कहीं तुम पूर्णिमा से प्रेम तो नहीं करने लगे ?"

विनय कुमार आत्मनिरीक्षण करता है तो पाता है कि यह सच है। वह पूर्णिमा के पास विलास के साथ होने वाले विवाह के ख़तरे के खिलाफ उसे चेतावनी देने के लिये जाता है लेकिन पूर्णिमा उसे दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप न करने की हिदायत देकर अपमानित कर घर से बाहर कर देती है।

विनय इस आघात को बर्दाश्त करना कठिन पाता है। आते ही बिस्तर पकड़ लेता है। डॉक्टर कहते हैं, उसे टायफॉइड हो गया है।

पूर्णिमा को जब यह मालूम होता है तब उसे घोर व्यथा होती है और वह उसकी शुश्रूषा करने इस तरह दौड़ पड़ती है जैसे उन दोनों के बीच ऐसी कोई अप्रिय घटना हुई ही न थी।

घोर मानसिक एवं शारीरिक व्यथा के बाद २१ दिन के बाद विनय कुमार का बुखार उतरता है। स्वास्थ्य-सुधार के लिये डॉक्टरों की सलाह मानकर वह सतपुड़ा के अंचल में स्थित पचमढ़ी चला जाता है। वहाँ प्रकृति की गोद में, वन की हरीतिमा तथा निर्झरों के निनाद में, उसे शान्ति मिलती है और जीवन से मुकाबला करने की शक्ति।]

विनय कुमार के पचमढ़ी चले जाने के बाद वह एकदम विलास की ओर पूर्णतः झुक पड़ती है और उन दोनों के आनन्द और आमोद के कार्यक्रम बहुत ज़ोरों से चल पड़ते हैं।

यह देखकर पूर्णिमा के पिता एक दिन उसे बुलाकर पूछते हैं — "क्या तुमने विलास के साथ विवाह करना तय कर लिया है बिटिया ?"

पिता-पुत्री दोनों की इस बारे में एक राय है लेकिन इसके पहले कि वे विवाह की बातचीत शुरू करें, बैरिस्टर पंडित विलास के पिता की ज़मीन्दारी आदि एक बार देख लेना चाहते हैं। फलतः वे क्रिसमस की सैर के लिये इन्द्रगढ़ जाने का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं। पूर्णिमा भी साथ जाती है।—अब आगे पढ़िये।]

बीसवाँ-परिच्छेद

: क्रिसमस की सैर :

दूसरे दिन सुबह जब विलास बैरिस्टर साहब के बंगले पर गया, तो उसे देखते ही पूर्णिमा ने बच्चे की तरह इठलाते हुए पूछा—"बतलाइये, मैं आपको आज कौनसी खुश ख़बर सुनानेवाली हूँ ?"

विलास पर भी इस खिलखिलाहट का असर पड़ा। लेकिन वह ताड़ न पाया।

"कोई 'इवनिंग पार्टी' होगी !"

"उं हूं"—पूर्णिमा ने बालसुलभ निर्बोधता के भाव से, अपनी गर्दन हिलाते हुए कहा। उसके इस अल्हड़ हाव-भाव के कारण विलास को पूर्णिमा अधिक सुन्दर दीख पड़ी। उसके नेत्रों में सौन्दर्य की क्षुधा और उसे तृप्त करने की लालसा साफ दीख रही थी।

"तो कोई म्यूज़िक प्रोग्राम होगा ?"

"अंऽ हंऽ—फिर कोशिश कीजिये।"

विलास सिर खुजलाने लगा, मानों वह अपने दिमाग में नये विचारों के घुसने के लिये रास्ता साफ कर रहा हो।

"पिक-निक है ?"—फिर पूछा।

"नहीं—अबकी बार कोशिश करेंगे तो ज़रूर बतला सकेंगे।"

"नहीं बतला सकूंगा।"—विलास ने कुछ देर ठहर कर मुँह उतार कर कहा।

"तो हार गये ?"

"हां, हार गया।"

"हम लोग इस क्रिसमस में इन्द्रगढ़ आनेवाले हैं। बापू ने कल रात ही मुझ से कहा।"

"ओ ! फाइन !" विलास ने प्रसन्न होकर कहा।—"बहुत अच्छा। तुम बड़ी अच्छी लड़की हो।" ऐसा कह कर खुशी में आकर उसने अपने दोनों हाथ पूर्णिमा की तरफ बढ़ा दिये। पूर्णिमा ने भी अपने हाथ उसके हाथ में दे दिये और दोनों ने हँस कर एक दूसरे की आँखों में आँखें मिला कर देखा—दो क्षण के लिये देखते रहे !

घड़ी ने "टन्" बजाया और उनके होश ठिकाने आये।

इन्द्रगढ़ के ज़मींदार राधामोहन बाबू ने मेहमानों की आवभगत के लिये खासा लम्बा चौड़ा आयोजन किया था। शहर से केवल बैरिस्टर पण्डित और उनकी पुत्री को ही नहीं निमन्त्रित किया गया था बल्कि किंग एडवर्ड हॉस्पिटल के डॉक्टर और मिसेस बैंकर, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिस्टर वीरेन्द्र कुमारसिंह आई. सी. एस. और उनकी पत्नी, रायबहादुर निरंजनलाल रिटायर्ड डिप्टी कमिश्नर (उनके यहाँ पर्दा था), सेशन्स जज मिस्टर मेहता और मिसेस मेहता और शहर के बड़े साहूकार और बैंकर रायसाहब सेठ सौभाग्यमल—इतने सज्जन और देवियाँ भी निमन्त्रित किये गये थे, और उन सबने राधामोहन बाबू का निमंत्रण स्वीकार कर लिया था। इन सबके इन्तज़ाम के लिये राधामोहन बाबू की मोटरों ने न जाने कितनी बार शहर के चक्कर लगाये थे—फल, मेवे, मिठाई, फूलों के हार, चाय और डिनर के सेट, केक-बिस्कुट, चाय, कॉफी, कोको के डिब्बे, ऊंचे दर्ज़े की अंग्रेज़ी, फ्रेंच और इटैलियन शराबें इत्यादि के लिये। टेनिस के नये बॉल्स, चार नये रैकेट्स कैरम बोर्ड इत्यादि खेल का सामान भी आया। टैनिस कोर्ट पर गेंद उठाने के लिये दो छोकरे (जिन्हें विलास युनिवर्सिटी क्लब से लाया था), अंग्रेजी खाना पकाने के लिये एक खानसामा, और प्रिंसेज होटल से दो 'बॉय' भी लाये गये। सारे इन्तज़ाम की देखभाल विलास बाबू के हाथ में सौंपी गई थी और उनके पिता ने

१९५०

उन्हें हिदायतें दी थीं कि इस बार रुपयों की कोई चिन्ता न की जाय, इंतज़ाम में कोई कसर नहीं होना चाहिये।

बाबू राधामोहन की आँखें इस समय सरकारी ख़िताब पर लगी हुई थीं, क्योंकि ज़मींदारों की श्रेणी में इसकी काफी कद्र होती थी। वे बड़े व्यवहारकुशल थे और उनके हर काम के पीछे ज़हर किसी-न-किसी बात की माप-जोख होती। इस बार भी जिन सज्जनों को उन्होंने दावत दी थी वे सब किसी-न-किसी दिन उनके काम आनेवाले थे या आ चुके थे। बैरिस्टर पण्डित और सेशन्स जज साहब मुकदमेबाजी में, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ख़िताब के लिये सिफ़ारिश करने में, सेठ सौभाग्यमल रुपयों के लेन-देन में मददगार होते। डॉक्टर बैंकर ने उनकी पत्नी का आपरेशन किया था और रायबहादुर निरंजनलाल ने अपनी डिप्टी कमिश्नरी के ज़माने में राधामोहन बाबू को एक संगीन मुक़दमे में से साफ बचा लिया था जिनमें उनकी गहरी बदनामी होने की संभावना थी।

विलास इस आयोजन को सफल बनाने में जी-जान से कोशिश कर रहा था; क्योंकि पूर्णिमा आनेवाली थी। पिता और पुत्र का ध्येय एक ही था, कारण जुदे-जुदे थे। इसलिये मेहमानों के स्वागत का इन्तज़ाम अव्वल दर्ज़े का था।

मेहमानों के ठहरने की व्यवस्था गिरिकुंज में ही की गई। उसके अहाते में दो बड़े डेरे लगा दिए गए थे जो मिस्टर और मिसेस सिंग तथा मिस्टर और मिसेस मेहता की सेवा में समर्पित कर दिये गये थे। 'गिरिकुंज' बंगले के दो हिस्से कर दिए गए थे जिनमें पण्डित पिता-पुत्री को तथा मिस्टर और मिसेज़ बैंकर को ठहराया गया था। रायबहादुर निरंजनलाल और रायसाहब सेठ सौभाग्यमल का इंतजाम तो राधामोहन बाबू ने अपनी कोठी पर ही किया था।

सारा कार्यक्रम एक सप्ताह का था। इनमें से दो दिन शिकार के लिये तय कर दिए गये थे। ज़मींदारी में घना जंगल था और शेर की शिकार का वहाँ काफी इन्तज़ाम था। दो दिन पिकनिक के लिये मुकर्रर किये गये थे—एक दिन इन्द्रगढ़ के किले में, जिसके नाम से ज़मींदारी का नाम पड़ा था और दूसरे दिन निज़ामशाह की कब्र के पास की अमराई में, जो इन्द्रगढ़ से तेरह मील के फासले पर थी। फिर एक दिन तैरने के लिये रक्खा गया था। ज्यादा इसलिये नहीं कि ठण्ड के दिन थे और मेहमानों में से अधिकतर गरम पानी से नहाने के आदी थे। उसी रात्रि को पूर्णिमा के संगीत का प्रोग्राम भी रक्खा गया था। एक दिन कैम्प फायर के लिये तय किया गया, जिस दिन गोंडों और भीलों के नाच का आयोजन किया गया था। आख़री दिन टैनिस और कैरम मैच के लिये, जिसके अंत में गार्डन पार्टी और फोटो का प्रोग्राम था। फोटो के बाद तुरंत ही मेहमान लोग अपनी-अपनी मोटरों से शहर के लिये रवाना होनेवाले थे ताकि रात का खाना वे अपने घर खा सकें। सारा कार्यक्रम मज़ेदार था और जब उसकी प्रतियाँ टाइप करा कर मेहमानों के हाथ में दी गईं तो सब एक बारगी खुश हो गये और सब ने अपने सामाजिक दर्जे को भूल कर, बराबरी से इन कार्यक्रमों में उत्साहपूर्वक भाग लेने का निश्चय किया। सब मेहमानों को विश्वास हो गया कि उनकी क्रिसमस की छुट्टियाँ बड़े आनन्द के साथ बीतेंगी।

यथासमय सारे मेहमान अपनी अपनी मोटरों पर लद कर इन्द्रगढ़ पहुँचे। उनके स्वागत-सत्कार के सारे आयोजन को देख कर बैरिस्टर पण्डित साहब ने मन-ही-मन बिलासबाबू पर अपनी पसन्दगी की मुहर लगा दी। पूर्णिमा पर सारे इन्तज़ाम और वातावरण का यही असर पड़ा। लेकिन बैरिस्टर साहब ने एक बात और समझ ली कि इस भीड़ भब्भड़ में जब कि बेचारे राधामोहन बाबू को एक मिनट के लिये भी फुर्सत नहीं है, पूर्णिमा के विवाह की बात निकालना उचित न होगा। उन्होंने अपनी लड़की से भी यही बात चुपके से कह दी और उसने भी इसे पसन्द किया। इस चर्चा को आगे के लिये मुल्तवी करना ही ठीक समझा गया। इस ट्रिप का उपयोग बैरिस्टर साहब केवल अपने भावी दामाद का घर और वैभव देखने के लिये ही करना चाहते थे।

प्राकृतिक सौन्दर्य के शांत एवं रमणीय वातावरण का पूर्णिमा पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

वह तितली की तरह कूदती-फुदकती, हँसती-खेलती नज़र आती। झाड़ों पर चढ़ना, झूले पर झूलना, टेनिस कैरम खेलना, दिलरुबा बजाना, ताश खेलना, जंगलों में घूमना, पहाड़ियों पर चढ़ना, ये उसके नित्य के कार्यक्रम थे। इनमें उसका मन पूरी तरह से रम गया था। मेहमानों के सारे कार्यक्रमों में विलास अवश्य शामिल होता। इस समय उसके गुणों के वे पहलू जो शहराती जीवन में दिखलाई नहीं पड़ते थे, पूर्णिमा को दिखाई दिये।

शिकार के समय जब पूर्णिमा मचान पर बैठे बैठे मन-ही-मन घबड़ा रही थी तब विलास निर्भयता-पूर्वक शेर पर बन्दूक चला रहा था। दो दिन की शिकार में जो दो शेर मारे गये उनमें से एक तो मिस्टर सींग और मिस्टर मेहता की बन्दूक से मरा था और दूसरा विलास के निशाने से, जो ठीक शेर के मस्तक पर लगा था। तैरने के वक्त भी जब सब लोग ठण्ड से ठिठुर कर पाँच मिनट के अन्दर ही पानी में से निकल आये तब वह अकेला ही पौन घण्टे तक तैरता रहा।

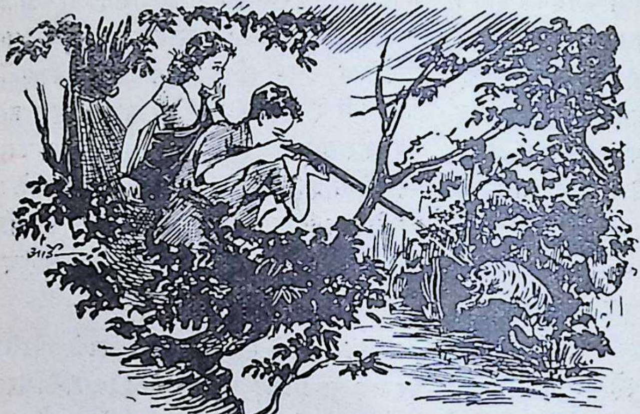

जब वह अपनी नीली तैरने की पोशाक (स्विमिंग कॉस्टीम) पहन कर पानी में से निकला, तब उसका गौरवर्ण गठीला शरीर कितना सुन्दर दीख रहा था! पिकनिक में भी इन्द्रगढ़ के किले के ऊंचे खण्डहरों पर वह अकेला ही किस फुर्ती के साथ चढ़ जाता था, जहाँ जाने की और किसी की हिम्मत नहीं होती थी। भील और गोंडों के नाच के दिन तो अचानक जब वह गोंडों जैसी पोशाक पहन कर उनके बीच में नाचने लगा तो कुछ देर तक तो लोग उसे पहचान ही न सके। जब पहचाना तो मारे हँसी के लोगों के पेट फटने की नौबत आ गई। इतनी स्वाभाविक रीति से वह उन लोगों में मिल गया था। शिव के ताण्डव नृत्य का प्रदर्शन हो रहा था। भीलों के मध्य में शिव का स्वांग विलास ने ही किया था। पार्वती का पार्ट एक तरुण भीलनी ने किया था जो व्याघ्र चर्म, मोर के पंख और चंदन के ठिपकों और मूंगे की माला से आभूषित की गई थी। उस भीलनी को देख कर पूर्णिमा का हृदय एक क्षण के लिये, अनजाने, ईर्ष्या से भर गया। इन सब बातों से अभ्यागत सज्जन और महिलाओं को विलास ने लट्टू कर दिया था और पूर्णिमा तो उस पर अधिकाधिक मोहित हो गई।

इस दौरान में विलास और पूर्णिमा को एकान्त तो बहुत कम मिलता — प्रायः मिला ही नहीं। केवल कभी कभी उसे पूर्णिमा की वन के सुगंधित फूल, या झाड़ पर से तोड़े हुए मीठे फल, गुप्तरूप से भेंट करने का मौक़ा मिल जाता था, जिन भेंटों को पूर्णिमा स्नेह के साथ तुरन्त स्वीकार कर लेती। उस समय दृष्टि-निक्षेप में भावनाओं का जो मूक आदान-प्रदान हो जाता, उसके सिवा उनका अधिक सम्पर्क नहीं हो सका। पूर्व निश्चय के अनुसार सब मेहमानों के कार्यक्रम निर्विघ्नता-पूर्वक समाप्त हो गये और आख़री दिन आया।

इस ट्रिप के आनंद को प्रत्येक ने सच्चे दिल से लूटा था और वे सब हृदय से प्रसन्न और सन्तुष्ट थे। पूर्णिमा ने तो ऐसा नवीन अनुभव कभी लिया ही नहीं था, इसलिये उसका दिल खूब खुश था। टैनिस-मैच, गार्डन-पार्टी, और फोटो के कार्यक्रम भी यथासमय हुए और मेहमान लोग जाने के लिये उद्यत हुए। सब ने राधामोहन बाबू को धन्यवाद दिये। मिस्टर और मिसेज सींग तो बहुत प्रसन्न थीं ही। उन्होंने राधामोहन बाबू को एक बार

१९५०

शहर आने की सलाह दी, जिसके जवाब में उन्होंने कहा कि तीन जनवरी को उन्हें एक बड़े मुकदमे के सिलसिले में शहर आना ही है, तब वे 'बड़े साहब' से जरूर मिलेंगे। बैरिस्टर पंडित साहब ने भी उनसे ज़रूर मिलने के लिये प्रार्थना की। पहली तीन मोटरों में सींग, मेहता और बैंकर दंपति चले गये। फिर रायसाहब, रायबहादुर की जोड़ी चली गई। इनके जाने के बाद बैरिस्टर पंडित अपनी मोटर में चढ़ने लगे और उन्होंने पूर्णिमा की तरफ चलने का इशारा करते हुए देखा। इसी बीच में विलास ने आगे बढ़ कर कहा कि, "मैं यदि पूर्णिमा को अपनी मोटर में ले आऊँ तो कोई हर्ज है ?"

"क्या आप भी आज ही लौटने वाले हैं ? अभी छुट्टियां तो ख़तम नहीं हुई ?" — बैरिस्टर साहब ने पूछा।

"मुझे इस पार्टी के सिलसिले में 'अकाऊंट सेटल' करना है। और पिताजी ने कहा कि मैं आज ही आप लोगों के साथ चला जाऊँ तो हर्ज नहीं।" विलास ने कहा।

"तो आइये मेरी मोटर में—काफी जगह है।"

"पर लौटूंगा कैसे ?"

"ओह! ठीक है आपको अपनी गाड़ी ही लानी होगी। कोई हर्ज नहीं, पूर्णिमा चाहे तो शौक से आपकी गाड़ी में आ सकती है। लेकिन बहुत रात मत करना, रास्ता जंगल का है।"

"हम लोग खाना खा कर तुरन्त निकलेंगे — आप निश्चिन्त रहें। रात को मैं हमेशा बन्दूक लेकर ही चलता हूँ।" विलास ने आश्वासन दिया। बैरिस्टर पण्डित साहब की मोटर भर्रSSS करती तथा धूल उड़ाती हुई चली गई।

एक क्षण के लिये, न जाने क्यों, पूर्णिमा को लगा कि वह उसी मोटर में चली जाती तो अच्छा होता।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

: प्रणयोल्लास :

जिस समय विलास और पूर्णिमा को लेकर बेबी फोर्ड गाड़ी इन्द्रगढ़ से निकली उस समय नौ बज चुके थे। अगली सीट में विलास के पास पूर्णिमा बैठी थी और पिछली सीट पर विलास की बन्दूक दोनों के गरम ओवर कोट और कुछ सामान पड़ा था। विलास नीले सर्ज का सूट पहिने हुए था और पूर्णिमा ऊनी कोट स्वेटर। चांदनी छिटकी हुई थी, लेकिन कहीं कहीं कुछ बादल से थे इसलिये ठण्ड उतने कड़ाके की नहीं पड़ रही थी, जितनी अक्सर इस समय पड़ा करती है। इसलिये मोटर की गति के कारण जो हवा लग रही थी उसमें उन दोनों को कोई ख़ास तकलीफ नहीं हो रही थी। उलटे हवा की भीनी भीनी ठण्डक आल्हादकारक ही मालूम पड़ती थी। रास्ता साफ़ था। कभी कभी दो-दो चार-चार बैल-गाड़ियों के झुण्ड मिल जाते।

विलास मोटर धीमे चला रहा था ताकि दोनों बातें कर सकें।

ज्योंही मोटर मुख्य रास्ते पर आई त्योंही विलास ने पूर्णिमा को सुन्दर फूलों का छोटासा गुच्छा दिया, जिसमें खूब सुगंध आ रही थी। पूर्णिमा ने 'थैंक यू' कह कर मधुर मुसकराहट के साथ उसे स्वीकार किया। फिर उसने उसमें से निशिगन्धा का फूल निकाल कर बाकी का गुच्छा अपने केशकलाप में लगा लिया और वह फूल विलास की तरफ बढ़ा कर कहा—

"इसे आप अपने कोट के 'बटन-होल' में लगा लीजिए।"

"मैं कैसे लगा लूँ ? मैं तो दोनों हाथों से व्हील पकड़े हुए हूँ।'

"तो फिर कौन लगायेगा ?" पूर्णिमा ने समझते हुए, लेकिन नासमझी दर्शाते हुए, पूछा।

"तुम न लगाओगी तो कौन लगायेगा ?"

"ओह ! यू नॉटी बॉय ! (नटखट लड़के !) इस तरफ झुको तो ज़रा।—बस ठीक है," ऐसा कह कर वह फूल होल में लगाने लगी। चूंकि मोटर चल रही थी, वह उसे जल्दी नहीं लगा सकी। विलास का सिर पूर्णिमा के सिर के पास आ गया और उसके बालों के खुशबूदार त्रिलियेन्टाइन की तथा कपड़ों पर छिड़के हुए पेरिस सेंट की उन्मादक सुगंध पूर्णिमा की नासिका में भर गई। इसी बीच फूल लगा चुकने के बाद उसका

हाथ विलास के बाँये गाल को छू गया, जिस स्पर्श के कारण मानों उसके शरीर में बिजली की लहर बह गई।

फिर दोनों चुप रहे।

मोटर अपनी धीमी गति से जा रही थी। रफ्तार २५ मील फी घण्टा से ज़्यादा नहीं होगी।

पूर्णिमा उसी स्पर्श की मधुर स्मृति में मग्न थी। उसे लगा कि उसके शरीर की अतृप्त क्षुधा को किसी ने जगा दिया है।

विलास ने कुछ देर बाद पूर्णिमा की तरफ देखा। पूर्णिमा ने भी उसी वक्त विलास की तरफ देखा। आँखें चार हुईं, और उसी क्षण दोनों के ओठों पर मंद स्मित चमक उठा। जैसे कलिका प्रस्फुटित हो रही हो।

“पूर्णिमा ?”

“हूँ”

फिर चुप्पी। दोनों जैसे सपनों की दुनिया में हों।

“क्या विलास ?” पूर्णिमा ने कहा। अब उसके नाम के साथ का नित्य का ‘बाबू’ शब्द निकल गया था। विलास ने यह फर्क देखा और उसने धीरे से अपनी जीभ ओठों पर से फेर ली।

“उस दिन की मोटर की सैर याद है ?”

“हाँ, खूब !” पूर्णिमा ने सेभिनरी हिल्स की उस मनोरंजक रात्रि की याद करते हुए कहा। उस रोज़ की अपेक्षा आज उसे अधिक खुलापन, अधिक आनन्द प्राप्त हो रहा था।

“आज इसका मज़ा लूट रही हो या नहीं ?”

“खूऽऽब—उस दिन से बहुत अधिक।”

विलास ने उसकी तरफ आँखों के कोने में से देखा। पूर्णिमा ठीक अपने सामने आँखों की सीध में सड़क पर दूर तक देख रही थी। उसके बाल हवा से भुर भुर उड़ रहे थे और उसके चेहरे से दीख रहा था कि वह खोयी हुई सी अपने ही विचारों में लीन है।

फिर शांति। कोई कुछ न बोला।

अब जंगल आ गया था। दोनों तरफ ऊँचे ऊँचे, घने झाड़,—सागौन, आम, बड़, टेसू और बाँस के। कुछ सकरा रास्ता। वन की शीतल हवा जिनमें जंगली फूलों और पत्तों की तथा ज़मीन की विचित्र सुरभि मिली हुई है। पूर्णिमा को कुछ ज़्यादा ठण्ड लगने लगी।

“क्यों, ठण्ड लग रही है ?”—विलास ने पूछा।

“हां ज़रा सी।”

“तो ज़रा नजदीक सटकर बैठ जाओ न ?”

पूर्णिमा ने एक आज्ञाधारक बच्चे की तरह सलाह मान ली। विलास के शरीर की उष्णता से उसे कुछ आराम मालूम पड़ा। फिर वही सेण्ट की उन्मादकारी सुगन्ध !

पूर्णिमा चुप रही। मोटर की गति से जैसे उसे तन्द्रा सी आने लगी। विलास ने अपना बायां हाथ, पूर्णिमा की पीठ के पीछे से लपेटकर उसे अपने और पास खींच लिया। पूर्णिमा ने उसका बिल्कुल प्रतिकार नहीं किया। उलटे अपना सिर विलास के बाँये कंधे पर टिकाकर आँखे मूंद लीं।

उसे अभूत-पूर्व-आनन्द आ रहा था। प्राकृतिक सौन्दर्य के इस परम स्वतन्त्र एवं सुखमय वातावरण में उसे आज अपने प्रियतम के साथ एकान्त में यात्रा करने का मौका मिला था। उसके साथ इस प्रकार घनघोर जंगल में से रात्रि के समय जाने में उसे कोई संकोच या डर नहीं लग रहा था। वह अपनी ही धुन में मस्त थी। वह और उसका विलास! इन्हीं दोनों का जगत् है, और बाकी दुनिया का उसे विस्मरण हो रहा है। इस विस्मरण में भी उसे अनुपम सुख मिल रहा है।

विलास को इस सबका अर्थ समझने में कोई अड़चन नहीं पड़ी। उसके जीवन में पूर्णिमा पहली ही रमणी नहीं थी। आज उसे अपनी शक्ति पर पूरा विश्वास था।

चालीस मील के करीब रास्ता तय हो चुका था। नदी का घाट आ रहा था इसलिये रास्ते में बहुत से मोड़ थे। मोटर की गति धीमी हो गई। विलास ने मृदुल स्वर से पुकारा—“पूर्णिमा!”

“क्या ?”

“कितनी रमणीय रात है आज?”

“हाँ है तो बड़ी सुन्दर।”

“नदी की जलधारा आ रही है।”

"ऐसा ?"

"यहाँ हम लोग थोड़ी देर ठहरें तो कैसा होगा ?"

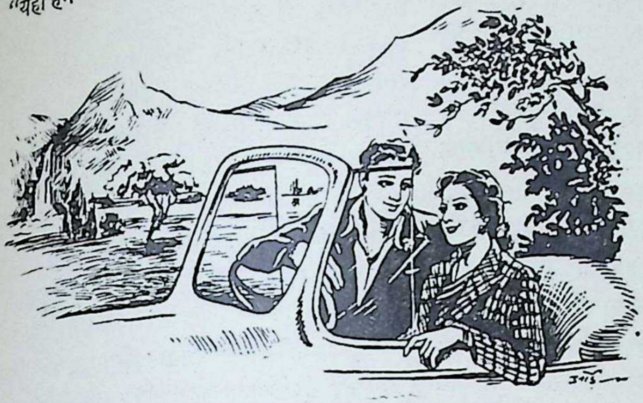

"कहाँ ?"

"इसी नदी के किनारे — चांदनी रात है, सलोनी हवा है। थोड़ी देर इस सौन्दर्य की सुधा का पान कर लें और फिर आगे चले चलेंगे ?"

पूर्णिमा को यह कल्पना बड़ी लुभावनी जान पड़ी। उसका क्रीड़ा-सक्त आमोद-प्रिय हृदय इस रम्य अवसर का सुख लूटने के लिये आतुर हो उठा। तिस पर भी उसने कहा—

"कितने बज गये हैं ? — हम कितनी दूर आ गये हैं ?"

"सिर्फ साढ़े दस वजे हैं — आधी दूर तो हम आ ही चुके हैं। इतना ही और वाकी है !"

"लेकिन ज्यादा देर तो नहीं होगी ?"

"नहीं—तुम जब कहोगी तब उठ चलेंगे। ऐसा सुन्दर अवसर बार बार नहीं आता।"

"लेकिन मुझसे गाना-वाना सुनाने के लिये तो नहीं कहोगे ? इस खुले जंगल में मैं नहीं गा सकूंगी।"

"नहीं जी, मैं कुछ नहीं कहूंगा। तुम जो जो कहोगी वह सब मुझे मंजूर है, अब तो राजी हो !"

मोटर पुल से आधे फर्लांग पर रास्ते में करीब आठ गज़ अन्दर, एक गहरी सायावाले बड़ के पेड़ के नीचे खड़ी कर दी गई। पूर्णिमा अपना ओवरकोट लेकर उतरी। विलास ने मोटर को चाबी लगाई और फिर बाँये कन्धे पर अपना ओवरकोट टांग लिया और दाहिने हाथ में अपनी भरी हुई दुनाली बन्दूक पकड़ ली। फिर वे दोनों एक पगडंडी से नदी के किनारे किनारे सड़क से दूर जाने लगे। पगडंडी सकरी थी इस लिये दोनों सटे हुए जा रहे थे और दोनों के बदन एक दूसरे से सटे हुए थे। विलास ने अपने बाँये हाथ से पूर्णिमा का दाहिना हाथ लपेटकर कहा—

"मेरे साथ साथ चली आओ।"

"जान पड़ता है तुम यह रास्ता अच्छी तरह जानते हो।"

"हां", विलास ने हँसकर कहा। "मैं तो इसी इलाके का रहनेवाला जंगली आदमी हूँ न ? मैं तो यहाँ के एक एक झाड़ और पत्थर को जानता हूँ।"

"यह बात है"—कह कर पूर्णिमा भी हँस दी।

"यहाँ जंगली जानवर का तो डर नहीं है ?" फिर पूर्णिमा ने पूछा।

"नहीं, इस जगह नहीं है। पर इसी नदी पर, यहाँ से नौ मील के करीब बहुत घना जंगल है, वहाँ शेर-चीते रहते हैं। मैं कई बार वहाँ शिकार करने गया हूँ। मैं जब पास हूँ तब कोई डरने की ज़रुरत नहीं है यह देखो क्या है, अपने साथ ! "यह कह कर उसने अपनी बन्दूक शान से दिखाई।

पूर्णिमा को परसों का दिन याद आया जब विलास ने एक ही गोली में शेर का काम तमाम किया था। विलास की निडरता और बहादुरी देखकर पूर्णिमा को बड़ा अभिमान हुआ। नारी सदैव पुरुषार्थ पर आसक्त होती है।

डेढ़-दो फर्लांग चलने के बाद, एक स्थान की तरफ निर्देश करते हुए विलास ने कहा—"आओ, यहीं बैठे।"

वह जगह यथार्थ में बड़ी सुन्दर थी। वहाँ नदी मुड़ गई थी और उस स्थान पर खड़े रहने से ऐसा लग रहा था कि उसके तीन तरफ पानी है और चौथी तरफ एक टीला। आस पास की जमीन से वह स्थान कुछ नीचा था, इसलिये वहाँ से न तो सड़क दीख रही थी, और न मोटर। पूर्ण एकान्त था। पानी की समीपता के कारण ज़मीन पर ठण्डी हरी दूब ऊगी हुई थी। वहीं अपना ओवरकोट

बिछाकर पूर्णिमा बैठ गई। उसका मुँह पानी की तरफ था, पीठ टीले की तरफ। विलास भी पास ही, बिलकुल नज़दीक बैठ गया। बन्दूक और ओवरकोट अपने दाहिने हाथ की तरफ ज़मीन पर रख दिया।

"वाह, कितना सुन्दर है यह स्थान ?"—पूर्णिमा ने जल धारा के प्रशान्त प्रवाह की तरफ देखकर कुछ ज़ोर से और कुछ अपने तयीं कहा। इस जगह नदी न ज़्यादा बड़ी थी न ज़्यादा छोटी। पानी गहरा था इसलिये उसका प्रवाह मंद था। ऊपर आकाश में निर्मल चन्द्रमा चमक रहा था। कभी कभी वह हलके वादलों में छिप जाता जिसके कारण सारी सृष्टि पर धूप-छांह सरीखा आवरण पड़ जाता।

आकाश में असंख्य तारे जग मगा रहे थे किन्तु उनकी आभा सौम्य थी। नदी के जल पर से बहकर आनेवाली मन्द एवं शुद्ध वायु बड़ी आल्हादकारक थी। आस पास घने किन्तु ऊँघते हुए वृक्षों का बन था जहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। कहीं दूर झींगुर किर्रऽऽ करता हुआ उस एकान्त वातावरण की स्तब्धता को भंग कर रहा था। उस अदभुत-रम्य वातावरण में सौंदर्य था, माधुरी थी, उन्माद था। पूर्णिमा के शरीर, मन और हृदय पर उसका गहरा प्रभाव छा गया और वह उस वातावरण के रंग में पूरी तरह रंग गई। उस पर एक प्रकार की धुंधी चढने लगी।

पूर्णिमा सौन्दर्य-प्रिय रमणी थी। अपने प्रियतम के सान्निध्य में इस मनोरम वातावरण का उसके समूचे व्यक्तित्व पर असर पड़े बिना नहीं रहा। उसकी भावनाएँ उमड़ पड़ीं। उनके प्रवाह में वह अपने आपको छोड़ देना चाहती थी, क्योंकि उनको रोकना उस अपूर्व सुख के ख़ज़ाने को न्यून करना था।

विलास उत्कटता और एकाग्रता से पूर्णिमा के प्रत्येक भाव-प्रतिभाव को देख रहा था। उसने पूर्णिमा को अपने वाये हाथ की लपेट में लेकर नज़दीक खींचा। वह चुपचाप बिना आनाकानी किये पास खिसक आई। सिर्फ धीरेसे गुनगुनाती-सी वोली—"ठण्ड लगती है।"

विलास को भी कुछ ठण्ड लग रही थी। उसने अपना ओवरकोट फैलाकर आधा पूर्णिमा को उढ़ा दिया और आधा उसने स्वतः ओढ़ लिया। ऐसा करते हुए उसने फिर पूर्णिमा को अपने पास खींच लिया।

इसी तरह दोनों चुपचाप बैठे थे। पूर्णिमा अपनी तन्द्रा में लीन थी। उसे अपने हृदय की धड़कन की आवाज़ ज़ोर से सुनाई दे रही थी। विलास की साँसे भी वह सुन सकती थी।

"पूर्णिमा" विलास ने पुकारा। उसकी आवाज़ बदली हुई थी। उसमें कुछ कम्पन था। पूर्णिमा को लगा, उसके नित्य के संबोधन से कितना भिन्न था वह।

'हूं'—पूर्णिमा ने अपना मुँह घुमाकर विलास की तरफ देखते हुए कहा। फिर दोनों की आँखें मिल गईं। पूर्णिमा ने देखा कि विलास की आँखें एक विचित्र भावावेश में चमक रही हैं। उनमें आतुरता है, और तीव्र क्षुधा है; वासना का उन्माद है। उन आँखों में उसे अपूर्व आकर्षण दीख पडा और वह उन पर बेवस मुग्ध हो गई।

विलास ने अपने दाहिने हाथ में पूर्णिमा का हाथ लिया और उसे ज़ोर से दबाया। पूर्णिमा ने देखा, उसका हाथ कितना बड़ा और सख्त था। उसने आज तक अपने 'वापू' के हाथ को छुआ था—और किसी पुरुष से हाथ मिलाने के अलावा इतनी घनिष्ठता से स्पर्श नहीं किया था। लेकिन उसे उस स्पर्श में और आज के इस स्पर्श में भीषण अन्तर दीख पड़ा। जीवन में पहली ही वार उसे यह भान हुआ, और अनुभव उसे उन्मादकारक एवं आल्हाददायक जान पड़ा—किंचित् भीतिजनक भी।

अकस्मात् आवेश में आकर विलास ने काँपती हुई आवाज़ में—"पूर्णा–पूर्णा" कहकर उसे अपने वाहु पाश में जकड़ लिया। पूर्णिमा ने अपना सिर उस के वक्ष में छिपा लिया और अपनी आंखें मूंद लीं।

पूर्णिमा उन्मत्त आनन्द के प्रबल आवेग में अपने आपको न सम्हाल सकी। उसके शरीर का प्रत्येक कण रोमांचित हो उठा।

"विलास ! विलास !" उसने कातरता से पुकारा। विलास ने निमिषमात्र में उसकी ठोड़ी को हाथ लगाकर उसका चेहरा उपर उठाया और—

पूर्णिमा को लगा कि उसे किसी स्वर्गीय अनुभूति की प्राप्ति हुई है। उसका ज़र्मान से सम्बन्ध छूट गया है और वह दूर, अत्यन्त दूर, अनन्त आकाश में अप्सरा की तरह उड़ रही है। मानों उसके शरीर में पंख लग गये हों।

पूर्णिमा ने अपने आपको एकदम असहाय पाया। उसके आवेग का बांध टूट चुका था। उमड़ी हुई भावनाओं के प्रवाह में वह पूर्ण रुपेण बह गई।

इस क्षणिक सुख को उसने अपने जीवन में कभी अनुभव नहीं किया था। दूर कहीं वही कीड़ा किर किरा रहा था। नदी का प्रशान्त प्रवाह उसी प्रकार बह रहा था और आकाश में तारे जगमगा रहे थे किन्तु चन्द्रमा बादलों के पीछे छिप गया था।

पर इन सबका उसे कोई भान नहीं रहा। वह केवल इतना ही जानती थी कि वह अपने प्रियतम से अभिन्न है। वह कहाँ है, क्या कर रही है इसकी उसे स्मृति हीं नहीं रही। उसका सारा विश्व इसी एक क्षण की, इसी उत्कट आनन्द की, अनुभूति में केन्द्रीभूत हो गया, और उसके लिये अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं बच रहा।

जब उनकी मोटर रवाना हुई तब बारह बज चुके थे!

विनय ने मोटर की स्पीड बढ़ाई। बाकी सफर में कोई कुछ न बोला। ठीक सवा बजे रात्रि को पूर्णिमा बिजली की रोशनी में अपने शयनागार के बड़े आइने के सामने खड़ी थी। अपने चेहरे के प्रतिबिंब को देखकर उसके मुँह से अकस्मात् विस्मय का शब्द निकल पड़ा। चेहरे पर एक ऐसा विचित्र भाव था जो उसने आज तक नहीं देखा था! मानों वह पूर्णिमा नहीं और कोई स्त्री है।

बाईसवाँ-परिच्छेद

: स्वप्न-भंग :

दूसरे दिन पूर्णिमा देर से सोकर उठी। चाय पीकर वह अपने ड्रेसिंग टेबल के सामने श्रृंगार करने के लिये बैठी हुई थी। आज तक इतनी अजीब थकावट उसे कभी नहीं मालूम हुई थी— पर उस थकावट में भी उसे सुख मिल रहा था। उसके गात्रों में किंचित् मीठा-सा दर्द हो रहा था, जो उसे गत रात्रिके उत्कट अनुभवकी याद और उस मधुर अनुभूति को फिर से मन ही मन दुहराने के लिये उसने अपनी आखें मूंद लीं।

तो यही प्रणय है! यही वह शक्तिशाली भावना है जो स्त्री और पुरुष की आत्मा में अद्भुत परिवर्तन कर देती है जिसके बारे में अनादि काल से कवियों और कलाकारों ने गीत गाये हैं और सुनहले सपने रंगे हैं।—

सपने नहीं तो क्या? कल आवेग का जो तूफान उठा था वह कितना प्रबल था, कितना उन्मादकारी कितना उद्दाम! उसके सामने संयम, विवेक, संस्कार सब कुछ उड़ गये जैसे किसी भयानक ववंडर के सामने—झाड, तार के खंभे और ग़रीबों की झोपड़ियाँ उड़ जाती हैं।

संज्ञाशील मन एवं विवेकशील हृदय की उपस्थिति में उसने इस प्रकार की आंधी कभी उठते नहीं देखी थी। कल तो जैसे वह किसी नशे में चूर थी। आज वह सब काफूर हो गया है एक सुन्दर स्वप्न की तरह। केवल उसकी स्मृति मात्र रह गई है। कल रात्रि को जल-धारा के किनारे भावनाओं को उद्दीप्त करनेवाली सलोनी चांदनी में, वह कुछ उत्तर नहीं दे सकती थी। किन्तु आज इस शीतल प्रातःकाल में वह अपने कमरे में अकेली सूर्य प्रकाश के सामने बैठी है और ठण्डे दिमाग से सोच रही है। आज वह शान्त भाव से यह प्रश्न कर सकती है और इस प्रश्न का उत्तर स्वतः से मांग सकती है।

नहीं, यह ठीक नहीं हुआ कि उसने इस तरह अपने आपको प्रवाह में छोड़ दिया। माना कि विलास उसका प्रेमी है, उसके साथ वह प्रणय के सूत्र में बंधी हुई है और कुछ सभय के बाद विवाह-सूत्र में भी बंधनेवाली है। यह सब ठीक है, किन्तु केवल इसी कारण उसे अन्तिम सीमा तक जाने का अधिकार क्यों कर मिल जाता है? उसके और विलास के बीच में कितनी ही गहरी प्रीति क्यों न

हो, विवाह के पूर्व इस प्रकार प्रवाह-पतित हो जाना उचित नहीं था।

हिन्दू नारी के युगों युगों के संस्कार उसके अन्दर से बोल रहे थे। उसी क्षण उसकी दृष्टि मां की तस्वीर पर पड़ी जो उसके पलंग के सिरहाने से उसकी तरफ देख रही थी। उसे लगा कि मां के चेहरे का भाव बतला रहा है कि अपनी कन्या का यह कार्य उसे पसंद नहीं है। या यह केवल उसकी कल्पना ही है ?

क्या मां के जीवित रहते हुए वह ऐसा काम करती ? शायद करती, या शायद न करती। कल रात्रि को वह भावनाओं के आवेग में तो सब कुछ भूल गई थी—मां की स्मृति, बापू, विनय बाबू—सबको। उस समय तो उसका सारा अस्तित्व, बुद्धि, मन और हृदय उस परम उत्कट क्षण के सुख का उपभोग करने में तल्लीन था। बाकी जगत् तो उसके लिए विस्मारित ही हो गया था।

लेकिन इस समय विनय की याद क्यों ? क्या वह उसके साथ इस प्रकार वर्त्ताव कर सकता था ? क्या वह विलास ही की तरह उससे पेश आता ?

नहीं कदापि नहीं।

इस प्रकार न जाने कहाँ कहाँ से इस तरह के सवाल उसके दिमाग मे उठने लगे। इन सब परस्परविरोधी विचारों ने उसे किंचित् अस्वस्थ सा कर दिया। लेकिन केवल थोड़ी देर के लिये ही।

उंह ! जो हो गया सो हो गया। विलास कोई पराया तो है नहीं। उसके साथ शीघ्र ही विवाह निश्चय की घोषणा होनेवाली है, और बाद में उसीके साथ उसका विवाह भी होनेवाला है। फिर अधिकचिन्ता वह क्यों करे ?

और एक अंगड़ाई लेकर उसने एकाग्रता से अपनी केशभूषा करना शुरु कर दिया।

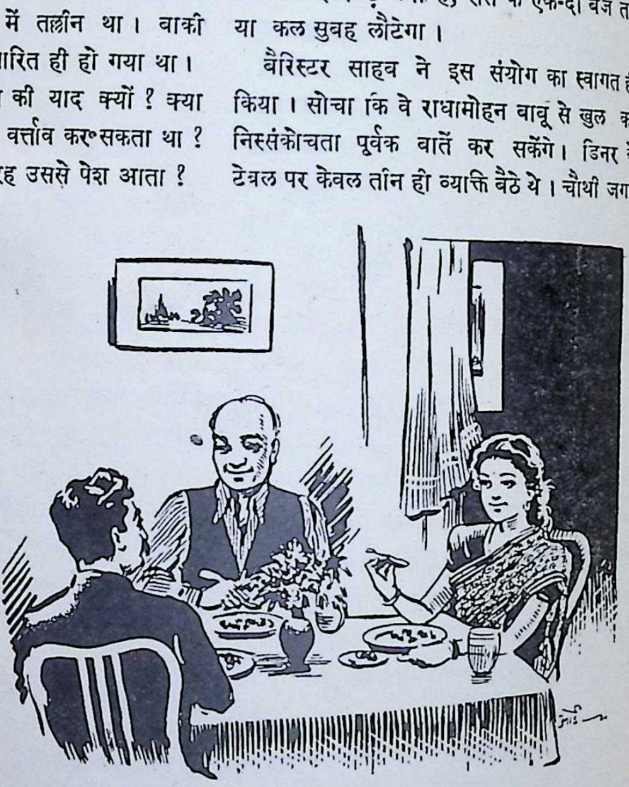

तीन जनवरी की सुबह राधामोहन बाबू मोटर से शहर आये। दोपहर को वे कामकाज के सिलसिले में अदालत गये और रात को बैरिस्टर पण्डित साहब ने उन्हें तथा विलास बाबू को डिनर के लिये आमंत्रित किया। उस दिन खाने के बाद ही वे पूर्णिमा और विलास के विवाह की बात निकालना चाहते थे। इसी हेतु बैरिस्टर साहब ने और किसी व्यक्ति को आमंत्रित नहीं किया था।

रात को साढ़े आठ बजे जब राधामोहन बाबू की मोटर पोर्च में आई तो उसमें से सिर्फ वे अकेले ही उतरे। बैरिस्टर साहब को आश्चर्य हुआ। लेकिन जल्द ही उन्होंने उनका असमंजस दूर करते हुए कहा कि एक ज़रूरी दस्तावेज़ लेने के लिये विलास इन्द्रगढ़ गया है, रात के एक-दो बजे तक या कल सुबह लौटेगा।

बैरिस्टर साहब ने इस संयोग का स्वागत ही किया। सोचा कि वे राधामोहन बाबू से खुल कर निस्संकोचता पूर्वक बातें कर सकेंगे। डिनर के टेबल पर केवल तीन ही व्यक्ति बैठे थे। चौथी जगह खाली थी। बातचीत तो ज़्यादातर बैरिस्टर साहब तथा राधामोहन बाबू के बीच ही हो रही थी। पूर्णिमा सिर्फ सुन ही रही थी, और खाना परोसने में मदद करती थी।

भोजन के बाद दोनों पुरुष हॉल में आकर बैठ गये और पूर्णिमा अपने कमरे में चली गई। धूम्र-पान चलने लगा—कुछ सोड़ा वाटर और हल्की शराबनुमा शरबत की एक प्याली भी सामने आई। जिसके प्रभाव से उन दोनों की गपशप की रफ्तार और तेज़ हो गई।

"मैं आपसे एक निजी मामले में बातचीत करना चाहता था, राधामोहन बाबू! इन्द्रगढ़ में ही यह मौका निकालना चाहता था लेकिन चूंकि वहाँ दीगर लोग हाज़िर थे और आपको भी फ़ुरसत नहीं थी, इसलिये बात न कर सका। आपको इस समय कहीं जाना तो नहीं है?"—वैरिस्टर साहब ने पूछा।

"जी नहीं, कहीं नहीं। कहिये क्या बात है। मेरे लायक कोई सेवा हो तो ज़रूर कहिये—मैं अवश्य करूँगा। इस समय मुझे फ़ुर्सत भी है। विलास होता तो मुझे सिनेमा ले जानेवाला था, लेकिन अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा। "तब ठीक है। फिर हम लोग आराम से बातें कर सकते हैं।"—वैरिस्टर साहब ने फिर खांस कर गला साफ करते हुए कहा, "मैं आपसे अपनी लड़की पूर्णिमा के बारे में कहना चाहता था। यदि आपको पसन्द हो तो पूर्णिमा और विलास बाबू का जोड़ा अच्छा शोभेगा। मेरी राय में दोनों एक दूसरे के अनुरूप हैं और जहाँ तक मेरा अन्दाज़ है दोनों एक दूसरे को चाहते भी हैं। आपकी तरफ से कोई एतराज़ न हो तो फिर यह सम्बन्ध स्थिर हो सकेगा।"

"ऐसा?" राधामोहन बाबू ने आश्चर्य चकित होकर कहा, क्योंकि उनकी कल्पना नहीं थी कि वैरिस्टर साहब उनके पास इस प्रकार का कोई मामला पेश करेंगें। क्योंकि उन्हें ख़्याल था कि वे पूछेंगे तो कोई रुपये पैसे के या मुक़दमे बाजी के बारे में पूछेंगे। एक क्षण के लिये उन्हें सूझ न पड़ा कि क्या उत्तर दें। उनकी आँखों के सामने पूर्णिमा की मूर्ति तथा उसकी और विलास की वे सब घटनाएँ याद आईं जो इस सप्ताह के दौरान में इन्द्रगढ़ में घटी थीं। उन्हें वैरिस्टर साहब के इस कथन में कि दोनों ने एक दूसरे को पसन्द किया है, सचाई जान पड़ी। "आपकी इच्छा यदि पूरी कर सका तो मुझे खुशी होगी। लेकिन—विवाह के बारे में तो मैंने सारी बातें विलास पर ही छोड़ दी हैं।" राधामोहन बाबू ने कहा। एक बार पिछले वर्ष बिक्रमपुर वालों की लड़की आई थी–अच्छा ख़ानदान है, और अच्छे आसामी हैं वे—तो उसने कह दिया कि शादी के मामले में यदि उसकी पसन्दगी के मुताबिक काम हो तो अच्छा। और फिर उसने यह भी कहा कि विलायत वैरिस्टरी पढ़ने जाना ही है। वहाँ से लौटने के बाद शादी की जाय तो बेहतर होगा। मैंने यह बात उसी समय मंजूर कर ली। पढ़ा-लिखाकर बड़ा किया, एक ही लड़का है—मैं उसके दिल के ख़िलाफ नहीं जाना चाहता। हाँ, विलायत जाने के पहिले शादी हो जाती तो बहू घर रहती; मुझे और घर वालों को दोनों को बड़ा अच्छा लगता। लेकिन मैंने कहा न कि इस मामले में उसकी मर्ज़ी के बाहर में नहीं जाना चाहता। उससे मैं कल ही बातचीत करूँगा और आपको इत्तला दूँगा कि उसकी क्या राय है।"

"जी हाँ, आप उन्हींसे बातचीत कर लीजिये तभी बतलाइये। मैं खुद इसी राय का हूँ कि बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो उन्हीं की रज़ामन्दी से ऐसे काम करने चाहिये।"

वैरिस्टर साहब ने खुश होकर कहा। उन्होंने सोचा कि बूढ़े ने जब विलास पर सारी ज़िम्मेदारी छोड़ दी है तो बात पक्की होने में देर नहीं।

"और जैसा आप कहते हैं कि दोनों ने एक दूसरे को पसन्द किया है, तो फिर आर कोई अड़चन में नहीं देखता। सवाल फिर यह रह जाता है कि विवाह कब हो?" उसका विलायत जाना तो बिलकुल तय है। हमारे घराने में अब तक कोई परदेश नहीं गया है और लड़का जब लायक हो गया है तब उसे मैं ज़रूर विलायत भेजूँगा। कितना ही खर्च क्यों न लगे। लेकिन इसके बारे में तो मुझे उसी से सलाह करनी होगी। कल रात को मैं उस से बातचीत कर लूँगा और परसों सुबह आपको इत्तला कर दूँगा — हाँ या नहीं। ठीक न होगा?" — राधामोहन बाबू ने पूछा।

"बिलकुल ठीक होगा"— बैरिस्टर साहब ने समाधानपूर्वक कहा और बात यहीं ख़तम हो गई। राधामोहन बाबू को उनकी मोटर तक पहुँचाने के लिये बैरिस्टर साहब ने पूर्णिमा को भी बुलवा लिया। इस बार राधामोहन बाबू ने एक नई दृष्टि से पूर्णिमा की तरफ देखा जैसे वे एक ही नज़र में उसे पढ़ लेना चाहते हों। भर्ऽऽ करती हुई मोटर चली गई।

अन्दर हॉल में जाने के बाद बैरिस्टर साहब ने पूर्णिमा को उनकी बातचीत का पूरा हाल बतलाया। दोनों ही खुश थे। उन्हें डर था तो राधामोहन बाबू की तरफ से ही था कि शायद उन्हें कोई एतराज़ हो। लेकिन, चूँकि अब सारी बात विलास के हाथ में थी तो उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि सफलता निश्चित है। बैरिस्टर साहब ने संतोष की साँस ली कि आज एक बड़ा काम बन गया, लेकिन बैरिस्टर साहब को आश्चर्य और निराशा का घोर आघात लगा, जब तीसरे दिन सुबह विलास बाबू का नौकर बुध्दू एक नीला लिफाफा लेकर उनके बंगले पर आया। पत्र इस प्रकार था :—

सिविल लाइन्स
५ जनवरी—

माननीय बैरिस्टर साहब,

परसों रात को आपने जो चर्चा छेड़ कर मुझे गौरवान्वित किया था उसके बारे में मैंने कल रात को विलास बाबू से काफी देर तक चर्चा की। मुझे बड़ा अफसोस है कि इस संबंध में मुझे आपको निराश करना पड़ेगा। विलास बाबू का यह निश्चय कायम है कि वे जब तक विलायत से लौट नहीं आते तब तक विवाह नहीं करेंगे। बेहतर होगा कि आप इस सिलसिले में और कहीं बातचीत करें क्योंकि ऐसे नाजुक मामले में किसी प्रकार की ज़ोर ज़बर्दस्ती करना उचित नहीं है यह आप भी स्वीकार करेंगे।

आपके स्नेह के लिये आभारी हूँ। आशा है आप मुझे क्षमा करेंगे। चि० पूर्णिमा को आशीर्वाद।

आपका नम्र,
राधामोहन सिंह

इस छोटे से पत्र को पढ़ कर बैरिस्टर पंडित हत-बुद्धि हो गये। करीब पन्द्रह मिनट तक वे पत्थर की मूर्ति की तरह स्तंभित हो कर सन्न से बैठे रहे। कभी स्वप्न में भी उन्हें ख़्याल नहीं था कि इस प्रकार का जवाब उन्हें मिलेगा। पूर्णिमा को क्या बतलावेंगे? किस मुँह से बतलावेंगे? उस बेचारी लड़की के दिल पर क्या बीतेगा?

लेकिन क्या यह चिट्ठी सच है? उन्हें एक बार उसके बारे में भी शक होने लगा। उन्होंने विश्वास नहीं किया कि यह घटना सच हो सकती है! विलास का इतना सब स्नेह-प्रदर्शन, आना-जाना, नैकलेस की भेंट आदि क्या पाखण्ड ही था? इस चिट्ठी के बाद उन सब बातों का क्या मतलब रह जाता है? क्या वह एक हल्के चरित्र का भौंरा है जो भिन्न-भिन्न फूलों पर बैठकर मकरन्द का स्वाद लूटता फिरता है? इस शर्मनाक अवस्था की संभावना ने उनका हृदय क्रोध और अपमान की भावना से भर दिया!

नहीं, शायद यह पत्र आख़री बात नहीं है। इसमें भी कोशिश करने से सम्भवतः परिवर्तन हो सकता है। कहीं न कहीं कोई ग़लत फ़हमी ज़रूर होगी। नहीं तो बात इस तरह से हमेशा के लिये ख़त्म नहीं की जा सकती! खुद जाकर कोशिश करनी चाहिये। क्योंकि अगर इस निर्णय में परिवर्तन नहीं हुआ तो उस बेचारी लड़की का क्या होगा?

पूर्णिमा के सुख को इस तरह के सत्यानाश वे हर तरह से बचाने की कोशिश करेंगे!

नहीं, वे यह नहीं बर्दाश्त कर सकेंगे। वे ज़रूर इस निर्णय को बदलवा लेंगे। ज़रूर बदलवा लेंगे।

और इसी उद्विग्न मनःस्थिति में बग़ैर किसी से कुछ कहे उन्होंने गॅरेज से मोटर मँगवाई और वे विलास बाबू के निवास स्थान पर, जहाँ राधामोहन बाबू ठहरे हुए थे, गये! आजतक कभी वे उस बंगले में नहीं गये थे, लेकिन आज ज़रूरत उन्हें यहाँ खींच लाई।

राधामोहन बाबू ने उनका आदर से स्वागत किया। दोनों एक कमरे में एकान्त में बातें करने चले गये! विलास की वहाँ ठहरने की हिम्मत न हुई। इस लिये वह अपनी मोटर उठा कर बाज़ार जाने का बहाना करके चल पड़ा।

बैरिस्टर साहब ने राधामोहन बाबू से बड़ी अजीज़ी के साथ अनुनय की कि पूर्णिमा और विलास के विवाह की चर्चा शहर भर में फैल गई है, संभ्रान्त और ऊँचे क्षेत्रों में भी उसका ज़िक्र है। कई लोगों ने उन्हें साथ-साथ सिनेमा में, होटलों में, टेनिस कोर्ट पर, मोटर में घूमते हुए देखा है। यदि यह विवाह नहीं हुआ तो विलास बाबू का तो कुछ नहीं होगा लेकिन पूर्णिमा की बड़ी बदनामी होगी और बैरिस्टर पंडित साहब भी किसी को मुँह दिखाने के लायक नहीं रहेंगे।

पूर्णिमा विलास बाबू को चाहती है। और इस इन्कारी से तो उसका दिल टूटे बग़ैर नहीं रहेगा। वह मातृ-विहीना कोमल लड़की है जिसने सुख ज़्यादा देखा ही नहीं है। इस दुर्घटना से तो उसकी ज़िन्दगी ही बर्बाद हो जावेगी। यदि विलायत जाने का ही सवाल है तो विवाह अभी हो जाय, और विलास बाबू पूर्णिमा को अपने साथ विलायत ले जाँय। वह भी किसी कॉलेज में पढ़ने लगेगी और ज़रूरी हो तो उसका सब ख़र्च बैरिस्टर साहब उठावेंगे। लेकिन किसी भी तरह से इस बदनामी को तो बचाना ही चाहिये। विलास बाबू का भी जहाँतक उनका ख़्याल है, पूर्णिमा से प्रेम है, फिर न जाने क्यों वे इस तरह का रूप अख़्त्यार कर रहे हैं। बात कुछ समझ में नहीं आती। इसी तरह बैरिस्टर साहब आवेश में ही सब कहते चले गये।

राधामोहन बाबू ने ध्यान से उनकी सारी बातें सुनकर यही बतलाया कि इन सब दलीलों के सहारे वे विलास से पूरी तरह, सब दृष्टियों से, बातचीत कर चुके हैं, लेकिन विलास बाबू को यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि दोनों ने एक दूसरे को पसन्द किया है!

पूर्णिमा के साथ उनकी मित्रता थी और जब दो युवक-युवती की मित्रता होती है तो लोग उनके प्रेम और विवाह के बारे में अफवाहें तो उड़ाते ही रहते हैं। उस पर ध्यान देने की कोई ज़रूरत नहीं। लेकिन उनके मन में पूर्णिमा से विवाह करने का ख़्याल ही नहीं आया और उन्होंने पूर्णिमा को इस नज़र से कभी देखा ही नहीं। इसलिये उन्हें बड़ा दुख है कि वे इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हो सकते। और विलायत जाने का उन का निश्चय तो पक्का है ही; उस में कोई फर्क नहीं हो सकता! इसलिये बेहतर है कि बैरिस्टर साहब इस बात को यहीं छोड़ दें क्योंकि उनकी धारणा है कि विलास बाबू अपने निर्णय के बारे में दृढ़ प्रतिज्ञ हैं! उन्हें बड़ा रंज है कि बैरिस्टर साहब के दिल को इस घटना से गहरी चोट पहुँची है लेकिन मजबूरी है। वे बैरिस्टर साहब से मुआफी चाहते हैं—अपनी तरफ से तथा अपने लड़के की तरफ से।

बैरिस्टर साहब ने अपने सिर का पसीना पोंछते हुए राधामोहन बाबू से विदाई ली। उनके हृदय को एक और धक्का लगा कि विलास का पूर्णिमा से कोई प्रेम नहीं है। और जो कुछ उसके अब तक सम्बन्ध थे वे केवल मित्रता के ही थे। पूर्णिमाने उसकी भावना को ग़लत समझा और वह शायद उसपर हृदय से प्रेम करने लगी। इसका परिणाम कितना भयंकर होगा इसकी कल्पना करते ही उनका दिल दहल उठा। उनके मन में यह विचार आये बिना नहीं रहा कि विलास नीच प्रकृति का, ओछा युवक है और उसने पूर्णिमा जैसी सरल हृदया लड़की को भुलावा देकर धोखा दिया है।

वे जब अपने बंगले पर लौटे तो उनका चेहरा उतरा हुआ था। संताप, अपमान और वेदना से उनका हृदय आच्छन्न हो उठा और उन्हें लगा कि यह आघात बर्दाश्त करना उनके लिये कठिन होगा। वे खुद अपने आपको किस तरह सँभाल सकेंगे! और वे किस प्रकार पूर्णिमा को यह समाचार बतला सकेंगे?

पूर्णिमा ने उन्हें इस तरह बिना बतलाये असमय बाहर जाते हुए कभी नहीं देखा था। इसलिये जब मोटर उन्हें लेकर गई तो उसी वक्त उसका हृदय आशंका से भर गया। वह उनके लौटने का रास्ता ही देख रही थी। बैरिस्टर पंडित लौटे तो सीधे अपने सोने के कमरे में घुस पड़े और वहां एक कोच पर धड़ाम से जाकर पड़ गये! पूर्णिमा उन्हें खोजती हुई आई और उनकी हालत देखकर घबड़ाकर चिल्ला पड़ी।—

“बापू बापू। क्या हुआ आपको?” बैरिस्टर पंडित साहब ने मुँह से एक शब्द भी न निकाला, पर जेब से वही नीला लिफाफा निकालकर पूर्णिमा की तरफ फेंक दिया और वे ‘कुशन’ में अपना मुँह छिपाकर पड़े रहे।

* * *

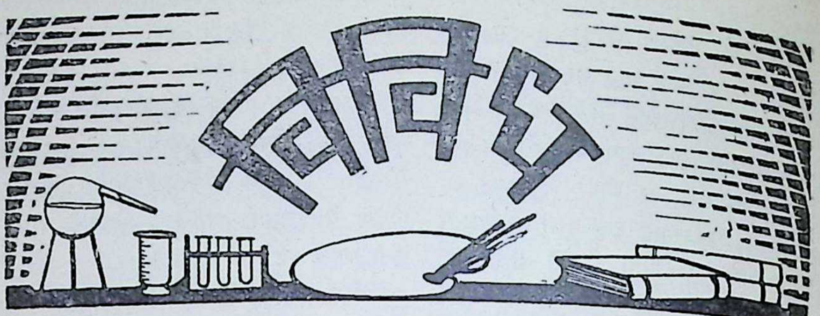

अगस्त का मासिक घटना चक्र

- ★ विश्व शान्तिके खतरे का केन्द्र बिन्दु—कोरिया :
- ★ फारमोसा—एक नया ख़तरा :
- ★ जर्मनी का संकट—हमें एक सबक ;
- ★ भारतीय आन्तरिक समस्याओं से गंभीर एक समस्या :
- ★ अन्तर्विश्व विद्यालय बोर्ड के निश्चय :

[श्री· ललिताप्रसाद पुरोहित]

अगस्त का महीना हमेशा से हमारे जीवन के चढ़ाव उतारों का एक केन्द्र बन कर रहता आया है; फिर क्यों न वह सन् १९५० में भी पुनः अपने उसी महत्व के साथ आकर, जाना चाहता हो। विश्व और राष्ट्र की वाह्यान्तर स्थितियां—कुछ राष्ट्रों की निर्वाध महत्वाकांक्षाओं, मानवीय विकारों और कुछ दैवयोगों से—ऐसी विचित्र बनती जा रही हैं कि उन्हें सुलझाने के प्रयास नयी-नयी उलझनें खड़ी कर रहे हैं। कोरियायी युद्ध एक ओर विश्व संघर्ष का केन्द्र बनने की तैयारी में हैं, दूसरी ओर जर्मनी भी शिथिल मैत्री के बांध तोड़ देने के लिये किसी अवसर की प्रतीक्षा कर रही है, काश्मीर-प्रश्न दो राष्ट्रों के लम्बे गतिरोध के कारण कहीं अधर लटका हुआ है तो देश के विस्थापितों, उद्योगों-उत्पादनों, विकास-योजनाओं आदि की राष्ट्रीय समास्यायें देश की किसी हानि और राजनीति की एक सूत्रता ढीली करने की पृष्ठ भूमि बनना चाहती है, इधर अतिवृष्टि अनावृष्टि, भूडोल-भूचाल जैसे नित नये दैवी प्रकोप जाने किन दुर्भाग्यों को अलग न्यौता दे रही है। यों यह सारा माह अनेक तिथियों की विवश-स्मृति का एक खासा केलेण्डर बनता जा रहा है। इसी समय क्या यह प्रतीक्षा कम की जा रही है कि विश्व का मानव मस्तिष्क के विकार छोड़कर मन की भावनाओं में इन सारी परिस्थितियों तथा उनके परिणामों का विचार करें।

कोरिया : विश्व शान्ति के खतरे का केन्द्र-बिन्दु :

कोरियायी युद्ध, जो अपनी गृह-समस्यायों के परिणामों से अधिक दो बड़े राष्ट्रों की आपसी प्रतिद्वन्दिता तथा अनबन के कारण लड़ा जा रहा है — युद्ध-भूमि और विश्व राष्ट्र संघ के न्यायालय में शस्त्रास्त्रों और मस्तिष्क के चरम संघर्ष का सामना कर रहा है। सुरक्षा परिषद में ७ महीनों तक पिछाड़ी लेते रहने के वाद रूस ने शतरंज के मोहरे की तरह जो चाल खेली है उसने इस समूचे प्रश्न को ही पेंचीदगी में डाल दिया है। सम्भव है रूस ने यही सोचा हो कि उसके इस एक मास के नेतृत्व में भले कोरियायी युद्ध का वह मन चाहा निर्णय करा लेने में असफल रहे फिर भी कोरिया-विजय के लिये सुरक्षा परिषद में वाक्युद्ध खड़ा करके एक लम्बा समय प्राप्त कर ले जाना ही क्या बुरा है। साम्यवादी चीन को संघ द्वारा मान्यता

१९५०

दिलाने, दक्षिण कोरिया के साथ उत्तरी कोरिया के भी प्रतिनिधि की परिषद के सामने आने का मौका देने की मांग, कोरिया पर वास्तविक आक्रमण कर्ता का निर्णय कुछ ऐसे प्रश्न है जिनपर परस्पर आरोप-प्रत्यारोपों के अतिरिक्त सुरक्षा परिषद और कुछ नही कर पा रही है।

इस गतिरोध को टालकर विश्व में शान्ति स्थापना के प्रयत्नों के रूप में भारत के दो सुझाव इस अवधि में असफल हुए हैं। अमरीका और सोवियत रूस से साम्यवादी चीन को मान्यता देने और उत्तरी कोरियायी सेनायें ३५ वें अक्षांस से बुलाने का उसका पहला अनुरोध था जो रूस के समर्थन के वाद भी अमरीका द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। इसके वाद भारतीय प्रतिनिधि ने कोरिया प्रश्न का हल ऐसे सदस्य राष्ट्रों के प्रयत्नों में देखा जिन्हें अन्य राज्य को हडपने की महत्वाकांक्षा सता रही हो। इसके लिये उन्होंने क्यूबा, इक्वेडर, इजिप्त, नार्वे, युगोस्लाविया तथा भारत के ६ राष्ट्र सदस्यों की ऐसी जांच समिति के निर्माण की वात सुझायी थी जो शान्ति के लिये आनेवाले सुझावों और प्रस्तावों की जांच करती। अन्त में जैसा भारतीय प्रतिनिधि श्री. बी. एन. राव नें पूर्वापर स्पष्ट कर दिया था सुरक्षा परिषद के सदस्य राष्ट्रों के पूर्ण समर्थन के अभाव में उन्होंने अपने प्रस्ताव को प्रस्तुत नहीं किया। यहां यह उल्लेख किये विना न रहा जायेगा कि संसार के अनेक राष्ट्र भारत के इस मध्यस्थीकरण की आशातीत सफलता की मन ही मन कामना कर रहे थे जो एक गंभीर निराशा में परिणत हो गयी।

आज पेकिंग-रोडियो इस वात का दावा कर रहा है कि दक्षिण कोरियायी मिट्टी के ९० प्रतिशत भाग पर उसका आधिपत्य हो गया है और दक्षिण कोरियाकी अन्तिम राजधानी पुसान की ओर उत्तरी फौज़ें तीव्रता से बढ़ रही हैं तब विश्व न्यायालय में उसकी रक्षा और शान्ति का प्रश्न डांवाडोल हालत का सामना कर रहा है।

फारमोसा एक नया ख़तरा

चीनी गृहयुद्ध-काल से ही वहां के साम्यवादियों की गिद्ध नज़र फारमोसा पर लगी थी। उन दिनों ब्रिटेन ने खुले आम यह घोषणा कर दी थी कि कहीं फारमोसा को साम्यवादो युद्ध-ज्वालाओं की आंच लगी तो वह नया संघर्ष खड़ा कर देगा। और मावत्से तुंग शासन की एक घोषणा ने सार्वजनिक रूप से एक दिन स्पष्ट कर दिया कि चीन के उद्धार के पश्चात् फारमोसा का उद्धार उसके भविष्य का कार्यक्रम होगा।

इस भय से कि कहीं साम्यवादियों के आक्रमण से फारमोसा की शान्ति खतरे में न पड़ जाय अमरीका ने, फारमोसा के जलडमरूमध्य पर अपनी वायु और नौ-सेना की किलेबन्दी कर रखी है। हालही में चीनी मावत्से-तुंग सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ में तार देकर यह घेरा उठा लेने की प्रेरणा अमरीका को करने की मांग की है। क्योंकि चीनी साम्यवादी फारमोसा-उद्धार के लिये कृतसंकल्प हैं। अमेरिका ने अपने उत्तर में यह अभियोग लगाया है कि चीनकी खुली चुनौती के विरूद्ध उसका यह सुरक्षा-प्रबन्ध करना आवश्यक था। इस प्रकार सुदूर पूर्व में खतरे का नया क्षेत्र फारमोसा वन जाना चाहता है। और कौन जानता है कि वहां अपने उपनिवेश विस्तार की राक्षसी-महात्वाकांक्षा और कितने राष्ट्रों को युद्ध विभीषिका का भक्ष्य बनाने का इरादा रखती है।

जर्मनी का संकट—हमें एक सबक :

सुदूर पूर्व में युद्ध की शुरूवात मन में अचानक यह सवाल खड़ा करती है कि क्यों कर कोरिया या फारमोसा ही उसका केन्द्र वन सका; अन्य राष्ट्र संघर्षों का केन्द्र क्यों नहीं। क्या सुदूर पूर्वीय देशों से अधिक स्वार्थ सोवियत रूस या अमरीका के अन्यत्र नहीं थे? आज यह मान कर चलने में कोई आपत्ति नहीं कि वह चाहे सोवियत रूस हो अथवा अमरीका; दोनों 'उद्धार' और 'मुक्ति' के नाम पर अपने अपने साम्यवादी और प्रजातांत्रिक 'साम्राज्य' के विस्तार की लिप्सा से पीड़ित हैं। तथापि दोनों संघर्षों से बच कर अपना स्वार्थ साधन करने में प्रयत्नशील हैं।

कोरिया का संकट हमें यह सोचने के लिए विवश करता है कि जर्मनी की स्थिति जब बुरी तरह पक गयी थी और पिछले दिनों वहां के

खण्डित उपनिवेशों में गत्यावरोध और सैनिक प्रदर्शन शान्ति को चुनौतियाँ दे रहे थे तब वही युद्ध का केन्द्र क्यों नहीं बन पाया। सोवियत रूस इस बात को जानता है यदि जर्मनी में उसने कलह शुरू की तो उसका परिणाम दूसरे दिन विश्व-संघर्ष बन सकता है। एंग्लो अमरीकन गुट वड़े पैमाने पर वहां सुरक्षा या प्रत्याक्रमण की तैयारी तत्काल कर सकता है। इसलिये अपने सिर पर संघर्ष न्यौतने के बदले दूरस्थ अभीप्सित इरादे पूरे करना उसे सुगम और साध्य प्रतीत होता है। दोनों गुट प्रत्यक्ष रूप से अवतक युद्ध में नहीं कूदे हैं यह भी इस स्थिति की विशेषता है जिसके पीछे कोई बड़ा उद्देश्य निहित है। आज युद्ध की ज्वालामुखी पर खड़ा जर्मनी यदि सैनिक-संघर्ष का सामना नहीं कर रहा है तो इस पृष्ठ भूमि में यह कोई बड़ी बात नहीं है।

तव वड़े सन्देह और ग्लानि के साथ एशिया-वासियों के मन में यह प्रश्न खड़ा होता है कि अमेरिका और सोवियट रूस की शत्रुता एशियाई मिट्टी पर क्यों खुलकर खेलना चाहती है? क्या इन राष्ट्रों की नवोदित स्वाधीनता और कमजोरियों का अनुचित लाभ उठाना या उन्हें हड़प बैठना इसका ध्येय नहीं है? इस प्रकार जर्मनी की स्थिति हमें एक सवक दे रही है। ऐशिया खण्ड के समस्त ऐसे राष्ट्रों में आज इस भावना की अनिवार्य आवश्यकता है कि वे सामूहिक ध्वनि में यह स्पष्ट कर दें कि किसी अन्य राष्ट्र या राष्ट्रीय गुट्ट को अपना भाग्य-विधाता बनाने की उनकी अभिलाषा नहीं जो किसी प्रतिद्वन्दी शक्ति की 'हड़प-नीति' के विरूद्ध वाक्-युद्ध या शस्त्र-युद्ध में उनका उद्धारक होना चाहता हो। वे स्वयं अपने भाग्य-विधाता वनने की अभिलाषा रखते हैं।

आन्तरिक समस्यायें और मानवीय विकार

देश की आर्थिक, खाद्यान्न-उत्पादन, काश्मीर आदि जिन समस्याओं को सुलझाने का प्रश्न राष्ट्र के सामने था; संयोग कुछ ऐसे आकर इकट्ठे हुए हैं कि वे सभी नियंत्रण में आने के बदले इस महीने में उग्ररूप धारण कर रही हैं। बम्बई की ६२ कपड़ा मिलों में से ५७ के श्रमिक हड़ताल कर रहे हैं, इन्दोर के भी कुछ हज़ार श्रमिक इधर हड़ताल कर रहे हैं। देश को सन् १९५१ तक खाद्यान्न सामग्रियों से पूरित करने का केन्द्रीय शासन का संकल्प आकस्मिक प्रकोपों द्वारा सन्देह-ग्रस्त बना दिया गया है। देश के पूर्वीय हिस्सों में भूकम्प और अतिवृष्टि लाखों घर, सम्पत्ति और फसलों को नष्ट कर रही हैं। पर्वत मालायें सपाट मैदान में बदल गयी हैं और नदियों ने अपने प्रवाह-मार्ग बदल दिये हैं। आसाम जिस दुर्भाग्य का सामना कर रहा है वह इन संकटों का चरम कहा जा सकता है जहां आवागमन और यातायात के सारे साधन टूट गये हैं जिसके कारण सहायता सामग्री पहुंचाना तो दूर आपद्ग्रस्तों को एक स्थान पर एकत्र करने का अलग एक प्रश्न खड़ा हो रहा है। कहीं अनावृष्टि अपने ढंग की विकट स्थिति खड़ी करना चाहती है। जगह-जगह अन्नाभाव तथा बीमारियों की वृद्धि हो रही है।

यह साधारण सी बात है कि कोई भी प्रश्न हो उसे जैसा स्वरूप देकर देखा जायगा उसीके अनुरूप जनता की धारणायें बनाने में वह सहायक हो सकता है। आज देखा जाता है कि क्या आर्थिक, क्या औद्योगिक और क्या कृषि-सम्बन्धी सभी समस्यायें राजनैतिक प्रचार में सहायक होती हैं। देश के विभिन्न राजनैतिक दल राष्ट्रीय समस्याओं के कारण ढूंढ़ते नहीं देखे जाते क्योंकि उन्होंने अपना उद्देश्य समस्याओं के द्वारा शासन को शिथिल और अयोग्य सिद्ध करने का बनाया है। अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों में प्रायः राजनैतिक प्रतिस्पर्धा में राष्ट्रीय समस्या को नहीं लथेड़ा जाता क्योंकि उनकी धारणा होती है कि राष्ट्रीय समस्यायें किसी दल-विशेष या सत्ता के कारण ही पैदा नहीं होतीं उनके कुछ और भी कारण होते हैं। अतः राष्ट्र के उत्कर्ष-अपकर्ष का सम्बन्ध उनसे मान कर वे उनके सुलझाने में सर्वोपरि लक्ष्य से काम लिया जाता है। इस सहयोग के अभाव में हमारी राष्ट्रीय समस्याएं अधिक उग्र दिखायी देती हैं। कहीं विस्थापितों के प्रश्न को ले कर आज साम्प्रदायिक ढंग के प्रचार द्वारा धार्मिक राज्य की स्थापना की लहर देखी

१२५०

जाती है तो कहीं आर्थिक संकट-काल में राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी कठिनाइयों का दुर्लक्ष्य कर वर्तमान शासन को पूंजीवाद का सहायक शासन कह कर जनसाधारण को उत्तेजित किया जाता है। खाद्यान्न समस्या सुलझाने का प्रश्न शासन के वलवूते की बात कही जाती है जब कि शासन द्वारा राष्ट्र को दी गयी 'अधिक अन्न उपजाओ', 'अधिक वृक्ष लगाओं' और अन्न बचत (miss a meal) जैसी योजनाओं में अन्य राजनैतिक दल कितना सहयोग दे रहे हैं यह सब पर प्रकट है।

यह बात सर्व विदित है कि स्वाधीनता के बाद हमारे शासनने जो काम किया है उसमें वह रोटी और हथियार जुटाने से आगे नहीं बढ़ पायी है। अन्न और सुरक्षा के प्रश्न फिर भी ज्यों के त्यों जटिल है। काश्मीर समस्या संयुक्त राष्ट्र संघ के स्तर पर जाकर लगातार प्रयासों के बाद भी अधर में भूल रही है। हमारी सेनायें गत एक वर्ष से काश्मीर की 'युद्ध रोको पांक्ति' पर भरी बन्दूकें ताने पहरा दे रही हैं। ऐसी हालत में राष्ट्रीय निधि का एक ओर विश्व के कोनेकोने से अन्न जुटाने और सुरक्षात्मक सम्पन्नता में अपव्यय हो रहा है। जहां तात्कालिक व्यवस्थाओं में उलझे रहने के कारण अनेक विकास योजनायें फाइलों से ऊपर नहीं आ सकीं और जिन्हें व्यवस्थित करने में राष्ट्र का समान रूप से सहयोग नहीं मिल सका हो वहां सारा दोष शासन पर मढ़ना बड़ा एकांगी दृष्टिकोण-सा हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि एक बार राष्ट्र के सारे सूत्र अपनी सामूहिक शक्ति द्वारा समस्याओं से देश को बचायें और अपनी कर्तव्य परायण तथा सेवावृत्ति द्वारा सत्तारूढ़ होने की सोचें। इस भावना के अभाव में डर है कि कहीं दो की लड़ाई में तीसरे का भला होने की कहावत चरितार्थ न हो बैठे।

विश्वविद्यालयों की शिक्षण-प्रणाली में सुधार :

इसी अगंस्त के तीसरे हफ्ते में, नागपुर में अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड की बैठक में लिये गये निर्णय उच्च शिक्षण के क्षेत्र में बड़े महत्वपूर्ण माने गये हैं। विश्वविद्यालयों की शिक्षण-प्रणाली जो अभी तक अधिकांश रूप में बाबुओं अथवा बेकारों का एकसे ढर्रे पर चल कर निर्माण करती आयी थी, उसमें आवश्यक सुधार और परिवर्तन सम्बन्धी जांच के लिये डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक कमीशन बैठाया गया था। इसकी रिपोर्ट पर देश के विभिन्न राज्यों के ३० से ऊपर विश्वविद्यालयों के उपकुल गुरुओं तथा प्रतिनिधियों ने यह विचार-विमर्श किया।

कमीशन की रिपोर्ट को दृष्टि में रख कर बोर्ड ने जो निर्णय लिये हैं उनमें शिक्षण के स्तर, भाषा के माध्यम, व्यावसायिक महाविद्यालयों की स्थापना, परीक्षा की पद्धति, पाठ्यग्रंथ, अध्ययनकाल-क्रम, अध्यापक समुदाय, आर्थिक सहायता आदि के अनेक महत्वपूर्ण तथा सामयिक विषयों का समावेश है। बोर्ड ने कमीशन की रिपोर्ट के बहुतांश को स्वीकार किया है जिसमें यह ध्यान रखा गया है कि वे परस्पर सभी विश्वविद्यालयों के अनुकूल हों और उनकी एक रूपता के निर्वाह का अवलम्बन किया जा सके।

निर्णय में सबसे महत्वपूर्ण बात, जो आज की बदलती हुई स्थिति में विवादग्रस्त सी बनी हुई है, भाषा की है। बोर्ड ने यह माना है कि यद्यपि पार्थक्य तथा उग्र प्रान्तीयताका रोका जाना इस विषय में अनिवार्य है तथा राष्ट्र में एक रूपता के लिये एक राष्ट्र भाषा का अवलम्बन आवश्यक है तथापि उसमें अपेक्षित सम्पन्नता लाने से पूर्व ही उसे अपना लेना थोड़ी उतावली एवं अदूरदर्षिता होगी। अतः इस दिशा में सावधानी से कदम उठाया जाय जो अन्ततक स्थायी बना रह सके। अभी इस स्थिति पर पहुंचने के लिये सन्तोषजनक प्रगति की गयी है और इण्टरमीजियेट श्रेणी के अधिकांश विषयों के पाठ्य ग्रन्थ तैयार हो चुके हैं। बोर्ड ने निश्चय किया है स्थूल रूप से एक ही विषय के अधिकांश स्नातकों के निर्माण से देश में बेकारी और असन्तोष बढ़ता रहा है। आज राष्ट्रीय प्रगति के लिये भी जैसी आवश्यकता है अधिकाधिक संख्या में वैज्ञानिक और शास्त्र-विषयक महा विद्यालयों की स्थापना की जाय। बोर्डने अध्ययन काल एवं परीक्षा में उत्तीर्ण होने की कुछ लाभप्रद मर्यादायें रखी हैं। बोर्ड द्वारा सुझाव रखा गया

है कि नेशनल केडेट कोर को केन्द्र का विषय बना दिया जाय तथा स्वस्थ छात्रों को सैनिक शिक्षण भी दिया जाय।

यद्यपि विश्व-विद्यालय राज्यों की आर्थिक सहायता पाते रहेंगे तथापि उस क्षेत्र में उनकी अपनी स्वायत्तता का निर्वाह होना चाहिये। इसी प्रसंग में एक 'विश्व विद्यालय ग्राण्ट कमेटी' स्थापित करने की वात सुझायी गयी है जो जांच के वाद अपनी सिफारिश पर विश्व-विद्यालयों की आवश्यकताओं के अनुकूल आर्थिक सहायता सम्बन्धी सुझाव देगी।

नागपुर विश्व-विद्यालय के उपकुल गुरू पं. कुंजोलालजी दुवे ने जो अन्तर्विश्व-विद्यालय बोर्ड के अध्यक्ष भी हैं उपर्युक्त और उनके साथ अध्यापकों के वेतन फण्ड, सेवाकाल आदि विषयक निर्णयों को महत्वपूर्ण वताया है जिसका धारासभाओं तथा इसके अतिरिक्त सभी ओर से स्वागत होने की उन्होंने आशा की है। वास्तव में ठीक भी है अवतक हमारा उच्च शिक्षण उसी रूढ़िवादी परम्परा पर चला आ रहा है जो उपाधिदान के बदले मन और मस्तिष्क के विवेक और मौलिक चिन्तन पर ताला जड़ता रहा है। किन्तु, अव नई पीढ़ियां राष्ट्र की उन आवश्यकताओं को लक्ष्य में रख कर निर्मित करना है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी यथेष्ट सेवायें दे सकें। अतः उच्च शिक्षण के काल में छात्र के शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास पर समान रूप से ध्यान दिया जाने की आवश्यकता अनुभव की गयी है। हम आशा करें कि वोर्ड द्वारा निर्माण की भूमिका के रूप में दिये गये ये सुझाव व्यवहार में आयेंगे।

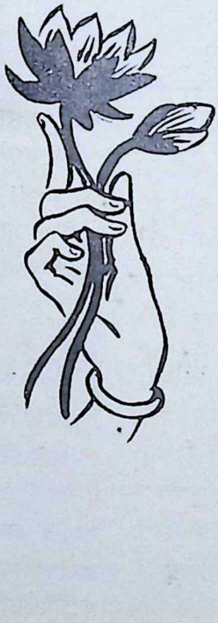

सूचना :—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिए

साहित्यालोचन

[श्री. विनयमोहन शर्मा]

सुन्दर-प्रकाश—

रचयिता : **श्री रमाशंकर प्रसाद एम. ए. एल. एल. बी., प्रकाशक : रामायण-भवन प्रयाग** । पृष्ठ संख्या ४०८, मूल्य ४)

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस ने हिन्दी, अहिन्दी सभी भाषा-भाषियों का ध्यान आकर्षित किया है । अपने युग में ही वह हिन्दू जनता के गले का कण्ठ हार बन गया था; क्योंकि उसमें हिन्दू संस्कृति का अनुपम चित्र विद्यमान है । मुगल साम्राज्य की धार्मिक असहिष्णुता से उत्पीड़ित जनता को उसके द्वारा अपनी स्थिति को बनाए रखने में बड़ा भारी बल प्राप्त हुआ था । काल की अबाध गति के समान मानस की लोक प्रियता भी अबाधित रूप से युगों तक बढ़ती चली जा रही है; और जब तक जनता की आस्था 'राम' में रहेगी, मानस की लोक-प्रियता में तनिक भी कमी नहीं होगी । धार्मिक और संस्कार की दृष्टि से ही नहीं, महाकाव्य के रूप में भी मानस का अपना विशिष्ट स्थान है । ग्रियर्सन आदि विदेशी भाषाविदों ने तुलसी की काव्य-प्रतिभा की भूरि भूरि प्रशंसा की है । और उन्हें संसार के महान कवियों में प्रतिष्ठित किया है । तब से आज तक उनके मानस की भिन्न भिन्न भाषाओं में बराबर टीकाएँ प्रकाशित होती जा रही हैं । रूस में रामचरित मानस का सचित्र विशाल सटीक संस्करण प्रकाशित हो रहा है । अन्य विदेशी भाषाओं में भी उसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं । हमारे देश में 'मानस' के एक एक शब्द की विवेचना करने वाले रामायणी पंडितों की कमी नहीं है । इस तरह की अनेक टीकाएँ भी हिन्दी में उपलब्ध हैं । फिर भी प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने इस दिशा में अपने ढंग से परिश्रम किया है और सब से पहिले सुन्दर काण्ड को सटीक बनाने का यत्न लेखक ने जहाँ तक संभव हुआ है पुरानी टीकाओं की पिटी हुई लकीर से तनिक प्रथक चलने का उपक्रम किया है । शाब्दिक अर्थों के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार अन्वय के साथ साथ मूल के पाठान्तर भी दे दिए गए हैं । अकारण क्षेपक छोड़ दिए गए हैं । भाष्य करने में ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक ढंग स्वीकारा गया है । शब्दों की व्युत्पति, प्रयोग-सिद्धान्तों की व्याख्या वेद उपनिषद दर्शन शास्त्र आदि ग्रंथों के उद्धरणों के साथ की गई है । ज्ञान के दृष्टि-कोण से दार्शनिक और वैज्ञानिक विवेचन किया गया है । इसका परिणाम यह हुआ है कि पुस्तक साधारण पाठकों, कथावाचकों, और विद्वानों—सभी के उपयोग की बन गई है ।

सुन्दर काण्ड का बहुधा लोग पाठ किया करते हैं। अतएव इस टीका से भक्तों को काण्ड के धार्मिक और साहित्यिक महात्म्य का सहज ज्ञान हो सकेगा। टीका की भाषा में यहां वहां पूर्वीपन की झलक पाई जाती ह। उदाहरणार्थ "**कपि** (हनुमानजी) लंका को उलट पुलट कर (नीचे ऊपर सब) **जलाए**। फिर समुद्र में कूद पड़े। मंझारी याने मझार या मजधार में........", परन्तु जिन्हें केवल राम रसायन का पान करना है उन्हें भाषा के रूप से कोई मतलब नहीं। लेखक से अन्य काण्डों की भी इसी प्रकार की टीका की अपेक्षा हो सकती है।

सुन्दर-असुन्दर—

संपादक और प्रकाशक शंभुप्रसाद बहुगुणा; लखनऊ।

इसमें संपादक ने कई पहाड़ी कवियों की कविताओं के चुने हुए अंश संकलित किए हैं और सूर-तुलसी, रसखान, घनानंद की तुलनात्मक समीक्षा की है, साथ ही कृष्ण जन्माष्टमी, जुगनू उल्लूक संप्रदाय और मीरा शीर्षक लेखों में स्फुट विचार व्यक्त किए हैं। जहाँ तक पहाड़ी कवियों की कविताओं की बानगी प्रस्तुत करने से संबंध है, पुस्तक की उपयोगिता इतिहास की दृष्टि से स्पष्ट है परन्तु जहाँ इनके अतिरिक्त अन्य स्फुट विचारों का संकलन किया गया है, वहां पुस्तक की एकरूपता नहीं पाई जाती। लेखक 'सत्य' कहने में अधिक 'कटु' हो जाता है। उदाहरण के लिये 'जुगनू उल्लूक संप्रदाय और मीरा' शीर्षक निबंधिका की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। हम "हम हैं, एम. ए. क्लासेस को पढ़ाने वाले हम" हमारा जुगनू-उल्लूक संप्रदाय है हम उसके अधिष्ठाता हैं—सर्वे सर्वा हैं....यदि किसी विद्यार्थी ने ऐसा किया वैसा लिखा तो उसे कान पकड़ कर विश्व विद्यालय की सीमाओं और साहित्यिक दुनिया के घेरों से बाहर निकलवा देंगे, निकलवाने का प्रयत्न करेंगे। और यह भी नहीं हो सकेगा तो परीक्षा के समय सब देख लेंगे।" मीरा के संबंध में मीरा माधुरी में क्या लिखा गया है, इस की समीक्षा का उपर्युक्त ढंग अप्रस्तुत और असुन्दर प्रतीत होता है। ऐसा जान पड़ता है लेखक किसी व्यक्ति विशेष के प्रति प्रतीकार की भावना से भर गया है। परन्तु यह काव्य-चर्चा का सुन्दर स्थल उसकी अभिव्यक्ति का नहीं होना चाहिये। लेखक में कवि के अन्तस को छूने का सामर्थ्य है जो उसके सूर-तुलसी निबन्ध से प्रगट होता है। पहाड़ी कवियों में पूरनचन्द जोशी की "बरसो बरसो हे करुणा के जलधर बरसो" कविता सुन्दर है। यदि जोशीजी काव्य के क्षेत्र में ठहर सकते तो वे राजनीतिक क्षेत्र के समान इस क्षेत्र में भी प्रसिद्धि लाभ करते। लेखक के विचारों और अप्रसिद्ध पहाड़ी कवियों का परिचय प्राप्त करने के लिये इस पुस्तक का अच्छा उपयोग हो सकता है। मूल्य २।) कुछ अधिक जान पड़ता है।

ईशोपनिषद—

लेखक **पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर; साहित्य-वाचस्पति गीतालंकार आदि। प्रकाशक-स्वाध्याय मंडल आनंदाश्रम पार्डी।**

ईषोपनिषद अत्याधिक प्रसिद्ध उपनिषद है। इसकी व्याख्या महात्मा गांधी ने भी की है।

इसमें आत्मज्ञान कूट कूट कर भरा हुआ है। यह आध्यात्मिक और लौकिक दोनों क्षेत्रों में मनुष्य को कार्य-क्षम बनाने की प्रेरणा देता है। उसके पहले मन्त्र की निम्न पंक्ति ही अत्यधिक सार गर्भित है—

तेन त्यक्तेन भुंजी थाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

में त्याग और भोग की कितनी स्पष्ट समीक्षा है। ऋषि कहते हैं दान करके भोग कर। दान देकर अवशिष्ट रहे हुए का उपभोग कर। अपने अधिकार में जो जगत का भाग आया हुआ हो उसका भी लोभ मत कर। उसका उपभोग करना हो तो दान करके कर, और दूसरे के पदार्थ का तो लोभ कभी भी मत कर। क्यों कि जो कुछ तेरे पास है वह किसी एक व्यक्ति का धन नहीं है। अपनी जीवन यात्रा चलाने के लिये दान से शेष धन का उपभोग करना चाहिये। ऋषि ने व्यक्तिगत भोगों को समाज के लिये समर्पित करने की बात कही है। धन किसी व्यक्ति का नहीं होता वह तो उसके पास धरोहर के रूप में रहता है। यदि वह लोभ करेगा तो वह स्वभावत: दुख का भागी होगा। समाज व्यवस्था का यह सार मंत्र है। जो हजारों वर्षों पूर्व ऋषियों द्वारा हमें प्राप्त हुआ है। आज जो मार्क्स को समाज-व्यवस्था का बड़ा भारी आचार्य मानते हैं वे ऋषियों के उक्त मंत्र को आंखें खोलकर देखने का कष्ट करें। यदि मनुष्य समाज के व्यक्तियों का हिताहित देखता रहे तो संसार से युद्ध नामक वस्तु का अस्तित्व ही मिट जाय। वास्तव में ईशोपनिषद आध्यात्म शास्त्र का वैदिक ग्रंथ है उसमें सामर्थ्य की विद्या निहित है! यह सत्र अन्य उपनिषदों का आदि स्रोत है। अन्य उपनिषदों के सिद्धान्त को लेकर ही सातवलेकरजी ने अपनी सुबोध शैली में इस उपनिषद के रहस्य का उद्घाटन किया है। आशा है जनता इसका मनन चिन्तन कर लाभान्वित होगी।

बन्धनों की रक्षा—

कथाकार: **श्री. आनन्दमोहन अवस्थी, प्रकाशक-लोकचेतना प्रकाशन, जबलपुर।**

इसमें लेखक की 'अट्ठाइस लघु कथाओं का सुन्दर संग्रह है। श्री. बक्षीजी के शब्दों में 'जीवन की साधारण घटनाओं में कथारस उत्पन्न कर देने का यह सफल प्रयास हुआ है।'' अंग्रेजी में इन्हें 'स्टोरिएट' कहा जा सकता है। जीवन पथ पर सुबह से शाम तक न जाने कितने हृदय आँखों में चढ़ कर उतर जाते हैं; पर उनके कुछ ऐसे भी होते हैं जो उतरने पर भी नहीं उतरना चाहते, वे हृदय के पट पर अंकित हो जाते हैं। कभी कभी समस्त जीवंन को झकझोरा करते हैं। कथाकार ऐस ही दर्दों कों अपनी लेखनी-तूलिका के सहारे चित्रित करता है। प्रस्तुत रेखा-चित्रों में 'कला' नहीं है दूसरे शब्दों में 'बनावट' नहीं है; 'चित्र' प्रकृत रूप में विद्यमान है। यही इनका आकर्षण है। लेखक का भविष्य उज्वल है।

कहानियों में समाज की विषमताओं के प्रति गहरा व्यंग है। पुस्तक की छपाई-सफाई आकर्षक है। मूल्य १) काफी सस्ता है गेटप् की दृष्टि से।

दृष्टिकोण

(सम्पादकीय)

देवकी कृष्णजननी :

दुरात्मा, आसुरी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा के कूटचक्री कंस के अत्याचारों से पीड़ित धरती माता ने भगवान से प्रार्थना की । उसे आश्वासन मिला, वह शीघ्र ही उसका भार हल्का करने के लिए अवतार लेंगे—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।

देवक की दुहिता देवकी कंस की चचेरी बहन । बाल्य काल ही से अपने माता-पिता के लाड़ प्यार से वंचित । कंस ने उसका पालन–पोषण किया । सयानी हुई तो वसुदेव के साथ देवकी का परिणय हुआ । कंस सन्तुष्ट था इस सम्बन्ध से । विवाह के पश्चात् विदाई के समय बहन-बहनोई के रथ को कंस स्वयं हाँक रहा था। तभी आकाश से गंभीर ध्वनि प्रसारित हुई, सावधान मूर्ख ! तू जिसे रथ में बिठाकर लिये जा रहा है उसका आठवाँ गर्भ तेरा प्रलयकाल होगा । जिसके जन्म के भय मात्र से ही सारी स्वतंत्रता छीन ली गई वह देवकी अपने पति वसुदेव के साथ अपने भाई कंस के कठोर कारागार में बन्दिनी बनी। कारावास में उसे इस हरे-भरे संसार का सुखी जीवन स्वप्न–दुर्लभ हो गया । निर्दय पाषाण, हृदय, कंसने जिसे सताने में, पीड़ा पहुँचाने में कोई कसर न उठा रक्खी । अपमान, नाना यातनाएँ, प्रताड़नाएं, सन्देह, भर्त्सना, धमकी और नज़र सामने अपने सात सात कोमल शिशुओं की भाई के ही हाथों निर्मम हत्या ! फिर भी क्षमा करने में और सहिष्णुता में सर्वसहा धरित्री के समान ही क्षमारूप ! देवकी के दुःखों का कोई अन्त?

कंस के अत्याचार अनीति अपनी चरम सीमा पार कर गये । देवकी ने स्वर्गागार सम कारागार में जगत् के उद्धारक जनार्दन को जन्म दिया । उसी मुहूर्त में कारागार का परम पवित्र नाम 'कृष्ण जन्मस्थान' पड़ा । मूसलाधार वर्षा, घमंडी मेघों का गर्जन तर्जन, बिजली की कड़क तड़क, प्रचंड झंझावात, यमुना भरपूर दोनों काँठों को दाबे बह रही थी, भादों मास की काली अष्टमी । कृष्ण पक्ष का अन्धकार ! चारों ओर घोर निराशा । मार्ग नहीं सूझता । दुःख दैन्य की भयंकर काली घटाएँ सर्वत्र छाई हुई थीं । ऐसे दुर्दिन में मध्य रात्रि के समय अपने मामा कंस के कारागृह में जगद्गुरु कृष्ण का जन्म हुआ । जय जय स्वर्गागार

१९५०

सम भारत कारागार। पुरुष पुरातन का हुआ जहाँ नया अवतार! अपने माता पिता देवकी वसुदेव को बन्धनमुक्त किया। माता ने जन्म के साथ ही अपने नवजात पूत को देश की बन्धनमुक्ति के लिए यशोदा की गोद में अर्पण कर दिया। देश का महान् सौभाग्य! माँ के अपूर्व स्वार्थ त्याग का यह महान् आदर्श भागवत, महाभारत, कृष्णायन में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। देवकीनन्दन की जन्मदात्री देवकी देवी की जय हो—

वसुदेवसुतं देव कंस चाणूर मर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

* * *

केरल-कवि सार्वभौम वल्लत्तोल :

प्रकृति का क्रीडास्थल केरल भारतवर्ष का एक परम मनोहर प्रदेश है। काश्मीर को छोड़कर इतना सुन्दर और चित्ताकर्षक देश भारत में अन्यत्र दुर्लभ है। केरल इस लिए भी जगद्विख्यात है कि वह जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य की जन्मभूमि है। अनेक श्रेष्ठ कवि, कलाकार, चिन्तक और विचारक यहां पैदा हुए। वन, उपवन, नदी, सरोवर, निर्झर, सह्याद्रि की पर्वतमाला और अरब सागर, इन सब ने मिलकर केरल की प्रकृति और मानव स्वभाव को कोमलता और कलात्मकता प्रदान की है। विद्वत्ता, कविता, चित्र, नृत्य, अभिनय, संगीत आदि कलाओं में भी केरल कभी किसी से कम नहीं रहा। भावनाशील बंगला भाषा को महाकवि चंडीसेन और विश्व-कवि रवि बाबू पर जो अभिमान है, गुणवन्ती गुजराती को अपने नरसी और नानालाल पर, मराठी को अपने कवि मोरोपंत और यशवंत पर, तमिल को अपने सुब्रह्मण्य भारती और डॉ. स्वामिनाथ पर जो गर्व है; सारा केरल अपने राष्ट्रीय कवि वल्लत्तोल का 'केरल कवि सार्वभौम' के रूप में सम्मान करता है। आधुनिक केरल के वे एक महान् मौलिक कवि हैं। उम्र उनकी यही कोई ७१ वर्ष की है। केरल के साहित्यिक पुनरुत्थान का वे गत ४०—५० वर्षों से नेतृत्व करते आ रहे हैं। उन्होंने केरल की विस्मृतप्राय प्राचीन नृत्यकला 'कथकली' का जीर्णोद्धार किया। रवीन्द्रनाथ, सुब्रह्मण्य भारती, मैथिली शरण गुप्त और बल्लत्तोल आदि मनीषी कवियों में भारतवर्ष की समग्र राष्ट्रीयता, कांग्रेस, वंगभग, स्वदेशी, होमरूल, असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह, स्वराज्य और सम्पूर्ण स्वातंत्र्य— इन सभी भावनाओं का और संस्कारों का समन्वय हुआ है। इन कवियों की अभिव्यक्ति में युग की ध्वनि गूँजती है। कवि बल्लत्तोल संस्कृत के भी महान् विद्वान् हैं। उन्होंने संस्कृत वाल्मीकि रामायण का मीठी मलयालम में अनुवाद कर मातृभाषा के भंडार को भर दिया है। कम्बन् का तामिल में, तुलसीदास का हिन्दी में, रामायण के कारण जो मान है, वही मान मलयालम रामायण के कारण बल्लत्तोल का है। रामायण के अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत के पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, मार्कण्डेय पुराण और वामनपुराण आदि पुराण ग्रन्थों के भी मलयालम में अनुवाद किये। जिन दिनों आप ग्रन्थनिर्माण और दो तीन पत्र—पत्रिकाओं के सम्पादन कार्य में तन मन धन से लगे हुए थे, अतिविचित्र दैव गति, आपकी सारी श्रवणशक्ति सहसा लुप्त हो गई! आज भी आप बहिरे हैं। अनेक वर्षों तक बड़े बड़े औषधोपचार किये गये; पर आपको कोई लाभ

न हुआ । इस घोर मनोव्यथा से पीड़ित हो कर कविवर बल्लत्तोल ने एक सुन्दर "बधिर विलाप" नामक काव्य की रचना की । उनका सूरदास के "बहिरो सुनै मूक प्रति बोलै" इस पद पर अटल विश्वास है । वे अपनी श्रवण-शक्ति के लोप को अपने जीवन की एक ईश्वरीय संकेत भरी महत्त्व पूर्ण घटना मानते हैं । आज कवि अपने उस महान् मौन में ही काव्य-संगीत की सुधा का पान कर दूसरों को उसका आनन्द वितरण कर रहा है । मधुर मलयालम में लिखी हुई कवि की "मातृ वन्दना" शीर्षक कविता केरल के बच्चे बच्चे के कोमल कण्ठ में विराज रही है । विश्ववंद्य गान्धीजी का भी बल्लत्तोल-जी के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा । कवि जिस प्रकार अपने में काव्य वैदग्ध्य, सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का परम सौन्दर्य, तीव्र भावावेग और सरस अनुभूति रखता है, उसी प्रकार उसमें गान्धीवादी जविन के आदर्श भी प्रतिबिम्बित हुए हैं । गान्धीजी से काव्य प्रेरणाओं का स्रोत मिला । गुरुदेव रवीन्द्र बल्लत्तोल के संस्कृत पांडित्य पर अत्यन्त मुग्ध थे और राष्ट्रपिता गान्धी जी इनकी सादगी, नम्रता और शील-शालीनता पर । कवि ने अपनी अमर कृतियों से भारतीय साहित्य को अलंकृत एवं समृद्ध तथा समर्थ बनाया है । कवि को ७२ वाँ वर्ष शुभ हो । केरल का यह कवि शतम् जीयात् !

* * *

आसाम का भू-कम्प :

हाय दुर्दैव ! बदनसीब कामरूप ! सब कुछ क्षण भर में समाप्त हो गया । शेषनाग ने अपने फन पर रक्खी हुई धरती का भार सँभाल सकने में जैसे अपनी असमर्थता प्रकट कर दी हो, गत १५ अगस्त की शाम को सारा आसाम एकाएक हिल उठा । क्रूर कुपित प्रकृति मानों सारे आसाम को तहस नहस करके ही छोड़ेगी । भयंकर भूकम्प से उस प्रदेश की जो दुर्दशा हो रही है, उससे सभी भारतवासियों के दिल भय और दुःख से भर गये हैं । समूचा आसाम असहाय हो गया है । यह भू-कम्प कराल प्रकृति की अद्भुत अगम्य, विनाशकारी भयंकर दुर्घटना है । भू-कम्प जब आया तो खतरे की घंटी बजाकर नहीं आया । कुछ सैकंड लगे । पल भर में मटियामेट हो गया । इस भू-कम्प के प्रचंड धक्कों का वहाँ बहुत गहरा, व्यापक और भयंकर प्रभाव पड़ा है कि सुननेवाले मानव का हृदय कम्पित हो उठा है । घर बार धराशायी हो गये हैं । जगह जगह धरती में बडी बड़ी गहरी दरारें पड़ गई हैं । जमीन फट गई है । फटी हुई दरारों में पानी भर गया है । कहीं कीचड़ गिलाब ऊपर उबल रहा है । कहीं नाक को भी असह्य ऐसी सड़ाँद दुर्गन्ध फैल रही है । मकान के मकान धरती के नीचे धस गये हैं । सैकड़ों जीवित मनुष्यों की मृतसमाधियाँ बन गयीं । आसाम की नदियों ने अपना प्रवाह-मार्ग बदल दिया । वहाँ मीलों तक रेल के सारे लोहमार्ग को जैसे किसी ने तोड़ मरोड कर रख दिया हो । पुल टूट गये हैं । सड़कें बरबाद हो गई हैं । शहरों की अट्टालिकाएँ, इमारतें भग्नावशेष हैं । असंख्य मनुष्य नीचे दबकर मर गये हैं । आसाम पर एक साथ, अभी वह अपने प्यारे सपूत सेवक गोपीनाथ बारदोलाई के आकस्मिक निधन के शोक में डूबा ही था; एकाएक भीषण भूकम्प की विपत्ति, इतने आकास्मिक रूप में वहाँ आ गई कि प्रकृति ने मानव को सोचने के लिये

१९५०

मौका ही नहीं दिया । वहाँ भूकम्प के जोरदार धक्के इतने प्रचंड रूप में लगे हैं कि यहाँ नागपुर में बैठे हुए उनकी भीषणता का अनुमान लगा सकना हमारी सामर्थ्य से बाहर है । बिहार और क्वेटा के उस प्रलयंकर भूकम्प को हम अभी तक भूले नहीं थे । दिल आज भी काँप उठता है उस की यादकर । तब त्राहित्राहि मच गई थी । हजारों मनुष्यों की और पशुओं की मृत्यु और लाखों-कराड़ों की धन-सम्पत्ति का नाश पलक मारते हो गया था । आसाम पर भी इसबार भूकम्प का कालदैत्य चढ़ आया है जिसने वहांपर महानाश का दृश्य खड़ा कर दिया है । चुटकी बजाते जो भीषण उथल पुथल, उलटफेर परिवर्तन वहां हुए हैं, मनुष्य अवाक् है, उसकी बुद्धि काम नहीं देती । प्रतिदिन प्रातःकाल समाचार पत्रों के कॉलम इस महानाश या सर्वविध्वंस के समाचारों से भरे रहते हैं। प्रत्येक भारतीय अपने आसाम के इस घोर विपत्तिकाल में अधीर है। उसका हृदय दुखदर्द और संवेदना तथा सहानुभूति से भरा हुआ है। दयालोः असमर्थस्य दुःखायैव दयालुता !

* * *

कांग्रेस के अध्यक्ष राजर्षि टंडनजी :

अधिक बहुमत से श्रद्धेय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन भारतवर्ष की राष्ट्रीय महासभा के नासिक अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं । राजर्षि ने अपने दोनों महान् प्रतिद्वन्दियों पर—श्रीशंकर राव देव और आचार्य कृपलानी पर—सीधी विजय प्राप्त की है । कुल २६१८ मतदाताओं ने बहुत बड़ी जबर्दस्त होड़ के बीच, देवजी को २०२, कृपलानीजी को १०९२ और टंडनजी को १३०६ मत दिये । टंडनजी को २१४ मत अधिक मिले । इस प्रजातंत्र राष्ट्र के सर्वाधिक मत-दाताओं ने राजर्षि टंडनजी को ही अपने राष्ट्र का अध्यक्ष चुना है । राष्ट्र के प्रति राजर्षि ने इसके लिये अत्यन्त विनयपूर्वक कृतज्ञता व्यक्त की है, और सारे देश के तमाम छोटे बड़े नेताओं ने भी अपने इस नव निर्वाचित, विजयी वयोवृद्ध वीर राष्ट्र के कर्णधार को अपने हृदय की पूरी शक्ति के साथ, बधाइयां दी हैं । टंडनजी का त्याग, उनकी लगातार ४४ वर्षों की दीर्घकालीन साधना और संयम देश की तरुणाई के लिये महान् आदर्श हैं । राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के आन्दोलन में पू. टंडनजी गत लगातार २५ वर्षों से सक्रिय भाग ले रहे हैं । देशसेवा के लिये आपको सातबार कृष्ण-जन्मस्थान में जाना पड़ा है । आप सदैव राष्ट्रीय महासभा के प्रमुख आन्दोलनों में, आज़ादी की लड़ाई के सभी मोर्चों पर, अग्र सैनिक रहे । भारतवर्ष और राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा के लिये आपने नाभा रियासत की दीवानी छोड़ी, असहयोग आन्दोलन में हायकोर्ट की वकालत छोड़ी । लिपि देवनागरी में लिखित हिन्दी को प्रजातंत्र भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा—राजभाषा—बनाने में आपने जो संघर्ष किया वह ऐतिहासिक बन गया है । वे नागरी हिन्दी में रोमन अंक, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10-इन अंकों का मिलौनी गंज बनाने के कट्टर विरोधी हैं । बाबूजी ने भारत—विभाजन का १९४७ के कांग्रेस अधिवेशन में तीव्र विरोध किया था । नासिक में पवित्र सलिला गोदावरी के तट पर, मर्यादा पुरुषोत्तम राजर्षि राम की तपोभूमि पंचवटी में, राष्ट्रीय महासभा की नौका के कर्णधार बन रहे हैं—

हमारे राष्ट्र की समस्त राष्ट्रीय मर्यादाओं का पालन करने के हेतु राजर्षि पुरुषोत्तम !

*   *   *

'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र जयन्ती :

आज से सौ वर्ष पूर्व, विक्रमी सम्वत १९०७ की भाद्रपद शुक्ल सप्तमी को, काशी में इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के कुल में परम वैष्णव सदाचारी, सत्कवि, गोपालचन्द उपनाम गिरिधरदास के सुपुत्र हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ था। बालक होनहार था। होनहार बिरवान के होत चीकने पात ! बाल्यकाल ही में अपनी अद्भुत कवित्व शक्ति का हरिश्चन्द्र ने परिचय देकर पितृचरणों से आशीर्वाद पाया। हरिश्चन्द्र का उत्कर्ष उत्तरोत्तर ऊँचा ही चढ़ता गया। वे हिन्दी के निर्माता युग-प्रवर्तक हो कर भारतवर्ष के साहित्याकाश में भारतेन्दु रूप में प्रकाशमान हुए। खड़ी बोली की बुनियाद उन्हींने डाली। उन्हींने उसे सँवारा, सजाया और परिपुष्ट किया। आधुनिक युग की हिन्दी का निखरा हुआ रूप उन्हीं के महान् परिश्रम का फल है। हिन्दी, हिन्दी का समूचा साहित्य और हिन्दी के सभी साहित्यिक भारतेन्दुजी के परम ऋणी हैं। भारतेन्दु जन्मना विशाल थे। भाग्य में विशाल, धन-सम्पदा—वैभव में विशाल, हृदय में विशाल, दान में विशाल, सौजन्य-सौहार्द में विशाल, प्रतिभा में विशाल, दूरदार्शीता में विशाल, जिधर से उन्हें टटोलिए, वे विशाल ही विशाल थे, उन्हें संकीर्णता छू तक नहीं गई थी। उनका जन्म विशाल, जीवन विशाल और उनकी मृत्यु भी विशाल। अपने युग के वे विशाल महान देशभक्त पुरुष थे। हरिश्चन्द्र के जीवन में सनसनी थी, हृदय में पवित्र उच्च महत्वाकांक्षा थी। मस्तिष्क में कोमल कल्पना थी, लेखनी में ओज तेज था। प्रौढ़ता थी, गद्य में गंभीरता थी, गहराई थी, पद्य में भाव था, रस था, व्यंजना थी। उनके नाटकों में कला थी—काल और देश का प्रतिनिधित्व था। भारतेन्दु ने हिन्दी को माँजा, शैली को सुधारा, और उसे समूचे भारत की राष्ट्रभाषा की राजगद्दी पर बिठाया। उन्होंने समस्त भारतवासियों को सन्देश दिया,—"निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल। बिनु निजभाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल"

भारतेन्दुजी व्यक्ति थे, समष्टि थे, संस्था थे। साहित्यिक थे, पुजारी थे साहित्यिकों के निर्माता थे। भारतेन्दु ने अपने पूर्वजों की अटूट सम्पत्ति, अपना धन, अपना जीवन-प्राण अपने साहित्य और साहित्यकारों की सेवामें समर्पण कर दिया था। वे असाधारण व्यक्ति थे। उनकी लगन असाधारण थी और उनमें देश, समाज, साहित्य, संस्कृति, कला और स्वधर्म पर मर मिटने की तीव्र तमन्ना थी। वे जीवन के अन्तिम क्षण तक भगवान् कृष्ण और राधा रानी के चाकर रहे और आज के स्वतंत्र भारत के साहित्याकाश के वे लोकमान्य भारतेन्दु हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के चरणों में हमारी श्रद्धांजलि !

मंडल की नई पुस्तकें

(पठनीय, मननीय और संग्रहणीय)

१. **पंद्रह अगस्त के बाद :** महात्मा गांधी के पंद्रह अगस्त १९४७ से लेकर अंतिम लेख तक का संग्रह। आज़ादी तथा उससे पैदा हुई समस्याओं पर सम्यक् विचार, पृष्ठ २४०, सुन्दर छपाई, मूल्य २)

२. **धर्मनीति :** जीवन-नीति और उसके पालन संवंधी नियम-उपनियम का विवेचन करनेवाली महात्मा गांधी की चार पुस्तकों का संग्रह, पृष्ठ २५६, मूल्य २)

३. **बापू की कारावास कहानी :** लेखिका— डा० सुशीला नैयर; आगाखां महल में बापू के वंदी-जीवन के इक्कीस महीनों का हृदय-स्पर्शी व प्रामाणिक इतिहास २८ चित्र, सुन्दर छपाई, मूल्य १०)

४. **सर्वोदय विचार :** आचार्य विनोबा : सर्वोदय और उसके सिद्धान्तों का सूक्ष्म विश्लेषण, मूल्य १॥)

५. **पंचदर्शी :** भारत के चिंतकों और साहित्यकारों के पंद्रह उच्चकोटि के निवंधों का संग्रह, मूल्य १॥)

मंडल से प्रकाशित **'जीवन साहित्य'** मासिक के ग्राहक वनने से ये तथा मंडल की अन्य पुस्तकें आपको रियायती मूल्य में मिलेंगी। पत्र का वार्षिक मूल्य ४) रु.

व्यवस्थापक :— **सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली।**

दी युनायटेड कमर्शियल बैंक लि.

हेड ऑफिस, कलकत्ता

चुकता मूलधन : २ करोड़ रुपये
सुरक्षित कोष (रिज़र्व फंड) : ५२॥ लाख रुपये

चेयरमैन : **जी. डी. बिड़ला**
जनरल मैनेजर : **बी. टी. ठाकुर**

समस्त भारत, पाकिस्तान, बर्मा और मलाया में बैंक की शाखाएँ हैं, और संसारभर में एजन्सी की व्यवस्था है।

जी. ए. रणदिवे
मैनेजर, नागपुर शाखा

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेर-ओ-शायरी

[उर्दू के १५०० शेर और १६० नज़्म]

श्री. अयोध्याप्रसाद गोयलीय —

प्राचीन और वर्तमान कवियों में ३१ लोकप्रिय कलाकारों के मर्मस्पर्शी उर्दू पद्यों का संकलन और उर्दू-कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय। **हिंदी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।** **मूल्य ८)**

मिलनयामिनी (गीत)

कविवर बच्चन

जिसकी मधुशाला का अमेरिका में संस्करण प्रकाशित हो रहा है उसी भारत सपूत बच्चन की श्रेष्ठतम और नवीन कृति। **मूल्य ४)**

मुक्तिदूत [पौराणिक रोमांस]

श्री. वीरेन्द्रकुमार, एम् ए.

उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है......मर्मज्ञों ने मुक्त-कण्ठ प्रशंसा की है......। द्वितीय संस्करण छपा है। **मूल्य ५)**

पथचिह्न [उत्तर प्रदेश सरकार से एक हजार रुपयों से पुरस्कृत]

मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली। श्री. शांतिप्रिय द्विवेदी की कोमलस्मृति रेखाएँ। **मूल्य २)**

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ

इन कहानियों में प्राचीन भारत का चिन्तन सुरक्षित है। — कर्मवीर खण्डवा। **मूल्य ३)**

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि

प्रश्नशास्त्र का अद्भुत ग्रंथ, हिन्दी विवेचन, मुहूर्त, कुण्डली, शकुन आदि के हिन्दी परिशिष्टों में विभूषित। इसके अध्ययन से सामान्य पाठक भी ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस ४

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. नवीन प्रकाशन

(१) ज्ञानयोग — स्वामी विवेकानन्द, मू० ३);
(२) सरल राजयोग — स्वामी विवेकानन्द, मू० ॥);
(३) स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप, मू० १।);
(४) वेदान्त — सिद्धान्त आर व्यवहार — स्वामी शारदानन्द–विवेकानन्दजी के गुरु-भाई-कृत मू० ।=).

२. श्रीरामकृष्ण वचनामृत

अनुवादक—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सुन्दर गेट-अप, तीन भागों में, प्रथम भाग, पृ. सं. ६३२, मूल्य ६) रु., द्वितीय भाग, पृ. सं. ६५७, मूल्य ६) रु., तृतीय भाग, पृ. सं. ८२२, मूल्य ७॥ रु.।

३. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी)

पं० द्वारकानाथ तिवारी कृत, दो भागों में, सुन्दर गेट-अप, प्रथम भाग, पृ. सं. ४३६, द्वितीय भाग, पृ. सं. ४८६, प्रत्येक भाग का मूल्य ५ रु.।

"श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे।"

— **महात्मा गांधी**

४. विवेकानन्द-चरित

(विस्तृत एवं स्फूर्तिदायक जीवनी)

सुविख्यात लेखक, श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार कृत, अभी **प्रकाशित हुई**; सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ५५, मूल्य ६ रु.।

"प्राचीन भारतीय संस्कृति में पगे तथा भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा के अभिमानी स्वामी विवेकानन्द जी जीवन की समस्याओं को समझने में नितान्त आधुनिक थे और हम कह सकते हैं कि इस प्रकार उनके जीवन में भारतवर्ष की प्राचीन तथा वर्तमान संस्कृति का सुन्दर समन्वय हुआ है।"

— **पं० जवाहरलाल नेहरू**

५. विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप)

शिष्य शरच्चन्द्र कृत, सुन्दर गेट-अप, पृ.सं. ४४८, मूल्य ५) रु.।

स्वामी विवेकानन्द कृत — भारत में विवेकानन्द, ५; पत्रावली (दो भागों में), प्रत्येक भाग का मूल्य २=); महापुरुषों की जीवन-गाथाएँ १।); मन की शक्तियां ॥); इशदूत ईसा ।=); राजयोग १=); स्वाधीन भारत! जय हो! १=); कवितावली ॥=); भारतीय नारी ॥।); शिक्षा ॥=); धर्म-रहस्य १); मेरी समरनीति ।≡); धर्मविज्ञान १॥=); मेरा जीवन तथा ध्येय ॥); मरणोत्तर जीवन ॥); श्रीरामकृष्ण, धर्म तथा संघ ॥=); कर्मयोग १॥=); हिन्दु-धर्म १॥); प्रेमयोग १।=); भक्ति-योग १।=); आत्मानुभूति १।); परिव्राजक १); प्राच्य आर पाश्चात्य १।); शिकागो-वक्तृता ॥=); मेरे गुरुदेव ॥=); हिन्दू-धर्म के पक्ष में ॥=); वर्तमान भारत ॥); पवहारी बाबा ॥); विवेकानन्दजी की कथाएँ १।); श्रीरामकृष्ण-उपदेश ॥=)।

परमार्थ प्रसंग — (स्वामी विरजानन्द — विवेकानन्दजी के सन्यासी शिष्य तथा रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष कृत) कपड़े की जिल्द ३॥); कार्ड बोर्ड की जिल्द ३।)

पता :—श्रीरामकृष्ण आश्रम, [भा], धन्तोली, नागपुर-१, मध्यप्रदेश

'भारती' यहां मिलती है।

१. अदोनी
२. अजमेर
३. अमृतसर
४. बंगलोर शहर
५. बलंगीर
६. बडवानी
७. बेलगांव
८. बल्लारी
९. बेतूल
१०. बंबई
११. कोयंबतूर
१२. एलोर
१३. गुंतकल
१४. गुंटूर
१५. हुबली
१६. इन्दौर
१७. जबलपुर
१८. मद्रास सेंट्रल
१९. मद्रास इगमोर
२०. मदुरा (जं.)
२१. मद्रास
२२. मलकापूर
२३. मैसोर
२४. नागपुर
२५. निडडबोल
२६. राजमहेन्द्री
२७. राजकोट
२८. सामलकोटा
२९. सिकंदराबाद
३०. तंजौर
३१. तेनाली
३२. तिरूच्चिनापल्ली
३३. ट्रिवेंड्रम सेंट्रल
३४. विजयवाड़ा

श्री० कु० तारा पोद्दार :

मातृभाषा मराठी। हिन्दी में एम० ए०। नागपुर महिला महाविद्यालय में प्राध्यापिका। वर्षों से हिन्दी के कुछ प्रतिष्ठित मासिक पत्रों में सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानियां लिखती हैं। आजकल रेडियो के लिए एकांकी लिखने की ओर रुझान है।

'श्री० यात्री' :

मैथिली भाषा के एक उदीयमान प्रगातिशलि क्रान्तिकारी कवि।

श्री० सत्येन्द्रनाथ दत्त :

इसी अंक में ८५३ वें पृष्ठ पर "जन्माष्टमी" शीर्षक बंगला कविता को पाठक पढ़ेंगे। श्री दत्त की प्रतिभा आधुनिक बँगला साहित्य क्षेत्र में अकृत्रिम है। उनकी कविता कभी अलसाती, कभी बल खाती, कभी गरजती, कभी बरसती, और कभी तड़ित् की तरह तड़पती, वेग के साथ प्रवाहित हुई। बंगला में वे नखशिख मौलिक थे और प्रौढ सफल अनुवादक भी। दत्त अकाल मृत्यु के शिकार हुए। स्वर्गीय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शोकसंविग्न मानस होकर उन पर एक बहुत ही सुन्दर मार्मिक कविता लिखी थी और उनकी असाधारण प्रतिभा को दर्दभरी दाद दी थी।

◆

हिंदी और मराठी भाषामें प्रकाशित होता है।

उद्यम

प्रतिमास १५ तारीख को पढ़िये।

धर्मपेठ, नागपुर.

उद्यम में निम्न विषयों पर लेख प्रकाशित होते हैं।

- ★ लाभदायक उद्योगधंधों की व्यवहारोपयोगी जानकारी।
- ★ अनाज की खेती, सागसब्जी की बागवानी, और रोगों का निवारण।
- ★ पशुपालन, दुग्धव्यवसाय और ग्रामोद्योग-संबंधी लेख।
- ★ विद्यार्थियों के लिये वैज्ञानिक तथा अन्य जानकारी-पूर्ण लेख।
- ★ आरोग्य, घरू औषधियों संबंधी जानकारी।
- ★ उद्यम परिवारके हर व्यक्तिकी दृष्टिसे उपयोगी है।
- ★ संपूर्ण भारत के व्हीलर रेल्वे स्टालों, और हर गाँवके न्यूजपेपर एजेंटों की माँग सतत बढ़ती जा रही है।
- ★ उद्यम मासिक में हर माह सुधार किया जा रहा है और इसे हर पाठक की दृष्टिसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न हो रहा है।
- ★ वर्ष के १२ अंकों में अपने ढंग के दो विशेषांक प्रकाशित होते हैं, जो स्थायी ग्राहकों को वार्षिक चंदे में ही मिलते हैं।

उद्यम के विशेष स्तंभ

- ★ महिलाओं तथा विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त
- ★ विभिन्न रुचिकर खाद्यपदार्थ बनानेकी विधियाँ
- ★ घरू मितव्ययिता
- ★ उद्यम का पत्रव्यवहार
- ★ खोजपूर्ण खबरें
- ★ आर्थिक तथा औद्योगिक परिवर्तन
- ★ जिज्ञासु जगत्
- ★ व्यापारिक हलचलों की मासिक समालोचना
- ★ कृषि, औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों की मुलाकात और परिचय
- ★ हिंदुस्थान के वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र की उपयोगी जानकारी
- ★ नित्योपयोगी वस्तुएँ घरही तैयार कीजिये।
- ★ आजही उद्यम का वार्षिक चंदा रु. ७-०-० भेजकर सर्वोपयोगी उद्यम मासिक मँगवाना प्रारंभ करें।

Reg. No. N. 1262.

भारती

'भारती' में अपना विज्ञापन देकर व्यापारिक लाभ उठाइये

'भारती' की प्रगति

उत्तर-दाक्षिण में

श्रीनगर कश्मीर से लेकर रामेश्वरम् मद्रास तक

और पूर्व-पश्चिम में

गोहाटी आसाम से लेकर कराची पाकिस्तान तक

भारती का प्रचार है

विज्ञापन के मासिक दर:—

		पूरा पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
१. मुखपृष्ठ ४ था	....	१७५) रु.	९०) रु.	५५) रु.
२. मुखपृष्ठ २ रा और ३ रा	....	१४०) रु.	७५) रु.	४५) रु.
३. साधारण पृष्ठ	....	१००) रु.	६०) रु.	३५) रु.

पता:—प्रबन्ध-सम्पादक, "भारती"

C/O ऑल इंडिया रिपोर्टर, लि. नागपुर १ (मध्यप्रदेश)

Printed by V. M. Kulkarni at the All India Reporter Press and
Published by him at Bharati Karyalaya, All India Reporter Ltd., Nagpur.
D/- 7—9—1950.

(All Rights Reserved)

भारती

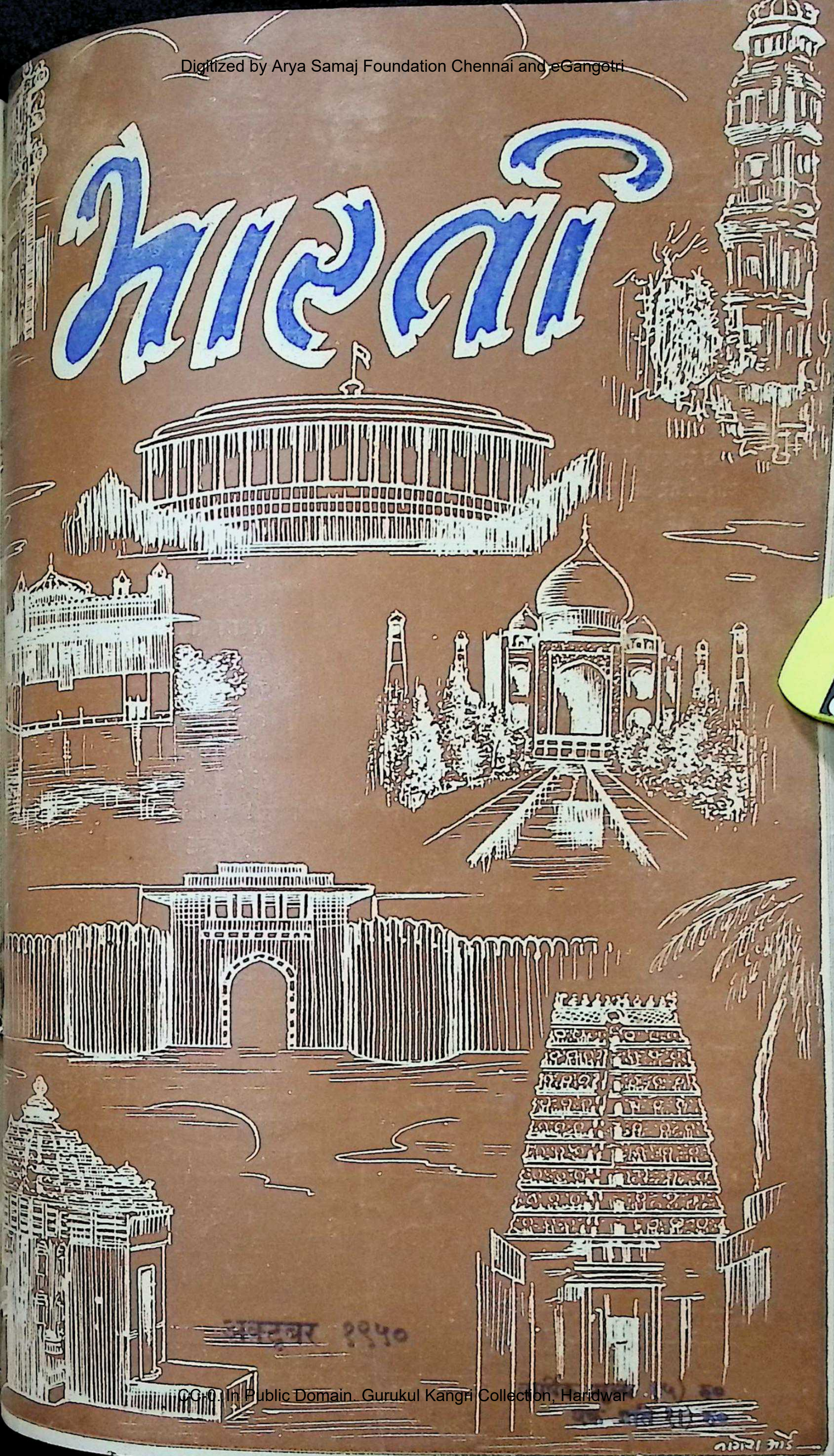

अक्टूबर १९५०

[illegible] (५) रु
[illegible] ।) [illegible]

इस अंक के लेखक

श्री जैनेन्द्रकुमार :
परिचय गत जून के अंक में।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी :
परिचय गत जनवरी के अंक में।

श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन :
मुंडित मस्तक । काषाय चीवर धारी बौद्ध भिक्षु । बौद्ध साहित्य के प्रकांड विद्वान् । हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक । यथार्थवादी प्रगतिशील दृष्टिकोण। उक्ति और युक्ति में चोज । जीवन की गहरी अनुभूति और संसार की कटु सत्य जानकारी। हिन्दी के दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों में ऐसा कोई न छूटा जिसमें आनन्दजी ने न लिखा हो । इधर आप की कई सामयिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं । राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि नांगरी के प्रबल-प्रचंड आन्दोलनकारी । अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के प्रधान मंत्री ।

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध :
प्रशंसा और प्रशस्ति के कोलाहल से सदैव दूर । मध्य-प्रदेश के सरकारी प्रकाशन विभाग में सेवा । मराठी मातृभाषा । हिन्दी साहित्य से प्रगाढ़ अनुराग । हिन्दी कविता की आधुनिक नवीनतम शैली के मौलिक कवि। राष्ट्रभाषा हिन्दी के ख्यातनामा साहित्यकलाकार श्री 'अज्ञेय' जी ने अपने एक संग्रह **"तार सप्तक"** में श्री मुक्तिबोध की कुछ मार्मिक कविताओं को लिया है।

श्रीमती शचीरानी गुर्टू :
हिन्दी और अंग्रेजी में अलग अलग एम.ए.। संस्कृत में साहित्याचार्या। हिन्दी जगत् में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। आपका **'साहित्य-दर्शन'** लगभग ८०० पृष्ठोंका दो खंडों में तुलनात्मक समीक्षा ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। **'कलादर्शन'** आपकी दूसरी पुस्तक है जिसमें आपने विश्व के विभिन्न प्रख्यात कलाकारों की कला की समीक्षा की है। श्रीमती गुर्टू कहानियाँ भी सुन्दर लिखती हैं। **'प्रेरणा'** आपकी कहानियों का संग्रह है।

श्री० प्रा. वारणासि राममूर्ति 'रेणु' :
परिचय गत फर्वरी के अंक में।

श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय :
आधुनिक बँगला-लेखकों में आप इसी नाम से प्रख्यात हैं। सुन्दर भाषा, हास्यरस की पुट और चलता विषय लेकर आकर्षक ढंग से कुछ नई बात कहना। मार्मिक कहानियों के लेखक और उपन्यासकार।

श्री बैजनाथसिंह 'विनोद' :
राष्ट्रीय काशी-विद्यापीठ के स्नातक। स्वतंत्र विचार-धारा के अध्ययनशील लेखक। आपका समाजवादी दृष्टिकोण साहित्य में पुरानी लकीर के सैनिक-शासन का विरोधी है। स्वभाव में विनोदीपन। आचार्य नरेन्द्र देवजी के नेतृत्त्व में 'जनवाणी' के सम्पादक रह चुके हैं। आजकल वर्धा-समिति में हैं।

श्री रामेश्वर दयाल दुबे एम. ए. 'सा. र.' :
परिचय गत जून के अंक में।

श्री दौलतराम शर्मा :
सिन्ध के एक नम्र जनसेवक और राष्ट्रभारती हिन्दी के पुराने प्रचारक। शर्माजी उस सिन्ध के निवासी हैं जो अब पाकिस्तान बन गया है, जिस प्रांत ने आचार्य चतुष्टय-गिडवानी-मलकानी-कृपलानी-वस्वानी को गांधी-युग में राष्ट्रीय शिक्षा का आचार्यत्व प्रदान किया! लाचारी और मजबूरी से अपने हजारों-लाखों देशबन्धुओं के साथ श्री दौलतरामजी ने भी अपनी प्यारी जन्मभूमि को आखिरी मरतबा मृत्यु का मुकाबला कर छोड़ा। आज भी आप राष्ट्रभाषा की सेवा में उसी उत्साह से संलग्न हैं।

श्री गुलाबदास ब्रोकर :
गुजराती के लब्धप्रतिष्ठ कहानी-लेखक हैं। कई पुस्तकें लिखी हैं। 'सूर्या', 'लता अने बीजी वातो'—'वसुन्धरा अने बीजी वातो' और 'लता शुं बोले?', श्री ब्रोकर की ये कृतियां अति लोकप्रिय हैं। मनोवैज्ञानिक धरातल पर अपने पात्रों के भावों और अन्तर्द्वन्द्वों का पर्यवेक्षण करने की विलक्षण दृष्टि आपको मिली है। आदर्शवादी, भावुक तथा प्रगतिशील। मोहमयी मुंबई के शेयर बाजार में मर-खपकर जब लिखने बैठते हैं तो कलम कोमलतम और कलाविद हो उठती है। भारती के इस अंक में लेखक के जीवन में घटित घटना से सम्बन्धित कहानी 'आवारा' पढ़िये।

(शेष मुखपृष्ठ के तीसरे पृष्ठ पर)

इस अंक की पाठ्य सामग्री

[भारती] विषय और लेखक [अक्टूबर १९५०]

पृष्ठ संख्या

१. आधुनिक साहित्य [स्व. गुरु. रवीन्द्र] ... ८८१
२. गांधी-दिन और हमारी दुरवस्था [श्री. जैनेन्द्रकुमार] ... ८८२
३. पत्थर की लिखावट [श्री. माखनलाल चतुर्वेदी "भारतीय आत्मा"] ... ८८७
४. साँची का सन्देश (सचित्र) [श्री. भदन्त आनन्द कौशल्यायन] ... ८९०
५. सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् ! (कविता) [श्री. गजानन माधव मुक्तिबोध] ... ८९६
६. जैनेन्द्र और मेडीरिथ [श्रीमती शचीरानी गुर्टू एम. ए.] ... ८९८
७. तेलुगु शतकमाला (तेलुगु) [श्री. प्रा. वारणासि राममूर्ति 'रेणु'] ... ७९१
८. जोड़ तोड़ (बंगला कहानी) [श्री. विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, और
अनु०—श्री. रूपनारायण पांडेय] ... ९१२
९. आचार्य नरेन्द्रदेव [श्री. बैजनाथसिंह 'विनोद'] ... ९१९
१०. सन्ध्यारानी (कविता) [श्री. रा. द. दुबे एम. ए. 'साहित्यरत्न'] ... ९२४
११. पणिहारी (सिन्धी लोकगीत) [श्री. दौलतराम शर्मा] ... ९२५
१२. आवारा (गुजराती कहानी) [श्री. गुलाबदास ब्रोकर, और
अनु०—श्री. 'परदेशी' साहित्यरत्न] ... ९२९
१३. तू दीपक जल रहा है (कविता) [श्री. प्रो. गोपाल शर्मा एम. ए., बी. टी.] ... ९४१
१४. पटाचारा (जातक कथा) [श्री. भदन्त शान्ति भिक्षु] ... ९४२
१५. चिन्तिता राधा (हिन्दी गीत, गोविन्द) [श्री. प्रा. विनयमोहन शर्मा एम.ए.एल.-एल.बी.] ९४६
१६. श्री. मैथिलीशरण गुप्त के साथ (एक मुलाकात) [श्री. उमाशंकर शुक्ल] ... ९४८
१७. वृन्दावनी (बंगला कविता) [श्री. यतीन्द्र मोहन बागची] ... ९५३
१८. महाकवि कालिदास के दो विलाप वर्णन (अज एवं रति-विलाप)
[श्री. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, व्याकरणाचार्य, काव्यतीर्थ] ... ९५५
१९. मराठी साहित्य का प्रवाह — २ (मराठी) [श्री. 'प्रभाकर' पंडित] ... ९६५
१०. पूर्णिमा (धारावाही उपन्यास) [श्री. अनन्त गोपाल शेवडे] ... ९७१
२१. साहित्यालोचन (समीक्षा) [श्री. विनयमोहन शर्मा] ... ९७२
२२. दृष्टिकोण (सम्पादकीय) ... ९८७

* * *

लेखकों से प्रार्थना :— कृपया बहुत ज्यादा लम्बे लम्बे लेख न भेजें। छपने पर ज़्यादा से ज़्यादा ८ पृष्ठ हों। लेख आदि सामग्री नवीनतम हो और कहीं किसी पत्र-पत्रिका में प्रकाशित न हो। अगले पृष्ठ पर दी हुई सूचनाओं को आप अवश्य ध्यान में रखिये।

'भारती' के नियम और उद्देश्य ।

१. भारती प्रतिमास ७ तारीख को प्रकाशित होती है ।

२. भारती में साम्प्रदायिक अथवा मत-मतान्तरों से सम्बन्धित, विवाद-ग्रस्त लेख प्रकाशित नहीं होंगे ।

३. भारती भारत की विशुद्ध अन्तर्प्रान्तीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रगतिशील चिन्तन-प्रधान सचित्र मासिक पत्रिका है ।

४. भारती में प्रतिमास लगभग १०० पृष्ठ रहेंगे ।

५. किसी लेख, रचना, कविता आदि को छापने या न छापने का, उसे कम-बढ़ करने का और लौटाने न लौटाने का अधिकार संपादक को है ।

६. भारती का उद्देश्य समस्त उच्च भारतीय भाषाओं के साहित्य को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना है जिससे वह भारत के समस्त भाषा-भाषियों की वस्तु बन सके ।

७. भारती का दृष्टिकोण नव चेतना को लिये हुए रचनात्मक है । वह नये भारत में ऐसे हिन्दी साहित्य का निर्माण चाहती है; जिसमें समग्र भारतीय साहित्य का समन्वय हो—सर्वोदय हो ।

८. भारती में हिन्दी की मौलिक श्रेष्ठ रचनाओं के साथ साथ —
१ असमिया, २ बंगला, ३ उड़िया, ४ नेपाली, ५ काश्मीरी, ६ सिंधी, ७ गुजराती, ८ मराठी; ९ तमिळ, १० तेलुगु, ११ कन्नड, १२ मलयालम, १३ उर्दू आदि भारतीय भाषाओं की चुनी हुई श्रेष्ठ अनूदित उच्च साहित्यिक रचनाएं भी प्रकाशित होंगी ।

९. भारती में मनन करने योग्य विविध मनोरंजक लेख, मनोवैज्ञानिक कलात्मक कहानियाँ, धारावाहिक उपन्यास, कविता, एकांकी, विविध समालोचनाओं का समावेश होगा ।

१०. प्रकाशनार्थ समस्त सम्पादकीय व्यवहार नीचे लिखे पते पर कीजिये :—

लेखकों से खास निवेदन :—

(१) 'भारती' में प्रकाशनार्थ रचना, आदि कम से कम एक मास पहले, ता. १० तक, सम्पादक के पास भेज देना चाहिए। रचना सामग्री साफ, सुथरे कागज के एक ही ओर स्वच्छ सुपाठ्य अक्षरों में लिखी जानी चाहिए ।

(२) लेखक कृपया इस बात को सदैव ख्याल में रखें कि वे जो कुछ रचना-सामग्री, कविता कहानी-एकांकी-निबंध-लेख आदि 'भारती' में प्रकाशनार्थ भेजें, वह नवीनतम हो। इतः पूर्व पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित बासी बची खुची न हो। लेखक कृपया सीधे सम्पादक को ही रचनाएँ भेजें। किसी अभिषद-परिषद् या सिंडिकेट आदि के द्वारा नहीं। आपकी भेजी मौलिक और अनूदित रचनाएँ भारतीय साहित्य में स्थायित्त्व ग्रहण करें इसी दृष्टि से उनका हम स्वागत करेंगे ।

अस्वीकृत रचना को वापस मंगाने के लिये डाक-टिकट अवश्य भेजें ।

वार्षिक मूल्य १५ रु.
एक प्रति १।) रु.

संपादक, 'भारती'
C/o ऑल इंडिया रिपोर्टर लि.
कांग्रेस-नगर, नागपुर १ (मध्यप्रदेश)

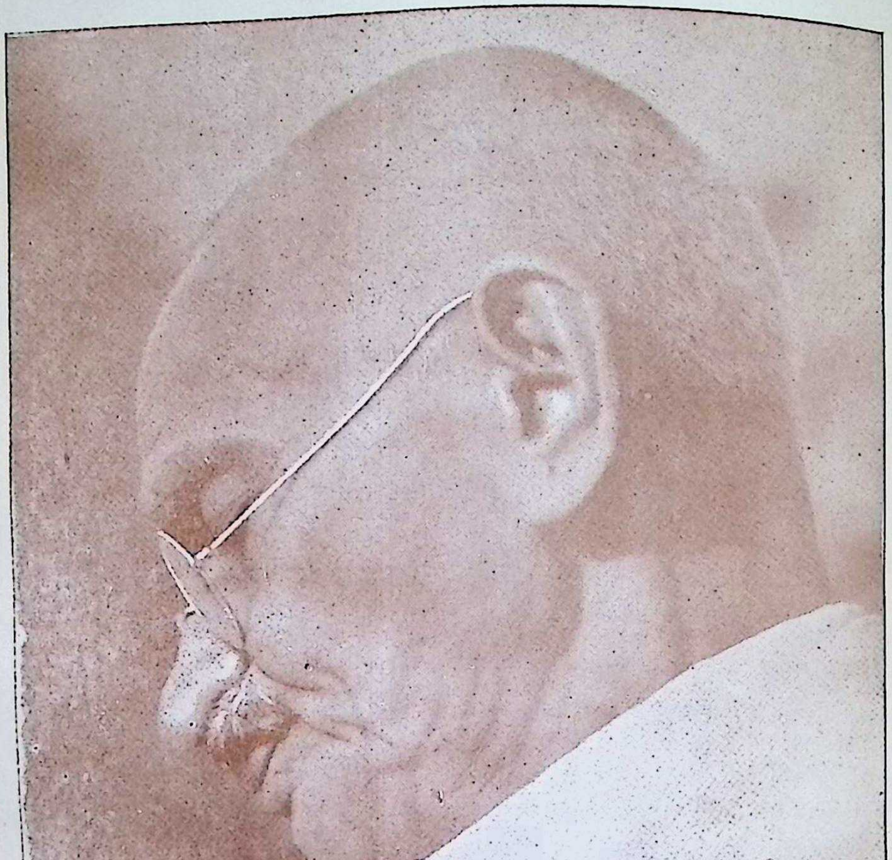

इनकी ८२ वीं जन्म-जयन्ती के पुण्यस्मरण में

तुम असीम में व्याप्त हो गये,
करने को अनन्त विश्राम !

" भगवान! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती "

— मैथिलीशरण गुप्त

भारती

सम्पादक
हृषीकेश शर्मा

संचालक
ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., नागपुर

प्रबन्ध-सम्पादक
वि. मा. कुलकर्णी

वर्ष १ * नागपुर, अक्टूबर—१९५० * अंक १०

आधुनिक साहित्य

"आजकल जिस देश में विज्ञान के अप्रतिहत प्रभाव से अलज्ज कौतूहल-वृत्ति दुःशासन की मूर्ति धारण कर साहित्य-लक्ष्मी के वस्त्र-हरण के अधिकार का दावा कर रही है, उस देश का साहित्य कम-से-कम विज्ञान की दुहाई देकर इस अत्याचार की कैफियत दे सकता है; किन्तु जिस देश में भीतर और बाहर, बुद्धि और व्यवहार में, कहीं भी विज्ञान को प्रवेशाधिकार नहीं मिला, उस देश के साहित्य में उधार ली हुई नकली निर्लज्जता को किसकी दुहाई देकर दबा रखोगे? भारत सागर के उस पार यदि प्रश्न किया जाय कि "तुम्हारे साहित्य में इतना अधम क्यों है?" तो उत्तर मिलेगा, "अधम, साहित्य के हित के लिये नहीं है—बाज़ार के हित के लिये है। बाज़ार ने जो घेर रखा है!" किन्तु भारत सागर के इस पार जब पूछते हैं तो यही उत्तर पाते हैं, "बाज़ार आसपास कहीं भी नहीं है, पर ऊधम काफ़ी है। आधुनिक साहित्य की यही एक बहादुरी है।"

—स्व गुरुदेव रवीन्द्रनाथ

गांधी-दिन और हमारी दुरवस्था

[श्री जैनेन्द्रकुमार]

आज गांधीजी के जन्म दिन पर हम विस्मय कर सकते हैं कि इस थोड़े से काल में कि जब गांधीजी शरीरसे हमारे बीच में नहीं रहे, हम कहां से कहां आ गये हैं। ऐसा तो हमको नहीं मालूम होता होगा कि हमने गांधीजी को छोड़ दिया है। उनको हम मानते हैं, उनकी नीति को मानते हैं। भर सक उसपर चलने की कोशिश भी करते हैं। लेकिन देखते हैं कि नतीजा पहले जैसा नहीं है। तब उत्साह था, अब निराशा है! तब जो अपने को होमने चलते थे वे ही अब भोगने बढ़ रहे हैं। वे ऐसा जानकर कर रहे हैं सो नहीं; शायद अपने बावजूद कर रहे हैं। पर है अवश्य कि ऐसा हो रहा है। जिन्दगी जो ज्वार पर थी अब उतार पर दीखती है और आदमी देवत्व की तरफ उठने के बजाय नीचे पशुता में गिरने को अपने को मजबूर पा रहा है!

गांधीजी का अक्षर शरीर तो हमारे पास है। उनका लिखा हुआ सब कुछ मौजूद है। उनकी याद भी ताज़ा है। उनकी सिखावन से लाभ उठाने की तबियत भी कम नहीं है, फिर भी कहीं कुछ कमी है कि फल उल्टा हो रहा है। आशा थी कि भारत उठेगा और राह दिखायगा। उसमें से दुनियां को प्रकाश की एक नई किरण फूटती दीखेगी। समाधान प्राप्त होगा और एक नूतन पूर्णतर दर्शन। पर मालूम होता है कि भारत सिर्फ कंगाल हुआ पड़ा है। उसे बाहर से धन की और अन्न की मांग है। और देने के लिये उसके पास कोई बल नहीं है। वहां आपसी होड़ और छीन-झपट है, समस्यायें घिरती जा रही हैं और अर्थ-व्यवस्था टूटी पड़ रही है। समस्यायें या मुसीबतें गांधीजी के रहते न थीं सो नहीं। पर हम अन्दर से यह अवश्य अनुभव करते थे कि हम बढ़ रहे हैं, मिल रहे हैं और हमारे कष्ट हमें दबाने के बजाय हमें और उभार रहे हैं! गरीब होकर भी तब हम पाते थे कि हम किसी से कम नही हैं, सम्पन्न हैं, क्योंकि उत्साह और विश्वास हमारे पास है। कन्धे हमारे झुके हैं तो भविष्य के निर्माण के काम के बोझ से, अन्यथा सीना हमारा सीधा है और हम हक के रास्ते पर हैं। ऐसे में विपद सम्पद बन कर हमारा बल बढ़ाती थी और प्रतीत होता था कि दुनियां को हमसे यह प्रमाण मिलेगा कि अर्थ और पदार्थ की सभ्यता और प्रचुरता तुच्छ है, उसकी अपेक्षा में आत्म-बल बड़ा बल है। और उसी बल पर नींव डाल कर आगामी सभ्यता को ऊंचा उठना सीखना है। दूसरे के अमित शस्त्र के मुकाबले में निशस्त्र होकर भारत दीन और हीन नहीं है और उसे अपनी रक्षा नहीं खोजनी है। उल्टे, दूसरों की रक्षा के लिए शायद उसी को आगे आना है।

आज निस्संदेह वह हालत नहीं है। तो क्या गांधी को हमने छोड़ दिया? उसके नाम को छोड़ दिया? नीति को छोड़ दिया? नहीं, जानते-बूझते हमने यह नहीं किया। नाम बराबर लेते रहते हैं और नीति की भी उलट-पुलट करके दुहाई देते रहते हैं। फिर भी कुछ हमसे उनका छूट अवश्य गया है। यद्यपि अपने जानते छोड़ा हमने कुछ नहीं है। छूट न गया होता तो इतना अन्तर कहां से आता? उजला ही काला बना क्यों दीखता?

हमें पाना होगा कि वह क्या है जो छूट गया हो सकता है।

मैं समझता हूँ कि वह है यह कि उन्होंने मरते हुए कुछ करना नहीं चाहा। जो किया मानो

१९५०

प्रायाश्चित्त के नाते किया, उद्धार और सुधार के दम पर नहीं किया। बल उन्होंने प्रार्थना का ही पाया। ऐसे बल को व्यर्थ माना। परिग्रह को पाप जाना। इस तरह उन्होंने संग्रह नहीं किया, पार्टी नहीं बनाई, शासन नहीं जुटाया और विरोधी की सेवा बजाने और उसका विश्वास जीतने को अपना सर्वस्व बना लिया। अपनी ओर से अत्याचार के प्रति सत्याग्रह छोड़ा सो नहीं; लेकिन विरोधी के हित में अपने को निछावर कर देने का यत्न भी नहीं छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि जो उनके अपने बने वे तो देहात के रचनात्मक कार्य में फेंक दिये गये और जो अलग रहे वे खुशी से बल्कि सहायता पूर्वक नेता बनने दिये गये। अपनों को गांधीजी ने ऊंची कुर्सी के बजाय सेवा की धरती दी। जिनका मन राजनीति में था उनको राजनीति के साथ खेलने दिया। पर वहां से भी उनसे जो बन सका सेवा का काम निकाल लेने का ध्यान रखा। शासन व्यर्थ हो जाये और हर आदमी अपनी अपनी जगह सेवा-सिद्ध उत्पादन के काम में लग जाये—यह दृष्टि उन्होंने रखी। कांग्रेस से चाहा कि वह पद की तरफ न देखे, जनता की तरफ देखे। कुर्सी जनता के कन्धों पर बैठती है, सेवक की जगह जनता के चरणों में है। इससे कुर्सी की तरफ उसे नहीं देखना है। कुर्सी यों है तो किसी-न-किसी को ऊपर बैठना ही है। केवल इसलिए वहां जाकर बैठने की अपने लिए ज़रूरत पैदा करना सही बात नहीं है। दिन असली वह होता जब कुर्सी कोई होती ही नहीं और पद सिर्फ दायित्व होता जिसके साथ वेतन-भत्ते का कोई प्रलोभन न लगा होता। तब समझा जायगा कि जनता समर्थ बनी है और उस समय पद का दायित्व सिर्फ खतरा और बोझ हो रहेगा, किसी तरफ भी वह प्रलोभन या पुरस्कार न होगा। तब कुर्बानी का हौसला रखने वाला आदमी ही उसके लिये तैयार होगा।

गांधीजी इसी से अपने बारे में कहते थे कि वह राजनीतिक नहीं, धार्मिक हैं। राजनीतिक न होना गांधीजी का असली होना था। बस यही असलियत उनकी हमसे छूट गयी है। हम राजनीतिक होकर जो गांधी के होना चाहते हैं सो मानों भीतर में उनका निषेध बन कर ऊपर उनकी दुहाई उठाना चाहते हैं। सो भला कैसे फल ला सकता है? इसी से देखने में आता है कि गांधीजी की नीति के नीचे अनीति और उनकी अहिंसा के नीचे कायरता पल रही है। गांधीजी की नीति-अनीति के लिये सदा चुनौती थी और उनकी अहिंसा हिंसा के लिये भय का कारण थी। पर गांधीजी की मूल धार्मिकता के अभाव में वह बात आ नहीं सकती। तब उदारता की नीति निकम्मी और अहिंसा नितान्त आदर्श की चीज़ समझी जा सकती है।

गांधीजी की शक्ति पर हम आराम से शासन नहीं चला सकते। शासन और शासक को समाप्त देखने की इच्छा करने वाले गांधीजी ही थे, उनको सहने वाले न थे। शासक को सदा उनसे कांपते रहना पड़ा। शासक में से वह सेवक गढ़ निकालना चाहते थे। लेकिन सेवक अपने प्रेम-धर्म को छोड़ कर 'शासक-धर्म ओढ़ने ही क्यों लगा? इस लिए वह ऐसा जनतंत्र देखना चाहते थे जिसकी इकाई स्वाधीन, स्वायत्त, फिर भी राष्ट्र (अथवा समष्टि) के साथ सहानुभूति में बंधा एक जनपद हो। प्रत्येक जनपद में सेवा को अपना सर्वस्व मान कर बैठा हुआ एक समग्र सेवक हो। जनतंत्र के सूत्र का सिरा इस सेवक से आरंभ हो। जनतंत्र को इस तरह का सिंचन देश की सारी भूमि से मिले। वह किसी भी अर्थ में अर्थतंत्र न बन पाये, सर्वथा जनतंत्र ही रहे। सत्ता केन्द्र से जब चलती है, तब जनतंत्र जन का तंत्र न रह कर अर्थ का तंत्र बन जाता है। तब अर्थ तो प्रधान और जन गौण हो जाता है। ऐसी अर्थतंत्रता की नीति पर जमने वाला जनतंत्र जन-जन में पराधीनता का बोझ बढ़ाने वाला होगा। जाने अनजाने उस तंत्र को एक ओर केन्द्रीयता (Centralism) और दूसरी ओर सर्व-व्यापकता (Totaliterianism) की तरफ फैलते जाना होगा। इसमें तनाव पैदा होगा और फटने की हालत बढ़ती जायगी।

गांधीजी ने नहीं चाहा कि कोई उन पर आसरा डाल कर उठे। उन्होंने सबको आत्म-निर्भर देखना चाहा। उसी प्रकार की स्वावलम्बी अर्थरचना का सूत्रपात किया। स्वावलम्बन में हार्दिक परस्परावलम्बन आ ही जाता है। जो नहीं आता वह है उत्साह को मारने वाला परावलम्बन। वह अर्थ व्यवस्था, जहां कि व्यक्ति काम और पूंजी के अभाव में असहाय बन कर अपने को बेचने के

लाचार पाता और इन्सान की जगह अंक बनना स्वीकार करता है, राजनीतिक पार्टी-शक्ति जुटाने और जमा करने में बड़े सुभीते की साबित होती है। लेकिन उस प्रकार संघर्ष में से खींची हुई शक्ति के केन्द्रीकरण से उस व्यवस्था का विकार तो बढ़ता ही है। मनुष्य काम और पूंजी के लिये पूंजीपति की तरफ न देख कर सरकारी विभाग की ओर देखने को लाचार बने तो इसमें मनुष्य की पराधीनता किसी भी ओर से कम नहीं होती है। बल्कि सम्भव है कि यदि पूंजीपति नाम के मनुष्य में हृदय पत्थर बन कर रह जाता हो, तब सरकारी विभाग में तो उस हृदय नाम की चीज का होना ही असंगत और अवैध हो जाता हो, यानी वहां उस वस्तु का कहीं पता तक न हो। इसलिए मनुष्य की स्वाधीनता को स्वयं उससे अलग ले जाकर इस या उस प्रकार के तंत्र से जुड़ा देखने की भूल को बढ़ावा गांधीजी ने नहीं दिया। उन्होंने कहा कि स्वाधीनता तो हरेक की मुट्ठी में ही है। तृष्णा, ईर्ष्या, लोभ को कम कर के आदमी अपनी जगह पर मन-बुद्धि के पूरे सहयोग के साथ दोनों हाथों से उपजाने और काम करने में लग जाये तो ऐसे वह अपनी ही स्वतंत्रता न कमा लेगा, बल्कि सब की स्वतंत्रता को भी पास लायेगा।

राजनीतिक और धार्मिक में यही अन्तर है। सागर में बूंद की गिनती नहीं है, लेकिन धार्मिक फिर भी बूंद को गिनती में लेता है। ऐसा वह श्रद्धा के बल पर ही कर पाता है। बूंद के बदलने से सागर कैसे बदलेगा। बदलेगा भी कि नहीं। इस व्यर्थ चिन्ता के नीचे आने से वह सहज बच जाता है। फल जो हो उसे तो वही करना है। आदमी को बचा कर या अपने को बचा कर, राज्य पर या दुनिया पर जाना उससे नहीं बनता। यह उसकी कूपमण्डूकता समझी जा सकती है। समझा जा सकता है कि यह अपने में बन्द हो रहना है। असामाजिकता का दोष भी उसमें देखा जा सकता है। लेकिन व्यवहार की दृष्टि से भी उसमें इतना लाभ अवश्य है कि उस व्यक्ति से होने वाला नुकसान उस पर ही पड़ कर वहीं सीमित हो रहता है, उससे आगे फैल नहीं पाता। लेकिन अगर उससे लाभ होने वाला हो तो वह अवश्य ही उससे बाहर की ओर गये बिना नहीं रह सकता। फिर भी जो सिर्फ बुद्धिमान है उसको वह दृष्टि नहीं जचती। वह प्रार्थना को भी नहीं समझ सकता और साधुता को भी नहीं। वह इन दोनों को वासना-विलास मानता है। इसलिए वह एक को बूंद की भाषा में नहीं, सब की, और सागर की भाषा में सोचता और उसी पैमाने पर करना चाहता है। बूंद सागर में नगण्य ही है, इसलिए तूफान सारे सागर में लाया जा सके तो सब स्वयमेव ठीक हो जायगा। इस फेर में बुद्धिवादी श्रद्धावादी को उदारतापूर्वक सहन करता हुआ क्रान्ति से कम किसी भी काम में अपने को नहीं लगा सकता। बेकार रह सकता है क्योंकि उस पर क्रान्ति आयगी। उसके ऐसे बेकार काम के फलस्वरूप राजनीतिक प्रगति बहुत होती है लेकिन जान पड़ता है कि लोगों के सुख-दुख का मसला वहीं-का-वहीं रह गया है, बल्कि वह कुछ और जकड़ ही गया है।

राजनीति में से गांधीजी को प्राप्त करने वाले लोगों से उनका यह श्रद्धात्मक और तर्कातीत रूप जो दूर रहता है सो उसकी चिन्ता राजनीतिक को सताती नहीं है। कारण, वह जानता है कि वह चीज़ गांधीजी की इतनी व्यक्तिगत थी कि राष्ट्रीय विचार में उसका समावेश आवश्यक नहीं है। राज्य-संचालन में वह अप्रस्तुत है। वह भावात्मक है, योजना से उसका संबंध नहीं है। राजनीतिक का यह अनुमान ठीक हो तो विचार करने की आवश्यकता रहती है कि गांधीजी की ही धर्म-निरपेक्ष और उदार नीति से चलने पर जो इष्ट स्फूर्ति नहीं प्राप्त हो रही है, ऊर्ध्व की जगह अधोगति ही होती जा रही है, उसका कारण फिर क्या है?

यह नहीं कि नैतिकता की चिन्ता नहीं है। प्रत्येक राजनीतिक नेता के वक्तव्य में उसकी भरपूर चिन्ता भरी जान पड़ती है। पर नैतिकता उसके निकट शायद राज्य के लिए है। राज्य नैतिकता के लिए नहीं। गांधीजी जिसको घोड़ा समझते थे उसको हम गाड़ी समझें और गाड़ी को घोड़ा समझ कर आगे रक्खें तो क्या अचरज कि हम उस तरह से वह गति और परिणाम न प्राप्त कर सकें, जो गांधीजी हमें प्राप्त करा देते मालूम होते थे। निश्चय ही उनके जीवन-मूल्य जुदा थे। संसार

१९५०

उनके लिए साध्य न था, केवल साधन था। राज्य और स्वराज्य में उनकी कामना न थी। उसके द्वारा उन दुखियों को वापिस हक के रूप में उनका वह सुख पहुंचा देने की कामना थी कि जिसके छीनने में हम स्वयं साधन बनते आये हैं। हम आराम और प्रभुता में रहने वाले लोग अपना प्रायश्चित पूरा करने का अवसर पायें यदि राज्य का और स्वराज्य का यह अर्थ हो तो उसके पदों के लिये आपाधापी (अहं पूर्वं अहं पूर्वं) की जरूरत नहीं रह जाती। कर्म का महत्व तब भाव में आ जाता है और प्रतिष्ठा तब कर्म के कर्तृत्व में नहीं; बल्कि उसमें के अकर्म भाव में आ रहती है। निश्चय ही धार्मिक गांधी का मूल्य चाहे जो हो, उनके उत्तराधिकारी सांसारिकों के मन का मूल्य कर्म के कर्तृत्व से बाहर नहीं है। जोर शोर की कर्म योजना में से वे लोग वृहद्-फल उपजा लेना चाहें तो उनकी दृष्टि से इस में अयथार्थ क्या है?

पर उसमें से निराशा ही फलित होती देखी जाती है। निराशा से फिर कर्म को द्विगुणित वेग भी दिया जा सकता है। शस्त्रास्त्र से लड़ा जाने वाला युद्ध निराशा से वेग पाये हुए कर्म का ही तो नाम है। लेकिन वैसा वहलावा कब तक आदमी अपने को देता रहेगा और इस तरह स्वयं अपने मन को ही संस्कार देने के काम से कब तक छुट्टी पाता चला जायगा! 'वह काम टालो मत, इसी पल उसमें लग जाओ'—यह गांधी जी ने कहा। यह वह काम है जो सब के लिये इसी घड़ी सुलभ है और जिसे किसी योजना पर स्थगित करने की आवश्यकता नहीं है। यह सीख एक विरक्त सन्यासी की सी समझी जा सकती है लेकिन यह उन गांधी जी की थी जो सच्चे और पूरे अर्थों में आज के भारत के राष्ट्र पिता हो गये हैं। उस नैतिक-धन को जो वह कमाकर हमें सौंप गये हैं चाहें तो हम गंवा सकते हैं। अथवा प्रयत्न करके उसे बढ़ा भी सकते हैं। आंख खोलकर उसे खर्च कर डालना चाहें तो इस में कुछ भी हर्ज नहीं है। लेकिन कहीं हम मानें कि धन तो नैतिक होता ही नहीं और जो असल में धन होता है वह तो उनकी सौंपी हुई थैली में से हमें मिला ही नहीं है। और यह कहकर गांधी का नाम तो हम रक्खें और उनकी कमाई को निकम्मा जानकर उड़ा दें तो यह बहुत भारी अफ़सोस की बात होगी।

चर्खे और खादी की प्रवृत्ति ने कुल कितने गज कपड़ा लोगों को दिया और इस तरह कुल कितना पैसा मेहनत के रास्ते देहात में पहुचाया?—क्या उससे कई गुना कपड़ा और कई गुना पैसा स्वराज्य पाकर हम अब एक योजना और एक कानून के जोर से क्या देहात पर नहीं बरसा सकते? पराधीनता के समय का खादी-चर्खा स्वाधीनता के समय के लिये सोच विचार की चीज नहीं रह जानी चाहिए। इस प्रकार का विचार गांधी की आत्मा को गजों और पैसों की तराजू पर तोलने की धृष्टता के समान हो जायगा। ऐसे हम गांधी के शव पर गांधी के नाम का मंदिर चाहे खड़ा कर दें, लेकिन इसके लिये हम सपूत की जगह कपूत ही समझे जायेंगे।

गांधी जी ने यदि कुछ किया तो यह कि उन्होंने हमारी आत्म-चेतना को जगाया। कोई जरूरी नहीं है कि हम खादी चरखे से चिपटे रहें, उनके सारे रचनात्मक काम को हम धता बता सकते हैं। स्वयं उनके नाम से ही चिपकने की आवश्यकता नहीं है। गांधीजी को छोड़ने में मैं किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं देखता। ईश्वर, या इतिहास ने यह गलत नहीं किया कि गांधीजी को हमारे बीच से उठा लिया और हमें अपने ही ऊपर छोड़ दिया। ऐसी हालत में अपने को हम सर्वथा स्वाधीन मान सकते और बना सकते हैं। लेकिन यह अक्षम्य बात होगी कि हम गांधीजी का नाम रखना चाहें, राजनीतिक भूमिका पर टिकने वाला काम भी रखना चाहें, लेकिन उस भावना से परहेज करें जिसमें से उनका सब काम और नाम निकला था।

अन्त की ओर गांधी जी ने एक नाम पर लगभग अपना सारा जोर ला डाला। भारत आज दो श्रेणियों में बँटा है। और उन दोनों में आपसी समझ और सद्भाव नहीं है। दोनों जैसे एक दूसरे के प्रति अजनबी बने हैं और एक दूसरे को सन्देह से देखते हैं। एक ओर जनता का देहाती बहु भाग है जो धर्म से लग कर जीता और चलता है। दूसरी तरफ शहरी श्रेणी है जो कर्म से लिपटी है। धर्म और कर्म के बीच खाई

है जिसको फैशन बढ़ाता ही चला जा रहा है। शहर गांव पर कृपा से देखता है और चतुराई से वहां की उपज अपनी तरफ खीच लेता है। कर्म की यही महिमा है। धर्मी गांव की महिमा यह है कि वह ठगा जाता है और अभाव में भी सन्तोष पाने का प्रयत्न करता है। भयंकर भूल होगी अगर गांव के धर्म को और संतोष को हम शहर में लाने के बजाय, हम शहर की चतुराई लेकर गांव को उकसाने और उभारने जा पहुचेंगे। ऐसे आग ही लगेगी और सब जल जायगा। वही हो रहा दीखता है। राजनीति जिस कर्ममद को लहका कर अपने संगठन और उद्धार का काम करना चाहती है उसके कलेवर में अधिकांश वह विष समाया हुआ है। उस विष-हरण की अक्सीर दवा के रूप में गांधीजी के प्रार्थना के आग्रह और रामनाम की धुन को हम साथ न लिए चलेंगे तो गड्ढे में पड़ने से बचा न जा सकेगा। कम्यूनिज्म वह गांधीवाद है जिस में से ईश्वर की हत्या करके उसे अलग कर दिया गया है। इस तरह वह सब कुछ हो कर अन्त में केवल एक निषेध रह जाता है।

कम्यूनिज्म आज शक्ति है। इस घड़ी दुर्निवार शक्ति है। शक्ति वह निस्संदेह घृणा में से आती है। सच है कि शक्ति घृणा के बिना नहीं होती। इससे साधुतावाद साम्यवाद का जवाब नहीं हो सकता। गांधी गांधी थे, और सिर्फ साधु नहीं थे। योद्धाओं में वह प्रचंड योद्धा थे। असत् से वह कभी समझौता नहीं कर सके थे। इस प्रकार असत् के विरोध में उनमें सदा एक दुर्धर्ष तेज जगा रहता था। ध्वंसवादी जिस भीषण कट्टरता के साथ संघर्ष को अपना ईमान मान सकता है, गांधीजी उससे कहीं कठिन अटूटता के साथ स्नेह को अपना धर्म मानते थे। उनमें भी घृणा थी और वह स्वयं घृणा के प्रति थी। वह घृणा उनमें उस से कहीं तीव्र थी कि जितनी कि साम्यवादी में पूंजीपति के लिये हो सकती है। इस तरह गांधी की अहिंसा किसी की भी हिंसा से कम प्रखर थी। वह अहिंसा हिंसा को सह कर नहीं रह जा सकती थी। प्रतिकार में उसके सामने आकर डट जाने को वह मचली रहती थी। अर्थात् साम्यवाद की वैज्ञानिक घृणा की शक्ति का उत्तर गांधी की घृणा के प्रति वह धार्मिक घृणा की शक्ति है जो किसी तरह टूटना नहीं जानती और मरते-मरते भी शत्रु में भिन्न ही देख पाती है। शत्रुवाद में अविश्वास का साम्राज्य हो सकता है। गांधीवाद में न छिपाव है, न दुराव है। वहां सब खुला है और सब कहीं विश्वास है। जनकी और जनता की भूल सत्यता में, उसकी अन्तर्भूत सत्य-वृत्ति में बसने वाला गांधी का यह विश्वास किसी भी आशंका या विभीषिका से मुड़ने या बदलनेवाला नहीं है।

गांधी का उत्तराधिकारी आज का भारत धोखे में पड़ेगा अगर वह गांधी को खंडित रूप में अपनाने बैठेगा। या तो एकदम उसे छोड़ देना होगा, नहीं तो अखंड भाव में अंगीकृत करना होगा। ठीक है, कि गांधी एक ही हुआ, और एक ही रहेगा, लेकिन वह श्रद्धा जिसका वह प्रतीक था, उससे पहले भी थी और बाद भी रहेगी। वह सबकी है, सबके लिये है। हरेक उसमें अपना हक पा सकता है।

बोदा बनानेवाला वायुमंडल

"भारत का वर्तमान वायुमंडल मनुष्य को बोदा बना देनेवाला है।"

—गांधीजी

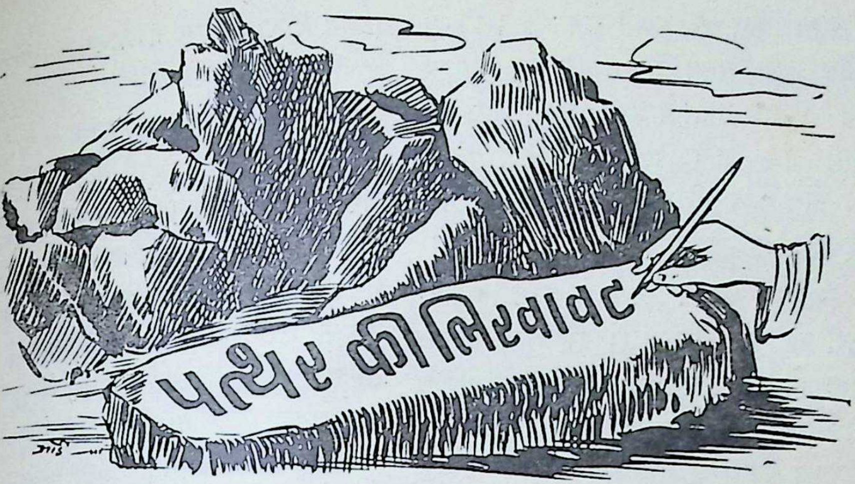

[श्री माखनलाल चतुर्वेदी]

[आज से लगभग ३ वर्ष पहले, प्रयाग के ' सत्यनारायण कुटीर ' में, फागुन की हल्की सर्द सुबह को इस भाव-निबन्ध के सूत्र पहली बार श्री माखनलालजी के मन में जागे । इसकी पृष्ठभूमि में उनका कहना है, किसी के भावाकुल लेकिन साधनाप्रबल जीवन की एक हल्की-सी झलक थी जो एकाएक उनके सामने झलक गई थी । वाद में यह गद्यखण्ड, प्रयाग के वजाय खण्डवा जा कर पूरा हुआ था ।

उनके इस प्रकार के भावात्मक निवन्धों का अभी तक केवल एक ही संग्रह निकला है ' साहित्य-देवता ' और यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दी तो क्या, समस्त एशियाई साहित्य में वह अपने ढंग की बेजोड़ चीज है ।

यह सर्वथा अप्रकाशित भावनिवन्ध सर्वप्रथम वार ' भारती ' के पाठकों के समक्ष हम सादर प्रस्तुत कर रहे हैं ।]

पत्थर पर लिख रहे हो, ऐसी दृढ़ भावना से जीवन-निर्माण के यज्ञ में लगे हो, ठीक है ! कहीं वर्फ की चट्टान समझ कर उसका चित्र तो नहीं खींच रहे हो——

और यह जो तुम सोचकर भविष्य में बिगड़ बिगड़ कर बनाने जा रहे हो, इसके बाद क्या होगा ?

क्या "इसके बाद" वाक्य खण्ड के अस्तित्व को आनन्द के आँगन में, करुणा की अंगुलियों की खीझ भरी पोरों पर जलती हुई घड़ियों को गिनती के बीज बना बना कर मानना पड़ेगा ?

आरोप अनुमान ही नहीं है, वह आधार भी है । सौ सौ बार, खो खो कर, सहस्र सहस्र वार पुनः ढूंढ़ने का वह उपक्रम, जहाँ तर्क भी पसीज कर रीझ भरी उड़ान बन जाय । आरोप का आलोक न हो तो वैधव्य वरण करे ! यह गणित तो पड़नेवाली सहस्रा नहीं है आरोप; यह क्वणित हो पड़नेवाली चरण ध्वनि है । वाणी की यात्रा, नाद की गरिमा, जहाँ जूड़ा डाल देती है, वहाँ से प्यार की यात्रा शुरू होती है ।

फिर तुम क्यों कहते हो कि कुछ बोलो । बोलों के मोल आखिर धूलिकणों के मोल हो गये हैं न !

बोल ? जब प्यार के बोल अपने सम्पूर्ण प्यार का अवतार हो उठते हैं, तब उन पर भी रीझने, उनसे भी रूठने, उनसे भी आँख-मिचौनी खेलने की तबियत चाहती है । उस समय वे कुछ ऐसे से अटपटे हो उठते हैं

कि जाने कैसे से लगने लगते हैं। किन्तु वे बोल उसी समय तक नाद का उपद्रव करते हैं, जब तक वे इच्छाओं के ऊंटों पर अपना टांडा लादे, अदा और बिदा की न जाने कौन कौन-सी Marketing Commodity लादे चले आ रहे हों।

इच्छाएं ? आह ! प्लेग के ये कीड़े ! एक ने दूसरी को छुआ कि ये सौ सौ गुनी प्रजनन शीला हो उठीं। उनके खिंचाव इतने बोझीले कि मैं जान ही न पाया कि ये आराध्य की मुँहताज नहीं; ये तो अपने में ही व्यस्त, अपने में ही मस्त, अपनी ही अभ्यस्त केवल 'जविन' नामक साँसोंवाले मरण को दाँव पर लगाये रूप की हाट में, या आकारों की बाट में, गुणों का लेन देन मांप रहीं या रक्त-कर वसूल करने के लिए अपनी दुर्गन्धि को, न जाने किन किन सुगन्धित विशेषणों से सँवार रही हैं।

'यारी' में 'दूरी' की तड़प ! आह ! वह बृश्चिक दंश वह सौ सौ सांपों का एक साथ काट कर कुण्डली बना कर मेरे ही सामने बैठ जाना।

किन्तु यह क्या, जीवन के गणित में, मैं दशम के बोझ में "हाथ का लगाना" क्यों भूल गया ?

'यारी' और 'दूरी' ये दोनों न कभी साथ चले; न चलेंगे। अपने अभिमत को रिझाने का नाटक ज़रा खतम क़रके, देखें तो अन्धे को दीख जाय कि—

मन में माखन चोर गड़े
अब कैसेहुं निकसत नहिं सजनी
तिरछे हैं जु जुड़े।

और यह क्या कहा कि तुम अपने जीवन में आग लगाने का तमाशा देखोगे ? बहादुर हो न ? क्यों न देखोगे ?

तुम्हें पता है कि जानकारी जीवन के परमत्व के प्रति एक बे-जानकारी प्रगट करने आयी है, ज्ञान ने अन्तर की विकृति को बलवान बनाये रखने के इतने साधन मुहैया कर दिये हैं कि मैं अपने से विश्वासघात कर विशेषणों से दिशा भूलने की कला में विशेषज्ञ हो गया हूँ, इसलिए सनेह की झड़ झेलते समय जब मेरी इच्छाएं झुलसती हैं, जब एक एक कर उनमें आग लगती है, तब मैं सोचने लगता हूँ, कि मैं अपने जीवन में आग लगाकर तमाशा देख रहा हूँ।

एक दिन इच्छाओं की जूती खाकर, अपरिपक्व आवेगों को "प्राण" कहा था। आज इच्छाओं को जीवन कहने लगे न ?

जीवन वहाँ होता है जहाँ जीवन बिन्दुओं को स्वेद-बिन्दुओंसा लाचार न होना पड़े जहाँ उन्हें अश्रुबिन्दुओं के निर्झर का अपमान न करना पड़े।

'स्मरण' ही कब तर्क की तराजू पर ठीक बैठ सका, जो नाम स्मरण बैठेगा ? यह लेट की छटपटाहट में आनेवाले रंग भरे 'अपने' के उमंग भर सपने जब जी में लबालब भर उठे और तब भी जाने कैसी कभी अनुभव हुई कि अभी भी कुछ खाली खाली-सी है ही, अपनी सीमाओं की लाचारी और कसक के निस्सीम वैभव में भी, जो 'अपने' को भूलना भूलकर, सपने को श्राप देने पर उतारू हो गया, उससे कह दो कि 'अपनों' के 'सपने' भी अपने ही होते हैं।

कुछ अनारों में इसको रंग पर लाने के लिए रक्त का खाद देना होता है, शायद शाकाहारी होने से मुझे इस बात का पता नहीं है, इसी प्रकार परम इच्छा को परमत्व के चरणों तक चढ़ाने के लिए उसे अपनी समस्त इच्छाओं को भोजन दे देकर ही चढ़ाना होता है। जब मेरी परम इच्छा के दरबार में इच्छाओं का अभाव हो उठे, तब

१९५०

न मेरी परम इच्छा मेरी अपनी कहला सके। वह दिन उग उठने तक तो, जीवन में आग लगाने का तमाशा देखना ही होगा। हँसकर या रोकर ! कोटि-कोटि कचौंटों से सौंधी उस मुसकुराहट पर, लाओ, योगियों के योग को, तपस्वियों के तप को न्यौछावर कर दूँ। ज़रा सीधे तनकर एक हाथ में इच्छा, एक हाथ में ज्वाला लेकर खड़े भर रहना 'यार' मेरे। यह वही जगह है जहां दलील की दलील काम नहीं आया करती।

एक दिन की बात है, मैंने लिखा—प्रेमलीला के लेखकों की प्राणभरी पुस्तिका के गीतिलास्य ! दो हृदयों को प्रणय डोरियों से मिलाए रखनेवाली अमर मधुर गांठ, जन्म-जन्मान्तरों के भावी को सुनहला रखने के लिये तुतलाते हुए सन्निकट भूत, वर्तमान की डग-डग बढ़ती, पग-पग चढ़ती सुनहली चलती फिरती तसवीर, मेरी वत्सलता की गीली माटी के मन्दिर में, कालिमा में लिपट कर रहनेवाली श्यामल उज्ज्वल देवता, मेरे अन्तरतम की तराजू पर सासों बाँटों तुल सकनेवाले प्राण भरे नाद, फूलों से मकरन्द छीन कर उसे ओठों से अमर कर देने वाले मुसकैया, श्रुति की श्रौतता पर लीला के लोलकों को नचाये रखने वाले कन्हैया, धीमे-धीमे एक-एक कर, वाणी की मधुरता का स्वाद शैशव के अज्ञान से लाभ उठाने आयी हुई कुन्द कलियों-सी दंतुलियों को बन्दी कर-कर लेने वाले किलकारी नरेश तेरी जय हो !

एक बेटी की गोद में एक नन्हा मुन्ना था।

किन्तु उसका सुहाग जेल में था। वह खुद बड़ी कर्मण्या बड़ी तेजस्विनी, आज भी उसकी तेजस्विता 'नाग लोक' में गौरव भर रही है। किन्तु उसने मुझे लिख दिया।—

"मुझे उपमा प्यारी न हो" सो बात नहीं। मुझे तो सुहाग से अधिक और उससे कम कुछ भी न चाहिए।

उसी दिन मैंने सत्यनारायण कुटीर में यह पत्र पाकर एक गीत लिखा।

"स्नेह ने आराधना से हार खाई।"

किन्तु नहीं, युग-मोह की तरह; स्मृति मोह भी प्राण भरे रथ का पथ भंग करता है। मैं तो तुम्हीं से बातें कर रहा था। क्या कह रहा था ?—हाँ इच्छाओं में आग लगी देखकर यह न चीख उठो कि मैं जीवन में आग लगाकर तमाशा देख रहा हूँ।

जिसको नेकनामी और बदनामी सुनते-सुनते भी सुनने की प्यास रहे, जिसके गीत गाते गाते भी लगे कि अभी गा न पाये; जिसकी याद, सूरज की सौ-सौ किरणों के बीच आँखों पर अगणित सपने उतार-उतार दे। जिसके चरण आँखों के आँसुओं पर तैरते जानकर भी, भिगोये न भिगो पाऊँ; जिसके लिये झुके मस्तक की "याद दिलानी" बाकी रह जाय। और दूर व उठूं का भूलना याद न रख पाया, याद रखने को भूल न पाया। जिस पर चन्दन चढ़ाते समय मेरी उँगलियों को 'कहाँ चरण, कहाँ माथा' याद रह गया, जिसे समर्पित करते समय अपने जीवन की सारी दौड़धूप पूजा के अर्घ्यों से भरी पूरी न हो सकी, और जिस पर समर्पित होते समय वह पुलक न पाई जिसे पाकर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता, तब खोकर पाने का इतिहास लिखने का अभ्यास करने मैं किसी यज्ञशाला में नहीं बैठूंगा।

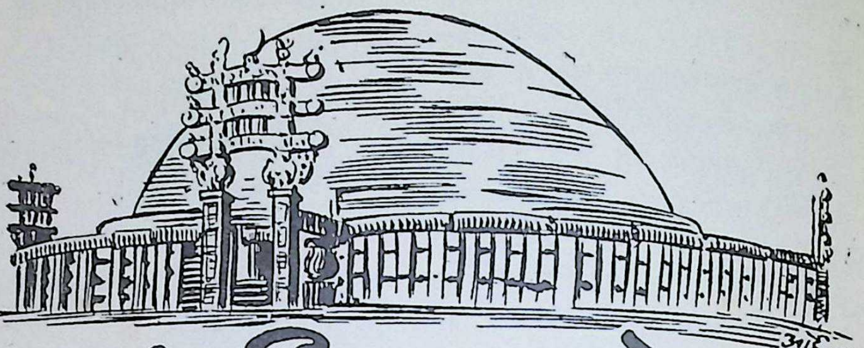

सांची का सन्देश

[श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन]

'शुद्धि' एक चीज़ है। 'पवित्रता' दूसरी। 'शुद्ध' हवा का कुछ अर्थ है। 'पवित्र' हवा का क्या अर्थ है? हम 'शुद्ध' पानी की तो बात करते ही हैं, 'पवित्र' पानी की भी बात करते हैं। 'शुद्ध-भूमि' की तो बात करते ही हैं, 'पवित्र-भूमि' की भी बात करते हैं। मैं नहीं जानता कि तात्त्विक दृष्टि से कोई भी भूमि 'पवित्रभूमि' होती है अथवा नहीं? किन्तु, यदि कोई भी भूमि 'पवित्र-भूमि' होती है तो जी. आई. पी. लाईन पर स्थित भोपाल से दिल्ली की ओर जाते हुए बीच का स्टेशन "सांची" भारत की पवित्र-भूमियों में अन्यतम है।

चौथी शताब्दी में स्थविर महानाम द्वारा रचित सिंहल के इतिहास अर्थात् 'महावंश' में लिखा है—

"पिता के दिये हुए अवन्ती राज्य का शासन करने के लिये उज्जयिनी पहुँचने से पूर्व अशोक मार्ग में विदिशा नगर में ठहरे थे। वहाँ एक सेठ की 'देवी' नाम की पुत्री से उनकी भेंट हुई। कुमार के सहवास से उसे गर्भ हो गया, और उज्जयनी में उससे शुभ महेन्द्र कुमार का जन्म हुआ। उसके दो वर्ष बाद उस देवी से संघमित्रा पैदा हुई। उस समय वह (देवी) वहां विदिशा-गिरी में ही रहती थी।" ॥१३-५-११॥

* * *

"महामति महेन्द्र स्थविर को उस समय प्रव्राजित हुए बारह वर्ष हो गये थे। उन्होंने अपने उपाध्याय और संघ की आज्ञा के अनुसार लंका को बुद्ध-भक्त बनाने के लिये लंका जाने का निश्चय किया।

इस बीच में जाति गणों (सम्बन्धियों) को देखने के विचार से उपाध्याय और संघ की वंदना कर तथा राजा (अशोक) से पूछ, महेन्द्र स्थविर अन्य चार स्थविरों तथा संघमित्रा के पुत्र महासिद्ध षड़भिज्ञ सुमन सामनेर को साथ ले, सम्बन्धियों से मिलने के लिये दक्षिणागिरी गये।" ॥१३-१-५॥

"फिर धीरे धीरे (अपनी) माता 'देवी' के विदिशा नगर में पहुँच कर उसके दर्शन

१९५०

किये। देवी ने अपने प्रिय पुत्र को साथियों सहित देख कर अपने हाथ से भोजन बना उन्हें खिलाया, और सुन्दर विदिशागिरी विहार में स्थविर को उतारा।" ॥१३-६-७॥

महावंश का यह विदिशागिरी ही या तो सांची है अथवा सांची से थोड़ी दूर पर स्थित वर्तमान 'भेलसा-नगर' है। भेलसा नगर में वैष्णव मतावलम्बियों के एक बड़े काम की चीज़ है। प्रथम या द्वितीय शताब्दी में एक ग्रीक यहाँ आया था। उसने वैष्णव-धर्म स्वीकार किया और उसकी याद में गरुड़-ध्वज नाम का एक शिलास्तम्भ गडवाया। उस समय का वैष्णव-धर्म 'यवनों' को किस सरलता से वैष्णव बना सकता था।

सरजॉन मार्शल ने इसी सांची के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है--

"इस पर्वत के नाना रंगों के पत्थरों और चट्टानों में रूप और रंग का समान सौन्दर्य है। इसके चारों ओर उगी हुई वनसपती इस सौन्दर्य को कई गुना बढ़ा देती है। वसन्त के आरम्भ में जब पलाश के फूल यहां खिलते हैं तो सारी पहाड़ी एक अद्भुत छटा से ढक जाती है।"

सांची हमसे बहुत दूर नहीं है। वह हमारे हृदय के बहुत समीप है। हमें उसके बारे में जानकारी होनी चाहिए।

भेलसा से लगभग बारह मील के घेरे में पांच पुरातन-अवशेष हैं जो सांची-स्तूप कहलाते हैं। वे पांचो हैं—

१. सांची — भेलसा से ५॥ मील दक्षिण-पश्चिम.

२. सोनारी—सांची से ६ मील दक्षिण-पश्चिम.

३. सतधार—सांची से ६॥ मील पश्चिम.

४. पिप्पलिय—सांची से ७ मील पूर्व पश्चिम-पूर्व.

५. अन्धेर — भेलसा से ८ मील पूर्व दक्षिण-पूर्व.

हम इनमें से भेलसा से ५॥ मील दक्षिण-पश्चिम जो सांची के स्तूप हैं उन्हीं की चर्चा करने जा रहे हैं, और उनमें भी केवल तीसरे स्तूप की; क्योंकि इसे ही भगवान बुद्ध के दोनों प्रधान शिष्यों सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के धातुओं को लगभग दो हजार वर्ष से अधिक सुरक्षित रखने का श्रेय प्राप्त है।

१८५१ के जनवरी के अन्त और फरवरी के आरम्भ में जनरल कनिंघम और लेफ्टनेन्ट मेसे ने प्रथम बार इन स्तूपों के अन्दर के रहस्य का उद्घाटन किया।

जब तीसरे स्तूप के ऊपर से एक मोटा सुराख कर के उसे यंत्र द्वारा अन्दर तक ले जाया गया तो कुछ घंटे के परिश्रम के बाद जनरल कनिंघम को कोई पांच फुट से अधिक लम्बी पत्थर की शिला पर जाकर रुकना पड़ा। इस शिला को उठाने पर उसके नीचे से भूरे पत्थर के दो बक्स निकले। प्रत्येक के ढक्कन पर ब्राम्ही अक्षर खुदे थे। जो दक्षिण की ओर था उस पर खुदा था—

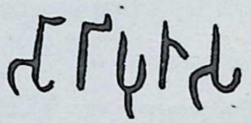

सा रि पु त स

जो उत्तर की ओर था, उसपर खुदा था—

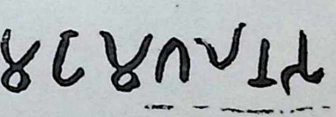

म हा मो ग ल न स

प्रत्येक बक्स डेढ़ फुट लम्बा चौड़ा था, और उस पर ६ इंच मोटा ढक्कन था ।

दक्षिण की ओर जो पत्थर का बक्स रखा था उसमें सफेद पत्थर की एक बड़ी डिबिया थी, कोई ६ इंच चौड़ी और ३ इंच ऊँची । उसी डिबिया के पास चंदन की लकड़ी की दो पतली पतली चपटियाँ रखीं थीं—एक ४ ॥'' लम्बी और दूसरी ३ ॥'' लम्बी ।

इसी छोटी डिबिया के अन्दर से भगवान बुद्ध के प्रधान शिष्य महास्थबिर सारिपुत्र की केवल एक पवित्र-हड्डी मिली और उसके साथ थे भिन्न भिन्न तरह के माला के मनके।

उत्तर की ओर जनरल कनिंघम को एक और बक्स मिला, जो सारिपुत्र वाले बक्स से कुछ छोटा था । उस बक्स में महास्थविर मौद्गल्यायन की दो पवित्र हड्डियाँ मिलीं । उनमें से जो बड़ी थी वह आधे इंच से भी छोटी थी ।

हर डिबिया के ढक्कन के अन्दर की ओर आध इंच ऊँचा एक सुन्दर अक्षर है । सारिपुत्र की डिबिया में है——

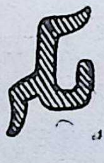

(सा)

महा मौद्गल्यायन की डिबिया के ढक्कन के अन्दर की ओर लिखा है——

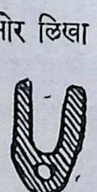

(म)

दोनों पत्थर की डिबियाँ जिस क्रम से रखी हुई मिली हैं उसका भी महत्व है । जब भगवान् बुद्ध पूर्व की ओर मुँह करके बैठते तो दक्षिण-दिशा उनके दाहिने हाथ की ओर रहती और उत्तर-दिशा उनके बाएँ हाथ की ओर । सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भगवान बुद्ध के दो प्रधान शिष्य होने से उनके दाएँ और बाएँ हाथ कहे जाते थे । उनके अंतिम अवशेष भी उसी क्रम से रखे गये जैसे वे भगवान बुद्ध के दाएँ और बाएँ बैठते रहे होंगे ।

पत्थर के बड़े बक्सों के ढक्कन जिन पर 'सारिपुतस' और 'महामोगलनस' लिखा है सांची के अजायबघर में सुरक्षित रखे हैं ।

जिस समय यह पवित्र धातु साँची के स्तूप में मिले उसी समय ये यहाँ से इंग्लैंड ले जाये गये । लगभग १०० वर्ष तक ये लंदन के म्यूजियम में सुरक्षित रहे । बौद्धों के आंदोलन करने पर लंदन के म्यूजियम के अधिकारियों ने यह सौजन्य दिखाया है कि सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की उन पवित्र हड्डियों को, उन धातुओं को, उन्होंने भारतीय सरकार को सौंप दिया । किन्तु उन डिब्रियों को जिन पर यह दो अक्षर स्याही से लिखे हैं—यह सा और म—उन्होंने नहीं लौटाया । उनका कहना है कि यह स्याही के लेख के प्राचीनतम उदाहरण हैं; और इस लिये वे इन्हें अपने पास सुरक्षित रखना चाहते हैं ।

स्याही के लेख के प्राचीनतम उदाहरण ! हाँ, किन्तु कहाँ से प्राप्त हैं ? भारत से । तो क्या भारत के लिये उनका कुछ मूल्य नहीं कि भारतीय सरकार उन्हें इंग्लैंड में क्यों पड़े रहने दे ।

१९५०

इन स्याही के दो ऐतिहासिक अक्षरों वाली डिब्बियों में जो पवित्र हड्डियाँ मिली हैं, उन का इतिहास साक्षी है। संयुक्त-निकाय में लिखा है—

"भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथ-पिंद्रक के जेतवनाराम में ठहरे थे।

आयुष्मान सारिपुत्र मगध में नालक ग्राम (अपनी जन्म भूमि) में रोग से पीड़ित थे। आयुष्मान चुन्द उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रहे थे। इसी रोग की अवस्था में आयुष्मान सारिपुत्र परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

आयुष्मान चुन्द सारिपुत्र का पात्र-चीवर ले श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवनाराम में, जहाँ आयुष्मान आनन्द रहते थे, पहुँचे। जाकर आनन्द से बोले—"आनन्द! आयुष्मान सारिपुत्र परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। यह उनका पात्र-चीवर है, और उस जल छानने के कपड़े में उनके धातु (अस्थिशेष) हैं।"

"चुन्द! चलो भगवान के पास चलें, और उनसे जाकर कहें।"

चुन्द और आनन्द भगवान के पास पहुँचे और प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। आनन्द ने कहा—"भन्ते! आयुष्मान चुन्द कहते हैं कि सारिपुत्र का परिनिर्वाण हो गया। यह उनका पात्र-चीवर है और इसी पानी छानने के कपड़े में धातु-शेष। भन्ते! यह सुनकर मेरा शरीर तो मानो जड़ हो गया। चारों ओर अन्धकार छा गया। धर्म की तो बात ही क्या, दिशाएँ तक सूझनी बन्द हो गयीं। ओह! सारिपुत्र परिनिर्वृत हो गये!"

"क्यों आनन्द! किसलिये? क्या सारिपुत्र शील को अपने साथ ले गये? समाधि को अपने साथ ले गये? प्रज्ञा को अपने साथ ले गये? विमुक्ति को अपने साथ ले गये? विमुक्ति ज्ञान—दर्शन को अपने साथ ले गये?"

"नहीं भन्ते! आयुष्मान सारिपुत्र न शील को अपने साथ ले गये, न समाधि को अपने साथ ले गये, न प्रज्ञा को अपने साथ ले गये और न विमुक्ति को अपने साथ ले गये। लेकिन भन्ते! आयुष्मान सारिपुत्र मेरे उपदेशक थे। वे धर्म के ज्ञाता थे। अपने सब्रह्मचारियों पर उनकी बड़ी कृपा थी। भन्ते, मैं सारिपुत्र की उस धार्मिक करुणा, दया, कृपा का स्मरण करता हूँ।"

"आनन्द! जिस प्रकार किसी बड़े भारी वृक्ष के रहते उसका सबसे बड़ा सार वाला तना टूट कर गिर जाय, उसी प्रकार महान भिक्षु-संघ के रहते सारवान सारिपुत्र का परिनिर्वाण हो गया। आनन्द! यह कहाँ मिलेगा कि जो पैदा हुआ है, जिसकी रचना हुई है जो अस्तित्व में आया है, उसका विनाश न हो? नहीं आनन्द यह नहीं हो सकता। इसलिए आनन्द! अपने दीपक आप बनो! किसी दूसरे का आश्रय मत देखो। धर्म को ही अपना दीपक समझो। धर्म का ही आश्रय ग्रहण करो।"

और तथागत ने धर्म-सेनापति सारिपुत्र के धातुओं पर जेतवनाराम में एक स्तूप बनवाया। उसके दो सप्ताह बाद महास्थविर मौद्गल्यायन का भी परिनिर्वाण हो गया। तथागत ने उनके धातुओं पर राजगृह में एक स्तूप बनवाया। अजातशत्रु ने भी दोनों प्रधान शिष्यों के धातुओं की सुरक्षार्थ तथा पूजार्थ दो स्तूप बनवाये।

इतिहास कहता है कि सम्राट अशोक दोनों प्रधान शिष्यों के धातुओं की पूजा करने के लिये श्रावस्ती गया था। इस बात की पूरी सम्भावना है कि जिस समय अशोक ने बुद्ध के धातुओं को भारत भर में वितरित किया उस समय उसने दोनों प्रधान शिष्यों के धातुओं को भी भारत के भिन्न भिन्न नगरों को पूजार्थ बांट दिया हो।

सांची के तीसरे स्तूप के बारे में जनरल कनिंघम का कहना है—"स्तूप के गिर्द जो वेष्टिकाएं बनी हैं वे मेरी सम्मति में अशोक कालीन हैं। उसी समय का यह स्तूप भी होगा। यद्यपि यह भी सम्भव है कि स्तूप उससे पहले ६०० ई. पूर्व में ही बन गया हो।"

सारिपुत्र प्रज्ञा की ही नहीं; करुणा की भी साक्षात् मूर्ति थे। एक दिन उन्होंने एक बालक को देखा—चिथड़े पहने। वह घर के बाहर फेंके हुए भात के कण चुन चुन कर खा रहा था, जैसे कोई भूखा कौआ हो। सारिपुत्र का हृदय उस बालक की दरिद्रता पर काँप उठा। समीप बुलाकर पूछा—

"बाल! तुम्हारे माता पिता कहाँ हैं?"

"मैं अनाथ हूँ।"

"क्या तुम दीक्षित होना पसन्द करोगे?"

"मुझे कौन दीक्षित करेगा?"

"बाल! मैं करूंगा।"

स्थविर ने बालक को अपने भिक्षापात्र में खिलाया। स्वयं उसके हाथ धुलवाए। वह बालक भी आगे चलकर एक सिद्ध–पुरुष हुआ।

* * *

तीन वर्ष पूर्व लंदन से सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के ये धातु जब कोलम्बु लाये गये गये तो 'सीलोन डेली न्यूज' नामक पत्र ने उस समय का दृश्य इन शब्दों में चित्रित किया है—

"सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के धातुओं का स्वागत और उन्हें म्यूजियम तक जुलूस साथ ले जाने का ऐसा दृश्य आधुनिक इतिहास में इससे पहले यहाँ देखने को नहीं मिला।

"द्वीप के सभी हिस्सों से जो लोग जुलूस में शामिल हुए उनकी संख्या दस लाख से भी अधिक रही होगी।

"कोलम्बो म्यूजियम में आकर जिन श्रद्धालुओं ने अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाए उनकी निश्चित संख्या २०५२९१५ है!"

कलकत्ते में इन धातुओं के आने पर प्रधान-मंत्री पंडित जवाहरलाल और उनकी सरकार ने राजकीय स्वागत किया। उत्तर प्रदेश ने किया, बिहार ने किया। भारत से बाहर बरमा ने किया। बरमा के बाद लद्दाख ने किया।

एक जगह से दूसरी जगह यह धातु हवाई जहाजों में ले जाये गये, सैनिक जहाजों में ले जाये गये।

हर देश में लाखों आदमियों द्वारा इस प्रकार अपना स्वागत होते देख कर धर्म-सेनापति की अस्थियां सोचने लगीं—"शायद सारा देश धर्ममय है।"

किन्तु किसी ने उन्हें धीरे से कहा—

"धर्मसेनापति! आजकल तो 'धर्म' नीलाम पर चढ़ा है, जिसे सभी देश के सेठ साहूकार और सरकारें बड़ी से बड़ी कीमत

१९५०

देकर खरीद रहीं हैं। धर्मसेनापति ! आपकी पवित्र-धातुओं का स्वागत भी देश और समाज की इसी प्रवृति का प्रतीक है।"

धर्म-सेनापति की दो हजार वर्ष पुरानी हड्डियां बोल उठीं—

'क्या सचमुच ?'

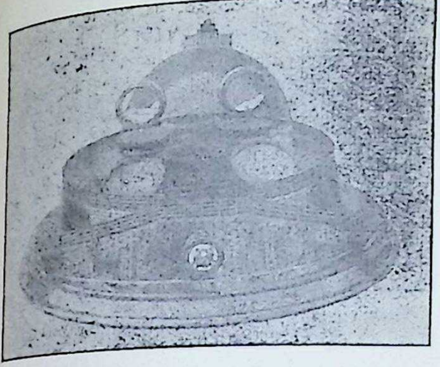

इस सम्पुट में दोनों प्रधान शिष्यों की पवित्र अस्थियाँ रक्खी हुई हैं।

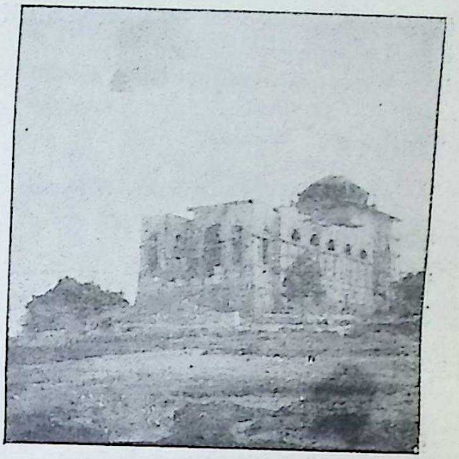

यह साँची का नया विहार है जिसमें भगवान बुद्ध के दोनों प्रधान शिष्यों की अस्थिया सदैव विश्राम पायँगी।

(फोटो श्री गुणाकर के सौजन्य से)

* * *

"अगर तुम उसकी बातों पर ध्यान दोगे तो दीर्घजीवी होगे, अपने आप को पहचान सकोगे और जीवन का रहस्य जान सकोगे।"

"जिन्होंने संसार को त्याग दिया है, उन्हें दो प्रकार की अति से वचना चाहिए। यह दोनों अति क्या हैं ! एक तो है सुख और भोग-विलास में प्रवृत्त जीवन, जो मनुष्य को नीचे ले जानेवाला है। दूसरा, व्यर्थ का कायक्लेश का जीवन, जो कष्टप्रद और अनार्य है।"

'भिक्षुओ ! इन दोनों अति के मार्गों को छोडकर तथागत ने एक मध्यम मार्ग (बीच का रास्ता) पाया है, कि जो बुद्धि, शान्ति, ज्ञान, सम्बोधि और निर्वाण का मार्ग है। यह मध्यम मार्ग क्या है—यह है अष्टांगिक सन्मार्ग, अर्थात् (१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् आचरण, (५) साधु जीविका (६) सम्यक् प्रयत्न, (७) सम्यक् विचार और (८) सम्यक् एकाग्रता।" भगवान बुद्ध

(साँची का भी यही सरल सुबोध सर्वसुलभ सन्देश है— सं०)

: कविता :

सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्

[श्री गजानन माधव मुक्तिबोध]

(१)

सत्यम्—

(भारतीय दार्शनिक के प्रति—)

नील निरभ्र, व्योम-सम व्यापक
मुक्त-हृदय तुम स्वच्छ सुचिंतक,
मैदानों के उदार प्रमुदित—
मुक्त वायु-से मधुर दार्शनिक

तुम आनन्दित ओजोमय प्रभु
अपने पथ के, निज जीवन के।
चिर कल्याणी, निर्झर वाणी,
झरती उर के गिरि-प्रांगण से।

तुम अजस्र, विश्वस्त, दृढ़स्थित,
गौरव-मय-गिरि; हरित भरित हो।
आत्मवान, निर्द्वन्द्व, सृजक तुम,
जीवन के शासक उन्नत हो।

तुम असीम मैदान कि जिस पर,
भाव-वायु स्वच्छन्द लहरता।
तुम आकाश-निरभ्र, कि जिसके
स्वच्छ हृदय पर दिवस उतरता।

अंतराल-वासी हो नभ के,
भव्य-हृदय, तुम अजस्र भूधर।
जिसके दृढ़ पाषाणों में अति
विकल मचलते शत-शत निर्झर।

उर्वर जिससे हरित भरित हो,
शस्य शामला जीवन धरिणी।
प्रमुदित, उत्साहित, ओजोमय—
पर फैलाती नभ में खगिनी।

नील मुक्त आकाश, हरित-वन,
गिरि विशाल, शत निर्झर के स्वन

पर फैलाये उड़ता चलता
नभ से आत्मा का खग वन-वन।

शिवम्—

(युद्ध-पिपासुओं के प्रति)

वे ध्वस्त हों!
जो स्वार्थ के उन्माद में नभ तक गये
जो विश्व-मानव का सदा अपमान ही करते रहे
पृथ्वी—क्षमा की मूर्ति—अक्षम हो घिरी—
घिर कर वंटी।

प्यारी दया की गोद,
आत्मज मानवों के रक्त के ही
दीर्घ दागों से सिंची, सिंच कर छँटी।
वह उषा,
जो देख कर निज प्रतिच्छाया मुग्ध धरती पर
प्रेरणामय स्मित सुनहला जाल फैलाती
उसे आश्चर्य होता आज—
उसकी मधुर छाया धरित्री पर फैल
ऐसी बसती क्यों कर
[वेदना-स्मित मुसकराती मौन रक्ताप्लाविता धरती]

इस सुसंस्कृत सभ्यता के उत्तरीयों में,
लगे जो लाल धब्बे हैं....
कभी वे मिट न पायेंगे....!
[खून कर के निस्सहाय गरीब भाई का
आधुनिकता को लपेटे नर,
ठहाका मारता जब लौट आया]
गहरे लाल वे धब्बे कभी भी मिट न पायेंगे,
दुर्दान्त-ज्वाला से दमक कर, आज नभ में वे
बने हैं लाल तारों से
कि जलती लाल आँखों से—
कि जाग्रत विश्व-मानव की निगाहों से!
स्वार्थ के उन्माद में नभ तक गये हैं जो....
भस्मीभूत हो वे धरित्री पर आ गिरेंगे, यों,

पराजित दस्यु होंगे, दूर होगी द्रोह-आशंका,
सिन्धु-सा अंगड़ाइयाँ लेगा
अरे ! जब सत्य जीवन का !

सुन्दरम्—

(जीवन-पथ को आलोकित करते आत्म-दीप के प्रति—)

मेरे पथ के दीपक पावन !
मेरा अन्तर आलोकित कर ।
यदि जलता तू बाहर उन्मन
अधिक प्रखर बन मेरे अन्दर
फैल रहा तू सब के उर पर
आलोकित कर निर्जन कानन
मेरे अंतर में बिछ जा तू
तेजोमय मानव के यौवन !
बाल-सखी के भोले मुख की,
मधुर ज्योति-रेखा तुम कोमल....
सहज कुतूहलमय नयनों में
आत्म-विभास, सरल, तुम निश्छल,
सघन वन-श्री के छायामय
तल में अलस किशोरी विलसित,
उसे प्यार कर आत्म-भार से
जल उठने की प्यास विमोहित
मुझको यों तू खींच न बाहर,
मुझको यों मत तू व्याकुल कर
मेरे पथ के दीपक पावन,
मेरा अन्तर आलोकित कर—
अंतहीन सुख के साथी हैं
नभ के ये अगणित तारागण
अंतहीन दुख का साथी है
स्नेह-शील शशि का नव-यौवन
किन्तु एक संस्पर्श गहन तम
मानव की ऊष्मा का अनुभव
मेरे उर में रहे तरंगित
वही अकेला गभीर नीरव,
मेरे पथ के दीपक पावन,
मेरा अन्तर आलोकित कर
मानव ऊष्मा के अनुभव को
कर दे मेरा जीवन-सहचर ।

गान्धी : लेखक और कलाकार !

"गुजराती साहित्य को उसके वर्तमान उन्नत रूप में लाने का श्रेय गान्धीजी को है। गुजराती भाषा, आज जो एक नूतन विचार-प्रवाह का साधन बन गयी है, आज उसमें जो शक्ति हम पाते हैं, आज उसमें जो एक नूतन प्राणोन्मेष है, वह मुख्यतः गान्धीजी और कालेलकर की देन है । पर गुजराती ही क्या; अंग्रेजी भाषा पर भी उसकी छाप पड़ी । क्या गुजराजी में, क्या अंग्रेजी में, गांधीजी की लेखन-शैली एक उच्च कोटि के कलाकार की शैली है। उनका एक शब्द भी व्यर्थ नहीं । नपे-तुले शब्द। अपने अपने स्थान पर ठीक। आडम्बर नहीं, शृंगार नहीं। कितने सुन्दर भावमय काव्यालंकृत वाक्य है——"गाय दया की एक कविता है", "घृणा सदैव घातक होती है", "प्रेम कभी नहीं मरता", "प्रेम बोलता नहीं; जो बोले वह प्रेम नहीं।"

— श्री रामनाथ सुमन

भा. ५९.

जैनेन्द्र और मेरीडिथ

[श्रीमती शचीरानी गुर्टू एम. ए.]

जैनेन्द्र और मेरीडिथ की साहित्य साधना और रचनाकाल में लगभग अर्द्ध-शताब्दी का अन्तर है, तो भी दोनों अपने अपने युग में एक नवीन जीवन-दिशा के अन्वेषी और तत्त्व-जिज्ञासु के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। कथा-साहित्य की रूढ़िवादी शृंखलाओं को विच्छिन्न करके जीवन के निष्क्रिय-पक्ष में झाँकनेवाले जैनेन्द्र एक नवीन प्रयोगी हैं और मेरीडिथ विक्टोरिन-युग की चिर-प्रयोग-शील साहित्यिक-मान्यताओं से ऊबकर अन्तर्वैयक्तिक तथ्य-जगत् का गम्भीर विश्लेषक, जहाँ नित्यके जीवन के अर्द्ध-व्यक्त अनुभव-खण्डों से टकराकर वह आंतरिक-कुण्ठाओं के सूक्ष्म नियोजन में व्यस्त है और मानव-मन की पेंचीदा गुत्थियों को यथावत् सुलझाने के प्रयास में उसी अनुपात से उलझता गया है। यद्यपि मेरीडिथ की सी उदात्त कल्पना जैनेन्द्र में नहीं है तथापि दोनों की स्वभावज विशेषताएँ और शोधक वृत्तियाँ उन्हें समानता के एक सूत्र में बाँधती हैं, प्रत्युत यों कहें कि दोनों ही किसी एक स्कूल अथवा गुट्ट के न होकर नई मंज़िल तय करनेवाले राही हैं, जो जीवन के वस्तुगत-सत्य को आग्रहपूर्वक पकड़ने के चिर-आकांक्षी हैं और व्यष्टि के वृत्त से निकलकर समष्टि-चेतना के दायित्व को जागरूक-बुद्धि से स्वीकार करते हैं।

जैनेन्द्र की कृतियों में उनकी मानसिक कुण्ठाएँ अत्यन्त अनुशासित होकर व्यक्त हुई हैं। लेखक प्रायः मानव-जीवन की विरूपता का क्षीण सूत्र हमारे हाथों में थमाकर मनोभावनाओं की सतह पर ऐसे धमकते क़दमों से चलता है कि कभी अपनी अहंशून्यता की कुहेलिका में छिप जाता है और कभी रुद्ध आत्मा की छटपटाहट और घुमड़न को दार्शनिक आवरण में, लपेट उसके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में बहक जाता है। एक प्रखर बुद्धिवादी होने के नाते वह व्यक्ति की प्रच्छन्न दुर्बलताओं पर घातक, किन्तु निःशब्द चोट करता है और सामाजिक स्वीकृति की ओट में जो निरपवाद रूप से मानसिक-अतृप्ति और अस्पष्ट इच्छायें छिपी हैं—उन्हें अत्यन्त तीव्रता से अनुभव करके तर्क-पद्धति पर उघाड़ उघाड़ कर दर्शाता है। मानव-जीवन ज्यों ज्यों विकसित हो रहा है, त्यों त्यों उसकी जटिलता और उलझनें बढ़ती जा रही हैं और जैनेन्द्र मानों उसकी आत्मगत सतह पर पड़ी सलवटों को पकड़ने के आयास में स्वयं ही मानसिक संतुलन खो बैठते हैं। व्यक्ति की सम्भाव्य और अर्द्ध-व्यक्त कुण्ठाएँ उनके समक्ष सदैव एक समस्या बनी रहती हैं, तीखी अनुभूति और अविश्वास की मात्रा अधिक होने के कारण उनका जीवन से पूर्ण लगाव नहीं हो पाता, जिससे कई स्थलों पर उनका चिन्तन एकांगी हो गया है और उनके द्वारा उतारे गये जीवन के चित्र भी अधूरे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनके कतिपय चित्रों में अप्रतिम निखार और बाह्यान्तर का विवरणपूर्ण मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है, किन्तु 'क्लाइमेक्स' लाने के प्रयास में वे लड़खड़ा जाते हैं और अंतर्द्वंद्वों से प्रपीड़ित व्यक्ति की भाँति बिना मुख़ातिब हुए बीच में ही विषय से नाता तोड़ पीछा छुडा लेते हैं।

जैनेन्द्र की अधिकांश कहानियों और उपन्यासों को पढ़कर हमें लगता है जैसे वे जीवन के मर्म में अभी पूर्णतया पैठ नहीं पाये हैं। वे अपने अनुभूत तथ्यों को कहना तो चाहते हैं, किन्तु क्या कहें और कैसे कहें—इसे वे मानों भली प्रकार नहीं जानते। जीवन को केवल बुद्धि के पैमाने से जाँचने के कारण उनमें अनुभूति की कमी है और उनकी दृष्टि मानव-हृदय के कोमल वृत्तों में न रमकर भीतरी संघर्षों की उपरी सतह को ही छूकर रह गयी है।

इसके विपरीत मेरीडिथ की वृत्ति अंतर्मुखी है। बहिरंग जीवन से सिमटकर उसकी आत्मपरक दृष्टि अंतरंग आधेय पर आ टिकी है, जहाँ उसकी बहिर्निष्ठ एवं अंतर्निष्ठ चिंताधाराओं का स्रोत दोमुखी

१९५०

हो गया है और उसकी हल्की से हल्की अनुभूति जीवन के खण्ड खण्ड पर बिखर कर उसके शाश्वत रूपों की प्रतिरूप बन गई है। जीवन-दर्शन की गहरी मुद्रा में उसके नेत्र प्रायः मुँद जाते हैं, वह जीवन को सीधे न देखकर अँधेरे में भटकते हुए की भांति टटोलता है, जिससे कल्पनातिरेक में अपनी उलझी हुई जटिल अभिव्यक्तियों को अभीष्ट रूप-रेखा न दे सकने के कारण वह अपने साध्य की अतिशयता का विधायक न होकर उसकी प्रभविष्णुता को क्षति पहुँचाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि तत्कालीन उपन्यासकारो में मेरीडिथ अपनी उच्च मनोभूमि के कारण सामान्य धरातल से ऊपर उठ गया है और मानव-जीवन के यथा-तथ्य ग्राह्य को इतने वर्गों पर बिखेर सका है कि उसके द्वारा अंकित टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें असीम का स्पर्श करने लगी हैं।

जैनेन्द्र में वस्तु-अंकन की प्रवृत्ति अधिक होने के कारण जीवन के सूक्ष्म और मार्मिक पहलुओं को दर्शाने की क्षमता कम है, मेरीडिथ की सूक्ष्म-दृष्टि निगूढ मनोगतियों एवं मानसिक तथ्यवाद की टोह में रहने के कारण उन प्रच्छन्न स्तरों को भी भेद सकी है, जहाँ मानव-स्वभाव की अनास्थाओं एवं चारित्रिक त्रुटिओं का निरापद अवस्थान है। जैनेन्द्र ने व्यक्ति की गुप्त, किन्तु दुर्दान्त वासनाओं के ऊपर औपचारिक आवरण चढ़ाया है, मेरीडिथ ने सूक्ष्म-द्रष्टा की भाँति परिस्थितियों से खिलवाड़ न करते हुए मानवीय-विकृतियों को निरावरण किया है। जैनेन्द्र के खण्ड-चित्रों में उद्बुद्ध मन की विपुल प्रेरणा और आन्तरिक कर्म-निष्ठा की गहरी छाप है, उन्होंने सधी रेखाओं से कल्पना को बलिष्ठ और गतिशील बनाया है, मूल्य आँकने की पुरानी दृष्टि बदली है, तर्क-मूलक पद्धति पर नवीन जीवन-तथ्यों का उदघाटन किया है, किन्तु मेरीडिथ में जो आत्म-प्रत्यय का ओज, व्यापक अंतर अनुभूति और कथा-शिल्पी की सप्राण चेष्टा है—वह जैनेन्द्र में नहीं। मेरिडिथ की कृतियों में मानव-जीवन के केवल खण्ड-चित्र ही नहीं हैं, प्रत्युत् उसकी वृहत्तम पट-भूमि में जीवन को एक विशेष दृष्टि से देखने की साध, उसके मार्मिक एवं विविध पहलुओं का पारिपार्श्विक चित्रण, मनोवैज्ञानिक बारीकियों से विश्लेषण-वृत्ति के अतिशय और प्रत्यक्ष अनुभव की स्फूर्ति के बावजूद आंतरिक विश्वास को मूर्त्त करने का प्रयास है। जैनेन्द्र अपने वैयक्तिक दृष्टिकोणों को तूल देकर कई वार कृत्रिम वातावरण की सृष्टि करते हैं, उनकी कल्पना का बारीक सूत्र बहुधा टूट गया है, वे कल्पना और तर्क के सहारे मानव-मस्तिष्क की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु उनका शब्दांकन कभी कभी इतना तर्क-कर्कश और अस्वाभाविक हो जाता है कि घटनाओं और पात्रों के साथ ठीक सामजस्य नहीं हो पाता। जैनेन्द्र के कृतित्व में दार्शनिकता का पुट भले ही हो, उनके भीतर का कलाकार जिन्दगी से मुँह चुराकर आँखें मूंद लेना चाहता है, अतएव उनकी बुद्धि-लब्ध स्थापनाओं में दुरूह जटिलता तो मिल सकती है, किन्तु जीवन का वैचित्र्य नहीं लगता है जैसे जीवन के कठोर तल पर टकराकर उनका बँधा चिंतन बिखर जाता है और वे अपनी अपर्याप्तता से संत्रस्त हो बीच में ही घुटने टेक देते हैं। इसके विपरीत मेरीडिथ का सक्रिय अभिमान कभी दीन नहीं होता। यद्यपि उसकी रचनाओं में जीवन के प्रच्छन्नवृत्तों के उद्घाटन का प्रयास नहीं है तो भी वह उनके अणु-परमाणुओं तक को सँवारने की कला जानता है और इस में अत्युक्ति नहीं कि उसकी उत्कृष्ट कला-कृतियों में जीवन-दर्शन की व्यापकता और मन को बरबस पकड़ने वाली सघन व्यंजना है।

टेकनीकः—

उपर्युक्त विभिन्नताओं के बावजूद जैनेन्द्र और मेरीडिथ की कलात्मक टेकनीक में पर्याप्त साम्य है। इन दोनों की साहित्यिक विशेषताओं पर दृष्टिपात करने से दो निराले व्यक्तित्वों के बिम्ब हमारी आँखों में तैरने लगते हैं। उनका सुस्थिर मनोलोक असाधारण रूप से अन्तर्मुखी होने के कारण बाह्य-सौन्दर्यों से दूर जा पड़ा है और उन्होंने जीवन-सम्बन्धों को भिन्न कसौटी पर रखकर देखा-जाँचा है, फलतः उनके कला के उपादान भावपरक न होकर अधिक मूर्त, ऐकांतिक और मानवीय हो गये हैं। उनके उपन्यासों के विषय चाहें जो हों, वस्तु-अंकन की प्रणाली भी कैसी ही हो, उनकी कथन-शैली जीवन-प्रसंगों की भूमिका पर आश्रित

और हृदय की गहराई को छू लेने वाली है। जीवन की संकुचित परिधि में पनपने वाली उनकी अंतश्चेतना जिस रूप में विकसित हुई है, जिस पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण और परिस्थितियों में उनके भाव-विचार बने हैं, वे अपने विषय के लिये मूल-आलम्बन की ओर न जाकर एक विशेष परिधि में आबद्ध हो गये हैं और उनकी अपनी निर्मित धारणाओं पर केन्द्रित हैं।

जैनेन्द्र हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार हैं, जिन्होंने मानव-सम्बंधों को विभिन्न दृष्टि कोण से देखा है, उन्होंने आगे बढ़कर उन प्रसंगों का आकलन किया है, जो अछूते थे और जिनपर किसी की दृष्टि नहीं गयी थी। 'सुनीता' में हरि प्रसन्न के अंतर में घुमड़ता कुत्सित मोह और संकल्पबद्ध काठिन्य का विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं, " कर्त्तव्य कठोर है, राह दीर्घ। उसका अंत कहाँ है ? वहुत कुछ है, जो होना मांगता है, जो होना होगा। जो भवितव्य है, उसको भी अपने ही हाथों से खींचकर लाना होगा। नहीं तो वह भी अनायास आजाने वाला नहीं है। तव कैसा प्रमाद ? कैसी जड़ता ? कैसा मोह ? चले चलो, चले चलो। न मुड़ना कहीं है, न रुकना कहीं है। अरे, चलते ही चलना है।

किन्तु भीतर से क्या कुछ काला-काला फन सा घुमड़ता उठ रहा है ? उसी को खींचकर वाहर निकाल देना होगा। उसी को चीरकर अपने से अलग करके इस तस्वीर में कील देना होगा। यह हो जायगा तव कहेगा,—ओ तू !—वहीं रह ! और ओरे, नग्न प्रार्थी मनुष्य ! उस अँधेरे स्तूप को छोड़। वहाँ अँधेरा है, वहाँ उत्तर नहीं है। मुड़ आ कठोर पृथ्वी की ओर, उसे उर्वरा कर, उसे हरियाली कर, शस्यदा कर। उस अँधेरे गह्वर में थाह नहीं है, तल नहीं है। अरे अभागे, मुड़ आ। यहाँ कर्म के बीच तेरी प्रतीक्षा है। वहाँ क्यों भक्ष्य वनने को खड़ा है ? यहाँ आ और जयी वन, ऊर्जस्वी वन।"

जैनेन्द्र की कृतियों में प्रेम के विविधि भावों की व्यंजना नहीं है, किन्तु कचोटते प्रेम की व्याख्या है। वहाँ जीवन के अपूर्व चित्र विखरे नहीं पड़े हैं, किन्तु जीवन की परिभाषा मिलती है। लेखक जीवन के रूप को देखना चाहता है उसकी आत्मा को पकड़ने की चेष्टा करता है, किन्तु उसकी विस्तृत भूमिका में जैसे पैठ नहीं पाता। उसके द्वारा अंकित रेखाएँ पैनी हैं, उनमें अनिवार्य तीक्ष्णता और वक्रता है, सीधी-तिरछी लकीरों और अधूरे वाक्यों में उसने विषण्ण हृदय के आर्त्तनाद, भीतरी दंशन और उलझी हुई संवेदनाओं को व्यक्त किया है। अकारण व्यथा सी जो मानव के मन में कभी कभी जग जाती है, विचित्र स्वभाव वाले कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में जो उलझनें होती हैं; उनके आहत मर्म में जो टीस, संघर्षों से कुण्ठित मानस में जो रिक्तता, अभुक्त वासनाओं और जाल सा वुनती हुई अपनी ही भ्रमशील, लयमान इच्छा आकांक्षाओं के भीतर जो मिथ्या गौरव-भावना, जीवन से विमुख होकर भी पूर्णतया सम्बन्ध न तोड़ सकने के कारण जो एक अलक्ष्य भाव, धूमिल असंतोष और दौर्हृद पैदा हो जाता है, उससे जैनेन्द्र के अधिकांश पात्र पीड़ित है। सुनीता, हरिप्रसन्न, मृणाल, कल्याणी आदि सभी तो विचित्र हैं, अस्वाभाविक, अस्वस्थ, जीवन की अतृप्ति से पीड़ित, जिनकी वातों में असंगति है, विचारों में उलझन, जैसे भीतर ही भीतर उन में कुछ घुमड़ रहा हो, टीस रहा हो और जिनकी व्यथाएँ न जाने कितने काल से पकती पकती फोड़ा वनकर फूटने की राह तक रही हों। व्यक्तिगत जीवन की क्लेशमयी कठोर परिस्थितियों एवं मन के सुकोमल प्रेरणा-तन्तुओं के वीच जो उलझाव है उसने जैनेन्द्र के नारी-पात्रों को क्षितिज के उस पार की भावमयी जिज्ञासा से भर दिया है। उनमें अनुभूति की तरलता एवं नारी-स्वभाव की कोमल करुणा के वावजूद अपने से जूझने की कांक्षा है, आत्म-संघर्ष उनके जीवन का सत्य है, गहरी दुश्चिन्ताओं और अतृप्त काम की पीड़ा ने उन्हें उद्विग्न और उच्छृंखल वना दिया है। उनके भीतर की दुराग्रही वृत्ति कुछ ऐसी अचल-अटल है कि उनके सरल भाव को आत्मसात् किये है, वे भीतर से कुछ और हैं और वाहर से कुछ और, जिन्हें आसानी से समझा नहीं जा सकता, पाया नहीं जा सकता।

सुनीता, कल्याणी, मृणाल नारी-जाति की सामान्य सतह से ऊपर उठ कर साहसी और कृत-

निश्चय नारियाँ हैं, जिनमें बौद्धिक तर्क-वितर्क उनके नारी होने के महान् गौरव का द्योतक है और जो पुरुषत्व के अहं को, उसके मिथ्याभिमान की विडम्बना को, अपने आदर्शों में विलय कर लेने की शक्ति रखती हैं। संघर्षों की रगड़ खाकर उनके मन में इतनी गहराई व्याप्त हो गयी है कि वे रोमैण्टिक स्वप्नों में डूबती-उतराती हुई भी आदर्श की तलैय्या पर बिछ जाना चाहती हैं और नारी की अदम्य वासनाओं को लिए हुए भी आदर्श पत्नी बनने की इच्छा रखती हैं। सुनीता के अंतर्द्वन्द्व का एक चित्र देखिये :—

"वह पत्नी है, पर नारी है। वह पति में ही नहीं, स्वयं भी है। तभी तो यह आग्रहपूर्वक श्रीकान्त के स्मरण और प्रतिस्मरण की उसमें अदम्य, हठीली चेष्टा है। वह जिसका निमंत्रण हरिप्रसन्न के द्वारा उसे मिल रहा है, क्या रहस्यमय नहीं है? इतने ही से नारी-हृदय उस ओर बिना खिंचे कैसे रहे? स्वयं यह हरिप्रसन्न ही क्या रहस्यमय नहीं है? — तब उस भेद को भी क्यों न नारी-हृदय घुस कर पा लेना चाहे?

इन सब निमंत्रणों के उत्तर में स्वीकृति देती हुई वह उनकी ओर चल ही पड़ेगी। जब नैया की कोल उसने सम्हाल ली है, तब वह कहीं भी जाय, भटकेगी नहीं। निरंतर जागरूक अचूक घड़ी का काँटा जब उसके अभ्यंतर में है, सतत स्नेहपूरित एकोन्मुखी दीप-शिखा जब उसने अपने हृदय के भीतर जला ली है, तब क्यों उसे शंका हो? किसकी आशंका हो? तब क्यों वह साथ निषेध लिए फिरे? इससे वह क्यों न जायगी? ज़रूर जायगी।"

कहना न होगा कि इस संघर्ष के माध्यम से आंतरिक-निष्ठा प्राप्त कर लेने के कारण उनका वासनागत द्वन्द्व अधिक स्वस्थ और अनासक्त हो गया है और यथार्थोन्मुख वाह्यापेक्षी तटस्थ मनोवृत्ति के कारण उनकी आंतरिक कुण्ठाएँ भव्य बन कर प्रकट हुई हैं। उनमें आत्म-विश्लेषण का औदार्य, अपनी अंतरंगता की स्वीकृति और जीवन के विविध प्रसंगों को समझने की शक्ति है और इसी वैविध्य के प्रति अपनी संघर्षात्मक प्रसरणशील अनुरक्ति के कारण वे निर्माण की ओर न जाकर आत्मध्वंस की ओर प्रवृत्त हुई हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों की नारियाँ अपनी प्रकृत और अंतर्भूत यौवन-विकृतियों की उपेक्षा करके जिस चरित्र-भूमि पर अपने मन की समस्त शक्तियों को समेट आगे बढ़ती हैं—वह अद्भुत है और इस प्रकार पाठक को उन अंतस्तम प्रवृत्तियों एवं उच्च-स्तरों में झाँकने का अवकाश भी मिल जाता है, जो मानव-जीवन की शाश्वत अनुभूति के प्रतिरूप हैं।

मेरीडिथ में नारी-जीवन का और भी सफल सूक्ष्मांकन हुआ है। यद्यपि उनमें जीवन का प्राणपक्ष गौण है—तो भी उनमें स्वाभाविकता और सरलता, व्यापक अंतर अनुभूतियों की मार्मिक मीमांसा और चरित्रों के द्वन्द्व-संघर्ष का ऐसा स्वस्थ विश्लेषण मिलता है कि लगता है जैसे मेरीडिथ एक कुशल स्रष्टा की भाँति अपने भाव-सौन्दर्य की सृष्टि में अद्भुत अनुभव-कणों को सँजोकर नारी की नई नई भव्य-आकृतियाँ प्रस्तुत करता है। वह उनकी कोमल भावनाओं में अपनी बौद्धिक-चेतना प्रक्षेपित कर उन्हें उस असामान्य धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है, जहाँ कि वे जीवन की स्थूलता से उठ कर मानस-जगत में पैठ जाती हैं और वहाँ पहुँच कर उत्तरोत्तर कठिन पड़ती हुई दार्शनिक-चिंतन के अप्रिय भार से दब जाती हैं :—

"फिलॉसफी हमें यह बताती है कि हम गुलाबी पुष्प की भाँति सुन्दरी नहीं हैं, न ही दुष्ट व्यभिचारिणी स्त्री की भाँति उपेक्षणीय और उन निरर्थक पहलुओं पर अनवरत जाने की अपेक्षा हमारा दर्शन सुखद, सत्य, फलदायक, प्रत्युत् यों कहें कि हर्षप्रद है। मिथ्याडम्बर के स्थान पर आप पवित्र गरिमा की दिव्याभा की कल्पना कीजिये, प्रकृत रूप और उस आत्मा की, जो जन्मजात क्रियाशील, सांसारिक थपेड़ों से ग्रस्त, किन्तु उत्कर्षशील हो। कथाकृति भी उनसे सम्मानित होगी और हमारे रक्त के साथ जीवन का साहाय्य, जीवन का सच्चा स्रोत गतिशील

होगा।" ('डियना ऑफ दि क्रासवेज़' Diana of the Crossways से)।

मेरीडिथ नारी के हृत्तल को स्पर्श करता है, उसकी सच्ची मनःस्थिति, अंतर्द्वन्द्व एवं भाव-आवेगों के संघर्षों को पकड़ने की क्षमता रखती है। कभी कभी उसके चित्र इतने सजीव होते हैं कि उनकी विविधता, उनका रंग-वैषम्य हमें आच्छन्न कर लेता है और यद्यपि अनविच्छिन्न भाव से बहता चला आता हुआ नारी-जीवन की धारा का नाजुक छोर हमारी पकड़ में नहीं आ पाता, तो भी उसने जिस करुणा-विगलित स्नेह, कौशल और सहजपन के साथ चित्रों को आँका है—वह बरबस मन को आकृष्ट करता हुआ ममत्व-बुद्धि और विश्वास की साधना जगाता है।

"उसकी मुखाकृति सुन्दर थी, जिसके कोनों पर मुस्कराहट नित्य बिखरी रहती थी अथवा ऐसा पहले था जबतक कि मेटे ने उसे इसका परिज्ञान न कराया था कि वह उसकी लक्ष्य है। अब वह अपने मुख को बंद रखती है और नेत्रों को आधा झुकाये हुए। अपने पास से गुजरने के क्षण तक, जबकि लड़की ने उस पर दृष्टि उन्मुक्त की, मानों अपनी पलकों को उठाते हुए उसने निद्रा से जाग कर खिड़की में से झाँका, एक स्वस्थ कटाक्ष, प्रकम्पवत्, जिसमें कुछ दुराव न था, कोई दुर्विनीतता अथवा दुस्साहस न था और शैथिल्य का भी किंचित् लेश न था। तुम ऐसा सोच सकते थे जैसे उसका हृदय चुपके से निकल कर बाहर आना चाहता हो।

उसकी दृष्टि प्रभातकालीन प्रकाश-रश्मियों-सी थी, जो पहाड़ियों पर फैल जाती है। यह आधी मिनट तक टिकी रही और आधे घण्टे तक उद्विग्न बना गयी।" ('लॉर्ड आरमॉण्ट एण्ड हिज़ आमिण्टा' Lord Ormont and his Aminta से)।

जैनेन्द्र के उपन्यास में सुनीता भी रेशमी साड़ी में आवृत अपनी सद्योन्मिषित गरिमा से हरिप्रसन्न के मन को अभिसिंचित कर जाती है।

"और वह तो कमरे के बाहर तैर गयी। उस समय उसकी रेशमी साड़ी की धानी आभा ही काँपती हुई झलमल झलमल हरिप्रसन्न की आँखों में रह गयी। और उसके कानों में साड़ी की तरल पत्तों को छूकर जाती हुई समीर की सरसराहट भरने लगी। मानों कुछ हौले हौले बज रहा हो, कुछ भीना भीना बरस रहा हो और भीतर से उसे भिंजो रहा हो....।"

मेरीडिथ के उपन्यास 'दि ऑरडियल ऑफ रिचर्ड फेवरल' (The Ordeal of Richard Feveral) का निम्न प्रख्यात दृश्य भी हमारी सौन्दर्य-बोध-वृत्ति का आह्वान करता हुआ कल्पना में मूर्त हो-कर भावात्मक तरलता और लयात्मक संवेदनीयता छोड़ जाता है।

"लूसी मौसम और शिष्टता के अनुसार बहुत सादे वस्त्र धारण किए थी। उसका उभरता यौवनोच्छल व्यक्तित्व 'ड्यूबेरी' फलों का आस्वाद ले रहा था। वे पानी और किनारे के बीच में उगे हुए थे। छोटा लवा पक्षी उसके सिर पर से गुजर गया, संगीत से भरा, नीलिमा के साथ चिकने दक्षिणी मेघ की ओर—उसके हिलते हैट के ऊपर ओस से भीगी सघन झाड़ी से काली चिड़िया तीन बार कूकी — अपने संगीतात्मक स्वर से उसे पुकारती हुई। हरी जलबेंत में से राम-चिरैया झाँक कर मरकत मणि की सी आभा बिखेर गई, एक झुके पंखों वाले बाज ने एकान्त स्थल खोजने के लिये बहुत ऊपर उड़ान भरी और कश्चित् नौका एक स्वप्नशील युवक को लिए थिरकती हुई उसके समीप बढ़ती रही, किन्तु वह अभी भी फल तोड़ रही थी, खा रही थी, सोच रही थी — मानों कोई भी परीदेश का राजकुमार उसकी विचरण-भूमि में आक्रमण नहीं कर सकता था और मानों उसे किसी की चाहना भी न थी अथवा वह अपनी इच्छाओं को ही नहीं समझ पाती थी।.....प्रकृति क्रमशः शान्त-

१९५०

प्रशान्त होती गयी — जैसे दो विद्युत्मय मेघों के विलय पर हो जाती है।..... कल यह स्थान अमर स्मृति को सँजोएगा, यह नदी, यह चरागाह और यह श्वेत फैला नदी का बाँध — उसका हृदय यहाँ मंदिर का निर्माण करेगा, लवा-पक्षी प्रमुख पादरी होगा, बूढ़ी काली चिड़िया चमकता गाउन पहने गाने वाली सदस्या होगी और ‘ड्यूबेरी’ फल पावन आहार समझा जाएगा।”

मेरीडिथ कभी कभी भाव-प्रवणता में नारी को उसके प्रकृत मानवीय-स्तर से उठाकर असाधारण रूप देता है और उसमें उन विचित्र संभावनाओं की संयोजना करता है, जो उसे धरती के तल से ऊपर गगन-प्रान्तर अथवा एक बृहत्तर अज्ञेय में खींच ले जाती हैं।

“वह स्थान के सौंदर्य से लबालब स्फटिक के सुमनोहर प्याले सी थी। जिस-प्रकार क्षुद्र लहरियाँ प्रकाश को झकझोर देती हैं, उसी प्रकार उसकी भंगिमाओं में वे हल्की अस्वाभाविकताएँ थीं, जो उसके सौन्दर्य की असाधारणता की द्योतक थीं: मुख, नेत्र, भौं, नासिका-रन्ध्र और विकसित कपोल परस्पर अठखेलियाँ करते हुए तरलता बिखेर जाते थे। उसके विचार उड़ते थे, जिव्हा अनुधावन करती थी और भावार्थ रात्रि में कौंधती विद्युत् की भाँति काँपता हुआ अपनी झलमलाहट छोड़ जाता था!” (‘ब्यूशेम्प्स केरियर’ ‘Beauchamp’s Career’ से)

जैनेन्द्र के ‘परख’ की कट्टो और ‘त्यागपत्र’ की; मृणाल का भी कुछ कुछ ऐसा ही विचित्र वर्णन मिलता है, किन्तु उनके अधिकांश पात्रों में संयम और शिल्प होते हुए भी एकांगीपन और चारित्र्य की अलौकिकता का पुट है, जिससे कहीं कहीं स्वभावगत वैचित्र्य आगया है। मेरीडिथ के नारी-चित्र रोचक, व्यवस्थित और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से संतुलित और पूर्ण हैं। डियना, नेस्टा, आमिण्टा, कारिन्थिया और तूसी उस अमर तूलिका से चित्रित की गयी हैं कि एक बार झाँकी पा लेने पर उन्हें कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

जैनेन्द्र के पुरुष-पात्रों में स्त्रैणता है, उनके अणु अणु में नारी व्याप्त है और वे सिर-से-पैर तक उसके नारीपन से अभिभूत हैं, जिससे कदाचित् अपनी अक्षमता के कारण वे उसके हृदय को पूर्णतया जीत नहीं पाते। इसके ठीक विपरीत मेरीडिथ के पुरुष-पात्र दुराग्रही, अहंकारी और अदम्य पौरुष से पूर्ण हैं, जो अपनी निर्ममता के कारण नारी के भीतर रम नहीं पाते और इस प्रकार इन दोनों कलाकारों में पुरुष और नारी में पृथकत्व एवं दूरी बनी ही रहती है।

‘दि ऑरडियल ऑफ रिचर्ड फेवरल’ में रिचर्ड आकर्षक नवयुवक है, किन्तु स्वार्थी और जिद्दी है, वह दूसरों के दुःख-सुख की पर्वाह नहीं करता, परिणाम-स्वरूप लूसी की आत्मा को गहरी ठेस लगती है, क्योंकि विश्व में अनेकों ऐसी लूसी हैं, जिन्हें पुरुषत्त्व का दम्भ कुचल डालता है। मेरीडिथ के दूसरे प्रख्यात उपन्यास ‘इगोइस्ट’ (Egoist) का नायक सर विलोबी पेटर्न तो उससे भी भयंकर अहंवादी और उद्धत स्वभाव का है। उसमें आत्म-रति की प्रबल भावना और उसके हृदय की विषमयी ग्रन्थियाँ भीतर ही भीतर ज़हर उलगती हैं, जो बाहर दृष्टव्य नहीं। वह स्त्रियों पर अविश्वास करता है, उसे दुःख है कि उसकी पत्नी क्लारा सांसारिक-ज्ञान से अछूती क्यों नहीं है और क्यों वह सीधे स्वर्ग से उसके पास नहीं आई। क्लारा पति की ममत्व भावना में भी उसके दुर्द्धर्ष स्वभाव से परिचित है और उसका हृदय काँपत रहता है।

“मेरी प्रिय! तुम निष्ठुर हो।”

“मैं निष्ठुर नहीं हूँ,” क्लारा ने कहा “मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरी कब्र पर कोई चल रहा हो।” उसके अलिंगन की शून्यता एक बड़ी समुद्री लहर की भाँति कहर उठी, सिकुडती तरंग को और भी समेटती हुई। जैसे ही वह ‘बटर कप’ पुष्प की ओर झुकी, राक्षस उस पर झपट पड़ा।”

उपर्युक्त उद्धरण में सर विलोबी के दम्भ का कैसा बीभत्स चित्रण हुआ है, किन्तु क्रमशः अन्य

उपन्यासों 'डियना ऑफ दि क्रासवेज़' (Diana of the Crossways), 'वन ऑफ अवर कॉंकरर्स' (One of our Conquerors), 'लॉर्ड ऑरमाण्ट एण्ड हिज़ एमिण्टा' (Lord Ormont and his Aminta) और 'दि एमेज़िंग मॅरेज' (The Amaging Marriage) में मेरिडिथ पुरुष और नारी को समान स्तर पर ले आया है और दोनों की द्वंद्वात्मक-शक्तियों का संतुलन दिखाया गया है।

इसके अतिरिक्त एक और बात जो जैनेन्द्र और मेरीडिथ में समान रूप से मिलती है—वह यह कि उनके उपन्यासों के कथानक अधूरे और सामंजस्य-हीन हैं। ऑस्कर वाइल्ड ने मेरीडिथ के सम्बन्ध में लिखा था, "एक औपन्यासिक होने के नाते वह सब कुछ कर सकता है सिवाय कहानी कहने के।" और यही उक्ति जैनेन्द्र पर भी लागू हो सकती है। दोनों ही किसी एक केन्द्रीय घटना अथवा दृश्य से जुड़ कर कथानक के विविध मोड़-तोड़ भूल जाते हैं और दो चार पात्रों की जिन्दगी के दोहरेपन और चरित्र-विश्लेषण में इतना उलझ जाते हैं कि जीवन के घात-प्रतिघात, द्वन्द्व, संघर्ष उनकी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों की औपन्यासिक कृतियों के कथानक खींचातानी से लगते हैं, जिन्हें धक्के के साथ आगे ठेला जाता है और जिनकी एकरूपता के सूत्र कई कई बार विच्छिन्न से ज्ञात होते हैं। 'परख' से 'कल्याणी' तक आते आते जैनेन्द्र की कथा-शैली अत्यन्त शिथिल हो गयी है। लेखक कल्याणी की असंतुलित चेष्टाएँ, मनोभाव और विवाद-विचार के मोह में पड़ कर इतना अतिरंजन कर बैठा है कि समूची कृति जीवन-सूत्रों की व्याख्या और गढ़ंत-घटनाओं की तालिका-सी लगती है।

बौद्धिक-चेतना :—

यद्यपि जैनेन्द्र और मेरीडिथ में साहित्यिक अवयव ढीले हैं, तथापि उनके मूलाधार की चिन्तना ठोस धरातल पर हुई है। दोनों ही सुलझे हुए विचारक हैं और जीवन को परखना चाहते हैं। जीवन की विभीषिकाओं ने उन्हें भावुक कम, बौद्धिक अधिक बना दिया है। उनका प्राण-प्रवाह धीमा, विचार बोझिल और मनोवृत्ति चलित से अधिक स्थिर, सवेग से अधिक संयत और शासित है। दोनों में जो मानसिक द्वन्द्व और विचित्र समस्याओं से उलझते रहने की प्रवृत्ति है — इसका कारण है कि उनकी उद्बुद्ध-चेतना विरोधी-तत्वों को परास्त करने में लगी है। मेरीडिथ में यह अंधकार-तत्व इतना अधिक है कि उसकी तमसावृत्त-चेतना जीवन से तद्गत हो अस्पृश्यतम का आह्वान करती है, केवल जब उसके प्रेरणा-तन्तुओं में स्फुरण होता है तो वह सघनता को चीर कर बाहर झाँकती है। कभी कभी तथ्य की खोज में अंधकार-पथ का अनुधावन करता हुआ मेरीडिथ दूर तक भटक जाता है और जैसे कुछ शून्य हो, कुछ खो-सा गया हो, वह अपने मानस की प्रतिच्छाया को आरोपित करता हुआ एक कुशल मनोविश्लेषक की भाँति मानव-मन की बारीक बारीक हलचलों को कथा के सूत्र में बाँध कर दर्शाता है। अपनी टेक्नीक का मास्टर होता हुआ भी वह उसके प्रति अचैतन्य है और कहीं कहीं आवश्यकता से अधिक जटिल और दुरूह हो गया है। अपनी विश्लेषण-वृत्ति और विषयगत अस्पष्टता के कारण उसकी कृतियाँ अनेक स्थलों पर शुष्क और नीरस हैं।

जैनेन्द्र की कृतियों में भी मेरीडिथ की भाँति उत्साह ठण्डा है, किन्तु उनकी अपने को व्यक्त करने की एक निराली शैली है, वे अपने ढंग के विरत कलाकार हैं, जो दो चार खरोंचों से ही घटना को सजीव और विषय को रंगीन व जानदार बना देते हैं। उनकी खूबी है कि वे अपने विचारों के तारतम्य को एक खास शैली में बाँध कर अपने विषय की बहुरूपता को वर्णन की विभिन्न प्रणाली में बदल देते हैं और कलात्मक ढंग से उसमें उभार ला कर उद्देश्य की अभिव्यंजना करते हैं।

चूँकि जैनेन्द्र और मेरीडिथ की ग्रहण-शक्ति बड़ी तीव्र है—उन्होंने अपने युग की मूल भावनाओं को सजग-बुद्धि से स्वीकार कर के उनका मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है। वे अपनी सहज-चेतना से जो जीवन में पा सके हैं, समझ सके हैं, उसे अत्यन्त मार्मिकता के साथ बहिर्गत किया है और मानविक गहनतम अनुभूतियों में पैठ कर एक निरपेक्ष द्रष्टा की भाँति उसके अनुभावित सत्य को व्यक्त किया है।

१९५०

जीवन-दर्शन :—

कहने की आवश्यकता नहीं कि जैनेन्द्र और मेरीडिथ अपने अपने साहित्य में एक नई प्रवृत्ति के पोषक हैं। जैनेन्द्र का दृष्टिकोण व्यावहारिक है, मेरीडिथ का आभ्यन्तरिक। एक का व्यक्तिगत-पक्ष दूसरे का आंतरिक-पक्ष बन गया है। दार्शनिक-चिन्तन की प्रेरक-शक्ति ने जहाँ एक में जिज्ञासा-वृत्ति जगायी है—दूसरे में अंतर्मुखता और दोनों ही जीवन की अंतस्संज्ञा को पकड़ने के लिए अधीर हो उठे हैं।

मेरीडिथ में दार्शनिक और कवि सदैव सजग रहा है। यद्यपि उसका औपन्यासिक रूप चरम सीमा पर स्थित है, तो भी उसमें कवि की कल्पना रंग भरती रही है और चिंतन की सीमा पर आ कर अनेक स्थलों में उसकी दार्शनिकता और कवित्व का एक में समाहार हो गया है। प्रकृति मेरीडिथ के लिए मानव-भावनाओं को सँजोनेवाली क्रीड़ास्थली है—वह उसके मन में रम नहीं गयी है। एक जिज्ञासु के मस्तिष्क में जो कौतूहल और तटस्थ-वृत्ति होती है—उसी से सम्बद्ध संस्कारों को आरोपित करता हुआ वह उसके चित्रात्मक रूप पर मुग्ध है, अतएव उसमें तात्विक-चिंतन अधिक और प्राणों की धड़कन कम है।

जैनेन्द्र और मेरीडिथ में जो मनोरागों की क्लान्ति दृष्टव्य है, वह गंभीर आत्म-चिंतन का परिणाम है। विपरीत परिस्थितियों से आहत और अतिशय स्वचिंतन से श्रांत वांच्छित अभिव्यक्ति के अभाव में उनका तीव्र-राग मानसिक विक्षोभ में परिणत हो गया है, जिसमें कभी कभी व्यंग का भीषण अट्टहास वज उठता है।

जैनेन्द्र के कुछ निश्चित् सिद्धान्त हैं और वे तदनुरूप उनका अंतर्गठन करने के लिए तात्कालिक परिस्थितियों से आगे बढ़ कर अपने आदर्शों को हमारे सम्मुख रखते हैं। जीवन की अनेक समस्याओं को उन्होंने केवल समझौते के रूप में ही सामने रखा है और इधर तो वे कथाकार से दार्शनिक-चिन्तक का रूप लेते जा रहे हैं। उनकी कलात्मक प्रवृत्ति ने आरम्भ में उन्हें उपन्यासों की ओर आकृष्ट किया था, जिनमें उन्होंने चिंतन के सूक्ष्मत्व का सहारा ले मानवीय-भावनाओं को, प्रमुख रूप से नारी-हृदय के कोमल से कोमल भागों को, सफलता और सुन्दरता के साथ स्पर्श किया था और कहीं कहीं कुछ अश्लीलता का हलका पुट होते हुए भी उन्होंने नारी को अपने महत् आदर्श से गिराया नहीं, वरन् और भी ऊपर उठा दिया था। आज उनकी विचारात्मक और तत्त्वान्वेषी वृत्ति ने उन्हें निबंधकार बना दिया है, किन्तु इस वयःसन्धि की परिपक्वावस्था में जो उनमें त्रुटि है वह यह कि वे कलाकार से तत्वदर्शी बनना चाहते हैं, जो उनके विकास की अवरोधक हो सकती है। उनके औपन्यासिक का रूप निबन्धकार के रूप से कहीं औचित्य का पूरक, अपेक्षाकृत अधिक सबल और बलिष्ठ है। चाहे वे कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, उनका दार्शनिक रूप कलाकार के रूप के ऊपर नहीं आ पाता और उनकी दो अंतरंग-वृत्तियों में जो टकराहट, जो सैद्धान्तिक मतभेद उठ खड़ा हुआ है और इस प्रकार अभिव्यक्ति के माध्यम में जो ऊहापोह और खींचातानी-सी चल रही है—उसके कारण वे कोई निर्णयात्मक कार्य नहीं कर पा रहे हैं।

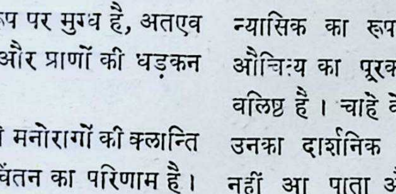

तेलगु शतक माला

[श्री वारणासि राममूर्ति 'रेणु']

श्री. कासुल पुरुषोत्तम कवि :—

जून महीने की भारती में इस माला का प्रारंभ भक्तवर कासुल पुरुषोत्तम कवि की प्रसिद्ध रचना "आंध्रनायक शतकमु" के एक पद्य के साथ किया गया था। जगह की कमी से उस कृति के अन्य सरस पद्यों को उस में नहीं दे सके। श्रीपुरुषोत्तम ने इस रचना के अतिरिक्त और तीन उत्तम शतक भी रचे थे। यह विषय हमें 'आंध्रनायक शतक' के अंतिम पद्य से मालूम हुआ। उसी पद्य में कविने अपना नाम भी दिया है। उक्त शतकों के नाम इस प्रकार हैं— १ रामा ! भक्त कल्पद्रुमा ! शतक २. मनसा ! हरिपादमुलाश्रयिंपुमा। अर्थात् "रेमन, हरिचरणों की शरण में जाओ।" मकुट से शोभित शतक ३. हंसलदीवि गोपाल शतक। इन में से प्रथम दोनों कृतियों का पता अभी तक नहीं लगा है। तीसरी रचना तो, जहाँ तक मेरी अल्प मति की पहुंच है, प्रकाशित नहीं हुई है, किन्तु उसके कतिपय सुंदर व कर्ण मधुर पद्य लोगों के जिह्वाग्र पर यदा कदा सुनने को मिलते हैं। इस शतक का मकुट इतना भव्य एवं भक्तिपूरक है, उसकी पदयोजना इतनी कोमल व कांत हैं, कि श्रोताओं के चित्त चमत्कृत हो जाते हैं। भक्ति का एक प्रबल विद्युत्प्रवाह नस २ में दौड़ जाता है ! देखिये—

"भावज विलास ! हंसलदीविवास !
ललित कृष्णाब्धि संगमस्थल विहार !
परमकरुणा स्वभाव ! गोपाल देव !!"

अर्थात् हे भावजविलास ! (कामदेव की तरह समस्त जगत को अपनी चेष्टाओं से वशीकृत करनेवाले नागर किशोर) हंसलदीवि के निवासी प्रभु ! (यह 'हंसलदीवि' कृष्णा नदी एवं समुद्र के संगम प्रदेश पर स्थित एक सुंदर टापू है जहाँ गोपालदेव का एक प्राचीन मंदिर है। वहाँ हर साल मेला लगता है। सैकड़ों यात्री दुर्गम राह की कठिनाइयाँ भी सहकर जाते हैं और सागर–संगम की शोभा निहार कर जीवन सुफल बनालेते हैं ! उन्हीं गोपाल भगवान को लक्ष्य कर के यह शतक रचा गया है।) ललित–कृष्णाब्धि संगमस्थल-बिहारी प्रभु ! हे अत्यन्त करुणा और अनुकंम्पा के अवतार !

अव यहाँ व्याज-निंदा की अपूर्व रचना 'आंध्रनायक शतक' ही के तीन चार पद्य सानुवाद देते हैं, जिन से कवि की वाग्विदग्धता, एवं भावना व अनुभूति की गहनता का परिचय मिल जायगा।

सी०–आलु निर्वाहकुरालु भू-देवियै
यखिल भारकुडनु नाख्य देच्चे !
निछु संपन्नुरालिंदिर भार्यये
कामितार्थदुडन्न घनत देच्चे !
गमल-गर्भुडु सृष्टिकर्त तनूजुडै
बहुकुटुंबिकुडन्न बलिमि देच्चे !
गलुष विध्वंसिनि गंग कुमारियै
पतितपावनुडन्न प्रतिम देच्चे !
ते०—गी० नांडु बिड्डलु देच्चु प्रख्यातिगानि
मोदटि नुंडियु नीवु दामोदरुडवे !
चित्र चित्र स्वभाव ! दाक्षिण्यभाव !
हतविमतजीव ! श्रीकाकुळंध्र देव !

'सर्व शक्ति शालिनी भू देवी ने तुम्हारा पत्नीत्व ग्रहण कर, तुम को 'अखिल भारक (समस्त भार वहन करनेवाले) की उपाधि प्रदान की है !

समस्त संपत्तियों की अधिष्ठत्री इंदिरा (लक्ष्मी) ने तुम्हारी पत्नी बन कर, कामितार्थदुडु' (समस्त वांछित अर्थ देनेवाले) की पदवी दी है !

सृष्टा कमल-गर्भ (ब्रह्मा) तुम्हारा पुत्र बन गया और तुम्हें 'बहुकुटुंबिकुडु' [अनंत परिवार वाले याने जगत्–पिता) का पद दिलाया है !

समस्त कलुष (मलिनताओं) का ध्वंस करनेवाली गंगा मैय्या ने पुत्री बन कर, तुम्हारे माथे पर 'पतितपावन' का टीका लगाया है !

हे प्रभु ! इस से स्पष्ट है कि तुम्हें जो कुछ ख्याति या यश प्राप्त हो गया है वह तो तुम्हारी अपनी कमाई नहीं है; अपितु औरतों तथा बच्चों द्वारा प्राप्त 'मुफ्त का माल' है; तुमतो आरंभ से 'दामोदर' ही रहे हो !"

यहाँ 'दामोदर' शब्द के प्रयोग का तेलुगु समाज में जो अपना विशिष्ट निर्वचन है, उसे समझना आवश्यक है। 'दामोदर' शब्द के साधारणतया दो अर्थ होते हैं–'दाम' याने मालाओं से अलंकृत 'उदर' वक्षवाले विष्णु; दूसरा अर्थ यह भी लगाया जा सकता है—'दाम' याने रस्सी जिसके उदर की चारों ओर लपेटी गई हो। छुटपन में माखनचोर की करतूतों से तंग आकर यशोदा मैय्या ने बहुत प्रयत्न एवं परिश्रम के पश्चात् भगवान् को उलूखल से बांधा था। याने औरों के घरों में छुपे छुपे जाकर मक्खन उडाने वाले कृष्ण, अपनी 'मुफ्तखोरी' के कारण 'दामोदर' कहलाये ! शायद इसी विषय को ध्यान में रखकर तेलुगु समाज ने अपने यहाँ गरीब 'मुफ्तखोर' के अर्थ में 'दामोदरुडु' या 'दरिद्रदामोदरडु' का मुहावरा चलाया। इस विवरण को समझे बिना कवि का व्यंग समझ में नहीं आ सकेगा। समूचे पद्य की जान 'दामोदर' शब्द का यह सुंदर प्रयोग है। इस से एक ओर निंदा और दूसरी ओर स्तुति दोनों साथ २ व्यंजित होते हैं।

२. सी०—नागलि रोकलन्नकुनिच्चि शंखादि
पंचायुधमुनीवु पट्टिनावु।
तारिटेकेंवु कोल्तल पेद्द केत्तिच्चि
गरुडध्वजंबीवु गट्टिनावु।
वेलरानि करवोनि वलुव ज्येष्टुन किच्चि
कनकांवरंबीवु गट्टिनावु।
मध्यमग्रजुनकु मत्तिल द्राविंचि
जुन्नु वाल वेरुगीवु जुर्रिनावु।
ते० गी०—तगुवरिवे, यन्नदम्मुल धर्ममीवे
तीर्पवले गानि मरियोंडु तीर्प गलडे?
चित्र........................आंध्रदेव!

हे प्रभु, तुम पहले ही से धोखे-बाज रहे हो। कृष्णावतार में तो तुम्हारी धोखा-देही पराकाष्ठा को पहुँची है। औरों की बात ही क्या, अपने सगे भाई बलसम के साथ ही पैतृक संपत्ति का बँटवारा करते समय, तुम दगा कर बैठे हो। देखो न...हल और मूसल (जैसे भारी और असुन्दर हथियार) बड़े भाई को दे कर तुमने शंख चक्र आदि शस्त्र ले लिये थे। ताड़ का पेड़ जिस पर अंकित है, वह झण्डा भाई को पकडा कर, तुम रंगीन गरुडध्वज ले चुके थे! (बलराम ताळध्वजी कहलाते हैं)। कौड़ी के मोल न बिकनेवाला काला कपड़ा बलदाऊ को सौंप कर, आप मजे में पीताम्बर पहन बैठे हो !

नीलाम्बर-धारी बलराम का नामांतर है। बड़ा भाई हमेशा नशे में चूर रह कर इस अन्याय को न भाँप बैठे, इस उद्देश्य से उन्हें मद्य खूब पिलाया और स्वयं गोकुल की गलियों का गोरस उड़ाने में मगन रहे। (तुम्हें तो बड़ा न्यायी समझ कर सारी दुनिया प्रशंसा कर रही है!) हाँ, तुम तो बड़े भारी धर्मात्मा और न्यायी हो! विशेष कर, भाइयों के बीच के झगड़ों का निपटारा कराते समय, तुम्हीं को मध्यस्थ बनाना चाहिये!

३. सी०–जीविनि जीवि भक्षिपजेसिति विंते
कोनपेट्टिनावे चेतनुलकेल्ल?
जेसिनंत मुजिप जेसिनाविंते का
केक्कुव लेव्वरि किच्चिनावु?
कर्म-सूत्रंबुन गट्टि त्रिप्पेदवु गा
किच्चनोक्कनि वोवनिच्चिनावे?
वेस बृथक्-प्रकृतुल वे रुजेसितिविगा
कंदरि कैकमत्य मिडिनावे?
ते० गी०—तेलिसे नीरक्षकत्वंबु देवदेव!
वेरे गतिलेक निन्नु सेविंपवलसे!
चित्र………………….आंध्रदेव!!

"तुमने एक प्राणी को दूसरे प्राणी के लिये भोजन बनाकर छोड़ा, बस, स्वयं अपनी ओर से किसी को कुछ न खिलाया। ('जीवो जीवस्य भोजनम्' इस सूक्ति को बड़ी क्षमता के साथ बैठाया गया है।)

जिसने जितना (श्रम) किया उसे उतना ही (फल) भोग करने दिया। (जैसा करता है वैसा भरता है।) तुमने उस अनुपात से अधिक क्या किसी भी प्राणी को कुछ दिया है? प्रत्येक प्राणी को कर्म-सूत्र में बांध कर मन-माने ढंग से घुमा रहे हो। क्या किसी एक प्राणी को भी स्वेच्छया जाने दिया? फिर भी कहा जाता है कि तुम प्रत्येक प्राणी को स्वतंत्रता देते हो! तुमने प्राणियों को पृथक २ प्रकृतियों में—स्त्री प्रकृति, पुरुष प्रकृति, स्थलचर, जलचर खेचर आदि में—बाँट दिया है। क्या सब को ऐकमत्य याने एकता प्रदान की है? (फूट डाल कर शासन करने की नीति के प्रतिपादक तुम्हीं हो! मूर्ख लोग सर्व-रक्षक कह कर तुम्हारी प्रशंसा करते हैं।) हे देवदेव! तुम्हारे रक्षकत्व की कलई तो खुल गयी! किन्तु हाय! (हम आखिर करें क्या? तुम्हारा सारा मर्म जानने पर भी) अन्य किसी गति (समर्थ स्वामी) के अभाव के कारण तुम्हीं को पुकारना पड़ रहा है?" ('अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम!' वाले आत्म-समर्पण भाव की कैसी मार्मिक व्यंजना है। निंदा गर्भित भक्ति की कैसी प्राञ्जल धारा है। अंतिम वाक्य में प्रदर्शित भव्य 'खींच' के आगे अनंत विश्व का असीम भक्ति-सागर सूखे ताल जैसा लगेगा।)

४. सी.—वेडनि चूडक विपिन वह्निज्वाल
द्रावेदो तेनिय द्राविनट्लु
भारमंचनक गोवर्द्धन पर्वतं
बेत्तेदो पूवंति येत्तिनट्लु।
विषपुंजमनक नामीलाजगर जिह्व
जिपेदो प्रावट्ट जिपिनट्लु।
वेसनसाध्युंडनि वेरवक नरकुनि
नरिकेदो पावैट नरिकिनट्लु।
ते० गी०—भक्त-संरक्षणत्वरापरवशतनु
जेसिनावेमो यूरक सेय गलवे?
चित्र…… आंध्रदेव।

"(हे प्रभु, सहसा विश्वास तो नहीं होता है। किन्तु कहा जाता है कि) तुम आँच और ज्वाला की परवाह न करके, शहद की तरह गट गट दावाग्नि पी जाओगे। भयंकर बोझ का ख्याल तक न करके, पुष्प गुच्छ की तरह

गोवर्द्धन पहाड़ ही उठाओगे। प्राणांतक विष का आगार न समझ कर, पुराने कमजोर कपड़े की भाँति भयंकर अजगर की जबान चीर-फाड डालोगे। बड़े बड़े बहादुरों के लिये भी अजेय नरकासुर का सर, मेमना की तरह आसानी से काटोगे। यदि सचमुच तुमने इस के पहले ऐसे अपूर्व काम किये हों, तो भी मैं उनके लिये तुम्हारी शक्ति एवं सामर्थ्य ही कारण रहीं, ऐसा नहीं मान सकता। भक्तसंरक्षणत्वरा-पारवश्य की मदिरा पी कर नशे में चूर हो कर, तुमने वैसे असंभव कर्म किये होंगे। भला अपने होश में रहकर, कर पाओगे? (नहीं) अत: भक्तों की रक्षा करने में शीघ्रता का पारवश्य (परवशता) जो तुम्हारा अपूर्व गुण है, वही उस समस्त श्रेय का हकदार है, न कि, तुम।

अहा, भगवान को उनकी भक्तरक्षण-तत्परता से अलग कर, देखनेवाला कवि-चक्षु कितना धन्य है।

५. सी०—**तावचेद नटंचु धैर्य-लक्ष्मि महीज**
वेंट रानड विक्कि वेडलिनावु
मुंदु जानकि लंक मूखिंचि चोच्चिनिन्
देच्चिन रिपुल साधिंचि नावु
सुग्रीवुडुन्न चो सोम्मुदानिड सोत
याजाड नतनि पोंदतिकि नावु।
वैदेहि भवदंकवसति गुर्चुन्नचो
भुवन-साम्राज्यमुल पोंदिनावु।
ते० गी०—**गट्टिगा मैथिलिनि जेट्ट वट्ट नट्टि**
पौरुषमुलब्बे नेनाटि पूरुषुडवो!
चित्र..................आंध्र देव!

हे प्रभु, रामावतार में तुमने जो अपूर्व साहस के काम किये थे, वे सब हमारी माता जानकी के पुण्य प्रताप से ही संपन्न हो पाये हैं। देखो न "ज्यों ही धैर्य और साहस की लक्ष्मी बनकर 'महीजा' (सीताजी) तुम्हारे पीछे चल दीं, तुम जंगलों में निकल पड़े। (तुम से आगे जाकर) कपि श्रेष्ठ सुग्रीव के आवास पर सीताजी ने अपने आभूषण फेंक कर, सुग्रीव की मैत्री के लिये रास्ता तैयार किया था (जिस मैत्री ने तुम्हें रावणांतक की उपाधि दी थी)। (आततायी रावण के अत्याचारों की कहानियाँ सुनते रहने पर भी, पहले तुम हाथ पाँव समेट कर बैठे ही रहे। अंत में) लाचार होकर जानकी जी ने तुम से पूर्व ही लंका में प्रवेश किया और तुम्हें रिपु संहार करने के लिये विवश बनाया! (इस प्रकार तुम्हें विश्वविजयी बना कर) वैदेही ज्यों ही तुम्हारे वाम-पार्श्व में राजगद्दी पर विराजीं, तुम्हें समस्त भुवनों ने अपना सम्राट् मान लिया है! (वैदेही के लौटने के पूर्व तो, तुम जंगलों में ही खाक छानते रहे हो!) हमारी माता मैथिली का कर- ग्रहण करने के कारण ही तुम्हें ऐसे बल-वैभव प्राप्त हो गये हैं और तुम इतने अद्भुत कार्य कर सके हो। (अगर वे न होतीं तो) कौन जान पाता कि तुम किस जमाने के, कहाँ के और कैसे पुरुष हो?"

इस प्रकार श्री कविवर कासुल पुरुषोत्तम ने इस सुंदर 'शतक' में भगवान के समस्त अवतारों के अंतर्गत आनेवाली लीलाओं का गान, व्याजनिंदा के सहारे किया है। तेलुगु साहित्य के परम-भागवत-कवि पोतन्ना की जीवनी तथा अमर कृति 'आंध्र-महाभागवत' का बड़ा भारी प्रभाव, इन कविवर की रचना एवं जीवनी पर साफ लक्षित होता है। प्राय: अपनी सभी रचनायें इन्होंने भगवान ही के चरणों पर अर्पित कर दी थीं। पोतन्ना की रचना में भक्ति की जैसी तीव्र एवं प्रबल धारा

लक्षित होती है, वैसी ही भव्य भावना श्री. पुरुषोत्तम कवि की वाणी के पीछे धावित होती है। पोतन्ना सहज-पांडित्य से अलंकृत थे, उन्हें ग्रंथ-रचना के लिये प्रेरणा भगवान् रामचंद्रजी से ही मिली थी। श्री पुरुषोत्तम ने इस शतक के अंतिम पद्य की अंतिम पंक्तियों में स्पष्ट रूप से कह दिया है—

“भवदनुग्रह कवितचे प्रबलुवाड”

(भगवन् ! आपके अनुग्रह-जनित-कविता से मैं आगे बढ़ रहा हूँ।) यही नहीं श्री पोतन्ना के प्रसिद्ध पद्य

“अल वैकुंठ पुरंबुलो नगरिलो नामूल सौंधबु दापल मंदार वनांतरामृत सरःप्रान्ते दुकांतोपलोत्पल पर्यंक रमाविनोदि *”

का अंश श्री पुरुषोत्तम कवि को इतना प्रिय लगा कि उन्होंने उन्हीं शब्दों को ज्यों का त्यों अपने एक पद्य में स्थान दिया है। देखिये—

सी०—कोरिकलीनु वैकुंठबु लोनिलो
नगरिलो नामूल नव्य दिव्य
सौधंबुदापल सरस मंदार व—
नांतरामृत सरः प्रांत चंद्र
कांतोपलोत्पल कल्पित पर्यंक
सकल सौभाग्य लक्षण निवास !

संकृत तथा तेलुगु भाषाओं पर असाधारण अधिकार रखते हुए भी, पुनरुक्ति अथवा अनुकरण आदि दोषों की परवाह न करके, महाभक्त कवि पोतना की मौलिक भावधारा एवं भाषा को यों अपनी रचना में स्थान देना, पुरुषोत्तम कवि के हृदय में, उन पूर्ववर्ती महाकवि के प्रति रहनेवाली असीम श्रद्धा एवं भक्ति का परिचायक है। इस प्रकार परम-भागवत-पोतना की वाणी से न मालूम कितने परवर्ती कवियों ने प्रेरणा पायी होगी।

निस्संदेह पुरुषोत्तम कवि की इस छोटी-सी किंतु अद्भुत कृति का तेलुगु साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रहेगा। वहाँ व्याज-निंदा से पूर्ण ऐसी दूसरी सुंदर रचना का मिलना कठिन है।

“जयंति ते सुकृतिनो
रससिद्धाः कवीश्वराः”

ग्राह-ग्रसित गजराज की आर्त पुकार के कर्ण-विवरों में पड़ते समय भगवान् विष्णु, जिस स्थिति में रहे थे, उसका वर्णन इसमें दिया गया है। इसके भाव एवं भाषा दोनों मूल संस्कृत भागवत से पूर्णतया स्वतंत्र हैं। यह पद्य संस्कृत का अनुवाद नहीं, अपितु पोतना की मौलिकता एवं अपार भक्ति का परिचायक है। इसकी रचना को लेकर एक रोचक दंतकथा प्रचलित है। कहा जाता है इस पद्य को रचते समय पोतना बड़े असमंजस में पड़ गये थे। प्रारंभ के “अल वैकुंठ पुरंबुलो नगरिलो” (अर्थात् ‘उस वैकुंठ नगरी में, अंतःपुर में’) ये शब्द लिखने के बाद उनकी लेखिनी आगे नहीं बढ़ी। उस अंतःपुर के किस भाग में भगवान उस अर्द्ध-रात्रि के समय क्या कर रहे थे, इसका निर्णय अथवा कल्पना भक्तवर न कर सके। अतः लेखिनी वहीं रख कर ताल-पत्र खुला ही छोड़, वे सर खुजाते हुए घर के बाहर टहलने गये थे। जब वे अध्ययन-कक्ष्य में लौट पड़े तो देखा कि उनकी पुत्री लेखिनी उठाकर तालपत्र पर कुछ लिख रही है। पिता के आने की आहट पाकर वह लड़की

---

* यह पद्य ‘आंध्र महाभागवत’ की गजेंद्रमोक्ष-कथा का है।

१९५०

पलक मारते वहाँ से हट गयी ! महाकवि ने तालपत्र पर नज़र दौड़ाई तो पद्य का इतना अंश लिखा पाया—

'नामूल सौधंबुदापल
मंदारवनांतरामृत स्वरः
प्रातेंदु कांतोपलोत्पल पर्यंकर-
माविनोदियगु नापन्न प्रपन्नुंडु'

तुरंत लड़की को बुलाकर पूछा तो वह बेचारी कहने लगी—"मुझे मालूम नहीं किसने पद्य का यह हिस्सा लिखा है, मैं तो इस कमरे में आज अभीतक आयी ही नहीं !" कृतज्ञता, भक्ति एवं आर्ति से विकल महाकवि को समझने में देर न लगी कि जगज्जननी लक्ष्मी ही उनकी लड़की का रूप धर कर आई और भगवान के 'उस समय का पूरा पता' लिख गईं ! अपने भक्त की मानसिक व्यथा दूर कर दी !

ऐसी अलौकिक घटनायें भागवत का अनुवाद करते समय कई प्रसंगों पर उन महाभक्त के जीवन में घटीं थीं, जिनसे उनके अगाध भक्त-हृदय एवं भगवान की उन पर असीम कृपा का पता लग जाता है । उक्त पद्य की रचना के साथ इतना महत्व लगा हुआ है, यही कारण होगा कि वह पद्य हमारे भक्त कवि पुरुषोत्तमजी को बेहद पसंद आया था ।

◆

* * * *

'तट दादा ! तुम्हारी उम्र क्या होगी ? बरगद की सबसे ऊँची चोटी पर अठखेलियाँ करती सुकुमार वल्लरी ने उससे प्रश्न किया ।

'बेटी ! ठीक तो याद नहीं, यही होगी कोई सौ और पाचँ की । बरगद ने अन्यमनस्क भाव से उत्तर दिया ।

'सौ और पाँच । एक सौ पांच वर्ष, एक शताब्दी से भी अधिक !! और मुझे देखो मैं छः महीने में ही तुम्हारी सबसे ऊँची चोटी को छू लेती हूँ । मैं कितनी प्रगतिशील हूँ ।

बरगद उसकी यह बात सुन कर हंस पड़ा, 'बेटी ! अभी तो तुमने अन्धड़ और ग्रीष्म की चिलचिलाती, तपती दोपहरी के एक बार भी दर्शन नहीं किये ।

"अभिताभ"

बँगला :

जोड़तोड़

[श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय]

१

मुक़दमे के कागजात देखकर रायसाहब ने कुछ चिन्तित भाव से सिर हिलाकर राय जाहिर की—हूँ . . . लेकिन केस बहुत कमज़ोर है शारदा बाबू . . . आपस में कंप्रोमाइज़ कर लेना ही ठीक होता ।

रायसाहब अमरेश सान्याल शहर के सब से बड़े दीवानी कचहरी के वकील हैं ।

रायसाहब की राय सुनकर शारदा बाबू व्याकुल हो उठे । बोले—मैंने कंप्रोमाइज़ की कोशिश की थी रायसाहब । लेकिन वह चोर बाजार में माल काटकर रातोंरात मालदार हो गया है; अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता । मैं जानता था कि कोशिश बेकार होगी, तो भी जाकर बहुत कहा-सुना; लेकिन उसने एक नहीं सुनी । मैं मुकदमा न दायर करता, मगर और कोई उपाय नहीं है । वह ज़मीन थोड़ी-सी ही है । उसे पाकर वह मुशकिल से दो-तीन कमरे बनवा सकेगा, उसका घर और कुछ बड़ा हो जायगा; लेकिन मेरा तो इज्जत के साथ वहाँ रहना ही कठिन हो जायगा । एकाएक बड़ा आदमी बन गया है, पैसे की कमी नहीं है, वह क्या नहीं कर सकता ? आप लोगों की तरह बुनियादी घर का तो है नहीं . . . .

रायसाहने ज़रा मुसकिराकर कहा—यह तो मैं सब समझता हूँ साहब; लेकिन इस तरह की कमजोर केस लेकर . . . .

शारदा बाबू ने रायसाहब का हाथ पकड़ लिया । बोले—दया करके केस ले लीजिये । आपके हाथ में आकर अनेक कमजोर केस ज़ोरदार हो गये हैं रायसाहब । इसी शहर का रहनेवाला हूँ, मुझ से कुछ छिपा नहीं । इस में संदेह नहीं कि आप को अपनी ओर खड़ा करने की बिसात मेरी नहीं है । तो भी आपकी शरण में इस लिए आया हूँ कि आपको वह अपनी ओर से खड़ा न कर सके । आप मेरा केस ले तो लीजिए । उसके बाद मेरा भाग्य । हार जाइएगा तो समझ लीजिएगा कि एक भले मानुस की इज्जत बचाने के लिए थोड़ीसी बदनामी ही सही—जानबूझकर ही ।

रायसाहब जरा चुप रहे, उसके बाद बोले—मान लीजिए, मैं ने केस ले लिया; पर उसका फल क्या होगा ? लोवर कोर्ट में आप हार चुके हैं; अब की अपील में अगर जीत ही गये तो मुकदमा हाई कोर्ट में जायगा । उधर रुपये का जोर है । हाई कोर्ट में तो आप उसका मुकाबला नहीं कर सकेंगे ।

शारदा बाबूने कहा—वह हाई कोर्ट तक न जायगा । भीतर भी यह खबर मालूम करके ही आपके पास आया हूँ । चोर बाजारी में आज-कल उसका रोजगार खूब चल रहा है, इसलिए उसे इतनी फुर्सत नहीं है कि हाई कोर्ट की दौड़धूप में अपना समय नष्ट करे । आप जानते हैं कि चारों ओर दौड़ धूप करके रिश्वत देकर, सब तरफ की खबर रखकर ही चोर बाजारी का धंधा किया जा सकता है । इसी से मैंने अपील दायर की है ।

रायसाहब कुछ देर और चुप रहकर शायद पीछा छुड़ाने का उपाय सोचते रहे । लेकिन और कोई युक्ति संगत बहाना न सूझने के कारण अन्त में जरा हँसकर कहा—तो आप छोड़ेंगे नहीं ? खैर, अच्छी बात है ।

शारदा बाबू के जाते ही लगभग २०-२५ मिनिट बाद गाड़ी बरामदे में एक एकदम नये

१९५०

मॉडेल की मोटरकार आकर रुकी। उससे उतरकर अटल बाबू भारी भरकम चाल से धीरे-धीरे बैठक में दाखिल हुए। यही शारदा बाबू के पढ़ैत थे। साधारण प्रणाम और शिष्ट-संभाषण आदि के उपरान्त अटल बाबू ने भी रायसाहब से अपना केस हाथ में लेने के लिए प्रार्थना की।

रायसाहब ने शारदा बाबू के आने का हाल बताकर कह दिया कि दूसरे फरीक ने उन्हें पहले ही कर लिया है, इसलिए वह लाचार हैं।

अटल बाबूने जरा मुसकिराते हुए कहा—यह कौन ऐसी कठिन बात है रायसाहब? शारदा बाबू के अपील के शौक को मैं जरूर मिटाऊँगा। मुझे आपकी जरूरत है। खर्च कुछ भी हो, इसकी पर्वा नहीं।

रायसाहब साधारणतः मीठी भाषा का ही व्यवहार करते हैं और अगर कभी जरूरत पड़ती है तो उसी भाषा से मखमली जूते का भी काम लेते हैं। उन्होंने हँसकर ही कहा—अर्थात् दूनी, चौगुनी, चाहे जितनी फीस मैं माँगूँ, आप देंगे। बात तो आपने अपने योग्य ही कही अटल बाबू। लेकिन बीच अदालत में खड़े होकर ब्लैकमार्केटिंग करने की हिम्मत नहीं होती।

ज़माने की रफ्तार को लेकर एक निहायत ही सीधी-सादी दिल्लगी के रूप में ये शब्द कहकर रायसाहब हँसने लगे। अटल बाबू भी हँसते ही हँसते विदा हुए। लेकिन जब वह मोटर में बैठे, तब उनके चेहरे पर क्रोध और निराशा की जो काली छाया थी, वह देखने ही लायक़ थी।

२

सबजज रामचरन बाबू के इजलास में मुकदमा पेश हुआ। तारीख भी पड़ गयी। केस तो कोई ऐसा बड़ा नहीं, लेकिन दोनों पक्ष ज़िद करके काफी रुपये खर्च कर रहे थे। शहर में इस मुक़दमे की बड़ी चर्चा थी।

पेशी के चार-पाँच दिन पहले संध्या के समय शारदा बाबू बहुत उदास भाव से रायसाहब के बैठकखाने में आकर फर्श पर एक किनारे बैठ गये। बीच में शतरंज का खेल चल रहा था। रायसाहब ने एक बार, आँख उठाकर शारदा बाबू की तरफ देखा और फिर खेल में मशगूल हो गये। बाजी समाप्त होने पर कुछ देर गपशप लड़ाकर सब लोग उठकर चले गये। सन्नाटा होने पर रायसाहब ने पूछा—कहिये शारदा बाबू, कैसे आये? कोई नई खबर है? इस तरह उदास क्यों दिखाई पड़ रहे हैं?

शारदा बाबू ने उत्तर दिया—जी हाँ, कुछ है ज़रूर, इसी से बे-वक्त दौड़ कर आना पड़ा।

नौकर हुक्के पर नई चिलम भरकर रख गया। रायसाहब गिर्दे (बड़े तकिये) के सहारे उँठक कर सटक हाथ में लेकर बोले—अच्छा सुनाइए, क्या बात है?

शारदा बाबू ने कहा—अटल बाबू ने एक बहुत बड़ी चाल चली है। सुना है, वह हज़ारीबाग से रामचरण बाबू (सबजज) के मामा को बुला रहे हैं। वह हज़ारी बाग के पुराने वकील हैं। रायबहादुर भी हैं। मैंने पता लगा लिया है, कोई बहुत अच्छे वकील नहीं हैं; मगर हाँ, सबजज साहब के सगे मामा ज़रूर हैं।

रायसाहब तमाखू के कश ज़रा ज़ोर-ज़ोर खींचने लगे। मुख पर कुछ चिन्ता की छाया झलकने लगी। बोले—रायसाहब को न पाया तो रायबहादुर के पास दौड़ लगायी? अच्छा, देखा जायगा।

शारदा बाबू ने जोश दिलाने का मौका हाथ से जाने नहीं दिया। बोले—वकील को बुलाया है, तो बुलावे। सभी लोग वकील करते हैं। लेकिन जिस तरह वह इधर-उधर कहता फिरता है, वह तो किसी तरह सहन नहीं किया जा सकता।

रायसाहब सीधे होकर बैठ गये। बोले—क्या गाली गलौज पर उतर आया है?

शारदा बाबू ने कहा—सीधे गालियाँ देना तो अच्छा है रायसाहब। लेकिन वह तो चोरी का कारबार करनेवाला आदमी है, खुले बाज़ार में खुलासा खरीद-फरोख्त तो करता नहीं। सीधे गालियाँ देने की हिम्मत कहाँ है? हिम्भत होती तो उस दिन आपको ही मुँह पर न सुना दे सकता था। मैं सब सुन चुका हूँ—उस दिन आपको पैसे का गरूर दिखाने पर उसने मुँह पर कैसा तमाचा खाया था। अब इधर-उधर चुरा-छिपाकर कहता फिरता है कि 'रायसाहब के ऊपर रायबहादुर की चड्ढी चढ़ा दी है। देखें, कैसे सँभालते हैं रायसाहब!'

आपके कानों तक तो बात नहीं पहुँच पाती, लेकिन हमारे कानों में ज़हर घोलती है।

रायसाहब चुपचाप वैसे ही गुड़गुड़ी गुड़गुड़ाते रहे। शारदा बाबू भी चुप बैठे रहे। उनकी बात रायसाहब के मन में अच्छी तरह जम जाय, इसकी राह देखते रहे। केवल कनखियों से कभी-कभी रायसाहब की ओर देख लेते थे। थोड़ी देर बाद बोले—खैर, वह जो चाहे करे, चाहे जिसको बुलावे, इससे मैं नहीं डरता। हमारे रायसाहब के साथ हज़ारी बाग के घने-सड़े रायबहादुर का दंगल देख ही लिया जाता। लेकिन यह कानूनी मुकाबला नहीं है रायसाहब। इसमें एक बहुत बड़ी चाल है। सबजज साहब का हाल तो आप जानते ही हैं सब...

रायसाहब ने कुछ चौंककर प्रश्न किया—तो क्या सबजज साहब मामा का खयाल करेंगे? मैंने तो यही सुना है कि उन्हें सिफारिश से बड़ी चिढ़ है।

शारदा बाबू ने कहा—जी हाँ, आपने जो सुना है, वह बिलकुल सही है। लेकिन बात यह है कि सबजज माता के परम भक्त हैं। मा के पैर छूकर कचहरी जाते हैं और जब लौटते हैं, तब माता को प्रणाम करके पोशाक उतारते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आज के ज़माने में और इस अवस्था में ऐसी माता की भक्ति बहुत ही कम नज़र आती है। लेकिन मेरे दुर्भाग्य से यही गुण दोष हो गया है। अगर जज साहब की मा में भी अपने बड़े भाई की ऐसी ही भक्ति हुई—और न होने का कोई कारण नहीं है—तो नतीजा जो होगा, उसे आप खुद समझ सकते हैं। इसी संभावना से तो अटल ने हज़ारी बाग तक की दौड़ लगायी है।

अब की सटक मुँह से हटाने में बड़ी देर लगी, रायसाहब गहरी चिन्ता में डूब गये थे। शारदा बाबू मन ही मन पुलकित हो उठे। मुक़दमे में विशेष कुछ नहीं है, सिर्फ इस लिए रायसाहब को अटका लिया है कि वह अटल बाबू के पक्ष में खड़े न हो सकें। इतने दिन दौड़-धूप करके भी वह रायसाहब का ध्यान विशेष रूप से इधर खींच नहीं सके थे। अब इस नई बात से जैसे उनकी खुशामद करने का मौका मिला, वैसे ही उत्तेजित करने का भी। सफल होने के लक्षण देखकर वह चुपचाप उनके कुछ कहने की राह देखने लगे।

ज़रा देर बाद एक लंबी-सी 'हूँ!' करके राय साहब ने शारदा बाबू की ओर मुँह फेरा। बोले—मैं जितना ही सोचता हूँ, मुझे जान पड़ता है, अटल बाबू ऐसा करके अपने ही पैर में आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं। इससे हमारा ही लाभ होगा। और कुछ न हो, जज साहब को अपनी नेकनामी-बदनामी का ख़याल तो होगा ही। मामा इजलास में आया और मुक़दमा जीत ले गया, यह देखकर लोग कानाफूसी तो करेंगे ही, साफ़ बदनामी होगी। जज साहब में तनिक भी बुद्धि होगी तो वह इस तरह अपनी बदनामी नहीं होने देंगे। इसके सिवा आप कहते हैं कि वह बड़े धर्मभीरु और निष्पक्ष हैं तो उनमें विवेक भी अवश्य होगा। अटल बाबू की चाल उनसे छिपी नहीं रहेगी। . . . अच्छा ठहरिये, और ज़रा सोच लूँ।

और भी थोड़ी देर तमाखू के कश खींचने के बाद बोले—अवश्य यह बात भी है कि अनेक हाकिम सिफ़ारिश के फेर में पड़ जाते हैं; क्योंकि आख़िर वे भी तो हमारे-तुम्हारे समान मनुष्य ही होते हैं और मनुष्य में अनेक मानसिक दुर्बलताओं का होना ही स्वाभाविक है। हो सकता है कि जज साहब धार्मिक हैं तो क्या हुआ, उनमें भी यह कमज़ोरी आ जाय और मामा का खयाल करके मुक़दमा अटल बाबू को जिता दें। अनेक हाकिम अपने हाथ में रिश्वत लेने को ही पाप समझते हैं; किन्तु अगर कोई सिफ़ारिश—इष्टमित्र की या किसी नातेदार की—आ जाती है तो उसके माफ़िक फैसला करने को अनुचित नहीं समझते। जो मवक्किल धूर्त होते हैं, वे इस सुयोग को हाथ से जाने नहीं देते . . . . .

शारदा बाबू ने हँसकर कहा—और बहुत से हाकिमों के लिये यह निश्चय करना भी तो कठिन है कि मा की आज्ञा न मानना बड़ा पाप है या मा की आज्ञा मानकर दूसरे का सर्वनाश करना बड़ा पाप है . . . .

रायसाहब ने भी जरा हँसकर कहा — इसमें क्या संदेह है रायसाहब। . . . अच्छा आप एक काम कीजिये शारदा बाबू। सचमुच दुनिया के रंगढंग और हालचाल ऐसे देख पड़ते हैं, जिनसे मालूम होता है कि धर्म कुछ नहीं है, वह एक

१९५०

अन्धविश्वास है, बहुतों के लिये तो वह एक अभ्यास मात्र है। मालूम नहीं, जज साहब कैसे आदमी हैं। अभी अभी नये बदलकर आये हैं। अब तक उनकी अदालत में मैं गया भी नहीं। जासूसी में — यानी मतलब की ख़बरों का संग्रह करने में—आप बड़े होशियार देख पड़ते हैं। जरा पता लगाइये तो, जज साहब में यह कमजोरी है कि नहीं—यही, मामा, चाचा, फूफा आदि किसी नातेदार के सिफ़ारिश करने पर केस जिता देने की। जान पड़ता है, यह कमज़ोरी जज साहब में जरूर है, नहीं तो धूर्त अटल बाबू इतनी दूर की दौड़ कभी न लगाते। ऐसी हालत में तुम्हारा केस हार जाने की ही सोलहों आने संभावना है शारदा बाबू।

शारदा बाबू उठकर चले गये। राय साहब ने नौकर को दौड़ाकर उन्हें फिर लौटाया। उनके आने पर कहा—सुनिये जरा एक काम तो कीजिये। जज साहब की बीबी और आत्मीय-स्वजनों के बारे में भी थोड़ा पता लगाइये। कौन कहाँ रहता है, क्या क्या काम करता है? यह भी जानने की जरूरत है कि जज साहब के परिवार में, घरमें कौन कौन हैं। कल शाम तक सब पता लग जाना चाहिए, अब अधिक समय नहीं है।

इतनी भी देर नहीं लगी। उसी दिन शाम को शतरंज का खेल शुरू होने के पहले ही शारदा बाबू ने सब बातों का पता लगाकर बता दिया। जज साहब तीन भाई हैं—एक भाई डिपटी है, खुलना में रहता है; दूसरा भाई ढाका में प्रोफ़ेसर है। दो बहनें हैं; एक बहन विधवा है, दूसरी बहन का स्वामी आबकारी विभाग में किसी बड़े ओहदे पर है। जज साहब ने भी दो ब्याह किये हैं . . .

राय साहब सीधे होकर बैठ गये, कुछ कौतुक-मिश्रित उल्लास के साथ शारदा बाबू को रोककर प्रश्न किया—दो ब्याह किये हैं!

शारदा बाबू ने कहा—जी हाँ।

राय साहब "अच्छा, आगे कहो" कह कर जल्दी जल्दी हुक्का गुड़ गुड़ाने लगे।

शारदा बाबू ने कहा—पहली पत्नी से बराबर लड़कियाँ ही होने लगीं। तब वंश रक्षा के लिये, लगभग तीन साल हुए, उन्होंने दूसरा ब्याह किया।

राय साहब ने कहा—इस स्त्री से वंश की रक्षा हुई? यह दूसरी स्त्री आजकल कहाँ है?

इस तरह दोनो प्रश्न किये, जैसे वह एक सेकंड की देर भी नहीं करना चाहते।

इस भावान्तर को देखकर शारदा बाबूने कुछ विमूढ़ भावसे उत्तर दिया—जी हाँ, एक पुत्र हुआ है। दोनो औरतें यहीं हैं और मालूम हुआ है कि दोनो सौतों में खूब मेल है अब तक . . .

राय साहब ने हाथ की सटक नीचे रख दी और कुछ खीज के साथ कहा—चूल्हे में जाय मेल, पहले दोना सौतों के मायके की ख़बर बताइये महाशय, जिससे हमें मतलब है। यहाँ अगर दोनों मेल से रहती हैं तो हमें क्या और अगर दोनों में झोंटे पकड़कर लड़ाई होती है तो हमारी क्या हानि? मैं पूछता हूँ कि उनके मायके में . . .

इसी बीचमें शतरंज के खिलाड़ियों का दल हुल्लड़ करता हुआ आकर उपस्थित हुआ। उसमें वकील थे, मुख्तार थे, प्रोफ़ेसर थे, डॉक्टर थे और थे एक बेकार चाचा, जो दुनियाभर के चाचा थे। बात जहाँ की तहाँ रह गयी।

(३)

कहानी को संक्षिप्त करने के लिए आइये, एकदम जज साहब के अन्तःपुर में ही चला जाय; क्योंकि असल में इस मुक़दमे का फैसला यहीं होगा।

दो दिन बाद की बात है। कचहरी सबेरे लगती थी। दोपहर को आराम करने के बाद जज साहब उठकर एक आरामकुर्सी पर आधे लेटे हुए एक मुक़दमे के बारे में सोच रहे थे, जो उन्हींके इजलास में चल रहा था। अभी अपने आफिस रूम में जाकर स्टेनोग्राफर को डिक्टेट करके अपनी राय अर्थात फैसला लिखाना था!

इसी समय उनकी माता वहाँ उपस्थित हुई। दो एक इधर-उधर की बातों के बाद बोलीं—तूने शायद सुना होगा, दादा यहाँ आये हैं।

जज साहब ने कुछ चौंककर प्रश्न किया—यहाँ घर में?

मा ने कहा—क्या ऐसे मूर्ख हैं वह, जो घर में आवेंगे?

जज साहब ने कुछ आश्वस्त होकर कहा—इस शहर में आये हैं, यह, तो मैंने भी सुना है। कोई अटल बाबू हैं, वही लाये हैं।

जरा देर माता और पुत्र, दोनों चुप रहे। उसके बाद मा ने कहा — सुना है, जिस मुकदमे में वह आये हैं, वह तेरे ही इजलास में है।

पुत्र ने कहा—हाँ, यह भी सुना है। लेकिन यह क्या ठीक है ? ऐसा मुकदमा वह लेते ही क्यों हैं ? इसमें बदनामी का डर भी तो है।

मा ने कहा—तू भी खूब कहता है ! क्यों आते हैं ! अच्छे वकील हैं, लोग बुलाते हैं, इसी से आते हैं . . . .

पुत्र ने कहा — जितने अच्छे वकील हैं, सो मैं जानता हूँ। अक्सर उन्हें हार का ही मुँह देखना पड़ता है। मतलब यह कि वकील लाख अच्छे हों, अब बूढ़े हुए, न वह सूझबूझ है, न उतनी बोलने की शक्ति है, मुक़दमे को सँभाल नहीं पाते।

मा ने कहा—ठीक कहते हो बेटा, बुढ़ापे में कोई काम सँभालना कठिन ही होता है। मगर जो भगवान् बुढ़ापा देते हैं, वही सँभालने वाला मददगार भी दे देते हैं। मुझी को देखो, अब बूढ़ी हुई हूँ, गिरस्ती नहीं सँभाल पाती, इसी से भगवान् ने मुझे ऐसी लायक दो दो बहुएँ दे दी हैं।

इस इशारे में कुछ भी अस्पष्टता नहीं थी। जज साहब चुप रहे। जरा देर बाद मा ने कहा — तो फिर मैं निश्चिन्त रहूँ ? दादा ने एक चिठ्ठी भी दी है—यही लिखा है — रामचरन कैसा है ? बहुएँ, लड़का और लड़कियाँ, सब अच्छे हैं ? मैं तो एक बार जा कर सब को देख भी नहीं आ सकता। सुना है, तेरे लड़के के ही इजलास में मुकदमा है . . . . संजोग तो देखो, अपने भांजे का घर पास है, लेकिन एकबार वहाँ जाने का उपाय नहीं है। यह भी कोई बात है—वाह री दुनिया !

फिर जरा देर दोनों चुप रहे। इसके बाद जज साहब ने कहा—निश्चिन्त इस माने में रह सकती हो मा, कि मैंने जहाँ तक सुना है, मुकदमा अटल बाबू के ही माफिक है। केस अभी मेरे सामने नहीं आया है, लेकिन सुना ऐसा ही है। बस, इसी से निश्चिन्त रहा जा सकता है। लेकिन जानबूझ कर अन्याय या अधर्म तो मैं कर नहीं सकता। तुम भी निश्चय ही अन्याय करने के लिए नहीं कहोगी।

मा ने कहा—मा हो कर भला मैं तुझ से अधर्म करने को कह सकती हूँ ? लेकिन बात यह है कि बूढ़े मामा हैं, उनके लड़के भी वैसे लायक नहीं निकले–काम-धंधा छोड़ कर घर बैठने की अवस्था में भी घर छोड़ कर दो पैसों के लिए दूर-दूर दौड़ना पड़ रहा है; उन्हें देखना और उनका खयाल करना भी तो एक धर्म है बेटा। 'ना' कह सकता है तू भला ? बोल ?

पुत्र ने कहा — सो तो मैं समझता हूँ माँ, लेकिन . . . .

माँ ने कहा—इतना समझना ही काफ़ी है; मुक़दमे को ज़रा सँभाल लेना होगा। अभी मैं कह चुकी हूँ न कि बहुएँ जैसे गिरस्ती सँभालने में मेरी मदद करती हैं। इसीलिए न कि यह उनका धर्म है।

इसके दूसरे दिन की बात है। घर के ऊपरी हिस्से में जज साहब जिस कमरे में सोते हैं, उसके सामने थोड़ी-सी खुली छत है।

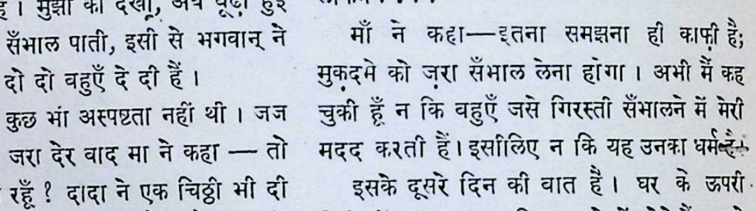

रात का भोजन समाप्त कर के वहीं एक डेक-

१९५०

चेयर पर आधा लेटे हुए जज साहब सिगरेट के कश खींच रहे थ। इसी समय उनकी दूसरी बीबी किरणमयी आकर उपस्थित हुईं। गोद में एक साल का बालक था।

चाँदनी रात थी। इधर उधर की दो-चार बातों के बाद चाँदनी के सौन्दर्य की बात आ पड़ी। उसी सिलसिले में संसार के सारे सौन्दर्य की चर्चा चली। अन्त को जज साहब ने राय ज़ाहिर की कि सभी सौन्दर्यों का विकास चाँदनी रात में ही होता है। किरणमयी ने इसका समर्थन नहीं किया। दोनों में मामूली बहस छिड़ गई। अपने पक्ष को हारते देख कर किरणमयी ने ज़रा हँस कर कहा—अच्छा अच्छा, कविता रहने दो। मैं अपनी हार मानती हूँ।

इतनी भूमिका के बाद आप भी एक डेक-चेयर खींच कर किरणमयी बैठ गईं। और दो-एक बातों के बाद जैसे एकाएक ख़याल आगया हो, ऐसे लहज़े में फिर किरणमयी ने कहा — अरे मैं तो भूली ही जा रही थी इन बेकार की बातों में। तुमने शायद सुना होगा, मेरे दादा आये हैं।

जज साहब को श्रीमान् साले साहब के शुभागमन का समाचार सचमुच मिल चुका था, और इस भय से भीतर ही भीतर काँप रहे थे कि श्रीमतीजी कहीं इसी प्रसंग को न उठावें। अज्ञता का भान कर के बोले—सच ?

स्त्री ने कहाँ—हाँ, आये हैं। माँ ने लिखा है—प्रेक्टिस शुरू करते ही खूब नाम हो गया है उनका। यहाँ के कोई शारदा बाबू तिगनी फीस दे कर उनको ले आये हैं।

जज साहब ने कहा—बड़ी खुशी की बात है।

ज़रा देर चुप्पी रही। इसके बाद किरणमयी ने कहा — सुनती हूँ, तुम्हारे ही इजलास में यह मुक़दमा है।

जज साहब ने कहा — ओ ! अटल बाबू वाला वही मुक़दमा है शायद। माँ अभी सबेरे कह रहीं थीं कि अटल बाबू मेरे मामाजी को ले आये हैं।

इसके बाद ज़रा अधिक देर तक सन्नाटा रहा। इसके बाद किरणमयी ने कहा — निश्चय ही मामा जीतेंगे, पुराने आदमी हैं . . . .

जज साहब ने कहा—ऐसा ही जान पड़ता है। मुक़दमा भी उनके ही पक्ष में शहज़ोर है न।

और ज़रा देर चुप रहने के बाद किरणमयी ने ज़रा मुँह फुला कर कहा — मामा के न जीतने में भी वैसी हानि न थी। वह अनेक मुक़दमे जीत चुके हैं। अब उनके रिटायर होने की अवस्था है। हारने में उनका वैसा कोई नुकसान नहीं है . . .

जवाब के लिए यथेष्ट अवसर दे कर भी जब कोई जवाब न मिला, तब उसी सिलसिले में कहा —लेकिन दादा अगर हार जायँगे तो तरक्की के आरंभ में ही उन्हें और उनकी वकालत के यश को बड़ा धक्का पहुँचेगा।

जज साहब ने कहा—तुम्हारे दादा को यह केस लेना ही न चाहिए था किरण। वह एकदम जूनियर (नौसिखिए) हैं। अभी पाँच-छः महीने से वह अदालत जाने लगे हैं। आजकल इतने वकील बढते जा रहे हैं कि छः साल वकालत करके भी कोई वकील नामवरी हासिल कर ले तो उसे भाग्यशाली कहना चाहिए।

किरणमयी का मुँह और भी फूल गया। अबकी उन्होंने अपना मतलब और भी स्पष्ट कर दिया। बोलीं—मुकदमा निश्चयही दादाने इस भरोसे पर लिया है कि हाकिम उनके सगे बहनोई हैं। दादा प्राणपण से कोशिश तो करेंगे ही। अगर कहीं कोई कमज़ोरी होगी तो उनके बहनोई सँभाल लेंगे—लेकिन अब मुझे कहना पड़ता है कि दादाने ऐसी आशा करके बड़ी ग़लती की।

जज साहबने खुशामद सी करते हुए कहा—लेकिन अगर मैं तुम्हारे दादा के मवक्किल की तरफ़दारी करूँ तो क्या यह अधर्म न होगा ?

किरणने कटाक्ष के बाण पर सम्ममोहन-अस्त्र का प्रयोग करते हुए कहा—एक आदमी इतनी दूर से आशा करके आया है, हार कर मन-मरा होकर लौट जायगा, नामवरी की राह में पहली ही ठोकर खाकर सदा के लिए अंटाचित हो जायगा—यही क्या धर्म है ? कौन जाने भाई, तुम लोग किसे धर्म समझते हो और किसे अधर्म ! तुम्हारे ही तो किसी भाई (अर्थात् पुरुष) ने कहा है—धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां (अर्थात् धर्म का तत्व पहाड की खोह में छिपा है, तात्पर्य यह कि हर एक आदमी धर्म के रहस्य नहीं देख पाता)।

जज साहब की श्रीमती संस्कृत में प्रथमा परीक्षा पास किये हुए थीं, इसीसे बातचीत में—ख़ासकर

रूठने पर—संस्कृत के वाक्य खण्ड प्रायः उनके श्रीमुख से निकला करते हैं।

बात जब इतनी स्पष्ट सामने आगई, तब छिपाने से क्या लाभ ? जज साहब ने कुछ व्यस्त होकर व्यथित खिन्न स्वर में कहा —तुम समझती नहीं हो किरण, एक तो अटल बाबू का केस बहुत मजबूत है, उस पर (उन्होंने) मामा-जैसे एक पुराने वकील को अपनी ओर से खड़ा किया है। वह अगर हार गये और दूसरा पक्ष केवल तुम्हारे दादा के बल पर जीत गया तो मेरी कितनी बड़ी बदनामी होगी ? तुम्हारे दादा एकदम जूनियर हैं, छः महीने भी पूरे नहीं हुए। बहस की कौन कहे, मुक़दमा भी तो अच्छी तरह पेश नहीं कर सकेंगे।

स्त्रीने कहा—जूनियर हों चाहे सीनियर, मेरे तो दादा हैं। मेरा भी तो कुछ धर्म है—इसी से मैंने तुम से कहा। हारकर मुँह लटकाकर चले जायँगे। मैंने आजतक हँसी खुशी के सिवा उनका मुँह उदास कभी नहीं देखा ....

सारी का आँचल आँखों तक ले गयीं, जज साहब ने एक बार कनखियोंसे स्त्री के मुखकी ओर देखा, फिर डरते हुए बोले—उन्हें तुम ज़रा समझाओ किरण, मेरी रानी, निश्चय ही वह समझ जायँगे। पढ़े-लिखे हैं ....

किरणने डोरी कटे धनुष की तरह छिटककर कहा—बस बस रहने दो, घाव में नमक न छिड़को। एक पढ़े-लिखे स्वर्णपदक प्राप्त शिक्षित को ही जब नहीं समझा सकी, तब वह तो एक मामूली बी. ए. एल. एल. बी. ठहरे ! मैं भी बड़ी बेवकूफ हूँ, कहकर अपमान ही तो पाया। अफ़सोस तो यह है कि दादा को कौन मुँह दिखाऊँगी ! ऐसे भाग्य हैं कि दादा शहर में आये, मगर मैं एक दिन उन्हें घरमें बुलाकर भोजन भी नहीं करा सकती ! ओह, मा के पेट के सगे भाई हैं—क्या कहेंगे ?

आँसुओं से गला रुँध गया। आँचल का छोर आँखों तक पहुँच गया।

* * *

मुक़दमे की पेशी हुई। सात दिन के बाद फैसला भी सुना दिया गया। शारदा बाबू ही जीते।

राय साहब के बैठक खाने में उस दिन संध्या-समय स्थिर होकर शतरंज खेलने के लायक किसी के मन की अवस्था नहीं थी। मुक़दमे में जज साहब की राय पर लोग तरह-तरह की आलोचना और टीका-टिप्पणी करते हुए हुल्लड़ मचा रहे थे। शारदा बाबू अपने वकील को गाड़ी पर सवार कराकर हँसते हुए रायसाहब के पैर छूने को झुके। वैसे ही रायसाहबने बीच ही में उनके हाथ पकड़कर कहा—बस बस, हो गया। हाँ, आप बड़े ख़बर लगाने वाले हैं, पहले रायबहादुर का हाल तो बताइए। रायसाहब पर चढ़ढी गाँठने आये थे; अब पटकनी खाकर कहाँ पहुँचे हैं ? भैया, यह मुक़दमा शारदा पाल बनाम अटल चौधरी भी नहीं था और रायसाहब बनाम रायबहादुर भी नहीं था। यह तो एकदम बापका साला वर्सेस (versus) अपना साला, माका भाई बनाम बीबी का भाई था। जज की राय तो ऐसे मुक़दमे में पेशी के पहले ही लिख रक्खी जा सकती है।

इस हँसी और हुल्लड़ के बीच और कोई आदमी कह उठा—इसमें क्या शक है, और यह राय तो साहब अपने स्टेनोग्राफर को नहीं लिखाते; खुद मेमसाहब साहब को लिखाती हैं।

* * *

सौन्दर्य एक भावना है, एक कल्पना है, इसी लिए वह इतनी पवित्र और अस्पर्श्य है, फिर भले ही वह सौन्दर्य किसी का भी क्यों न हो ? मेघाच्छादित हिमाद्रि के उत्तुंग स्वर्ण-शिखर का, हरित पत्रों से घिरे चम्पा के फूल का, गुलाब की कली पर ढुलकते हुए मोती जैसे जल-बिन्दु का या नवल कुसुम जैसी मुग्धा का—

यह सौन्दर्य मेरा अपना बन जाय, इस विचार ही में, स्वामित्व की इस भावना ही में पार्थिवता निवास करती है।

—श्री धूमकेतुः "अमिताभः"

आचार्य नरेन्द्रदेव

[श्री बैजनाथसिंह 'विनोद']

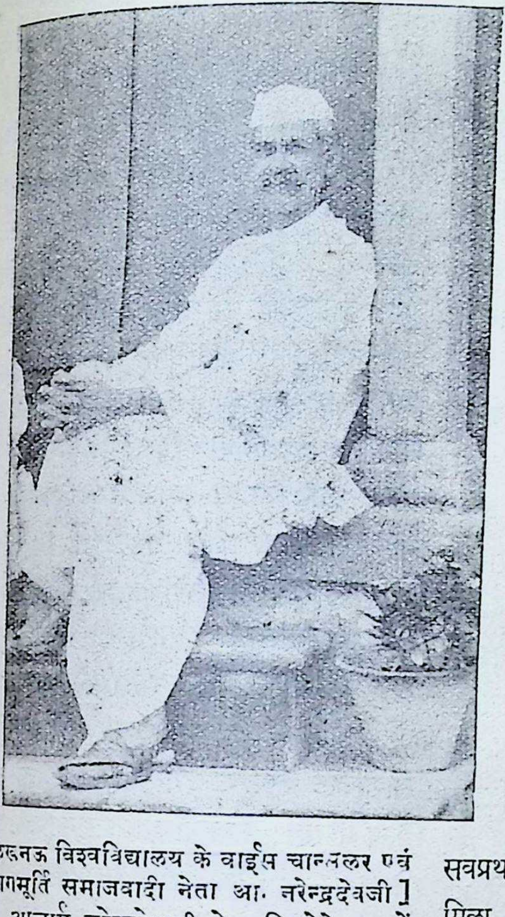

[लखनऊ विश्वविद्यालय के वाईस चान्सलर एवं त्यागमूर्ति समाजवादी नेता आ. नरेन्द्रदेवजी]

कहीं तो संस्था को भूला जा सकता है, व्यक्ति को नहीं, और कहीं व्यक्ति को भूला जा सकता है, संस्था को नहीं। सोशलिस्ट पार्टी संस्थारूप में अभी ऐसी नहीं है कि उसके द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण संभव हो। हाँ, सोशलिस्ट पार्टी के अन्दर कुछ ऐसे चरित्रवान व्यक्ति अवश्य हैं, जिनके अस्तित्व मात्र से सोशलिस्ट पार्टी की प्रतिष्ठा है। आचार्य नरेन्द्रदेव उन्हीं चरित्रवान व्यक्तियों में से एक हैं। आज की परिस्थिति में आचार्य नरेन्द्रदेव के बगैर उत्तर प्रदेश की सोशलिस्ट पार्टी की प्रतिष्ठा ही खतम हो जाती है। और इसी लिये हमारा मत है कि सोशलिस्ट पार्टी को भूला जा सकता है, पर आचार्य नरेन्द्रदेव को नहीं।

आचार्य नरेन्द्रदेवजी के प्रति मेरे मन में १९२७ में ही एक किस्म का धुंधला सा आकर्षण था। १९३० में जब मैं कलकत्ता से बनारस चला गया और वहीं सत्याग्रह संग्राम में शरीक हुआ, तो वहीं मुझे सर्व प्रथम आचार्यजी के दर्शन हुए। मुझे अपने क्रान्तिकारी मित्रों द्वारा मालूम था कि आचार्यजी की सहानुभूति सशस्त्र क्रान्ति की ओर है और उनके वाणी में जादू है। पर उसका सवप्रथम परिचय मुझे उनके एक भाषण में मिला। इसके बाद दूसरी बार उनका दर्शन हुआ १९३६ में। उस समय मैं कलकत्ता में था ओर आचार्यजी किसी सार्वजानिक कार्य से कलकत्ता गये थे तथा विवेकानन्द रोड में एक डाक्टर के मकान में टिके थे। मुझे याद है उन दिनों मैं साहित्य का अभ्यासी था और कविता भी लिखता था। आचार्यजी से मिलने और उनसे कुछ बातें करने के बाद एक अपूर्व आनन्द मिला और उस आनन्द के उल्लास में ही मैंने एक कविता भी लिखी थी।

क्रान्तिकारियों की एक प्रतिज्ञा थी, जिसके अनुसार देश की मुक्ति के लिए निरंतर संघर्ष करना जरूरी माना जाता था। उसी प्रतिज्ञा की प्रेरणा से लाहोर केस के बाद दल से संबंध विच्छिन्न हो जाने के बावजूद भी मैं किसी न किसी राजनीतिक संघर्ष में पड़ता ही गया। अहिंसा पर न तो कभी मेरा विश्वास था और न गांधीजी के कार्यक्रमों पर कभी श्रद्धा थी। पर चूंकि क्रान्तिकारी दल से संबंध विच्छिन्न हो गया था और अंग्रेजी राज के विरुद्ध कुछ न कुछ करना था। इसी लिये कांग्रेस में शरीक हो गया था। पर कांग्रेस में मेरे मन का संगीत कभी नहीं गूंजा। धीरे धीरे घटना-प्रवाह में पड़कर मार्क्सवादियों से मेरा सम्पर्क हुआ। लाहौर केस के श्री कमलनाथ तिवारी जब छूटे तो उन्होंने ही कलकत्ता में मेरा परिचय मार्क्सवादियों से कराया। उस समय हमारे सभी साथी मार्क्सवादी होकर कालेपानी से लौटे थे। इसी मार्क्सवादी रुझान के द्वारा मेरा परिचय सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी और समाजशास्त्री डा. भूपेन्द्रनाथ दत्त से हुआ। इन्हीं के द्वारा भारतीय इतिहास को मार्क्सीय दृष्टि से देखने की दृष्टि मुझे मिली। 'विश्ववाणी' का सम्पादन करते हुए इस दृष्टि का विकास हुआ। इसी बीच १९४२ का सत्याग्रह संग्राम चला। मैं गिरफ्तार करके नैनी जेल में डाल दिया गया। वहीं हमारे पुराने साथी लाहौर केस के शिव वर्मा थे। यहीं एक बार मुझे पुनः वही बन्धुत्व मिला, जो क्रान्तिकारियों की अपनी वस्तु है। और जिसके आनन्द में वे मौत की भी उपेक्षा करते हैं। १९४५ में जब आचार्यजी जेल से छूटे तो उन्होंने एक मार्क्सवादी अच्छा मासिक पत्र निकालने का विचार काशीविद्यापीठ के प्रोफेसर राजाराम शास्त्री से प्रकट किया। और उनसे एक उपयुक्त व्यक्ति मागा। शास्त्रीजी ने मुझे इसके उपयुक्त समझा। इसके बाद आचार्यजी दो बार कलकत्ता पधारे और दोन्हों ही बार मैं उनके निकट सम्पर्क में रहा। मैं आज सोचता हूं तो लगता है कि आचार्यजी उन दिनों मुझे समझ रहे थे। इसके बाद आचार्यजी ने मुझे बनारस बुलाया और मुझ से एक मार्क्सवादी अच्छा मासिक पत्र निकालने के लिये कहा। मैं अवाक् रह गया, क्योंकि मैं सोशलिस्टों के सम्पर्क में कभी नहीं आया था। फिर मैंने उनसे कहा कि आपकी राजनीति को मैं ठीक से नहीं जानता। इस पर उन्होंने कहा कि इसकी चिन्ता नहीं, उसकी व्यवस्था मैं कर लूंगा, आप साहित्यिक और सांस्कृतिक सामग्रियों को सम्हालिए। इसके बाद १९४६ में देहरादून में सोशलिस्ट पार्टी का कैम्प हुआ। उस अवसर पर आचार्यजी की आज्ञा से डा. भूपेद्रनाथ दत्त को लेकर में देहरादून सोशलिस्ट कैम्प में गया। एक महीना उस कैम्प में रहा। कैम्प से चलते समय डॉ. दत्त ने कहा—"देखो, सोशलिस्ट पार्टी से तो तुम्हारी ज्यादा दिनों तक पटेगी नहीं, हां, आचार्य-नरेन्द्रदेव के रहते तुम्हारा अकल्याण न होगा।"

आचार्य नरेन्द्रदेवजी का जन्म ३१ अक्टूबर सन् १८८९ को सीतापुर (उ. प्र.) में हुआ। उनके पिता श्री बलदेव प्रसादजी फैजाबाद में वकालत करते थे, वकालत चल निकलने पर वह सपरिवार वहीं रहने लगे। नरेन्द्रदेवजी तीन भाई थे, जिनमें सब से

१९५०

छोटे प्रसिद्ध डाक्टर थे, जिनकी मृत्यु हो चुकी है। इनके बड़े भाई फैजाबाद के नामी वकीलों में हैं। नरेन्द्रदेवजी की कॉलेज की शिक्षा बनारस में हुई है। क्वीन्स कॉलेज से उन्होंने संस्कृत लेकर एम्. ए. किया है। नार्मन ब्राउन से उन्होंने इतिहास-दर्शन की शिक्षा ली है। इनके पीता की इच्छा इनको आई. सी. एस्. बनाने की और इनकी इच्छा ऐतिहासिक अन्वेषक होने की थी। पर घटनाक्रम कुछ ऐसा हुआ कि दो में से एक भी इच्छा पूरी न हो सकी। पिता की इच्छा इस लिये पूरी न हो सकी कि इनकी माता ने विदेश जाने का विरोध किया और नरेन्द्रदेव की इच्छा इसी लिये पुरी न हो सकी कि उन्होंने देश-सेवा का व्रत ले लिया। बनारस में पढ़ते समय ही इनका सम्बन्ध सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी स्व. शचीन्द्रनाथ सन्याल से हुआ। इस परिस्थिति ने इनको सशस्त्र क्रान्ति की प्रेरणा दी। पर शचीन दादा ने ही इनको सम्हालकर रखा; सिर्फ क्रान्तिकारी साहित्य के मँगाने और संरक्षण का भार इन पर था, और ये विदशों से क्रान्तिकारी साहित्य मंगाते थे। इस तरह प्रारंभ में ही इन पर सिद्धान्त-निष्ठ क्रान्तिकारी का संस्कार पड़ा। और आज भी प्राचीन क्रान्तिकारी साहित्य उनके पास जितना है, शायद ही उतना उत्तर प्रदेश के किसी भी राजनीतिज्ञ के पास हो। अरविन्द घोष के "वन्देमातरम्" की पुरानी फाईलें आज भी उनके संग्रहालय में सुरक्षित हैं। और क्रान्तिकारी साहित्य के संरक्षण की उनकी प्रवृत्ति आज भी ज्यों की त्यों है। इसी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति ने प्रकट रूपसे उनको तिलक का समर्थक बना दिया। और जब वह वकील पिता की प्रेरणा से वकालत पढ़ने के लिए इलाहाबाद गये, तब वे प्रकट रूपसे तिलक की राजनीति के समर्थक थे। किन्तु फिर भी उनका क्रान्तिकारी रंग-ढंग जारी था। और अपनी विचक्षण सावधानी के कारण ही वह मैनपुरी षडयन्त्र केस में फँसने से बच सके। पर प्रारम्भ से ही वे क्रान्तिकारियों के डकैती के कार्यक्रम के विरोधी थे। उनका मत था कि यदि डकैती करनी पड़े, तो सरकारी खजाना लूटना चाहिये। इस तरह प्रारम्भ से ही उनकी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति में जनवाद का पुट था, जिसका उत्तरोत्तर विकास ही हुआ।

फैजाबाद में वकालत करते समय भी आचार्यजी की प्रधान प्रवृत्ति राजनीति थी। १९०७ सें उनके अन्दर जिस राजनीति का बीज पड़ा था, उसने १९१६ में पौंधे का रूप ले लिया। उन दिनों यू. पी. में होमरूल आन्दोलन चल रहा था। आचार्यजी ने फैजाबाद में होमरूल लीग की स्थापना की थी। होमरूल आन्दोलन के सिलसिले में ही आचार्यजी का सम्बन्ध पं. जवाहरलाल नेहरू से हुआ। और पं. नेहरू ने ही काशी-विद्यापीठ की स्थापना के समय उनको विद्यापीठ मे खींचा। काशी-विद्यापीठ का भारतीय राजनीति में महत्व पूर्ण स्थान है और उसके निर्माण में आचार्यजी का प्रमुख हाथ है। महात्मा गांधीजी विद्यापीठ को 'नरेन्द्रदेव का विद्यापीठ' कहते थे। यहीं उन्होंने बौद्ध धर्म का, खास कर बौद्ध दर्शन का गंभीर अध्ययन भी किया। विद्यापीठ से आचार्यजी ने एक से एक बढ़कर स्नातक पैदा किये—जो अपने समय में ज्ञान और कर्मनिष्ठा दोनों के समन्वित रूप

थे। आज अनेक स्थानों पर आचार्यजी के विद्यार्थी राजनीति का संचालन कर रहे हैं। विद्यापीठ में अध्यापन-कार्य करते समय भी आचार्यजी का क्रान्तिकारियों से संम्पर्क बना रहा। इसी सम्पर्क के कारण डॉ. भगवानदास जी के संकोच के बावजूद भी उन्होंने प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सेठ दामोदर स्वरूप को विद्यापीठ में अध्यापक के रूप में नियुक्त किया। कहा जाता है पश्चिमी यू. पी. के क्रान्तिकारियों के सब से बड़े हिमायती स्व. गणेशशंकर विद्यार्थी थे, और पूर्वी यू. पी. में आचार्य नरेन्द्रदेवजी। १९३० और ३२ के जेल जीवन में आचार्यजी ने मार्क्स का गंभीर अध्ययन किया। और जेल से छूटने के बाद प्रेमचन्दजी के "जागरण" द्वारा उन्होंने मार्क्स के दर्शन पर अपने विचारों को प्रचारित करना शुरू किया। उन्हीं दिनों कुछ लोगोंने कांग्रेस-सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना का स्वप्न देखा। श्री जयप्रकाशजी ने पं. जवाहरलालजी से कहा कि वह इस पार्टी की सदारद करें। पर पं. नेहरू ने आचार्य नरेन्द्रदेव को इस पार्टी के सभापति के लिए कहा। और १९३४ में आचार्य नरेन्द्रदेवजी के सभापतित्व में पटने में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुई। तब से लेकर अब तक आचार्यजी बराबर सोशलिस्टों का नेतृत्व कर रहे हैं।

आचार्य नरेन्द्रदेवजी सम्पन्न कुल में और रईसी ढंग से पले हैं। अवध की संस्कृत रुचि का उनके व्यवहार पर गहरा असर है। पर अवध के रईसों की विलासिता उनमें नहीं है। नरेन्द्रदेव की संस्कारिता में कहीं भी प्रसाधन नहीं है। ऐसा लगता है कि उनका मन सामन्ती संस्कारिता, बौद्ध वैराग्य और मार्क्स के समाज-दर्शन से बना है। वह सामन्तों की तरह अपने निकट-सम्पर्कियों का संरक्षण करते हैं, हर हालत में अपने ऊपर संयम रखते हैं और मार्क्सीय दृष्टि से तथ्यों का विश्लेषण करते हैं। जिस तरह फूल देवता के मस्तक पर और मृतक के शव पर समान रूपसे सुगन्धि बिखेरता है, उसी तरह नरेन्द्रदेव जहाँ भी रहते हैं, वहीं उनकी संस्कारिता औरों के मन को पवित्र करती है। उन जैसे स्वाभिमानी बिरले ही होंगे, पर कभी भूल कर भी उनका अहं नहीं झाँकता। मैं चार साल तक सोशलिस्टों के साथ रहा हूँ। छोटे बड़े सभी के सम्पर्क में आने का मौका मुझे मिला है। अन्यों की अपेक्षा आचार्यजी के साथ ज्यादा रहने का अवसर मुझे मिला। एक बार तो लगातार बीस दिनों तक बम्बई में उनके साथ रहने का मौका मिला है। पर अहं की तो बात अलग, कभी भी उनके आचरण में गुरुता का आभास नहीं मिला। क्रान्तिकारियों का बन्धुत्व (कामरेडशिप) यदि किसी सोशलिस्ट में मुझे मिला, तो वह नरेन्द्रदेव में। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि नरेन्द्रदेवजी देवता हैं। राजनीति में रहकर कोई देवता हो भी नहीं सकता। पर फिर भी गन्दगी में वह नहीं उतरते। शारीरिक कमज़ोरी के कारण वह राजनीति की दौड़-धूप भी नहीं कर सकते। इस कारण उनको बहुत कुछ अपने साथियों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसी लिए कभी-कभी उनके व्यवहार में एकांगीयता आ जाती है। किन्तु उसका भी मार्जन करने की कोशिश वह करते रहते हैं। चरित्र की इसी विशेषता के कारण विरोधी मत के लोगों का भी उन

पर विश्वास रहा है। जब तक सोशलिस्ट पार्टी कांग्रेस में थी, तब तक कहा जाता रहा है कि सोशलिस्ट उत्तर प्रदेश की काँग्रेस पर अधिकार रखते हैं। पर वस्तुतः बात यह थी कि श्री मुजफ्फर हसन और लालबहादुर शास्त्री आदि का गांधी-वादी दल आचार्यजी के चरित्र के कारण उनको अपना नेता मानता था और इसी लिए सोशलिस्ट पार्टी का बहुमत दिखाई पड़ता था।

आचार्य नरेन्द्रदेवजी के पास जैसा संस्कृत मन है, जैसी सूक्ष्म और तीव्र उनकी प्रतिभा है, उसी के अनुसार उनका शरीर नहीं है। यदि ऐसा होता तो शायद देश की राजनीति आज दूसरे किस्म की होती। आचार्यजी के पास बैठिये, मन प्रसन्न होगा, थोड़ी ही देर में आपके मन की बातें जानकर आपसे ज्यादा स्पष्टता के साथ वह बता देंगे और पलक मारते ही सिद्धान्त की तह तक पहुँच जावेंगे। उसी समय आप उनकी आंखों की ओर देखें तो ऐसा मालूम होगा कि कोई दूर की वस्तु वह देख रहे हैं। और फिर ज़रा देर में ही वह मूछों में मुस्करा देंगे। यह मुस्कराना कुछ उस ढंग का है कि यह सब ठीक तो है, पर यह सब इस शरीर से होगा कैसे! वस्तुतः दमाने उनका दम तोड़ दिया है। आज सोशलिस्ट राजनीति में जो कुछ हो रहा है, उसको ठीक उसी रूपमें उनका ज्ञान स्वीकार करता है, ऐसा मानना उनके साथ अन्याय करना होगा। बहुत कुछ को तो उन्हें विवशभाव से मानना पड़ता है। क्योंकि अपनी बात मनवाने के लिये जिस शक्ति की ज़रूरत होती है, वह उनके रोगी शरीर में नहीं है। राजनीति में अपनी बात मनवाने के लिए जिस दौड़-धूप की ज़रूरत होती है, उसे उनका शरीर नहीं सह सकता। इसी लिए बहुत कुछ उन्हें चुपचाप स्वीकार करना पड़ता है। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस से सोशलिस्टों के अलग होने के वे विरोधी थे, इसे वे मजदूरों के हितों के विरुद्ध मानते थे। पर लोगों को अपने मत का करने के लिए जिस दौड़—धूप की ज़रूरत थी, वह उनमें नहीं थी। इसलिए चुप लगा गए। इसी तरह की और भी अनेक घटनाएँ हैं।

आचार्य नरेन्द्रदेवजी के बुलाने पर मई १९४६ में 'जनवाणी' निकालने के लिए मैं उनके निकट-सम्पर्क में गया। और चार साल तक आचार्यजी के सम्पर्क में रहकर, मई १९५० में मुझे उनसे विदा लेनी पड़ी। जब तक मैं 'जनवाणी' के कार्य में था, सदैव उनका स्नेह मुझे मिला। कुछ दिनों तक तो उन्हीं के प्रभाव के द्वारा मैं 'जनवाणी' की आर्थिक समस्याओं को भी हल कर लेता था। इसे देख उन्होंने मुक्त कण्ठ से मेरी प्रशंसा करनी शुरू कर दी। आचार्यजी की कृपा से ही जयप्रकाश जी के भी निकट-सम्पर्क में मैं आ गया। आचार्यजी की यह कृपा जहाँ मेरे लिए वरदान थी, वहाँ इसी कृपा के कारण कुछ लोग मुझ से जलने भी लगे। मुझे आचार्य जी की नज़रों में गिराने की हीन कोशिशें भी की गईं। पर आचार्यजी ने मेरे विरुद्ध लगाए गए अपवादों को बहुत हल्के लिया, और प्रायः उनका खण्डन भी कर दिया। सोशलिस्ट पार्टी जैसी संस्था में चलने वाली इन हीन प्रवृत्तियों के कारण मेरा मन 'जन-

वाणी' से उचट गया। यहीं मुझे यह भी अनुभव हुआ कि साहित्यिक के लिए किसी राजनीतिक दल का सदस्य होना ठीक नहीं है। इसी बीच मुझे न्यूराईटिस और पलेगारा नामक (नर्व्स का) रोग हो गया। इस बीमारी में जब कि किसी भी अन्य सोशलिस्ट से मुझे बन्धुत्व नहीं मिला, आचार्यजी ने मुझे अपने यहाँ बुलाकर मेरा इलाज करवाया। और जब मैंने भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी से अपने काम की बातें निश्चित करके 'जन-वाणी' से मुक्ति चाही, तो उन्होंने मेरी मंगल कामना की। इस तरह मैंने सोशलिस्टों के अन्दर आचार्य नरेन्द्रदेवजी को सर्व श्रेष्ठ मनुष्य पाया।

* * *

संध्या रानी

[रामेश्वर दयाल दुबे]

जा चुकी दिन की प्रखरता,
आ रही सन्ध्या सुनहरी।
छू रहा दिन रात को है
रात दिन को छू रही है।
अंधकार-प्रकाश की
यह सन्धि मीठी हो रही है॥
दूर नभ के मेघ दल पर,
स्नेह की प्रिय छाप गहरी।
जा चुकी दिन की............... ॥
कोटरों की याद आई,
चीर कर नभ आ रहे हैं।
पंक्ति बंधन में बंधे खग
मुक्त नभ में भा रहे हैं॥
शांत सागर में उठाते,
जा रहे ये लोल लहरी।
जा चुकी दिन की............... ॥
वर्ण क्षण-क्षण में बदलते
सान्ध्य घन कितने रंगीले।
जो अभी थे रक्त वर्णी
बन रहे हैं पांडु-नीले॥
हो रही धूमिल दिशा,
नभ-नीलिमा भी सघन गहरी।
जा चुकी दिन की............... ॥
उठ रही गोरज, कृषक का
आ रहा घन है विपिन से!
दौड़ती गायें, छलकता
स्नेह मन से, दूध थन से।
ग्वाल कर में नाचती हैं,
बांसुरी पर गीत लहरी।
जा चुकी दिन की............... ॥
तम घिरा, घर-घर सुनहले
स्नेह पूरित दीप जागे।
अनुकरण में नील नभ ने
तारकों के दीप टांगे।
तम भरी इस यामिनी में,
ये बनेंगे मीत-प्रहरी।
जा चुकी दिन की............... ॥
स्वेद-श्रम का दिवस बीता,
आ रही विश्राम बेला।
जुड रहा प्रतिगेह में है
परिजनों का मधुर मेला।
वायु में कम्पन रही भर,
यह मधुर संगीत लहरी।
जा चुकी दिन की............... ॥

* * *

सिंध का लोकगीत

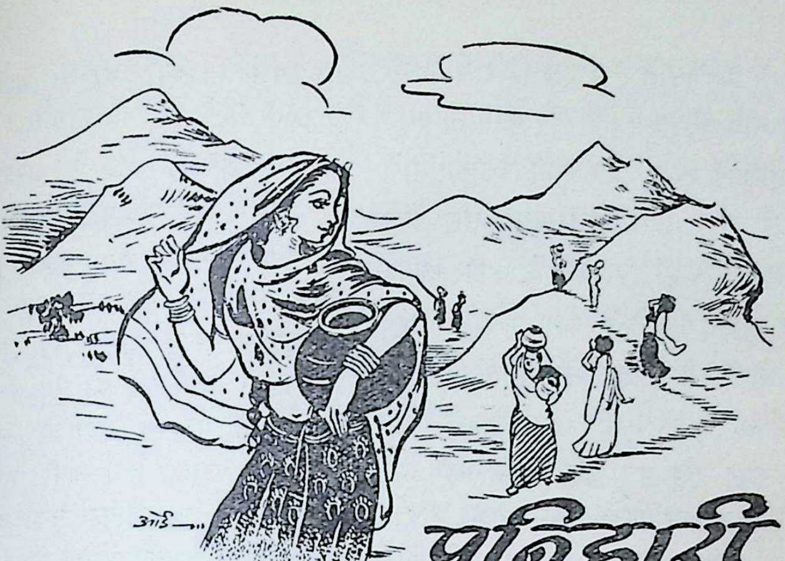

पनिहारी

[श्री दौलतराम शर्मा]

हर प्रान्त के अपने लोकगीत होते हैं। सिन्ध के भी अपने लोकगीत हैं। ऐसे लोकगीत जिनको सुनकर श्रोता की तबियत फड़क उठती है और मन आनन्द-विभोर हो जाता है। 'पणिहारी' गीत भी एक ऐसा ही गीत है जिसमें बड़ा ही आकर्षण है और जो हृदय में सुन्दर भावों का संचार करता है। उक्त गीत सारे सिन्ध में न गाया जा कर 'थर पार कर' नामक जिले में गाया जाता है जहाँ सिन्ध, राजस्थान और कच्छ की सीमाएं आ कर मिलती हैं और त्रिभुज बनाती हैं। हो सकता है कि यह गीत राजस्थान से 'थर' को मिला हो।

वर्षा ऋतु हो, वादलों की घटायें उमड़ घुमड़ रही हों। घन घमंड़ के साथ बरसते हों। जब मलार स्वर में यह 'पणिहारी' गीत गाया जाता है। तब कितना आनन्द होता है, यह अनुभव की ही सामग्री है। यहाँ इतना जान लेना आवश्यक है कि थर का सारा जीवन वर्षा पर ही निर्भर है। अगर वर्षा न हो, तो जीवन ही सूख कर मरूभूमि में बदल जाय; और अगर मेघ महाराज कृपा कर बरस जायें तो फिर उस आनन्द का क्या पूछना है। काश्मीर और केरल भी थर की शोभा देखकर लज्जा के मारे अपनी नज़र नीची कर लें। चारों तरफ हरियाली छा जाती है। पशु पक्षी नर नारी और कुदरत, सब सुध बुध भूल जाते हैं। तालाब पानी से भर जाते हैं। लोग कुँओं का पानी पीना छोड़ देते हैं। औरतें सोलह शृंगार किये पानी भरने जाती हैं। जिस तरह अन्य प्रान्तों में स्त्रियाँ विवाह आदि त्योहारों पर अपने आप को वस्त्राभूषणों से सजाती हैं, सिंगारती हैं उसी तरह थर की नारियाँ भी गगरी ले कर जल भरने जाते समय वर्षा के मौसम में अपने को सजाती—सिंगारती हैं। इस सिंगार में फर्क सिर्फ इतना ही है कि शहरों की नारियों की सुन्दरता ज्यादातर बनावटी, ऊपरी तड़क भड़कदार होती है और इन थरवासिनी नारियों की सहज स्वाभाविक।

चूंकि थर में रेत के बड़े बड़े ऊंचे ऊंचे

पर्वतकाय टीले होते हैं। इस लिये ये पनिहारिनें माथे पर गगरी लिए हुए कभी तो एकदम पहाड़ के ऊपर, और कभी बिल्कुल नीचे (कई सौ फुट) माथरी में। माथरी उस जगह को कहते हैं जहाँ दो पर्वतों के क़गार आकर आमने सामने मिलते हैं और मध्य में बहुत नीचे थोड़ी सी समतल भूमि होती है।

सोलह शृंगार। माथे पर चमकते और तले ऊपर रखे हुए जल-कलश, गहरे लाल कपड़े जिन पर गोटा और सलमा सितारे का काम हुआ होता है। बड़ी बड़ी आँखों में काजल, सुडौल शरीर, घुटनों तक लम्बी काली नागिन सी लटकती चोटी जो झूमती है, और उसके साथ पायल की आवाज़ छनक-छनक ऐसी सुखद लगती है कि मानों अप्सराएँ रास्ता भूलकर स्वर्गलोक से धरती पर आ गयी हों।

थर में यह आम कहावत है कि अगर इन दिनों में अर्थात् पावस ऋतु में कोई थरी (थरका निवासी) अपने घर न लौट आये तो उसकी छाती फट जाये।

इतिहास-प्रसिद्ध मारवी भी इसी थर की थी जो सुल्तान उमर के लाख समझाने पर भी राजरानी बनने से थर की फकीरानी बने रहना अपने लिए महान् आत्म-सम्मान और आत्म-गौरव समझती थी। थर में वर्षा का आगमन होते देख वह पागल हो उठती है। उसे पणिहारी गीत याद आता है। नन्हे नन्हे बकरियों के बच्चे, घंटियाँ बजाती हुई गायें, और बाँसरी बजाते हुए छैल तरुण किसान उसे रुला देते हैं। तब वह उमर से कहती है, हे उमर! तुम मुझे क्यों सताते हो!

हियों मुंझो हुत वसे,
हित मढ़ह अई माह।

मेरा हृदय तो वहाँ थर में बसता है यहाँ तो सिर्फ़ मिट्टी हैं।

* * *

लीजिए अब गीत सुनिए——

मुगल सल्तनत का ज़माना। सारा देश उनके अधीन होता जा रहा है। मगर उदयपुर के राणा अभी तक लोहा ले रहे हैं। उन्हीं दिनों थर का एक वीर नौजवान विवाह के पश्चात् राणाजी की सेना में भरती हो जाता है। वर्षों तक वह घर नहीं लौटा। तब उसका बूढ़ा बाप उसकी पत्नी को (अपनी पतोहू को) अपने घर ले आता है। एक रोज़ का वाक़या। लगातार कई दिनों की वर्षा की झड़ी के बाद आकाश साफ़ हुआ है। सभी तालाब पोखर पानी से लबालब भर गये हैं। तब पनिहारियाँ सोलह सिंगार किये जल भरने निकलीं। उनमें सात सहेलियाँ भी हैं। इन सात में से छः तो नख-सिख तक खूब हार-सिंगार किये हुए हैं। परन्तु सातवीं बहुत मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए है। यद्यपि वह उन सब में ज्यादा सुन्दरी है।

सभी सहेलियाँ हँसतीं, बतियातीं, उल्लास भरीं, तालाव पर पहुँच कर पानी भरती हैं। तालाब क्या है मानों प्रकृति के सौन्दर्य को निरखने का आइना है। उन सहेलियों में से छः पानी भर कर चली जाती हैं। पर वह मलिनवसना अनिन्द्य सुन्दरी विचारमग्न वहीं ठहर जाती है। तालाब पर सुनसान है। वह अकेली है। घड़े में पानी भरती है। मगर उसको हाथ का सहारा देकर उठाने वाला वहाँ कौन है? इसी सोच में कुछ देर के लिए वह खड़ी रहती है। इतने में कहीं से एक खूबसूरत नौजवान सैनिक ऊँट पर सवार वहाँ आ पहुँचता है। सुन्दरी

१९५०

उससे कहती है, अरे ओढ़ी !(सिन्धी भाषा में ऊँटसवार (उष्ट्र-आरोही) को 'ओठी' कहते हैं —सं. भा.) ज़रा तुम हाथ का सहारा दे कर मेरा घड़ा तो उठवा दो।

ज्योंही ओठी एक नज़र घुमा कर उस मलिनवसना सुन्दरी को देखता है अवाक् रह जाता है। ये हिरणी की आँखें, ये कोमल पतली उँगलियाँ। नाजुक बदन ! क्या जल भरने के लिए हैं ?

तब ओठी बोला—सुन्दरी ! घड़ा तो मैं बाद को उठवाऊँगा। पहले तुम यह तो कहो कि आज जब सभी स्त्रियों ने साजशृंगार कर रखा है तब तुमने यह कैसा वेश बना रक्खा है ?

'क्या करोगे पूछ कर ओठी !' सुन्दरी ने कहा—'मैं बहुत छोटी थी जब मेरा विवाह हो गया'।

'तब ?' ओठी बोला।

'तब क्या बताऊँ ? जब मैं कली से खिलकर फूल बनी, तब से मेरा भँवरा युद्ध में राणाजी के साथ चला गया। अब तुम्हीं बताओ ओठी, मैं किस के लिए अपना साजसिंगार करूँ ?

ओठी बोला–तो चलो मेरे घर, छोड़ दो उस परदसी की आस। मैं तुम्हें हर प्रकार से सुखी रक्खूंगा और 'नौलाख हार' पहनाऊँगा।

"तेरे मुँह को आग लगे ओठी, जिस मुँह से तूने यह कड़वी बात निकाली है। जिस नौलाख हार की तू बात करता है, वैसे तो मेरे घर में खूंटियों पर टँगे हैं। मेरा हार भी मैंने उतार कर रख दिया है।" उस सुन्दरी ने कहा, और घड़ा उठाकर घर चल दी।

सास ने बहू के सिर से घड़ा उतारा। अरे यह क्या, सुन्दरी काँप रही है। सास ने पूछा—क्या बात है बेटी– तुम को कभी गुस्से में नहीं देखा। क्या किसी ने कुछ बुरा भला कहा है' ?

'हाँ कहा है। एक दुष्ट ओठी उधर आया था कुछ बक गया बे-अदब कहीं का।' सुन्दरी ने सारा क़िस्सा सुनाया।

—'बेटी' उस ओठी का रंग रूप तो कहो, कैसा था वह ? तो उसे पकड़ा जाये।—सासने कहा !

'माँ, कुछ मत पूछो। सुन्दरता में ननँद जैसा और डील डौल में देवर जैसा,—बहू बोली।

सास बहू में यह बात हो ही रही थी कि वर्षों परदेश गया हुआ बटोही सैनिक ऊँट पर से उतरता है। तब बहू कहती है–देख, देख माँ ! यह वही ओढ़ी है। इतने में ओढ़ी अपनी माँ के चरन छूता है, और सास कहती है–दुत पगली यह तो तेरा बतार (भर्ता) है।

यह है वह "पनिहारी" का सरस सुन्दर का गीत:—

पणिहारी

(तर्ज:मल्हार : भाषा:सिन्धी)

काली रे कालण उपड़ी रे पणिहारी रे लो।
झिर मिर बरसे मेह, बालाजी ए लो ॥
भरिया रे नाड़ा, नाडिया ए, पणिहारी रे लो।
भरियो रे मारे डाडाणें री देश बालाजी ए लो ॥

किण रे खोदा था नाडा, नाडिया ए पणिहारी रे लो।
    किण रे खोदायो भीम तलाव बालाजी ए लो।
वीरे तो खोदाया नाडा, नाडिया ए पणिहारी रे लो।
    मारे दादरे खोदायो भीम तलाव बालाजी ए लो॥
किण थुँ ए बधावुँ नाडा, नाडिया ए पणिहारी रे लो।
    किण थुँ ए बधावुँ भीम तलाव बालाजी ए लो॥
मोहिए वंधावुँ नाडा, नाडिया ए पणिहारी रे लो।
    नारेले बधावुं भीम तलाव बालाजी ए लो॥
सात रे साहिलडी रो झूमरे पणिहारी रे लो।
    पाणि ड़ेने गई रे तालाव बालाजी ए लो॥
छहों तो पाणी भरे पाछी चाली पणिहारी रे लो।
    पणिहारी रे गई तालाव बालाजी ए लो॥
ऊंची चढ़ूँ ने नीची ऊतरूँ ए पणिहारी रे लो।
    मोटा डी छाँटाँ रो बरसे मेह बालाजी ए लो॥
घडो न ऊठे मारी ईढोंणीं तिर तिर जाये पणिहारी रे लो।
    वेता ओठी मने घडो उखणा ए बालाजी ए लो॥
छहों रे·तो काज़ल टीवकी ए पणिहारी रे लो।
    पणिहारी रा सूका नैण बालाजी ए लो॥
छहोंरा तो साहेबा घरे वसे ए पणिहारी रे लो।
    मारो तो वसे रे परदेश रंजा ओठी ए लो॥
चाले वी मारे लार घडाए दूँ बाडलो ए पणिहारी रे लो।
    हिवडे तो पहरावुँ नवलख हार बालाजी ए लो॥
एवा तो बाडला मारे घरे घणा ए रंजा ओठी ए लो।
    खूँटिये टँगियाडों नवलख हार बालाजी ए लो॥
बालूँ रे ज़ालू बारी जाभड़ी ए रंजा ओठी रे लो।
    खाल खींचावुं भरूँ भूस बालाजी ए लो॥
घडो तो पटकुं उभी चौक में मारा सासूजी ए लो।
    वेगोडो घडो उतराव बालाजी ए लो॥
क्यों रे बडवर उमण दुमणी ए मारी बडवर रे लो।
    किण रे दीनी गाळ बालाजी ए लो॥
एक रे ओठी माने मलियो ए मारा सासूजी ए लो।
    पूछे रे मनडेरी बात बालाजी ए लो॥
किण रे सरिखो ओठी फुटरो ए पणिहारी रे लो।
    किण री रे जाए उणिहार बालाजी ए लो॥
नणदल सरिखो ओठी फुटरो रे मारा सासूजी ए लो।
    देवर री रे जाए उणिहार बालाजी ए लो॥
ओई है रे बारे घर रो सिंगार मारा वस्वर रे लो।
    ओई है थारो,भरथार बालाजी ए लो॥

गुजराती कहानी :

आवारा

[श्री. गुलाबदास ब्रोकर]

तेजमयी पर कुटिलताभरी आँखें और हँसमुख पर लफंगे-जैसा चेहरा लिए वह मेरे पास बैठते बैठते बोला—'मनहरभाई, पहचानते हैं मुझे ?'

मैं उसकी हँसती आँखों और हँसते होठों को ताकता रह गया । एक छोटा-सा दस-ग्यारह वर्ष का लड़का—दुबली पतली देह और मस्त-तरंगी स्वभाव, वैसी ही आँखें, वही हास्य—मेरी नज़रों के सामने तैरने लगा । मैंने बारीकी से उसकी तरफ देखा-पर यह बीसेक वर्ष का भरे शरीर का गठीला आदमी और वह लड़का मिलते जुलते होते भी समान आकृतिवाले न लगे । मैंने शिष्टता के लिए कहा—'पहचानता तो हूँ पर पूरा ख्याल नहीं आ रहा है ।'

'कहाँ से आए? 'वह हँसा' मैं जो इतना बदल गया हूँ । मैं सरफरोस ।'

'ओ.. हो ।'.....मैंने आश्चर्य भरे आनंद से उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया—तू इतना बड़ा हो गया है रे ! मैंने तो तुझे पहचाना ही नहीं ।'

'बड़ा तो हो ही गया हूँ । बीसका हूँ'—उसने कहा । फिर बोला—'बड़े तो मनहरभाई, आप भी हो गए हो । काफ़ी बदल गए हो । पर मैंने किस तरह पहचान लिया ?'

'तू न पहचाने, तो सरफरोस ? तू तो बड़ा होशियार है ।-'मैंने कहा और वह खिलखिलाकर हँस दिया ।

'आप भी मस्करी करते हैं' उसने कहा ।

'नहीं सच कह रहा हूँ—'मैंने उसकी पीठ थपथपाई । मैं वास्तव में सच ही कह रहा था । नन्हे-से दुबले पतले, मनमौजी, कुटिलताभरी आँखोंवाले सरफरोस को हमारा सारा शहर जानता था । उसे होशियार मानता था । और यह 'सरफरोस' नाम भी कितना विचित्र था ? मेरे और उसके बचपन से सम्बन्धित कई विचार मेरे मन में उठने लगे । किन्तु इन विचारों के बजाय उससे बात करना ही मुझे अधिक उचित लगा । मैंने आश्चर्य से पूछा—

'लेकिन, सरफरोस ? तू यहाँ कहाँ से आया ? इन सत्याग्रही कैदियों में ?'

'क्यों ? हमें क्या अपना देश प्यारा नहीं ? उसने मेरी ओर आँख मींच मधुर स्मित-सहित कहा—'अभी ही एक दल आया है उसी के साथ मुझे भी यहाँ लाये हैं । बैरक में आते ही आपको देख कर पहचान लिया ।'

'पर तू तो माटुंगा रहता था न ?'—मैंने कुतूहल-पूर्वक पूछा । मुझे मालूम था कि उसे अमुक अपराध के कारण दो तीन वर्ष के लिए बाल-बंदी-गृह में रखा गया था ।

'हाँ, था न । लेकिन वहाँ से तो दो तीन वर्ष पहले छूट गया था—' उसने कहा ।

'फिर भी तू यहाँ कहाँ से ? सचमुच तुझे इन सत्याग्रहियों में देखकर मुझे विस्मय हो रहा है ।'

हम दोनों में चलती इन बातों को हमारे अन्य साथी भी तनिक आश्चर्य और उत्सुकता से सुन रहे थे । मैंने उसकी ओर फिरकर कहा—

'हमारा ये सरफरोस जानने जैसा व्यक्ति है । सच !'—फिर सरफरोस से बोला—'

'सरफरोस, ये सब मेरे ख़ास दोस्त हैं । इन्हें हमें वह गीत सुनाना है, अच्छा '.

वह बिना कुछ कहे सबकी ओर एकटक देखता रहा । मैंने फिर कहा—'लेकिन तू यहाँ, इन सत्याग्रहियों में कहाँ से आगया, इस बात को तो उड़ाए ही जा रहा है ?'

सच बताऊँ, मनहरभाई !'—वह मन ही मन जैसे मुरझाता हो इस प्रकार बोला । फिर कुछ कुछ निर्णय

करती दृष्टि से मेरे पास बैठे साथियोंपर उसने एक नज़र डाली और अन्त में स्थिर वाणी में बोला—

'मेरी तो ज़िन्दगी ही जेल में बीती। अब जवानी आई तो इसका अनुभव भी ले लेना चाहिए? अब मैं कोई बच्चा तो नहीं रहा कि बालबंदीगृह में डाल दें। पहले अनुभव में सत्याग्रहियों का साथ ठीक रहता है—' कह कर वह हँसा।

अपनी हँसी से उसने यह बताने का यत्न किया मानों उसकी बात बिलकुल साधारण-सी है, किंतु इसके पीछे स्थित थोड़ा रूखापन और विषाद मेरी नज़र में भी आ गये।

वह कुछ देर चुप बैठा रहा। मुझे भी कुछ कहने को नहीं सूझी। कितना होशियार गिना जाता था वह! कुछ लोग तो यह भी कहते थे कि अभी यह चाहे जैसा हो पर भविष्य में नाम कमाएगा। तब इसका स्वर कितना मीठा था। इसी स्वर ने तो आज का यह नाम दिया है।

मेरे मित्र हमारी ओर देख रहे थे। सरफरोस की नज़र ज़मीन पर थी। उस समय हम सब जो काम कर रहे थे वह ज्यों का त्यों पड़ा रहा। मैं यह सब देख रहा था, पर पल भर में ही मेरा मन दूसरा दृश्य देखने लगा और उसी में तल्लीन हो गया।

—पूरा गाँव इस प्रकार पागल है, मानों कोई उत्सव आ गया है। सैंकड़ों स्त्री-पुरुष बड़े चौक में एकत्र हो गये हैं। पन्द्रह-पन्द्रह, सोलह-सोलह साल के हम सब किशोर भी इस प्रकार सिर उठाए चक्कर काट रहे हैं मानों हम भी इस भीड़ के महत्वपूर्ण हिस्से हों! यही भीड़ एक जुलूस के रूप में बदल जाती है। नारे उठते हैं—'महात्मा गाँधी की जय!'—'भारत माता की जय'। और भीड़ आगे बढ़ती है। सारा गाँव घूमने की उसकी इच्छा है। जय जयकार चारों ओर गरज रहा है।

चिर सुषुप्ति पर यह प्रथम जागृति का क्षण है। उत्साह कहीं भी नहीं समा पा रहा। है। कुछ देर जयकार की परम्परा चलती है। फिर इसके शान्त होने पर बड़ी आयु का एक व्यक्ति अपनी गंभीर-बुलन्द आवाज़ में गाता है—

'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में हैं'—

उसकी बेसुरी और गिरी हुई आवाज़ पर ध्यान न दे लोग उत्साह से गा रहे हैं। गाना आगे बढ़ता है।

सहसा, एक लड़का भीड़ चीरता आगे बढ़ जाता है। पलभर के लिए वह मोटे गलेवाले आदमी से बात करता नज़र आता है। और दूसरे ही क्षण उस अनमेल कोलाहल में मानों संगीत की सहस्र-धाराएँ फूट निकली हों, ऐसा कंठ भीड़ के कानों में गूंज उठता है—'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।'

सभी इस गवाने वाले की ओर देखते रह जाते हैं, सुनते रह जाते हैं और उसका कंठ स्वर झेलते रहते हैं। जुलूस आगे बढ़ता है। गीत गाया जा रहा है। जुलूस अपने नियत स्थान पर पहुंचता है और फिर से वह ११-१२ वर्ष का लड़का भीड़ का एक अंश बन जाता है।

लोगों में कानाफूसी चलती है—'ये ग़वाने वाला कौन था? उस जसोदा का कन्हैया तो नहीं है? कौन-सी जसोदा? ये आवारा भला गाना कब से सीख गया? पर स्वर बड़ा मधुर है, हाँ!' इसी तरह बहुत कुछ कहा जाता है। सब अपने अपने घर चले जाते हैं।

फिर से इसी प्रकार का वातावरण शहर में छा जाता है। फिर से पुरुषों और स्त्रियों के झुंड जमते हैं। प्रभातफेरी में जाना जीवन-लाभ माना जाता है। भोर के उजाले में शहर की गलियाँ सजीव हो उठती हैं और लोग जुलूस के आकार में संगठित हो जाते हैं। वही लड़का सहज ही जुलूस के आगे आ जाता है और ललकारता है—'सरफरोशी...की...तमन्ना...!'

उसे कौन रोके? अनुशासन में आबद्ध समुदाय लड़के के स्वर पर, स्वर देता, उसके सुर पर मुग्ध होता चला जा रहा है!

फिर तो यह एक अनिवार्य क्रम बन जाता है। जब कभी प्रभातफेरियाँ होती या जुलूस निकलते तभी गाँव में 'सरफरोशी' गाया जाता और उसे गवाने का काम कन्हैया का! कन्हैया को अपनी सेवा का पारितोषिक प्राप्त होता है। ऐसे ही किसी पारितोषिक के बल वल्लभभाई—सरदार बने। राजगोपालाचार्य — राजाजी बने। कालेलकर—काका बने और कन्हैया—'सरफरोस' बन गया!

कुछ ही समय में सारा शहर कन्हैया को 'कन्हैया' के रूप में पहचानना भूल, 'सरफरोस'—के नाम से पहचानने लगता है। उसके साहस और पराक्रम की चर्चा, उसकी जीवन-मृत्यु के प्रति बेपरवाही की बातें, घर-घर होने लगती हैं। एक उदाहरण याद आता है—

दृश्य सरफरोशी या प्रभातफेरी का नहीं। दृश्य गाँव के चरण-प्रक्षालन करती समुद्र की खाड़ी का है। १६-१६ वर्ष के हम पाँच-छः लड़के तैरना सीख रहे हैं। मुझे अच्छी तरह याद है मैं ही उस दिन सबसे पहले तैरना सीखने गया था। मेरी पीठ पर घासलेट का बंद डिब्बा बाँध मुझे पानी में जाने को कहा जाता है। मेरे साथ ही एक तैराक पानी में कूदता है और मुझे अपने साथ आने का निमन्त्रण देता हैं। किसी भी शर्त पर मेरी हिम्मत नहीं होती। लाखों विचार और सहस्रों शिक्षाओं के पश्चात् कठिनाई से किनारे से पैर उठा पानी में जाता हूँ और उसकी ओर मुड़ता हूँ। सबकी हँसी के बीच वापस किनारे पर चढ़ जाता हूँ। आधा पौन घंटा इसी प्रकार बीत जाता है।

तभी सबकी नज़र किनारे पर जाती है। दौड़ता हुआ सरफरोस हमारे पास आ चढ़ता है। कपड़े उतारता है।

'तुझे तैरना आता है, सरफरोस ?' मैं पूछता हूँ।

'नहीं, सीखना है।' कह लंगोट पहन वह नीचे उतरता है।

तैराक पानी में ही है। वह मज़ाक में आवाज़ लगाता है।—तुझे सीखना हो तो आ इधर डुबकी लगा। और कोई सोचे इसके पूर्व ही सरफरोस ने गोता लगा दिया। न डिब्बा न डोरा किसी चीज़ की वह राह नहीं देखता। तैराक उसे प्रेम से सिखाने लग जाता है। हम सब आश्चर्य से अवाक् हो उसकी हिम्मत देखते रह जाते हैं।

दृश्य बदलता है। मैं कॉलेज में पढ़ने बाहर चला जाता हूँ। वहाँ से छुट्टियाँ बिताने वापस आता हूँ। गाँव में एक ही नाम सुनाई देता है—'सरफरोस'।

'कुछ सुना या नहीं ?' चारों ओर से एक ही प्रश्न मुझे घेर लेता है—'वह सरफरोस जेल में गया है।'

'मगर, किस लिए ?'—मैं पूछता हूँ। तभी मेरे संवाददाता को कोई उत्कट आनंद प्राप्त होता है—'अरे साला, आवारा, पक्का बदमाश हो गया है वह।'

'पर उसने क्या किया ?'

उसने की तो थी 'चोरी' पर अलग-अलग मुँह से सुनी उसके विभिन्न पराक्रमों की चर्चा, मेरे मन में उस छोटी, दुर्बल देहलता और सतेज, अभिमानी आँखोंवाली मूर्ति के बजाय एक सशक्त, हठी और पाँच हाथ लम्बी डाकू की आकृति की कल्पना खड़ी कर देती है।

अनगिनती अपराधों का आरोप उस पर लगाया जाता है। वह चोरी करता और जुआ खेलता। शराब पीता और भले घर के लड़कों को बुरे रास्ते ले जाता। दादागीरी करता और चाहे जिसे परेशान करता। बाद में तो गाँव की औरतों से भी वह छेड़खानियाँ करता—ऐसी खबरें मुझे लोग सुनाते हैं तो मुझे बड़ा विस्मय होता है!

'चौदह-पन्द्रह वर्ष का लड़का ऐसे काम कर सकता है ?'—मैं पूछ ही लेता हूँ।

'अरे वह क्या करे और क्या न करे ? ज़रा-सा दिखता है पर जैसा बाहर है वैसा ही भीतर है। ये तो अच्छा हुआ उसके जेल जाने से, गाँव की एक बला टली !'

धीरे-धीरे सब उसे भूल जाते हैं। जहाँ सुरेंद्रनाथ और सुभाष बोस जैसे भुला दिए जाते हैं, वहाँ बेचारे सरफरोस की क्या गिनती ? छः वर्ष की उस लम्बी अवधि में शायद ही वह कभी याद आया हो। सरफरोस छूट गया है, यह ख़बर फैलने पर, सुना कि वह एक गाँव से दूसरे गाँव भटकता है और फिर से चोरियाँ करता है!

इस प्रकार वह किशोरावस्था के अनेक संस्मरणों में बँधा हुआ और बाद के दिनों में तो स्वयं एक संस्मरण-स्वरूप बना सरफरोस, अचानक ही मेरे सामने आकर प्रौढ़ और अनुभवी अपराधी की तरह कहता है—

'मेरी तो ज़िन्दगी ही जेल में कटी। जवानी आई तो इसका अनुभव भी लेना है।'

निराशा के ये शब्द, जगत् को मुक्ति का नया मंत्र देने की कामना से प्रेरित हो जेल में आये

मुझ जैसे व्यक्ति के हृदय में शूल की तरह चुभते हैं। ऐसी युवावस्था और अनेक प्राकृतिक शक्तियों से भरापूरा सरफरोस किसलिए इस प्रकार की अजीब अजीब बातें करता है ? इस प्रकार का जीवन विताता है ? — यदि वॉर्डर का घबराहट भरा स्वर अचानक ही कान में नहीं पड़ता तो विचारों और कल्पनाओं का अन्त न जाने कब आता ?—

'जेलर साहब आने को हैं, जल्दी काम करो, बाबा लोग, जल्दी काम करो।'

नीचे रख दिया हुआ डोरे का बंडल उतावली से उठा कर मैंने हाथ में ले लिया। मित्र भी काम में लग गये। सरफरोस के हाथ में भी हमने मूँज की कुछ रस्सी थमा दी। ये सब करने में पल दो पल चले गये। फिर भी हमारा मौन पांच सात मिनट रहा होगा। काम करते करते मैंने सरफरोस की ओर देखा—वह तो अपना काम इस तरह कर रहा था मानों सीख कर आया है। नज़र मिलने पर मैंने कहा—

'सरफरोस, किसी ने ऐसा लिखकर नहीं दे दिया कि तुझे बार बार जेल में ही आना पड़े। फिर ऐसी बातें क्यों करता है ?'

'लेकिन मुझे तो अपनी ख़बर है न, मनहर भाई ?'—उसने खिन्न वाणी में कहा—मुझसे सीधा रहा ही नहीं जाता। इस तरह चैन ही नहीं मिलता।'

'यदि तू भी हमारी तरह सीधा रहने लगे, यदि ऐसा हो जाय तो ?'—मैंने पूछा।

'यह हो ही नहीं सकता'—उसने कहा।

'और हो जाय तो ?'—मैंने कहा।

'पर मैं तो अपने को पहचानता हूँ'—उसने कहा।

'इस दुनिया में कोई किसी को नहीं पहचान सकता भाई, अपने को भी नहीं।' कहकर मैंने पूछा—'तुझे कितनी सज़ा मिली ?'

'नौ महीने की'—उसने जवाब दिया।

'ओ हो, तब क्या बड़ी बात है ?—मैंने उत्सुकतापूर्वक कहा—तब देख, सरफरोस, मेरी शर्त है तुझसे ?'

'हार जाओगे'—वह फीकी हँसी हँस कर बोला—

'ख़ैर, देखना मैं जीतता हूँ या नहीं ? लेकिन एक शर्त है। इस जेल में तू जब तक रहे मेरे साथ रहेगा। तेरा बिस्तर मेरे पास होना चाहिए, है मंजूर ?'—मैंने शर्त रखी।

'मुझे तो मंजूर ही है। मुझे क्या उज्र ? लेकिन आप हार जावेंगे।'

'अब देखना है, कौन जीतता है'—कह कर मैंने अपने मित्रों के सामने देखा। वे लोग मुझे उत्तेजना दे रहे हों इस प्रकार मेरे सामने देखते रहे।

* * * *

एक दिन अचानक ही उत्तेजित अवस्था में, सरफरोस मेरे पास अपने बिस्तर पर बैठते हुए बोला—'मनहर भाई, मैं इस शूड़े का मुँह तोड़ दूँगा!

—कहते २ उसकी मुखमुद्रा क्रोध से इस प्रकार विकृत हो गई थी मैं कि सचमुच घबरा गया।

'क्यों, क्या हुआ'—मैंने पूछा।

'आपने मुझे बाँध रखा है और मुझसे वचन लिया है कि मैं किसी से झगड़ा न करूँ और कुछ हो तो उसकी सूचना आपको दूँ।'—वह स्वर में कड़ुवाहट भरे बोला। 'इस वचन को न पालने से आपको दुख होगा। यह ख़्याल मन में न होता तो उस साले को आज ही बाहर की काम-पाली पर ख़त्म कर देता !'—वह फिरसे भभक उठा।

परंतु यह तो बता शूड़ेने क्या किया है ?'

'यह उसी बदमाश से पूछना'—कहकर वह बिस्तर पर फैल गया।

एक तरफ से दूसरी तरफ पत्थर उठाकर ले जानेवाले कैदियों के साथ शूड़े और सरफरोस दोनों जाते ! सरफरोस को उसी की उम्र का लड़का शूड़े—इस प्रकार कैसे क्रुद्ध कर देता है ?—मैं तुरन्त ही शूड़े के पास गया।

'क्यों शूड़े, सरफरोस के साथ आज तुम्हारा क्या झगड़ा हुआ ?'

अपने निर्दोष, सुंदर नयनों को मेरी ओर टिकाए वह बोला—'कुछ नहीं, क्यों ? वह तो पागल है पागल !'

'लेकिन हुआ क्या ? वह तुम पर बहुत नाराज़ है'—मैंने कहा।

'यह सरफरोस तो मूर्ख है ! मनहर भाई, मैंने उसका कुछ नहीं विगाड़ा।'

१९५०

'फिर भी ?' मैंने आग्रह किया ।

'हम सव जा रहे थे तव मैं और सरफरोस साथ थे । तभी वह अपनी वहादुरी की वड़ी डींग हांक रहा था । कहता था — 'मैं एक वार जव अपने गांव के वाज़ार में चला जा रहा था तव देखा कि एक जौहरी की दुकान पर कुछ व्यापारी वैठे हैं । दुकान के द्वार पर उनका कोट रखा था । किसी का ध्यान न पड़े इस तरह मैंने कोट उठा लिया और दूर जाकर देखा तो उसमें हजार रुपये थे । फिर पुलिस ने जाँच की, पर वंदे ने तो दूसरे ही व्यक्ति के घर में वह कोट डाल दिया और रुपये निकाल लिए । उस आदमी को सवा साल की सज़ा मिली क्योंकि उसकी चाल चलन भी ठीक नहीं थी। यह कह कर वह खूव हँसा। फिर किसीने, उस जयसुख ने ही, उससे पूछा कि उस रुपये का क्या किया ? मैंने—अभिमान पूर्वक वह भाई कहने लगा—मैंने वड़ी मौज उडाई । शराव पी, जुआ खेला, मोटरों में फिरा :—और उस आदमी का क्या हाल हुआ, जेल में ? मैंने पूछा । यह जाने मेरी वला—वह कहने लगा—मुझे उसकी क्या पड़ी थी ? तो इसमें तूने ऐसी वहादुरी क्या दिखाई, जो ऐसे घमंड से सुना रहा है ? मैंने कहा —ऐसा तो कोई भी गुंडा-मवाली कर सकता है । तव वह खिसियाने लगा। मुझे कहने लगा—मैं तुझे मार डालूँगा—और हाथ उठाकर मेरी ओर झपटा। एक दो आदमियों ने वीचमें ही रोक लिया । फिर कहने लगा—मनहर भाई याद आते हैं वरना तेरा खून कर देता, साले ! मेरा अपमान करता है और चाहे जिस गुंडे-मवाली से मेरी तुलना करता है।—सारे रास्ते वह वड़वड़ाता ही रहा । '

तव मुझे लगा अन्दर से तो सरफरोस जैसा का तैसा ही रहा है । तीन चार महीने उसे जेल में आये हो गये थे । पिछले महीने भर से मुझे और मेरे मित्रों को जान पड़ रहा था कि मैं हाथ में लिए अपने काम में अवश्य सफल हो जाऊँगा। सरफरोस को मैं सदैव वड़े वड़े आदमियों की छोटी छोटी शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाता । और सरल-सादे तरीके से वसर होने वाली ज़िन्दगी के अनेक गुण वताने का प्रयत्न करता । वह भी उपदेश के रूप में नहीं, वरन् उदाहरणों के रूप में, मानों अपने मित्रों की ही चर्चा कर रहा हूँ । इस प्रकार वह भी सारी वातें ध्यान से सुनता । एक वार उसने कहा भी— 'ऐसा वनने की मेरी भी इच्छा होती है, मनहर भाई ! '

'सव की इच्छा होती है, सव को यह अच्छा लगता है। अच्छा क्या लगता है रे, सव ऐसे हो भी सकते हैं । और तुझ-सा आदमी यदि इतने दिनों की ऐसी आवारा ज़िन्दगी विता कर वाद में यों सीधा, सरल आदमी वन जाय तो वड़ी ख्याति मिले ! '

'ख्याति वाली यह वात मैंने जान कर रखी, क्योंकि उसके पूर्व जीवन के इतिहास की कई वातें उसने मुझे कही थीं उनपर से मैं इतना तो समझ ही गया था कि इस पितृविहीन पराए घर पोषित लड़के द्वारा किये गये सारे वखेड़ों और तूफानों के पीछे कीर्ति-लालसा काम कर रही है । जिस प्रकार ऐसे अनेक वालकों के लिए ख्याति-प्राप्ति-वृत्ति का संतोष वर्जित रहता है उसी प्रकार सरफरोस के लिए भी वर्जित रहा है । उदाहरणार्थ—उसने जो एक घटना सुनाई थी, उस पर से मैं यह भावना समझ सका था । तैरना सीखनेवाली वही वात । सरफरोस मुझे एक दिन कहने लगा '—मनहर भाई, आपको याद है मैं तैरना सीखने आया था ? '

'क्यों याद न हो ? ज़रूर याद है, मैं तो झिझक रहा था और तूने तो छप् से डुवकी लगा दी थी '—मैंने कहा ।

'देखिए न, उसके लिए आप सव लोगोंने मेरा कितना वखान किया था । मैं भी वहुत खुश था क्योंकि एक दिन मैं तैरना जान गया था । घर जाकर मैंने अपनी फूफी से कहा — 'मैं तो आज तैरना सीख आया, मुझे तैरना आ गया है । तुरन्त ही वे फट पड़ीं — ऐसे वखेड़े इस घर में नहीं चलेंगे । पढ़ना-लिखना सीख गुंडे ! ये सव क्या सीख रहा है ? अगर डूव गया तो तेरा वाप निकालने आएगा ?

'मुझे वड़ी चिढ़ आयी, आप मेरी कितनी प्रशंसा करते थे और घर जाने का मतलव हुआ — ताने सुनना। किसी दिन, मुझे उन्होंने प्यार नहीं किया । अपने लड़कों की ज़रा ज़रा-सी वात को सारे गाँव में कहते फिरेंगे । '

फिर दूसरी दफा सरफरोस ने कहा—

'मनहर भाई, मैं सरफरोशी की तमन्ना .... गवाता तब सारा गाँव मेरी तारीफ़ देखता। सिर्फ मेरे घर में ही फूफा-फूफी कहते — इस तरह गला फाड़ कर 'रागड़े' करना ठीक नहीं। राग-अलाप सकता है तू पर, कुछ काम नहीं कर सकता ? तेरा बाप कुछ भूल नहीं गया है यहाँ कि तू राग अलापा करे और हम तेरे पीछे फिरा करें ? इस पर भी उनकी लड़की को स्कूल के एक स्नेह-सम्मेलन में गीत गाने पर इनाम मिला तो — मेरी मंजु बड़ा अच्छा गाती है—कह कह कर सारा गाँव सिर पर उठा लिया नालायक लोगों ने !—ऐसे आदमियों को तो गोली मार देनी चाहिए!'

इसी से तो मैंने कीर्ति की बात की और तुरन्त कहा—

'कीर्ति और प्रशंसा तो मिलेगी ही। इसके उपरान्त तुझ-जैसे होशियार आदमी को तो लोगों का प्रेम भी मिलेगा। देखता नहीं मेरे जैसे साधारण आदमी को ही तू और ये सब मित्र कितना चाहते हैं—फिर तेरे जैसे की तो क्या कहना ?'

'आप मुझे बना कर फुसला रहे हैं, मनहर भाई!' उसने ज़रा फूल कर कहा।

'मैं और तुझे बनाऊँ ? अवश्य ! तेरे वे फूफा-फूफी इतने मूर्ख थे कि तेरी होशियारी नहीं जान सके और न तेरी कद्र कर सके। दुनिया में सभी उन जैसे नहीं हैं'—मैंने कहा।

'वे लोग तो ऐसे ही हैं मनहर भाई, आदमी को पूरे शब्दों में भी नहीं पुकार सकते!' इतना कह कर उसने मेरे सम्मुख कई बार वही बात दुहराई — 'वे लोग अपने बच्चों जैसा मुझे भी खाने-पीने को देते थे, झूठ नहीं बोलूँगा। लेकिन, शेष बातों में मानों मैं उनके लड़कों से हल्का और नीचा होऊँ ? वे सदैव अपने बालकों को पास में बिठा कर मीठी मीठी बातें करते और उनके चिढ़ते समय मेरी बारी आती। एकबार उनके लड़के ने अपने पिता की जेब से दो आने चुराये, सौगन्द खा कर कहूँगा, मनहर भाई, तब तो मैं चोरी नहीं करता था। चोरी की ख़बर लगी और किसी लड़के ने ही ऐसा किया है, यह तय पाया और चट से मेरा नाम आ गया! उन्होंने मुझे इतना पीटा, इतना पीटा ! तब सोचा कि बेटों को मज़ा चखाऊँगा और मैंने उनके घर से कम से कम पाँच सौ रुपए चुराए होंगे!'

'और'—सरफरोस तो उस दिन बातों पर ही जुट गया था। एक दिन पड़ौस की गंगा बाई घर आयी थीं। मुझसे दो बरस छोटे फुफेरे भाई की सगाई हो गई थी। वे उसके ससुराल की बातें कर रहे थे। तब गंगाबाई ने कहा—तुम्हारा यह कन्हैया भी सगाई के काबिल हो गया है ?

फूफी ने मेरी तरफ इस तरह देखा जैसे किसी शूद्र की तरफ देख रही हों और बोलीं—इसे कौन लड़की देगा ? सारे दिन भटकता है, काम न काज ! और लड़की भी कौन है जो इसे पसन्द करे ?

फिर दोनों हँसने लगीं। इस प्रकार चट कर गयीं मुझे! और सच कहूँगा—मनहर भाई, आप शायद बुरा मानें, पर, कई लड़कियों ने मुझे पसन्द किया है, हाँ। मेरे कारण कई छोकरियाँ परेशान हुई हैं। पर, ऐसा लगता है मानों मुझे कोई नहीं चाहता। यहाँ सब मुझे कितना चाहते हैं ?'

सरफरोस से ऐसी अनेक बातें सुनकर और उनके पीछे निहित मानसिक स्थिति की कल्पना कर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उनका हल खोजने का प्रयत्न करता। पिछले महीने इस में आंशिक सफलता मिलने का मुझे बोध हुआ! आरम्भ में कइयों से झगडने पर अब वह कुछ शान्त हो गया है—ऐसा मुझे लगा। और इस सफलता पर मैं खुश होने ही जा रहा था कि उसी लड़ाकू—गुंडे-जैसे सरफरोस के दर्शन होने पर मुझे दुख हुआ। इतना श्रम व्यर्थ जाते देख मुझे क्रोध भी आया!

मैंने सरफरोस से कह दिया—

'देख सरफरोस, मैंने शूड़े से सबकुछ पूछा है' इसमें तुझे इतना गुस्सा करने की ज़रूरत नहीं और इसी तरह ज़रा ज़रा-सी बात पर सब से लड़ बैठने पर उतारू हो तो मैं जिम्मेदारी लेने का नहीं!।

पल भर के लिए उसकी आँखों में चमक आ गयी। गालों पर लाली खिंच आयी। पर मेरा चार मासका परिश्रम इस प्रकार व्यर्थ न जानेवाला था। वह तुरन्त दीन और विनम्र बन गया और बोला-

१९५०

'अब मैं गुस्सा नहीं करूँगा मनहरभाई, आप मुझे छोड़ न देना ?'

बचपन और शरारत के विचित्र मेल वाले इस लड़के को मैं देखता रह गया ! फिर खिलखिलाकर हँसा और उससे कहा—'तू तो ऐसा ही रहेगा रे ! सरफरोस, बार बार गुस्सा क्यों करता है ?'

'किसी की बात मुझसे सही नहीं जाती और न मैं एक स्थान पर ही ज्यादा टिक ही सकता हूँ । पिछले दो तीन वर्ष तक भटकता रहा इससे भटकने की आदत पड़ गयी ! इन चार महीनों से तो मेरे सामने सवाल है कि कहाँ जाऊँ, कहाँ न जाऊँ ?' फिर हँसते हँसते बोला—एकाध बार जेल तोड़कर भाग जाऊँ तो भी बड़ी बात नहीं !'

इस बातसे मेरे चेहरेपर छागये उद्वेग-चिह्नों को देख, उसने कहा—'मैं तो यों ही कह रहा हूँ, आप चिन्ता न करें, पर, पिछले तीन महीनों खूब भटका ।'

'बिना पैसे ?' मैंने पूछा । मुझसे ये बातें उसने अनेक बार कही थीं । फिर भी वहीं बातें करने से उसे विशेष आनन्द मिलता था और बार बार सुन लेने से मेरी कोई हानि नहीं थी ।

'पैसे तो शेविंग की मेरी आधी ब्लेड पूरे कर देती । मैंने आपसे जिक्र नहीं किया कि सिनेमा की खिड़की पर लगी भीड में घुसकर, जभि के नीचे दबाई आधी ब्लेड को बाहर निकाल कर मैं कितनी ही जेबें काट लेता ! और पैसे न भी हों तो रेल का डिब्बा कहाँ मना करता है बेचारा ? रेल में बैठ जाना, भूक लगने पर नज़र बचाकर मुसाफिरों के टिफिन केरियर उचक्का लेना और दूसरे डिब्बे में जा आराम से नाश्ता करना ! जहाँ गाड़ी ले जाय उतर जाना । या जहाँ टिकिट चेकर उतार दे वहीं उतर जाना ! मन को मौज । न काम, न काज, न आते कल की चिन्ता ! ईश्वर न करे, पकड़ा ही गया तो सरकार माँ-बाप रोटी तो देती ही है । लेकिन मनहर भाई, मैं बड़ा खुश किस्मत हूँ । पिछले तीन वर्षों में कभी नहीं पकड़ा गया !'

'फिर जेल में कैसे आ गया ?'

'इतने दिनों बच रहने से भी कहाँ चलता है ? फिर बाद के दिनों में तो बड़ी बड़ी चोरियाँ करने की आदत हो गयी थी, अतः मैंने कहा कि अनुभव ले आऊँ ज़रा'—वह बोला ।

फिर वही बात !

'तो इसके बाद भी तू यही पेशा अख्तियार करेगा, सरफरोस ?'—मैंने स्वर में अत्यंत खिन्नता लाकर कहा ।

'मुझे कुछ मालूम नहीं पड़ता, मनहर भाई ! आपलोगों के साथ रहता हूँ तो मुझे लगता है फिर ऐसा कभी न करूँगा । सच बताऊँ—आज सबेरे बूढ़े ने जब मेरी भर्त्सना की तो मुझे वह इतना सच लगा कि मन ही मन मैं अपने को धिक्कारने लगा; पर इच्छा हुई कि इस नालायक को मार डालूँ । मैं जब अकेला रह जाता हूँ और विचारों में बह जाता हूँ तो लगता है कि मुझे आप लोगों का जीवन पसन्द नहीं आने का, मेरे लिए तो अपनी ज़िन्दगी की राहें ही अच्छी हैं ।

फिर उसे अनेक बातें कह सुनकर मैंने वचन लिया कि वह हम—सा बननेका प्रयत्न करेगा । जेल से छूट जाने पर योग्य काम दिलाने का मैंने वादा भी किया ।

मेरी सज़ा पूरी होने आयी । सरफरोस को लेकर मेरे मन में अधिकाधिक आशा बँध रही थी । प्रायः वह उत्तेजित हो बिगड़ उठता था पर अब ऐसी घटनाएँ कम हो गयी थीं । हमारी उपस्थिति में उसने गाली और अपशब्दों का प्रयोग बन्द कर दिया था । मेरे छूटने की अगाऊ रात में हम चार पाँच मित्र बैठे बातें कर रहे थे । सरफरोस अपने बिस्तर में पड़ा था । अचानक ही उठकर वह हमारे बीच आ बैठा । मेरी आँखों से अपनी आँखें मिलाकर वह गद्गद् कंठ से बोला—'मेरा चाहे जो हो मनहर भाई, पर मैं आपको आजीवन नहीं भूलूँगा ।'

इस वाणी में मूर्त आर्द्रता ने मेरा हृदय छू लिया । मैंने अपनी आँखें नीची कर कहा—सरफरोस, तुझे कुछ न होगा । तू भी हम—सा सीधा सादा आदमी बनेगा । यों भी तू तो हमसे अधिक चतुर है अतः नाम कमाएगा !'

'यह सब मैं नहीं जानता पर मुझे इतना ही वचन दे दो कि भविष्य में मैं चाहे जैसा बनूँ । कुछ भी करूँ पर आप मुझे धिक्कारेंगे नहीं ।' उसकी आवाज़ में अवरोध आया ।

'ये मेरा वचन है । परन्तु तू भी मुझे एक वचन दे, सरफरोस !'— मैंने. कहा ।

'आप जैसा कहेंगे, वचन दूँगा, पर विश्वास है, मुझे अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं बाँधेंगे !' उसने कहा ।

'मुझे इतना ही चाहिए कि तू मेरे सामने कभी दंभ नहीं करेगा ।'

उसने वचन दिया । उस रातको अंतिम बार हमने पास बैठकर कई बातें कीं । उसके जेल से छूटने में अभी एक दो मास की देरी थी । जेल से छूटते ही मेरे पास चले आने का मैंने उससे वचन लिया ।

दूसरे दिन मैं छूट गया । बाहर आकर तुरन्त ही उसके हिसाब में मैंने दस रुपए जमा कराकर उसे सूचना दी ।

दो महीने तो पानी की तरह बह गये । इस बीच जब मैं देश में गया तो सरफरोस के रिश्तेदारों से मिलकर मैंने उसकी काफी चर्चा की ।— वह अब सुधर जाएगा । मैंने कहा कि उसे प्रेम मिलना चाहिए । उसके स्वाभिमान को तुष्ट करना है । यह सब आसानी से हो सकता है । किंतु उन लोगोंने तो उसका मुँह भी देखने से इनकार कर दिया—"ऐसे बदमाश को तो मैं अपने आँगन में भी न खड़ा रहने दूँ ।" उसके फूफा ने कहा । समय आने पर देखूँगा—यह सोचकर मैं भी बम्बई आकर अपने व्यवसाय में लग गया ।

एक दिन भोजन करने बैठही रहा था कि नौकर ने कहा—'आपसे कोई मिलने आये हैं ।'

'कौन है ?' मैंने पूछा.

'मालूम नहीं, पर भले आदमी-सा नहीं लगता है । मैंने उसे बैठक में बिठा दिया है'— कहकर वह चला गया ।

मैं भी उसके पीछे गया । बैठक में पैर रखते ही 'मनहर भाई' की प्रसन्नता पूर्ण ध्वनि सुनी और दूसरे ही पल अपने दोनों हाथों से मेरे पैरों से लिपट जाते सरफरोस को मैंने उठा लिया ।

'कब छूटा सरफरोस ?'—मैंने उसे कुर्सी पर बिठाते हुए पूछा। 'अभी ट्रेन से सीधा ही आ रहा हूँ, कैसे हैं आप ?'—उसन कहा ।

'ठीक हूँ । तू कैसा रहा ?'— मैंने कहा ।

'अच्छा हूँ और मनहर भाई, आप कहते थे वैसा ही बनने का मैंने निर्णय कर लिया है ।'

'शाबाश, आ, पहले भोजन कर लें'—कहकर मैं उसे रसोई घर में ले गया ।

फिर उसने मुझे बताया कि अनेक विचारों के मंथन पर उसने 'भला बनने का निश्चय किया है । वह अपने फूफा-फूफी से माफी माँगने वाला है । भले और कमाऊ कारीगर लड़के की तरह उनके पास रहने का उसका विचार था । कब वहाँ पहुँचकर, उनके पास रहूँ—इस जल्दी में वह था ।

'वे लोग भी बड़े खुश होंगे, मनहर भाई ! चाहे जैसे हों पर उन्होंने मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया है । वरना मेरा कौन था, क्यों ?'

उसकी ऐसी भावपूर्ण बातें सुनते सुनते मेरा हृदय दो टूक हो रहा था । ऐसे पवित्र संकल्पों पर जब उसे ज्ञात होगा कि वे लोग तो उसका मुँह भी देखना नहीं चाहते हैं, तब उसे कितना आघात लगेगा ? मैं विशेष रस दरसाए बिना ही उसकी सारी बातें सुनता रहा । सरफरोस होशियार तो था ही । वह मेरी इस उदासीनता को पहचान गया और तुरन्त बोला—

'आप चुप क्यों हो गये ? मनहर भाई, मेरी बातें आपको ठीक नहीं लगतीं ?'

'नहीं रे, ठीक लगती हैं । अभी दो चार दिन तो तू यहाँ रह । तुझे कौन धंधा पसन्द आता है, इस पर हम विचार करेंगे । फिर वहाँ तो जाना ही है'—मैंने कहा ।

'ठीक !' वह इतना ही बोला । पर उसकी मुखमुद्रा से लगा कि उसे मनमें विश्वास हो गया है, मनहरभाई, कोई न बताने लायक बात छिपा रहे हैं ।

दो चार दिन पर कई चर्चाओं के बाद उसने मुझसे वास्तविक कारण मालूम कर लिया । जब मैंने उस से यह बात और कारण बतला दिया तो वह फिर से पहले वाला सरफरोस बन गया ।

'वे मेरा मुँह भी नहीं देखना चाहते हैं क्यों ? मैं उनपर थूक दूँगा ।— फिर धीरे से बोला— 'मैं तो इतने महीनों से उनके के लिए तड़प रहा था, बदमाश हैं वे ।'

बड़ी मुश्किल से मैंने उसे शान्त किया ।

इसके बादके पांच छः दिनों में से तीन चार

दिन वह गायब रहा। मेरे पूछने पर वह झूठ मूठ जवाब दे देता। दो तीन नौकरियाँ मैंने उसे बताईं पर उसका मन उनमें न लगा। अंत में नौकरी न मिलने तक समाचार-पत्र बेचने का उसने फैसला किया। मैंने वैसी ही सुविधा कर दी।

एक दो दिन वाद उसने कहा—मैं आपके यहाँ कबतक खाया करूँगा। सोने की जगह मैंने ढूँढ ली है। खानेका इंतज़ाम वीशी (होटल) में कर लूँगा। मुझे कुछ रुपये दें तो काम वन जाएगा।'

मेरे यहाँ वह चाहे जितने दिन खा सकता है, इस में कोई वाधा नहीं—मैंने उसे समझाया। यही तरीका चालू रहने देने का आग्रह भी बहुत किया पर उसने पैसेकी ही माँग रखी। वह इतना ज़ोर देकर—पैसा, पैसा, पैसा कर रहा था कि मेरा सन्देह वढ़ गया।

मैंने कहा—'पैसा किसलिए चाहिए? अपनी शर्त याद है न?'

'सब याद है, मनहर भाई। मुझे सिर्फ पैसे चाहिए।'

उसके इस ढंग से मेरा सन्देह वढ़ गया। मैंने कहा—'मैं तुझे नक्द रुपए तो न दूँगा पर, वीशी का पास निकलवा दूँगा और तुझे समाचार-पत्र वेचने को मिलते रहें यह व्यवस्था भी कर दूँगा। कुछ दिनों में तुझे नौकरी मिल ही जाएगी। फिर तो कोई सवाल ही नहीं।'

काफी आनाकानी पर वह 'पास' लेने को राजी हुआ। मैंने उसे बढ़िया वीशी का पास निकलवा दिया।

दो चार दिन वाद वह बिल्कुल नज़र आना बंद हो गया। आठेक दिन वाद मैंने वीशीं में पूछ ताँछ कराई तो पता चला कि कई दिन हुए वह वहाँ से पास का पौना दाम वापस लेकर गायव हो गया है—ऐसी सूचना वीशी के मालिक ने दी।

मुझे वड़ा क्रोध आया। मुझे दिया वचन भी उसने तोड़ा। वह ऐसा ही आदमी था। मैंने उसके लिए इतना किया पर उसे तो मेरी कुछ न पड़ी थी। उसने मेरे सम्मुख दम्भ न करने के वचन का भी पालन नहीं किया। मैं भी उसे न धिक्कारने का वचन उसके प्रति न पाल सका। इस घटना पर मेरे मन में उसके लिए पर्याप्त धिक्कार की मात्रा उमड़ आयी।

पाँच-छः महीने वीतने पर कलकत्ते के डाक घर की छापवाली एक चिट्ठी मुझे मिली, जिसने मेरी इस भावना को ठंडा कर दिया। पत्र-प्रेषक सरफरोस था। उसने सिर्फ इतना ही लिखा था—

मान्य मनहर भाई,

अन्त में मैं आपसे भी झूठा पड़ा—इसका दुख मैं नहीं भूल सकता। पर मैं रह न सका। मेरे लिए तो ऐसे ही जीवन का निर्माण हुआ है। फिर भी आपसे कहना चाहता हूं कि आपकी और मेरे प्रति प्रदर्शित सद्भावना की मुझे सदेव याद रहेगी। इसी लिये यह पत्र लिख रहा हूँ।

और दूसरा भी कुछ मुझे कहना है। मेरे जैसे आदमी की छाया भी आप पर पड़ना ठीक नहीं अतः पत्र-द्वारा वचन दे रहा हूँ कि कभी अपना काला मुँह आपको नहीं दिखाऊँगा।

कभी कभी मुझे याद करेंगे?

—सरफरोश।

* * *

इस वात को भी पांच-छः वर्ष हो गये। इन वर्षों के बीच फिर सरफरोस का पत्र आया था। जो वम्बई से ही भेजा गया था। उस में लिखा था—

'आज कल तो मैं कई दिनों से वम्बई में ही हूँ। लेकिन, आपको दिया वचन निभाऊँगा।

एक शुभ समाचार देने यह कागज लिखता हूँ। कलकत्ते में मुझे एक लड़की मिली थी। अब मेरे साथ ही है वह। मुझे खूब चाहती है और मैंने भी वचन दिया है कि उसका भरण-पोषण करूँगा। इसी से तो मैंने पिछले धन्धे छोड़ दिये हैं। आपको दिया वचन तो न पाला पर इसे पाल सकूँगा ऐसा लगता है। दो साल से नौकरी कर रहा हूँ। यहाँ भी नौकरी में हूँ।

आप मुझे कभी तिरस्कार पूर्वक याद करते हों तो ऐसा न करें, इसी लिए यह पत्र लिख रहा हूँ—सरफरोस।'

'वेटा अच्छी अच्छी वातों से मुझे वना रहा है। कोई काम निकालना होगा।' मुझे लगा। इन वर्षों में आदर्शवादी युवा का मेरा रूप मिट गया था और मैं व्यावहारिक व्यापारी वन गया

था। बीस-बाईस वर्ष के जवानों के मूर्खतापूर्ण, अव्यावहारिक लहरी संसार की बातों पर मुझे हँसी आ जाय, इतना समझदार मैं हो गया था। यह पत्र आया तो बहुत समय से भुला दिया गया सरफरोस मुझे याद आया। और शांति का एक निःश्वास छोड़ते मैंने अपने मन से कहा।

'अच्छा हुआ जो यह मुसीबत अपने सिर से टली। वरना और किसी गड्ढे में उतार देता।'

इसके पश्चात् भी एक वर्ष व्यतीत हो गया। किंतु न तो सरफरोस ही दिखा। न कोई स्वार्थपूर्ण माँग ही उसने पेश की। इतनी लम्बी अवधि, व्यापार का भार, बढ़ते जाते कुटुम्ब की देखरेख—इन सारी झंझटों में सरफरोस तो कठिनाई से कभी याद आया होगा!

आसोज लगनेवाला था। ऑफिस में काम का बोझ बढ़ गया था। घर में भी बीमारी चल रही थी; उसके विचार भी आते थे। एक दो व्यक्तियों ने कुछ गड़बड़ की थी सो वे हाल ही में पकड़े गये थे। अतः चारों ओर से मेरा मन उद्विग्न रहता था। भोजनोपरान्त ऑफिस जाने को निकला था—एक जगह सीढ़ियाँ चढ़ रहा था कि जीने के बीच एक आदमी को खड़ा देखा। वह मेरी ओर देख रहा था। ठीक तरह देखने पर मैंने सरफरोस को पहचान लिया।

'क्यों' ?—वह मेरी ओर बढ़ने का प्रयास कर रहा था पर मैंने तो सीढ़ियाँ चढ़ते हुए मात्र इतना ही पूछा।

'मनहर भाई'—वह मेरे साथ एक सीढ़ी चढ़कर बोला ही था कि 'देख भाई, इस समय मुझे बड़ा काम है और मुझे फुर्सत भी ऐसे वक्त नहीं रहती।'—मैंने कहा।

'कोई बात नहीं'—कहकर वह उतर गया।

दूसरे दिन इसी समय इसी स्थान पर मेरी बाट जोहता वह बैठा था। मैं उसकी ओर सिर हिलाकर ऊपर चढ़ गया। दो पहर में चाय पीने उतरा तब भी वह वहीं—बीच जीने में बैठा था। मुझे देखते ही स्वर में आर्द्रता भर बोला—'मनहर भाई'

पिछले अनेक संस्कार मन में जाग्रत हो गये। उसे दाद न देने के अपने फैसले पर जमे रह मैंने चलते हुए कहा—'क्या है?'

'कुछ बात करना है'—वह बोला।

'देख सरफरोस, एक बात है। मैंने कहा—मैंने जितना बन सका तेरे लिए किया। तू उसके काबिल ही न निकला। अब मैं कुछ भी कर सकूँ—ऐसी अवस्था में नहीं।

इतना कहते २ मैं जीना उतर गया था। वह कुछ न बोला। दो कदम चल कर मैंने पीछे देखा तो वह मेरी दिशा में आँखें फाड़कर उसी प्रकार विमूढ़-सा जीने पर खड़ा था!

वह रात विचारों में वह गयी। उसे क्या काम हो सकता है? किसकी बातें करना है? तनिक अधिक भिन्नता तो नहीं प्रकट हो गयी? पिछले पाँच वर्षों में वह एक दिन भी मेरे पास आया? उससे मिलना है?—बुद्धि झुकने से इन्कार कर रही थी। दिल में आ रहा था — न झुकने में हृदय-हीनता है। पूरे समय जीने में खड़ी वह मूर्ति, फटी २ आँखें, स्तम्भित वदन और थकी देह मेरी नज़र में घूम रही थी।

जीना चढ़ते हुए आधे हिस्से पर—जहाँ जीने का मोड़ था — वहीं वह मूर्ति दीखी। निराश नयन, थकी देह, मैले कपड़े! हम दोनों की आँखें मिलीं। उसने आँखें नीची करलीं। वह कुछ न बोला। मैं भी न मालूम किस तरह कुछ बोले बिना ही ऊपर चढ़ गया।

लेकिन मैं ऑफिस न जा सका। जीने पर खड़े रह मैंने देखा तो उसी जगह सिर नीचा किये सरफरोस बैठा हुआ था। उससे बोलूँ या नहीं — इस विचार के निर्णय करने के पूर्व ही मेरे मुँह से निकल गया—'सरफरोस!'

उसने चौंक कर ऊपर मुझे देखा। उसकी आँखों में वही पहली चमक आ गयी। वह तुरन्त ही ऊपर चढ़ आया।

'क्या बात है, बता 'मैंने हँसकर कहा।' पर, मेरे पास अधिक समय नहीं है, जल्दी करना।'

'मनहर भाई, दस रुपए चाहिए—' उसने नम्रता से कहा।

फिर से मेरे मन में पल भर के लिए दबा हुआ व्यापारी जग गया। तुरन्त ही मुझ में आत्म-रक्षण

का स्वर भर गया । मैंने आशंका पूर्वक पूछा — 'क्या करेगा तू दस रुपयों का ? तू तो नौकरी करता है न ?'

वह नौकरी तो तीन चार महीनों से छूट गयी । ज्यों त्यों कर काम चला रहा हूँ और दो रोटी का ख़र्च तो निकाल ही लेता हूँ ।—' उसने कहा ।

फिर सफाई दे रहा है—मेरे मन में आया—'तो इन रुपयों का क्या होगा ?' मैंने पूछा ।

'मुझे ज़रूरत है ।' उसने ज़रा नीचे देख कर कहा।

'देख सरफरोस, मुझे धोका न देने का तू ने वचन दिया था । तेरे कहने पर खाने पीने का प्रवन्ध हो सकता है । एक नौकरी जाने पर तुझ-से कारीगर को दूसरी नौकरी मिलना मुश्किल नहीं । फिर किस लिए तुझे रुपए चाहिए ? तू ने तो मुझे वचन दिया था कि अपना मुँह भी मुझे नहीं दिखाएगा । यह सब भूल गया ? मैंने अपनी जगह से आगे बढ़ने की तैयारी करते हुए कहा ।

'कुछ नहीं भूला, मनहर भाई !' और उसकी बोली में गर्व की घरघराहट सुन कर मैं उसकी ओर देखने लगा—'और मैं भीख माँगने–जैसा हूँ ! मुझे बड़ी ज़रूरत है वरना आता ही नहीं ।'

यह सब क्या है ? मुझे बड़ी उत्सुकता हुई — 'क्या बात है ? तू मुझे पूरा किस्सा सुना तो सोचकर देखूँ'—मैंने कहा ।

'पर आपके पास समय जो नहीं है'—वह बोला।

'समय वमय है तो तू बता न ?' मुझे लगा कि बात कुछ सोचने समझने—जसी है । वरना सरफरोस चोरी न कर भीख माँगने आता ?

'आपको मैंने लिखा था न कलकत्ते से कि मैं एक लड़की के साथ रहता हूँ । याद है ? — उसने पूछा ।

'हाँ, हाँ याद है ।'

'वह लड़की बंगालिन है । आजकल पूजा के दिन करीब हैं । इन लोगों के लिए पूजा का बड़ा महत्व है । हरेक बार पूजा पर मैं उसे कुछ न कुछ भेंट देता हूँ । इस साल भी देना है । पर मेरी नौकरी नहीं और मेरे पास कुछ नहीं । वह ज़रा रुका और फिर बोला—और चोरी कर भेंट देना ठीक नहीं ।'

' बात में मेरा रस बढ़ गया । पल भर के लिए ऑफिस का काम भी भूल गया । सरफरोस को फिर से न फटकने देने का अपना फैसला भी मैं भूल गया । मैंने पूछा—

' इतनी अच्छी है वह लड़की ? '

'चाहे जैसी हो पर मेरे लिए प्राणों के समान है और मैं उसे बहुत चाहता हूँ–' वह बोला ।

' सच बता रहा है तू ? मैं तो सोचता था लड़की वड़की कुछ नहीं । तूने ही भला बनने को बात गढ़ी है—' मैंने कहा ।

' मनहरभाई, आप ऐसा कहते हैं, यह विचित्र बात है । मैंने भला बनने का कभी प्रयत्न किया है ? और दस तो क्या सौ रुपये तो पल भर में मार लूँ यदि मुझे वह भी करना हो तो ? परन्तु मैं पकड़ा गया तो उसका क्या होगा ? यह मुझ से होने का नहीं । भीख नहीं माँग सकता और चाहे जो हो उसे पूजा की भेंट दूँगा ही । '

उसने दृढ़ता से कहा ।

' उसके प्रति तुझे ऐसी लगन कहाँ से हो आई ?'—मैंने पूछा ।

मुहब्बत जो है, मनहरभाई ! जिसे कोई नहीं चाहता, उसे भी कोई चाहनेवाला मिल ही जाता है। कलकत्ते में मैं जिस कोठरी में रहता था उसके पास की खोली में यह लड़की और इसकी माँ रहती थी । माँ लड़की को वेश्या बन जाने के लिए समझाती । लडकी इन्कार करती । सदैव मारपीट होती । एक दिन मैं अपनी कोठरी में बैठा था कि वह ' मुझे बचाओ ' पुकारती, घुस आयी । पीछे पीछे हाथ में डंडा लिए इसकी माँ थी । मैंने उसे डर दिखा निकाल दिया ।

'लड़की ने मुझे अपनी आप बीती सुनायी । अपने साथ रख लेने के लिए आजिजी करने लगी—' मैं तुम्हारा कहा करूँगी, तुम्हारी दासी बनूँगी । पर मुझे वेश्या नहीं बनना है ।' उसमें कुछ ऐसाही आकर्षण था कि मैंने उसे 'हाँ' कह दिया । कुछ दिन बीते । मास वीते । मैं और वह दो से एक हो गये । मैं उसे बहुत चाहने लगा । विवाहिता भी न चाहे उतने प्रेम से वह मुझे चाहने लगी । मनहरभाई, मेरे स्वभाव को भी उसने सहन कर लिया । एक तरह से तो मैं उसके कारण बँध गया हूँ । हाँ—फिर से अपने पुराने धन्धे लगजाने का विचार आता है, पर सोचता हूँ, कौन जाने तब तो उसे सचमुच वेश्या ही बनना पड़े । यह विचार मात्र ही असह्य है । मैं नौकरी ही करता रहा । तब से बम्बई आने पर भी नौकरी ही लगी रही । अभी तीन महीनों से वेकार हूँ । फिर भी खाने पीने का तो ज्यों त्यों निकाल लेता हूँ । उसके लिए तो व्यापारी तौरपर भी मुझे मिल जाता है । पर, इस भेंट के लिए पैसे कौन देने लगा ?'

' लेकिन मेरे सामने आने का तेरा मन कैसे हुआ ? '—अभी भी मेरा व्यापारी रूप मिट न गया था ।

' तुम्हारे सम्मुख मैं नहीं ही आना चाहता था ।' उसने कहा । फिर उसकी वाणी गहगही होगई ।—

'मैं पहले तो अपने सम्बंधियों के पास गया था उन्होंने तो मुझे गालियाँ दीं । बाहर निकाल दिया । मैं ठीक भी हो सकता हूँ, यह मानने को ही वे तैयार न थे ।

'हरामखोर, आवारा, बदमाश–इस प्रकार कई गालियाँ उन्होंने मुझे दीं । उनका गला घोंट देने का मेरा जी हुआ । पर, वह मुझे याद आ गयी और मैं चल दिया ।

इस के बाद भी यहाँ आने का मेरा मन न हुआ ऐसी गुलामी करने से तो चोरी करना ही ठीक है। मुझे ख्याल आया । कल आप के जाने पर खूब रोया । ' अब भी उसके स्वर में रुदन ही था, उसके स्वर से जान पड़ा ।

पास में जाते एक आदमी की भारी जेब काट लेने की उसकी इच्छा हुई पर, कठिनाई से उसने अपने को रोका ।

'और यदि मैं न दूँ ?' मैंने पूछा ।

'मुझे कुछ सूझ नहीं पड़ता कि मैं क्या करूँ ? पर भेंट दिये बिना न रहूँगा ।'

—मैने उसकी ओर देखा । उसकी आँखों में इतना निश्चय तो नज़र आया कि फिर से यह अवश्य कुछ न कुछ कर बैठेगा ।

पर यह चाहे जो करे मुझे क्या ? मेरा व्यापारी मन बोल उठा—छः महीने नौकरी न मिले और यह चोरी न करे इसका सबूत क्या है ? इस विचार के अपने हृदय में पैठने से पहले ही मैंने कहा-' मेरा वक्त हो रहा है, सरफरोस, और तू देखता ही है, व्यापार में कोइ लाभ नहीं । आठ बारह आने चाहिए तो ले जा । दस रुपये तो मैं नहीं दे सकता ।'

वह कुछ न बोला । .

मैं ऑफिस की ओर गया । तब तक उसके चेहरे पर लगी, मेरी आँखों ने उसके दोनों नयन कोरों को गीले होते देखलिया था ।

इतना होने पर भी मैं चल पड़ा । टेबलपर बैठा, पर, अपने को ही मैं अपराधी जान पड़ा । मेरी महीनों की मिहनत जो न कर सकी थी, उसे, वेश्या जीवन और स्त्री-जीवन की देहली पर खड़ी एक अनपढ़ लड़की ने कर दिखाया था । और वर्षों के श्रम पर रास्ते पर आ लगे मनुष्य को, वर्षों की आदत को भूल जाने के लिए तन-तोड़ प्रयत्न करते मनुष्य को मैं अपनी दृढता से बदमाशी की राह, जेल में धकेल देने को तैयार था ।

मुझे अपने पर ही तिरस्कार आया । झपाटे से मैं अपने टेबल से उठ खड़ा हुआ । बाहर आया । वहाँ सरफरोस न था । एक साथ तीन २ सीढ़ियाँ उतर जीना पार किया, आस पास नज़र दौड़ाई । एक कोने में सरफरोस खड़ा था । मैं शीघ्रता से उसके पास पहुँचा । पीछेसे ही मैंने अवाज़ दी–'सरफरोस'!

उसने चौंक कर देखा । भरी भरी आँखों से दो चार बूंद ढुलक पड़े । मैंने उसका हाथ थाम लिया । वह मेरी ओर कृतज्ञतापूर्वक सहमता-सा तनिक आनंदित हो देख रहा था ।

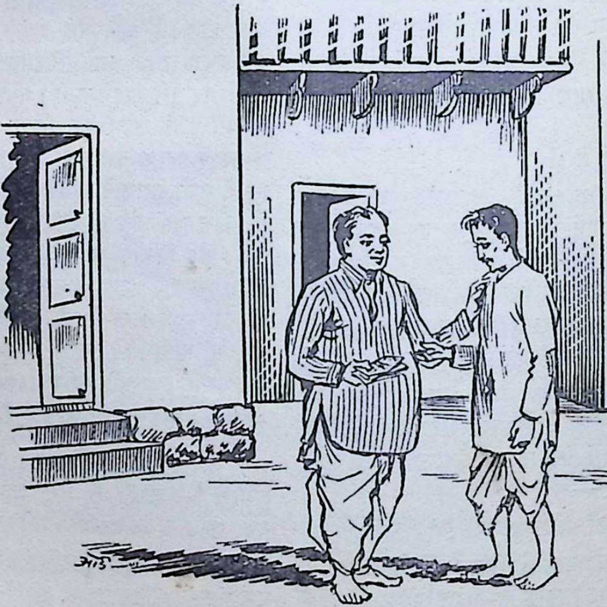

मैंने उसके हाथ में पन्द्रह-बीस रुपये रख दिये। बोला—सरफरोस, इन रुपयों से अपनी पत्नी के लिए दो भेंट खरीदना। एक अपनी ओर से देना, एक मेरी ओर से।

'मनहरभाई!'—वह इतना ही कह पाया।

मैं जल्दी जल्दी कदम उठा, अपने ऑफिस में प्रतीक्षा करते काम को सँभालने चला गया।

[अनुवादक—**श्री. परदेशी साहित्यरत्न**]

* * *

दूर दीपक जल रहा है

[श्री गोपाल शर्मा, एम.ए., बी.टी.]

दूर दीपक जल रहा है।
वह श्रान्त संध्या के अधर से—
स्खलित होते प्यार के उच्छ्वावास का
मृदु स्पर्श पाकर भी,
अचानक चौंक जाता है,
कि इस पर पास का—
पीपल ठहाका मार जो परिहास करता
जोर से पल्लव हिला
आहत, निमज्जित ग्लानि में
तब दीप रहजाता विचारा तिलमिला
फिर भी पराजित कान्तिवाला,
स्नेह से हरबार नूतन प्राण ले
देता मधुर से रूप ज्वालातत्व को
लौ में जगत कल्याण ले!
जैसे कि अन्धी शक्ति को
मानव हृदय की दृष्टि दे दे कर
युगों से पल रहा है
दूर दीपक जल रहा है।

*   *   *   *

यह ठीक है, मानव हृदय की ज्योति-
गाँवों में सुरक्षित है, मगर
लगता कभी है यह विवश संकोच है,
यह आत्म छल है!
चल शिखर,
इस दीप में है
गाँव की अवरुद्ध जिज्ञासा—
सहज स्वच्छन्दिनी
जो लांघ कर विश्वास की सौमित्र-रेखा
बढ़ न पाई बन्दिनी!
जैसे कि गिरि की—
कूट सास्मित स्तब्धता को,
क्षुब्ध नदियों को प्रबल,
श्रावण-वदन पर—
तडित् सी भ्रूभङ्गिमा को,—
देख कर हो भय-विकल!
यों धरा के आतङ्क से—
विज्ञान-जननी का ठिठक जाना
मुझे तो खल रहा है!
दूर दीपक जल रहा है।

जातक कथा :

पटाचारा

श्री भदन्त शान्ति भिक्षु

[प्राचीन बुद्धयुग में अनेकों स्त्रियों ने सन्यास ले कर भिक्षुणी-संघ में प्रवेश किया । इस संन्यास के मूल-कारण तथा प्रेरणा के पीछे व्यक्तिगत तथा समाजगत विषमंताएँ काम करती थीं । व्यक्तिगत विषमताओं में पुत्र-वियोग, पति-वियोग, पति का निरादर, एक स्त्री के लिए अनेकों पुरुषों की प्रार्थना आदि हैं । प्रव्रज्यासे जीवन का दृष्टि कोण बदल जाता था । जहाँ मानसिक शांति उससे मिलती थी वहाँ समाज के अत्याचार से त्राण भी मिलता था । पटाचारा का वृत्त पुत्र-पति शोक से प्रवज्या लेने वाली स्त्रियों के जीवन का एक निदर्शन है । —सं.]

पटाचारा का असली नाम क्या था यह कोई नहीं जानता । एक बार वह पगली होकर घूम रही थी । उसका पट (कपड़ा) उस पगलेपन की हालत में कहीं गिर पड़ा पर उसे इस बात की कुछ भी सुधबुध न हुई । वह उसी तरह मारी मारी फिरती रही । लोग इसी कारण उसे पटाचारा कहते थे ।

पटाचारा श्रावस्ती के सेठ की लड़की थी। माता-पिता उसका विवाह अपनी जाति के एक सुंदर लड़के से कर देना चाहते थे । पर उसका मन घर के एक नौकर से लग चुका था । विवाह की तिथि ज्यों ज्यों निकट आती पटाचारा की व्याकुलता उतनी ही बढ़ती जाती थी । अन्तमें साहस कर वह उस नौकर के साथ भाग निकली । दोनों एक गाँव में रहने लगे । समय बीतता गया । एक बेटा हुआ और दूसरे के होने की बारी आयी ।

दूसरा बेटा कोख में ही था । पटाचारा ने पहले बेटे के जन्म के समय कम कष्ट नहीं भुगते थे । वह नहीं चाहती थी कि दूसरे के जन्म पर फिर उसी तरह भुगते । मन में यही सोच उसने अपने पति से कहा—'यहाँ अनाथ की तरह रहना पड़ रहा है । चलिए माँ-बाप के घर चलें ।' उसके पतिने संकोचवश आज-कल करते करते यों ही बहुत दिन बिता दिये । पटाचारा ने सोचा कि ये शायद संकोच के कारण टाल-मटोल कर रहे हैं । में अकेली ही क्यों न चली जाऊँ ।

यह सोच एक दिन जब उसका पति बाहर गया था, उसने पड़ोसिन को घर का सब सामान सौंप कर कहा कि मेरा पति आये तो उससे कह देना कि मैं माँ-बाप के घर गयी हूँ और अकेली चल पड़ी । उसके पति को जब उसके चले जाने का समाचार मिला तो उसे बहुत दुःख हुआ । मन में उसने सोचा कि मेरे ही कारण एक बड़े

१९५०

घर की लड़की अनाथ हो गयी और न जाने कितनी विपत्तियाँ झेलीं। और वह भी उसके पीछे पीछे चल पड़ा। रास्ते में दोनों की भेंट हुई।

पटाचारा के माँ-बाप का घर अभी दूर था पर मुसीबत का समय आ पहुँचा। उसकी कोख में मर्मच्छेदी वेदना होने लगी। उधर उमड़ घुमड़ कर आँधी आयी और पानी भी बरसने लगा। उसने पति से कहा कि कोई ऐसी जगह खोजो जहाँ पानी से बचा जा सके। जगह पाने के लिए उसने इधर उधर खोज की। घास से ढकी एक बाँबी के पास से उसने एक लकड़ी लेनी चाही और इसी धुन में जब वह लकड़ी काट रह था, एक साँप बाँबी से निकला और उसने उसे डस लिया। इधर पटाचारा रास्ता देखते देखते थक गयी। जैसे तैसे उसने रात बितायी। बड़ा लड़का उससे चिपका बैठा रहा। दूसरा तो अभी मांस का लोथड़ा ही था। उसे वह कथरी में लपेटे अपनी छातीसे चिपकाये रही।

भोर हुआ छोटे बच्चे को छाती से लगाये और बड़े बच्चे का हाथ थामे पटाचारा उस ओर चली जिधर उसका पति गया था। थोड़ी दूर जाकर उसने बाँबी के पास अपने पति को चेतनाहीन पाया। मेरे कारण इन्होंने अपनी जान दे डाली यह सोच बहुत विलाप कर वह फिर आगे बढ़ी। एक नदी आयी। सदा यह सूखी रहती थी पर रात को पानी बरस जाने के कारण उसमें काफी पानी भर आया था। उसमें इतनी शक्ति न थी कि दोनों बच्चों को एक साथ लेकर नदी पार कर सके। इस लिए उसने बड़े को इस किनारे पर छोड़ दूसरे को लेकर नदी पार की। माँस के लोथड़े के समान उस बच्चे को कथरी से लपेट उस पार रखकर वह बड़े को लेने फिर नदीपार करने लगी। बीच में घूम घूम कर वह छोटे बच्चे की ओर निगाह डाल लेती थी। वह बीच धारामें थी कि उसने देखा कि चील ने बच्चे पर झपट्टा मारा। वह दोनों हाथ ऊपर करके चिल्लाइ पर चील से बच्चे को बचा न सकी। इधर बड़ा बच्चा माँ का चिल्लाना सुन उसकी ओर दौड़ा और नदी में गिर पड़ा। पानी की धारा तेज थी। वह इस बच्चे को बहा ले गयी। पटाचारा इसे भी न बचा सकी। इस तरह दोनों बच्चों को खोकर आगे बढ़ी।

कितनी ही दूर जाकर उसे एक आता हुआ बटोही मिला। पटाचारा ने उससे पूछा भाई, कहाँ के रहने वाले हो? उसने कहा कि श्रावस्ती का। श्रावस्ती का नाम सुन उसने अपने माँ बाप का हाल पूछा। बटोही ने कहाँ—'माँ, रात की आँधी और बरसात के कारण जिस घर में सेठ और सेठानी अपने बेटे के साथ सोये थे वह गिर पड़ा और तीनों अकाल ही काल कर गये। आज एक ही चिता पर उन तीनों का दाह किया जारहा है।' पटाचारा जो अबतक की विपत्तियों को जैसे तैसे ढोते चली आ रही थी अब और न सह सकी। उसका दिमाग फिर गया। उसके कपड़े शरीर से एक एक करके गिर पड़े पर वह इतनी बेसुध थी कि उसे कुछ न जान पड़ा। वह इधर उधर भटकती फिरती थी और उसकी ज़बान पर एक मात्र यह गाथा थी—

उभो पुत्ता कालङ्कता पन्थे मय्हं पति मतो।
माता पिताच भाताच एकचित कस्मिं
डय्हरे ॥

—दोनों बेटे काल वश हो गये। रास्ते में मेरा पति मर गया। माँ बाप और भाई का एक चिता पर दाह हो रहा है।

लोग इस पगली को देखते उसके सिर पर कूडा-कचरा डालते, उस पर धूल फेंकते। कोई कोई उस पर ढेले फेंकते और जैसा उनके मनमें आता वैसा तंग करते।

इधर पगली पटाचारा जब श्रावस्ती की गलियों में ठोकर खाती घूम रही थी तब उधर तथागत वहीं श्रावस्ती के जेतवन में धर्म देशना कर रहे थे। पगली घूमती घूमती जेतवन पहुँच गयी तथागत के चारों ओर श्रोताओं की परिषद जमी हुई थी और नंगी पटाचारा बकती-झकती उसी ओर आ रही थी। लोगों ने उसे रोकना चाहा पर तथागत ने उनसे कहा कि पगली को मत रोको, आने दो। वह तथागत के पास आयी। सब ने देखा कि तथागत के पास आते ही उसका बकना-झकना बन्द हो गया। तथागत ने उसे देख कर कहा—'बहन ! होश करो।' तथागत की यह बात सुनते ही पटाचारा को कुछ चेत हुआ। उसने अपने आपको देखा कि वह नंगी है। वह घुटनों में अपने अंगों को छिपाकर बैठ गयी। किसी ने उस पर अपना उत्तरीय फेंका और वह उसे पहन कर तथागत के और भी समीप जाकर उसने पंचाग नमस्कार किया और कहाँ—भन्ते ! मुझे शरण दीजिए। मेरे कोई नहीं रहा। पति को रास्ते में साँपने काट लिया। एक बेटे को चील उठा ले गयी! दूसरे को नदी बहा ले गयी। अब बच रहा था माँ-बाप-भाई का आसरा वे भी एक ही रात में चल बसे। उन की चिता अब भी शायद ठंडी नहीं हुई है। तथागत ने कहा-पटाचारे शोक मत करो, तुम यहाँ शरण पा सकोगी। यह कहकर तथागत ने उससे कहा—

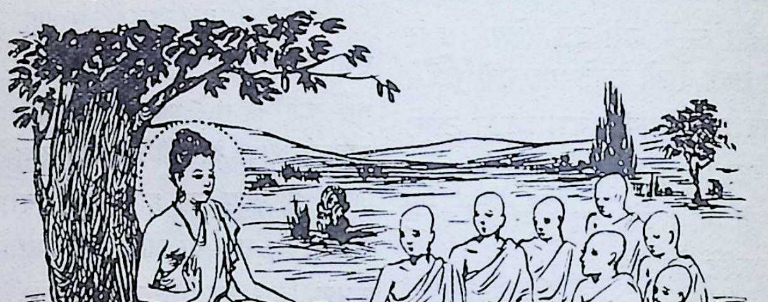

तथागत की शरण में पटाचारा

चतुसु समुद्देसु जलं परित्तकं
ततो बहूं अस्सुजलं अन्पकं ।
दुक्खेन फुट्टस्स नरस्स सोचतो
किं कारणा सोचवसा पमज्जसि ॥

—दुःख से सताए हुए, शोक करने वाले मनुष्यों के आँसुओं का जल कहीं अधिक है। उसे देखते हुए चारों समुदों का जल थोड़ा है। फिर क्यों तुम शोकवश पगली हुई जा रही हो।

न सन्ति पुत्रा ताणाय न पिता
नापि बन्धवा ।
अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि
ञातिसु ताणता ॥

न पुत्र त्राण के लिए होते हैं, न पिता और न बान्धव। मृत्यु की पकड़ से जाति भाई नहीं बचा सकते।

तथागत ने इस प्रकार उसे समझा-बुझा कर ढाढ़स बँधाया। भिक्षुणी-संघ में दीक्षित हो पटाचाराने अपनी साधना से अर्हत्व प्राप्त किया। पटाचारा अब शान्त और स्वस्थ थी। अब उसे पुत्रशोक भूल गया था पर उसमें यह चेतना थीं कि पुत्रशोक की पीड़ा को समझ सके। पटाचारा ने अपने जीवन में अपनी जैसी पाँच सौ पुत्रवतियों का उद्धार किया जो उसी की भाँति पागल हुई अपने तन की सुध-बुध भूल कर नंगी घूम रही थीं। पटाचारा जिन गाथाओं से ऐसी नारियों को उपदेश देतीं थी वे ये हैं—

यस्य मग्गं न जानासि आगतस्स
गतस्स वा ।
तं कुतो आगतं पुत्रं मम पुत्रेति रोदासि ॥
मग्गं च खोऽस्स जानासि आगतस्स
गतस्य वा ।
न नं समनुसोचोसि एवं धम्मा
हि पाणिनो ॥
अयाचितो ततोऽऽगच्छि अननुञ्ञातो
इतो गतो ।
यथा गतो तथा गतो कातत्थ
परिदेवना ॥

—जिसके आने और जाने का रास्ता तुम्हें नहीं मालूम है, जो कहीं से तुम्हारा बेटा बन आ टपका है, उसे अपना बेटा कह कर क्यों रो रही हो। अगर उसके आने जाने का रास्ता तुम्हें मालूम हैं तब भी उसका सोच क्यों करती हो, सब प्राणियों की ऐसी ही गति है। बिना बुलाए हुए वह वहाँ से आया, और बिना आज्ञा लिए यहाँ से चला गया। जैसे आया था वैसे ही चला गया, तब फिर सोच किस बात का?

* * *

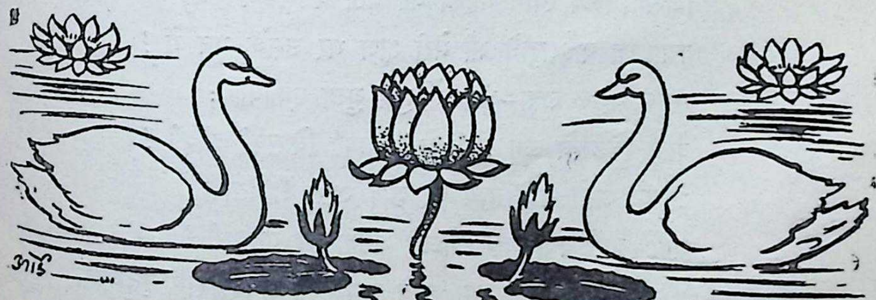

चिन्तिता राधा

[श्री विनयमोहन शर्मा]

इसी समय "कुलटा–कुल" का 'संकेत–गमन' अवरोधे,
प्रकटित कर लांछन श्री अपनी पातक को परिशोधे
वृन्दावन के कुंज मध्य अब इन्दु अंशुसह हासे;
दिशा–सुन्दरी के मुख पर ज्यों चंदन-बिन्दु विलासे ।

* * *

चढ़ता चन्द्र गगन में लख कर हरि–आगम में बाधा—
बिलख बिलख परितापमयी अति रो उठती है राधा ।

* * *

आत्म चिन्तन—

बीत रहा संकेत–समय पर वे न कुंज में आये ।
विफल रूप यौवन नव मेरा जो न उन्हें यह भाये ॥
मैं भोली ठग गई सखी के आश्वासन-वचनों में ।
अब किसकी शरणों में जाऊँ भूली सी सपनों में ?

* * *

जिसकी मिलन-चाह ले इतनी गहन निशा में आई,
वही हृदय को मदन–शरों से छेद रहा री माई !
विरह--अनल में जलूँ कहाँ तक ? हुआ विधाता वाम ।
मरना ही अच्छा है अब तो, व्यर्थ हुई बदनाम ।

* * *

इधर मधुर यह रात मुझे अब रह रह रुला रही है,
उधर अन्य कृत सुकृत कामिनी हरि को भुला रही है ।
मणि-भूषण दूषण लगते हैं पिय बिन कुछ न सुहाता,
कुसुम देह पर कुसुम-हार भी वहन नहीं हो पाता !

* * *

जिसके लिये त्याग महलों को बैठी वेतस–वन में,
क्या आ पाई सुधि भी मेरी क्षण भर उसके मन में ?
मंजुल वंजुल लता–कुंज में मुझे बुला एकाकी ;
कहाँ विलसने लगे छली वे, झलकी किसकी झाँकी ?
अथवा आये यहीं हाय पर छाई अति अँधियारी,
यहाँ–वहाँ क्या मुझे खोजते भटक रहे बनवारी ?
श्री हरि–चरण–शरण 'कवि जय' की प्रमदा सम मृदुवाणी
भक्तों के भावुक हृदयों में गूंज उठे कल्याणी !

* * *

सखी के प्रति — (राधा कल्पना कर रही है कि कृष्ण का मेरे संकेत–स्थल में न आने का कारण उनका किसी अन्य व्रजबाला के साथ विलास क्रीड़ा है।) :—

स्मर—समरोचित—विरचित—वेशा
गलित–कुसुम–दर–विलुलित—केशा
हरि—परिरम्भण—वलित—विकारा
कुच—कलशोपरि तरलित धारा—
शोभित है युवती री कोई
हरि से विलस रही जो खोई !

अलक–ललित मृदु आनन चन्द्रा
अधर–पान–मुद अधिकृत तन्द्रा
चंचल कुंडल ललित कपोला
मुखरित रसन जघन गति लोला
शोभित है युवती री कोई
हरि से विलस रही जो खोई !

हरि–आलोकित लज्जित हँसिता
बहु विधि कूजित रति–रस–रसिता
विपुल पुलक पृथु वेपथु भंगा
श्वसित निमीलित उदित अनंगा
शोभित है युवती री कोई
हरि से विलस रही जो खोई

श्रमजलकण भर सुभग शरीरा
हरि–उर पतित सुरति–रणधीरा
श्री जयदेव कथित यह 'लीला'
कलि-मल सहज विनाशन शीला।
शोभित है युवती री कोई
हरि से विलस रही जो खोई

(अप्रकाशित 'हिन्दी गीत गोविन्द' से)

* * *

श्री मैथिलीशरण गुप्त के साथ

[श्री. उमाशंकर शुक्ल]

अगस्त मास के अंत में मैं कुछ आवश्यक कार्य से लखनऊ गया था। लौटते समय सोचा कि क्यों न चिरगांव में उतरकर राष्ट्रकवि श्री मैथिली शरणजी गुप्त से भेंट करता चलूँ। कई बार निश्चय किया था किन्तु मौका ही नहीं आया था कि गुप्तजी के दर्शन होते। और महापुरुषों के दर्शन भी बड़े भाग्य से हुआ करते हैं, यों तो उनके अनुज श्री सियारामशरणजी से पहले मैं वर्धा में भेट कर चुका था जबकि वे राष्ट्रपिता बापू से मिलने वर्धा आये थे। जब चिरगांव स्टेशन पर मैं उतरा तो मन में तरह तरह की विचारधारायें उठने लगीं और मैं सोचने लगा कि मैं बिना किसी पूर्व सूचना के उनके यहाँ जा रहा हूँ, पता नहीं कि वे अपना समय मुझे देते हैं या नहीं।

चिरगांव अेक छोटा-सा गांव है, यही पांच छः हज़ार की आबादी वाला। वहाँ न स्टेशन पर मुझे तांगे दिखाई दिये और न अधिक भीड़भाड़ ही। मैंने अपना बिस्तर अपने कंधे पर रखा और गांव की ओर चला। उसी समय सहसा मुझे तेरह साल पहले की बात याद आ गयी जब कि मैं आधुनिक हिन्दी गद्य के निर्माता आचार्य पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी से मिलने उनके गांव दौलतपुर गया था। शाम के चार बजे थे। चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखायी दे रही थी। नीलाकाश कपासी बादलों से ढंका हुआ था। पावस का मनोहर मौसम!

चूंकि यह मेरी पहली यात्रा थी, इसलिये बिलकुल पता न था कि गुप्तजी का निवास-स्थान कहाँ पर है। राह में एक आदमी से पूछा कि गुप्तजी का निवास स्थान कहाँ है, तो उसने बता दिया कि आगे आप चले जाइये, थोड़ी ही दूर पर है। उस दिन रक्षाबंधन का पवित्र दिवस था।

थोड़ी ही देर में मैं गुप्तजी के भवन पहुँच गया। अेक हाथ में पानी की डेगची थी और अेक हाथ बिस्तर को संभाले हुए था। वहीं पास रखे हुए एक लकड़ी के तखत पर मैंने अपना सामान रख दिया और मन-ही-मन समझा कि जो अेक सौम्य मूर्ति सामने खड़ी हुई है, वे ही श्री मैथिलीशरण जी गुप्त होंगे। मेरा अंदाज़ सही निकला। मैंने उन्हें प्रणाम किया और अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं वर्धा रहता हूँ और मेरा नाम उमाशंकर शुक्ल है। गुप्तजी पीठ पर हाथ फेरते हुए मुझे अपने सामने वाले कमरे में ले गये और अपने अनुज श्री सियारामशरण गुप्त को बुलवाया। वे थोड़ी ही देर में आये और फिर तो हम लोगों की बातें प्रारंभ हुईं।

गुप्तजी ने सबसे पहले पूछा कि आप क्या खावेंगे—पूड़ियाँ या कच्चा भोजन। आपको कोई परहेज़ तो नहीं है। मैंने कहा कि वर्धा में रहकर परहेज़ आदि तो सब छूट गया है। आप पूड़ियाँ आदि बनवाने का कष्ट न करें। जो तैयार हो मंगवा दीजिये। रक्षा-

बंधन का दिन होने के कारण तरह तरह की चीज़ें बनी थीं। गुप्तजी मेरे पास बैठ गये और प्रेम से भोजन कराने लगे। बीच बीच में यह भी बताते जाते थे कि मैं किस तरह भोजन करूं। क्योंकि मेरे लिये उक्त भोजन कुछ नया सा था।

भोजनोपरांत इधर उधर की बातें होने लगीं। मैं अपने आप में बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। बहुत सी बातें एक साथ मेरे मस्तिष्क में आ गयीं और राष्ट्रकवि से क्या क्या पूछूँ और अपने लिये मसाला तैयार करू।

आप वर्धा कब से रह रहे हैं—गुप्तजी ने पूछा।

मैंने कहा—मेरे पितामह वहां पचास वर्ष पहले गये थे और तब से ही हम लोग वहां रह रहे हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में मैं गत तेरह साल से काम कर रहा हूँ। यों तो मैं उन्नाव जिले का रहनेवाला हूँ और मेरा गांव मनकापुर, आचार्य द्विवेदीजी के गांव दौलतपुर के पास है।

अच्छा, मैं दौलतपुर हो आया हूँ और बिंदकी स्टेशन पर उतरा था। और ऐसा कहते ही गुप्तजी को पंडित मंहावीरप्रसादजी द्विवेदी की याद हो आयी। कुछ देर तक उनकी ही चर्चा चलती रही।

मैंने पूछा कि आजकल आप क्या लिख रहे हैं?

'महाभारत' लिख रहा हूँ।

फिर मैंने ज़िक्र किया कि बापू के बारे में आपकी उस कविता की दो पंक्तियाँ बड़ी ही प्रसिद्ध हुई हैं जो कि आपने बापू के निधन के बाद लिखा था—"अरे राम हम कैसे झेलें . . . ."

मैं तो बापू के बारे में एक कविता पुस्तक ही तैयार कर चुका हूँ, उसमें बापू को मैंने अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की है और उस पुस्तक को में शीघ्र ही प्रकाशित करना चाह रहा हूँ। उसका नाम होगा—"अंजलि और अर्ध्य"।

गुप्तजी ने सेवाग्राम के बारे में बहुत सी बातें मुझसे पूछीं। वहाँ क्या होता है, कौन कौन हैं आदि जानकारी प्राप्त की। वर्धा की संस्थाओं के बारे में भी पूछा।

उनकी वेशभूषा के बारे में जब मैंने प्रश्न किया तो उन्होंने कहा कि जबसे मैं जेल गया तब से मैंने अपनी पोशाक बदल दी है। अब तो गांधी टोपी व कुरता पहनता हूँ।

समाचारपत्रों की व्यापक चर्चा हुई। गुप्तजी को यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि हिन्दी में अब उच्च कोटि के दैनिक पत्र निकलने लगे हैं। मैंने उनसे बंबई के "नवभारत टाइम्स" का ज़िक्र किया। अख़बार वाले लेखकों को क्या देते हैं, संवाददाताओं-को कितना पारश्रमिक मिलता है आदि बातों पर भी बातचीत होती रही। मैंने उन्हें सब कुछ बताया।

मैंने पूछा कि क्या आप को मासिक पत्र आपकी रचनाओं पर कुछ देते हैं?

"यों तो मैं कुछ लेता नहीं हूँ। और अगर कुछ कोई भेज देता है तो मैं उसे अपने पास न रखकर किसी संस्था को दे देता हूँ। मैं पत्रों को बहुत ही कम अपनी कवितायें भेजता हूँ। समय ही नहीं मिलता। मैं

शुरू से ही नहीं लेता रहा हूँ" — गुप्तजी ने कहा।

मासिक पत्रों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि आपके नागपुर से आजकल जो "भारती" पत्रिका निकल रही है, वह बहुत ही अच्छी है। मेरे पास आती है। उसमें नयी नयी चीजें रहती हैं।

मैंने कहा कि श्री हृषीकेश शर्मा ने हिन्दी राष्ट्रभाषा के क्षेत्र में बहुत काम किया है। उनकी 'भारती' की भी प्रगति शीघ्र होगी। पुरानी मासिक पत्रिकाओं की भी बात हुई। अब "सरस्वती, माधुरी आदि में पहले वाली बात नहीं रह गयी है। "नया समाज" का गुप्तजी ने उल्लेख किया और कहा कि अच्छा निकल रहा है। अकोला के 'प्रवाह' की भी चर्चा हुई।

जब मैंने यह पूछा कि कुछ समाचारपत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि आप के संपादकत्व में एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होने वाला है, क्या वह ठीक है। उत्तर में गुप्तजी ने कहा कि ऐसी कोई बात नहीं है। भारत में इस समय अनेकों अच्छे अच्छे समाचारपत्र निकल रहे हैं। मुझे क्या आवश्यकता है कि मैं नया पत्र निकालूँ।

मैंने गुप्तजी से प्रार्थना की कि वे एक ऐसा मासिक पत्र निकालें जिसमें उनका हिन्दी संसार को संदेश रहे। और अगर वे पत्र निकालें तो उन्हें कोई नुकसान न उठाना पड़ेगा। किन्तु इस बारे में गुप्तजी ने कोई निश्चित बात नहीं बतायी।

आचार्य काका कालेलकर, आचार्य विनोबा, स्वामी सत्यभक्त, दादा धर्माधिकारी आदि की सेवाओं की उन्होंने सराहना की।

कांग्रेस में आजकल जो शिथिलता व निष्क्रियता फैली हुई है, उससे राष्ट्रकवि की आत्मा बहुत ही विचलित है और इतना होते हुए भी उन्होंने यह आशा नहीं छोड़ी है कि निकट भविष्य में कांग्रेस में सुधार हो जायगा।

आसाम की दैवी घटनाओं का भी कवि के हृदय पर मर्म आघात हुआ है। संसार की गतिविधियों से परिचित होने के लिये वे रेडियो नियमित सुनते रहते हैं। उनके यहाँ बैटरी का रेडियो है। दैनिक, साप्ताहिक समाचारपत्रों को वे बराबर देखते हैं। पैंसठ साल की अवस्था होते हुए भी वे साहित्य का अध्ययन बराबर करते हैं।

वे बहुत ही सरल जीवन व्यतीत करते हैं। आतिथ्य-सत्कार में वे स्वयं जुट जाते हैं। जब मैं भोजन करके उठा, तो वे स्वयं हाथ धुलाने के लिये मुझे पानी देने लगे और जब तक मैं उनके पास रहा, उन्होंने मुझे इस बात का ज़रा भी भान नहीं होने दिया कि मैं किसी दूसरे स्थान में हूँ।

जब मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, मेरे सामने गुप्तजी की वह सौम्य मूर्ति खड़ी हो गयी है और उनकी आत्मीयता की याद बराबर आ रही है। यों मुझे बड़े बड़े नेताओं व साहित्यिकों से मिलने के अनेकों अवसर आये हैं किन्तु गुप्तजी के समान महाकवि के प्रेमल व्यवहार में जो अपनापन मैंने देखा है, वह आजतक किसी में नहीं पाया। उनकी हर बात में "जी हाँ" मुझे नहीं भूलती। मुझे उन साहित्यिकों पर बड़ी दया आती है जो अपने रोब के कारण किसी से

मिलने में अपना अपमान समझते हैं और अपना समय बहुत ही मूल्यवान समझते हैं और दूसरों का समय तुच्छ ! ऐसे लोगों को गुप्तजी से शिक्षा लेना चाहिये । वे लोगों में घुल मिल कर रहने में ही अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं । वे सबके साथ खुले हृदय से मिलते हैं और अपने मन की बात सामने रख देते हैं ।

गुप्तजी के अनुज श्री सियारामशरणजी आजकल दमे से पीड़ित हैं । उन्होंने अपना इलाज बंबई में कराया है । उन्होंने जब अपना छापखाना दिखलाया तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । यद्यपि उस दिन छुट्टी का दिन था, फिर भी प्रेस की विशालता की झांकी मुझे मिल गयी ।

* * *

गुप्तजी चिरगांव से बाहर बहुत कम जाते हैं । मैंने उनसे कहा कि आप एक बार सेवाग्राम व विनोबाजी का परमधाम आश्रम अवश्य देखने की कृपा करें । आपको बड़ा आनंद आयगा । उन्होंने वादा तो नहीं किया है किन्तु आशा है कि वे मेरी उक्त प्रार्थना न ठुकरायेंगे ।

चिरगांव को साहित्यतीर्थ का जो गौरवशाली पद मिला है, उसका कारण सिर्फ गुप्त बंधु ही हैं । जिस प्रकार कवीन्द्र रवीन्द्र से शांति निकेतन, गांधीजी से सेवाग्राम, विनोबाजी से पवनार आश्रम प्रसिद्ध हुए, उसी तरह श्री मैथिलीशरणजी से चिरगांव प्रसिद्ध हुआ । चिरगांव चिरायु ही रहेगा । जब तक भारत में ''साकेत'', ''भारत भारती'' व ''द्वापर'' आदि उनके ग्रंथों को हमारी संतानें पढ़ेंगी, तब तक गुप्तजी अमर रहेंगे और उनका स्थान तुलसी के समान अजर अमर रहेगा । उनकी ख्याति युगों तक रहेगी । अपने काव्य ग्रंथों से उन्होंने देश में अेक नयी धारा बहाई है, जिसमें अवगाहन कर न-जाने कितने ही रसिक व भक्त पार उतर गये हैं ।

उन्होंने जो काम किया है, वह युगों तक संसार के लोगों को शांति प्रदान करेगा । आज जिस तरह तुलसी की घर घर पूजा होती है और उनका आदर होता है, ठीक उसी तरह गुप्तजी का आदर होगा ।

वे प्रतिदिन सूत भी कातते हैं और पंडित नेहरू की अपील के अनुसार उन्होंने चावल खाना छोड़ दिया है । सन् ४२ में आपको भी अंग्रेज सरकार ने जेल में भेंजा था । तबसे गुप्तजी ने अपनी वेशभूषा बदल दी है । उसका ज़िक्र ऊपर किया गया है ।

* * *

श्री सियारामशरणजी गुप्त को इस बात का बहुत दुःख है कि दिल्ली का बिड़ला भवन, जहाँ कि गांधीजी अंतिम दिनों रहा करते थे अभी तक राष्ट्र की संपत्ति नहीं बना है । यह हमारे देश के लिये सचमुच आश्चर्य की घटना है । पाठकों को स्मरण रहे कि श्री सियारामशरणजी ने उस बारे में अेक ज़बर्दस्त आंदोलन खड़ा किया था । उसकी समाचारपत्रों में बराबर चर्चा भी हुई थी । किन्तु बाद में श्री मशरूवाला ने उस मामले की लीपापोती कर दी थी । सरकार को तो उस स्थान को अपने अधिकार में कर लेना चाहिये था । अब भी कुछ हुआ नहीं है । वह स्थान राष्ट्रतीर्थ की संज्ञा प्राप्त कर चुका है ।

चिरगांव में सबसे अधिक प्रभाव मुझ पर जो पड़ा वह है गुप्तजी की सादी रहन-सहन का। मैं दंग रह गया। यों तो मैंने सेवाग्राम में भी सादगी से रहने वालों को देखा है। किन्तु गुप्तजी की सादगी सचमुच सादगी है। वह बनावटी सादगी नहीं है। वे अपना अधिकांश समय साहित्य सेवा में ही बिताते हैं। साहित्यकार संसद में उनकी बहुत ही दिलचस्पी है और वे अपनी रचनाओं पर यदि कुछ पाते हैं तो उसे भी भेज देते हैं।

स्व. गणेशशंकर विद्यार्थी स्मारक भवन अभी अधूरा ही है। वह कब पूरा होगा इसकी चिंता गुप्तजी को बराबर है। क्या कोई धनी अैसा निकलेगा जो गुप्तजी को चिंता मुक्त कर दे। पैसे के अभाव के कारण ही उक्त स्मारक अधूरा पड़ा है।

साहित्यसंत श्री मैथिलीशरणजी गुप्त सच्चे अर्थों में "भले मानुस" हैं और मानवता के पुजारी हैं। वे सबको अेक निगाह से देखते हैं और आदर करते हैं।

उसी दिन शाम को जब मैं उनके पास से बिदा हुआ तो बड़े ही स्नेह से उन्होंने मुझे बिदा किया और अपना एक आदमी कंदील लेकर भेजा। पानी बरस रहा था तो उन्होंने अपना छाता दिया। मैं स्टेशन पर कहाँ बैठकर गाड़ी की प्रतीक्षा करूँ, यह बात भी उन्होंने बतायी और अपने आदमी से कह दिया कि स्टेशन के बाबू से कह देना कि ये प्रेस से आये हैं। मैंने दोनों भाइयों को प्रणाम किया और राशि राशि शुभकामनायें साथ ले, यह कहकर चला आया कि इस बार समय नहीं है, दुबारा जब आपके यहाँ आऊँगा तो अधिक दिनों तक रहूँगा।

गुप्तजी के चिरगांव की यात्रा अपना विशेष महत्व रखती है। चिरगांव आज साहित्य संत के कारण ही अपने में बहुत ही महत्व संजोये हुए है और अनेकों साहित्यिकों का वह सच्चे अर्थों में साहित्य-तीर्थ है।

गुप्तजी की महानता, सहृदयता व मिलनसारिता के गुणों ने उन्हें दुनिया की नज़रों में बहुत उठा दिया है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह राष्ट्रकवि को चिरायु करे।

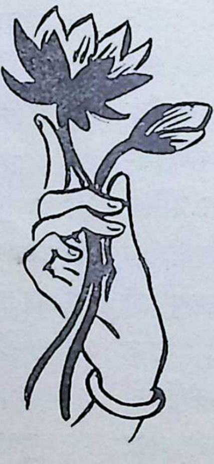

बंगला कविता :

वृन्दावनी

[श्री यतीन्द्र मोहन वागची]

आमार ब्रह्मा थाकुन ब्रह्मरन्ध्रे, शम्भु थाकुन शिरे,
आज विष्णु दाँडान कृष्ण हये मन-यमुनातीरे !
आमार ध्यान धारणा जप,
सकळ मन्त्र तन्त्र तप,
यत स्मरण मनन निदिध्यासन सेइ स्रोते याक् भासि'—
आज सब भुळिये बाजुक काळार पागळ-करा बाँशी !
आमि सेई बाँशीते परान सँचि' होबो रे वैरागी—
धार संसारे आर मन नाहि मोर तुच्छ सुखेर ळागि'।
शुधु शुन्बो श्यामेर गान,
सेइ आनन्द मोर प्राण;
ताइ सकळ-हरा आकुळ-करा बाँशीर डाके आज
आमार मन भुळिलो प्राण भुळिलो—रइलो गृहकाज !
आजि शावन-मेघेर आँधार-छावा तमाळ-बनेर आड़े
जेनो काळार काळो छोप ळेगे छे काळिन्दीरइ धारे;
सेइ कुञ्ज बाटेर पथे—
पथे उधाओ मनोर थे,
आमार उदासी मन आकुळ हये चल्लो अभिसारे—
सेइ मयूर-डाका छायाय—ढाका पियालव्नेर पारे ।
सेथा पुळक-भरा कदम फुळेर पराग-झरों फाँके,
काळो काजळ-कटा बाकळ-जटा बंशीवटेर शाखे,
येथा श्याम-ळतार रसि
दिये झुळन-दोळा कसि'—
आमार वृन्दावन-चन्द्र सुखे हिन्दोळाते दोळे—
आज चित्त आमार दुळेघ सेथाय बाँशीर द्रुत बोळे ।
सेइ वृन्दावनेर वृन्दा ह'बो, आजके आमार साध
राइ—कानुर दासी हये पाबो आनन्द-प्रसाद ।
आभार कोथाओ केह नाइ,
आमि कि छुई नाहि चाइ;

सेइ मुक्तिहारा भक्ति ते मोर परान भेसे जाय—
तोरा कुलेर काँटा कथार बलाइ तुलिस ने आर छाइ।
आज सत्य थाकुन गुप्त बुके, शिव–से थाकुन शिरे,
शुधु सुन्दरेरइ वन्दना आज कोरबो फिरे'—फिरे'!
ये या' बले—बलुक लोके,
मोरे देखुक ये या चोखे,
आमार शङ्का-शरम-चिन्ता-धरम नेन यदि आज हरि—
तबे अन्ध लोकेर मन्द कथाय भय कि आमि करि!

: छायानुवाद :

हमारे ब्रह्मा ब्रह्मरन्ध में रहें और शम्भु शीर्ष स्थान पर वास करें, आज मेरे मन रूपी यमुना तीर पर विष्णु कृष्ण होकर आवें। मेरे ध्यान, धारणा, जप और सभी मन्त्र, तन्त्र तथा तप इसके साथ ही जितने भी स्मरण, मनन और निदिध्यासन हैं वे उसी (यमुना) के स्रोत में वह जायें। आज सबको भुलाकर काले कृष्ण की पागल करने वाली बांसुरी बज उठे। मैं उसी बाँसुरी को अपने प्राणों को सौंप दूंगा और वैरागी हो जाऊँगा। इस असार संसार में तुच्छ सुखों के लिये मेरा मन नहीं टिकता। मैं कवल श्याम के गान को सुनूंगा। मेरे प्राणों को उसीमें आनन्द है। इसी लिये सर्वस्व-हरण करने वाली एवं आकुल करने वाली बाँसरी की आवाज़ में मेरे मन-प्राण भूल गये हैं—सारा गृह काज ज्यों का त्यों पड़ा रह गया है। आज श्रावण के मेघों के अंधकार से आच्छन्न तमाल-वन के पार्श्व में कालिन्दी की धारा में मानो उसी काले (कृष्ण) का दाग लगा हुआ है। उसी कुञ्ज वन के पथ में मेरा मनोरथ उड़ता फिरता है। मयूर की आवाज़ से गुंजित, छाया च्छन्न प्रियाल वन के उस पार मेरा व्याकुल मन अभिसार के लिये चल पड़ा है। वहां पुलक से भरे हुए कदम्ब फूलों के पराग से सुगन्धित वंशी वट की शाखाएं शोभायमान हैं और जहां पर श्यामलता की डोरी से झुलना लगाए हुए हमारे वृन्दावन-चन्द्र (कृष्ण) झूल रहे हैं। आज बाँसुरी की द्रुत आवाज के साथ मेरा चित्त झूल रहा है। आज हमारी यही साध है कि वृन्दावन की वृन्दा होऊँ और कृष्ण की दासी बनकर आनन्द का उपभोग करूं। हमारा कोई भी कहीं नहीं है और मेरी कोई भी चाह नहीं है। मेरे प्राण भक्ति की धारा में वहते चले जा रहे हैं। अरे, आज कुल के काँटे की बात न करो। आज सत्य गुप्त ही रहें और शिव शीर्ष स्थान पर ही रहें। मैं तो आज उसी सुन्दर की वन्दना बार बार करूँगा। जिसकी जो इच्छा हो मुझे कहले और चाहे जिस भी नज़र से लोग मुझे देखें अगर आज हरि मेरी शंका-शर्म-चिन्ता और धर्म को अंगीकार करें तब इस अन्धे संसार की मन्द बातों का भय मुझे नहीं।

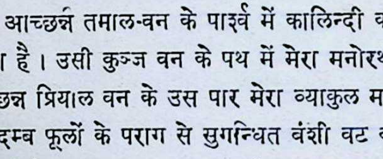

महाकवि कालिदास के दो विलाप वर्णन

(अज एवं रति-विलाप)

[श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री]

कवि एवं नाटककार की दृष्टि से महाकवि कालिदास का नाम न केवल भारतीय अपि तु विश्व के साहित्यकारों में श्रेष्ठ माना जाता है। शृंगार-माधुरी प्रासादिकता एवं उपमाओं की हृदय-ग्राहकता के कारण वे शताब्दियों से साहित्य-प्रेमियों के कण्ठहार रहें हैं। उनकी काव्यमयी में मेघदूत के कई हिन्दी अनुवाद हुए हैं और अनेक काव्यग्रन्थ या तो पूर्णतः उसको आधार मानकर लिखे गये हैं या उससे प्रभावित हैं। कुमारसंभव यद्यपि कालिदास के कवि-जीवन के उषः काल की रचना है, और इस लिये उसमें विवेक-जन्य सन्तुलितता पर्याप्त मात्रा में नहीं आने पायी तथापि कुमार सम्भव में अनुरागरक्तिमता, परिमलवाही प्रागतिक पवन-की मदिरता और ओस की अवदातता अन्य काव्यों की अपेक्षा अधिक है। रघुवंश कवि के प्रौढ़ जीवन की कृति है। इस लिये उसमें कुमार सम्भव की मादकता और सरलता भले न मिले, अनुभव-गाम्भीर्य एवं स्थैर्य जन्य प्रसाद-परितृप्ति की कमी नहीं।

रघुवंश एवं कुमारसम्भव में यों तो अनेक स्वतन्त्र एवं प्रसंगोपात्त मनोरम वर्णन हैं किन्तु रघुवंश के अष्टम और कुमार सम्भव के चतुर्थ सर्गके अन्तर्गत अज-विलाप एवं रति-विलाप को साहित्यालोचकों ने विशेष महत्व दिया है। और इसके कारण हैं। प्रथम तो करुण रस में समवेदना जागृत करने की जो शक्ति है वह अन्य किसी रस में नहीं। संस्कृत-काव्य प्रवाद के अनुसार तो काव्य की उत्पत्ति ही करुण रस से हुई है। भवभूति, शेली-एवं सुमित्रानन्दन पन्त की उक्तियाँ सर्व विदित हैं। भवभूति के राम के विलाप की सहानुभूति में (अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्) शिलायें रोती थीं और वज्र की छाती फटी जाती थी। यों शृंगार रस का विप्रलम्भ पक्ष ही कवियों ने प्रायः ग्रहण किया है। और उस पर सर्वाधिक एवं सुन्दर लिखा भी गया है। विश्व के सर्व श्रेष्ठ काव्य करुण-प्रधान हैं। पीडा के क्षणों की लम्बाई आनन्द के क्षणों की अपेक्षा अधिक होने के कारण वेदना के चित्रण का प्रभाव भी अधिक कालस्थायी होता है। हम सब जड़-जंगम स्तनन्धय के समान वेदना की झीनी शुभ्र चादर में लिपटे नियति देवी के अंक में विश्राम-लाभ करते हैं। इसी लिये करुण में संक्रमण शक्ति अन्य रसों की अपेक्षा अधिक है। स्वयं रति एवं अज के विलाप वर्णन इसके साक्षी हैं। रति विलाप करती है तो स्थली समदुःखा हो जाती है:—

विललाप विकीर्ण मूर्धजा समदुःखामिव
कुर्वती स्थलीम्।

और महाराज अज विलाप करते हैं तो सरोवर-स्थित पंछी भी उनके साथ आसूँ बहाने लगते हैं:—

विहगाः कमला करालया समदुःखा
इव तत्र चक्रशुः।

तथा—

अकरोत् पृथिवी रूदनपिस्तृज शाखा-
रस वाष्प दुषितान्।

और इसका कारण कवि ने स्वयं ही रघुवंश में दिया है:—

अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा
शरीरिषु।

तपने पर तो लोहा भी मुलायम हो जाता है फिर प्राणियों के मन का तो कहना ही क्या? काव्य या नाटक में जिन पात्रों में हमारी वृत्ति रमती है और जिनके चरित्र में हम अपने अस्पष्ट रूप की स्पष्ट प्रतिच्छवि देखने में समर्थ हो पाते हैं उनके निधन या पीड़ा के क्षणों में तो हमारा विचलित हो उठना स्वाभाविक है ही, खल पात्रों का अवसान भी मन में खेद भरता है। महाभारत का पाण्डव-निर्वेद इसका प्रमाण है। स्वयं रघुवंश में राम ताड़का-बध करते हैं। कवि ने यहाँ करुण-शृंगार का संयुक्त वर्णन किया है। शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह काव्य दोष है यही नहीं

कवि ने वर्णन में करुण के ऊपर शृंगार को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया फिर भी पीडा आवरण को फाड़ कर वाहर आ गयी है। पाठक शृंगार को भूल कर खेद में निमग्न हो जाता है। देखिये :—

राम मन्मथ शरेण ताडिता दुःसहेन
हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिर चन्दनोक्षिता जीवितेश
वसतिं जगाम सा।

एक वात और; पीडा के क्षणों में हम अपने उपाधि विरहित प्रकृत रूप में होते है। हम वेदना माता के अंक में निरम्बर शिशु के समान राजा रंक, मूर्ख ज्ञानी, वाल वृद्ध के भेद को भूल कर शयन करते हैं। भवभूति के राम, और रघुवंश की सीता राजा या रानी नहीं है। जव सीता कहती है—

वाच्यस्त्वया मद् वचनात् स राजा वह्नौ
विशुद्धामपि यत् समक्षम्।
यल्लोकवाद श्रवणादहासीः श्रुतस्य किं
तत्सदृशं कुलस्य

या हनुमन्नाटक में राम कहते हैं—

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेष
भीरुणा।
इदानी मन्तरे जाता : पर्वताःसरितो
द्रुमाः॥

तो सीता एक साधारण नागरिक की भाँति न्याय भिक्षा माँगती और राम एक [illegible]ते वाञ्छित साधारण जन के समान अश्रुपात [illegible]त हमारे सामने आते हैं। अत एव हमारी [illegible] जलांजलि के अधिकारी वन पाते हैं, अन्यथा रस का साधारणीकरण ही, सम्भव न होता। यही वात अज और रति के विलाप के सम्वन्ध में है। अज अपनी पत्नी इन्दुमती के साथ उपवन में विहार करते हैं कि नारद देव सुमनों की मालां से मण्डित वल्की लिये आकाश मार्ग से दक्षिण सागर तट पर स्थित गोकर्ण महादेव को संगीत से प्रसन्न करने निकलते हैं। पवन माला को उडा ले जाता है और माला इन्दुमती के वक्ष पर जा गिरती है। माला के स्पर्श के साथ इन्दुमती निर्जीव होकर अज पर गिर जाती है और अज इस अप्रत्याशित शरीर-पात के [illegible] से स्वयं भी भूमि पर गिर जाते हैं अज की यह विवशता, असहायावस्था हमारे मन में करुणा का आविर्भाव करती है।

वपुषा कणरोज्झितेन सा निपतन्ती
पतिमप्यपातयत्।

और यही स्थिति रति की है। काम अपने स्वामी इन्द्र के संकेत पर शिव की समाधि भंग करने जाता है। समाधि भंग की योजना परार्थ ही है पर शिव का शान्ति भंग ? फिर क्या था ?

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे
मरुतां चरन्ति
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं
मदनं चकार।

देवता वेचारे चिल्लाते ही रह गये 'हे प्रभो, क्रोध शान्त कीजिये—शान्त कीजिये' कि शिव के नेत्रों से निकल कर अग्नि ने काम देव को भस्म सात् कर डाला। पार्वती मारे डर के घर में जा घुसी और इधर रति ? वह पति की दयनीय अवस्था देख कर मूर्छित हो गयी। जव प्रवोध हुआ तो—

अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिंगन
धूसरस्तनी।
विललाप विकीर्ण मूर्धजा समदुःखा
मिवकुर्वती स्थलीम्

रति पृथ्वी पर लोट लोट कर वाल विखराये और वक्ष स्थल को धूल से भरे विलाप करने लगी। वाद में पति के मित्र मधु के आने पर उसका भावावेश तीव्रतर हो उठा और वह छाती पीट पीट कर रोने लगी

स्तन संवाधमुरो जघान च

अज ठीक उसी प्रकार भूमि में गिर पड़ते हैं जैसे माया-भ्रान्त हनुमान के मुख से इन्द्रजित द्वारा सीता वध का समाचार पाकर राम गिर जाते हैं। वाल्मीकि ने लिखा है :—

निपपात तदा भूमो छिन्नमूल इव द्रुमः

किन्तु वाद में लक्ष्मण और विभीषण द्वारा समझाये वुझाये जाने पर फिर कर्तव्य की ओर अग्रसर होते हैं। अज भी वशिष्ठ के शिष्यों के उपदेश के पश्चात यह जानकर कि इन्दुमती पूर्व जन्म में अप्सरा थी और इन्द्र के द्वारा तृणविन्दु नामक ऋषि के तप भंग के लिये प्रेरित की जाने पर ऋषि

१९५०

के शाप से मानवी के रूप में अवतीर्ण हुई और शाप के देवपुष्पस्पर्शावधि होने के कारण माल्य स्पर्श के साथ पुरातन योनि को प्राप्त हुई, धैर्य धारण करते हैं और काम में लग जाते हैं। फिर भी शोक शंकु उनके शरीर को पीडित करता ही रहता है और अनशनादि उपायों से थोडे ही दिनों बाद शरीर से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

रति पति-विरह वेदना को सहने में असमर्थ है और वह पतिवर्त्म का अनुसरण करने का प्रयत्न करती है चिता सवाँरती है यद्यपि चिता पर चढ़ते समय भी एक शल्य उसके मन में चुभता ही रहता है। रति और काम आदर्श पति पत्नी और प्रेमी। फिर भला एक के बिना दूसरा एक क्षण भी जीवित रह सका, यह क्या साधारण कलंक की बात हुई—

मदनेन बिना कृता रतिः क्षणमात्रं
किल जीवितेति मे
वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण त्वामनु-
यामियद्यपि।

इसी बीच आकाश वाणी होती है जिससे रति को अपने पति की मृत्यु का कारण ज्ञात होता है। काम को शाप था प्रजापति का। सरस्वती, (अपनी पुत्री) के प्रति अस्वाभाविक आसक्ति उत्पन्न होने से क्रुद्ध होकर प्रजापति ने काम को यह शाप दिया था जिसकी समाप्ति शिव परिणय के पश्चात होने वाली थी। काम का अशरीरी पुनर्जीवन पार्वती-परिणय के साथ हुआ और यहीं से उसकी अनंग संज्ञा हुई। इस प्रकार ये दोनों कथानक दैवी चमत्कार पर आधारित हैं। यद्यपि प्रथम की कथा यथातथ और द्वितीय की रूपक में वर्णित है। काम आंर रति इन मानसिक वृत्तियों को ही विग्रह दे देकर कथानक खड़ा किया गया है।

ऐसा मालूम होता है, पति के साथ चिता पर जल जाने की प्रथा इस देश में बहुत प्राचीन है यद्यपि सामाजिक नियम के रूप में उसका प्रचार प्राचीन काल में नहीं था। स्नेहाधिक्य ही उसमें कारण रहा होगा। वाल्मीकि रामायण में कौशल्या कहती है—

साहमद्यैव दिष्टान्तं गमिष्यामि पतिव्रता
इदं शरीरमालिंग्य प्रवेक्ष्यामि
हुताशनम्।

संस्कृत साहित्य में पत्नी-वियोग के अनेक प्रसंग आये हैं पर उनमें भावुकता वश भी कहीं सहमरण की चर्चा नहीं हैं। रघुवंश में कहा है कि अज प्राण-लोभ से नहीं निन्दा-भय से सहमरण से निवृत्त हुए। इससे इतना तो स्पष्ट है कि सहमरण जहाँ स्त्री के लिये गौरव की वस्तु मानी जाती थी वहाँ पुरुष के लिये निन्दा की। रति ने कहा है—

शशिना सह याति कौमुदी सह
मेघेन तडित् प्रलीयते
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं
हि विचेतनैरपि।

फिर भी कालिदास ने यथा शक्ति नारी के साथ न्याय करने की चेष्टा की हैं। यों उनके समस्त ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं; पर अज-विलाप तो विशेषतः उल्लेखनीय है। एक तो विशुद्ध करुण रस के वर्णन में अन्य किसी कवि ने नायक से इतने आँसू नहीं बहवाये हैं। आदि कवि ने अवश्य ऐसे स्थलों को न्यायपूर्वक छुआ है। दूसरे अन्य किसी नायक के अश्रुओं में इतनी भावानुभूति और सात्विककता नहीं है। कालिदास इस प्रसंग में स्नेह की मार्मिकता को पहचान सके हैं। यों स्वयं कालिदास भी अन्य स्थलों पर प्रेम की इतनी उँचाई तक नहीं उठ पाये। दूसरे उन्होंने अजको सहमरण से परावृत्त करके भी सहमरण से अधिक व्यथित मनस्थिति में चित्रित किया है और इन्दुमती-वियोग ही उनकी असमय मृत्यु का कारण बताया है। इन्दुमती की मृत्यु के पश्चात् अज केवल आठ वर्ष जीवित रहे और वे आठ वर्ष भी उन्होंने स्वप्नदर्शन या प्रतिकृति दर्शन से व्यतीत किये—

सादृश्य प्रतिकृति दर्शनैः प्रियायाः
स्वप्नेषु क्षणिक समागमोत्सवैश्च

और मृत्यु के समय इन्दुमती-मिलन की कल्पना उन्हें शीघ्रता की ओर ही प्रेरित करती रही—

लाभं प्रियानुगमने त्वरया स मेने

इसी लिये वे प्रायः अनशन भी करते हैं—

रोगोपसृष्ट तनु दुर्वसतिं मुमुक्षुः
प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्बभूव

स्नेह की इस उत्कट अवस्था में जब कि आसक्ति समर्पण का रूप ले चुकती है प्रिय का बियोग जीवन को सूनेपन से भर देता है और

फिर उस व्यक्ति का वियोग जिसके लिये अज ने कहा है—

अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे
विषयास्त्वदाश्रया : ।

अज, के यौवन का यह उषः काल न था। वासनायें गौण स्थान ले लेतीं और स्नेह रूप से हट कर भाव में केन्द्रित हो जाता है ऐसी स्थिति में प्रियजन का वियोग क्या नहीं छीन लेता।

गृहिणीसचिवः साखीमिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ

करुणा विमुखेन मृत्युना हरता
त्वां वद किं न मे हृतम् ।

स्नेह की व्यापकता में प्रिय की सौन्दर्य-विभूति प्रकृति में यत्र तत्र बिखरी दिखाई देती है। सीता-हरण के पश्चात् वियोग--व्याकुलता के क्षणों में स्वयं राम की इस स्थिति का चित्र गोस्वामीजी ने किया हैः—

लछमन समुझाये बहुभाँती--पूछत चले
लतातरु पाँती।

हे खग, मृग, हे मधुकर श्रेनी—तुम
देखी सीता मृगनैनी

खंजन, सुक, कपोत मृग मीना--मधुप
निकर कोकिला प्रवीना

कुंद कली दाड़िम दामिनी-कमल सरद
ससि अहि भामिनी

वरुंन पास मनोजधनु हंसा—गज
केहरि निज सुनत प्रसंसा

श्रीफल कनककदलिहरषाहीं—नेकु
न संक सकुच मनमाहीं ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि गोस्वामीजी का यह वर्णन परम्मपरा भुक्त है जिसमें रूपकातिशयोक्ति के सहारे सीता के सौन्दर्य वर्णन का प्रयत्न किया गया। कालिदास का रूप वर्णन भी कुछ प्रसिद्ध उपमानों के सहारे टिका है पर उसमें भावना सौकुमार्य है, अतः मनोग्राहक वन पड़ा है। अज की कल्पना है कि इन्दुमती उसके मनोरंजन के लिये ही अपना भाषित कोकिल को, मदालस गति कलहंसी को, चल चितवन मृगी को और विभ्रम पवन प्रकम्पन लताओं को दे गयी पर वह भूल गयी कि बिना प्रिय की उपस्थिति के उसकी स्मारक वस्तुएँ उलटी पीड़ा वर्धक होती हैं। देखिये :—

कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु
मदालसं गतम् ।
पृषतीषुविलोलमीक्षितं पवनाधूत
लतासु विभ्रमाः ॥ २
त्रिदिवोत्सुकपाप्यवेक्ष्य मां निहिताः
सत्यममीगुणास्त्वया ।
विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं नत्वव-
लम्बितुं क्षमाः ॥

रति भी अपने पति की स्मारक वस्तु-चेष्टाओं पर दृष्टि डालती है और कह उठती हैः—

हरितारुण चारु बन्धन : कल पुंस्को-
किल शब्द सूचितः
वद सम्प्रति कस्य बाणतां नव चूत
प्रसवो गमिष्यति
अलि पंक्ति रनेकशास्त्वया गुण कृत्ये
धनुषो नियोजिता
विरुतैः करुणस्वनैरियं गुरु शोका-
मनु रोदितीव माम् ।
प्रतिपद्य मनोहरं वपुः पुनरप्यादि
शतावदुत्थितः
रति दूतिपदेषु कोकिलां मधुरालाप—
निसर्ग पण्डितः ।

हरे और लालवृन्त पर विकसित, कोयले के मधुर गीत का प्रेरक यह आम का नया बौर अब किसके काम आयेगा। कौन इस का प्रयोग वाण के स्थान पर करेगा ? तुमने इन भ्रमरों से अनेक वार अपने धनुष की प्रत्यंचा का काम लिया है। आज मेरे साथ साथ यह भ्रमरावली भी तुम्हें याद कर रो रही है। देखो यह कोयल मीठे मीठे बोल बोलने में कितनी चतुर है। तुम इससे स्नेह-सन्देश के वहन का काम लेते थे। आज यह बेकार बैठी है। उठो फिर सुन्दर शरीर धारण करो और इसे रति-सन्देश पहुँचाने का आदेश दो। और इस प्रकार न जाने कितनी वस्तुएँ, कितने व्यापार मन पर बोझ रखते आते हैं।

मिथुनं परिकल्पितं त्वयासहकार :
फलिनीच नन्विमौ
अविधाय विवाह सत्क्रिया मनयोर्गम्यत
इत्यसाम्प्रतम् ॥

भला यह भी उचित है कि माता सन्तान को पालपोस कर बड़ा करें और उनकी सप्तपदी देखे-बिना परलोक प्रयाण कर दे । कैसी दयनीय स्थिति होती है ऐसे बच्चों की । फिर तुमने भी तो इस आम्र और प्रियंगु लता को अपने हाथों लगाया, वर्धित किया, सन्तान के समान इनकी चिन्ता की। क्या इनका परिणय किये बिना चल देना उचित है ? ऐसे लगता है आम्र और लताका संयोग प्राचीन काल में बड़ा उत्सव कृत्य माना जाता था । देखिये अभिज्ञान शाकुन्तल में आश्रम से विदा होते समय शकुन्तला की उक्ति :—

ताद लतावहिणिअं वण जोसिणिं दाव आमन्त इस्सम्

और उसके प्रत्युत्तर में महर्षि कण्व का कथन

चूते न संश्रितवती नवमालिकेय
मस्यामहं त्वयिच सम्प्रति वीतचिन्तः

मानव और प्रकृति की एकात्मकता का कैसा मनोरम होता वह युग जब मानव, वृक्ष, लता, वीरुध, खग, मृग, मेघ, झरनों से साक्षात सम्पर्क स्थापित कर सम-सुखदुःखिता का अनुभव करता था । जब लताएँ उसके वियोग में अश्रुपात करतीं और उसके आनन्दोत्सव के क्षणों में पुष्पों के उपहार से अभिनन्दन करती थीं ।

इन्दुमती के आकस्मिक निधन ने अज को और भी किंकर्तव्य विमूढ़ बना दिया है । अप्रत्याशित वज्रपात से मूर्छित होकर जब वह चेतनता प्राप्त करता है तो उसे प्रति-निवृत्त चेतना पर क्षोभ ही होता है:—

दयितां यदि तावदन्वगाद्विनिवृत्तंकिमिदं तया विना

कभी उसे आश्चर्य होता है:—

मनसापि न विप्रियं मयाकृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ?

मैने आज तक कभी मन से भी कोई काम तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध नहीं किया फिर मुझे छोड़ कर क्यों जा रही हो ? इतना ही नहीं:—

कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि
कथमेक पदे निरागसं जनमाभाष्यामिमं न मन्यसे

तुमने तो कभी मेरे अपराध करने पर भी बुरा नहीं माना फिर आज सहसा विना अपराध ही रुष्ट होकर मुझे बात करने योग्य भी क्यों नहीं समझतीं ?

रति की उक्ति-धारा भी भावना के उद्रेक में अज के समान ही वहती चलती है:—

कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम्
किमकारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै रतये न दीयते

तुमने आज तक कभी मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया और न मैंने ही कभी कोई कार्य तुम्हारी रुचि के प्रतिकूल किया है फिर आज विलखती हुई रति को अकारण ही दर्शनों से वंचित क्यों करते हो ?

इस लिये दोनों के मन में सन्देह होता है कि कहीं उनके प्रेम पात्रों का अब तक स्नेह प्रदर्शन कैतव तो नहीं था ? अज कहते हैं:—

ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सल स्तव
परलोकमसन्निवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः ।

निश्चय ही मैं शठ हूँ । तुम्हारा मेरा अति स्नेह छल था यह अब प्रकट हो गया । अन्यथा सर्वदा के लिये परलोक जाते समय क्या तुम मुझे मंत्रणा किये बिना ही चली जातीं । और रति कहती है:—

हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम् ।
उपचार पदं न चेदिदं त्वमनंगःकथमक्षता रतिः

तुम मुझे कहा करते थे कि मैं तुम्हारे हृदय में रहती हूँ । यह कथन यदि केवल छल न होता तो भला तुम निःशरीर हो जाते और तुम्हारी मनोधिवासिनी हो कर मैं अक्षत रह जाती ।

सहसा शरीर परित्याग के कारण अज और रति दोनों की प्रसाधना क्रिया अपूर्ण रह जाती है और दोनों अपने प्रेम पात्रों को लक्ष्य कर कहते हैं । प्रथम अज की उक्ति देखिये:—

तव निःश्वसितानुकारिभिर्वकुलैरर्धचितां समं त्वया
असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किन्नरकण्ठि सुप्यते ?

हे मधुर-भाषिणी, अपने श्वासों के समान ही सुरभित मौलसिरी के फूलों से विलास मेखला हम तुम बना रहे थे। इसे अध बना छोड़कर ही तुम कैसे सो गयीं?

और रति उपालम्भ देती है:—

रचितं रतिपण्डित त्वया स्वयमंगेषु
ममेदमार्तवम्
ध्रियते कुसम प्रसाधनं तव तच्चारु
वपुर्नदृश्यते।
विबुधै रसि यस्यदारुणैरसमाप्तेपरि-
कर्मणिस्मृतः
तमिमं कुरु दक्षिणेतरं चरणंनिर्मित-
राग मेहि मे।

हे प्रिय प्रभो, तुमने जो ये वासान्तिक पुष्प मेरे अंगों पर सजाये थे वे ज्यों के त्यों स्थित हैं। हाँ तुम्हारा वह सुन्दर शरीर अवश्य नहीं दिखाई देता! ये देवता भी कैसे कठोर हैं! तुम्हें असमय बुला भेजा। अब तो आप आइये और मेरे इस बाँये पाँव में भी महावर लगा दीजिये।

रति विलाप का वह अंश अति करुण बन पड़ा है जहाँ वह काम के मित्र वसन्त को अपनी तथा अपने पति की मरणोत्तर क्रियाओं के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश देती है—

तदनु ज्वलनं मदर्पितं त्वरयेर्दक्षिण
वातवीजनैः
विदितं खलु ते यथा स्मरः क्षणमप्यु-
त्सहते न मां विना।
इति चापि विधाय दीयतां सलिलस्यां-
जलिरेक एक नौ। अविभज्य परत्र तं
मया सहितः पास्यति ते स बान्धवः
परलोक विधौच माधव स्मर मुद्दिश्य
विलोलपल्लवाः
निवपेः सहकार मंजरीः प्रिय चूत
प्रसवो हि ते सखा।

मेरे चिता में प्रवेश कर जाने तुम मेरी जलायी अग्नि को मलय बात से उद्दीप करना जिससे मेरे जलने में विलम्ब न हो। तुम तो जानते हो मेरे बिना मेरे पति क्षण भर भी रहना पसन्द नहीं करते। अग्नि प्रदीप्त कर के तुम हम दोनों को एक ही जलांजलि देना। वहाँ तुम्हारे बन्धु काम और मैं दोनों उसे एक साथ ही पी लेगें। तर्पण करते समय तुम कोमल पल्लवों वाली आम की मंजरी अर्पित करना। तुम्हारे मित्र को आम्रपुष्प बहुत प्रिय हैं।

इस प्रकार रति चिता वरण द्वारा समग्र विरह वेदना का शमन करने को प्रस्तुत होती है कि आकाशवाणी उसमें निदाघ के अन्त में पुनः आकूल प्रवाहित होने वाली नदी के समान आशा का संचार कर मरण से विनिवृत्त कर देती है।' दूसरी ओर अज: प्राणोत्सर्ग तो नहीं करते पर प्रतिक्षण शोकचिता में दग्ध होते चिर वेदना का वरण करते हैं। उनके दुख सुख को अपना दुख सुख मानने वाले मित्र हैं, आज्ञाकारी पुत्र हैं फिर भी उनके लिये गान, उत्सव, आभरण किसी में रुचि नहीं रही।

धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतंगेयमृतु
र्निरुत्सव:
गतमाभरण प्रयोजनम्।

कालिदास के इन दोनो विलापों में रतिविलाप अधिक भावावेशमय है। यद्यपि तल्लीनता दोनों में समान है। महाकवि वाल्मीकि ने भी ऐसे प्रसंगों पर इसी शैली का आश्रय लिया है। उदाहरणार्थ राम विलाप और मन्दोदरी विलाप को लें। सीताहरण के पश्चात् वियोगाकुल राम कहते हैं:—

अपि कच्चित्त्वया दृष्टा सा कदम्ब-
प्रिया प्रिया?
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां
शुभाननाम्?
अशोक शोपापनुद शोकोपहत
चेतसाम्।
त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रिया-
सन्दर्शनेन माम्।
अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि
मैथिलीम्
मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः
सहिता भवेत्।
तिष्ठ तिष्ठ वंरारोहे न तेऽस्ति
करुणा मयि
नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं
मामुपेक्षते। ४

हा लक्ष्मण महावाहो पश्यसि
त्वं प्रियां क्वचित् ।
हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति
पुनः पुनः
इत्येवं विलपन् रामः परिधावन्
वनाद्वनम्
क्वचिदुद् भ्रमते वेगात् क्वचिद्वि
भ्रमते बलात् ।

हे कदम्ब, तुम्हारे पुष्प सीता को बहुत प्रिय थे। तुमने तो उसे इधर नहीं देखा ? कहीं वह तुम्हारे फूल चुनने आयी हो हे शोकग्रस्त लोगों का शोक दूर करने वाले अशोक मुझे सीताका दर्शन करा कर अपना नाम सार्थक करो । हे मृग ! वाल मृगों के समान नेत्र वाली मेरी सीता को तुम जानते हो ? शायद वह मृगाक्षी मृगियोंके साथ खेल रही हो ठहरो, ठहरो, सुन्दरी ! क्या तुम्हें मुझपर दया नहीं आती ? तुम्हारा स्वभाव तो विशेष परिहास करने का भी नहीं है । फिर क्यों मेरी उपेक्षा कर रही हो ? हे लक्ष्मण ! क्या तुम्हें कहीं सीता दिखायी देती है ? तुम कहाँ चली गयीं ?

इस प्रकार विलाप करते हुए राम वन से वन में मारे मारे फिरते थे । कभी दौड़ते दौड़ते गिर पड़ते थे और कभी वायु के ववण्डर की तरह चक्कर काटने लगते थे ।

वाल्मीकि के इस वर्णन में, जिसको आधार मानकर तुलसीदास ने राम विरह वर्णन-किया है कालिदास की अपेक्षा अधिक आकुलता एवं आतुरता है और इसका कारण अज एवं रामकी मानसिक स्थिति की भिन्नता है । राम के सम्मुख इष्ट जन-वियोग है, साथ ही कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न भी है। सामने आशा की एक क्षीण रेखा है। यह विप्रलम्भ शृंगार है। रघुवंश में प्राणावसान स्पष्ट है, वहाँ आशा की झलक नहीं । वायु से हिलती अलकावली अवश्य वार वार विभ्रम उत्पन्न कर देती है पर वह केवल अपने को भुलावा देना था । फिर भी वाल्मीकि के राम की विह्लता कवि की गंभीर अनुभूति की परिचायक हैं । गोस्वामी जी का वर्णन इसके सम्मुख फीका पड़ गया है ।

मन्दोदरी के विलाप में भी करुण रस का सम्यक् परिपाक हुआ है किन्तु यहाँ रावण का अविवेक, अन्याय, मद और दर्प उसके प्रति समर्पण और श्रद्धा के वीच भित्ति वन कर खड़ा है । युद्ध उसने मन्दोदंरी के परामर्श के विरुद्ध किया । इस लिये मन्दोदरी के विलाप में पत्नी धर्म जनित पीडा एवं असहायावस्था के चित्रण को ही विशेष अवकाश है। फिर भी यह वर्णन महान वन पड़ा है। पहले रावण की रानियों की पींड़ा का एक चित्र देखिये—

वार्यमाणाः सुबहुशो वेष्टन्त्यः
क्षिति पांसुषु ।
वियुक्त केश्यो दुःखार्ता गावो
वत्सहता इव ॥
ता वास्य परिपूर्णाक्ष्यो भर्तृ
शोकपराजिताः
करेण्व इव नर्दन्त्यो विनेदुर्हतयू-
थपाः ॥ २ ॥
ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं
रणपांसुषु
निपेतुस्तस्य गात्रेषुच्छिन्ना
वनलता इव । ३ ।

वार वार रोकने पर रावण की स्त्रियाँ वाल विखराये भूमि में धूल पर गिरती पड़तीं इस प्रकार तड़पने लगीं जैसे वछड़े मारेजाने पर गायें तड़पतीं हैं । जैसे यूथ पति गजराज के मारे जाने पर हथिनियाँ चिंघाड़ती हैं उसी प्रकार वे नेत्रों में आँसू भर कर रोने धोने लगीं । पति को धूल में पड़ा देख कर वे कटी हुयी वनलताओं के समान उसके शरीर पर गिर पड़ीं ।

मन्दोदरी का तो कहना ही क्या था । इतने बड़े वलवान राक्षसराज की धर्म पत्नी और आज अनाथ ! कैसी करुण स्थिति है—

एवं प्रभावं भर्तारं दृष्ट्वा रामेण पातितम्
स्थिरास्मि यद्देहमिमं धारयामि
हतप्रिया ।
शयनेषु महार्हेषु शयित्वा राक्षसेश्वर ।
इह कस्मात् प्रसुप्तोऽसिधरण्यांरेणु-
पाटल : ।
प्रपन्नो दीर्धमध्वानं राजन्नद्य सुदुर्गमम्
नय मामपि दुःखार्तां न जीविष्ये
त्वया बिना ।
कस्मात् त्वं मां विहायेह कृपणां
गन्तुमिच्छसि

दीनां विलपितैर्मन्दां किं वा मां
नाभिभाषसे ।४।
दृष्ट्वा न खल्वसि क्रुद्धो मामिहानव-
गुण्ठिताम्
निर्गतां नगर द्वारात् पद्भ्यामे-
वागतां प्रभो । ५ ।
धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा
त्वयि पञ्चत्व मापन्ने फलते
शोकपीडितम् । ६ ।

मैं राम के द्वारा मारे गये तुम्हें इस स्थिति में देख कर इस देह को धारण कर रही हूँ। निश्चय ही मैं पत्थर हूँ। तुम इतने बहुमूल्य शयनों पर सोकर आज धूल से लथपथ भूमि पर्र क्यों सो रहे हो? तुम आज लम्बी दुर्गम यात्रा को चल पड़े। मुझे भी तो साथ ले चलो। मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकूँगी। तुम मुझ दुखिया को अकेला छोडकर क्यों जाना चाहते हो? मैं दुखी हो-हो कर विलाप कर रही हूँ। तुम मुझ से बोलते क्यों नहीं। देखो मैं यहाँ बिना घूँघट सब के सामने चली आयी हूँ। मैं पैरों पैरों नगर द्वार के बाहर चली आयी हूँ। राजमर्यादा का यह भंग देख कर तुम्हें क्रोध नहीं आता? धिक्कार है मुझे। मेरे हृदय के हजारों टुकड़े क्यो नहीं हो जाते?

मन्दोदरी के विलाप में महाकवि की वृत्ति रमी है और यह प्रसंग महा काव्य की विराटता के अनुकूल ही प्रभावशाली बन पड़ा है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी इस प्रसंग पर लेखनी उठायी है किन्तु राम के प्रति अगाध श्रद्धा ने उन्हें मन्दोदरी के मानस की और झाँकने का अवकाश ही न दिया। उनके मुख से जो वाक्य निकले हैं उनमें कुछ तो वाल्मीकि के उच्छिष्ट हैं। और कुछ रसोद्रेक में असमर्थ। निम्नलिखित उक्ति मन्दोदरी के मुख से कैसी अशोभन मालूम होती है:—

तव वस सब प्रपंच विधिनाथा
समय दिशिप सब नावहिं माथा।
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं
राम विमुख यह अनुचित नाहीं।

मन्दोदरी को अतिशय धर्म परायण चित्रित करने में कवि नारी की मानसिक स्थिति को समझ न पाया। मन्दोदरी जैसी पतिव्रता स्त्री पति की भुजायें और शिर जम्बूकों को जीते जी सौंप देगी, यह कल्पना कौन कर सकता है?

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास के विलाप वर्णनों की तुलना में वाल्मीकि को ही-सरलता के साथ उपस्थित किया जा सकता है। कालिदास कलामय अधिक हैं तो वाल्मीकि की दृष्टि विशाल है। वाल्मीकि में उद्दाम उच्छवास और वेग अधिक है तो कालिदास में अश्रु और तारल्य। जहाँ तक वाग-वैदग्ध्य का सम्बन्ध है कालिदास आगे हैं।

अज वर्णन प्रसंग में कवि ने मुनिमुख से उपदेश के बहाने तप्त हृदय पर आलेप की व्यवस्था भी की है। इस प्रसंग में कुछ श्लोक तो बड़े सुन्दर हैं। देखियेः—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृति-
र्जीवनमुच्यतेवुधैः
क्षणमप्यवतिष्ठतेश्वसन् यदि जन्तु
र्नेनुलाभवानसौ।
स्व शरीर शरीरिणावपि श्रुत संयोग
विपर्ययौ यदा।
विरहः किमिवानुतापेयद् बद वाह्यै-
र्विषयैर्वियश्चितम्।
अवगच्छति मूढ चेतनः प्रियनाशंहृदि
शल्यमर्पितम्
स्थिर धीस्तु तदेव मन्यते कुशल
द्वार तया समुद्धतम्।

मरना तो शरीर-धारियों का स्वभाव हैं। जीना ही विकार है। ऐसी स्थिति में क्षण भर भी यदि कोई प्राणी साँस ले सके तो बहुत समझना चाहिये। देखिये कबीर की ये पंक्तियाँ:—

दस द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन।
रहिवे को आचरज है गये तो अचरज कौन?

जब अपने शरीर और आत्मा भी मिलते और बिछड़ते हैं तो बाहरी विषयों के वियोग से भला विद्वान परितप्त क्यों हो? प्रिय का नाश होने पर मूर्ख व्यक्तियों को ऐसा लगता है जैसे किसी ने उनके हृदय में शूल चुभो दिया हो किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है जैसे किसी ने हृदय में गड़ा हुआ काँटा निकाल कर बाहर कर दिया है। और फिर — स्वजनाश्रु किलातिसंततं दहति प्रेतमिति-

प्रचक्षते — विद्वानों का कथन है कि परिजनों की अश्रु-धारा प्रेत के मन को और जलाती है ।

उपर्युक्त वर्णनों से जहाँ पुरुष और स्त्री की सामाजिक मर्यादा पर प्रकाश पड़ता है वहाँ रनवासों मे होने वाले अवगुंठन, पितरों को दी जाने वाली जलांजलि और तर्पण, मृत्यु-काल में रोने धोने के सम्बन्ध में शास्त्रीय धारणा, दैवी शक्तियों में विश्वास आदि बातों का भी पता लगता है । निवापाञ्जलि की अनेक बार आयी हुयी चर्चा कालिदास के रचना काल के निर्धारण में भी सहायक हो सकती है जिसका प्रचार चौथी सदी से पूर्व होना सम्भव नहीं मालूम होता ।

अज एवं रति विलाप की अनेक पंक्तियाँ कहावतों का रूप धारण चुकी हैं और प्रायः उध्दृत की जाती हैः—

विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा
विषमीश्वरेच्छया ।१।
तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपा-
श्रितालता ।२।
धिगिमां देहभृतामसारताम् ।३।
मरणं प्रकृतिः शरीरिणां प्रकृति जींवन
मुच्यतैवुधैः ।४।
प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषेहि-
फलाय कल्पते ।५।
अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनै वारभते
प्रजान्तकः ।६।

१—परमेश्वर की इच्छा से कभी विष भी अमृत बन जाता है कभी अमृत भी विष हो जाता है ।

२—वृक्ष नहीं काटा, उसकी डालों पर फैली हुई लता काट दी ।

३—धिक्कार है जीवन की निःसारता को ।

४—मरण तो प्राणी का स्वभाव है, जीवन ही अस्वाभाविक स्थिति है ।

५—जीवन शेष हो तो उपचार काम देता है ।

६—भगवान कोमल वस्तुओं को कोमल निमित्त से ही मारता है ।

उपमाओं के लिये तो कालिदास प्रसिद्ध ही हैं । इन वर्णनों में भी उन्होंने अपनी यह विशेषता हाथ से नहीं जाने दी है । उदाहरणार्थ देखिये 'चिताभस्म कपोत कर्वरम्' । कपोत के समान कर्वरी चिताभस्म । कितनी स्वाभाविक उपमा है । इसी प्रकार :—

गत एव न ते निवर्तते स सखादीप
इवानिलाहतः
अहमस्यदशेव पश्यमामविषह्य व्यसनेन
धूमिताम् ।

इस श्लोक में काम को वायु द्वारा बुझे दीप की जिसका गया प्रकाश लौटता नहीं और रति को धूमिल बत्ती की उपमा दी है । और इस प्रकार उपमाओं से दोनों वर्णन भरे पड़े हैं ।

इतना विवेचन करने के पश्चात एक प्रश्न अनायास मन में उठता है कि कालिदास के इन विलापों का संस्कृत साहित्य में इतना महत्व किस कारण है ? करुण भावाभिव्यक्ति के कारण ? प्रसाद गुण के कारण ? विषयानुकूल छन्द के चयन के कारण ? अनुभूति की तीव्रता और गम्भीरता के कारण ? उपमाओं और वाग्विदग्धता के कारण ? निश्चय ही ये सब गुण इन वर्णनों में हैं । फिर भी क्या ये गुण उनके अन्य वर्णनों में नहीं है। स्वयं रघुवंश में उपर्युक्त गुणों से युक्त कई स्थल हैं । हाँ करुण रस की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता किन्तु विप्रलम्भ शृंगार का अवलम्बन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक मनोरंजक होता है और कालिदास उसमें निष्णात ही हैं ।

वास्तव में रति और अज के विलाप वर्णनों की महत्ता का कारण है स्नेह के इस स्वरूप का चित्रण जो समाज को ग्राह्य है, विवाहित प्रेम । जिसकी चर्चा करते समय हमें दायें बायें झाँकने की आवश्यकता नहीं होती । इस प्रेम में छल छिपाव की आवश्यकता नहीं। यह हमारी अतृप्त वासनाओं के कर्दम को बहानेवाली अन्तर्वाहिनी नाली नहीं है, यह है सात्विक स्नेह की वह स्रोतस्विनी जिसमें धुल कर हमारा मन निर्मल बनता है। आर्य-संस्कृति की सहधर्मचारिता इसमें आश्रय पाती है। संस्कृत साहित्य के अन्तिम खेवे के कवियों ने प्रेम के नाम पर परकीया के भेदोपभेदों का जो व्यूह निर्माण किया और वैष्णव कवियों ने आदर्श मधुरा भक्ति के लिये जिस भागवत वाक्य 'योषा जारमिव प्रियम्' को आदर्श माना वह हमारे लिये शोभा की वस्तु नहीं है। प्रेयसी शब्द हमारे सामाजिक

पतन का परिचायक है। सौभाग्य ही कहना चाहिये कि नारी पक्ष से 'प्रेयान' शब्द का प्रयोग साहित्य में नहीं हुआ। उसने सदा 'प्रियतम' शब्द को ग्राह्य माना जिसका 'तमप्' प्रत्यय व्यक्ति-निर्धारण में नहीं वस्तुनिर्धारण में प्रयुक्त हुआ है।

टेनीसन और उनके परवर्ती अँगरेजी कवियों को पढ़ कर जो लोग यह मान बैठे हैं कि स्वकीया-स्नेह हमें ? भावनाओं एवं कल्पनाओं के विस्तार, प्रसार को अवकाश नहीं है, उन्हें कालिदास और वाल्मीकि के ये विरह-वर्णन अवश्य पढ़ने चाहिये।

* * *

प्रेम मृत्यु से अधिक बलवान है, और मृत्यु जीवन से अधिक शक्ति-शालिनी है, यह जानते हुए भी मनुष्य-मनुष्य में कितनी संकुचित सीमाएँ खिंची हैं।

* * * *

यदि तुम अपने कल्पना के लोक में आकाशी मेघों को स्पर्श कर लो और समझने लगो कि मैं बहुत ऊँचे स्थान पर आ गया हूँ, यदि तुम असीम सागर के भी उस पार पहुँच जाओ और समझने लगो कि मैं बहुत दूरी पर आ गया हूँ तो मैं कहूँगा कि जब तुम धरती में एक बजि बोते हो तब उससे भी अधिक ऊँचाई पर पहुँच जाते हो। जब तुम अपने पड़ोसी के नन्हें बच्चे का ईर्ष्याहीन निश्छल चुम्बन लेते हो तब उससे भी बड़े महासागर पार कर जाते हो।

* * * *

मन्दिर के कोने में बैठा हुआ पुजारी उसके स्वर्ण-शिखर को कैसे देख सकेगा ?

* * * *

मेरी आत्मा की डाली अपने पक्के मीठे फलों के भार से झुकी जा रही है। क्या कोई ऐसा उदार हृदय, प्रभु का उपासक नहीं जो इन फलों से अपने उपवास को तोड़े !

मेरी जीवन-सरिता, निर्मल जल लिये बहती जा रही है, क्या कोई ऐसा प्यासा नहीं जो मेरे तट पर आकर अपनी युग-युग की ज्ञान-पिपासा शांत कर सके।

यदि मैं फूल-फल हीन वृक्ष होता तो मुझे अपने जीवन का सूनापन, इस भार से भी अधिक अखरता।

यदि मैं केवल एक अंधा सूखा कुँआ होता; जिसमें लोग पत्थर फैंका करते तो वह स्थिति मेरे लिए और भी अधिक भयंकर होती।

— खलील जिब्रान : 'अमिताभ'

मराठी साहित्य-प्रवाह-२

[श्री. प्रभाकर पंडित]

१. स्वर्गीय साने गुरुजी के कला और मृत्यु पर विचार :

साने गुरुजी की आत्म-हत्या से मराठी साहित्य-क्षेत्र की एक बहुत महान, त्यागमयी, वात्सल्यभरी मानवतावादी प्रतिभा का अंत हो गया। उनकी मृत्यु पर प्राय: सभी पत्रों ने और साहित्यिकों ने भाव-पूर्ण श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। वि. स. खांडेकर ने मासिक 'मनोहर' में लिखते हुए याद दिलायी कि कैसे 'मेरे लाल' चित्रपट के देखते समय अश्रुपूरित नेत्रों से साने गुरुजी माता की प्रतिमा को प्रणाम करते रहे; रा. ज. कुंभोजकर ने एक संस्मरण दिया जिसमें एक अछूत लड़की ने जब उनसे पानी माँगा था तब वे कैसे उसे अपने घर ले आये और उसे अपने पानी के घड़े से उन्होंने गिलास में पानी दिया और वे रो पड़े थे। साथी गोरे, लिमये, एस. एम. जोशी आदि के संस्करण बहुत ही हृदय-द्रावक हैं। आचार्य अत्रे का 'नवयुग' का विशेष अग्रलेख 'मृत्यु का चुंबन लेनेवाला महाकवि साने गुरुजी' एक गद्यकाव्य ही है। ना. ग. जोशी ने नई 'अभिरुचि' में स्व. साने गुरुजी के व्यक्तित्व का और जीवन साधना का आकलन करने का प्रयत्न किया है। उनकी प्रेम-रूप परमेश्वर की मानस सेवा का उन्होंने श्रद्धायुक्त चित्रण किया है।

यहाँ उन सब संस्मरणों का सार देने लगूँ तो एक ग्रंथ ही हो जायगा। अतः मुझे उनकी जो दो-तीन महत्वपूर्ण कृतियाँ याद आ रही हैं उन्ही के चुने हुए अवतरण देने का यत्न कर रहा हूँ। 'दीपावली' वार्षिक १९४७ में साने गुरुजी ने 'मेरे अश्रुओ' नामक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने जेल-जीवन में लिखी अपनी कविताओं का मूलोद्गम बतलाया था। त्रिचनापल्ली जेल में उन्होंने 'सत्याग्रही' खंड-काव्य लिखा। सन् १९३५ में उनका 'पत्री' नामक राष्ट्रीय कविता संग्रह प्रकाशित हुआ, जो सरकार ने जब्त कर लिया था। उसमें साने गुरुजी के व्यक्तित्व का पूरा निखार मिलता है। कुछ नमूने देखिये—

धूलिकण हो फूलफल हो
कंकडी हो या कि पल्लव
देखता हूँ दिव्य अनुपम रूप
मंगलमय वहाँ तव
गाऊंगा मैं सतत तुम्हारा गान।
सत्व का औ सत्य का जग में
रखा तुमने सदा सम्मान
तव कथा सुनने विकल
भगवान के भी कान
गाऊंगा मैं सतत तुम्हारा गान॥

'भारतमाता के प्रति' इस ओवी की कविता के साथ ही, कभी-कभी वे उदासीनता के शिकार हो जाते। उन्हें लगता शुद्ध बने बिना भगवान नहीं हैं और भगवान मिले बिना शुद्धि संभव नहीं। अत: वे स्वयं से और दुनिया से ऊब जाते। 'द्विविध अनुभव' कविता में लिखते हैं—'बाहर तमतोम भरा

बाहर सब अन्धकार !' फिर भी जैसे उनकी अंतरात्मा उन्हें चुप नहीं बैठने देती और वे कहते—'विश्व का प्रत्येक कण—जग में बिखेरे द्युतिकिरण !' इसी समय उन्होंने अपने आँसुओं के प्रति कविता लिखी थी—

मेरे आँसुओ
मेरे साथियो
चलो कमरे में
दरवाजा लगा लो
दौड़ दौड़कर आओ
तुम्हीं मुझे हँसाओगे !

जेल के जीवन के ऐसे कई संस्करण साने गुरुजी ने बहुत साल, प्रसादमयी शैली में लिखे हैं। यही मुझे उनके मराठी ग्रंथ 'भारतीय संस्कृति' का अंतिम अध्याय 'मृत्यु का काव्य' याद आ रहा है जिसमें वे मृत्यु के लिये लिखते हैं—

"मृत्यु है महायात्रा ! मृत्यु है महाप्रस्थान ! मृत्यु है महानिद्रा ! नित्य की मिहनत के बाद हम सोते हैं। यह नींद लघु मरण है। जीवन भर के परिश्रम और संघर्ष के पश्चात् हम ऐसे ही सोते हैं। रोज की नींद आठ घंटे की। यह नींद लंबी होती है। मृत्यु है मांकी गोदी में जाकर सो जाना !……मृत्यु का अर्थ है नैहर जाना। मृत्यु है विश्रान्ति। मृत्यु है अनंत में स्नान। परिपूर्णता के शिखर की ओर एक कदम है मृत्यु। मृत्यु है एक प्रकार का विस्मरण ! मृत्यु की बड़ी अवश्यकता होती है। मृत्यु न होती तो दुनिया बहुत विद्रूप कुरूप हो जाती। …सुकरात ने मरते समय अमरता का स्वाद लिया। गेटे मरते हुए बोला—अधिक प्रकाश, अधिक प्रकाश ! 'तुकाराम, राम, कृष्णहरि' कहकर समर्थ रामदास ने कहा—'मेरा दासबोध है। रोते क्यों हो ?' लोकमान्य तिलक मरते समय 'यदा—यदाहि धर्मस्य' कह कर मरे। पंडित मोतीलाल नेहरू गायत्री मंत्र कह कर मरे। देशबंधु दासने कहा—'आया, तुम्हारे प्रियतम द्वार में पुनः दीपक बोलने गया ! हरिभाऊ आप्टे के पास गोपाल कृष्ण गोखले मरते समय कह गये-'हरिभाऊ ! इस दुनिया की मौज देख ली। अब उस दुनिया की देखेंगे। भगिनी निवेदिता निजधाम को जाते समय बोलीं—'वह देखो उषः काल ! भारत का उषः काल ! प्रकाश देखकर मैं मर रही हूँ ! धन्य !!' शिशिर कुमार घोष चैतन्य-चरिम्तृतात का अंतिम भाग, उसके अंतिम पृष्ठ की पंक्तियों को मुद्रित देखकर बोले-'अब मेरा काम पूरा हुआ। निमाई गौर ! अब अपने अंचल में मुझे ले लो !' महात्मा गांधीके श्रद्धास्पद मगनलाल गांधी मंगल मंदिर खोलो दयामय ! मंगल द्वार खोलो ! कह कर गये !"

इसी लेखके अन्तमें कबीर का **करले सिंगार चतुर अलबेली** पद साने गुरुजी ने पूरा उद्धृत किया है। साने गुरुजी की मृत्यु धर्मानंद कोसंबी की भाँति इच्छा मृत्यु थी !

गांधीजी की और महाराष्ट्र में उस हत्या की प्रतिक्रिया से ही साने गुरुजी बहुत अधिक उद्विग्न और उद्वेलित थे। उन्होंने महाराष्ट्र की हृदय शुद्धि के लिए उपवास किया तब अप्रैल १९४८ में इन पंक्तियों के लेखक ने साने गुरुजी के बड़ोदा में दर्शन किये थे। वे राजनीति से एक तरह से विरक्त से हो गये थे। १९४५ में धूलियामें दिये एक भाषण में कला के प्रयोजन के विषय में साने गुरुजी ने कहा था—

'मैंने एकबार आचार्य भागवत से कहा है कि मैं एक परार्धांश महात्माजी का उनसे भी एक परार्धांश विवेकानंद का और उनका भी एक परार्धांश रवीन्द्रनाथ का हूं। रवीन्द्र चलते-फिरते काव्य थे। परन्तु जब एकबार तूफान आया तो उन्होंने

१९५०

अपने रेशमी कपड़ों की परवाह न कर वे धूलमें वैठ गये। रवीन्द्रनाथ का जीवन और काव्य विश्वके संगीत से एकरूप होने वाली, गरीबों तक पहुँचाने वाली, समाज की राजनैतिक सामाजिक विषमताएँ दूर करने वाली साधना थी। मैंने रवीन्द्रनाथ से यही सीखा कि कला कलातीत की ओर ले जानेवाली है ! कलाकारो ! सौन्दर्योपासना से पहले सौन्दर्य निर्माण तो करो। विनोबा को एक प्रख्यात चित्रकारने अपना चित्र दिखाया। विनोबा को वह विल्कुल पसंद नहीं आया। चित्रकार बोला–आप गांधीवादी लोग बड़े आस्तिक होते हैं।

तब 'विनोबा ने कहा—' तुम मेरी चित्रकला देखोगे ?' उसे आश्चर्य लगा। बिनोबा उसे हरिजन-बस्ती में ले गये और उन्होंने उन गन्दे, दुबले पतले, मैले-कुचैले बच्चों को दिखाकर कहा—-इन जीवित चित्रों को कुछ बनाओ। इनमें रंग भरो। इनके आगे निष्प्राण चित्र किस कामके ? सब कलाऐं जीवन के सूर्य के आसपास ग्रहों की भाँति प्रदक्षिणा करें। यह तो सबको अच्छी तरह मालूम है कि सेव के बगीचोंवाले लोग क्या खाते हैं ? पर मैंने वारली जाति की एक स्त्री के झोंपडी में घास का ढेर देखा। और उससे पूछा–इसका क्या करती हो। उसने बताया अन्न नहीं मिलता, इसलिए उसे उबालकर मैं खाती हूँ। "चावल तुम्हें नहीं मिलते" "चावल सब आप लोगों के लिए है। साहित्यिको, कलाकारो, सामाजिक अन्याय दूर करने में अपनी समूची शक्ति लगाओ।"

यही साने गुरुजी का संदेश था। उनका समग्र वाङ्मय "श्यामू की माँ" की भाँति हिन्दी में आना चाहिए।

२. निधर्मी भारत :

हमारे वर्तमान शासक बार-बार हमें अपने नये गणराज्य के लौकिक अथवा धर्मातीत (सेक्युलर) रूप के बारे में आगाह करते जाते हैं। परंतु उनकी कथनी और उनकी करनी में कोई तालमेल नहीं है, इस बात का सुंदर बुद्धिवादी विश्लेषण प्राध्यापक न. र. फाटक ने गत अगस्त के किर्लोस्कर के ३१ वें वर्ष के प्रथमांक में एक लेख में किया है। उनके ऐतिहासिक तर्कशुद्ध लेख का शीर्षक ह: **हिंदुस्तान निधर्मी राष्ट्र कैसे बनेगा ?** कुछ सुझाव जो उन्होंने दिये हैं, वे बहुत विचारणीय हैं। 'क्या आपकी–यानी भारत के नेताओं तथा निवासियों की निम्न बातों के लिए मानसिक तैयारी है ?

(१) धर्म के साथ ही ईश्वर का भी शासन सम्बधी कारोबार में से संपूर्ण बिष्कार।

(२) यात्रा, उत्सव, उरूसों को शासन यंत्रद्वारा कोई महत्त्व न दिया जाय;

(३) धार्मिक त्योहारों की छुट्टियाँ बंद की जायँ;

(४) देवस्थानों के जीर्णोद्धार जैसी बातों में सरकारी द्रव्य का अपव्यय न किया जाय;

(५) हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि के लिए अलग अलग कानून न बनाये जायँ; और—

(५) शिक्षण-संस्थाओं में से धार्मिक शिक्षा को बंद कर दिया जाय।

(६) गाँधीजी की भाँति सभी धर्मों को समान भाव से देखा जाय। किसी भी धर्म की चाहे वह हिन्दूधर्म ही क्यों न हो—कर्मकांड और बाह्याचार को महत्व देकर अंधश्रद्धा को बढावा न दिया जाय।

क्या हम सचमुच इस कसौटी पर लौकिक जनतंत्र के निवासी हैं ?

३. स्त्रियों की श्रेष्ठता :

प्रख्यात इतिहासज्ञ रियासतकार गोविंद सखाराम सरदेसाई ने वराहमिहिर का एक श्लोक 'स्त्री' मासिक में अर्थ सहित दिया है। वराहमिहिर का काल ४९७ से ५८५ ईस्वी माना जाता है। उसकी 'बृहत्संहिता, भाग ७४, अध्याय ९ में से ये श्लोक लिये गये हैं:—

"श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणांल्हादजननं..."

इसका अर्थ है: "स्त्रियों का शब्द, दर्शन, स्पर्श अथवा केवल स्मरण मात्र भी पुरुषों को आनंद देता है। अतः विधाता ने स्त्रियों के समान अन्य कोई रत्न नहीं बनाया। स्त्रियों से ही धर्मार्थ भय-भीत होते हैं। पुत्र-सौख्य इसी गृहलक्ष्मी से है। अतः स्त्रियों का मान और विनय सदा रक्षित करना चाहिये।"

'येप्यंगनानां प्रवदन्ति दोषान्....'

"जो कोई स्त्रियों के गुण छोड़कर वैराग्य दृष्टि से केवल उनके दोष ही बतलाते हैं, वे केवल दुर्जन हैं ऐसा मैं समझता हूँ। उनके वाक्य सद्भावना युक्त नहीं होते हैं।

'प्रभूतसत्यं कतरोङ्गनानां....'

"सच्ची बात कहो, ऐसा कौनसा दोष स्त्रियों में विशेष है जो पुरुष में नहीं होता? पुरुषों ने स्त्रियों को केवल अपनी ढिठाई और दुष्टता से दूर रखा है। वस्तुतः गुण से तो वे पुरुष से भी श्रेष्ठ हैं ऐसा मनु भी कहता है।"

'जानयो यानि गेहानि....'

"जिस घर की स्त्रियाँ अप्रतिष्ठित होकर शाप देती है, वे घर भूत की साया में पलनेवाले मकानों की तरह सब ओर से नष्ट होते हैं!"

"घर में पत्नी अथवा माता के रूप में स्त्री होती है तभी आदमी को जन्म मिलता है। इस कारण हे अकृतज्ञ जन, स्त्री की निंदा करने से तुम्हें सुख कैसे मिलेगा?"

४. वैदर्भी मराठी में दो लोकगीत :

श्री. ना. रा. शेंडे ने ग्रामगीतों का एक सुंदर संग्रह तैयार किया है। 'सुषमा' में प्रकाशित 'खेडुतों का काव्य' नामक लेख में उन्होंने कई ऐसे गीत दिये है। नीचे खानदेश का एक गीत **'सोने का खेत'** और रायपूर छत्तीसगढ़ का एक गीत **'भात की रोपनी'** दिया जा रहा है। भावार्थ हिन्दी में अंत में दे रहे हैं।

१. सोन्याचं शेत :—

बहरलं बहरलं शेत जोंधऱ्याचं वाई
कनसं डुलले डुलले मोतीयाचे लई
    त्ये वाई मोती क् मोती क् हासाया लागले
    गहू काय बोलले बोलले त्या जोंधऱ्याईले
तूं दादा कनिसा कनिसा भाग्याचा गा पुरा
जॊंधरा बोलला बोलला मले तुहाच आसरा
    ओंबी काय हासली हासली लक्षुमीची सरी
    मराठ् देसची देसची लकलकते गरसोरी
पाहाला निंघाली निंघाली इद्रेची मावुली
तिनं क् पाहिलं पाहिलं सोन्याची नंगरी
    त्या वाई नंगरींत नंगरींत दोघे भाऊ भाऊ
    जोंधऱ्या-गव्हाची सजली पुतण जाऊ
तूर-तीर-मूंग वो जवस जाऊ नंदा घरीं
त्या वाई आंगनीं आंगनीं नेसून आल्या जरी
    फुगळी क् घालती घालती देव क् पाहती.
    मराठ् देसची देसची आस क् धरती
दिठ वाई लागल लागल तुह्या इसऱ्यावर
तूं वाई सुंदरे सुंदरे झटपट लाव् घरदार

२. भाताचीं रोवणीं :—

चाला आयांनो वायांनो रोवनं वसून जाईल
आला सावनाचा मास डोंगरडोंगर चिखल
दादा सोनवाचं शेत सावनाची आली छाया.

ओरी ओरी पात धरा नाय तू पेंड्या जातीन वाया
अगा धुरीवरच्या बापा जुळी फेंकूं नको असी
दादा सोनबाचं शेत माती हाये भुसभुसी
अवो रोवा घाई घाई वादल गरजते लई
घरामंधी असल वाट पाहात् सईजाइं
बांधी झाली हिवरी पिवरी लगीन चिमनाईचं
जोट नेसून निघाली पाहे शेत सोनबाचं
वांघ्या-वोळीं भरल्या वाई, भेंडकाईची वरात
तांदराच्या शेतांतून जाते नाचत गाजत
सावना माझ्या बापा नंजर ठेव शेतावर
गावामंधी तुहे लेक वसले उपासी वाटीवर

(१) सोने का खेतः—

बाजरे का खेत हे सहेली, लहलहा उठा है। बालियों में मोतियों के गुच्छे डोल रहे हैं। वे मोती हंसने लगे। गेहूँ ने बाजरे से कहा-"हे दादा! तू पूरा भाग्यवान है।" बाजरा बोला 'मुझे आप ही का आसरा है!" एक एक ऊँबी ऐसी हँस रही है जैसे लच्छमी के गले की कंठी हो। मराठा देस की गले की कंठी चमक रही है। विद्यादेवी देखने निकली; उसने सोने की नगरी में दो भाई देखे—गेहूँ और बाजरे की जोडी अरहर-मटर-मूंग जवास की ननद जेठानियाँ अपने घरके आँगन में जरी पहनकर आयी हैं। वे खेल रही हैं, देवता देखते हैं। मराठा देसकी आशा यही धरती है। तेरे गहनोंपर नज़र लग जायगी। तू सुंदरी है, जल्दीसे दरवाज़ा लगा ले।

(२) चलो री मैयाओ, बहिनाओ, रोपनी हो जायगी। सावन का महीना आया। कीचड़ की डुंगी (पहाड़ी) बन गयी है। दादा सोनबा का खेत है, सावन की छाया है। अरी-अरी पत्री रखो, नही तो ये सब पूले व्यर्थ जायेंगे। अरे धुरिया के बाप! ऐसी डबल न फेंको। दादा सोनबा के खेत में मिट्टी भुरभुरी है। अरे जल्दी जल्दी रोपनी करो, बादल बहुत गरज रहे हैं, और घरमें सखी-जूही राह देख रही होंगी। जमनि हरी पीली हो गयी, चिड़िया रानी की शादी है। कीमती साड़ी पहिन के निकली है, सोनबा का खेत देखने। गली पोखी भर गये। मेंढकी की बारात है—चावल के खेत में से नाचती गाती जाती है। सावनां मेरे बाप! ज़रा खेतपर नज़र रखना। गाँवमें तेरी लड़की उपवासी राह में बैठी है।

५. कुछ और नवकाव्य :

मराठी की इधर की कुछ व्यंगमयी नयी कविताओं के नमूने पेश हैं। तीनों कविताएँ अपने आपमें स्वयंपूर्ण हैं। 'मनोहर', 'अभिरुचि' में प्रकाशित!

१. विंदा करंदीकर की कविता :

"गुप्त रोग"

है गुलामीः 'राष्ट्रका वीर्यक्षय'
'मनुष्यता का महान दूषण!'
परंतु स्वतंत्रतामें भी छिपी गुलामी है।
गुप्त रोग यह, उससे भी भीषण है!

२. शेख की कविताः 'गधे के प्रति–'

"अधिकार उमर के लिए लड़नेवाले, मूर्खों, दुलत्तियाँ झाड़ो! लड़ने वालों को उनकी परवाह नहीं है, अपनी राहपर चलते हुए वे भी लातों का जवाब लातों से निश्चित देंगे ये घूड़े जिनपर कूड़ा नहीं है, फूँक फूँक कर खाओ और उसमें पोषित हो 'कुम्हार के घर का जीवित प्रेत!' मर जाने तक काम करो, जरा भी आराम मत करो जल्दी करो। खूब खाते रहो कोड़े। पसलियाँ पिचक जाने दो, कमर नीचे

धँसने दो । और फिर मालिक के आगे जोहार करने हाजिर हो जाया करो । कौन तुम्हें लाचार कहे ? आप तो आदर्श के ऊँचे मेरु-मंदार हो । आपकी स्वामिनिष्ठा का तमगा दुनिया को गवाही देगा । स्वामी की ओर से 'कभी न कभी' जरूर तारीफ होगी । फिर आपके पिता सरग पहुँच जायेंगे। आशाएँ पूरी होंगी । और फिर आप अपने अस्थिपंजर भी सुरक्षित रखो । आगे के लिए 'कभी न कभी वे हाथों में सोने का सुंदर कड़ा जो पहनायेंगे !"

३. राजा पाटणकर की कविता 'बिलाव':-

थकित 'श्रांत, फुटपाथपर शरीर फैलाये अंधेरे रास्ते की क्षीण, मिचमिची आँखों से बचकर नीचे भावी काल की ममतामयी कमली बिछाकर, जिसके हृदय में भूतकाल के असंख्य छिद्र हैं । आकाश में आँखें लगाने पर उसे ऊँची ऊँची मीनारें दिखायी देती हैं। जो कि अनंत के आगे नाक रगड़ती हैं । आकाश के दयालु परम पिताने पुचकारे हुए बिलाव को देखकर गुस्सा छूटता है — परन्तु वह भी 'सात्त्विक' है ! और अन्याय के विरोध में लड़ने के लिए मैं मुट्ठी मींचता हूँ । अनेक धमकियाँ गरजता हूँ–परन्तु 'मनमें' ! रोषसे हाथ नीचे पटकता हूँ और अचानक–हाथ लगता है एक बीड़ी का जला हुआ टुकड़ा किसी अज्ञमति 'कर्ण' ने ड़ाल दिया था बड़ा महात्मा !! सिलगाकर धूँआ छोड़ने पर ऊँची ऊँची मीनारें बिलम जाती हैं (सात्त्विक) रोष और गर्जनाएँ भी !)....और खुशीसे आँखें मींचकर, पूँछ उठाकर, बड़े लाड़से गुरगुराता है–मेरी आत्मा का मांसल बिलाव !

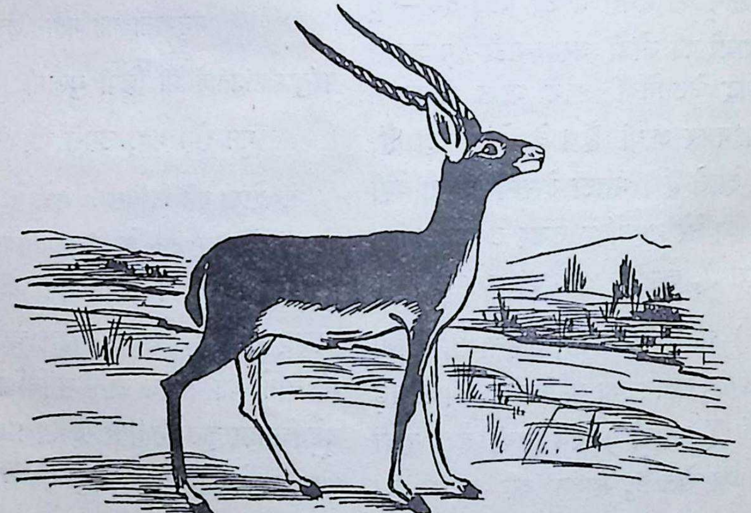

धारावाही उपन्यास :

पूर्णिमा

— अनन्त गोपाल शेवड़े

[अबतक की कथा :

वैरिस्टर पण्डित की सुन्दरी कन्या को पाने के लिये विलासमोहन प्रयत्नशील है। वह 'खाओ पियो और मौज-करो' की जीवन प्रणाली को मानता है, किन्तु पूर्णिमा की धारणा थी कि उसका सच्चा प्रेम उसी से है।

इसके विपरीत उसकी धनिष्ठता बंगाली क्रान्तिकारी के तेजस्वी पुत्र विनयकुमार से भी थी जिसके चारित्र्य, बुद्धिमत्ता तथा कर्तव्य-निष्ठा के कारण वह उसका नितान्त आदर करती थी और जिसकी मित्रता के बिना वह अपने जीवन की कल्पना तक नहीं कर पाती थी।

विनय की श्रद्धा थी कि पूर्णिमा अपने तितली-नुमा जीवन से ऊंची उठकर आदर्श नारी हो सकती है जो समाज के लिये भूषण की वस्तु हो। लेकिन इसके लिये उसे योग्य वातावरण में रहने की ज़रूरत है। इसी श्रद्धा का धीरे-धीरे प्रेम में परिवर्तन हो गया किन्तु पूर्णिमा को इसका कोई पता नहीं। उस पर तो विलास का ही प्रभाव जमा हुआ है यहां तक कि जब विनय इसके बारे में चेतावनी देने जाता है तब वह उसे अपमानित कर के घर से निकाल देती है।

विनय को यह आघात—प्रणयभंग तथा अपमान का—भीषण मालूम पड़ता है और वह बीमार पड़ जाता है। उसकी टायफॉईड की बीमारी में पूर्णिमा उसकी तीमारदारी (शुश्रूषा) करने दौड़ पड़ती है क्योंकि उसका हृदय पश्चात्ताप से भर जाता है।

विनयकुमार बीमारी के बाद आबहवा बदलने पचमढ़ी चला जाता है और इधर पूर्णिमा और विलास के आमोद-प्रमोद के कार्यक्रम धड़ल्ले के साथ शुरू हो जाते हैं। यह देख कर एक दिन पूर्णिमा के पिता उस से पूछते हैं—"क्या तुमने विलास के साथ विवाह करना तय कर लिया है?" पूर्णिमा 'हां' कहती है।

वैरिस्टर साहब विवाह की बातचीत शुरू करने के पहले एक बार विलास की ज़मींदारी देखने के हेतु इन्द्रगढ़ जाते हैं जहां क्रिसमस की छुट्टियों में आनंद-उल्लास का लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम आयोजित किया जाता है।

छुट्टियों के बाद जब अतिथि-गण लौटते हैं तो पूर्णिमा विलास के साथ ही रात को मोटर से निकलती है। बीच में जल धारा नदी के किनारे रात्रि के एकान्त के उन्मादकारी वातावरण में पूर्णिमा अपने आपको भूल जाती है।

लेकिन जब शहर लौटने के बाद वैरिस्टर पण्डित विलास के पिता से पूर्णिमा के विवाह की बातचीत चलाते हैं तो उन्हें यह सुनकर भयंकर चोट पहुँचती है कि विलास का इरादा पूर्णिमा के साथ शादी करने का नहीं है और न कभी उसने यह बात कही भी थी।

पूर्णिमा यह सुनकर क्रोध और अपमान से जल उठती है और इसका बदला लेना चाहती है।—अब आगे पढ़िये!]

तेईसवां परिच्छेद

: लोहा और पारस :

विलास इस घटनाचक्र से बिलकुल घबड़ा गया था। उसने कल्पना तक नहीं की थी कि बात इस तरह उसके गले पड़ेगी। आज तक तो ऐसा नहीं हुआ था। कई लड़कियों से उसकी दोस्ती थी, पर इस प्रकार के चक्कर से वह अब तक बचता रहा। इस बार उसका बैरिस्टर पांडित जैसे तगड़े आदमी से पाला पड़ गया इसलिये वह घबड़ाया ज़रूर, कि शायद इस घटना के परिणाम भयंकर हों। चूँकि पूर्णिमा के पिता प्रख्यात बैरिस्टर हैं इसलिये हो सकता है कि, मामला अदालत तक भी जाय! लेकिन अदालत में जाने के बाद जो बदनामी होगी वह उसके बजाय पण्डित परिवार को ही ज्यादा नुकसान पहुंचावेगी। इसलिये उसके धूर्त मन ने यही ख्याल किया कि बैरिस्टर साहब उस हद्द तक नहीं जावेंगे!

और उनके पास सबूत ही क्या है? मैंने कभी विवाह का इकरार तो किया ही नहीं था—दिल में वह बात थी ही नहीं तो इक़रार क्या करता? प्रणय-पत्र भी नहीं है! — आज तक जिन्दगी में मैंने एक भी प्रणय-पत्र नहीं लिखा। मेरा तो सब काम जबानी ही चलता रहा है! हां, सिर्फ एक नैकलेस भेंट किया है, सो उसके साथ भी मेरे हाथ का लिखा प्रेजेंटेशन कार्ड भी नहीं है। और भेंट करने को तो कई स्त्री पुरुषों को मैंने इस प्रकार भेंटें दी हैं। वीणा बैनर्जी को भी दी हैं। दोस्ती में तो ये बातें बिलकुल मामूली हैं। सिर्फ इस पर से विवाह के इरादे का नतीजा निकालना तो ठीक नहीं है।

मुझे सितम्बर में इंग्लेंड जाना ही है। उसके पहिले मैं शादी की बेडियां क्यों अपने पैरों में डाल लूं? इंग्लैंड ही में तो ज़िन्दगी का असली मजा लूटने का अवसर मिलेगा। यौवन की चहार-बाग तो वहीं फलती-फूलती है। क्या उसके आनन्द में ये बेड़ियां बाधक न होंगी? और विवाह करना ही है तो किसी इंग्लिश युवती से क्यों न किया जाय? उससे समाज में दर्जा भी बढ़ेगा और—

पूर्णिमा यदि उस पर प्रेम करने लगी, उस पर फिदा हो गई तो इसमें उसका क्या दोष? हां, इसमें उसकी जीत हुई है, उसके सिर पर एक और विजय का सेहरा लगा है। लेकिन उसने तो कभी उसे, पूर्णिमा को, उसकी इच्छा के ख़िलाफ़, कोई भुलावा नहीं दिया है! जितनी भी हद्द तक पूर्णिमा गई है वह अपनी खुशी से गई है। वह छोटी, दुध-मुँही लड़की तो नहीं है, जो किसी के फुसलाने में आ जाय? वह भी तो बालिग हो चुकी है, पढ़ी लिखी है, अपना भला-बुरा समझती है।

विलास की जो जीवन-दृष्टि थी उसमें इसी प्रकार की विचार धारा के लिये स्थान था। इससे ज्यादा गहराई तक उसने न कभी सोचा था और न कभी सोच ही सकता था। लेकिन उसने इस बार देखा कि पूर्णिमा के मामले में शायद वह बेदाग़ नहीं बच सकेगा, क्योंकि इस बार बैरिस्टर पंडित जैसे आदमी से पाला पड़ा है। और इसलिये मन-ही-मन उसे डर लग रहा था और फिक्र थी। इस तरह के मनुष्य नैतिक दृष्टि से कायर होते हैं। वही कायरता उसे कभी-कभी घबड़ा देती थी।

उसका बैरिस्टर साहब के यहां आना-जाना या पूर्णिमा के साथ मिलना-जुलना कतई बन्द हो गया। अब वह किस मुंह से उन लोगों से मिल सकता था? अभी परसों तक कई बार लोगों ने उन्हें साथ साथ देखा था, अब उनकी जोड़ी टूट गई और मानों दोनों के बीच में भयंकर दुश्मनी हो गई। कॉलिज क्षेत्रों में तथा शहर में तरह तरह की अफवाहें फैल गईं जिनमें बदनामी का सब से ज्यादा हिस्सा पूर्णिमा के सिर पर ही पड़ा। ऐसे मामलों में युग-युगान्तर से नारी ही चुपचाप सहती चली आ रही है। वह नित्य का नियम आज भी कैसे भंग होता?

इधर पूर्णिमा की भावनाओं की कल्पना करना ही कठिन है। पहले ता कुछ क्षण वह इस दुर्घटना का ठीक से आकलन ही नहीं कर सकी—हतबुद्ध-सी बैठी रही, जैसे उसके दिमाग को लकवा मार गया हो। कहां तो वह सुख और आनंद के आसमान में पंख लगाकर संचार कर रही थी, कहां वह अब इस जड़ विश्व में धड़ाम से आकर गिर पड़ी और उसका सारा सुनहला स्वप्न टूटकर छिन्न-भिन्न हो गया। यह सब कैसे हुआ, उसकी समझ में भी नहीं आ रहा था। उपन्यासों या सिनेमा-चित्रों में इस तरह की कुछ अजीब सी घटनाएं उसने पढीं या देखी थीं, लेकिन उसके स्वतः के जीवन में भी ऐसी कोई बात होगी इसका उसने कभी ख्याल

नहीं किया था । और हैरानी तो उसे इस बात पर हुइ जब उसके 'बापू' ने बतलाया कि विलास का उस पर प्रेम नहीं है, वह तो केवल उसका मित्र ही है। जब यह बात थी तो जल धारा नदी के किनारे उस रात्रि को उसने उस तरह का बर्ताव क्यों किया ? क्यों ?

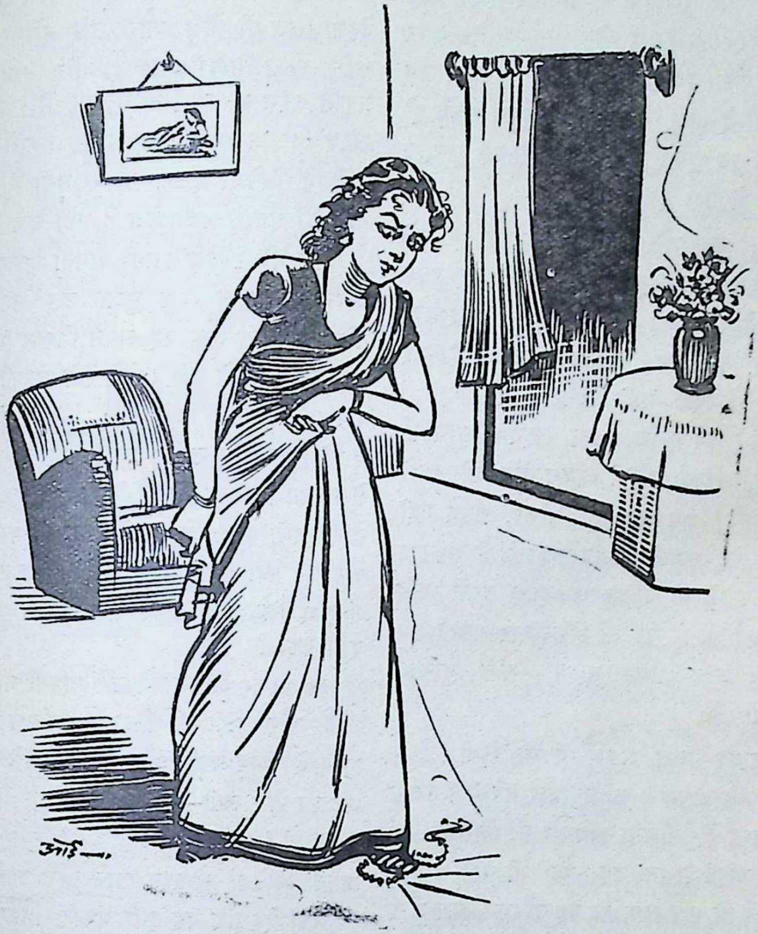

केवल इसी बात से यह निर्विवाद है कि विलास पूर्णिमा की तरफ एक उपभोग्य वस्तु की तरह देखता था, और प्रणय की उससे निर्मित विवाह की ज़िम्मेदारियों को उठाने की उसकी तनिक भी इच्छा नहीं थी । वह अब तक प्रणय का नाटक मात्र कर रहा था उसके परदे के पीछे। वह अपनी वासना विलास-प्रियता की क्षुधा तृप्त करना चाहता था । और पूर्णिमा उसके हाथ में एक प्रज्ञाहीन कठ पुतली की तरह खेल रही थी। वह कितनी भोली थी, कितनी भावुक, कितनी मूर्ख ! ओफ !!

इस अपमान से वह तिलमिला उठी । अपने जीवन में वह तस इरह कभी प्रताड़ित नहीं हुइ थी । और आज वह किस तरह खोयी-सी पराजित होकर मुँह की खाकर पड़ी ह, वह भी विलास जैसे लंपट, विलासी, उथले पुरुष के हाथों ! हाय रे भगवान ! यह किन पापों का दण्ड है जो आज इस तरह उसे मिल रहा है ?

उसे लगा कि उसका स्वाभिमान किसीने पैरों तले रौंद दिया है । उसके चरित्र को कभी न मिटने वाला धब्बा लग गया है और उसके हृदयको, उसके व्यक्तित्वको किसीने गहरी ठेस पहुंचाई है ! उसका समस्त नारीत्व जाग उठा, एक ज़ख्मी नागिन की तरह वह संतप्त हो उठी कि वह क्या करे, क्या न करे ! गुस्से के मारे शरीर का अंग प्रत्यंग कांप उठा, एक एक रोम बागी होकर पुकार उठा कि वह इस अपमान का बदला लेगी । उसके ओंठ थरथरानें लगे, आंखे लाल हो उठीं और दांत किटकिटाने लगे । पहले तो उसने उस नीले लिफाफे को फाड़ फाड़कर उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले।

फिर वह अपने कमरे में गई और विलास का दिया हुआ नेकेलेस उसने पत्थर के फर्श पर पटक दिया और फिर उसे जूते सहित लात से कुचल कर चूर-चूर कर दिया। उसी प्रकार वह अध-सूखा फूलों का गुच्छा जो विलासने उसे इन्द्रगढ़ से निकलते वक्त दिया था, और जिसे उसने पानी दे देकर अपने प्यारे फ्लॉवर पॉट में रख छोडा था वह निकालकर ज़मीन पर फेंक दिया और उस पर वह कांच का फूलदान भी दे मारा जो गिरते ही टुकडे टुकड़े हो गया, मानों उन दूषित फूलों के स्पर्श से वह फूलदान भी दूषित हो गया हो।

विलास, धूर्त और शातिर वदमाश! उसने धोखा दिया, साफ साफ दग़ाबाजी की। वह उससे वदला लिये वग़ैर नहीं रहेगी! वह उसे ज़रूर सज़ा देगी। वह यह सव चुपचाप सहन नहीं कर सकती। विलकुल नहीं वर्दाश्त कर सकती! किताबों में लिखा है कि स्त्रियां सहन-शील होतीं हैं। वे होती हों या नहीं! लेकिन वह तो कभी इसे चुपचाप, खून का घूंट पीकर, सहन नहीं करेगी। वह कमज़ोर 'अवला' नहीं है असहाय नहीं है। उसमें भी ताक़त है और उसने यदि ठोकर खाई है तो वह भी ठोकर मार सकती है। और वह ज़रूर ठोकर मारेगी—कोई मुरव्वत नहीं करेगी।

लेकिन वह किस प्रकार वदला लेगी? किन तरीक़ों से इस अपमान का प्रतिकार करेगी? उसके हाथ में क्या है, कौनसा हथियार है, जिसका वह उपयोग करेगी? यह वह खुद भी नहीं जानती थी। पहले तो उसे लगा कि वह दौडकर जाय और कसकर विलास के गाल पर एक तमाचा जड़ दे। लेकिन उससे क्या होगा?. तो फिर वह खुले आम वाजार में जाकर विलास की काली करतूतों का डंका वजा दे। लेकिन इससे भी क्या होगा? क्या उलटे उसी की वदनामी न होगी? दुनियाँ उसी की वेवकूफी और कमज़ोरी पर न हंसेगी?

ओह! यह भी ठीक नहीं हागा!

तो वह विलास पर धोखेजनी और दग़ावाजी के लिये अदालत में मुकदमा चलावेगी और उसके तथा उसके ख़ानदान के नाम को कालिख लगावेगी। लेकिन यह भी तो वही वात हुई न? उसका स्वतः का परिवार, वैरिस्टर पंडित की ख्याति इससे कैसे अछूती रह सकेगी? तो वह क्या करेगी? क्या?— क्या? वह कुछ भी नहीं कर सकती।

कुछ भी नहीं कर सकती?

नहीं, कुछ भी नहीं कर सकती, क्योंकि वह नारी है, नियति ने उसके भाग्य में इसी तरह की वेदना लिख दी है। और उसे हमेशा से यही कठोर सज़ा मिलती आई है, और मिलती रहेगी प्रकृति करुण ह, तो निर्मम भी है। पुरुष जव स्त्रीत्व का अपमान करता है तव प्रकृति उसे छोड़ देती है लेकिन स्त्री को ही पकड़ती है। नारी ही नारी की सव से वड़ी शत्रु है यही सच है।

और जिस क्षण उसको अपनी असहायता का, अपनी वेवसी का भान हुआ उस समय उसका वाँध टूट पड़ा और वह अपने विस्तर पर पड़ कर फूट-फूट कर रोने लगी। रोते रोते उसकी हिचकियां वंध गईं।

हे ईश्वर! तू क्यों इतना कठोर हो गया? मैंने तेरा क्या विगाड़ा जो तूने मुझे इस तरह सज़ा दी? यदि मुझसे वदला लेते नहीं वना तो क्या तू इस अन्याय का, इस धूर्तता का वदला नहीं लेगा? यदि न लिया तो फिर तेरा न्याय कहां, तेरी दया कहां?

इस कातर अवस्था में उसे अपनी मां की याद आई और दुःख की फिर एक भीषण वाढ़ उसके हृदय में उमड़ पड़ी, और वह फिर से सिसकियां भर कर रोने लगी—

"मां! मां! तुम कहां हो? तुम क्यों नहीं अपनी विटिया की रक्षा करने दौड़ आई?"

वड़ी देर तक वह इसी प्रकार विकलावस्था में रोती रही। जव दुख का आवेग कम हुआ तव उसका जी कुछ हलका हुआ और उसका दिमाग जोरों से चलने लगा। उसे अपना भूतकाल याद आया, खास कर पिछले चार पांच महीने का समय, जिसमें उसका विलास के साथ घनिष्ट सःबन्ध आया था। विलास तो धूर्त, पापी और पाखण्डी था ही, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन उसके साथ साथ उसका भी पतन हुआ इससे वह इन्कार नहीं कर सकती। उसने भी तो कमज़ोरी वतलाई, वह भी तो भावना और मोह के आवेग में वह गई थी, अपना संयम खो वैठी थी! फिर परिणाम की

ज़िम्मेदारी से वह अपने आपको किस प्रकार मुक्त कर सकती है ?

अगर उसे भुलावा दिया गया तो वह क्यों इतनी नादान और बेवकूफ बनी जो इस भुलावे में आ गई ? वह कैसे अपने आपको निर्दोष करार दे सकती है ?

वह भी दोषी है, गुनहगार है, और प्रकृति के नियम के अनुसार उसे सज़ा मिली तो उसे क्यों शिकायत होनी चाहिये ?

उसका दोष तो और भी ज्य़ादा गंभीर हो जाता है, जब वह विनय बाबू की चेतावनी के बाद भी फिसलती चली गई ! ओह, विनय बाबू ! आप सही थे, मैं ही ग़लत साबित हुई। उस समय मैंने आपकी सलाह न मानी क्योंकि मैं प्रेम में अन्धी थी—

प्रेम ? छिः वह प्रेम नहीं था, मोह था। मोह का परदा मेरी आंखों पर पड़ा था, इसलिये मैं सत्य नहीं देख सकी और आज उस गलती की सजा भुगत रही हूँ।

उसी दिन मैं उनकी बात मान लेती तो ?

या फिर बापू विवाह की बातचीत इन्द्रगढ़ जाने के पहिले ही कर लेते तो ?

या फिर उस सलोनी चाँदनी रात में उन्माद के आवेग में मैं बह न जाती तो ?—या फिर—

तो आज की भयंकर दुर्घटना नहीं होती। तो वह आज भी अपने नारीत्व के स्वाभिमान, गौरव और चारित्रबल को लेकर अपना सिर गर्व से ऊँचा रख सकती थी।

किन्तु आज ?

आज तो वह वेदना, परिताप और शर्म से अपना सिर झुकाये दुनिया के सामने गुनहगार बन कर बैठी है। वह स्वतः की निगाह में गिर गई है और उसके लिये लज्जित है। वह अब दुनिया को किस तरह मुँह दिखला सकेगी ? बापू को पूरा सत्य मालूम होगा तब वे बेचारे क्या कहेंगे ? विनय बाबू क्या कहेंगे ?

विनयबाबू ! विनयबाबू ! इस समय वे कहाँ होंगे, क्या करते होंगे ? यह ठीक ही है कि वे आज पचमढी में हैं। वरना कम से कम उन्हें तो मैं अपना मुँह नहीं दिखा सकती। हर्गिज नहीं दिखा सकती।

उस दिन जब वे मेरे हित की बात करने आये थे और मुझे इस भीषण संकट से आगाह करने आये थे, तब मैंने उन्हें अपमानित करके घर से निकाल दिया। पारस को पत्थर समझकर फेंक दिया।

आज उनकी विजय हुई है और मैं पूरी तरह से पराजित होगई हूँ,—लुट गई हूँ। उनके ज्ञान और स्नेह का स्पर्श मुझे होता तो मैं कांचन बन जाती और मेरे आलोक से विश्व चमक उठता।

लेकिन आज मैं सिर्फ लोहा हूँ, काला, बदसूरत, ठुकराया हुआ लोहा जिसे अब जंग चढ़ गया है।

पूर्णिमा को लगा कि अपने विचारों के भयंकर प्रवाह से उसका सिर फट पड़ना चाहता है। वह अपने दोनों हाथों में उसे थामकर पड़ी रही। उसी क्षण उसने देखा कि एक मृदुल हाथ उसके मस्तक पर स्नेहलता के साथ रखा हुआ है, जिसके स्पर्श से उसे सुख हो रहा है। उसने पीछे घूमकर देखा तो उसे अपनी 'आया' पलंग पर बैठी हुई दिखाई पड़ी। पूर्णिमा ने 'आया' के हाथ पर अपना हाथ रखकर उसे ज़ोर से दबाया। उसे लगा कि माँ का वरद-हस्त ही उसकी 'आया' के हाथ के रूप में उसे सांत्वना देने आ गया है।

चौबीसवां परिच्छेद

: प्रकृति की निर्मम सजा :

पूर्णिमा और विलास की मित्रता में जो खलल पड़ गया—और वह इतना स्पष्ट और असंदिग्ध था—उसके कारण विद्यार्थियों में तरह तरह की भली-बुरी अफवाहें फैल गईं। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उन में से एक भी अफवाह ने पूर्णिमा को मुआफ नहीं किया था; उलटे उसे अधिक से अधिक बदनाम करने की कोशिश की थी। विलास पर इन बातों का ज्य़ादा असर नहीं पड़ा, क्योंकि वह पुरुष था, और इस प्रकार की घटनाओं का आदी था। किन्तु पूर्णिमा ! पूर्णिमा को लगा कि उसका जविन-स्त्रोत ही अब सूख गया है और अब जीने में कुछ सार नहीं बचा है।

उसकी इच्छा हुई कि वह कॉलेज छोड़ दे और इन सब दुखदायी घटनाओं से कहीं दूर भाग जाय। उसे अब अपने आसपास का वातावरण बर्दाश्त नहीं होता था। लोगों की दबी ज़बाने उसके कान पर पहुँचानेलायक आवाज़ में कही गई भद्दी बातें, उस

की तरफ फेंके गये व्यंगभरे अर्थ-युक्त कटाक्ष, उस के साथ मिलना-जुलना टालने की तरकीबें यह सब उसे असह्य होने लगा। इन आक्रमणों के सामने वह अपनी गर्दन नीची करके अपने काम में लगी रहती जिसके कारण अफवाह-पसन्द लोगों को अधिक ज़ोर चढता। न जाने क्यों अब तक पूर्णिमा से सब लोग जलते थे। वैसे उसने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा था। लेकिन छात्राएँ उससे इसलिये ईर्षा करती थीं कि वे उसके गुण, सौन्दर्य और प्रभाव को नहीं पा सकती थीं। उनके बुरा लगने के कई कारण थेः— उसके पिता इतने सफल बैरिस्टर क्यों हैं, और उसे वे इतनी आज़ादी क्यों देते हैं? वह इतना अच्छा टेनिस क्यों खेलती है? उसका रूप इतना आकर्षक एवं कमनीय क्यों है? वह इतना सुन्दर गाती क्यों है? इत्यादि, इत्यादि। विद्यार्थिगण तो इसलिये चिढ़े थे कि उसने विलास को छोड़कर किसी पर अब तक कृपादृष्टि नहीं बरसाई थी। इन सब युवक-युवतियों का डाह इस समय भीषण क्रोध और निन्दा का रूप लेकर उसके आस पास के वातावर्ण को गन्दा, कलुषित बना रहा था। यह सब उसकी सहनशक्ति से वाहर था। वैसे उसने लोकापवादों की कभी कोई परवाह नहीं की थी, लेकिन आज वह ऐसा रुख नहीं ले सकी क्योंकि अपनी विवेक-बुद्धि के सामने आज वह खुद को दोषी पा रही थी। और इसी कारण वह स्वतः को खूब कमज़ोर अनुभव कर रही थी।

क्या विनयकुमार भी उससे इसी प्रकार का बर्त्ताव करता? हर्गिज़ नहीं, उसके वारे में इस तरह का ख्याल लाना भी उसका अपमान करना है। कहाँ कॉलेज के और लड़के और कहाँ विनय?

वह जैसे किसी दूसरे लोक का निवासी है। उसे मानों कमज़ोर मानवों के कायदे-कानून लगते ही न हों। पूर्णिमा को लगा कि वही संसार में एक मात्र व्यक्ति है जो उसे उसके संकटकाल में, पीडा में, उसे समझ सकता है। जहां सारी दुनिया उसे दोषी और पतित करार देगी वहां विनयकुमार ही उसके मन और हृदय की कमजोरी को सहानुभूतिपूर्वक समझकर उसे सेहत दे सकेगा। उसका हृदय गगन की तरह विशाल है, महासागर की तरह गहन है। उसमें विश्व के सभी सुख-दुःखों और अपमानों को समा लेने की अदभुत शक्ति है। आज उसके आस पास एक भयंकर तूफान उठा है और उसके सारे सुख-वैभव के जहाज को छिन्न-भिन्न कर डालना चाहता है। विनयकुमार का ही वह लंगर होगा जो उसे बांध कर रख सकता है और सर्वनाश से बचा सकता है।

लेकिन वह उसके सामने कानसा मुँह लेकर जावे? एक मुँह था जो पूर्णिमा के चन्द्र की तरह कान्तिमान, दीप्तिमान था। पर आज उस पर ग्रहण की कालिख लग गई है। वह कैसे उसके सामने जाने का धीरज करे?

इसी प्रकार की मानसिक उथल-पुथल में, क्षोभ-प्रक्षोभ में दिन वीतने लगे। वह घर से वाहर निकलती तो उसे कटाक्षों, व्यंगों और लोकापवादों का सामना करना पड़ता और उसका मुरझाया हुआ मुख-कमल और भी अधिक मुरझा जाता। लेकिन घर में जब वह आती तव उसे वापू की सहानुभूति, 'आया' का दुलार और उस्ताद बहादुरखां का अपनापन सुख देता और वह बाहर के अपमानों को हिम्मत से बर्दाश्त करने की ताकत पाने लगती। उसके पिता उसकी व्यथा को समझते थे और उनकी एक मात्र कन्याको इस प्रकार का कष्ट होते देखकर वे स्वतः भी बहुत दुखी थे। वे पूर्णिमा से अधिक न बोलते पर उनकी आंखों में जो वेदना थी, जो करुणाभाव था वह उनके मौन से भी ज्यादा बोलता था। उसका घर इस संकट में भी उसका अपना हीं बना रहा, पराया नहीं हुआ, यही ग़नमित थी। इसी प्रकार लगभग एक महीना बीत गया।

उन सब सूक्ष्स संकेतों तथा लक्षणों के बल पर जिन्हें एक स्त्री अच्छी तरह समझती है, और शायद जिन्हें समझने की शक्ति उसे जन्म से ही होती है, पूर्णिमा ने एक दिन प्रातः काल अनुभव किया कि जलधारा नदी के किनारे उस उन्मादक रात्रि की क्रीड़ा की कहानी वहीं ख़तम नहीं हो गई है, किन्तु उसके स्वाभाविक परिणामों के तन्तु उसके शरीर में जड पकड़ रहे हैं। वह रात्रि उसके सुख-स्वप्न की अन्तिम परिणति ही नहीं थी, किन्तु उसकी वेदना और आत्यन्तिक क्लेश से परिपूर्ण जीवन का प्रारम्भ मात्र थी। जो उसने अब तक सहन किया वह, आगे जो सहन करना होगा उसके मुकाबले में कुछ

नहीं है—और उसकी लज्जा जो अब तक व्यक्तिगत थी, व्यक्त होकर दुनिया के सामने मूर्त स्वरूप में आना चाहती है।

हाय रे दुर्भाग्य।

पूर्णिमा इस निर्मम भावी की आशंका से कांप उठी और उसका रहा-सहा धीरज भी जाता रहा। अब तो यथार्थ में जीवन दूभर हो गया, उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया और वह तहे-दिल से इच्छा करने लगी कि मृत्यु उसे आलिंगन दे तो वह स्वयं को बड़ी भाग्यशाली समझेगी।

फैशन, पाश्चिमात्य सभ्यता और आचार-विचार, यूरुपियन संस्कृति के मूल्य, सब कुछ कहां के कहां गायब हो गये और पीढियों और युग-युगान्तर की संस्कारिता गला फाड़ फाड़कर घोषित करने लगी कि वह अपनी शीलवती, धर्मनिष्ठ हिन्दू माता की कन्या है,—और कुछ नहीं। प्रकृति कितनी कठोर है! निर्यात कितनी निर्मम! एक क्षण के मोह का दण्ड क्या समस्त जीवन को बर्वाद कर देगा? माना कि वह प्रकृति के सामने दोषी है, उसके नियम का उसने उल्लंघन किया है। किन्तु उसकी इतनी ज़बर्दस्त सज़ा! और यदि सजा मिलनी ही है तो स्त्री और पुरुष दोनों को मिलनी चाहिये। किन्तु पुरुष क्यों बेदाग छूट गया और उसका समूचा बदला उसीसे—उस असहाय रमणी से क्यों भँजाया जा रहा है? वह तो एक साधारण नारी है—एक मानव जो दानव से बड़ी और देव से छोटी है। उसमें कुछ देवत्व है, कुछ दानवत्व भी। उसके व्यक्तित्व पर जब दानवता का नशा रहता है तब वह गलतियां कर बैठती है, लेकिन जब देवत्व का प्रभुत्व रहता है तब वह पुण्य कार्य भी तो कर डालती है। फिर यह कठोर सजा क्यों और कैसे?

इस नवीन जानकारी ने पूर्णिमा की हालत अत्यन्त दयनीय और बेबस कर दी। उसे अपने शरीर में ऐसे व्यक्ति के जीवतन्तु वहन करना है जिससे वह घृणा करती है, जिसे अब वह कायर, नीच और लम्पट समझती है।

आज उसकी क्या हालत है? सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है। एक ज़माना था, कॉलेज के क्षेत्रों में सौंदर्य-सम्राज्ञी बन कर शान के साथ सिर ऊँचा किये वह विचरण किया करती थी। और दुनियाँ उसके एक एक स्मित एवं कृपा-कटाक्ष के लिये लालायित रहती थी और आज एक है कि वह सिर नीचा किये, आंखें ज़मीन पर गड़ाये हुए, प्रताड़ित और अपमानित होकर अकेली तिरस्कृत-सी आती जाती है। शरीर सूखता चला जा रहा है। चेहरा मुरझाता जा रहा है। सौन्दर्य-शृंगार की ओर कोई ध्यान नहीं, बाल भी बिखरे पड़े रहते हैं, कपड़ों की तरफ भी उसकी कोई रुचि नहीं बच गई है।

उसका स्वास्थ्य भी गिरता जा रहा है। मन तो इतना जड़ हो गया है जैसे काठ मार गया हो। हृदय टूक-टूक हो गया है और उसका घाव दिन-ब-दिन गहरा होता चला जा रहा है—सुधरने का तो नाम नहीं।

बापू से उसकी सच्ची हालत छिपी न रह सकी और न उसने उसे छिपाने की कोशिश ही की। अब जब उसका सब कुछ लुट गया था तब थोड़ा-सा भी बचाने या छिपाने की गरज़ ही क्या? बैरिस्टर साहब अनुभवी, दुनियादारी देखे हुए व्यक्ति थे। असली बात क्या है यह वे समझ गये, लेकिन वे इससे क्रोधित नहीं हुए। अपनी कन्या के प्रति उनके हृदय में असीम सहानुभूति जागृत हो उठी। दुनिया कुछ भी कहे, आज भी उनके सामने पूर्णिमा उनकी अपनी लाड़ली बिटिया ही थी जिसका केवल एक ही कदम गलत पड़ गया था। वात्सल्य की पूर्ण विजय हुई। उन्होंने सोचा, ऐसा न होता तो अच्छा होता। चूँकि ऐसा हो चुका है, तो उससे मुकाबला करना ही होगा। दुनियाँ में यह कोई नई बात नहीं है। फिक्र उन्हें सिर्फ इस बात की थी कि परिस्थिति संभल जाय और बदनामी न हो। बदनामी से उनके सामाजिक जीवन पर धक्का पड़े बगैर न रहेगा, और पूर्णिमा का भविष्य भी दूभर हो जावेगा।

लेकिन पूर्णिमा जिस ओर आँख उठाती उस ओर क्षितिज तक घनघोर अन्धकार ही अन्धकार देखती। ऐसी अपमानित अवस्था में क्या जीवन में कोई सार है?

जीवन का क्या अर्थ? जीने में क्या प्रयोजन?

उसने सोचा—

एक हिम्मत का कदम! सिर्फ़ एक ही! फिर

मरण का आलिंगन ! और फिर शान्ति — चिर-शान्ति !

बस, यही अब उसके मोक्ष का मार्ग है ।

पच्चीसवां परिच्छेद

"निर्बल के बल राम"

विनयकुमार को पचमढ़ी के निवास ने बहुत लाभ पहुंचाया । एक महीने के अन्दर ही उसमें अद्भुत परिवर्तन हो गया । उसकी सारी कमज़ोरी जाती रही और उसका चेहरा जो बीमारी में पीला पड़ गया था, फिर सुर्ख हो गया । टायफाइड की बीमारी का यही स्वभाव है कि उसमें रोगी के शरीर का जैसे काया-कल्प हो जाता है—उसकी तमाम गन्दगी नष्ट हो जाती है और सारी शरीर-प्रकृति शुद्ध हो जाती है । विनयकुमार ने जितना वजन खोया था, उससे भी अधिक वापिस पा लिया । उसके चेहरे पर अब स्वास्थ्य की आभा चमकने लगी और उसका स्वाभाविक सौन्दर्य और भी अधिक निखर उठा ।

विनयकुमार ने देखा कि इन चार महीनों की अवधि में उसने बहुत कुछ आत्म-निरीक्षण कर लिया है और अपनी मनःस्थिति को काफी संभाल लिया है । रुग्णावस्था में ऐसा होता भी है । कमज़ोरी के कारण शरीर-बिस्तर से ही जकड़ा रहता है, दुनियां के बाहरी व्यवहार में हिस्सा नहीं ले पाता, इसलिये मन इस कमी की पूर्ति के लिये मानों अधीर हो उठता है । उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी होकर, आत्म-शोध में लीन हो जाती है ! भूतकाल की स्मृतियाँ, उसकी सब गलतियाँ, कमज़ोरियाँ, सुख-दुख, सब आँखों के सामने खड़े हो जाते हैं और वह उनसे कुछ अलग हटकर, सिनेमा चित्र की तरह, उन्हें देखता है और भविष्य के लिये नये इरादे और नये संकल्प करता है, ताकि आनेवाला जीवन बीते हुए जीवन की अपेक्षा अधिक सफल एवँ उन्नत हो । स्वस्थ हालत में, दुनियादारी के रोज़मर्रे के झगड़े में, इस तरह की बात संभव नहीं होती । इसलिये, विनय ने सोचा कि, कभी-कभी इतनी लम्बी मियाद के लिये बीमार पड़ जाना बुरा नहीं है । जब उसने पचमढ़ी से अपना डेरा उठाया तब उसका मानसिक स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा हो गया था । पूर्णिमा के सिलसिले में जो घटना हुई थी, जो अपमान की घूंट उसे पीनी पड़ी थी, वह प्रायः भूल-सा गया । उसके हृदय का घाव जड़ से चंगा तो नहीं हो गया था, और शायद जीवन भर वह चंगा भी न हो, लेकिन बहुत कुछ भर गया था । अब वह उन सारी घटनाओं की तरफ, तथा पूर्णिमा की तरफ, तटस्थ भाव से एक त्रयस्थ की तरह देख सकता था । पचमढ़ी से चलती हुई मोटर में जब उसने कदम रक्खा तब उसे आत्म-विश्वास था कि जीवन के रणक्षेत्र में वह फिर सज्ज होकर लड़ सकता है और किसी भी परिस्थिति का बहादुरी के साथ मुकाबला कर सकता है । वह अनुभव कर रहा था कि मन, हृदय और शरीर पर उसका पूरा काबू है और काल, भाग्य और निर्यात के सामने खड़े होने की उसकी शक्ति दूनी ताकत के साथ लौट आई है !

पूर्णिमा के बारे में उसके मन में विचार आते न हों सो बात नहीं । लेकिन उसे तनिक भी पता नहीं था कि वह किस भीषण क्षोभाग्नि में से गुजर रही है । उसने सोचा कि पूर्णिमा और विलास का औपचारिक विवाह निश्चय तो हो गया होगा । विवाह न हुआ होगा तो होने में देर न होगी । निमंत्रण पत्र नहीं आया है उस पर से जान पड़ता है कि शायद अभी वह संपन्न नहीं हुआ है । इस घटना की तरफ भी वह अविचल होकर देखने लगा । मन ही मन उसने निश्चय भी कर लिया कि वह अब पूर्णिमा का सच्चे हृदय से अभिनंदन करेगा और जो गया-गुज़रा है उसे पूरी तरह भूल जायगा । उसके विवाह के उपलक्ष्य में वह क्या भेंट देगा यह भी ख्याल उसके दिमाग में ज़ोर से उठने लगा ।

उसके पास सुशील के पत्र बराबर आते रहे, किन्तु उसने कभी पूर्णिमा की सच्ची हालत का उसे पता नहीं दिया, क्योंकि वह चाहता था कि जब विनयकुमार पहाड़ पर स्वास्थ्य लाभ करने गया है तब उसके मार्ग में किसी भी अप्रिय विचार, घटना या ख़बर से कोई बाधा न पड़े ।

सुशील विनयकुमार को लेने के लिये स्टेशन पर गया । विनयकुमार के मन में कहीं से कोई कह रहा था कि शायद पूर्णिमा भी उसे लेने के लिये आवे, हालांकि उसने पूर्णिमा को इसके बारे में कोई सूचना नहीं दी थी । पचमढ़ी से उसने केवल

एक ही पत्र पूर्णिमा को लिखा था, और वह, पहुंचते ही, अपनी कृतज्ञता प्रकाशन के लिये लिखा था। उसका पूर्णिमा ने समुचित उत्तर भी दिया था। बस, उसके बाद दोनों के बीच कोई पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। आज स्टेशन पर उसे पूर्णिमा की याद क्यों आई ? क्या हृदय को उसका मोह छूटा नहीं है ? यह कमज़ोरी है और इसे रोकना होगा। यह सोचकर वह खुद भी कुछ शर्मिन्दा हुआ।

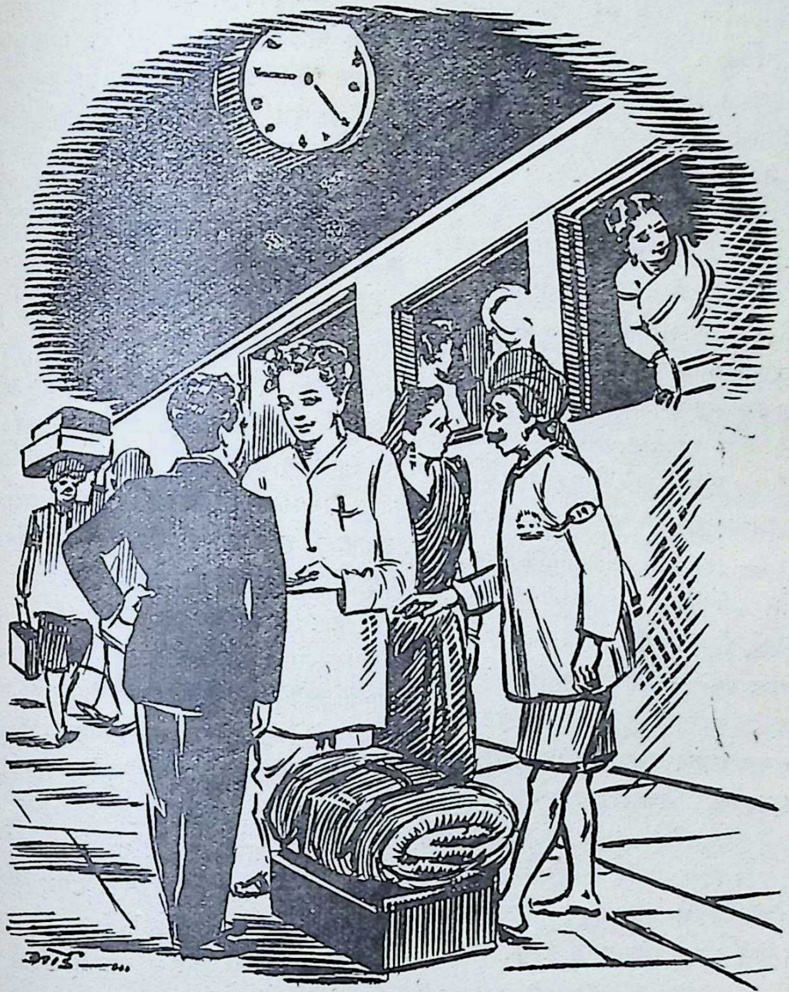

सुशील को विनयकुमार का स्वस्थ शरीर देखकर बड़ी खुशी हुई। उसकी कल्पना से भी अधिक पचमढ़ी ने उसे लाभ पहुंचाया। दोनों मित्र एक दूसरे से मिलकर प्रसन्न हुए। कुशल-क्षेम चर्चा के बाद विनय ने पूछा—

“ पूर्णिमा का क्या हाल है ? ”

“ हैं—पूर्णिमा का ! ” सुशील ने अकचका कर पूछा, मानों यह प्रश्न उसके लिये अनपेक्षित हो। उसके चेहरे की घबड़ाहट और हलका प्रक्षोभ विनय की नजर से छूटा नहीं।

“ हां पूर्णिमा का ! ” विनय ने हंस कर कहा। क्यों इतने गडबड़ाये क्यों ? क्या बात है ? ”

नहीं तो, कुछ नहीं ! मैं कहां गड़बड़ाया ? पूर्णिमा ? — पूर्णिमा तो अच्छी है ! क्यों तुम्हें और कोई ख़बर मिली उसके बारे में ? ”—सुशील ने विनय के चेहरे पर अपनी आंखें गड़ा कर पूछा। कहीं विनय को पूर्णिमा की सच्ची हालत का पता और किसी ज़रिये से तो नहीं लग गया !

नहीं, विनय के चेहरे पर ऐसा कोई भाव नहीं

है जो इस तरह का शक पैदा करे। उसने निर्मल हंसी हंसते हुए कहा—

"मुझे क्या पता भाई! मैं तो अभी पहाड़ से आ रहा हूँ — मुझे क्या मालूम तुम्हारे शहर का हाल? लेकिन, मालूम पड़ता है, तुम मुझसे कुछ छिपाना चाहते हो,—नहीं?"

सुशील अपने संकोच को नहीं छिपा सका। 'घर चल कर बतलाऊंगा' कह कर उसने बात वहीं खतम कर दी। विनय का मन बेचैन हो गया और वह उद्विग्न हो कर विचारने लगा — आखिर बात क्या होगी!

सुशील ने विनयकुमार को एक एक कर के पूर्णिमा के बारे में वे सब बातें बतलाईं जो उसने कॉलेज में, यहां-वहां सुनी थीं। पूर्णिमा की व्यथा, उसकी जीवन के बारे में उदासीनता, गिरता हुआ स्वास्थ्य, चेहरे पर परम औदासिन्य—इन सब का हाल, जो अपनी आँखों उसने देखा था, विनय को कह सुनाया। पूर्णिमा की इन्द्रगढ़ की सैर, विलास-पूर्णिमा की मैत्री का भंग, बैरिस्टर साहब का संताप और दुख, जिसके बारे में सुशील के पिता से उसे कुछ हाल मालूम हुआ था — फिर अफवाहों का तूफान — सब-कुछ उसने विनय से कहा। विलास और पूर्णिमा के संबंध कितनी दूर तक बढ़ गये थे इसका भी उसने दूर से संकेत किया।

विनय यह सब करुण-गाथा दत्त चित्त हो कर, मौन भाव से सुनता रहा। वह सब कुछ समझ गया, सब कुछ अनुमान कर गया। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि तथा हृदय की संस्कारिता ने उसकी आंखों के सामने खोयी-सी, हारी-सी, पूर्णिमा का करुण चित्र हूबहू खड़ा कर दिया। और उस चित्र का कारुण्य उसकी आंखों में भी उतर आया। उसका हृदय पूर्णिमा के लिये प्रगाढ़ सहानुभूति से भर गया।

"आज शाम को मैं पूर्णिमा के यहां जाऊंगा।" विनय ने एक गहरी निःश्वास लेकर सुशील से कहा।

"तुम जाओगे?" सुशील ने आश्चर्यान्वित हो कर पूछा। "उसने तो तुम्हारा अपमान कर के अपने दरवाजे से निकाल दिया था। आज फिर उसी दरवाजे पर जाओगे?"

"उस दोष का प्रक्षालन तो पूर्णिमा कभी कर चुकी है, सुशील! मेरी बीमारी में उसने जो मेरी परिचर्या की वह क्या उसकी गलती का प्रायश्चित न थी? और मान लो कि वह ऐसा न करती, तब भी आज तो उसके यहां जाना मेरा कर्तव्य है। आज वह व्यथित है — नारी की व्यथा उसकी असहायता और मूकता के कारण अत्यंत भयंकर हो उठती है आज उसे निस्संदेह मेरी ज़रूरत है। मुझे दृढ विश्वास है कि मेरे जाने से उसे सुख होगा, लाभ होगा।"—विनयकुमार दृढ़ता और आत्म विश्वास के साथ बोल रहा था। ऐसी परिस्थितियों का मुकाबला करना उसके बांये हाथ का खेल था और जीवन का सच्चा आनंद उसे इसी प्रकार के कार्यों में मिलता था। यश, सुख, और क्रीड़ा की रंगरेलियों के वक्त वह अक्सर ग़ैर-हाज़िर रहता, लेकिन जहां अपमान, प्रताड़ना, वेदना या संकट होता, वहां विनयकुमार सबसे पहले हाज़िर होता —मानों वह उसका विशिष्ट कार्यक्षेत्र है। ग़रीबी, बीमारी या जुल्म से पीड़ित व्यक्तियों के लिये उसका दिल पानी-पानी हो जाता और वह उन्हें सांत्वना और सेहत देने के लिये स्वाभाविक सहजता से दौड़ पड़ता। कई व्यक्तियों के सूने और अंधकारमय जीवन में उसने आशा और उत्साह की हलकी-सी किरणें पैदा कर दी थीं। कई टूटे हुए हृदयों को उसने जीवन की सार्थकता और जीवन के रस का अमृत पिला कर बनाया-जिलाया था। वह उन थोड़े से पुण्य-पुरुषों में से था जो अपने हृदय की असीम संपत्ति के बल पर अपनी छोटी-सी दुनिया में—मानव-हृदयों के अनभिषिक्त सम्राट बन कर जहां-तहां, आनन्द, आशा, और उल्लास बिखरते घूमा करते हैं। वह अपनी इस शक्ति से अनभिज्ञ नहीं था, किन्तु उस शक्ति के ज्ञान के बाद भी उसका शील, विनय और सौजन्य ग़जब का था जिसके कारण उसके व्यक्तित्व का सहज सौन्दर्य और भी अधिक निखर उठता।

जब वह, शांति सदन की ओर रवाना हुआ, उस समय सूर्य नारायण अस्तमान होने की तैयारी कर रहे थे। पश्चिम का आकाश उनके सौम्य सुनहले किरणों से आलोकित था, किन्तु दूर से उसमें रात्रि के अग्रदूत काले बादल, कालिमा भर रहे थे। खग-वृंद संध्यागीत गा रहे थे, किन्तु विनयकुमार को उनके गायन में उल्लास की अपेक्षा कारुण्य की ध्वनि ही सुनाई दी। दरबान ने पूर्णिमा

को विनयकुमार के आने की ख़बर दी। इस पर कुछ देर तक उसने विश्वास ही नहीं किया। वह ऊपर अपने कमरे में सोई हुई थी; विषण्ण-सी, एकाकिनी, अपने भाग्य पर विचार कर रही थी। विनयकुमार के आगमन की ख़बर से उसे आनन्द भी हुआ, संकोच भी! शर्म के मारे मानों वह अपनी ही जगह गड़ गई। उसने दरवान से विनयबाबू को अन्दर भेज देने के लिये कहा।

विनयकुमार के पैरों की ध्वनि सुनते ही उसका हृदय धक् धक् करने लगा। उसका सारा धीरज, जिसे समेटने की वह अब तक कोशिश कर रही थी जाता रहा।

विनयकुमार ने कमरे में पैर रखते ही देखा कि पूर्णिमा दीवाल की तरफ मुंह किए हुए अपने बिस्तर पर लेटी हुई है। बाल बिखरे हैं जैसे कई दिनों से उसने केश-भूषा न की हो। वह एक पतला कम्बल ओढे हुए थी, उसमें से केवल उसका गौर वर्ण दाहिना हाथ ही बाहर निकला हुआ था। एक सोने की चूड़ी उसकी कलाई पर अनमनीसी पड़ी थी, मानों उसके सूखे हुए हाथ से उसे कोई मोह नहीं रह गया हो। दूसरा हाथ तकिये पर, उसका सिर नीचे से थामे हुए था। कानों में जो सुन्दर कर्ण फूल रहा करते थे उनकी जगह चमकीले हरे रंग के काँच के सादे लोलकों ने ले ली थी।

विनयकुमार ने पूर्णिमा को इस दीन स्थिति में कभी नहीं देखा था। उसकी असहायता और गहरी वेदना उसके प्रत्येक हाव-भाव से, तथा उस अंधेरे कमरे के वातावरण से साफ ज़ाहिर हो रही थी, विनय कुमार का हृदय घोर अनुकंपा से भर गया।

वह धीमे धीमे पूर्णिमाके पलंग के पास गया। आत्यन्तिक स्नेहार्द्रता के साथ उसने सौम्य स्निग्ध स्वर से पुकारा—

"पूर्णिमा!"

पूर्णिमा ने सुनकर भी कुछ न कहा। वह हिली-डुली नहीं। केवल अपना सिर और भी अधिक नीचे झुकाकर उसे अपने तकिये में छिपा लिया।

विनय धीरे से आकर पूर्णिमा के बिस्तर पर बैठ गया। उसने अपना दाहिना हाथ बडे स्नेह भाव से पूर्णिमाके मस्तक पर रख दिया। पूर्णिमा को उस कोमल स्पर्श की अनुभूति से अनिर्वचनीय सुख प्राप्त हुआ। उसे लगा कि उसके सारे शरीर में एक स्निग्ध कंपन विद्युत की तरह दौड़ गया है। उस एक स्पर्श ने पूर्णिमा को विनय के हृदय की सारी भावनाओं का यथार्थ हाल बतला दिया। उस विशाल हस्त की आर्द्रता में, पूर्णिमा के हृदय की भयंकर अशांति, तप्त भावनाएं और मूक वेदनाएं, मानों शान्त हो गईं। उसने अनुभव किया कि विनय के हृदय में उसके लिये संताप नहीं, सहानुभूति है, घृणा नहीं, करुणा है। इस जानकारी से उसकी भावनाएं फिर एक बार उमड़ पड़ीं और उसकी आँखों से अविरल धारा बहने लगी। विनय ने कोमलता से पूर्णिमा के सिर के बालों को सहलाया। और जब उसका हाथ उसी स्नेहार्द्रता के साथ पूर्णिमा की पीठ पर घूमने लगा तब पूर्णिमा का मूक-रुदन सिसकियां भर कर फूट पड़ा और उसके आवेग का बाँध बिलकुल टूट गया।

विनय ने बिना कुछ कहे उसे उसी तरह रोने दिया। उसकी आँखें भी गीली हो गई थीं। उसने भी अपनी भावनाओं को रोकने का प्रयत्न नहीं किया।

दिवस और रात्रि का सन्धि-काल! कमरे में अंधकार बढ़ने लगा। लेकिन किसी ने भी बत्ती लगाकर उस मूक और निगूढ़ शान्ति को भंग करने की चेष्टा नहीं की। कोई कुछ न बोला—उन दो व्यक्तियों के बीच में एक भी शब्द का आदान-प्रदान नहीं हुआ। उनका मौन ही सब कुछ कह रहा था। पूर्णिमा को अपने सारे दुख का जैसे विस्मरण होता जा रहा था। और उसके शरीर में परम आनन्द की ग्लानि आ रही थी। उसे भान था तो केवल विनय के उस हाथ के स्नेहार्द्र स्पर्श का। उसने विनय के हाथ पर अपना दाहिना हाथ रख कर उसे जोर से दबाया, मानों उसे एक अमूल्य निधि मिल गई हो, जिसे वह अब खोना नहीं चाहती हो।

दूर से किसी मन्दिर की आरती का घंटानाद निशा के अंधकार को चीरता हुआ, सुनाई पड़ रहा था। विनय ने खिड़की में से बाहर झांककर देखा—, आकाश में दूर, अचल ध्रुव तारा जगमगा रहा था। रास्ते पर एक भिखारी गा रहा था—" निर्बल के बल राम "—

साहित्यालोचन

[श्री विनय मोहन शर्मा]

(सूचना :—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ आनी चाहिए)

साकेत परीक्षण :

लेखक श्री शम्भु प्रसाद बहुगुण', प्रकाशक—कुसुम पाल तथा शं. प्र. बहुगुणा आई. टी. कालेज लखनऊ, पृष्ठ संख्या ६२ मूल्य १॥ रू. छपाई सफाई साधारण।

“साकेत” मैथिली शरण गुप्त का अति प्रसिद्ध काव्य है। उसमें कवि ने उर्मिला की विरह–व्यथा को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। काव्य की रचना कई वर्षों में समाप्त हुई है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्राचीन साहित्य में ‘काव्येर उपेक्षिता’ शीर्षक निबन्ध में महाकवियों द्वारा उर्मिला के प्रति मौन धारण करने के सम्बन्ध में भावुकता–पूर्ण विचार व्यक्त किये थे। उसी के आधार पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी ‘कवियों की काव्य विषयक उदासीनता’ शीर्षक लेख लिखा था।

—आचार्य लिखते हैं “हाय वाल्मीकि जनकपुर में तुम उर्मिला को सिर्फ एक बार वैवाहिक वधू वेश में दिखा कर चुप हो बैठे”। साकेत की रचना में ‘गुरुजनों’ के उपर्युक्त शब्दों की प्रेरणा है। साकेत महाकाव्य है, प्रबन्ध काव्य है अथवा गीति काव्य मात्र है, इस सम्बन्ध में हिन्दी के विद्वानों में बराबर मतभेद चला आ रहा है। यह तो स्पष्ट है कि उसमें कथानक की अन्विति–शृंखला–नहीं है। और यह भी स्पष्ट है कि उसमें कवि ने उर्मिला को नायकत्व देने की अपेक्षा राम का भी समावेश करा दिया है। अतएव रामकथा के समावेश और उर्मिला के विरह-उत्ताप के अतिरेक पूर्ण चित्रण से न तो राम को नायक का पूर्ण गौरव व प्राप्त हो सका और न उर्मिला ही काव्य की पूर्ण अधिष्ठात्री बन पाई है। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि ‘साकेत’ की उर्मिला ‘वाल्मीकि’ या ‘तुलसी’ की इंगिता उर्मिला नहीं है और न उसके लक्ष्मण ही तुलसी के लक्ष्मण हैं। दोनों पात्रों में गुप्तजी ने आधुनिकता का रंग भर दिया है। सीता और लक्ष्मण का सम्बन्ध बुन्देलखंड के देवर-भौजाई सा हलका प्रतीत होता है। हम आलोचक के इस मत से सहमत हैं कि ‘साकेत की उर्मिला एक प्रोषित पतिका के रूप में हमारे सामने आती है। लक्ष्मण

से वियुक्त उर्मिला उन्हीं दशाओं में ढकेली गई है जिन दशाओं में केशव, बिहारी, देव, मतिराम आदि की नायिकाएँ कभी रही थीं'। माण्डवी और श्रुतकीर्ति की जो कुछ झांकी हमें मिलती है वह उनके चरित्र की उदात्तता ही प्रगट करती है। कवि ने उनके चरित्र का विशेष विकास नहीं किया है क्योंकि उसका केन्द्र उर्मिला ही रही है। साकेत को महाकाव्य मानने वाले इन चरित्रों की पूर्णता की अपेक्षा रख सकते हैं। परन्तु हमारा विचार है कवि को उर्मिला की लक्ष्मण के वियोग में जो दशा रही है उसी का चित्रण अभीष्ट रहा है, इसी से उन्होंने राम-कथा को बड़े सपाटे से साकेत में बैठकर ही पूरा कर दिया है। जब उर्मिला की विरह–व्यथा काव्य का लक्ष्य बना ली गई तब कवि को अपने युग की गीति-शैली का आश्रय लेना पड़ा। हमें प्रसन्नता है कि उनके साकेत के कई गीत अत्यन्त रसपूर्ण हैं।

“दोनों ओर प्रेम पलता है
सखि पतंग भी जलता है दीपक भी जलता है”

उसका अमर गीत है।

‘साकेत–परीक्षण’ की आलोचना–शैली मैथिली शरण गुप्त के व्यक्ति को केन्द्र बनाकर चली है। इसी से उसके निष्कर्षों में निरपेक्षिता का सन्देह पाठकों में घर कर जाता है। लेखक गुप्तजी को कवि नहीं मानते, वे उन्हें आल्हा गाने वाला मानते हैं। वे लिखते हैं: ‘मैथिली शरण गुप्त शरीर से उन्नीसवीं बीसवीं शताब्दी में विचरण करने पर भी मन से १७ वीं शताब्दी के इन्द्रजीत के अखाड़े के केशवदास के अल्हैत बने हैं। यदि तुक भिड़न्त और भटैती ही कविता है, बिना वेदना और चेतना के भी कोई राष्ट्रीय हो सकता है तो निस्सन्देह ही मैथिली शरण गुप्त हिन्दी के महान से महान राष्ट्रीय कवि हैं।” यहाँ तक तो आलोचना मैथिली-शरण के कवि-रूप की समीक्षा है। अब आगे उनके व्यक्ति के सम्बन्ध में जो कहा गया है— “गुप्तजी आरम्भ से ही आदर्शवादी, थोथे राष्ट्रीय, झूठे गाँधीवादी, सस्ते भावुक,………………… रहे हैं उससे ‘साकेत…………………… परीक्षण का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। बहुगुणाजी यदि अपनी अहंवादी समीक्षा में व्यक्ति निरपेक्षिता की रक्षा कर सकते तो उनके निष्कर्षों को अधिक बल प्राप्त हो सकता।

बापू की कारावास कहानी:—

लेखिका: डॉ. सुशीला नैयर, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ४५६ अनेक चित्रों से सुसज्जित, उत्तम कागज़ पर छपी बंधी पुस्तक का मूल्य १० रुपया।

सन १९४२ की ऐतिहासिक क्रान्ति का जब श्री गणेश हुआ तब ब्रिटिश सरकार ने महात्मा गाँधी और उनके कुछ साथियों को पूना के निकट आगाखाँ महल में नजरबन्द किया था। महात्मा गाँधी की नजरबन्दी के दिनों का भारत के इतिहास में महान अनमोल महत्व है। महात्माजी ने किन मानसिक परिस्थितियों में वहाँ अपने दिन व्यतीत किये। महादेव भाई देसाई और पूज्य कस्तूरबा के स्वर्गवास तथा देश में घटित होने वाली घटनाओं की क्या प्रतिक्रिया उनमें हो रही थी इन सबका सविस्तर चित्रण इस महान ग्रन्थ में

किया गया है । डॉ. सुशीला नैयर को महात्मा गांधी के साथ रहने और उनका स्नेह तथा विश्वास प्राप्त करने का अवसर मिला था । आगाखाँ महल में वे उन्हींके साथ रही थीं, गांधीजी ने उस कारावास की पूरी डायरी सुशीलाजी से ही लिखवाई थी । महादेव भाई ने भी घटनाओं की कुछ टिप्पणियाँ लिख रखीं थीं उससे भी लाभ उठाया गया है । अतएव समस्त पुस्तक डायरी के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत है। 'भारत छोड़ो प्रस्ताव' से लेकर रिहाई तक की घटनाओं को सुन्दर ढंग से डायरी में कलमबन्द किया गया है । उपवास की अग्नि–परीक्षा और महादेव भाई के अन्तिम क्षणों का चित्रण करुणा से ओत प्रोत है । इस ग्रन्थ से ऐतिहासिक महापुरुष गांधीजी के महान व्यक्तित्व की झांकी तो मिलती ही है भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अप्रकाशित परिच्छेद भी हमारे सन्मुख आ जाते हैं । भूमिका लेखक बाबू राजेन्द्रप्रसाद के शब्दों में "यह महात्माजी से सम्बन्ध रखने वाली उन पुस्तकों में से होगी जो मौलिक सामग्री दे सकेगी ।" स्थितप्रज्ञ महात्माजी को समझने की कामना रखने वाले पाठकों को इस ग्रन्थ का अध्ययन-मनन करना चाहिये ।

पन्द्रह अगस्त के बाद :

—प्रकाशक वही मंडल, मूल्य सजिल्द प्रति का दो रुपया ।

इसमें १५ अगस्त १९४७ से २९ जनवरी १९४९ तक के गांधीजी के लेखों का संग्रह है ।

उनमें स्वाधीनता और बाद की समस्याओं पर विचार किया गया है । महात्माजी के ये लेख स्फुट विचार के रूप में हैं । सच्चा इस्लाम क्या है ? तिरंगा झंडा, विद्यार्थियों की कठिनाइयाँ गाय को कैसे बचाया जाय, नशीली चीजों की मनाही, मंत्रियों की जिम्मेदारी, उपवास का अर्थ, प्रौढ़ शिक्षण का नमूना, रंग भेद का निवारण, नेशनल गार्ड, आरोग्य के नियम, राष्ट्रभाषा और लिपि आदि अनेक विषयों पर विचार सगृहीत हैं । महात्माजी बहुत सीधे साधे ढंग से अपने को व्यक्त करते थे । एकबार बंबई में दस लाख रुपये जमा कर उनकी मूर्ति खडी करने की चर्चा उठी तो उन्होंने लिखा-"मेरी सच्ची मूर्ति तो मुझे रुचने वाले काम करने में है ।" लिपि के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था कि "लिपियों में सबसे आलादर्जे की लिपि नागरी को ही मानता हूँ ?.... लेकिन जब नागरी के पक्षपाती उर्दू लिपि का विरोध करते हैं तब मुझे उसमें द्वेष की और असहिष्णुता की बू आती है ।' समस्त लेखों में विचारों की स्पष्टता, और समन्वय बुद्धि का योग मिलता है । 'गांधी साहित्य' की यह पुस्तक भी एक मूल्यवान अंग है ।

गीता माता :

लेखक महात्मा गांधी, प्रकाशक—वही मंडल, नई दिल्ली । मूल्य चार रुपये ।

'गीता को शास्त्रों का दोहन' कहा जाता है । उसमें उपनिषदों का निचोड़ पाया जाता है । आज तक 'गीता' पर अनेक भाष्य प्रकाशित हो चुके हैं । यह महात्माजी का 'भाष्य' है जो अत्यन्त सुबोध है । महात्माजी की सलाह है कि "सारी गीता का वाचन आप को कठिन मालूम हो तो आप केवल पहिले

तीन अध्याय पढ़ लें। गीता का सब सार इन तीन अध्यायों में आ जाता है।" इसमें सन्देह नहीं है, गीता में जीवन की अनेक समस्याओं का हल मिल जाता है। इस ग्रन्थ का प्रथम भाग गीताबोध है जिसमें अठारहों अध्यायों का सार दे दिया गया है, गीता को महात्माजी ने अनासक्ति योग माना है। दूसरे खण्ड में गीता की सरल हिन्दी टीका दी गई है। तीसरे खण्ड में मूल संस्कृत पाठ दिया गया है। चौथे खण्ड में गीताप्रवेशिका शीर्षक के अन्तर्गत गीता के सरल और भक्ति प्रधान श्लोकों का संग्रह, पाँचवें खण्ड में गीता पदार्थ कोष के अन्तर्गत गीताके शब्दों का अर्थसहित स्थल निर्देश किया गया है। और अंतिम खण्ड में गीता सम्बन्धी विविध विचारों का संकलन है। इस प्रकार गीता के अध्ययन करने वाले पाठकों के लिये यह पुस्तक सर्वथा उपयोगी है।

ईशावास्यवृत्ति :

लेखक : आचार्य विनोबा भावे, प्रकाशक वही मंडल; मूल्य एक रुपया, पृष्ठसंख्या ७६।

ईशावास्य पूर्ण उपनिषद है। उसमें पारमार्थिक जीवन का पूर्ण चित्र अंकित किया गया है। उसे वेदों का सार और गीता का बीज कहा जाता है। आचार्य विनोबाजी स्वतंत्र चिंतना के लिये प्रसिद्ध हैं। '१९४२ की जेलयात्रा से आप अपने साथ स्थितप्रज्ञ दर्शन ईशावास्य वृत्ति और गीता प्रवचन नामक तीन रचनाएँ लाये थे, प्रस्तुत वृत्ति को पहले आचार्य विनोबा ने संस्कृत में लिखना शुरू किया था परन्तु संत विनोबा ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया अतः लोक भाषा में ही यह ग्रन्थ जनता के सामने आ रहा है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री कुन्दर दिवाण ने किया है और सुन्दर किया है। वृत्ति में पदशः विवरण है जिससें प्रतिपाद्य विषय का आशय स्पष्ट हो जाता है। आशा है हिन्दी भाषी जनता इस उपनिषद पर विनोबाजी के विचारों को पढ़कर लाभान्वित होगी।

सर्वोदय विचार :

लेखक वही, प्रकाशक वही, पृष्ठ संख्या १२३ मूल्य १॥ रुपया।

इसमें आचार्य भावेजी के सर्वोदय सम्बन्धी विचारों का संकलन सत्रह निबन्धों में किया गया है। सर्वोदय शब्द महात्माजी द्वारा पुरस्सर किया गया है जिसका सीधा सादा अर्थ सबकी भलाई है। इसमें सत्याग्रह की विचार सरणी निहित है। महात्माजी ने सर्वोदय समाज की स्थापना पर आग्रह प्रगट किया था। सारे देश में वे उसका जाल बिछा देना चाहते थे। जो व्यक्ति दूसरे की सेवा करता है और स्वावलम्बी है वह सर्वोदय समाज का सदस्य होने का अधिकारी है। आत्मनिर्भरता और जनसेवा, यही सर्वोदय का मूल मन्त्र है। गांधीजी के स्वर्गारोहण के बाद गांधी-संघका नाम 'सर्वोदय समाज रखा' गया है जिसकी बुनियाद सत्य निष्ठा पर आधारित है। जो गांधी-दर्शन में विश्वास रखते हैं वे सर्वोदय भावना को ही संघर्षमय समाज की एक मात्र तारक शक्ति मानते हैं। सर्वोदय की कल्पना समझने के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

पंचदशी :

सम्पादक श्री यशपाल जैन, प्रकाशक वही मंडल, पृष्ठ संख्या १२७ मूल्य १॥ रुपया।

यह भिन्न-भिन्न लेखकों के पन्द्रह निबन्धों

का संग्रह है। जिनमें वर्णनात्मक, कलात्मक, आध्यात्मिक और नैतिक आदि अनेक प्रकार के निबन्ध हैं। लेखकों में गांधी, विनोबा, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद, काका कालेलकर घनश्यामदास बिड़ला, आचार्य अभयदेव, वियोगी हरि, हरिभाऊ उपाध्याय, सियाराम शरण गुप्त, जैनेन्द्र कुमार, भदन्त आनन्द कौसल्यान, महादेवी वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि के नाम हैं। यद्यपि इसे हिन्दी के निबन्धकारों की प्रतिनिधि कृतियों का संग्रह नहीं कहा जा सकता तो भी इसमें विविध विचारों का उपयोगी संग्रह अवश्य है। पं. जवाहरलाल नेहरू का 'दो मस्जिदें' अनूदित निबन्ध उनके साहित्यकार होने का परिचय देता है। 'वियोगीहरि' के शब्दों में हम भी कहते हैं—"काश ! जवाहरलाल ने अपना अधिकांश साहित्य अपनी जोरदार और जानदार हिन्दी में लिखा होता।'

साहित्य सोपान

सम्पादकः **वि. एस. एस. शास्त्री, साहित्य रत्न तथा वि. विष्णुतीर्थ प्रकाशक—भाषा प्रचार महा विद्यालय, बंगलोर, पृष्ठ संख्या ९४ मूल्य—रु. १॥**

हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद पर आसीन होने के कारण देश की विभिन्न भाषी जनता उसके अध्ययन—अध्यापन में अत्यधिक उत्साह के साथ भाग लेने लगी है। राष्ट्रभाषा के प्रचार का विस्तृत क्षेत्र दक्षिण भारत है। वहाँ की जनता ने भी हिन्दी सीखने की ओर अत्यन्त उत्साह प्रदर्शित किया है। हिन्दी सीखने की इस प्रखर अभिरुचि की पूर्ति के लिये इस क्षेत्र में हिन्दी की सुन्दर, सुरुचि-पूर्ण तथा शिक्षण सिद्धान्त के अनुकूल पुस्तकों के प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता थी।

प्रस्तुत—पुस्तक अिस उद्देश्य की पूर्ति की ओर प्रथम प्रयास है। इसके संपादक द्वय अहिन्दी भाषी होते हुए भी, पुस्तक में संकलित निबन्धों के चुनाव में पूर्णतया सफल रहे हैं। सर्व श्री श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचंद, श्रीराम शर्मा, प्रभृति हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों के निबन्ध इस पुस्तक में संकलित हैं।

[पुस्तक का गेटअप और छपाई सफाई सुन्दर है। मूल्य कुछ ज्यादा रखा गया है।]

— कृ. द्विवेदी, बी. ए. साहित्यरत्न

दृष्टिकोण

(सम्पादकीय)

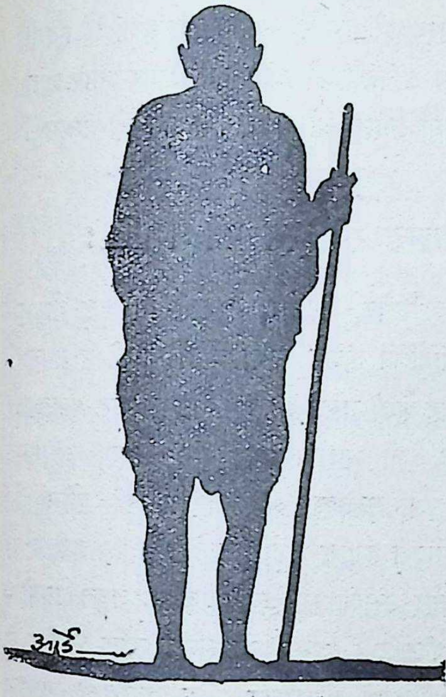

विश्वोद्धार-प्रयत्नात्मा की जयन्ती के पुण्यसरण में :

यद्यपि आज राष्ट्रपिता, बापू का पवित्र तप:पूत शरीर, वह क्षणभंगुर मानव काया, हमारे बीच में नहीं है जिसकी छाया में लगातार गत ४० वर्षों से हम निश्चिन्त थे, बेफ़िक्र थे; फिर भी वे भारत के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में देवदुर्लभ अमरत्त्व के रूप में महान आदर और श्रद्धा के साथ आसीन हैं, और भविष्य के युगों तक वे भारत की लाखों करोड़ों सन्तानों के हृदयों में विराजमान रहेंगे। उनकी दिव्य वाणी संसार में गूँजती रहेगी। अगणित पस्तहिम्मत, पीड़ित, पद-दलित निर्बलों को हिम्मत और उत्साह मिलता रहेगा। जब तक सत्य, अहिंसा, प्रेम, क्षमा और करुणा की हस्ती दुनिया में रहेगी तब तक उनका अमरत्त्व, अस्तित्व, अक्षुण्ण रहेगा। तक़दीर—बलन्द थी कि आधुनिक भारत ने बापू को अपने उद्धारक के रूप में प्राप्त किया था। उन्होंने भारत के लाखों करोड़ों पुत्र-पुत्रियों पर अपने अमोघ प्रेम की वर्षा की, अपना अगाध विश्वास और आश्वासन उन्हें दिया। क्षमा किया, अपनाया, सीख दी, नेक नसीहत दी और वे उनके समूचे जीवन में प्रकाश-प्रेरणा के पुंज होकर प्रवेश कर गये। दुनियाँ के दूर दूर तक के देशों ने उनको महामानव के रूप में, क्रान्तिकारी, सर्व-समन्वयकारी युगप्रवर्तक ऋषि तुल्य माना। संसार के बड़े बड़े दिमागों ने उनके महान आदर्शों के आगे अपना मस्तक झुकाया।

बापू मृत्युंजय थे। वे मृत्यु को सदैव अपना एक आनन्दायक मित्र मानते थे और अपने निन्दकों को आँगनकुटी छवाय नित्य नियरे रखते थे। सम्प्रदायिक घृणा और विद्वेष को, नफ़रत और फ़िर्क़ापरस्ती को, उन्होंने हमेशा गलत रास्ता बतलाया। सत्य, अहिंसा और प्रेम की आधार शिला पर ही वे भारत की आज़ादी की मज़बूत नींव रख कर गये।

राष्ट्रभाषा हिन्दी पर राष्ट्रपिता का अगाध प्रेम रहा है। हिन्दी के ऊपर उनके अनेक उपकार हैं। दक्षिण आफ्रिका के उस महान सत्याग्रह से लेकर ता. ३० जनवरी १९४८ की उस महानिर्वाण की शाम के ५ बजे तक, वे हिन्दी के प्रचार और समुत्थान में लगे रहे। भारतवर्ष के अ-हिन्दी प्रान्तों में, दक्षिण भारत मद्रास में, बापू ने ही हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ाई। हिन्दी की शैली में नवीन ओज-तेज और अभिजात अभिव्यक्ति का जो बल-पुरुषार्थ आया है वह गुरुदेव रवीन्द्र और राष्ट्रपिता गान्धी की अमर देन है।

अक्टूबर की २ री को हम अपनी प्रदीप्त सतत जागरूक श्रद्धांजलि इस विश्व में शान्ति के अग्रदूत महात्मा के चरणों में गीता के निम्न लिखित श्लोकों में अर्पण करें:—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तम्,
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥
यच्चावहासार्थ मसत्कृतोसि,
विहारशय्यासन भोजनेषु।
एकोऽथ वाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥

ओह! मैं कितना बुद्धिहीन हूँ। मैं आप के साथ रहा। आप के प्रभाव को न जानकर क्या क्या बक गया। कितनी बार आप के साथ तीन-तिकडम—तू-तड़ाक किया। आप को अपमानित किया। आप की नसीहतों की हँसी की, अवहेलना की, मज़ाक उड़ाया। आप के साथ उठने-बैठने, भोजन करने और बात-चीत करने में आप को अपमानित किया; मानों आप मेरे कोई बहुत ही मामूली दोस्त हैं। भगवन्! आप की महिमा न जानने के कारण ही हम से यह सब कुछ हुआ है। हमारे इस अविनय को आप की अजर अमर आत्मा क्षमा प्रदान करे। क्षमध्वं मम दौरात्म्यम्!

* * *

कन्नड साहित्य की प्रगति :

मैसोर, बंगलोर, हुबली धारवाड़ के भू-भागों में कन्नड भाषा बोली जाती है। जहाँ यह बोली जाती है वह कर्नाटक प्रान्त कहलाता है, जो भारतवर्ष का एक सुन्दर, कलामय, सभ्य, सुसंस्कृत और प्रकृति की शोभा से सम्पन्न हमारा पड़ोसी प्रदेश है। कन्नड भाषा और उसका साहित्य आजकल बहुत प्रगतिशील है। अभी कुछ समय पहले बंगलोर में 'इंडियन इन्सिट्यूट ऑफ कलचर' नामक संस्था का जलसा हुआ था। उसमें कन्नड के प्रसिद्ध विद्वान् प्राध्यापक शेषगिरिरावजी ने एक महत्वपूर्ण भाषण कन्नड साहित्य की आजतक की प्रगति पर दिया था। हिन्दीवालों के लिए उसमें काफ़ी मनन करने योग्य सामग्री है। पिछले ३० वर्ष कन्नड साहित्य का जागरण युग है। इस काल के लेखकों ने व्यक्तित्व की भावना का विविध रूपों में

चित्रण किया है। लोकोत्तर मनुष्यों को, अतिमानवीय विषयों को, और देवताओं को अब साहित्य में जगह नहीं दी जा रही है। आज का कन्नड साहित्यिक सामान्य मानव के सुख-दुख का ही चित्रण करता है। उसने साहित्य का सामाजिक जीवन से सामंजस्य स्थापित कर लिया है। प्राचीन साहित्य को प्रेरणा धर्म से मिलती थी। आज के साहित्य को प्रेम, मैत्री, स्वतंत्रता, आकांक्षा, उत्पीड़न, मृत्यु के महान् रहस्यमय चिन्तन और मानव के मन के भेदों, अनुभवों और आवेगों से ही प्रेरणा मिल रही है। कवि मुद्दन का 'रामशिव मेध' जिसमें राम द्वारा सीता के परित्याग का वर्णन है — मुद्दन और उसकी प्रियतमा मनोरमा के प्रेम की पृष्ठभूमि में संक्रान्ति का सूचक प्रतीत होता है। कन्नड साहित्य की इस प्रवृत्ति ने समाज को प्रभावित किया है। सामान्य व्यक्ति के हृदय में यह विश्वास-सा जम रहा है कि साहित्य अब उसका अपना बनता जा रहा है और साहित्यकार समाज का सच्चा प्रतिनिधित्व कर रहा है। जिस प्रकार प्राचीन कन्नड कवि बसवन्न, पुरन्दरदास और सर्वज्ञ की लोक-प्रियता का रहस्य उनके उपदेशों की सरलता और प्रासादिकता थी, उसी प्रकार आधुनिक साहित्यकार की लोकप्रियता का रहस्य सामान्य मानव की आकांक्षा, पीड़ा, मनोदशा और उसके स्वप्नों के चित्रण में समाया हुआ है। जब अंग्रेजी साहित्य से सम्पर्क बढ़ा तो कन्नड में नई नई शैलियाँ उत्पन्न हुईं। साहित्य के नये नये अंगों का विकास हुआ। कहानी, एकांकी, गीत, उपन्यास, दुःखान्त रचनाएँ आधुनिक कन्नड साहित्य की स्थायी अंग बन गयीं। परिमार्जित सुन्दर गद्य की शैली में सरल प्रभावोत्पादक छोटे छोटे निबंध नई प्रेरणा लेकर आये। और ऐसे अनेक निबन्धों में वर्णनात्मकता, वाद-विवाद, हँसी-मज़ाक आदि के सुन्दर नमूने तैयार हुए। कन्नड में समालोचना पर अंग्रेज़ी का प्रभाव स्पष्ट लक्षित हुआ।

अंग्रेजी के अलावा फ्रैंच और रूसी साहित्य का भी पर्याप्त प्रभाव कन्नड साहित्य पर पड़ा है। जहाँ अंग्रेजी ने उसे विषयों की विविधता और सोचने-समझने और व्यक्त करने का स्वतंत्र दृष्टिकोण दिया; वहाँ फ्रैंच ने कन्नड साहित्य में यथार्थवाद और इन्द्रिय-सुख लिप्सा को प्रेरित किया; तो रशियन ने पूंजीवाद के प्रति घोर विद्रोह को जागृत कर साहित्य में स्फूर्ति, एक नई दृष्टि और शोषितों के प्रति सहानुभूति समवेदना का भाव उत्पन्न किया। आचार्य शेषगिरिरावजी ने वर्तमान कन्नड़ साहित्य के कुछ अभावों पर प्रकाश डाला है। कला की दृष्टि से अपरिपक्वता, प्रचारात्मकता ने कन्नड की कला और सौन्दर्य को अभिभूत कर लिया है। साहित्य के अंग विशेषों को भली-भाँति विकसित रूप नहीं मिल रहा है।

अनुवादों और रूपान्तरों की अत्यन्त आवश्यकता है। समालोचना के विकास में भी काफी गुंजाइश है। रंगमंच की कमी ने नाटक की प्रगति को रोक रक्खा है। मानव के समस्त आन्तरिक संघर्षों का सूक्ष्म और विस्तृत चित्रण अभी तक पूर्ण विकसित नहीं हो पाया है। एक बँधी हुई परिपाटी को लेकर ही चरित्र-चित्रण चल रहा है। मानव-

मन के बहुमुखी सौन्दर्यों और रहस्यों की रेखाएँ खींचना अभी बाकी है।

* * *

मराठी साहित्यिकों को पुरस्कार :

अभी हाल में, गोवा-मराठी साहित्य सम्मेलन का पाँचवां अधिवेशन बेलगांव में हुआ था। इस समारोह में गोवा के कुछ साहित्यकारों को उनकी कृतियों पर सम्मानित किया गया।

श्रीयुत बोरकर को उनके 'भाविन' नामक उपन्यास पर एक स्वर्ण पदक मिला। श्री महादेव शास्त्री जोशी को 'खड़कातील पाज़र' नामक लघुकथा-संग्रह पर ५०) रु., सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका पर्लबक् के 'गुड अर्थ' के मराठी अनुवाद "धरित्री" पर श्री बी. डी. सतोषकर को ३०) रु. और श्री डी. बी. पै को उनकी रचना "जलता गोमंतक" पर २० रु.।

नागपुर के श्री वा. कृ. वऱ्हाडपांडे को स्व० गडकरी के नाटकों की विशेषताओं पर लिखे निबन्ध पर १०१) रु. का पुरस्कार दिया गया। दादर (बंबई) के नाट्यकलोपासक मंडल ने मराठी के प्रसिद्ध नाटककार स्व० श्री. गडकरी की ३१ वीं पुण्यस्मृति के उपलक्ष्य में आयोजित प्रतियोगिता के सर्व-प्रथम लेख पर इसे प्रदान किया था। हम श्री वऱ्हाडपांडे का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

* * *

श्री एकनाथ दर्शन' :

हैदराबाद में 'श्री नाथ वांग्मयोपासक मंडल' नाम की संस्था है। वह महाराष्ट्र के संत भक्त कवि एकनाथ महाराज की साहित्य-साधना पर अब तक जितने भी समालोचनात्मक लेख निकले हैं उनका एक सर्वांग सुन्दर संग्रह "श्री एकनाथ दर्शन" के नाम से प्रकाशित करने का आयोजन कर रही है। यह ग्रन्थ आगामी मार्च १९५१ में, जब महान् संत एकनाथ की पुण्यतिथि पड़ती है, प्रकाशित हो जायगा।

* * *

बंगाल और राष्ट्रभाषा :

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि बंगाल सरकार ने माध्यमिक शालाओं की पांचवीं और छठी कक्षाओं में राजभाषा हिन्दी को अनिवार्य करने का निर्णय किया है। इस निर्णय पर पहुंचने में बंगाल सरकार ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया है। जब सारा भारत बैधानिक रूप से यह स्वीकार कर चुका है कि हिन्दी ही इस देश की राष्ट्रभाषा होगी और १५ वर्षों के भीतर ही उसे अंग्रेज़ी का स्थान लेना है तो इस दृष्टि से राज्यों की सरकारों को हिन्दी-प्रसार का प्रयत्न करना और इस सम्बन्ध में कोई निश्चित कार्यप्रणाली बनाना उचित ही मालूम होता है। अन्यथा १५ वर्ष की अल्प अवधि में इस महान कार्य का संपन्न होना संभव नहीं। राजनैतिक और शैक्षणिक दृष्टि से भी हमें सारे देश की शालाओं में हिन्दी अनिवार्य कर देनी चाहिए ताकि देश के सभी राज्यों में ठीक समय पर अंग्रेजी का पूर्ण बहिष्कार किया जा सके। सारे विश्वविद्यालयों में एक भाषा के द्वारा शिक्षा संभव हो सके और सारे राष्ट्र के उच्च चिन्तन

के क्षेत्रों में एक विचार-माध्यम का सहारा लिया जा सके । इससे न केवल राष्ट्रीय एकता की भावना ही पुष्ट होगी वरन् अनावश्यक श्रम और अर्थ की हानि से भी हम बच जायेंगे । इसका तात्पर्य यह नहीं, कि प्रान्तीय साहित्य की उन्नति में किसी प्रकार का गत्यवरोध उत्पन्न किया जाय । प्रान्तीय-भाषाएँ तो अपने साहित्य का विकास उसी प्रकार करती रहेंगी जैसी कि अभी तक करती आयी हैं । केवल जो कार्य अभी अंग्रेजी द्वारा होता था वह अब हिन्दी द्वारा हो, यही हमारी आकांक्षा है ।

बंगाल के कुछ प्रगतिशील पत्र और संस्थाओं ने इस विषय में विरोध प्रकट किया है । हमें बड़ा खेद और ग्लानि हुई, यह बात जान कर । जब अंग्रेजी हम पर बलात् लादी गई थी तब कोई प्रान्तीय संस्था अथवा पत्र-प्रत्रिका आगे बढ़कर उसका विरोध करने का साहस न कर सकी । किन्तु आज जब देश की भाषा, वह भी सर्वमान्य विधियों से, सर्वसम्मत विधान द्वारा राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है तब उसका विरोध खड़ा करना अपने ओछेपन और अपनी अदूरदर्शिता का परिचय देना है । यह भी तो घातक संकीर्ण प्रांतीयता और साम्प्रदायिकता है जिसका अन्त होना ही चाहिए। सभी राज्य की सरकारों से हमारी प्रार्थना है कि वे हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाने के लिए शीघ्रातिशीघ्र कोई निश्चयात्मक कदम उठावें ताकि हमारा १५ वर्ष सम्बन्धी निर्णय अवधि के उपरान्त मज़ाक की वस्तु न बन सके । अब आँखें मूंद कर अंग्रेज़ी के पीछे पागल बनने का समय नहीं है । हम यह भी नहीं कहते कि आज ही हम सब अंग्रेज़ी का एकदम बहिष्कार कर दें । वर्तमान बंगाल और मद्रास को, कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायाधीश स्वर्गीय शारदाचरण मित्र के आदर्श का संस्मरण करना चाहिए । उन्होंने बड़ी दूरदर्शिता और उदारता के साथ सम्पूर्ण राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा हिन्दी घोषित की थी और नागरी को वे सारे राष्ट्र की एक 'राष्ट्रलिपि' के पद पर आसीन करना चाहते थे । वे चाहते थे कि भारत की प्रमुख प्रांतीय भाषाएँ बंगला, उड़िया, असमिया, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि आदि एक ही लिपि देवनागरी में लिखी जायें; और अपने इस दृढ़ निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए जस्टिस मित्र ने "एक लिपि विस्तार परिषद" की स्थापना "बंगभंग" आन्दोलन के समय १९०५ में की थी । बंगाली होते हुए भी मित्र महोदय ने अपनी वृद्धावस्था में हिन्दी का हित साधन किया । उन्होंने अपनी 'लिपि विस्तार परिषद' की ओर से "**देवनागर**" नामक पत्र निकाला था । जब तक वे जीवित रहे तन-मन-धन से हिन्दी और नागरी की उन्नति में लगे रहे । मद्रास हाईकोर्ट के स्व० जस्टिस कृष्णस्वामी महोदय भी हिन्दी और नागरी के कट्टर समर्थक थे और बार बार कहते थे कि मेरे भाग्य में वह बड़ा गौरव का दिन होगा जब मैं स्वच्छन्दतापूर्वक हिन्दी में वक्तृता दूँगा। वे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे । राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि में वे भारत की एकता के दर्शन करते थे । और आज पढ़े लिखे बंगाली विद्वान, साहित्यकार, समाज-सेवक कहाँ बहे जा रहे हैं !

स्व० प्रेमचंदजी की प्यारी याद में:—

उपन्यास-सम्राट और कहानी-कलाकार स्वर्गीय प्रेमचंदजी का नाम आज देश के लाखों-करोड़ों हिंन्दी-प्रेमियों की ज़बान पर चढ़ा हुआ है। लाखों हिन्दी-प्रेमी उनकी याद को प्रतिवर्ष ८ वीं अक्टूबर को तरोताज़ा करते हैं। हम भी उन्हें हरदिन याद करते हैं, इतना बड़ा आदमी—एक महान साहित्यकार; किन्तु साहित्यिक आंडम्बर से रहित और अपनी ही महिमा से अनजान, शरीर का आकार प्रकार छोटा, बहुत ही मामूली हैसियत का व्यक्तित्व, रहन-सहन देहाती ढंग की; चेहरे पर कोई महानता का चिन्ह नहीं। ऐसे थे हमारे स्व. प्रेमचंदजी बहुत ही सीधे साधे। वे ही हिन्दी के सर्व प्रथम मौलिक कलाकार कहानी-लेखक थे जो हिन्दी-जगत् में गान्धी युग के हिंदुस्तान के स्वराज्य की कुंजी लेकर आये थे। उनकी कहानियों ने और सेवासदन, रंगभूमि और गोदान—आदि उपन्यासों ने विलक्षण जन-जागृति उत्पन्न की। अंग्रेजी राज्य में दुर्दशाग्रस्त दीन-हीन देहातियों के दुखी जीवन के मार्मिक चित्र खींचे। हिन्दी को उन्होंने अपनी सरल, साफ़-सुथरी सुन्दर स्पष्ट लेखन शैली दी। उनकी भाषा का नमूना राष्ट्रभाषा का उत्तम नमूना है। भारतीय संस्कृति के आदर्शों के विरुद्ध वे कभी नहीं गये। वे आदर्शवादी थे। देश के साहित्य में, संस्कृति-सभ्यता में और जीवन में वे सदाचार के समर्थक रहे। प्रेमचंदजी हिन्दी को वह शक्ति, शील और शोभा दे गये कि उसकी मर्यादा और महिमा सदैव सदियों ऊचे उठती जायगी।

* * *

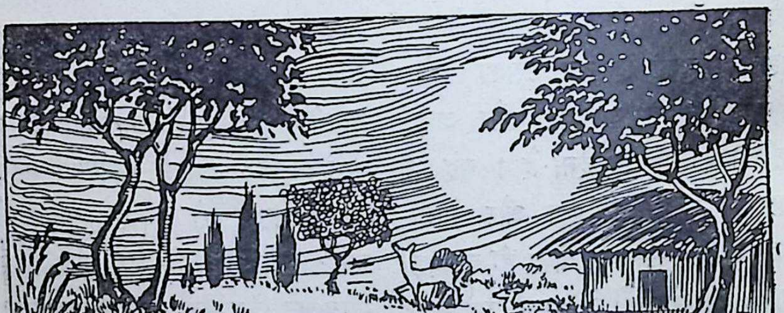

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेर-ओ-शायरी

[उर्दू के १५०० शेर और १६० नज़्म]

श्री. अयोध्याप्रसाद गोयलीय —

प्राचीन और वर्तमान कवियों में ३१ लोकप्रिय कलाकारों के मर्मस्पर्शी उर्दू पद्यों का संकलन और उर्दू-कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय। **हिंदी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।** **मूल्य ८)**

मिलनयामिनी (गीत)

कविवर बच्चन

जिसकी मधुशाला का अमेरिका में संस्करण प्रकाशित हो रहा है उसी भारतं सपूत बच्चन की श्रेष्ठतम और नवीन कृति। **मूल्य ४)**

मुक्तिदूत [पौराणिक रोमांस]

श्री. वीरेन्द्रकुमार, एम् ए.

उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है......मर्मज्ञों ने मुक्त-कण्ठ प्रशंसा की है......। द्वितीय संस्करण छपा है। **मूल्य ५)**

पथचिह्न [उत्तर प्रदेश सरकार से एक हजार रुपयों से पुरस्कृत]

मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली। श्री. शांतिप्रिय द्विवेदी की कोमलस्मृति रेखाएँ। **मूल्य २)**

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ

इन कहानियों में प्राचीन भारत का चिन्तन सुरक्षित है। — कर्मवीर खण्डवा। **मूल्य ३)**

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि

प्रश्नशास्त्र का अद्भुत ग्रंथ, हिन्दी विवेचन, मुहूर्त, कुण्डली, शकुन आदि के हिन्दी परिशिष्टों में विभूषित। इसके अध्ययन से सामान्य पाठक भी ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस ४

दी युनायटेड कमर्शियल बैंक लि.

हेड ऑफिस, कलकत्ता

चुकता मूलधन : २ करोड़ रुपये

सुरक्षित कोष (रिज़र्व फंड) : ५२॥ लाख रुपये

चेयरमैन : जी. डी. बिड़ला

जनरल मैनेजर : बी. टी. ठाकुर

समस्त भारत, पाकिस्तान, बर्मा और मलाया में बैंक की शाखाएँ हैं, और संसारभर में एज़न्सी की व्यवस्था है।

जी. ए. रणदिवे
मैनेजर, नागपुर शाखा

'भारती' यहां मिलती है।

१. अदोनी
२. अजमेर
३. अमृतसर
४. बंगलोर शहर
५. बलंगीर
६. बडवानी
७. बेलगांव
८. बल्लारी
९. बेतूल
१०. बंबई
११. कोयंबतूर
१२. एलोर
१३. गुंतकल
१४. गुंटूर
१५. हुबली
१६. इन्दौर
१७. जबलपुर
१८. मद्रास सेंट्रल
१९. मद्रास इगमोर
२०. मदुरा (जं.)
२१. मद्रास
२२. मलकापूर
२३. मैसोर
२४. नागपुर
२५. निडडबोल
२६. राजमहेन्द्री
२७. राजकोट
२८. सामलकोटा
२९. सिकंदराबाद
३०. तंजौर
३१. तेनाली
३२. तिरूच्चिनापल्ली
३३. ट्रिवेंड्रम सेंट्रल
३४. विजयवाड़ा

गांधी-जयंती के
अवसर पर

राष्ट्र-पिता के सिद्धान्तों और विचारों का मनन करने के लिए

अवश्य पढ़िए

१. **गांधी साहित्य** — १ (गांधीजी की प्रार्थना प्रवचन, गीतामाता, पंद्रह अगस्त के बाद, धर्म-नीति, आत्मकथा आदि बीस पुस्तकें)

२. **गांधी साहित्य**—२ (गांधीजी-विषयक पुस्तकों में बापूकी कारावास कहानी, राष्ट्र-पिता, बापू, श्रद्धा कण, बा, बापू, और भाई, 'बापू के चरणों में आदि

३. **विनोबा साहित्य** — (विनोबाजी की विनोबा के विचार, गीता-प्रवचन, शांति-यात्रा, सर्वोदय-विचार, ईशा-वास्यवृत्ति, आदि नौ पुस्तकें)

४. **सर्वोदय-साहित्य**— (सर्वोदय-विचार, सर्वोदय-योजना, सत्याग्रह-मीमांसा, सर्वोदय-तत्वदर्शन, स्वतंत्रता की ओर, आदि-आदि)

विशेष रियायत

१—**सौ रुपये** की पुस्तकें लेनेपर २५% कमीशन **अथवा** डेढ़ हजार पृष्ठ की 'कांग्रेस का इतिहास' की ३ जिल्दें मूल्य ३०) — मुफ्त

२—**पचास रुपये** की पुस्तकें लेनेपर २०% कमीशन **अथवा** ये दो पुस्तकें—'एक महान चुनौती' ७।) और 'प्रवासी की आत्मकथा ८) — मुफ्त

३—**पच्चीस रुपये** की पुस्तकें लेनेपर २०% कमीशन **अथवा** 'प्रवासीकी आत्मकथा' या 'एक महान' चुनौती में से कोई एक — मुफ्त

४—**पंद्रह रुपये** की पुस्तकें लेनेपर २०% कमीशन **अथवा** 'जीवन-साहित्य' के एक वर्ष के लिए ग्राहक — वार्षिक मूल्य ४) — मुफ्त

५—**दस रुपये** की पुस्तकें लेनेपर २०% कमीशन **अथवा** 'गीतामृत' पुस्तक का ४) — मुफ्त

इन रियायतों के अलावा खास बात यह है कि इन पुस्तकों के भेजने का सारा खर्च खरीददारों को नहीं देना होगा।

पर ये रियायतें केवल अक्तूबर के महीने के लिए ही है।

बड़ा सूचीपत्र तुरंत मंगाकर अपना आर्डर भेजिये। आर्डर के साथ १०% रकम पेशगी भेजना जरूरी होगा। नीचेका कूपन काटकर भेजनेवालों का ही आर्डर पक्का मान जायगा।

यहांसे काटकर भेजें।

मैं "भारती" नागपुर का ग्राहक हूं। आपका रियायत नं०............के अनुसार...............
रुपये की पुस्तकों का आर्डर और...............
...............रुपया पेशगी भेजता हू। पुस्तकें शीघ्र भेजें।
हस्ताक्षर...............
पूरा पता (साफ-साफ)...............
....

व्यवस्थापक,
सस्ता साहित्य मंडल,
कनॉट सर्कस,
नई दिल्ली

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. हमारे नवीन प्रकाशन

(१) ज्ञानयोग — स्वामी विवेकानन्द, मू० ३);
(२) सरल राजयोग — स्वामी विवेकानन्द, मू० ॥);
(३) स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप, मू० १।);
(४) वेदान्त — सिद्धान्त और व्यवहार — स्वामी शारदानन्द–विवेकानन्दजी के गुरु-भाई-कृत मू० ।=).
(५) शक्तिदायी विचार — स्वामी विवेकानन्द, मूल्य ॥=).

२. श्रीरामकृष्ण वचनामृत

अनुवादक—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सुन्दर गेट-अप, तीन भागों में, प्रथम भाग, पृ. सं. ६३२, मूल्य ६) रु., द्वितीय भाग, पृ. सं. ६५७, मूल्य ६) रु., तृतीय भाग, पृ. सं. ८२२, मूल्य ७॥ रु.।

३. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी)

पं० द्वारकानाथ तिवारी कृत, दो भागों में, सुन्दर गेट-अप, प्रथम भाग, पृ. सं. ४३६, द्वितीय भाग, पृ. सं. ४८६, प्रत्येक भाग का मूल्य ५ रु. ।

"श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे ।"

— महात्मा गांधी

४. विवेकानन्द-चरित

(विस्तृत एवं स्फूर्तिदायक जीवनी)

सुविख्यात लेखक, श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार कृत, **अभी प्रकाशित हुई**; सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ५५५, मूल्य ६ रु. ।

"प्राचीन भारतीय संस्कृति में पगे तथा भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा के अभिमानी स्वामी विवेकानन्द मानवी जीवन की समस्याओं को समझने में नितान्त आधुनिक थे और हम कह सकते हैं कि इस प्रकार उनके जीवन में भारतवर्ष की प्राचीन तथा वर्तमान संस्कृति का सुन्दर समन्वय हुआ है ।"

— पं० जवाहरलाल नेहरू

५. विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप)

शिष्य शरच्चन्द्र कृत, सुन्दर गेट-अप, पृ.सं. ४४८, मूल्य ५) रु. ।

स्वामी विवेकानन्द कृत — भारत में विवेकानन्द, ५; पत्रावली (दो भागों में), प्रत्येक भाग का मूल्य २=); महापुरुषों की जीवन-गाथाएँ १।); मन की शक्तियां ॥); इशदूत ईसा ।=); राजयोग १=); स्वाधीन भारत! जय हो! १=); कवितावली ॥=); भारतीय नारी ॥।); शिक्षा ॥=); धर्म-रहस्य १); मेरी समरनीति ।≡); धर्मविज्ञान १॥=); मेरा जीवन तथा ध्येय ॥); मरणोत्तर जीवन ॥); श्रीरामकृष्ण, धम तथा संघ ॥=); कर्मयोग १॥=); हिन्दु-धर्म १॥); प्रेमयोग १।=); भक्ति-योग १।=); आत्मानुभूति १।); परिव्राजक १); प्राच्य आर पाश्चात्य १।); शिकागो-वक्तृता ॥=); मेरे गुरुदेव ॥=); हिन्दु-धर्म के पक्ष में ॥=); वर्तमान भारत ॥); पवहारी वावा ॥); विवेकानन्दजी की कथाएँ १।); श्रीरामकृष्ण-उपदेश ॥=) ।

परमार्थ प्रसंग — (स्वामी विरजानन्द — विवेकानन्दजी के सन्यासी शिष्य तथा रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष कृत) कपडे की जिल्द ३॥); काड वोर्ड की जिल्द ३।)

पता :—

श्रीरामकृष्ण आश्रम, [भा], धन्तोली, नागपुर-१, मध्यप्रदेश

खास सूचना :—

'भारती' बिना मूल्य १ वष तक

जो हिन्दी-प्रेमी सज्जन 'भारती' के ४ नये ग्राहक बना देंगे उन्हें भारती एक साल तक बिना मूलग मिलेगी ।

— प्रबन्ध सम्पादक
'भारती'

श्री प्रो. गोपाल शर्मा, एम. ए. बी. टी. :
परिचय गत फर्वरी अंक में ।

श्री भदन्त शान्ति भिक्षु :
बौद्ध साहित्य के विद्वान । शांतिनिकेतन विश्व भारती में प्राध्यापक । विभिन्न विषयों के अध्ययनशील प्रौढ लेखक ।

श्री विनय मोहन शर्मा, एम. ए., एल. एल. बी. :
परिचय गत फर्वरी के अंक में ।

श्री उमाशंकर शुक्ल :
वर्धा निवासी । सेवाग्राम की समग्र सर्वोदय प्रगति के सारे भारत में लाउड स्पीकर और हिन्दी के जबर्दस्त जर्नलिस्ट । स्वभाव में मिठास और मिलनसारी जो पत्रकार के खास गुण हैं ।

श्री यतीन्द्रमोहन बागची :
स्वर्गीय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के सफल कृपापात्र शिष्यों में से अन्यतम । सुललित भाषा, स्वच्छन्द छन्द, रूपकयुक्त भाव बागची के अपने निराले हैं । वे कुछ कविताएं अपने गुरुदेव की कुछ कविताओं के उत्तर में लिखा करते थे और कला के क्षेत्र में उसी लीक पर चलते थे ।

श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री :
गत २२ वर्षों से हिन्दी काव्य-साधना में संलग्न और नियमित रूप से प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लिखते आ रहे हैं । अबतक आपकी छोटी बड़ी ११ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें २ कविता-संग्रह हैं । ३०० से ऊपर लेख आपने लिखे हैं । अध्ययनशील लेखक, समालोचक, सहृदय कवि, आचार्य व्याकरण और साहित्य के । अकोला के विद्यामन्दिर में प्रधान आचार्य हैं ।

श्री 'प्रभाकर' पंडित :
परिचय गत जुलाई के अंक में ।

श्री अनन्त गोपाल शेवडे, एम. ए. :
परिचय गत फर्वरी के अंक में ।

* * *

हिंदी और मराठी भाषामें प्रकाशित होता है ।
उद्यम
प्रतिमास १५ तारीख को पढ़िये ।
धर्मपेठ, नागपुर.

उद्यम में निम्न विषयों पर लेख प्रकाशित होते हैं ।
★ लाभदायक उद्योगधंधों की व्यवहारोपयोगी जानकारी ।
★ अनाज की खेती, सागसब्जी की बागवानी, और रोगों का निवारण ।
★ पशुपालन, दुग्धव्यवसाय और ग्रामोद्योग-संबंधी लेख ।
★ विद्यार्थियों के लिये वैज्ञानिक तथा अन्य जानकारी-पूर्ण लेख ।
★ आरोग्य, घरू औषधियों संबंधी जानकारी ।
★ उद्यम परिवारके हर व्यक्तिकी दृष्टिसे उपयोगी है ।
★ संपूर्ण भारत के व्हीलर रेल्वे स्टालों, और हर गाँवके न्यूजपेपर एजेंटों की माँग सतत बढ़ती जा रही है ।
★ उद्यम मासिक में हर माह सुधार किया जा रहा है और इसे हर पाठक की दृष्टिसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न हो रहा है ।
★ वर्ष के १२ अंकों में अपने ढंग के दो विशेषांक प्रकाशित होते हैं, जो स्थायी ग्राहकों को वार्षिक चंदे में ही मिलते हैं ।

उद्यम के विशेष स्तंभ
★ महिलाओं तथा विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त
★ विभिन्न रुचिकर खाद्यपदार्थ बनानेकी विधियाँ
★ घरू मितव्ययिता
★ उद्यम का पत्रव्यवहार
★ खोजपूर्ण खबरें
★ आर्थिक तथा औद्योगिक परिवर्तन
★ जिज्ञासु जगत्
★ व्यापारिक हलचलों की मासिक समालोचना
★ कृषि, औद्योगिक और-व्यापारिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों की मुलाकात और परिचय
★ हिंदुस्थान के वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र की उपयोगी जानकारी
★ नित्योपयोगी वस्तुएँ घरही तैयार कीजिये ।
★ आजही उद्यम का वार्षिक चंदा रु. ७-०-० भेजकर सर्वोपयोगी उद्यम मासिक मँगवाना प्रारंभ करें ।

Reg. No. N. 1262.

भारती

'भारती' में अपना विज्ञापन देकर व्यापारिक लाभ उठाइये

'भारती' की प्रगति

उत्तर-दक्षिण में

श्रीनगर कश्मीर से लेकर रामेश्वरम्
मद्रास तक

और पूर्व-पश्चिम में

गोहाटी आसाम से लेकर कराची
पाकिस्तान तक

भारती का प्रचार है

विज्ञापन के मासिक दर :—

	पूरा पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
१. मुखपृष्ठ ४ था	१७५) रु.	९०) रु.	५५) रु.
२. मुखपृष्ठ २ रा और ३ रा	१४०) रु.	७५) रु.	४५) रु.
३. साधारण पृष्ठ	१००) रु.	६०) रु.	३५) रु.

पता :—प्रबन्ध-सम्पादक, "भारती"

C/O ऑल इंडिया रिपोर्टर, लि. नागपुर १ (मध्यप्रदेश)

Printed by V. M. Kulkarni at the All India Reporter Press and
Published by him at Bharati Karyalaya, All India Reporter Ltd., Nagpur.
Dl- 7—10—1950.

(All Rights Reserved)

भारती

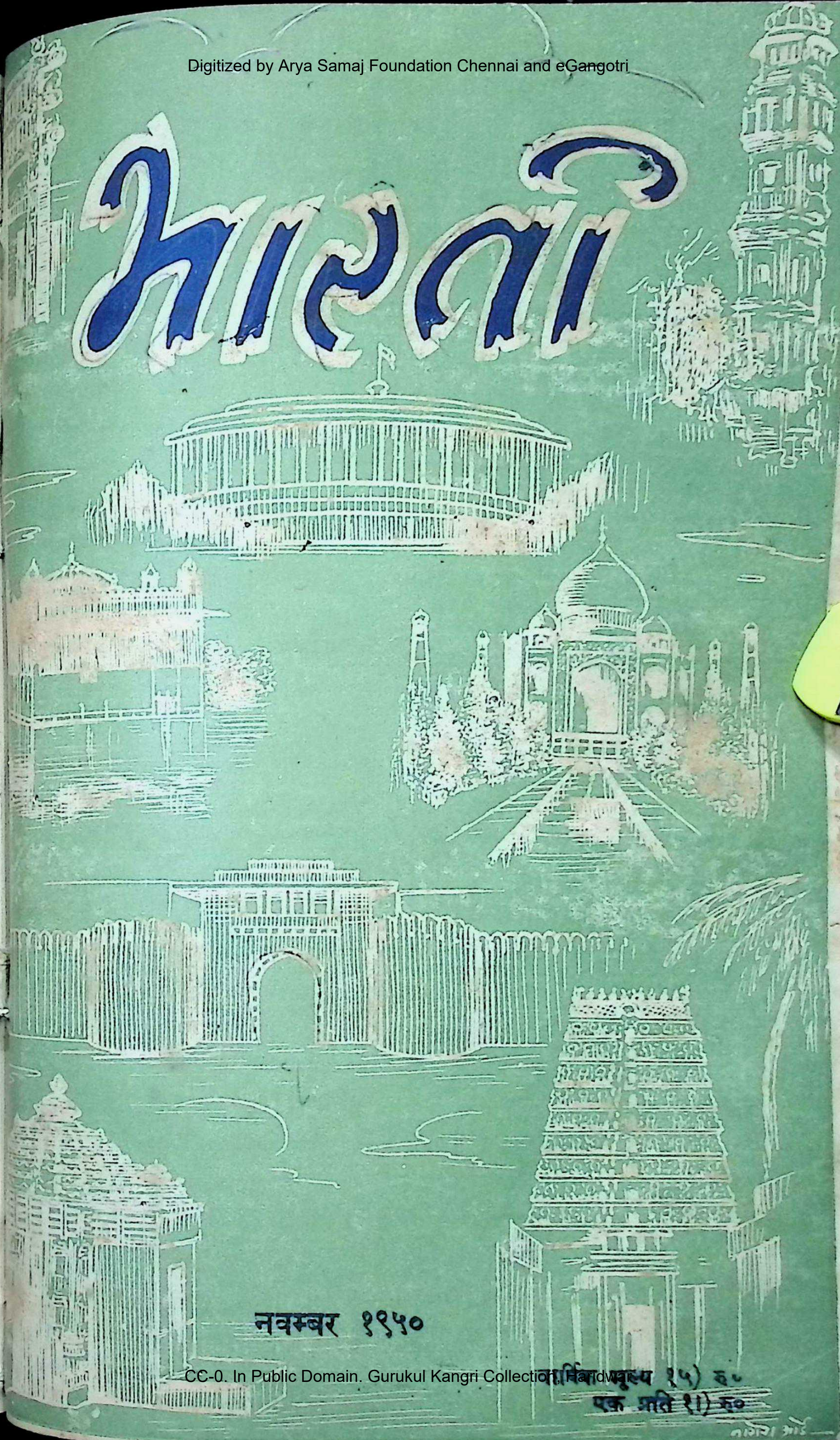

नवम्बर १९५०

वार्षिक मूल्य १५) रु०
एक प्रति १।) रु०

इस अंक के लेखक

श्री. परशुराम चतुर्वेदी एम. ए. एल. एल. बी.: परिचय जुलाई के अंक में।

श्री. रमानाथ अवस्थी : परिचय सितम्बर के अंक में।

श्री. हरिमोहन झा : पटना विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक। संस्कृत षड् दर्शन के प्रकांड पंडित। मातृभाषा मैथिली, आप का 'न्यायदर्शन' हिन्दी में एक गंभीर शैली का विवेचन है। उस दिन की हमें अच्छी तरह याद है, आप का 'न्यायदर्शन' प्रकाशित ही हुआ था तब हिन्दी के समर्थ समालोचक बाबू गुलाबरायजी एम. ए. ने कहा था—श्री. हरिमोहन झा का 'न्यायदर्शन' मगद का लड्डू है जिसमें बादाम, पिस्ता और इलायची वगैरह मेवे पड़े हुए हैं और दर्शन जैसे रूक्ष नीरस गहन विषय में जो लोहे के चने हैं, आपने इस तरह घी-चीनी और मेवा-मसाले का पुट दिया कि लोहे के चने न होकर, चने वेसनके मधुर लड्डू बन गये। आप ने मैथिली में 'कन्यादान' और 'द्विरागमन' दो सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। दर्शन शास्त्र के विद्वान् होते हुए भी प्रो. झा विनोदी ललित साहित्यकार भी हैं। मैथिली में आपने कई सुन्दर सामाजिक एवं मनोरंजक कहानियाँ लिखी हैं। लेखक ने उन में हास-परिहास का प्याला ऊपर तक छलकाया है। इस कहानी के हिन्दी-अनुवादक हैं श्री. रामेश्वरदयाल दुबे एम. ए. 'साहित्यरत्न'।

श्री. राधाकान्त शुक्ल : गरीब किसान परिवार में जन्म। कालेज जीवन से ही लिखना शुरु किया। प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'भूगोल' के सम्पादक पं. रामनारायण मिश्र ने प्रोत्साहन दिया। भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन। आजकल प्रयाग की—"विश्ववाणी" के संपादकीय विभाग में हैं।

श्री. रामनारायण यादवेन्दु : बी. ए. एल. एल. बी.। अर्थशास्त्र, राजनीति एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययनशील प्रतिष्ठित लेखक। आजकल दिल्ली के सरकारी सूचना विभाग के "विश्वदर्शन" मासिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में हैं।

श्री. गिरिधर गोपाल, एम. ए. : प्रयाग विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग में रिसर्च-स्कॉलर ! फिर भी आपादमस्तक तरुण भावुक कवि। कुछ अजीबोग़रीब ढंग की कविताएँ लिखते हैं। गिरधर गोपाल की ज़िन्दगी एक अनिश्चित वटोही की तरह रही है। पहले घोर निराशावादी, मृत्यु के अन्धकार में डूबी हुई स्याही से कविताएँ लिखते थे और अब उस अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं। आप का अब तक कोई 'कविता-संग्रह' प्रकाशित नहीं हुआ।

श्रीमती डॉ. कौमुदी : नई उदीयमान लेखिका। आपने केसर के देश काश्मीर और भगवान तथागत के अनुगत लद्दाख तथा तिब्बत की विशेषताओं का अध्ययन किया है। काशी-विश्वविद्यालय की एम. ए. और इलाहाबाद की पी. एच. डी. हैं। नई दिल्ली के प्रकाशन-विभाग में असिस्टेंट इनफॅरमेशन ऑफिसर हैं।

श्री. डॉ. रामकुमार वर्मा, एम. ए. पी. एच-डी. : हिन्दी जगत् में लब्धप्रतिष्ठ, कल्पना के कोमल कुशल कवि। कवि वर्मा की अन्तर्वेदना ने छायावाद से प्रभावित होकर कविता को सौन्दर्य, माधुर्य और अनुभूति की समृद्धि दी। डॉ. वर्मा श्रेष्ठ समीक्षक, ललित गद्यलेखक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उच्च एकांकी-नाटककार के रूप में पर्याप्त ख्याति प्राप्त हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक।

श्रीमती टी. इन्दिराबाई विदुषी : मैसूर विश्वविद्यालय में गणित शास्त्र के प्राध्यापक श्री. टी. कृष्णमूर्ति की धर्मपत्नी। प्रयाग महिला विद्यापीठ में हिन्दी का अध्ययन कर 'विदुषी' की उपाधि प्राप्त की। साहित्य सेवा में भी अभिरुचि है। कन्नड़ के महान् उपन्यासकार श्री कारन्तजी के समस्त उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन कर रही हैं।

श्री. ओंकार शरद : आधुनिक प्रगतिशील तरुण कहानी-लेखकों में से एक उदीयमान लेखक। शरद का बचपन मजदूरों के धूल भरे बच्चों के साथ खेलने में बीता। स्कूली अध्ययन नाममात्र को। सन् ४२ के अगस्त की गान्धी की आँधी ने जेलखाने की अच्छी तरह हवा खिला दी। जेल से जब छूटे तो लिखने का मर्ज़ साथ में लग गया, और तब से सरपट लिखे ही जा रहे हैं। जीवन का उतार चढ़ाव भी है—कभी किसी पत्र के सम्पादक तो कभी किसी प्रेस के मैनेजर, और कभी रोजी के लिए मजबूर होकर संघर्ष का सामना। लेखक के चार उपन्यासः आँचल का आसरा, अन्तिम वेला, नाता-रिश्ता, खून खराबी, और चार कहानी-संग्रहः लंका महाराजिन, कच्ची नींद, स्पन्दन, झपकियां निकल चुके हैं। पूज्य बापू की शर्मनाक हत्या के पश्चात् लेखक की "हमारा गांधी हमें वापस करो" पुस्तक निकली।

(शेष मुखपृष्ठ के तीसरे पृष्ठ पर)

इस अंक की पाठ्य सामग्री

[भारती] विषय और लेखक [नवम्बर १९५०]

पृष्ठ संख्या

१. **आप प्रगति किसे कहते हैं?** [श्री. दादा धर्माधिकारी] ... ९९३
२. **सन्त कबीर साहब और महात्मा गांधी** [श्री. परशुराम चतुर्वेदी एम. ए. एल.-एल. बी.] ... ९९४
३. **गीत** (कविता) [श्री. रमानाथ अवस्थी, स० सम्पादक 'संगम'] ... १००३
४. **विकट मेहमान** (मैथिली कहानी) [मूल लेखक श्री. प्रो. हरिमोहन झा एम.ए. और हिन्दी रूपान्तरकार श्री. रामेश्वरदयाल दुबे एम. ए. साहित्यरत्न] ... १००४
५. **ठंडा युद्ध** ... ... [श्री. राधाकान्त शुक्ल एम. ए.] ... १०११
६. **डॉ. रेल्फ बंचे** (सचित्र परिचय) [श्री. रामनारायण यादवेन्दु बी. ए. एल.एल. बी.] १०१६
७. **बटोही और टीला** (कविता) [श्री. गिरिधर गोपाल एम. ए.] ... १०२०
८. **तिब्बत की कला में भारतीय प्रभाव** [श्रीमती डॉ. कौमुदी एम. ए. पी. एच-डी.] ... १०२२
९. **तैमूर की हार** (एकांकी) [श्री. डॉ. रामकुमार वर्मा एम. ए. पी: एच-डी.] ... १०२६
१०. **श्री. कारन्त के उपन्यास** (कन्नड साहित्य) [श्रीमती टी. इन्दिराबाई विदुषी] ... १०३७
११. **समाज-सेवा** (कहानी) [श्री. ओंकार शरद्] ... १०४३
१२. **आँसू के दो गीत** (मालव साहित्य) [श्री. परदेशी 'साहित्यरत्न] ... १०४७
१३. **मृत्यु से मुठभेड़** (राजस्थानी) [श्री. प्रो. कन्हैयालाल सहल एम. ए.] ... १०५०
१४. **रमते आज मुरारी** (हिन्दी गीत गोविन्द) ... [श्री. प्रो. विनयमोहन शर्मा एम. ए. एल.एल. बी.] ... १०५४
१५. **कुछ संस्मरण** [श्री. प्रो. प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी एम. ए.] ... १०५६
१६. **संगीत और जीवन संगीत** (तमिळ कहानी) [मूल लेखक श्री. कि. रा. और हिन्दी रूपान्तरकार श्री. आर. वीळिनाथन, सह-सम्पादक 'कल्कि'] ... १०६१
१७. **सुमन-जगत्** (तेलुगु साहित्य) [मूल लेखक श्री. प्रो. वाविलाल सोमयाजुलु, और हिन्दी रूपान्तरकार श्री. प्रो. वारणासि राममूर्ति 'रेणु' बी.ए.बी.ओ.एल. 'सा.र.'] ... १०६९
१८. **पूर्णिमा** (धारावाही उपन्यास) [श्री. अनन्त गोपाल शेवडे एम. ए.] ... १०७४
१९. **साहित्यालोचन** (समीक्षा) [श्री. विनयमोहन शर्मा] ... १०८२
२०. **विविध** [श्री. ललिताप्रसाद पुरोहित सा. र.] ... १०८७
२१. **गीत लिखूं क्या?** (कविता) ... [श्री. विद्रोही] ... १०९१
२२. **दृष्टिकोण** (सम्पादकीय) १०९२

* * *

लेखकों से प्रार्थना :— कृपया बहुत ज़्यादा लम्बे लेख न भेजें। ज़्यादा से ज़्यादा ७-८ पृष्ठ हों। लेख आदि सामग्री नवीनतम हो और कहीं किसी पत्र-पत्रिका में वह प्रकाशित न हुई हो। अगले पृष्ठ पर दी हुई सूचनाओं को भी आप अवश्य देख लेंगे।

'भारती' के नियम और उद्देश्य

१. भारती प्रतिमास ७ तारीख को प्रकाशित होती है ।

२. भारती में साम्प्रदायिक अथवा मत-मतान्तरों से सम्बन्धित, विवाद-ग्रस्त लेख प्रकाशित नहीं होंगे ।

३. भारती भारत की विशुद्ध अन्तर्प्रान्तीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रगतिशील चिन्तन-प्रधान सचित्र मासिक पत्रिका है ।

४. भारती में प्रतिमास लगभग १०० पृष्ठ रहेंगे ।

५. किसी लेख, रचना, कविता आदि को छापने या न छापने का, उसे कम-बढ़ करने का और लौटाने न लौटाने का अधिकार संपादक को है ।

६. भारती का उद्देश्य समस्त उच्च भारतीय भाषाओं के साहित्य को राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रस्तुत करना है जिससे वह भारत के समस्त भाषा-भाषियों की वस्तु बन सके ।

७. भारती का दृष्टिकोण नव चेतना को लिये हुए रचनात्मक है । वह नये भारत में ऐसे हिन्दी साहित्य का निर्माण चाहती है; जिसमें समग्र भारतीय साहित्य का समंन्वय हो—सर्वोदय हो ।

८. भारती में हिन्दी की मौलिक श्रेष्ठ रचनाओं के साथ साथ —
१ असमिया, २ बंगला, ३ उड़िया, ४ नेपाली, ५ काश्मीरी, ६ सिंधी, ७ गुजराती, ८ राजस्थानी, ९ मराठी, १० तमिळ, ११ तेलुगु, १२ कन्नड, १३ मलयालम, १४ उर्दू आदि भारतीय भाषाओं की चुनी हुई श्रेष्ठ अनूदित उच्च साहित्यिक रचनाएं भी प्रकाशित होंगी ।

९. भारती में मनन करने योग्य विविध मनोरंजक लेख, मनोवैज्ञानिक कलात्मक कहानियाँ, धारावाहिक उपन्यास, कविता, एकांकी, विविध समालोचनाओं का समावेश होगा ।

१०. प्रकाशनार्थ समस्त सम्पादकीय व्यवहार नीचे लिखे पते पर कीजिये :—

लेखकों से खास निवेदन :—

(१) 'भारती' में प्रकाशनार्थ रचना आदि, कम से कम एक मास पहले, ता. १० तक, सम्पादक के पास भेज देना चाहिए । रचना सामग्री साफ, सुथरे कागज के एक ही ओर स्वच्छ सुपाठ्य अक्षरों में लिखी हुई आनी चाहिए ।

(२) लेखक कृपया इस बात को सदैव ख्याल में रखें कि वे जो कुछ रचना-सामग्री, कविता-कहानी–एकांकी–निबंध–लेख आदि 'भारती' में प्रकाशनार्थ भेजें, वह नवीनतम हो । इतः पूर्व पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित वासी वची खुची न हों । लेखक कृपया सीधे सम्पादक को ही रचनाएँ भेजें । किसी अभिषद-परिषद् या सिंडिकेट आदि के द्वारा नहीं । आपकी भेजी मौलिक और अनूदित रचनाएँ भारतीय साहित्य में स्थायित्व ग्रहण करें इसी दृष्टि से उनका हम सादर स्वागत करेंगे ।

अस्वीकृत रचना को वापस मंगाने के लिये डाक-टिकट अवश्य भेजें ।

वार्षिक मूल्य १५ रु.
एक प्रति १।) रु.

संपादक, 'भारती'
C/o ऑल इंडिया रिपोर्टर लि.
कांग्रेस-नगर, नागपुर १ (मध्यप्रदेश)

" भगवान ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती "
— मैथिलीशरण गुप्त

भारती

सम्पादक
हृषीकेश शर्मा

संचालक
ऑल इंडिया रिपोर्टर लि., नागपुर

प्रबन्ध-सम्पादक
वि. मा. कुलकर्णी

वर्ष १ * * **नागपुर, नवम्बर—१९५०** * * **अंक ११**

आप प्रगति किसे कहते हैं ?

मेरे पास तो प्रगति की एक ही कसौटी है। जो मनुष्य को मनुष्य के साथ मिलजुलकर रहना सिखावे वही प्रगति है। मनुष्य मनुष्य के साथ, एक परिवार दूसरे परिवारों के साथ, सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदायों के साथ और एक देश दूसरे देशों के साथ प्रेमपूर्वक रह सके, उसीका नाम प्रगति है। परमात्मा ने इतनी सुन्दर दुनिया बनाई है कि संघर्ष में भी निकटता चाहिए। लड़ाई वहीं होती है, जहाँ जान-पहचान है। अनजानों के बीच कैसा संघर्ष ? दो पहलवान कुश्ती लड़ते हैं, तो पहले उन्हें निकट आना पड़ता है। कुश्ती लड़ते समय अगर उनका मन बदल जाय, तो वह फिर कुश्ती नहीं रहेगी; वह तो आलिंगन बन जायगा। इस लिए प्रगति हमारे मन पर निर्भर है। यदि हमारे पास साबित दिल है, तो प्रगति के मार्ग अपने आप खुल जायंगे। वैसेही साबित दिमाग़ चाहिये। लेकिन वह है नहीं !

—दादा धर्माधिकारी

संत कबीर साहब और महात्मा गांधी

[श्री. परशुराम चतुर्वेदी]

संत कबीर साहब का मृत्यु-काल सं० १५०५ बतलाया जाता है और महात्मा गांधी का देहावसान सं० २००२ में हुआ है। इन दोनों महापुरुषों के जीवन-काल में, इस प्रकार, पांच सौ वर्षों का अंतर पड़ता है। संत कबीर साहब के समय तक मुगल राज्य की नींव नहीं पड़ी थी और तुग़लक एवं सय्यद वंश के मुसलमानों का शासन चल रहा था। देश में अभीतक राजनीतिक व्यवस्था की कमी थी और सामाजिक परिस्थिति पर दो भिन्न२ धर्मों के संघर्ष का स्पष्ट प्रभाव लक्षित हो रहा था। इधर महात्मा गांधी के समय तक मुगल साम्राज्य छिन्नभिन्न हो चुका था, देशी राज्यों की स्थिति डांवाडोल हो रही थी और विदेशी अंग्रेज शासकों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठानेवाले भारतीयों की सशस्त्र क्रांति विफल सिद्ध हो चुकी थी। फिर भी भारतीय समाज दो भिन्न२ संस्कृतियों के संघर्ष द्वारा अधिकाधिक प्रभावित होता जा रहा था। और किसी नवीन जीवन की बाट देख रहा था। गत पांचसौ वर्षों की विविध राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक उथलपुथल के कारण विश्व के भीतर अनेक परिवर्तन भी हो चुके थे और, ज्ञानविज्ञान तथा वाणिज्य व्यवसाय की क्रमोन्नति के कारण, प्रत्येक देश दूसरे के निकटतर आ गया था। संसार की विभिन्न जातियों के पारस्परिक संबंध की समस्या भी इस प्रकार पहले से कहीं अधिक जटिल होती जा रही थी और विश्वकल्याण को लक्ष्य बनाकर चलनेवाले चिंतन-शील व्यक्ति की कठिनाई पहले से अधिक बढ़ गई थी।

संत कबीर साहब का पालन पोषण एक साधरण जुलाहा परिवार में हुआ था। उनके घर की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी और उनकी शिक्षा वा मानसिक विकास के लिए किसी प्रबंध का होना कदाचित् संभव भी न था। जो कुछ वे सीख या जान सकते थे वह भ्रमण, सत्संग वा अन्य किसी ऐसे साधनों द्वारा उपलभ्य था जो संयोगवश ही मिल सकते थे और जिनके अनुसार आचरण व अभ्यास करना अपनी बुद्धि व विवेक पर ही निर्भर हो सकता था। महात्मा गांधी एक संपन्न वैश्य कुल में उत्पन्न हुए थे और उनके पिता एक पूरे धनी मानी व्यक्ति के यहां उच्च पद पर आसीन थे। इनकी शिक्षा का प्रबंध अपने देश से लेकर इंग्लैंड तक किया गया था और इन्होंने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की थी। इनके प्रारंभिक जीवन एवं यौवन-काल में इस प्रकार अनेक प्रलोभनों का भी सामने आना संभव था, किन्तु ये पुस्तकाध्ययन सत्परामर्श व सद्विचारों द्वारा अपने को इनमे बचाने का प्रयत्न भी कर सकते थे। अतएव, जीवन-काल की परिस्थितियों के संगठन और उनके वातावरण तथा व्यक्तित्व के निर्माण एवं उपलब्ध साधनों के विचार से, संत कबीर साहब व महात्मा गांधी में महान् अंतर दीख

पड़ता है और दोनों में किसी समानता की संभावना नहीं जान पड़ती।

परंतु, यदि उक्त दोनों महापुरुषों की विचार-धारा एवं कार्य-पद्धति पर कुछ गंभीरता पूर्वक विचार किया जाय तो दोनों एक दूसरे के अति निकट खड़े प्रतीत होंगे और दोनों को एकही कोटि में रखना भी कुछ असंभव नहीं समझ पड़ेगा। उनके आदर्शों की व्यापकता, जीवन यात्रा में अग्रसर होने के लिए निश्चित किया गया उनका दृष्टिकोण तथा अपने कार्य-क्रम के निमित्त की गई उनकी विविध चेष्टाओं में एक ऐसा विचित्र-सा दृश्य दीखता है जो बिना प्रभावित किये नहीं रहता। परिस्थितियां, वास्तव में किसी व्यक्ति के जीवन-काल तक ही अपने ढंग की रहा करती हैं और उसके उपलब्ध साधनों का भी केवल क्षणिक महत्व ही हो सकता है। ये बातें केवल कारण स्वरूप हुआ करती हैं और इनका कार्य के रूप में कोई अस्तित्व नहीं, किसी व्यक्ति के जीवन-निर्माण तथा उसके कार्य-संपादन में एक समय सहायक बनकर ये फिर सदा के लिए तिरोहित हो जाती हैं और आगे के लिए उसके व्यक्तित्व का एक धुंधला-सा चित्र व उसके कार्यों की एक न्यूनाधिक स्पष्ट छाप मात्र रह जाती है जो उसके मूल्यांकन का आधार बनती है और उन्हींके सहारे हम उस व्यक्ति की कोई स्मृति रखने में भी समर्थ हुआ करते हैं। इस कारण संत कबीर साहब तथा महात्मा गांधी का कोई तुलनात्मक अध्ययन करते समय भी हमें चाहिये कि केवल इन्ही बातों पर विचार करें और परिस्थिति आदि संबंधी बातों को उसकी पृष्ठभूमि से अधिक महत्व न दें।

संत कबीर साहब की कोई प्रामाणिक जीवनी अभी तक उपलब्ध नहीं है और न ऐसे ऐतिहासिक प्रसंग ही इतनी संख्या में मिलते हैं जो, उनके जीवन की घटनाओं को किसी सुव्यवस्थित रूप में लाते समय पर्याप्त सिद्ध हो सकें। उनके विषय में जो कुछ कहा गया मिलता है उसका अधिकांश पौराणिक गाथाओं से अधिक महत्व नहीं रखता और शेष भी निरे उल्लेख वा प्रसंग के ही रूप में है। उनकी सारी प्रामाणिक रचनाओं का भी कोई ऐसा संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं जिसके आधार पर किसी अनुमान की पुष्टि हो। उनके पदों व साखियों में जो कुछ संकेत बिखरे हुए से दीख पडते हैं वे ही इस समय उनके परिचय के साधन बन सकते हैं। ऐसी रचनाओं के अंतर्गत प्रवाहित होनेवाली उनकी विचारधारा पर ध्यान देते समय जान पड़ता है कि जिन दो बातोंने उन्हें जीवन व विश्व-संबंधी प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रेरित किया था वे संसार की क्षण भंगुरता व मनुष्य की विडंबनाएं थीं। पहली के अनुसार उन्हें प्रतीत हुआ था कि जो कुछ भी हमारे प्रत्यक्ष अनुभव में आ रहा है वह क्षणस्थायी मात्र है। इनमें से कोई भी वस्तु सदा टिकनेवाली नहीं है और न इन पर, इसी कारण, किसी प्रकार विश्वास किया जा सकता है। इसी प्रकार उक्त दूसरी बात के अनुसार उन्हें जान पड़ा था कि मानव-समाज, वस्तुस्थिति को भली भांति न समझ सकने के कारण भ्रम में पड़कर, बेतुकी बातों के पीछे अधिक पड़ा हुआ है और बाहरी ढकोसलों द्वारा एक व्यक्ति दूसरे को अधिकाधिक धोखे में डालता जा रहा है। फलतः संसार में व्यर्थ के कलह भेदभाव

तथा पाखंड की सृष्टि होती जा रही है और एक की दूसरे द्वारा हानि होने की ही संभावना है। कबीर साहब को, इसी कारण, किसी ऐसी वस्तु की जिज्ञासा हुई जो नित्य व शाश्वत हो और जिसके वास्तविक रूप का अनुभव हमारी सारी भ्रांतियों को दूर कर हमें पूर्ण शांति प्रदान करे तथा जिसकी भावना विश्व को कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर करने में भी समर्थ हो। कबीर साहब ने उस वस्तु का नाम 'सत्' रखा ओर उस आदर्श को ही परमतत्व, परमपद, राम वा हरि जैसे नामों द्वारा भी अभिहित करके अपनाया।

महात्मा गांधी को जिस बातने सबसे अधिक पहले पहल, आकृष्ट किया वह अंत में होने वाली सत्य की विजय थी। इन्होंने 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक के एक साधारण से ही अभिनय में इस बात के महत्व को हृदयंगम किया और वे आगे भी उसी प्रकार प्रभावित रह गए। मातृ-पितृ भक्त श्रावण की कथा तथा इसी प्रकार की कई अन्य छोटी छोटी बातों ने भी इनके हृदय पर फिर क्रमशः प्रभाव जमाया और ये अपने जीवन के सुधार की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होते चले गए। अंत में अफ्रीका के कतिपय शासकों द्वारा शासितों के प्रति किये गए दुर्व्यवहारों ने इनके मन व मस्तिष्क को एक दूसरे ढंग से भी प्रभावित किया और ये व्यक्तिगत सुधारों के साथ साथ मानव-समाज के राजनीतिक व आर्थिक सुधारों की ओर भी प्रवृत्त हुए। व्यक्ति व समाज दोनों के समुचित विकास की ओर एक साथ अग्रसर होते समय, इन्हें उस सत्य की भावना ने ही सदा प्रेरित किया जिसने इनके ऊपर प्रारंभिक जीवन में सर्व प्रथम प्रभाव डाला था और वही अंत तक इनके समक्ष राम व अल्लाह आदि के रूपों में वर्तमान रहा। उसी की क्रमिक अनुभूति ने इनके हृदय में आत्मविश्वास, दृढता व निर्भयता जैसे गुणों को प्रतिष्ठित किया और उसीने इन्हें सामाजिक क्षेत्र के अंतर्गत अहिंसा के साथ२ सत्याग्रह-संबंधी आचरणों तक को स्वीकृत कराया। ये उस सत्य के आदर्श को एक क्षण के लिए भी नहीं भूले और उसे सदा राम नाम की ध्वनि के सहारे अपने निकट प्रस्तुत किये रहे।

इस प्रकार संत कबीर साहब को जो अनुभव, अपनी परिस्थिति के अनुसार, एक प्रकार के दार्शनिक व धार्मिक दृष्टिकोणसे होने लगा था वह महात्मा गांधी की दशा में शुद्ध नैतिक तथा राजनीतिक भावों के साथ हुआ। पहले के सामने जहां प्रश्नों का रूप अधिकतर सांप्रदायिक संघर्ष व मिथ्याचार संबंधी था वहां दूसरे के समक्ष अस्पृहणीय जीवन, अत्याचार व सांस्कृतिक संघर्ष के क्षेत्रों में उठता हुआ प्रतीत हुआ। किंतु दोनों ने उसके निराकरण के लिए लगभग एक ही आदर्श को अपनाया। संत कबीर साहब का 'सत्' अस्तित्व का भाव लेकर तथ्य की ओर चलता है, महात्मा गांधी का 'सत्य' तथ्य की ओर से चलकर सर्व व्यापक बन जाता है। दोनों के लिये वह एक अशरीरी वस्तु है और वह एक भाव मात्र से कदाचित् अधिक नहीं, परंतु दोनों ही उसे एक प्रकार का व्यक्तित्व प्रदान करते हुए से भी जान पड़ते हैं। वे उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं, उसकी आराधना करते हैं, उसकी दयालुता

व स्नेह में पूरी आस्था रखते हैं और उन दोनों का उसके प्रति प्रदर्शित भक्तिभाव साकारोपासना का रूप ग्रहण कर लेता है। फिर भी दोनों ही इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि मेरा 'राम' कोई देहधारी अवतार नहीं। संत कबीर साहब ने बतला दिया है कि,

"ता साहिब कै लागौ साथा,
दुख सुख मेटि रह्यो अनाथा॥
ना जसरथ घरि औतरि आवा,
नां लंका का राव सतावा॥
देवै कूख न औतरि आवा,
नां जसवै ले गोद खिलावा॥"[1] इत्यादि

अथवा, "दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना, रामनाम का मरम है आना" और उसी प्रकार महात्मा गांधी ने भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि, "मेरा वह राम जो हमारी प्रार्थनाओं में प्रतिदिन सुन पड़ता है ऐतिहासिक राम नहीं है, वह अयोध्या के राजा दशरथ का पुत्र नहीं। वह तो नित्य, अजन्मा और अद्वितीय है। मैं केवल उसीकी उपासना करता हूं, उसीकी खोज में रहता हूं और यही तुम्हें भी करना चाहिए।"[2]

संत कबीर साहबने, अपने उस इष्ट 'सत्' का परिचय देते समय, उसे निर्गुण व सगुण दोनों से परे बतलाया है, किन्तु ऐसी वस्तु का वर्णन करने के लिए किसी उपयुक्त शब्द का अभाव होने के कारण, उसे परिचित शब्दों द्वाराही व्यक्त कर दिया है। तो भी उसके विषय में वे यह भी कह दिया करते हैं कि,

"वो है वैसा वोही जानै,
वोहि आहि नहिं आनै" ॥[3]

अथवा, **"जस तू है तस कोई न जान, लोग कहैं सब आंनहि आंन ॥"**[4] और इसी भाव के साथ लोगों को उन्होंने कहीं कहीं परामर्श भी दिया है कि, **"हरि जैसा है तैसा रहो, तू हरिषि हरिषि गुण गाई।"**[5] वे उस 'सत्' को पूर्णतः जान चुकने का दावा कहीं भी करते हुए समझ नहीं पड़ते। उन्होंने अपने विषय में स्वयं कह दिया है कि,

"सतगुरु तत्व कह्यौ सुविचार,
भूल गह्यौ भ्रम मै विस्तार ॥[6] **"**

अर्थात् सद्गुरु॰ने मुझे विचार-पूर्वक उस परमतत्त्व की ओर संकेत कर दिया और मैंने उसे अपने अनुभव के अनुसार ग्रहण किया। महात्मा गांधी का कहना है कि "मनुष्य की भाषा में यदि इतनी शक्ति का होना संभव है कि वह ईश्वर का पूरा परिचय दे सकती है तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचूंगा कि मेरे लिए वह सत्य स्वरूप है। दो वर्ष हुए मैं अब यहां तक निश्चय कर चुका हूं कि सत्य ही ईश्वर है।"[1] परंतु फिर भी "वह एक ऐसा 'कुछ' है जिसे हम सभी लोग अनुभव तो, किसी न किसी रूप में करते हैं, किन्तु जिसकी कोई परिभाषा नहीं दे सकते, और न उसे पूर्णतः जान ही पाते हैं।" ऐसी दशामें भी "हमारे अस्तित्व का औचित्य केवल इसी एक बात में है कि हम उस 'सत्य' की उपासनामें निरत रहें।" उन्होंने स्वयं अपने विषय में कहा है कि "मैं पूर्णतः शुद्ध, पूर्णतः सत्यवादी तथा

---

१. 'क० ग्रं०' (पृ० २४२)
२. रामनाम' (पृ० ४१)
३. 'क० ग्रं०' (पृ० २४१)

४. वही (पृ० १०३)
५. वही (पृ ११)
६. वही (पृ० २१६)
१. 'यंगइंडिया' (पृ० ४२१)

पूर्णतः अहिंसावादी होने के प्रयत्न में लगा हुआ एक साधारण जीव मात्र हूँ"[२] और "अपने प्रारंभिक जीवन में ही मैंने यह समझ लिया था कि यदि मुझे सत्य का पूर्ण अनुभव कर लेना आवश्यक है तो मुझे चाहिए कि अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी उसके प्रेमसम्बन्धी नियमों का यथावत् पालन करूं"[३] उन्होंने एक स्थल पर यह भी कहा है कि उस सत्य की "पूर्णता तो ज्यामिती की रेखा अथवा बिंदु की भांति केवल आदर्श की बात है जिसके लिये हमें अपने जीवन के प्रत्येक पल में प्रयत्न करते रहना चाहिए।"[४]

संत कबीर साहब उस सत् को ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा आदि सब कुछ मानते हुए उसका प्रत्येक व्यक्ति के भीतर सदा वर्तमान रहना समझते हैं और उसकी पूरी अनुभूति के साथ उसे आत्मसात कर अपने जीवन का काया पलट कर लेना सबके लिये परम-धर्म बतलाते भी जान पडते हैं। उस सर्व व्यापक इष्ट आदर्श में अपने आपको 'जल में जलके समान' मिला देने कोहि वे 'मुक्ति' की संज्ञा देते हैं और उस दशामें ही सदा स्थित रह कर दैनिक व्यवहार करना कर्तव्य मानते हैं तथा इस प्रकार बर्त्तने वाले को ही 'सत्' शब्द द्वारा अभिहित करते हैं। वे कहते हो कि,

"मन लागा उन मन सौं,
उनमन मनहि विलग।
लूंण विलगा पाणियां,
पांणी लूंण विलग॥"

तथा—**"पांणी ही तैं हिम भया,**
हिम है गया विलांइ।
जो कुछ था सोई भया,
अब कछू कह्या न जाइ॥"[५]

अर्थात् मेरा मन उस मन (परमतत्व) में लग गया और दोनों एक दूसरे के साथ यों घुल मिल गए जैसे नमक व पानी घुल मिल जाते हैं। इसी प्रकार, जिस पानी से बर्फ़ बनी थी उसमें ही वह फिर विलीन हो गई वह जो कुछ पहले थी उसी में फिर एक बार परिवर्तित हो गई, अब उसके विषय में दूसरी बात क्या कही जा सकती है। फिर ऐसी स्थिति को उपलब्ध कर वे अपने पूर्व के चंचल मन को संबोधित करके इस प्रकार कहते हैं—

"रे मन जाहि जहां तोहि भावै,
अब न कोई तेरे अंकुस लावै॥टेक॥
जहां जहां जाई तहां तहां रामा,
हरिपद चीन्हि कियो विश्रामा॥
तन रंजित तव देखियत दोई,
प्रगट्या ग्यांन जहां तहां सोई॥
लीन निरंतर वपु बिसरामा,
कहै कबीर सुख सागर पाया॥"[१]

अर्थात, अरे चंचल मन, अब तेरे ऊपर मुझे किसी प्रकार की रोक थाम का लगाना आवश्यक नहीं रह गया। अब तू मेरे हरिपद को पहचान कर उसमें लीन हो जाने पर, जहां कहीं भी दौड़ धूप लगायेगा वहां तुझे सर्वत्र वही एक राम मात्र ही दीख पड़ेगा। जब तक यह शरीर तुम्हारे, भ्रांति के कारण, भटकते रहने की दशा में, भिन्न भिन्न रंगों में रंग जाया करता था तब तक ही मुझे द्वैत का भान होता था। अब तो, उस अपने

---

[२] वही (पृ० १२६)
[३] 'न० गी०' (पृ० ३१८)
[४] यं० इं० (३-४-२८)

[५] क० ग्रं० (पृ० १३)
[१] क० ग्रं० (पृ० १३६)

आदर्श में सदा लीन रह कर, मैंने अपने भौतिक शरीर के सांसारिक व्यापारों को भुला-सा दिया और सुख के समुद्र में मग्न रहा करता हूं। कहना न होगा कि इस प्रकार की 'स्वानुभूति' के हो जाने पर जीवन में एक प्रकार की क्रांति उत्पन्न हो जाती है और अपना पुनर्जन्म-सा हो जाता है।

महात्मा गांधी का कहना है कि "मनुष्य का अंतिम उद्देश्य परमात्मा की उपलब्धि है जिसकी ओर ध्यान रखते हुए उसे अपनी प्रत्येक चेष्टा को, चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक हो वा धार्मिक हो, उन्मुख करना कर्त्तव्य हो जाता है। सारी मानव जाति की सेवा उसके लिए इस कारण आवश्यक हो जाती है कि परमात्मा को उसकी सृष्टि के अंतर्गत ही पाना और उसके साथ एकता का अनुभव करना संभव है। जब मैं पूर्ण का एक अंग मात्र हूं तो उससे अलग रह कर मेरा परमात्मा की खोज करना हो नहीं सकता और इसी कारण, सबकी सेवा का महत्व है।"[२] इसी प्रकार वे एक स्थल पर यह भी बतलाते हैं कि, "धर्म वहीं है जिसके द्वारा मनुष्य के टेढे स्वभाव में परिवर्त्तन आ जाय, जो उसे सत्य के साथ सदा के लिए जोड़ दे और जो उसे निरंतर शुद्ध व पवित्र करता रहे। यह मानव-स्वभाव का एक स्थायी अंग है जो अपने को पूर्णतः व्यक्त करने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखता और जो आत्मा को परमात्मा के साथ मिल जाने व उसके साथ सच्चे संबंध का अनुभव करने के लिए, आतुर व बे-चैन कर देता है।"[१] समुद्र की बूंद अपने उस मूल की महत्ता में सदा भाग लिया करती है चाहे वह इस बात की जानकार भी न हो। परंतु ज्यों ही वह उससे पृथक् हो जाती है, शीघ्र सूख कर अपना अस्तित्व खो देती है।"[२] "जिस क्षण हम अपने परमात्मा रूपी समुद्र के साथ एकता का अनुभव कर लेते हैं, हमारे लिए विश्राम का अवसर दूर हो जाता है और हमें किसी विश्राम की आवश्यकता भी नहीं दीख पड़ती। हमारी नींद, अथवा परमात्मा में पहुंच कर उपलब्ध की हुई शांति, ही हमारे लिए कर्तव्य परायण बन जाने की प्रेरणा देने लगती है। उस दशा में हम परमात्मा को अपने हृदयों में लेकर सोये रहते हैं जिस कारण हमारी शांति व बेचैनी में कोई अंतर नहीं रह जाता।" अतएव, हमारे मन की जो वृत्तियां पहले सांसारिक भावनाओं में रंगी रहती थीं अब, उन्मुक्त होकर, ईश्वरीय भावों से अनुप्राणित बन जाती हैं और हमारी सारी चेष्टाएं आप से आप, केवल सत्कर्मों को ही अपना लक्ष्य मानकर, होने लगती हैं।

परंतु, जीवन में उक्त प्रकार से कायापलट हो जाने पर भी, अपने मूलतः भौतिक मन के कारण, कभी-कभी बाधाओं के आ पड़ने की आशंका बनी रहती है और भय हो आता है कि कहीं फिर से वह मुझे धोखा न दे देवे। कबीर साहब का कहना है कि "मैं तो इस प्रकार से मर गये हुए भी मन में विश्वास नहीं करता, क्योंकि मेरी धारणा है कि यह मृतक (मन) विषय विकारों की हवा लगने पर, फिर भी एक बार जीकर

---

२. 'हरिजन' (२९-८ ३५)

१. मं० इं० (१२-५-[illegible])

२. '[illegible] मंदिर' (पृष्ठ ५०)

उठ सकता है।"[२] उन्होंने इसी कारण, इस मनको सदा 'नाम स्मरण' में लगाये रहने का उपाय बतलाया है। वे इस मुक्ति के सहारे "मनरूपी हाथी को मारपीट व घेर कर 'घट' के भीतर ही" अवरुद्ध रखना चाहते हैं और कहते हैं कि उसे "वहां से भागते समय बार-बार उस रामनाम के अंकुश द्वारा फेरते रहना चाहिए।"[३] इस प्रकार जब वह अर्थात् मन राम का निरंतर स्मरण करने लग जायगा तो वह स्वभावतः तद्रूप होता जायगा और फिर उस पर किसी विघ्न बाधा का प्रभाव ही नहीं पड़ सकेगा। महात्मा गांधी ने भी रामनाम के स्मरण को लगभग उसी प्रकार महत्व दिया है और अपने भीतर ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व को निरंतर जमाये रखने का उसे एक आवश्यक साधन माना है। वे कहते हैं कि "हमारी पाशविक प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए रामनाम का स्मरण सबसे सबल साधन है....मुझे विश्वास है कि जो कोई इस प्रकार के जप में लगा रहता है वह अंत में अवश्य विजय प्राप्त कर लेता है। यह मंत्र उसके जीवन में वृद्ध की लकुटिया का सहारा देता है और उसे प्रत्येक प्रकार की अग्नि-परीक्षाओं से होकर बाल२ बचा ले जाता है। फिर "इसमें कोई संदेह नहीं कि राम नाम हमारा सुनिश्चित सहायक है। यदि हृदय से स्मरण किया जाय तो यह प्रत्येक कुविचार को दूर भगा देता है; और दुर्विचार के मन से दूर हो जाने पर किसी प्रकार के दुष्कर्म की भी संभावना जाती रहती है।"[१] संत कबीर साहब ने, इस प्रकार, नामस्मरण को जहां मनोवृत्तियों के दुष्टभावसे अपने को बचाये रहने का एक निषेधात्मक साधन-सा माना है वहां महात्मा गांधीने उसका प्रयोग अपने लिए आध्यात्मिक शक्ति के संचित व परिवर्द्धित करने में भी किया है।

अपने जीवन के भीतर उक्त प्रकार से परिवर्त्तन का ला देना ही, वास्तव में, वह मुक्ति की दशा है जिसके लिए संत लोग प्रयत्न करते हैं। उनके अनुसार मुक्त होने के लिए इस शरीर का त्याग कर देना अथवा तदुपरांत किसी लोक विशेष में जा पहुंचना आदि आवश्यक नहीं। कबीर साहब ने इस विषय में स्पष्ट कह दिया है और वे इसी संबंध में प्रश्न करते हुए एक पद में इस प्रकार बोल उठते हैं—

"राम मोहि तारि कहां लै जैहो।
सो बैकुंठ कहौ धूं कैसा,
करि पसाव मोहि दैहो॥टेक॥
जे मेरे जीव दोइ जांनत हौ,
तौ मोहि मुकति बताओ।
एक मेक रमि रह्या सबनिमैं,
तौ काहे भरमावौ॥
तारण तिरण जबै लग कहिये,
तब लग तत्त न जानां।
एक राम देख्या सबहिन मैं,
कहै कबीर मन माना॥५२॥[२]"

अर्थात् हे परमात्मन्, तुम मुझे मुक्त करके कहां ले जाओगे; क्या कोई वैकुंठ नामक स्थान, वास्तव में है कि जहां मुझे प्रसन्न होकर पहुँचा दोगे, यदि मेरे जीव"अर्थात् जीवात्मा को अपने से भिन्न समझते हो तब तो मुझे वैसी मुक्ति का पता दो, अन्यथा इसकी आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि जब तुम राम

---

[२] क० ग्रं० (पृष्ठ ३०)
[३] वहीं (पृष्ठ २९)
[१] 'रामनाम' (पृ० ६)

[२] क० ग्रं० ([illegible])

के रूप में सर्वत्र एकही समान व्यापक हो तब उक्त प्रकार की भ्रांति में डालने का अर्थ ही क्या है ? जब तक तारनेवाले और तिरनेवाले की चर्चा चला करती है तब तक, निश्चय है कि, वास्तविक रहस्य का पता नहीं है एक मात्र राम का अनुभव जब सब कहीं होने लगे तो मन में आपसे आप शांति आजाती है और फिर कहीं भटकने का प्रश्न नहीं रह जाता। संत कबीर साहब, इस प्रकार, न तो मरणोपरांत होनेवाले किसी मोक्ष में विश्वास करते हुए दीख पड़ते हैं और न वे इसके लिए संसार में होते रहनेवाले नित्यप्रति के व्यवहारों का परित्याग कर निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करना ही श्रेयस्कर समझते हैं। सब के बीच रहते हुए और सबके प्रति सात्त्विक व्यवहार में लगे हुए, इस जीवन में ही, वे सभी बातों को सुधरी हुई देखना चाहते हैं।

महात्मा गांधी के अनुसार भी "धर्म यदि व्यावहारिक बातों की परवा नहीं करता और न उनकी समस्याओं के सुलझाने में सहायक होता है तो वह धर्म नहीं है। कोई कार्य जितना ही आध्यात्मिक व धार्मिक होगा उतना ही उसे व्यावहारिक भी होना चाहिये।" वास्तव में, "परलोक जैसा कोई भी स्थान कहीं नहीं है। सारा विश्व एक व अखंड है। इसमें 'यहां' वा 'वहां' का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जैसा जीन्सने बतलाया है कि संपूर्ण विश्व जिसमें दूर से दूर तक के नक्षत्र व तारे शामिल हैं और जो बड़े से बड़े दूरवीक्षण यंत्र से भी दीख नहीं पड़ता एक परमाणु के भीतर संकुचित है। इसलिए मैं ऐसा समझना अनुचित मानता हूँ कि अहिंसा का उपयोग कंदरा के निवासियों तक ही सीमित रहना चाहिए अथवा परलोक में इसके द्वारा एक बहुत अच्छा स्थान मिलता है। कोई भी नैतिक गुण तब तक अपना कोई अर्थ नहीं रखता जब तक उसका उपयोग भी जीवन के प्रत्येक क्षण में न किया जाता हो। स्वर्ग को भूतल पर उतारने का वास्तविक रहस्य यही हो सकता है।"[1] इस प्रकार सभी धर्मों वा संप्रदायों का अस्तित्व केवल एक ही उद्देश्य की सिद्धि अर्थात् 'हृदय-परिवर्तन' वा कायापलट के लिए है और वे सभी केवल इसी के लिए निश्चित किये गए भिन्न२ मार्गों का परिचय देते हैं। वैसी दशा को उपलब्ध कर व्यक्ति अपने जीवन में एक अनुपम क्रांति ला देता है और तदनुसार कार्य करता हुआ विश्व-कल्याण में भी सहायक सिद्ध होता है। उसके जीवन की शुद्धि उसके स्वार्थ की सिद्धि कर देती है और अपने उस जीवन को ही साधन बना कर वह ऐसे कार्य भी कर जाता है जो सच्चे परमार्थ के लिए आगे परम उपयोगी सिद्ध होते हैं। इसी कारण संत कबीर साहब ने जहां 'सोधी सईं न दात'[2] कहकर आत्मशुद्धि को सबसे अधिक महत्व दिया है वहाँ महात्मा गांधी ने भी इसी बातकी व्याख्या करते हुए एक स्थलपर बतलाया है कि "चूंकि अशुद्धात्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ है इसलिए जीवन पथ के सारे क्षेत्रों में आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है। इस प्रकार की शुद्धि साध्य है, क्योंकि व्यक्ति और समष्टि के बीच इतना निकट संबंध है कि एक की शुद्धि अनेक की शुद्धि का कारण बन जाती

---

१. 'हारजन' (२६-८-४९)

२. क० ग्रं० (पृ० १)

है और व्यक्तिगत प्रयत्न करने की शक्ति तो सत्यनारायण ने सबको दे दी है।' [१ 'संक्षिप्त आत्मकथा पृ· २४६–९]?

इस प्रकार 'सत्' वा 'सत्य' को 'राम' के रूप में अपना आदर्श निश्चित करने, उसके साथ तादात्म्य लाभ करने की चेष्टा में प्रवृत्त होने तथा, उसके द्वारा अपने जीवन में पूर्ण कायापलट लाकर एवं उसके आधार पर इसी जीवन के भीतर स्वार्थ और परमार्थ में उचित सामंजस्य उपस्थित कर विश्व कल्याण में सहयोग प्रदान करने के विषय में दोनों महापुरुष एक समान से हैं । इस सिद्धांत पर आरूढ़ रहने के कारण ही उनके जीवन में हमें आस्था, आत्मशुद्धि, स्वावलंबन, दृढ़ता, विचार–स्वातंत्र्य व निर्भीकता के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं और वे दोनों हमारे समक्ष एक स्पष्ट वादी व सत्याग्रही के रूप में खड़े दीख पड़ते हैं । वे सबके प्रति समदर्शी होने के कारण, ऊंच व नीचकी भावनाको पसंद नहीं करते. अस्पृश्यता के भावको हेय समझते हैं और जीवहिंसा के प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित कर सबके साथ निर्वैर बने रहने का भी परामर्श देते हैं । उनमें सत्य के प्रत्यक्ष अनुभव की अपूर्व शक्ति दिखलाई पड़ती है, उनके हृदय विश्व प्रेम के भाव से ओत प्रोत जान पड़ते हैं और उनके, सादगी एवं शुद्धाचरणके, सात्विक जीवन में एक ऐसी महानता लक्षित होती है जो अन्य प्रकार के जीवन में सर्वथा अलभ्य है ओर जिसके सामने मानव समाज आपसे आप नतमस्तक हो जाता है । दोनों ही आत्मवंचना को सबसे अधिक हानिप्रद समझते हैं और कपट एवं ढोंग को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं । कबीर साहब ने छद्मवेष, पाखंड व विडंबना की निंदा बड़े कठोर शब्दों में की है और उनकी हंसी तक उड़ाई है । महात्मा गांधीने, उसी प्रकार, अपव्यय व मानासिक दुर्बलता की भी गणना निम्न कोटि के दुर्गुणों में की है और उनसे सदा बचने के लिए हमें सचेत किया है ।

कबीर साहब ने जिस प्रकार के सिद्धांतों के आधार पर अपना जीवन निर्माण कर तथा उपदेश देकर 'संत' की पदवी उपलब्ध की थी प्रायः उसी प्रकार की धारणाओं द्वारा अनुप्राणित होकर उनके अनंतर आने वाले गुरु नानकदेव तथा दादू दयाल आदि भी, संतों की श्रेणी में, गिनेगए थे और उन सबकी संत-परंपरा लगभग पांचसौ वर्षोंतक किसी न किसी रूप में चलती रही । महात्मा गांधी के उसके साथ किसी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष संबंध होने का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता । वास्तव में उक्त परंपरा के भीतर जिन संतों की गणना की जाती है उनमें भी अनेक ऐसे हैं जिनके लिए यह कहना अनुचित होगा कि वे कबीर साहब के शिष्यों या प्रशिष्यों में थे । कबीर साहब की भांति विश्व की विभिन्न समस्याओं का अनुभव करना तथा उनके निराकरण के लिए प्रवृत्त होना तब तक अनोखी बात नहीं कही जा सकती जब तक उनका रूप नितांत भिन्न नहीं होजाता और विश्वकल्याण की भावना हमें प्रभावित करना नहीं छोड देती । संसार के अनेक महापुरुषों के समक्ष ये प्रश्न सदा जटिल बनकर उपस्थित हुए हैं और उन्होंने इन्हें हल करने के लिए अपने अपने

---

१. संक्षिप्त (पृ. २४६–९)

ढंग से प्रयत्न किये हैं। उनकी भिन्न भिन्न परिस्थितयों ने उनके दृष्टिकोण को चाहे जिन भिन्न भिन्न ढंगों से प्रभावित किया हो उनका उद्देश्य सदा एक-सा ही रहा। अपनी अपनी प्रतिभा तथा अनुभव के अनुसार उन्होंने अपने अपने कार्यक्रम स्थिर किये और उन्हें आगे बढाने में अपने जीवन का महत्वपूर्ण अंश लगा दिया, संत कबीर साहब का व्यक्तित्व तथा उनके जीवन की विविध घटनाएं अनमोल व अत्यन्त आकर्षक रही होंगी, किंतु आज हमें उनका पूर्ण परिचय नहीं मिलता। जहाँ महात्मा गांधी संबंधी प्रायः प्रत्येक बात को हम उनके 'आत्म-चरित्र' व वक्तव्यों द्वारा जानते हैं। पहले के विषय में उपलब्ध संक्षिप्त सामग्रियों से भी पता चल जाता है कि वे व्यावहारिक धर्म के मानने वाले एक प्रतिभाशाली व्यक्ति व कर्मयोगी थे जिन्होंने अपने मंतव्यों के अनुसार आजीवन प्रयत्न किये और दूसरे के संबंध में भी हम यही जानते हैं कि वे एक सच्चे कर्मवीर का व्रत स्वीकार कर अपने 'सत्यके प्रयोगों' में निरंतर प्रवृत्त रहे और उसका पालन आमरण करते रह गए। फिर भी एक को जहाँ उसके मतविरोधी व्यक्तियों ने अंतमें स्थान-त्यागके लिए विवश किया वहाँ दूसरे को उसके एक सहधर्मी ने ही अपनी गोलियों का लक्ष्य बना दिया।

गीत

[श्री रमानाथ अवस्थी]

जो मुझे मिटा दे मैं ऐसा संसार नहीं चाहूँगा।

मेरे गीतों को पहना दो स्वर की पायल,
मै माँगूँ नभ से राह प्यार सा मचल-मचल,
जो मुझे बदल दे, मैं ऐसा अधिकार नहीं चाहूँगा।
मैं ज्योति-पुत्र सा चमकूँ बादल-दल में,
थिर रहूँ न मैं बूँदों में औ, हलचल में,
जो मुझे बाँध ले मैं ऐसा विस्तार नहीं चाहूँगा।
मैं चाहूँगा बिन खिली कली सा झरना,
अपने में ही अपना सब कुछ लय करना,
जो मुझे अपावन कर दे वह श्रृंगार नहीं चाहूँगा।
मुझको आँखों में भरने वाला रहे हरा,
जिसने मेरे जीवन में गीतमय गीत भरा,
जो मुझे मुक्ति दे सके न, वह आधार नहीं चाहूँगा।

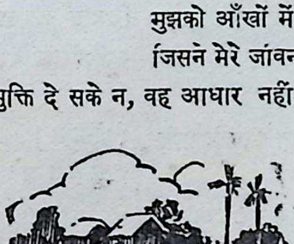

मैथिली कहानी :

विकट मेहमान

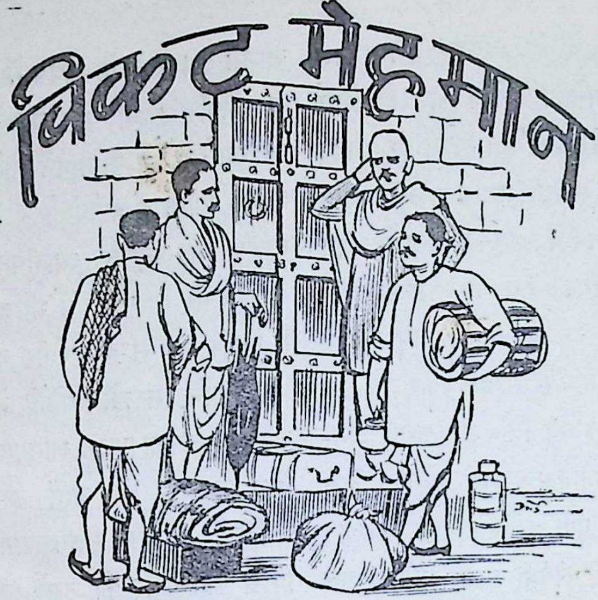

[श्री. हरिमोहन झा]

भादों की रात। साँझ से ही जो झड़ी लगी तो क्रमशः बढ़ती ही गयी। जब ११ बजे रोशनी बुझ गई तो सारा हॉस्टल घोर अन्धकार में डूब गया। चारों ओर सन्नाटा। केवल फुही पड़ने का स्वर एक ताल से निस्तब्धता को भंग कर रहा था। मैं भी पुस्तक को सिरहाने रख कर निद्रादेवी का आवाहन करने लगा।

वर्षा का फहर फहर शब्द सुनते-सुनते कब आँख लग गई, पता ही न चला। लगभग एक घंटे तक स्वप्न-राज्य में विचरण किया होगा कि नीचे किवाड़ खटखटाने के शब्द से मेरी नींद टूट गइ।

१२ बजे रातको इस तरह यह कौन किवाड़ खटखटाता है? जी झुँझला उठा। नीचे उतर कर देखा—तो दरवान खड़ा है। मैंने पूछा "क्या है जी?"

उसने कहा "चार ठो बाबू आये हुए हैं। नाम नहीं बतलाते हैं लेकिन कहते हैं कि हुजूर से बहुत ज़रुरी काम है। इसी वक्त मुलाकात चाहिये।

मैंने कुछ नाराज़ जैसा होकर कहा "कहा क्यों नहीं कि सोये हुए हैं।"

दरवान बोला—बहुत कहा कि सुपरडेंट साहब सो गये हैं, कल सुबह आकर मिलना। लेकिन बिगड़ने लगे कि अभी फौरन जगा दो, नहीं तो बड़ा नुकसान होगा। और पीछे साहब तुम्हीं पर नाराज़ होंगे।

मैं सोचने लगा—ये कौन लोग हैं जिन्होंने असमय रात्रि में, इस घोर वर्षा में इस प्रकार आने का कष्ट उठाया है! मुझसे क्या इनका कोई ज़रूरी काम है? क्या जाने घर से कोई अशुभ समाचार तो नहीं लाये।

एक बार अज्ञात आशंका से शरीर सिहर उठा। कहा—अच्छा जाओ, ले आओ। फिर मन को समझाने लगा—सम्भव है किसी विद्यार्थी का पालक हो। ऐसी ही कोई भयंकर विपत्ति पड़ी होगी, इसी लिये बेचारा भीजता भीजता १२ बजे रात आ पहुँचा है।

इसी तर्क वितर्क में पड़ा था कि इतने में जोर से बादल गरजा। सारा होस्टल हिल-सा उठा। बिजली की चमक में देखा कि चार भीम काय व्यक्ति आ रहे हैं। नज़दीक आने पर एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर पूछा "क्या आप ही परफेस्वर (प्रोफेसर) बाबू हैं?" कहिय कुशल तो है न? बाल-बच्चे अच्छी तरह? हैं हैं हैं हैं!

मेरी तो बोलती ही बन्द हो गई। ये कौन महानुभाव हैं जो इस भयंकर रात में अयाचित

कृपा कर इतनी आत्मीयता दिखा रहे हैं। बहुत याद किया पर कुछ भी स्मरण न आया कि इससे पहले जीवन में कभी इनको देखा हो, परन्तु इतना समझने में दिक्कत न हुई कि ये कोई असाधारण व्यक्ति हैं जिनकी कृपा से मेरे और परमश्वर में केवल तीन डिगरी का अन्तर रह गया है।

मुझे असमंजस में पड़ा देख कर उन्होंने स्वयं कहना प्रारम्भ किया—हैं हैं हैं हैं। आप तो—क्या नाम कि—हमें नहीं पहचाना होगा। कैसे पहचानें? कभी देखा हो तब न? हम आपके मौसिपोते के—क्या नाम कि—साढ़ू के फुफेरे भाई हैं। और ये हमारे सर बेटा। ये लोग भी आपका दर्शन करने हमारे साथ चले आये। और यह मेरा लड़का है। बेटा, प्रणाम करो।

उनका सुयोग्य पुत्र अंधेरे में मेरी ओर बढ़ने लगा। ज्यों ही प्रणाम करने के लिये वह झुका कि उसकी कांख में दबी पोटरी में से एक पीतल का लोटा निकल कर दन्न से मेरे पैर पर गिर पड़ा। चोट से जी व्याकुल हो गया। अँगूठा पिच गया। ऐसे विकट प्रणाम का आशीर्वाद क्या देता! सी-सी करता रह गया।

मेरी आह सुनकर उसके पिता ने पूछा—क्यों क्या अधिक चोट तो नहीं लग गई? फिर अपने लड़के को डांटते हुए बोले—तू बड़ा बुद्धू है। पोटरी रखने का भी शऊर नहीं! पहले पोटरी रख देता, तब प्रणाम करता।

यह कह कर उन्होंने भीगा हुआ छाता और पोटरी मेज के ऊपर रख दी। फिर अपनी भीगी धोती की लाँग को निचोड़ते हुये अपने दल की ओर देख कर बोले—"क्योंजी, तुम लोग भी अच्छी तरह भीग गये—हैं हैं हैं हैं—मैं भी भीग गया। अब पहनोगे क्या? पोटरी भी तो भीग गई है।" यह कह कर बिना हँसी के ही हँसने लगे।

तब तक दरबान लालटेन जलाकर ले आया। लालटेन की रोशनी में चारों मेहमानों की भीमाकार मूर्ति के दर्शन हुए। सभी के शरीर लथपथ। धोती से पानी चू रहा था। मेज पर निगाह गई तो देखा कि भीगे छाते के जल से मेज पर रखी सभी फाइलें गीली हो गई हैं और गठरी के भारी बोझ से दवात उलट कर स्याही की सरिता बहा रही है।

तब तक मेहमान ने मेरे उपकारार्थ अपने नाम कह सुनाये "स्वयं भीमेन्द्रनाथ, सौतेला गजेन्द्रनाथ, बालक व्रजेद्रनाथ (उन्होंने व्रजेन्द्रनाथ का उच्चारण कुछ इस तरह किया, जो मुझे अधिक युक्ति संगत लगा।) और सरबेटा दिगम्बरनाथ।

अब ये चारों नाथ पहनेंगे क्या? एक फाजिल धोती रखी थी वह भीमेन्द्रनाथ को दी। गजेन्द्रनाथ ने मेरी लम्बी लुंगी लपेट ली। व्रजेन्द्रनाथ के लिये एक पुरानी पतलून निकाल दी जो उनके टखनों से एक बालिस्त ऊपर रह गई। दिगम्बरनाथ वैसे ही रह गये। अन्त में दरवाजे का परदा उतार कर उनके परदे का इन्तज़ाम किया गया। अब ये लोग महादेव के बराती-से लगने लगे।

जब दरबान बिस्तर माँगने के लिये आया तो मेहमान बोले "बिछावन तो—हैं हैं हैं हैं—हम लोग नहीं लाये हैं। एक फटी दरी में पोटरी बँधी हुई है, वह भी भीग गई है। कोई बात नहीं। एक रात की तो बात है कहीं पड़ रहेंगे। हैं हैं हैं हैं।

दरबान ने कामन रूम (Common room) से बड़ी शतरंजी लाकर बीच वाले हाल में बिछा दी। इन लोगों के सोने का इन्तज़ाम कर वह अपने काम पर चला गया और मैं भी ऊपर के लिये विदा हुआ।

दो ही सीढ़ी चढ़ पाया था कि पीछे से मेहमान ने पूछा—क्यों आपने भोजन तो अभी नहीं ही किया होगा?

एक बजे रात को ऐसा प्रश्न सुन कर मैं अवाक् रह गया। किन्तु उनका अभिप्राय समझने में दिक्कत न हुई। मैंने पूछा—"क्यों आप लोगों ने भोजन नहीं किया है?"

इस पर मेहमान ने जो उत्तर दिया वह सुनिये—"हैं हैं हैं हैं, अभी जल्दी क्या है। तब तक ये तीनों सज्जन कुछ जलपान कर लेंगे—हैं हैं हैं हैं। मुझे तो उतनी भूख नहीं है, एक बार ही जो होगा सो खा लेंगे। हैं हैं हैं हैं घर ही तो है। भला कोई बात है! क्यों गजेन्द्र, हम कहते थे न, कि ये बिना आग्रह किये मानेंगे नहीं। व्रजेन्द्र, यहाँ कोई संकोच थोड़े ही करना है। तेरा तो घर ही है। जलपान कर लो। हैं हैं हैं हैं।

अब इस हैं-हैं पर सोने कैसे जाता? रामटहल अपनी कोठरी में बेखबर सो रहा था, उसको जाकर

जगाया और छाता तथा रुपया दे कर बाजार भेजा। इस घनघोर वर्षा में डेढ़ बजे रात को कौन अभागा अपनी दूकान खोल कर बैठा रहता। आध घंटा के बाद वह छप छप करता, खाली हाथ हिलाता, वापस आया।

अब क्या किया जाय? एक नाथ की जगह चार चार नाथ! .... अनर्थ के लिये एक ही काफी, चारों न जाने क्या करें?

रसोइया को उठाया। वह आँख मींजता हुआ आया और बोला—"सरकार, अब तो दो बजने वाले हैं। अब जो अंगीठी सुलगाने जायेंगे तो कोयला दहकते दहकते ३ बजेंगे। तब जो भात, दाल, तरकारी बनाने लगेंगे, तो सुबह ही हो जावेगा।"

बात तो ठीक। पर अब करें तो क्या? मेहमानों में कोई भी ऊँघने वाला नहीं। वरन् वे इस ताक में हैं कि कहीं घर वाला टाल कर सो न जावे।

मुझे चिन्तित देख कर मेहमान आश्वासन देने लगे—"कोई चिन्ता नहीं। हम लोगों के साथ भी कुछ खाने पीने की वस्तु है। क्यों न गजेन्द्र? निकालो इमली की 'खटमिठ्ठी'। दो चार फाँक आँवले का भी अचार होगा ही।"

एक तो यों ही जठराग्नि प्रदीप्त, और उस पर उद्दीपन सामग्री। मैं लालटेन लेकर भंडार घर गया। इतनी वस्तुयें देखने में आई—एक अधपका कटहल, एक हत्था पका केला, एक बोतल घी। पीछे फिर कर देखा तो चारों मेहमान खड़े! मैंने रामटहल से पूछा—"देखो तो, यह कटहल खाने के योग्य हुआ क्या?"

अभी वह देख ही रहा था कि मेहमान ने उसके हाथ से कटहल लेकर कहा "तू क्या समझेगा रे, इधर ला। वाह! खूब सुगन्धि फैला रहा है। इसमें तो अच्छा कोआ निकलेगा, क्यों गजेन्द्र?"

बरामदे में पानी की बौछार आती थी। इस लिये भंडारघर में ही एक ओर आसन बिछा दिया गया, पानी रख दिया गया। चारों जने हाथ से ऐंड़ी मार कर बैठ गये।

बीच में कटहल रख दिया गया। जबतक रामटहल थाली-कटोरी माँज कर लाया लाया, तब तक छिलका समेत कुल कोआ साफ! केवल गुठली और बीच वाला डंठल बाकी रह गया। भीमेन्द्रनाथ अपने सर बेटा की ओर देख कर बोले "अब क्या खाओगे? केला?"

दिगम्बरनाथ ने कहा—"हाँ फूफा! केला तो पाचक ही होता है। किन्तु चार चार केलों से क्या होगा? ऊँट के मुंह को जीरा।" सर बेटा घी की ओर ताकने लगे। फूफा ने पूछा—चखने को मन होता है?"

वे बायें हाथ पर डाल-डाल कर दाहिने हाथ से घी का स्वाद लेने लगे। चाटते चाटते ही चारों जने सारा घी चट कर गये।

मैंने देखा कि मेहमान असंतुष्ट बैठे हैं। कोई उठने का नाम तक नहीं लेता है। उदर कुंड की जठराग्नि ज्वाला घी की आहुति पाकर और भड़क गई है। मानो सातों जिह्वा लपलपा कर मांग रही हो—"हविषं देहि समिधं देहि।"

अब हम और हविषा कहाँ से लावें। दवाइयों की अलमारी में एक डब्बा 'माल्टेड मिल्क' था उसे भी घोल कर चारों जनों को दे दिया, किन्तु इस चरणादक से क्या होता है?

तब तक ब्राह्मण देवता का भाग्य देखिये। मेस के हलवाई के पास एक पसेरी दालमोट बनी रखी थी, पता लगते ही उसके यहां से भरा थाल मँगवा लिया गया। अमावट मेहमान की पोटरी में था ही। चारों जने अमावट को घोल कर, उसमें दालमोट सान सान कर बड़े सन्तोष के साथ उड़ाने लगे।

जब सम्पूर्ण परात साफ हो गई, तब भीमेन्द्रनाथ मेरे सन्तोष के लिये बोले—हें हें हें हें यह जलपान क्या हुआ, मानो भोजन ही हो गया। क्यों गजेन्द्र! अब तो तुम लोगों को उतनी भूख नहीं ही होगी?"

यह कह कर फिर हें हें हें हें करने लगे। अन्त में मुझे पराजय स्वीकार करनी पड़ी। मैं ने कहा—"अच्छा, अब आप लोग हाथ धोवें। दो से ज्यादा हो गया है। अब मुझे भी आज्ञा मिले।"

मुझे सवेरे उठ कर एक रिपोर्ट लिखनी थी, इस लिये ऊपर जाकर सोने का उपक्रम करने लगा। गर्जन और वर्षा का वेग क्रमशः बढ़ता गया, ऐसा मालूम होता था कि समूचा पटना ढह जायगा। ढाई बजे रात को जो बिस्तर पर पहुँचा तो बेहोश होकर पड़ रहा। लेकिन मुश्किल से आँख

घंटा बीता होगा कि किसी के बज्र जैसे कठोर हाथ के स्पर्श से मेरी नींद टूट गई। मैं मारे घबराहट के कूदने-सा लगा, इतने में "ओ परफेस्वर बाबू! मै हूँ" कह कर मेहमान 'हैं हैं ह हैं' करने लगे।

मेरी तो देह जल गई, फिर भी सभ्यता की रक्षा करते हुए मैंने पूछा "क्या है?"

मेहमान बोले—"हैं हैं हैं हैं, नीचे लालटेन बुझ गई और सर बेटा दिगम्बर नाथ—क्या नाम कि—पाखाने जावेंगे। यहाँ तो कुछ जाना बूझा है नहीं। बाहर जाने का दरवाजा किधर है?"

मैं ने ऊँघते ही ऊँघते उत्तर दिया—"नीचे भंडार घर से सटा हुआ ही पैखाना है। उसी में जाने को कह दें।"

यह कह कर मैं फिर आँख मूँद कर सो गया। किन्तु दस ही मिनट के बाद नीचे फिर शोर हुआ "ओ परफेस्वर बाबू! पानी नहीं मिलता है बाल्टी किधर है। अंधेरे में मिट्टी भी नहीं मिलती। हाथ किस से साफ करें!"

अब क्या करता! फिर नीचे उतरना पड़ा। पानी अभी उसी तरह बरस रहा था। रामटहल अपनी कोठरी में जाकर सो रहा था। फिर उस पर अत्याचार करना उचित नहीं समझ पड़ा। मैंने स्वयं टार्च लेकर मिट्टी दिखा दी और बाल्टी के लिये बाथ रूम में गया। उसमें ज्यों ही पैर रखा कि फचच से मेरा पैर सन गया।

टाच के प्रकाश में देखा तो बात समझ में आई कि यह दिगम्बरनाथ का प्रसाद चिन्ह है। उन्होंने स्नानागार को पाखाना समझ कर अपनी कोष्ठ शुद्धि और मेरी प्रकोष्ठ शुद्धि कर दी थी।

मैं ऊपर गया था कि फिर मेहमान ने आवाज दी "ओ परफेस्वर बाबू! जरा हम लोग भी बाहर जावेंगे। घरमें टट्टी जाने का अभ्यास नहीं है। बाहर मैदान का रास्ता दिखा दीजिये। दिगम्बर नाथ को खुलकर दस्त नहीं हो पाया। फिर जावेंगे।"

अब देखो तमाशा! अँधेरा इतना कि हाथ को हाथ नहीं सूझता। पानी बरस रहा है, बादल गरज रहे हैं और ये लोग दिशा फरागत के लिये बाहर जावेंगे।

अन्त में उन्होंने नहीं ही माना। चारों जने कान पर जनेऊ चढ़कर बिदा हुये। सदर दरवजा बन्द था इस लिये पीछे के दरवाजे से इन लोगों को अहाते के पार करा दिया और टार्च हाथ में दे दें।

प्रतीक्षा में बैठे बैठे साढे तीन बज गये। परन्तु मेहमानों का पता नहीं। कुछ समय के पश्चात दूर से आर्तनाद सुनाई पड़ा—ओ परफेस्वर बाबू! हम लोग भटक गये हैं। अँधेरे में काटेदार तार में उलझे हुये हैं। यह झुकझुकी (टार्च) हम लोगों से नहीं जलती है। किस रास्ते से आऊँ?"

अस्तु किसी तरह गजेन्द्र-मोक्ष किया गया।

चार बजे जो सोया सो पूरे ७ बजे नींद टूटी। मन में कहा मेहमान प्रातः की गाड़ी से पुनपुन पहुँच गये होंगे। अच्छा हुआ जो पिंडदान के यात्रियों से पिंड छूटा। नहीं तो चलते समय फिर हैं हैं हैं हैं करने लगते और शिष्टाचार में ही एक घंटा लग जाता।

यह सोचते सोचते जैसे ही नीचे उतर कर गया तो देखा कि भीमेन्द्र नाथ, गजेन्द्रनाथ, व्रजेन्द्रनाथ और दिगम्बरनाथ चारों जने नहा धोकर चन्दन-वन्दन लगा कर किसी की प्रतीक्षामें तैयार बैठे हैं।

दल के सरदार मुझे देखते ही बोले—"हैं हैं हैं हैं, हम लोग तो सबेरे ही बिदा हो जाते परन्तु बिना आप से मिले हैं हैं हैं हैं सोये हुए में कैसे उठाता! और अब तो दिन निकल आया। बृहस्पति के दिन दक्षिण दिशा में जायेंगे कैसे? क्यों गजेन्द्र?

गजेन्द्र ने कहा—" हाँ, अब तो गया जाने में दिशा शूल लग गया!" अस्तु रसोइया को बुला पठाया। मैं स्वयं तो पथ्याहार किया करता था। इसलिये उसने पूछा—" इन लोगों के लिये क्या बनेगा?"

मैं जबतक कुछ उत्तर देता-देता, तबतक मेहमान कहने लगे "हम तीन जनों को तो—क्या नाम कि—घर ही है। किन्तु हमारे सर बेटा दिगम्बर नाथ—हैं हैं हैं हैं—बिना सौजन के भात कैसे खायेंगे? इनके लिये तो पूड़ी और अलोनी तरकारी बनवा दें। मिठाई के साथ खा लेंगे। और हम लोगों को तो—हैं हैं हैं हैं—घर ही है। भोजन में—क्या-नाम कि—भात, दाल, तरकारी, घी, दही, चीनी। बस और क्या? हाँ हमारे साथ एकठो जमीरी नींबू है वह खराब हो रहा है, इस लिये कुछ

मछली भी मँगा लीजिये । और अधिक तैयारी करने की आवश्यकता नहीं है । हम लोग क्या मेहमान हैं ! और यहाँ क्या घर है ? तबतक इन लोगों के लिये कुछ जलपान ला दें तो ला दें । क्या ब्रजेन्द्र ?

ब्रजेन्द्र शरमाते हुये बोले—"नहीं उसकी कोई उतनी आवश्यकता नहीं । दस मिनट के बाद भी आवे तो कोई हर्ज नहीं ।"

पुत्र की इस संकोच-शीलता पर टिप्पणी करते हुए पिताजी बोले—"हें हें हें हें, यह मेरा बेटा जो है ! क्या-नाम-कि-बड़ा शरमीला है । अभी इसको बच्चा ही समझिये । दाढ़ी-मूछ आ जाने से क्या होता है । और तेरा तो यह अपना घर है । माँग कर खाना चाहिये । और भगवती की कृपा से इनको किसी बात की क्या कमी है । क्यों जी परफेश्वर बाबू ! तनखाह कितनी मिलती है ? कुछ ऊपर से प्राप्त—क्या-नाम-कि—अवश्य हो जाती होगी । हें हें हें हें ।"

तब तक मक्खनवाला आ पहुँचा । जैसे ही मुझे देने को उसने थाली नीचे रखी कि मेहमान ने अपने पुत्र से कहा—"देखा, कैसी जगह ले आया हूँ । तभी न ऐसे भोग-पदार्थ देखने को मिल रहे हैं । यह मक्खन कहाँ देखने को मिलता था ! इससे दिमाग तर रहता है । तुम क्या जानो ?"

यह कहकर उस थाली को अपने सुपुत्र के आगे खिसका दी । सुयोग्य पुत्र ने निर्विकार भाव से मक्खन की सारी गोलियाँ, मिश्री की गोलियों सहित समेट कर उठा लीं और पिता की आज्ञा को परमधर्म मान कर अपना दिमाग तर करने लगा ।

मुझे आवश्यक कार्य थे और पहला पीरियड लेना था; इस लिये झटपट तैयार होकर १० बजे कॉलेज चला गया ।

तब तक इधर मेहमान रसोइया से घनिष्ठता स्थापित करने लगे ।" क्या नाम है ? घर कहाँ ? मूल स्थान क्या ? वाह ! आप तो अच्छे आदमी हैं । कितने दिन से यहां काम कर रहे हैं ? आपके सुपरडंट साहब हमारे सगे सम्बन्धी हैं । हम लोगों ने लाख प्रयत्न किया, लेकिन उन्होंने जाने ही न दिया । बोले "भला, कहो तो ! यह कैसे हो सकता ? जब तक—क्या नाम कि—अच्छी तरह भोजन नहीं कर लेते, तब तक जावेंगे कैसे ? देखो, रत्ती भर भी संकोच न करना । जो जो खाने की इच्छा हो रसोइया से कह दीजियेगा । दही, दूध दोनों ही ले लीजियेगा । घी काफी देने के लिये कहियेगा । किसी वस्तु की त्रुटि रह गई तो मैं बिना जुरमाना किये न छोड़ूँगा । क्यों ब्रजेन्द्र ! तुम्हें भी तो बहुत मानते हैं । कह गये हैं—" इनको आज मछली अवश्य मिलनी चाहिये । क्यों बाबू ! यहाँ तो नदी की बढ़िया रोहू (मछली) मिलती होगी । कितनी दूर है ?

परफेश्वर बाबू तो अब चार बजे से पहले आयेंगे नहीं । बेचारे जल्दी में सिर्फ नारंगी ही खाकर चले गये । मगर हम लोगों को क्या जल्दी है ? बारह बजे, एक बजे, कितने ही बजे । अपना घर है । जब तैयार होगा तब खा लेंगे ! क्यों गजेन्द्र ? तब तक पहले दिगम्बरनाथ के लिये पूड़ी सेंक दीजिये ।"

इस प्रकार रसोइया को उन्होंने ऐसी पट्टी पढ़ाई कि सारा घर गमगम-छन-छन की खुशबू से तर होने लगा ।

अपना अपना भाग्य होता है । मैं तो पथ्य खाकर अपने काम पर गया और ये लोग चढ़ी कड़ाही से गरमागरम कचौड़ी और भाप उठते हलवे पर हाथ सफा करने लगे । भोजन करते करते इनको दो बज गये ।

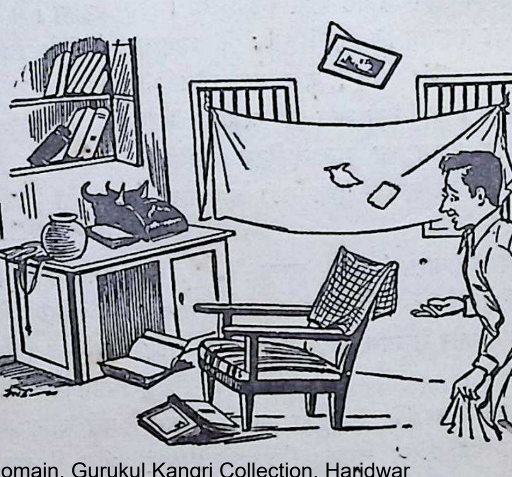

जब मैं चार बजे कॉलेज से लौटा तो देखता हूँ कि चारों भोजन-वीर तरबतर लेटे हुए मेघनाद-कुम्भकर्ण जैसे बाजी लगाकर खर्राटे ले रहे हैं। सम्पूर्ण घर छिन्न-भिन्न अवस्था में दिखाई पड़ा। ड्राइंग रूम में गन्दा कपड़ा फैला हुआ है। आराम कुर्सी पर गजेंद्रनाथ की फटी गंजी सूख रही है। लिखा-पढ़ी वाली मेज पर व्रजेन्द्रनाथ का पितरिया लोटा, टाइप-राइटर पर भीमेन्द्रनाथ की पनहीं। अलमारी की सभी पुस्तकें उलटी-पुलटी जैसी मालूम पड़ीं। ऊपर कमरे में गया तो वहाँ भी वही दशा। प्रत्येक चीज गड़बड़ अवस्था में। कमोड तक खुला हुआ। उसमें, देखता हूँ, थोड़ी सी खटमिठ्ठी रखी है। रात के जागरण के कारण कुछ थकावट जैसी मालूम हो रही थी इस लिये मैं चुप-चाप लेट गया। जब थोड़ी देर बाद नीचे उतरा तो मेहमान डकार लेते हुए बोले—" ओह! आज तो बहुत भोजन हो गया। हें हें हें हें ऐसा भोजन तो ससुराल में भी नहीं किया था। मछली तो ला-जवाब बनी थी! व्रजेन्द्रनाथ कुछ ज्यादा खा गया, इस लिये मन्द पड़ गया है।

यह कह कर मेहमान फिर डकार लेकर पेट पर हाथ फेरते हुये मंत्र पढ़ने लगे—

आतापी भक्षितो येन,
वातापी च महाबलः।
समुद्रः शोषितो येन स मे
अगस्त्यः प्रसीदतु॥...

"हाँ, ऊपर आपके लिये थोड़ी खटमिठ्ठी रख आया हूँ। सोचा, खाली हाथ परफेश्वर बाबू के यहाँ कैसे जाना? यह खटमिठ्ठी व्रजेन्द्र की माँ ने अपने हाथ से बनाई थी।"

तब तक गजेन्द्रनाथ ने आकर कहा कि व्रजेन्द्र को कै हो रही है। नीचे कोठरी में जाकर देखा तो व्रजेन्द्रनाथ सफरी चारपाई पर बैठकर अखबार की फाइल पर कै कर रहे हैं। यह देखकर गजेन्द्रनाथ उनकी पीठ सहलाने के लिये जैसे ही बैठने लगे कि उनके भार से चारपाई का कपड़ा चर्र से बीच से ही फट गया और दोनों चचा-भतीजे पृथ्वी पर आ पहुँचे। तब तक दिगम्बरनाथ ने इधर उधर ताक कर मेरा टेनिस वाला रेकट उतार लिया और कै किया हुआ कागज उसी पर उठाकर बाहर सीढ़ी पर फेंक दिया।

मैंने जब देखा कि सारे मकान और सामान पर मेहमानों का इस तरह का स्वयं सिद्ध आधिपत्य जम गया है, कि कुछ प्रतिवाद की चेष्टा करना व्यर्थ है, लाचार होकर चुपचाप मैदान की ओर घूमने निकल गया।

एक डेढ़ घंटे के बाद जब वापस लौटा तो मेहमान बोले—"गजेन्द्र की देह कुछ गरम लगती है। इनके लिये थर्मामीटर मंगा दें।"

गजेन्द्रनाथ को थर्मामीटर लगाने के लिये गया, किन्तु उन्होंने उसे अपनी काँख में इतने जोर से दबाया कि सीसा फूट गया और पारा फैल गया। मेहमान बोले—"परफेश्वर बाबू! थर्मामीटर तो फूट गया। क्या शीसा कच्चा था?"

होस्टल का बढ़िया थर्मामीटर। करीब १० रु. का दंड मुझ पर पड़ा तब तक मेहमान कहने लगे—" ज्वर नहीं है। थोड़ी हरारत है। रात में दूध सावूदाना खा लेगा। हम तो जो कुछ पकेगा वही खा लेंगे। सिर्फ दिगम्बरनाथ रात को फिर पूड़ी ही खावेंगे। और व्रजेन्द्र को कै हो गई है। इसको अभी कुछ फलफलार करना चाहिये, यही हमारी राय है। क्यों व्रजेन्द्र?"

यह कह कर मेहमान ने अंटी से चाकू बाहर निकाला और मेज पर शोभा के लिये जो मिट्टी का रंगीन सेव रखा था, उस को उठा कर व्रजेन्द्रनाथ को काटने के लिये दे दिया, जब तक मैं मना करूँ-करूँ तब तक व्रजेन्द्रनाथ ने उसके दो टुकड़े कर दिये।

मेहमान बोले "अरे, यह तो नकली सेव है—हें हें हें हें हें! असली सेव बाजार से मँगा दें और गजेन्द्रनाथ के लिये साबूदाना चाहिये। क्यों गजेन्द्र! तीन पाव साबूदाना से काम चल जायगा न?"

रात में फिर इन लोगों के भोजन और पथ्य की व्यवस्था करते करते १२ बज गये। जब मैं सोने के लिये जाने लगा तब मेहमान बोले "हम लोग मुँह अँधेरे विदा हो जावेंगे। मगर उस समय तो अँधेरा होगा और फाटक भी बन्द रहेगा। इसलिये हम लोगों के जाने का इन्तज़ाम हो जाना चाहिये।"

मैंने कहा "आप लोग पीछे के रास्ते से चले जाइये। लालटेन और दियासलाई रख लें। उस समय जला कर काम चला लें। और राम टहल को

उठा दीजियेगा वह फिर भीतर से किवाड़ बंद कर लेगा।"

यह कह कर उनको लालटेन और दियासलाई दिखा दी, परन्तु वे खड़े ही रहे। मैंने पूछा "और कुछ चाहिये क्या ?"

मेहमान विचित्र प्रकार की भावभंगी दिखाते हुये बोले "—हें हें हें हें, हम लोगों का, हें हें रुपया-पैसा कुछ कम पड़ता है। दिगम्बर नाथ से मैंने कहा था कि परमेश्वर बाबू के यहाँ चल रहे हैं। रुपया-पैसा क्या भला वह कम पड़ने देंगे। हें हें हें हें।

मुझे कुछ सोच विचार में पड़ा देख वे फिर बोले "हें हें हें हें। आप दिगम्बर बाबू को नहीं पहचानते—क्या नाम कि अपने गाँव के बड़े मालदार आसामी हैं। साल में ९०) सरकारी मालगुजारी दाखिल करते हैं। इनके डरके मारे सारे आसामी धोती में पेशाब कर देते हैं। गाँव जाकर जब गया-भोज करेंगे तब सात मन चूड़ा-दही लगेगा। इस बार क्षेत्र के मेले में हाथी खरीद ने के लिये आयेंगे तब आप के रुपये अवश्य लेते आवेंगे।"

मैंने कुछ सशंकित होते हुये पूछा—"कितनी कमी पड़ती है !"

मेहमान ने उत्तर दिया—"हें हें हें हें, पिंडदान में तो ख़र्च की कोई सीमा ही नहीं। जितना कर सकें। तो भी ५०) इस वक्त दे दिया जाय तो तात्कालिक काम चल सकेगा। वहाँ जाने के बाद देखा जावेगा। यदि पंडा के पैर-पुजाई में कुछ घटा तो उसी जगह मुंसिफ साहब से दिला दूँगा; एक सौ, दो सौ, जितने चाहेंगे। वे अपने सगे सम्बन्धी हैं, जो कह देंगे सो देना ही पड़ेगा। यह भी कोई बात है। हें हें हें हें।"

मैंने १०, १० के पांच नोट निकालकर उनके हाथ में रख दिये। उन्हें अंटी में खोंसते हुए मेहमान बोले" ये रुपये आप को कार्तिकी पूर्णिमा तक अवश्य मिल जावेंगे। जब ये हाथी लेने सोनपुर आवेंगे, उससे पहले बाँकीपुर आकर आप के रुपये दे जावेंगे। क्यों दिगम्बर बाबू ! पहले इनके रुपये दे जाइयेगा, अवश्य, अवश्य। फिर हाथी में कितने लगें उसका क्या ठिकाना ! हें हें हें हें। बस तो अब आप सोवें। गयाजी से जब वापस लौटेंगे, तब आपसे भेट करते जावेंगे। अब क्या हम लोग आप को छोड़ेंगे ?"

एक बार हमारे यहां भी—क्या नाम कि—आपको कृपा करनी पड़ेगी। ब्रजेन्द्र की माँ ने शपथ दिलाकर कहा था। यदि अगहन में आने का कष्ट करें तो हम आप के वास्ते मालयोग (चावल की एक उत्तम जाति) का नया चूड़ा कुटवाकर रख लेंगे। हम लोग तो गरीब हैं। क्या सेवा कर सकते हैं। परन्तु गरीब को भी तो आप को देखना चाहिये। अच्छा, अब आप सोवें।"

इस प्रकार शिष्टाचार करके मेहमान लोग नीचे गये।

प्रातःकाल जब नींद टूटी तो पीछे का दरवाज़ा उसी प्रकार खुला पाया। नीचे जाकर देखा तो मेहमान लोग अपना बोरिया-बँधना बड़ी शतरंजी सहित बाँधकर और दक्षिणा में लालटेन दियासलाई लेकर प्रस्थान कर गये थे। कामन रुम की बड़ी शतरंजी का दाम ५०) मुझे अपनी जेब से भरना पड़ा। पीछे रसोइया से ज्ञात हुआ कि मेहमान उससे भी ५) यह कहकर उधार लेकर गये हैं कि सुपरडंट बाबू हमारे कर्जदार हैं। गयाजी से लौटकर आते हैं तब उनसे वसूल कर तुम्हें दे देंगे।

आज सात वर्ष से ऊपर हुए, उस दिन से फिर कभी उन मेहमानों के दर्शन नहीं हुए। उन लोगों का केवल एक स्मृति चिन्ह रह गया जो धोखे से हमारे यहाँ छूट गया। वह है भीमेन्द्रनाथ की पैबन्द लगी पनही। भरतजी की खड़ाऊँ जैसा यही एक मात्र आश्वासन वे मेरे लिये छोड़ गये हैं।

तब से यदि किसी मेहमान देवता का नाम सुनता हूँ तब मन ही मन यह स्तोत्र पढ़ कर प्रणाम कर लेता हूँ।

अनिवार्य ! अनाहूत ! अचिकित्स्य !
अनिश्चित ! अव्ययोऽपि महाभाग !
धन्योऽसि नर पुंगव !

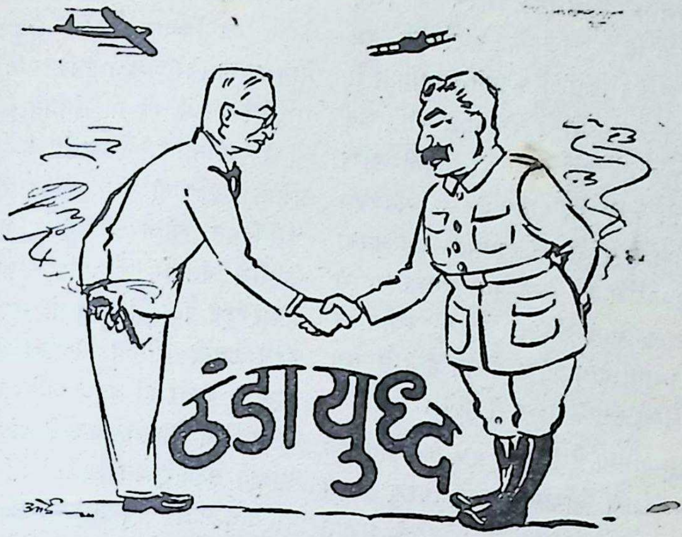

[श्री राधाकान्त शुक्ल]

'कोल्ड वॉर' या ठण्डा-युद्ध क्या है ?

यह सोवियत रूस तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका के मध्य चलनेवाला वह युद्ध है जो बिना मारक अस्त्र-शस्त्रों द्वारा विगत पांच वर्षों से लड़ा जा रहा है। इस युद्ध के द्वारा सोवियत रूस की पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो तथा राजनीतिक, सामाजिक और कूटनीतिक संस्थाएँ संयुक्त राष्ट्र अमरीका के विरुद्ध प्रचार करती आ रही हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका रूस के साम्यवादी प्रसार तथा प्रचार को रोकने के लिये अपनी पूर्ण शक्ति के साथ विश्व में अपना सोवियत विरोधी संगठन करता आ रहा है और उसका समस्त कूटनीति तथा प्रचार विभाग सोवियत रूस के विरुद्ध विष वमन करता आ रहा है। सोवियत रूस और संयुक्त राष्ट्र अमरीका और उसके पश्चिमी सहयोगियों के मध्य चलने वाले इसी संघर्ष को 'कोल्ड वॉर' अथवा "ठण्ढी लड़ाई" की संज्ञा दी गई है।

'कोल्ड वॉर' सिद्धान्त का आविष्कार अमरीकी है जिसका प्रचार संगठित रूप से सन १९४७ ई० में आरम्भ हुआ जब कि ट्रूमैन डाक्टरिन (सिद्धान्त) और मार्शल योजना द्वारा सोवियत यूनियन के विरुद्ध आर्थिक, राजनीतिक और यौद्धिक समझौते होने आरम्भ हुए।

इससे भी पूर्व १९४५ ई० में मि० पार्कर जो मास्को में '[illegible] टाइम्स' के सम्वाददाता थे और एंग्लो-अमरीकी कूटनीति से सर्वथा परिचित थे उन्होंने लिखा :—

"ठण्ढे युद्ध की घोषणा सोवियत यूनियन पर उस समय की गई थी जब कि सोवियत सेना हिटलर की सेना के साथ युद्ध कर रही थी। बुडापेस्त जर्मनों के अधिकार में था, ओडर पंक्ति भंग की जाने को थी और सह्र प्रदेश में ईसेनहोवर की सेनाएँ, प्रवेश नहीं कर पाई थीं। लेकिन सोवियत विजय निश्चित थी इस लिये संयुक्त राष्ट्र अमरीका के स्टेट विभाग प्रतिनिधि केनान नये युद्ध के लिये योजना तैयार कर रहे थे।.....
कोल्ड वॉर के कुशल कूटनीतिज्ञ और सोवियत नीति के विरोधी संयुक्त राष्ट्र अमरीकी प्रचारकों ने लेखा लगाया था कि विजय होने पर सोवियत जनता शारीरिक और मानसिक रूप से थक जायगी।" केनान की योजना के सन्मुख उस समय के मास्को स्थित ब्रिटिश राजदूत सर आर्चीनाल्ड क्लार्क्कर ने भी शीश झुका लिया था।

वि० चर्चिल का १९४२ ई० का मेमरैण्डम, ब्रिटन के मजदूर प्रचारकों का 'फण्ड ऑफ गुडविल' और सैन फ्रान्सिस्को सम्मेलन आदि इसी ठण्ढे युद्ध के परिचायक हैं जो १९४७ के पूर्व हुए।

वाल्टर लिपमैन ने १२ सितम्बर १९४६ के 'न्यूयार्क-हेरल्ड-ट्रिब्यून' में लिखा था—"गत

शीतकाल में संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सरकार ने सोवियत साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने के लिये सामायिक निश्चय किया, जिसके फलस्वरूप हम व्यापक रूप से समस्त विश्व में कूटनीतिक-संग्राम में जुट गये हैं। .... अमरीका की सीधी नीति यह होगी कि वह चुने हुये ऐसे केन्द्रों पर अपनी शक्ति संचित करेगा कि यदि युद्ध होता है तो सोवियत यूनियन को आरम्भ से ही रक्षात्मक युद्ध करना पड़ेगा। स्पष्ट रूप से यह केन्द्र पूर्वी भूमध्य सागरी क्षेत्र है जो काला-सागर की ओर है। इस स्थान पर अमरीकी जल तथा वायु शक्ति संचित होने से रूस के सामरिक केन्द्र उसकी पहुँच में होंगे।"

इससे पता चलता है कि १९४५ के शीतकाल में ही अमरीका ने सोवियत रूस के विरुद्ध तैयारी करने का निश्चय कर लिया था। उसके पश्चात् अमरीका ने ट्रूमैन सिद्धान्त तथा मार्शल-योजना का अनुसरण किया और टर्की, ईरान, यूनान, सुदूर पूर्व को सैनिक सहायता प्रदान की। सागरों में अमरीकी जल-अड्डों का जाल बिछाना आरम्भ किया, जर्मनी तथा कोरिया का विभाजन किया और पश्चिमी यूरोपीय गुट्ट तथा "अटलांटिक समझौता" आदि को जन्म दिया।

मार्च १९४६ ई० में फुल्टन सम्मेलन में प्रेसिडेंट ट्रूमैन सभापति थे उसमें विंस्टन चर्चिल ने युद्ध-प्रेरक भाषण दिया था। उसके पश्चात् संयुक्त-राष्ट्र अमरीका ने सरकारी तौर पर मार्च १९४७ ई० में ट्रूमैन-सिद्धान्त की घोषणा की और कहा कि संयुक्त-राष्ट्र अमरीका को सोवियत् यूनियन के सीमावर्ती सभी देशों में सोवियत् विरोधी सरकारों को संगठन करने और सहायता प्रदान करने का अधिकार है। इसी के फलस्वरूप पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों की सरकारों में प्रभाव डाल कर परिवर्तन कराये गये और फिर मार्शल योजना द्वारा सहायता प्रदान करने का कार्यक्रम चालू किया गया।

'ठण्डे-युद्ध' की कूटनीतिक परिभाषा मि० केनान ने अपने उस लेख में की है जो संयुक्तराष्ट्र अमरीका के जुलाई १९४७ के 'फॉरेन अफेयर्स' में प्रकाशित हुआ। उसमें उन्होंने सोवियत शक्ति का सामना करने के लिये प्रत्येक स्थान पर शक्तिशाली प्रत्याक्रमक शक्ति संगठन करने की बात कही है। उनके शब्द हैं, 'टू कन्फ्रांट दि रशन्स विथ अनआल्टरेबुल काउन्टर-फोर्स ऐट एवरी प्वाइंट।' मिस्टर केनान का विचार है कि संयुक्तराष्ट्र अमरीका में ऐसी शक्ति विराजमान है कि यदि वह उसका प्रयोग समूचे विश्व में करे तो सोवियत रूस को मजबूर होकर अपनी नीति उसी के अन्तर्गत चलानी पड़ेगी। साथ ही साथ उनका यह भी मत है कि "सोवियत् शक्ति के भीतर स्वयं उसके अवनति के बीज वर्तमान हैं, यदि उसके दल में किसी प्रकार फूट पैदा हो जाय तो यह विनाशकारी बीज स्वयं इतनी तीव्रता से उगें और बढ़ेंगे कि रात-दिन के भीतर ही वृहद शक्तिशाली सोवियत् दल छिन्न-भिन्न होकर छोटे-छोटे शक्तिहीन अप्रभुत्वशाली राष्ट्रीय संस्थाएँ बन जायेंगी।"

इस प्रकार संयुक्तराष्ट्र अमरीका और उसके साथी राष्ट्रों ने साम्यवादी लहर को रोकने के लिये जो योजनाएँ तैयार की हैं और उन्हें कार्यान्वित करने के लिये जो पग उठाये हैं उससे सोवियत् संघ ने भास लिया है कि उसे सत्यानाश करने के लिये ही संयुक्तराष्ट्र संघ के बाहर सब कुछ किया जा रहा है ताकि 'साम्यवादी आन्दोलन' को मार दिया जाय और 'रूस में सोवियत शक्ति का अतिशीघ्र अन्त कर दिया जाय।'

इसी 'ठण्ढी-लड़ाई' के पर्दे के पीछे साम्राज्यवादी शक्तियों ने संसार के कोने-कोने में चलनेवाले राष्ट्रीय-स्वतंत्रता सम्बन्धी आन्दोलनों को साम्यवादी संज्ञा देकर युद्ध आरम्भ कर दिये। ब्रिटेन ने मलाया में, फ्रांस ने वेतनाम में, संयुक्तराष्ट्र अमरीका ने फिलीपाइन में और हालैण्ड ने हिन्देशिया में राष्ट्रीय आन्दोलनों का सामना अस्त्र-शस्त्रों से करना आरम्भ कर दिया। जहाँतक हिन्देशिया का सम्बंध है भारत के आवाज उठाने पर संयुक्तराष्ट्र संघ ने हालैण्ड पर दबाव डाला और वह स्वतंत्र कर दिया गया पर वेतनाम और मलाया में बराबर संघर्ष चल रहा है।

तृतीय महासमर की तैयारी :

'ठण्ढा-युद्ध' के पर्दे में अमरीका और उसके साम्राज्यवादी साथी तीसरे महासमर की तैयारियों में लगे हैं। यदि यह बात नहीं है तो फिर क्यों संयुक्तराष्ट्र संघ के बाहर सैनिक संगठन किये जा रहे

हैं ? अटलांटिक समझौते की ही वात ले लीजिये। कहा जाता है कि यह समझौता सोवियत् आक्रमण होने पर उससे रक्षा करने के लिये किया गया है अतएव यह समझौता रक्षार्थ समझौता है। पर वास्तविकता इससे कहीं भिन्न है। अटलांटिक समझौते में कहा गया है कि किसी भी सम्मिलित राष्ट्र पर 'आक्रमण' होने की दशा में सभी सम्मिलित राष्ट्र मिलकर युद्ध लड़ेंगे। प्रश्न यह है कि 'आक्रमण' होने का निश्चय कौन करेगा और कैसी परिस्थिति को आक्रमण की संज्ञा दी जायगी ? इसका स्पष्ट उत्तर अटलांटिक समझौतावाले राष्ट्र कुछ भी नहीं दे रहे हैं।

गत ५ जून को संयुक्तराष्ट्र अमरीका के डिफेन्स मिनिस्टर लुईजान्सन से ४३६ मिलियन पौंड के शस्त्रास्त्र अमरीका सहायता प्राप्त राज्यों को प्रदान करते समय जब सेनेटर कैनाली ने प्रश्न किया कि 'आक्रमण' का निश्चय कौन करेगा कि अटलांटिक समझोतेंवाले राष्ट्र पर आक्रमण हुआ है और हस्ताक्षर करनेवाले समस्त राष्ट्र उसकी रक्षा के लिये आवें तो मि० जान्सन ने उत्तर दिया कि 'कोई भी उत्तर जो दिया जायगा उसका साम्यवादी प्रेस मिथ्या अर्थ लगावेंगे और मिथ्या प्रचार करेंगे। (मानचिस्टर गार्डियन ६ जून)।

अब इससे स्पष्ट पता चलता है कि संयुक्तराष्ट्र अमरीका 'संसार को वताना ही नहीं चाहता है कि 'आक्रमण' होने का निश्चय कौन और किस परिस्थिति में करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका जब कभी भी चाहे तभी किसी भी रूसी प्रक्रिया को 'आक्रमण' की संज्ञा देकर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों को एकत्रित करके सोवियत् यूनियन पर 'रक्षा' के नामपर आक्रमण कर सकता है। यदि यह वात नहीं तो 'आक्रमण' शब्द की व्याख्या क्यों नहीं दी जाती।

इसके साथ ही साथ यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र अमरीका ने जिस तेजी से सैनिक सहायता दी है और यूरोप महाद्वीप में जो सामरिक तैयारियाँ की हैं तथा जो योजनाएँ कार्यान्वित कर रहा है उससे यूरोपीय राष्ट्रों को स्वयं शंका होने लग गई है कि यह सारी कार्रवाइयाँ तीसरे महासमर के लिये ही की जा रही हैं। यूरोपीय जनता तो द्वितीय महासमर में पिस चुकी है वह किसी भी तीसरे युद्ध को लड़ने के लिये तैयार नहीं है, तभी तो फ्रांस में स्चुमेन कार्यक्रम जैसे कार्यों को प्रोत्साहन मिल रहा है। स्वयं जर्मन जनता किसी भी युद्ध के लिये तैयार नहीं है। वह विगत महासमर में खूब पिस चुकी है और अब शान्ति चाहती है, रोटी और वस्त्र की भूखी है।

आज ज़बकि समस्त यूरोप की जनता भोजन, वस्त्र और शान्ति के लिये त्राहि-त्राहि कर रही है तो अमरीका और साम्राज्यवादी शक्तियां उसे युद्ध के लिये प्रेरित कर रही हैं और सामरिक तैयारियों में जुटी हैं तथा यूरोपीय जनता को मार-मार मरकहा बना रही हैं। आज समस्त यूरोप की नीति का नियंत्रण 'कोल्डवार नीति' ही कर रही है और प्रत्येक देश की आन्तरिक राजनीति तथा आर्थिक नीति पर अपना प्रभुत्व जमाये हुए हैं। जनता स्वयं उसका अनुकरण नहीं कर रही है और न उसे अपनाने के लिये तैयार ही है इसी कारण जनता और 'ठण्डे-युद्ध' के चलाने वालों—दोनों को भांति-भांति की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

'ठण्ढे-युद्ध' के परिणाम :

इसी युद्ध के फलस्वरूप जर्मनी का विभाजन चार शक्तियों में किया गया और अब उसके दो, पूर्वी तथा पश्चिमी राजनीतिक जर्मन राष्ट्र बन हैं। पूर्वी का निर्माता रूसी कूटनीति द्वारा और पश्चिमी का ऐंग्लो-अमरीकी कूटनीति द्वारा हुआ है। इसी के फल स्वरूप बर्लिन का संघर्ष चला और चल रहा है। इसीने पूर्वी यूरोपीय छोटे राष्ट्रों को साम्यवादी बनाया, चेकोस्लोवाकिया में साम्यवादी दौर दौरा कर दिया। चीन में गृह-युद्ध हुआ और कोरिया का दो भागों में बंटवारा किया गयों और आज वहाँ खुल्लम-खुल्ला युद्ध चल रहा है, जो तीसरे महासमर का डंका पीट रहा है। फारमूसा, तिब्बत, इन्डोचीन, मलाया आदि में भीषण संघर्ष चल रहे हैं। मध्यपूर्वी राष्ट्र भी चैन नहीं ले पा रहे हैं। उन्हें कभी रूसी भय दिखा कर डराया जाता है तो कभी ऐंग्लो अमरीकी प्रभुत्व और शोषण का। समूचे उत्तरी ध्रुवक्षेत्र, अंटारकटिक रीजन में सामरिक तैयारियां हो रही हैं और हवाई तथा सामरिक

अड्डे बनाये जा रहे हैं। क्यों? यही न कि इनका उपयोग भविष्यत् युद्ध में होगा।

अणु-बम, हाइड्रोजन बम तथा अन्य कितने ही भीषण अस्त्र-शस्त्रों का अनाप शनाप निर्माण हो रहा है। सेनाएँ बढ़ाई जा रही हैं, समूची आर्थिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक और शारीरिक तथा मानसिक शक्तियां लड़ाई की तैयारी में लगी हुई हैं, देखिये ऊँट किस करवट बैठता है और यह तैयारियाँ क्या गुल खिलाती हैं। स्वयं राष्ट्र संघ शाब्दिक युद्ध तथा कूटनीति का अखाड़ा बना है। अभी तक रूस लगभग ७-८ मास से संयुक्त राष्ट्र संघ से अलग ही था। अब जब आया है तो वह अपनी कूटनीति से ऐंग्लो-अमरीकी नीति का परिवर्तन करना चाहता है, उधर संयुक्त राष्ट्र अमरीका और उसके साम्राज्यवादी साथी रूस को अपने गठ-बंधन द्वारा नीचा दिखाना चाहते हैं यहाँ तक कि रूस को अलग करके निर्णय करने तथा पग बढ़ाने के लिये भी तत्पर हैं। आखिर यह सब क्या है? क्या यह तीसरे महासमर के छेड़ने के लक्षण नहीं है? संयुक्त राष्ट्र संघ तो मानवता के कल्याण और संसार में शान्ति के लिये स्थापित हुआ है न कि युद्ध की तैयारी के लिये जैसा कि आज प्रतीत हो रहा है।

समूचे दक्षिणी पूर्वी एशिया की जनता स्वतंत्रता की ओर निरन्तर बढ़ रही है उसे दबाने के लिये सामाज्यवादी चालें चली जा रही हैं। अफ्रीका को गुलाम बनाने का प्रयास किया जा रहा है और दक्षिणी अफ्रीका में रंग-भेद का विष उगला जा रहा है। मध्यम-पूर्व में ऐंग्लो अमरीकी शक्तियां अपने धन के बल पर प्रभुत्व स्थापित कर रही हैं और उसे सोवियत रूस पर आक्रमण करने के लिये अपना केन्द्र सा बना रही हैं और अपनी उस प्रभुत्व स्थापित करने वाली तथा सामरिक नीति को 'प्रजातंत्र की रक्षा' की संज्ञा प्रदान कर रहा हैं। अल-मिस्री नामक मिस्री पत्र के सम्वाद-दाता को सीरिया के मिनिस्टर दवालिबी ने ८ अप्रैल को अपना जो वक्तव्य दिया है उससे मध्य-पूर्वी अरब देशों में एक सनसनी-सी फैल गई है। उन्होंने कहा है—

"मुझे विश्वास हो गया है कि मध्य-पूर्व में अमरीकी सैनिक कमांडरों का जो बार-बार दौरा हो रहा है उसका अर्थ यह है कि वह हमारे देशों को सैनिक अड्डा बनाना चाहते हैं जब कि यह कार्रवाई हमारे हितों के प्रतिकूल है। मध्य-पूर्व भावी महासमर से उसी दशा में बचाया जा सकता है जब कि अरब संसार सोवियत् रूस के साथ अनाक्रमण-संधि करे। यही केवल मात्र मार्ग है जिससे अरब-संसार में शान्ति की गारंटी हो सकती है।'

इस पर 'अलेफ-बा' नामक पत्र ने टिप्पणी करते हुये लिखा है—'समस्त विश्व को जान लेना चाहिये कि दवालिबी मिनिस्टर ने अरब जनता के मन के भावों का स्पष्टीकरण किया है। अरब सरकारों को सोवियत् यूनियन की ओर हाथ बढ़ाना चाहिये।'

सोवियत् यूनियन की कूट नीति :

सोवियत् सरकार सदैव से सचेत रही है कि पूंजी-वादी राष्ट्र कभी भी उसके सच्चे शुभचिन्तक नहीं हो सकते हैं। इसी कारण द्वितीय महासमर काल में भी वह इनसे सचेत रहा और पूंजी-वादी प्रणाली के कुचक्रों से बचता रहा तथा अपनी साम्यवादी कूट नीति का प्रचार तथा विश्व-क्रान्ति का प्रसार करता ही रहा। युद्ध द्वारा शोषित तथा पीड़ित विश्व में साम्यवाद के लिये अनुकूल पृष्ठभूमि थी ही। अतएव यूरोप के पूर्वी राष्ट्रों ने उसका स्वागत किया और उसे अपना-कर सोवियत् यूनियन के साथी बन गये। एशिया के दलित गुलाम देशों ने साम्यवाद का स्वागत केवल इसी कारण किया कि उसमें उन्हें अपनी मुक्ति की झलक दिखाई दी; यद्यपि वह अपनी स्वतंत्रता ही चाहते हैं और साम्राज्य-वादी शोषण तथा दासता से अपनी मुक्ति चाहते हैं। शोषण तथा दासता से मुक्त होकर वह अपनी स्वतंत्र नीति का ही अवलम्बन करेंगे।

ऐंग्लो-अमरीकी कूट नीति से सोवियत् नीति को प्रोत्साहन ही मिलता गया और धीरे-धीरे साम्यवादी लहर यूरेशिया महाद्वीप में ऐसी प्रचण्ड हुई कि अमरीका तथा उसके साम्राज्यवादी और पूंजीवादी साथी राष्ट्र भयभीत हो गये। और साम्यवादी लहर को रोकने के लिये विभिन्न प्रकार के सामरिक तथा आर्थिक संगठन करने लगे। अमरीका ने

जो आर्थिक सहायता विभिन्न राष्ट्रों को दी, उसमें सामरिक तथा आर्थिक शोषण की बू आ रही थी इस लिये उसका परिणाम भी प्रतिकूल हुआ। रूस के प्रतिकूल प्रचार ने जलती आग में घी का काम किया और नतीजा यह हुआ कि ऐंग्लो-अमरीकी नीति को विश्व ने अहितकारी दृष्टि से ही देखा, उसे स्वीकार करते हुए भी उससे शंकित बने रहे।

पिकासो का शान्ति-पक्षी :

ऐंग्लो-अमरीकी 'ठण्डे-युद्ध' का सामना करने के लिये अब सोवियत् यूनियन ने पिकासो के शान्ति पक्षी को उड़ाया है। इस शान्तिवादी जाति के अनुसार समस्त यूरोपिय एशियाई और पश्चिमी संसार में शान्ति स्थापनार्थ जनता से हस्ताक्षर लेने का आन्दोलन प्रचुर रूप से चल रहा है। सोचने की बात है कि भला आज विश्व में कौन ऐसा व्यक्ति है जो शान्ति से इनकार कर सकता है। सभी शान्ति चाहते हैं पर शान्ति हो कसे ? प्रश्न यही है और जटिल भी है, इस शान्ति आन्दोलन में भी स्पर्धा और प्रतिकूल प्रचार की गन्ध आ रही है। इसी कारण विश्व के कितने ही विचारपूर्ण प्रभुत्व शाली व्यक्ति और संस्थाएँ इस 'शान्ति आन्दोलन' को भी सशंकित दृष्टि से ही देख रही हैं और इसे भी 'कोल्ड-वॉर' का ही एक अंग मान रही हैं।

ठण्डे-युद्ध की इतिश्री का प्रयत्न :

'ठण्डे-युद्ध' की प्रक्रियाओं, असफलताओं तथा दुष्परिणामों के फलस्वरूप विश्व के शुभचिन्तक तथा प्रभुत्वशाली शक्तियों ने परेशान होकर निश्चय किया है कि वह इसका अब अन्त करें। इसी शान्ति-स्थापना के लिये संयुक्तराष्ट्र संघ के महामंत्री ट्रीग्वीली ने संयुक्तराष्ट्र अमरीका, ब्रिटन, फ्रांस और सोवियत् सरकार के प्रधानों से भेंट की है और ६ जून को संयुक्तराष्ट्र संघ के समस्त राष्ट्रों को दस धाराओं का शान्तिवादी बीस वर्षीय कार्यक्रम भेजा ताकि प्रत्येक राष्ट्र तथा कूटनीतिज्ञ जिस किसी भी स्थिति में हों ठप कर जायें और तीसरे महासमर के खतरे को दृष्टि कोण में रखते हुये 'ठण्डे-युद्ध' को बन्द करने का प्रयास करें। ऐंग्लो-अमरीकी शक्तियों की धारणा अब यह हो गई है कि शान्ति स्थापना के लिये बल तथा शक्ति का संचय, संघटन और प्रयोग किया जाय। अब यदि ऐसा होता है तो शान्ति भंग होगी ही और तीसरे महासमर छिड़ जाने की शंका उत्पन्न हो जायगी। ठण्डा-लड़ाइ के फलस्वरूप संसार का वातावरण इतना दूषित हो गया है कि तीसरे महासमर के बादल मंडराने लगे हैं। अब प्रश्न यह है कि विश्व के राष्ट्र तीसरा महासमर चाहते हैं या नहीं। यदि वह तीसरे महासमर के विरुद्ध हैं तो उन्हें 'ठण्डे-युद्ध' का अन्त कर देना चाहिये क्योंकि 'ठण्डा-युद्ध नीति' तीसरे महासमर की तैयारी वाली नीति है।

इसी नीति के फल स्वरूप बर्लिन का संघर्ष छिड़ा और युद्ध होते-होते बचा और अब कोरिया का युद्ध चल रहा है जिसमें संयुक्तराष्ट्र संघ को ही भाग लेना पड़ा है। कोल्डवॉर का अन्त करने के लिये जो प्रक्रियाएँ हुई हैं वह स्पष्ट हो गई हैं और आज संयुक्तराष्ट्र संघ के मंच पर ही रूसी प्रतिनिधि और अमरीकी तथा ब्रिटिश प्रतिनिधियों में जो झड़पें हो रही हैं उससे भली भांति अंदाज़ लगाया जा सकता है कि रूस और अमरीका के मध्य कितनी गहरी खाई उत्पन्न हो गई है कि वे एक-दूसरे की बातों को सुनने, विचार-विमर्श करने पर तैयार नहीं; वरन् एक-दूसरे को दोषी ठहराने और अपनी बात मनवाने पर ही तुले दीख पड़ते हैं। फिर भी आशावादी संसार यही आशा करता है कि निकट भविष्य में ही विचारशील मानव मस्तिष्क अवश्य ही कोई न कोई मार्ग ढूँढ निकालेगा जिससे संघर्ष का अन्त होना सम्भव हो सकेगा और शान्ति स्थापना के लिये मार्ग प्रदर्शन होगा।

८ मई १९५० ई० को ट्रीग्वेली जनरल सेक्रेटरी संयुक्तराष्ट्र संघ ने जेनेवा में तीसरे विश्व-स्वास्थ्य संसद में भाषण देते हुये कहा है—

"विश्व के वर्तमान विभाजन और बड़ी शक्तियों की बढ़ती हुई प्रतिकूल संघर्षमयी नीति ने विश्व-शान्ति की आशा तथा मानव संसार के जीवनस्तर को ऊपर उठाने की आशा को क्षीण कर दिया है।

"संयुक्तराष्ट्र संघ और उसकी विशेष संस्थाएँ इस सिद्धान्त पर आधारित हैं कि स्थाई विश्व-शांति तथा सुरक्षा विश्व संघटन पर स्थापित होना सम्भव है। और बीमारी, भुखमरी, अज्ञानता और गरीबी आदि विश्व समस्याएँ जो असीमित हैं उनका अन्त उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि समस्त विश्व राष्ट्र उनके अन्त के लिये जुट कर विश्व व्यापी संघर्ष न करे।"

अतएव पूर्ण आशा की जाती है कि संसार की शान्ति तथा समृद्धि-पोषक भावना का संयुक्तराष्ट्र संघ के अन्तगत उत्कर्ष होगा और मानवता को शान्त तथा सुखी बनाये रखने के लिये अवश्य ही मार्ग प्रदर्शन होगा।

डॉ रेल्फ बंचे

[श्री. रामनारायण यादवेन्दु]

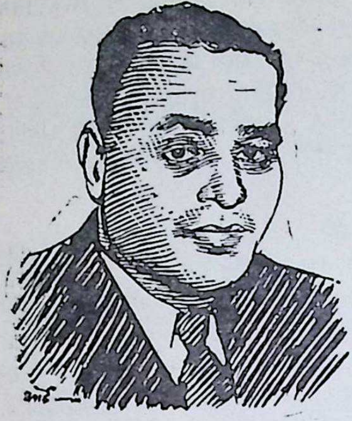

डॉ. बंचे

सन् १९५० का नोबुल शान्ति पुरस्कार गत २२ सितम्बर को अमेरिका के महान नीग्रो नेता डॉ. रेल्फ बंचे को प्रदान किया गया। जब सन् १९४८ में फिलस्तीन के मामले में संयुक्त राष्ट्रसंघ की ओर से भेजे गये मध्यस्थ काउंट वर्ना डोरे की एक यहूदी आतंककारी ने हत्या करदी, तब संयुक्त राष्ट्र संघ ने डॉ. रेल्फ बंचे को उनके स्थान की पूर्ति के लिये फिलस्तीन भेजा। उसी समय से वह फिलस्तीन में यहूदियों व अरबों में मेल मिलाप कराने के कार्य में सलंग्न हो गये। उनके अथक परिश्रम, अध्यवसाय, चातुर्य और धैर्य के साथ मानवता की सेवा की भावना के कारण उन्हें अपने लक्ष्य की सिद्धि में सफलता मिली और दोनों में मेल हो गया। इस प्रकार उन्होंने इन दोनों राष्ट्रों में सामंजस्य स्थापित करके विश्व-शान्ति की रक्षा के लिये एक महान सेवा की है और इसी के लिये संसार का एक मात्र महान पुरस्कार इस वर्ष उन्हें प्रदान किया गया है। यहाँ हम डॉ. बंचे के संबंध में कुछ परिचय देना उचित समझते हैं।

जन्म और शिक्षा

डा. रेल्फ बंचे का जन्म १ अगस्त सन् १९०४ को डिट्रोइट (अमेरिका) में हुआ। उनके पिता एक नाई थे और उनका परिवार अति दरिद्रावस्था में था। जब बंचे की अवस्था १३ वर्ष की थी, तब उनके माता पिता चल बसे। उनका पालन-पोषण उनकी स्नेहमयी पितामही ने किया। उनकी पितामही यद्यपि शारीरिक अवस्था में दुर्बल थीं; तथापि उनमें बड़ा उत्साह और आत्म-गौरव की भावना थी उन्होंने अपने पौत्र बंचे को स्वजाति (नीग्रो जाति) में गौरव अनुभव करने की शिक्षा दी। उन्होंने बचपन से ही बंचे को आत्म गौरव का पाठ पढ़ाया, किसी से कोई दान आदि नहीं लेना चाहिये और न किसी के प्रति कटुता का आचरण करना चाहिए।

अपनी पितामही के इन विचारों का उसके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। १३ वर्ष की अवस्था तक तो उन्हें यह अनुभव भी नहीं हुआ कि कृष्ण जाति में जन्म लेना भी कोई अपराध है। क्योंकि उनके अनेक गोरे मित्र थे, जो उनके साथ अच्छा व्यवहार करते थे।

परिश्रमशीलता

बंचे अपने बाल्यकाल से ही बड़े परिश्रमी रहे और उनका यह गुण उनमें आज भी मिलता है, जबकि वह आज संसार के एक महान पुरुष माने जाते हैं। अपनी जन्मभूमि में वह समाचार पत्र बेंच कर थोड़ा-बहुत कमा लेते थे; जब वह लौस ऐंजेल्स में गये, तब वहाँ हाइस्कूल में शिक्षा प्राप्त करते समय भी जीविकोपार्जन करते थे। वह 'लौस

ऐंजेलस टाइम्स' पत्र के लिए सन्देश--वाहक का कार्य करते, उसके प्रेस में लिनो टाइप रूप में काम करते और गर्मियों में हॉलीवुड में घरेलू नौकर का काम करते थे ।

भेद-भाव का पहला कटु अनुभव

जेफरसन हाइस्कूल में जब बंचे पढ़ते थे, तब वह बड़े तीक्ष्ण बुद्धि के छात्र माने जाते थे। एक बार उनका चुनाव स्कूल में प्रारंभिक भाषण देने के लिये किया गया। परन्तु उस समय तक स्कूल में यह सम्मान किसी नीग्रो छात्र को नहीं दिया गया था। जब भाषण देने का अवसर आया तब प्रिंसपल ने बंचे से बिदाई का नमस्कार करते हुए कहा "रेल्फ, मुझे तुमसे बिदाई लेते हुए दुःख है। हमने तुम्हें एक नीग्रो के रूप में कभी नहीं समझा ।" इस पर बंचे ने कहा—

"इस वाक्य ने मुझे मृतवत् बना दिया। मैं यह नहीं समझ सका कि मैं इसका क्या जवाब दूं। मैं इसे आज तक विस्मृत नहीं कर सका।"

हाईस्कूल के बाद वह विश्वविद्यालय में पढ़ने गये। वहाँ वह खेलों में भी खूब भाग लेते थे। वह वादविवाद सभा के अध्यक्ष चुने गये। विश्वविद्यालय की ओर से जो वर्ष-बोध प्रकाशित होता था उसके वे संपादक रहे। उन्हें ३ वर्ष के लिये छात्रवृति दी गयी। वह नगर में किसी स्टोर आदि में काम करके गर्मियों में ३०० डालर प्रतिवर्ष कमा लेते थे। सन् १९२१ में बंचे ने बी. ए. की पदवी प्राप्त की और हारवर्ड यूनीवर्सिटी में स्नातकोत्तर अध्ययन के लिये टयूशन फैलोशिप भी प्राप्त की। परन्तु केम्ब्रिज जाने के लिये उनके पास इतना भी धन नहीं था कि मार्ग-व्यय भी पूरा कर सकें। परन्तु इस समय तक वह लौस ऐंजेलस में नीग्रो जाति में एक 'वीर' माने जाने लगे। नीग्रो क्लब के सदस्यों ने १००० डालर का चंदा करके उन्हें हारवर्ड यूनीवर्सिटी में शिक्षक का काम करने को भेज दिया।

केम्ब्रिज में मस्माचेस्टक की एक पुस्तक विक्रेता की दुकान में उन्हें नौकरी मिल गई। वह प्रातःकाल में विद्यार्थियों को क्लास में पढ़ाते थे और दोपहर के बाद दूकान में काम करते।

एक दिन दुकानदार की स्त्री ने बड़े ध्यान से बंचे की ओर देखा। बाद में बंचे को एक कमरे में बुला कर मालिक ने कहा—

"रेल्फ क्या तुम नीग्रो हो ?"

"अलबत्ता; आप क्या समझते हैं ?"

"अच्छा, अब तो ऐसी कोई बात नहीं है; परन्तु यदि पहले पहिल मैंने तुम्हारे रंग को देखा होता, तो मैंने तुम्हें कभी दूकान में न रखा होता।"

राजनीति में अभिरुचि

हारवर्ड विश्वविद्यालय में जिस वर्ष वह गये उसके एक वर्ष के बाद उन्हें थायर फैलोशिप प्रदान किया गया और उन्हें वहाँ शिक्षक का भी पद मिल गया। एक वर्ष तक वह वहाँ प्रोफेसर रहे। यहीं उनकी रूथ हैरिस नामक नीग्रो महिला से भेंट हुई, जो आगे चल कर उनकी पत्नी बनीं।

हारवर्ड विश्वविद्यालय में उन्होंने 'डाक्टरेट' के लिये तैयारी की और सन् १९३४ में उन्हें राजनीति विज्ञान में डाक्टरेट अर्थात्

पी. एच. डी. की पदवी प्रदान की गयी। यह सबसे पहले नीग्रो हैं, जिन्हें राजनीति विज्ञान (Political Science) में पी. एच. डी. की पदवी प्रदान की गयी है। सन् १९२८ से १९४१ तक वह विश्वविद्यालय में शिक्षक के रूप में काम करते रहे। सन् १९३८ में उन्होंने विश्वविद्यालय में राजनीति-विभाग खोला और उस समय से वे पूरे प्रोफेसर बन गये। डा. रेल्फ को औपनिवेशिक समस्या में बड़ी दिलचस्पी थी। अतः वह सोशल साइन्स रिसर्च कौंसिल से सहायता लेकर यूरोप अफ्रीका, निकट पूर्व, चीन और जापान में औपनिवेशिक समस्या का अध्ययन करने गये। इसके अतिरिक्त डॉ. रेल्फ ने गन्नार मृदल के अमेरिका नीग्रो के अध्यपन के लिये बहुत-सी खोजपूर्ण सामग्री दी।

सन् १९४१ में विश्व-युद्ध जारी था। कर्नल विलियम डानोवन को इनफारमेशन के कोओर्डीनेटर के ऑफिस के लिये एक औपनिवेशिक विशेषज्ञ की आवश्यकता पड़ी। हारवर्ड विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने डॉ. बंचे के नाम की शिफारिश की। तुरन्त ही नियुक्त किये गये। जून १९४३ में ओ. एस-एस के अफ्रीकन सेक्सन के प्रमुख नियुक्त कर दिये गये। सन् १९४४ के अन्त में अमेरिका के वैदेशिक विभाग में उन्हें 'डेस्क पदाधिकारी' का स्थान दिया गया। परन्तु नीग्रो होने के कारण कुछ लोग अभी नियुक्ति के विरुद्ध थे। अतः ६ मास तक उनकी नियुक्ति रुकी रही। जब वैदेशिक मंत्री कार्डल हल तक यह मामला पहुँचा तो उन्होंने डॉ. बंचे को तुरन्त ही नियुक्त किया।

सयुंक्त राष्ट्रसंघ में उनका कार्य

जब सन् १९४४ में डम्बरटन ओटल्स में सयुंक्त राष्ट्रसंघ (United Nations Organization) की रूपरेखा तैयार करने के लिये एक समिति विचार कर रही थी, तब डॉ. रेल्फ बंचे ने औपनिवैशिक समस्या के संबंध में एक सलाहकार का काम किया। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधिकार पत्र (चार्टर) में संरक्षण व्यवस्था के संबंध में जो धाराएँ हैं, उनकी रचना में डॉ. रेल्फ का विशेष योग रहा। सन १९४५ के जून में सैनफ्रान्सिसको में संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर पर विचार करने के लिये जो संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन हुआ, उसमें डॉ. बंचे ने विशेष रूप से भाग लिया।

इस प्रकार डा. रेल्फ बंचे संयुक्त राष्ट्रसंघ के जन्म-काल से उसमें कार्य कर रहे हैं। इस समय वह संयुक्त राष्ट्रसंघ के सचिवालय में संरक्षण विभाग (Trusteeship Department) के संचालक हैं। इस विभाग में उन प्रदेशों के संबंध में व्यवस्था की जाती है जो संयुक्त राष्टसंघ के सरंक्षण में हैं और पहले वे राष्ट्रसंघ के शासनादेश की पद्धति के अन्तर्गत थे। इनके अतिरिक्त संसार के पराधीन प्रदेशों के संबंध में भी यह विभाग उनके प्रशासकों से रिपोर्ट आदि प्राप्त करता है और उन प्रदेशों में राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक, सांस्कृतिक प्रगति के संबंध में सूचनाऐं प्राप्त करता है।

फिलस्तीन में संयुक्त राष्ट्रीय मध्यस्थ के रूप में

फिलस्तीन में यहूदियों तथा अरबों के बीच संघर्ष हो रहा था। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इसके विभाजन के लिये एक योजना तैयार की। इसे यहूदियों और अरबों में से किसी ने भी पसंद नहीं किया। इन दोनों में परस्पर युद्ध होता रहा। इन दोनों पक्षों में समझौता कराने के उद्देश्य से सन् १९४८ में काउंट वर्नी डोटे को मध्यस्थ नियुक्त कर फिलस्तीन भेजा गया। सितम्बर १९४९ में एक यहूदी आतंककारी ने उनकी हत्या कर दी। उनके स्थान

पर डॉ. रेल्फ बंचे मध्यस्थ नियुक्त किये गये। उन्होंने बडी योग्यता, कार्य कुशलता तथा परिश्रम एवं धैर्य के साथ यहूदियों और अरबों में मेल मिलाप कराने के लिये अथक परिश्रम किया और अन्त में उन्हें इस कार्य में सफलता मिली।

एक लाख रुपये का शान्ति पुरस्कार

आज से ४०–४५ वर्ष पूर्व स्वीडन के सुप्रसिद्ध विज्ञानाचार्य एल्फ्रेड नोबुल ने अपने जीवन–काल में अपने वैज्ञानिक आविष्कारों से करोड़ों रुपये प्राप्त किये। उनमें कई बडे घातक आविष्कार भी थे। अपने जीवन के अन्तिम समय में उन्हें यह अनुभव हुआ कि संसार में ज्ञान–विज्ञान, साहित्य–कला और शान्ति की अभिवृद्धि के लिये पुरस्कार की व्यवस्था होनी चाहिए। अत: एल्फ्रेड नोबुल की इच्छानुसार एक ट्रस्ट बनाया गया और उनकी कई करोड की सम्पत्ति उनके सुपुर्द की गयी। इसके ब्याज से प्रतिवर्ष संसार के किसी भी राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ भौतिक वैज्ञानिक रसायन वैज्ञानिक, चिकित्सा वैज्ञानिक, साहित्यकार तथा संसार में शान्ति की स्थापना के लिये सर्वाधिक प्रयत्न करने वाले विद्वान को १००,००० रुपये से भी अधिक के पाँच पुरस्कार दिये जाते हैं।

सन १९४९ का नोबुल शान्ति पुरस्कार इस वर्ष संयुक्त राज्य अमरीका के महान नीग्रो नेता डॉ. रेल्फ बंचे पी. एच. डी. को प्रदान किया गया है। डॉ. रेल्फ पहले नीग्रो नेता हैं, जिन्हें नोबुल पुरस्कार और वह भी विश्व शान्ति के लिये, प्रदान किया गया है।

डॉ. रेल्फ बंचे का सम्मान

डॉ. बंचे फिलस्तीन के कार्य को समाप्त कर अमरीका गये, तभी से अमरीका में उनका सार्वजनिक रूप से हमारे देश में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टेगौर को साहित्य के लिये तथा सर सी. वी. रमण को वैज्ञानिक आविष्कार के लिये नोबुल पुरस्कार प्रदान किये जा चुके हैं।

नोबुल पुरस्कार विजेता डॉ. रेल्फ बंचे का खूब सम्मान किया गया। उन्हें प्राय: १००० सभाओं में भाषण देने के लिये निमत्रंण मिले, परन्तु उन्होंने १० सभाओं में भाषण देना स्वीकार किया। न्यूयार्क में खुली कार में बिठा कर उनका जुलूस निकाला गया। लौस एजेंल्स में तो डॉ. बंचे दिवस मनाया गया। सैकडों संस्थाओं की ओर से उन्हें पदक प्रमाण पत्र तथा प्रशंसा पत्र भेजे गये। १३ कालेजों तथा विश्व विद्यालयों ने उन्हें पदवियां सन्मानार्थ दीं। १०–१२ कालिजों व विश्वविद्यालयों द्वारा पदवीदान के लिये प्रार्थनाओं को उन्हें अस्वीकार कर देना पडा; क्योंकि समयाभाव से वह वहाँ नहीं जा सकते थे।

'सादा जीवन व उच्च विचार' का आदर्श

इतनी प्रसिद्धि तथा सम्मान प्राप्त करने पर भी डॉ. रेल्फ बंचे सयुंक्त राष्ट्रसंघ के निवास क्वीन्स में पार्कवे ग्राम में एक छोटे से घर में आज भी रहते हैं। वह प्रति दिन संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यालय में अपनी कार में जाते हैं, जिसे स्वयं ही चलाते हैं। डॉ. बंचे के परिवार में उनकी पत्नी के अतिरिक्त एक ६ वर्ष का पुत्र है और दो पुत्रियां जो सोलह व अठारह वर्ष की हैं।

अदम्य साहस

डॉ. बंचे को अपने जीवन-काल में अनेकों अपमानों तथा भेद भाव के व्यवहार से बडी मार्मिक वेदना हुई; परन्तु वह बडे धैर्य एवं साहस के साथ उनका मुकाबला करते गये। इससे उनमें कटुता एवं घृणा के भाव पैदा नहीं हुए हैं।

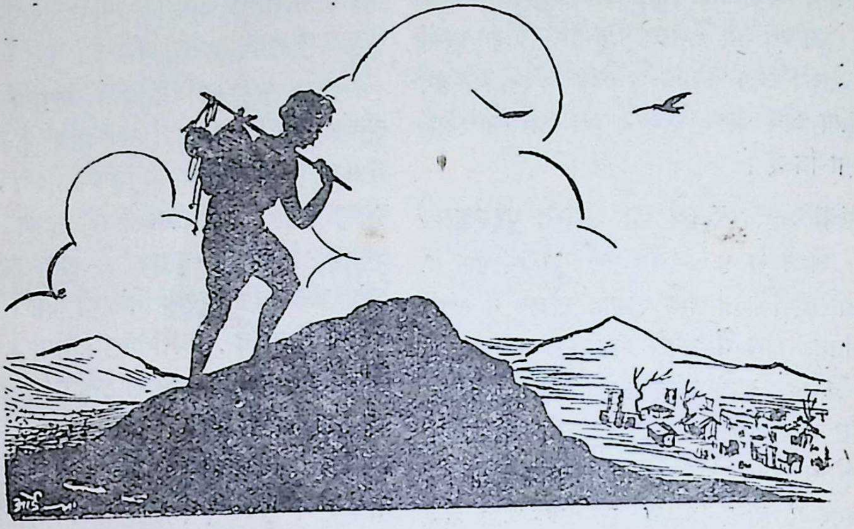

बटोही और टीला

[श्री. गिरिधर गोपाल]

सांझ हो गई।
थका बटोही देख रहा है,
लिये चोंच में गेहूं के दानों की बाली,
लौट चले नीड़ों को पंछी,
मोती लादे,
तट को लौट चलीं नौकाएं,
दूर गगन में,
अगणित स्वागत दीप जल उठे,
पहुंच रहा सूरज अपने घर के दरवाज़े,
सांझ हो गई।
थका बटोही सोच रहा है,
दूर सामने,
उठा हुआ है यह टीला जो,
बस इसके उस पार
बसा है उसका प्यारा गांव;
सोंधी सोंधी
गरम रोटियाँ,
भीना भीना
नरम बिस्तरा,
रूखे रूखे बालों में
पतली पतली [illegible]
चांद चांदनी वाली लोरी,
गाती गोरी,
मीठा मीठा गांव।
थका बटोही,
जल्दी जल्दी पाँव उठाता,
भारी बोझा
इस कंधे से उस पर करता,
चढ़ा जा रहा है टीले पर
हंसता गाता,
लेकिन
ऊपर जाते ही,
उसकी मस्ती मुस्कान खो गई,
गान खो गये,
देख रहा वह
अपलक इक टक,
उसके आगे
मीठा मीठा गांव नहीं है!
कहीं प्यार की छांव नहीं है!
टेढ़ी मेढ़ी
आँधी शूलों शोले वाली,
नदी [illegible] है [illegible]

बस निर्जन सुनसान।
थका बटोही सोच रहा है,
इतने दिन के बाद
लौटना हुआ इधर को,
सचमुच वह ही भूल गया था,
यह तो पहला टीला था,
औ गांव बसा है उसका
इस दूसरे उठे टीले के पीछे।
थका बटोही,
भारी भारी पांव उठाता
अपने ही ऊपर मुस्काता,
चढ़ा जा रहा है टीले पर
रह रह बेकल होनेवाला
मन बहलाता,
तन सहलाता।
लेकिन
ऊपर जाते ही,
फिर एक बार उसके ऊपर आकाश गिर पड़ा!
पैर जमे थे जमे रह गये,
आंख खुली की खुली रह गई,
आधी सांस तड़पती अन्दर
आधी बाहर,
देख रहा वह
जड़ प्रतिमा सा,
गाँव नहीं है,
कहीं प्यार की छांव नहीं है!
आँधी शूलों शोलों वाली
वही डगर है
बस निर्जन सुनसान।
थका बटोही सोच रहा है,
शायद वह फिर भूल गया हो,
अच्छा
इस तीसरे उठे टीले के पीछे
तो होगा ही उसका प्यारा गांव,
पर जैसे
विश्वास नहीं होता उसको
अपनी बातों पर,
ज़ोर ज़ोर से वह चिल्लाता
"सचमुच यह अन्तिम टीला है,
सचमुच इसके पार गांव है।"
थका बटोही,
धीरे धीरे पांव उठाता,
देव मनाता,
कांप रहा तन
कांप रहा मन
कांप रहे नयनों में सावन,
चढ़ा जा रहा है टीले पर,
अस्फुट स्वर में कुछ चिल्लाता।
पर क्या सच अंतिम टीला यह?
सचमुच आगे गांव बसा है?
सोंधी सोंधी
गरम रोटियाँ,
भीना भीना
नरम बिस्तरा,
रूखे रूखे बालों में
पतली पतली मदहोश उंगलियां,
चांद चांदनी वाली लोरी,
गाती गोरी,
'मीठा मीठा गांव!
या इसके भी बाद अभागिन,
यही डगर है,
फिर टीला है!
यही डगर है,
फिर टीला है!"
यही डगर है,
फिर टीला है!

Tibbat ki Kalame Bhartiya Prabhav

तिब्बत की कला में भारतीय प्रभाव

[श्रीमती डॉ. कौमुदी] [Shrimati Dr. Komu

तिब्बत तिब्बती भाषा के 'तो बों' शब्द का रूप है। वास्तव में तिब्बती लोग अपने देश को 'बोदा' अर्थात 'बुद्ध का देश' के नाम से पुकारते हैं। शताब्दियों से चले आये सांस्कृतिक व कलात्मक ऐक्य की यह सुन्दर कहानी है। भगवान बुद्ध की जन्म भूमि से परम ज्ञान का सन्देश जब मानसरोवर की उज्वल धरती में पहुंचा, तो दोनों पवित्र भूमियां कला व संस्कृति की सुन्दर श्रंखला में बंध गयीं। बौद्ध धर्म तथा बौद्ध विचार दर्शन से प्रेरणा और उत्साह पा कर दोनों ने कला व संस्कृति के नये युग में पदार्पण किया। भारतीय कला व विचार धारा की छाप आज तिब्बत के इतिहास पर अमिट रूप से लगी है।

भारत और तिब्बत में प्राचीन काल से ही व्यापारिक आवागमन रहा। तिब्बत अपने व्यापारिक और खाद्य पदार्थ भारत से नेपाल के रास्ते मंगवाता रहा। जब शीत काल की समाप्ति पर बर्फ से ढके दर्रे खुल जाते थे तो इन पड़ोसी देशों से गुड़, चीनी, चावल, गेहूं तथा चाय के प्रतिरूप तिब्बत से ऊन, सोहागा तथा याक गाय की चंवर बाहर भेजी जाती थी। इसी प्रकार भारत से बौद्ध प्रचारक और अध्यात्मवादी दूत भी प्रायः तिब्बत जाते रहे और बौद्ध धर्म का प्रचार करते रहे। इन्हीं के साथ बौद्ध चित्रकार और कारीगर भी तिब्बत में पहुँचे और वहाँ के मठों और गुम्पाओं को बौद्ध शैली के चित्रों और मूर्तियों से सुसज्जित किया। आज भी इस पवित्र 'लामाओं के देश' में बौद्ध शैली के इतने धार्मिक चित्र और मूर्तियां विद्यमान हैं कि उनकी माँग दूर दूर तक, यूरोपियन देशों में है। कला के पुजारी और परख करने वाले उनकी कीमत को पहिचानते हैं। तिब्बत के ये सुन्दर कला के नमूने तिब्बत और भारतीय सांस्कृतिक सामंजस्य के जीते जागते प्रतीक हैं।

विदेशी संग्रहालय, जैसे बोस्टन, न्यूयार्क, बर्लिन, पैरस तथा ब्रिटेन—में आज इन आकर्षक कलाओं के नमूनों की अधिकाधिक माँग है।

तिब्बत की धार्मिक कला का सबसे उल्लेखनीय नमूना तिब्बत के मन्दिरों में लटकने

वाले चित्र हैं। ये 'तांग का' चित्र रेशमी या सूती कपड़े पर अंकित किये होते हैं और उनमें भगवान बुद्ध या उनके अवतारों की जीवित या कल्पनात्मक घटनाओं का चित्रण होता है। प्रत्येक तिब्बती मठ या गुम्पामें ऐसे धार्मिक चित्र संग्रह होते हैं जिन्हें धार्मिक या दूसरे त्योहारों पर विशेष रूप से प्रदर्शित किया जाता है।

पिछले वर्ष जब भारत के प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरु लद्दाख के सबसे बड़े और प्रसिद्ध गुम्पा 'हैमिस' में पधारे तो उनके स्वागत में उस मंदिर को इन्हीं धार्मिक चित्रों से सुसाज्जित किया गया था।

इन चित्रों की शैली भारतीय बौद्ध भीति चित्रों और पटाक्षेप से मिलती जुलती है। चित्रों की विधा, उनके रंग भरने का तरीका उनकी रूपरेखा और आकृति—सभी प्राचीन भारतीय बौद्ध चित्रकला के अनुकरण हैं और इस बात के स्पष्ट उदाहरण हैं कि उन पर भारतीय शैली की अजंता चित्रकला का प्रभाव सबसे गहरा पड़ा है। वह इस बात के भी प्रमाण हैं कि भारतीय चित्रकला, और मूर्तिकला, न केवल नेपाल सिक्किम तक हीं सीमित रहीं; वरन बहुत सुदूर तिब्बत, मंगोलिया, मध्य एशिया, चीन इत्यादि देशों तक पहुँची और वहाँ के जीवन को अपने प्रभाव से रंग दिया।

तिब्बत और लद्दाखी धार्मिक चित्र बनाने का ढंग बहुत सहज है। सूती या रेशमी कपड़े पर पहले पहिल अंडे की सफेदी मिली खड़िया या आटे से मोटी मोटी आकृतियाँ बना दी जाती हैं, जिन्हें बाद में सीप से चिकना और चमकीला बनाया जाता है। इन आकृतियों का रेखा-चित्र भी पहले किसी आकृति से लिया जाता है और उस पर काजल की स्याही फेर दी जाती है। इन लकीरों के बीच फिर रंग भरा जाता है। चित्र की गोट चीनी रेशम की होती है और वे लकड़ी पर लगा दिये जाते हैं।

इन चित्रों में कई ऐसे चिन्ह व प्रतीक अंकित किये होते हैं, जिनका उद्‍गम स्थान अजंता के चित्रों में है। कई चित्रों में भगवान बुद्ध या उनके अवतार जैसे बोधिसत्व, अमिताभ बुद्ध और मंजुश्री आदि कमलासन या पद्‍मासन पर भिन्न भिन्न मुद्राओं में विराजमान हैं। यह स्मरण रहे कि तिब्बती कला में कमल या पद्‍मासन का चिन्ह भारतीय बौद्ध चित्रों का अनुकरण है। इसी प्रकार तिब्बती चित्रों और गुम्पाओं में पाया जाने वाला लम्बी डंडी वाला कमल फूल भी—उज्वल या नीलवर्ण का—एकदम भारतीय चिन्ह है। उनमें भारतीयता सच्चे रूप में झलकती है।

भारतीय बौद्ध कला में बुद्ध के चित्र व प्रतिमाओं के हाथ व अंगुलियाँ किसी गूढ़ अर्थ व भाव की द्योतक होती हैं। इन भावों को मुद्रा कहते हैं जो कई प्रकार की हैं-जैसे ध्यान मुद्रा, अभिनय मुद्रा इत्यादि। तिब्बती शैली के बौद्ध चित्रों में भी, या उनके लामा मठाधीश के चित्रों आदि में, इन्हीं भारतीय मुद्राओं के रूप को ग्रहण कर उनके भिन्न भावार्थ को अंकित किया है।

एक बात विशेषकर उल्लेखनीय है। तिब्बत में बौद्ध मत का प्रचार सबसे पहले बादशाह

श्रीणवत्सन साम्यो के काल में सातवीं शताब्दी में हुआ था। बादशाह श्रीणवत्सन साम्यो की दो रानियाँ थीं—वेचेंग, चीन की राजकुमारी तथा भृकुटी, नेपाल की राजकन्या। दोनों राजकुमारियों की शिक्षा प्रणाली बौद्ध मत के अनुसार ही हुई थी। इन राजकुमारियों ने अपने प्रभाव से न केवल बादशाह श्रीणवत्सन साम्यो को ही बौद्ध धर्म का अनुयायी बनाया; वरन् सारे तिब्बत में उस धर्म का प्रचार करवाया। तिब्बत के प्राचीन चित्रों में बादशाह श्रीणवत्सन साम्यो को एक सवार के रूप में सफेद घोड़े पर आरोहित, शस्त्रों से सुसज्जित दिखलाया गया है। यह बादशाह तिब्बत में इतने लोकप्रिय हुए कि तिब्बत निवासी उन्हें बुद्ध का रूप 'चेनरिस' अर्थात् बोधिसत्व पद्मपाणि मानते हैं। श्रीणवत्सन की दोनों रानियों को भी तिब्बती कलाकारों ने 'श्वेत तारा' और 'हरित तारा' के नाम से देवियों के रूप में चित्रित किया है। 'श्वेत तारा' सम्राट श्रीणवत्सन की चीनी महारानी को, तथा 'हरित तारा' नेपाली महारानी को निर्देश करते हैं। तिब्बती परम्परा में हरा रंग श्याम वर्ण को इंगित करता है।

तिब्बत में कुछ ऐसे चित्र भी पाये जाते हैं, जिनमें नेपाली अंश अधिकता से मिलता है। नेपाल देश तिब्बत की सीमा पर स्थित है। अतएव यह स्वाभाविक है कि नेपाली कला और कारीगरी का प्रभाव तिब्बत में पहुंचे। तिब्बत में कुछ ऐसे कीमती चित्र बनाये जाते हैं जिनकी आकृतियाँ कीमती जड़ाऊ पत्थरों की बनी हुई हों। इनमें भिन्न भिन्न पत्थर—जैसे, मूंगा, मोती, नीलम और चन्दरु, जो नेपाल बर्मा, और मंगोलिया से आते हैं जड़े हुए होते हैं। साथ ही तिब्बत में पाये जाने वाले स्थानीय मोतियों का भी समावेश होता है, जैसे फिरोजा, मूंगा, इत्यादि। इन चित्रों में चांदी अथवा तांबे का चौखटा बनाया जाता है। चित्र में कारीगरी इतनी सूक्ष्म और बारीकी से की होती है, कि बिजली के प्रकाश में वह जड़ाऊ चित्र झिलमिल झिलमिल कर आँखों को चकाचौंध कर देते हैं। नेपाल में भी मध्यकाल में ऐसे जड़ाऊ चित्रों का बहुत प्रचार था और वहीं से यह शैली सम्भवत: तिब्बत पहुंची। आज भी भारतीय शैली के 'बसौली' चित्रों में ऐसी कारीगरी देखने को मिलती है। किन्तु बसौली के कारीगर कीमती पत्थरों और मोतियों के स्थान पर चमकते हुए कागज या अबरक से आकृतियों पर भड़कीली कारीगरी करते हैं। आँख, कान, अथवा हाथ व अंगुलियाँ ही ऐसे अंग हैं जिन पर यह जडाऊ कारीगरी हो सकती है। ऐसे चित्रों का दाम नि:संदेह बहुत अधिक होता है और उच्च वर्ग के सामन्त ही ऐसे चित्रों व मूर्तियों को अपने अपने प्रार्थना-भवन में सुशोभित कर सकते हैं।

तिब्बत में धार्मिक चित्रों के साथ साथ मूर्ति कला का भी बहुत प्रचार हुआ। तिब्बती मठ, मन्दिर तथा प्रार्थना-भवन, बुद्ध की मूर्तियों या बोधिसत्व के प्रतीकों से भरे पड़े हैं। महायान बुद्ध-धर्म में बुद्ध या उनके अवतारों के प्रतीकों को आध्यात्मिक ज्ञान अथवा बौद्धिक चेतन प्राप्ति में विशेषकर सहायक माना गया है। महायान् अनुयायी को बुद्ध की साकार मूर्ति में ही उस निर्गुण बुद्ध के पूर्ण दर्शन मिल सकते हैं जो अदृश्य है और विशुद्ध है।

अर्थात् इन साकार, प्रतीकों के सहारे ही बौद्ध अनुयायी इस संसारी माया जाल से मुक्ति पा कर परम ज्ञान या निर्वाण पद को पहुँच सकता है, जो उसका मुख्य लक्ष्य है। इसीलिये प्रत्येक बौद्ध बुद्ध की मूर्ति के सामने कहता है: 'ओम हामि पद्म हूं' अर्थात् सभी बुद्ध मुझे में हैं।

तिब्बती लामावाद का मुख्य आधार है—बुद्ध की प्रतिमाओं और चिन्हों वो बुद्ध का रूप मानना। अतएव प्रत्येक तिब्बती घर में एक ऐसा प्रार्थना-भवन होता है जिसमें उस कुटुम्ब के सभी सदस्य बुद्ध या उनके बोधिसत्वों की प्रतिमाओं की आराधना कर सकें। यह मूर्तियां अधिकतर तांबे और पीतल की बनी हुई होती हैं और उनकी शैली भाव्यांगों में भारतीय प्रभाव मिलता है। भारतीय कलाकार की भाँति तिब्बत के मूर्तिकार या चित्रकार का कार्य भी बड़ा श्रेयस्कर समझा जाता है। कलाकार के लिये यह आवश्यक है कि वह शान्त वातावरण में, एकाग्र चित्त हो अपनी सारी मानसिक शक्तियों को काबू कर, मन, वचन तथा कर्म से पवित्र बुद्ध के चित्र या प्रतिमा का संकल्प करे। यह पुण्य कार्य न केवल भारतीय ही है, पर शास्त्रीय भी है। निर्दोष और शुद्ध मन से जब मनुष्य पवित्रात्मा का ध्यान करेगा, तो उसे अवश्य बुद्धत्व प्राप्त होगा। यही है सच्चे लामावाद का आधार। अर्थात् लामा मूर्ति के सामने खडे हो कर कहता है—"सभी बुद्ध मुझ में हैं। केवल अज्ञान और भ्रम के कारण हम अन्यथा समझते हैं। इसी भ्रम को दूर करने के लिये मैं आज बुद्ध के इस अमूल्य प्रतीक की पूजा करने आया हूँ। मेरी इच्छा है कि इससे सारे जीवित प्राणियों का हित हो।"

* * *

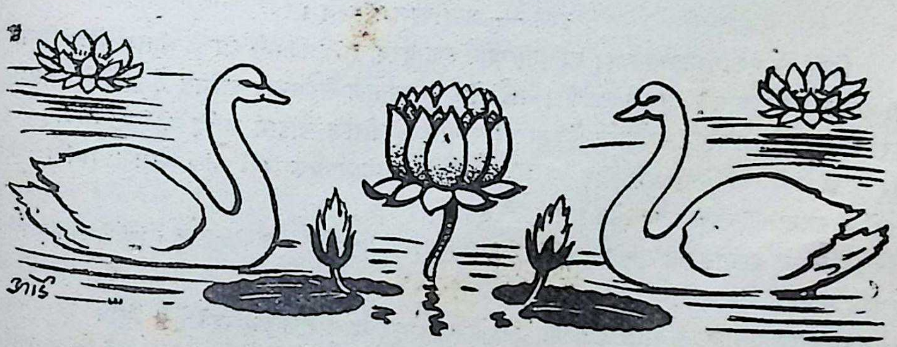

एकांकी :

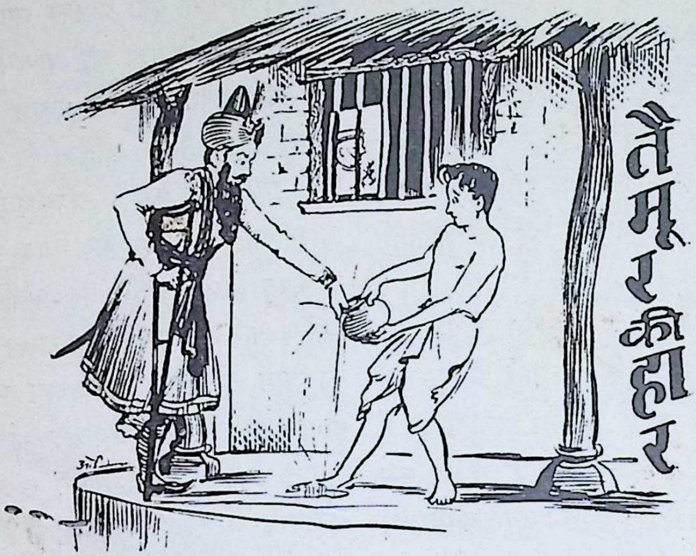

तैमूर की हार

[श्री. डॉ. रामकुमार वर्मा]

पात्र :—
१. **तैमूर**
२. **जफरअली** — तैमूर का सरदार
३. **अलीबेग** — तैमूर के सिपाही
४. **मुबारक** — तैमूर के सिपाही
५. **कल्याणी** — एक ग्रामीण स्त्री
६. **बलकरन** — कल्याणी का पुत्र
७. **पहला ग्रामीण**
८. **दूसरा ग्रामीण**
९. **तीसरा ग्रामीण**

स्थान :— दीपलपुर के समीप वन-प्रान्त में एक छोटा-सा गाँव।

काल :— सन् १३९८

दृश्य — प्रातःकाल ८ बजे।

मिट्टी का एक छोटा-सा घर। दाहिनी ओर एक दरवाजा है जिससे घर के भीतर प्रवेश किया जाता है। सामने की दीवाल में एक खिड़की। बाईं ओर के दरवाजे से अन्दर पहुँचते हैं जहाँ से तलघर की ओर मार्ग है। कमरे में हर्षवर्धन, विक्रमादित्य और पृथ्वीराज चौहान आदि की कुछ तस्वीरें हैं। बाईं ओर के कोने में एक अँगीठी है जिस पर कुछ खाने की सामग्री पक रही है। उसके समीप ही कुछ बर्तनों में खाने की चीज़ें और मिठाइयाँ सजी हुई हैं।

कमरे के बीचों-बीच एक तख्त है। जिस पर एक मोटी-सी दरी बिछी है। उसके समीप ही बैठने का एक मोढ़ा है।

कल्याणी अँगीठी के पास बैठी हुई कोयले डाल कर आग तेज कर रही है। साथ ही एक गीत गुनगुनाती जा रही है। उसका लड़का बलकरन तख्त पर बैठा हुआ एक पत्थर के टुकड़े पर अपना चाकू तेज़ कर रहा है।

कल्याणी—(गुनगुनाती हुई गाती है)

अब मत आना तुम दूर . . . दूर।

उठ रही है पच्छिम में धूर,
उठ रही है पच्छिम में धूर,
आ गया तुरक . . . . आ गया तुरक,
नशे में चूर—नशे में चूर . . . . चूर
अब मत जाना तुम दूर . . . . दूर !

बलकरन—(चाकू तेज़ करते हुए) — यह तुम क्या गुनगुना रही हो, माँ ! इस पत्थर पर मेरा चाकू तेज़ नहीं हो रहा !

कल्याणी—क्या तेरा चाकू भी मेरा गाना सुन रहा है ? (पास आकर मोढ़े पर बैठते हुए) पर आज चाकू तेज़ करने की तुझे क्या सूझी ! आज तो तेरी वर्षगांठ है !

बलकरन—वर्षगांठ ! मेरी वर्षगांठ पर तो हथियारों की पूजा होनी चाहिए, माँ ! पूजा ! हाँ, तो माँ, क्या यह वर्षगांठ वैसी ही होगी जैसे पारसाल हुई थी ? (चाकू रोक देता है ।)

कल्याणी—हाँ, बिलकुल वैसी ही। इस वर्षगांठ पर तू पूरे बारह वर्ष का हुआ। बेटा, मैं तो आशीर्वाद देती हूँ कि इसी तरह तेरी बहुत-सी वर्षगांठें मनाई जायँ। तू दिन दूना, रात चौगुना बड़े

बलकरन—इसीलिये तू गाना गा रही थी ! (फिर चाकू तेज़ करता है ।) माँ, कैसा है वह गाना ?

कल्याणी—यों ही, बहुत पुराना गाना है ।

बलकरन—(रुक कर) कितना पुराना ?

कल्याणी—बहुत पुराना ! जब मैं तेरे बराबर थी । मेरी माँ गाया करती थी ।

बलकरन—तब माँ, मुझे भी सिखलादे यह गाना । जब मेरे बच्चे हो जायँगे, तो मैं भी उनके सामने गाऊँगा ।

कल्याणी—(हँस कर) गाएगा ? वाह मेरे बलकरन ! भगवान करे, तेरी बात सच निकले । पर बच्चे, यह गाना अच्छा नहीं है ।

बलकरन—वाह, जब तेरी हरएक बात अच्छी है तो गाना क्यों अच्छा नहीं होगा ?

कल्याणी—डर का गाना है । अब तो वह जमाना बीत गया । बहुत बरस हुए, एक तुरक आया था।

बलकरन—तुरक कौन ?

कल्याणी—तुरक जो हमारा धरम नहीं मानता । कोई दूसरा धरम मानता है । लोगों का खून बहाता है, उन्हें लूटता है, उनका घर जला देता है ।

बलकरन—ये भी कोई धरम है, माँ ?

कल्याणी—तुरक तो कहता है, हमारा यही धरम है । कहता है जो हमारा धरम, इसको वह इस्लाम कहता है, नहीं मानता, उसको मारने के लिये ही हमने जनम लिया है !

बलकरन—अच्छा ? क्या नाम था उस तुरक का ?

कल्याणी—महमूद । कहते हैं, गजनी से आया था । उसने सोमनाथ का मन्दिर तोड़ा और बहुत-से आदमियों का खून बहाया । फिर बहुत-सा धन लेकर वह यहाँ से चला गया ।

बलकरन—माँ, अगर मैं उस जगह होता तो देखता !

कल्याणी—तू ? तू देखता ? बेटा वह तुझे भी . . . . .

बलकरन—मुझे ? मुझे मारता ? और यह चाकू किस दिन काम आता ? इस चाकू से देख लेता !

कल्याणी—अरे बेटा, उसके पास बड़ी बड़ी तलवारें थीं । वह जिधर से निकल जाता, आग और मौत बरसाता जाता था ! इसी लिये महमूद का नाम लोगों ने डराने के लिये रख छोड़ा था।

बलकरन—किसको डराने के लिये ?

कल्याणी—बच्चों को डराने के लिये ! जब कोई बच्चा नटखटी होता था तो लोग कहते थे—देखो, वह महमूद आ रहा है ! तुरक आ रहा है । तभी का तो यह गाना है । मेरी माँ भी यही गाना कभी-कभी गाती थी !

अब मत जाना तुम दूर . . . . दूर ।
उठ रही है पच्छिम में धूर !

तुरक पच्छिम से आया था न ? तो कहते हैं—

उठ रही है पच्छिम में धूर ।

उसकी बड़ी सेना साथ आ रही थी, उसके चलने से रास्ते की धूर ऊपर उड़ने लगती थी !

आगया तुरक — आगया तुरक
नशे में चूर — नशे में चूर . . . . चूर

लोगों का खून बहाना ही उसका नशा था, इस लिये माँ अपने बच्चे से कहती थी—

अब मत जाना तुम दूर . . . . दूर . . . .

बलकरन—(सोचता हुआ) माँ, मैं यह गाना नहीं सीखूँगा । तू भी यह गाना मत गा !

कल्याणी—नहीं गाऊँगी बेटा । वह तो तेरी वर्षगांठ के मौके पर मुझे बहुत-सी पुरानी बातें याद आ गईं तो यह गाना भी याद आगया । गुनगुनाने लगी ।

बलकरन—नहीं माँ, अब वह बात नहीं रही । मैं इस चाकू के साथ बड़े-बड़े हथियार लेकर बड़ी दूर जाऊँगा, और तुरक को देखूँगा कि वह कैसे अपने नशे में चूर रहता है ।

कल्याणी—ठीक है बेटा, यह तो आगे की बातें हैं, जब तू बड़ा हो जायगा । आज तो तेरी बारहवीं वर्षगांठ ही है !

बलकरन—तो इससे क्या हुआ ? मैं तुरक से नहीं डरता ।

कल्याणी—तेरे पिता भी नहीं डरते थे बेटा ! आज वे होते !

(आँख में आँसू)

बलकरन—अरे माँ, तेरी आँखों में आँसू ! अच्छा माँ, अब ऐसी बातें नहीं करूँगा ! मुझे माफ कर दो ! मुझे माफ कर दो !

कल्याणी—बेटा ! तू तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा है, तुझे माफ करने की बात ही क्या ! मैं तो गीत गाकर और तुझे देख कर ही सब कुछ भूलना चाहती थी ।

बलकरन—तो, सब कुछ भूल जाओ, माँ ! बतलाओ, आज वर्षगांठ में क्या क्या करोगी ?

कल्याणी—क्या करूंगी ? अपने प्यारे बेटे को नहलाऊँगी, चन्दन लगाऊँगी, फूलों की माला पहनाऊँगी ! फिर, आज मैंने तेरे लिये बहुत अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ बनाई हैं। देख, उस कोने में रखी हुई हैं । मिठाइयों के साथ खीर खिलाऊँगी, तुझे असीस दूँगी ।

बलकरन—पर माँ, मेरे साथ तुझे भी खाना पड़ेगा । तुझे भी अपनी वर्षगांठ आज ही मनानी पड़ेगी, अभी ही, मेरे साथ ! मैं अकेले इतनी मिठाइयाँ नहीं खा सकता !

कल्याणी—तेरे खाने के बाद खा लूँगी ! बस दूध भर आजाय । खीर बनने में देर ही क्या लगती है ! पानी उबल ही रहा है ।

बलकरन—अभी दूध नहीं आया ?

कल्याणी—सूरज चढ़ आया, अभी तक सुजान दूध लाया ही नहीं, जाने क्यों नहीं लाया !

बलकरन—मैं ले आऊँ ?

कल्याणी—सुजान आता होगा, बेटा, तू कहाँ जायगा !

बलकरन—'मत जाना तुम दूर......दूर' की बात तू सोच रही है । मैं तो बड़ी दूर जा सकता हूँ और फिर, सुजान का घर है ही कितनी दूर ! रास्ते से जरा हटकर उत्तर की तरफ है न ? उस शीशम के पेड़ के नीचे ही तो उसकी झोपड़ी है । मैं अभी ले आऊँगा ।

कल्याणी—तू ऐसी बातें करता है तो जा ! पर जल्दी ही लौटना ! आज तेरी वर्ष गाँठ है ।

बलकरन—मैं अभी लौटकर आया ! (उठता है) मुझे एक बरतन दे दो । मै अभी लाता हूँ । और यह चाकू अब काफी तेज हो गया है, इसे मैं अपने पास रक्खूँगा ।

कल्याणी—चाकू तेरे किस काम आयगा ? अच्छा, यह ले बरतन (बरतन देती है।) बेटा, जल्दी ही लौटना।

बलकरन—अच्छा माँ, मैं अभी आया !

(शीघ्रता से प्रस्थान)

कल्याणी—(बलकरन के जाने की दिशामें देखती हुई) मेरा भोला बच्चा ! बलकरन ! अभी से कैसी वीरता की बातें करता है ! (संतोषसे) बलकरन......मेरा बेटा ! (फिर अँगीठी के पास आकर आग ठीक करती है। फिर गुनगुनाती हैं—'तुम मत जाना......(सम्हलकर) नहीं......यह गाना अब नहीं गाऊँगी। बलकरण को अच्छा नहीं लगता ! मेरा साहसी बच्चा !' फिर आग ठीक करती है। थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है। फिर भयानक शोर और भगदड़। कल्याणी झिझक कर खिड़की से बाहर देखने लगती है। फिर शोर और भगदड़ की आवाज़ शीघ्रता से एक ग्रामीण प्रवेश करता है।)

हिन्दू ग्रामीण—(घबराये हुए स्वरों में) तुरक आ गया ! तुरक आ गया ! भागो, भागो......... तुरक आ गया, भागो !

कल्याणी—(आगे बढ़कर, दृढ़ता से) पागल हो गये क्या ? तुरक कहाँ से आ गया !

हिन्दू ग्रामीण—नहीं, नहीं, तुरक आगया।

कल्याणी—अरे तुरक जब आया था—तब से बरसों बीत गये ! अब तुरक कहाँ है ! वह आया भी और चला भी गया ! तुरक......(व्यंग्य से) हुँ !

हिन्दू ग्रामीण—नहीं, सबको लेकर जंगल में छिप जाओ ! वह आ रहा है। वह आ रहा है। (भाग जाता है।)

(फिर भगदड़ की आवाज होती है।)

कल्याणी—यह भगदड़ कैसी मच रही है ! (आगे बढ़ती है।)

(दूसरे ग्रामीण का प्रवेश)

मुसलमान ग्रामीण—बहन, भाग चलो। जल्दी जल्दी ! वह तैमूर आ गया ! मैंने अपनी आँखों से देखा है ! लूटते हुए आ रहे हैं वे लोग ! हम लोग मरे . . . . चलो बहन !

कल्याणी—अरे कैसा तैमूर ! कहाँ का तैमूर !

मुसलमान ग्रामीण—(नेपथ्य में देखते हुए) तुम नहीं चलोगी ? वह आया ! वह आया !

(भाग जाता है।)

कल्याणी—क्या सचमुच ही फिर तुरक आ गया ? अरे, उसको मरे तो सैकड़ों बरस हो गये होंगे। क्या अपनी कब्र से उठकर आ रहा है ? लेकिन कहते हैं तैमूर आया है ! तैमूर कौन ? (पुकारकर) बलकरन... ..बलकरन !

(फिर भगदड़ की आवाज़ होती है। चीख़ और पुकार !)

(तीसरे ग्रामीण का प्रवेश)

तीसरा हिन्दू ग्रामीण—बहन, कल्याणी, सब, कुछ छोड़ कर जल्दी से भागो। तभी जान बचेगी ! जंगल में छिप जाओ, नहीं तो घर के तलघर में ही चलो ! चलो मेरे साथ...... समय नहीं है।

कल्याणी—(घबड़ाहट से) बलकरन ! मेरा बलकरन तो अभी नहीं आया। उसे छोड़कर मैं कहीं भी नहीं जाऊंगी !

तीसरा ग्रामीण—कहाँ गया बलकरन ?

कल्याणी—(घबराहट से) वह ? वह ? दूध लेने गया है। सुजान के घर।

तीसरा ग्रामीण—सुजान के घर। बहुत अच्छा है। तब तो उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। सुजान का घर खास रास्ते से बहुत हटकर दूर कोने में है। ये लोग सीधे रास्ते से ही चले आ रहे हैं!

कल्याणी—कौन ? कौन आ रहे हैं ?

तीसरा ग्रामीण—तुरक—इस बार तैमूर तुरक आया है। बड़ी भारी फौज़ लिये हुए है।

कल्याणी—(डरकर) तैमूर तुरक ? बड़ी भारी फौज ?

तीसरा ग्रामीण—हाँ, पर अब समय बिल्कुल नहीं रहा। बलकरन का कुछ नहीं होगा ! तुम जल्दीसे चलकर तलघर में छिप जाओ !

कल्याणी—नहीं बलकरन को आने दो। मैं बलकरन के बगैर नहीं जाऊँगी ! (पुकारती है) बलकरन ......बलकरन......बेटा बलकरन..............

तीसरा ग्रामीण—बहिन चुप रहो ! तुरक सुनलेगा। जल्दी चलो......चलो जल्दो (हाथ पकड़कर वेग से ले जाता है, कल्याणी का स्वर 'बलक...र...न' धीरे धीरे गूँज कर शान्त हो जाता है। कुछ स्तब्धता ! फिर भगदड़। उसकी आवाज समाप्त होते ही वेग से तीन सैनिक घर में घुस आते हैं। उनके हाथों में तलवार है वे घर के सामानको तोड़ते-फोड़ते आते हैं। सरदार जिसका नाम जफर अली है लात से मोढ़ा उलट देता है। दोनों सिपाही तख्त के नीचे देखते हैं।)

जफर—कोई नहीं। कमबख्त सब भाग गए।

पहला—तख्त के नीचे भी कोई नहीं है।

जफर—मुबारक ! इस वक्त आदमियों को कत्ल करने का हमारा उतना मक़सद नहीं है जितना सोना चाँदी लूटने का है ! इस घर में देखो, कहीं है ?

मुबारक—(देखते हुए) कहीं कुछ नहीं है, सरदार ! मामूली सी झोंपड़ी है। इसमें सोना-चांदी कहाँ ?

जफर—बेवकूफ़ हो तुम ! इन तसबीरों को पलटो। इनके पीछे दीवाल में कुछ होगा। ये लोग अपना सोना-चाँदी दीवालों में रखते हैं।

(मुबारक और उसका साथी अलीबेग तलवार से सब तसबीरों को उलटता है।
कुछ नहीं दीख पड़ता)

अलीबेग—कहीं कुछ नहीं है, सरदार !

मुबारक—सरदार ! अगर सोना-चाँदी उन लोगों के पास होगा भी तो वे लोग अपने साथ लेकर भाग गए होंगे।

जफर—देखो, उस कोने में क्या है !

अलीबेग—कुछ बरतन मालूम होते हैं, सरदार ! (बर्तनों के पास जाकर उन्हें खोलता है) सरदार है, ये है !

जफर—(खुशी से) शाबास ! क्या है, सोना ? चाँदी !

(अलीबेग उठाकर लाता है)

अलीबेग—सरदार ! सोना-चाँदी तो नहीं लेकिन उससे भी ज्यादा कीमती जीज़ है जिसकी आपको और हमको सख्त ज़रूरत है।

जफर—क्या ?

मुबारक—(अलीबेग के पास आकर) सरदार ! बढ़िया खाना ! तरह-तरह की मिठाइयाँ ! ओह (छूकर) बिल्कूल ताज़ी ! गरम !

अलीबेग—सरदार आप बहुत भूखे हैं। कुछ खा लीजिए। फिर तो दिनभर हम लोगों को लूट और कत्ल करना ही है !

जफर—नहीं...नहीं...फेंक दो (रुक कर)...एँ...अच्छा, इधर लाओ !

मुबारक—सरदार ! मालूम होता है, जल्दी में लोग खाना भी नहीं खा सके ! वैसा ही रक्खा छोड़ गए !

जफर—(हाथ से छूकर) हाँ, गरम मिठाइयाँ हैं ! लो हम लोग भी लो। भूखे होंगे।

मुबारक—सरदार नोश फरमाएँ ।

जफर—मैं खाऊँगा । लो, तुम लो । (मुबारक को देता है । वह प्रसन्न होकर लेता है ।) अच्छी मिठाइयाँ हैं । लो, अलीबेग तुम भी लो !

अलीबेग—(आगे बढ़कर) सरदार तो कबूल करें । (हाथ फैलाता है) दर असल ताज़ी हैं ।

(शेष मिठाई से भरी थाली ज़फ़र मोढ़े को तलवार से सीधा कर उस पर रखता है ! फिर तख्त पर बैठता है ।)

जफर—(खाते हुए) बहुत लज़ीज़ । दो दिनों से खाना नसीब नहीं हुआ ! अब जाकर ये मिठाइयाँ सामने आई हैं ।

अलीबेग—(खाते हुए) खुदा का फ़ज्ल है, सरदार ।

मुबारक—(सहसा) लेकिन, सरदार ! रुक जाइए !

जफर—(चौंक कर) क्यों ?

मुबारक—कहीं इन मिठाइयों में ज़हर न मिला हो !

जफर—बेवकूफ़ हो तुम ! मुबारक, यहाँ के लोग इतने सीधे हैं कि वे ये बातें करना जानते ही नहीं । और फिर, हमने अपना धावा इतने जल्दी बोला है कि किसी को ऐसा करने का सोचने का वक्त ही नहीं मिल सकता ।

अलीबेग—सरदार, सच फ़रमाते हैं ।

जफर—और फिर, दो दिनों के बाद इतना अच्छा खाना नसीब हुआ है । भूख-प्यास से बुरा हाल है । और अगर इस तरह मरना ही है, तो मिठाई खाकर क्यों न मरें ।

अलीबेग—सरदार ने क्या बात कही है ! मिठाई खाकर क्यों न मरें वाह..., वाह... ।

मुबारक—सच बात है, सरदार ! भूख से तो मरना ही है, तो यह चीज़ फिर क्यों छोड़ी जाय !

जफर—इसी लिये मैं खा रहा हूँ । (खाते हुए) वाह, क्या कहना है ! यहाँ के लोग मिठाइयाँ बनाना भी खूब जानते हैं !

अलीबेग—सरदार, मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वे लोग हम लोगों के लिये ही ये मिठाइयाँ बनाकर छोड़ गए हैं !

मुबारक—ये कैसे ?

अलीबेग—ये ऐसे कि उन्होंने यह समझा होगा कि ये मिठाइयाँ खाकर हम लोगों का गुस्सा कम हो जायगा ! लूट-मार कम करेंगे ।

जफर—(हँसते हुए) ह ह ह ह ह ! हम लोगों का गुस्सा कम हो जायगा ! लूट मार कम करेंगे ।

(सब लोगों की ज़ोर से सम्मिलित हँसी)

नेपथ्यसे—(तीव्र आवाज़ से) चुप रहो, कमबख्तो !

[तैमूरलंग का प्रवेश । वह लँगड़ाते हुए आगे बढ़ता है । उसे देखते ही सब चौंक पड़ते हैं मिठाइयाँ जमीन पर फेंक कर फौजी ढंग से तनकर खड़े हो जाते हैं । सन्नाटा छा जाता है । तैमूरलंग बारी-बारी से तीनों को घूरता हुआ आगे बढ़ता है ।]

तैमूर—(तीव्र स्वर में) तुम लोग ! बदबख्तो ! इसी तरह तुम हिन्दोस्तान की दौलत ग़ाज़ी तैमूर के खज़ाने में भरोगे ? जब तुम्हें कत्ल करना चाहिए, तब तुम आराम से तख्त पर बैठते हो ! जब तुम्हें जवाहिरात ढूँढ़ने चाहिए, तब तुम नाश्ता करते हो और जब तुम्हें 'अल्ला हो अकबर' कहकर धावा बोलना चाहिए, तब तुम लोग मिल कर कहकहे लगाते हो ! जवाब दो !

(कोई कुछ नहीं बोलता—निस्तब्धता)

तैमूर—(फिर तीव्र स्वर में) मैंने अफगानिस्तान के बाद हिंदुस्थान पर रुख़ इस लिये किया था कि मेरे सिपाही दौलत लूटने के बदले प्रारम्भ से खाना ढूँढते फिरें ! मैं बिना जतलाए

देखना चाहता था कि तुम किस तरह मेरे हुक्म को अंजाम दे रहे हो। इसी लिये मैंने अपने सब सिपाहियों को बाहर छोड़ दिया है। मै देखता हूँ कि तुमने मेरे जिहाद को नफ्स-परवरी (इन्द्रिय-लोलुपता) का एक अदना तमाशा बना दिया है। तुम यहाँ मौज से खाना खाओ और ग़ाज़ी तैमूर तीन दिन से भूखा रहे, और रात-दिन हुक्म देता रहे! मैंने तुम्हे क्या हुक्म दिया था, सरदार?

ज़फर—(सैनिक ढंग से) बुलन्द इक़बाल ने हुक्म फ़रमाया था कि आज शाम तक अमरकोट पहुँच जाना है।

तैमूर—तो अमरकोट पहुँचने का यह रास्ता है? बदवख्त! ग़ाज़ी तैमूर के सिपाहियों को रास्ता दिखलाने की ज़िम्मेदारी किस पर है? तुम पर! और तुम ऐश करते हुए अमरकोट का रास्ता खोजोगे?

(फिर सन्नाटा)

तैमूर—मेरे हुक्म को किसने अंजाम दिया! तुमने? तुम्हारे सिपाहियों की तलवारों पर खून का एक धब्बा भी नहीं है! तुम लोग सिपाही हो! तैमूर को मुँह दिखलाने के काबिल भी नहीं हो! बोलो, क्या चाहते हो? खाना खाने के बाद तुम्हारे लिये नाच-गाने का इंतजाम भी किया जाय?

ज़फर—हम लोग आलीजाह की माफ़ी के ख्वास्तगार है। माफी अता फरमाई जाय।

तैमूर—हरगिज़ नहीं! ग़ाज़ी तैमूर कुसूर को माफ करना नहीं जानता। सरदार, तुमने जो हुक्म-उदूली की है, उसकी सज़ा तुम्हें मिलेगी। मैं तुम्हारा नाम...तुम्हारा नाम...

ज़फर—ज़फरअली!

तैमूर—ज़फर अली! तुम इस्लाम की ख़िदमत नहीं कर सकते! आज शामको तुम्हारी सजा तजवीज़ की जायगी। अभी मैं तुम्हें तुम्हारे मरतबे से खारिज करता हूँ, समझे?

ज़फर—बुलन्द इकबाल का हुक्म!

तैमूर—जाओ, शाम तक अमरकोट पहुँचने का मेरा हुक्म पूरा हो। (तीव्रता) जाओ!

(तीनों सैनिकों का शीघ्रता से प्रस्थान।)

तैमूर—(बड़बड़ता हुआ) दोज़ख़ के कुत्ते! . . . खाना, पीना कहकहे! सिपाहियों में आराम-तलबी! मेरे सामने हिन्दोस्तान की यह फिज़ा नहीं रहेगी। (गला बैठ जाता है। धीरे से) नहीं रहेगी . . . (ओंठ चाटता है।) गला सूख रहा है। तीन दिनों से ख़ाना नहीं मिला . . . कल से पानी भी नहीं नसीब हुआ! गला सूख रहा है!

ज़मीन पर गिरा हुआ वर्तन देखता है। चौंकता है। फिर तलवार से लुढ़काकर उसे सीधा करता है।) सब खाली! कमबख्तों ने कुछ भी नहीं छोड़ा! लेकिन कोई बात नहीं! गाज़ी और मुजाहिदों (धार्मिक योद्धाओं) की किस्मत में आराम कहाँ!

(बलकरन का दूध लिये हुए प्रवेश)

बलकरन—(पुकारते हुए) मां मां! मैं यह दूध ले आया।

तैमूर—(चौंककर) दूध?

बलकरन—(उज़ाड़ घर को देखकर चौंकते हुए) यह सब क्या? (तैमूर को देखकर) एँ, तुम कौन? (पुकारता है) माँ . . . माँ! (कुछ उत्तर न पाकर) मेरी माँ कहाँ हैं। (तैमूर गौर से बलकरन को देखता है।) इस तरह मेरे . . . घर में घुस आने वाले तुम कौन हो?

तैमूर—(जोर से) ख़ामोश! ग़ाज़ी तैमूर से यह नाजीज़ सवाल करता है कि तुम कौन हो! कमबख्त! अगर बात पूछने की तमीज़ नहीं है तो ख़ामोश रह!

बलकरन—(धीरे से दुहराता हुआ)—गाज़ी तैमूर!

तैमूर—इस नाम से वाक़िफ़ नहीं है ? दुनिया का ज़र्रा-जर्रा जिसके कदमों को चूम चुका है, उससे सवाल करता है, 'तुम कौन हो ?' कमबख्त बच्चे ! मेरी तलवार से पूछ ! यह तेरे खून में डूबकर तुझे मेरा नाम बतलाएगी ! लेकिन ठहर . . . यह दूध इधर ला . . . इस वक्त खुदा ने मेरे लिये भेजा है।

बलकरन—यह दूध . . . यह दूध मेरी वर्षगांठ के लिये हैं।

तैमूर—साफ ज़बान में बात कर, जो समझ में आये ! ! सामने दूध हाज़िर कर।

बलकरन—नहीं, मैं माँ के सिवाय किसी को नहीं दे सकता !

तैमूर—क्या ? लेकिन मैं ले सकता हूँ ! (बलकरन से छीनकर जोर से अट्टहास करता है।) दूध मेरा है कि नहीं ! अब तुझे इस तलवार से काट दूँ !

बलकरन—(हिचकते हुए) क्या . . . क्या तुम तुरक हो, जो खून बहाना चाहते हो ? मेरी माँ यही कहती थीं।

तैमूर—तू बड़ा निडर मालूम होता है ! सामने आ। मेरी तलवार से कटने का फ़ख्र हासिल कर।

बलकरन—मेरे पास सिर्फ एक चाकू है। मेरे हाथ में भी एक तलवार दो।

तैमूर—ओफ़ ओह ! तू मुझसे दो हाथ लड़ने का हौसला भी रखता है ! अच्छा ! पहले दूध पिऊँगा। गला सूख रहा है !

(तख्तपर तलवार रखकर दोनों हाथ से दूध का बर्तन मुँह में उलट देता है। बलकरन दौडकर तैमूर की तलवार उठा लेता है।)

तैमूर—(सहसा) मेरी तलवार . . .

बलकरन—तुम्हारी तलवार अब मेरे हाथ में है। अब तुम मुझसे लड़ सकते हो, सामने आओ।

तैमूर—(दुहराकर) सामने आओ ? शाबास ! लेकिन मेरी तलवार तुमसे सम्हल नहीं सकेगी बच्चे ! इधर ला !

बलकरन—जैसे दूध छीन लिया था, वैसे तलवार भी छीन लो !

तैमूर—छीन लूँ ?

बलकरन—हाँ; लेकिन लड़नेवाले तलवार नहीं छीनते; वार करते हैं !

तैमूर—तेरा कहना सही है। मालूम होता है, तू बहादुर है ! मेरी फ़ौज में भरती होगा ?

बलकरन—(दृढ़ता से) नहीं !

तैमूर—नहीं ? इस्लाम कुबूल करेगा ?

बलकरन—(अधिक दृढ़ता से) नहीं।

तैमूर—तो अब तुझे ज्यादा देर तक ज़िन्दा नहीं रक्खूँगा। पैतरा बदलकर तलवार छीन लेता है।) यह रही मेरी तलवार।

बलकरन—छीन ली ? लेकिन यह बहादुरी नहीं है ! मेरे पास यह चाकू है। इसी से लडूँगा !

तैमूर—चाकू से लड़ेगा ? चाकू से ! (अट्टहास करता है) ह ह ह ह ह!

बलकरन—हाँ। थोड़ी देर पहले मैंने इसे तेज किया है। देखो, यह इतना तेज़ है ! मेरी उँगली से खून निकाल सकता है। (उँगली में चुभाकर खून की बूंदे दिखलाता है।)

तैमूर—शाबास ! तैमूर के दिल में रहम नहीं है लेकिन तेरी बातें सुनकर मैं........

बलकरन—इन बातों से क्या ? चलाओ अपनी तलवार, मैं भागूँगा नहीं !

तैमूर—भागेगा नहीं ! तू बहादुर शेर है ! मैं तुझ पर तलवार नहीं चला सकता ! तू मुझसे भी ज्यादा बहादुर मालूम होता है ! चाकू वाला बहादुर ! तेरा नाम क्या है ?

बलकरन—दुश्मन नाम नहीं पूछता—वार करता है।

तैमूर—लेकिन तेरी बहादुरी देखकर मैं तुझे अपना दुश्मन नहीं मानता तेरा नाम क्या है, चाकू वाले ?

बलकरन—बलकरन।

तैमूर—(दुहराता हुआ) बलकरन ! बलकरन ! हिन्दुस्तान की दौलतों में तू भी एक दौलत है ! बलकरन, ग़ाजी तैमूर एहसान नहीं भूलता ! जो उसकी थकावट दूर करने के लिये दूध हाज़िर कर सकता है, उसके खून से वह अपनी तलवार नहीं रँगेगा । नहीं तो अभी तक मैंने तुझे साफ़ कर दिया होता ।

बलकरन—लेकिन दूध मैंने हाजिर नही किया । तुमने छीन लिया ।

तैमूर—एक ही बात है । दूध मैंने पाया ! मैं तेरी जान बख्शता हूँ और तेरी एक मुराद पूरी कर सकता हूँ ।

बलकरन—मुझे कुछ नहीं चाहिए ।

तैमूर—नहीं, तू मेरा छोटा-सा बहादुर दोस्त हैं, चाकू वाला ! और इस हैसियत से तेरा मुझपर हक है ।

बलकरन—तो, मेरी माँ कहाँ है ?

तैमूर—मैं नहीं जानता ! मेरे सिपाहियों ने तेरी माँ को क़त्ल भी न किया होगा; क्योंकि उनकी तलवारों पर खून का एक भी धब्बा नहीं था ।

बलकरन—आप मेरी मुराद पूरी करेंगे ? तो फिर आपसे मैं यही चाहता हूँ कि आप हमारे गांव से बाहर चले जायँ ।

तैमूर—(दुहराकर) गाँव से बाहर चले जायँ ? (सोच कर) मंजूर ! मैं दूसरे गांव जाऊंगा । अपने छोटे- बहादुर दोस्त की मुराद पूरी करूँगा । तेरा दूध और चाकू मुझे हमेशा याद रहेगा ।

बलकरन—धन्यवाद !

तैमूर—मैं कुछ समझा नहीं । खैर, तैमूर की जिन्दगी में एक नई बात हुई । तैमूर के सामने कम लोग आते हैं—तू आया ।
तैमूर कमलोगों को माफ़ करता है. आज किया । वह काफ़िरों का खून पीता है. आज तुझ से छीनकर दूध पिया । यह एक मोजिज़ा (करामात) है ।

बलकरन—मैं कुछ समझा नहीं ।

तैमूर—(अट्टहास कर) तैमूर की बराबरी करना चाहता है ? लेकिन तू तैमूर से भी बड़ा है तेरा चाकू उसकी तलवार से भी तेज निकला ! तैमूर खूंख्वार है लेकिन बहादुरी को सलाम करता है । बहादुर बच्चे को तैमूर का सलाम !

(फौजी ढंग से सलाम करता है।)

बलकरन—(उसी तरह) सलाम !

तैमूर—तेरे गाँव को हाथ नहीं लगाऊँगा । सिपाहियों को हुक्म देकर वापस कर दूंगा । (हाथ उठा कर) खुदा हाफ़िज़ !

(शीघ्रता से प्रस्थान)

बलकरन—(उसके जाने की दिशा में देखता हुआ) तैमूर......बहादुरी को सलाम करता है ! (फिर लौटता है ।) चारों ओर देखकर पुकारता है।)माँ... ? माँ ... ? मां ... ा ... ा ... ?
(शीघ्रता से कल्याणी का प्रवेश । वह अति शीघ्रता से बलकरन को हृदय से लगा लेती है ।)

कल्याणी—बेटा...बेटा...बलकरन ! (सिसकने लगती है ।)

बलकरन—ऐं माँ तू रोती क्यों है ? तू कहाँ थी ?

कल्याणी—बेटा, तैमूर के सिपाही आये थे ! उनसे बचाने के लिये ठाकुर दादा मुझे तलघर में खींच ले गये थे । तुझे तो कुछ नहीं हुआ बेटा ? कहीं चोट तो नहीं आई ? देखूं ! (गौरसे बलकरन के शरीर को देखती है ।)

बलकरन—नहीं, माँ । कहीं चोट नहीं आई !

कल्याणी—तैमूर के सिपाहियोंने तो तुझे हाथ नहीं लगाया ?

बलकरन—जब खुद तैमूर हाथ नहीं लगा सका, तो तैमूर के सिपाही कैसे हाथ लगाएँगे ?

कल्याणी—तैमूर हाथ नहीं लगा सका ? क्या तैमूर यहाँ आया था ? तुरक तैमूर ?

बलकरन—हाँ, माँ, आया था ! वह सारा दूध पी गया !

कल्याणी—सारा दूध पी गया ?

बलकरन—मैं सुजान के घरसे दूध लाया था न ? वही दूध सब पी गया !

कल्याणी—बेटा, वे लोग तो खून पीते हैं !

बलकरन—पीते होंगे ! लेकिन तैमूर ने तो सारा दूध पी लिया !

कल्याणी—तैमूर ने ? तुरक ने ?

बलकरन—हाँ, माँ ! तूने तो मुझे झूठ बोलना नहीं सिखलाया !

कल्याणी—नहीं बेटा ! कैसा था तैमूर ?

बलकरन—तैमूर ? सिपाही की तरह, रोबीला चेहरा, मोटे-मोटे हाथ ! ऊँची नाक, हाथ में तलवार ! लेकिन माँ, मेरे पास भी चाकू था ! मैंने सवेरे ही से उसे तेज़ किया था !

कल्याणी—उसकी तलवार के सामने तेरा चाकू किस काम आता ?

बलकरन—उसी चाकू ने तो उसे चौंका दिया ! मुझे वह चाकू वाला बहादुर कहता था !

कल्याणी—(आश्चर्य से) अच्छा ?

बलकरन—मैंने कहा यह चाकू बड़ा तेज़ है। मैंने सवेरे ही उस पर धार रक्खी है। माँ, उसे मैंने अपनी उँगली चीर कर दिखला दी। देखो, यह खून !

कल्याणी—(चीखकर) ओह, यह खून !

बलकरन—उसने नहीं निकाला। मैंने ही अँगुली चीर कर गिराया है !

कल्याणी—(घबराकर) तेरी उँगली से खून तो अभी तक निकल रहा हैं, बेटा !

बलकरन—उसकी कुछ चिन्ता नहीं है, माँ। तैमूर कहता था कि तेरा चाकू मेरी तलवार से भी तेज़ निकला।

कल्याणी—क्या तूने चाकू से उस पर वार किया था ?

बलकरन—नहीं, माँ। मैं तो लड़ना चाहता था पर वही मीठी मीठी बातें करने लगा। इस तरह चलता था लँगड़ा कर। (लँगड़ा कर चलता है और हाथ फैलाकर कहता है:) 'तैमूर खूंख्वार है, लेकिन बहादुरी को सलाम करता है। बहादुर बच्चे को तैमूर का सलाम !' (फौजी ढंग से सलाम करता है।)

कल्याणी—(आश्चर्य और प्रसन्नता से) वाह, तू तो बिल्कुल तैमूर ही बन गया !

बलकरन—मैं लँगड़ा नहीं बनना चाहता, माँ !

कल्याणी—(हँसकर) हाँ, लँगड़ा कभी न बने ! तू सब तरह से फले-फूले ! तेरी उमर दिन-दूनी-रात-चौगुनी हो ! भगवान को हज़ार-हज़ार धन्यवाद है कि उसने मेरे बच्चे की तैमूर से रक्षा की।

बलकरन—यह सब तेरा आशीर्वाद है, माँ।

कल्याणी—हाँ, बेटा, आज तेरी वर्षगांठ है न ! (चारों तरफ़ देखकर) तुरक के सिपाहियों ने सारा घर तोड़-फोड़ डाला ! तेरे लिये मैंने कितनी अच्छी मिठाइयाँ बनाई थीं। सब नष्ट हो गईं। अब तेरी वर्षगांठ कैसे मनाऊँ ?

बलकरन—अपना आशीर्वाद भर दे दे, माँ और.........

कल्याणी—और क्या ?

बलकरन—और, तू चन्दन लगाने के लिये कहती थी, न ! मेरी उँगली के खून का रक्त-चन्दन बना ले !

कल्याणी—ओह बेटे ! तू क्या कहता है ! आज मैं अकेली हूँ ! (सिसकती है।) अकेली क्यों ?

बलकरन—भगवान् है और मैं हूं, माँ!

कल्याणी—जुग-जुग जियो, मेरे लाल! मैं तुझे भगवान् का अंश ही समझती हूँ! (चौंककर-खिड़की से देखती हुई) यह पश्चिम में धूल कैसी उड़ रही है! क्या फिर कोई आ रहा है?

बलकरन—तैमूर और उसके सिपाही गाँव से बाहर जा रहे होंगे!

कल्याणी—वे तो गाँव लूट रहे होंगे और आदमियों का खून बहा रहे होंगे!

बलकरन—नहीं, वे गाँव से बाहर जायँगे। मैंने जो कह दिया है।

कल्याणी—तू ने कह दिया है! तेरा हुक्म वे क्यों मानने लगे?

बलकरन—उनको मानना तो पड़ेगा ही माँ। तैमूर ने मेरी बहादुरी से खुश होकर मेरी एक बात पूरी करने को कहा!

कल्याणी—(आश्चर्य से) अच्छा!

बलकरन—मैंने कहा—आप और आपके लोग इसी समय हमारे गाँव के बाहर चले जाँय। तैमूर ने सोचा, फिर कहा, मंजूर! मैं दूसरे गाँव जाऊँगा! अपने छोटे-से बहादुर दोस्त की मुराद पूरी करूँगा!

कल्याणी—धन्य मेरे लाल! (हृदय से लगाती है।) घर घर में ऐसे लाल हों!

बलकरन—(खिड़की से देखता हुआ) हाँ, पश्छिम में तो बहुत धूल उड़ रही है। वे लोग बड़ी तेज़ी से वापस जा रहे हैं!

कल्याणी—हाँ, बेटे, वापस जा रहे हैं!

बलकरन—वह पच्छिम की धूल वाला तेरा कैसा गीत है?

कल्याणी—अब तो उस गीत को बदलना पड़ेगा, मेरे बेटे! आज तेरी वर्षगांठ के दिन!

बलकरन—तब मेरी उँगली से खून लेकर मुझे तिलक करके उसे बदल कर गाओ।

कल्याणी—उँगली के खून का तिलक लगाऊँ? यही सही मेरे लाल! वीर बालक की वर्षगांठ है। तेरी बारहवाँ वर्षगांठ ऐसे ही मनाई जाय!

(कल्याणी बलकरन की उँगली से खून लेकर तिलक करती है। फिर पहले गीत को बदल कर गाती है। बीच में फिर रक्त का तिलक लगाती है।)

गीत

तुम जाना घर से दूर......दूर!
उठ रही है पश्चिम में धूर...
उठ रही हैं पश्चिम में धूर...
फिर गया तुरक—भग गया तुरक
नशे मे चूर......चूर......
तुम जाना घर से दूर...दूर...

(बलकरन गंभीर है। कल्याणी रक्त-चंदन लगाती है। धीरे-धीरे परदा गिरता है।)

कन्नड साहित्य :

श्री कारन्त के उपन्यास

श्री कारन्तजी के

[श्रीमती टी. इन्दिराबाई विदुषी]

कन्नड़ के साहित्यकारों में ऐसे लोगों की संख्या बहुत है, जिन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से कन्नड़ साहित्य के किसी न किसी अंग की सेवा की है । इन कलाकारों में श्री. शिवराम कारन्तजी का स्थान सब से ऊँचा है । आपने कई उपन्यास नाटक, गीत-नाटक, कहानियाँ, व्यंग लेख, और विचारात्मक लेख लिखे हैं । बच्चों के लिए भी कविता, कहानियाँ लिखने के अलावा, 'बाल प्रपंच' के नाम से बच्चों की दुनियाँ ही बसाई है, और कन्नड़ का एक शब्दकोष भी लिखा है, जिसकी कर्नाटक प्रान्त को खास ज़रूरत थी।

आपकी जन्मभूमि है, दक्षिण कन्नड़ के पश्चिम घाट के पश्चिम में । यह स्थान अपने सृष्टि–सौन्दर्य के लिए बहुत प्रसिद्ध है । एक तरफ आसमान को छूता हुआ हरा भरा पश्चिम घाट और घने जंगलों से भरी वे घाटियाँ हैं, तो दूसरी तरफ अथाह नील समुद्र, लहराते हुए आकर अपने दूध समान धवल फेनिल लहरों से भूमाता के पैर धो रहा है। यह दृश्य बड़ा ही मनोहर है । मैसूर से मंगलूर जाते वक्त रास्ते में पड़ता है पुतूर, जो आपका वासस्थान है । यहाँ प्रकृति की गोद में बैठकर, आप कल्पना जगत् की सृष्टि करते हैं । आप के जीवन पर प्रकृति का सुरम्य प्रभाव पड़ा है । आप जंगल के पेड़ों की नयी कोपलों के साथ खुशी से नाच उठते हैं और दूसरों को नचा सकते हैं । पतझड़ के पेड़ों के साथ खुद रोकर, दूसरों को रुला सकते हैं । जंगल के जानवरों की तरह आप भी स्वतंत्रता को प्राणों की तरह चाहते हैं और उसके लिए कठिन से कठिन परिश्रम कर सकते हैं । समाज की अर्थ-हीन, सार-हीन रूढ़ियों के आगे सिर झुकाना आप को पसन्द नहीं । पहाड़ जैसा अडिग आप का धैर्य है । आपने अपने जीवन में भी क्रान्तिकारी समाज-सुधार किये हैं । आप का साहित्य भी क्रान्तिकारी है, प्रगतिवादी है ।

हर एक साहित्यकार समाज का एक अंग है, समाज के किसी एक वातावरण में पैदा होने पर भी उसकी आत्मा सैकड़ों तरह की अनुभूतियाँ प्राप्त करती है । उस पर प्रकृति का भी काफी प्रभाव पड़ता है, साथ ही, वह जिस समाज के वातावरण में पैदा होकर बढ़ता है, वहाँ के रीति-रिवाज, रहन-सहन भी उसे आकर्षित करते हैं । वह देखता है कि मानव निरंतर अपने वातावरण से युद्ध करता है और प्रकृति की विराट-शक्तियों के विरोध मूल में नया बल अनुभव करता है । कलाकार अपनी कला से इन संघर्षों में उत्पन्न हुई अनुभूतियों को सजाता है । कह सकते हैं कि जब अनादि काल से कलाकार अपनी अनुभूति ही प्रकट करता आ रहा है, तो उसमें नवीनता ही क्या है ? नवीनता है– कलाकार की प्रतिभा में । उसकी प्रत्येक रचना पर उसकी प्रतिभा की अमिट छाप

पड़ती है। इसके प्रभाव से हर एक रचना नई मालूम होती है, और साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेती है।

श्री. कारन्त की रचनाओं को देखने पर उनकी प्रतिभा के सभी पहलू दिखाई देते हैं। जैसा कि आपने अपनी आत्मकथा में खुद कहा है, आप का साहित्य 'पागल मन के दस मुख' की बातें हैं। समाज, प्रकृति और मानव को निर्दयता से चाबुक मारकर, भयानक हँसी हँसना कारन्त का एक रूप है, तो दूसुरा है मानवता को अत्यन्त सहानुभूति से देखनेवाला। प्रकृति पर मुग्ध समाज के दोषों की तरफ से आँख मूँदकर, केवल व्यक्तियों के वास्तविक जीवन का चित्रण करने वाले कारन्त कभी अपने पात्रों द्वारा समाज की बीमारियों को, उसके गुप्त रोगों को, प्रकाश में लाते हैं। कहीं भूख से तड़पनेवालों की दीन- दशा पर अत्यन्त करुणा से आँसू बहाते हैं। तो कभी उनकी कायरता देखकर क्रोध से अग्नि वर्षा करते हैं। इस तरह अपनी चारों तरफ की दुनिया को भिन्न भिन्न दृष्टि से देखकर चित्रित करने का गौरव श्री कारन्तजी को प्राप्त है।

आप का पहला उपन्यास सन १९३० में लिखा गया। नाम है "कन्या—बलि"। नाम से ही पता चलता है कि इसमें स्त्रियों की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। क्या विधवाओं को जीने का अधिकार नहीं है? जिन्दा होने पर भी क्यों मुर्दों का-सा जीवन वे बिताएँ? वे क्यों चलती फिरती कब्र बनें? चाहे किसी तरह की हँसी—खुशी ही क्यों न हो, उसमें उनका हिस्सा नहीं, अधिकार नहीं, यह सब क्यों? आज भी यह, समाज की एक बड़ी बिकट समस्या है। वैसै लगती तो छोटी है, पर कभी कभी वह बड़ी भयानक बन जाती है। विधवा हुई तो क्या हुआ, उनमें भी इच्छाओं का होना स्वाभाविक है। जब इन इच्छाओं को उत्तेजना प्राप्त होती है, और समाज अपनी शक्ति से उसमें रुकावट डालकर उन्हें पूर्ण होने नहीं देता, तब वह ज्वालामुखी बन जाती है। इस आग की लपट में समाज के समस्त बन्धन रीति—रिवाज जलबलकर खाक हो जाते हैं। वह स्वेच्छाचारिणी बनती है। ऐसी भूली भटकी स्त्री को पतन के गर्त में ढकेलने के लिए कितने ही लोग ताक में रहते हैं। बस, एक बार उनसे पतन के गढ्ढे में ढकेली गई, तो न उसे उठने की इच्छा होती है, न शक्ति ही रहती है। समाज का क्रोध स्वार्थी पर विश्वास रखने का दुख स्वयं के पश्चात्ताप में जीवन जलकर निस्सार हो जाता है। उसी का हृदय विदारक चित्रण है 'कन्या बलि' में, यह कारन्तजी की प्रतिभा की पहली झलक है। आगे चलकर साहित्य की रंगभूमि में आप के विजयी बनने की, मानों यह निशानी है।

आपकी प्रत्येक रचना क्या है, कला का एक एक नमूना है। इस दुनियाँ में आत्मा जिन सैकड़ों समस्याओं में उलझ जाती है, उनका आपने अनुभव किया है। जीवन ही एक युद्ध है, चाहे हमारा शत्रु समाज हो, चाहे वह शास्त्रों के रूप में हो, या वह प्राकृतिक नियमों के रूप में हो, हमें निरंतर किसी न किसी शक्ति के साथ, भले ही वह गोचर हो या अगोचर, लड़ना ही पड़ता है—उसका अंत

नहीं। इस युद्ध का रंग-ढंग और उसकी तीक्ष्णता का अनुभव हर एक व्यक्ति अपने जीवन में करता रहता है। इस युद्ध के सूक्ष्मतम तत्वों को जानकर उसका चित्रण करना ही कलाकार का काम है। यह चित्रण हँसी-खुशी का भी हो सकता है और दुख-दर्द का भी। यह कलाकार के दृष्टि-कोण पर अवलंबित है। कलाकार सुलझाने लायक कुछ समस्याओं का चित्रण करता है, कभी-कभी सुलझाने के मार्ग की तरफ़ इशारा भी करता है, लेकिन सुलझाना उसका काम नहीं।

श्री कारन्तजी ने हमारे सामने कई समस्याएँ रखी हैं। सन् १९३३ ई. में हरिजन-समस्या ने सबका ध्यान आकर्षित किया था। कलाकार ने देखा कि कुत्तों से भी उनकी गयी-बीती जिन्दगी है, जिसमें मनुष्यता का नामोनिशान नहीं। आत्मा ही नष्ट हो गयी है। चार लोगों के साथ मिल-जुलकर, इज्जत के साथ गुजर करने का उसे हक नहीं। किसी की नजर में पड़ना ही पाप है, तब छूने पर पूछना ही क्या? उसके लिए यहीं पर रौरव नरक की सृष्टि हो जाती है। मन की कोई अभिलाषा हो तो उसे वहीं नष्ट करना पड़ता है। किसी से थोड़ी-बहुत सहानुभूति की आशा करना भी उसके लिए मृग-मरीचिका है। उसकी दयनीय-दशा देखकर कलाकार के हृदय की वेदना विवश होकर हा-हाकार कर उठी और "चोमणदुड़ी" के रूप में आयी एक हरिजन की दुख-दर्द भरी कसक-कहानी।

इस उपन्यास की मुख्य समस्या हरिजन की होने पर भी, और भी कई समस्याएँ आ जाती हैं। गरीबी की समस्या चोम को नोचती है, तो गुलामी की समस्या उसकी पैतृक संपत्ति है। "गरीब लोग शराब पिये बगैर ज़िन्दा नहीं रह सकते" इस अंधविश्वास से उत्पन्न, यह पीने की समस्या, छूत की बीमारी की तरह उसके लड़कों को भी लगी है। गरीबी की गोद में पलनेवाला यह कर्जा! उसका पिण्ड तो मरने पर भी नहीं छूटता। समाज स्त्री-पुरुष से बनता है। स्त्री समस्या को तो छोड़ ही नहीं सकते—'कन्याबलि' में विधवा की है, तो इसमें ग़रीब लड़की की समस्या है। मालिक की आँखों में बसी हुई बेल्ली का, अपने यौवन की उमंग में फिसलकर, अपने पिता का कर्ज़ा चुकाने के बहाने, अपनी आत्मा को धोखा देकर, अपनी वासना को पूर्ण करने के लिए, अपने मालिक-आरकाटी की वेश्या बनना एक बहुत ही करुणा-जनक चित्र है। हरिजन और ग़रीब स्त्री की समस्या को इस तरह उपस्थित करना कि अखरने के बदले, उपन्यास की विशिष्टता और भी बढ़ जाय, यह कलाकार कारन्तजी की कला है।

'चोमण दुड़ी' में स्त्री—समस्या को गौण रूप देने पर जान पड़ता है कि उस समस्या ने उनके मन में घर कर लिया। क्योंकि उसी समस्या पर उन्होंने 'सरसम्मन समाधि' लिखी है। नर नारी का सम्बन्ध अनादि काल से होने पर भी नारी का क्या स्थान है? परिवार में उसका क्या स्थान है? समाज में उसका क्या स्थान है? उसका क्या कर्तव्य है। उसकी जरूरतें क्या हैं? पति-पत्नी का सम्बन्ध कैसा होना चाहिए, अगर वेश्या-का सा हो तो क्या [illegible]? दोनों में प्रेम का

होना ज़रूरी है न ? तब जोड़ी में समानता होनी चाहिए न ? तब यह पक्षपात क्यों ? चाल-चलन के नियमों में नर और नारी का अन्तर क्यों ? आदि, स्त्री-समस्या के सब पहलुओं पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया गया है । इस उपन्यास में स्त्री–जाति की अंतर्वेदना छिपी हुई है, दारुण विषम जीवन की पीड़ा घनीभूत हो गयी है । नर व नारी का स्वाभाविक आकर्षण और आवश्यकता ही उसकी कथा–वस्तु है । इस उपन्यास में मानव के गुण ही पात्र का रूप धारण करते हैं, जिससे यह कुछ जटिल हो गया है । इसका एक पात्र धन का मोह है, तो दूसरा है स्त्री का मोह । जटिल किन्तु आकर्षक और शक्तिशाली चित्रण है कारन्त का 'सरसम्मन समाधि' । कारन्तजी ने इस उपन्यास द्वारा पाठकों को यह सोचने का मौका दिया है कि प्रेम श्रेष्ठ है कि कर्तव्य ।

आपका तीन पीढ़ियों का बड़ा उपन्यास 'मराळि मण्णिगे' में भी स्त्री–समस्या ने आप का साथ न छोड़ा । पर इस उपन्यास का विषय है प्रकृति और मानव का संबन्ध । इसका शीर्षक ही इसके जवाब की ओर संकेत करता है । ग्रीक पुराण के 'आंटीयूस' के मुताबिक, जब मानव मिट्टी पकड़कर, जमीन पकड़कर, खड़ा होता है, तब उसकी शक्ति का अंत नहीं, लेकिन मातृभूमि को छोड़कर चला जाय, तो कोई शक्ति उसे बचा नहीं सकती । उसे जन्मभूमि की शरण में रहना चाहिए । उसके जीवन को जन्मभूमि में घुल-मिल जाना चाहिए । नैसर्गिक शक्तियों को अपनाना चाहिए । उसकी प्रेरणा से जीवन को पूर्ण बनाना चाहिए । 'राम ऐताळ' हमेशा प्रकृति के साथ झगड़नेवाले हैं । रात दिन उससे लड़ते रहने पर भी वे नहीं जानते कि प्रकृति किस चिड़िया का नाम है । जिस तरह रात दिन साथ रहने पर भी अपनी पत्नी 'पारोती' के स्त्री-हृदय से अपरिचित थे, उसी तरह निसर्ग के बारे में भी कुछ जानते न थे । इससे उन्हें हमेशा नैसर्गिक नियमों के आगे हार मान कर सिर झुकाना पड़ता है । उनका बेटा लक्ष्मण एक कदम आगे बढ़ता है, वह हारकर उसे छोड़कर भाग जाता है । उसे निसर्ग से द्वेष है, उसका जीवन कुत्ते से भी बदतर बीतता है । उसका बेटा 'राम' निसर्ग से प्रेरणा पाता है । उसे अपनी प्रेरक-भक्ति के रूप में पाता है । आत्मा का विकास कर अपने जीवन को पूर्ण बनाता है और निसर्ग पर विजय पाता है । इस तरह इस महान उपन्यास में यह सूचित किया गया है कि मानव जब निसर्ग से प्रेरणा पाकर अपनी शक्तियों का विकास करता है, तभी वह पूर्णत्व को प्राप्त करता है ।

'बेट्टद जीव' में भी निसर्ग और मानव की समस्या पर प्रकाश डाला गया है । घर-बार और प्रकृति को छोड़कर भाग जानेवाला बेटा, उस बेटे के लिए दुखी होकर, उसकी प्रतीक्षा में घुलनेवाले उसके माँ-बाप — गोपालय्या और उनकी पत्नी शंकरम्मा— इनके जीवन के चित्रण में प्रकृति और मानव के परस्पर सम्बन्ध के चित्रण के साथ साथ, माता की ममता, उसका हृदय, खोये हुए बेटे के प्रति उसकी व्याकुलता, उसकी प्रतीक्षा में प्राणों का दीपक जलाना, इन सब का

चित्रण हृदयग्राही है। इसमें माता-पिता के दुख-दर्द का अच्छा वर्णन है। कारन्तजी ने मानों अपनी सारी कला का निचोड़, इस उपन्यास में रखा है। मानों यह उनका प्रकृति और मातृत्व का गुणगान है।

'हेत्तळा ताई' में हमारे सामने मातृत्व एक समस्या बनकर आया है। 'आदमी शादी करता है अपनी तृप्ति के लिये, लेकिन औरत 'माँ' बनने के लिए करती है। यह मनोवैज्ञानिकों की राय है; इस उपन्यास का आधार भी यही है। नायिका में मातृत्व प्राप्त करने की इच्छा बेहद बढ़ गई है, साथ ही साथ यह अन्ध विश्वास भी पैदा हो गया है कि उसके पति से बच्चे पैदा नहीं होंगे। उसकी मातृत्व की चाह बढ़ते बढ़ते इस हद तक जाती है कि उसे बरबस अनीति की राह पर खींच लाती है। वह अपने पति के मित्र से ही बच्चे पाती है। उसका पति अपने उस मित्र की काफी सहायता किया करता था। जब उसे मालूम होता है कि आस्तीन में ही साँप है, तब उसका दिल टूट जाता है। मरते वक्त वह अपनी पत्नी और मित्र को क्षमा तो करता है, लेकिन दिल की कसक वैसी ही रहती है। इस उपन्यास में स्त्री की स्वाभाविक अभिलाषा और उसके वातावरण में संघर्ष से उत्पन्न चिनगारियों से दो परिवारों का और दोस्ती का कैसा भयानक अन्त हुआ, इसका सुन्दर चित्रण है।

'मुगिद युद्ध' की समस्या जितनी नयी है उतनी ही पुरानी। कला समाज से अलग कोरी कल्पना के भवन में नहीं जा सकती। इस उपन्यास में उसने प्राथमिक शाला के मास्टरों का सहारा लिया है। हर सरकार, भले ही वह शिक्षा के बारे में बढ़ चढ़कर बातें क्यों न करे, लेकिन करती कुछ नहीं। सरकार शिक्षण और शिक्षकों की तरफ बेपरवाह रहती है। खास कर छोटे छोटे होनहार बच्चों के कोमल मन में विद्या का प्रकाश फैलानेवाले प्राथमिक शालाओं के मास्टरों का हाल कुछ न पूछिये। वह भी मानव है, जब दुनियाँ में वह चार पैसे कमाता है, तब शादी क्यों न करेगा? क्या उसे शादी की ज़रूरत नहीं? प्राथमिक शाला का मास्टर 'अच्युत' शादी कर के 'कर्जा' ही को जीवन का आधार मानकर, किसी-न-किसी तरह जीवन के दिन काटता रहता है। गरीबी की कठिनाइयों में युद्ध की कठिनाइयाँ आ मिलती हैं, और मानों इसे और भी भयानक बनाने के लिये अलग अलग दल बनते हैं और उनमें झगड़े से मार-पीट तक नौबत आती है। इसमें भाग ले तो भी आफ़त, न ले तो भी आफ़त। दोनो दलवालों के बीच, चक्की में गेहूँ के घुन की तरह वे पिस जाते हैं। गरीबी में भले ही धन की कमी हो, लेकिन बच्चों की कमी नहीं होती। ये बच्चे उनके लिए बोझ हैं, न उन्हें ढो सकते हैं, न छोड़ सकते हैं। यह है किसी शाला के मास्टर का निस्सार जीवन! इस जीवन की भयानकता बढ़ाने के लिए ही मानों अकाल, अभाव, चोर बाज़ार की सृष्टि हुई है। भूखे पेटों में बीमारियाँ घर बनाती हैं और प्राण लेके ही पिण्ड छोड़ती हैं। यह तो मानी हुई बात है। इसे कैसे दूर कर सकते हैं? कौन कर सकता है? कब दूर होगा? इसका क्या उपाय है? इसका कारन्तजी ने कोई जवाब नहीं दिया है,

केवल वास्तविकता का नग्न चित्रण कर वे चुप हो गये हैं ।

साहित्य जीवन से बँधा है । सत्याग्रह के आन्दोलन ने राष्ट्र के जीवन पर अभूतपूर्व प्रभाव डाला है । कारन्तजी का 'औदार्यद उरुळिनल्लि' भी इसी विषय का उपन्यास है । इसमें राष्ट्र और व्यक्ति के संबन्ध पर प्रकाश डाला गया है । कहा जाता है, 'जो राष्ट्र की सेवा नहीं करता, वह राष्ट्र-द्रोही है ।' यह बात कहाँतक सच है ? राष्ट्र-प्रेम के बहाने षड्यंत्र रचकर, दोनों पक्षवालों से, अपना उल्लू सीधा करनेवाले नर-पशु क्या समाज में नहीं हैं ? स्वार्थ साधने का मौका देखकर चाहे जिस पक्ष की तरफदारी करनेवाले चापलूसों की संख्या क्या कम है ? मानों इनका पर्दा उठाकर, इनके असली रूप दिखाने के लिए ही यह उपन्यास लिखा गया है । इसमें भारतीय नागरिक समाज का नग्न और बीभत्स चित्र देखने को मिलता है । एक साधारण स्वयंसेवक, जो भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम की तीनों लड़ाइयों में भाग लेकर उसमें जी-जान से जुट जाता है और अपने लोगों को तथा अपना सर्वस्व खोकर भी, वह अंत में जीवन-संग्राम में कैसे हार जाता है—यही इस उपन्यास की कथावस्तु है । नेता कहलानेवाले कुछ लोग किस तरह अपने स्थान का दुरुपयोग करते हैं । अपना नाम व धन बढ़ाने के लिए किस चालाकी से काम लेते हैं; इस कठोर सत्य के उन्होंने दर्शन कराये हैं । यह यथार्थवादी चित्रण है । वास्तविक घटनाओं के अनुरूप सजीव पात्रों की रचना की गयी है । दुनियाँ की स्वार्थता देख, कलाकार क्रोध से षड्यंत्रकारियों की कलई खोलता है । आज का समाज-संगठन क्या है, मानों स्वार्थियों की सभा । यहाँ निस्वार्थ व नीतिवानों के लिए कोई स्थान नहीं । यहाँ बातें बनानेवाले बातूनी आत्म-प्रशंसा करते हुए, जनता के नाम पर जनता का ही शोषण करनेवालों की ही इज्जत है । वास्तव में जो उदार हैं, उन्हें अपनी उदारता के प्रवाह में बहकर, जान से हाथ धोना पड़ता है । अधिकार में उदारता नहीं, उदारता में अधिकार नहीं, यह है आज का समाज ! इस समाज की एक उदार आत्मा का हृदयस्पर्शी चित्र है "औदार्यद उरुळिनल्लि ।"

* * *

कहानी :

समाज सेवा

[श्री ओंकार शरद]

लोगों की आंखें अपने आप उस ओर उठ जाती थीं।

• • • नौ या दस साल का वह लड़का, उम्र का ठीक अंदाज भी नहीं लगाया जा सकता। जमीन में उसका सिर गड़ा था, पेट के बल वह पड़ा था। चौराहे की सड़क के किनारे की घास बिछावन बनी थी।...

बस इतना ही देखा जा सकता था। यह जानना कठिन था कि वह कितनी गहरी नींद सो रहा था।

परन्तु वह मर चुका था।

उसे देखते ही मन में करुणा की लहर उठ आती थी। उसे देखकर रुकने की, कारण जानने की, और अन्त में लाश को ठिकाने भेजने के प्रवंध करने की विवशता हो जाती थी। कोई भी पढ़ा-लिखा भद्र कहलाने का हकदार उसे देखकर टालमटोल करके आगे नहीं बढ़ सकता था।

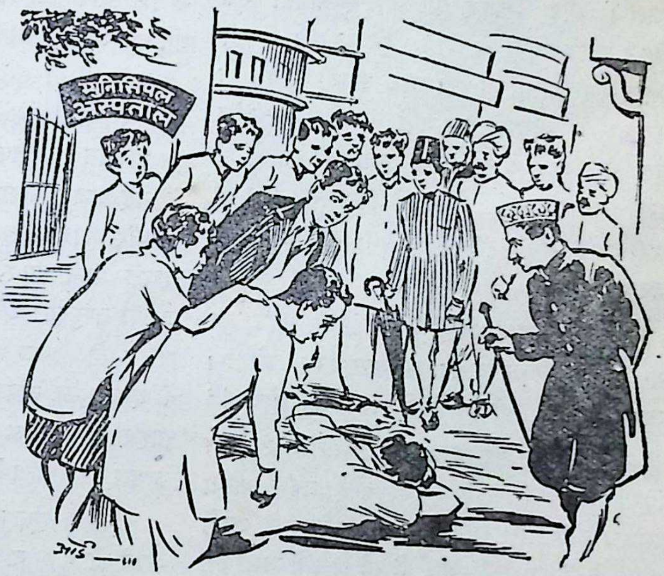

उस मृतक की विवशता, करुणा और मनुष्यता का अन्त देखकर पाँव ठिठक जाते थे।

शायद वह सुबह से इसी प्रकार पड़ा था। दोपहर तक वहाँ अच्छी खासी भीड़ इकट्टी हो गई। वह बालक अपने जीवन काल में शायद किसी एक व्यक्ति का भी ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका था; परन्तु आज मरकर वह इतने बड़े जनसमूह को अपने पास एकत्रित कर लेने में पूर्ण सफल हुआ था।

परन्तु जितने लोग भी वहाँ इकट्ठे हुए थे उनमें अधिकांश ऐसे ही थे जो शीघ्र ही उसी की स्थिति में पहुँच जाने वाले थे। 'भद्र' कहा जानेवाला कोई भी नहीं था।

जहां वह मृतक पड़ा था उस के दाहिनी चौराहे के उसपार कचहरी है। बाईं ओर थोड़ा हट कर म्युनिसपैलटी का छोटा अस्पताल। जगह तो अच्छी पाई है मरने को। कचहरी, अस्पताल के बीच। न्यायालय और औषधालय के बीच। ऐसी जगहें जल्दी नहीं मिलतीं।

और जो भीड़ जमा थी वह कुछ नहीं कर रही थी। केवल प्रश्न कर रही थी—

कोई पूछता—"यह कौन था बेचारा!"

कोई उत्तर दे देता—"शायद मज़दूर होगा।"

कोई दूसरा प्रतिवाद करता—"नहीं, यह वही चमार का लड़का है, याद नहीं यहीं बैठकर जूता टांकता था।"

तभी एक समझदार व्यक्तिने कहा—"कोई भी रहा हो। अब इससे क्या ? अब तो मिट्टी को ठिकाने लगाने का प्रबंध करना है।

भीड़ से एक ने सूचना दी—"एक बाबू ने टेलीफोन से म्युनिसिपैलिटी को खबर कर दी है।'

पहले व्यक्तिने खीझकर कहा, "लेकिन कहां कोई आया ?"

एक नया व्यक्ति बोल उठा, "क्या कोई मरी हुई बिल्ली है जो फौरन एक स्थान से हटा कर किसी कूड़ेखाने में डाल दी जाय! यह मनुष्य की लाश है और गंगातट तक ले जाने का प्रश्न है।"

यह बातें हो ही रही थीं तभी अजय उधर से गुजरा। भीड़ देखकर वह भी स्वभावतः रुक गया। सफेद खादी के कपड़े पहने वह दूर से ही समाज-सेवी मालूम हो रहा था। अपनी आदत के अनुसार वह भीड़ में घुस गया। और पूछ-तांछ शुरू की। भीड़ के कुछ लोग अजय को जानते थे उन्हों ने यह नहीं देखा कि किस लिये प्रश्न हो रहा है बस अजय कुछ पूछता और कोई भी फौरन जवाब दे देता।

अजय ने कहा, "कहीं से एक टूटी खाट का या किसी भी चीज का इन्तजाम करना पड़ेगा। लाश यों पड़ी पड़ी धूप में तो गरम नहीं होगी!"

अजय की इस बात का किसी ने उत्तर न दिया। किसी के लिए भी कोई प्रबंध करना सम्भव नहीं था। सभी तो उस भीड़ में अपने आप के लिए एक भार हो रहे थे। वे भला इस मृतक का भार क्यों उठाते! सबों ने एक खाली नजर से एक दूसरे के खाली पेट को देखा और पृथ्वी पर नज़र गड़ा ली।

वे सभी तो अपने बच्चों को भी तो इसी प्रकार घर छोड़ कर आए थे। अवश्य ही वे इस प्रकार मरे तो नहीं थे परन्तु उन की जीवित अवस्था भी इस मृतक से कोई बहुत अच्छी नहीं थी। वे तो घर में जीवित रह कर भी कभी बिछौने पर टूटी खाटपर सोने का सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सकते परन्तु यह कितना भाग्यवान था कि मर कर अच्छी गति पाने जा रहा है। अजय उसके लिए टूटी खाट का प्रबंध कर रहा है।

जब इनलोगों मे से कोई न बोला तो अजय कचहरी चला गया। वहाँ वकीलों, मुख्तारों, बड़े भारी जेबोंवाले मुकदमेबाज सेठों और लालाओं के सम्मुख उसने उस मृतक की अंतिम क्रिया के लिए चंदा बटोरा। यों तो शायद कोई न देता पर 'मृतक' और 'अंतिम क्रिया' यह दोनों शब्द ऐसे थे कि किसी ने अधिक बहस भी न की और झट अपनी जेब से 'कुछ' निकाल फेंका।

यह 'कुछ' केवल 'एकन्नी' या 'अधन्नी' से अधिक नहीं था पर इन 'कुछ' की संख्या ही काफी हो गई थी। कुछ ने तो अजय के सफेद खद्दर को देखकर भी दान किया।

अजय ने देखा कि अब तो इतना पैसा आ गया था कि उसके लिए कफन भी खरीदा जा सकता था, एक अच्छी खासी अर्थी सजाई जा सकती थी।

अजय दोनों मुठ्ठियों में इकन्नी-अधन्नी भरे आ रहा था, तभी किसी ने ऊँची आवाज़ में पुकारा, "अजय! कितना जुटाया ?"

यह अजय के साथी बीरू की आवाज थी।

बीरू अच्छा कुरता, पाजामा और पेशावरी चप्पल पहने सामने खड़ा था। बीरू, अजय से ज्यादा तन्दुरुस्त और खुश दिखाई पड़ता था। अजय तो केवल समाज-सेवक था—एक अखबार के दफ्तर का नौकर और बिरू अपने पिता राय साहब शिवदयाल के रुपयों और डनलप मोटर के बल पर समाज-सेवी कहलाता था।

बीरू का पूरा नाम वीरेंद्र नारायण था। उसने अपने को बीरू नामसे प्रसिद्ध कर रखा था; क्योंकि वीरेन्द्र नारायण नाम में बहुत अधिक हिन्दुत्व भरा था। और हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थक, वह किसी भी रूप में अपने आप को अधिक हिन्दू मानने को तैयार नहीं था।

"अजय, कितना जुटाया ?" बीरू ने पुनः प्रश्न किया।

"करीब पांच रुपये।" कहते हुए अज अपनी मुठ्ठियाँ खोल दी, दिखा दीं।

"अरे इतना अधिक क्या होगा ?"

“क्यों, अर्थी के लिये बाँस, रस्सी, लकड़ी, घड़ा और . . . और भी जिस चीज की ज़रुरत पड़ जाए।’

“तो क्या इस मुर्दे की बरात निकालना है? या यह ससुराल जा रहा है! हम लोगों में भावुकता और धार्मिक संकीर्णता इतनी भरी है कि क्या कहा जाए। लाओ, लाओ यह पैसे हमें दो। हम प्रबंध करेंगे।”

कहते हुए बीरूने आगे बढ़कर अजय की मुठ्ठियों के पैसे अपने हाथ में ले लिए। अजय सीधा साधा आदमी था। न इन्कार कर पाया, न लड़पाया। ऐसे जन-सेवकों की आज कमी नहीं जो मिहनत के समय गायब रहते हैं और प्रबंध के समय, यश लूटने के समय चट आगे आ जाते हैं।

पैसों को अपने अधिकार में लेकर बीरूने कहा,

“दो बाँस और, थोड़ी सी रस्सी की जरुरत है बस, एक मृतक के लिए इतना आडम्बर क्यों?”

“आज एक बांस भी एक रुपये से कम का नहीं मिलेगा और रस्सी . . .।”

“कुछ भी नहीं खरीदना पड़ेगा। उधर अस्पताल के पीछे डॅाक्टर के बंगले में बहुत से बांस के पेड़ हैं। दो काट लेंगे और उस अहीर के यहाँ बहुत सी पुरानी रस्सियाँ होंगी सो मांग लेंगे। पैसा क्यों खर्च करा जाय।”

“और कम से कम तीन गज कफन . . .।”

“यह भी तुम्हारी सस्ती भावुकता का नमूना है। तुम नहीं जानते कि यह पैसा भी राख हो जाएगा। अरे, यों ही बांस में बान्धकर इसे घाट तक तो पहुचाना ही है।”

“लेकिन . . . फिर भी . . .।”

बीरु ने आगे कहने भी नहीं दिया, “अरे, सब ठीक है। यों ही हो जायगा।”

“और इन पैसों को क्या करोगे?” अजय ने पूछा—

“इन पैसों से मैं थोड़े से जीवित प्राणियों की भूख की अंतिम क्रिया करूँगा। देखो वह बूढ़ा आदमी कितना भूखा है और भूख से जलकर उसका पेट कितना पिचक गया है।” मृतक लड़के के पास ही बैठे एक वृद्ध की ओर इशारा करके बीरू ने कहा।

अजय ने देखा सचमुच वह बूढ़ा उस मृतक से भी अधिक दयनीय दिखाई पड़ता था। परन्तु वह सोच रहा था कि लाश का नाम लेकर पैसे इकठ्ठे किए गए हैं। उनका उपयोग उसी कार्य में न होगा तो लोग क्या कहेंगे? अपनी आदत के विरुद्ध उसने बीरू के प्रति विरोध प्रकट करके कहा—

“उन्हें खिलाने के लिए तुम दूसरा चंदा कर लो। मैंने यह चंदा उस मृतक का नाम लेकर उठाया था। यह उसी पर खर्च होगा।”

“यह मैं न सुनूंगा। इनको अधिक आवश्यकता है। वह तो मर ही चुका है।”

तभी एक वृद्ध तथा गम्भीर व्यक्ति ने आगे जाकर कहा,

“भाई लड़ो मत। सचमुच जो मर चुका उसे क्या; उसे तो अब एक किनारे लगाना है परन्तु जो भूखे हैं उन्हें खाना मिलना चाहिये।”

अजय कुछ न कर सका। बीरू एक दूकान की ओर चला गया। अजय सोचने लगा कि उसने तो इतनी मिहनत की और यश का भागी बीरू बन गया। इसी बात का उसे दुःख था। उसकी प्रमुखता का बीरू ने अन्त कर दिया। तभी भीड़ में से उसी भूखे बुढ़े ने खांसते हुए कहा,

“हां भाई, घाट दूर है। वहाँ तक जाना है। कुछ खाएँगे नहीं तो कैसे चलेगा?”

तभी दो बांस और थोड़ा सा चावल लेकर बीरू आया। दो मुठ्ठी चावल उस बूढ़े को दिया जिसने मशीन की तरह झटपट उसे पेट के हवाले किया बाकी चावल अन्य भिखमंगे को देकर बीरू ने एक सहानुभूति कमाई। अजय खड़ा मुंह ताकता रहा।

उसी समय भीड़ से किसी ने अपने कंधे का अंगोछा उस मृतक पर डाल दिया। अंगोछा पड़ा तभी भीड़ मे एक कुहराम मच गया। एक कलूटा आदमी भीड़ चीरकर आगे आया।

कई लोग चीख उठे—

“कौन है तू, तू कौन है?”

“मैं म्युनिसिपैलिटी का डोम हूँ। मैं लावारिस लाश ढोता हूँ।”

तभी एक दूसरे डोम ने डांट लगाई,

“खबरदार, मैं पहले से आ चुका हूँ। अंगोछे पर [illegible]।”

लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि आखिर अंगौछा पड़ते ही दोनो डोम कहाँ से प्रकट हो गए।

बीरू ने सुना तो डांटा और फौरन ही आंखों-आँखों में दोनों डोमों ने कुछ सलाह की और बांस को बांधकर अर्थी बनाने लगे।

फिर अर्थी पर उस लाश को रखा गया। अब लड़के का चेहरा दिखा। वह अच्छा सुन्दर लड़का था पर अब तक उसका चेहरा बिगड़ चुका था।

अब अर्थी उठा कर ले चलने की बारी थी। किसी ने भीड़ में से 'राम-नाम सत्य है।" कहा और कई लोगों ने दुहरा दिया। पर किसी ने आगे बढ़ कर लाश नहीं उठाई।

दोनों डोमों ने अर्थी उठा ली।

उसी क्षण भीड़ में फिर कुछ गड़बड़ी मची। उसका मतलब यही था कि डोम ने लाश छूली। अब कोई और कैसे छुए।

परन्तु डोमों ने इसकी चिन्ता नहीं की। लाश पर पड़े नए अंगौछे के लालच में दोनों अर्थी को लेकर बढ़ चले।

यह जुलूस एक चोराहा भी न गया था कि एक एक कर के सभी लोग निश्चिन्त हो अपने अपने रास्ते लगे। अजय उदास पीछे पीछे बढ़ रहा था। बीरू ने आगे बढ़ कर उसकी बांह पकड़ी और समझौते के स्वर में मुस्कुराकर कहा,

"आओ, उन्हें जाने दो। घाट तक तो पहुँच ही जाएँगे। चलो तुम्हें सिगरेट पिलावें।" कह कर एक पान की दुकान की ओर उसने रुख किया।

परन्तु वह बूढ़ा भूख से जिसको पेट चिपक गया था किसी प्रकार डोमों के साथ कदम मिलाता दौड़ा जा रहा था—

लगता था घाट तक जाने को मृत बालक को अर्थी मिल गई परन्तु वृद्ध को अपने भविष्य पर भरोसा नहीं था इसी लिए वह उनके सहारे चल कर अपने आप घाट तक पहुँच जाना चाहता था।

सिगरेट जलाते हुए अजय और वीरू ने मौत के—लाश के साथ में दौड़ते उस कंकाल बुड्ढे को देखा और रूखी मुस्कुराहट के साथ शहर की ओर घूम चले।

फिर लाश चिता तक पहुँच पाई या नहीं। या वह अँगोछा घरवालों के डर से घाट तक पहुँच पाया या नहीं सो नहीं मालूम। काम की भीड़-भाड़ में भला कौन देखे?

दूसरे दिन सबेरे ही शहर के दो समाचार-पत्रों में इस शोक-समाचार की दो तरह की खबरें छपीं। एक में छपा—

एक मृतक बालक, जो कचहरी रोड के किनारे मरा पड़ा था। उसकी अंतिम क्रिया......पत्र के सह-सम्पादक श्री अजय कुमार ने की। कचहरी के कई कर्मचारी लाश के साथ घाट तक गए।

दूसरे समाचार पत्र में छपा —

कचहरी रोड पर भूख से तड़प तड़प कर एक लड़का मर गया श्री वीरेन्द्र नारायण ने बड़ी कृपा कर के उसके अंतिम संस्कार का सारा खर्च अपने ऊपर ले लिया। उनकी कृपा से ही दो दिन तक पड़ी सड़ती लाश किनारे लग सकी.........।

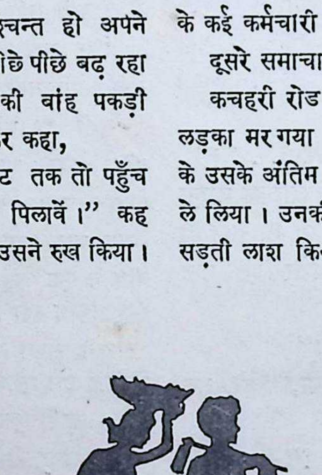

मालव लोकगीत :

आँसू के दो गीत

[श्री परदेशी]

परिणय, प्रणय और पारिवारिक पर्वों पर गाए जाने वाले मालवी लोक-गीतों पर अनेक लेखकों ने समय समय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। इधर पिछले दिनों जो अप्रकाशित, अछूते गीत मेरे सुनने में आए उन्हें 'भारती' के पाठकों तक पहुँचाना चाहता हूँ।

भारत के इतिहास में मालवा ने जो गौरवपूर्ण योग दान दिया, उसकी कथा चिरोज्ज्वल है। यदि हिमालय इस देश का मुकुट है तो, मालवा उसका मणि है। हर्ष, यशोधर्मन्, विक्रमादित्य, भास और कालिदास ने इसी मालवा की गोद में साँस लेकर सभ्यता और संस्कृति की शिलाओं को अडिग, अचल और अनमोल बनाया।

आज हूण-विजेता यशोधर्मन् नहीं रहे। न सौंदर्य के देवता कवि कालिदास ही। किंतु धरती वही है, आकाश वही है और दोनों के मध्य संचरित सतत प्रवहमान पवन वही है। चम्बल-क्षिप्रा-शोणवती नदियाँ वही हैं, और उसी तरह वह रही हैं जिस तरह कालिदास के समय बही थीं। कालिदास ने इसी क्षिप्रा में अपनी परछाइयाँ देखी थीं और इसी के तट अमर आनन्द के, सत्यं-शिवं-सुन्दरम् के, गीत उसने गाए थे। आज भी काली मिट्टी पर अहिफेन (अफीम) के पौधे उसी तरह लहराते हैं, सफेद, लाल फूलों से भरे! मानो किसी मालविका ने अपनी घुँघराली अलकों के जूड़े पर श्वेतारुण पुष्पों की वेणी गूंथी है। आज भी घनी अमराइयों में स्नेह और रस के दिव्य गीत गूँजते हैं। साँझ को लड़कियाँ 'फूल-पाती' लाती हैं — छोटे छोटे मंगल कलशों में। पवित्र वय में पवित्र, अछूते पत्र-पुष्पों का निश्काम चयन, अर्पण, न जाने किस अदृश्य भविष्य की आराधना-साधना है? भारी यन्त्रों द्वारा प्रवाहित नल का जल, नदी से वड़े २ घड़े भर लाने वाली पनिहारिनों की अखंड परम्परा को नहीं हिला सका है। कवि के शब्दों में आज भी 'आसमानी छड़ियों का लहँगा, सुआपंखी साड़ी लहरिल' पहले कुँवारियाँ और मँगेतर लडकियाँ, बहुएँ और वृद्धाएँ नदी की उसी गैल को मुखरित किए रहती हैं जिस पर उनकी माताओं ने सदैव अपनी पगतलियों के स्वर्ण-चिन्ह अंकित किए हैं। सलस दोपहरी में, आम की यौवन भार नत गहन अमावस्या-सी श्यामा डाली से कृष्णा कूकती है। बालाएँ आम के नव-पल्लवों से गुँथे झूले पर गाती हैं :—

"आओ सहेल्याँ, झूलो झूलाँ,
(झूलो झूलाँ, मचको देस्याँ)
कुण २ झूले? (कुण २ झूले?)
देऊ बाई झूले, इन्दू बाई झूले
(देऊ बाई झूले, इन्दू बाई झूले)
विमला बाई नी झूले,
कमला बाई नी झूले!
यूँ नी झूले सखी वी तो पराया
वणारो झुलो वणाका सासरे
(जी, नी झूले, जी, नी झूल)
आओ सहेल्याँ, वणाने मनावाँ
(कुण २ झूले, कुण २ झूले)
तम क्यूँ ना झूलो बेन्या बाई हमारा?
(तम क्यूँ ना झूलो जीजी बाई हमारा)?

जाओ बेन्या तम सब झूलो
झूल्या अमतो थाँके सरीखा,
झूल्या अमतो जद था कँवारा
अबे न कुँवारा ने अबे नी झूलाँ
बालपणो (अब) कई पाछो आवे ?
झूलो बेन्या तम सब झूलो
बालपणों कई पाछो आवे ?
आँबा की डगारी कोयल बांई आया
(कोयल आव्या ने केरी गुंगणा लाव्या)
अमारो बालपण कठे विसरी आव्या ?
बालपणों नहीं कई सखी झूलाँ ?
बँधीये चरकली कतरी उड़े रे ?
जाओ बेन्या तम सब झूलो !...

[एक लड़की के गाने पर कोष्टकवाले अंश शेष लड़कियाँ गाती हैं।]

जब झूलना पूरे वेग पर होता है और कंठों से अजस्रधारा-सा फूटता यह गीत अपनी सम्पूर्ण गति-लय पर होता है, तब सुननेवाला गद्‌गद्‌ हुए बिना नहीं रहता। दो बूंद आँसू अनायास ही ढुलक जाते हैं।

उपरोक्त गीत का पूरा आशय इस प्रकार है:—

एक लड़की—आओ सहलियो, झूला झूलें !

शेष लड़कियाँ—झूला झूलें और दूसरों को भी झुलाएँ।

एक—कौन कौन झूलेगा ? कौन कौन झूलेगा ?

शेष—हाँ, कौन कौन झूलेगा ? यह बतादो।

एक—देऊबाई झूलेगी, इन्दूबाई झूलेगी।

शेष—(स्वीकृति देती हैं)—देऊबाई झूलेगी, इन्दूबाई झूलेगी।

एक—(सूचना के स्वर में) विमलाबाई नहीं झूलेगी, कमलाबाई नहीं झूलेगी। सखियो ! वे इसलिए नहीं झूलती कि अब वे 'पराई' हो गई हैं और उनका झूला उनके ससुराल में है।

शेष—तब तो जी, नहीं झूलेंगी वे।

एक—आओ सहेलियो, उन्हें मना लाएँ।

शेष—बताओ कौन कौन झूलेगा, कौन झूलेगा ?

एक—ओ हमारी बहन तुम झूलती क्यों नहीं ?

सब—ओ हमारी दीदी तुम झूलती क्यों नहीं ?

उत्तर—जाओ, बहनो तुम सब झूलो, जाओ ! हम तुम्हारी अवस्था में खूब झूली हैं। तब हम कुँवारी थीं। अब कुँवारी नहीं है, अब नहीं झूलेंगी। अब वह गया हुआ बालापन—कुँवारापन क्या पुनः लौट सकेगा ? जाओ, बहनो, तुम सब जाओ और झूलो। बालापन वापस नहीं आएगा ! आम की डाली पर कोयल फिर आ गई—

सब—(स्वीकार करती हुई)—कोयल फिर आई है और साथ में छोटी अँबिया और पके आम लाई है।

उत्तरवाली—आमों पर कोयलें आ गई हैं, पर हमारा कुँवारापन नहीं आया। कोयलें पके आम लाईं पर हमारा बालापन नहीं लाईं ! बालापन नहीं तो झूलना कैसा ? बन्धन में बँधी पंछिनी कहाँतक, कितना उड़ेगी ? जाओ, छोटी बहनो ! तुम सब झूलो, अब हम नहीं झूलेंगी।

दूसरा वह प्रसिद्ध गीत है जो विवाह के प्रभात में कन्या पक्ष द्वारा प्रभाती के रूप में गाया जाता है। आंशिक परिवर्तन के साथ समस्त मालव-प्रदेश और राजस्थान में भी कहीं कहीं इसके बोल परिणय के पुण्य प्रभात की मंगल बेला में गृह-आँगन को पार कर दूर दूर तक गूँज उठते हैं:—

मंगल परभाते मोती पिरोया म्हाँतो
मोती पिरोई ने माँगा सँवारी,
जागो जागो बाई चम्पाकुमारी
मंगल परभाते मेंदी रचाइ म्हाँतो
मेंदी रचाई ने हलदी सँवारी,
जागो जागो बाई चम्पा कुमारी !

दीवारी वाट बिदादो बेन्या ने
थाँए सदा जनने मारग बताया,
पिंजरा का सूआ बिदादो बेन्या ने
थाँए सदा जनने बोल सुँनाव्या,
चम्पा आँगण का बिदादो बेन्या ने
थाँए सदा जनने फूल सुँघाव्या,
तुलसी क्यारी बिदादो बेन्या ने
थाँए सदा जनने सत्य सिखाव्या,
गाँया, भैंसा, घोड़ला बिदादो बेन्या ने
थाँए सदा जनने दूध पिलाया,
पीपल राये गोड़ने, कुड़ाने बावडी
बिदादो, बिदादो बन्याबाई चाल्या !...
जागो, ए 'सुन्दर लाडली' तम क्यूँ सोया ?

थाँकी बेटी बाई कुँवारा—
थाँने नींद कस्तरे आवे ?
जागो जागो 'मोतीलालजी'
तम क्यूँ सोया ?
थाँकी बेन्या बाई कुँवारा—
थाँने नींद कस्तरे आवे ?
जागो जागो, राधा बाई तम
क्यूं सोया ?

थाँकी गोठण बाइ कुँवारा,—
थाँने नींद कस्तरे आवे ?
ठाकर सा रे गोखडे कुकडो बोले—
कुकडो बोल्या ने मोरयो बोले !
मंदरजी के आँगन गायाँ रँमावे
जागो जागो नाना मोरा मंगल परभाते !
घर की सोभा कुँवारी ने विजरी कुँवारी,
आजे लगन लागे, पहला परभाते—
बेन्या बाई जावे ! मंगल परभाते !!...

बिदाई के इस अश्रु गीत का आशय इस प्रकार है—

आज के मंगल-प्रभात में हमने तो मोती पिरोए हैं। मोती की लड़ियाँ सजाई हैं। जिनसे दुलहिन की भाँग भरी है।

भोर हो गई है। चम्पा बाई (दुल्हन का नाम) तुम कुँवारी हो। उस मंगल प्रभात का उदय हुआ है जिसके लिए हमने तुम्हारे हाथों मेंहदी रचाई है और मेंहदी रचाकर हल्दी-कुंकुम का उबटन लगाया है। आगो जागो चम्पा बाई तुम कुँवारी हो, आज तुम्हारा ब्याह होगा।

(इस स्थल पर स्त्रियाँ सब वस्तुओं का नाम ले लेकर बिदा माँगती हैं) घर में दुलहिन कन्या का आज अंतिम प्रभात है अतः दीपकी बाती बहन को विदा दो, तुमने उसे सदैव मार्ग दिखाया है। पिंजरे के सूआ पक्षी तुमने बहन को सदैव मीठे बोल सुनाए हैं, उसे आज बिदा दो, वह ससुराल जाएगी। आँगन के चम्पा, बिदा दो, जिसे तुमने सदैव सुंदर फूल सुँधाए ह। क्यारी की तुलसी, बिदा दो, तुमने सदैव सत्य का पाठ सिखाया है। गाय, भैंस और घरके चौपाए। बिदा दो तुमने दूध पिलाया है और जतन से रखा है। जागो, बहन चम्पा बाई बिदा लेलो केसर की क्यारी, पीपल का वृक्ष और कुए-बावड़ी तुम्हारी राह देख रहे हैं। उससे कहो—विदा दो, बिदा दो। लो, बिदा मिली और बाई बहन ससुराल चली।

मंगल प्रभात में हमने दुलहिन के केशों में मोती की लड़ियाँ गूँथी है, मेंहदी रचाई है और हल्दी से उसकी देह को सुगंधित है।

अन्त में कन्या के पिताका नाम लेकर कहती है : जागो जागो 'सुन्दर लालजी,' आश्चर्य है तुम सोए हो! तुम्हारी बेटी कुँवारी है, तुम्हें नींद कैसे आ गई? तुम्हें नींद क्यों कर आती होगी, क्यों कि तुम्हारे घर में जवान बेटी कुँवारी है?

जागो जागो! (कन्या का भाई) 'मोती लालजी' तुमतो सोए हो! तुम्हारी बहन बाई कुँवारी है फिर तुम्हें नींद कैसे आ सकती है;

जागो, जागो! (सहेली का नाम लेती है) 'राधा बाई' तुम सोई क्यों हो? तुम्हारी सहेली कुँवारी है और तुम्हें नींद कैसे आ सकती है?

परिवार के बड़े छोटे—सब जग जा ओ! क्योंकि गाँव के स्वामी ठाकुर साहब की छत पर मुर्गा बोल रहा है, मोर बोला है और मंदिर के आँगन में गायें रँभा रही है। जागो जागो बन्धुओ! घर की शोभा कुँवारी है, घर की बिजली कुँवारी है।

आज का प्रभात, अंतिम प्रभात है, आज लग्न का दिवस है, बहन आज चली जाएगी!

जागो जागो मंगल प्रभात का उदय हुआ है।...

अगणित वर्षों से मालव नारी के सुहाग-कंठ में गूँजते ये गीत, न जाने कितनी कुमारिकाओं को विदा दे चुके हैं। न जाने कितनी बालाएँ इन्हें सीख समझकर सहेलियों के लिए और स्वयं के लिए वर और बिदाई पा चुकी है। इन दो गीतोंने न जाने कितने ब्याह रचाए और न जाने कितने स्वप्न बसाए!

और भविष्य की अनेक घड़ियों में भी यह मंगल गीत हमारी माँ बहनों और वधुओं के पुण्य कंठों से उठकर पास-पड़ौस और दूर दूर तक इसी तरह गूँजते रहेंगे

राजस्थानी साहित्य :

मृत्यु से मुठभेड़

[श्री प्रो. कन्हैयालाल सहल]

ता. १८ फर्वरी सन् १९३७ को द्वारकानाथ टैगौर स्ट्रीट कलकत्ते में स्व. रवीन्द्रनाथ टैगोर की अध्यक्षता में राजस्थान रिसर्च सोसाइटी द्वारा एक सभा का आयोजन किया गया था जिसमें सोसाइटी के मन्त्री श्रीरघुनाथप्रसाद सिंहानिया द्वारा वीर-रस-पूर्ण काव्य कवि को सुनाया गया था जिसे सुन कर वयोवृद्ध कवि के चेहरे पर भी लाली दौड़ गई थी। उस अवसर पर महाकवि ने राजस्थानी साहित्य के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था—

"भक्ति का साहित्य तो भारत-वर्ष के प्रत्येक प्रान्त में मिलता है; हर एक स्थल के कवियों ने राधा-कृष्ण के गीत अपने ढंग से गाये हैं किन्तु अपने रक्त से राजस्थान ने जिस साहित्य का सृजन किया है, वह अनोखा है और वह अकारण नहीं है क्यों कि राजपूतों को प्रोत्साहित करने वाले चारण रणभेरी के समक्ष स्वयं गीत रचते और सुनाते थे; युद्ध का ताण्डव-नृत्य वे अपनी आँखों से देखते थे। केवल कल्पना के बल पर इस तरह के साहित्य का निर्माण नहीं किया जा सकता।" यही कारण है कि शौर्य-सम्बन्धी जितने उपाख्यान राजस्थान में उपलब्ध हैं, उतने भारत-वर्ष के अन्य किसी भी प्रान्त में नहीं। यहाँ पर राजस्थान में प्रचलित शौर्य-सम्बन्धी दो अद्‌भुत उपाख्यान दिये जा रहे हैं :—

१

वि. सं. १४६५ में आंबरड़ी (काठियावाड़) में बीसलदेव राभा नामक एक शूरवीर चारण रहता था उसी के आदर्शों पर चलने वाले उसके ११ मित्र और थे। एक दिन उसने अपने सभी मित्रों को बुला कर कहा कि जीते जी तो और भी बहुत से लोग अपनी मित्रता निभा लेते हैं किन्तु मैं चाहता हूँ कि हम सब अपने अंगो से रक्त निकाल कर यह लिखें कि हम एक साथ ही जियेंगे और एक साथ ही मरेंगे। सब ने ऐसा ही किया। बीसलदेव राभा का शत्रु था जिसका नाम था कूकड़िया चारण। उसने अहमदाबाद के बादशाह के पास जाकर यह चुगली खाई कि बीसलदेव तो अपने सामने किसी को कुछ नहीं गिनता, गुजरात के बादशाह तक को वह अपना सिर नहीं झुकाता। इस पर बादशाह ने बीसलदेव पर चढ़ाई कर दी। जब बादशाह और बीसलदेव का आमना-सामना हुआ तो बादशाह ने पूछा—गुजरात के बादशाह के सामने भी क्या तुम्हारा सिर नहीं झुकता? चारण ने उत्तर दिया—मनुष्य का सिर मनुष्य के सामने क्या झुके! जगदम्बा को छोड़ कर किसी

के सामने मेरा सिर नहीं झुकता। ऐसा निर्भय मनुष्य बादशाह ने पहले कभी नहीं देखा था। बीसलदेव ने कहा कि यदि आप युद्ध करने पर तुले हुए हैं तो आप मेरी एक शर्त मंजूर कर लीजिये। मुझ समेत हम बारह मित्र हैं और हममें से प्रत्येक के पास एक एक तलवार है। मैं चाहता हूँ, आप अपनी सेना को यह हुक्म दें कि वह हम लोगों से तोप-बन्दूकों से न लड़ कर केवल तलवार से लड़े। बादशाह ने इस शर्त को मान लिया। बीसलदेव ने एक गोल चक्र बनाया और कहा कि आज सायंकाल तक हम लड़ेंगे और फिर इसी चक्र में बैठ कर बारहों मित्र एक साथ प्राणोत्सर्ग करेंगे। इतना ही नहीं, "सबको अपने अपने हथियार, अपने अपने वस्त्र और अपने शरीर के यावन्मात्र अंग जो युद्ध-भूमि में कट कर गिर जायँ, उन सबको-पुरजे-पुरजे को, टुकड़े-टुकड़े को चुन-चुन कर चक्र में रखना होगा। चक्र के बाहर किसी की कोई भी चीज़ रहने न पावे। युद्ध आरम्भ हुआ। एक एक चारण वीर पर शत्रुओं की असंख्य तलवारें बरसने लगी किन्तु प्रत्येक वीर शत्रु से अपने को बचा लेता और जहाँ उसकी तलवार पड़ती, शत्रु के दो टुक हो जाते। एक चारण-वीर की तो सब अँतडियाँ निकल कर पैरो में लटक आईं, तब भी वह अँतड़ियों को गले में डाल कर शत्रुओं पर प्रहार करता रहा। एक वीर का पैर कट कर भूमि पर गिर पड़ा तो भी वह अपने कटे हुए पैर को हाथ में ले उसके सहारे दूसरे पैर से आगे बढ़ता हुआ शत्रुओं पर प्रहार करता रहा। बादशाह ने जब यह देखा कि ये १२ योद्धा उसकी सारी सेना का सफ़ाया किये जा रहे हैं तो उसने अपनी शर्त तोड़ दी और अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि वे तोप-बन्दूक जिससे भी चाहें, युद्ध करें इस विश्वासघात को देख कर बीसलदेव के मन में बड़ा रोष उपजा। उसने अपने साथियों से कहा — अब हम अधिक समय तक जीने के नहीं, इसलिए प्रत्येक वीर को चाहिए कि वह अपने कटे हुए अंगों को चुन-चुन कर चक्र में ले जाकर रखे। इतना कह कर बीसलदेव बादशाह के पुत्र मुहब्बतखां की तरफ बढ़ा। हाथी के दाँतों और कुम्भस्थल पर पैर रख कर वह शाहजादे पर टूट पड़ा और ऐसे जोर से वार किया कि उसकी तलवार शाहजादे के शरीर को जनेऊ की तरह चीरती हुई निकल गई। उसको मार कर बीसलदेव चक्र में आ पहुँचा। "सब वीर अपने-अपने लोहू में मिट्टी सान कर पिण्ड देने लगे और उत्तर की ओर सिर कर के एक दूसरे के बगल में सो गये।" राजस्थानी कवि के शब्दों में—

"गल[१] अंत्रावल[२] घात[३],
केसवागिर हण[४] केवियां[५]।
अवयट[६] बाही[७] गात,
बीसल धिण[८] धिण ऊचर्यो[९] ॥१॥
पग[१०] कटियो रिण खेत,
लिखमण पण[११] रुकियो नहीं।
कीरत निरमल सेत[१२],

---

१ गले में २ आँतें ३ डाल कर ४ मार कर ५ शत्रुओं को ६ वीर ने ७ तलवार चलाई ८ धन्य-धन्य ९ कहा १० पैर ११ किन्तु १२ श्वेत

जातां[१३] जुगां[१४] न जावसी ॥२॥
बीसल तेरी बात,
इल[१५] ऊपर रहसी अमर ।
तू जायो जिण[१६] रात,
कोई कल नहँ आवियो ॥३॥

अर्थात् केशवगिरि ने शत्रुओं का संहार कर के गले में अपने शरीर की आँतें डाल लीं और फिर उस वीर ने शत्रु के शरीर पर तलवार का वार किया जिसे देख कर बीसलदेव ने धन्य-धन्य कहा ॥ १ ॥ युद्ध-क्षेत्र में पैर कट गया; फिर भी लक्ष्मण रुका नहीं । युग बीत जायँगे पर उसका निर्मल धवल यश सदा बना रहेगा ॥२॥ हे बीसल ! तेरा आख्यान पृथ्वी पर सदा अमर रहेगा । रात के जिस मुहूर्त में तू पैदा हुआ, उस समय कोई दूसरा पैदा नहीं हुआ ॥३॥

२

सखहिया यादव पहले गिरनार के स्वामी थे । राव मंडलीक यादवों में बड़ा राजपूत हुआ जिसके छोटे भाई का नाम जैसा था । गढ़ गिरनार में गुजरात के बादशाह का बड़ा थाना था; दूसरे भी कई थाने स्थान—स्थान पर बादशाह ने नियत कर रखे थे । जैसा अद्भुत वीर था । अपने समस्त राजपूतों को साथ लेकर वह पर्वतों में जा रहा और स्थान स्थान पर उपद्रव करने लगा । बादशाह महमूद बेगड़ा ने जैसा को पकड़ने के लिए अनेक उपाय किये किन्तु सब निष्फल ।

जैसा सखहिया का एक चारण महमूद बेगड़ा के यहाँ चाकरी करता था । चारण बादशाह के यहाँ से छुट्टी लेकर जैसा से मिलने आया । जैसा ने चारण का बड़ा आदर सत्कार किया और बिदाई के समय बहुतसा धन-द्रव्य दिया, 'सिरोपात्र' दिया किन्तु 'सिरोपाव' में पाग (पगड़ी) नहीं दी । चारण ने कहा—स्वामिन् ! सिरोपात्र में पाग क्योंकर नहीं ? जैसा ने उत्तर दिया, मैं अपना सिर दे सकता हूँ किन्तु पाग नहीं देना चाहता; मुझ द्वारा दी हुई पाग को बादशाह के चरणों में झुकता हुआ मैं देखना नहीं चाहता । चारण ने वचन दिया कि मैं आपकी दी हुई पाग को बादशाह के चरणों में नहीं झुकने दूँगा । पाग लेकर चारण बिदा हुआ । बादशाह के दरबार में पहुँच कर जब चारण ने सलाम किया तो पाग सर से उतार कर दाहिने हाथ में ले ली । बादशाह ने लाल आँखें कर के इस आशिष्ट व्यवहार का कारण पूछा तो चारण ने जवाब दिया, बादशाह सलामत, यह पाग जैसा की है, बादशाह के चरणों में झुक नहीं सकती । फिर क्या था, बादशाह के तन-तन में आग-सी लग गई । उसने बड़ी भारी फौज लेकर जैसा के विरुद्ध धावा बोल दिया । चारण जैसा को खबर करने आया । देखता क्या है कि जैसा सुख की नींद सो रहा है । तब चारण ने यह सोरठा पढ़ा—

सूतो नींद निसांण, सुणै नहीं
सुरताण रा ।
जैसा थयौ अजाण, कै फूटा
कनबाट उत ।।

अर्थात् हे जैसा ! अजान बन कर नींद में निश्चित सोये हुए हो; सुनते नहीं, सुल्तान के नगाड़े बज रहे हैं । सखहिया जगा, आँखें छाँटीं, घोड़े का तंग कस कर सवार हुआ । बादशाह की सेना से युद्ध करते-करते सख-

---

[१३] जाते हुए [१४] युगों के [१५] पृथ्वी [१६] जिस ।

हिया के दोनों पैर कट कर अलग हो गये। दोनों पैर कट जाने पर भी सखहिया अनेक शत्रुओं को तलवार के घाट उतार रहा था। क्या ही विलक्षण दृश्य था! किसी ने बादशाह से जाकर कहा—जहाँपनाह, यह दृश्य देखने लायक है। शीघ्र ही चलिये, सखहिया की काया से प्राण-पखेरू उड़ा चाहते हैं। सखहिया के प्रहारों को देखकर सभी वीर 'वाह वाह' की ध्वनि कर रहे थे। उसकी तलवार काल-जीभ सी बनकर लप लप कर रही थी। सुल्तान जब वहाँ पहुँचे तो बोल उठे—अरे यह क्या? यह क्या? इसके दोनों पैरों का क्या हुआ? सखहिया की काया लड़ती है या सखहिया कोई माया है? चारण ने कहा—सुल्तान! पैरों की आप क्या पूछ रहे हैं? सखहिया के यदि कहीं पैर होते तो क्या आप उसके सम्मुख इस प्रकार टिक सकते थे!! राजस्थानी कवि के शब्दों में—

"विण पग लड़ियो वीर
देख बड़ो अचरज थयौ।
सखहियो रण धीर,
याद घणा दिन आवसी॥"

अर्थात् सखहिया बिना पैरों के लड़ा जिसे देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। रण धीर सखहिया चिरकाल तक याद आता रहेगा।

ऊपर दो उपाख्यान और उनके साथ संबद्ध सोरठों का उल्लेख हुआ है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इन उपाख्यानों में वैज्ञानिक इतिहास समाविष्ट है; किन्तु इस प्रकार के उपाख्यानों तथा तत्संबद्ध पद्यों की उपयोगिता असंदिग्ध है। किसी कवि के शब्दों में "बढ़ी हुई तोंद से जैसे यह अनुमान लगा लिया जाता है कि तोंदधारी को आराम मिला है, नदियों से जिस प्रकार नालों की सत्ता प्रकट हो जाती है, वर्षा से ही जैसे प्रकट हो जाता कि गर्मी पड़ चुकी है, उसी प्रकार गीतों से इस बात का आभास मिलता है कि उनमें वर्णित घटनाए" घटित हो चुकी हैं—

"As a large belly shows comfort to exist
As rivers shows that brooks exist,
As rain show that heat has existed,
So songs show that events have happened"

(द्रष्टव्य 'रासमाला' (Forbes) पृ. २६६)

अ-प्रकाशित हिन्दी गीत-गोविन्द से :

रमते आज मुरारी

[श्री. विनयमोहन शर्मा]

यमुन–पुलिन के सघन कुंज में रमते आज मुरारी
(प्रिय की अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी !)
रचते मृगमद तिलक पुलक कर मदन-मुदित मुख उसके
चुम्बन वलित अधर लसते हैं, मधुर रसातुर जिसके।
(गोरे मुखपर श्यामै तिलक ने ऐसी ही छबि धारी।
मिरग साथ ज्यों खिल उठती है चंदा की उजियारी)

यमुन–पुलिन के संघन कुंज में रमते आज मुरारी
(प्रिय की अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी !)
चपला से कुरव के–कुसुमों से, सजल मेघ से काले–
केशों को उसके सजते हैं (भीजे से मतवाले।)
मृगमद-रंजित कुच युग-गगने नखपद शशि से विलसे
चमक रहे मणि-हरि अमल अत्ति चमचम तारक-दल से।

यमुन–पुलिन के सघन कुंज में रमते आज मुरारी।
(प्रिय की अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी।
ताल खण्ड से युग भुज करतल राजित नलिनी दल से,
पहिनाते मरकत–कंकण जो लगते छाये अलि से।
मनसिज-कनकासन सम उसके मांसल रतिगृह-जघने
सजा रहे तोरण सम कांची (स्मिति अंकित है वदने।)

यमुन–पुलिन के सघन कुंज में रमते आज मुरारी ।
(प्रिय की अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी !)
कमला के आवास–हृदय–पर पग उसके हैं धरते,
और हाथ से 'जावक'–रचना फिर मातल हो करते ।
पापी के पर–तिय–विलास को देखूँ आँखें मींचे ?
कब तक विरस प्रतीक्षा सखि ! मैं करूँ विटप के नीचे ?
यमुन–पुलिन के सघन कुंज मैं रमते आज मुरारी ।
(प्रिय की अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी) ।

* * *

अनिल तरल मृदु जलज नयन के
विकासित सरासिज ललित वदन के
अमिय मधुर अति मंजु वचन के
थल जलरुह से रुचिर चरण के–
मिले, जिसे हैं सरस भाव से, उसे, कभी वनमाली ।
'पल्लव' 'स्मर–शर' 'मलय' चंद–सब जला न पाते आली !

सजल जलद समफुल्ल बदन के,
कनक–निकष सम पीत वसन के,
सकल युवन जन श्रेष्ठ तरुण के,
प्रेरक कवि 'जय' काव्य करुण के-
मिले, जिसे हैं सरस भाव से, उसे, कभी वनमालीं
विरह, स्वजन–स्वर-व्यङ्ग दरद–सब जला न पाते आली ।

कुछ संस्मरण

स्टीफन ज्विग

[अनुवादकः—श्री प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी]

रोमा रोला से मेरा परिचय केवल संयोग की बात थी। फ्लोरेंश में एक रूसी शिल्पकर्मी ने मुझे चाय के लिए आमंत्रित किया था। उनका इरादा मुझे अपनी कला कृतियां दिखाने का था। साथ ही वे मेरी एक मूर्ति भी बनाना चाहती थीं। मैं निश्चित समय पर, ठीक चार बज़े उनके घर पहुंच गया, लेकिन मैं यह भूल-गया था कि वे रूसी महिला हैं और समय का उनके लिए कोई भी बन्धन नहीं। एक वृद्धा ने (जो, मुझे बतलाया गया कि उनकी मां की नर्स रह चुकी है,) मुझे उनके स्टूडिओ में बैठा दिया और इंतिजार करने को कहा। इस कमरे की अस्त व्यस्त हालत ही वहां की सबके आकर्षक चीज़ थी। वहां केवल चार पाँच शिल्प कृतियां थीं और दो ही मिनट में मैं उन्हें देख चुका। इस लिए और समय बरबाद न करन की गरज़ से मैंने एक किताब उठा ली। वह किताब एक पत्रिका थी जिसका नाम मैंने पेरिस में सुना था। उस ज़माने में नए नए फूलों की भांति उदित होने वाली अनेक पत्रिकाओं के सम्पर्क में रहना किसके बूते की बात थी? ये सब पत्रिकाएँ आगे चल कर बन्द हो गईं। उस पत्रिका के पत्त पलटते पलटते रोमा रोला की एक कृति "ला औव" पर मेरी नज़र पड़ी! मैं उसे पढ़ने लगा; ज्यों ज्यों पढ़ता जाता मेरा आश्चर्य बढ़ता जाता। आखिर यह फ्रेंच महोदय हैं कौन जो जर्मन भाषा भी इतनी अच्छी तरह जानते हैं। शीघ्र ही देर करने के लिये मैं उन रूसी महिला के प्रति कृतज्ञ हो उठा। अंत में जब वे आईं तो उनसे मेरा यही प्रश्न था "ये रोमां रोलां कौन हैं?" वे मुझे ठीक ठीक न बता सकीं। इस पत्रिका की अन्य प्रतियां खरीद ने पर (क्यों कि 'ला औव' धारावाहिक रूप से निकल रही थी) मुझे मालूम हुआ कि यह ग्रन्थ केवल एक राष्ट्र की ही सेवा के लिए नहीं वरन् तमाम यूरोपीय राष्ट्रों की सेवा के लिए और उनमें बन्धुत्व का भाव जगाने के लिए लिखा गया है। इस ग्रन्थ का लेखक था एक मानव, एक कवि जो समस्त नैतिक शक्तियों से काम लेता था, जो सहृदयता पूर्ण पारस्परिक ज्ञान, सदिच्छा, न्याय और सांस्कृतिक एकता में दृढ़विश्वास करके चला था। जिस समय हम लोग केवल स्कीमें तैयार करने में ही वक्त गुज़ार रहे थे, इस लेखक ने अत्यंत शान्ति-पूर्वक अपने लक्ष्य का दर्शन अत्यंत मनोहर रूप में करा दिया था। यही समस्त यूरोप का पहला उपन्यास था। इसी में प्रथम बार विश्व बन्धुत्व की अपील की गई थी; यह सब पैम्फलैटों और अपीलों से अधिक सफल था, क्योंकि यह अधिक-से-अधिक जनता तक पहुंच सका। जिस चीज़ की हम लोगों ने केवल आशा बाँध रक्खी था, जिसकी अभिलाषा केवल हमारे मन मे ही विद्यमान थी, वही चीज़ अत्यंत सरलता-पूर्वक, शान्ति-पूर्वक कर दिखाई गई थी।

पेरिस जाकर मैंने जो पहला काम किया, वह था इन महोदय का पता लगाना। इस समय गेटे के शब्द मेरे मन में गूंज रहे थे, "वह विद्वान है वह हमें शिक्षित बना सकता है।" मैंने अपने मित्रों से उनके बारे में पूछा। एक सज्जन ने कहा मैंने उनका एक नाटक देखा है। दूसरे ने कहा "सुना है कि वे अच्छे संगीतज्ञ है और उन्होंने बीथोवेन पर एक पुस्तक भी लिखी है।" (राष्ट्रीय विवरण ग्रन्थ में देखने पर पता लगा कि उन्होंने करीब एक दर्जन पुस्तकें और नवीन और प्राचीन संगीत पर लिखा है, और सात आठ नाटक भी लिखे हैं। जो किसी मामूली से प्रकाशक के द्वारा प्रकाशित हुए हैं) अंत में उनके सम्पर्क में आने के लिये मैंने अपनी एक किताब उन्हें भेज दी। शीघ्र ही मुझे उनका एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने

मुझे मिल लेने का आदेश दिया था। यहां से हम लोगों की मित्रता प्रारम्भ हुई जो कि फ्रायड और वेरहारेन की मित्रता के समान अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई; कभी कभी तो भावी कार्यक्रम निश्चित करने में यह मैत्री बड़ी ही सहायक हुई है।

जीवन में साधारण क्षणों की अपेक्षा महत्त्व-पूर्ण क्षण अधिक उज्ज्वल ठहरते हैं। इस पहली मुलाकात का दृश्य मुझे भली भांति याद है। एक साधारण से मकान के चार पांच चक्कर हमज़ीने चढ़ने के बाद रोमां रोलां का कमरा था। उनके दरवाज़े पर मुझे एक विशेष प्रकार की निस्तब्धता प्रतीत हुई। रोलां ने दरवाज़ा खोला और मुझे अपने छोटे से कमरे में ले गए। वह कमरा छत तक किताबों से भरा पड़ा था। प्रथम बार मुझे उनके उज्ज्वल नीले नेत्र दिखाई दिये; शायद इतनी स्पष्ट और स्नेहपूर्ण आंखें मैंने और कहीं नहीं देखीं। बातचीत के दौरान में उनके मन के भावों के अनुरूप ही उनमें परिवर्तन होता जाता था; दुःख से वे धूमिल हो जातीं, चिंतन में और भी अधिक काली और उद्विग्न होने पर वे चमकने लगती थीं। लालिमा लिए हुए, पढ़ने और जागने के कारण थके पलकों के बीच उनकी इन अद्वितीय पुतलियों में उनके हृदय के भाव पढ़े जा सकते थे। मैंने उनके रूप को जिज्ञासापूर्वक देखा। पतला लम्बा इकहरा बदन। वे जरा झुक कर चलते थे मानों अपनी मेज़ पर बिताए हुए अगणित घण्टों के बोझ से गर्दन झुक गई हो। वे कुछ बीमार से दिखाई देते थे; बहुत साफ ढला हुआ पीला सा चेहरा था। अपने शरीर पर वे कम-से-कम श्रम पड़ने देते थे, बोलते भी धीरे थे। शायद ही कभी घूमने जाते होंगे। बहुत सूक्ष्म भोजन, धूम्रपान और मदिरा पान तो जरा भी नहीं। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि इस तपस्वी के शारीरिक निर्बलता के पीछे कितना अध्यवसाय और कितनी परिश्रम-शीलता छिपी हुई है। अपनी छोटी सी भरी हुई मेज़ पर बैठ कर वे दिन दिन भर लिखने का काम करते थे। घण्टों तक चार पाई पर लेट कर पढ़ते! अपने पके हुए शरीर को चार पांच घण्टे की नींद के अतिरिक्त कभी भी कोई आराम न देते! और मन बहलाव के लिए संगीत का आश्रय लेते! वे अत्यंत सुन्दर पियानो बजाते थे; बड़े ही हलके हाथ से, जिसे भुलाया नहीं जा सकता: बड़े स्नेह-पूर्वक प्रत्येक 'की' को छूते थे, मानों स्वरों को जबरदस्ती निकालने की बजाय मंत्र-मुग्ध कर रहे हों।

उनके विस्तृत ज्ञान के आगे अपने ऊपर लज्जा आने लगती थी। वे सचमुच अपने नेत्रों की शक्ति पर ही जीवित रहते थे। साहित्य, दर्शन, इतिहास और सभी राष्ट्रों और मानव जाति की समस्याओं-का उन्हें भली भांति ज्ञान था। संगीत में छोटे से छोटे संगीतज्ञ से लेकर बड़े से बड़े ग्रंथों तक के बारे में उन्हें मालूम था। कमरे की भांति, इस छोटी सी कोठरी में मानो सारा संसार प्रतिबिम्बित था। अपने समय के महान व्यक्तियों से उनका अच्छा सम्बन्ध था; वे रेनान के शिष्य रह चुके थे, ज्योरे के मित्र थे; वैगनर के घर में मेहमान रहने का अवसर मिल चुका था; टाल्स्टाय ने उनको एक प्रसिद्ध पत्र लिखा था, जिसकी गणना उनके साहित्य में की जा सकती है। सृजन के आनन्द के साथ मुझे उनके अन्दर नैतिकता, निरभिमान आत्मिक स्वतंत्रता और पवित्रता दिखाई दी। पहली ही नज़र में मैंने उनके भीतर के मानव को पहचान लिया जो आगे चलकर समस्त यूरोप की 'आत्मा' बनने वाला था। हम लोगों में जीन क्रिस्टोफी पर बात चीत हुई। रोलां ने मुझे बताया कि इसमें उन्होंने तीन कर्तव्यों का पालन किया है — संगीत के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन, यूरोप की एकतार्थ आस्था, और राष्ट्रों को जागरूक रहने की अपील। प्रत्येक मनुष्य के लिए काम करने का क्षेत्र अपनी अपनी भाषा में अपने अपने देश में मौजूद है। क्षण प्रतिक्षण सतर्क रहने की आवश्यकता है। घृणा का दानव सहयोग के मुकाबिले में कहीं अधिक शक्तिशाली है। इसके पीछे लोगों का स्वार्थ भरा रहता है। सब काम छोड़ कर प्रतिगामी शक्तियों के खिलाफ जंग करना अत्यंत आवश्यक है। मैं उनकी पीड़ा का अनुमान लगा सका। कला के अमरत्व में दृढ़ विश्वास होते हुए भी उन्हें कहना पड़ता था कि, "कला से हमें व्यक्तिगत तृप्ति मिल सकती है, लेकिन वास्तविकता के आगे वह आज बिल्कुल अशक्त हो गई है।"

(२)

रोडिन

बेल्जियम के कवि वेरहारेन के घर पर बातचीत हो रही थी। एक कलाविद् शिकायत कर रहे थे कि

महान् शिल्प और कला का जमाना बीत चुका है और अब महान् कलाकार जन्म ही नहीं लेते। मैं उनका विरोध कर रहा था। मेरा कहना था कि रोडिन, जो सृजन शक्ति में किसी भी पुराने कलाकार से कम नहीं हैं, अब भी जिन्दा हैं। मैं उनकी कलाकृतियों के नाम गिनाने लगा; मेरी आवाज में गुस्सा झलकने लगा। वेरहारेन ने मुस्करा कर कहा, "जो व्यक्ति रोडिन का इतना भक्त है, उसे उनके दर्शन अवश्य करने चाहिए। कल मैं उनकी मूर्तिशाला में जा रहा हूं, अगर चाहो तो तुम भी वहां चलो।"

यदि मैं चाहूं तो। खुशी के मारे मुझे रात भर नींद नहीं आ सकी। लेकिन रोडिन के घर पहुंचने पर शब्द मानों मेरे गले में ही अटक कर रह गए! मैं बोल हीं न सका! उनकी मूर्तियों के बीच मैं बुत बना खड़ा था। और आश्चर्य की बात तो यह थी कि मेरी इस चकित अवस्था से (रोडिन को) प्रसन्नता हो रही थी! चलते समय इन वृद्ध महोदय ने प्रश्न किया, "क्या तुम मेरा असली स्टूडियो देखना पसंद करोगे?" उन्होंने भोजन के लिए भी आमंत्रित किया मुझे एक सबक मिल चुका था, सब महान् व्यक्ति अत्यंत कृपालु होते हैं।

और दूसरा सबक यह था कि वे अपने रहन-सहन के ढंग में अत्यंत सरल और सादे होते हैं। इस यशस्वी कलाकार के घर पर जिसकी प्रत्येक कृति की रूपरेखा लोगों के मन में मित्र की तरह बैठ गई थी, हम लोगों ने निहायत सादा, किसान का-सा भोजन किया। इससे मेरी हिम्मत खुल गई और अंत में मैं एकदम खुल कर बातचीत करने लगा, मानों वे और उनकी वृद्धा पत्नी वर्षों से मेरे परिचित हों।

भोजन के बाद हम लोग उनकी मूर्तिशाला में गए। एक बड़े-से कमरे में उनकी कला-कृतियां रखी हुई थीं। उनमें सैकड़ों ही अलग अलग भंगिमाओं में बने मिट्टी के माडेल हाथ, बांह, कान आदि रखे थे। आज भी वे सब मुझे ज्यों-के-त्यों याद हैं। यह सब उन्होंने अभ्यास के लिए बनाए थे और उनके बारे में वे घण्टों बैठ कर बातचीत करते थे। अंत में वे मुझे एक ओर ले गए जहां गीले कपड़ों से ढकी उनकी नवीनतम कृति रखी थी। यह एक स्त्री की मूर्ति थी। अपने भारी मजबूत हाथों से उन्होंने इन वस्त्रों को हटाया और पीछे हटे। "वाह!" मेरे मुंह से अनायास निकल पडा और दूसरे ही क्षण में अपनी उच्छृंखलता के लिए लजा गया। अपनी कृति की ओर देखते हुए अत्यंत सरल भाव से वे उसमें उलझ गए। फिर वे जरा झिझके और बोले, "जरा-सा इस कंधे पर . . . . जरा थोड़ी देर के लिए . . . .।" उन्होंने अपना कोट उतार फेंका और एक सफेद चोगा पहन लिया। फिर अपने चाकू से सधे हाथों कंधे पर थोड़ा परिवर्तन कर दिया जिससे वह सजीव नारी की त्वचा मालूम पडने लगी। फिर वे पीछे की ओर हटे और बोले, "अब यहां, इस ओर!" फिर थोड़ा सा परिवर्त्तन! इसके बाद वे बोले नहीं। कभी कभी वे थोड़ा आगे बढ़ते, पीछे हटते और कुछ कहते जाते जो मेरी समझ में न आता था। उनके नेत्र आश्चर्य जनक ज्योति से चमकने लगे। ऐसा मालूम होता था मानो वे स्वयं अब पहले से अधिक यौवन पूर्ण होगए हों। वे संलग्न रहे; तल्लीन होकर सृजन करते रहे, अपने समस्त उत्साह और सम्पूर्ण शक्ति के साथ। उनके आगे और पीछे हटने से फर्श पर आवाज होती थी, लेकिन यह सब उन्हें सुनाई नहीं देता था। अब उन्हें दिखाई नहीं देता था कि एक युवक उनके पीछे शांति पूर्वक खडा है, उसका हृदय उछल रहा है, और इस महान कलाकार को काम करते देखकर अत्यंत उल्लसित है। वे एकदम भूल चुके थे; उनके लिए वहां मेरा अस्तित्व ही न था। केवल वही आकृति, वही मूर्त्ति, उसी में वे लीन होगए और उसी में वे एक अदृश्य 'पूर्णत्व' का दर्शन कर रहे थे।

इसी भांति करीब आधा घंटा बीत गया। ठीक ठीक तो मुझे याद नहीं कि कितना समय निकल गया। महान् क्षणों को समय की परिधि में नहीं बांधा जा सकता। रोडिन इतने आत्मविस्मृत होगए थे, अपनी कृति में इतने तल्लीन होगए थे कि बिजली की कड़क भी उन्हें जगा नहीं सकती थी। धीरे धीरे उनका हाथ तेजी से चलने लगा; उस तेजी में आवेग झलकने लगा; उनके ऊपर एक नशा सा छा गया और यह तेजी प्रतिक्षण बढती की गई। इसके बाद फिर से उनके हाथ धीमे पड़ गए।

शायद उन्हें ज्ञात हो गया कि अब करने को कुछ भी बाकी नहीं रह गया । एक बार, दो बार, तीन बार, बिना कोई हेर फेर किए वे आगे बढ़े, पीछे हटे । अब उन्होंने अपने होठों में ही धीमें से कुछ कहा और बड़ी कोमलता के साथ उस मूर्ति को फिर से ढक दिया मानो कोई अपनी प्रियतमा को दुशाला उढ़ा रहा हो । फिर एक गहरी सांस ली । उनकी आकृति फिर से सामान्य होगई; वह ज्वाला बुझ चुकी थी । इसके बाद मुझे एक अकथनीय गूढ सबक मिला । उन्होंने अपना चोगा उतारा, कोट पहना और चलने को उद्यत हुए । अपनी इस आत्मविस्मृति में वे मुझे भी भूल चुके थे । उन्हें ध्यान नहीं रहा था कि एक युवक जिसे वे स्वयं अपने स्टूडियो में लाए थे अब भी सांस रोके उन्हीं की मूर्तियों के समान निश्चल खड़ा था ।

वे दरवाजे की ओर बढ़े और जब किवाड़ खोलने लगे तो उनकी नजर मेरे ऊपर पड़ी । उन्होंने क्रुद्ध होकर देखा, यह अपरिचित युवक स्टूडियो में कैसे आगया ? लेकिन दूसरे ही क्षण उन्हें सारी घटना याद आगई और वे शर्मिन्दा होकर मेरी ओर बढ़े । "क्षमा कीजिए, महाशय—" वे बोले लेकिन मैंने उन्हें आगे न कहने दिया । मैंने कृतज्ञता पूर्वक उनके हाथ पकड़ लिए, मैं उन्हें चूमना चाहता था । उन क्षणों में मैंने कला के वास्तविक दर्शन किए थे; हां मैंने सृजन शक्ति का साक्षात् रूप देखा था; समस्त शक्तियों को, समस्त इन्द्रियों को तल्लीन और एकाग्र होते देखा था; कलाकार की निस्व होने की क्षमता देखी थी । मुझे जीवन भर के लिए एक शिक्षा उन क्षणों में मिल गई थी ।

(३)

गोर्की

रूस से लौटते समय जो सबसे कीमती चीज मैं अपने साथ लाया वह थी गोर्की की मित्रता । उनसे मेरी पहिली भेंट मास्को में ही हुई । दूसरी बार एक दो साल बाद मैंने उनके दर्शन 'सोरेंटो' में किए जहां वे स्वास्थ्य सुधारने के लिए गए हुए थे । इस बार उनका मेहमान बन कर मैंने तीन चिरस्मरणीय दिन बिताए । इस मुलाकात में एक अजीब बात भी थी । गोर्की कोई विदेशी भाषा नहीं जानते थे और मैं रूसी भाषा नहीं जानता था । इस अवस्था में सामान्यतः होना यही चाहिए था कि या तो हम दोनों एक दूसरे के आगे मौन बैठे रहते, या बातचीत करते तो अपनी मित्र मेरी बैरोनेस बडवर्ग की सहायता से जो दुभाषिये का काम करती थीं । लेकिन गोर्की विश्वसाहित्य के सब से महान् कथाकारों में से थे । उनके निकट कहानी केवल कला का व्यक्त रूप ही न थी; इसमें उनके सम्पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति थी । वे सजीव थे और अपनी अभिव्यक्ति के साथ एकरूप हो जाते थे । इसी कारण प्रारम्भ से ही उनकी भाषा जाने बिना मैं उनके चेहरे की भंगिमा से उनकी बात समझ जाता था । उनके बारे में केवल यही कहना चाहिए कि वे पूर्णरूपेण 'रूसी' थे; इस भाव को दूसरे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता । उनकी आकृति में कोई भी चीज आकर्षक न थी। देख कर उन्हें चाहे कोई मामूली मजदूर, किसान या गाड़ीवान समझ सकता था । वे एकदम रूसी 'साधारण-जन' थे । रास्ते में कोई भी उनकी ओर ध्यान दिए बिना जा सकता था; लेकिन आमने सामने बैठ कर बातचीत करने पर ज्ञात हो जाता था कि वे कौन हैं । बिना प्रयास के ही वे अपने पात्र के तद्रूप हो जाते थे। एक बार उन्होंने मुझे एक वृद्ध का वृत्तान्त सुनाया और अनुवादित होने के पहिले ही उस वृद्ध की सम्पूर्ण आकृति का चित्र मेरी समझ में आगया । यह एक थका हुआ, कुबड़ा बुड्ढा था जो उन्हें यात्रा के समय दिखाई दिया था । अपने आप उनका सिर आगे की ओर झुक गया, कंधे भी मानों बोझ से झुक गए, और उनकी आंखों में, जो अब तक चमक रही थीं, थकान छा गई। आवाज़ लड़खड़ाने लगी । अनजाने ही उन्होंने स्वयं उस वृद्ध का रूप धारण कर लिया । इसके बाद कोई हंसी की बात आई; तो फौरन ही वे ठठाकर हंसने लगे और उनका चेहरा चमकने लगा । ग्रामीण जनता के बारे में बातचीत करने में उन्हें अकथनीय आनन्द आता था। उनकी चाल ढाल, उनके बैठने का ढंग, प्रसन्नता, एकाग्रता, उनकी हरेक बात सरल और सादी होती थी; कहीं भी कोई कृत्रिमता नहीं थी । एक दिन शाम को उन्होंने प्राचीन रूसी फौजी अफसर का वेश बनाया । कमर में एक तलवार लटका ली और उनकी आंखें शून्य में कोई खास

चीज़ देखने लगीं; भौहें तन गईं और चाल में तेज़ी आ गई। और कुछ देर बाद यह छद्मवश हटाते ही बच्चों के समान मधुर खिलखिलाहट उनके चेहरे पर खेलने लगी। उनमें आश्चर्यजनक शक्ति थी। शरीरविज्ञान के सब नियमों को धता बताते हुए केवल एक फेफड़े के सहारे वे जिन्दा रहे। उनकी जीवित रहने की इच्छाशक्ति अदम्य थी; अपना कर्तव्य पालन करने की उत्कट अभिलाषा ही उन्हें जिन्दा रखती थी। प्रत्येक दिन प्रातःकाल वे अपने सुन्दर हस्ताक्षरों में अपने उपन्यास का अंश लिखते थे; उन सैकड़ों पत्रों के उत्तर देते थे जो नवीन रूसी लेखक और कायकर्ता उन्हें रूस से भेजते थे। उनके साथ रह कर मुझे रूस का अनुभव हुआ, बोलशेविश रूस का नहीं, पुराने रूस का भी नहीं, बल्कि रूस की महान्, शक्तिशाली, वास्तविक जनता का। इन दिनों वे निश्चय नहीं कर पाए थे कि रूस की पार्टी की सदस्यता ग्रहण करें या नहीं। पुराने क्रांतिकारी होने के नाते वे क्रांति चाहते थे; लेनिन के मित्र भी थे; फिर भी पूरी तरह से पार्टी में शामिल होने से झिझक रहे थे। लेकिन रूस की चिन्ता उन्हें सदा लगी रहती थी।

संयोगवश मुझे एक ऐसा दृश्य दिखाई दिया जो जिससे उनके मानसिक द्वन्द का पूरा चित्र मेरे आगे आगया। उन्हीं दिनो पहली बार रूसी युद्ध पोत नेपल्स के बन्दरगाह पर लगा था। कुछ जवान नाविक जिन्होंने पश्चिमी दुनिया कभी नहीं देखी थी, अपनी यूनीफोर्म में नगर में घूम रहे थे। उन्हें सभी चीजें नई नई लग रही थीं। एक दिन उनके एक दल ने "अपने" लेखक के दर्शन करने का निस्चय किया। रूसी बंधुत्व के अनुसार यह बात साफ थी कि 'उनके' लेखक उनका स्वागत करेंगे ही। इस लिए उन लोगों ने अपने आने की पूर्व सूचना देने की भी जरूरत नहीं समझी। और उन्होंने ठीक ही सोचा था। जब वे लोग आए तो गोर्की ने हृदय से उनका स्वागत किया और अन्दर ले गए। दूसरे दिन गोर्की ने हंसते हुए मुझसे कहा "इन लोगों ने मुझे हैरान कर डाला। मेरे मकान में घुसते घुसते ही उन्होंने कह डाला, "तो जनाब इस आलीशान ढङ्ग से यहाँ रह रहे हैं?" और फिर "आप तो एक दम बुर्जआ ढंग से रहते हैं" और आप रूस क्यों नहीं चलते?" गोर्की को जवाब देने पड़े। इन्हीं लोगों के प्रति कर्तव्य को गोर्की सर्वोच्च स्थान देते थे। और असल में ये भोले लोग इतने कठोर नहीं थे, जितना कि वे प्रतीत होते थे; शायद वे दिखाना चाहते थे कि अपने ध्येय के आगे उन्हें किसी की भी परवाह नहीं है। उन लोगों नें आराम से चाय पी, बात-चीत की और चलते वक्त एक एक करके गोर्की के गले लगे। गोर्की ने यह वृत्तान्त अत्यन्त आश्चर्यजनक ढंग से सुनाया। वे इस नई पीढ़ी की सरलता पर मुग्ध होगए थे; उनकी बेतकल्लुफी से उन्हें जरा भी परेशानी नहीं हुई! वे बार बार कह रहे थे" तब से कितना परिवर्तन हो गया है! हम लोगों का जमाना कितना भिन्न था! उन दिनों लोग या तो डरपोक होते थे या अत्यंत निर्दय। आत्मविश्वास तो नाम को भी नहीं था।"

मैंने कहा, "मेरे ख्याल से आपकी बड़ी इच्छा थी कि आप उनके साथ ही चले जायें" यह सुनते ही उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा, "आपनें कैसे जान लिया? सचमुच अंत तक मेरे मन में द्वन्द होता रहा कि मैं किताबें, कागज सब कुछ छोड़ छाड़ कर इन नव युवकों के साथ पन्द्रह दिन के लिए चला जाऊं। इससे मुझे मालूम हो जाता कि रूस का अब क्या रूप है। दूर रहने से आदमी अपनी सर्वोत्तम वस्तु को भूल जाता है। और हम में से किसी ने भी निर्वासन काल में कोई भी काम की चीज़ नहीं लिखी।"

* * *

तमिळ कहानी :

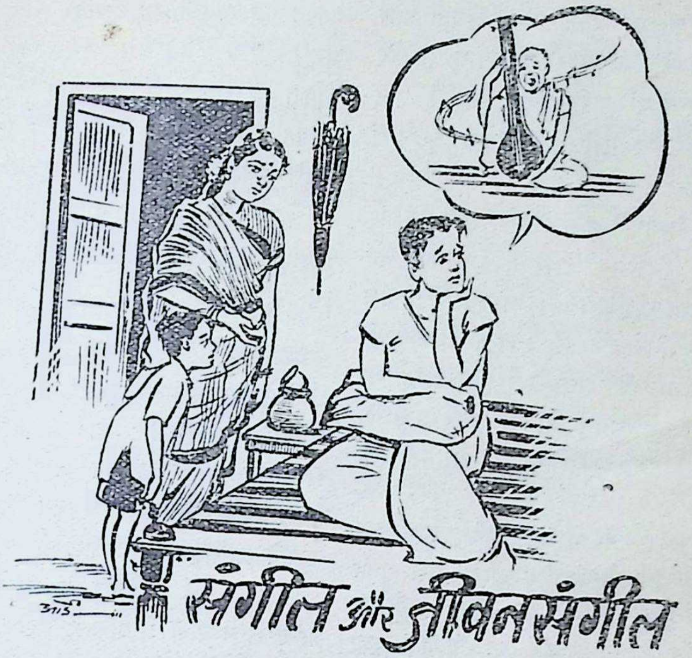

संगीत और जीवनसंगीत

[श्री. कि. रा.]

१

अचानक नींद उचट जाने से मैं उठ बैठा।

कहीं दूर से एक गंभीर स्वर सुनाई दे रहा था। उसने मुझे एकदम झकझोर दिया। आधी रात के समय यह कौन गा रहा है और क्यों गा रहा है? यह स्वर कहाँ से आ रहा है?

इन बातों को सोचने-विचारने की फुरसत मुझे कहाँ थी! अंतराल से निकलनेवाले उस स्वर की माधुर्य भरी गंभीरता मुझे और मेरे मन को अपनी ओर खींच रही थी। वह षण्मुखप्रिया (कर्णाटक संगीत का एक राग) का ऐसा आलाप कर रहा है, मानों वह उसी को आगे उछल उछल कर पकड़ लेना चाहता हो। अंतराल से निकलनेवाला वह स्वर ऊपर-ऊपर उठता ही जाता है। आकाश में उड़नेवाले 'बैलून' को बच्चे जैसे उछल उछल कर पकड़ना चाहते हैं, वैसे ही वह भी ऊपर उठता ही जाता है। और आगे, आगे···आगे···आगे···उफ!—वह ऐसा क्यों उठता जाता है? हाय! मुझसे सहा नहीं जाता! चुप्पी साधकर [illegible] मेरे बस की बात नहीं। मुझे भी वह खींचता है! न जाने वह मुझे कहाँ उठाये लिये जा रहा है?

गायक नीचे उतर गया। मैं भी होश में आ गया और अपने चारों तरफ देखने लगा तो मालूम हुआ कि मैं इस भूलोक में ही हूं।

तेरह रुपये किरायेवाले उस मकान के विशिष्ट स्थान पर—अर्थात् बेछतवाली ऊपरी मंजिल पर, अपनी फटी पुरानी मैली-कुचैली दरी पर, फटे पुराने रूई निकलते तकियों के सहारे मैं लेटा हुआ हूं।

गवैया षणमुखप्रिया राग की निचली सतह पर संचार कर रहा है। गला उसका साफ है और राग की मूर्छना के मोड़ों पर बड़ी गंभीरता के साथ चढ़ता उतरता है। गाने की उसकी अदा का क्या कहना? उसका गाना मानों ऐसा था कि बड़े भयंकर युद्ध में विजय प्राप्त करने पर जैसे कोई वीर घमण्ड में फूलकर इठलाता चला आता हो। मेरी आंखों के सामने गायक के उस अपूर्व गान ने यह अनुपम दृश्य खड़ा कर दिया था कि नगर की नारियाँ अट्टालिकाओं पर खड़ी अत्यन्त

आतुरता के साथ अपने विजयी वीर प्राणपति की राह देख रही हों तथा विजयी वीर अपने विजय गर्व में फूला न समाता हुआ और अपनी प्राण प्यारी से मिलने की उत्कंठा में आनन्द विभोर होता हुआ, ऊपर-नीचे चारों तरफ अपनी दृष्टि दौड़ाता हुआ अत्यंत गंभीरता के साथ जुलूस में कदम वढ़ाता चला आ रहा हो।

सहसा गाना वन्द हो गया। मुझे सारा संसार शून्य-सा लगा। सिर पर अधर में कृष्ण पक्ष का दुर्वल और धुन्धला चांद अर्धगोचर अवस्था में निश्चल खड़ा था। वायु भी अचल थी। अत्यन्त आतुरता के साथ मैं गायक के स्वर की राह देख रहा था मानों कोई नयी नवेली वधु आनन्द और भय के साथ सुहाग रात के दूसरे दिन की रात की राह देख रही हो।

गायक का स्वर फिर धीमे स्वर में शुरू हुआ। वह धीमा स्वर धीरे धीरे गंभीर और भारी हुआ और चकराता हुआ ऊपर चढ़ा। अभी थोड़ी देर पहले जो गला माधुर्य से कूट कूट कर भरा हुआ था, उसमें इतना भारीपन कहाँ से आया? 'प्यागडै' राग की हर ऐक तान उसके अंतराल से निकलकर, मुझसे आकर टकराने लगी। वह क्यों इतना फूट पड़ता है? उसके दिल पर ऐसी क्या वीत रही है? क्यों वह गला फाड़कर ऐसा गा रहा है?

मान लीजिये कि भुज-वल पराक्रमवाला एक असुर है। मगर वह वड़ा सत्यवादी और कर्तव्यनिष्ठ है। अगर उस पर कोई अत्याचार हो या किया जाये तो धर्म-न्याय के वंधन में वंधे हुए कर्तव्य-परायण उस राक्षस के मन की कैसी दशा होगी? उसी तरह न यह गायक गरज रहा है? उसके उस वंकिम स्वर पर भूल कर तथा अपनी सारी शक्ति खोकर मैं पत्थर वना वैठा रहा।

क्षण क्षण पर उसका स्वर अत्यन्त तीव्र होता जा रहा है और राग भी वदलता जा रहा है।

अव कानड़ा राग है। संधान किये हुए धनुष से निकलने वाले वाण की तरह न वह 'सरसर' निकल रहा है! अपनी चकाचौंध से आंखों को चौंधिया देने वाली विजली की तरह न वह अपने गले का चमत्कार दिखा रहा है!

और आगे भी राग वदलते जाते हैं। अड़ाना, श्यामा, उशेनी—यह रागों का अनायास ही अला- पता जाता है, जैसे कोई आकाश-वीथी पर खड़े होकर हीरक-कणिकाओं की वर्षा करता हो। कभी थकावट न माननेवाला उसका गला तरह तरह के अनगिनती वर्ण भेदों से चमक कर मुझे आश्चर्य-चकित कर रहा था। उस सुख-भंडार के वोझ से दबकर मैं किं कर्तव्य विमूढ़ हो गया। मधुरिमामय उसके स्वरों के चक्कर में पड़कर मैं सुध-वुध खो वैठा और उसका वह अलौकिक गान मुझे किसी अज्ञात आनन्द-लोक को खींचता ले जा रहा था।

२

मेरा विचार-चक्र घूमता है और सुख-कल्पना में तल्लीन रहने वाला मेरा मन काल की सीमाओं से परे आगे पीछे टहलने लग जाता है। स्मृति पटल पर से निकल कर बहुत से चित्र आँखों के सामने आते हैं और ओझल हो जाते हैं।

स्त्रियों की एक वहुत वड़ी भीड़ लगी है। उस भीड़ के मध्य में मैं अकेला वैठा हूँ। मैं लज्जा से सिर झुका कर जमीन पर आंखें गड़ाये वैठा हूँ, मानों उनमें एक मैं ही स्त्री हूँ और जितनी स्त्रियां हैं, वे सब के सब पुरुष हैं। मेरे सारे शरीर को शर्म-संकोच खाये जा रहा था।

"एक—हाँ एक गाना गाओ! परवाह नहीं, छोटा-सा ही एक! गाओ न!" — मेरी वुआ की वेटी कह रही है।

"गाओ, गाओ। न गाओ तो हम न छोड़ेंगी। कल तुमसे कौन कहने वाला ह कि एक गाना गाओ। अच्छा देर न करो। एक गाना जल्दी शुरू करो।"

"जिद छोड़ो। जल्दी करो। मुँह खोलो तो मोती लुढ़क जायेगा क्या? किसके लिये गाती हो? क्या हमारे लिये? जिद न ठानो। जल्दी शुरू करो।"

ऐसे वहुत से स्वर सुनाई दिये।

"गाओ न सुदरम्। छोटा सा एक "पथ्यम्"*

---

*दक्षिण भारत में विवाह कार्य संपूर्ण होने पर, उस दिन शामको "नलंगु" नामसे एक तमाशा होता है, जिसका उद्देश्य नवविवाहित पति-पत्नी में घनिष्ठता लाना है। उस अवसर पर तरह तरह

(शेष पृष्ठ १०६३ पर देखिये)

गाओ। तुम्हारा पति तुम्हारा गाना तो सुने !"— मेरी बुआ की बेटी का प्यार से सना स्वर सुनाई देता है।

हाँ, हाँ गाओ। तभी वह पान-सुपारी की थाली हाथ में लेगा। — अगर वह न गाये तो न लेना, राजू !"—एक दूसरा स्वर हम दोनों को हुकुम दे रहा है।

'ऐसी जीव-हिंसा करने की कौन सी आवश्यकता आ पड़ी?' मेरे मन में यह प्रश्न उठता है फिर भी मैं पत्थर बना बैठा हूँ। क्यों कि मैं दामाद हूँ न?

मेरे सामने हाथ में पान-सुपारी की थाली लिये एक निश्चल प्रतिमा खड़ी है, जिसकी हल्की सी छाया मेरी आंखों के सामने से गुज़रती है। वह और कोई नहीं; मेरी धर्मपत्नी है, जिसके साथ मैंने पिछले दिन ही विवाह किया था और आज, शुक्रवार के दिन सजाई जानेवाली महिमा-मयी मदुरा की मीनाक्षी देवी के समान सर्वालंकार भूषिता होकर मेरे सामने खड़ी है। गले का स्वर्ण-हार, करधनी, झूमक आदि मेरी आंखों के सामने बिजली की तरह चकाचौंध पैदा करती हैं। नाक का बेसर (बुलाक) भी......उसके आगे मैं संकोच के मारे देख नहीं पाता।

दूसरे क्षण गीत का स्वर सुनाई देता है। हां... यह मेरी पत्नी ही गाती है :—

" कोच पर बैठ कर हम
बीच की सैर करेंगे। "

कौन से राग में क्या गाना है, नहीं मालूम। किसी राग में कुछ गाना है। मैं सोचता हूं कि उसको छोड़ कर हम कब उठेंगे और भागेंगे? फिर भी उस बेसुरे स्वर में, श्रुति-लय-रहित उस गाने में मेरा मन किसी तरह लग जाता है और गीत के उन शब्दों को गुनगुना कर रटने लग जाता है।

गाना खतम हो गया। चट से उसने पान-सुपारी की थाली मेरे सामने रख दी और सामने बैठ गयी। इतने में मैं भी उठ बैठा और बाहर जाने को उद्यत हुआ। एक क्षण के लिये उसकी आंखें मेरी आंखों से मिल गयीं। उस दृष्टि में कौन-सा जादू था? उसकी आंखों में ऐसी चंचलता कहां से आयी? उसकी दृष्टि मुझसे कौनसा सवाल कर रही थी? भविष्य के दुखमय जीवन की वह चेतावनी तो नहीं थी?— मेरा मन गहरी हमदर्दी से भर गया। और उन आंखों को घड़ी-दो-घड़ी देखते रहने की तीव्र इच्छा हुई। लेकिन जब मैं एकबार उठ गया तो फिर कैसे दुबारा बैठूं? मैं तो दामाद था न?

३

गायक मोहन राग में गाता है। उसका साफ गला बिना किसी तरह की घरघराहट या करकराहट के अलापता है और सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर चढ़ता जाता है।

बड़े ही गांभीर्य के साथ सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ने वाले राग विन्यास का वह उतार-चढ़ाव ताना मारता-सा मुझे लगता है। " हे क्षुद्र मनुष्य प्राणी ! छोटे बच्चों का बालू का घरौन्दा बनाना तुमने देखा है? जब उनके बनाये बालू के घरौन्दे टूट कर मिट्टी में मिल जाते हैं तो वे बहुत दुख अनुभव करते हैं। किन्तु दूसरे ही क्षण अपना दुख भूल कर फिर उसी मिट्टी में घरौन्दा बनाना शुरू कर देते हैं। जरूर तुमने बच्चों का यह खेल देखा होगा। उसी तरह तुम अपने छोटे मोटे सुख-दुखों पर सुखी-दुखी हो कर इस नश्वर क्षुद्र जीवन का रोना क्यों रोते हो?"—

इतना सुनना था कि मैं अपना होश-हवास खो बैठा। लेकिन मेरी अंतस्चेतना जाग्रत हो उठी थी और अपने विचार में लीन थी।

वही शादी हाँ, मेरी ही शादी की बात बता रहा हूं। बड़े बुजुर्गों ने मिल कर जिस विवाह शुभ मुहूर्त को निर्विघ्न संपन्न होने के लिये आशीर्वाद दिया था, उसी मेरी शादी — अर्थात् चिरंजीवी

(शेष पृष्ठ १०६२ से आगे पढ़िये)

के हास परिहासों से स्त्रियां वर और वधू को लज्जित करती हैं। उसमें एक खेल है कि वधू हाथ में पान-सुपारी की थाली लेकर पति के हाथ में देने का प्रयत्न करती है। उस वक्त स्त्रियां उसे गाने को विवश करती हैं। सलज्जा वधू संकोच के कारण चुप्पी साधती है तो भी छोड़ती नहीं। जब तक वह गाना न गाये तब तक वर थाली नहीं ले पाता। "पथ्यम्" उस अवसर पर गाये जाने वाले गीत को कहते हैं, जिसमें हास-परिहास की बातें कूटकूट कर भरी रहती हैं। इसी तरह वर को भी विवश किया जाता है। अगर चार दिनों की शादी हो तो रोज शाम को यह "नलंगु" होता है।

राजगोपालन् और सौभाग्यवती सुन्दरम् के विवाह महोत्सव—की ही बात बता रहा हूं।

विवाह का चौथा दिन था। रात के आठ बजे होंगे। उस दिन रात को वर-वधू का जुलूस निकलने वाला था। उसके लिये शहर से "बैंड" आया था; दो प्रसिद्ध शहनाई बजाने वाले आये थे। इतना ही नहीं, नाच का भी इन्तजाम था। अप-टु-डेट ठाठ-बाठ का सामान सजाया गया था। ये सारी बातें सोचते हुए मुझे बड़ी हंसी आयी। क्योंकि उस गांव में कुल अट्ठाईस ही घर थे। इस लिये एक ही गली थी। इस गली का एक चक्कर लगाना ही जुलूस के नाम से पुकारा जाने वाला था। चाहे हम जितनी ही धीमी चाल क्यों न चलें, पन्द्रह मिनट में इस सिरे से उस सिरे तक गली में हो आ सकते हैं। इन थोड़े से क्षणों में सारे के सारे बाजे वालों को अपनी ज्ञात-अज्ञात सारी कला व सामर्थ्य दिखा देना चाहिये—यह कहा जाय तो किसे हंसी नहीं आयेगी? लेकिन यह सोचते हुए मुझे अपार हर्ष और गर्व होता था कि यह सारा का सारा प्रवन्ध मेरे लिये ही तो है।

चार दिनों की चहल पहल में मैं अपना खाना-पीना तक भूल गया। विवाह के मन्त्र, पवित्र होम के धुएं, भीड़ की चहल पहल आदि ने मिल कर मेरी भूख को भगा दिया था। लेकिन, उस दिन न जाने क्यों, मुझे खूब भूख लगी थी। हो सकता है कि शादी के कोलाहल से अगले दिन से छुट्टी मिल जायगी — इस खुशी की वजह से मुझे भूख लगने लगी हो। इस लिये मैंने रसोईघर में प्रवेश किया। वहाँ जो स्त्रियों की एक बड़ी भीड़ थी, उसकी जरा भी परवाह किये बिना, केले का पत्ता ले आया और खाने बैठ गया।

झट-से मेरी बुआ मेरे पास दौड़ी आयीं और कहा, "क्यों राजू? यहाँ क्यों बैठ गये? तुमको तो उन्हीं के घर में जाकर खाना चाहिये था।"

मेरी बुआ का इशारा मेरे ससुराल की ओर था। मैंने उनकी बात की जरा भी परवाह किये बिना कहा, मुझे तो बड़ी भूख लग रही है बुआ। तुममें से कोई परोसो तो परोसो। नहीं तो मैं खुद ही उठा कर परोस लेता हूं।"

इतने में स्त्रियों के समूह ने मुझे आ घेरा और अपने व्यंग्य-बाणों से मेरी दिल्लगी उड़ाना शुरू कर दिया।

"अगर ऐसी जल्दी है, तो अपनी बीबी को क्यों नहीं बुलाते और कहते कि मुझे खाना परोसो।"—उस भीड़ में से किसी ने कहा।

किसी दूसरी ने कहा, "यहाँ मत खाओ। तुम्हारी बीबी बेचारी, तुम्हारी राह देखती होगी!"

"वह अपनी स्त्री से सारी बातें कह आया होगा। कल 'नलंगु' ही में मैंने देख लिया!"

उनकी इस तरह की दिल्लगी की बातों ने मुझ भूखे को नाराज होने को बाध्य कर दिया।

मैंने गुस्से से भर कर ऊंचे स्वर में पूछा, "कोई खाना खिलाओगी कि नहीं?" तब थोड़ी दूर पर बैठी मेरी दादी का आज्ञा-भरा स्वर सुनाई दिया—"यह कैसा परिहास है? बच्चा कहता है कि भूख लगी है। तुम लोग खाना खिलाती हो कि मजाक करती हो?"

दादी की बात सुनी तो मेरी बुआ ने मुझे खाना परोस दिया।

मेरा खाकर उठना, और मेरे मित्र रामदुरै का मुझे खोजते हुए आना दोनों एक ही समय हुए।

"क्यों राजू, तुमने खाना खा लिया?"

"हाँ, खा लिया! बड़ी भूख लगी थी। हाँ, और तुमने?"

"अभी नहीं खाया! दोपहर को कुछ ज्यादा हो गया—"

हम दोनों बातें करते हुए ऊपर पहुंचे। अच्छा हुआ कि वहां कोई नहीं था। सभी विवाह वाले घर को खाने गये हुए थे।

रामदुरै ने शुरू किया, "रात का जलूस क्या ही अच्छा . . ."

"हाँ, जुलूस की क्या पूछ रहे हो? मुझे तो कुछ नहीं भाता। मेरे मन को यही चिंता खाये जाती है कि कब इस गंदे गंवई-गांव से चलने का मौका मिले और हम आराम की सांस लें।"—मैंने उसकी बात काटकर कहा।

"यह कैसी बातें करते हो? इसी गांव में तो तुम्हारी ससुराल है।"

"यह तो एकदम गंदा गँवारू गांव है।"

दुरै ने कहा, "उस कहावत की तरह, विवाह और फांसी अपने अपने भाग्य और प्रारब्ध के

अनुसार ही होगा । राजू, दुखी होने से कोई फायदा न होगा । फिर भी मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि तुम्हारा भाग्य ऐसा खोटा निकलेगा ।"

वह अंग्रेजी में बात कर रहा था । मैं चुपचाप बैठा सुना रहा था ।

उसने पूछा, "तुमने मुझे लिखा था कि मैं लड़की देखने जा रहा हूँ । क्या तुम नहीं गये ?"

"नहीं, मेरे पिताजी ने कहा कि मैं जाऊंगा । आखिर वे भी नहीं गये । यह सब मेरे मामा के कारण हुआ । उसने कहा कि मैंने लड़की देख ली है । इस तरह सबोंने मिलकर . . ." मैं बहुत ही धीमे स्वर में बोल रहा था और हाँ, अंग्रेजी ही में बोल रहा था । क्योंकि मैं भी बी. ए. पास था न ?

इसके पहले, मेरे मन में किसी तरह के सोच-विचार ने घर नहीं किया था और वहाँ शुद्ध शून्य छाया छाई हुई थी । उसमें अब अंधकार छा गया । मैं तरह तरह के विचारों में डूबा हुआ था । अनेकों दृश्य और घटनाएँ मेरी आंखों के सामने से गुज़रे । उन घटनाओं में जिन जिन लोगोंने भाग लिया था, वे सब चित्रपट पर पड़नेवाले छाया-चित्रों के समान मेरी आंखों के सामने आये ।

इसके पहले विवाह संबन्ध स्थापित करने के वास्ते मैं जिन जिन लड़कियों को देखने गया था, वे चित्र उनसे संबन्ध रखते थे । . . . उनमें एक लड़की काली कलूटी थी, इसलिये वह मुझे पसन्द नहीं आयी । . . मैं उनसे विदा होकर गाड़ी पर चढ़ने जा रहा हूँ । उस लड़की के पिता मुझे विदा कराने गाड़ी तक आते हैं और जब मैं गाड़ी पर चढ़ बैठता हूँ तो कहते हैं कि अच्छा हो आइये । यह कहकर आख़िरी बार मेरा मुंह देखते हैं । उस समय की उनकी दृष्टि को मैं अब भी भूल नहीं पाया हूँ । एक अपराधी—अनजान में अपराध कर देनेवाला पाठशाला का विद्यार्थी जैसे अध्यापक को अपराधी आंखों से देखता है, वैसे;—नहीं, नहीं, उससे भी कई गुना अपराधी भाव उनकी दृष्टि में झलकता था । नहीं, यह भी गलत सिद्ध होगा । हाँ, उनकी उस दृष्टि के लिये यही उपमा ठीक बैठ सकती है । हत्या का अपराधी जिस उत्सुकता और आतुरता से फैसला सुनानेवाले न्यायाधीश के होंठ हिलने की राह देखता है, वैसे उन्होंने मेरी ओर देखा । लेकिन उस वक्त मुझे उनका वह मुखड़ा देखने में बड़ा मज़ा आता था । इस तरह कितनी ही जगहें हो चुकीं । हालाँ कि उन सभी नाटकों का कथानायक मैं ही हूँ, फिर भी अब अलग खड़ा होकर, जब मैं उन सब दृश्यों को देखता हूँ मैं अपने को भी उसमें पाता हूँ । वह हालत, अब भी सोचता हूँ तो बड़ी विचित्र-सी लगती है ।

लेकिन, आखिर जिस लड़की से मेरा विवाह तय हुआ था, उसे मैंने जाकर नहीं देखा । इसका मुख्य कारण थीं, मेरी बुआ । मेरी माता के स्वर्ग-वास के बाद, हमारे घर के अंतरराष्ट्रीय निर्वाह की बागडोर मेरी बुआ के हाथ में चली गई ।

"तुम कितनी बार लड़की देखने हो आये हो । पर अब तक कहीं तुम्हारा विवाह पक्का नहीं हुआ है । इसी तरह आनेवाली लक्ष्मियों को इन्कार करते जाओ तो आखिर तुम्हारी शादी ही न हो और आजीवन ब्रम्हचारी रह जाना पड़े । तुम्हारा मामा ही तो कहता है कि मैंने लड़की देखी है । वह थोड़े ही झूठ बोलेगा ?"—बुआने अपने पक्ष की पुष्टि के लिये कितने ही उदाहरण व उद्धरण दिये तो एक तरह से विवाह का विवाद समाप्त हो गया ।

एक तरह से मैं भी लड़की देखने के धंधे से ऊब गया था ।

पता नहीं कि मैं कितनी देर तक इन कल्पनाओं के नाटक में डूबा रहा । रामदुरै ने कहा, "क्यों राजू देरहो रही है । थोड़ी देर सो लो । बारह बजे उठकर जुलूस में जाना होगा ।"

रामदुरै की बात सुनकर मैं मानों निद्रा से जाग पड़ा और कहा, "मैं जुलूस में नहीं जाऊंगा ।"

"बहुत खूब ! तुम्हारे बिना जुलूस ही कैसा ?" वह हंस पड़ा ।

"कोई भी जाये ! मुझे क्या ? मैं नहीं जाने का । मेरा इस विवाह से कोई वास्ता नहीं ।"

अरे भाई ! यह क्या बक झक करते हो ? ये सारी बातें चार दिन पहले कही होती तो अच्छा होता ।"

मैंने गद्‌गद होकर कहा, "दुरै, मेरा मज़ाक मत करो । जब मेरा मन ही दुखी है, तब तुम भी इस तरह दिल्लगी करने लगो तो मैं क्या करूँ ? मेरा मन किसी से कहे बिना यहाँ से भाग जाने को करता है ।"

इतने में ऊपर किसी के सीढ़ी चढते हुए आने की भनक सुनाई दी तो हमारी बातचीत वहीं की वहीं बन्द हो गयी। थोड़ी देर चंदन की सुगन्धि हवा में उडती हुई आयी। उसके साथ ही खाने के लिये जो झुंड़ गया था, वापस आ गया और ऊपर का सारा कमरा खचाखच भर गया। हास-परिहास की वातें बढ़ीं। उस हास-परिहास में फँसकर मेरा दम घुटने लगा।

रामदुरै और मैंने रात के प्रथम प्रहर में जिस बात पर वहस की थी, उसका सिलसिला तीसरे प्रहर को जारी हुआ। लेकिन रामदुरै की जगह मेरे मामा थे।

"अरे वृहस्पति! चार दिन पहले ही तुम्हारी अक्ल में ये सारी वातें क्यों नहा आया?"—मेरे मामा ने गुस्से से भरकर पूछा।

मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि तुम्हीं मेरे साथ इस तरह की चाल चलोगे!"—मैं क्रुद्ध नाग की तरह फुफकारा।

मेरी बात सुनना था कि उसकी जवान कट गयी।

इस बीच में मेरे पिताजी बोल उठे," राजू, तुम तो कोई बुद्धू नहीं हो। थोड़ी अक्ल से काम लो।"—उन्होंने अंग्रेजी में ये वाक्य कहे।

इतने में मेरी बुआ की अगवानी में स्त्रियों की एक बड़ी भीड़ घटना-स्थल पर आ पहुंची।

"बहुत खूब! यह भी कोई बात है? जरा सांवली है, तो क्या हुआ? वह न तो लंगड़ी है, न लूली है, न बीमार है! अगर ऐसी नुक्ता-चीनी की सूझी तो विलायत जाते और एक मेम को पकड़ लाते। गोरी गोरी उसकी सूरत होती।"

बुआ की यह बात सुनना था कि मेरे मुंह में मुहर लग गई। जब स्त्रियों से बहस करना होता था तो मैं पहले ही हार मानने को तैयार हो जाता था। उसपर बुआ की बात हो तो फिर पूछना ही क्या?

मैं जुलूस में चला गया।

जहां देखो, एकदम वेले की खुशबू आ रही थीं और उसपर चन्दन की भी महँक। अलावा इसके, आँखों को चौंधिया देने वाली 'गैस लाइट' की रोशनी भी थी। बाजों के बेसुरे स्वर से कानों के परदे फटे जा रहे थे; बुद्धि भ्रंश होती जा रही थी। मेरा मन एक दम विचलित हो उठा। जुलूस के वे चार घंटे मेरे लिये मानों कैदखाने में बीते।

प्रातः काल पांच बजे के करीब जुलूस घर के द्वार पर वापस आया। मैं इसी की राह देख रहा था कि जुलूस कब द्वार पर वापस आये और मैं उतरूं! उसका रुकना था कि मैं धम्म से नीचे उतरा। पर यह क्या? मैं पीछे से खिचकर ठिठक कर रुक गया! फिर कर देखा तो मेरी धोती का एक सिरा और उस लड़की की साड़ी का सिरा दोनों एक केले के रेशे से बँधे पाये। यह छोटी लड़कियों की नटखटी थी। चार-पांच लडकियाँ मिलकर कहकहे मारकर हँसने लगीं। मेरे गुस्से का कोई ठिकाना नहीं रहा। "चुडैल हैं!" गुनगुनाते हुए मैंने रेशे को चट से तोड़ डाला।

मैं जब गुस्से में तेजी से मुडकर जाने लगा तो उस लड़की का मुख मेरी आँखों में आया वे आँखें! अहा! वे कितनी बड़ी थीं! उन गोल गोल काली काली आंखों ने मेरे मन में एक कँप कँपी उत्पन्न कर दीं। न मालूम मेरी किस नाड़ी को पकड़कर मेरे सारे शरीर को उन्होंने कंपा दिया। दूसरे ही क्षण, मैं तनकर खड़ा हो गया और तेजी से कदम बढ़ाता हुआ अन्दर चला गया।

४

गायक छोटी छोटी रागिनियों को एक के ऊपर एक करके सजाता जा रहा है। वह इतनी जल्दी जल्दी रागिनियों को एक एक करके क्रम से अलापता जा रहा है, मानों कोई व्यक्ति अत्यन्त आवश्यक काम पर जल्दी जल्दी कदम बढ़ाता जा रहा हो।

मेरा जीवन भी मेरे मनश्चक्षु के सामने से उन्हीं रागिनियों के वेग में गुजरता है। कुछेक वर्ष आँखों के सामने से गुजर कर ओझल हो गये।

अब मेरे विवाह को हुए आठ साल गुजर गये। पर अब मैं अपने विवाह की बातें एक तरह से भूल-सा गया हूं। उन आठ सालों में कितने ही परिवर्तन हो गये।

जब तक मेरे पिताजी जीवित रहे तब तक मैं इधर उधर मनमाना घूमता रहा। मुझे इसका भान

तक नहीं हुआ था कि चिन्ता किस चिड़िया का नाम है ? मेरे या मेरे विवाह के संवन्ध में मेरे सामने बोलने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। मेरे पिताजी...हाँ उनकी भी हालत क्या थी ? क्या वे यह नहीं जानते थे कि मैं उस अवस्था को पार कर गया हूं, जिसमें मुझसे वे जवाव तलव कर सकते हैं ?

उनका स्वर्ग वास हो जाने पर, जीवन-यापन के लिये नौकरी की तलाश करने का भार मेरे ऊपर आ पडा। कितनी ही जगहों पर मैंने कितनी ही नौकरियाँ कीं। आखिर रेलवे की नौकरी में ही मैं स्थिर रह सका। मिनिट के हिसाब से ठीक समय पर आने जानेवाली रेलगाड़ियों की तरह मैं भी उस रेलवे कंपनी का एक अंग वन गया था।

काल की वाढ़ में अस्थिर होकर इधर उधर भूलने भटकनेवाला मेरा जीवन भी एक क्रम–वद्ध वन्धन में वंध गया।

लेकिन काल तो अखण्ड है। उसको वाढ़ कहकर पुकारना कहाँ तक उचित हो सकता है ? काल-की उस वाढ के लिये असल में कोई गति या चाल भी है ? अगर होती तो वह कव रुकती ? उसके वाद काल की वाढ़ क्या पहले ही जैसे प्रवाहित होगी ?

काल अनन्त है। उसके लिये न तो कोई गति है; न कोइ रुकावट। काल एक समुद्र के समान है। वह असीम है; अपार है और अथाह ह। यहीं नहीं, वह नित्य और निरन्तर हैं।

उस महा ब्रह्माण्ड में मेरा अस्तित्व अति अल्प है; अति तुच्छ है और अत्यन्त क्षुद्र है। वह महा ब्रह्माण्ड कहाँ ? मैं—अति तुच्छ मनुष्य कहाँ ? मेरे समान कोटि—कोटि जिसकी गिनती करना हमारे बूते से वाहर है—अल्प जन्तु आते हैं और चले जाते हैं —

५

वीणा वजाने वाला जैसे ढीली पर्डा हुई विखरी वीणा-तंत्रियों को पहले अच्छी तरह कस लेता है, और सुर मिलाकर वजाने लगता है, वैसे ही गवैये के उस दैवी संगीत ने मेरे मन के तारों को एकत्र करके अपनी ओर आकर्षित किया।

मेरे मन की पूछी जाय तो यही कहूंगा कि उस दिन मैं अपने अफसर के घर इसलिये खाना खाने नहीं गया था कि उनके सुपुत्र की वर्षगांठ थी। वल्कि इसलिये कि वे मेरे अफसर थे।

रातको भोजन करने तक मेरा मन ठीक ही रहा। परन्तु भोजन हो जाने पर न जाने क्यों, मेरा मन व्यग्र व विचलित हो उठा। एक अज्ञात और अकारण भीति मेरे मन में घर कर गयी थी।

भोजन करते करते दस बज गये थे। इसलिये उन्होंने कहा कि अब घर जाने की क्या जरूरत ? यहीं लेट जाओ। मैंने उनका कहा माना, इन्कार नहीं किया। ऊपर बाहर की तरफ जो कमरा था, वह मेरे लिये खाली कर दिया गया। वह खासा हवादार कमरा था। घर भी काफी बड़ा था। जिनका वेतन पांच-छह सौ रुपया हो, उनके घर के बारे में क्या कहना ?

लेटा तो मुझे बहुत देरतक नींद ही नहीं आयी। एक अवर्णनीय भीति और अशान्ति मन में छायी हुई थी।

मेरा ख्याल है कि मुझे लेटे करीब एक घंटा हुआ होगा। मैंने गिना कि कहीं किसी घड़ी ने 'टन् टन्' करके बारह वजाये। जिस कमरे में मैं लेटा हुआ था, उसी कमरे की तरफ एक लालटेन की रोशनी आयी। धीरे धीरे वह रोशनी बहुत ही निकट आ गयी। मैं उठकर वैठ गया और गले से खांसने की सी आवाज़ निकाली। सीधे वह रोशनी मेरे ही कमरे की तरफ बढ़ी।

थोड़ी देर में जो स्त्री लालटेन लेकर मेरे कमरे के अन्दर दाखिल हुई थी, उसने एक ओर ज़मीन पर लालटेन रख दी और मेरे सामने आ खड़ी हुई। मैंने चौंककर अपना सिर ऊपर उठाया।

मेरा शरीर थरथर कांपने लगा।

न जाने क्यों, उसको उस अवसर पर वहाँ पाकर मुझे आश्चर्य ही नहीं हुआ।

उसकी देह बहुत ही दुर्वल और कूवड़ थी। उसका मुख एकदम श्वेत हो चला था और मुख की सारी कांति कहीं उड़ गयी थी। सूर्योदय के थोड़ी देर पहले जैसे गोलाकार चांद का मुख पीला-धुंधला और शोभाहीन हो जाता है, वैसे उसके मुख की आभा शोभाहीन हो चली थी। अहा ! वे वड़ी वड़ी हिरनी की-सी आंखें !... उन आंखों के सामने मैं सिकुड़कर वैठा रह गया।

वह क्यों वहाँ आई? कैसे आई? यह सब अफसर का षडयन्त्र तो नहीं है? हाँ, तब क्या अफसर उसका बन्धु है?—थोड़ी देर बाद मेरा मन इन प्रश्नों का उत्तर खोजने में लगा।

मैं विचार में उलझने ही को था कि झट से वह मेरे परों पर गिर पड़ी। यह क्या? उसकी आंखों में ये आंसू क्यों?...

मेरा दिल और हृदय धड़धड़ करके धड़कने लगे। मेरा शरीर ऐसा थरथर क्यों कांपता है? हाय वह पापी ऐसा क्यों गाता है? ऐसा क्यों मुझे जान से मारता है? उफ, हाय। कैसी मिठास है! कैसी मिठास है!

यह कौनसा राग है? कांबोदी? ऐसा भी कोई कांबोदी गा सकता है।

टेढ़े टेढ़े होकर ऊपर ऊपर जाता है! आकाश और भूमि को मिलाकर जाला बुनता है क्या?

कैसी मीठी तान खींचता है? कैसा सुरीला गला पाया है इसने? और कैसा गांभीर्य भी?

अरे बापरे! कैसी मिठास है!

हाँ, मिठास और दुख में क्या संबन्ध है? यह मिठास मेरे दिल में इतना दरद क्यों पैदा करती है?

पेट के अन्तराल से निकल कर हृदय को झकझोरते हुए ऊपर उठने वाले उस स्वर में यह कैसा शोक है? क्या वह अपने जीवन के सारे दुख-दर्द को दिल से बाहर निकाल फेंकना चाहता है? उसको ऐसा कोनसा दुख है कि वह अपना दिल निचोड़कर बाहर रखे और गाये!—हाँ, परन्तु जीवन में ऐसा कोन है जिसको दुख की छाया तक को देखने का मौका न मिला हो?

मुझे इस तरह तिल तिल करके क्यों मारा जाय? उसको और मुझे छोड़ इस अखिल जगत् मे क्या कोई दूसरी जीवराशि ही नहीं है? हाय! वह मिठास!......यह वेदना मुझसे सही नहीं जाती!......

पेड़ पौधे बिना हिले डुले अचल होकर खड़े हैं। क्या उनके भी कान होते हैं? वह चन्द्रमा भी तो अचल खड़ा है! क्या उसको भी संगीत का ज्ञान है?

वह देवी स्वर स्वर्ग की वीथी पर खड़े होकर अपने दोनों हाथों से सुख के छींटें उलीच रहा है। मुझे, न जाने कहाँ, ऊंचे स्वर में बुला रहा है। मेरी आंखें चौंधियाती हैं। मैं अपनी अल्पता को अपने से अलग नहीं कर पाता। मैं तो क्षुद्र से क्षुद्र हूँ; तुच्छ से तुच्छ हूँ। कीड़े की तरह नीचे जमीन पर रेंग रहा हूँ। देव-लोक से सुख के जिन मोतियों की वर्षा होती है, उन्हें चुनकर सूंघने के विचार से ज़मीन पर झुकता हूँ।

मन्त्र मुग्ध-सा होकर, अपना आपा भूल कर मैं उठने का प्रयत्न करता हूँ। थोड़ी देर बाद अपने कमरे में जाता हूँ। वहाँ एक और फटी चटाई है। तकिये की रुई बाहर अपना मुँह निकालने की सोच रही है। उस पर मेरी पत्नी सुदरम् लेटी हुई है। हड्डी-निकली उसकी दुर्बल देह देखी नहीं जाती। वह एक तरफ़ करवट लेकर अपने दुर्बल शरीर को सिकोड़ कर पड़ी सोई है। उसकी उस सिकुड़न में मेरा लड़का पड़ा है। बस, यही समझिये कि और एक अस्थि-चर्म-मय कंकाल पड़ा है। उसका बे-दांती मुख माँ का सूखा स्तन पकड़े हुए है। जैसे हम इस निस्सार जीवन को पड़डे हुए हैं।

उस बच्चे ने क्या देख लिया कि उसके मुख पर इतनी खुशी खेलती है? तब क्या उसको भी दुख-दर्द सहना होता है?

माँ और बेटे को देखता हुआ मैं खड़ा हूँ।

मेरे साथ विवाह बन्धन में बंधकर तथा मेरे जीवन में आकर उसने कौनसा सुख पा लिया—या मैंने ही ऐसा कौनसा सुख पा लिया, उसके साथ विवाह बन्धन में बंधकर? नहीं तो हमने ऐसा कौन सा बड़ा दुख ही पा लिया?

किसी चीज़ की अपेक्षा रखें—तभी तो सुख या दुख पैदा होगा? जब किसी चीज़ की कोई अपेक्षा नहीं है, तब सुख कहाँ या दुख कहाँ? पर यहाँ कौन किस चीज़ की अपेक्षा कर सकता है?......

न जाने, उस निशाचर गवैये ने कब अपना मुँह बन्द किया? जब मेरी आंखें खुलीं तब सवेरा हो गया था। मेरा बेटा अपने एक पैर को अपने मुँह के निकट ले गया था और दूसरे पैर से मुझे लात मार रहा था और जोर से, न जाने, क्या कह रहा था! मैं भी जल्दी जल्दी उठा और घोड़े की तरह अपने काम में जुतने के लिये अपने को तैयार करने लगा।

तेलगु साहित्य :

सुमन जगत्

[श्री. वाविलाल सोमयाजुलु]

जगत का सृष्टा महान् कवि है । उसकी भावना के मूर्त रूप ही सुमन हैं । 'मानव के मन तथा नेत्रों के लिए आह्लाद पहुँचाना ही उसकी दृष्टि में, सुमन-सृष्टि का परम प्रयोजन है ।' यह एक तत्व द्रष्टा का कथन है । 'सुप्रीतं मन: अश्वति सुमन:' भारतवासी इस सत्य-सुन्दर मर्म को समझ गये हैं । शब्द–साधकों ने फूल का नाम 'सुमन' इसी विचार से रखा और देवराज इन्द्र के पुष्पोद्यान का नाम 'नंदन' ।

पुष्प-रहित देश गृहिणी-विहीन गृहस्थी की तरह, मुग्ध मोहन हास से वंचित मुख की तरह निष्प्रभ होता है । खिल खिल हँसने वाले, अनंत कल्पना के लिए आधार भूत कुसुमों को किस जगत् के, किस कोने के कौन लोग पसंद नहीं करेंगे ? उनकी विभूति के लिए कौन लालायित नहीं होगा ? यही कारण है कि एक सहृदय वाणी बोल उठी– 'फूल परमेश्वर के हास के प्रतीक हैं ।' इतना ही नहीं वह प्रकृति-सुन्दरी के सहज अलंकरण हैं ।

एक जगह इंग्लिश कवि टेनिसन ने कहा, ऋतुएँ समय देवी की कुमारियाँ हैं। पृथ्वी के रंगमंच पर एक एक ऋतु-सुन्दरी कुछ समय तक नर्तन कर, फिर नेपथ्य के उस ओर तिरोहित हो जाती है । एक एक नर्तकी एक एक विशिष्ट प्रकार के फूलों पर सौ बार मुग्ध होती है; उनको छोड़ अन्य वस्तुओं का न तो वह स्पर्श करती है न उपभोग ही ।

एक भावुक की वाणी गदगद हो उठी– यदि गुलाब गाना, नील कमल अंतर के मर्म बतलाना और करवीर लतांत कलनाद करना जानते तो पुष्प-जगत् क्या ही रमणीय बन जाता ! कोई दूसरा पागल प्रलाप कर बैठा– बोलने में असमर्थ हे सुमनो ! तुम अदभुत भाष्यकार और प्रवक्ता हो । हमें नित्य भावामृत प्रदान करनेवाले चंद्र-चषक हो !

यूनानी कला के सुन्दर नमूने, एक मिट्टी के पात्र पर दृष्टि पड़ते ही सौंदर्योपासक कीट्स की आत्मा गान कर बैठी–श्रवण-ग्राह्य संगीत मधुर है, तो अश्रुत गीत मधुरतर होते हैं । इसी प्रकार पुष्प विना अधर खोले ही बोल सकते हैं । विना गायन किये ही श्रोताओं को मोहित कर सकते हैं । किंतु फूलों की बोली समझने के लिये तो सुमन-हृदय ही अपेक्षित है । महाकवि वर्ड्स्वर्थ ने कहा था– यदि एक साधारण घास का फूल भी हिलता है, तो अश्रुमोचन कराने में समर्थ अनंत भाव मेरे हृदय में स्पंदित हो उठते हैं । श्री नंडूरि सुब्बाराव की "येंकि [१]" फूलों की बोलियाँ जानती है; चमन के सुमनों का हृदय भली भाँति समझ लेती है ।

---

[१] 'येंकि पाट्लु' श्री नंडूरि सुब्बाराव का सुंदर देहाती-काव्य है। उसकी नायिका 'येंकि' भोली भाली, पवित्र प्रणय की प्रतिमा, ग्राम-वधू है ।तेलुगु साहित्य में इस कृति का अपना विशिष्ट स्थान है ।—अनुवादक.

शंभु स्वयंभु हरयो हरिणेक्षणानाम्
येनाक्रियन्त सततं गृहकर्म दासाः
वाचामगोचर चरित्र विचित्रिताय
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय !
(भर्तृहरि)

कहते हैं कामदेव ने सृष्टि-स्थिति तथा लय कारक ब्रह्मा विष्णु महेश इन त्रिमूर्तियों को 'गृह-कर्मदास' बना कर ही छोड़ा था। कुसुमायुध होना ही इसके लिये कारण है। स्वयं अनंग (अशरीरवाला) हो कर भी तीनों लोकों को मुट्ठी में कर बैठा अपने पंचशरों के बल पर। इसे अतिशयोक्ति ही कैसे कहा जा सकता है? किंतु आचार्य शंकर जैसे दिग्विजयी और परम पिता शिव के उपासक महात्माओं ने तो कामदेव की विश्व विजयिनीशक्ति तथा उसके पंचशरों के प्रभाव का तिरस्कार करके, सारा श्रेय माता पार्वती को दिया है।

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी
पंचविशिखा,
वसंत स्सामंतो मलयमरुदायोधनरथः।
तथा प्येकस्सर्वं हिमगिरिसुते
कामपि कृपा—
मपांगात्ते लब्ध्वा जगदिदमनंगो
विजयते।

फिर उतनी शक्तिमती माता पार्वती को भी कविकुलगुरु कालिदास ने, शिव के समीप भेजते समय, पुष्प-स्तबकों के भार से नम्र जंगम-लतिका बना डाला है।

आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्याम्
वासो वसाना तरुणार्करागम्
पर्याप्त पुष्पस्तबकावनम्रा
संचारिणी पल्लविनी लतेव ॥

प्राच्य देशवासी प्रसूनों के पीछे प्राण तक दे देने को तैयार रहते हैं। वे फूलों के साथ कभी वैवाहिक संबंध जोड़ बैठते हैं तो कभी वह संबंध तोड़ बैठते हैं। सुमन-हृदय की वे परख रखते हैं; कुसुम-सृष्टि के रहस्य समझते हैं वे! कहते हैं, कि चीन देश के किसी राजा ने विहग-दम्पतियों के बिहारों के शिकार बनने से रोकने के विचार से, अपने उद्यान की पुष्प-वल्लरियों में किंकिणियाँ बँधवाई थीं; उन्हें दरबारी गवैयों का संगीत सुनवाकर आत्म तोष पा लिया था। बौद्ध-धर्म के अनुयायी किसी दूसरे चक्रवर्ती ने तो अमिताभ की आराधना के समय, डंठल पर झूमने वाले लतांत को देख कर ये उदगार प्रकट किये थे—'नखाग्र से नोचकर, अश्रुजल से आर्द्र बनने वाले तुझे मैं भेंट के रूप में चढ़ा नहीं सकूँगा। ऐ सुमन! तू उसी वृंत पर मत्त, मधुर हास में मगन रह कर, भूत, वर्तमान तथा भावी तथागतों के पवित्र स्थान को प्राप्त हो जा!

'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' इन चारों में से भारतवासी सुमन को ही देवाराधना के लिये प्रधान मानते हैं। ब्याह—शादी में पुष्प—रथ सजाये जाते है। मुग्ध—यौवना नव-वधू के ससुराल जाते समय, वहाँ सुमन-सेज सज उठते हैं। वह सुहागिन साल भर के लिये 'फूल—पान' का व्रत रखती है। जब तक पति जीवित रहता है, सुमन-जगत् उस कल्याणी के साथ चोली-दामन का नाता लगाये रहता है। मरने पर श्मशान तक उसका अनुगमन करता है। ललना—लोक के कबरी—श्रृंगार में कुसुम—बालाओं का खास हाथ रहता है। उनकी कुहुक व चटक श्रवण-मधुर होती है! दिग्विजय कर लेने के पश्चात् चक्रवर्ती जब अपनी राजधानियों में वापस जाते हैं, तो राजवीथियाँ, चौक वगैरह सुमनालंकृत हो, नयनाभिराम

हो उठते हैं। शुक्लाभिसारिका स्वच्छ चमेलियाँ, श्वेतपरिधान तथा शुभ्र अंगराग धारण किये उज्ज्वल-जोत्स्ना-वीचियों में 'सित नागिन' सी सरकती जाती हैं । ऐसी किसी भी प्राचीन नगरी की कल्पना नहीं की जा सकती, जहाँ फूल बेचनेवालियाँ अपनी मस्तानी मंद गति से दर्शकों का धैर्य न डिगाती हों ! रसिक जनों के प्रणय संबंधी नर्म-गर्भित वचनों के लिये प्रसून प्रसिद्ध संकेत व प्रतीक हैं। यदि कोई रसज्ञ-शेखर पूछता है कि 'सखी, पुन्नाग फूल गोद में क्यों छिपाए बैठी हो ?' तो वचन-विदग्धा नायिका चट से जवाब देती है—इसका जन्म श्रेष्ठ टापू पर हुआ है, फिर भला क्यों न इसका ख्याल सावधानी के साथ किया जाय ।'१.

कामी जन अपने संकेत स्थान व समय की सूचना सुमन-संकेतों द्वारा परस्पर देते हैं। पहले नीलकुमुद दिखा कर, तत्पश्चात् सफेद 'तुम्मी २' (तुम्बी संस्कृत) फूल को दिखाया जाय तो उसका तात्पर्य होगा—'अंधेरा हो जाने पर शिवालय में हमारा मिलन होगा ।' काव्य-गत नायिकायें सुमन-सुधा-सरित् के कूलों को छोड़ अन्यत्र सैर करने नहीं निकला करतीं । शिल्पियों ने 'लीला कमल' से रहित किसी भी राजा की मूर्ति नहीं गढ़ी है।

कवियों ने नायिकाओं के विषय में कुसुम-कोमलता को, सौंदर्य की मान्यताओं में गिनाया है। इस विषय में महाकवि भवभूति दो कदम आगे भी बढ़े । वे तो समूचे नारी-लोक पर इस सुकुमारता का आरोप कर बैठे हैं। केवल प्रबंध-काव्यों की नायिकाओं पर ही नहीं—**"पुरंध्रीणां चित्तं कुसुम सुकुमारं हि भवति"** यह उनका सिद्धांत है। काम शास्त्र के पारंगत तो घोषणा करते हैं कि कुसुम काम-भावना के उद्दीपक साधन हैं । इसका साक्ष्य सभी देशवासी भरते हैं।

किंतु कवि की दृष्टि निराली होती है। उसके लिये फूल काम-व्यापार के साधन मात्र नहीं रह जाते, स्वयं उस व्यापार के आलंबन, अंग बनते हैं। वसंत का सहयोग प्राप्त कर कामदेव ने योगीश्वर शंकर की तपोभूमि में ज्यों ही कदम रखा, सारी स्थावर-जंगम प्रकृति कामोपभोग की दुर्दमनीय उत्कण्ठा से सिहर उठी ! उन क्षणों में पुष्प-लता-वधू—

"पर्याप्त पुष्प स्तवक स्तनाभ्य :
स्फुरत्प्रवालौष्ठ मनोहराभ्य :
लतावधूभ्य : तरवोप्यवापु :
विनम्र शाखा भुज बंधनानि"

बन गई थी।

आकाश सुन्दरी ने गगन कुसुमों से अपना अलंकार कर लिया तो, कविकुलगुरु कालिदास कहते हैं कि अलंकार की कामिनियों ने उन्हें-**हस्ते लीलाकमल मलके बाल कुंदानुविद्धा नीता लोध्रा प्रसव रजसा'** आदि आदि आभूषण बना लिया था।

आदि कवि वाल्मीकि ने भी कुसुमित तरुओं का दर्शन पगड़ी साफा धारियों के रूप में किया था। उनके नायक श्रीराम के लिये वे पीतांबर धारी मनुष्यों से लगे

---

१. रसज्ञ लोग पुन्नाग पुष्प को युवतियों की नाभि के लिए प्रतीक रूप मानते हैं आर कटि तथा नितंब प्रदेश से द्वीप (टापू) । अभिप्राय है।

२. शिवजी की पूजा में इस सब से छोटे व सफेद फूल का सर्व प्रथम स्थान माना जाता है।

—अनुवादक

पुष्पिताग्रान् सुप्त श्रेयान् कर्णिकारान्
सुमंततः
हाटक प्रति संछन्नान नरान्
पीतांबरानिव ।

काव्य-जगत् की नायिकायें उपवनों में विहार करते समय, कवि की दृष्टि में पुष्प वल्लरियाँ बन जाती हैं; और पुष्प-लतिकायें उनका स्थान ग्रहण करती हैं । ऐसा जान पड़ता है, कि पुष्प-लताओं के दोहद-कर्म में उनकी जैसी क्षमता और लोग नहीं रखते हों । वरना वनजाक्षियों के कर-कमल स्पर्श के विना माकंद तरु के पल्लवित न होने, अथवा कोमलांगियों के आलिंगन व्यापार के अभाव में कुरवक के मुकुल-धारण करने में अक्षम रह जाने का कोई कारण नहीं दीखता भ्रमर वेणियों के अपांग वीक्षणों में, न जाने कैसा जादू भरा है, उनका स्पर्श प्राप्त होते ही तिलक पुलकित हो पुष्प धारण कर लेती है ! अशोक तो उस से भी चार कदम आगे बढ़ा हुआ है, वह पायलों की रुन-झुन-सहित कोमल चरणों के घात पर्यंन टस-से-मस नहीं होता । कोकिल बैनियों के गीतामृत-पान के बगैर किसलय-धारण का नाम तक न लेने वाली प्रियालु [१] को यदि कला-प्रिय कहा जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? मुग्ध-हासिनियों की मुखच्छवि पर चम्पक, नर्म भाषिणियों के मधुर हास से नमेरु [२] सीमंतिनियों के सीधु-रस पान से मौलसिरी, मुग्ध-नेत्रियों की मुख-रश्मियों पर सिंधुवार [३], कामिनियों के कर्ण-मधुर वार्तालाप से छक कर [४] कर्णिकार यदि पुष्पित होते हैं, तो सभंवतः यह स्वीकार किये बिना काम नहीं चलेगा कि, ये विभिन्न लता-वृक्ष तथा नायिकायें 'मदन धन्विता' को शिरोधार्य किये 'वात्स्यायनीय दर्शन' के निष्णात हैं !

सुमन-साम्राज्य में रसिक जनों को भौरों की प्रेम–माधुरी उपलब्ध होगी । 'परालिनी मदन तंत्रोन्मादी' बना हुआ एक भृंग अपनी प्राणेश्वरी को 'मकरंदासवमत्त अब्जगृह' में छोड संध्या तक लौट पड़ता है और उस मुकुलित-अब्जगृह में प्रवेश न पाकर पागल की तरह चक्कर काटता रहता है । कोई अन्य भृंगराज मधुर गुंजन करते हुए, 'अहा ! तुम किस कुल की सुन्दरी हो जी ! तुम्हारा सा मादक परिमल अन्य कुसुमों को प्राप्त होना कठिन है !" आदि वचनों द्वारा सुमन-बाला को गुदगुदाता है, तो 'षट्पद प्रणय' का मर्म समझने वाली वह कुमारी यों अपने हृदय को समझा लेती है–"ऐ नादान, रस का लोभी चाल चल रहा है, सावधान ! कहीं उसकी चुपड़ी बातों में आकर अपना सर्वस्व बेंच न बैठना !"

तपस्या करने के अधिकारी ऋषि लोग ही नहीं होते; फूल भी तप करते है । तेलुगु के मधुर कवि भट्ट-मूर्ति की चम्पा गाढतपोमहिमा के द्वारा 'गिरिकादेवी [५]' की नासिका वन गई और उसकी "प्रेङ्खण मालिका मधुकर पुंजों" को दोनों पार्श्वों में खड़ा कर, उनसे खूब सेवायें करा लीं !

किसी तत्त्वदर्शी ने कहा था – ब्रह्मा ने रमणीयता के साथ कुसुम-सृष्टि तो कर दी है, किंतु उनमें आत्मा की प्रतिष्ठा करना भूल गया है । यह कथन वास्तविकता से कितना

१, २. लता विशेष ३, ४ वृक्ष विशेष

५. बाण भट्ट की 'कादम्बरी' के साथ डटकर टक्कर लेनेवाली भट्टमूर्ति की अमर रचना 'वसुचरित्रमु' की नायिका ।

दूर रह जाता है। भला आत्मा के बिना फूल अपने हृदय की वेदना कैसे व्यक्त कर सकेंगे? वे तो सत्कवि के मुँह से हर युग में अपनी आकांक्षा, और अभिरुचि व्यक्त करते आ रहे हैं। नीच दास्य जीवन से ऊब कर, देश-स्वातंत्र्य की विजय यात्रा जिन दिनों आरंभ हुई, तब फूल के अंतर में भी विचार उठा—मुझे तो किसी पुराकृत पुण्य के बल से यह क्षणिक ही सही, किंतु परिमल-सौंदर्य व यौवन-माधुर्य से लबालब सुमन-जन्म प्राप्त हुआ है।

फिर उद्विग्न मन से उसने दृढ़ निश्चय कर लिया—

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों
में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध
प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर
हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के शिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,

और पुष्प ने अपने वनमाली से विनती की,

मुझे तोड़ लेना वनमाली उस
पथ पर देना तुम फेंक—
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस
पथ जावें वीर अनेक।

(भारतीय आत्मा)

यह तो कवि का मानव ही फूल की बोली में अपना हृदय प्रकट कर रहा है। किंतु फूल नहीं। यह आत्माभिमान व गर्व कवि का है; पुष्प का नहीं, ऐसा समझने वालों के लिये सहृदय-समाज में स्थान नहीं है। सुमन-सृष्टि का आशय समझनेवाले के मुँह से ऐसी बात कभी निकल नहीं सकती।

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो
वनस्पति स्तव वृक्षोथ विल्वः
तस्य फलानि तपसानु तन्तु माया
अन्तरायाश्च वाह्या अलक्ष्मीः

—श्रीसूक्त

"प्रभाकर की सी प्रभा रखनेवाली हे लक्ष्मी! तुम्हारी कृपा से पहले, बिना पुष्पों के ही फल देने वाला बेल (बिल्व) का पेड़, तुम्हारे हाथ से, पैदा हुआ है। वह तुम्हारे कृपा-बल से मेरे बाह्य दारिद्र्य को दूर करे।"

[तेलुगु से अनुवादकः-श्री प्रो. वारणासि राममूर्ति, 'रेणु']

◆

धारावाही उपन्यास :

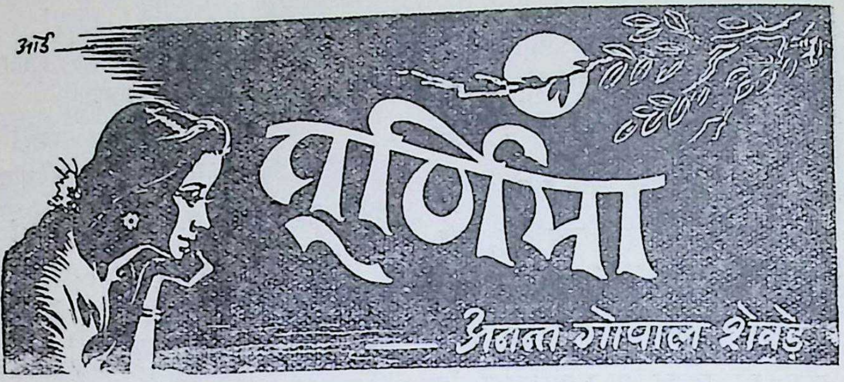

[**अबतक की कथा :**

वैरिस्टर पण्डित की एकमात्र सुन्दरी कन्या पूर्णिमा को पाने के लिये विलासमोहन प्रयत्नशील है। वह 'खाओ-पियो और मौज करो' की जीवनप्रणाली को मानता है और उसकी धारणा है कि उसका (पूर्णिमा का) प्रेम उसी से है।

इसके विपरीत उसकी घनिष्टता बंगाली क्रान्तिकारी के तेजस्वी पुत्र विनयकुमार से थी जिसका वह अत्यन्त आदर करती थी और जिसकी मित्रता के बिना वह अपने जीवन की कल्पना नहीं कर पाती थी।

विनयकुमार को जब यह पता लगता है कि पूर्णिमा का विवाह विलास के साथ होने वाला है तो उसे भयंकर आघात लगता है। जब वह पूर्णिमा को आगाह करने जाता है कि इस विवाह से उसे सुख नहीं मिलेगा तो वह उसे अपमानित कर घर से निकाल देती है।

प्रणयभंग और अपमान की चोट के कारण विनय बीमार पड़ जाता है। लेकिन पूर्णिमा को जब यह मालूम होता है तो वह फारन उसकी शुश्रूषा करने के लिये दौड़ पड़ती है।

विनय चंगा होने के बाद वायु-परिवर्तनार्थ पचमढ़ी चला जाता है जहां सतपुड़ा की वनराजि उसे शांति और सांत्वना देती है।

इधर विलास और पूर्णिमा के आनंद और मौज के कार्यक्रम धड़ल्ले के साथ शुरू होते हैं। नाटक, सिनेमा, होटल के अलावा वे क्रिसमस की सैर करने के लिये विलास की ज़मींदारी इन्द्रगढ़ जाते हैं जहां से लौटते समय, जलधारा नदी के किनारे छिटकी हुई चांदनी के एकान्त उन्मादक वातावरण में पूर्णिमा अपने को भूल जाती है।

शहर लौटने के बाद जब पूर्णिमा के पिता विवाह की बातचीत चलाते हैं तो विलास फौरन इन्कार कर देता है कि उसने कभी पूर्णिमा को विवाह का वचन नहीं दिया था और वह उसे मित्र के अलावा और कुछ नहीं मानता।

यह सुन कर पूर्णिमा क्रोध और अपमान से जल उठती है और विलास से बदला लेने का निश्चय करती है।

किन्तु शीघ्र ही उसे पता चलता है कि जलधारा नदी के किनारे भ्रम का जो आवेग आया था उसके परिणाम भयंकर थे।

नियति के इस कठोर आघात के बाद वह अपने आपको हतभागी और असहाय पाती है और उसे एकदम विनयकुमार की याद आती है।

विनय जब पचमढ़ी से लौटता है तो उसे पूर्णिमा के जीवन की यह दुर्घटना मालूम होती है। वह सबकुछ भूल कर उसके पास फौरन दौड़ जाता है और उसे धीरज देता है। पूर्णिमा के हृदय का कृतज्ञ-भाव आंखों में आंसू बन कर झरने लगता है।

विनयकुमार अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये पूर्णिमा को एक हृदयस्पर्शी पत्र लिखता है—अब आगे पढ़िये :]

छब्बीसवां-परिच्छेद

: कांच के मकान में रहनेवाले :

दूसरे दिन प्रातःकाल १० बजे के करीब पूर्णिमा के हाथ में एक मोटा लिफाफा पड़ा जिस पर विनयकुमार के हाथ के अक्षर थे। अत्यंत आतुर हो कर पूर्णिमा ने अपने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लिया और पत्र पढ़ना शुरू किया—

कांग्रेस पार्क रोड
३ फर्वरी १९-

पूर्णिमा,

कल रातको तुमसे मिल कर लौटा तो सारी रात नींद नहीं आई। दिमाग में विचारों की भयंकर उथल-पुथल मची रही। पास के पुलिस स्टेशन के घण्टे, एक एक कर पांच बजे सुबह तक सुनता रहा। आज यही सोचा कि मन की यह व्यथा तुम्हारे सामने क्यों न खोलकर रख दूं?

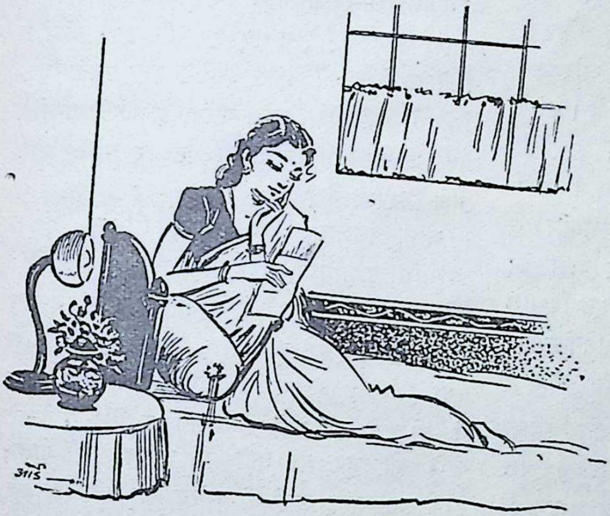

कल जब लगभग छः सप्ताह के बाद मैंने तुम्हें देखा तो कितना परिवर्तित पाया। इतनी तुम कैसे बदल गईं, पूर्णिमा? कहां वह सुन्दर, क्रीड़ा-प्रिय, कलाकार रमणी जो संसार में एक सम्राज्ञी की तरह शान के साथ विचरण करती थीं, और कहां यह पराजित, आहत, अपमानित एवं तिरस्कृत नारी जो अपनी असहायता में दुख की निःश्वास- भर रही हो! कितना भीषण परिवर्तन!

कल संध्या को तुमने कुछ न कहा! किन्तु जो कुछ मैंने समझा है उसके लिये क्या कुछ कहने की ज़रूरतें थी? क्या तुम्हारे उष्ण आंसू [illegible] निश्वास और व्यथित मौन तुम्हारे हृदय की वेदना नहीं सुना रहे थे? सच कहता हूँ, मेरा हृदय तुम्हारे प्रति गहन अनुकम्पा से भर गया। तुम्हारे दुख के तीव्र आघात को मैं कुछ भी हलका कर सका तो स्वतः को धन्य मानूंगा।

इन छः हफ्तों में तुम कितनी सूख गईं! आंखें धंस गईं, चेहरे का हास्य जाता रहा और सारा शरीर ग्रीष्म ऋतु में सूखे हुए वृक्ष की तरह मुरझा गया। तुम्हें देखते ही कल मैं अनुमान कर सका कि तुम किस भयंकर व्यथा में से गुजरी हो।

और यह सब पीड़ा, यह सब व्यथा क्यों! तो केवल इस लिये कि एक विलासी पुरुष ने तुम्हें धोखा दे कर तुम्हारे नारीत्व का अपमान किया है, तुम्हारे स्वाभिमानी हृदय को गहरी ठेस पहुंचाई है। तुमने उस ठेस को जिस उत्कटता और विकलता से अनुभव किया वह इस बात का द्योतक है कि तुम्हारे संस्कार, तुम्हारा आचार, धर्म तुम्हारा चारित्र्य कितना उज्ज्वल है! इसके लिये मैं तुम्हारा हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

ऐसे प्रसंगों में जन्म-जन्मान्तर से नारी ही चुपचाप सहन करती चली आ रही है। प्रकृति और परमेश्वर दोनों ने ही उसे इस प्रकार के अपराधों का पूरा पूरा दण्ड भोगने के लिये नियुक्त किया है। अनादि काल से तुम्हारी यही करुण कहानी रही है।

ज़रा सोचो तो, क्या तुम्हारा विलास पर सचमुच प्रेम था? मेरी तो धारणा है कि तुम्हारा उज्ज्वल व्यक्तित्व उसके जैसे हीन पुरुष से, अपने जीवन के समस्त तत्वों के साथ, प्रेम ही नहीं कर सकता था। जो भावना तुमने उसके प्रति अनुभव की, वह प्रेम नहीं, मोह था। यदि तुम आत्म-विश्लेषण करो तो तुम भी शायद इसी नतीजे पर पहुंचोगी। और यदि तुम इस नतीजे पर पहुंची तो फिर भविष्य सुधर सकता है—अगला काम मुश्किल नहीं है।

विलास को मैं, मेरा ख्याल है कि पहले से हां ठीक-से जानने लगा था। लेकिन मेरा भी यह अनुमान नहीं था कि वह विवाह के प्रस्ताव के

बारे में इस तरह कानों पर हाथ रख कर अलग भाग खड़ा होगा। यह तो स्वार्थ तथा अमानुषता की हद हो गई।

किन्तु जो हुआ सो हुआ। गया-गुजरा जाने दो और अब आगे की सोचो। जो हुआ वह न होता तो अधिक अच्छा होता। लेकिन वह हो गया है तो इतना बुरा भी नहीं है कि जिसके कारण तुम स्वतः के जीवन से मुंह मोड़ लो और अपने प्राणों से खिलवाड़ करने लगो? धीरज धरो पूर्णिमा! ये दिन भी निकल जाने को हैं।

मानव-मानव है इसी लिये तो गलतियां करता है। मैं ऐसे मनुष्य की तलाश में हूँ जिसने एक भी गलती न की हो। सब गलतियां करते हैं किन्तु दूसरों की गलतियां देखते ही वे अपनी कमजोरियां भूल जाते हैं और भद्दी ज़बान से उस बेचारे "अपराधी" पर इस कदर बेरहमी से टूट पड़ते हैं जिसकी कोई हद नहीं। आलोचनाओं, अफवाहों और बौछारों की बाढ़ आ जाती है और उस गरीब का जीवन मुश्किल हो जाता है। उसके शोक और शर्म की सीमा नहीं रहती और कई भावनाप्रवण व्यक्ति तो ऐसे दुःख के आवेग में आत्म-हत्या तक कर डालते हैं। मनुष्य-समाज में यह जो अनुदारता फैली है वही हमारे दुःख का कारण है। मनुष्य जब तक उदार एवं विशाल दृष्टि कोण नहीं उत्पन्न करेगा तब तक मानव-समाज में सुख और शांति का अनुष्ठान नहीं हो सकेगा।

समाज ने आज तुम्हें पापी और पतित कहकर तिरस्कृत किया है न! कॉलेज के लड़के और लड़कियां, तुम्हारे सौन्दर्य-वैभव और प्रभाव को फूटी आंखों से भी नहीं देख सकते थे, आज तुम पर इस प्रकार टूट पड़े हैं जैसे वे सब स्वयं दूध के धुले, शुद्ध एवं पवित्र हैं। उसी विद्यार्थी-सम्प्रदाय का प्रत्येक तरुण और तरुणी अपने हृदय पर हाथ रखकर पूछे कि क्या वह एकदम निष्पाप और निरपराधी है! क्या उसके हाथ से कोई गलती नहीं हुई है?

वे सब पढ़े लिखे कहलाते हैं। उनमें से अधिकांश के माता-पिता अपने पेट की रोटी काटकर उनकी पढ़ाई का भारी बोझ उठाते हैं, इसी एक आशा से कि जब लड़का पढ़ लिखकर बड़ा होगा तो कुछ कमावेगा और बुढ़ापे में, जीवन की संध्या में उन्हें कुछ आराम और सुख देगा; या लड़की जब पढ़-लिखकर बड़ी हो जायगी तो उसका विवाह करने में आसानी होगी और जब तक विवाह नहीं होता तब तक वह कमा-खिला सकेगी किन्तु उस पीढ़ा का क्या हाल है जिस पर पिछली पीढ़ी इतना त्याग कर उसे तैयार कर रही है? उन हजारों छात्र-छात्राओं में से कितनों के सामने कोई उज्जवल जीवनादर्श है? कितनों ने सिवा सरकारी नौकरियों या सरकारी नौकरों से विवाह करने के अलावा और कोई ध्येय अपने सामने रक्खा है? कितनों को हमारे पिछड़े हुए समाज की पुकार सुनाई पड़ती है, कितनों के कानों में हमारे अभागे देश का आवाहन गूंजता है? कला, साहित्य, दर्शन समाज-सेवा, राष्ट्र भक्ति, मानव धर्म—कोई भी आदर्श ले लो, इससे कोई बहस नहीं—इनके पीछे कितने लोग तपस्वी की साधना की मनोवृत्ति से पड़े हैं उनसे उनके चौबीस घण्टों का लेखा तो ले कर देखो! क्या उनके कुछ थोड़े से भी ऐसे क्षण बीतते हैं जिनमें उन्होंने अपने जीवन की गहराई तक पैठ कर योग्य मार्ग खोज निकाला है?

भोग, विलास, खेल, कूद, सिनेमा, हलके उपन्यास, कहानियां, यही उनके नित्यके मित्र हैं। कवियों के प्रेम-गीत ही उन्हें भाते हैं और इन सब कारणों से वे एक ऐसा स्वप्निल, काव्यमय, दृष्टि कोण बना लेते हैं जिसमें से दुनिया उन्हें यथार्थ रूप में दीखती ही नहीं। रंगीन चश्मेंमे से देखने वाले को धूप का ताप भी अनुभव नहीं होता; ठीक उसी तरह उन्हें भी दुनिया की सख्तियों का, खाई-खन्दकों का, काटों-पहाड़ों का कोई भान नहीं रहता। और जब वे कॉलेज की कल्पनामयी दुनिया को छोड़ कर बाहर के सत्य जगत में कदम रखते हैं, तो वास्तविकताके पहिले ही कठोर स्पर्श से उनके सारे सुख स्वप्न भंग हो जाते हैं और उन पर घोर निराशा का परदा छा जाता है। और उस निराशा के आघात के कारण उनकी बची-खुची क्रियाशीलता भी नष्ट हो जाती है।

पूर्ण विकसित यौवन के उज्ज्वल प्रांगण में, हमारे युवक इस प्रकार हाय खा कर पस्त हो जाते हैं। फिर हमारे देश का भाग्य कौन जगावेगा?

अपने समाज का हाल तो देखें धनिक पुरुष चाहे जैसे पाप करें, खुले तौर पर करें, लेकिन समाज उसके सामने, 'हे हें' करके उसे माफ कर देता है, क्यों कि उसके पास चांदी के सिक्कों की गरमी है। वह सूद में मूलधन से ज्यादा व्याज वसूल कर ले, किसी गरीब की ज़मीन जप्त करा ले, उसके औरत-बच्चों को झोपड़ी से निकाल बाहर कर दे, इस सबकी कोई सुनवाई नहीं, कोई दवा नहीं। और भूखा गरीब यदि खाने के लिये मुहताज होकर कहीं से अनाज उठा लाय तो वह चोरी हो गई और उसे जेल हो जाय। चूंकि उसके पास पैसा नहीं है इसलिये उसका बीमार बच्चा वगैर दूध के, वगैर दवाइयों के मरे और धनिकों के बच्चों की शुश्रूषा में मोटरें दौड़ें, मुसम्मी अनार के फलों की पार्सलें आयें। यह सब धनिकों को मिलता है तो मिले। लेकिन गरीबों ने कौनसा पाप किया है जो उन्हें इस प्रकार की जीवनोपयोगी वस्तुओं से वंचित रक्खा जाय। और यह समाज व्यवस्था, जिसमें यह सब संभव है, कितने दिन तक करोड़ों निरीहों की आहें और अभिशाप वर्दाश्त कर सकेगी?

ऐसे समाज में पाप और पुण्य के क्या मूल्य हैं, पूर्णिमा! कोई पच सके तो बड़े से बड़ा पाप भी हजम कर के पुण्यात्मा बन सकता है,—हां, पाप गुप्त हो, उसे वाचा न फूटे। ऊपर से पुण्यत्व का नाटक रहे, दीखने में सौजन्य की मूर्ति, जबान पर शील की बातें, शिष्टाचार, तहजीब, ये सब हों, और फिर परदे के अन्दर आप किसी की हत्या करें, या सतीत्व भंग करें, या किसी के यहां सभ्य डाका डलवा दें, या जुआ खेलें, या शराब-खोरी करें,—ये सब क्षम्य हैं। आपके पास पैसा भर होना चाहिये। फिर देखिये समाज में आपका कैसा मान और आदर होता है। आपकी अध्यक्षता में शील-संवर्धन समिति का समारोह होगा, आपके हाथों शराब-बन्दी के आन्दोलन का उद्घाटन होगा, आपके करकमलों द्वारा कन्या-शालाओं के पारितोषक-वितरण समारंभ होंगे, आपके गलों में फूलों की मालाएं पड़ेंगी, आपके स्वागत में गीत बनेंगे, आपके चित्र अखबारों में छपेंगे! कितनी घोर दांभिकता समाज में फैली हुई है, पूर्णिमा! कब इस छंद नाटक का अन्त होगा?

और यही लोग जब दूसरों की गलतियों की या छोटे से नैतिक पतन की बात सुनते हैं तो घृणा से अपनी नाक-भौं सिकाड़ लेते हैं, और शील और सदाचार के सबक सिखाने लगते हैं। मजा यह है कि यह सब सामाजिक ढोंग-धतूरा चलता है, सभ्यता, शिष्टाचार और संस्कृति के नाम! बेचारी संस्कृति भी रोती होगी ऐसे भक्तों के नाम पर।

ऐसे वातावरण में तुम्हारा-हमारा जन्म हुआ है। पाप और पुण्य का क्या अर्थ है यही अभी स्पष्ट नहीं है। इसलिये तुम क्यों इतना दुखी होती हो! माना कि तुम्हारे हाथ से मोहवश एक गलती हो गई। तो कौन सा बड़ा तूफान आ गया, या आसमान फट पड़ा? और क्यों समाज तुम्हें परित्यक्त, एवं तिरस्कृत समझे? हां, तुम्हारा तिरस्कार तो वही लोग कर सकते हैं जो परम पवित्र हैं, और जिन्होंने कभी कोई गलती नहीं की हो।

तुम्हें बाइबिल की वह कहानी याद है?—जब एक स्त्री व्यभिचार के अभियोग में गांव के नर-नारियों द्वारा पत्थरों से मारी जा रही थी। हज़रत ईसा आये और उन्होंने हाथ उठाकर लोगों से कहा—"ठहरो! इस स्त्री ने पाप किया है न? ठीक है। जरूर इसे पत्थर से मारो? लेकिन वह व्यक्ति पहला पत्थर फेंके जिसने स्वयं कोई पाप नहीं किया है"। सब स्त्री-पुरुषों के हाथ के पत्थर वैसे के वैसे ही जमीन पर छूट पड़े। सब ने शर्म से सिर नीचा किया और ईसा के चरणों पर माथा टेक दिया। जो कांच के मकानों में रहते हैं उन्हें दूसरों पर पत्थर फेंकने का कोई अधिकार नहीं।

इस कहानी ने, पूर्णिमा, मेरे हृदय में गहरा स्थान कर लिया है। मेरी माता ने भी मुझे इसी प्रकार की शिक्षा दी थी और यह कहानी भी मैंने पहली बार उसीके मुंह से सुनी थी। तब से मैंने किसी के भी दोषों की तरफ देखना ही बन्द कर दिया है। यदि देखता हूँ तो इसी भावना से कि उस व्यक्ति के दोष को किस प्रकार हटा सकता हूँ ताकि उसका दुख दूर हो सके, और उसका आत्म-सम्मान फिर जाग्रत हो उठे, और कोई उसका तिरस्कार न कर सके।

पूर्णिमा ! इसी दृष्टि कोण से मैंने तुम्हारी इस दुर्घटना की तरफ भी देखा है । इसी लिये मैं तुम्हें अपने हृदय की समस्त आत्मीयता से, आग्रह पूर्वक कहता हूँ कि तुम इस परिस्थिति से बिलकुल मत घबड़ाओ । दुनियां में और सब लोग तुमसे घृणा करें तो करें, किन्तु मैं तुम्हें पूरी तरह जानता-समझता हूँ और तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में सदैव सहानुभूति रहेगी । इस संकट काल में भी मैं आख़िरी हद तक तुम्हारा साथ दूँगा और तुम्हें इसमें से बचाने की कोशिश करूंगा । इस आश्वासन से शायद तुम्हें उतना अकेलापन या बेबसी न मालूम पड़े ।

मेरी यही अनुनय है कि तुम मनः स्ताप के आवेग में कहीं कोई ऐसी बात न कर बैठना जिससे तुम्हारे स्वास्थ्य या जीवन को खतरा पहुंचे । तुम्हें बहादुरी के साथ जीवन बिताना है और तुम्हारे ही जीवन में से निकलनेवाले नव-जीवन का स्वागत करना है । उसमें लाज-शर्म की कोई बात नहीं । जो हुआ सो हुआ, लेकिन तुम भविष्य का जीवन बर्बाद मत करो । जो परिस्थिति आयेगी उसका हम सब हिम्मत के साथ मुकाबला करेंगे । विश्वास रक्खो कि अंधकार की यह काल-रात्रि शीघ्र ही बीत जायगी और फिर सुख और शांति के मंगल प्रभात का उदय होगा । यह ध्रुव सत्य है,—अटल, अविचल !

मातृजाति का अपमान करने से मानव का कभी कल्याण नहीं होगा । उसका तिरस्कार, उलटकर हमारे ही ऊपर आकर हमें भी दुनिया में तिरस्कृत बना देगा । जन्म-जन्मान्तर से नारी चुपचाप सहन करती चली आ रही है । क्या क्या उसने नहीं सहा है ? उसकी केवल एक मूक निःश्वास में, या एकान्त में बहाये हुए आंसू की एक बूंद में कितनी गूढ़ अंतर्व्यथा छिपी हुई है ! वह वेदना अव्यक्त है इसी लिये अत्यन्त गहन है । मर्म के इन असह्य घावों को भी वह किस शांत भाव से बिना रोये-धोये या दुनिया से शिकायत किये, सहन करती चली आ रही है ! ओह ! मानव की इस मूक पीड़ा का भव्य दृश्य और कहीं दिखलाई नहीं पड़ता !

अतएव, नारी-जाति पुरुषों की सहानुभूति और स्नेह की पात्र है । उसे दुखी बनाकर हम अपने सारे सुखों को भस्म कर डालते हैं, हमारे घरों को श्मशान बना डालते हैं । उसे सुखी बना कर हम अपने ही जीवन में आनन्द और शान्ति की दीप-शिखा जला कर इसी संसार में स्वर्ग-सुख का आलोक निर्माण कर सकते हैं ।

धीरज धरो, पूर्णिमा । मैं जानता हूँ कि तुम जब चाहो तब वीररमणी की तरह जाग उठने की शक्ति रखती हो । आज मैं तुमसे वही आशा रखता हूँ । संकट के काले बादल जल्दी ही मिट जाने को हैं ।

तुम्हारा स्नेहशील
विनय

पूर्णिमा एक ही बैठक में पूरा पत्र नहीं पढ़ सकी । आंसुओं की धारा और भावनाओं के आवेग के कारण उसका कण्ठ रुँध जाता था और दृष्टि धुँधली हो जाती । कई बार प्रयत्न करने पर वह पूरा पत्र पढ़ सकी । और फिर उसने उसे दूसरी बार पढ़ा । और पढ़ा । और न जाने कितनी बार वह पढ़ गई । कई बार उसके हृदय ने विकलता से पुकारा—

विनय ! विनय ! तुम कितने महान् हो ! कितने महान् !!

सत्ताईसवां परिच्छेद

अंतर्मुखी भव !

पूर्णिमा को इस पत्र ने कल्पनातीत बल दिया । उसका सारा दृष्टि-कोण ही बदल गया । जहां घोर निराशा का अन्धकार फैला हुआ था वहां फिर आशा की किरणें दीखने लगीं । जहां अतीव वेदना और असहायता की भावना थी वहां अब फिरसे स्थिर बुद्धि और आत्म-विश्वास का प्रादुर्भाव हुआ । पूर्णिमा को लगा कि उसने न जाने कहां से खोई हुई निधी पाली है और उसके जीवन का प्रेरणा-बिन्दु फिर हरा-भरा एवं जाग्रत हो उठा है । वह अब अपने आपको इतना कमजोर नहीं पा रही है और उसे विश्वास है कि उस पर आये हुए संकट का वह धीरज के साथ मुकाबला कर सकेगी । उसकी सत्प्रवृत्तियां फिरसे जाग उठीं, और उसकी आत्मा पुनः बलवान हो उठी । जीवन का मोह और रस फिर लौट आया । फूलों के खिलने में, कोकिल के गायन में, तथा संगीत के स्वरों में उसे फिर आल्हाद और सौन्दर्य दीखने लगा । विनय

कुमार का वह पत्र तो उसे मसीहा के महासंदेश की तरह नवजावन तथा नवोत्साह की प्रेरणा देने वाला वरदान जैसा लगा !

विनय कुमार की महानता एवं उदारता को देखकर पूर्णिमा दंग रह गई। इसी विनय-कुमार को, जब वह उसे एक हितचिन्तक की तरह संकट से बचाने के लिये, आगाह करने आया था तब अपना हित-शत्रु समझ कर, अपमानित करके घर से निकाल दिया था! आज उसी विनय कुमार की चेतावनी का अक्षर अक्षर सत्य साबित होने के बाद भा वह अपने सब अपमान को पीकर और सारी पुरानी बातें भूल कर फिर उसी पूर्णिमा की सहायता करने दौड़ पड़ा है, और इतना ढ़ाढ़स बंधा रहा है जितना उसे अपने जीवन में किसीने नहीं बंधाया था। इस स्वार्थी, अनुदार, जगत् में विनय कुमार जैसे दिव्य-चरित्र के व्यक्ति हैं, यही तो परमश्वर की सृष्टि का सबसे बड़ा गौरव है। उसका हृदय विनय के लिये कृतज्ञता, आदर और आत्मीयता से परिपूण हो उठा।

वह पत्र उसने अपने बापू को बतलाया। बैरिस्टर पण्डित भी इस युवक की गहनता गांभीर्य और हृदय की विशालता देखकर आश्चर्य-चकित हो गये। ख़ास बात यह थी कि इस अनपेक्षित और विचित्र संकट को देखकर स्वतः बैरिस्टर साहब भी कुछ घबड़ा गये थे। उन्हें भी इस पत्र को पढ़कर धीरज और बल मिला, जिसकी आवश्कता वे खुद अनुभव कर रहे थे। सिवा उस्ताद बहादुरखां के उनका ऐसा कोई आत्मीय नहीं था जिसे वे मनकी चिन्ता और दुख बतला सकते और इस परिस्थिति के कारण खुद उस्ताद भी अपनी उम्र और तजुर्बे के बावजूद ज़रा विचलित हो गये थे। बैरिस्टर साहब की बेचैनी विनय के पत्र के बाद दूर हो गई। उन्हें जैसे भूला हुआ रास्ता मिल गया।

उस्ताद बहादुरखाँ तो विनय पर पहले से फ़िदा थे ही। उसका पत्र जब उन्हें पढ़ कर सुनाया गया तब वे आंखें मूंद कर हृदय से बोल उठे 'मैं जानता था कि इस नौजवान में अजीब गहराई है। उसमें रूहानी ताक़त का माद्दा गज़ब का है। किसी दिन यह शख्स ज़रूर नाम निकालेगा। खुदा उसका भला करे, ऐसे आदमी कम देखने में आते हैं।”

विनय का बैरिस्टर साहब के यहां आना जाना बढ़ गया। पूर्णिमा ने भी अपना बिस्तर छोड़ दिया और उसके चेहरे का विषाद कम होता चला। उस पत्र के बाद बैरिस्टर साहब ने एकबार विनय-कुमार को मिलने के लिये खास तौर पर बुलावा भेजा। विनयकुमार को उन्होंने पहली बार उसकी रुग्णावस्था में ही देखा था। उसके बाद आज देखा। उन्हें भान हुआ कि उसके चेहरे पर पवित्रता का परम सात्विक भाव चमक रहा है। यह सत्य था या उनकी कल्पना थी, यह कहना कठिन है। वह जब उनके ऑफिस में आया तब बैरिस्टर साहब आदर के साथ उसका स्वागत करने के लिये उठ खड़े हुए और बोले—

“आइये, आइये! आपसे मिल कर बड़ी खुशी हुई। पूर्णिमा ने मुझे आपका वह पत्र बतलाया। मैं मानता हूं वह एक अद्भुत वस्तु है। मैंने कभी ख्याल तक नहीं किया था कि इस उम्र में आप जीवन के प्रश्नों पर इतनी गहराई से सोचते-विचारते हैं। मैं स्वतः भी—”

“ऊंः, उसमें ऐसी ख़ास बात क्या है?” विनय ने उस प्रशंसावाणी से घबड़ा कर बात टालने की कोशिश की। उसके चेहरे पर सौजन्य और विनय के भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, और अपने ही सामने अपनी प्रशंसा सुन कर वह लज्जित हो रहा था और इस भावना के कारण, उसका चेहरा एक विशिष्ट प्रकार के पावन सौन्दर्य से आलोकित हो उठा।

“मैंने तो केवल यही सूचित करने का प्रयत्न किया कि इस परिस्थिति से घबड़ाने की कोई ज़रूरत नहीं है, उसे धैर्य से संभालने में ही पुरुषार्थ है!—” उसने आगे कहा।

“यही तो बहुत बड़ी बात है, विनय बाबू! मैं स्वतः इस घटना से घबड़ा गया था, लेकिन आपके पत्र ने मुझे भी बड़ी हिम्मत दी। अब मुझे विश्वास हो गया है कि हालत उतनी चिन्ताजनक नहीं है जितना कि मैं पहले समझता था।”

“जी नहीं, चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है। दुनिया में ऐसी घटनाएं होती ही हैं। किन्तु हम लोग जो सुशिक्षित और सुसंस्कृत कहलाते हैं

—हमीं यदि उनसे घबड़ा उठें तो बेचारे गरीब और अशिक्षित लोग क्या करें ?"

"आप ठीक कहते हैं। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि पुरुषार्थ गलती करने वाले का तिरस्कार करने में नहीं है, किन्तु उसके प्रति सहानुभूति रख उसे ऊपर उठाने में है। और फिर बेचारी पूर्णिमा तो, आप जानते ही हैं कि मातृहीन बालिका है—" ऐसा कहते कहते बैरिस्टर साहब के कण्ठ में कुछ कंपन आ गया। पूर्णिमा के लिये उनके हृदय में कितना गाढ़ प्रेम था यह फिर एक बार व्यक्त हो गया।

विनय को भी बैरिस्टर साहब का यह कन्या-प्रेम देख कर बड़ा कौतुक हुआ। उसने कहा—

"हमें अब इस मामले में भविष्य का विचार करना चाहिये। बीती बातों को अधिक सोचने से कोई लाभ नहीं। पूर्णिमा स्वतः भी अब भूल जाय कि उसके जीवन में यह अप्रिय घटना हुई है। उसे फिर अपना कॉलेज जाना, हंसना-खेलना, पहले की तरह शुरू कर देना चाहिये। उसे फिर अपना आत्म-सम्मान करना सीखना चाहिये, तभी लोग भी उसका सन्मान करना सीखेंगे और उसका अपमान नहीं कर सकेंगे। वह स्वतः अपना तिरस्कार करना छोड़ दे, लोग भी उसका तिरस्कार करना छोड़ देंगे। जन-स्मृति अत्यन्त अल्प-जीवि होती है। उसे अमर्त्य राक्षस मान लेने का कोई कारण नहीं है। पूर्णिमा इस समय कॉलेज न छोड़े—उसे एप्रिल की परीक्षा में बैठना ही चाहिये और जैसे बने वैसे पास होना चाहिये। पास हो जाने पर वह ग्रेजुएट हो जाती है और उसके बाद उसका कॉलेज न जाना स्वाभाविक प्रतीत हो सकता है। परीक्षा के बाद गरमी की छुट्टियां लग जाती हैं और इसी में कुछ महीने निकल जावेंगे। इसके बाद वह वायु-परिवर्तन के लिये कहीं बाहर जा सकती है और उसकी अगली व्यवस्था भी कहीं दूर के स्थान में जन-रव से अलग की जा सकती है। यह सब बड़ी आसानी से हो सकता है।"

"ऐसा ?" बैरिस्टर साहब आश्चर्यचकित हो विनय की बातें सुनते रहे। विनय परम आत्म-विश्वास के साथ बोल रहा था जैसे भविष्य के नक्शे का उसने तफसीलवार पूरा पूरा विचार कर लिया है और उसके आयोजित मार्ग में कहीं कोई अड़चन नहीं है। उनकी आंखों में परम कौतुक का भाव था। कितनी दूर तक की सोच बैठा है यह युवक! वाह!

"इन सब कामों में मैं पूरी तरह सेवा कर सकता हूँ। आप केवल मुझ पर विश्वास भर कीजिये।"

"विश्वास तो पूरा है, विनयबाबू! ईश्वर आपका कल्याण करे। पूर्णिमा का और मेरा अहोभाग्य है जो आप जैसे मित्र मिल गये! हम तो कभी आपके उपकारों से उऋण नहीं हो सकते।" बैरिस्टर साहब ने गद्गद् होकर कहा।

"उपकार-वुपकार की कोई बात नहीं है। सवाल सिर्फ इतना ही है कि क्या हम एक क्षण के मोहावेश के लिये पूर्णिमा जैसी सोने की लड़की को उठाकर कूड़े में फेंक देंगे? और उसका सारा जविन नष्ट होने देंगे? तब फिर हमारी मानवता कहां गई, हमारे युग-युगों के उच्च संस्कार कहां गये? यह सब नहीं हो सकता। नारी जाति का यह सतत अपमान, मातृजाति की यह निरन्तर प्रवंचना बंद होनी चाहिये बैरिस्टर साहब! हम जो स्वयं लाखों छिद्रों और पातकों से भरे पड़े हैं, किस मुंह से उसका तिरस्कार करें?"

"किन्तु हमारे समाज में इतनी उदारता अभी कहां आई है? हम अपने खुद के कामों की बजाय दूसरों की बातों में ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं। हमारा स्वभाव छिद्रान्वेषी बन गया है और हम दूसरों की गलतियों और कमज़ोरियों में बड़ा आनन्द लेते हैं।"—बैरिस्टर साहब बोले।

"यदि हमारा मन चरित्र के काले धब्बे और कमज़ोरियां देखने का इच्छुक है तो वह क्यों नहीं अपनी दृष्टि स्वतः की ओर फेंकता? हममें क्या कम गन्दगी भरी पड़ी है? हमें दूसरों की तरफ देखने का क्या प्रयोजन! हम देखें अपने खुद की बुराइयों को और उन्हें दूर करने की कोशिश करें। यह काम हमें जन्मभर पूर सकता है।"

"इतना हो जाय तो मानव समाज कितना सुखी हो जाय।"—बैरिस्टर साहब ने कहा।

"यह नहीं होता है इसलिये हमने अपने ही आसपास, अनुदारता, घृणा, द्वेष की बड़ी बड़ी

दीवालें खडी कर ली हैं जिन में से खुली हवा और सूरज की रोशनी नहीं आती और जिसके कारण हमारे समाज का स्वास्थ्य लगातार बिगड़ता चला जा रहा है। इसका हमें शीघ्र ही इलाज करना होगा नहीं तो हम इस ईश्वर की सुन्दर दुनिया में साक्षात नर्क निर्माण कर देंगे और अपने ही हाथ से अपने सुख के सब्ज़ बाग को आग लगा देंगे।"

विनयकुमार के प्रत्येक शब्द में उसकी निष्ठा का बल था। उसके हृदय की सचाई उनमें कूट कूट कर भरी थी। बैरिस्टर साहब यह सब सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और विनयकुमार की प्रखर बुद्धि, दुर्दम यथार्थवाद और वास्तविकता का ज्ञान देखकर मन ही मन उसकी सराहना करते रहे। उन्होंने देखा कि विनय का ज्ञान निर्जीव पुस्तकों के छपे हुए पन्नों से नहीं कमाया गया है किन्तु वह जीवन की सजीव किताब के अध्ययन से प्राप्त किया गया है। जीवन की पुस्तिका को पढ़कर उसके सन्देश से समरस होनेवाला व्यक्ति ही सच्चा ज्ञानी होता है।

चलने के पूर्व विनयकुमार ने बैरिस्टर साहब को फिर आश्वासन दिया कि इस मामले में पूर्णिमा की सेवा करना वह अपना धर्म मानता है और इसे अपना भाग्य समझता है कि उसके जो विचार हैं उन पर अमल करने का उसे अवसर मिला। यह भी उसकी परीक्षा है और उसका आग्रह है कि उसे इस परीक्षा में भी यशस्वी होना है।

* * *

साहित्यालोचन

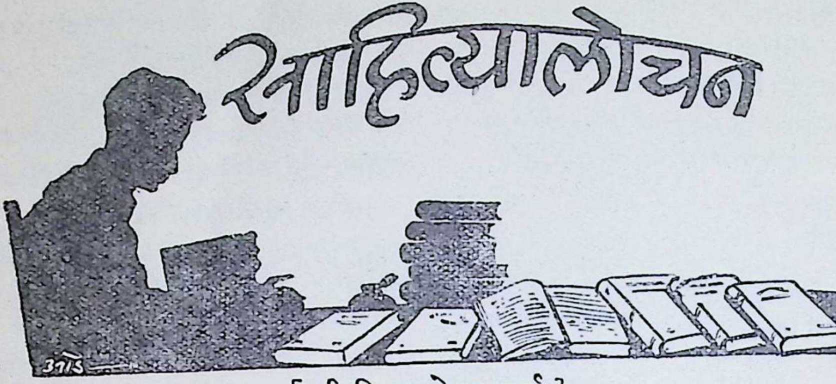

[श्री विनय मोहन शर्मा]

(सूचना :—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ आनी चाहिए)

मिलन-यामिनी—

रचयिता श्री 'बच्चन', प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सुंदर छपी बंधी प्रति का मूल्य ४) रु.

हालावाद के प्रवर्धक 'बच्चन' की यह नवीन तम प्रकाशित कृति है। इसकी कवितायें सन् १९४५ से पत्र-पत्रिकाओं में निकल रही हैं। लम्बी प्रतीक्षा के बाद अब यह पुस्तक रूप में आरही है। इसमें ९९ कवितायें हैं जो ३३-३३ के क्रम से तीन भागों में विभक्त हैं। इसमें संदेह नहीं, "मिलन-यामिनी." में जविन की अेक प्रबल और उद्दाम प्रेरणा का कलापूर्ण चित्रण है और इसमें भी संदेह नहीं कि उनके भीतर कवि का व्यक्तित्व झीने आवरण से झाँक रहा है। उसकी गति उर्ध्व-गामिनी है या अधोगामिनी, यह तो आनेवाला समय ही कह सकता है पर कवि प्रगतिवाद के जिस वास्तवता के पथ पर कुछ वर्ष पूर्व लड़खड़ाते हुअे चल रहा था उसकी भूमि बिल्कुल खिसकी हुई जान पडती है। वह अब 'कल्पना' के 'रोमानी' लोक में पुन: पंख फडफडाकर उड रहा है, दूसरे शब्दों में प्रगतिवाद-युग में जितने कदम वह आगे बढ़ा था उससे दुगुने कदम वह पीछे लौटकर उस युग में पहुँच गया है जहाँ उसने पहिलीबार मादक साँस ली थी। "जलन का अपना भाग भोगने के बाद उसे मिलन का यह मधुर संयोग आया है," अैसा उसका दावा है। फिर भी पृष्ठ ८५ पर हम उसके जी की जलन का अतृप्ति का, मिलन-प्रतीक्षा का निराश चीत्कार ही सुनते हैं—

"डालें-पलाश की फूट पडीं
प्रिय छूटगया धीरज मेरा।
मैंने तो यह सुन रक्खा था
जब सांस बसंती आयेगी।
तब अपने सौ वरदानों में
वह साथ तुम्हें भी लायेगी
पत्ते-पत्तों ने टूट यही
मेरे कानों में बात कही
कब समझा था मेरी आशा
यों अपने मुँह की खायेगी

आज भी किसी की स्मृति टीस बन बन कर उसे उदास करती है—

" अनगिनत बसंती फूलों के,
गुच्छों में गिनती के पत्तो का अमलतास;
फिर अके बार कर जाता है मुझको उदास।"

अतएव हम संपादक श्री. लक्ष्मीचंद जैन से सहमत नहीं है कि 'मिलन-यामिनी' की जीवन यात्रा और जीवन साधना की अेक परितृप्तिपूर्ण मंज़िल है ।" मिलन यामिनी से जलन का भाग हटादिया जाय तो उसमें रह ही क्या जाता है ?

कवि ने प्रकृति के प्रत्येक वातावरण और दृश्य से स्पन्दन ग्रहण कर भावों के उद्दीपनकारी चित्र प्रस्तुत किये हैं——

"कुछ अँधेरा, कुछ उजाला, क्या समा है
कुछ करो, इस चाँदनी में सब क्षमा है
किन्तु बैठा मैं संजोए आह मन में
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में

ललक (Yearning) में ही जीवन का रस है। और उसकी तृप्ति में ही जीवन का मरु। कवि इस तत्व से खूब परिचित है——

"प्यास की साँसें बचीं, बस
यह शकुन है;
प्यार की असमर्थता, कितनी करुण है।

'गत' को 'भविष्यत' में बदल देने की साध कितनी स्वाभाविक है।

प्रथम भाग की "प्राण कह दो, आज तुम मेरेलिये हो ।" "मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ" "जानता हूँ प्यार, उसकी पीर को भी," "प्यार से प्रिय जी नहीं भरता किसी का" तथा मध्यभाग की "तुम को मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते," और 'प्रिय शेष बहुत है रात अभी मत जाओ', शीर्षक गीतों में 'वच्चन' के कवि का यथार्थ रूप झंकृत हुआ है।

मिलन-यामिनी की कतिपय रचनाओं में शिथिल शृङ्गार की इंद्रियासक्ति झलक उठती है; पर यदि कोई उसमें भी 'लोकोत्तर आनंद' पा सकते तो किसे आपत्ति हो सकती है। प्रत्येक रूप-अरूप को अनुकूल-प्रतिकूल बनाने में, आँख और मन का खेल, ही काम करता है। बच्चन-काव्य-प्रेमियों को मिलन-यामिनी से संतोष होगा, बच्चन को उससे संतोष नहीं है।

सुख किसमें ?

लेखक सेठ गोविददास, प्रकाशक प्रगति-प्रकाशन, १४ डी. फ़िरोजशाह रोड, नई दिल्ली।

सेठ गोविंददासजी हिंदी के बहु-नाटक लेखक हैं। उन्होंने अनेक अङ्काकी, तीन-अंङ्की और पंच अङ्की नाटकों की सृष्टि की है। नाटकों की कई शैलियों के आपने प्रयोग भी किये हैं। प्रस्तुत नाटक इसी प्रकार का अेक प्रयोग है। इसमें दार्शनिक तथ्य को प्रस्तुत किया गया है और वह तथ्य नाटक के मुख्य पात्र सृष्टिनाथ के शब्दों में है——"जो सब कुछ अपने लिये करता है वह सुखी हो ही नहीं सकता। जो सब कुछ अपने कब्जे में रखना चाहता है, वह सब कुछ खो देता है।" सृष्टिनाथ समाज, भौतिक जगत् पर अधिकार का इच्छुक चिरसुख की खोज में मृत्यु तक को वरण करने को प्रस्तुत है। प्रेमपूर्णा नायिका है जो सृष्टिनाथ को 'कामायनी' की श्रद्धा के समान जीवन का वास्तविक मर्म समझाती है। मोहनमाला उनकी पुत्री है जिसमें क्षणिक सुख की पराकाष्ठा निहित है। वैराग्य-वैभव और मायासिद्ध सृष्टिनाथ को वैराग्य और योग से शांति प्रदान करने का उपक्रम करनेवाले पात्र हैं। सृष्टिनाथ तेजी-मंदी के व्यापार में घाटा उठाता है। इज्ज़त बचाने के लिये जब मित्रों की सहायता से वंचित हो जाता है तो हरिद्वार में आत्महत्या

करने के लिये भाग जाता है । वैराग्य वैभव का गीत उसे आकृष्ट करता है । वह वैराग्य से शांति लाभ चाहता है । पर उसे शांति नहीं मिलती । प्रेमपूर्णा के रूप में 'कामना के नूपुर' उसे विचलित कर देते हैं । फिर मायासिद्ध का योगज्ञान उसे आकृष्ट करता हैं । पर वहाँ भी उसे शांति नहीं मिलती । अंत में वह ज्ञान के दोनों क्षेत्रों को त्यागकर श्रद्धा की प्रतीक प्रेमपूर्णा की शरण लेता है और उसी के द्वारा उसे शांति मिलती है । नाटक स्पष्टत: 'प्रसाद' की 'कामायनी' से प्रेरित जान पड़ता है । मनु के समान सृष्टिनाथ भी प्रेमपूर्णा की समस्त सृष्टि में सौंदर्य देखने की प्रवृत्ति से ईर्ष्या से कह उठता है–,'जब तुम मुझे पक्षियों के गान बादलों की गरज' और गंगा के बह्वाव में मधुर ध्वनि सुनने के लिये कहती हो तब मेरे कान जल जाते हैं । जब मैं तुम्हें किसी दूसरे मनुष्य से बात करते देखता हूँ, या किसी के दु:ख दूर करने की कोशिश में, तब मेरा हृदय जलने लगता है । मैं सोचता हूँ मेरा दु:ख दूर न कर जो तुम्हारा है, तुम दूसरों के दु:ख दूर करने में इतनी संलग्न ! इतनी व्यग्र !" मनु भी श्रद्धा में केवल अपने लिये भावातिरेक चाहता था । जिस प्रकार मनु श्रद्धा को छोडकर चला गया, उसी प्रकार सृष्टिनाथ भी प्रेमपूर्णा का त्यागकर भाग खड़ा होता हैं । नाटक का अन्त भी 'कामायनी' के उपसंहार की याद दिलाता है सृष्टिनाथ और प्रेमपूर्णा के रूपमें मानों मनु और श्रद्धा ही चिर शान्ति–लाभ के लिये हिमालय के एक मार्ग पर चले जा रहे हैं ।

पात्रों का चरित्र-चित्रण स्थिति अनुरूप है, स्वाभाविक है, अर्थ गर्भित होते हुअे भी कहीं कहीं सम्भाषण लम्बे हो गये हैं । दृश्यों की योजना चल्लचित्र के अनुरूप है, रंगमंच के नहीं । दार्शनिक होते हुअे भी नाटक दर्शन की शुष्कता से शून्य है, सरस है ।

हंस-मयूर :

(ऐतिहासिक नाटक)—लेखक श्री वृन्दावनलाल वर्मा, एडवोकेट, प्रकाशक–'मयूर' प्रकाशन स्वाधीन प्रेस, झांसी । मूल्य २ रु.

ऐतिहासिक नाटक में इतिहास और नाटकत्व दोनों की रक्षा करना बड़ा कठिन काम है । इसलिये साहित्य में इतिहास-तथ्य का प्राय: विकृत रूप प्रस्तुत किया जाता है । वर्माजी ने अपनी कृतियों में इतिहास तथ्य का प्राय: उल्लंघन नहीं किया । यह असाधारण प्रतिभा का ही परिचायक है । ईसा से ६०-७० वर्ष पूर्व शकों के उपद्रवों का अन्त कर मालवके पुन: गणतन्त्र के संगठन का इतिहास इसमें संकलित है इसकी कथा जैन-ग्रन्थ "प्रभावक चरित्र" पर आश्रित है । धारा के राजकुमार कालकाचार्य और उसकी बहन सरस्वती जैन धर्म प्रचार के लिये उज्जैन जाते हैं । गर्दभिल्ल उस समय उज्जैन का राजा था । उसने सरस्वती को (जो नाटक की सुनन्दा है) अपनी रानी बना लिया । कालकाचार्य प्रतिहिंसा से जलकर शकों की शरण में गया और उनकी सहायतासे उसने उज्जैनमें गर्दभिल्ल की सेना को परास्त किया । गर्दभिल्ल सुनन्दा के साथ जंगलोंमें भाग जाता है, जहाँ उसे शेर खा जाता है । शकों के नायक उषवदात ने प्रधान शकनायक भूमक की पुत्री तन्वी को इन्द्रसेन (नलपुर जनपद

के नायक) का भेद लेने और उसका नाश करने के लिये गुप्तचर बनाकर भेजा था। त्रिपुरी के मैदानमें नाग, मालव, काण्वों आदि ने मिलकर इन्द्रसेन के नेतृत्व में शकों को पराजित किया। तन्वी इन्द्रसेन के रूप विक्रम पर मुग्ध हो उससे विवाह कर लेती है। 'हंस-मयूर' में इतनी ही कथा नाटक के सूत्रमें पिरोई गई है। नायक इन्द्रसेन और उपनायक गर्दभिल्ल तथा नायिका तन्वी और उपनायिका सुनन्दा के चरित्रों का विकास बड़ी कुशलता के साथ किया गया है। इन्द्रसेन का नायकत्व बहुत देर से प्रकट होता है, परन्तु जब वह आविर्भूत होता है तो पूर्ण रूप से हमें अभिभूत कर लेता है। तन्वी और सुनन्दा में नारी का तेज प्रखरता से चमक उठा है। दोनों अपने प्रेमियों की रक्षामें भयंकर संकटों का सामना करतीं हैं, जैन धर्माचार्य का चरित्र इतिहास तथ्य की रक्षा के कारण ही गर्हित है। मानव प्रतिहिंसा कितना जघन्य कार्य करा सकती है, इसका यह उदाहरण है। कालक के समान ही बौद्धोंपर भी ब्राम्हणों से बदला लेने के लिये विदेशियों को आमन्त्रित करने का आरोप है। नाटक में तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक, परिस्थिति का भी चित्रण किया गया है। सम्वाद इतने प्रभावशाली हैं कि वे हृदयपर सीधी चोट करते हैं। भाषा, समय और पात्र के अनुरूप गठित हैं। कहीं कहीं बुन्देली शकों ने मधुर भावव्यञ्जना की है। नाटक ऐतिहासिक होते हुये भी कहीं भी तथ्य की बोझिल अनुक्रमणिका नहीं बन पाया; रंगमंच पर सफलता से अभिनीत हो सकता है।

धर्मनीति—

प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृष्ठ २२६, सुन्दर छपाई बंधाई मुल्य २)

इसमें महात्मा गांधी के नीतिधर्म, सर्वोदय, मंगल प्रभात और आश्रम वासियों से, ये ४ पुस्तकें संकलित हैं। पहली और दूसरी पुस्तकें गांधीजी के भारत में आने के पूर्व, और तीसरी तथा चौथी यरवदा जेल से सन १९३० और ३२ के बीच पत्र रूप में लिखी गई थीं। उन्होंने कभी धर्म और नीति में खाई नहीं देखी न कभी खोदी। इसी लिए इस पुस्तक का नाम 'धर्मनीति' रखा गया है। गांधीजी की विचार धारा को अध्ययन करने वालों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है।

"हिन्दी समाचार पत्र सूची"

(भाग-१) सम्पादक श्री वंकटलाल ओझा, कसारहा रोड, हैदराबाद दक्खिन। मूल्य कुछ नहीं।

यह 'हिन्दी समाचार पत्र सूची' हिन्दी का अभिनव प्रकाशन है। सन १८२६ से लेकर १९२५ तक हिन्दी में जितने दैनिक, अर्ध साप्ताहिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, दैमासिक और त्रैमासिक पत्र प्रकाशित हुए हैं उन सबकी सूची सम्पादक और प्रकाशक के नाम सहित दी गई है। ओझाजी ने इसके लिए कितना कठोर परिश्रम किया है! इस 'सूची' से 'हिन्दी पत्रकार कला' पर अनुसन्धान करने वाले साहित्यिक विद्यार्थियों का समुचित मार्गदर्शन होगा। हिन्दी के पत्रकारों को ओझाजी के स्तुत्यकार्य में सक्रिय सहयोग देना चाहिए।

'नया समाज'

(संस्कृति–अंक)-सम्पादकः श्री मोहन-सिंह सेंगर, नया—समाज ट्रस्ट, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता।

भारत के स्वाधीन होने के वाद से, 'संस्कृति' की रक्षा, संस्कृति का पुनरुद्धार, उसका विकास, आदि आकर्षक पदावली हमारा ध्यान अपनी ओर बराबर खींच रही है। अत एव 'नया समाज' का "संस्कृति अङ्क" प्रकाशन बहुत सामयिक है। इसमें संस्कृति की व्याख्या, उसका वास्तविक रूप और उसकी व्यापकता पर प्रकाश डालने वाले अधिकारी विद्वानों के लेख प्रकाशित किये गये हैं। यद्यपि "संस्कृति के सभी पहलू" हमारे सम्मुख नहीं आ सके हैं तो भी इसमें 'संस्कृति' विषयक अध्ययन की प्रेरणा तथा सामग्री अवश्य मिलती है। यह अंक संग्राह्य है। इस अंक का मूल्य १ रु. है।

* * *

"हमारे यहां अच्छे उच्च कोटि के समीक्षकों की कमी नहीं है। विविध मतों और दृष्टियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विवेचक मौजूद हैं। मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक समीक्षा, प्रभाववादी समीक्षा और देश, काल और परिस्थिति की सापेक्षता में साहित्य का निरूपण करनेवाली समीक्षा, प्रगतिवादी समीक्षा, और अन्तश्चेतना-निरूपक समीक्षा, सभी अपना अपना काम कर रही हैं। इन सब धाराओं के संयोग से नवीन समीक्षा का युग-निर्माण हो रहा है। प्रतिभाएँ अनेक हैं, समन्वय अपेक्षित है। आशा है यह कार्य भी सम्पन्न होगा।"

—श्री० नन्ददुलारे वाजपेई

* * *

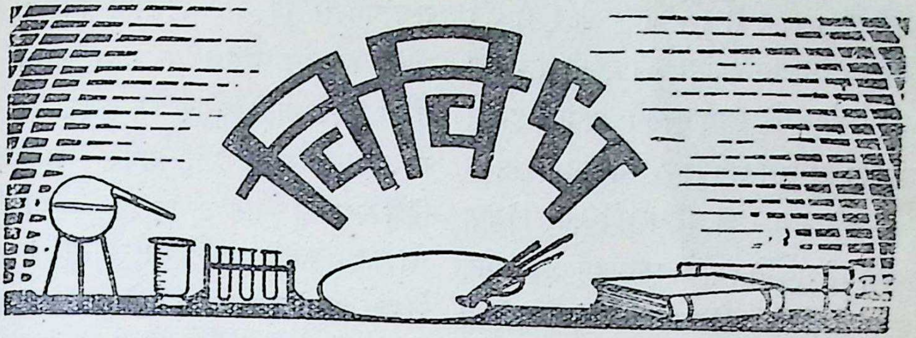

[श्री. ललिता प्रसाद पुरोहित]

सीमोल्लंघन और सड़क से संधिपत्र:

जीवन की अनेक बातों में से, जिन्हें हम कभी भूल नहीं सकते, यात्रा के मधुर संस्मरण भी हैं। पूर्व यात्रियों और अन्वेषकों ने जिन स्थानों के बारे में भ्रमण द्वारा आपकी जानकारी के लिये चीजें रख छोड़ी हों, वहाँ जब आप स्वयं पहुँच जाते हैं तो स्वभावत: उनका प्रत्यक्ष विराट दर्शन आपको कौतूहल में डाल देगा। जहाँ नित नवीनता है; अवलोकन की नयी दृष्टि है वहाँ सदा नयी-नयी खोजों और कल्पनाओं की निधि का आगार है।

ऐसा ही अनुभव हमें प्रसंगवशात् उस यात्रा में हुआ जहाँ दण्डकारण्य और पंचवटी की कल्पना है। जगदलपुर मध्यप्रदेश का ऐसा ही एक एकाकी भू-भाग है जहाँ अधिकारी वर्ग के अतिरिक्त इने-गिने दूरस्थ ही पहुँचते रहे होंगे। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १४ वें वार्षिक अधिवेशन के सुयोग ने इस बाँध को बड़े तीव्र वेग द्वारा तोड़ा। यहाँ की परित्यक्ता वनश्री की एकान्त साधना ने उस दिन सैकड़ों दर्शकों की भीड़ को हठात् आनन्द-विभोर कर दिया। दृष्टि पथ पर दूर-दूर तक फैली पर्वतमालाओं में उन्मुक्त नर्तन करती हुई प्रकृति छटा का सुन्दर दर्शन हमें स्वयं के विस्मरण की सामग्री बलात् बन गया।

जगदलपुर काकतीय राजवंश के बस्तर राज्य की कलतक राजधानी रही है। श्री महाराजाधिराज प्रवीर चन्द्र भंज देव.......... काकतीय उसके अन्तिम शासक हैं। इस प्रान्त के नैऋत्य में नागपुर से ३६० मील भीतर १४ हजार वर्गमील में यह राज्य विस्तारित था। केसकाल, अबूझमार, मेला डीला, तीरथगढ के दुर्गम वन और पर्वत-उपत्यकायें ऐसे स्थल हैं जहाँ हमारी अर्वाचीन सभ्यता नहीं पहुँच सकी है। इतना ही नहीं वहाँ आज की आदिवासी जनता बिना खेती और वस्त्रों के जीवन निर्वाह करती है। बस्तर को शंखिनी, डंकिनी, इन्द्रावती, पुण्य सलिला गोदावरी और चित्रकूट के अनेक प्रपातों और जलधाराओं के सुरम्य दृश्य प्राप्त हैं। यहाँ मीलों लम्बे चतुर्दिश वन प्रान्तर किसी ऊंचाई से देखने पर सम हरित स्थल के भ्रम में डाल देते हैं।

बस्तर की प्रशस्ति के विषय में चूंकि पहले से बहुत कुछ सुन और जान रखा था अत: इस यात्रा के सुयोग को हाथ से नहीं जाने देने का मन में संकल्प था। ३६० मील लम्बी

यात्रा रेल और मोटर तक सरलता से की जा सकती है। और सम्पूर्ण यात्रा मोटर से तय करने का निश्चय दशहरे की पहली संध्या में हमारे प्रस्थान के साथ कृतिमें आया। हमारा कार्यक्रम था रात रायपुर ठहरने का। रात के १० बजे हम वहाँ पहुँच गये और विजया दशमी की सूर्य किरणों के साथ हम अपनी शेष किन्तु अपरिचित विजय-यात्रा की तैयारी में लग गये। रजवाड़ों में यों तो हर जगह यह त्यौहार बड़े राजसी ढंग का मनाया जाता है परन्तु बस्तर के दशहरे की अपनी विशेषता है। १० बजे प्रस्थान करने के पीछे यही उद्देश्य था, ताकि ४ बजे तक वन-वैभव देखते और एक के वाद दूसरा सीमोल्लंघन करते हुए जगदलपुर पहुंचा जाय। राज्याश्रय की परम्परा हमारे देश में बड़ी प्राचीन रही है। जगदलपुर पहुंचाने के मामले में हमें जो आश्रय प्राप्त हुआ था उसकी कल्पना भूषण या तानसेन से भी बढ़कर की जा सकती है। सुयोग्य और सहृदय राज्य प्रतिनिधि का स्निग्ध व्यवहार, हमारे आराम के लिये उनकी फिकर, हमें ऊपर से सहसा कवि कल्पनाओं की दुनिया में बस्तर की सुरम्य गोद से उठा ले जाती थी। हमारी गाड़ी अवश्य कल्पनाओं की अपने लिये सृष्टि कर रही थी। राज्य का वह दुबला-पतला, घने-घुंघराले बालों वाला धूल में ढका ड्रायवर विचित्र व्यक्ति था। वह कहता था—बाबू दूसरी बार इधर आया हूं। मगर हमारे सामने यह प्रश्न अन्ततक वना रहा कि आखिर यह व्यक्ति रायपुर-बस्तर की २०० मील लम्बी सड़क की घाटियाँ, पुल, मोड़ और गड्ढे कैसे याद रख सका! उसकी वह बड़ी कार उलट क्यों नहीं जाती जब वह उसे बेकाबू दौड़ने को विवश करता है! क्या उसका इस राज पथ से पूर्व जन्म का सम्बन्ध है या कोई सन्धि-पत्र इस सड़क के पास उसने रख छोड़ा है कि गाड़ी हरिणी सी कूदती सर... र... भागी जाती है! अथवा यह किसी हिंस्र पशु की भांति उन्मत्त हो अपने शिकार का पीछा करती छलांगें भर रही है! हममें से कोई हमारे ड्रायवर को चेम्पियन कह उठता और कोई रोड मास्टर। ऊंची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी, संकरी और तंग घाटियों में से भी जो व्यक्ति ४५ मील घण्टे की गति में गाड़ी दौड़ाने का अभ्यस्त हो; सवारियां और स्वयं सड़क उसकी एकाग्रता और कार्य पटुता के कायल हो सकते हैं। कोई कह उठता आज इस खब्ती ड्रायवर से खैर नहीं है। और मैं तो कहता—"ऐसे कुशल हाथों से दुर्घटना के शिकार बन जाने में भी शान है!" परन्तु उसका मौका न आने देकर हमें शहीद होने से बचाने में भी उसीका श्रेय सर्वत्र रहा। जब पूछते तब वह उत्तर देता—"बाबू चाय बस होती है। खाना सुस्ती पैदा करता है। गाड़ी चलाने में ऊंघ आती है!" उसके इस उत्तर के साथ ही मुझे डॉ. पट्टाभि सीतारामैया के साथ अपने दौरे के दिन याद आते जब ड्रायवर उस दिन अनाप-शनाप खा गया। और हमें लेकर २० मील भी नहीं चल सका होगा कि १५ फुट गहरे एक नाले की ठीक कगार पर उसकी ऊंघ भागी! इतना ही नहीं; हमारे मुंह से अर... र! कभी निकल गयी होती तो भगवान भी हमारी सहायता न करते! अस्तु; हमारा वाहन-चालक अपनी जाति में अपवाद है। मगर यह विश्वास है कि गिरधर कवि के काल में फिरंगियों की

यह 'मोटर' हिन्दुस्तान आ गयी होती । 'साइये न विरोधिये....वाले १२ व्यक्तियों की श्रेणी में' तरह देने के लिये इस जाति का नाम भी जोड़ा जाता ! और धनुर्धारी अर्जुन भगवान कृष्ण को फिर सोच समझकर ही अपना सारथी बनाते । हां; तो हमारे ड्रायवर ने १२५ मील की दूरी ५ घण्टे में तयकर अपने प्रतिस्पर्धियों में एक रूक पैदा कर दिया । मगर क्या कहने हैं उसके जिसके माथे या आंखों में प्रशंसा से फूल उठने के चिन्ह तक नहीं है ? वह सदा एक सा है, मौन है—शान्त है !

* * *

वस्तर के राजवंश की एक ऐतिहासिक घटना है जब किसी सत्तारूढ़ राजा को आदिवासी जनता ने परास्त किया था । आज वही परम्परा बड़े मधुर रूप में पाली जाती है राजा को डोले में बैठकर प्रजाजनों की निगरानी में कुछ मील दूर जगल में ले जाया जाता है। वहाँ उन्हें आदिवासियों के वेष-भूषा और सज्जा में रखा जाता है । २४ घण्टों यों रखने के बाद महल लाया जाता है जहाँ प्रजाजनों द्वारा दिये गये नये चांवल उन्हें खाने और नववस्त्र परिधान कराने पड़ते हैं। पर आज राज्यों के विलीनी करण के पश्चात यह परम्परा बन्द कर दी गयी है। इतना ही नहीं अब उनके शब्दों में राज्य जाने के बाद वे गुलाम हो गये हैं और रथ चले-यात्रा का रथ इसलिये नहीं प्रजाजन खींचते क्योंकि उस पर उन का राजा अब नहीं बैठता। अपने राज के प्रति यहाँ जो आदर व्यक्त किया जाता है उसकी मिसाल अन्यत्र नहीं पाई जाती ।

यहाँ के अंग्रेज अधिकारी श्री. ग्रिगसन ने इस भूभाग को खनिज उपजों से भरा हुआ बताया था जहाँ सोने की खदान से लेकर छोटी से छोटी धातुएँ उपलब्ध हैं । हैदराबाद के निजाम की योजना में इन साहब और एक अन्य अधिकारी ने मिलकर तैयारी करली थी कि यह राज्य बात की बात में मध्यप्रान्त से फोड़ लिया जाय । संधि-पत्र पर हस्ताक्षर होने को ही थे; कि सजग भारतीय शासन को वस्तुस्थिति का पता लग गया और फिर शीघ्र ही इस राज्य को विलीन कर लिया गया ।

* * *

मध्यप्रादेशिक हिन्दी सा० सम्मेलनः

सम्मेलन के नाम से विविध क्षेत्रों में साहित्यकारों के जो संगठन खड़े किये जाते हैं; अ० भा० साहित्य सम्मेलन को छोड़ शेष की कार्य प्रणाली और प्रवृत्तियाँ कुछ विवाद की सी चीज ज्ञात होती हैं। यह देखा जाता है कि वार्षिक अधिवेशनों में बहस के बाद कुछ प्रस्ताव स्वीकार कर लिये जाते हैं। और कवि सम्मेलन हो जाता है । वस्तुस्थिति का दूसरा पहलू यह हो सकता है कि वर्ष में एक बार प्रान्त के साहित्यकारों का खासे बड़े ढंग पर सम्मेलन हो जाता है। साहित्यकार का उद्देश्य जब साहित्य निर्माण माना जाता है तब यह विषय अपनी गंभीरता में पहुँचता है और प्रश्न खड़ा होता है कि क्या ऐसे सम्मेलनों के स्तर पर साहित्य सृजना में क्या कोई ठोस कार्य किया जा सकता है ? उधर के कुछ वर्षों में प्रादेशिक सम्मेलन ने कुछ लोकगीत संग्रह, अभिनन्दन ग्रंथ, जीवित और मृत कवियों के कविता संग्रह प्रकाशित किये हैं । यह कार्य वास्तव में उस सीमा में

आता है जिस में साहित्यकारों की कर्मण्यता हम स्थिर कर सकते हैं ।

प्रादेशिक सम्मेलन राष्ट्र-भाषा प्रचार कार्य का कार्यक्रम अपना नहीं सकते। क्योंकि बड़ी क्रियाशीलता के साथ अ० भा० सम्मेलन और वर्धा की राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति यह कार्य अपने हाथों में लिये हुए हैं । हमारे प्रान्तीय सम्मेलन के उद्देश्य में बताया गया है—“इस संस्था का उद्देश्य है प्रान्त में हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा की समृद्धि करना तथा हिन्दी साहित्य सेवियों और हितैषियों का पारस्परिक सहयोग प्राप्त कर स्थायी संगठन करना ।” हिन्दी राष्ट्रभाषा स्वीकार हो जाने के बाद और हमारे प्रदेश में उसे राज्य का स्थान मिलने के बाद भाषा की वृद्धि का दायित्व स्वभावतः शासन पर चला जाता है। यों भी गैर-सरकारी संस्था के लिये यह ध्येय दुःसाध्य है । फिर भाषा की समृद्धि या प्रमाणीकरण हर प्रान्त में अपने-अपने ढंग का नहीं हो सकता । उसमें अखिल भारतीय साम्य अत्यन्त आवश्यक है । सम्भव है, सम्मेलन का यह उद्देश्य राष्ट्र और राज्य-भाषा की स्वीकृति से पहले निश्चित किया गया हो। आज की स्थिति में तो साहित्य की समृद्धि का अंश सम्मेलन का एक विशिष्ट कार्य-क्षेत्र बन सकता है । सम्मेलन को एक ठोस संकल्प के साथ अग्रसर होना पड़ेगा । दल-दल और गुट्टबंदी से दूर रहकर ।

हमारे प्रान्तपर यह कथन सोलह आने लागू होता है कि देश ने सदा विविधता में एकता का निर्वाह किया है । साहित्य के क्षेत्र में यह प्रान्त विविधताओं से ओतप्रोत है । मुख्य रूप से हिन्दी और मराठी इस प्रान्त की मुख्य भाषायें हैं । इनके अतिरिक्त बुन्देलखण्डी, निमाड़ी, छत्तीसगढ़ी, गोंडी, हलबी आदि यहां की बोलियां हैं । यह माना जाता है कि प्रत्येक बोली का अपना विशिष्ट साहित्य है और उसे हिन्दी द्वारा सामने लाना हिन्दी के साहित्य-भण्डार को स्वयं पूरित करना मात्र नहीं है प्रत्युत इस आन्दोलन द्वारा राष्ट्र-भाषा को हम इन बोलियों के समीप भी पहुंचाते हैं । अब तक ‘निमाड़ी लोक गीत’ के नाम से सम्मेलन ने एक प्रकाशन तैयार किया है। इसी प्रकार एक योजनाबद्ध रूप में अन्य बोलियों का काव्य, साहित्य, मुहावरे आदि सामने आने चाहिये । प्रान्तीय सम्मेलन को यह कार्य हाथ में लेना चाहिये । एक महत्व पूर्ण कार्य का अभाव आगे चल कर सम्मेलन को बुरी तरह खटकेगा जो मराठी को हिन्दी के समीप लाने का है। अन्य किसी प्रान्त से इस प्रान्त का कर्तव्य कहीं अधिक बढ़ जाता है । इस कार्य को हाथ में लेकर मराठी से अनुवाद का कार्य तुरन्त प्रारम्भ किया जाना चाहिये ।

जैसा ऊपर उल्लिखित है; सम्मेलन साहित्य की श्री-वृद्धि अपना उद्देश्य मानता है। ‘नक्षत्र’ का प्रकाशन इसका एक उदाहरण हो सकता है । नक्षत्र के बाद प्रान्त में निर्मित होनेवाली कवि पीढ़ी नक्षत्र के दूसरे भाग के प्रकाशन की मांग कर सकती है । सम्मेलन का ध्यान इस ओर जाना चाहिये कि वह कवियों को ऊपर उठाने, उन्हें सामने लाने की ठोस योजना तैयार करे । इतना ही नहीं समय-समय पर उनके सम्बन्ध में पत्र-पत्रिकाओं में चर्चा हो,

स्वतंत्र रूप से प्रकाशित होने वाले ग्रंथों का प्रचार-प्रसार किया जाय। सम्मेलन को कवियों, नाटककारों और कहानीकारों से आगे बढ़कर निबंधकारों, आलोचकों और उपयोगी साहित्य लिखनेवालों तक भी अपना कार्य-क्षेत्र विस्तारित करना चाहिये जिससे जैसे साहित्य की हमें अधिक आवश्यकता हो सकती हैं; वह अधिकाधिक सामने आये। आशा है, सम्मेलन का वर्तमान कार्य काल इस ओर विचार करेगा।

गीत लिखूँ क्या ?

['श्री. विद्रोही']

गीत लिखूँ क्या !
यह माना, तुम ही जीते; पर तुम्हें तुम्हारी जीत लिखूँ क्या !!

: १ :

और पराजय अपनी लिखकर,
क्या पौरुष को हार सिखा दूं,
पीछे आने वाले जग को—
भूलों का संसार दिखा दूं !
हास-रुदन के परे लिखूं तो, जीवन के विपरीत लिखूँ क्या !!
गीत लिखूँ क्या !

: २ :

मैं तो चित्रित करना चाहूँ,
जग-जीवन की विस्तृत सूची,
पर जाने क्यों बरवस मेरा—
अपना चित्र बनाती कूची !
इसी अधूरे जीवन-पट पर, तेरा नाम पुनीत लिखूँ क्या !!
गीत लिखूँ क्या !

: ३ :

किसी मिलन के मौन दोल पर,
किसी विरह की व्यथा झुलाकर,
अपने ही चिरस्नेह दीप में—
अपने प्राण-पतंग सुलाकर !
आज तुम्हारे विस्मृति-तट से, तुमको मेरे गीत लिखूँ क्या !!
गीत लिखूँ क्या !

दृष्टिकोण

(सम्पादकीय)

भारत के सरदार शरदः शतम् :

गत ३० अक्टूबर को, भारतवर्ष के उपप्रधानमंत्री सरदार श्री वल्लभभाई पटेल की वर्षगांठ थी। अपनी आयु के ७५ पूर्ण कर वे ७६ में पदार्पण कर चुके हैं। इस मंगलप्रद अवसर पर कोटि २ भारतीयों ने विविध हर्ष-उल्लासपूर्वक सरदार की शतायु तथा स्वास्थ्य के लिये शुभ कामनाएँ अर्पित कीं। लगातार विगत ३० वर्षों से, हम दूर से और समीप से, सरदार के जीवन का दर्शन करते आ रहे हैं। उनकी स्वभावगत कठोरता में और कठिनतर कर्मठता में हमने भारत का और संसार का कोमलतम कल्याण अन्तर्निहित देखा है। बारडोली और खेड़ा के सत्याग्रह में हमें उनकी अदम्य अजेय शक्ति का दर्शन हुआ। भारतीय राष्ट्र के मानरूप नागपुर के राष्ट्रध्वज सत्याग्रह संग्राम की विजय द्वारा सरदार ने सारे राष्ट्र की शान सब से ऊँची चोटी पर चढ़ा दी थी। भारतभाग्य-विधाता गान्धी के वे एक श्रद्धा-भक्ति-निष्ठ वफादार साथी सेवक रहे। विगत १२०० सौ वर्षों से छिन्न-भिन्न भारतवर्ष की संगठित एकता साध कर उन्होंने उसे एक बृहत् स्वतंत्र राष्ट्र का रूप दिया। आज वे स्वतंत्र भारत के सतत जागरूक प्रबल प्रहरी हैं। वे कोरे वचनवीर न होकर ठोस कर्मवीर हैं। सरदार बकवास बहुत कम करते हैं; काम बहुत ज्यादा। भारत के राजनैतिक क्षेत्र में उनकी विशिष्टता उनके व्यक्तित्व से, उनकी उक्ति से और कृति से साफ़ साफ़ झलकती है। और इसी लिये सरदार लोह पुरुष के रूप में हमारे देश में प्राचीन भारत के कूटराजनीति के आचार्य चाणक्य और जर्मनी के प्रिंस बिस्मार्क के समकक्ष माने जाते हैं। आपने अपना समग्र जीवन-पुष्प कर्मयोगी वनमाली कृष्ण, तथागत बुद्ध, और महात्मा गान्धी की जननी भारत माता के चरणों में चढ़ा दिया है।

* * * *

प्रियदर्शी पंडितजी :

'भारती' के पाठकों के हाथों में यह अंक पहुँचते पहुँचते १४ वीं नवम्बर पड़ेगी। हमारे प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू इस दिनांक को ६१ वाँ वर्ष पूरा करते हैं और ६२ वाँ प्रारंभ। गत वर्ष स्वतंत्र भारत ने उनकी षष्ठिपूर्ति की वर्षगांठ का मांगलिक महोत्सव मनाकर उनका शुभ अभिनन्दन किया था। उनके दीर्घ जीवी होने

की हृदय से शुभ कामनाएँ भारत के और संसार के राष्ट्रों के कोने कोने से मनाई गईं थीं। इन पिछले तीस बत्तीस वर्षों में पंडितजी ने बड़ी बड़ी मुसीबतें झेलीं। उनको एक बहुत बड़ी लंबी आज़ादी की लड़ाई में जूझना पड़ा। देश के कई कारावासों में वर्षों तक रहना पड़ा। वे गहरे शोक और चिन्ताओं में डूबे। उन्होनें भारत के और दुनिया के दूर दूर देशों के लाखों-करोडों पीड़ित पराधीन जनों को अपनी समवेदना और सान्त्वना दी। स्वतंत्र भारत का यह सौभाग्य है कि पण्डितजी उसे अपने प्रथम प्रधान मंत्री के रूप में बहुमोल बिरासत में मिले। जगन्नियन्ता मंगलमय प्रभु से प्रार्थना है कि पण्डितजी आधुनिक भारत के विराट् निर्माण में चिरंजीवी हों। संसार के राष्ट्रों के बीच, विश्व की मानवता की रक्षा और सुखशान्ति के लिए वे भारतवर्ष की प्रतिष्ठा को अपने आगामी सौ-वर्षों तक दिनदूना रात चौगुना बलन्द रखें! पण्डितजी ने अपने विभिन्न कारावासों में विश्व-साहित्य के भंडार को भी विश्व-इतिहास की झलक, मेरी कहानी, हिन्दुस्थान की कहानी जैसी बहुमूल्य अमर कृतियां प्रदान की हैं।

* * *

२० वीं शताब्दी के महान नाटककार स्व० बर्नार्ड शा :

दो नवम्बर को, प्रातःकाल ४ बजकर ५९ मिनट पर अंग्रेजी के विश्वविख्यात महान नाटककार और स्वतंत्र विचारक जार्ज बर्नार्ड शा की ९४ वर्ष की आयु में मृत्यु हुई! १० साल की अल्प आयु में ही बालक बर्नार्ड में विचार स्वातंत्र्य तथा पुरानी रुढियों के विरूद्ध विद्रोह के भाव उठने लगे थे। स्कूल में मिलने वाली शिक्षा को वह "व्यर्थ की शिक्षा" कहते थे जो उन्हें मिली थीं, और जिस निस्सार शिक्षा के कारण आयर्लैण्ड की राजधानी डबलिन में स्व० शा को एक दफ्तर में क्लर्क का जीवन आरंभ करना पड़ा था।

शेक्सपियर के बाद संसार में इब्सन सरीखे नाटककार हुए, जिन्होंने कला और विषय की दृष्टि से एक नई क्रान्ति उत्पन्न की। किन्तु जीवन, व्यक्तित्व और साहित्य का सामंजस्य जो हमें जार्ज बर्नार्ड शा में उपलब्ध हुआ वह अन्यत्र कहीं दृष्टिगत नहीं होता। शा हमारे युग के महान-चिन्तकों में से थे। जिन्होंने युग-प्रवृत्तियों की समालोचना नाटकों के द्वारा की। तीखी व्यंगात्मक शैली उनकी विशेषता थी। जन्मना आयरिश होने के नाते उनमें उत्तेजित करने और प्रचारात्मक सूक्तियों द्वारा अपनी बात कहने की खास आदत थी। उनकी कोमलता पर एक विचित्र कठोर आवरण रहता था। वे आनन्द की प्रशस्ति चुने हुए दर्द भरे शब्दों में करते थे। उन्होंने अपने जीवन में लगभग ५० अद्वितीय नाटकों की रचना की। ये नाटक संसार की प्रत्येक साहित्यिक भाषा में अनूदित हो चुके हैं और दुनिया के विभिन्न रंगमंचों पर अभिनीत भी। उनके नाटकों को समझना जरा कठिन पड़ जाता है। क्योंकि उनकी विचारात्मक प्रतिक्रियाएँ कुछ अनूठे चरित्रों की सृष्टि करती हैं, कुछ ऐसे सिद्धान्तों की ओर संकेत करती हैं जो हमें शुरू शुरू में पसन्द नहीं आते। उन्होंने जितने बड़े नाटक नहीं लिखे उतनी बड़ी उनकी भूमिकाएँ लिखी

हैं, और यह समझाने की चेष्टा की कि वे अपने नाटक में क्या कहना चाहते हैं। किन प्रथाओं और रूढ़ियों को उखाड़ फेकना चाहते हैं। हजारों लेखक वर्तमान विचारप्रणाली का ढिंढोरा पीटते समय परिचित बातों को बंधे हुए शब्दों और भावों में व्यक्त किया करते हैं परन्तु जॉर्ज शा की विशेषता यह थी, कि जो कुछ वे कहते या लिखते थे वह उन सब से भिन्न होता था। 'शा' ने जहां राजनैतिक सिद्धान्तों की चर्चा की है, वे तथाकथित प्रगतिवादियों से बहुत आगे निकल गए हैं। लोकप्रिय शासन की सब से बड़ी इस कमज़ोरी की ओर उन्होंने संकेत किया है कि वह वास्तव में लोकप्रिय नहीं होता। आधुनिक राजनीति कितनी छलना भरी होती है इसका चित्रण उन्होंने प्रधानमन्त्री के चरित्र की सृष्टि द्वारा किया है—नेता की स्पष्टोक्ति कितनी धोखे में डालने वाली होती है, भावनाओं का आकर्षक परदा हमारे वास्तविक ध्येयों को किस तरह छुपाए रहता है यह सब शा ने बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। समाज, साहित्य, राजनीति, भाषा आदि सभी समस्याओं पर शा ने अधिकार के साथ कलम चलाई है और उन्होंने अपने स्वतंत्र विचारों द्वारा आज के आत्म-सन्तुष्ट विद्वानों और विचारकों की जड़ें हिला दी हैं। शा की मृत्यु से संसार अपना एक सर्वश्रेष्ठ मौलिक लेखक और चिन्तक खो बैठा है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह इस महान नाटककार की आत्मा को शान्ति प्रदान करे। हिन्दी के विद्वानों से हमारी प्रार्थना है कि, शा के नाटकों का संक्षिप्त हिन्दी रूप लिखकर वे भारतीय साहित्य को समृद्ध बनायें।

*

अहिन्दी प्रान्तों की हिन्दी पाठ्य पुस्तकें :

जैसे जैसे समय बीतता जा रहा है, भारत के सभी राज्य हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा किसी-न-किसी रूप में प्रारम्भ करते जा रहे हैं। अब उचित पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। इस सम्बन्ध में हमारे कुछ सुझाव हैं। आशा है शिक्षा के कर्णधार उस पर ध्यान से विचार करेंगे। हिन्दी का विकास कैसे हुआ। उसके लेखक भाषा के विकास की किस स्थिति के द्योतक हैं इन सब बातों को अभी गौण मान कर, भाषा को प्राधान्य देना आवश्यक है। कोई समाज भाषा को शीघ्रता से तभी अपनाता है जब उसका अपना साहित्य उसकी अपनी संस्कृति और उसके अपने गीत और कहानियाँ उस भाषा में उपलब्ध होने लगें। भाषा उस समय रुचि जागृत करने वाली बन जाती है। अत एव बंगाल, बिहार, उड़ीसा आदि प्रान्तों की हिन्दी पाठ्य पुस्तकें इसी बात को ध्यान में रखकर लिखी जायं। प्रान्त के लोकप्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं के हिन्दी-अनुवाद भाषा की दृष्टि से 'सरलता से कठिनता' के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर संकलित किए जावें। उनकी शैली अक्षुण्ण रखी जावे। उनकी कविताओं को जहाँ तक बन सके उसी ताल और लय में लिखा जावे इस प्रकार प्रान्तीय साहित्य द्वारा हिन्दी भाषा पढ़ी जावे तो उसके ग्रहण करने में लोग शीघ्रता दिखाएंगे। यह कार्य है बड़ा कठिन; परन्तु राज्य की सरकारों को यह कार्य शीघ्रता से प्रारम्भ कर देना चाहिए। इस से न केवल राष्ट्रभाषा के प्रचार में सुगमता

होगी वरन्, अभिव्यक्ति, विचार प्रणाली और शैली की दृष्टि से भी स्वतंत्र भारत के नए साहित्य की पूर्वपीठिका तैयार हो जाएगी। हिन्दी में उच्च कोटि की विविधता का सृजन होगा।

* * *

माननीय मिश्रजी का महत्वपूर्ण भाषणः

गत २१ अक्टूबर को, मध्यप्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १४ वाँ वार्षिक अधिवेशन बस्तर राज्य की राजधानी जगदलपुर में, साहित्य साधना में सतत निरत आदरणीय श्री बख्शीजी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। आनन्दप्रद और उत्साहवर्धक वातावरण में हिन्दी की हित कामना से अनेक साहित्यिक तरुण और वयोवृद्ध इस सम्मेलन में सोत्साह एकत्रित हुए। कहते हैं यह सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। माननीय पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र को वहां की स्वागत-समिति ने इस साहित्यिक आयोजन का उद्घाटन करने के लिये आमंत्रित किया था। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए मिश्रजी ने आज के साहित्यसाधकों की समस्याओं पर ख़ासा मननयोग्य प्रकाश डाला है। हिन्दीवालों के लिए यह गौरव तथा आनन्द की बात है कि हिन्दी राज्य-भाषा घोषित हुई। आज वह अपने विकास के संक्रान्ति काल से गुजर रही है। निकट भविष्य में उसका स्वर्ण-युग आरंभ होनेवाला है। भारतीय संविधान के निर्णय के पश्चात् हिन्दी के साहित्य-साधकों की जिम्मेवारियां भी बढ़ गई हैं। हमारी हिन्दी, हमारी हिन्दी-का केवल घोषनाद करते रहने से ही हिन्दी का—'राष्ट्रभाषा' या राजभाषा का—हित साधन नहीं होगा। अब हिन्दी के हित-चिन्तकों, साहित्यकारों को इस विशाल देशकी राष्ट्रभाषा-राजभाषा को प्रौढ़, समृद्ध और समर्थ बनाने का भार अपने कन्धों पर लेना है। उनकी साधना से, तपस्या से, आनेवाले युग में हिन्दी की महत्ता बढ़ेगी। आवश्यकता है धैर्य की, उदार बुद्धि की, दूर-दर्शिता की, सेवावृत्ति की, निष्ठा एवं अध्ययनशीलता की। तभी हम अपने अ-हिन्दी भाषी भारतीय देशबन्धुओं के सामने उच्च संस्कारवान्, प्राणवान् आदर्श उपस्थित कर सकेंगे। इसमें आवेग, उद्वेग या बौखलाहट की लेशमात्र आवश्यकता नहीं है। हिन्दी के सेवकों को अपने साहित्य, चिन्तन, आचार-विचार द्वारा तथा अपने कार्यकलाप और प्रवृत्तियों के द्वारा इस बात का परिचय देना है कि वे अपने इस नये महान् उत्तरदायित्व को जागरूक होकर सँभाल रहे हैं। निकट भविष्य में अ-हिन्दी भाषी साहित्यिक हमारी जाँच करेंगे। हिन्दी-सेवियों को इस कसोटी पर खरा उतरना है।

हम कहते हैं, मध्यप्रदेश के साहित्यिकों की जिम्मेवारियां यहाँ और भी अधिक बढ़ गई हैं, इसे हम माननीय मिश्रजी के भाषण के बाद प्रतिक्षण ज्यादा अनुभव करने लगें हैं। मध्यप्रदेश और उसकी राजधानी की स्थिति उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के बीच में **'स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः'** के समान है। इसके चारों ओर मराठी, तेलुगु, गुजराती, उडिया आदि साहित्य सम्पन्न भाषाओं के प्रदेश इसकी सिमाओं से सटे हुए हैं। मध्यप्रदेश के विन्ध्या-सतपुड़ा-अमरकंट की नर्मदा और ताप्ती नदियां

गुजरात का गौरव बढ़ाती हैं । पुण्य सलिला गोदावरी चांदा के समीप कटिमेखला बनकर दक्षिण भारत के साथ हमारा सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है । और इतिहास साक्षी है, दक्षिणा पथ से शुद्धाद्वैत सिद्धान्त की कृष्ण-भक्ति परम्परा का समस्त उत्तर भारत में प्रचार करने के हेतु आन्ध्र के जगद्गुरु वल्लभाचार्य का जन्म मध्यप्रदेश में रायपुर के समीप, आज से ४७२ वर्ष पहले, उत्कल को हमारे साथ जोड़ने वाली महानदी के तट पर चम्पारण्य में हुआ; जिन्होंने व्रजभाषा के सूर्य सूरदास को विश्व के साहित्यकारों में अमर पद दिलवाया। मध्यप्रदेश को इसका श्रेय है । उसे अपनी इस पुरानी श्रेय-पूंजी को बढ़ा कर फिर सारे भारत में वितरण करना है । संकीर्णता और स्वार्थ-साधना से दूर रह कर हमें अपने पड़ोसी प्रान्तों की भाषाओं को, उनके साहित्य को भी आत्मसात् करना है । अनुभव एवं चिन्तन द्वारा मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि प्रान्तीय भाषाएं भी सीखनी हैं। इससे हिन्दी की शक्ति बढ़ेगी, उसकी शोभा और शील बढ़ेंगे ।

* * *

गुजरात-विश्वविद्यालय का शिलान्यास :

ता० १ नवम्बर को, अहमदाबाद में सरदार वल्लभभाई ने गुजरात विश्वविद्यालय के भवनों का शिलान्यास किया । इस राष्ट्र-मंगलकारी-मुहूर्त में नींव रखते हुए सरदार ने कहा : 'गुजरात को एक विश्वविद्यालय की आवश्यकता बहुत पहले से ही महसूस हो रही थी । आज उस विशाल वट वृक्ष का बीजारोपण मुहूर्त है । इस विश्वविद्यालय में गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ तीनों मिल कर महागुजरात के रूप में प्रतिबिम्बित होंगे। तीस बरस पहले, अहमदाबाद में उन्होंने बापू के आदेश से असहयोग आन्दोलन की क्रान्ति में, अंग्रेजी शिक्षालयों के बहिष्कार में, 'गुजरात विद्यापीठ' की स्थापना की थी जिसने शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति ला कर हमें नई दृष्टि दी। इन ३० वर्षों में भारत और दुनिया में कितने इन्किलाब हुए । राष्ट्रपिता बापू के गुजरात का यह विश्वविद्यालय संसार में अनूठा आदर्श विश्वविद्यालय बने, यह सरदार की शुभ कामना है और हमारी भी । इस विश्वविद्यालय की एक महत्व की विशेषता यह होगी कि शिक्षा का मुख्य माध्यम गुजराती भाषा बनेगी । और शिक्षा के माध्यम में राष्ट्रभाषा का भी प्रयोग हो सकेगा। गुजरात विश्वविद्यालय के छात्रों को अपने उत्तर गुजराती अथवा राष्ट्रभाषा में लिखने की छूट मिलेगी। हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है कि राष्ट्रभाषा का विकास और उसको दिया हुआ प्राधान्य कभी भी किसी प्रादेशिक भाषा का विरोधी नहीं होगा। प्रादेशिक भाषाओं की उन उन प्रदेशों में प्रभुता अक्षुण्ण रहेगी । राष्ट्रभाषा तो आसेतु हिमाचल अखिल भारत के समग्र वाणी व्यवहार का माध्यम बनेगी। आज तो अंग्रेजी भाषा के माध्यम का सवाल बड़ा टेढ़ा बन गया है। और यह प्रश्न भारतीय विश्व विद्यालयों के कुछ कुलगुरुओं के आगे बड़ा विकट एवं विवादास्पद बनता जा रहा है। वे अबतक किसी एक निर्णय पर नहीं पहुंच रहे हैं। वे अंग्रेजी को अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर प्रान्तीय भाषा और राष्ट्रभाषा से भी कहीं अधिक महत्त्व दे रहे हैं। उनकी दृष्टि में अंग्रेजी माध्यम

बिना की शिक्षा एकदम अधम से अधम कोटि की हो जायगी। और इसी लिए वे और उनके अनुयायी अंग्रेज़ी को लम्बी मुद्दत के लिए अपना आलम्बन बना रहे हैं। हम अंग्रेज़ी के विरोधी नहीं। अंग्रेज़ी भाषा की धनाढ्यता के हम कायल हैं। स्वतंत्रता मिलने के उपरान्त स्वल्प कालान्तर में हमारी प्रादेशिक भाषाएं और राष्ट्रभाषा भी अत्यन्त धनाढ्य बन सकेंगी ऐसी हमारी श्रद्धा और विश्वास भूमि तैयार है। हम तो इतना भर चाहते हैं कि हिन्दुस्तान पर से अंग्रेज़ों की हुकूमत हटी; तो जल्दी-से-जल्दी अंग्रेज़ी भाषा की मौजूदा हुकूमत भी हमारे देश की छाती पर से बोझ की तरह उतर जाय। गुजराती, मराठी आदि प्रादेशिक भाषाओं के और राष्ट्रभाषा हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य-निर्माण में गुजरात का यह विश्वविद्यालय देश का मार्गदर्शन करे!

* * *

सहयोगियों के नये प्रकाशन :-

हिन्दी के सौभाग्य से आये दिन, अनेक पत्र-पत्रिकाएँ और मासिक पुस्तकें निकलती हैं। अच्छे अच्छे ख्यातिप्राप्त प्रतिष्ठित लेखकों की और उदीयमान लेखकों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। अनेक प्रतिभाशाली लेखक, कवि, कहानीकार, एकांकीकार, समालोचक हिन्दी साहित्य की विविधता का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं। और हम तो आशावादी स्वप्नद्रष्टा हैं कि एक दिन अवश्य आने वाला है, जब ये हिन्दी-साहित्यिक राष्ट्रभाषा, राजभाषा, हिन्दी की कीर्ति को दिग्दिगन्तरों में प्रसारित करेंगे। सुन्दर विविध विषयों से सज्जित हिन्दी साप्ताहिक और मासिक पत्र भी उस कीर्ति को चार चाँद लगाने में और साहित्यकारों की प्रतिभा को विकसित करने के निर्माण कार्य में संलग्न होंगे। यहां हम अपने दो सहयोगियों का स्वागत करेंगे जो नई कल्पना, नई भावना और नई प्रतिभा को ले कर चले हैं। एक है हमारा बंबई का सहयोगी सचित्र साप्ताहिक **"धर्मयुग"**। उसे हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक बनाने में सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी जोशी-बन्धु डॉ० हेमचन्द्र जोशी और इलाचन्द्र जोशी कृतसंकल्प हो कर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं। हमारी अपने सहयोगी के प्रति, उसके ५-६ अंक देख कर यही शुभ कामना है कि वह हिन्दी का एक सर्वश्रेष्ठ सचित्र साप्ताहिक हो।

और अपने दूसरे सहयोगी का स्वागत करते हुए, उसकी अपनी छोटी-सी विज्ञापना की ही हम नीचे अवतारणा कर रहे हैं। हिन्दी के तरुण प्रतिभाशाली 'अज्ञेय' जी स० ही० वात्स्यायन के सम्पादकत्व में—

: प्रतीक :

हिन्दी का प्रतिष्ठित साहित्यिक द्वैमासिक "प्रतीक" जो अब तक इलाहाबाद से निकलता था, शीघ्र ही दिल्ली से अब मासिक रूप में निकलेगा। पत्र का सम्पादन पूर्ववत् एक सलाहकार मण्डल के सहयोग से श्री सच्चिदानन्द वात्सायन ही करेंगे, और नीति भी पूर्ववत् रहेगी। आकार बदल कर रायल अठपेजी हो जायगा। मूल्य ८ रुपया वार्षिक होगा, प्रति संख्या बारह आने। मासिक 'प्रतीक' का प्रथम अंक आगामी दिसम्बर मास में निकल जायगा।

113522

दी युनायटेड कमर्शियल बैंक लि.

हेड ऑफिस, कलकत्ता

चुकता मूलधन : २ करोड़ रुपये

सुरक्षित कोष (रिज़र्व फंड) : ५२॥ लाख रुपये

चेयरमैन : जी. डी. बिड़ला

जनरल मैनेजर : बी. टी. ठाकुर

समस्त भारत, पाकिस्तान, बर्मा और मलाया में बैंक की शाखाएँ हैं, और संसारभर में एजन्सी की व्यवस्था है।

जी. ए. रणदिवे
मैनेजर, नागपुर शाखा

'भारती' यहां मिलती है।

१. अदोनी
२. अजमेर
३. अमृतसर
४. बंगलोर शहर
५. बलंगीर
६. बडवानी
७. बेलगांव
८. बल्लारी
९. बेतूल
१०. बंबई
११. कोयंबतूर
१२. एलोर
१३. गुंतकल
१४. गुंटूर
१५. हुबली
१६. इन्दौर
१७. जबलपुर
१८. मद्रास सेंट्रल
१९. मद्रास इगमोर
२०. मदुरा (जं.)
२१. मद्रास
२२. मलकापूर
२३. मैसोर
२४. नागपुर
२५. निडडबोल
२६. राजमहेन्द्री
२७. राजकोट
२८. सामलकोटा
२९. सिकंदराबाद
३०. तंजौर
३१. तेनाली
३२. तिरूच्चिनापल्ली
३३. ट्रिवेंड्रम सेंट्रल
३४. विजयवाड़ा

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेर-ओ-शायरी

[उर्दू के १५०० शेर और १६० नज़्म]

श्री. अयोध्याप्रसाद गोयलीय —

प्राचीन और वर्तमान कवियों में ३१ लोकप्रिय कलाकारों के मर्मस्पर्शी उर्दू पद्यों का संकलन और उर्दू-कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय। **हिंदी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।**

मूल्य ८)

मिलनयामिनी (गीत)

(कविवर बच्चन)

जिसकी मधुशाला का अमेरिका में संस्करण प्रकाशित हो रहा है उसी भारत सपूत बच्चन की श्रेष्ठतम और नवीन कृति।

मूल्य ४)

मुक्तिदूत [पौराणिक रोमांस]

श्री. वीरेन्द्रकुमार, एम् ए.

उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है……मर्मज्ञों ने मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है……। द्वितीय संस्करण छपा है। **मूल्य ५)**

पथचिह्न [उत्तर प्रदेश सरकार से एक हजार रुपयों से पुरस्कृत]

मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली। श्री. शांतिप्रिय द्विवेदी की कोमलस्मृति रेखाएँ।

मूल्य २)

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ

इन कहानियों में प्राचीन भारत का चिन्तन सुरक्षित है। — कर्मवीर खण्डवा।

मूल्य ३)

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि

प्रश्नशास्त्र का अद्भुत ग्रंथ, हिन्दी विवेचन, मुहूर्त, कुण्डली, शकुन आदि के हिन्दी परिशिष्टों में विभूषित। इसके अध्ययन से सामान्य-पाठक भी ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस ४

हिन्दी-कथा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ

सचित्र मासिक पत्रिका

एक प्रति ।।-) आने] **सुमित्रा** [वार्षिक मूल्य ६) रुपया

संचालक-श्री कैलाशनाथ भार्गव, स्टार प्रेस, कानपुर

तथा

सम्पादक—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी

सर्वसाधारण तथा विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि

"सुमित्रा"

परिवार के सभी सदस्यों—स्त्री-पुरुषों, पुत्र-पुत्रियों, भाई-बहनों—को बेधड़क पढ़ने को दी जा सकती है। इसकी कहानियां पाठक की सात्त्विक वृत्तियों को जाग्रत करती हैं तथा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती हुई उसका मनोरंजन करती हैं, कर्तव्य के लिए सन्नद्ध करती हैं, और भावुकता के दुरुपयोग से बचाती हैं।

'सुमित्रा' के पाठक कहानियों द्वारा बड़े से बड़े और गूढ़ से गूढ़ विषय को भी आसानी से समझ सकते और मानव जीवन की गुत्थियों को आसानी से सुलझा सकते हैं।

पता:—

सुमित्रा प्रकाशन पो० बा० नं० १, कानपुर, यू. पी.

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. हमारे नवीन प्रकाशन

(१) ज्ञानयोग — स्वामी विवेकानन्द, मू० ३);
(२) सरल राजयोग — स्वामी विवेकानन्द, मू० ॥);
(३) स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप, मू० १।=);
(४) वेदान्त — सिद्धान्त और व्यवहार — स्वामी शारदानन्द–विवेकानन्दजी के गुरु-भाई-कृत मू० ।=).
(५) शक्तिदायी विचार — स्वामी विवेकानन्द, मूल्य ॥=).

२. श्रीरामकृष्णवचनामृत

अनुवादक—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सुन्दर गेट-अप, तीन भागों में, प्रथम भाग, पृ. सं. ६३२, मूल्य ६) रु., द्वितीय भाग, पृ. सं. ६५७, मूल्य ६) रु., तृतीय भाग, पृ. सं. ८२२, मूल्य ७॥ रु.।

३. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी)

पं० द्वारकानाथ तिवारी कृत, दो भागों में, सुन्दर गेट-अप, प्रथम भाग, पृ. सं. ४३६, द्वितीय भाग, पृ. सं. ४८६, प्रत्येक भाग का मूल्य ५ रु.।

"श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे।"

— **महात्मा गांधी**

४. विवेकानन्द-चरित

(विस्तृत एवं स्फूर्तिदायक जीवनी)

सुविख्यात लेखक, श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार कृत, **अभी प्रकाशित हुई**; सुन्दर गेट-अप, पृ. सं. ५५५, मूल्य ६ रु.।

"प्राचीन भारतीय संस्कृति में पगे तथा भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा के अभिमानी स्वामी विवेकानन्द मानवी जीवन की समस्याओं को समझने में नितान्त आधुनिक थे और हम कह सकते हैं कि इस प्रकार उनके जीवन में भारतवर्ष की प्राचीन तथा वर्तमान संस्कृति का सुन्दर समन्वय हुआ है।"

— **पं० जवाहरलाल नेहरू**

५. विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप)

शिष्य शरच्चन्द्र कृत, सुन्दर गेट-अप, पृ.सं. ४४८, मूल्य ५।) रु.

स्वामी विवेकानन्द कृत — भारत में विवेकानन्द, ५; पत्रावली (दो भागों में), प्रत्येक भाग का मूल्य २=); महापुरुषों की जीवन-गाथाएँ १।); मन की शक्तियां ॥); ईशदूत ईसा ।=); राजयोग १=); स्वाधीन भारत! जय हो! १=); कवितावली ॥=); भारतीय नारी ।॥); ~~शिक्षा ॥=)~~; धर्म-रहस्य १); मेरी समरनीति ।≡); धर्मविज्ञान १॥=); मेरा जीवन तथा ध्येय ॥); मरणोत्तर जीवन ॥); श्रीरामकृष्ण, धर्म तथा संघ ॥=); कर्मयोग १॥=); हिन्दू-धर्म १॥); प्रेमयोग १।=); भक्तियोग १।=); आत्मानुभूति १।); परिव्राजक १।); प्राच्य और पाश्चात्य १।); शिकागो-वक्तृता ॥=); मेरे गुरुदेव ॥=); हिन्दू-धर्म के पक्ष में ॥=); वर्तमान भारत ॥); पवहारी बाबा ॥); विवेकानन्दजी की कथाएँ १।); श्रीरामकृष्ण-उपदेश ॥=)।

परमार्थ-प्रसंग — स्वामी विरजानन्द — (विवेकानन्दजी के संन्यासी शिष्य तथा रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष कृत) कपड़े की जिल्द ३॥); काड बोर्ड की जिल्द ३।)

पता :—
श्रीरामकृष्ण आश्रम, [भा], धन्तोली, नागपुर-१, मध्यप्रदेश

खास सूचना :—

'भारती' बिना मूल्य १ वर्ष तक

जो हिन्दी-प्रेमी सज्जन 'भारती' के ४ नये ग्राहक बना देंगे उन्हें भारती एक साल तक बिना मूल्य मिलेगी।

— प्रबन्ध सम्पादक,
'भारती'
कांग्रेसनगर, नागपुर १

'भारती' आप से कुछ कहना चाहती है

१. यह कि 'भारती' के प्रकाशन का उद्देश्य अब आपसे छिपा नहीं है।

२. यह कि 'भारती' हर महीने सुन्दर १०० पृष्ठों में सचित्र, सुरुचिपूर्ण, विविध-विषयक भारतीय साहित्य, कला और संस्कृति की श्रेष्ठ पाठ्य सामग्री अपने प्रेमी पाठकों के हाथों में प्रस्तुत करती है।

३. यह कि अब समय आ गया है कि आपके घरों में जो पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य आदि सामग्री आवे; आप उसकी जागरूक, सतर्क एवं सचेष्ट होकर जाँच पड़ताल करें कि उसमें कहीं रोग के कीटाणुओं की तरह नग्नता, अश्लीलता या गन्दगी तो नहीं भरी हुई है; जो हमारे घरों में कमजोरी, कुविचार, कुरुचि और कुवासना को उत्तेजित करती है, सड़ाँद पैदा करती है, और जो हमारे राष्ट्रीय, जातीय अथवा व्यक्तिगत जीवन को विकारग्रस्त, अस्वस्थ, निर्बल बना कर पतन की ओर ले जा रही है। कृपया अश्लील, नग्न-चित्र, भद्दी, अर्धनग्न, कुरुचिपूर्ण, पाठ्यसामग्री और गन्दगी से भरे हुए शर्मनाक औषधीय विज्ञापनों से सुसज्जित पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों को अपने घरों में मत घुसने दीजिए।

४. यह कि जो आपके जीवन को, विचारों को, चरित्र को, रुचि को समृद्ध, संस्कारवान, प्राणवान, स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण बनाएँ वैसा ही उत्तम साहित्य आप पढ़ें। ऐसा साहित्य जहाँ से मिले, उसका स्वागत करें, उसे अपने घर में स्वतंत्र सूर्य के स्वच्छ प्रकाश की तरह और नीरोग स्वास्थ्यकर हवा के झोकों की तरह बेरोक-टोक आने दें।

५. यह कि इस महान पवित्र साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्य में आप 'भारती' का हाथ बटावें, उसकी सहायता करें।

६. यह कि आप तो 'भारती' के नियमित पाठक हैं ही; जहाँ जिस शहर या गाँव में आप हैं, भारती की सहायता के लिए अपनी ओर से कुछ-न-कुछ अवश्य करें। प्रत्येक पाठक 'भारती' का एक नया पाठक बना दे। जिन पुस्तकालयों, वाचनालयों या स्कूल-कालेजों की लायब्रेरियों में वह नहीं पहुँच रही है, वहाँ उसे उत्साहपूर्वक प्रोत्साहन देकर पहुँचा दें।

७. यह कि यथार्थ में सच्चे दिल से, ज़रासी मेहनत से, आप अपने इष्ट मित्र बन्धुओं में से एक एक नया ग्राहक बना कर भारतीय राज्य एवं राष्ट्र की भाषा हिन्दी के प्रसार में हमारी मदद करें।

८. "भारती" आपकी ऐसी सहायता का सहर्ष स्वागत करेगी। प्रतीक्षा में—

श्री. परदेशी, साहित्यरत्न:

जब १४ साल के थे, हिन्दी में लिखना शुरू किया। लगातार १२ वर्षो से लिख रहे हैं। कविताएँ अधिक लिखी हैं। उसी में विशेष अभिरुचि है। 'चितौड़', 'जयहिन्द,' 'परदेसी के गीत,' 'रेखा और धब्बे' ये श्री परदेशी की पुस्तकें हैं। उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि के लेखन में लगे है। आपका "चट्टान" उपन्यास शीघ्र ही निकलनेवाला है। गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, फ्रेंच और रूसी कहानियों के सुन्दर अनुवाद भी। आजकल बम्बई में रहतें हैं।

सर्व श्री. प्रो. कन्हैयालाल सहल, एम. ए.

प्रो. विनयमोहन शर्मा, 'श्री विद्रोही' तथा अनन्त गोपाल शेवडे का परिचय, 'भारती' के पिछले अंकों में।

श्री. प्रो. प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी, एम. ए.:

अलीगढ़ कालेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर। हिन्दी के उदीयमान लेखक और सफल अनुवादक।

श्री. कि. रा.:

तामिळ भाषा के सर्व श्रेष्ठ कहानी-लेखक, तमिळ की लोकप्रिय पत्रिकाओं "मणिक्कोडि," "राष्ट्रवाणी," "शूरावलि"—आदि के सफल सम्पादक। आजकल फिल्म-संसार में कथा-लेखक हैं। हिन्दुस्तान के मशहूर सिने-स्टूडियो 'जैमिनि' में हैं।

श्री. वाविलाल सोमयाजुलुः

गुंटूर कालेज में तेलुगु साहित्य के प्राध्यापक। कवि, नाटककार, निबन्ध लेखक। कविता आपकी बड़ी ललित और हृदयस्पर्शी और कविता पाठ भी सुश्राव्य। दो सुन्दर उपन्यास आप पूरे कर चुके है।

श्री. ललिता प्रसाद पुरोहित 'साहित्यरत्न' :

नागपुर के प्रसिद्ध राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक पत्र 'नव-भारत' के तरुण सहसम्पादक, साहित्य, राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय विषयों पर लिखने में खास रुचि।

113522

* * *

हिंदी और मराठी भाषामें **उद्यम** प्रतिमास
प्रकाशित होता है। १५ तारीख को पढ़िये।
धर्मपेठ, नागपुर.

उद्यम में निम्न विषयों पर लेख प्रकाशित होते हैं।

- ★ लाभदायक उद्योगधंधों की व्यवहारोपयोगी जानकारी।
- ★ अनाज की खेती, सागसब्जी की बागवानी, और रोगों का निवारण।
- ★ पशुपालन, दुग्धव्यवसाय और ग्रामोद्योग-संबंधी लेख।
- ★ विद्यार्थियों के लिये वैज्ञानिक तथा अन्य जानकारी-पूर्ण लेख।
- ★ आरोग्य, घरू औषधियों संबंधी जानकारी।
- ★ उद्यम परिवारके हर व्यक्तिकी दृष्टिसे उपयोगी है।
- ★ संपूर्ण भारत के व्हीलर रेल्वे स्टालों, और हर गाँवके न्यूजपेपर एजेंटों की माँग सतत बढ़ती जा रही है।
- ★ उद्यम मासिक में हर माह सुधार किया जा रहा है और इसे हर पाठक की दृष्टिसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न हो रहा है।
- ★ वर्ष के १२ अंकों में अपने ढंग के दो विशेषांक प्रकाशित होते हैं, जो स्थायी ग्राहकों को वार्षिक चंदे में ही मिलते हैं।

उद्यम के विशेष स्तंभ

- ★ महिलाओं तथा विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त
- ★ विभिन्न रुचिकर खाद्यपदार्थ बनानेकी विधियाँ
- ★ घरू मितव्ययिता
- ★ उद्यम का पत्रव्यवहार
- ★ खोजपूर्ण खबरें
- ★ आर्थिक तथा औद्योगिक परिवर्तन
- ★ जिज्ञासु जगत
- ★ व्यापारिक हलचलों की मासिक समालोचना
- ★ कृषि, औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों की मुलाकातें और परिचय
- ★ हिंदुस्थान के वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र का उपयोगी जानकारी
- ★ नित्योपयोगी वस्तुएँ घरही तैयार कीजिये।
- ★ आजही उद्यम का वार्षिक चंदा रु. ७-०-० भेजकर सर्वोपयोगी उद्यम मासिक मंगवाना प्रारंभ करें।

Reg. No. N. 1262.

मध्यप्रदेश सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा भारती को मान्यता।

TRUE COPY.

OFFICE OF THE DIRECTOR OF PUBLIC INSTRUCTION,

MADHYA PRADESH.

ORDER.

No. 4439/A/V. Dated Nagpur, the 21st October, 1950.

The Hindi Journal noted below has been approved for use in High and Normal School libraries of the Madhya Pradesh.

Name of the book.	Editor.	Price per copy.
BHARATI.	***Hrishikesh Sharma,*** Congress Nagar, Nagpur.	**Rs. 1/4/-**

Sd/- E. W. FRANKLIN,
Director of Public Instruction,
Madhya Pradesh.

No. 4440/A/V. Dated Nagpur, the 21st October, 1950.

Copy is forwarded to Shri V. M. Kulkarni, Managing Editor, Bharati, Congress Nagar, Nagpur with reference to his letter dated the 28th September, 1950 for information.

भारती

'भारती' में अपना विज्ञापन देकर व्यापारिक लाभ उठाइये

76236

'भारती' की प्रगति

उत्तर-दक्षिण में

श्रीनगर काश्मीर से लेकर रामेश्वरम् मद्रास तक

और पूर्व-पश्चिम में

गोहाटी आसाम से लेकर कराची पाकिस्तान तक

भारती का प्रचार है

विज्ञापन के मासिक दरः—

	पूरा पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
१. मुखपृष्ठ ४ था	१७५) रु.	९०) रु.	५५) रु.
२. मुखपृष्ठ २ रा और ३ रा	१४०) रु.	७५) रु.	४५) रु.
३. साधारण पृष्ठ.	१००) रु.	६०) रु.	३५) रु.

पता :— प्रबन्ध-सम्पादक, "भारती"
C/o. ऑल इंडिया रिपोर्टर, लि. नागपुर १ (मध्यप्रदेश)

Printed by V. M. Kulkarni at the All India Reporter Press and
Published by him at Bharati Karyalaya, All India Reporter Ltd., Nagpur.
D/- 7—11—1950.

(All Rights Reserved)

Compiled
1999-2000